

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-

विरचितया सुधाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतं

हिन्दी-गुर्जर-भाषाऽनुवादसहितम्-

॥ श्री-स्थानाङ्गसूत्रम् ॥

(चतुर्थो भागः)

STHĀNĀNGA
SŪTRAM

नियोजकः

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि-
पण्डितमुनि-श्रीकन्हैयालालजी-महाराजः

प्रकाशक.

“अखण्डसौभाग्यवती श्रीमती विजयकुमारी जैन, धर्मपत्नी
श्री हजारीलालजी जौहरी दिल्ली - तत्प्रदत्त द्रव्यसाहाय्येन
अ० भा० श्वे० स्था० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुखः
श्रेष्ठि-श्रीशान्तिलाल-मङ्गलदासभाई-महोदयः

मु० राजकोट

प्रथमा-आवृत्ति
प्रति १२००

वीर संवत्
२४२२

विक्रम-संवत्
२०२२

ईसवीसन्
१९६५

मूल्यम्-रु० २५-०-०

भणवानुं ठेकाणुं :
श्री अ. भा. २वे. स्थानकेवारी
जैन शास्त्रोद्धार समिति,
ठे. गरेडिया कृपा रोड,
राजकोट, (सौराष्ट्र).

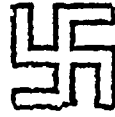
Published by :
Shri Akhil Bharat S. S
Jain Shastroddhara Samiti,
Garedia Kuva Road, RAJKOT,
(Saurashtra), W. Ry, India



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैप यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालोऽहयं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतच्छन्दः



करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुलपृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

मूल्याः ३. २५=००

प्रथम आवृत्ति प्रत १२००
वीर संवत् २४६२
विक्रम संवत् २०२२
धसवीसन १६६५

: मुद्रक :
भणिलाल छगनलाल शाह
नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस,
धीगांटा रोड, अमदावाद.

पंभाव संप्रदायके पू. सोहनलालजी म. सा. की आज्ञामें विचरनेवाले पू.
मयारामजी म. के शिष्यानुशिष्य परम प्रतापी श्री
व्याख्यानवाचस्पति—स्वर्गीय मदनलालजी महाराजको

अष्टक—

(मालिनी छंद)

परिश्रुतगुणमाल शुद्धधर्मालवालं,
विमलगतिमरालं शुद्धभावैर्विशालम् ।
सकलमनसि दुःखान्मन्यते त्वां वियुक्त—
सुमुनिमदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ १ ॥

हरिगीत छंद

हिन्दी

गुणगण विमल धारण किये, जो आलवाल सुधर्मके
थे हंस सम जो चाल चलते, मूल थे शुभ कर्मके ।
हम मानते हिय तापसे, दूरस्थ उन मतिमानको,
हे भव्य जन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥१॥

अमृतसरससारां शुद्धतत्त्वैकधारां—

प्रशमरसगभीरां भव्यलोका मयूराः ।

मधु-मधुरगिरंते पीतवन्तोऽत्यनृत्यन्,

सुमुनिमदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ २ ॥

हिन्दी

पीयूष सम अतिशय सरस, अरु शान्त रस गभीरकी ।
तात्त्विक मधुर मधुमय विमल वाणी परममति धीरकी ।
भविजन श्रवण कर नाचते, उन दिव्य सन्त सुजानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ २ ॥

त्वयि शशि निजगत्यां, निष्फलङ्केऽत्रलोकाः,

सुखिन इव यदाऽऽसन्, त्वं ह्यकस्मात्कथं हा ।

गत इत इति खेदै, दुःखिनस्ते जनास्तं—

सुमुनि मदनलालं, शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ३ ॥

हिन्दी--

अति निष्कलङ्क सदा उदित, परिपूर्णचन्द्र समानसे,
 सुखिया सकल दुनियां हुई, पीयूष वाणी पानसे ।
 हैं आज दुखिया दीखती वे विरहमें श्रीमानको,
 हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ३ ॥

यदि कमपि मदीय, मन्तु मालोक्य विद्वन—

त्यजसि सपदि हा-हा ? त्यज्यतां जीव कायाः ।

पडपि निरपराधा, रक्षणीया स्त्वया तं,—

सुमुनि मदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ४ ॥

हिन्दी--

मुनिवर ! हमारे कोई भी अपराधसे हा रूठकर
 यदि त्याग हमको कर रहे, पर जीव पट्टकनिकाय पर ।
 करके दया रक्षा करो, करुणानिलय श्रीमानको,
 हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ४ ॥

तरुणकरुणधारी, शुद्धता पूर्वचारी—

जिनवचनविहारी, सर्व पापापहारी ।

निविडतिमिरहारी, ज्ञानदीपात्सदा तं,

सुमुनि मदनलालं, शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ५ ॥

हिन्दी--

जो शुद्धता पूर्वक विचरते, तरुणकरुणावान थे,
 जो पापहारक सर्वदा, जिनवचनश्रद्धावान थे ।
 अज्ञानहारक ज्ञानसे, उन दिव्य सन्त सृजानको,
 हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ५ ॥

सकलभुवनचिन्ता - हारि - चिन्तामणिर्यः—

पुनरपि जनवाञ्छा, पूरणे कल्पवृक्षः ।

सुगतिसरणि नेता, सद्गुरु स्तत्त्ववित्तं,—

सुमुनि मदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ६ ॥

हिन्दी--

सबके मनोरथ पूर्ण करते, कल्पवृक्ष समानजो,
 चिन्ता हरणमें थे पुनः, चिन्तामणी परमान जो ।

फिर मोक्ष पथ नेता गुरु उन दिव्य सन्त सुजानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ६ ॥
शमदम प्रशमाद्या, ये दुरापा गुणास्त्वा

श्रयितुमिह यतन्ते, नो स्थलं ते लभन्ते ।

कथय पुनरुपायं, नामतस्त्वं स्थितस्तं—

सुमुनि मदनलालं, शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ७ ॥

हिन्दी—

दुर्लभ प्रशम शमदमगुणादिक शुद्ध अति गुणवानको
निज वास हित पाते नहीं हैं, योग्य सुखमय धामको ।
कह दो मुने ! वे क्या करें हा छोड़ के श्रीमानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ७ ॥

तत्र मुनिवर ? शुद्धं दर्शनं स्वप्नमध्ये,—

भवतु करुणदृष्टिर्जायतां सर्व संघे— ।

इति भविजन शुद्धा प्रार्थना यत्कृते तं,

सुमुनि मदनलालं शुद्धभालं भजध्वम् ॥ ८ ॥

हिन्दी—

मुनिराज ! हमको स्वप्नमें भी, आपका दर्शन सदा,
होता रहे हो करुणदृष्टी, संघके ऊपर सदा ।
हे भव्य जनकी, प्रार्थना, जिनके लिये विद्वानको,
हे भव्यजन भज भावसे, मुनि मदनलाल महानको ॥ ८ ॥

घासीलालकृतं त्वेतदष्टकं भावतः पठेत् ।

यो नरः सततं भक्त्या सत्वरं स सुखी भवेत् ॥ ९ ॥

हिन्दी—

इस अष्टकको जो पढे, वरने मंगलमाल

सदाकाल सुखसे रहे, कहते घासीलाल ॥ ९ ॥

सदेशके शब्द अब तक कानोंमें गूँज कर एक अनुपम रोमांच प्रस्फुटित कर देते हैं।

“ धर्म पर जो अधिकार कर लेता है वह उसका जीवन भर साथ देता है । धर्मको अपनानेवाला चाहिये । धर्मको अपनानेमें कितना त्याग करना पड़ता है ? पूर्व-पुरुषोंके उदाहरण समक्ष हैं । उन्होंने धर्म पर सब कुछ न्यौछावर कर डाला, उसीके लिये जिये, उसीके लिये मरे । यह छोटी बात नहीं बहुत बड़ी है । धर्म मिलना कठिन नहीं—पालन करना कठिन है । तुम समझदार हो, सुयोग्य हो, जो पाया है उसे संभाल कर रखोगे तो सब तरहसे समुन्नत बनोगे । ईमानदारीसे कदम बढ़ाते रहो तो तुम्हारा जीवन चमके गा, तब क्याही आनंद आयेगा ?”

वास्तवमें उस कल्यवृक्षकी छाया असीम थी, कभी छोटी नहीं हुई, जो आया सभाको उसमें स्थान मिला तथा मिली अद्भुत शांति !

करुणाके सागर:—

गुरुदेवके मनमें करुणाका असीम सागर हिलोरे लेता था । उनके नेत्रोंमें आर्द्रता थी, वाणीमें सान्त्वनाका स्वर तथा हृदयमें दुःख दूर करनेकी लगन । सरल तथा शुद्ध हृदय लेकर जो भी उनके निकट आया, उसे आन्तरिक स्नेहसे सराबोर कर दिया ।

जीवन-चित्रण:—

गुरुदेवका जन्म पंजाब प्रान्तके रोहतक जिलेके ग्राम ‘ राजपुर ’ में विक्रम सं० १९५२ में हुआ था । पिताश्री मुरारीलालजी व माता गेन्दोबाई—बड़े तपो-निष्ठ धर्मात्मा एवं सरल स्वभावके थे ।

प्रकृतिने जिस पुष्पको एक कोनेमें खिलाया, किसे पता था वह अपने सौरभसे संसारको सुरभित कर डालेगा ।

उस नये फूलका नाम रखा मातापिताने “ मौजीराम ” चूंकि उनके आंगनमें मौज—खुशी फुट पड़ी थी । मौजीरामजीका वचपन धार्मिक संस्कारोंमें आगे बढ़ा । ७ वर्षकी उम्रमें मां छोड़ गई । अब पिताही जीवन रक्षक थे, गाँवमें कुछ पढ़ाई शुरू की । ९ वर्षके होने पर देहली मौसीके (मासी) घर आ गये । पहाडी धीरज पर बहुत बड़ा प्रसिद्ध जैन घराना था, जहां मौजीरामजीकी शिक्षा सम्पन्न हुई । यौवनमें कदम रखा । मौसाजीकी दुकानका कार्य संभाल लिया । किंतु जिन्हें बहुत ऊंची आध्यात्मिक साधना करनी होती है, वे भौतिकताके रंगीन वातावरणमें घिरे नहीं रह सकते ।

दीक्षा:—

देहलीमें साधु संतोंका आगमन प्रायः सदैव रहा है। चांदनी चौक, वारा सिद्दीमें उस समय परम पूज्य, चारित्र चूडामणी, युग प्रधान मुनिवर श्री मयारामजी महाराजके परम प्रतापी शिष्य, श्रद्धेय, गणावच्छेदक, श्री छोटे-लालजी महाराज विराजमान थे। उन्हींके श्री चरणोंका आश्रय श्री मौजीरामजीको मिला। विक्रम संवत् १९७१ भाद्रपद कृष्ण दशमीके दिन वामनौली, जिला मेरठ (३० प्र०) में बड़ी धामधूमसे दीक्षा हुई। उन्हें श्री छोटेलाालजी महाराजके शिष्य बहुश्रुत श्री नाथूलालजी महाराजका शिष्य बनाया गया। और उसी समय नाम परिवर्तनके साथ २ मौजीरामजीसे बदल कर आप श्री मदनलालजी महाराज बन गये।

विनय-भक्ति तथा बुद्धि-प्रतिभा—

विनय-भक्ति, तप-संयम, तथा स्वाध्याय-ध्यानमें प्राण पणसे जुटे रहते थे। बुद्धिप्रतिभा तथा धारणाशक्ति बड़ी प्रखर थी। ६० गाथाएँ (श्लोक) एक दिनमें याद कर लेते थे। आगमोंका ज्ञान प्राप्त करके बहुश्रुत बने। प्राकृत भाषा पर आपका प्रभुत्व था। मुखसे जो शब्दावली निकलती थी, वह बड़ी शुद्ध तथा प्रभावोत्पादक होती थी। उनकी वाणीमें भोज था, मनमें उत्साह तथा आत्मामें थी संयमकी लहर।

स्वाध्याय-संयमकी कुंजी:—

लगभग तीन हजार गाथाओंकी स्वाध्याय वे प्रतिदिन क्रिया करते थे। उनका यह विचार रहता था कि प्रतिवर्ष सब आगमोंका अर्थ सहित स्वाध्याय हो। प्रायः कहा करते कि

“यदि श्रमण स्वाध्याय-रत रहे तो बहुत सी व्यर्थ बातोंसे बचा रहेगा। उसकी साधुतामें रस पैदा होगा, तप संयममें रुचि बढेगी।”

वाणीके जादूगर-व्याख्यानवाचस्पति

श्रुतमम्पन्नताके कारण वाचस्पतिजी की वाणीमें अनुभूतिकी स्निग्धता, तर्कका पैनापन और आस्थाकी गंभीरता थी। उनके व्यक्तित्वमें अद्भुत आकर्षण थे—वाणीकी सारगर्भिता, भाव-प्रवणता और भाषाका प्रबल प्रवाह। अपने श्रोताओंके तन और मन पर हुकूमत करना उन्हें खूब आता था। उनकी वाणीके वेगवान प्रवाहमें बहकर उनके श्रोता कभी करुण रसकी धारा फुटने पर बरबस रो उठते थे, और कभी हर्षकी सतह पर थिरकते थे। वाणीके इसी जादूने पंजाब संघ ही ओरसे विक्रम सं० १९०२ में उन्हें ‘व्याख्यानवाचस्पति’ पदसे अभिनन्दित कराया था।

समाजसुधारकः—

अपने युगके समाज सुधारकोंमें वाचस्पतिजी सबके अगुआ थे। युवकों और शिक्षित्वाचारियोंको चेतावनी देनेवाले उनके तीक्ष्ण वचन-वाण, समाज-उत्थान, धर्मप्रचार एवं संयम रक्षाके हितार्थ वजाया गया उनका तेजस्वी विगुल, अनुशासन और साधू समाचारीके गौरवके सार-संभाल करनेवाले उनके नेत्र-युग्म आज एक स्मृतिमात्र बन कर रह गये हैं।

पदकी निर्लोभताः—

गुरुदेव जिस कार्यको हाथमें लेते थे उसके लिये अपनेको अर्पित कर देते थे। साथही आत्माके विरुद्ध दुनियांकी लाख खुशामदोंके वावजूद, उक्त कामको छोड़नेमें भी नहीं हिचकते थे जिसको वे उपयुक्त न समझते। श्रमणसंघके निर्माणमें जो कार्य उन्होंने किया, वही उनकी कर्मशीलता एक प्रमाण है। अमृतसरसे अर्थात् हिन्दुस्तानके एक छोरसे चले। मौसम सख्त, मार्ग कठिन, तथा शरीर अस्वस्थ। सादडी (मारवाड) पहुँचे। अथक प्रयत्नोंसे साध्यसिद्धिमें जुटे। जब तक मनमें उद्देश्य पूर्ति की आशा रही कभी पीछे न हटे। पर जब दंग खराब देखा, सुधारकी आशा न रही तो जिस लगन और शानसे जुटे थे, उसी लगन और शानसे पीछे हट गये।

उनके व्यक्तित्व, अनुशासन निष्ठता, संयमकी कड़कता और आगम ज्ञानसे प्रभावित होकर, इन्कार करने पर भी भीनासर साधूसंमेलन के अवसर पर उन्हें प्रधान मंत्री पद दिया गया। किन्तु उनकी योग्य देखरेख और यथार्थ पथ प्रदर्शनका लाभ संघके भाग्यमें वंधा नहीं था। श्रमणसंघकी आन्तरिक स्थिति विगडने लगी। आचार्य आचार्यके अधिकारों का स्पष्टीकरण न हो सका ध्वनियंत्र के मसला सुलझने की वजाय और अधिक उलझने लगा, मन्त्रीमंडलका असंतोषप्रद रुख व कार्य देखा तो उन्होंने प्रधान मंत्री पदसे फौरन त्यागपत्र दे डाला। गुरुदेवका त्यागपत्र इन कार्योंको शीघ्र हल करनेकी प्रेरणा देता, यदि उसे उपेक्षित करके अन्धकारमें फँकन दिया जाता।

गुरुदेव भी और मंत्रियोंकी तरह कागजीकार्यवाहियोंके बल पर अपने पदकी वनाये रख सकते थे, किन्तु ऊपरी लापापोती करना वे आत्महननके तुल्य समझते थे।

“संतका जीवन संगल है वहां भरण भी ”

गुरुदेवका जीवन जितना महान था उतनीही मृशु भी। एक वर्षसे उन्हें केन्सर था। सर्जिकल इलाजके लिये त्रिंती की गई तो बड़ी संजीदगीसे फर्माया—

“ भाई ये चंद्र टके जो संयमके इकट्ठे किये हैं, उस नाशवान् शरीरके लिये नहीं लुटाऊंगा ”

सधमुच धन्य थे आप जिन्होंने संयमरूपी टकोंकी संभालमें इस बहुमूल्य शरीरका बलिदान कर दिया ।

जंडियाळा गुरु (जिला अमृतसर) की पावन भूमि गुरुदेव विराजे थे । रोग बढ़ता जाता था, आहार घटता गया । मूँहके जरूम बहते गये । पानी पीना और सांस लेना कठिन हो गया । अन्तिम दिनोंकी वेदना इतनी भयंकर थी कि वर्णन करने कलमका दिल भी दहल उठता है । दर्शन करके हर आदमी का दिल भर आता था । किंतु बाहरे, उनकी अद्भुत सहनशीलता, शांति और मृदु-सौम्यता ! अन्तरात्मा पूर्णतया रोशन थी । उन्होंने अपनी वृत्तियों तथा प्रवृत्तियोंको संक्षिप्त कर लिया था । हर समय आत्म समाधिकी ही ध्यान रहता था । अन्तरात्माकी साक्षीसे चौरामी लाख जीवयोनी और चतुर्विध श्री संथसे खमित-खमावना करके आत्मशुद्धिकी ओर अग्रसर हुए । प्रति सल्लेखना और संथारे की ओर ध्यान गया । शिष्योंसे संथारा करानेको कहा । मौसमकी बड़ी गरमी और रोगकी भयंकरताको देख कर शिष्य साहस न कर सके । आखिरकार उस नरसिंहने अन्तिम दिन ता. २७ जून १९६३ को स्वयं संथारा धारण कर लिया और समाधि पूर्वक अपनी महायात्राको सम्पन्न किया ।

गुरुदेवके स्मारकः—

गुरुदेवकी सुज्ञ-विज्ञ, सुविनीत शिष्य मंडलीमें कितना त्याग-वैराग्य, कितना आपसी स्नेह-प्रेम, कितनी गुरुभक्ति और आदर है । वास्तवमें सब मुनिराज पूर्ण समर्थ हैं । सुयोग्य हैं । गुरुदेवश्रीके स्मारक स्वरूप हैं । उनकी जीवन्त संस्थाएँ हैं । उनकी अनुपम कृति हैं । उनके दर्शन कर हृदय उल्लसित हो जाता है ।

श्रद्धा सुमनः—

गुरुदेवके जीवनका जहाँसे स्पर्श करें वहाँसे एक मृदु तथा मधुर झंकार सी उठती हैं । शब्दोंमें किस प्रकार संजोयें ? क्या अथाह सागर कभी बाँधा गया है ? फिर भी मनको श्रद्धाको कुछ अर्किचन शब्द सुमनोंमें गूँथनेका प्रयत्न किया है । कोटि २ वंदनः—

ऐसी विरल विमल विभूति, ज्ञानी-ध्यानी, त्यागी और तपस्वी महान आत्माको मेरे कोटि कोटि वंदन हैं । उनके श्री चरणोंका शरणा जन्म जन्मान्तरों तक प्राप्त हो ।

—महतावचंद चोरड़िया दिल्ली

આધ્યમુરખીશ્રીઓ



શેઠશ્રી શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ



(સ્વ.) શેઠશ્રી શામળભાઈ વેલલભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ



(સ્વ) શેઠશ્રી છગનલાલ શામળદાસ ભાવસાર - અમદાવાદ.

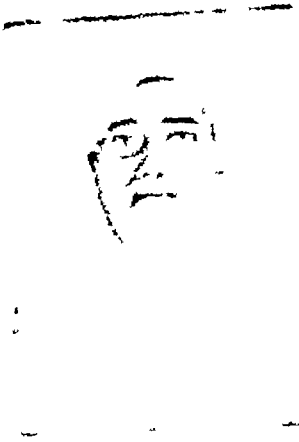


શેઠશ્રી રામળભાઈ શામળભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ.



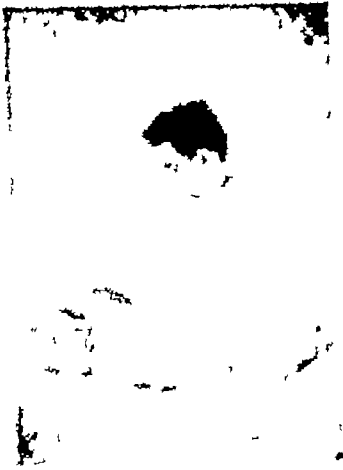
વચ્ચે મેઠેલા
લાલાલ કિશનચંદલ સા જોહરી
ઉમેલા સુપુત્ર ચિ મહેતાખચંદલ સા
નાના - અનિલકુમાર જૈન (દાયતા)

આવમુરખીશ્રીઓ



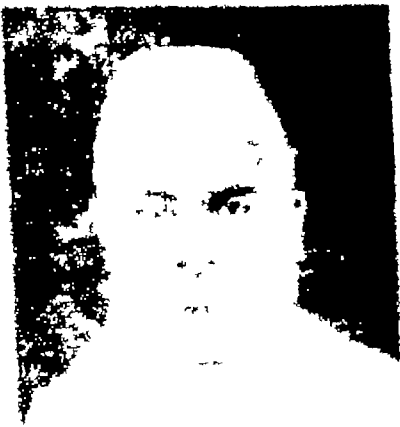
શ્રી ડી.જી.વલ્લભચંદ્ર કાલીવર પારિઆ
આમદાવાદ

(સ્વ.) શ્રી રંગજીભાઈ મોહનલાલ શાહ
આમદાવાદ



શ્રી વિનાયકભાઈ વીરાણી

(સ્વ.) શ્રી દિનેશભાઈ કાંતિલાલ શાહ
આમદાવાદ.



શ્રી મોહનભાઈ વલ્લભચંદ્ર
આમદાવાદ.

શ્રી નેકત્રી આત્માજી મણીકલાલ
આમદાવાદ.

આઘમુરખીશ્રીઓ



શ્રી વૃજલાલ દુલ્લલ પારેખ
રાજકોટ.



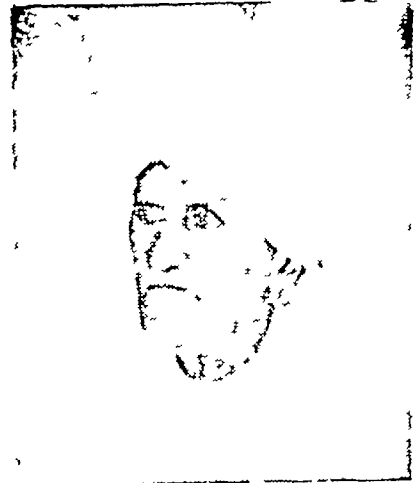
કેઠારી હરશાવિંદ જેથંદલાઈ
રાજકોટ.



શેઠશ્રી મિશ્રીલાલ લાલચંદલ સા. લુણિયા
તથા શેઠશ્રી જેવંતરાજલ લાલચંદલ સા.



(સ્વ) શેઠશ્રી ધારશીલાઈ જયજુલાલ
ખારસી.

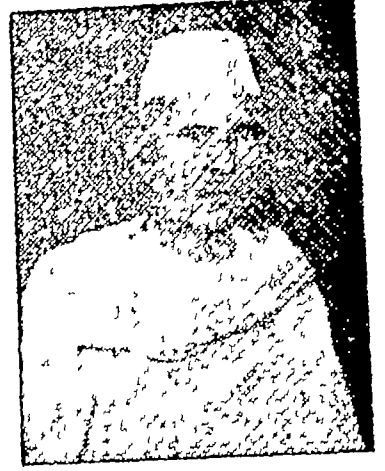


સ્વ શ્રીમાન્ શેઠશ્રી મુકન્દચંદલ સા.
ખાલિયા પાલી મારવાડ

આધ્યમુરુખીશ્રીઓ



સ્વ. શેઠશ્રી હરિલાલ અનોપચંદ શાહ
અંભાત.



સ્વ. શેઠ તારાચંદજી સાહેબ ગેલડા
મદ્રાસ.



શ્રીમાન્ શેઠ સા. ચીમનલાલજી સા.
કામચંદજી સા. અજીતવાલે (સપરિવાર)



૧ વચ્ચે બેઠેલા મોટાભાઈ શ્રીમાન્ મૂલચંદજી
જવાહીરલાલજી ખરડિયા
૨ આલુમા બેઠેલા ભાઈ મિશ્રીલાલજી ખરડિયા
૩ ઉભેલા ત્રીયી નાનાભાઈ પૂનમચંદ ખરડિયા



શ્રીમાન્ સેઠશ્રી
શ્રીમરાજજી સા. ચોરડિયા

श्री
स्थानाङ्गसूत्र भाग चौथेकी
विषयानुक्रमणिका

अनुक्रमाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
	पांचवे स्थानका दूसरा उद्देशा	
१	पांचवे स्थानके दूसरे उद्देशेका विषय विवरण	१
२	विहारके विषयमें कल्पने योग्य और नहीं कल्पनेयोग्यका निरूपण	२-१०
३	गुरुप्रायश्चित्तका निरूपण	११-१६
४	निर्ग्रन्थोंके राजाके अन्तःपुरमें प्रवेशका निरूपण	१६-२०
५	स्त्रियोंमें रही हुई क्रियाविशेषका निरूपण	२०-२३
६	गर्भके संबन्धमें-गर्भ विषयका निरूपण	२३-२८
७	साध्वीके संबद्ध कथनका निरूपण	२८-३६
८	आस्रव, संवर वगैरह द्वारोंका निरूपण	३६-४०
९	आस्रव विशेषरूप क्रिया स्थानका निरूपण	४०-५२
१०	निर्जराके उपायभूत परिज्ञाका निरूपण	५२-५४
११	व्यवहारका निरूपण	५४-७०
१२	संयत और असंयतोंमें सुप्त और जाग्रतके स्वरूपका निरूपण	७०-७२
१३	कर्मबन्धके कारणका निरूपण	७३-
१४	उपघातके स्वरूपका निरूपण	७४-८१
१५	बोधीके सम्यक् प्राप्तिका और अप्राप्तिके कारणको निरूपण	८१-९२
१६	संयमके स्वरूपका निरूपण	९३-१०३
१७	संयम और असंयमका निरूपण	१०३-१०८
१८	वादर भेदवाले वनस्पतिका, पांच प्रकारके वादर भेदोंका निरूपण	१०८-१०९
१९	आचार कल्पके स्वरूपका निरूपण	१०९-११९
२०	मनुष्य क्षेत्रमें रहे हुवे पदार्थ विशेषका निरूपण	११९-१२८
२१	ऋषभ विगैरह तीर्थ करोंका निरूपण	१२९-१३०
२२	भावप्रयुद्धको कारणके होने पर जिनाज्ञाकी अनतिक्रमणता होनेका निरूपण	१३१-१४२
२३	आचार्य और उपाध्यायके अतिशयमें रहने पर जिनाज्ञाका अनुल्लंघनका निरूपण	१४२-१५१

२४	अचार्य और उपाध्यायके गणसे बाहर होनेके विषयका निरूपण	१५१-१५५
२५	ऋद्धिवाले मनुष्य विशेषका निरूपण तीसरा उद्देश—	१५६-१५८
२६	अस्तिकायके स्वरूपका निरूपण	१५९-१७१
२७	इन्द्रियोंके अर्थोंको और इन्द्रिय संबंधी पदार्थोंका निरूपण	१७१-१८७
२८	वादर जीवविशेषका निरूपण	१८७-१९१
२९	सचेतन वायुका विशेष प्रकारसे निरूपण करनेवाले निर्ग्रन्थका निरूपण	१९२-२०५
३०	निर्ग्रन्थोंके उपधि विशेषका निरूपण	२०५-२१०
३१	कायादिक धर्मोपकरणताका निरूपण	२१०-२१८
३२	शौचके स्वरूपका निरूपण	२१८-२२१
३३	छद्मस्थ केवलीके ज्ञेय अज्ञेय पदार्थोंके विषयका कथन	२२१-२२४
३४	अधोलोकमें रहे हुए एवं ऊर्ध्वलोकमें रहे हुए अतीन्द्रिय भावोंका निरूपण	२२५-२२८
३५	मत्स्यके दृष्टान्तसे भिक्षुके स्वरूपका निरूपण	२२८-२३०
३६	वनीपकके स्वरूपका निरूपण	२३०-२३४
३७	अचेलकके प्रशंसास्थानोंका निरूपण	२३५-२३७
३८	उत्कटके पांच भेदोंका निरूपण	२३७-२३९
३९	समितिके पांच प्रकारका निरूपण	२३९-२४१
४०	जीवके स्वरूपका निरूपण	२४१-२४४
४१	वनस्पतिजीवके योनिविच्छेदका निरूपण	२४४-२४७
४२	पांच प्रकारके संवत्सरका निरूपण	२४७-२५८
४३	जीवका शरीरसे निर्गम (निकलना)का निरूपण	२५८-२६०
४४	आयुके छेदका निरूपण	२६०-२६२
४५	आनंतर्यका निरूपण	२६०-२६२
४६	पांच प्रकारके अनन्तका निरूपण	२६४-२६७
४७	ज्ञानके स्वरूपका निरूपण	२६७-२६८
४८	स्वाध्यायके पंचविधताका निरूपण	२६९-२७०
४९	प्रत्याख्यानके स्वरूपका निरूपण	२७१-२७४

५०	प्रतिक्रमणके स्वरूपका निरूपण	२७५-२७७
५१	पांच प्रकारके वाचनास्थानका निरूपण	२७९-२८१
५२	नारकादिकोंके यथावस्थित भावोंका निरूपण	२८१-२८२
५३	जम्बूद्वीप आदिके यथावस्थित भावोंका निरूपण	२८३-२८५
५४	भरतक्षेत्रमें स्थित तीर्थंकरोंका निरूपण	२८५-२८६
५५	क्षेत्रभूत चमरचञ्चादिका निरूपण	२८६-२९०

छट्टा स्थान प्रारंभ—

५६	छट्टे स्थानका विषय विवरण	२९१
५७	गणधरोंके गुणका निरूपण	२९२-२९६
५८	जिनाज्ञाका अविराधकपनेका निरूपण	२९७-३००
५९	छद्मस्थोंके स्वरूपका निरूपण	३००-३०४
६०	जीवको अजीव करनेका छह प्रकारका निरूपण	३०४-३०६
६१	संसारिकजीवका निरूपण	३०६-३११
६२	जीवोंके दुर्लभ पर्याय विशेषका निरूपण	३१३-३१८
६३	इन्द्रियार्थोंके छ प्रकारका निरूपण	३१८-३२०
६४	साता और असाताके षड्विधताका निरूपण	३२१-३२२
६५	छह प्रकारके प्रायश्चित्तोंका निरूपण	३२२-३२४
६६	छह प्रकारके मनुष्य आदिकोंका निरूपण	३२४-३२५
६७	छह प्रकारके ऋद्धिवालोंका निरूपण	३२६-
६८	उत्सर्पिणी कालमें जम्बूद्वीपके मनुष्यके प्रमाणका निरूपण	३२७-३२९
६९	छह प्रकारके संहननका निरूपण	३२९-३३२
७०	छह प्रकारके संस्थानका निरूपण	३३२-३३६
७१	अनात्मावाले जीवोंको अहित करनेवाले छह स्थानोंका निरूपण	३३६-३३६
७२	छ प्रकारके आर्य मनुष्योंका निरूपण	३३९-३४१
७३	लोकस्थितिका निरूपण	३४१-३४३
७४	जीवोंकी गति और दिशाओंका निरूपण	३४४-३४८
७५	संयत मनुष्योंके आहारग्रहण और आहारका ग्रहण नहीं करनेका निरूपण	३४९-३५२
७६	उन्मादस्थानका निरूपण	३५२-३५५
७७	छह प्रकारके प्रमादका निरूपण	२५५-२६१

७८	प्रमाद विशिष्ट प्रत्युपेक्षणाका निरूपण	३६१-३६७
७९	लेश्याके स्वरूपका कथन	३६७-३६९
८०	देवमूत्रका कथन	३६९-३७०
८१	दिवकुमार्यादिकोंका निरूपण	३७०-३७३
८२	धरणेन्द्रादिकोंका सामानिक साहस्रीका निरूपण	३७३-
८३	विशिष्ट मतिवाले देवोंकी गतिके भेदका निरूपण	३७४-३८७
८४	तपके भेदोंका निरूपण	३८७-३९३
८५	त्रिवादके स्वरूपका निरूपण	३९३-३९५
८६	क्षुद्रप्राणियोंके स्वरूपका निरूपण	३९६-३९७
८७	छह प्रकारकी गोचरचर्याका निरूपण	३९७-४००
८८	असाधुचर्याके फलभोगनेवालोंकी गतिका निरूपण	४०१-४०२
८९	साधुचर्याके फल भोगनेवालेका निरूपण	४०२-४०४
९०	नक्षत्रोंके स्वरूपका निरूपण	४०४-४१०
९१	संयम और असंयमके स्वरूपका निरूपण	४१०-४१२
९२	मनुष्य क्षेत्रमें रही हुई वस्तुका निरूपण	४१२-४१८
९३	कालविशेषका निरूपण	४१८-४२१
९४	ज्ञानके स्वरूपका निरूपण	४२१-४२४
९५	अवधिज्ञानके स्वरूपका वर्णन	४२४-४२७
९६	ज्ञानिके अवचन-नही कहने योग्यका निरूपण	४२७-४२९
९७	अवचनमें प्रायश्चित्तका कथन	४२९-४६१
९८	कल्प त्रिपयका निरूपण	४५२-४६०
९९	कल्पस्थितिका निरूपण	४६१-४७१
१००	महावीरस्वामी संबन्धी कथन	४७१-४७२
१०१	देवके संबन्धी निरूपण	४७३
१०२	अहारका परिणाम और विपरिणामका निरूपण	४७४-४७७
१०३	छह प्रकारके प्रश्नका निरूपण	४७७-४८०
१०४	इन्द्रके अनादिपनेका निरूपण	४८१-४८४
१०५	भेद सहित आयुवन्धका निरूपण	४८५-४९४
१०६	औदयिक विगैरह भावोंका निरूपण	४९५-५११
१०७	छ प्रकारका मतिक्रमणका निरूपण	५११-५१६

१०८	चयादिका कथन	५१६-५१७
	सातवें स्थानका प्रारम्भ—	
१०९	सातवें स्थानका विषयचित्रण	५१८-
११०	सात प्रकारके गणोंके अपक्रमण-निकलनेका निरूपण	५१९-५२६
१११	सात प्रकारके विभङ्गज्ञानका निरूपण	५२६-५४३
११२	सात प्रकारके जीवोंका निरूपण	५४३-५४८
११३	संग्रहके स्थानोंका निरूपण	५४८-५५३
११४	पिंडैषणाका निरूपण	५५४-५६४
११५	सात प्रकारकी पृथ्वीयोंके स्वरूपका कथन	५६४-५६९
११६	वाटर वायुकायके स्वरूपका कथन	५६९-५७०
११७	सात प्रकारके भयस्थानोंका निरूपण	५७१-५७२
११८	छ छद्मस्थोंकी जाननेका निरूपण	५७३-५७५
११९	केवलीयोंको जाननेका कथन	५७५
१२०	सात प्रकारके मूलगोत्रका निरूपण	५७६-५७९
१२१	सात प्रकारका मूलनयका निरूपण	५८०-६०३
१२२	सात प्रकारके स्वर्गोंका निरूपण	६०३-६३६
१२३	लोकोत्तर कायक्लेशोंका निरूपण	६३६-६३८
१२४	मनुष्यलोक और वर्षधर पर्वतोंका निरूपण	६३९-६४३
१२५	कुलकर आदिका निरूपण	६४३-६४७
१२६	दण्डनीतिका निरूपण	६४८-६५१
१२७	चक्रवर्ती राजाके एकेन्द्रिय पंचेन्द्रियवाले रत्नोंका निरूपण	६५१-६५३
१२८	दुष्कम-सुपम काल ज्ञानका कथन	६५३-६५९
१२९	सात प्रकारके आयुष्यके भेदोंका कथन	६६०-६६१
१३०	मल्लीनाथ भगवान्का वर्णन	६६२-६६५
१३१	दर्शनके स्वरूपका निरूपण	६६६-६६७
१३२	छद्मस्थावस्थासे प्रतिबद्ध सूत्रका कथन	६६७-६७०
१३३	सात प्रकारकी विकथाओंका निरूपण	६७०-६७४
१३४	आचार्यके सातिशयपनेका निरूपण	६७४-६७७

१३७.	संयम और असंयम आदिके भेदोंका निरूपण	६७८-६८१
१३६	अतसी कुमुम आदि धान्योंका योनिकाल-उत्पादक स्थिति कालका निरूपण	६८२-६८४
१३७	वादर-अप्रकायिक आदिकोंका स्थितिकालका निरूपण	६८४-६८५
१३८	शक्र और ईशानेन्द्रके अग्रमहिषीयोंकी संख्याका और स्थितिका निरूपण	६८६-६८८
१३९	सनत्कुमार आदि कलयोंमें रहे हुए देवोंकी स्थितिका निरूपण	६८९-६९०
१४०	नन्दीश्वरद्वीपके अन्तर्गत द्वीपोंका निरूपण	६९१-६९५
१४१	चमरेन्द्रादिभोंके अनीक और उनके अनीकाधि- प्रतियोंका निरूपण	६९५-७०४
१४२	चमरेन्द्रादिकोंके पादातानीरु और उनके अनीकाधि- प्रतियोंका निरूपण	७०४-७१२
१४३	सात प्रकारके वचनविकल्पोंका निरूपण	७१२
१४४	विनयके स्वरूपाका निरूपण	७१३-७२७
१४५	समुद्रघातके स्वरूपका निरूपण	७२७-७३५
१४६	निहरोके स्वरूपका निरूपण	७३५-७३९
१४७	साता और असाताके स्वरूपका निरूपण	७३९-७४०
१४८	ज्योतिष्क देवोंका निरूपण	७४१-७४५
१४९	देशोंके निवासभूत कूटोंका निरूपण	७४६-७४८
१५०	द्वीन्द्रिय जीवोंका निरूपण	७४८-७४९
१५१	चयादिका निरूपण	७४९-७५१

॥ श्री चीतरागाय नमः ॥

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य श्री घासीलालव्रति-
विरचितया सुधारुयया व्याख्यया समलङ्कृतम्

श्री-स्थानाङ्गसूत्रम्

(चतुर्थो भागः)

अथ पञ्चमस्थानस्य द्वितीयोद्देशः प्रारभ्यते—

उक्तः प्रथमोद्देशकः, सम्प्रति द्वितीयः प्रारभ्यते । अस्य उद्देशकस्य अनन्त-
रोक्तेन उद्देशकेन सह अयमभिसम्बन्धः—अनन्तरे जीववक्तव्यता प्रोक्ता अस्मि-
न्नपि सैव उच्यते, इत्यनेन सम्बन्धेनायातस्यास्योद्देशकस्येदमादिमं सूत्रम्—

तथा—प्रथमोद्देशकान्त्यमूत्रेण सहास्य द्वितीयोद्देशकप्रथमसूत्रस्यायमभि-
सम्बन्धः, तत् सूत्रं केवलिनिर्ग्रन्थापेक्षया प्रोक्तम्, इदं तु छद्मस्थनिर्ग्रन्थापेक्षया
प्रोच्यते—तत्र निर्ग्रन्थनिर्ग्रन्थीनां विहारविषये कल्प्याकल्पविधिमुपदर्शयति—

पांचवें स्थानका दूसरा उद्देशा

प्रथम उद्देश कहा जा चुका है, अब इस पांचवें स्थानका यह द्वितीय
उद्देश प्रारम्भ होता है, इस उद्देशका गत प्रथम उद्देशके साथ इस
प्रकारसे सम्बन्ध है, कि प्रथम उद्देशमें जीव वक्तव्यता कही गई है,
सो इस उद्देशमें भी वही कही जावेगी तथा प्रथम उद्देशके अन्तिम
सूत्रके साथ इस द्वितीय उद्देशके प्रथम सूत्रका सम्बन्ध ऐसा है, कि
वह सूत्र केवलीकी अपेक्षासे कहा गया है, और यह छद्मस्थ निर्ग्रन्थकी
अपेक्षासे कहा जा रहा है, सो हममें निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियोंके
विहारके विषयमें कल्पाकल्प विधिको सूत्रकार प्रकट करते हैं—

पांचमा स्थानना णीले उद्देशे।

पडेला उद्देशक पूरा थयो. हुवे पांचमां स्थानना णीले उद्देशक शउ
थाय छे आगला उद्देशक साथे आ उद्देशकना आ प्रकारना संघंघ छे. पडेला
उद्देशामां लुववक्तव्यतानुं कथन क वामां आण्यु छे. आ उद्देशामां पणु ओ न
विषयनुं प्रतिपादन करवामां आवशे पडेला उद्देशाना छेदला सूत्र साथे आ
उद्देशाना संघंघ आ प्रमाणे छे—

पडेला उद्देशाना छेदला सूत्रमां केवलीना अनुत्तरेतुं कथन करवामां
आण्युं छे, त्यारे आ सूत्रमां छद्मस्थ निर्ग्रन्थना विहारना विषयमां प्रतिपादन
करवामां आण्युं छे. तेभने (साधु अने साध्वीओने) केवे विहार कल्पे छे
अने केवे विहार कल्पना नथी, ते सूत्रकार अही प्रकट करे छे—

मूलम्--नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाओ उद्धिटाओ गणियाओ वियंजियाओ पंच महण्णवाओ महाणईओ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा, तं जहा-गंगा १ जउणा २ सरऊ ३ एरावई ४ मही ५। पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ, तं जहा--भयंसि वा १, दुब्भिकखंसि वा २, पव्वहेज्ज वा णं कोई ३, दओघंसि वा एज्जमाणंसि महया ४ वा अणारिएहिं ५ ॥ सू० १ ॥

छाया—नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा इमा उद्धिटा गणिता व्यञ्जिताः पञ्चमहार्णवा महानदीः अन्तर्मासस्य द्विकृत्वो वा त्रिकृत्वो वा उत्तरीतुं वा संतरीतुं वा, तद्यथा—गङ्गा १, यमुना २, सरयू ३, ऐरावती ४, मही ५। पञ्चभिः स्थानैः कल्पते, तद्यथा—भये वा १, दुर्भिक्षे वा २, प्रव्यथते वा खलु कोऽपि ३, दकौघे वा एज्जमाने महति वा ४, अनार्येषु ५ ॥ सू० १ ॥

टीका—‘नो कप्पइ’ इत्यादि—

निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा इमाः=अग्रे वक्ष्यमाणत्वेन आसन्नतया प्रत्यक्षा उद्धिटाः=‘महानद्यः’ इति रूपेण सामान्यतोऽभिहिताः, गणिताः=पञ्चसंख्यकत्वेन गणनाविषयीकृताः, व्यञ्जिताः=गङ्गेत्यादि नाम्ना प्रकटीकृताः, पञ्च=पञ्चसं-

‘नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा’ इत्यादि सूत्र १ ॥

टीकार्थ--निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियोंको ये उद्धिष्ट सामान्यतासे कही हुई गणित पांच संख्यासे गिन के कही हुई व्यञ्जित प्रगट की पांच महार्णववाली महानदियाँ एक मासके बीचमें दो बार या तीन बार उतरना या नाच आदिमें बैठकर पार करना कल्पित नहीं है, वे नदियाँ ये हैं—गंगा १ जमुना २ सरयू ३ ऐरावती ४ और मही ५।

“नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा” इत्यादि—

टीकार्थ—श्रमणु निर्ग्रन्था अने निर्ग्रन्थिनीओने आ उद्धिष्ट, गणित, व्यञ्जित, अने पांच मडाणुववाणी मडा नदीओने ओक मासमां जे वार के त्रणु वार तेमां आलीने अथा छोडी आदिमां जेसीने पार करवातुं कल्पतुं नथी. ते पांच नदीओनां नाम नीचे प्रमाणे छे—

(१) गंगा, (२) यमुना, (३) सरयू, (४) ऐरावती अने (५) मही.

खकाः महार्णवाः=यहूदकाः महानदीः मासस्य अन्तः=मध्ये द्वि कृत्वो=वारद्वयं, त्रिःकृत्वो=वारत्रयं वा उत्तरीतुं=बाहुजङ्घादिना लङ्प्रयितुं सतरीतुं=नावादिना सम्यक्तया लङ्प्रयितुं वा नो कल्पते । उत्तरणसन्तरणयोरकल्पनीयत्वम् आत्मसयमयोर्विघातस्य शत्रुलचारित्रस्य च संभवात् ।

उक्तं च—“ अतोमासस्य तत्रो दगलेवे करेमाणे सबले ”

छाया—अन्तर्मासस्य त्रीन् दकलेपान् कुर्वन् शबल इति । दकलेपः=जला-

पांच कारणोंसे इन महानदियोंके पार करना कल्पन भी है, जैसे—भयके समयमें १ दुर्भिक्षके समयमें २ कोई निरन्तर कष्ट देता हो तो ऐसी स्थितिमें ३ नदियोंका प्रचुर प्रवाह उन्मार्गगामी होनेके समयमें ४ और अनार्यों द्वारा आक्रमण होनेके समयमें ५ इन महानदियोंको जो उद्दिष्ट विशेषण दिया गया है, उसका कारण यह है, कि ये “महानदियां” हैं, इस रूपसे ये कही गई हैं, तथा ये पांच संख्यामें यहाँ प्रकट की गई है, इसलिये “गणिताः” इस विशेषणसे इन्हे विशेषित किया गया है, तथा “गंगा जमुना” इत्यादि नामों द्वारा इन्हे अभिहित किया गया है, इसलिये “व्यञ्जिता” इस पदसे इन्हे युक्त किया गया है, महार्णव शब्दसे यह समझाया गया है, कि ये महानदियां बहुत पानीवाली होती हैं, इनमें अगाध जल रहता है, इन महानदियोंमें उतरना या इन्हे नाव आदिमें बैठकर पार करना इसलिये निषिद्ध-

नीयेना पांच कारणोंने लीधे तेमने ते मडा नदीओ पार करवानुं कहे छे पशु अर—(१) लयना समयमां, (२) दुर्भिक्ष (दुष्काणना) समयमां (३) कष्ट निरन्तर कष्ट हेतुं डोय अवी परिस्थितिमां, (४) नदीओने प्रचुर प्रवाह उन्मार्गगामी थाय त्यारे अने (५) अनार्यों द्वारा आक्रमण थाय त्यारे

आ महानदीओने “उद्दिष्ट” विशेषण लगाठवामां आण्युं छे, कारण के तेमने उदेशीने अम कहेवामां आण्युं छे के ते महानदीओ छे. तेमने यांयनी संख्यामां अहीं प्रकट करवामां आवी छे, तेथी तेमने “गणिता” आ विशेषण लगाठवामां आण्युं छे. तथा ‘गंगा, जमुना’ आदि नामों द्वारा तेमने अलिखित करवामां आवेल छे, तेथी तेमने “व्यञ्जिता” विशेषण लगाठवामां आण्युं छे. “महार्णव” आ शब्द द्वारा अे वात प्रकट करवामां आवी छे के ते महानदीओ अहुं पाणीवाणी छे—तेमां अगाध जल डोय छे. आ महानदीओमां उतरवाने अने नाव आदि द्वारा तेमने पार करवाने, ते कारणे निषेध करवामां आण्ये छे के अेकुं कार्य करवाथी

વતરણમ્ । તા एव महानदीः प्राह-तद्यथा-गङ्गा, यमुना इत्यादि । पञ्चस्थानका-
जुरोध्यादत्र प्रसिद्धा गङ्गादयो महानद्यः प्रोक्ताः, तेन इतोऽतिरिक्ता अपि बहूदका
महानद्यो न कल्पन्ते उत्तरीतुं सन्तरीतुं वेति बोध्यम् । इत्थं निषेधमुक्त्वा सम्प्रति
तदपवादमाह-‘ पंचहिं ठाणेहि ’ इत्यादि । पञ्चभिः स्थानैः साधूनां साध्वीनां वा
इमा बहूदका महानदीः उत्तरीतुं संतरीतुं वा कल्पन्ते । यैः स्थानैः कल्पन्ते तानि
स्थानानि प्राह-तद्यथा-मये=शत्रुभूतराजादिजनिते धर्मोपकरणापहरणविषयके

કહા ગયાહૈ, કિ એસે કાર્યસે આત્મા ઓર સંયમકા વિરાધના હોતા હૈ,
ઓર ચારિત્રમેં શબલતા આનીહૈ। કહા ખીહૈ-“અંતો માસસ્સ તઓ”ઈત્યાદિ
‘દક્ષેપ’ શબ્દકા અર્થ જલમેં ઉતરના જલકો નાવ આદિકે દ્વારા
પાર કરના એસા હૈ, યહાં પંચમ્થાનકકે અનુરોધસે પ્રસિદ્ધ ગંગા આદિ
મહાનદિયાંહી પ્રકટકી ગઈ હૈં, અતઃ ઇનસે ખી અતિરિક્ત જો બહૂદકવાલી
મહાનદિયાં હૈં, ડનમેં ખી ઉતરના ઓર ડન્હે પાર કરના ખી સાધુ
સાધ્વીકે લિયે કલ્પ્ય નહીં હૈ ।

इस प्रकारसे यह कथन निषेधमुख्यसे किया है, अब इस विषयमें
जो अपवाद है, उसे प्रकट करनेके निमित्त सूत्रकार कहते हैं-“पंचहिं
थाणेहि” इत्यादि-हां इन पांच कारणोंके उपस्थित होने पर साधु
और साध्वियोंको ये बहूदकवाली महानदियोंमें उत्तरना और उन्हे
नाव आदि द्वारा पार करना पड़े तो वे कर सकते हैं-वे पांच कारण
इस प्रकारसे हैं-शत्रु भूत किसी राजा आदि द्वारा यदि ऐसा भय

આત્મા અને સંયમનો વિઘાત થાય છે, અને ચારિત્રમા શબલતા (કમજોરી)
આવે છે. કહું-પણુ છે કે-“ અંતો માસસ્સ તઓ ” ઈત્યાદિ.

“દક્ષેપ” આ શબ્દનો અર્થ “જળમાં ઉતરવું” અથવા જલને નાવ આદિ
દ્વારા પાર કરવું’ થાય છે. અહીં પાંચ સ્થાનનું પ્રકરણ હોવાથી ગંગાદિ પાંચ
પ્રખ્યાત મહાનદીઓ જ પ્રકટ કરવામાં આવી છે. પણ તે સિવાયની જે ઘણા
પાણીવાળી મહાનદીઓ છે, તેમાં ઉતરવાનું અને તેમને પાર કરવાનું પણ
સાધુ સાધ્વીઓને કલ્પતું નથી, એમ સમજવું. આ પ્રકારે તે પાંચ નદીઓને
પાર કરવાનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે. છતાં પણ તેના જે અપવાદો છે,
તે હવે પ્રકટ કરવામાં આવે છે—

“પંચહિં ઠાણેહિ” ઈત્યાદિ—નીચેના પાંચ કારણો ઉદ્ભવે તો તેઓ
અગાધ જળવાળી અને ઉપર્યુક્ત વિશેષણોવાળી તે મહાનદીઓમાં ઉતરી શકે
છે, અથવા તેમને નાવ આદિ વડે પાર કરી શકે છે—(૧) કોઈ શત્રુ રાજાને

भये सति २। दुर्भिक्षे वा=अथवा भिक्षाया अभावे सति ३। वा=अथवा कोऽपि शत्रुत्वमापन्नः पुरुषो निरन्तरं प्रव्यथते=अन्तर्भावित्प्यर्थत्वाद् व्यथामुत्पादयति चेतसा, अथवा—‘मरहेद् वा खलु कोऽपि’ इतिच्छाया, कोऽपि पुरुषो गङ्गादी प्रवहेत्-प्रवाहयेत्=प्रक्षिपेत् तदा ३। अत्रापि अन्तर्भावित्प्यर्थता। वा=अथवा दक्षिणे-उन्मार्गगामितया प्रचुरे गङ्गादीनाम् जलसमूहे सहता वेगेन एजमाने=आगच्छति सति ४। वा=अथवा अनार्येषु=म्लेच्छेषु आक्रामत्सु सत्सु-म्लेच्छेभ्यो जीवनचारित्रादीनामपहारसंभवात् तदाक्रमणे सति ५। एभिः पञ्चभिः कारणै- निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थो वा गङ्गाया महानदीरुत्तरीतुं संतरीतुं वा शक्नुवन्ति। तदुक्तम्-

“अवाहे दुर्भिक्षे, भए दओघंसि वा महंतंसि।

परिभवतालणं वा, जया परो वा करेज्जासि ॥ १ ॥

छाया—आवाधायाम् दुर्भिक्षे भये दक्षौघे वा महति।

परिभवताडन वा यदा परो वा करिष्यति ॥ १ ॥ इति ॥ सू० १ ॥

उपस्थित किया गया हो कि जिसमें धर्मोपकरणके अपहरण होनेकी बात हो, अथवा दुर्भिक्ष भिक्षाकी प्राप्ति जब नहीं रही हो अथवा-शत्रुताको धारण करनेवाला कोई पुरुष निरन्तर व्यथाको-कष्टको दे रहा हो-अथवा कोई पुरुष गङ्गा आदिमें बहा देता है, अथवा-उन्मार्गगामी हो जानेसे गंगा आदिका प्रचुर जलसमूह बड़े वेगसे बढ रहा हो अथवा-जब म्लेच्छ अनार्यजन आक्रमण कर रहे हों और ऐसी स्थितिमें उनसे जीवनकी या चारित्रकी अपहृति(नाश) होनेकी संभावना हो तो ऐसे इन पांच कारणोंके होने पर निर्ग्रन्थ-साधु साध्वियोंको गंगा

कारणुं अथवा लय उपस्थित थयो डाय छे के लेने लीधे धर्मोपकरणुना अपहरणुने लय उत्पन्न थयो डाय. (२) दुर्भिक्षने कारणुं ले भिक्षानी प्राप्ति अशक्य जनी गर्ध डाय, (३) अथवा के.छ शत्रु निरन्तर व्यथा (कष्ट) यडोयाडी रह्यो डाय, अथवा (४) उन्मार्गगामी थवने कारणुं गंगा आदिने प्रचुर जलसमूह धणु ज वेगथी वृद्धि प भी रह्यो डाय अथवा के.छ व्यक्ति पोताने पराणु गंगा आदिमां दुष्पाडी देशे अथवा लय उत्पन्न थयो डाय, अथवा (५) म्लेच्छेणु न्यारे आक्रमणु थध रह्युं डाय अने ते कारणुं न्यारे जीवन नष्ट थवाने संभव जणुतो डाय. आ पांच कारणुं न्यारे उपस्थित थाय, त्यारे श्रमणु निर्ग्रथो अने निर्ग्रथीअने गंगादि महानदीअमां उतरवानुं अने नाव आदि द्वारा तेभने पार करवानुं कल्पे छे पणु अर.

मूलम्—णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पढम-
पाउसंसि गामाणुगामं दूइज्जित्तए । पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ, तं
जहा—भयंसि वा दुब्भिकखंसि वा जाव महया वा अणारि-
एहिं । वासावासं पज्जोसत्रियाणं णो कप्पइ णिग्गंथाण वा
णिग्गंथीण वा गामाणुगामं दूइज्जित्तए । पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ,
नं जहा- णाणट्टयाए १ दंसणट्टयाए २ चरित्तट्टयाए ३ आय-
रियउवज्झाया वा से विसुंभेज्जा, ४ आयरियउवज्झायाण
वा वहिया वेयावच्चकरणयाए ५॥ सू० २ ॥

छाया—नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा प्रथमप्राट्पि ग्रामानु-
ग्रामं द्रोतुम् । पञ्चभिः स्थानैः कल्पते, तद्यथा—भये वा दुर्मिक्षे वा यावत् मङ्गता,
वा अनार्येषु । वर्षावासं पर्युषितानां नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा
ग्रामानुग्राम द्रोतुम् । पञ्चभिः स्थानैः कल्पते, तद्यथा—ज्ञानार्थतया
१, दर्शनार्थतया २, चारित्रार्थतया ३, आचार्योपाध्याया वा तस्य विष्वग्भवेयुः
४, आचार्योपाध्यायानां वा वहिः वैयाट्ट्यकरणतया ५॥ सू० २ ॥

टीका—‘णो कप्पइ’ इत्यादि—

प्रथमप्राट्पि—प्राट्पि=वर्षाऋतुः सा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन त्रिविधा । तत्र-
जघन्या चतुर्मासप्रमाणा—आषाढपूर्णिमायां चातुर्मासनिवासार्थं समागमनात् १,
आदि महानदियोंमें उतरना और नाव आदि द्वारा उन्हें पार करना
कल्पित है । कहा भी है—“आवाहे दुब्भिकखे ” इत्यादि ।

इस गाथाका अर्थ पूर्वोक्तानुसारही है ॥सू०१॥

‘णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पढमपाउसंसि’ इत्यादि २ ॥

टीकार्थ—वर्षा ऋतु जघन्य मध्यम और उत्तमके भेदसे तीन प्रकारकी कही
गई है, इनमें चातुर्मास प्रमाण जो वर्षाऋतु है वह जघन्य वर्षाऋतु

कहुं पणु अे छे के “ आवाहे दुब्भिकखे ” इत्यादि—आ गाथानो अर्थ उपर
लभ्या अनुसार ज समजये. ॥ सू. १ ॥

“ णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पढमपाउसंसि ” इत्यादि—

टीकार्थ—वर्षाऋतुने जघन्य, मध्यम अने उत्कृष्टना लेहथी त्रणु प्रकारनी कही
छे. तेभांथी अनुमास प्रमाणु जे वर्षाऋतु छे, तेने जघन्य वर्षाऋतु कहे छे.

मध्यमा पञ्चमासिकी-वृष्टि बाहुल्यादिकारणेनाषाढकृष्णप्रतिपदायामेव समा-
गमनात् २, उत्कृष्टा-षण्मासप्रमाणा पूर्वोक्तकारणवशादाषाढकृष्णप्रतिपदात्
आरभ्याधिकमाससद्भावेन कार्तिकी यावद् भवति । प्रथमा चासौ प्रावृद् चेति
प्रथमप्रावृद् । प्रावृद्-हेमन्त-ग्रीष्मरूपाणां त्रयाणाम् ऋतूनां मध्ये प्रावृषः प्राथ-
म्यात् प्रावृद् ऋतुः प्रथमप्रावृद् इत्युच्यते । तस्मिन् निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां
वा ग्रामानुग्रामम्=ग्राममनुगतो ग्रामः-ग्रामानुग्रामस्तम् नो कल्पते द्रोतुं=गन्तुं

है, वह आषाढकी पूर्णिमासे लेकर चार मास तक निवासके लिये होती
है ? मध्यम वर्षाऋतु पांच महिनेकी होती है, वृष्टिकी अधिकता होने
पर यह आषाढ कृष्ण प्रतिपदासेही आ जाती है, उत्कृष्ट वर्षाऋतु छह
महिनेकी होती है, पूर्वोक्त कारणके वशसे आषाढ कृष्ण प्रतिपदासे
लेकर अधिक मासके सद्भाव हो जानेसे कार्तिक तक होती है, प्रथम
जो वर्षाऋतु है, वह प्रावृद्-वर्षाऋतु है, इसे जो प्रथम प्रावृद् वर्षाऋतु
कहा गया है, उसका तात्पर्य ऐसा है कि प्रावृद् हेमन्त एवं ग्रीष्म इन
तीनमें इन तीन ऋतुओंके मध्य में वर्षाऋतुको प्रथम गिना गया है,
इसलिये यहां वर्षाऋतुको “ प्रथम ” विशेषणसे विशेषित किया गया
है, तात्पर्य इसका यही है, कि जब वर्षाऋतु प्रारम्भ हो जाती है, तब
निर्ग्रन्थों एवं निर्ग्रन्थिनियोंको एक गांवसे दूसरे गांवमें विचरण करना

ते अषाढी पूनमथी शङ् करीने कार्तिकी पूनम सुधीना चार मासनी होय छे.
मध्यम वर्षाऋतु पांच मासनी होय छे वृष्टिनी अधिकता होय त्यारे ते
अषाढी कृष्ण प्रतिपदाथी शङ् थर्ष नय छे. (गुजरातमां दरेक मासनेा शुक्ल
पक्ष पडैलां अने कृष्णपक्ष पछी आवे छे त्यारे भारवाड वगेदेमां कृष्णपक्ष
पडैला अने शुक्लपक्ष पछी आवे छे. आ रीते अषाढ वद अेकमथी वर्षा-
ऋतु शङ् थाय तो पांच मासनी वर्षाऋतु थाय छे.) उत्कृष्ट वर्षाऋतु छ
मासनी होय छे. पूर्वोक्त कारणे अषाढ वदी अेकमथी वर्षाऋतु शङ् यती होय
अने वच्चे केअ अधिक मास आवतो होय त्यारे वर्षाऋतु छ मासनी थाय
छे. प्रथम जे वर्षाऋतु छे तेने प्रावृद् वर्षाऋतु कडे छे. प्रावृद्-वर्षा, हेमन्त
अने ग्रीष्म आ त्रै ऋतुओमां वर्षाऋतुने प्रथम गणुवामां आवी होवाथी
वर्षाऋतुनी आगण “ प्रथम ” विशेषणु वपरायुं छे. आ सूत्रमां अेवुं प्रकट
करवामां आण्युं छे के त्यारे वर्षाऋतुनेा प्रारंभ थाय छे, त्यारे निर्ग्रन्थेा
अने निर्ग्रन्थीओने अेक गांमथी थीजे गांम विहार करवनेा निषेध कुर्ये
छे. आगममा “ आ प्रकारनेा विहार साधुओने कल्पतो नथी ” अेवुं विधान

जीवै भूमिव्याप्तत्वात् । इत्थं निर्गमननिषेधमुक्त्या सम्प्रति तदपवादमाह—‘पंचहिं ठाणेहिं’ इत्यादि । सूत्राक्तैर्भयदुर्भिक्षादिभिः कारणैस्तु गन्तुं कल्पते एवेति । ‘वासवासं’ इत्यादि—वर्षावासं=वर्षाकालं पर्युपितानां स्थितानां निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा ग्रामानुग्रामं गन्तुं न कल्पते । ज्ञानार्थतादिभिः पञ्चभिः स्थानैस्तु कल्पते एव । तदेवोपदर्शयितुमाह—‘पंचहिं ठाणेहिं’ इत्यादि । तथाहि—

निषिद्ध है, आगमसे वर्जित हैं, क्योंकि—उस समय द्वीन्द्रियादि जीवोंसे भूमि व्याप्त हो जाती है, इस तरहसे एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें जानेका निषेध प्रकट कर अब सूत्रकार इसमें जो अपवाद मार्ग है, उसका कथन करते हैं—“पंचहिं ठाणेहिं कप्पह” इत्यादि । यद्यपि वर्षाऋतुमें साधु साध्वियोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें आनाजाना शास्त्राज्ञानुसार निषिद्ध है, और ऐसाही यह उत्सर्ग मार्ग है, परन्तु फिर भी इस विषयमें अपवाद मार्ग ऐसा है, कि यदि सूत्रोक्त भय दुर्भिक्ष आदि कारण उपस्थित हो जाते हैं, तो ऐसी स्थितिमें वर्षाऋतुमें भी साधु आदिको एक स्थानसे दूसरे स्थान ग्राममें जाना कल्पित कहा गया है । “वासवासं पञ्जोसवियाणं णो कप्पह०” इत्यादि—वर्षाकालमें एक स्थान पर ठहरे हुए साधु आदिको एक गांवसे दूसरे ग्राम विहार करना उचित नहीं है—शास्त्राज्ञानसे विरुद्ध है, परन्तु—“पंचहिं ठाणेहिं कप्पह तं जहा णाणट्ठयाए ?” इत्यादि—इन कारणोंको लेकर वे वर्षाकालमें भी एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जा सकते हैं, इनमें सबसे पहिला प्रयोजन रूप कारण ऐसा है, कि यदि वे ज्ञान

छे, कारण छे ते समये भूमि द्वीन्द्रिय हि श्रवणी व्याप्त होय छे आ नीते वर्षाकालमां अक गाभथी णीरे गाम विहार करवाने निषेध करमांवीने डवे सूत्रकार तेना ने अपवादो छे ते प्रकट करे छे

“पंच हिं ठाणेहिं कप्पह” इत्यादि—नीचेना पांच कारणोंमांथी केछ पणु कारण उपस्थित थाय तो अत्रा संयोगोमां वर्षाऋतुमां पणु साधु साध्वीने अक गाभथी णीरे गाम विहार करवो कल्पे छे “वासवासं पञ्जोसवियाणं णो कप्पह” इत्यादि—वर्षाकालमां केछ अक गाभमां रहला साधु साध्वीने ते ग भथी णीरे गाम विहार करवो ते उचित नथी—अबुं करवुं ते शास्त्राज्ञानी विरुद्ध छे परन्तु “पंचहिं ठाणेहिं कप्पह तं जहा णाणट्ठयाए ?” इत्यादि नीचे भतावेला पांच कारणोंने लीधे तेओ वर्षाऋतुमां पणु अक गाभथी णीरे गाम विहार करी शक्ये छे—

ज्ञानार्थतया—ज्ञानमेव अर्थः=प्रयोजन यस्य स ज्ञानार्थः, तस्य भावगतत्वा तया-
ज्ञानप्रयोजनमुद्दिश्य गन्तुं कल्पते । अयं भावः—कश्चिदाचार्योऽपूर्वश्रुतस्कन्ध-
धारको भक्तं प्रत्याख्यातुकामो भवेत् । यदि तत्सकाशादसावपूर्वश्रुतस्कन्धो न
गृह्येत तदाऽसौ विच्छिद्येत, अतस्तद्ग्रहणार्थं गन्तुं कल्पते इति १ । एवं दर्शनार्थ-
तया=भक्तं प्रत्याख्यातुकामान् कुतश्चिदाचार्याद् दर्शनप्रभावकशास्त्राध्ययनार्थं
गन्तुं कल्पते इति २ । तथा—चारित्र्यार्थतया=यत्र क्षेत्रे वर्षावासस्थितिः कल्पिता,

प्राप्त करनेके लिये अभिलाषी है, तो इस उद्देश्यको लेकर वे उस कालमें
विहार कर सकते हैं ? । तात्पर्य इसका ऐसा है—कि अपूर्व श्रुतस्कन्धधारक
कोई आचार्य हो, और वह भक्तप्रत्याख्यान(सयाग) करनेका अभिलाषी
हो रहा तो ऐसी स्थितिमें यदि उसके पास जाकर वह अपूर्व श्रुतस्कन्ध
ज्ञान प्राप्त नहीं किया जाता है, तो उसका विच्छेद हो जाता है, अतः-
वह अपूर्व श्रुतस्कन्ध विच्छिन्न हो जाये इस अभिलाषासे प्रेरित हुआ
साधु उस ज्ञानको प्राप्त करनेको वर्षाकालमें भी विहार कर सकता है,
दूसरा कारण है, ऐसा है कि दर्शन प्रभावक शास्त्रका ज्ञान यदि
कोई आचार्य भक्त प्रत्याख्यान करनेवाला हो रहा हो तो उससे उस
दर्शन प्रभावक शास्त्रको अध्ययन करनेके लिये साधु वर्षाकालमें भी
उसके पास जानेके लिये विहार कर सकता है २ । तृतीय कारण ऐसा

(१) ज्ञानार्थे—कोई साधु ज्ञान प्राप्त करवानी अभिलाषावाणो होय,
तो ते उद्देश्यने लीये ते वर्षाकालमा पशु विहार करी शके छे. आ कथनने
लावार्थ नीचे प्रमाणे छे—

अपूर्व श्रुतस्कन्ध धारक कोई आचार्य होय, अने ते आचार्य भक्त-
प्रत्याख्यान (अतुर्विध आहारना त्यागपूर्वक संथारे) करवानी अभिलाषा
सेवतो होय तो ऐवी परिस्थितिमा ले तेनी पासे जेठने कोई ज्ञानपिपासु
साधु ते अपूर्व श्रुतस्कन्ध ज्ञान प्राप्त करी न दे तो तेनी विच्छेद थर्छ
जवानो संभव रहे छे तेथी ते अपूर्व श्रुतस्कन्ध ज्ञान विछिन्न न थर्छ नय
ऐवी शुभ अभिलाषाथी प्रेरित थयेतो साधु वर्षाकालमा पशु ते ज्ञानने प्राप्त
करवा भाटे विहार करीने ते श्रुतस्कन्ध धारक साधु पासे जर्छ शके छे

इसे भीजु धारण प्रकट करवामां आवे छे—दर्शन प्रभावक, शास्त्रना
ज्ञाना ऐवा कोई आचार्य लक्ष्यप्रत्याख्यान करवाने विचार करी रह्यो होय
तो ते दर्शनप्रभावक शास्त्रने अभ्यास करवा निमित्ते साधु वर्षाकालमां पशु
तेमनी पासे जवाने भाटे विहार करी शके छे.

तत्क्षेत्रं यदि अनेपणास्व्यादि दोषदुष्टं भवेत्तदा चारित्रारक्षणार्थं कल्पते गन्तु-
मिति ३। तथा-आचार्योपाध्याया वा 'मे' इति तस्य साधोः अत्र जातावेकप्रचनं,
तेन तेषां साधूनाभित्यर्थः, विष्वग्भवेयुः=शरीरान् पृथग्भवेयुः-त्रियेरन्, तत्र गच्छे
चेदन्य आचार्य उपाध्यायो वा न भवेत् तदा तेषां साधूनां कल्पते गन्तुमिति ।
अथवा-' विसुंभेज्जा ' इत्यस्य विश्रम्भेयुरितिच्छाया । आचार्योपाध्यायाः तस्य=
तं साधुं विश्रम्भेयुः-विश्वस्युः, तदाऽत्यन्तरहस्यकार्यं कर्तुं तस्य साधो गन्तुं
कल्पते इति ४। तथा-आचार्योपाध्यायानां वहिः=वर्षाक्षेत्राद् वहिर्वर्तमानानां
रोगादिग्रस्तानां वैयावृत्त्यकरणतया=वैयावृत्त्यकरणार्थं साधो गन्तु कल्पते ॥ ५ ॥
इति ॥ सू० २ ॥

है, कि जिस स्थानमें वर्षावास किया है, वह क्षेत्र यदि अनेपणा स्त्री
आदिके दोषसे दूषित है, तो अपने चारित्रकी रक्षाके लिये साधु वर्षा-
कालमें भी अन्यत्र जा सकता है, चतुर्थ कारण ऐसा है, वर्षावास
करनेवाले साधुओंका यदि कोई आचार्य अथवा उपाध्याय शरीरसे
पृथक् हो गया हो-सर गया हो और उस गच्छमें अन्य आचार्य या
उपाध्याय न हो तो ऐसी स्थितिमें उन साधुओंका वर्षाकालमें भी
अन्यत्र विहार करना कल्पित कहा गया है-अथवा-" विसुंभेज्जा "
की संस्कृत छाया " विश्रम्भेयुः " ऐसी भी होती है, तो इस पक्षमें
इसका ऐसा अर्थ होताहै, कि वे आचार्य अथवा उपाध्याय यदि उस साधु
का विश्वास करते हैं, तो अत्यन्त रहस्यमय (गुप्त) उस कार्यको करनेके
लिये उस साधुका वर्षाकालमें भी विहार करना कल्पित कहा गया है,

श्रीशुं कारण आ प्रमाणे छे—जे स्थणे यातुर्भासमां वास कथ्यो डोय,
ते क्षेत्र जे अनेपणा, श्री आदिना दोषधी दूषित डोय, तो पोतना चारि-
त्रनी रक्षा निमित्ते साधु त्याधी अन्य स्थणे विहार करी शक्ये छे.

शोधुं कारण आ प्रमाणे छे—कौं क्षेत्रमां यातुर्भास वर्षावास कथ्यो
आद जे ते साधुओंना आचार्य अथवा उपाध्याय काणधर्म पामी जय, अने
ते गच्छमां अन्य आचार्य अथवा उपाध्याय न डोय, तो जेवी परिस्थितिमां
ते साधुओंने वर्षाकाण दरमियान पणु विहार करवो कल्पे छे अथवा " विसुं-
भेज्जा " आ पदनी संस्कृत छाया " विश्रम्भेयुः " आ प्रमाणे पणु थाय छे.
तो ते संस्कृत छायानी अपेक्षाजे आ प्रमाणे अर्थ थाय छे--" जे ते
आचार्य अथवा उपाध्याय ते साधु उपर भूम न विश्वास धरावता डोय तो
कौं अत्यन्त रहस्यमय काम करवाने माटे ते साधुने वर्षाकाणमां पणु विहार
करवो कल्पे छे. पांचमुं कारण नीचे प्रमाणे छे—

છદ્મસ્થાઃ કેચિત્ અનુદ્ઘાતિકા ભવન્તીતિ અનુદ્ઘાતિકાનાં પચ્ચ સ્થાનાનિ પ્રાહ-

મૂલમ્—પંચ અણુગ્ઘાહ્યા પળ્ણત્તા, તં જહા-હસ્થકર્મ્મ કરે-
માણે ૧, મેહુણં પદિસેવમાણે ૨, રાઈભોયણં મુંજમાણે ૩, સાગા-
રિયં મુંજમાણે ૪, રાયપિઙં મુંજમાણે ૫ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—પચ્ચ અનુદ્ઘાતિકાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, તદ્ઘયા-હસ્તકર્મ્મકુર્વાણઃ ૧ મૈથુનં પ્રતિ-
સેવમાનઃ ૨ રાત્રિભોજનં મુજ્ઞાનઃ ૩ સાગારિકપિઙં મુજ્ઞાનઃ ૪, રાજપિઙં
મુજ્ઞાનઃ ૫ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—‘ પંચ અણુગ્ઘાહ્યા ’ इत्यादि—

અનુદ્ઘાતિકાઃ—ઉદ્ઘાતઃ=લઘુકરણં, સ ન વિદ્યતે યસ્ય પ્રાયશ્ચિત્તરૂપતપો-
વિશેષસ્ય તત્ અનુદ્ઘાતં=ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્તમ્, તદસ્તિ યેષાં પ્રતિસેવનાવિશેષવશાત્તે-
ડનુદ્ઘાતિકાઃ તે ચ પચ્ચસંખ્યકાઃ પ્રજ્ઞપ્તા । તદ્ઘયા—‘ હસ્તકર્મ્મકુર્વાણઃ ’ इत्यादि।

પાંચવાં કારણ એસા હૈ, કિ વર્ષાક્ષેત્રસે બાહર વર્તમાન આચાર્ય યા
ઉપાધ્યાય હૈં ઓર વે રોગગ્રસ્ત હો ગયે હૈં તો એસી સ્થિતિમૈં ડનકી
વૈયાવૃત્તિ કરનેકે લિયે સાધુકા બાહર જાના કલ્પિત કહા ગયા હૈ ૫ । ૨।

કિતનેક છદ્મસ્થ અનુદ્ઘાતિક હોતે હૈં । અતઃ અબ સૂત્રકાર ડન
અનુદ્ઘાતિકૌકે પાંચ સ્થાનોકા નિરૂપણ કરતે હૈં—

‘પંચ અણુગ્ઘાહ્યા પળ્ણત્તા’ इत्यादि सूत्र ३ ॥

ટીકાર્થ—ઉદ્ઘાત શબ્દકા અર્થ લઘુ કરના હૈ, યહ લઘુકરણ રૂપ ઉદ્ઘાત
જિસ પ્રાયશ્ચિત્ત રૂપ તપવિશેષકા નહૈં હોતા હૈ, એસા વહ ગુરુ પ્રાય-
શ્ચિત્ત પ્રતિસેવના વિશેષકે વશસે જિનકો હોતા હૈ, વે અનુદ્ઘાતિક હૈં ।
યે અનુદ્ઘાતિક પાંચ પ્રકારકે હોતે હૈં—એક હસ્તકર્મ્મકો કરનેવાલે ૧ ડૂસરે

(૫) સાધુઓએ અમુક ક્ષેત્રમાં વર્ષાવાસ કર્યો હોય, અને તે ક્ષેત્રની
બહારના કોઈ ક્ષેત્રમાં રહેલા આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય ધીમાર થઈ બચ,
તો એવી પરિસ્થિતિમાં તેમનું વૈયાવૃત્ય (સેવા) કરવા માટે સાધુને વિહાર
કરવો કલ્પ્ય ગણાય છે. ॥ સૂ. ૨ ॥

કેટલાક છદ્મસ્થ અનુદ્ઘાતિક હોય છે. હવે સૂત્રકાર તે અનુદ્ઘાતિકોના
પાંચ સ્થાનોનું નિરૂપણ કરે છે—“ પંચ અણુગ્ઘાહ્યા પળ્ણત્તા ” इत्यादि—

ટીકાર્થ—‘ ઉદ્ઘાત ’ એટલે ‘લઘુ કરવું’ આ લઘુકરણ રૂપ ઉદ્ઘાત વે પ્રાયશ્ચિત્ત
રૂપ તપવિશેષનો થતો નથી એવું તે ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રતિસેવના વિશેષના
પ્રભાવથી જેમને થાય છે, તેમને અનુદ્ઘાતિક કહે છે. તે અનુદ્ઘાતિક નીચે
પ્રમાણે પાંચ પ્રકારના હોય છે—(૧) હસ્ત કર્મ કરનારા, (૨) મૈથુનનું સેવન

“ संति मे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा ।
जाओ राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे ॥१॥
उदउल्लं वीयसंसत्तं, पाणा निवडिया महिं ।
दिया ताहिं विवडिज्जजा, राओ तत्थ कहं चरे ॥२॥
एयं च दोसं दट्टणं, नायपुत्तेण भासियं ।
सव्वाहारं न भुंजंति, निग्गंथा राइभोयणं ॥३॥

छाया —सन्ती मे सूक्ष्माः प्राणाः तसा अथवा स्थावराः ।

यान् रात्रौ अपश्यन्, कथमेपणीयं चरेत् ॥१॥
उदकाद्वा वीजसंसक्तां प्राणा निपतिता महीम् ।
दिवा तान् विवर्जयेत्, रात्रौ तत्र कथं चरेत् ॥२॥
एतं च दोषं दृष्ट्वा ज्ञातपुत्रेण भापितम् ।
सर्वाहारं न भुञ्जते निर्ग्रन्था रात्रिभोजनम् ।३॥ इति ।

जो भोजन रात्रिमें किया जाता है, वह भावकी अपेक्षा रात्रि भोजन है, रात्रिभोजनमें दोष इस प्रकारसे कहे गये हैं—

“ संतिमें सुहुमा पाणा ” इत्यादि ।

रात्रिमें सूक्ष्म त्रस जीव और स्थावर जीव दृष्टिपथ नहीं होते हैं, अतः अहिंसा व्रतकी रक्षा करनेवाले मुनिजन उसमें भिक्षावृत्ति नहीं करते हैं । पानीसे आर्द्र हुई एवं धीजसे युक्त हुई भूमिमें प्राणी बहुतसे गिरते रहते हैं, अतः दिनमें तो उनका बचाव हो जाता है, परन्तु रात्रिमें इनका बचाव नहीं हो सकता है, इस प्रकारके इस दोषको देखकर सातपुत्र महावीरने रात्रिमें भिक्षावृत्तिका और रात्रिके भोजनका त्याग करना कहा है ।

आवे छे, तेने लावनी अपेक्षाये रात्रिभोजन कडे छे रात्रिभोजनना आ प्रभाणे दोषो कदा छे—“ संति मे सुहुमा पाणा ” इत्यादि—

रात्रे सूक्ष्म त्रसजिवो अने स्थावर जिवो दृष्टिगोचर यतां नथी तेथी अहिंसा व्रतनी रक्षा करनारा मुनिजनो रात्रे भिक्षावृत्ति करता नथी. पाणीधी लीनी थयेथी अने धीजथी युक्त अनेथी भूमिमां ध्रुवा जिवो आवी पडतां डोय छे दिवसे तो सावधानीपूर्वक आलवाथी तेमनी रक्षा थर् नय छे, पण रात्रे तो तेजो नन्दे नडीं पडतां डोवाथी तेमनी विराधना थर् नय छे. आ प्रहारनी परिस्थितिनेो विचार करीने श्रमणु लगतान महावीरे रात्रे भिक्षावृत्ति माटे करवाने अने रात्रिभोजन करवाने निषेध कर्यो छे. तथा

तथा—

“ जइवि हु फासुगदव्वं, कुन्थू पणगा तहावि दृप्पस्त ।

पच्चक्खं नाणी विहु, राईभत्तं परिहरंति ॥१॥

जह वि य पिवीलिगई, दीसंति पईवजोइउज्जोए ।

तहवि खलु आणाइण्णं मूलवथेविराहणा जेण ” ॥२॥

छाया—यद्यपि खलु प्रासुङ्गद्रव्य कुन्थवः पनकास्तथापि दुर्दर्शाः ।

प्रत्यक्षं ज्ञानिनोऽपि खलु रात्रिभक्तं परिहरन्ति ॥१॥

यद्यपि च पिपीलकादयो दृश्यन्ते प्रदीप ज्योतिरुद्द्योते ।

तथापि खलु अनाचीर्णं मूलव्रतविराधना येन ॥२॥ इति ।३।

तथा—सागारिकपिण्डम्—अगारेण सह वर्तते सागारः, स एव सागारिकः—
शय्यातरः तस्य पिण्डः=आहारः, तं भुञ्जानः । सागारिकपिण्डमोजने हि दोषा
भवन्ति । तदुक्तम्—

“ तित्थयरपडिक्कुट्टो, आणा अन्नाय उग्गमे न सुज्जे ।

अविमुत्ति अलाघवया दुल्लहसेज्जा य वोच्छेओ ॥१॥”

छाया—तीर्थकरप्रतिक्रुष्ट आज्ञा, अज्ञातं उद्गमश्च नो शुध्येत् ।

अविमुक्तिरलाघवता, दुर्लभशय्या च व्युच्छेदः ॥१॥ इति ।

अयं भावः=तीर्थकरैः प्रतिक्रुष्टो=निषिद्धः शय्यातरपिण्डः, अतः स न

तथा—“ जइविहु फासुगदव्वं ” इत्यादि

इन गाथाओंका अर्थ स्पष्ट है, अगारसे जो युक्त होता है, वह सागार है, यह सागारही सागारिक है । इसे शय्यातर कहा गया है, इनके घरका आहार जो है, वह सागारिक पिण्ड है, इस सागारिक पिण्डको इसलिये वर्जित कहा है, कि यह सदोष होता है । जैसे कहा है—

“ तित्थयरपडिक्कुट्टो ” इत्यादि ।

शय्यातरपिण्डका लेना तीर्थकरोने निषिद्ध किया है, अतः जो

“ जइ वि हु फासुगदव्वं ” इत्यादि—

आ गाथाओंको अर्थ स्पष्ट है, अगार (दोष) थी युक्त के डोय है, तेने सागार कडे है, ते सागार के सागारिक है तेने शय्यातर कडेवाभां आवेद है, के साधुओं के श्रवकदिता घरभां आश्रय दीया डोय, ते घरना आहारने शय्यातर पिंड अथवा सागारिक पिंड कडे है ते सागारिक पिंडको निषेध करवानुं कारण है है के ते सदोष डोय है, कहुं पणु है के—

“ तित्थयरपडिक्कुट्टो ” इत्यादि—

शय्यातर अडणु करवानो तीर्थकरोने निषेध कयो है, तेथी के साधु

ग्राह्यः अथ तं साधु गृहीयान्, तदा तीर्थकृतामाज्ञा विराधिता भवेत् । शय्या-
तरस्य गृहे निवासवशात्तदभैक्षमज्ञातं न भवतीति तदज्ञातत्वं स्वरूपतया न शुध्येत् ।
तथा-प्रत्यासन्नतया भैक्षपानादिनिमित्तं भूयोभूयस्तद्गृहे प्रविशतः साधोरुद्ग-
मोऽपि न शुध्येत् । तथा-साधोः अविमुक्तिः=लोभो भवेत्=स्वाध्यायश्रवणादिना
आवर्जितः शय्यातरो दधिदुग्धादिकं प्रणीतं द्रव्यं साधवे दद्यात् । साधुश्च तद्ग्र-
हणलोलुपतया तद्गृहं, न परित्यजेदिति । तथा-अलाघवता-प्रचुरविशिष्टान्नपा-
नादि लाभेन शरीरालाघवता प्रचुरवस्त्रादिलाभेन उपकरणालाघवता च भवेत् ।
तथा-दुर्लभशय्या-“ येन किल शय्या दीयते, तेन आहाराद्यपि देयम् ”-इति
भयाद् गृहिणः शय्या न प्रयच्छेयुः, ततश्च साधूनां दुर्लभा शय्या भवेत् । इत्थ

साधु इसे लेता है, वह तीर्थ'करो'की आज्ञाका विराधक होता है१, दूसरा
शय्यातरके गृहमें निवासके वशसे उसका भैक्ष अज्ञात नहीं रहता है,
अतः उसकी अज्ञातता स्वरूपसे शुद्ध नहीं होती है२, तीसरे उसके प्रत्या-
सन्न (समीप)होनेसे भैक्ष पान आदिके निमित्त बार-बार उसके घरमें प्रवेश
करनेवाले साधुका उद्गम दोषभी शुद्ध नहीं होता है३, चौथे साधुको ऐसा
लोभ भी हो जाता है, कि स्वाध्याय श्रवण आदिसे आकृष्ट हुआ
शय्यातर मेरे लिये प्रणीत पुष्टिकर दधि दुग्ध आदि द्रव्य देगा । इस
प्रकारके लोभसे आकृष्ट हुआ साधु उसके घरको नहीं छोड़ता है,
प्रचुर विशिष्ट अन्न पान आदिके लाभसे उसके शरीरमें अलाघवता
एवं प्रचुर वस्त्रादिके लाभसे उपकरण सम्बन्धी अलाघवता हो सकती
है४, तथा-दुर्लभशय्या-“ जो शय्या स्थान देता है, वह आहार आदि

तेने ले छे, ते तीर्थ'करो'नी आज्ञाने विराधक बने छे. वणी शय्यातरना
घरमां निवासने लीधे तेने लैक्ष (लोअननी सामग्री) अज्ञात रडेते नथी,
तेथी तेनी अज्ञातता स्वरूपनी अपेक्षासे शुद्ध डोती नथी वणी तेनी समी-
पमां अ रडेला डोवाने कारणे आहारपाणी आदिने भाटे वारंवार तेना घरमां
प्रवेश करनार साधुने उद्गम पणु शुद्ध डोतो नथी वणी साधुना मनमां
अवेला लोभ थाय छे डे स्वाध्याय श्रवणु आदि द्वारा भारी तरङ्ग आकर्षित
थयेले शय्यातर भारे भाटे धी, दुग्ध, आदि पुष्टिकर द्रव्ये आपसे. आ
प्रकारना लोभथी युक्त थयेले साधु तेनुं घर छोडने नथी प्रचुर अन्न
आदिना लाभथी तेना शरीरमां अलाघवता आनी जय छे अने प्रचुर
वस्त्रादिना लाभथी उपकरणु सं'बंधी अलाघवता आची जवाने सलव रडे छे
तथा “ दुर्लभशय्या ” “ जे शय्यास्थान दे छे ते आहारादि पणु देसे, ”

શય્યાતરાત્ પિણ્ડદાને શય્યાયા એવ વ્યુચ્છેદો ભવેદિતિ । તથા-શય્યાતરાત્ તૃણ
ક્ષારડગલશય્યાસંસ્તારપીઠફલકાદીનાં સોપધિક્કરય ઐશ્વર્ય ચાદાને નાસ્તિ
દોષ इति ૪। તથા-રાજપિણ્ડ-રાજ્ઞઃ પિણ્ડો રાજપિણ્ડસ્ત મુજ્જાનઃ । રાજાત્વિહ
ચક્રવર્તિવલદેવવાસુદેવાદિ ગૃહ્યતે । તદર્થં નિષ્પન્નં પિણ્ડ મુજ્જાનઃ ૫। એતૈરન-
ન્તરોક્તૈઃ પશ્ચભિઃ કારણૈઃ સાધવો ગુરુપ્રાયશ્ચિનાર્દાં મનન્તીતિ ॥ સૂ. ૩ ॥

રાજ્ઞોઽધિકારાત્ સમ્પતિ રાજાન્તઃપુરમાશ્રિત્ય સુત્રમાહ—

મૂલમ્-પંચહિં ઠાણેહિં સમણે ણિરમ્થે ગયંતેરમણુપવિ-
સમાણે નાહ્કમહ્, તં જહા-નગરે સિયા સવ્થો સમંતા ગુત્તે

મી દેગા ' इस भयक्षे गृहस्थजन शय्या भी नहीं देते अतः साधुजनोको
शय्या दुर्लभ हो सकती है, इस प्रकार शय्यातरसे पिण्डके लेनेमें
शय्याहीका व्युच्छेद हो सकता है, शय्यातरसे तृण, क्षार डगल (?)
शय्या संस्तार, पीठफलक एवं सोपधिक (वस्त्र पात्र आदि
उपकरण सहित) शिष्य के लेने में (?) कोई दोष
नहीं है? । राजपिण्डमें राजपदसे चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव आदि
गृहीत हुए हैं । इनके लिये निष्पन्न हुए पिण्डको जो लेता है-उसे
अपने आहारके उपयोगमें लाताहै, वह राजपिण्ड भोक्ता है, इस प्रकार
हस्तकर्म :करनेवाला, मैथुनका प्रतिसेवन करनेवाला, रात्रिभोजन
करनेवाला, सागारिक पिण्डका भोजन करनेवाला, और राजपिण्डका
भोजन करनेवाला साधुजन गुरु प्रायश्चित्तके योग्य होते हैं ॥ सू. ३ ॥

આ પ્રકારની ભાવના સાધુ સેવકા માટે, તે ગૃહસ્થ દ્વારા શય્યાસ્થાન દેવાનું
પણ બંધ થઈ જાય, આ રીતે સાધુઓને માટે શય્યાસ્થાન પણ દુર્લભ થઈ
જાય. આ રીતે શય્યાતરની પાસેથી પિંડ લેવામાં શય્યાનો જ વ્યુચ્છેદ થવાનો
ભય રહે છે શય્યાતર પાસેથી તૃણ, ક્ષાર, શય્યાસંસ્તાર, પીઠ, ફલક અને
સોપધિક (વસ્ત્ર પાત્ર આદિ ઉપધિ સાથે) શિષ્ય લેવામાં કોઈ દોષ લાગતે નથી.

રાજપિંડ એટલે રાજને માટે તૈયાર થયેલ આહાર રાજપિંડ ગ્રહણ
ગ્રહણ કરવામાં પણ સાધુને દોષ લાગે છે. ' ર.બ ' પદ્યથી અહીં ચક્રવર્તી
બળદેવ, વાસુદેવ આદિ ગૃહીત થયેલ છે.

આ રીતે હસ્તકર્મ કરનાર, મૈથુનનું પ્રતિસેવન કરનાર, રાત્રિભોજન
કરનાર સાગારિક પિંડનો આહાર કરનાર અને રાજપિંડનો આહાર કરનાર
સાધુ ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્તને પાત્ર બને છે. ॥ સૂ. ૩ ॥

गुप्तदुआरे, बहवे समणमाहणा णो संचाएति भक्ताएवा पाणाए
वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, तेसिं विन्नवणट्टयाए रायंते-
उरमणुपविसिज्जा १, पाडिहारियं वा पीढफलगसेज्जासंधारणं
पच्चप्पिणभाणे रायंतेउरमणुपविसिज्जा २, ह्यस्स वा गयस्स वा
दुट्ठस्स आगच्छमाणस्स भीए रायंतेउरमणुपविसिज्जा ३, परोव
णं सहसा वा वलसा वा वाहाए गहाय अंतेउरमणुपवेसेज्जा
४, बहिया व णं आरामगयं वा उज्जाणगयं वा रायंतेउरजणो
सव्वओ समंता संपरिक्खवित्ता णं निवेशिज्जा ५। इच्चेएहिं
पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे जाव णाइक्कमइ ॥ सू० ४ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थो राजान्तःपुरमनुप्रविशन् नाति-
क्रामति, तद्यथा—नगरं स्यात् सर्वतः समन्ताद् गुप्तं गुप्तद्वारम्, बहवः श्रमणमाहना
नो शक्नुवन्ति भक्ताय वा पानाय वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा, तेषां विज्ञापना-
र्थाय राजान्तःपुरमनुप्रविशेत् १, प्रातिहारिकं वा पीठफलकशय्यासंस्तारकं
प्रत्यर्पयन् राजान्तःपुरमनुप्रविशेत् २, हयाद् वा गजाद् वा दुष्टात् आग-
च्छतो भीतो राजान्तःपुरमनुप्रविशेत् ३, परोवा खलु सहसा वा वलेन वा वाहौ
गृहीत्वा अन्तःपुरमनुप्रवेशयेत् ४, बहिर्वा खलु आरामगतं वा उद्यानगतं वा
राजान्तःपुरजनः सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य खलु निवेशयेत् ५. इत्येतैः पञ्चभिः
स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थो यावत् नातिक्रामति ॥सू० ४॥

टीका—‘पंचहिं ठाणेहिं’ इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः कारणैः श्रमणो निर्ग्रन्थो राजान्तःपुरं अनुप्रविशन् नाति-
क्रामति=तीर्थकृताम् आज्ञाया उल्लङ्घको न भवति, तान्येव स्थानानि प्राह—तद्यथा—

राजाके अधिकारको लेकर अब सूत्रकार राजाके अन्तःपुरको आ-
श्रित करके सूत्र कहते हैं—‘पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे’ इत्यादिसूत्र४॥

टीकार्थ—पांच कारणोंको लेकर राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश करता हुआ
मुनिजन तीर्थ करोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाला नहीं होता है, वे पांच

आज्ञा सूत्रमां राजानो उल्लेख थयो छे आ संधने तीधे सूत्रकार

६वे राजाना अन्तःपुर विधेना सूत्रनुं कथन करे छे

टीकार्थ—“ पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे ” इत्यादि—

नीधे दर्शवामां आवेलां पांच कारणेने तीधे राजाना अन्तःपुरमां

नगरं सर्वतः समन्तात्=दिक्षु विदिक्षु गुप्तं=रक्षितं प्राकारपरिवेष्टितत्वात्,
 गुप्तद्वारम्-गुप्तानि=पिहितानि द्वाराणि यस्य तत्तथा स्यात्=भवेत्, ततश्च किम् ?
 इत्याह-तेन हेतुना बहवः श्रमणमाहनाः श्राम्यन्ति=तपस्यन्तीति श्रमणाः, 'माहन्याः'
 मा मारय इत्युपदेशवा माहनाः, श्रमणाश्च माहनाश्चेति कर्मधारयः, उत्तरगुणमूल-
 गुणयुक्ताः मंसता इत्यर्थः, अथवा-श्रमणाः=शाक्याः माहनाः=ब्राह्मणाः, भक्ताय
 वा पानाय वा निर्गन्तुं नगराद्द्विर्गन्तुं वा प्रवेष्टुं वा नो शक्नुवन्ति, तदा तेषां=श्रमण-
 माहनानां विज्ञापनार्थाय=अन्तःपुरस्यस्य राज्ञः प्रमाणभूतराज्ञ्यावा सन्निधौ प्रयोजनं
 विज्ञापयितुं राजान्तःपुरम् अनुप्रविशेत् । इति प्रथमं स्थानम् १। वा=अथवा साधुः
 प्रातिहारिकं प्रतिहियते=प्रयोजनवशादानीय पुनरर्प्यते यत्तत्प्रातिहारिकं पुनः

कारण इस प्रकारसे हैं, जैसे-कोई नगर प्राकारसे परिवेष्टित होनेसे
 गुप्त हो, रक्षित हो, गुप्तद्वारवाला हो-जिसके दरवाजे बन्द हो रहे हों
 ऐसा हो, अतः अनेक श्रमणमाहण-उत्तरगुण मूलगुण युक्त संयत
 अथवा-श्रमण-शाक्य और माहण दयाका उपदेश देनेवाला आहार
 पानके लिये नगरसे बाहर जानेके लिये या उसमें प्रवेश करनेके लिये
 समर्थ न हो रहे हों तो ऐसी स्थितिमें उन श्रमण माहनोंकी इस प्रका
 रकी खबर देनेके लिये-अन्तःपुरमें स्थित राजाके पास अथवा प्रमाण-
 भूत रानीके पास उनके प्रयोजनको प्रकट करनेके लिये-श्रमण निर्ग्रन्थ
 राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश कर सकता है १। ऐसा यह प्रथम कारण है,
 द्वितीय कारण ऐसा है, कि प्रातिहारिक प्रयोजनवश लाकरके देनेके

प्रवेश करते श्रमण निर्ग्रन्थ तीर्थ'करानी आजानो विराधक जनतो नथी.
 केछ नगर केटथी घेरायेद्युं डोवाने लीधे शुभ डोय, रक्षित डोय, शुभ
 द्वारवाणुं डोय अेटले के जेना दरवाण्ण अंध करी देवाभां आब्या डोय, अने
 ते कारण्णे अेवी परिस्थिति पेदा थरुं डोय के अनेक श्रमण्ण अने माहण्ण
 (उत्तरगुण्ण मूलगुण्ण) युक्त संयत अथवा श्रमण्ण अेटले शाक्य मुनिअो
 अने माहण्ण अेटले दयानो उपदेश अःपनारा साधुअो) आहार पाननी
 प्राप्ति भाटे नगरनी अडार पण्ण जर्ध शकता न डोय अने अडारथी नगरनी
 अंधर प्रवेश पण्ण करी शकता न डोय, तो अा प्रकारनी परिस्थितिभां ते
 श्रमण्ण माहण्णोनी ते प्रकारनी सिद्धितुं राजा पासे निवेदन करवा भाटे अथवा
 प्रमाणभूत राणीनी पासे तेमना प्रयोजनने प्रकट करवा भाटे केछ पण्ण श्रमण्ण
 निर्ग्रन्थ राजाना अंतःपुरभां प्रवेश करे, तो ते जिनाज्ञानो विराधक गण्णतो नथी.

समर्पणीयं पीठफलकशय्यासंस्तारकं-तत्र पीठं=चतुष्पिकादिकम्, फलकः=पट्टादिकः, शय्या=शरीरप्रमाणा, संस्तारकः=अर्द्धतृतीयहस्तप्रमाणः, पीठादीनां द्वन्द्व एकवद्भाषश्च, तत् प्रत्यर्पयन्=प्रत्यर्पयितुकामो राजान्तःपुरमनुप्रविशेत् । पीठादीनां प्रत्यर्पणं तदानयनं विना नोपपद्यते, अतस्तदानयनार्थमपि साधुना मन्तःपुरप्रवेशो न तीर्थकृदाज्ञाविराधको भवतीति बोध्यम् । इति द्वितीयम् २। तथा आगच्छतो दुष्टात्=उन्मत्ताद् हयाद् वा गजाद् वा भीतः साधु राजान्तःपुरम् अनुप्रविशेत्-इति तृतीयं स्थानम् ३। तथा-परः-स्वातिरिक्तः कश्चिज्जनः तस्करादिशङ्कया सहसा=अकस्मान् बलेन=बलपूर्वकं बाहौ गृहीत्वा राजान्तःपुरम् अनुप्रवेशयेत् इति चतुर्थं स्थानम् ४। तथा-बहिः=नगराद् बहिः आरा-

योग्य ऐसे जो पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक हैं, उन्हें चापिस करनेकी इच्छावाला मुनिजन अन्तःपुरमें प्रवेश कर सकता है २। चौकी आदिका नाम पीठ है, पट्ट आदिका नाम फलक है, शरीर प्रमाण शय्या होती है, और अर्द्ध हाथ प्रमाण संस्तारक होता है, पीठादिकोंका प्रत्यर्पण उन्हें लाये विना तो होता नहीं है, अतः इन्हें लेनेके लिये भी साधुका अन्तःपुरमें प्रवेश करना तीर्थकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है, इस प्रकारका यह द्वितीय स्थान है, तृतीय स्थान इस प्रकारसे है, यदि कोई दुष्ट उन्मत्त-हय-घोडा अथवा-गज आ रहा हो तो उससे बरा हुआ साधु राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश कर सकता है, ऐसा यह तृतीय कारण है, चौथा कारण ऐसा है, कि कोई मनुष्य तस्करादिकी शङ्कासे जव-

(२) पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक आदि जे यीजे लाव्या होय ते पाठी से पवाने माटे पण साधु राजाना अन्तपुरमां प्रवेश करी शके छे. चौकी (आलेक) आदिने 'पीठ' कहे छे, पट्ट आदिने 'फलक' कहे छे. शरीरप्रमाण शय्या होय छे अने अदी हाथप्रमाण संस्तारक होय छे पीठ आदि पडेलो लाव्या होय तो न पाछुं आपवानो प्रश्न जसो थाय छे, तेथी प्रयोजनवश पीठ, फलक आदि लेवा माटे राजाना अंतपुरमां प्रवेश करनार साधु पण जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी.

त्रीणुं कारण नीचे प्रमाणे छे—कोई मुनि बिक्षाचर्या आदि कारणे नीकल्या होय, त्यारे कोई उन्मत्त घोडा हाथी आदि भागें उपर टोडी रखा होय, तो तेनाथी भयवा माटे ते साधु राजाना अंतःपुरमां प्रवेश करे, तो जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी.

चौथुं कारण—कोई अभलहार अथवा भाणुस तेने चार भाणी लघने

मगतम्-आरामः-विविधपुष्पजात्युपशोभितः स्थानविशेषः, तत्र गतं=स्थितं, वा= अथवा उद्यानगतम्-उद्यानम्=पुष्पफलोपेतवृक्षयुक्तं स्थानं, तत्र गतं साधुं कौतूहला- दिवशाद् राजान्तःपुरजनः सर्वतः समन्तात्=चतुर्दिग्भ्यः सम्परिक्षिप्य=उत्थाप्य खलु राजान्तःपुरं निवेशयेत् । इति पञ्चमं स्थानम् ५। निगमयन्नाह-इत्येतैः पूर्वोक्तैः पञ्चभिः स्थानैः राजान्तःपुरमनुप्रविशन् श्रमणो निर्ग्रन्थो नातिक्रामति तीर्थं कृदाज्ञाया विराधको न भवतीति ॥ सू० ४ ॥

अन्तःपुराधिकारात् सम्प्रति स्त्रीमतं क्रिया विशेषमाह—

मूलम्—पंचहिं ठाणैहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणीवि गब्भं धरेज्जा, तं जहा-इत्थी दुव्वियडा दुन्निसण्णा सुक्कपोग्गले अधिद्धिज्जा १, सुक्कपोग्गलसंसिद्धेव सेवत्थे अंतोजोणीए अणुपवि- सेज्जा २, सयं वा सा सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा ३, परोव से

दस्नी अकस्मात् हाथोंको पकड़कर राजाके अन्तःपुरमें डाल देना है, तो ऐसी स्थितिमें वह साधु तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है, अथवा-नगरसे बाहर उद्यानमें स्थित हुए साधुको विविध पुष्पजातिसे उपशोभित स्थान विशेषमें स्थित मुनिको-अथवा उद्यानमें-पुष्पफलसे सुशोभित वृक्षोंसे युक्त स्थानमें-स्थित मुनिको योंही कौतूहल आदिके वशसे राजाके अन्तःपुरका जन ऊंचा उठाकर उसमें रख दे तो ऐसी स्थितिमें वह साधु तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है । इस तरहके इन पांच कारणोंसे राजाके अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ मुनिजन तीर्थंकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है ॥ सू० ४ ॥

पराणु पकडीने तेने अंत.पुरमां राजनी समक्ष थडो करे, तो ओ परिस्थि- तिमां पणु ते साधु जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी.

पांचमं कारणम्—नगरनी भहार उद्यान आदि स्थानमां विविध पुष्पैःथी सुशोभित स्थानविशेषमां रडेवा केध मुनिने अंतःपुरने केध भाणुस कुतू- हलथी प्रेराधने अंतःपुरमां उपाडीने लउ लय, तो ओवी परिस्थितिमां पणु ते साधु जिनेश्वर लगवाननी आज्ञानो विराधक गणुतो नथी. आ प्रकारना पांच कारणोमांता केध पणु कारणे राजना अतःपुरमां प्रवेश करनार मुनि तीर्थंकरनी आज्ञानो विराधक गणुतो नथी. ॥ सू. ४ ॥

सुक्रपोगले अणुपवेसेज्जा ४, सौओदगवियडेण वा से आयम-
माणीए सुक्रपोगला अणुपविसेज्जा ५। एच्चोएहिं पंचहिं ठाणेहिं
जाव धरेज्जा ॥ सू० ५ ॥

छाया—पञ्चमिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धम् असंवसन्ती अपि गर्भं धरेत्,
तद्यथा—स्त्री दुर्विष्टता दुर्निषण्णा शुक्रपुद्गलान् अधितिष्ठेत् १, शुक्र पुद्गलसंसृष्टं वा
तस्या वक्ष्यम् अन्तर्योनी अनुप्रविशेत् २, स्वयं वा सा शुक्रपुद्गलान् अनुप्रवेशयेत्
३, परोवा तस्याः शुक्रपुद्गलान् अनुप्रवेशयेत् ४, शीतोदकविकटेन वा तस्या
आचामन्त्याः शुक्रपुद्गला अनुप्रविशेयुः ५। इत्येतैः पञ्चमिः स्थानै र्यावद् धरेत् ॥ सू० ५ ॥

टीका—पंचहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—

वक्ष्यमाणैः पञ्चमिः स्थानैः=कारणैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धम् असंवसन्तो अपि=
पुरुषमसंगताऽपि गर्भं धरेत्=मत्तुं शक्नुयात् । तान्येव स्थानान्याह—तद्यथा—स्त्री
दुर्विष्टता=विष्टता=त्रिगतावरणा, दुष्टुविष्टता, दुर्विष्टता-विष्टतात्वं तूत्तरीयापरिधा-
नेनापि संभवतीति दुरिति विशेषणमुक्तं, तेन सर्वथा नग्नेत्यर्थः । एतादृशो सती
दुर्निषण्णा=दुष्टु निषण्णा=उपविष्टा=वैरूप्येणोपविष्टेत्यर्थः एवंभूता सती शुक्रपुद्ग-
लान्=कथंचित् पुरुषनिष्ठान् वीर्यपुद्गलान् अधितिष्ठेत्=योन्याकथंचिदाकृष्य
संपृक्षीयात् । इति प्रथमं स्थानम् । तथा—शुक्रपुद्गलसंसृष्टं=कथंचिच्छुक्रपुद्गलयुक्तं

अन्तःपुरके अधिकारसेही अब सूत्रकार स्त्रीगत क्रिया विशेषका
कथन करते हैं—पंचहिं ठाणेहिं इत्यी पुरिसेण सर्द्धि इत्यादि सूत्र ५ ॥

टीकार्थ-पांच कारणोंसे पुरुषके साथ नहीं रहती हुई भी पुरुषके साथ
संगम नहीं करती हुई भी स्त्री गर्भवती हो सकती है, वे पांच कारण
इस प्रकारसे हैं—कोई स्त्री बिलकुल नग्नावस्थामें योनिको प्रसार कर
उस स्थान पर यदि बैठ जाती है, कि जहां पर पुरुषका वीर्य पहिलेसे
निकला हुआ पड़ा हो तो ऐसी स्थितिमें वह अपनी योनि द्वारा किसी
तरहसे उन वीर्य पुद्गलोंको खींचकर उसके भीतर लेजाकर गर्भ धारण

अन्तःपुरना अधिकारनी साथे सुसंगत भवे। स्त्रीगत क्रियाविशेषाना
अधिकारआपव.मां आवे छे—“ पंचहिं ठाणेहिं इत्यी पुरिसेण सर्द्धि ”इत्यादि—
टीकार्थ—पुरुषनी साथे संलोगन करवा छतां पणु नीयेना पांचकारणुने वीधे
स्त्री गर्भवती गनी शके छे—(१) कोई स्त्री बिलकुल नग्नावस्थाभां योनिने
प्रसारीने भेवा स्थानपर भेसे के ज्यां पुरुषतुं वीर्य पडेलेथी न पडेलेुं होय,
तो भेवी परिस्थितिभां ते पोतानी योनि द्वारा कोई पणु रीते ते वीर्यपुद्गलाने
भेथीने तेनी अंदर दाण्ड करी देवाथी गर्भ धारणु करी शके छे.

વસ્ત્ર તસ્યાઃ સ્ત્રિયા અન્તર્યોની=યોનિમધ્યે અનુપ્રવિશેત । इह वस्त्रमित्युपलक्षणं, तेन अन्यदपि तथात्रिं केशादिकं बोध्यम् । यथा केशिमात्रा रोगविशेषनिवारणार्थं रक्तनिरोधनाद्यर्थं वा अज्ञातशुक्रपुद्गलसंयोगाः केशा योनीं वद्धास्तत एव गर्भो जातः । तस्माद् गर्भात् केशिमुनिरुत्पन्न इति । इति द्वितीयं स्थानम् । तथा-सा स्त्री स्वयं पुत्रकामनया शुक्रपुद्गलान् अन्तર્યોની પ્રવેશयेत् । अयं भावः-शील-रक्षणार्थिनीत्वात् परपुरुषमंगममनाकाङ्क्षन्ती काचित् पुत्रकामा स्त्री शुक्रपुद्गलान् स्वयमेव योनिमध्ये प्रवेशयेदिति । इति तृतीयं स्थानम् । तथा-परः=स्वातिरिक्तः

કર સકતી છે, એસાં યહ પ્રથમ કારણ છે, દ્વિતીય કારણ એસાં છે, કિ પુરુષકે વીર્યસે મીલા હુઆ વસ્ત્ર યદિ સ્ત્રીકી યોનિકે ખીતર ઘોસ દિયા જાતા છે. તો ઉસસે ખી વહ ગર્ભ ધારણ કર સકતી છે, યહાં “વસ્ત્ર” યહ ઉપલક્ષણરૂપ છે, ઇમસે યહ ખી ગ્રહણ કર લેના ચાહિયે કિ પુરુષકે વીર્યસે મીલે યદિ લિજ્જાદિકે ઉપરકે વાલ આદિ હોં ઓર વે વસ્ત્રાદિમેં વાંધકર યોનિકે ઉપર વાંધ લિયે જાવે તો હસ સ્થિતિમેં ખી સ્ત્રીકો ગર્ભ રહ સકતા છે, જૈસે-કેશીકી માતાને રોગ વિશેષકો દૂર કરનેકે લિયે યા રક્તકા નિરોધન કરને અદિકે લિયે શુક્ર પુદ્ગલ સંયોગવાલે કેશોંકો યોનિકે ઉપર વાંધ લિયા થા, સો ઉસીસે ઉસકો ગર્ભ રહ ગયા થા, ઓર ઉસ ગર્ભસે કેશિશ્રમણ ઉત્પન્ન હુએ થે, હસ પ્રકારકા યહ દ્વિતીય સ્થાન છે, તૃતીય કારણ એસાં છે, કિ કોઈ પુત્રકી કામનાવાલી સ્ત્રી પુરુષકે પતિત વીર્યકો યોનિકે ખીતર ધર લે તો એસી સ્થિતિસે ખી

બીજું કારણ આ પ્રમાણે છે—જો પુરુષના વીર્યથી ખરડાયેલા વસ્ત્રને કોઈ સ્ત્રી પોતાની યોનિમાં પ્રવેશાવે છે, તો તેના દ્વારા પણ તે સ્ત્રી ગર્ભ ધારણ કરી શકે છે. અહીં વસ્ત્ર તો ઉપલક્ષણ રૂપ છે. અહીં એવું પણ થયું કરવું જોઈએ કે પુરુષના લિંગાદિની ઉપરના અને આસપાસના વીર્યથી ખરડાયેલા ખાલને કોઈ વસ્ત્રમાં બાંધીને યોનિની ઉપર બાંધી દેવામાં આવે, તો પણ સ્ત્રી ગર્ભ ધારણ કરે છે. જેમકે કેશી શ્રમણની માતાએ રોગવિશેષને દૂર કરવા માટે અથવા રક્તસ્રાવ અટકાવવા માટે શુક્ર પુદ્ગલ (વીર્ય પુદ્ગલ) ના સંયોગવાળા કેશોને યોનિની ઉપર બાંધી દીધાં હતાં, અને તેના દ્વારા જ તેને ગર્ભ રહ્યો હતો, અને તે ગર્ભમાંથી કેશી શ્રમણ ઉત્પન્ન થયા હતા.

બીજું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—કોઈ પુત્રની કામનાવાળી સ્ત્રી કોઈ પુરુષના પતિત વીર્યને પોતાની યોનિમાં દાખલ કરી છે, તો એવી પરિસ્થિતિમાં પણ તે સ્ત્રીને ગર્ભ રહી શકે છે. આ કથનનો

श्वश्चादिजनः-तस्या योनीं शुक्रपुद्गलान् अनुप्रवेशयेत् । इति चतुर्थं स्थानम् । तथा= शीतोदकविक्रटेन-शीतोदकरूपं यद् विक्रटं=समयपरिभाषया जलं तेन आचामन्त्याः=शौचं कुर्वत्या, तस्याः स्त्रियो योनिमध्ये तज्जलस्थिताः शुक्रपुद्गला अनुप्रविशेयुरिति पञ्चमं स्थानम् । इत्येतैरुपरिनिर्दिष्टैः पञ्चभिः कारणैः स्त्री पुरुषासंगताऽपि गर्भं धरेदिति ॥ सू० ५ ॥

यैः स्थानैः पुरुषेण संगताऽपि स्त्री गर्भं न धरेत्, तानि स्थानानि प्राह—

मूलम्—पंचहिं टाणोहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणा-
वि गभं नो धरेज्जा, तं जहा-अपत्तजोव्वणा १, अइकंतजो-

वह गर्भवती हो सकती है, इस तृतीय कारणका भाव ऐसा है, कि कोई शीलवती स्त्री अपने शीलकी तो रक्षा करना चाहती है, और पुत्रकी अभिलाषावाली भी बनी हुई है, तो वह पर पुरुषके साथ संगम नहीं करती हुई भी यदि शुक्र पुद्गलोंको अपने हाथसेही अपनी यो-
निके भीतर रख लेती है, तो ऐसी हालतमें वह गर्भवती हो सकती है, चतुर्थ कारण इस प्रकारसेहै, यदि उसकी सास आदि रूप स्त्रीजन उसकी योनिमें शुक्र पुद्गलोंको रख देती है, तो इससे भी वह गर्भवती हो सकती है, पांचवां कारण ऐसा है, कि शौचको करते समय उस स्त्रीके योनिके अन्दर पानी लेते समय उस जलमें पतित शुक्र पुद्गल यदि प्रविष्ट हो जाते हैं, तो इससे भी वह गर्भवती हो सकती है, इस तरहके इन निर्दिष्ट पांच कारणोंसे स्त्री पुरुषसे अशुक्त होती हुई भी गर्भवती हो सकती है ॥ सू० ५ ॥

भावार्थ अथो छे के-कैथ शीलवती स्त्री पुत्रनी कामनावाणी छे ते पोताना शीलनुं रक्षणुं करवा भागती होवाथी परपुरुष साथे अग्रहनुं सेवन करती नथी पणुं कैथ पुरुषना पतित वीर्य पुद्गलेने पोताना हाथमां लधने पोतानी योनिमां हाणल करी हे छे, आम करवाथी ते गर्भवती थछं शके छे.

चोथुं कारणु नीचे प्रमाणे छे—जे तेनी सासु आदि कैथ पणु व्यष्टि कैथ पुरुषना शुक्र पुद्गलेने तेनी योनिमां नाथी हे तो पणु ते गर्भं धारणु करी शके छे.

पाचमुं कारणु—जज्ज गया णाह पाणी लेती वणते जे जणने उप-
योग करवामां आवे, ते जणमां कैथ पुरुषना शुक्र पुद्गले लणेवां होय, तो ते शुक्र पुद्गले ते स्त्रीनी योनिमां हाणल थछं जय तो ते स्त्री गर्भवती भनी शके छे. आ प्रकारना पांच कारणेने लीधे पुरुषनी साथे मैथुनमेवन क्यो विना पणु स्त्री गर्भवती थछं शके छे. ॥ सू ५ ॥

द्वणा २, जाइवंझा ३, गेलन्नपुट्टा ४, दोमणंसिया ५। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहि जाव नो धरेज्जा । पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि नो गव्भं धरेज्जा, तं जहा—निच्चो-उया १, अणोउया २, वावन्नसोया ३, वाविद्धसोया ४, अणंग-पडिमेवणी ५। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गव्भं नो धरेज्जा, तं जहा—उउम्मि णो गिगा-मसेविणी यावि भवइ १, समागया वा से सुक्कपोगगला पडि-विद्धंसंति २, उदिण्णे वा से पित्तसोणिए ३, पुरा वा देवक-म्मणा ४, पुत्तफले वा नो निहिद्धे भवइ ५। इच्चेएहिं जाव नो धरेज्जा ॥ सू० ६ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धं संवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्, तद्यथा—अप्राप्तयौवना १, अतिक्रान्तयौवना २, जातिवन्ध्या ३, ग्लान्यसृष्टा ४, दौर्मनस्विका ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः यावद् नो धरेत् । पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धं संवसन्त्यपि नो गर्भं धरेत्, तद्यथा—नित्यर्तुका १, अन्वृतुका २, व्यापन्नस्रोताः ३, व्याविद्धस्रोताः ४, अनङ्गप्रतिसेविनी ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धं संवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत् । पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुरुषेण सार्द्धं संवसन्त्यपि गर्भं नो धरेत्, तद्यथा—ऋतो नो निकामसेविनी चापि भवति १, समागता वा तस्याः शुक्रपुद्गलाः प्रतिविध्वंसन्ते २, उदीर्णं वा तस्याः पित्तशोणितम् ३, पुरा वा देवकर्मणा ४, पुत्रफलं वा नो निर्दिष्टं भवेत् ५। इत्येतै र्यावद् नो धरेत् ॥ सू० ६ ॥

टीका—‘पंचहिं ठाणेहिं’ इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः स्त्री पुरुष संगताऽपि गर्भं नो धरेत् । येषु स्थानेषु सत्सु गर्भं न धरेत् तानि स्थानानि प्राह—तद्यथा—अप्राप्तयौवना—न प्राप्तं यौवनं

अत्र सूत्रकार उन पांच कारणोंको प्रकट करते हैं, कि जिनसे पुरुषसे संगत हुई भी स्त्री गर्भको धारण नहीं कर सकती है—

पुरुषनी साथे सलोग करवा छनां पणु ने पांच कारणेने लीधे भी गर्भ धारण करी शकती नथी, ते कारणेने उवे सूत्रकार प्रकट करे छे.

यथा सा १, अतिक्रान्तयौवना=अतिक्रान्तं यौवनं यस्याः सा-गतयौवना २, जातिवन्ध्या-जातेः=जन्मत आरभ्य बन्ध्या=निर्वीजा, ३ ग्लान्यस्पृष्टा-ग्लान्येन=रोगेण स्पृष्टा=ग्रस्ता ४, तथा-दौर्मनस्यिका-दौर्मनस्यं=शोकादिकमस्ति यस्याः सा, “दौर्मनस्यिता”-इति च्छायापक्षे तु दौर्मनस्यं संजातं यस्याः सा,-शोकादि संकुलेत्यर्थः ५, इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः स्त्री पुहपसंगताऽपि गर्भं न धरेत् ।

‘पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं’ इत्यादि सूत्र ६ ।

टीकार्थ-पुरुषके साथ संगम करती हुई भी स्त्री इन पांच कारणोंसे गर्भवती नहीं हो सकती है-वे पांच कारण इस प्रकारसे हैं-यदि वह अप्राप्त यौव-नवाली है, तो वह पुरुषके साथ रत होती हुई भी गर्भवती नहीं हो सकती है १। इसी तरहसे वह यदि गत यौवनवाली है, यौवनावस्थासे वह रहित हो चुकी है, तो ऐसी स्थितिमें भी वह पुरुष द्वारा युक्त होती हुई भी गर्भवती नहीं हो सकती है २। तथा-यदि वह जातिसे जन्मसेही बन्ध्या है, निर्वीजा है, तो वह पुरुषसे रतिक्रिया करती हुई भी गर्भवती नहीं हो सकती है ३, यदि वह ग्लान्य स्पृष्टा है, रोगग्रस्त है, तो भी वह पुरुषके साथ संगम करती हुई भी गर्भवती नहीं हो सकती है ४, और यदि वह रतिक्रियामें रत होती हुई भी शोकादिसे युक्त मनवाली बनी रहती है-प्रसन्न चित्त नहीं रहती है, तब भी वह गर्भवती नहीं हो सकती है ५, अथवा-“दौर्मनस्यिता” की छाया-“दौर्मनस्यिता” ऐसी भी होती है, इस पक्षमें यदि वह शोक आदिसे युक्त

टीकार्थ-“पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं”

पुरुषनी साथे संलोग करवा छतां पणु नीयेना
पांथ कारणेने लीधे स्त्री गर्भ धारणु करी शकती नथी.

(१) युवावस्थाभां आव्या पडेलां ले कोर्ध कन्या पुरुष साथे रतिक्रिया करे, तो ते गर्भवती थती नथी. (२) जे स्त्री यौवन व्यतीत करी चुकी छे, ज्येठले के प्रौढा अथवा वृद्धा भनी चुकी छे, ते पुरुष साथे संलोग करवा छतां पणु गर्भ धारणु करी शकती नथी (३) जे कोर्ध स्त्री जन्मथी ज बन्ध्या (निर्णीज) होय, तो पुरुष साथे रतिक्रिया करवा छतां पणु गर्भवती भनी शकती नथी. (४) जे ते रोगग्रस्त होय, तो पणु पुरुषनी साथे संलोग करवा छतां गर्भवती भनी शकती नथी. (५) पुरुषनी साथे रतिक्रिया करवा छतां पणु जे स्त्री शोकाकुल होय ज्येठले के प्रसन्नचित्त न होय, तो गर्भवती भनी शकती नथी. “दो मर्णस्यिता” आ पदनी संस्कृत छाया “दौर्मनस्यिता” देवाभां

अथाग्नेऽवान्तरमृत्रद्वयस्यापि उपक्रमोपसहारवाक्यमेव व्याख्येयम् । तत्र प्रथमा-
 षान्तरमृत्रोक्तानि पञ्चस्थानान्येतानि, तथाहि-नित्यर्तुका-नित्यं=सर्वदा न तु
 दिनत्रयमेव ऋतु=रक्तमृत्रनिर्हणो यस्याः सा १, तथा-अनृतुका-न विद्यते ऋतु-
 र्यस्याः सा २, तथा-व्यापन्नस्रोताः-व्यापन्नं=रोगादिना प्रतिहतं स्रोतः=गर्भा-
 न्नप्रच्छिद्रं यस्याः सा ३, तथा-व्याविद्धस्रोताः-व्याविद्धं=वातादिना व्याप्तत्वेन
 उदहतप्रच्छिद्रं स्रोतो यस्याः सा ४, तथा-अनद्वयतिसेविनी-अद्वं=मैथुनोपयोगि

है, नां भी गर्भवती नहीं हो सकती है, ऐसा अर्थ होता है, अतः इस
 तरिके इन पांच कारणोंसे पुरुषके साथ संगम करती हुई भी स्त्री
 गर्भ धारण नहीं कर सकती है यह प्रकट क्रिया, अब और भी गर्भ
 धारण नहीं करनेके जो कारण हैं, सूत्रकार उन्हें प्रकट करते हैं,
 इनमें प्रथम कारण नित्यर्तुक है, जिसके तीन दिन तकही ऋतुधर्म
 नहीं रहता है-किन्तु सदाही रज प्रवाहित होता रहना है, ऐसी वह
 स्त्री गर्भवती नहीं हो सकती है, तथा जो अनृतुक है, ऋतुधर्मसे रहित
 है, वह भी गर्भवती नहीं हो सकती है, जो व्यापन्न स्रोता है, वह भी
 गर्भवती नहीं हो सकती है, अर्थात् रोगादिकसे जिसके गर्भाशयका
 छिद्र चन्द हो गया हो प्रतिहत हो गया हो ऐसी वह स्त्री भी गर्भ
 धारण करनेमें असमर्थ होती है । जिसका वातव्याधि आदिसे व्याप्त
 होनेके कारण गर्भाशयका छिद्र गर्भ धारण करनेकी शक्तिसे रहित
 कर दिया गया हो ऐसी वह भी स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती

आवे, तो तेना अर्थ आ प्रभाषे पणु थाय छे-जे ते शोकादिथी युक्त डाय
 तो पणु गर्भवती णनी शक्ती नथी.

गर्भ धारण न करी शकवाना णीणं पणु डेटलाड कारणो छे, ते सूत्र-
 कार हवे प्रकट करे छे-“ नित्यर्तुक ” के अग्ने भडिनामां त्रणु दिवस सुधी न
 रजआव धते नथी, पणु शयम रजआव आणु रहे छे, ते अी गर्भवती
 णनी शक्ती नथी. (२) अनृतुक ” के अी ऋतुधर्मथी रक्षित डाय छे, तेने
 पणु गर्भ नथी शक्ती नथी (३) “ व्यापन्नस्रोता ” रोगादिने कारणो के
 अीना गर्भाशयनुं छिद्र अथ धर्ष गथुं डाय छे, ते अी पणु गर्भ धारण
 करी शक्ती नथी (४) डोष व्याधिने कारणो (वात व्याधि आदिने कारणो)
 केना गर्भाशयना छिद्रने गर्भ धारण करवाने असमर्थ करी नाणवामां आवुं
 डाय, ते अी पणु गर्भ धारण करी शक्ती नथी, (५) के अी मैथुन सेवनना

मुख्यमङ्गं लिङ्गं भगश्च, तन्निषेधोऽनङ्गं तेन आहार्यलिङ्गादिना मैथुनं प्रतिसेवते या सा ५। एभिः पञ्चभिः कारणैः पुरुष संगताऽपि स्त्री गर्भं न दधातीति । तथा— ऋतौ=आर्तवकाले निकामसेविनी—निकामं=वीर्यपातावधि मैथुनं सेवते या सा तथा नो भवति । इति प्रथमं स्थानम् । तथा—तस्या योनौ समागता वीर्यपुद्गलाः प्रतिविध्वसन्ते=योनिदोषाद् विनष्टशक्तिका भवन्ति । इति द्वितीयं स्थानम् । तथा—तस्याः पित्तशोणितं=पित्तप्रधानं शोणितम् उदीर्णम्=उद्भूतं भवेत्—उदीर्णं पित्तशोणिते बीजं न प्ररोहतीति भावः, इति तृतीयं स्थानम् । पुरा=गर्भधारणात् पूर्वं देवकर्मणा—देवक्रियया देवतानुभावेन शक्त्युपघातः स्यादिति शेषः, यद्वा—

है, तथा—जो मैथुनसेवनके अंग योनि और लिङ्गके सिवाय अनङ्गसे लिङ्गके सिवाय अनङ्गसे—आहार्य (?) लिङ्ग आदिसे काम सेवन करती है, ऐसी वह भी स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती है, तात्पर्य यही है, कि पुरुष संगत हुई भी स्त्री इन पांच कारणोंके कारण गर्भवती नहीं हो सकती है, गर्भ धारण करनेमें बाधक और भी कारणान्तर हैं, जो इस प्रकारसे हैं—इनमें प्रथम कारण वह है, जो वीर्यपात हो जानेके बाद भी मैथुन सेवा क्रियामें रत रहती है १। तथा—योनिमें पतित वीर्य पुद्गल जिसकी योनिके दोषसे विनष्ट शक्तिवाले हो जाते हैं २। तथा जिसका पित्त शोणित निकल गया होता है, तब बीज अङ्कुरित नहीं होता है ॥ ३ ॥ तथा जिसकी गर्भ धारण शक्ति किसी देवताके प्रभावसे नष्टकर दी गई है, अथवा—गर्भ निरोधक

अंग वडे मैथुन सेवन करती नहीं, अट्टके के पुरुषना लिंग वडे मैथुन सेवन करती नहीं, पणु लिंग सिवायना अनंग वडे—आहार्य लिंग आदि वडे कामसेवन करे छे, ते स्त्री पणु अे रीते गर्ल धारणु करी शकती नहीं.

गर्ल धारणु करवामां स्त्री नीचेना अन्य कारणाने दीधे पणु असमर्थ गने छे—(१) पुरुषना वीर्यना स्राव थर्ध गया आद पणु पुरुष साथे रति-क्रिया करवाथी स्त्रीने गर्ल रडेतेा नहीं. (२) योनिमां प्रविष्ट थथेलां वीर्य-पुद्गलो ने स्त्रीनी योनिना कोर्ध होपने दीधे विनष्ट शक्तिवाणा थर्ध जतां डोय ते स्त्री पणु गर्ल धारणु करी शकती नहीं. (३) ने स्त्रीनुं पित्तशोणित नीकणी गथुं डोय छे, ते स्त्री पणु गर्ल धारणु करी शकती नहीं. (४) नेनी गर्ल धारणु शक्ति कोर्ध देवताना प्रभावथी नष्ट थर्ध गध डोय, ते स्त्री पणु गर्ल

‘देवकर्मणात्’ इतिच्छाया-तत्र देवश्च कर्मणं चेति-देवकर्मणम् इति समाहार-
द्वन्द्वः, तस्मात्-देववशात् तथाविधद्रव्यसंयोगाद् वा शक्त्युपघातः स्यात् । इति
चतुर्थं स्थानम् । तथा-तस्याः स्त्रिया जन्मान्तरकर्ममभावेण पुत्रफलं नो निर्दिष्टं
भवेत् ५। इति पञ्चमं स्थानम् । इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः पुरुषसंगताऽपि स्त्री
गर्भं नो धरेदिति ॥ सू० ६ ॥

स्त्रीविषयकोऽधिकारः प्रस्तुत एव, तदधिकारादेव सम्प्रति साध्वी वक्तव्यता-
प्रतिबद्धं सूत्रद्वयात्मकमेकं सूत्रमाह—

मूलम्-पंचहिं ठाणेहिं निग्गंथा निग्गंथीओ य एगयओ
ठाणं वा सिञ्जं वा निसीहियं वा चेएमाणा णाइकमंति, तं
जहा-अत्थेगइया निग्गंथा निग्गंथीओ य एगं महं आगामियं
छिन्नावायं दीहमद्धमडविमणुपविट्ठा, तत्थेगयओ ठाणं वा सेज्जं
वा निसीहियं वा चेएमाणा णाइकमंति १, अत्थेगइया निग्गंथा
निग्गंथीओ य गामंसि वा णयरंसि वा जाव रायहाणिसि वा
वासं उवागया एगइया जत्थ उवस्सयं लभंति एगइया णो
लभंति, तत्थेगयओ ठाणं वा जाव नाइकमंति २, अत्थेगइया
निग्गंथा निग्गंथीओ य नागकुमारावासंसि वा सुवण्णकुमारा वा
संसि वा वासं उवागया तत्थेगयओ जाव णाइकमंति ३, आमो-

औषधि आदिके द्वारा जिसकी गर्भ धारण क्षत्तिका निरोध कर दिया
गया है ४। तथा जन्मान्तरमें पूर्वजन्ममें-कृत कर्मके प्रभावसे जिसे पुत्र-
फल प्राप्त होना नहीं बदाहै, ऐसी स्त्री भी गर्भवती नहीं हो सकती हैसू६॥

धारण करी सकती नहीं. अथवा गर्भनिरोधक औषधि द्वारा जे स्त्रीनी गर्भ
धारण करवानी शक्तिनो निरोध करी नाभवामां आये। डोय, ते स्त्री पणु
गर्भ धारण करी सकती नहीं. (५) पूर्वजन्मना कृतकर्मेनि दीधे जेना नसी-
णमां पुत्रफल प्राप्ति लपाठिज न डोय, जेवी स्त्री पणु गर्भ धारण
करी सकती नहीं. ॥ सू. ६ ॥

सगा दीसन्ति ते इच्छन्ति निगन्धीओ चीवरवडियाए पडिगाहि-
 त्तए तत्थेगयओ ठाणं वा जाव णाइक्कमन्ति ४, जुवाणा दीसन्ति
 ते इच्छन्ति णिगन्धीओ मेहुणपडियाए पडिगाहित्तए तत्थेगयओ
 ठाणं वा जाव णाइक्कमन्ति ५। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं जाव
 नाइक्कमन्ति । पंचहिं ठाणेहिं समणे निगन्थे अचेलए सचेलि-
 याहिं निगन्धीहिं सद्धिं संवसमाणे नाइक्कमइ, तं जहा-खित्त-
 चित्ते समणे णिगन्थे णिगन्थेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलि-
 याहिं निगन्धीहिं सद्धिं संवसमाणे णाइक्कमइ १, एवमेएणं गम-
 एणं दित्तचित्ते २, जक्खाइट्ठे ३, उम्मायपत्ते ४, निगन्धीपच्चा-
 वियए समणे निगन्थे णिगन्थेहि अविज्जमाणेहिं अचेलए सचे-
 लियाहिं निगन्धीहि सद्धि संवसमाणे णाइक्कमइ ५॥ सू०७ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थश्च एकतः स्थानं वा शय्य
 वा नैषेधिकीं वा चेतयन्तो नातिक्रामन्ति, तद्यथा—सन्त्येके निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्य
 एकां महतीम् अग्रामिकां छिन्नापातां दीर्घाध्वामटवीम् अनुप्रविष्टाः, तत्रैकतः
 स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयन्तो नातिक्रामन्ति १। सन्त्येके निर्ग्रन्थ
 निर्ग्रन्थश्च ग्रामे वा नगरे वा यावत् राजधान्यां वा वासम् उपागताः, एकके य
 उपाश्रयं लभन्ते, एककं नो लभन्ते तत्रैकतः स्थानं वा यावद् नातिक्रामन्ति २। सन्त्येक
 निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थश्च नागकुमारावासे वा सुपर्णकुमारावासे वा वासम् उपागताः, तं
 कतो यावद् नातिक्रामन्ति ३। आमोपका दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति निर्ग्रन्थिकाः चीवरप्रति
 ग्रहीतुं, तत्रैकतः स्थानं वा यावद् नातिक्रामन्ति ४। युवानो दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति
 निर्ग्रन्थिकाः मैथुनप्रतिज्ञया प्रतिग्रहीतुम्, तत्रैकतः स्थानं वा यावत् नातिक्र
 मन्ति ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः यावत् नातिक्रामन्ति । पञ्चभिः स्थानैः श्रमण
 निर्ग्रन्थः अचेलकः सचेलिकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्द्धं संवसन् नातिक्रामति तद्यथा
 क्षिप्तचित्तः श्रमणो निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु अचेलकः सचेलिकाभिः निर्
 न्थीभिः सार्द्धं संवसन् नातिक्रामति १। एवमेतेन गमकेन दत्तचित्तो २ यक्षावि
 ३, उम्मादप्राप्तो ४, निर्ग्रन्थी प्रत्राजितः श्रमणो निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थेषु अविद्यमाने
 अचेलकः सचेलिकाभिः निर्ग्रन्थीभिः सार्द्धं संवसन् नातिक्रामति ५ ॥ सू० ७ ॥

ટીકા—‘ પંચર્હિ ઠાણેર્હિ ’ ઇત્યાદિ—

પંચભિઃ સ્થાનૈઃ=કારણૈઃ નિર્ગન્થ્યા નિર્ગન્થ્યથ્ચ એકતઃ=એકસ્મિન્ સ્થલે સ્થાનં=કાર્યોત્સર્ગમ્ ઉપવેશનં વા ગચ્યાં=સંસ્તારકં વા નૈષેધિકીં=સ્વાધ્યાયભૂમિં વા ચેત-
યન્તઃ=કુર્વન્તો નાતિક્રામન્તિ=નોલ્લઙ્ચન્તિ જિનાજ્ઞામ્ । તાનિ સ્થાનાનિ પ્રાદ-
સન્તિ=મવન્તિ । એકે=કેચિદ્ નિ ન્યા નિર્ગન્થ્યથ્ચ, તે કિલ કાશ્ચિત્ એકાં મહર્તીં=
વિશાલામ્ અગ્રામિકામ્=ગ્રામરહિ ામ્ છિન્નાપાતામ્—છિન્ના આપાતાઃ—જનાનામા-
ગમનાનિ, ઉપલક્ષણાદ્ ગમનાનિ વા યમ્યાં સા તાં, દીર્ઘાધ્વામ્=દીર્ઘઃ અધ્વા=માર્ગો
યસ્યાં સા તાં—મહાપથામ્, યદ્વા—‘ દીર્ઘાદ્વામ્ ’ ઇતિ ચ્છાયા. દીર્ઘઃ=મહાન્ અદ્વા=
કાલો-નિસ્તરણે યમ્યાઃ સા તાં-દીર્ઘાલલઙ્ગનીયામ્લઙ્ગનયોગ્યામ્ અટવીમ્ અનુપ

અવ સૂત્રકાર ઇસી સ્ત્રી વિષયક અધિકારકે સમ્બંધસે સાધ્વીકી
વક્તવ્યતાસે પ્રનિવદ્ધ સૂત્રદ્વયાત્મક એક સૂત્રકા કથન કરતે હૈં—

‘પંચર્હિ ઠાણેર્હિ નિર્ગન્થ્યા નિર્ગન્થીઓ’ ઇત્યાદિ સૂત્ર ૭ ॥

ટીકાર્થ—નિર્ગન્થ્ય ઓર નિર્ગન્થ્યનિયાં—સાધુ ઓર સાધ્વી—યદિ ઇન પાંચ
કારણોંકો લેકર એકહી જગહ કાર્યોત્સર્ગ કરતે હૈં, યા વૈઠતે હૈં વિસ્તર
કરતે હૈં, યા સ્વાધ્યાય કરતે હૈં, તો વે જિનાજ્ઞાકે વિરાધક નહીં હોતે
હૈં, વે પાંચ કારણ ઇસ પ્રકારસે હૈં—જૈસે—કિનનેક નિર્ગન્થ્ય ઓર નિર્ગ-
ન્થનિયાં એક એસી અટવીમૈં પહુંચ જાતે હૈં, કિ જો વહુત વિશાલ હૈ,
જિસમૈં એક ભી ગ્રામ નહીં હૈ, મનુષ્યોંકા ભી આગમન આનાજાના
જિસમૈં નહીં હૈ, જો લમ્બે રાસ્તાવાલી હૈ, અથવા જિસે પાર કરના
વહુત સમય સાધ્ય હૈ, એસી ભયંકર ગહન અટવીમૈં પહુંચ જાને પર

આગલા સૂત્રમાં સ્ત્રીવિષયક કથન કરવામાં આવ્યું છે. સાધ્વીઓ પણ
સ્ત્રીઓ જ હોય છે. આ સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર સાધ્વીઓની
વક્તવ્યતાથી યુક્ત સૂત્ર દ્વયના સમૂહરૂપ એક સૂત્રનું કથન કરે છે.

ટીકાર્થ—“ પંચ હિ ઠાણે હિ નિર્ગન્થી નિર્ગન્થીઓ ” ઇત્યાદિ—

નિર્ગન્થી (સાધુઓ) અને નિર્ગન્થીનિઓ (સાધ્વીઓ) જે આ પાંચ
કારણોને લીધે એક જ જગ્યાએ કાર્યોત્સર્ગ કરે, જેસે, સ્વાધ્યાય કરે, અથવા
શયન કરે, તો તેઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક થતાં નથી.

(૧) કેટલાક નિર્ગન્થીઓ અને નિર્ગન્થીઓ કોઈ એક એવી ગહન અને
વિશાળ અટવીમાં આવી પહોંચ્યાં છે કે જેમાં એક પણ ગામ નથી, મનુષ્યોનો
અવરજવર પણ જ્યાં થતો નથી, જેને પાર કરીને કોઈ ગામમાં પહોંચવું
ધણું જ દુષ્કર છે, ઘણા જ લાંબા સમયે જેને પાર કરી શકાય એવી છે, તો

विष्टाः । तत्र=अटव्याम् एकत्र=एकस्मिन् स्थले स्थानं वा ग्रहणां वा नैषेधिकीं वा चेतय-
न्तः=कुर्वन्तो निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थश्च नातिक्रामन्ति=नोलङ्घयन्ति जिनाज्ञामिति प्रथमं
स्थानम् । तथा-सन्ति एके निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थश्च, ये किल ग्रामे वा नगरे वा यावद्
राजधान्यां वा वासं=निवासम् उपागताः=प्राप्ताः, तेषु मध्ये एके=निर्ग्रन्था वा
निर्ग्रन्थो वा अत्र-ग्रामादौ उपाश्रयं=गृहस्थेन निवासार्थं प्रदत्तं स्थानं लभन्ते=
प्राप्नुवन्ति, एकके=अन्यतरे पुनर्नो लभन्ते, तत्र एकत्र स्थले स्थानादिकं कुर्वन्तो
निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थश्च नातिक्रामन्तीति द्वितीयं स्थानम् । तथा-सन्ति एके निर्ग्रन्था

यदि साधुजन एवं साध्वियां एकही स्थान पर ठहर जाते हैं बैठ जाते
हैं, कार्योत्सर्ग करते हैं, आदि २ क्रियाएँ करते हैं, तो ऐसे वे निर्ग्रन्थ
साधु और साध्वियां तीर्थंकर प्रभुकी आज्ञाके विराधक नहीं होते हैं,
ऐसा यह प्रथम कारण है। द्वितीय स्थान-कारण ऐसा है-कितनेक साधु
साध्वियां विहार करती हुई किसी एक ग्राममें या नगरमें आदि आ-
जाती हैं-वहां वे गृहस्थके द्वारा प्रदत्त किसी उपाश्रयमें ठहर जाती हैं,
परन्तु यदि और भी साधु साध्वियां ऐसी बची रहती हो कि जिन्हें
ठहरनेके लिये स्थान न मिला हो तो ऐसी स्थितिमें वे सबके सब यदि
एकही स्थानमें ठहर जाते हैं, वही पर अपनी २ धार्मिक क्रियाएँ करते
हैं, तो वे जिनाज्ञाके विराधक नहीं माने जाते हैं। तृतीय स्थान ऐसा

श्रेणी परिस्थितिमां साधुओ अने साध्वीओ ते गहन अटवीमां ओक ज
स्थणे रोकाई जय, जेसी जय, अने कायेत्सर्ग आदि क्रियाओ करे, तो ते
प्रमाणे करवाथी ते साधुओ अने साध्वीओ तीर्थंकर भगवाननी आज्ञानी
अवगणुना, करनारा गणुतां नथी

भीयु' कारण नीचे प्रमाणे छे—केटलाक साधुओ अने साध्वीओ
श्रामानुश्राम विचरतां विचरतां केई ओक गाभ, नगर आदिमां आवी पडोये
छे. धारे के केटलाक साधुओ अथवा साध्वीओ त्या केई गृहस्थ द्वारा
आपवाभां आवेला केई उपाश्रयमां उतरे छे. केटलाक साधु अथवा साध्वी-
ओने ते गाभ आदिमां उतरवाने माटे केई अलग स्थान भणी शक्तुं नथी.
तो श्रेणी परिस्थितिमां ते साधुओ अने साध्वीओ ते ओक ज स्थानमां उतरे
अने कायेत्सर्ग आदि क्रियाओ करे, तो तेओ जिनेश्वर भगवाननी आज्ञाना
विराधक गणुतां नथी

भीयु' कारण आ प्रमाणे छे—जे केई साधुओ अने साध्वीओ केई
नागकुभारावासमां अथवा सुपर्णकुभारावासमां ओक साथे ज वास करे, तो

निर्ग्रन्थश्च, ये किञ्च नागकुमारावासे=नागकुमारगृहे वा सुपर्णकुमारावासे=सुपर्णकुमारगृहे वा वासम्=वासतिम् उपागताः, तस्य नागकुमारावासस्य सुपर्णकुमारावासस्य च अति शून्यत्वात्, अथवा-बहुजनाश्रयत्वात् अनायकत्वाच्च निर्ग्रन्थी शीलरक्षार्थं तत्र नागकुमारावासदौ स्थानादिकं कुर्वाणा निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थश्च नातिक्रामन्तीति तृतीयं स्थानम् । तथा-क्वचित् स्थले निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थश्च उपागताः, तत्र आमोपकाः-आमुष्णन्ति=चोरयन्तीति आमोपकाः=चौरा दृश्यन्ते, ते चौरा इच्छन्ति चीवरप्रतिज्ञया=चीवरोद्देशेन-वस्त्रापहरणेच्छये-

है—यदि किननेक साधु साध्विर्या किसी एक नागकुमारावासमें या सुपर्णकुमारावासमें आकर ठहर जाते हैं तो ऐसी स्थितिमें वे जिनाज्ञाके विराधक नहीं माने गये हैं, क्योंकि निर्ग्रन्थों के साथ निर्ग्रन्थों के ठहरने का ऐसा अभिप्राय रहता है कि इनके सहारे से मेरे शील की रक्षा हो जावेगी, क्योंकि यह आवास अतिशून्य है ।

अथवा—यह बहुजनाश्रय है या इसका कोई नायक नहीं है, अतः ऐसी स्थिति में यहां दुर्व्यसनी भी आ सकते हैं, इसलिये साधु महाराज के पास ठहरने से मेरे शीलकी रक्षा हो सकती है, इस अभिप्रायसे वह यदि उनके साथ ठहर जाती है, और वे उसे ठहरा लेते हैं, तो ऐसी स्थितिमें वे जिनाज्ञा के विराधक नहीं माने जाते हैं । चतुर्थ स्थान ऐसा है—किसी स्थान पर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनिर्वा आये हों और वहां उन्हें चोर लुटेरे दिखलाई दिये हों, और वे चोर यह चाहते हों कि हम इन निर्ग्रन्थनिर्वाओं को लूट लें ताकि हमे

तेजो जिनाज्ञाना विराधक गण्यता नथी. आवा स्थानेमां साध्वीजो अेकली रडे तो तेमना शीलनी रक्षा करवाने तेजो असमर्थ बने छे, साधुजो पणु ते जग्याजे उतर्या डोय, तो तेमना शीलनी रक्षा थर्ध शके छे, साधुजोनी डाजरीमां त्यां डोय दुरचारी आववानी डिमत करी शकते नथी. आवा आवसो डां तो निर्जन डोय छे, डां तो बहुजनाश्रित डोय छे, अथवा तो त्यां डोय रक्षक न डोतो नथी अेवी जग्याजे दुरचारीजो पणु आवी शके छे. आ प्रकारनी परिस्थितिमां त्यां डोय साधुजो उतर्या डोय, तो तेमनी साथे पोताना शीलनी रक्षाना विचारथी प्रेरार्धने, साध्वीजो पणु आवीने उतरे, तो तेजो जिनाज्ञानी विराधक गण्यतानी नथी.

योथुं काणु—डोय गाम आदिमां साधुजो अने साध्वीजो अलग अलग उपाश्रयमां उतर्या डोय, अने ते गाम आदिमां चोर लूटाराने

स्यर्थः, निर्ग्रन्थिकाः प्रतिग्रहीतुम्=अपहर्तुम्, तत्र सम्प्राप्येऽपि पृथक्स्थाने एकतः= एकस्मिन् आवासे स्थानादिकं कुर्वाणा निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नातिक्रामन्तीति चतुर्थं स्थानम् । तथा—क्वचित् स्थाने निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च समुपागताः, तत्र युवानो दृश्यन्ते, ते इच्छन्ति मैथुनप्रतिज्ञया=मैथुनोत्तरेण निर्ग्रन्थिकाः प्रतिग्रहीतुम्, तत्र शक्यायामपि पृथक्स्थितौ एकत्र स्थले स्थानादिकं कुर्वाणा निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च नातिक्रामन्तीति पञ्चमं स्थानम् ५। इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्यश्च एकस्मिन् स्थले स्थानादिकं कुर्वन्तो जिनाज्ञा विराधका नो भव-

इनसे कपडे मिल जावेंगे तो ऐसी स्थिति में यदि उन्हें ठहरने के लिये दूसरा स्थान भी हो, पर यदि वे जहाँ निर्ग्रन्थ ठहरे ए हैं वहाँ आकर ठहर जाती हैं और निर्ग्रन्थ उन्हें ठहरा लेते हैं, तो ऐसी स्थितिमें वे जिनाज्ञा के विराधक नहीं माने गये हैं । पाँचवां क ण ऐसा है— यदि किसी स्थान पर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियां आगई हो वहाँ जवान मनुष्य उन निर्ग्रन्थिनियों को देखकर उनके साथ मैथुनकर्म करने के लिये उतारु हो गये हों तो ऐसी स्थिति में वहाँ दूसरा स्थान उन्हें ठहरने योग्य भले ही हो, पर यदि वे साधुओंके साथ ठहर जाती हैं और साधुजन उन्हें अपने पास ठहरा लेते हैं, तो वे इस दशा में जिनाज्ञा के विराधक नहीं होते हैं । इस प्रकारके इन पाँच कारणों के होने पर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियां यदि एक ही स्थान पर ठहर जाते

७५३५-भूष ७ वधी गयो डाय. ते चोर दूटारा पोतानां कपडां आदि चोरी जशे जेवो उर साध्वीजोने लागतो डाय, तो जेवी परिस्थितिमां ते साध्वीजो पोतानुं अलग आश्रयस्थान छोडीने ते साधुजोनी पसे आवीने उतारे करे अने साधुजो तेमने त्यां उतरवा पणु दे, तो जेवा सयोगोमां तेजो जिनाज्ञाना विराधक गणुता नथी.

पांचमुं कारणु—अमुक साध्वीजो केध रथजे आवीने उतरेली डाय, हुवे जेवुं अने के त्यां रडेता केध हुध युवानो तेमनी साथे मैथुन सेवन करवाने कृतनिश्चयी थया डाय, तो जेवी परिस्थितिमां पोताना शीलनी रक्षा करवा निमित्ते ते साध्वीजो ते अलग आश्रयस्थानने छोडीने केध साधुजोनी साथे जेक ७ आश्रयस्थानमां जधने रहे अने ते साधुजो तेमने त्यां रडेवा दे, तो आ प्रकारनी परिस्थितिमां तेजो जिनाज्ञाना विराधक गणुतां नथी. आ प्रकारना पांच कारणुमांना केध पणु कारणुने लीधे साधुजो अने साध्वीजो

चित्तः—हर्षादिना उन्मत्तः २, यक्षाविष्टः=यक्षगृहीतः ३, उन्मादमाप्तः=यातादि क्षोभादुन्मादमाप्तं गतः ४, अयं त्रिविधोऽपि निर्ग्रन्थो दृप्तचित्तत्वादिवशात् अचेलकः निर्ग्रन्थोभिः सह संवसन्नपि जिनाज्ञाविराधको न भवतीति स्थानत्रय-मिति चतुर्थं स्थानम् । तथा—निर्ग्रन्थी प्रव्राजितः—निर्ग्रन्थ्या—दीक्षादायक—तद्-क्षकसाध्वभाव—परमवैराग्यवन्त्यप्रवर्धमानपरिणामवन्त्वादिकारणवशात् साध्व्या प्रव्राजितः पुत्रादिः श्वशुरादिर्वा, स च बालत्वाद् अचेलः, महानपि वृद्धत्वादिना मानता में सचेलक सवस्त्र निर्ग्रन्थनियों—साध्वियों के साथ रहता हुआ तीर्थंकर की आज्ञा का विराधक नहीं होता है, ऐसा यह प्रथम कारण है ।

“ एवमेतेन गमकेन दृप्तचित्तो ” इत्यादि—

इसी रीति से हमी पाठ से हर्षादि आदि से उन्मत्त हुआ २ यक्ष से अवशिष्ट हुआ—ग्रहीत हुआ—३ उन्माद को प्राप्त हुआ—वान आदि के क्षोभसे उन्माद भाव को प्राप्त हुआ ४ भी श्रवण निर्ग्रन्थ यदि अचेलक वस्त्र रहित इन दृप्तचित्तना आदिके वशसे हो जाता है, और निर्ग्रन्थनियों के साथ रहता है, तो भी वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं, इस प्रकार के यहाँ तक ये ४ स्थान हैं, पांचवाँ स्थान इस प्रकारसे है—किसी निर्ग्रन्थी साध्वी के द्वारा ऐसी अवस्थामें कि जब दीक्षा देनेवाला दीक्षा रक्षक साधुका अभाव हो और दीक्षा लेनेवाला परम वैराग्य से वर्धित परिणामवाला हो रहा हो, दीक्षित किया गया पुत्र

(सवस्त्र) साध्वीको तेमनी पासे रही शके छे. आ प्रमाणे करवामां ते स धु के साध्वी जिनाज्ञाना विराधक जनतां नथी.

“ एवमेतेन गमेन दृप्तचित्तो ” इत्यादि—

ये ५ प्रमाणे (२) हर्षना अतिरेकने कारणे उन्मत्त जनी गयेला, (३) शरीरमां यक्षादिने प्रवेश थवाने कारणे उन्मादावस्था पायेला, (४) यातादिना प्रकोहने कारणे उन्मत्त थय गयेला, जेवा कोष श्रमणु निर्ग्रन्थ नशावस्थामां रहेला होय अने तेमनी साथे सचेलक साध्वीको रहे, तो जेवी परिस्थितिमां ते निर्ग्रन्थ के निर्ग्रन्थिनी जिनाज्ञाना विराधक गणुता नथी.

पांचमुं कारणु नीचे प्रमाणे छे—दीक्षादायक अने दीक्षारक्षक साधुने अभाव होय, अने दीक्षा लेनार पुत्र, ससरा आदि परम वैराग्यथी वर्धित परिष्णामवाणे थय रह्यो होय, जेवी परिस्थितिमां तेमने कोष निर्ग्रन्थी (साध्वी) द्वारा दीक्षा प्रदान करवामां आवे छे. दीक्षा लेनार पुत्र धारे के

अचेलः, महि अन्येषु निर्ग्रन्थेषु अविद्यमानेषु सत्सु सचेलिकाभिर्निर्ग्रन्थीभिः सह संवमन्नपि तीर्थकृदाज्ञाविराधको न भवतीति पञ्चमं स्थानम् ॥सू० ७॥

अनन्तरदृत्रे जिनाज्ञानातिक्रामति इत्युक्तं, तदतिक्रमणशीलश्च आज्ञाविराधको भवति, आज्ञाविराधना च आसन्नरूपा भवति, अतः आसन्नद्वाराणि, तत्प्रतिपन्नत्वात् संवरद्वाराणि, पुनर्दण्डलक्षणात् आसन्नविशेषांश्च प्राह—

मूलम्—पंच आसन्नद्वारा पणगत्ता, तं जहा—मिच्छत् १, अविरइ २, पमाए ३, कसाया ४ जोगा ५। पंच संवरद्वारा पणगत्ता, तं जहा—संसत्तं १ विरई २ अपमाओ ३, अकसाइत्तं ४, अजोगित्तं ५। पंच दंडा पणगत्ता, तं जहा—अट्टादंडे १ अगट्टादंडे २ हिसादंडे ३ अकस्मादंडे ४ दिट्टीविपरियासियादंडे ५॥ सू० ८ ॥

छाया—पञ्च आसन्नद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मिथ्यात्वम् १ अविरतिः २ पमादः ३ कपायाः ४ योगाः ५। पञ्च संवरद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सम्यक्त्वं १, विरतिः २ अपमादः ३ अकपायित्वम् ४ अयोगित्वम् ५। पञ्च दण्डाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—अर्थदण्डः १ अनर्थदण्डः २ हिसादण्डः ३ अकस्माद्दण्डः ४ दृष्टिविपर्यासदण्डः ५ ॥सू० ८॥

आदि अधवा श्वशुर आदि यदि अचेलक हुआ-बालक होनेसे अचेलक हुआ पुत्र और बड़ा होने पर भी वृद्धता आदि के कारणसे अचेलक हुआ श्वशुर आदि-अन्य निर्ग्रन्थों के अभावमें उनकी अविद्यमानता में सचेलक निर्ग्रन्थनियों के साथ यदि रहता है, तब भी वह तीर्थकरकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है, ऐसा यह पांचवां स्थान है ॥ सू० ७ ॥

भावक छे. ते अथेत्त (नस) डोय तो पणु साध्वील तेनी पासे रडी शके छे. दीक्षा वेनार ससरा आदि धारे डे वृद्ध डोय अने वृद्धावस्थाने डारणु अथेत्त (नसापस्थावाणे) धर गथे डोय, अने अन्य साधुओ त्यां विद्यमान न डोय, तो ओवी परिस्थितिमां अथेत्त साध्वीओ साथे रडेतो श्रमणु निर्बंध लगवाननी आज्ञानो विराधक थतो नथी. ॥ सू. ७ ॥

टीका—‘ पंच आस्रद्वारा ’ इत्यादि—

आस्रद्वाराणि—आस्रवणम्—आस्रवः—जीवरूपे तडागे कर्मरूपजलय प्रवेशः तस्य द्वाराणीव द्वाराणि=उपायाः, तानि हि पंच संख्यकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा मिथ्यात्वम्=अतत्त्वे तत्राध्यवसानरूपं विपरीतश्रद्धानमित्यर्थ इति प्रथमं स्थान १। अविरतिः=नापकर्षतोऽनिवृत्तिः निवृत्तेरभावः २। प्रमादः—अनवधानता—

अनन्तर सूत्रमें “ जिनाज्ञा को माननेवाला जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है ” ऐसा कहा गया है और जो जिनाज्ञा को नहीं मानता है वह जिनाज्ञाका विराधक होता है, जिनाज्ञाकी विराधना आस्रव रूप होती हैं। अतः अब सूत्रकार आस्रव द्वारों का और आस्रव द्वारों के रूकने रूप संवर द्वारों का तथा दण्ड रूप आस्रव विशेषोंका कथन करते हैं—“ पंच आस्रद्वारा पणत्ता ” इत्यादि—

टीकार्थ—आस्रव द्वार पांच कहे गये हैं, जैसे—मिथ्यात्व १, अविरति २, प्रमाद ३, कषाय ४ और योग ५। पांच संवर द्वार कहे गये हैं, जैसे—सम्यक्त्व १, विरति २, अप्रमाद ३, अकषायिता ४ और अयोगिता ५, दण्ड पांच कहे गये हैं, जैसे—अर्थदण्ड १, अनर्थदण्ड २, हिंसादण्ड ३, अकस्मात् दण्ड ४ और दृष्टिविपर्यास दण्ड ५.

जीवरूप तालाब में कर्मरूप जलका जो प्रवेश है वह आस्रव है, इस आस्रव के द्वार जैसे जो द्वार हैं वे आस्रवद्वार हैं। आस्रवके आनेके जो उपाय कारण हैं वे पांच हैं, जैसे—मिथ्यात्व आदि अतत्त्वमें

“ जिनाज्ञानुं पादन्न करनारो जिन ज्ञानो विराधक यतो नथी, ” अेषु अंगण कडेवभां आव्युं छे, जेयो जिनाज्ञाने मानता नथी तेयो जिनाज्ञाना विराधक गणाय छे जिनाज्ञानी विराधना आस्रव रूप डोय छे. तेथी हवे सूत्रकार आस्रवद्वारोनुं अने आस्रवोतो निरोध करनारा संवरद्वारोनुं तथा दंड रूप आस्रवविशेषोनुं कथन करे छे.

‘ पंच आस्रद्वारा पणत्ता ’ इत्यादि—

पांच आस्रवद्वारो कहां छे—(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद (४) कषाय, अने (५) योग. पांच संवरद्वार कहां छे—(१) सम्यक्त्व, (२) विरति, (३) अप्रमाद, (४) अकषायिता अने (५) अयोगिता. दंड पांच कहां छे—(१) अर्थदंड, (२) अनर्थदंड, (३) हिंसादंड, (४) अकस्मात् दंड अने (५) दृष्टि विपर्यास दंड.

एव रूप तालाबमां कर्म रूप जलतो जे प्रवेश थाय छे, तेनुं नाम आस्रव छे. ते आस्रवना द्वार जेवां जे द्वार छे तेमने आस्रवद्वार कडे छे. आस्रवो (कर्मो) ना आगमना नीचे प्रमाद्ये पांच कारणो छे—

કર્તવ્યા-કર્તવ્યયોરપ્રવૃત્તિપ્રવૃત્તિરૂપા ૩। કષાયાઃ-ક્રોધાદિલક્ષણાઃ ૪।
 યોગાઃ=મનોયોગાદયઃ ૫। इत्येतानि पञ्च आस्रवद्वाराणि बोध्यानि सम्प्रति
 एतत्प्रतिपक्षभूतानि संवरद्वाराणि प्राह-तथाहि संवरद्वाराणि-संवरणं संवरः=
 समितिगुप्ति प्रवृत्तिभिरात्मतडागे आगच्छत्कर्मसलीलानां निरोधनम् । तस्य द्वारा
 णीव द्वाराणि । तानि पञ्चविधानि प्रज्ञप्तानि । तथा-सम्यक्तवम् १, विरतिः
 २ अपमादः ३ अकषायित्वम् ४ अयोगिन्त्रम् ५। तथा-दण्डाः-दण्डयते निःसारी
 क्रियते आत्मा यैस्ते दण्डाः=प्राणव्यपरोपणादिरूपाः । प्राणवियोजनादिरूपाः
 ते च पञ्चविधाः प्रज्ञाः । पञ्चविधत्वमेवाह-तथा-अर्धदण्ड-अर्धाय-व्रजानां

તત્ત્વાધ્યવસાનરૂપ જો વિપરીત શ્રદ્ધાન હૈ, વહ મિથ્યાત્વ હૈ, પાપકર્મસે
 વિરત્તિ નહીં હોના હસકા નામ અવિરતિ હૈ, અનવધાનતાકા નામ
 પ્રમાદ હૈ, યહ પ્રમાદ કર્તવ્યમેં અપ્રવૃત્તિરૂપ ઓર અકર્તવ્યમેં પ્રવૃત્તિરૂપ
 હોના હૈ, ક્રોધાદિરૂપ કષાયે હૈ, ઓર મનોયોગ આદિરૂપ યોગ હૈ, હનસે
 કર્મોંકા આના હોતા હૈ, અતઃ હન્હે આસ્રવદ્વાર કહા ગયાહૈ, આસ્રવકા
 પ્રતિપક્ષી સંવર હોના હૈ, હસ સંવરકે દ્વાર ઉપાયમી પાંચ કહે ગયે હૈ,
 આત્મારૂપી તાલાવમેં આનેવાલે કર્મરૂપ જલકા જો સમિતિ ગુપ્તિ આ-
 દિકોં દ્વારા નિરોધ કર દિયા જાતા હૈ, વહી સંવર હૈ, હસકે મી પાંચ
 દ્વાર કહે ગયે હૈ, જૈસે સમ્યક્ત્વ આદિ ચે પાંચ દ્વાર આસ્રવ દ્વારોંસે
 વિપરીત હોતે હૈ । આત્મા અથવા અન્ય જીવ જિનકે દ્વારા પ્રાણવ્યપ-

મિથ્યાત્વ આદિ પાંચ કારણો અહીં પ્રહણ કરવા નોંધ્યે. આત્મમાં
 તત્ત્વાધ્યવસાન રૂપ જે વિપરીત તત્ત્વોમાં શ્રદ્ધા છે, તેનું નામ મિથ્યાત્વ છે.
 પ.પકર્મથી નિવૃત્ત ન થવું તેમાં પ્રવૃત્ત જ રહેવું તેનું નામ અવિરતિ છે.
 અનવધાનતાનું નામ પ્રમાદ છે. કરવા યોગ્ય કાર્યોમાં પ્રવૃત્ત ન થવું અને ન
 કરવા યોગ્ય કાર્યોમાં પ્રવૃત્ત થવું તેનું નામ જ પ્રમાદ છે ક્રોધ, માન, માયા
 અને લોભરૂપ ચાર કષાય છે મનોયોગ, વાગ્યોગ અને કાયયોગ રૂપ ત્રણ
 યોગ છે. તેમના દ્વારા કર્મોનું આગમન થાય છે. તેથી તેમને આસ્રવદ્વાર રૂપ
 કહ્યા છે. આસ્રવનો પ્રતિપક્ષી સંવર છે તે સંવરના ઉપાય રૂપ જે પાંચ
 કારણો છે તેમને સંવરદ્વાર કહે છે. આત્મા રૂપી જ્ઞાણમાં પ્રવેશ થતાં,
 કર્મરૂપ જલને જે સમિતિ, ગુપ્તિ વગેરે દ્વારા રોકવામાં આવે છે, તેનું
 નામ જ સંવર છે. તેના સમ્યક્ત્વ આદિ જે પાંચ દ્વાર કહ્યાં છે, તેઓ
 આસ્રવદ્વારો કરતાં વિપરીત હોય છે આત્મા અથવા અન્ય જીવ જેમના

स्थावराणां वा आत्मनः परस्य वा प्रयोजनाय दण्डो वधः १। अनर्थदण्डः—अनर्थो= निरर्थको यो दण्डः सः निष्प्रयोजनो दण्ड इत्यर्थः २। हिंसादण्डः—‘अयं मम पुत्रादिकं हिंमितवान् हिनस्ति हिंसिष्यति वेति बुद्ध्या यः शत्रु प्रभृतीनां दण्डः स हिंसादण्डः २ तथा—अकस्माद् दण्डः—अन्यवधार्थं प्रहारे कृते अकस्माद् योऽन्यस्य दण्डः—प्राणव्यपरोपणं सः ४। तथा—दृष्टिविपर्यासदण्डः—दृष्टिविपर्यासेन—दृष्टिवैपरीत्येन—मित्रस्याप्यमित्रधिया यो दण्डः सः ५। इत्येते पञ्च दण्डास्त्रयोदशक्रियास्थानानां मध्ये वर्तन्ते । अत्र तु पंचस्थावानुरोधेन पञ्चैव स्थानानि गृहीतानि । तानि त्रयोदशक्रियास्थानानि यथा—

“ अद्वा १ णद्वा २ हिंसा ३ ऽकस्माद् ४ दिद्धी ५ य मीसद्दिन्ने ६ य।

अज्झत्थ ८ माणा ९ मित्ते १० माया ११ लोभे १२ रियावहिया १३ ॥१॥”

रोपणादिरूप दण्डको पाता है, वे दण्ड हैं, ये दण्डभी अर्थदण्ड आदिके भेदसे पांच प्रकारके कहे गये हैं, इनमें त्रस जीवोंका अथवा स्थावर जीवोंका तथा अपना तथा परका प्रयोजनवश वध करना वह अर्थदण्ड है, निष्प्रयोजन प्राणातिपात करना वह अनर्थदण्ड है, इसने मेरे पुत्रादिका वध किया था अथवा अय भी वध करता है, आगेभी यह ऐसाही करेगा इस अभिप्रायसे जो शत्रु आदिकोंका वध कर दिया जाता है, वह हिंसादण्ड है, अन्यको मारनेके लिये तैयार हुए व्यक्तिसे जो अकस्मात् बीचमें दूसरेकी हिंसा हो जाती है, वह अकस्मात् दण्ड है, दृष्टिके विपर्याससे जो प्राणातिपात हो जाता है, वह दृष्टि विपर्यास दण्ड है, जैसे—अमित्रकी बुद्धिसे मित्रका वध हो जाता है । ये पांच दण्ड १३

द्वारा प्राणव्यपरोपण आदि इय दंडने प्राप्त करे छे, तेमने दंड कडे छे. ते दंडना पणु अर्थदंड अदि पांच प्रकार कह्या छे त्रस लुवेनो, स्थावर लुवेनो पोतानो के परनो केछि प्रयोजनने लीधे वध करवे। तेनुं नाम अर्थदंड छे केछि पणु जतना प्रयोजन विना लुवहिंसा करवी ते अनर्थदंड छे आ लुवे मारा पुत्र आदिनो वध कर्यो डतो, वध करे छे के वध करशे, अेवी मान्य-ताथी प्रेराधने शत्रु आदिनो जे वध करवामां आवे छे तेनुं नाम हिंसादंड छे केछिने मारवाने तैयार थयेत्री व्यक्ति द्वारा केछि अन्य व्यक्तिनी अकस्मात् इत्या थर्ध जय तो तेने अकस्मात् दंड कडे छे दृष्टिविपर्यासने कारणे जे प्राणातिपात थर्ध जय छे, तेने दृष्टिविपर्यास दंड कडे छे जेभके मित्रने अमित्र मानीने तेनो वध थर्ध जय तो ते दृष्टिविपर्यास दंड कडेवाय छे आ पांच दंडनो १३ क्रियास्थानोमां समावेश थर्ध जय छे, परन्तु अर्धी

छाया-अर्थे १ जनर्थे २ हिंसा ३ ऽकस्मात् ४ दृष्टिश्च ५ मृषा ६ अदत्तं ७ च ।
 अध्यात्मं ८ मानो ९ मित्रं १० माया ११ लोभः १२ ऐर्यापथिकी १३ ॥
 इति । ॥ सू० ८ ॥

अथ आसन्नविशेषरूपाणि क्रियास्थानानि प्राह—

मूलम्-पञ्च किरियाओ पणत्ताओ, तं जहा-आरभिया १,
 परिग्गहिया २, म्मायावत्तिथा ३, अपच्चक्खाणवत्तिया ४, मिच्छा-
 दंसणवत्तिया ५। मिच्छादिद्वियाणं नेरइयाणं पंच किरियाओ
 पणत्ताओ तं जहा-आरंभिया जाव मिच्छादंसणवत्तिया ५।
 एवं सब्बेसिं निरंतरं जाव मिच्छादिद्वियाणं वेमाणियाणं । नवरं
 त्रिगल्लिंदिया मिच्छादिद्वी न भण्णंति, सेसं तहेव । १ । पंच
 किरियाओ पणत्ताओ, तं जहा-काइया १ आहिगरणिया २
 पाओसिया ३ पारितावणिया ४ पाणाइवायकिरिया ५। णेरइ-
 याणं पंच एवं चेत्र जाव वेमाणियाणं २। पंच किरियाओ पण-
 त्ताओ, तं जहा-दिद्विया १ पुद्विया २ पाडुच्चिया ३ सामंतो-
 वणिवाइया ४ साहरिथिया ५। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं

क्रिया स्थानोंके बीचमें हैं, परन्तु यहां पांच स्थानोंके अनुरोधसे पांचही
 स्थान गृहीत हुए हैं । वे १३ क्रियास्थान इस प्रकारसे हैं—

“ अट्टाणट्टा हिंसा ” इत्यादि ।

इन १३ क्रिया स्थानोंमें अर्थ अनर्थ आदि ये पांच दण्ड आये हैं ।
 इन १३ क्रिया स्थानोंसे जीव बध होता है ॥ सू० ८ ॥

पांच स्थानोंको अधिकार आलतो होवाथी पांच न स्थान अडणु करवामां
 आण्यां छे ते १३ क्रियास्थान नीचे प्रमाणे छे—

“ अट्टाणट्टा हिंसा ” इत्यादि ते तेर क्रियास्थानोंमां अर्थ, अनर्थ आदि
 आ पांच दंडोंको तो समावेश थयेथो न छे. ते तेर क्रियास्थानो वडे शुव-
 वध थतो छेय छे, ॥ सू० ८ ॥

३। पंच किरियाओ पणत्ताओ, तं जहा—जेसत्थिया १ आणव-
णिया २ वेयारणिया ३ अणाभोगवत्तिया ४ अणवकंखवत्तिया
६, एवं जाव वेसाणियाणं ४। पंच किरियाओ पणत्ताओ, तं
जहा—पेज्जवत्तिया १ दोसवत्तिया २ पओगकिरिया ३ समुदा-
णकिरिया ४ इरियावहिया ६, एवं मणुस्साणवि । सेसाणं
नत्थि ६ ॥ सू० ९ ॥

छाया—पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—आरम्भिकी १, पारिग्रहिकी २, माया
प्रत्यया ३, अप्रन्याख्यातप्रत्यया ४ मिथ्यादर्शनप्रत्यया ५। मिथ्यादृष्टिकानां
नैरयिकाणां पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा आरम्भिकी १ यावद् मिथ्यादर्शनप्रत्यया
५। एवं सर्वेषां निरन्तरं यावद् मिथ्यादृष्टिकानां वैमानिकानाम् । नवरं विकले-
न्द्रिया मिथ्यादृष्टयो न भण्यन्ते, शेषं तथैव ॥ १॥ पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः,
तद्यथा—कायिकी १ आधिकरणिकी २, प्राद्वेषिकी ३ पारितापनिकी ४ प्राणा-
तिपातक्रिया ५। नैरयिकाणां पञ्च, एवमेव निरन्तरं यावद् वैमानिकानाम् २।
पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—दृष्टिका १ पृष्टिका २ प्रातीत्यिका ३ सामन्तोप-
निपातिकी ४ स्वाहस्तिकी ५। एवं नैरयिकाणां यावद् वैमानिकानाम् ३। पञ्च
क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैसृष्टिकी १ आज्ञापनिका २, वैदारणिका ३ अनाभोग-
प्रत्यया ४ अनवकाङ्क्षाप्रत्यया ५। एवं यावद् वैमानिकानाम् ४। पञ्च क्रियाः
प्रज्ञप्ताः तद्यथा—प्रेमप्रत्यया १ द्वेषप्रत्यया २ प्रयोगक्रिया ३ समुदानक्रिया ४
ऐर्यापथीकी ५। एवं मनुष्याणामपि । शेषाणां नास्ति ५॥ सू० ९ ॥

टीका—‘पंच किरियाओ’ इत्यादि—

क्रियाः करणानि क्रिया—कर्मबन्धकारणीभूतचेष्टा इत्यर्थ, ताहि पञ्च
प्रज्ञप्ता । पञ्च संख्यकन्वमेवाह—‘आरम्भिकी’ इत्यादि । तत्र—आरम्भिकी—आ-

अथ सूत्रकार आस्रव विशेषरूप क्रिया स्थानोंकी प्ररूपणा करते हैं—

‘पंच किरियाओ पणत्ताओ इत्यादि सूत्र ९ ॥

टीकार्थ—कर्मबन्ध कारणभूत जो चेष्टा विशेष हैं, वे क्रियाएँ हैं, ये क्रियाएँ

इसे सूत्रकार आस्रवविशेष रूप क्रिया स्थानोंकी प्ररूपणा करते हैं।

टीकार्थ—“पंच किरियाओ पणत्ताओ” इत्यादि—

कर्मबन्धनमां कारणभूत जे चेष्टाविशेषो होय छे, तेमने क्रियाओ कह्ये

स्था—६

રમ્મઃ-પૃથ્વીવ્યાધુપમર્દનં, સ પ્રયોજનં, યસ્યાઃ સા-પૃથ્વીવ્યાધુપમર્દનરૂપા ક્રિયે-
ત્યર્થઃ ।૧। તથા-પારિગ્રહિકી-પરિગ્રહઃ=ધર્મોપકરણાતિરિક્તવસ્તુચરણં ધર્મોપકરણે
મૂર્છાંવા, સ પ્રયોજનં યસ્યાઃ સા પરિગ્રહાર્થા ક્રિયેત્યર્થઃ ।૨। તથા-માયા પ્રત્યયા
માયા=અનાર્જવમ્, ઉપલક્ષણત્વાત્ ક્રોધાદિ રપિ, સા પ્રત્યયઃ=કારણં યસ્યાઃ સા,
માયાનિવન્ધિની ક્રિયેત્યર્થઃ ॥૩॥

અપ્રત્યાખ્યાનપ્રત્યયા-અપ્રત્યાખ્યાનમ્=અનિવૃત્તિઃ, તત્ પ્રત્યયો યસ્યાઃ સા,
અપ્રત્યાખ્યાનત્રયા ક્રિયેત્યર્થઃ ॥૪॥ તથા-મિથ્યાદર્શનપ્રત્યયા-મિથ્યા=વિપ-
રીતદર્શનં=શ્રદ્ધાનં, તદેવ, પ્રત્યયો હેતુર્યસ્યાઃ સા, મોહોદયજન્યા ક્રિયેત્યર્થઃ

પાંચ કહી ગઈ હૈં-આરમ્મિકી ૧ પારિગ્રહિકી ૨ માયાપ્રત્યયા ૩ અપ્ર-
ત્યાખ્યાન પ્રત્યયા ૪ ઓર મિથ્યાદર્શન પ્રત્યયા જિસ ક્રિયાકા પ્રયોજન
પૃથ્વી આદિકા ઉપમર્દન કરનેરૂપ હોતા હૈં, વહ આરમ્મ ક્રિયા હૈ,
આરમ્મ વિના પ્રાણાતિપાન હોતા નહીં હૈ, હસલિયે આરમ્મ ક્રિયાકો
પૃથ્વીકાયિક આદિકે ઉપમર્દનરૂપ કહા ગયા હૈ, ધર્મોપકરણ
સે અનિરિક્ત વસ્તુઓકા ગ્રહણ કરના અથવા ધર્મોપકરણમેં મૂર્છા
રચના યહ પ્રયોજન જિસ ક્રિયાકા હોતા હૈ, વહ પારિગ્રહિકી ક્રિયા હૈ,
જિસ ક્રિયાકા કારણ માયા એવં ઉપલક્ષણસે ક્રોધાદિક ભી હોતે હૈ,
ઘહ માયાપ્રત્યયા ક્રિયા હૈ, અનિવૃત્તિ-ત્યાગકા અભાવ અપ્રત્યાખ્યાન
હૈ, યહ અપ્રત્યાખ્યાનભાવ જિસ ક્રિયાકા કારણ હોતા હૈ, વહ અપ્રત્યા-
ખ્યાનજન્ય ક્રિયા અપ્રત્યાખ્યાન ક્રિયા હૈ, વિપરીત દર્શનકા નામ મિથ્યા-
દર્શન હૈ, યહ મિથ્યાશ્રદ્ધાનરૂપ મિથ્યાદર્શન જિસ ક્રિયાકા હેતુ હોતા

છે. એવી ક્રિયાઓ પાંચ કહી છે--(૧) આરમ્મિકી, (૨) પારિગ્રહિકી, (૩)
માયાપ્રત્યયા, (૪) અપ્રત્યાખ્યાનપ્રત્યયા અને મિથ્યાદર્શનપ્રત્યયા.

જે ક્રિયાનું પ્રયોજન પૃથ્વીકાય આદિને ઉપમર્દન કરવા રૂપ હોય છે,
તે 'આરમ્મ ક્રિયા' છે. આરમ્મ વિના પ્રાણાતિપાત થતો નથી, તેથી આરમ્મ
ક્રિયાને પૃથ્વીકાયિક આદિના ઉપમર્દન રૂપ કહેવામાં આવેલ છે. ધર્મોપકરણ
સિવાયની વધારાની વસ્તુઓને ગ્રહણ કરવી અથવા ધર્મોપકરણમાં મૂર્છાભાવ
રાખવા રૂપ પ્રયોજન જે ક્રિયાનું હોય છે, તે ક્રિયાને પારિગ્રહિકી ક્રિયા કહે
છે. જે ક્રિયાનું કારણ માયા હોય છે અને ઉપલક્ષણથી ક્રોધાદિક પણ હોય
છે, તે ક્રિયાને માયાપ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે. અનિવૃત્તિ (ત્યાગના અભાવ) ને
અપ્રત્યાખ્યાન કહે છે. તે અપ્રત્યાખ્યાન ભાવ જે ક્રિયાનું કારણ હોય છે, તે
અપ્રત્યાખ્યાનજન્ય ક્રિયાને અપ્રત્યાખ્યાન પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે. વિપરીત દર્શ-
નનું નામ મિથ્યાદર્શન છે. તે મિથ્યાશ્રદ્ધાન રૂપ મિથ્યાદર્શન જે ક્રિયાનું

॥५॥ इति । एता हि पञ्च क्रिया मिथ्यादृष्टि नैरयिकादि-मिथ्यादृष्टिकवैमानिकान्तानां चतुर्विंशतिदण्डश्लोक्तानां भवन्ति । चतुर्विंशति दण्डके तु ये विक-
छेन्द्रियाः=एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सन्ति, ते हि मिथ्यादृष्टीति विशेषणेन न
विशिष्यन्ते, तेषु सदैव सम्यग्दृष्टित्वाभावेन व्यवच्छेद्यामावात् । ननु तेष्वपि
सासादना भवन्ति, ततश्च तेषामपि मिथ्यादृष्टीति विशेषणं योज्यमेवेति चेन्न,
तेषामल्पत्वेनेहात्रिवक्षणादिति । अमुमेवार्थमाह सूत्रकारः-‘ मिच्छादिद्वियाणं नेर-

है, ऐसी वह मोहके उदयसे उत्पन्न हुई क्रिया मिथ्यादर्शन क्रिया है,
ये पांच क्रियाएँ मिथ्यादृष्टि नैरयिकसे लेकर मिथ्यादृष्टिक वैमानिक
तरुके समस्त चौबीस दण्डक्रमें होती हैं, चौबीस दण्डक्रमें जो एकेन्द्रिय
दोहन्द्रिय तेहन्द्रिय और चौदन्द्रिय जीव हैं वे “ मिथ्यादृष्टि ” इस विशेष-
षणसे विशेषित नहीं होते हैं, क्योंकि इनमें सम्यग्दृष्टित्वके अभावसे
व्यवच्छेद्य होनेका अभाव है, अर्थात् इनमें यदि सम्यग्दृष्टि कोई जीव
पाया जाता तो उस दृष्टिके अभावसे यहां मिथ्यादृष्टित्व आता है,
परन्तु यहां तो ऐसी हालत है नहीं-अतः ये मिथ्यादृष्टि विशेषतावाले
नहीं कहे जाते हैं । यदि यहां पर ऐसी आशंका की जावे कि इनमें भी
सासादन सम्यग्दृष्टि होते हैं, अतः यह दृष्टि जिनके नहीं हैं वे मिथ्या-
दृष्टि हैं, इस तरह उनमें भी “ मिथ्यादृष्टि ” यह विशेषण लगाना
चाहिये सो इसका समाधान ऐसा है, कि जिनमें सासादन सम्यग्दृष्टि

कारण होय छे, ऐवी मोहना उदयथी उत्पन्न थयेली क्रियाने मिथ्यादर्शन
क्रिया कडे छे. मिथ्यादृष्टि नारकेथी लधने वैमानिके पर्यन्तना २४ दंडकना
समस्त लुवेमां आ पांचे क्रियाओनो सद्भाव होय छे चौबीस दंडकनां ले
एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अने चतुरिन्द्रिय लुवे छे तेमने “ मिथ्यादृष्टि ”
आ विशेषण लगाडी शकतुं नथी, कारण के तेओमां सम्यग्दृष्टित्वना अला-
वथी व्यवच्छेद्य होवानो अभाव छे, एटले के तेओमां ले सम्यग्दृष्टि केछ
लुवनो सद्भाव होय, तो ते दृष्टिना अलावथी त्यां मिथ्यादृष्टित्व आवे
छे. पणु त्यां तो ऐवी हालत नथी. तेथी तेमने मिथ्यादृष्टि विशेषणवाणा
कडेवाता नथी.

ले अडीं ऐवी आशंका करवामां आवे के तेमनामां पणु सासादन
सम्यग्दृष्टि होय छे, तेथी आ दृष्टिनो नेमनामां अभाव छे, तेमने मिथ्या-
दृष्टि ले गणुवा नेछये. छतां तेमने मिथ्यादृष्टि विशेषण लगाडवानी शा
कारणे ना पाडवामां आवी छे ? तो आ शंकातुं समाधान नीचे प्रमाणे छे--

इयाणं' इत्यारभ्य 'सेसं तहेव' इत्यन्तेन सन्दर्भेणेति ॥१॥ पुनरपि कायिक्यादिभेदेन पञ्च क्रियाः प्राह—तथाहि—कायिकी=कायेभवा कायेन निर्वृत्ता वा, हस्तादिव्यापाररूपेत्यर्थः ॥१॥ आधिकारिणी=अधिकरणं=खड्गादिकं तत्र भवा तेन वा निर्वृत्ता । इयं द्विविधा भवति—निर्वर्तनाधिकरणक्रियासंयोजनाधिकरणक्रिया च । तत्र या खड्गादीनां तन्मुष्ट्यादीनां च निर्वर्तनलक्षणा क्रिया सा प्रथमा । या तु निर्वृत्तानामेव तेषां संयोजनलक्षणा सा द्वितीयेति । २ । प्रद्वेषिकी—प्रद्वेषो—मात्सर्यम्—अन्य भुमद्वेष इत्यर्थः, तेन निर्वृत्ता या क्रिया सा—'मारयाम्येनम्'

પાયે જાતે હૈં, એસે વે સાસાદન સમ્યગ્દષ્ટિ વહુતહી કમ હોતે હૈં અતઃ ડનકી યહાં અવિવક્ષા હૈ, વિવક્ષા નહીંકી ગર્હ હૈ, ઇસીકા પુષ્ટિ સૂત્રકારને "મિચ્છાદિદ્વિયાણં નેરહયાણં" યહાંસે લેકર "સેસં તહેવ" યહાં તકકે સંદર્ભસે પ્રકટકી ગર્હ હૈ ૧। પુનઃ—કાયિકી આદિકે ભેદસે ક્રિયાઐ પાંચ હોતી હૈં—ઇનમૈં જો ક્રિયા શરીરમૈં યા શરીરકે દ્વારા હોતી હૈ, વહ કાયિકી ક્રિયા હૈ, યહ ક્રિયા હસ્તાદિકે વ્યાપારરૂપ હોતી હૈ? આધિકરણિકી—ખડ્ગાદિરૂપ અધિકરણમૈં યા ખડ્ગાદિરૂપ અધિકરણકે દ્વારા જો ક્રિયા હોની હૈ વહ આધિકરણકી ક્રિયા હૈ, યહ ક્રિયા દો પ્રકારકી હોતી હૈ—એક નિર્વર્તનાધિકરણ ક્રિયા ઓર દૂસરી સંયોજનાધિકરણ ક્રિયા ઇનમૈં જો ખડ્ગાદિકોંકા યા ડનકી મૂઠ આદિકાં વનાના હૈ, વહ નિર્વર્તનાધિકરણ ક્રિયા હૈ, તથા જો ગ્વજ્ઞાદિકોંકા ઓર ડનકી મૂઠ આદિકાં પરસ્પરમૈં સંયોજન હૈ, વહ સંયોજનાધિકરણ ક્રિયા હૈ ૨। પ્રદ્વેષ નામ માત્સર્યકા હૈ, અન્યકે જુબકે પ્રતિ દ્વેષરૂપ પરિણતિકા હોના ઇસકા

તેઓમાં સાસાદન સમ્યગ્દષ્ટિ જીવો ઘણાં જ ઓછાં હોય છે. તેથી સૂત્રકારે આહીં તેમનો ઉલ્લેખ કર્યો નથી. સૂત્રકારે "મિચ્છાદિદ્વિયાણં નેરહયાણં" થી લઇને "સેસં તહેવ" આ સૂત્રપાઠ સુધીના કથન દ્વારા એ જ વાતની પુષ્ટિ કરી છે.

ક્રિયાના કાયિકી આદિ પાંચ ભેદ પણ કહ્યા છે. જે ક્રિયા શરીરમાં અથવા શરીર દ્વારા થાય છે તે ક્રિયાને કાયિકી ક્રિયા કહે છે. તે ક્રિયા હસ્તાદિની પ્રવૃત્તિ રૂપ હોય છે. (૨) આધિકરણિકી ક્રિયા—તેના એ પ્રકાર કહ્યા છે—નિર્વર્તનાધિકરણ ક્રિયા અને સંયોજનાધિકરણ ક્રિયા. તલવાર, તેની મૂઠ આદિ ખનાવવાની ક્રિયાને નિર્વર્તનાધિકરણ ક્રિયા કહે છે. તલવાર આદિ-કોતું અને તેમની મૂઠ આદિતું પરસ્પરમાં જે સંયોજન કરવા રૂપ ક્રિયા છે તેને સંયોજનાધિકરણ ક્રિયા કહે છે. (૩) પ્રદ્વેષિકી ક્રિયા—અન્યના લાભને જોઇને તેના પ્રત્યે દ્વેષ રૂપ પરિણતિ ઉત્પન્ન થાય છે, તેનું નામ પ્રદ્વેષ છે.

इत्यभुभमनः संकल्परूपा । ३। पारितापनिकी-परितापनं नाम दुःखं तेन निवृत्ता-
स्वप्नादिघातेन पीडाकरणरूपा ४। तथा प्राणातिपातक्रिया-प्राणाः=उच्छ्वासादयः
तेषाम् अतिघातनं=प्राणवतःसकाशाद् वियोजनं, नाशनं, प्राणातिपातः, तद्रूपा
क्रिया ५। एताः कायिकयादयः क्रियाश्चतुर्विंशतिदण्डकोक्तनैरयिकादिवैमा-
निकान्तानां सर्वेषां बोध्याः । २।

पुनरपि दृष्टिकादिभेदैः पञ्च क्रियाः प्राह-तथाहि-दृष्टिका-दृष्टं=दर्शनम्=
अवलोकनं तद्विषयं वस्तु वा निमित्ततया यस्यामस्ति सा दृष्टिका-अश्वादि चित्र-
नाम मात्सर्यं है, इस मात्सर्यरूप प्रद्वेषसे जो क्रिया होती है, वह प्राद्वे-
षिकी क्रिया है, यह प्राद्वेषिकी क्रिया “में इसे मारूं” इस प्रकारके
मानसिक संकल्परूप होती है ३। परितापन नाम दुःख है, इस दुःख रूप
परितापनसे जो क्रिया हाती है, वह पारितापनिकी क्रिया है, यह क्रिया
खड्ग आदिके घातसे पीडा करनेरूप होती है ४। तथा उच्छ्वास आदि
प्राणोंका प्राणवालेसे वियोजन करना इसका नाम प्राणातिपात है, और
इस रूप जो क्रिया है, वह प्राणातिपात क्रिया है ५। ये कायिकी आदि
क्रियाएँ चौबीस दण्डकोक्त नैरयिकसे लेकर वैमानिक तकके समस्त
जीवोंको होती हैं २।

पुनश्च-दृष्टिक आदिके भेदसे क्रियाएँ पांच प्रकारकी होती हैं, जैसे-
दृष्टिका? आदि इनमें दर्शनका नाम दृष्ट है, अथवा-अवलोकनका-देखनेका
नाम दृष्ट है, अथवा-अवलोकनकी विषयभूत जो वस्तु है, वह दृष्ट है,

आ प्रद्वेषने कारणे ने किया थाय छे तेने प्राद्वेषिकी किया कडे छे. “ हुं तेने
मारुं ” आ प्रकारना मानसिक संकल्प इय आ किया डोय छे. (४) परि-
तापनिकी किया-परितापन ओटले दुःख आ दुःखइय परितापन वडे ने किया
थाय छे तेने परितापनिकी किया कडे छे. लाकडी, तलवार आदिना घा वडे
पीडा करवा इय आ किया डोय छे. (५) प्राणातिपात किया-उच्छ्वास आदि
प्राणोने प्राणवाणा लोवोमाथी अलग करवा तेनुं नाम प्राणातिपात छे. ते
प्राणातिपात इय ने किया डोय छे तेने प्राणातिपात किया कडे छे. कायिकीथी
लधने प्राणातिपात पर्यन्तनी पांचे कियाओनो नारकोथी लधने वैमानिको
पर्यन्तना २४ दंडकोता समस्त लोवोमां सदृशाव डोय छे.

दृष्टिका आदिना लेकधी पणु कियाओ पांच प्रकारनी कही छे-दर्शननुं
नाम दृष्ट छे अथवा अवलोकननुं नाम दृष्ट छे. अथवा अवलोकननां विषय

કર્માદિદર્શનાર્થ' ગમનરૂપેત્યર્થઃ । યદ્વા- ' દૃષ્ટિજા ' ઇતિચ્છાયા । દૃષ્ટેર્જાતા-
દૃષ્ટિજા, દર્શનજનિતા ક્રિયેત્યર્થઃ । ૧ । પૃષ્ટિકા-પૃષ્ટ=પ્રશ્નઃ, તદસ્તિ નિમિત્ત
તયા યસ્યાં સા-જીવાદીન્ રાગાદિના પૃચ્છતો યા ક્રિયા સા સાવચપ્રશ્નજનિતા
ક્રિયેત્યર્થઃ । ' સ્પૃષ્ટિકા ' ઇતિ વા ચ્છાયા । સ્પૃષ્ટ=સ્પર્શનં, તદસ્તિ નિમિત્તતયા
યસ્યાં સા-રાગાદિના સ્પૃશતો યા ક્રિયા સા સ્પર્શજન્યા-ક્રિયેત્યર્થઃ । ' પૃષ્ટિજા '
ઇતિ વા ચ્છાયાપક્ષે પૂર્વોક્તવાર્થો ગોપ્યઃ ૫ ।

યહ દૃષ્ટ નિમિત્ત રૂપસે જિસ ક્રિયામેં હૈ, વહ દૃષ્ટિકા ક્રિયા હૈ, યહ
દૃષ્ટિકા ક્રિયા અશ્વાદિકે ચિત્ર આદિકો દેખનેકે લિયે ગમન કરને રૂપ-
(જાને રૂપ) હોતી હૈ, અથવા-" દિટ્ટિયા "કી સંસ્કૃત છાયા " દૃષ્ટિજા "
એસી બી હો સકતી હૈ, ઇસ પ્રશ્નમેં દેખનેસે જો ક્રિયા હોતી હૈ, વહ
દૃષ્ટિજા ક્રિયા હૈ, એસા અર્થ હોના હૈ ૧ । પૃષ્ટિકા-પૃષ્ટ નામ પ્રશ્નકા હૈ,
યહ પ્રશ્ન જિસ ક્રિયામેં નિમિત્તરૂપસે હોના હૈ, વહ પૃષ્ટિકા ક્રિયા હૈ,
એસી વહ પૃષ્ટિકા ક્રિયા જીવાદિકોકે વિષયમેં યા રાગાદિકોકે વિષ-
યમેં પૂછનેવાલેકો હોતી હૈ, અથવા-સાવચ પ્રશ્નસે જો ક્રિયા ઉત્પન્ન
હોતી હૈ, વહ પૃષ્ટિકા ક્રિયા હૈ, અથવા-" પુટ્ટિયા "કી સંસ્કૃત છાયા
" સ્પૃષ્ટિકા " એસી બી હોતી હૈ, ઇસકો અર્થ એસા હોતા હૈ, કિ જિસ
ક્રિયામેં સ્પર્શન નિમિત્ત હોના હૈ, વહ સ્પૃષ્ટિકા ક્રિયા હૈ, રાગાદિકે

૩૫ જે વસ્તુ છે તેનું નામ દૃષ્ટ છે. જે ક્રિયામાં આ દૃષ્ટ નિમિત્ત ૩૫ હોય
છે તે ક્રિયાને દૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે. આ દૃષ્ટિકા ક્રિયા અશ્વાદિકોનાં ચિત્રેને
જોવાને માટે ગમન કરવા ૩૫ હોય છે.

અથવા " દિટ્ટિયા " ની સંસ્કૃત છાયા " દૃષ્ટિજા " શ્વેતામાં આવે તે
તેનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે-" દેખવાથી જે ક્રિયા થાય છે, તેને દૃષ્ટિજા
ક્રિયા કહે છે. "

(૨) પૃષ્ટિકા ક્રિયા—પૃષ્ટ એટલે જે પૂછવામાં આવે તે પ્રશ્ન જે
ક્રિયામાં તે નિમિત્ત ૩૫ હોય છે, તે ક્રિયાને પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે. અશ્વા-
દિકોના વિષયમાં અથવા રાગાદિકોના વિષયમાં પ્રશ્ન પૂછનારને આ ક્રિયા
લાગે છે. અથવા-" સાવચ પ્રશ્નથી જે ક્રિયા ઉત્પન્ન થાય છે, તેને પૃષ્ટિકા
ક્રિયા કહે છે. અથવા " પુટ્ટિયા " ની સંસ્કૃત છાયા " સ્પૃષ્ટિકા " પણ થાય
તેનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે-" જે ક્રિયામાં સ્પર્શ નિમિત્ત ૩૫ હોય છે
તે ક્રિયાને સ્પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે. " રાગાદિકને વશવર્તી થઈને સ્પર્શ કરનાર

પ્રાતીતિકી-વાહ્યં વસ્તુ જીવાજીવ પ્રતીત્ય=આશ્રિત્ય યા ક્રિયા ભવતિ સા
૩। સામન્તોપનિપાતિકી-સમન્તાત્=સર્વત ઉપનિપાતઃ=જનાનાં સમ્મિલનં, તત્ર-
મવા-ક્રિયા । અશ્વાદિ રથાદિકં લોકાઃ પ્રશંસન્તિ, તત્પ્રશંસાં શ્રુત્વા પ્રહૃષ્યતોઽશ્વા-
દિરથાદિપતેરિયં ક્રિયા ભવતિ ૪। તથા-સ્વાહસ્તિકી-સ્વહસ્તેન નિર્ટૃત્તા ક્રિયા ।
સ્વહસ્તગૃહીતજીવાદિના જીવાન્ મારયતઃ ક્રિયા સ્વાહસ્તિકીત્યુચ્યતે ૫। ઇતાઃ
પશ્ચાપિ ક્રિયા નૈરયિકાદિ વૈમાનિકાન્તાનાં ભવન્તીતિ ॥૩॥

વશવર્તી હોરુર છૂનેવાલે વ્યક્તિકી જો સ્પર્શજન્ય ક્રિયા હૈ, વહ સ્પૃષ્ટિકા
ક્રિયા હૈ અથવા-“ પૃષ્ટિજા સ્પૃષ્ટિજા ” હસ પક્ષમેં ઓ યહી પૂર્વોક્ત
અર્થ હૈ ૨। પ્રાતીતિકી જીવ અજીવ રુપ બાહ્ય વસ્તુકો પ્રતીત કરકે આ-
શ્રિત કરકે જો ક્રિયા હોતી હૈ વહ પ્રાતીતિકી ક્રિયા હૈ ૩। સામન્તો-
પનિપાતિકી સબ તરફસે મનુષ્યોંકો જો સમ્મિલન હોતા હૈ, વહ સામ-
ન્તોપનિપાત હૈ, હસ મામન્તોપનિપાતમેં જો ક્રિયા હોતી હૈ, વહ સામ-
ન્તોપનિપાતિકી ક્રિયા હૈ, પરસ્પર સમ્મેલનમેં અશ્વરથાદિકી લોક જબ
પ્રશંસા કરતે હૈ તત્ત્વ હમ પ્રશંસાકો સુનકર હર્ષિત હોતે હુવ અશ્વરથા-
ધિપતિકે યહ ક્રિયા હોતી હૈ ૪। સ્વાહસ્તિકી-અપને હાથસે જો ક્રિયા
નિષ્પન્ન હોતીહૈ વહ સ્વાહસ્તિકી ક્રિયાહૈ, અપને હસનેસે ગૃહીત જીવાદિકોં
દ્વારા જીવોંકો મારનેવાલે પ્રાણીકી ક્રિયા સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા કહલાતીહૈ
૫। યે પાંચ ક્રિયાઈ નૈરયિકસે લેકર વૈમાનિક તકકે જીવોંકો હાંતીહૈ ૩।

વ્યક્તિની જે ક્રિયા હોય છે તેને સ્પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે. અથવા “ પુષ્ટિજા
સ્પૃષ્ટિજા ” આ સંસ્કૃત છાયા લેવામાં આવે તો પણ તેના ઉપર મુજબ જ
અર્થ થાય છે.

(૩) પ્રાતીતિકી ક્રિયા—જીવ અજીવ રૂપ બાહ્ય વસ્તુને પ્રતીત કરીને
આશ્રિત કરીને જે ક્રિયા થાય છે, તેને પ્રાતીતિકી ક્રિયા કહે છે.

(૫) સામન્તોપનિપાતિકી ક્રિયા—ચોમેરથી આવીને માણસોનું જે સમ્મિ-
લન થાય છે, તેને ‘ સામન્તોપનિપાત ’ કહે છે આ સામન્તોપનિપાતમાં જે
ક્રિયા થાય છે, તેને સામન્તોપનિપાતિકી ક્રિયા કહે છે આવા સમ્મેલનમાં
અશ્વ, રથ આદિની ન્યારે -પ્રશંસા થાય છે, ત્યારે તે પ્રશંસા સાંભળીને
હર્ષિત થતા અશ્વપતિ, રથપતિ આદિ આ પ્રકારની ક્રિયાવાળા હોય છે

(૫) સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા—પોતાના હાથથી જ જે ક્રિયા થાય છે તેને
સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા કહે છે. પોતાને હાથે પકડેલા જીવાદિકો દ્વારા જીવોને
મારવાની જે ક્રિયા થાય છે તેને સ્વહસ્તિકી ક્રિયા કહે છે. આ પાંચે ક્રિયા-
ઓનો નારકોથી લઈને વૈમાનિકો પર્યન્તના જીવોમાં સદ્ભાવ હોય છે. ૧૩।

પુનરપિ પશ્ચ ક્રિયાઃ પ્રાહ-તથાદિ-નૈસૃષ્ટિકી-નિષ્પૃષ્ટ-વિસર્જન પાપાણાદીનાં પ્રક્ષેપણમિતિ યાવત્, તત્ર મત્વા ક્રિયા ૧। આજ્ઞાપનિકા-આજ્ઞાપનસ્ય=આદેશનસ્ય હ્યમ્, આજ્ઞાપનમેવ વા આજ્ઞાપની, સૈવેયમ્-આજ્ઞાપનિકાઃ-આજ્ઞાપનવિષયા ક્રિયા । જીવાજીવાન્ અનાયયતઃ ક્રિયેત્યર્થઃ ૨। વૈદારણી-વિદારણમેવ વૈદારણી-તાનેવ જીવાજીવાન્ વિદારયતઃ ક્રિયા ૩। અનાભોગપ્રત્યયા-અનાભોગઃ=અજ્ઞાના-દિક, સ એવ પ્રત્યયઃ કારણં યસ્યાઃ સા-અજ્ઞાનેન પાત્રાદિ આદદતો નિક્ષિપતો વા સમ્બન્વન્તી ક્રિયેત્યર્થઃ ૪ । તથા-અનવકાઙ્ક્ષાપ્રત્યયા-અનવકાઙ્ક્ષા-સ્વશ-

પુનશ્ચ--ક્રિયાઈ પાંચ પ્રકારની હૈં-જૈસે-નૈસૃષ્ટિકી ૧ આજ્ઞાપ-નિકા ૨ વૈદારણિકા ૩ અનાભોગપ્રત્યયા ૪ એવં અનવકાઙ્ક્ષા પ્રત્યયા ૫ હનમેં-જો નૈસૃષ્ટિકી ક્રિયા હોની હૈ, વહ પાપાગ આદિકે ફેકને પર હોતી હૈ, આજ્ઞાપનિકા ક્રિયા જીવોંકો એવં અજીવોંકો પરકી પ્રેરણાસે આનેવાલેકે હોની હૈ, જો ક્રિયા આદેશસે સમ્બન્ધ રખતી હૈ, યા સ્વયં આજ્ઞાપનરૂપ હોતી હૈ, વહ આજ્ઞાપની ક્રિયા હૈ, યહ આજ્ઞાપની ક્રિયાહી આજ્ઞાપનિકા ક્રિયા હૈ, યહ ક્રિયા આજ્ઞાપન વિષયવાલી હોની હૈ, જીવોંકો એવં અજીવોંકો વિદારણ કરનેવાલેકે વૈદારણી ક્રિયા હોતી હૈ, જિસ ક્રિયાકા કારણ અજ્ઞાન હોતાહૈ, વહ અનાભોગ પ્રત્યયા ક્રિયા હૈ, અનાભોગ નામ અજ્ઞાન આદિ કા હૈ યહ અનાભોગહી જિસ ક્રિયા કા કારણ હોતા હૈ, એસી વહ ક્રિયા અનાભોગ પ્રત્યયા ક્રિયા હૈ, યહ ક્રિયા અજ્ઞાનસે પાત્રાદિકો ઉઠાનેવાલે કે યા અજ્ઞાનસે પાત્રાદિકોંકો ધરનેવાલેકો હોતી હૈ, અનવકાઙ્ક્ષા પ્રત્યયા

નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકારની ક્રિયાઓ પણ હોય છે—(૧) નૈસૃષ્ટિકી, (૨) આજ્ઞાપનિકા, (૩) વૈદારણિકા, (૪) અનાભોગ પ્રત્યયા અને (૫) અનવકાંક્ષા પ્રત્યયા. પથર આદિને ફેંકવાથી નૈસૃષ્ટિકી ક્રિયા થાય છે. જે ક્રિયા આદેશ સાથે સંબંધ રાખતી હોય છે અથવા પોતે જ આજ્ઞાપન રૂપ હોય છે તેને આજ્ઞાપની અથવા આજ્ઞાપનિકા ક્રિયા કહે છે. જીવો અને અજીવોને પરની પ્રેરણાથી મારનારને કે વ્યથા પહોંચાડનારને આ ક્રિયા લાગે છે. જીવોતું અને અજીવોતું વિદારણ કરનાર વડે વૈદારણી ક્રિયા થતી હોય છે. જે ક્રિયા અજ્ઞાનને કારણે થાય છે, તે ક્રિયાને અનાભોગ પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે અનાભોગ એટલે અજ્ઞાન વગેરે આ અનાભોગ જ જે ક્રિયાતું કારણ હોય છે, એવી ક્રિયાને અનાભોગ પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે. અજ્ઞાનથી પાત્રાદિ ઉઠાવનાર કે મૂકનારને આ ક્રિયા લાગે છે. પોતાના શરીર આદિ સંબંધી અનવકાંક્ષાને કારણે જે ક્રિયા થાય છે, તે ક્રિયાને અનવકાંક્ષા પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે.

રીરાચનપેક્ષત્વં, સૈવ પ્રત્યયં-કારણં યસ્યાઃ સા-ઇહલોકા પરલોકાપાયાનપેક્ષસ્ય ક્રિયેત્યર્થઃ ૫। एता नैसृष्टिक्रियाद्यनवक्राड्क्षप्रत्ययान्ताः पञ्चापि क्रिया नैरयिकादि वैमानिकान्तानां चतुर्विंशतिदण्डकोक्तानां बोध्याः । पुनरपि पञ्च क्रियाः प्राह- तथाहि-प्रेमप्रत्यया-प्रेम=रागः प्रत्ययोः हेतुर्यस्यां क्रियायां सा, रागजः स्या क्रिया १। द्वेष प्रत्यया-द्वेषः=अप्रीतिः प्रत्ययो यस्यां सा-द्वेषजन्या क्रिया २। प्रयोग- क्रिया-वीर्यान्तरायक्षयोपशमाविभूर्तवीर्येण आत्मना प्रयुज्यते=व्यापार्यते इति प्रयोगः मनोवाक्यायलक्षणः, तस्य क्रिया=कारणं व्यापारः-मनोवाक्यायव्यापार-

ક્રિયા વહ છે, કિ જિસકા કારણ સ્વશરીરાદિકી અનપેક્ષા હોતી છે, યહ ક્રિયા ડસકો હોતી છે કિ જિસે ઇહલીક સમ્બન્ધી ઓર પરલોક સમ્બન્ધી ઉપાયકી પરવાહહી નહીં હોતી છે, યે પાંચોહી ક્રિયાઈ નૈરયિકસે લેકર વૈમાનિક તકકે સમસ્ત ચૌવીસ ઢણ્ડકસ્થ જીવોંકો હોતી છે ।

પુનશ્ચ--ક્રિયાઈ પાંચ પ્રકારકી છે--જૈસે-પ્રેમ પ્રત્યયા ૧ દ્વેષ પ્રત્યયા ૨ પ્રયોગ ક્રિયા ૩ સમુદાન ક્રિયા ૪ ઓર ઐર્યાપથિકી ક્રિયા ૫ જિસ ક્રિયામૈં પ્રેમ-રાગ હેતુ હોતા છે, વહ પ્રેમપ્રત્યયા ક્રિયા છે, તાત્પર્ય યહ છે કિ જો ક્રિયા રાગસે જન્ય હોતી છે, વહ પ્રેમપ્રત્યયા ક્રિયા છે ૧ જિસ ક્રિયામૈં અપ્રીતિ કારણ હોતી છે, અર્થાત્ જો ક્રિયા દ્વેષજન્ય હોતી છે, વહ દ્વેષપ્રત્યયા ક્રિયા છે, વીર્યાન્તરાય કર્મકે ક્ષયોપશમસે આવિભૂત વીર્યસે યુક્ત આત્માકે દ્વારા જો વ્યાપાર ક્રિયા જાતા છે, ડસકા નામ પ્રયોગ છે, યહ પ્રયોગ મન વચન કાયરૂપ હોતા છે, અર્થાત્ મન વચન

આ ક્રિયા તેના દ્વારા થાય છે કે જેને આલોક અને પરલોક સંબંધી ઉપાયની પરવા હોતી નથી. નારકોથી લઈને વૈમાનિકો પર્યાન્તના ૨૪ ઢંડકના સમસ્ત છવેમાં આ પાંચે ક્રિયાઓનો સહભાવ હોય છે. । ૪ ।

ક્રિયાના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) પ્રેમ પ્રત્યયા, (૨) દ્વેષ પ્રત્યયા, (૩) પ્રયોગ ક્રિયા, (૪) સમુદાન ક્રિયા અને (૫) ઐર્યાપથિકી ક્રિયા. જે ક્રિયામાં પ્રેમ-રાગ કારણરૂપ હોય છે તે ક્રિયાને પ્રેમ પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે. એટલે કે રાગજન્ય જે ક્રિયા હોય છે તેને પ્રેમપ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે. જે ક્રિયામાં અપ્રીતિ કારણરૂપ હોય છે, અથવા જે ક્રિયા દ્વેષજન્ય હોય છે, તેને દ્વેષપ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે વીર્યાન્તરાય કર્મના ક્ષયોપશમથી આવિભૂત વીર્યથી યુક્ત આત્મા દ્વારા જે વ્યાપાર કરાય છે, તેનું નામ પ્રયોગ છે. તે પ્રયોગ મન, વચન અને કાયરૂપ હોય છે એટલે કે મન, વચન અને કાયની

इत्यर्थः ३। समुदानक्रिया-प्रयोगक्रियैरुहातया गृहीतानां कर्मवर्गणानां सम्यक् प्रकृतिबन्धादिभेदेन देश सर्वोपघातिरूपतया च आदानं=स्वीकरणं समुदानं, तद्रूपा क्रिया, यद्वा-समुदानम्=जनसमूहः, तस्य क्रिया ४। तथा-ऐर्यापथिकी-ईरणं=गमनम्-ईर्या, तद्विशिष्टः पन्था ईर्यापथः तत्र भवति ऐर्यापथिकी-उपशान्त-

कायकी क्रियारूप जो आत्माका व्यापार है, वही प्रयोग है, और यही प्रयोग क्रिया है, समुदान क्रिया-प्रयोग क्रिया द्वारा एकरूपसे गृहीत हुई कर्मवर्गणाओंका जो प्रकृतिबन्ध आदिके भेदसे विभाग होता है, और उसमें भी देशघाति एवं सर्वघातिके अंशोंका पड़ना होता है, यह समुदान क्रिया है, जैसे किसी जीवने प्रयोग क्रिया द्वारा कर्मण वर्गणाओंका सामान्यरूपमें बन्ध क्रिया, अब उनमें कितनिकवर्गणाओंका ज्ञानावरणीय आदि रूपसे प्रकृतिबन्ध हुआ उसमें भी मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण मनःपर्यवज्ञानावरण इस रूपसे जो उसका परिणमन हुआ है, वह देशघातिरूपसे उसका प्रकृतिबन्ध है, और जो केवल ज्ञानावरण रूपसे उसका परिणमन है, वह सर्वघातिरूपसे प्रकृतिबन्ध है, यही इस समुदान क्रियाका तात्पर्य है, अथवा-समुदान नाम जनसमूहका है, इसकी जो क्रिया है, वह भी समुदान क्रिया है ४। ईरण-नाम गमनका है, यह ईरणही ईर्या है, इस ईर्यासे विशिष्ट जो मार्ग है, वह ईर्यापथ है, अर्थात् गमनका साधक जो मार्ग है, वह ईर्या-

प्रवृत्तिरूप आत्मानो ने व्यापार छे तेने प्रयोग कडे छे, अने ओ न प्रयोग क्रिया छे. હવે સમુદાન ક્રિયાનો અર્થ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે—

પ્રયોગક્રિયા દ્વારા એક રૂપે ગ્રહણ કરાયેલ કર્મવર્ગણાઓનો ને પ્રકૃતિબન્ધ અદિ રૂપે વિભાગ થાય છે, અને તેમાં પણ દેશઘાતિ અને સર્વઘાતિ રૂપ ને વિભાગો પડે છે. તેનું નામ સમુદાન ક્રિયા કહે છે. જેમકે-કોઈ હવે પ્રયોગક્રિયા દ્વારા કાર્મણ વર્ગણાઓનો સામાન્ય રૂપે બન્ધ કર્યો. તેમાંથી ફેટલીક વર્ગણાઓનો જ્ઞાનાવરણીય આદિ રૂપે પ્રકૃતિબન્ધ થયો. હવે તેનું ને મતિજ્ઞાનાવરણ, શ્રુતજ્ઞાનાવરણ, અવધિજ્ઞાનાવરણ અને મન:પર્યવજ્ઞાનાવરણ રૂપે ને ને પરિણમન થયું છે તે દેશઘાતિ રૂપે તેનો પ્રકૃતિબન્ધ છે. અને ને કેવળજ્ઞાનાવરણ રૂપે તેનું પરિણમન છે, તે સર્વઘાતિ રૂપે પ્રકૃતિબન્ધ છે. એ જ આ સમુદાન ક્રિયાનો ભાવર્થ છે અથવા સમુદાન એટલે જનસમૂહ તે જનસમૂહની ને ક્રિયા છે તેને સમુદાન ક્રિયા કહે છે.

ऐर्यापथिकी क्रिया—“ ईरण ” એટલે ગમન. તે ઇરણને જ ઇર્યા કહે છે. ને માર્ગે થઇને ગમન કરવાનું હોય તે માર્ગને ‘ ઇર્યાપથ ’ કહે છે, તે

મોહક્ષીણમોહસયોગિકેવલિનાં કેવલયોગપ્રત્યયાસાતાવેદનીયકર્મબંધરૂપે-
 સ્વર્થઃ ૫। પ્રેમપ્રત્યયાદ્યૈર્ગાપથિકવ્યન્તાઃ પશ્ચક્ત્વેનોક્તાઃ ક્રિયાશ્ચતુર્વિંશતિ દણ્ડ-
 કેષુ મનુષ્યાણામેવ ભવન્તિ નત્વન્યેપામ્, એર્ગાપથિકી ક્રિયાયા ઉપશાન્તમોહા-
 પથ છે, હસ ઈર્ગાપથમેં જો ક્રિયા હોતી છે, વહ એર્ગાપથિકી ક્રિયા છે, યહ એર્ગાપથિકી ક્રિયા ઉપશાન્ત મોહ ક્ષીણમોહ ઓર સયોગકેવલિ-
 યોંકો હોતી છે, હસકા કારણ કેવલ યોગહી હોતા છે, તાત્પર્ય હસ કથ-
 નકા એસા છે, કિ યચ્ચપિ ઈર્ગાકા અર્થ ગમન છે, પર યહ અર્થ કેવલ
 વ્યુત્પત્તિ લભ્ય છે, ક્યોંકિ ઈર્ગાપથ જો ક્રિયા હોતી છે, વહ કેવલ યોગસેહી
 હોતી છે, હસલિયે ઈર્ગાકા અર્થ યોગ લેના ચાહિયે. જિસ પ્રકાર કોરે
 ઘડે પર ધૂલ મિટ્ટી નહીં જમતી છે, વહ ડસ પર પડ જાને પર ઘી તત્કાલ
 ડસસે દૂર હો જાતી છે, વૈસેહી યોગસે જાગ્યમાન ઈર્ગાપથ ક્રિયા દ્વારા
 ગૃહીત કર્મપુદ્ગલ કષાયકે અભાવમેં આત્માસે ચિચકના નહીં છે,
 આતેહી વહ ડસસે અલગ હો જાતા છે, હસી લિયે યહ ક્રિયા ૧૧ ગ્યા
 રહવે ૧૨ ચારહવે ઓર ૧૩ તેરહવે ગુણસ્થાનવાલે જીવોંકો કહી ગઈ છે,
 ઈર્ગાપથ ક્રિયાસે જો કર્મ હોના છે, વહ સાતાવેદનીય બંધરૂપ હોના છે, ઓર
 હસકી કેવલ ંક સમયકીહી સ્થિતિ હોતી છે, અર્થાંત્ પહલે સમય બંધ
 હોતા છે દૂસરે સમય હસકા વેદન હોતા છે ઓર તીસરે
 સમય નિર્જરણ હો જાતા છે યે પાંચ ક્રિયાઈં ચૌત્વીસ

ર્ગાપથમાં જે ક્રિયા થાય છે, તેને એર્ગાપથિકી ક્રિયા કહે છે. આ એર્ગાપથિકી
 ક્રિયા ઉપશાન્ત મોહ, ક્ષીણમોહ અને સયોગી કેવલીઓ દ્વારાજ થાય છે.
 તેનું કારણ માત્ર યોગ જ હોય છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

જે કે ઈર્ગાનો અર્થ ગમન છે, પણ આ અર્થ તો માત્ર વ્યુત્પત્તિ લભ્ય
 અર્થ જ છે, કારણ કે ઈર્ગાપથ જે ક્રિયા હોય છે તે કેવળ યોગથી જ થાય
 છે, તેથી અહીં ઈર્ગાનો અર્થ યોગ લેવો જોઈએ જેમ કોરા ઘડા ઉપર રજ
 આદિ જમતું નથી, કઠાય તેના પર રજ પડી હોય તો પણ તે પવન આદિ
 વડે ઊડી જાય છે, એ જ પ્રમાણે યોગજન્ય ઈર્ગાપથ ક્રિયા દ્વારા ગૃહીત કર્મ
 પુદ્ગલ કષાયને અલાવે આત્મા સાથે ચોટી જતાં નથી, આવતાં સાથે જ તેઓ
 આત્માથી અલગ થઈ જાય છે. તેથી ૧૧ માં, બારમાં અને તેરમાં ગુણસ્થાન-
 વાળા છવે આ ક્રિયા કરે છે, એમ કહેવામાં આવ્યું છે ઈર્ગાપથ ક્રિયા
 દ્વારા આવેલું જે કર્મ હોય છે, તે સાતાવેદનીય બંધરૂપ હોય છે, અને
 તેની માત્ર એક સમયની જ સ્થિતિ હોય છે. આ પાંચ ક્રિયાઓ ૨૪ ઢંડ-

દિવ્યેભ્યેવ સદ્ભાવાત્ । અમુમેવાર્થમાહ—‘ એવં મણુસ્તાણચિ, સેસાણં ણત્થિ ’
 इति । क्रियायाविस्तृतव्याख्या अस्मिन्नेव सूत्रे द्विस्थानकस्य प्रथमोद्देश्यकेऽवलो-
 कनीयेति ॥सू० ९ ॥

अनन्तरं कर्मबन्धकारणीभूताः क्रिया उक्ताः, सम्प्रति तस्यैव कर्मणो निर्जरो-
 पायभूतां परिज्ञामाह—

सूत्रम्—पंचविहा परिज्ञा पणत्ता, तं जहा—उपधिपरिज्ञा १
 उपाश्रयपरिज्ञा २ कपायपरिज्ञा ३ योगपरिज्ञा ४ भक्तपानप-
 रिज्ञा ५ ॥ सू० १० ॥

छाया—पञ्चविहा परिज्ञा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उपधिपरिज्ञा १ उपाश्रयपरिज्ञा
 २, कपायपरिज्ञा ३ योगपरिज्ञा ४ भक्तपानपरिज्ञा ५ ॥सू० १० ॥

दण्डકર્મે કેવલ મનુષ્યોંકેહી હોતીહૈ, અન્ય જીવોંકો નહીં હોતીહૈ, તથા
 ऐर्यापथिकी जो क्रिया है, उपजान्न मोहनीय क्षीणमोह और सयोग
 કેવલી इन तीनकेही होती है, यही वात—“ एव मणुस्साणचि सेसाणं
 णत्थि ” इस सूत्रपाठ द्वारा प्रकटकी गई है, क्रियाकी विस्तृत व्याख्या
 इसी सूत्रके द्विस्थानकके प्रथम उद्देशकमें देख लेनी चाहिये ॥सू० ९ ॥

इस तरहसे कर्मबन्धकी कारणभूत क्रियाएँ कहीं अब सूत्रकार
 उसी कर्मकी निर्जराने उपायभूत परिज्ञाका कथन करते हैं—

‘पंचविहा परिज्ञा पणत्ता’ इत्यादि सूत्र १० ॥

टीकार्थ—परिज्ञा पांच प्रकारकी कही गईहैं जैसे उपधिपरिज्ञा १ उपाश्रय-
 परिज्ञा २ कपायपरिज्ञा ३ योगपरिज्ञा ४ और भक्तपान परिज्ञा ५ जिसके

કેના બધાં છયે કરતાં નથી પણ માત્ર મનુષ્યે જ કરે છે. મનુષ્યેમાં પણ
 ૧૧, ૧૨ અને ૧૩ માં શુભસ્થાનવાળા મનુષ્યે એટલે કે ઉપશાન્ત મોહ,
 ક્ષીણમોહ અને સયોગી કેવલી, એ ત્રણ જ ऐर्यापथिकी ક્રિયા કરતા હોય છે.
 એ જ વાત “ एव मणुस्साण चि सेसाणं णत्थि ” આ સૂત્રપાઠ દ્વારા વ્યક્ત
 થઈ છે ક્રિયાની વિસ્તૃત વ્યાખ્યા આ સૂત્રના દ્વિસ્થાનકના પહેલા ઉદ્દેશમાં
 આપવામાં આવી છે તે જિજ્ઞાસુ પાઠકે એ ત્યાંથી તે વાચી લેવી ॥ સૂ. ૯ ॥

આ રીતે કર્મબન્ધનના કારણભૂત ક્રિયાઓનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્ર-
 કાર એ જ કર્મની નિર્જરાના ઉપાયરૂપ પરિજ્ઞાનું કથન કરે છે.

“ પંચવિહા પરિજ્ઞા પણત્તા ” ઇત્યાદિ—

टीकार्थ—परिज्ञा पांच प्रकारकी कही છે—(१) उपधि परिज्ञा, (२) उपाश्रयपरिज्ञा
 (३) कपाय परिज्ञा, (३) योग परिज्ञा અને (५) ભક્તપાન પરિજ્ઞા.

ટીકા—‘ પંચવિદ્યા ’ ઇત્યાદિ—

પરિજ્ઞા-પરિજ્ઞાયતે ઇતિ પરિજ્ઞા-કલ્પનીયાકલ્પનીયવસ્તુસ્વરૂપસ્ય જ્ઞાનં, તત્પૂર્વકં પ્રત્યાખ્યાનં ચ । ઇય દ્રવ્યતો ભાવતશ્ચ ભવતિ । તત્ર દ્રવ્યતોઽનુપયુક્તસ્ય, ભાવનસ્તૂપયુક્તસ્ય ભવતિ । તદુક્તમ્—

“ ભાવપરિણા જાણણં પચ્ચક્ષણં ચ ભાવેણ ”

છાયા—ભાવપરિજ્ઞાજ્ઞાનં પ્રત્યાખ્યાનં ચ ભાવેન ઇતિ ।

તત્ર દ્રવ્યપરિજ્ઞા સચિત્તાચિત્તમિશ્રભેદેન ત્રિવિદ્યા ભવતિ, ભાવપરિજ્ઞા તુ જ્ઞપરિજ્ઞાપ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાભેદેન દ્વિવિદ્યા ભવતિ । દ્રવ્યભાવભેદમિન્ના ણ્ણા પરિજ્ઞા ઉપધ્યાદિભેદેન પચ્ચવિદ્યા ભવતિ । તથાહિ-ઉપધિ-પરિજ્ઞા-ઉપધેઃ=રજો-હરણસદોરકમુલ્લક્ષ્મિકાદેઃ પરિજ્ઞા ૧ । ઉપાશ્રય-પરિજ્ઞા-ઉપાશ્રયસ્ય-ઉપશ્રીયતે

દ્વારા જાના જાતા હૈ વહ પરિજ્ઞા હૈ, યહ પરિજ્ઞા કલ્પનીય અકલ્પનીય વસ્તુકે સ્વરૂપકે જ્ઞાનરૂપ હોતી હૈ, ઇવં ઇસ જ્ઞાનપૂર્વક જો પ્રત્યાખ્યાન હોતા હૈ, તદ્રૂપ હોની હૈ, યહ પરિજ્ઞાદ્રવ્ય ઓર ભાવકે ભેદસે દો પ્રકારસે હોતી હૈ, અનુપયુક્ત આત્માકે જો પરિજ્ઞા હોતી હૈ, વહ દ્રવ્યપરિજ્ઞા હૈ, ઓર ઉપયુક્ત આત્માકે જો પરિજ્ઞા હોનીહૈ, વહ ભાવ પરિજ્ઞાહૈ । કહામીહૈ

“ ભાવપરિણા જાણણં ” ઇત્યાદિ । ક્યૌંકિ પ્રત્યાખ્યાન ભાવસે હોતા હૈ, ઇસલિયે ભાવપરિજ્ઞા જ્ઞાનરૂપ હોતી હૈ, દ્રવ્યપરિજ્ઞા સચિત્ત, અચિત્ત ઓર મિશ્રકે ભેદસે ત્રીન પ્રકારકી હોની હૈ ઓર જો ભાવપરિજ્ઞા હૈ, વહ જ્ઞપરિજ્ઞા ઓર પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાકે ભેદસે દો પ્રકારકી હોતી હૈ, દ્રવ્ય ઓર ભાવકે ભેદસે ભેદવાલી યહ પરિજ્ઞા ઉપધિ આદિકે ભેદસે

જેના દ્વારા જાણવામા આવે છે તે પરિજ્ઞા છે. કલ્પનીય અને અકલ્પનીય વસ્તુના સ્વરૂપના જ્ઞાનરૂપ તે પરિજ્ઞા હોય છે, અને આ પ્રકારના જ્ઞાનપૂર્વક જે પ્રત્યાખ્યાન થાય છે, તે પ્રત્યાખ્યાન રૂપ તે હોય છે. તે પરિજ્ઞા દ્રવ્ય અને ભાવના લેદથી જે પ્રકારની હોય છે. અનુપયુક્ત આત્માની જે પરિજ્ઞા હોય છે તેને દ્રવ્યપરિજ્ઞા કહે છે, અને ઉપયુક્ત આત્માની જે પરિજ્ઞા હોય છે તેને ભાવપરિજ્ઞા કહે છે. કહું પણ છે કે—

“ ભાવપરિણા જાણણં ” ઇત્યાદિ—

પ્રત્યાખ્યાન ભાવથી થાય છે, તે કારણે ભાવપરિજ્ઞા જ્ઞાનરૂપ હોય છે. દ્રવ્યપરિજ્ઞાના સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર એવાં ત્રણ લેદ પડે છે, અને ભાવ પરિજ્ઞાના જ્ઞપરિજ્ઞા અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞા નામના જે લેદ પડે છે. દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ મુખ્ય જે લેદોવાળી આ પરિજ્ઞા ઉપધિ આદિના લેદથી

સંયમયાત્રાનિર્વાહાર્થં યઃ સ ઉપાશ્રયઃ=ત્રસતિરૂપસ્તસ્ય પરિજ્ઞા ૨। કષાયપરિજ્ઞા-
કષાયાઃ=મોહનીયકર્મપુદ્ગલોદયસમ્પાદ્યજીવપરિણામાઃ ક્રોધમાનમાયા લોભાઃ, તેપાં
પરિજ્ઞા ૩। યોગપરિજ્ઞા-યોગાઃ=મનોયોગાદયઃ, તેપાં પરિજ્ઞા ૪। તથા-મક્તપાનપરિજ્ઞા-
મક્તપ્=અજ્ઞાનમોદનાદિ પાનં=પેયં પ્રાસુકજલાદિ, તયોઃ પરિજ્ઞા ૫। ઇતિ ॥ સૂ. ૧૦ ॥

પરિજ્ઞા ચ વ્યવહારવતાં મનતીતિ વ્યવહારં પ્રરૂપયતિ—

મૂલપ્-પંચવિદ્ધે વ્યવહારે પવળક્તે, તં જહા-આગમે ૧ સુષ્
૨ આણા ૩ ધારણા ૪ જીષ્ ૫। જહા સે તત્થ આગમે સિયા
આગમેણં વ્યવહારં પટ્ટવેઙ્ગા ૧, ણો સે તત્થ આગમે સિયા,
જહા સે તત્થ સુષ્ સિયા, સુષ્ણં વ્યવહારં પટ્ટવેઙ્ગા ૨, ણો સે
તત્થ સુષ્ સિયા ૩, ઇવં જાવ જહા સે તત્થ જીષ્ સિયા ૪ જીષ્ણં

પાંચ પ્રકારની હોતી છે, इनमें रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका आदिकी जो
परिज्ઞા છે વહ ઉપધિપરિજ્ઞા છે ૧। જો સંયમ યાત્રાકે નિર્વાહકે લિયે
આશ્રિત ક્રિયા જાતા છે વહ ઉપાશ્રય છે, હસ ઉપાશ્રયકી જો પરિજ્ઞા છે,
વહ ઉપાશ્રયપરિજ્ઞા છે ૨। મોહનીય કર્મકે પુદ્ગલોકે ઉદયસે ઉત્પન્ન
હુષ્ જો ક્રોધ માન માયા ઓર લોભ રૂપ જીવકે પરિણામ છે, વે કષાય
છે, इन कषायोंकी जो परिज्ઞા છે, વહ કષાય પરિજ્ઞા છે, મન વચન ઓર
કાયરૂપ યોગોંકી જો પરિજ્ઞા છે, વહ યોગપરિજ્ઞા છે, તથા ઓદનાદિરૂપ
અજ્ઞાનકી ઇવં પ્રાસુક જલાદિરૂપ પેયકી જો પરિજ્ઞા છે, વહ મક્તપાન
પરિજ્ઞા છે ॥ સૂ. ૧૦ ॥

પાંચ પ્રકારની હોય છે. તેમાં રજોહરણ, મુખવસ્ત્રિકા આદિની જે પરિજ્ઞા છે,
તેને ઉપધિ પરિજ્ઞા કહે છે સંયમ યાત્રાના નિર્વાહને માટે જે સ્થાનનો
આશ્રય લેવામાં આવે છે તે સ્થાનનું નામ ઉપાશ્રય છે. તે ઉપાશ્રયની
જે પરિજ્ઞા છે તેને ઉપાશ્રય પરિજ્ઞા કહે છે. મોહનીય કર્મનાં
પુદ્ગલોના ઉદયને લીધે ઉત્પન્ન થયેલ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભરૂપ જીવનું
જે પરિણામ છે તેને કષાય કહે છે તે કષાયોની જે પરિજ્ઞા છે તેને કષાય
પરિજ્ઞા કહે છે. મન, વચન અને કાયરૂપ યોગોની જે પરિજ્ઞા છે તેને યોગ
પરિજ્ઞા કહે છે તથા ભાત આદિ રૂપ અજ્ઞાનની અને પ્રાસુક જલાદિ રૂપ
પાનની જે પરિજ્ઞા છે તેને મક્તપાનપરિજ્ઞા કહે છે. ॥ સૂ. ૧૦ ॥

व्यवहारं पट्टवेज्जा ५। इच्छेएहिं पंचहिं व्यवहारं पट्टवेज्जा, आग-
मेणं जाव जीएणं । जहा जहा से तत्थ आगमे जाव जीए तहा
तहा व्यवहारं पट्टवेज्जा । से किमाहु भंते ? आगमबलिया
समणा णिग्गंथा ? इच्छेयं पंचविहं व्यवहारं जया जया जहिं
जहिं तथा तथा तहिं तहिं अणिसिसयोवसिसयं सस्मं व्यवहरमाणे
समणे णिग्गंथे आणाए आराहए भवइ ॥ सू० ११ ॥

छाया—पञ्चविधो व्यवहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगमः १ श्रुतम् २, आज्ञा
३ धारणा ४ जीतम् ५। यथा तस्य तत्र आगमः स्यात् आगमेन व्यवहार प्रस्था-
पयेत् १, नो तस्य तत्र आगमः स्यात्, यथा तस्य तत्र श्रुतं स्यात्, श्रुतेन व्यव-
हारं प्रस्थापयेत् २, नो तस्य तत्र श्रुतं स्यात्, एवं यावत् यथा तस्य तत्र जीतं
स्यात्, जीतेन व्यवहारं प्रस्थापयेत् ५। इत्येतेः पञ्चभिव्यवहारं प्रस्थापयेत्—आग-
मेन यावद् जीतेन । यथा यथा तस्य तत्र आगमो यावद् जीतं तथा तथा व्यव-
हारं प्रस्थापयेत् । अथ किमाहु भदन्त ! आगमबलिकाः श्रमणा निर्ग्रन्थाः ?
इत्येतं पञ्चविधं व्यवहारं यदा यदा यत्र यत्र तदा तदा तत्र तत्र अनिश्रितोपा-
श्रितं सम्यग् व्यवहरमाणः श्रमणो निर्ग्रन्थ आज्ञाया आराधको भवति ॥ सू० ११ ॥

टीका—‘ पंचविहे ’ इत्यादि—

व्यवहरणं—व्यवहारः—मोक्षार्थिप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपः, तद्धेतुर्कत्वाद्वा ज्ञान
विशेषोऽपि व्यवहारः । स पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगम्यन्ते=परिच्छिद्यन्ते

यह परिज्ञा व्यवहारवालोंको होती है, इसलिये अब सूत्रकार व्यव-
हारका प्ररूपण करतेहैं—‘पंचविहे व्यवहारे पण्णत्ते इत्यादि’ सूत्र ११ ॥

टीकार्थ—व्यवहार पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे—आगम १
श्रुत २ आज्ञा ३ धारणा ४ और जीत ५।

व्यवहार मोक्षाभिलाषियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप होना है;

आ परिज्ञा व्यवहारवाणामा होय छे. तेथी हुवे सूत्रकार व्यवहारनी
प्रश्नया करे छे. “ पंचविहे व्यवहारे पण्णत्ते ” इत्यादि—

टीकार्थ—व्यवहारना नीचे प्रमाणे पांच प्रकार कछां छे—(१) आगम, (२) श्रुत
(३) आज्ञा, (४) धारणा अने (५) जीत.

સંયમયાત્રાનિર્વાહાર્થં યઃ સ ઉપાશ્રયઃ=ત્રસતિરૂપસ્તરય પરિજ્ઞા ૨। કષાયપરિજ્ઞા-
કષાયઃ=મોહનીયકર્મપુદ્ગલોદયસમ્પાદ્યજીવપરિણામાઃ ક્રોધમાનમાયા લોભાઃ, તેપાં
પરિજ્ઞા ૩। યોગપરિજ્ઞા-યોગાઃ=મનોયોગાદયઃ, તેપાં પરિજ્ઞા ૪। તથા-ભક્તપાનપરિજ્ઞા-
ભક્તપ્=અશનમોદનાદિ પાનં=પેયં પ્રાસુકજલાદિ, તયોઃ પરિજ્ઞા ૫। ઇતિ ॥ સૂ. ૧૦ ॥

પરિજ્ઞા ચ વ્યવહારવતાં મન િતિ વ્યવહારં પ્રરૂપયતિ—

મૂલપ્-પંચવિહે વચ્ચારે પળ્લત્તે, તં જહા-આગમે ૧ સુણ
૨ આળા ૩ ધારળા ૪ જીણ ૫। જહા સે તત્થ આગમે સિયા
આગમેળં વચ્ચારં પટ્ટવેજ્જા ૧, ણો સે તત્થ આગમે સિયા,
જહા સે તત્થ સુણ સિયા, સુણળં વચ્ચારં પટ્ટવેજ્જા ૨, ણો સે
તત્થ સુણ સિયા ૩, ંવં જાવ જહા સે તત્થ જીણ સિયા ૪ જીણળં

પાંચ પ્રકારકી હોતી હૈ, હનમં રજોહરણ ંવં મુખ્વચ્ચિકા આદિકી જો
પરિજ્ઞા હૈ વહ ઉપધિપરિજ્ઞા હૈ ૧। જો સંયમ યાત્રાકે નિર્વાહકે લિયે
આશ્રિત ક્રિયા જાતા હૈ વહ ઉપાશ્રય હૈ, હસ ઉપાશ્રયકી જો પરિજ્ઞા હૈ,
વહ ઉપાશ્રયપરિજ્ઞા હૈ ૨। મોહનીય કર્મકે પુદ્ગલોકે ઉદયસે ઉત્પન્ન
હુણ જો ક્રોધ માન ળાયા ંર લોભ રૂપ જીવકે પરિણામ હૈં, વે કષાય
હૈં, હન કષાયોંકી જો પરિજ્ઞા હૈ, વહ કષાય પરિજ્ઞા હૈ, મન વચન ંર
કાયરૂપ યોગોંકી જો પરિજ્ઞા હૈ, વહ યોગપરિજ્ઞા હૈ, તથા ંદનાદિરૂપ
અશનકી ંવં પ્રાસુક જલાદિરૂપ પેયકી જો પરિજ્ઞા હૈ, વહ ભક્તપાન
પરિજ્ઞા હૈ ॥ સૂ. ૧૦ ॥

પાંચ પ્રકારની હોય છે. તેમાં રજોહરણ, મુખ્વચ્ચિકા આદિની જે પરિજ્ઞા છે,
તેને ઉપધિ પરિજ્ઞા કહે છે સંયમ યાત્રાના નિર્વાહને માટે જે સ્થાનનો
આશ્રય લેવામાં આવે છે તે સ્થાનનું નામ ઉપાશ્રય છે. તે ઉપાશ્રયની
જે પરિજ્ઞા છે તેને ઉપાશ્રય પરિજ્ઞા કહે છે. મોહનીય કર્મનાં
પુદ્ગલાના ઉદયને લીધે ઉત્પન્ન થયેલ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભરૂપ જીવનું
જે પરિણામ છે તેને કષાય કહે છે તે કષાયોની જે પરિજ્ઞા છે તેને કષાય
પરિજ્ઞા કહે છે. મન, વચન અને કાયરૂપ યોગોની જે પરિજ્ઞા છે તેને યોગ
પરિજ્ઞા કહે છે તથા ભાત આદિ રૂપ અશનની અને પ્રાસુક જલાદિ રૂપ
પાનની જે પરિજ્ઞા છે તેને ભક્તપાનપરિજ્ઞા કહે છે. ॥ સૂ. ૧૦ ॥

व्यवहारं पट्टवेज्जा ५। इच्छेएहिं पंचहिं व्यवहारं पट्टवेज्जा, आग-
मेणं जाव जीएणं । जहा जहा से तत्थ आगमे जाव जीए तहा
तहा व्यवहारं पट्टवेज्जा । से किमाहु भंते ? आगमवलिया
समणा णिगंथा ? इच्छेयं पंचविहं व्यवहारं जया जया जहिं
जहिं तथा तथा तहिं तहिं अणिसिस्सयोवस्सियं सम्मं व्यवहरमाणे
समणे णिगंथे आणाए आराहए भवइ ॥ सू० ११ ॥

छाया—पञ्चविधो व्यवहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगमः १ श्रुतम् २, आज्ञा
३ धारणा ४ जीतम् ५। यथा तस्य तत्र आगमः स्यात् आगमेन व्यवहार प्रस्था-
पयेत् १, नो तस्य तत्र आगमः स्यात्, यथा तस्य तत्र श्रुतं स्यात्, श्रुतेन व्यव-
हारं प्रस्थापयेत् २, नो तस्य तत्र श्रुतं स्यात्, एवं यावत् यथा तस्य तत्र जीतं
स्यात्, जीतेन व्यवहारं प्रस्थापयेत् ५। इत्येतेः पञ्चभिर्व्यवहारं प्रस्थापयेत्—आग-
मेन यावद् जीतेन । यथा यथा तस्य तत्र आगमो यावद् जीतं तथा तथा व्यव-
हारं प्रस्थापयेत् । अथ किमाहु भदन्त ! आगमवलिकाः श्रमणा निर्ग्रन्थाः ?
इत्येतं पञ्चविधं व्यवहारं यदा यदा यत्र यत्र तदा तदा तत्र तत्र अनिश्रितोपा-
श्रितं सम्यग् व्यवहरमाणः श्रमगो निर्ग्रन्थ आज्ञाया आराधको भवति ॥ सू० ११ ॥

टीका—‘ पंचविहे ’ इत्यादि—

व्यवहरणं—व्यवहारः—मोक्षार्थिमवृत्तिनिवृत्तिरूपः, तद्धेतुक्त्वाद्त्र ज्ञान
विशेषोऽपि व्यवहारः । स पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगम्यन्ते=परिच्छिद्यन्ते

यद् परिज्ञा व्यवहारवालोको होती है, इसलिये अब सूत्रकार व्यव-
हारका प्ररूपण करते हैं—‘ पंचविहे व्यवहारे पण्णत्ते इत्यादि ’ सूत्र ११ ॥

टीकार्थ—व्यवहार पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे—आगम १
श्रुत २ आज्ञा ३ धारणा ४ और जीत ५।

व्यवहार मोक्षाभिलाषियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप होना है;

आ परिज्ञा व्यवहारवाणाभा होय छे. तेथी उवे सूत्रकार व्यवहारनी
प्रश्नछा करे छे. “ पंचविहे व्यवहारे पण्णत्ते ” इत्यादि—

टीकार्थ—व्यवहारनी नीचे प्रमाणे पांच प्रकार कहा छे—(१) आगम, (२) श्रुत
(३) आज्ञा, (४) धारणा अने (५) जीत.

અર્થાં અનેનેતિ-આગમઃ, કેવલજ્ઞાન ૧ મનઃપર્યયજ્ઞાના ૨ અધિજ્ઞાન ૩ ચતુર્દશ
પૂર્વ ૪ દશપૂર્વ ૫ નવપૂર્વ ૬ સ્વઃ પદ્મિઃ ॥૧॥ શ્રુતમ્=નવાદિ પૂર્વેભ્યોઽવશિષ્ટમ્
આચારાદ્વાદિકમ્ । યદ્યપિ નવાદિપૂર્વાણ્યપિ શ્રુતાન્યેવ, તથાઽપ્યતીન્દ્રિયાર્થજ્ઞાનહેતુ-
ત્વેન સાતિશયત્વાત્ કેવલાદ્ એવાં આગમવ્યપદેશઃ ।૨। આજ્ઞા-અગીનાર્થસ્યાગ્રે
ગૂઢાર્થપદૈરન્યદેશસ્થિતં ગીતાર્થં નિવેદયિતું યદતિચારાલોચનમ્ ગીતાર્થમાધુ-
નાઽપિ તથૈવ શુદ્ધિદાનં સા ॥૩॥ ધારણા-દ્રવ્યાઘપેક્ષયા યસ્મિન્નપરાધે ગીતાર્થ

હસ વ્યવહારકા હેતુ જ્ઞાન વિશેષ હોતા હૈ, અતઃ યહ જ્ઞાન વિશેષ ખી
વ્યવહાર રૂપ હૈ યહ વ્યવહાર આગમ આદિકે ભેદસે પાંચ પ્રકારકા જો
કહા ગયાહૈ, સો ઉસકા તાત્પર્ય એસાહૈ જિસકે દ્વાગ પદાર્થ જાને જાતેહૈ;
યહ આગમ વ્યવહારહૈ, એસા યહ આગમ વ્યવહાર કેવલજ્ઞાન ૧ મનઃ પર્ય
યજ્ઞાન ૨ અધિજ્ઞાન ૩ ચતુર્દશ પૂર્વ ૪ દશપૂર્વ ૫ ઓર નવપૂર્વકે ભેદસે
૬ પ્રકારકા હૈ ૧। ઇન નવાદિ પૂર્વો સે અવશિષ્ટ જો આચારાદ્ આદિ
હૈ વે શ્રુત હૈ યદ્યપિ નવાદિ પૂર્વ ખી શ્રુતહી હૈ પરન્તુ અતીન્દ્રિય અર્થજ્ઞાનકે
હેતુ હોનેકે કારણ સાતિશય હોનેસે કેવલજ્ઞાનકી તરહ ઇનમેં આગ-
મકા વ્યપદેશ હોતા હૈ ૨। અગીનાર્થકે આગે ગૂઢાર્થ પદોં ઠારા અન્ય
દેશસ્થિત ગીતાર્થકે પાસ નિવેદનકે નિમિત્ત જો અતિચારોંકા ઓલોચન
હૈ તથા ગીતાર્થ સાધુકે ઠારા ખી ઉસી પ્રકારસે જો શુદ્ધિકા દેના હૈ
વહ આજ્ઞાહૈ, દ્રવ્યાદિકકી અપેક્ષાસે જિમ અપરાધમેં ગીનાર્થ સાધુદ્રારા

વ્યવહાર ભેદ શિક્ષાધીએ ની પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિ રૂપ હોય છે

આ વ્યવહારનો હેતુ જ્ઞાનવિશેષ હોય છે તેથી તે જ્ઞાનવિશેષ પણ
વ્યવહાર રૂપ છે. તેના આગમ વ્યવહાર આદિ જે પાંચ પ્રકાર કહેવાનાં
આવ્યા છે, તેમનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

જેના દ્વારા પદાર્થોને જાણવામાં આવે છે, તે આગમ વ્યવહાર છે. તે
આગમ વ્યવહારના નીચે પ્રમાણે ૬ ભેદ પડે છે—(૧) કેવલજ્ઞાન, (૨) મનઃ
પર્યવજ્ઞાન, (૩) અધિજ્ઞાન, (૪) ચૌઃ પૂર્વ, (૫) દશપૂર્વ અને (૬) નવ પૂર્વ.
આ નવાદિ પૂર્વો સિવાયનાં જે આચારાંગ આદિ છે, તેઓ શ્રુતરૂપ છે જો કે
નવાદિ પૂર્વ પણ શ્રુતરૂપ જ છે, પરન્તુ અતીન્દ્રિય અર્થજ્ઞાનના હેતુ હોવાને કારણે
સાતિશય હોવાથી કેવલજ્ઞાનની જેમ તેઓમાં આગમનો વ્યપદેશ થાય છે.
અગીનાર્થની આગળ ગૂઢાર્થ પદો દ્વારા અન્ય દેશસ્થિત ગીનાર્થની પાસે
નિવેદનને નિમિત્ત જે અતિચારોનું આલોચન છે, તથા ગીતાર્થ સાધુ દ્વારા
પણ એ જ પ્રકારે જે શુદ્ધિ અપાય છે તેનું નામ આજ્ઞા છે. દ્રવ્યાદિકની

साधुना यथा विशुद्धिः कृता, तां संप्रधार्य तस्मिन्नेवापराधे यदन्यः साधुस्तथैव विशुद्धिं करोति सा धारणा । अथवा-गच्छोपग्राहिणो वैयावृत्यरुत्तुरशेषानुचितस्य प्रदर्शितानाम् उचितप्रायश्चित्तपदानां, यद्-धारणं सा-धारणा ।४। तथा-जीतम्-द्रव्यक्षेत्रकालभावपुरुषप्रतिसेवाऽनुष्ठया संहननधृत्त्यादि परिहाणिमपेक्ष्य यत् प्रायश्चित्तदानं तत्, अथवा-यत्र गच्छे कारणत्रशाद् यः सूत्रातिरिक्तः प्रायश्चित्तव्यवहारः प्रवर्तितो बहुभिरन्यैश्चाप्यनुवर्तितः सः ॥५॥ इति । आगमादि व्यवहारप्रदर्शिका गाथा अपि अन्यत्रोक्ताः । तथाहि—

जैसी विशुद्धि की गई हो उस विशुद्धि को हृदयमें धारणकर उसी अपराधमें जो अन्य साधु भी उसी प्रकारकी विशुद्धि करता है, वह धारणा है, अथवा-जो साधु गच्छका उपकार करता है; वैयावृत्य करता है परन्तु यदि उससे कोई ऐसा कार्य बन जाता है, कि जो समस्त साधुओंको अनुचित लगता है तो उसके निमित्त दिखलाये गये प्रायश्चित्त पदोंकी जो धारणा है वह धारणा है तथा-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव एवं पुरुष प्रतिसेवाकी अनुवृत्तिसे संहनन, धृति आदिकी हीनताकी अपेक्षा करके जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह जीत व्यवहार अथवा-जिस गच्छमें कारणके वशसे जो सूत्रातिरिक्त प्रायश्चित्त व्यवहार चल रहा है तथा अनेकोंने भी उसकी सराहना ही हो ऐसा वह व्यवहार जीत व्यवहार है, आगम आदिरूप व्यवहारको दिखलानेवाली जो गाथाएँ

अपेक्षाओं के अपराधमां गीतार्थ साधु द्वारा जैसी विशुद्धि करवामां आवी डाय ते विशुद्धिने हृदयमा धारण्य करीने जे न प्रकारने अपराध थछ जतां अन्य साधु पण्य जे न प्रकारे जे विशुद्धि करे छे तेने धारणा कडे छे.

अथवा जे साधु गच्छने उपकार करे छे-वैयावृत्य आदि करे छे, परन्तु तेना द्वारा कौछ जेवु कार्य थछ जय के जे समस्त साधुओंने अनुचित लागे छे, तो तेनी विशुद्धि निमित्ते अताववामां अपेक्षा प्रायश्चित्त पदोंनी जे धारणा छे, तेनुं नाम धारणा समजवुं द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने पुरुष प्रतिसेवानी अनुवृत्तिनी अपेक्षाओं संहनन, धृति आदिनी हीनताने विचार करीने जे प्रायश्चित्त आपवामां आवे छे तेने अतव्यवहार कडे छे अथवा जे गच्छमां कौछ कारणे सूत्रातिरिक्त (सूत्रामां जेने आधार न भणतो डाय जेवो) व्यवहार आवी रह्यो डाय तथा अनेक साधु आदि द्वारा जे व्यवहारनी प्रशसा कराछ डाय तेवा व्यवहारने अतव्यवहार कडे छे. आगम आदि रूप व्यवहारनुं स्वल्प अतावती कटलीक गाथाओं अन्य शास्त्रोंमां अपेक्षा छे, ते गाथाओं हवे अर्ही आपवामां आवे छे—

ગાથા—નો ઇન્દ્રિયપચ્ચક્ષો વ્યવહારો સો સમાસઓ તિવિહો ।
ઓહિમણપજ્જવે થ કેવલનાણે ય પચ્ચક્ષો ॥૩॥

છાયા—નો ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષો વ્યવહારઃ સ સમાસત્ત્રિવિધઃ ।
અવધિમનઃપર્થવં ચ કેવલજ્ઞાનં ચ પ્રત્યક્ષઃ ॥૩॥

ગાથા—પચ્ચક્ષાગમસરિસો હોઈ પરીક્ષો વિ આગમો જસ્સ ।
ચંદ્રમુહીવં ડ સો વિ હુ આગમ વ્યવહારવં હોઈ ॥૪॥

છાયા—પ્રત્યક્ષાગમનમદશો ભવતિ પરીક્ષોઽપિ આગમો યસ્ય ।
ચન્દ્રમુહીવં તુ સોઽપિ સ્વલુ આગમવ્યવહારવાન્ ભવતિ ॥૪॥ -

ગાથા—પરીક્ષવં વ્યવહારં આગમઓ સુયહરાવ્યવહરંતિ ।
ચોદસદસપુવ્વથરા નવપુર્વિકા ગંધ હસ્થી ય ॥ ૫ ॥

છાયા—પારોક્ષં વ્યવહારમ્ આગમત શ્રુતથરાઃ વ્યવહરન્તિ ।
ચતુર્દશં દશપૂર્વથરા નવપૂર્વિકા ગન્ધહસ્તિનઃ ॥૫॥

“ નોઈન્દ્રિયપચ્ચક્ષો ” ઇત્યાદિ ।

નો ઇન્દ્રિયજન્ય પ્રત્યક્ષ સંક્ષેપસે ત્રીન પ્રકારકા હૈ—અવધિજ્ઞાન ૧
મનઃપર્થવજ્ઞાન ૨ ઓર કેવલજ્ઞાન ૩ ॥૩॥

“ પચ્ચક્ષાગમસરિસો ” ઇત્યાદિ

જિસ પ્રકાર મુખમેં ચન્દ્રમાકા ઉપચાર કરકે ટ્લોગ છી કો ચન્દ્ર-
મુહી કહ દેતે હૈ—હસી પ્રકારસે જિસ મુનિકા પરીક્ષ મી આગમ વસ્તુ-
સ્વરૂપકા સમ્યક્ રૂપસે નિર્ણાયક હોતા હૈ, તો વહ મુનિ મી ઉપચારસે
આગમ વ્યવહારવાલા કહ દિયા જાતા હૈ, ક્યોંકિ ઉસકા આગમ મી
પ્રત્યક્ષાગમકે જૈસા માન લિયા જાતા હૈ ॥૪॥

“ નો ઇન્દ્રિય પચ્ચક્ષો ” ઇત્યાદિ—નો ઇન્દ્રિય જન્ય પ્રત્યક્ષ સંક્ષિપ્તમાં
ત્રણ પ્રકારનો કહ્યો છે—(૧) અવધિજ્ઞાન, (૨) મનઃપર્થવજ્ઞાન અને કેવલજ્ઞાન । ૩ ।

“ પચ્ચક્ષાગમસરિસો ” ઇત્યાદિ—જેમ મુખમાં ચન્દ્રમાનો ઉપચાર
કરીને લોકો કેઈ છીને ચન્દ્રમુખી કહી દે છે, એ જ પ્રમાણે જે મુનિને
પરીક્ષ આગમ પણ વસ્તુ સ્વરૂપનો સામાન્ય રૂપે નિર્ણાયક હોય છે. તે મુનિને
પણ ઉપચારથી આગમ વ્યવહારવાળા કહેવામાં આવે છે, કારણ કે તેમના
આગમને પણ પ્રત્યક્ષ આગમ સમાન માની લેવામાં આવે છે. । ૪ ।

ગાથા—જં જહમોલ્લં રયણં તં જાણહ રયણવાણિઓ નિઉણં ।

इय जागइ पच्चवी जो सुज्जइ जेण दिन्नेणं ॥६॥

છાયા—યહ્ યથામૂલ્યં રત્નં, તદ્ જાનાતિ રત્નવાણિજો નિપુણમ્ ।

इति जानाति प्रत्यक्षी, यः शुध्यति येन दत्तेन ॥६॥

ગાથા—રૂપસ્મ ય વિજ્જુતિં વાહારસ્સે પરમનિગ્ગસ્સ ।

जो अथओ वियाणइ सो ववहारी अणुवाओ ॥७॥

“ પારોક્ષવ્ વવહારં ” ઇત્યાદિ ।

इस परोक्ष व्यवहारको परवादियोंको भगानेके लिये गन्ध हस्तीके जैसे चतुर्दश पूर्वधर, दश पूर्वधर और नवपूर्वधर आगम रूपसे व्यवहृत करते हैं ॥ ५ ॥

“ જં જહમોલ્લં રયણં ” ઇત્યાદિ ।

जिस रत्नका जैसा मूल्य होता है, इस बातको जिस तरह जौहरी जन अच्छी तरह जानता है, उसी तरहसे प्रत्यक्ष ज्ञानी भी इस बातको भली प्रकारसे जानता है, कि कौन अतीचारवाला किस प्रायश्चित्तसे शुद्ध होता है, अतः वे उस अतिचारवालेकी उसी प्रायश्चित्तसे शुद्धि करते हैं ॥६॥

इस प्रकार जो मुनि केवलज्ञानसे मनःपर्यवज्ञानसे अवधिज्ञानसे अतिचारोंको जानकर चौदह पूर्वधारी होनेसे अतिचारोंकी विशुद्धिके जो प्रायश्चित्त देता है, वह प्रायश्चित्तदान आगम व्यवहाररूपसे कहा

“ પારોક્ષવવહારં ” ઇત્યાદિ—પરમતવાદીઓને પરાસ્ત કરવાને માટે ગન્ધહસ્તિ સમાન ચૌદ પૂર્વધારી, દશ પૂર્વધારી અને નવ પૂર્વધારીઓ આ પારોક્ષ વ્યવહારનો આગમ રૂપે ઉપયોગ કરે છે. ૫ ।

“ જં જહમોલ્લં રયણં ” ઇત્યાદિ—જેમ કયા રત્નનું કેટલું મૂલ્ય હોય છે તે એવી જ સારી રીતે બાણી શકે છે, એ જ પ્રમાણે પ્રત્યક્ષ જ્ઞાની પણ એ ધાનને ભરાખર બાણી શકે છે કે કયા અતિચારવાળો કયા પ્રાયશ્ચિત્ત દ્વારા શુદ્ધ થાય છે તેથી તેઓ યોગ્ય પ્રાયશ્ચિત્ત આપીને તે અતિચારવાળાની શુદ્ધિ કરાવી શકે છે. ૬ ।

આ રીતે જે મુનિ કેવળજ્ઞાન દ્વારા, મનઃપર્યવજ્ઞાન દ્વારા કે અવધિજ્ઞાન દ્વારા અતિચારોને બાણીને, ચૌદ પૂર્વધારી કે દસ પૂર્વધારી કે નવ પૂર્વધારી હોવાથી અતિચારોની વિશુદ્ધિને માટે જે પ્રાયશ્ચિત્ત દે છે, તે પ્રાયશ્ચિત્તદાનને આગમ વ્યવહાર રૂપ માનવામાં આવે છે.

છાયા—કલ્પસ્ય ચ નિર્યુક્તિ વ્યવહારસ્યૈવ પરમનિષ્ણમ્ય ।

યઃ અર્થતો વિજાનાતિ, સ વ્યવહારી અનુજ્ઞાતઃ ॥ ૭ ॥

ગાથા—તં ચેવડણુસજ્જંતે વ્યવહારવિધિ પઠંજઙ્ઙ જહુત્તં ।

એસો મુયવ્યવહારો પન્નત્તો, વીયરાગેઠિ ॥૮॥

છાયા—તમેવ અનુપજન્ વ્યવહારવિધિ પ્રયુજ્ઞત્તિ યથોક્તમ્ ।

એષ શ્રુતવ્યવહારઃ પ્રજ્ઞસો વીતરાગેઃ ॥ ૮ ॥

ગાથા—અપરકમ્મો તવસ્સી ગંતુ જો સો ઠિકારગસમીવે ।

ન ચણ્ણ આગંતુ સો સોઠિકરોડવિ દેસામ્મો ॥૯॥

ગયા છે, અથ શ્રુતનામક જો દ્વિતીય વ્યવહાર છે, ઉસે સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈ—“ કપ્પસસ ય નિજ્જુત્તિ ” ઇત્યાદિ ।

જો મુનિ વૃહત્કલ્પ સૂત્રકી તથા પ્રાયશ્ચિત્તવિધિમે સ્ફુટ વિચારયુક્ત વ્યવહાર સૂત્રકી તથા અપિ શબ્દકે અર્થવાલે જાવ પદસે ગૃહીત નિશીથ સૂત્રકી એવં દશાશ્રુત સૂત્રકી નિર્યુક્તિકો અર્થરૂપસે જાનના છે, વહ મુનિ વ્યવહારી કહા ગયા છે—“ તંચેવડણુસજ્જંતે ” ઇત્યાદિ ।

ઉસ વ્યવહારીકાહી અનુસરણ કરતા હુઆ જો મુનિજન અતિચારકે પ્રાપ્ત હોને પર શ્રુતોક્તિકા અનુસરણ કરકે વ્યવહારવિધિ પ્રાયશ્ચિત્તકો દેતા છે, ઉસ મુનિકા શ્રુતાનુસારસે યહ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રદાનરૂપ વ્યવહાર વીતરાગિયોને શ્રુતવ્યવહાર કહા છે ॥૮॥

“ અપરકમ્મો તવસ્સી ” ઇત્યાદિ ।

આજ્ઞા નામકા જો તૃતીય વ્યવહાર છે, વહ ઇસ પ્રકારસે-હૈ-જો તપસ્વી ગમનશક્તિસે હીન હો ગયા છે, એસા વહ તપસ્વી શોધિકારકકે

હવે શ્રુત નામનો વ્યવહારનો જે ખીલો ભેદ છે, તેનુ સ્વરૂપ સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે—“ કપ્પસસ ય નિજ્જુત્તિ ” ઇત્યાદિ—જે મુનિ વૃહત્કલ્પ સૂત્રની તથા પ્રાયશ્ચિત્તવિધિમાં સ્પષ્ટ વિચારયુક્ત વ્યવહાર સૂત્રની તથા ‘ અપિ ’ શબ્દના અર્થવાળા “ ભાવ ” પદથી ગૃહીત નિશીથ સૂત્રની અને દશાશ્રુત સૂત્રની નિર્યુક્તિને અર્થરૂપે જાણે છે, તે મુનિ વ્યવહારી કહેવાય છે. ૧ ૭ ।

‘ તં ચેવડણુસજ્જંતે ’ ઇત્યાદિ—જે વ્યવહારીનુ જે અનુસરણ કરીને જે મુનિજન અતિચારોની વિશુદ્ધિને માટે શ્રુતોક્તિનું અનુસરણ કરીને જે પ્રાયશ્ચિત્ત દે છે, તે પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રદાન રૂપ વ્યવહારને વીતરાગીએ શ્રુતવ્યવહાર કહ્યો છે. ૧ ૮ ।

“ અપરકમ્મો તવસ્સી ” ઇત્યાદિ—હવે આજ્ઞા નામના ત્રીજા વ્યવહારનું સ્પષ્ટીકરણ આવે છે—કોઈ તપસ્વી ચાલવાને અશક્ત બની ગયો છે, તેથી તે

छाया—अपराक्रपस्तपसी गन्तुं यः शोधिकारकसमीपे ।

न गन्तोति आगन्तुं स शोधिकरोऽपि देशात् ॥९॥

गाथा—अह पट्टवेइ सीसं देसंतंरगमणंतट्टवेइओ ।

इच्छामऽज्जो । काउं, सोरिं तुज्जं समासम्मि ॥१०॥

छाया—अथ पस्थापति शिष्यं देशान्तरगमनतट्टवेष्टाः ।

इच्छाम आर्य । कर्तुं शोषिं तव सकाशे ॥१०॥

गाथा—सो ववहारविहिण्णू, अणुसज्जित्ता सुओवएसेणं ।

सीसस देः आणं, तस्स इमं देह पच्छित्तं ॥११॥

पासमें प्रायश्चित्त देनेवालेके समीप जानेके लिये असमर्थ हो रहा है, तथा शोधिकारक भी अपने आश्रित स्थानसे उसके पासमें आनेके लिये असमर्थ हो रहा है ॥ ९ ॥

“अह पट्टवेइ सीसं” इत्यादि ।

ऐसी हालतमें वह तपस्वि उस शोधिकर प्रायश्चित्त प्रदानाके पास गृहार्थ पदोंसे युक्तकर अपने संदेशको देकर अपने शिष्यको भेजना है, उस संदेशमें वह शिष्यके सुखसे ऐसा कहलवाना है कि—हे आर्य ! मेरी अब देशान्तरमें आनेजानेकी शक्ति नहीं है, और आपके पास प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ ॥१०॥

“सो ववहारविहिण्णू” इत्यादि ।

तब वह संदेशवाहक शिष्यके सुखसे ऐसा सुनकर शास्त्रोक्त पद्धतिके अनुसार विचार करता है, कि इस प्रकारके अतिचार सेवीके

शोधिकारकनी पास प्रायश्चित्त लेवाने जर्ह शक्ये तेम नथी, तथा शोधिकारक (प्रायश्चित्त देनेवाले मुनि) पणु पोताना आश्रय स्थानेथी त्यां जर्ह शकवाने समर्थ नथी । ९ ।

“अह पट्टवेइ सीसं” इत्यादि—आ प्रकारनी परिस्थितिमां ते तपस्वी ते शोधिकारनी पास, तथं पट्टवेथी युक्ता एवे पोतानो संदेश लघने पोताना शिष्यने भोक्खे छे ते संदेश द्वारा ते शिष्य साथे एवुं कडेवरावे छे के “हे आर्य ! इवे एक जग्घाएथी जीअ जग्घाए गमन करी शकवाने समर्थ नथी, तेथी हुं आपनी पास आवी शकुं तेम नथी, पणु हुं आपनी आशानुसार प्रायश्चित्त लेवा मायुं छुं” । १० ।

“सो ववहारविहिण्णू” इत्यादि—त्यारे ते संदेशवाहकने मुजे एवुं सांभणीने ते शोधिकारक (गीतार्थ साधु) शास्त्रोक्त पद्धति अनुसार विचार करे छे के आ प्रकारना अतिचारोनुं सेवन करनारने आ प्रकारनुं प्रायश्चित्त

छाया--स व्यवहारविधिज्ञः, अनुपज्य श्रुतोपदेशेन ।

शिष्याय ददाति आज्ञां, तस्मै इदं देहि प्रायश्चित्तम् ॥११॥

गाथा--जेणऽन्नयाइ दिट्ठं सोहीकरणं परस्स कीरंतं ।

तारिसयं चैव पुणो, उत्पण्णं कारणं तस्स ॥१२॥

छाया--येन अन्यदा दृष्टं, शोधिकरणं परस्य क्रियमाणम् ।

तादृशकं चैव पुनः, उत्पन्नं कारणं तस्य ॥१२॥

गाथा--सो तस्मि चैव द्रव्ये खेत्ते काले य कारणे पुरिसे ।

तारिसयं चैव पुणो करित्तु आराधओ होइ ॥१३॥

छाया--स तस्मिन्नेव द्रव्ये क्षेत्रे काले च कारणे पुरुषे ।

तादृशकं चैव पुनः, कारयन् आराधको भवति ॥१३॥

लिये यह प्रायश्चित्त देना चाहिये अतः वह गूढार्थ पदोंसे युक्त करके प्रायश्चित्तको शिष्यसे कह देता है, और आज्ञा देता है, कि तुम जाकर मेरी ओरसे इस प्रायश्चित्तको देना ॥ ११ ॥

“ जेणऽन्नयाइ दिट्ठं ” इत्यादि ।

धारणाका नाम चतुर्थ व्यवहार इस प्रकारसे है--जिस साधुने किसी एक समय अतिचारवाले साधुको अपने अतिचारोंकी शुद्धि करते हुए देख लिया हो और अब उसे देखनेवाले साधुको या उसी प्रायश्चित्तको किये हुए पहिलेवाले साधुको कारण उपस्थित हो गया है ॥१२॥ तो वह मुनि उसी द्रव्यके होने पर उसी कालके होने पर उसी क्षेत्रके होने पर उसी कारणके होने पर उसी पुरुषके होने पर वैसेही प्रायश्चित्तको करवाता है, तोही आराधक होता है ॥१३॥ वैयावृत्त्य

हेवुं जेधंजे. तेथी ते गूढार्थपदोथी युक्त करीने. शिष्यने प्रायश्चित्त विधि कही हे छे, अने तेने जेवी आज्ञा करे छे के तमे जेधने मारा तरइथी तेमने आ प्रायश्चित्त हेजे. । ११ ।

इवे व्यवहारना योथा लेह इय 'धारणा' नुं स्पष्टीकरण करवामां आवे छे--“ जेणऽन्नयाइ दिट्ठं ” इत्यादि--केध साधुजे अतिचारथी युक्त जेवा केध साधुने पोताना अतिचारानी शुद्धि करतो जेथो होय, तयारभाह कयारेक ते (हेमनार) साधुने अथवा जेहे ते प्रायश्चित्त करेहु छे जेवा साधुने प्रायश्चित्त हेवुं पडे जेवुं कारण उपस्थित थयुं छेय, तो ते मुनि जेज द्रव्य, जेज काल, जेज क्षेत्र जेज कारण अने जेज पुरुष होय तयारे जेवुं ज प्रायश्चित्त जे करावे छे, तो ज तेने आराधक कही शकय छे. १२-१३

अवधारयत । स आगमव्यवहारः प्रत्यक्षारीक्षभेदेन द्विविधो ज्ञातव्यः ॥१॥ तत्र प्रत्यक्षः पुनरिन्द्रियज नोइन्द्रियजभेदेन द्विविधो बोध्यः । इन्द्रियज प्रत्यक्षस्तत्र पञ्चेन्द्रियार्थविषयकत्वेन पञ्चविधः । २। नोइन्द्रियजन्यः प्रत्यक्षस्तु संक्षेपतः त्रिविधो भवति । त्रैविध्यं तस्य केवलज्ञानमनःपर्यवज्ञानावधिज्ञानभेदाद् बोध्यम् ॥३॥ यस्य मुनेः परोक्षोऽपि आगमः वस्तु स्वरूपस्य सम्यग् निर्णायकत्वात् प्रत्यक्षागमसदृशो भवति । चन्द्रमुखीव-मुखे चन्द्रत्वमुपचर्य यथा रमणी चन्द्रमुखी-त्यभिधीयते तथैव उपचारात्-स मुनिरपि आगमव्यवहारवान् भवति ॥४॥ अमुं पारोक्षं व्यवहारं श्रुतधरा आगमतो व्यवहरन्ति ते श्रुतधरा के ? इत्याह-ते हि परवादिविद्रावणे गन्धहस्तिसदृशाः चतुर्दशपूर्वधरा दशपूर्वधरा नवपूर्वधराश्च बोध्याः ॥५॥ सम्प्रति आगमव्यवहारिणः प्रशंसापरां गाथांमाह-‘ जे जहमोल्लं ’ इत्यादि । यद् रत्नं यथा मूल्यं भवति तत् रत्नचाणिजो निपुणं यथा स्यात्तथा जानाति, इति=अमुना प्रकारेणैव प्रत्यक्षी=प्रत्यक्षज्ञानी अपि जानाति यत्, योऽतीचारवान् येन प्रायश्चित्तेन दत्तेन शुद्ध्यति, स तथैव अतीचारवते प्रायश्चित्तमपि ददाति ॥६॥ इत्थं यो मुनिः केवलज्ञानेन मनःपर्यव ज्ञानेन अवधिज्ञानेन चतुर्दशपूर्वधरत्वेन दश-पूर्वधरत्वेन नवपूर्वधरत्वेन वाऽतीचारविशुद्ध्ये यत् प्रायश्चित्तं ददाति, तत् प्रायश्चित्तदानम् आगमव्यवहारइत्युच्यते । अथ श्रुतनामकं द्वितीयं व्यवहारमाह-यो मुनिः कल्पस्य=बृहत्कल्पसूत्रस्य तथा-परमनिपुणस्य-प्रायश्चित्तविधौ स्फुटविचारयुक्तस्य व्यवहारसूत्रस्य च, एवकारोऽप्यर्थकः, तेन निशीथदशाश्रुतयोः संग्रहः, निशीथस्य दशाश्रुतस्य च, निर्युक्तिम् अर्थतो विजानाति, स मुनिः व्यवहारी अनुज्ञातः=कथितः । ७। तम्=व्यवहारिणमेव अनुपजन्=अनुवधन्न् अनुसरन् यो मुनिः अतीचारे सम्प्राप्ते यथोक्तम्=श्रुतोक्तिमनुसृत्य व्यवहारविधिं=प्रायश्चित्तं प्रयुनक्ति=ददाति, तस्य मुनेः श्रुतानुसारेण प्रायश्चित्तप्रदानरूप एष व्यवहारो वीतरागैः श्रुतव्यवहारः=श्रुतव्यवहार इति नाम्ना प्रज्ञप्तः=प्रख्यपितः ॥८॥ अथ आज्ञानामकं तृतीयं व्यवहारमाह-यः अशराक्रमः=गमनशक्तिवर्जितः तपस्वी शोधिकारक समीपे=प्रायश्चित्तदातुः समीपे गन्तुं न शक्नोति, शोधिकारकोऽपि देशात्=आश्रितस्थलात् आगन्तुं न शक्नोति ॥९॥ अथ=अनन्तरं स तपस्वी तस्य शोधिकारकस्य समीपे शिष्यं गूढार्थपदैः सन्दिश्य प्रस्थापयति=प्रेषयति, किं सन्दिश्य प्रेषयति ? इत्याह-हे आर्य ! देशान्तरगमननष्टवेष्टाः-अशक्त्या देशान्तरगमने नष्टाः वेष्टा येषां तादृशा वयम् सकाशे=त्यक्तः शोधिं=प्रायश्चित्तं कर्तुमिच्छामः, इति ॥१०॥ ततः सन्देशवाहकः शिष्यमुत्वात् स व्यवहारविधिज्ञः शोधिकारकः श्रुतोपदेशेन=शास्त्रेण अनुपज्य=सन्देशं यथावद् विचार्य “ तस्मै

अतीचारसेविने मुनये इदं प्रायश्चित्तं देहि ” इति गूढार्थपदैः तस्मै शिष्याय आज्ञां ददाति, तन् आज्ञानामरुत्कृतीयो व्यवहारः ॥११॥ इति । अथ-धारणानामरुत्कं चतुर्थं व्यवहारमाह-येन साधुना अन्वदा=अन्वयस्मिन् सवये अतीचारवत्तोऽन्यस्य साधोः क्लिपमाणं शोधिरुणं=प्रायश्चित्तं दृष्टं, तस्य साधोश्चापि पुनः तादृशमेव कारणं=प्रायश्चित्तकारणं समुत्पन्नम् । १२। य मुनिः तस्मिन्नेव द्रव्ये क्षेत्रे काले कारणे पुरुषे च सति तादृशमेव प्रायश्चित्तं कारयन् आराधको भवति ॥१३॥ अथवा-वैयावृत्त्यरुो यः शिष्यो देशद्विण्डको वापि यः शिष्यो भवति, स देशम् अवधारयन् यन् प्रायश्चित्तपदानां धारणं करोति, स धारणानामरुत्कृत्यर्थोव्यवहारो भवतीति ॥ १४ ॥ अथ जीवनामरुत्कं पञ्चमं व्यवहारमाह-यश्च व्यवहारो बहुश्रुतैः साधुभिः बहुशः=अनेकराम् वृत्तः=आचरितः, अन्यैश्च स व्यवहारो न निवारितः=न प्रनिषिद्धः । ततश्च स व्यवहारः वृत्तानुवृत्तपट्टत=परम्परया प्रवृत्ति प्राप्नो भवति । एतत् प्रायश्चित्तं जीतेन=जीतव्यवहारेण कृतं भवति । जीवनामरुत्कव्यवहारनिष्पन्नमिदं प्रायश्चित्तमिति शब्दः ॥ १५ ॥ इति ।

अथ आगमादीनाम् उत्सर्गापवादं प्राह—‘जहा से’ इत्यादिना तस्य=व्यवहर्तुः-प्रायश्चित्तदातुः तत्र-तेषु आगमादिव्यवहारेषु मध्ये, तस्मिन् वा प्रायश्चित्तदानादि व्यवहारकाले, तस्मिन् वा व्यवहर्तव्ये वस्तुनि विषये यथा=यथाप्रकारः-केवलादीनामन्यतमः आगमः स्यात्, तदा आगमेन व्यवहारं प्रस्थापयेत्=प्रवर्त्तयेत् न तु श्रुतादिभिः, आगमोपेक्षया तेषामप्राधान्यात् आगमेऽपि

अथ सूत्रकार आगमादिकोंके उत्सर्ग और अपवादका कथन करते हैं—“जहा से” इत्यादि-प्रायश्चित्त दानाको उन आगमादि व्यवहारोंके बीचमें अथवा-प्रायश्चित्त देने आदिके समयमें अथवा व्यवहार करने योग्य वस्तुमें जिस प्रकारका केवल आदिकोंमेंसे कोई एक आगम होता है, उस समय उसी आगमसे व्यवहार चलाना चाहिये श्रुतादिसे व्यवहार नहीं चलाना चाहिये क्योंकि आगम आदिकी अपेक्षासे उनमें

इसे सूत्रकार आगम आदिकेना उत्सर्ग अने अपवादनुं कथन करे छे “जहां से” इत्यादि — प्रायश्चित्तदाताये, आगमादि ने व्यवहारो कइया छे, तेमांथी आगमने (केवल आदि आगमने) ने व्यवहार मध्ये शक्य छेय ते समये आगमने आधारे न व्यवहार अज्ञाववे लोभये-श्रुत आदिने आधारे व्यवहार अज्ञाववे लोभये नहीं अरेके के न्यां सुधी आगमने आधारे प्रायश्चित्त आपी शक्य तेम छेय त्यां सुधी श्रुतादिने आधारे प्रायश्चित्त आपवुं लोभये नहीं, कारणे के श्रुतादि करतां आगममां

केवलज्ञानादिपूर्वपर्यन्ते षड्विधे पूर्वस्मिन् सति परेण परेण व्यवहारो न प्रकल्पनीयः, उत्तरोत्तरापेक्षया पूर्वपूर्वस्य सातिशयत्वेन वलीयस्त्वादिति १। यदि तत्र आगमो न स्यात्, तर्हि तत्र यथाप्रकारक श्रुत भवेत्, तेन व्यवहारं प्रस्थापयेत् २। यदि तत्र श्रुतं नो भवेत्तदा आज्ञया व्यवहारं प्रकल्पयेत् ३। आज्ञाया अभावे धारणया ४, तदभावे तु जीवेन व्यवहारं प्रकल्पयेत् । एतन्निगमयन्नाह-भागमेन यावद् जीवेन=भागमादि जीतान्तैरित्येतै-पञ्चभिः व्यवहारं प्रस्थापयेदिति सामान्यतो निगमनम् । विशेषतस्तु-यथा यथा तस्य तत्र आगमो यावद् जीतं

अप्रधानता है, केवलज्ञानसे लेकर पूर्व पर्यन्तके छह आगममें भी पूर्व पूर्वके होने पर आगे २ के आगमसे व्यवहार नहीं चलाना चाहिये क्योंकि उत्तर उत्तरकी अपेक्षासे पूर्व २में सातिशयता होनेसे अधिक बलवत्ता है, यदि वहाँ आगम न हो तो फिर जिस प्रकारका वहाँ श्रुत हो उससे व्यवहार चलाना चाहिये यदि वहाँ श्रुत न हो तो फिर वहाँ आज्ञासे व्यवहार चलाना चाहिये आज्ञाके अभावमें धारणासे और धारणाके अभावमें जीतसे व्यवहार चलाना चाहिये । यही बात “ आगमेन यावत् जीतेन ” इस सूत्र द्वारा प्रकटकी गई है, कि आगमसे लेकर जीत तकके पांच व्यवहारोंसे व्यवहार करनेवाला अपना व्यवहार चलावे । इस प्रकारका यह कथन सामान्य उत्सर्ग रूपसे कहा गया है, परन्तु विशेष रूपसे अपवाद रूपसे यह कथन इस प्रकारसे भी कहा गया है, कि व्यवहार करनेवाला जैसा

प्रधानता रखेगी छे. केवलज्ञानथी लधने पूर्व पर्यन्तना छ आगमोभांथी पूर्व पूर्वनो सहभाव डोय त्यारे उत्तर उत्तरने आधारे व्यवहार यज्ञावयो लेधये नडी, कारणु के पाछगना प्रकारे करतां आगमना प्रकारेमा सातिशयता डोवाथी अधिक बलवत्ता छे. ले आगमनो व्यवहार शक्य न डोय तो ले प्रकारना श्रुतनो सहभाव डेय ते प्रकारना श्रुत द्वारा व्यवहार यज्ञावयो लेधये आज्ञाना अभावमां धारणा वडे अने धारणाया अभावमां श्रुत वडे व्यवहार यज्ञावयो लेधये. ये ज वात “ आगमेन यावत् जीतेन ” आ सूत्र द्वारा प्रकट करनामां आवी छे अथे के व्यवहारिके आगमथी लधने श्रुत पर्यन्तना पांच व्यवहारो द्वारा पोतानो व्यवहार (अतिथारोनी शुद्धि करवावा इपे व्यवहार) यज्ञावयो लेधये आ प्रकारतुं आ कथन सामान्य उत्सर्ग इपे समझतुं, परन्तु अपवाद इपे अडी आ प्रमाणु कडे-

સ્વાત્ તમા તથા વ્યવહારં પ્રસ્થાપયેન્નતુ પ્રવચનવિરુદ્ધે વ્યવહારં પ્રસ્થાપયેદિતિ-
 નિગમનમ્ ૨. સમ્પતિ એતૈરાગમાદિભિઃ વ્યવહાર્તુઃ ફલં પ્રશ્નદ્વારેણાહ-‘ સે
 કિમાહુ ’ इत्यादिना, ‘ से ’ तत्=पञ्चविधं व्यवहारं किम्=किमर्थम् आहुः=कथ-
 यन्ति, एकेन आगमव्यवहारेणैवेष्टसिद्धेः, यतः श्रमणा निर्ग्रन्था आगमबलिकाः=
 आगमबलसम्पन्ना एव भवन्ति ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति-इत्येतं पञ्चविधं=
 पञ्चप्रकारकं व्यवहारं-व्यवहारमाणइत्यग्रेण सम्बन्धः यदा-यदा=यस्मिन् यस्मिन्

जहाँ आगमादि हो उससे वहाँ अपना व्यवहार चलावे अर्थात् आगम
 न हो तो श्रुतसे श्रुत न हो तो आज्ञासे आज्ञा न हो तो धारणासे
 और धारणा न हो तो जीतसे अपना व्यवहार चलावे, परन्तु वह प्रव-
 चनसे विरुद्ध व्यवहारोंसे अपना व्यवहार न चलावे ।

अब प्रश्नकर्ता ऐसा प्रश्न पूछता है, कि इन आगमादिकोंके अनु-
 सार व्यवहारकर्ताको क्या फल होता है ? यही बात-“ से किमाहु इस
 सूत्र द्वारा प्रश्न रूपमें प्रकटकी गई हैं, अर्थात् यह जो पांच प्रकारका
 व्यवहार कहा गया है, सो किसलिये कहा गया है ?-क्योंकि एक आगम
 व्यवहारसेही इष्ट फलकी सिद्धि हो जाती है, कारण जो
 श्रमण जन होते हैं वे आगमरूप बलसे सम्पन्नही होते हैं,
 अर्थात् आगम रूप बलसे सम्पन्नही श्रमण जन होते हैं-इस
 शिष्यके प्रश्नके उत्तरमें प्रभु कहते हैं-“ इत्येतं ” इत्यादि-इस प्रका-
 रके पांच प्रकारके व्यवहारको जब २ जहाँ २ तत्र २ वहाँ २ अनिश्रि-

वामां आभ्युं छे-“ न्यां आगम आदि जेनो सदभाव डोय तेना द्वारा व्यव-
 હારિકે વ્યવહાર ચલાવવો જોઈએ ” એટલે આગમ ન હોય તો શ્રુત વડે,
 શ્રુત ન હોય તો અજ્ઞા વડે, આજ્ઞા ન હોય તો ધારણા વડે, અને ધારણા
 ન હોય તો છુત વડે તે પોતાનો વ્યવહાર ચલાવે, પરન્તુ પ્રવચનની વિશ્-
 દ્ધનો વ્યવહાર તો તેણે ચલાવવો જોઈએ નહીં.

પ્રશ્ન-“ આગમાદિકો અનુસાર વ્યવહાર કરનારને કયા ફલની પ્રાપ્તિ
 થાય છે ? ” એ જ વાત “ સે કિમાહુ ” ઇત્યાદિ સૂત્ર દ્વારા પ્રશ્ન રૂપે પ્રકટ
 કરવામાં આવી છે. પ્રશ્નકર્તા એ વાત પૂછવા માગે છે કે “ એક આગમ
 વ્યવહાર વડે જ ઇષ્ટફલથી સિદ્ધિ થઈ જાય છે, તો પાંચ પ્રકરના વ્યવહારનું
 શું પ્રયોજન છે ? શ્રમણો તો આગમરૂપ બલથી સંપન્ન જ હોય છે, તો
 આગમ વ્યવહાર સિવાયના વ્યવહારોની શી આવશ્યકતા છે ?

ઉત્તર-“ इत्येतं ” ઇત્યાદિ-આ પાંચ પ્રકારના વ્યવહારને ત્યારે ત્યારે
 અને ત્યાં ત્યાં ચલાવવાની આવશ્યકતા જણાય, ત્યારે ત્યારે અને ત્યાં ત્યાં

કાલે યત્ર યત્ર=યસ્મિન્ યસ્મિન્ પ્રયોજને વા ક્ષેત્રે વા યો ય ઉચિતઃ, તદા તદા= તસ્મિન્કાલે તત્ર તત્ર=તાસ્મિન્ તસ્મિન્ પ્રયોજને વા ક્ષેત્રે વા અનિશ્રિતોપાશ્રિ- તમ્-અનિશ્રિતૈઃ=પર્યાશસાદોપરહિતૈસ્તીર્થકરગણધરાદિભિઃ ઉપાશ્રિતઃ=સ્વીકૃત- સ્તમ્, અથવા-‘ અનિશ્રિતોપાશ્રિતમ્ ’ ઇતિ ક્રિયાવિશેષણમ્ । તત્ર-નિશ્રિતઃ= શિષ્યસ્વમુપાગતઃ, ઉપાશ્રિતઃ=શિષ્યૈવ વૈયાટ્યકારકઃ, નિશ્રિતશ્ચ-ઉપાશ્રિત

તોપાશ્રિત હોકર જો શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ અચ્છી તરહસે ચલાતા હૈ, વહ શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ આજ્ઞાકા આરાધક હોતા હૈ, તાત્પર્ય હસકા ઁસા હૈ-જો શિષ્યને ઁસી આશંકાકી હૈ કિ શ્રમણ નિર્ગ્રન્થકો ઁક આગમ વ્યવ- હારકાહી આશ્રય કરના ચાહિયે ઁર ઁસસેહી અપના વ્યવહાર ચલાના ચાહિયે ઁસ વ્યવહારોંકી ઁસે ક્યા આચ્છકતા હૈ, સો હસકા ઁત્તર યહાં સૂત્રકારને હસ પ્રકારસે દિયા હૈ-કિ જિસ ૨ કાલમેં જિસ ૨ પ્રયો- જનમેં અથવા જિસ ૨ ક્ષેત્રમેં જો ૨ વ્યવહાર ઁચિત હો ઁવં ઁસ ઁસ કાલમેં ઁસ ૨ પ્રયોજનમેં અથવા ઁસ ૨ ક્ષેત્રમેં જો ૨ વ્યવહાર સર્વ પ્રકારકે આશંસા દોષોંસે વિહીન હુઁ તીર્થકરોં દ્રાગ સ્વીકૃત હુઁા હો ઁસ ૨ વ્યવહારસે અપને વ્યવહારકો કરનેવાલા ચલાનેવાલાહી શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ આજ્ઞાકા આરાધક હોતા હૈ । યહાં “ અનિશ્રિતોપાશ્રિત ” પદકો “ વ્યવહાર ” હસ પદકા વિશેષણ માનકર ઁસા અર્થ કિયા ગયા હૈ, અથવા “ અનિશ્રિતોપાશ્રિત ” હસ પદકો જવ ક્રિયા વિશેષણ

અનિશ્રિતોપાશ્રિત થઇને જે શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ સારી રીતે ચલાવે છે, તે શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ જિનાજ્ઞાને આરાધક ગણાય છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જે શિષ્યે એવો સંદેહ કર્યો છે કે શ્રમણ નિર્ગ્રન્થે એક આગમ વ્યવ- હારનો જ આધાર હોવો જોઇએ અને તેની મદદથી જ પોતાનો વ્યવહાર ચલાવવો જોઇએ—અન્ય વ્યવહારોની આવશ્યકતા જ શી છે ! તે તેનો ઁત્તર સૂત્રકારે અહીં આ પ્રમાણે દીધો છે—

“ જે જે કાળે, જે જે પ્રયોજનમાં અથવા જે જે ક્ષેત્રમાં જે જે વ્યવહાર ઁચિત હેય, અને તે તે કાળે, તે તે પ્રયોજનમાં અથવા તે તે ક્ષેત્રમાં જે જે વ્યવહાર સર્વ પ્રકારના આશંસા દોષોથી વિહીન અને ત્રા તીર્થકરો દ્વારા સ્વીકૃત થયો હોય, તે તે વ્યવહાર પ્રમાણે પોતાનો વ્યવહાર ચલાવનાર શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ જ ભગવાનની આજ્ઞાને આરાધક ગણાય છે અહીં “ અનિશ્રિતોપાશ્રિત ” આ પદને “ વ્યવહાર ” આ પદનું વિશેષણ માનીને આ પ્રમાણે અર્થ કરવામા આવ્યો છે. પણ “ અનિશ્રિતોપાશ્રિત ” આ પદને જે ક્રિયાવિશેષણ માનવામાં આવે તે આ પ્રમાણે અર્થ થાય છે—

अग्नि-निश्रितोपाश्रितौ, तौ न विद्येते यस्मिंस्तद् यथा स्यात्तथा-अभिग्रहविशेष
 यो, य नदीनजिपान अदीनस्तु पुगननशिष्येथ वैयावृत्त्यमकारयन्नित्यर्थः । यद्वा-
 निश्रितं गगना उपाश्रितं-द्वेषथ निश्रितोपाश्रिते, ते उभे न विद्येते यस्मिंस्तद्
 यथास्यत्तः गगनसमितिः सन्नित्यर्थः । अथवा-निश्रितं च-आहारादि लाभे-
 च्छा, उपाश्रितं च शिष्यदायककुलापेक्षा, एतद्दुष्टं नास्ति यस्मिंस्तद् यथास्या-
 च्छा-आहारादिदार्थलाभेच्छाहितः, शिष्यदायककुलापेक्षा रहितश्च सन्नित्यर्थः ।
 तस्यज-व साक्षर्यं व्यवहारमागः=पूर्वोक्तव्यवहारं कुर्वाणः आज्ञायाः=जिनाज्ञाया आ-
 ताता नयतीति । अथवापञ्चव्यवहारेण व्यवहरणं प्रोक्तं भगवद्विरितिः सू० ११ ॥

अथवापञ्चारात् संवत्तानां तत्प्रतिपन्नधृतानामसंयतानां च सुप्तजागररररू-
 पमाह—

गृथम्—संजतमणुस्साणं सुत्ताणं पंच जागरा पण्णत्ता, तं
 जहा-सदा जाव फान्ना । संजतमणुस्साणं-जागराणं पंच सुत्ता
 पण्णत्ता, तं जहा-सदा जाव फान्ना । असंजयमणुस्साणं सुत्ताणं
 वा जागराणं वा पंच जागरा पण्णत्ता, तं जहा-सदा जाव
 फान्ना ॥ सू० १२ ॥

रग्ना जाता है, तब हम पक्षमें ऐसा अर्थ होता है, कि अभिग्रह विशे-
 यती अपेक्षा करके नवीन शिष्योंको दीक्षा न देते हुए और पुगने
 शिष्योंसे वैयावृत्त्य न कराते हुए अथवा रागद्वेषसे रहित होते हुए
 अथवा-आहारादिक लाभकी इच्छासे और उपाश्रित-शिष्यदायक
 कुलापेक्षासे रहित होते हुए कल्पके अनुसार पूर्वोक्त व्यवहारको
 करनेवाला अथवा निर्ग्रन्थ जिनाज्ञाका आगधक होता है, इस तरह
 पंचविध व्यवहारमें व्यवहार करना भगवान्ने कहा है ॥ सू० ११ ॥

अग्नि-निश्रितोपाश्रितौ नवीन शिष्योंसे दीक्षा न देनेवाला, अने
 पूजा-प्रिये-पाने वैयावृत्त्य नवीन शिष्योंसे दीक्षा न देनेवाला अथवा रागद्वेषसे रहित
 होनेवाला अथवा आहारादिक लाभकी इच्छासे अने उपाश्रित-शिष्यदायक
 कुलापेक्षासे रहित होनेवाला यथा इति (नियम) अनुसार पूर्वोक्त
 व्यवहार में व्यवहार अथवा निर्ग्रन्थ जिनाज्ञाको आगधक गणाय छे.
 ॥ सू० ११ ॥ अथवापञ्चव्यवहारेण व्यवहारं कुर्वन्तु अक्षयवान्
 ॥ सू० ११ ॥

छाया—संयतमनुष्याणां सुप्तानां पञ्च जागराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—शब्दा यावत् स्पर्शाः । संयतमनुष्याणां जागराणां पञ्च सुप्ताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—शब्दा यावत् स्पर्शाः । असंयतमनुष्याणां सुप्तानां वा जागराणां वा पञ्चजागराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—शब्दा यावत् स्पर्शाः ॥ सू० १२ ॥

टीका—‘संजयमणुस्साणं’ इत्यादि—

सुप्तानां=निद्राव्रतां संयतमनुष्याणां=साधूनां पञ्च जागराः—जाग्रतीति जागराः =जागर इव जागराः—असुप्तवत् प्रज्ञप्ता । ते के ? इत्याह—तद्यथा—शब्दाः यावत् स्पर्शा इति । अयं भावः—शब्दादयो हि सुप्तानां संयतानां प्रज्वलद्गलवदप्रतिहतशक्ति-मन्तो भवन्ति, तस्मिन् काले तेषां कर्मबन्धकारणस्य निद्रारूपप्रमादस्य सद्गानात्, ततश्च सुप्तावस्थायां प्रतिबुद्धास्ते शब्दादयः कर्मबन्धकारणं भवन्तीति । तथा—

श्रमणके प्रस्तावसेही अब सूत्रकार संयतोके और इनके प्रतिपक्ष असंयतोके सुप्त एव जागर स्वरूपका कथन करते हैं—

टीकार्थ—‘संजयमणुस्साणं सुत्ताणं पंच जागरा पणत्ता’ इत्यादि सूत्र १२॥
जो संयत मनुष्य-साधुजन निद्रावाले हैं, उनके असुप्तकी तरह पांच जागरण कहे गये हैं वे इस प्रकारसे हैं—शब्द यावत् स्पर्श इसका भाव ऐसा है—जो संयतजन सुप्त हैं, उनको शब्दादिक प्रज्वलित अग्निकी तरह अप्रतिहत शक्तिवाले होते हैं. क्योंकि उस कालमें उनके कर्मबन्धका कारण-भूत निद्रारूप प्रमादका सद्भाव होता है, इसलिये सुप्त अवस्थामें प्रतिबुद्ध हुए अप्रतिहत शक्तिवाले बने हुए वे शब्दादिक कर्मबन्धके कारण होते हैं। तथा जो संयतजन अनिद्रित हैं—सचेन हैं—उनके पांच जाग-

श्रमणुने। प्रस्ताव आसी रह्यो छे, तेथी हवे सूत्रकार संयतो अने असंयतोना सुप्त अने जागरण स्वरूपतुं कथन करे छे—

टीकार्थ—“संजयमणुस्साणं सुत्ताणं पंच जागरा पणत्ता” इत्यादि—

जे संयत मनुष्यो (साधुयो) निद्रावाणा (असावधान) होय छे, तेमना असुप्तना जेवां पांच जागरण कह्या छे—ते पांच जागरणो शब्दथी लघने स्पर्श पर्यन्तना श्रद्धण करवा. आ कथनने। भावार्थ नीचे प्रमाणे छे—

जे संयतजन सुप्त छे तेमने माटे शब्दादिक प्रज्वलित अग्निनी जेम अप्रतिहत शक्तिवाणां होय छे, कारण ते काले तेमनानां कर्मबन्धना कारणभूत निद्रा रूप प्रमादने। सद्भाव होय छे. तेथी सुप्त अवस्थामां प्रतिबुद्ध थयेता अप्रतिहत शक्तिवाणा अनेता ते शब्दादिक कर्मबन्धना कारणभूत अने छे. जे संयतजन अनिद्रित (सावधान) छे, तेमना पांच जागरण सुप्तना

જાગરાણામ્=અનિદ્રિતાનાં સાધૂનાં પશ્ચ સુપાઃ=સુપાઇવ-નિદ્રિતવત્, પ્રજ્ઞાતાઃ । તે કે ? इत्याह-गवदा यावत् स्पर्शाः । जागरितानां साधूनां शब्दादयः पञ्च भस्मस्त्रिणाग्निवत् प्रतिहतशक्तयो भवन्ति, तस्मिन् काले कर्मबन्धकारणीभूतस्य प्रमादप्यामत्त्यात्, तत्रश्च जाग्रदस्थायीं ते न तेषां कर्मबन्धकारणं भवन्तीति । अथ अपंयतानाश्रित्य प्राह- ' असंजय ' इत्यादिना । सुप्तानां वा जागराणां वा अपंयतमनुष्याणाम्=अपंयमिनां शब्दादयः पञ्च जागराः=अनिद्रिता भवन्ति । अथ भावः-असंयतादि प्रमादवन्तो भवन्ति, अत्रस्तेषां स्वप्नजाग्रदुभयावस्थायामपि शब्दादयोऽप्रतिहतशक्ति कृत्वात् कर्मबन्धहेतुता भवन्तीति ॥ सू० १२ ॥

रण સુપ્તકી તરહ કહે ગયે હૈં-નિદ્રિતકી તરહ પ્રકટ ક્રિયે ગયે હૈં, વે પાંચ જાગરણ શબ્દસે લેકર સ્પર્શ તક હૈં, તાત્પર્ય એસા હૈ, કિ જો સ્વપ્નજન જાગરિત હોતે હૈં, ઉનકે શબ્દાદિક પાંચ જાગરણ ભસ્મસે આઠઠાદિન છુઈ-ઠંકી છુઈ અગ્નિકી તરહ પ્રતિહત શક્તિવાલે હોતે હૈં, કયોંકિ ઉસ કાલમેં કર્મબન્ધકે કારણભૂત પ્રમાદકા અસત્વ રહતા હૈ, હસલિયે વે જાગ્રત અવસ્થામેં ઉનકો કર્મબન્ધકે કારણ નહીં હોતે હૈં.

“ असंजय ” इत्यादि-असंयत मनुष्य चाहे सुप्त हो चाहे जागरित हो उनके तो शब्दादिक पांच जागरण सदा अनिद्रितही होते हैं, इसका भाव ऐसा है, असंयत जीव प्रमादवाले होते हैं, इसलिये उन्हें स्वप्न अवस्थामें एवं जाग्रत अवस्थामें दोनों अवस्थाओंमें भी शब्दादिक अप्रतिहन शक्तिवाले होनेसे कर्मबन्धके हेतु होते हैं ॥ सू० १२ ॥

સમાન કહ્યા છે-નિદ્રિતના જેવા પ્રકટ કરવામા અગ્નિ છે શબ્દથી લઇને સ્પર્શ પર્યન્તના પાંચ જાગરણ સમજવા. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જે અસંયત મનુષ્યો જાગૃત હોય છે, તેમના શબ્દાદિક પાંચ જાગરણ જેના પર રાખ વર્ગી ગઈ છે એવા અગ્નિના જેવા પ્રતિહત શક્તિવાળા હોય છે, કારણ કે તે કાળે કર્મબન્ધના કારણભૂત પ્રમાદનો અભાવ રહે છે, તેથી જાગૃત અવસ્થામાં તેમને કર્મબન્ધ થવાના કારણોનો અભાવ રહે છે.

“ असंजय ” इत्यादि--असंयत मनुष्यो लसे सुप्त होय के लसे जगृत होय, पणु तेमने भाटे तो शब्दादिक पांच जगरण सदा अनिद्रितसमान ज होय છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-અસંયત મનુષ્યો પ્રમાદ વાળા હોય છે. તેથી તેમને ભાટે તો સુપ્ત અને જાગૃત આ બંને અવસ્થામાં શબ્દાદિક અપ્રતિહત શક્તિવાળા હોવાથી કર્મબન્ધમાં કારણભૂત બને છે. સૂ. ૧૨.

संयतासंयताधिकारात्तदुभयसंबद्धं सूत्रमाह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं आदिज्जंति तं जहा-
पाणाइवाएणं जाव परिग्रहेणं । पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं वसन्ति,
तं जहा-पाणाइवायवेरमणेणं जाव परिग्रहवेरमणेणं ॥सू० १३॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः जीवा रज आददति, तद्यथा—प्राणातिपातेन यावत्
परिग्रहेण । पञ्चभिः स्थानैः जीवा रजो वसन्ति, तद्यथा—प्राणातिपातविरमणेन
यावत् परिग्रहविरमणेन ॥ सू० १३ ॥

टीका—‘ पंचहिं ठाणेहिं ’ इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः जीवाः रजः—रज्यते=जीवस्य शुद्धस्वरूपं मलिनं क्रियते-
जनेनेति—रजः कर्म आददति=गृह्णन्ति बध्नन्तीति यावत् । तद्यथा—प्राणातिपातेन
यावत् परिग्रहेण । प्राणातिपातादिपरिग्रहान्ताः पञ्च जीवस्य कर्मबन्धकारणानि
भवन्तीति भावः । तथा—जीवाः पञ्चभिः—स्थानैः रजः=कर्म वसन्ति—उद्विलन्ति क्षय-
यन्तीति यावत् । तद्यथा—प्राणातिपातविरमणेन यावत् परिग्रहविरमणेनेति ॥सू० १३॥

संयत और असंयतके अधिकारसे इन दोनोंसे संबद्ध सूत्रका
कथन सूत्रकार करतेहैं—‘पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं आदिज्जंति’ इत्यादि
टीकार्थ—पांच कारणोंसे जीव रजको जीवके शुद्ध स्वरूपको मलिन
करनेके कारणके कारण कर्मरजको बांधते हैं, वे पांच कारण ये हैं—
प्राणातिपात यावत् परिग्रहका तात्पर्य यही है, कि प्राणातिपातसे लेकर
परिग्रह तकके पांचोंही पाप जीवको कर्मबन्धके कारण होते हैं । तथा
जीव पांच कारणोंसे कर्मोंका क्षय करते हैं, वे पांच कारण ये हैं प्राणा-
तिपात विरमण यावत् परिग्रह विरमण ॥ सू० १३ ॥

संयत અને અસંયતના અધિકાર સાથે સંબદ્ધ એવા કર્મરજ વિષયક
સૂત્રનું હવે સૂત્રકાર કથન કરે છે. “ પંચ હિં ઠાણેહિં જીવા રયં આદિજ્જંતિ ” ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—પાંચ કારણોને લીધે જીવ પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને મલિન કરનાર રજની
(કર્મરજની) જમાવટ કરે છે. તે પાંચ કારણો નીચે પ્રમાણે છે—

પ્રાણાતિપાતથી લઈને પરિગ્રહ પર્યન્તના કારણો અહીં ગ્રહણ
કરવા બેઠાં છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે પ્રાણાતિપાતથી લઈને પરિગ્રહ
પર્યન્તના પાંચે પાપ જીવને કર્મોના બન્ધ કરાવવામાં કારણભૂત બને છે.
તથા પ્રાણાતિપાત વિરમણથી લઈને પરિગ્રહ વિરમણ પર્યન્તના પાંચ કારણોને
લીધે જીવ કર્મોના ક્ષય કરે છે. ॥ સૂ. ૧૩ ॥

संयतानेवाधिकृत्य सम्प्रति सूत्रद्वयमाह—

मूलम्—पंचमासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगा-
रस्स कल्पंति पंच दत्तीओ भोजणस्स पडिगाहेत्तए पंच पाण-
गस्स ॥ सू० १४ ॥

छाया—पञ्चमासिकीं खलु भिक्षुप्रतिमां प्रतिपन्नस्य अनगरस्य कल्पन्ते
पञ्च दत्तयो भोजनस्य प्रतिग्रहीतुं पञ्च पानकस्य ॥ सू० १४ ॥

टीका—‘ पंचमासियं ’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० १४ ॥

मूलम्—पंचविहे उवघाए पणत्ते, तं जहा-उग्गमोवघाए
१, उप्पायणोवघाए २ एसणोवघाए ३ परिकम्मोवघाए ४ परि-
हरणोवघाए ५। पंचविहा विसोही पणत्ता, तं जहा-उग्गमवि-
सोही १ उप्पायणविसोही २ एसणाविसोही ३ परिकम्मवि-
सोही ४ परिहरणविसोही ४ ॥ सू० १५ ॥

छाया—पञ्चविधउपघातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—उद्गमोपघातः १ उत्पादनोपघातः
२ एषणोपघातः ३ परिकर्मोपघातः ४ परिहरणोपघातः ५। पञ्चविधा विशोधयः
प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—उद्गमविशोधिः १ उत्पादनाविशोधिः २ एषणाविशोधिः ३ परि-
कर्मविशोधिः ४ परिहरणविशोधिः ५ ॥ सू० १५ ॥

टीका—‘ पंचविहे ’ इत्यादि—

उपघातः=अशुद्धता, स पञ्चविधः प्रज्ञप्तः । पञ्चविधत्वमेवाह—तद्यथा—उद्गमो-
पघातः—उद्गमैः=उद्गमदोषैराधाकर्मादिभिः षोडशविधैर्भक्तपानोपकरणवसतीनाम्

संघतोको लेकरही सूत्रकार अब ये दो सूत्र और कहते हैं—

‘पंचमासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स’ इत्यादि १४॥
टीकार्थ—पंचमासिकी भिक्षु प्रतिमाको प्राप्त मुनिके लिये पांच दत्तियां
भोजनकी और पांचही दत्तियां पानककी लेना शास्त्रविहित हैं ॥ सू. १४॥

संयताने अनुवक्षीने न् उवे सूत्रकार नीचेना ये सूत्रो उडे छे.

टीकार्थ—“ पंचमासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स ” इत्यादि—

पांच मासिक भिक्षु प्रतिमानी आराधना करनेर मुनिने पांच बोजनकी
दत्तियो अने पांच पानक (पेय) नी दत्तियो देवी उदये छे. ॥ सू. १४ ॥

ઉપઘાતઃ=અશુદ્ધતા ૧। ઉત્પાદનોપઘાતઃ-ઉત્પાદનાભિઃ=ધાત્ર્યાદિભિઃ પોલશમિ-
રુત્પાદનાદોષૈર્મક્તપાનાદીનામશુદ્ધતા ૨। ઇષ્ણોપઘાતઃ-ઇષ્ણયા=શક્લિતાદિભિર્દ-
શમિરેષ્ણાદોષૈરુપઘાતઃ ૩। પરિકર્મોપઘાતઃ-પરિકર્મ-વસ્ત્રપાત્રાદેઃ છેદનસીવનાદિ,
તેન ઉપઘાતઃ=વસ્ત્રપાત્રાદેરકલ્પનીયતા । તત્ર વસ્ત્રસ્ય પરિકર્મોપઘાતો યથા—

‘પંચવિહે ઉવઘાણ પળ્લન્તે’ ઇત્યાદિ સૂત્ર ૧૫॥

ટીકાર્થ-ઉપઘાત શબ્દકા અર્થ અશુદ્ધતાહૈ, યહ અશુદ્ધતા પાંચ પ્રકારકી
કહી ગઈ હૈ-ઉદ્ગમોપઘાત ૧ ઉત્પાદનોપઘાત ૨ ઇષ્ણોપઘાત ૩ પરિ-
કર્મોપઘાત ૪ ઓર પરિહરણોપઘાત ૫ પાંચ પ્રકારકી વિશોધિ કહી ગઈ
હૈ-જૈસે-ઉદ્ગમ વિશોધિ ૧ ઉત્પાદનાવિશોધિ ૨ ઇષ્ણાવિશોધિ ૩
પરિકર્મવિશોધિ ૪ ઓર પરિહરણ વિશોધિ ૫ ।

આધાકર્મ આદિ ૧૬ પ્રકારકે ઉદ્ગમ દોષોસે ભક્તપાન ઉપકરણ
હનકે આલયોકી-સ્થાનોકી અશુદ્ધતા યહ ઉદ્ગમોપઘાત હૈ ૧। ધાત્રી
આદિ ૧૬ પ્રકારકે ઉત્પાદના દોષોસે ભક્તપાન આદિકોકી અશુદ્ધતા
યહ ઉત્પાદનોપઘાત હૈ ૨। શક્લિત આદિ ૧૦ પ્રકારકે ઇષ્ણા દોષોસે
ભક્તપાન આદિકોકી અશુદ્ધતા ઇષ્ણોપઘાત હૈ ૩। વસ્ત્રપાત્ર આદિકોકા
છેદના સીના આદિ પરિકર્મ હૈ, હસસે જો વસ્ત્રપાત્ર આદિકી અકલ્પ-
નીયતા હૈ, વહ પરિકર્મોપઘાત હૈ ૪। વસ્ત્રકા પરિકર્મોપઘાત ઇસા હૈ-

“ પંચવિહે ઉવઘાણ પળ્લન્તે ” ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ-ઉપઘાત એટલે અશુદ્ધતા તે અશુદ્ધતા ૩૫ ઉપઘાતના નીચે પ્રમાણે
પાંચ પ્રકાર કહ્યાં છે—(૧) ઉદ્ગમોપઘાત, (૨) ઉત્પાદનોપઘાત, (૩) ઐષ્ણો-
પઘાત, (૪) પરિકર્મોપઘાત અને (૫) પરિહરણોપઘાત.

પાંચ પ્રકારની વિશોધિ (વિશુદ્ધતા) કહી છે—(૧) ઉદ્ગમવિશોધિ,
(૨) ઉત્પાદના વિશોધિ, (૩) ઐષ્ણાવિશોધિ, (૪) પરિકર્મવિશોધિ અને
(૫) પરિહરણ વિશોધિ.

આધાકર્મ દોષ આદિ ૧૬ પ્રકારના ઉદ્ગમ દોષો કહ્યા છે. આહાર, પાણી,
અને ઉપકરણના સ્થાનોની અશુદ્ધતાનું નામ ઉદ્ગમોપઘાત છે. ધાત્રીદોષ આદિ
૧૬ પ્રકારના ઉત્પાદના દોષોથી આહાર આદિકોમાં જે અશુદ્ધતા આવી
જાય છે તેનું નામ ઉત્પાદનોપઘાત છે. શક્લિત આદિ ૧૦ પ્રકારના દોષોથી
આહાર આદિકોમાં જે અશુદ્ધતા આવી જાય છે તેને ઐષ્ણોપઘાત કહે છે. વસ્ત્ર
પાત્ર આદિકોનું છેદન કરવું અથવા સાંધવું, તેનું નામ પરિકર્મ છે. તેને
કરણે વસ્ત્રાદિકોમાં જે અકલ્પનીયતા આવે છે તેને પરિકર્મોપઘાત કહે છે.
વસ્ત્રના પરિકર્મનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું હોય છે—“ તિળ્લુત્તારિ ફાલિયાણં ” ઇત્યાદિ.

“ તિળ્હુવરિફાલિયાણં, વત્થં જો ફાલિયં તુ સંસીવે ।

પંચ્છંદં ઇગતરં, સો પાત્રઙ્ આણમાઈણિ ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—ત્રયાણામુપરિ પાટિતાનાં વસ્ત્રં યઃ પાટિતં તુ સંસીવ્યેત્ ।

પશ્ચાનામેકતમત્ સ પ્રાપ્નોતિ આજ્ઞાદીનિ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

અર્થ ભાવઃ—યઃ પશ્ચાનામ્=ઝૂર્ણાદિ પશ્ચવિધાનાં વસ્ત્રાણાં મધ્યે એકતમત્=અન્યતમં વસ્ત્રં ત્રયાણાં પાટિતાનામ્=તિસ્ટુણાં ધિગ્ગલિકાનામ્ ઉપરિ પાટિતં તુ=યદિ સંસીવ્યેત્, તદા સ સાધુઃ આજ્ઞાદીનિ=આજ્ઞાવિરાધનાદિ દોષાન્ પ્રાપ્નોતીતિ । પાત્રસ્ય પરિકર્મોપઘાતો યથા—

“ અવલક્ષણેગચ્ચે, દુગતિગ અરેગચ્ચંધગં વાપિ ।

જો પાત્રં પરિચરુદ્ધ, પરં દિવદ્વાઓ માસાઓ ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—અવલક્ષણેકચ્ચંધં દ્વિકત્રિકાતિરેકચ્ચંધનં વાપિ ।

યઃ પાત્રં પરિવર્તયતિ પરં દ્વચપાર્દાત્ માસાત્ ॥૧॥ ઇતિ ।

“ તિળ્હુવરિ ફાલિયાણં ” ઇત્યાદિ ।

જો સાધુ ઊર્ણા આદિ પાંચ પ્રકારકે વસ્ત્રોમ્નેસે કિસી એક વસ્ત્રકો ફટે હુપ્ તેને થેગલીસે અધિક થેગલી લગાવે વહ સાધુ આજ્ઞા વિરાધના આદિ દોષોકો પ્રાપ્ત કરતા હૈ, પાત્રકા પરિકર્મોપઘાત હસ પ્રકારસે હૈ—

“ અવલક્ષણેગચ્ચે ” ઇત્યાદિ ।

જો પાત્ર સ્વરૂપ રહિત હો એવં એક બન્ધનવાલા હો એસે ઉસ પાત્રકો જો સાધુ ૧॥ ડેઠ માસસે અધિક સમય તક રખતાહૈ, વહ સાધુ આજ્ઞા-વિરાધના આદિ દોષવાલા હોતા હૈ, અચ્છે લક્ષણવાલા પાત્ર એક બન્ધનસે યુક્ત હુઆ ખી યદિ ૧॥ડેઠ માહસે ખી અધિક કામમે લે લિયા જાતા હૈ, તો ઉસસે સાધુકો આજ્ઞા વિરાધના આદિ દોષ નહીં લગતા હૈ ।

જે સાધુ ઉર્ણા (ઉનના બનાવેલાં) આદિ પાંચ પ્રકારના વસ્ત્રોમાંથી કોઈ પણ એક પ્રકારના કાપેલા વસ્ત્રને ત્રણ કરતાં વધારે થીગડાં લગાવે છે, તો તે સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાય છે. પાત્રનો પરિકર્મોપઘાત આ પ્રકારનો કહ્યો છે. “ અવલક્ષણેગચ્ચે ” ઇત્યાદિ—

જે પાત્ર સ્વરૂપ રહિત હોય અને એક બન્ધનવાળું હોય, તે પાત્રને ૧॥ માસ કરતાં અધિક સમય સુધી પોતાની પાસે રાખનાર સાધુ આજ્ઞા-વિરાધના આદિ દોષવાળો ગણાય છે. જે પાત્ર સારાં લક્ષણોવાળું અને એક બન્ધનવાળું હોય, તેને ૧॥ માસથી અધિક સમય સુધી ઉપયોગમાં લેવામાં આવે તો તેથી સાધુને આજ્ઞાવિરાધના આદિ દોષ લાગતા નથી. જે અથવા

अयं भावः—यत् पात्रम् अपरुक्षणैकवन्धम्—अपगतं लक्षणं=स्वरूपं यस्य तत् एवंभूतं सत् एकवन्धम्=एकवन्धनयुक्तं भवेत्, तत् पात्रं यः साधुः द्वयपार्धात्—द्वितीयम् अपाद्दं यस्मिंस्तद् द्वयपार्द्धं तस्मात्—सार्द्धात् मासात् परं परिवर्तयति=परिशुद्धे स आज्ञाविराधनादिदोषभाग् भवति । सुलक्षणं पात्रमेकवन्धनयुक्तमपि सार्धमासात्परमपि परिशुद्धानः साधुः आज्ञादिदोषभाग् नो भवति । तथा—द्विक-त्रिकातिरेकवन्धनं—द्वाभ्यां वन्धनाभ्यां, त्रिभ्यो वन्धनेभ्यश्चाधिकवन्धनयुक्तं=चतु-र्वन्धनयुक्तं सुलक्षणमपि पात्रं सार्धमासात्परं परिशुद्धानः साधुराज्ञादिदोषभाग् भवति । किंचिद्नचतुर्वन्धनयुक्तं पात्रं परिशुद्धानः साधुस्तु आज्ञादिविराधको न भवतीति बोध्यम् । वसतेः परिकर्मोपघातस्तु—

“ दूमिय धूमिय वासिय, उज्जोइय वलिकुडा अवत्ता य ।

सित्ता संसट्ठावि य, अकप्पणीया उ सा वसही ॥ १ ॥ ”

छाया—धवलिता धूमिता वासिता उद्द्योतिता वलिकृता अव्यक्ता च ।

सित्ता सम्मृष्टाऽपि च अकल्पनीया तु सा वसतिः ॥१॥ इति ।

अयं भावः—या वसतिः—धवलिता=शुभ्रीकृता, धूमिता = दंशमशकादीनां विनाशाय कृतधूमा, वासिता=सुगन्धिता, उद्द्योतिता=प्रदीपादिना प्रकाशिता,

तथा दो वन्धनोंसे या तीन वन्धनोंसे अधिकवन्धन युक्त—चार वन्धन-युक्त पात्र यदि सुलक्षणवाला भी है, तो उसे जो साधु १॥ डेढ माससे अधिक समय तक अपने काममें लेता है, वह साधु आज्ञा भंग आदि दोषोंका पात्र माना जाता है । परन्तु कुछ कम चार वन्धनयुक्त पात्रको अपने काममें लेनेवाला साधु आज्ञादिका विराधक नहीं होता है, वस-तिका परिकर्मोपघात इस प्रकारसे है—

“ दूमिय धूमिय वासिय ” इत्यादि ।

तात्पर्य यह है कि जो वसति (उपाश्रय)धवलित हो चूनेसे पीत कर

त्रय करतां अधिक अष्टौ के चार, पांच आदि वन्धनोधी युक्त पात्र सुलक्ष-णयुक्त होना छतां पञ्च तेनो १॥ मासथी अधिक समय पर्यन्त उपयोग करनार साधु आज्ञाविराधना आदि दोषोने पात्र गणाय छे, परन्तु चारथी ओछा वन्धनयुक्त पात्रनो १॥ मासथी अधिक समय भाटे उपयोग करनार साधु आज्ञादिना विराधक गणयतो नथी. वसति (रडेडाणु) नो परिकर्मोपघात आ प्रकारनो छे. “ दूमिय धूमिय वासिय ” इत्यादि—

७ वसति (रडेडाणु) चूना आदि वडे धोणेली होय, मच्छर, चांचड,

वञ्चिता-कूरादिना भूतार्थं वलिः कृतो यस्यां सा, अव्यक्ता=गोमयादिना उप-
लिता, सिक्ता=जत्रसेकयुक्ता, तथा-संस्पृष्टा=सम्मार्जिता चापि भवति, सा वसतिः
अकल्पनीया बोध्येति ४। तथा-परिहरणोपघातः-परिहरणम्=आसेवनं, तेन
उपघातः=उप-व्यादेरकल्पनीयत्वम् । तत्र-उपधेः परिहरणोपघातो यथा-एकाकि
दण्डकेन मायुना यदासेवितमुपकरणं तद् ग्रहीतुं न कल्पते इति । परन्तु स
गन्धनिर्गतः साधुरेकाकी सन्नपि जागर्ति, दुग्धादिविकृतिषु च प्रतिबद्धो न
भवति, तदा विरेणापि गच्छे समागच्छतोऽस्य साधोरुपधिः ग्रहीतुं कल्पते ।

स्फेदकी गई हो दंशमशक आदिकोंके धिनाशके लिये जिसमें धूम किया
गया हो, धूप आदि जलाकर जिसे सुगंधित किया गया हो, प्रदीप
आदिसे जिसे प्रकाशयुक्त किया हो, भूतके लिये जिसमें मान आदिसे
यन्त्रि दी गई हो, गोबर आदिसे जो लीपी गई हो, जलका जिसमें छिड-
काप किया गया हो और जिसको कूडाकचरा निकाल कर साफ कर
दिया गया हो ऐसी वह वसति साधुजनोंको ठहरनेके लिये अकल्प-
नीय है, परिहरणोपघात इस प्रकारसे है-परिहरण नाम आसेवनका
है, इससे जो उपधि आदिकी अकल्पनीयता है, वह परिहरणोपघात
है, इसमें उपधिका परिहरणोपघात इस प्रकारसे है-एकाकी भ्रमण कर-
नेवाले साधुके द्वारा आसेवित जो उपकरण हो वह लेना योग्य नहीं
है, परन्तु गच्छसे निर्गत साधु अकेला होता हुआ भी यदि जागरित
है-दुग्धादि विकृतियोंमें प्रतिबद्ध नहीं होना है, तो बहुत दिनोंके बाद
भी गच्छमें आने पर उस साधुकी उपधि आदि लेना कल्प्य है तदुक्तम्-

आदिना नाश करवा भाटे धूमाडो करवाभां आव्यो डोय, धूप आदि वडे
लेने गुग्गन्धयुक्त करवाभां आवेल डोय, प्रदीप वडे लेने प्रकाशित करवाभां
आवेस डोय, जेभा भूतने भाटे अडहता भाकणा वगेरे भाणी देवाभां आवेल
डोय, छाषु आदि वडे लेने लीपनाभां आवेल डोय, जेभां पाणी छांटवाभां
आव्युं डोय, जेभांथी कथरोपले साक्ष करवाववाभां आवेल डोय, जेनी वसति
(स्थान) साधुने रहेवाने भाटे अकल्पनीय गच्छाय छे.

परिहरणोपघाततुं स्वश्य आ प्रभाष्ये छे-परिहरण्यु ओटवे आसेवन.
उपधि आदिनी जे अकल्पनीयता छे, तेने परिहरणोपघात छडे छे. तेभांनी
उपधिने परिहरणोपघात आ प्रहारने छे-जेकला विडारी साधु द्वारा आसे-
वित जे उपकरण डोय, ते लेवा योग्य नथी, परन्तु गच्छभांथी नीकणी गयेले
साधु जेकत विडारी देवा छां पद्य जगृत डोय (हृथ आदि विकृतिओभां
अप्रतिबद्ध डोय) तो जेयो साधु धषु दिवसे पछी पद्य गच्छभां पाछे

તદુક્તમ્—

“ જગ્ગળ અપ્પહિવજ્જળ, જઙ્ગિ ચિરેણં ન ઉવહંમે । ”

છાયા—જાગરણમ્ અપ્રતિવન્ધો યદ્યપિ ચિરેણ નોપહન્યતે । ઇતિ ।

તથા—વસતેઃ પરિહરણોપઘાતો યથા—યઃ કશ્ચિત્ સાધુર્યત્ર વસત્યાં શેષકાલસ્ય માસમેકં વર્ષાકાલસ્ય વા ચાતુર્માસીં સ્થિત્વા પુનસ્તત્રૈવ તિષ્ઠતિ તતઃ સા વસતિઃ કાલાતિક્રાન્તદોષદુષ્ટા ભવતિ । યઃ સાધુઃ યત્ર વસત્યાં શેષકાલસ્ય માસમેકં તિષ્ઠતિ, વર્ષાકાલસ્ય વા ચાતુર્માસીં તિષ્ઠતિ, તતો વિહત્ય તદ્વદ્વિગુણં કાલમનતિયાપ્ય યદિ પુનસ્તત્રૈવ વસતૌ સમાયાતિ તદા સા વસતિરુપસ્થાનદોષદુષ્ટા ભવતિ । તદુક્તમ્—

“ ઉડવાસા સમઈયા, કાલાતીયા ઉ સા ભવે સેજ્ઞા ।

સા ચેવ ઉવદ્વાણા, દુગુણ દુગુણં અઙ્ગિજ્ઞતા ॥ ૧ ॥ ”

“ જગ્ગળઅપ્પહિવજ્જળ ” ઇત્યાદિ ।

વસતિકા (ઉપાશ્રય)પરિહરણોપઘાત ઇસ પ્રકારસેહૈ—જો કોઈ સાધુ જિસ વસતિમેં શેષકાલકે એક માસ તક અથવા વર્ષાકાલકે ચાર માસ તક ઠહર કર પુનઃ વહીં પર ઠહર જાતા હૈ, વહ વસતિ કાલાતિક્રાન્ત દોષસે દુષ્ટ હોતી હૈ, જો સાધુ જિસ વસતિમેં શેષ કાલકે એક મહિના તક ઠહરતા હૈ, અથવા વર્ષાકાલકે ચાર માસ તક ઠહરતા હૈ ફિર ઇસકે બાદ વહાંસે વિહાર કર યદિ ડસસે દ્વિગુણિત કાલકો સન્નાસ નહીં કરકે ડસી વસતિમેં આ જાતા હૈ, તો વહ વસતિ ઉપસ્થાન દોષસે દોષયુક્ત હોતી હૈ—કહો ઓ હૈ—“ ઉડવાસા સમઈયા ” ઇત્યાદિ ।

આવી બન્ય, તો તે સાધુની ઉપધિ આદિ લેવા ચોગ્ય (કલ્પનીય) ગણાય છે. કહ્યું પણ છે કે “ જગ્ગળ અપ્પહિવજ્જળ ” ઇત્યાદિ—

વસતિ (રહેઠાણ) નો પરિહરણોપઘાત આ પ્રકારનો છે—સાધુઓને શેષકાળમાં એક માસ સુધી અને ચોમાસામાં ચાર માસ સુધી એક જ જગ્યાએ રહેવાનું કલ્પે છે જે એક જ જગ્યાએ તેથી વધારે સમય સુધી રહે તો તે વસતિ કાલાતિક્રાન્ત દોષથી હ્રષિત થાય છે. જે કોઈ સાધુ અમુક વસતિ (સ્થાન) માં શેષકાળમાં એક માસ સુધી અને વર્ષાકાળમાં ચાર માસ સુધી રહીને ત્યાંથી વિહાર કરે છે, પણ તેના કરતાં બમણો સમય વ્યતીત થઈ ગયા પહેલાં તે વસતિમાં આવે, તો તે વસતિ ઉપસ્થાન દોષથી હ્રષિત થાય છે. કહ્યું પણ છે કે—

“ ઉડવાસા સમઈયા ” ઇત્યાદિ—

ઠાયા—ઋતુવર્ગાઃ સમતીના. કાલાતીતા તુ સા ભવેત્ શ્યામા ।

સા એવ ઉપસ્થાના દ્વિગુણં દ્વિગુણમ્ અવર્જયિત્વા ॥૧॥ ઈતિ ।

તથા-મક્તરૂપ પરિહરણોપચાતઃ પરિષ્ઠાપકં પ્રતિ ભવતિ ।

તદુક્તમ્—“ વિદિગહિયં વિદિમ્બુતં, અરેગં મક્તપાણમોત્તવ્વં ।

વિદિગહિય વિદિમ્બુતે, એત્ય ય ચત્તરો ભવે મંગા ॥૧॥

અદ્વાપિ ચ વિદિગહિયં, વિદિમ્બુતં તં ગુરુહઽણુમ્નાયં ।

સેસા નાણુનાયા ગહણે દિન્ને ય નિઙ્જુહણં ” ॥૨॥

ઠાયા—વિધિમૃદ્ધીતં વિધિમુક્તમ્ અતિરેકં મક્તપાનં મોક્તવ્યમ્ ।

વિધિમૃદ્ધીતે વિધિમુક્તે, અત્ર ચ ચત્તારો ભવેયુર્મદ્ધાઃ ॥૧॥

અથયાઽપિ ચ વિધિમૃદ્ધીતં વિધિમુક્તં તદ્ગુરુભિરજુજ્ઞાતમ્ ।

યેવા નાનુજ્ઞાના મૃદ્ધીતે દત્તે ચ નિર્મૂઢ્ઘા ॥ ૨ ॥ ઈતિ ।

નિર્મૂઢ્ઘા=ત્યાગઃ । ગુરુભિઃશનાદિકં પરિષ્ઠાપયિતુમાજ્ઞસ શિષ્યં પ્રતિ પરિ-
ષ્ઠાપ્યાશનાદિવિષયકઃ પરિહરણોપચાતો ભવતીતિ વોધ્યમ્ । તથા-વિશોધિઃ-
વિશોધનં વિશોધિઃ-કલ્પતા, સા પશ્ચવિધા પ્રજ્ઞસા । પશ્ચવિધત્વમાહ-તથયા-
ઉદમવિશોધિરિત્યાદિ । ઉદમાદિદોષ પરિહારેણ મક્તાનાં વિશોધિર્જોધ્યેતિ ॥૧.૧૫

મક્તકા પરિહરણોપચાત હસ પ્રકારસે હૈ-ચહ મક્તકા પરિહરણો-
પચાત પરિષ્ઠાપરુકે (પરિષ્ઠાપના કરનેવાહે) પ્રતિ હોના હૈ કશા મો હૈ
“ વિદિગહિયં વિદિમ્બુતં ” ઇત્યાદિ ।

નિર્મૂઢ્ઘા શબ્દકા અર્થ ત્યાગ કરના હૈ, ગુરુજનો દ્વારા અજ્ઞનાવિ-
કસી પરિષ્ઠાપના કરનેકે ત્રિપે આજ્ઞાવિત છુગ શિષ્યકે પરિષ્ઠાપના
કરને યોગ્ય અજ્ઞનાદિ સમ્પન્ની પરિહરણોપચાત હોના હૈ, એસાં જાનના
ચાત્રિપે । કલ્પતાકા નામ વિજોધિ હૈ, ચહ કલ્પતારૂપ વિશોધિ પાંચ

શ્યામા (આચાર) ને પરિહરણોપચાત આ પ્રકારનો છે--આ શબ્દ
(આચાર) ને પરિહરણોપચાત પરિષ્ઠાપકને હોમયુક્ત કરે છે. કથમ્ પશુ છે કે
“ વિદિગહિયં વિદિમ્બુતં ” ઇત્યાદિ—

નિર્મૂઢ્ઘા એટલે ત્યાગ કરવો. ગુરુજનો દ્વારા અજ્ઞનાવિકસી પરિષ્ઠાપના
કરને એટલે આદેશ આપવો હોય છે એવા જિ પને પરિષ્ઠાપના કરવા યોગ્ય
અજ્ઞનાદિ ગંભીરી પન્નિહરણોપચાત તાણે છે, એમ સમજવું.

પરિહરણોપચાત વિદે પિ કહે છે. તે કલ્પતા રૂપ વિશોધિ પાંચ પ્રકારની
રહી છે--કલ્પ વિશોધિ આદિ પાંચ વિશોધિ અર્ધી શબ્દકુ કરવી. ઉદમ આદિ

उपघातवृत्तयो जीवा अधार्मिकत्वेन बोधेरप्राप्तिस्थानेषु प्रवर्तन्ते, विशुद्धि-
वृत्तयो जीवास्तु धार्मिकत्वेन बोधेः प्राप्तिस्थानेषु प्रवर्तन्ते इत्युपदर्शयितुमाह-

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोहियत्ताए कम्मं पग-
रैति, तं जहा-अरहंताणं अवन्नं वयमाणे १, अरहंतपन्नत्तस्स
धम्मस्स अवन्नं वयमाणे २, आयरियउवज्झायाणं अवन्नं
वयमाणे ३, चाउवन्नस्स संघस्स अवन्नं वयमाणे ४, विवक्क-
तव बंभचेराणं देवाणं अवन्नं वयमाणे ५। पंचहिं ठाणेहिं
जीवा सुलभबोहियत्ताए कम्मं पगरैति, तं जहा-अरहंताणं
वन्नं वयमाणे जाव विवक्क तव बंभचेराणं देवाणं वन्नं वय-
माणे ॥ सू० १६ ॥

छाया—पञ्चभिः स्थानैः जीवा दुर्लभबोधिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा-
अर्हताम् अवर्णं वदन् १, अर्हत्पन्नस्य धर्मस्य अवर्णं वदन् २, आचार्योपाध्यायानाम्
अवर्णं वदन् ३, चातुर्वर्णस्य संघस्य अवर्णं वदन् ४, विपक्वतपोब्रह्मचर्याणां देवा-
नाम् अवर्णं वदन् ५। पञ्चभिः स्थानैः जीवाः सुलभबोधिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति,
तद्यथा-अर्हतां वर्णं वदन् यावत् विपक्वतपोब्रह्मचर्याणां देवानां वर्णं वदन् ॥ सू० १६ ॥

प्रकारकी होती है, जैसे-उद्गम विशोधि आदि उद्गमादि दोषोंके परि-
हारसेही भक्तोंकी विशोधि होती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ सू० १५ ॥

सूत्रार्थ—उपघात वृत्तिवाले जो जीव होतेहैं, वे अधार्मिक होनेसे बोधिके
अप्राप्ति स्थानोंमें प्रवृत्ति करते हैं—और जो विशुद्ध वृत्तिवाले जीव होते
हैं, वे धार्मिक होनेसे बोधिके प्राप्ति स्थानोंमें प्रवृत्ति करते हैं सो इसी

दोषोना परिहारथी आहारदिमां विशोधि (विशुद्धि) जणवाय छे,
अेभ समजवु ॥ सू. १५ ॥

सूत्रार्थ—उपघात वृत्तिवाला लोको अधार्मिक होवाने कारणे बोधिना अप्राप्ति
स्थानोमां प्रवृत्तिशील रहे छे, अने जेओ विशुद्ध वृत्तिवाला होय छे तेओ
धार्मिक होवाथी बोधिना प्राप्ति स्थानोमां प्रवृत्तिवाला होय छे, अे ज वात
सूत्रकार आ सूत्र द्वारा प्रकट करे छे.

ટીકા--પંચહિં ઠાણેહિં ' ઇત્યાદિ--

જીવાઃ=માણિનઃ પશ્ચમિઃ સ્થાનૈઃ=કારણૈઃ દુર્લભવોધિકતયા દુર્લભા વોધિ-
ર્યસ્ય સ દુર્લભવોધિકઃ, તસ્ય ભાવસ્તત્તા તયા-દુષ્પ્રાપ્યજિનધર્મકત્વેન કર્મ=
મોહનીયાદિ પ્રકુર્વન્તિ=વધન્તિ । તાન્યેવ સ્થાનન્યાહ-તદયથા-અર્હતામ્ અવર્ણ=
નિન્દાં વદન્=કુર્વન્ જીવો દુર્લભવોધિતાસમ્પાદકં કર્મ પ્રકરોતિ । અર્હતામવર્ણ-
વાદો યથા--

“ નત્થી અરહંતત્તી, જાણં વા કીસ ઘુંજણ મોણ ? ।

પાહુહિયં તુવજીવઙ્ગ એમાહ જિણાણં ડ અવર્ણો ॥૧॥”

છાયા-નાસ્તિ અર્હન્નિત્તિ, જાનાનો વા કયં ઘુહ્તે મોગાન્ ।

પ્રામૃતિકાં તૂપજીયતિ, એવમાદિર્જિનાનાં તુ અવર્ણઃ ॥૧॥ ઇતિ ।

અયમર્થઃ--‘ અર્હન્ ’ ઇતિ નાસ્તિ । અર્હન્ યદિ ભવેત્, તર્હિં જાનાનોડપિ=

ઘાતકો અથ સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈં--

‘પંચહિં ઠાણેહિં જીવા દુર્લભવોહિયત્તાણ’ ઇત્યાદિ સૂત્ર ૧૬ ॥

ટીકાર્થ જન પાંચ સ્થાનોંસે જીવોંકો વોધિકી જિનધર્મકી પ્રાસિ દુર્લભ હોતીહૈ, અતઃ વે મોહનીય આદિ કર્મોંકા બન્ધ કરતેહૈં । વે સ્થાન ઇસ પ્રકારસેહૈં- જો જીવ અર્હન્ત પ્રમુકા અવર્ણવાદ કરતા હૈ, ઉસે વોધિકી પ્રાસિ દુર્લભ હોતી હૈ ૧। અવર્ણવાદકા અર્થ નિન્દા કરના હૈ । તાત્પર્ય ઇસ કથનકા એસા હૈ, કિ જો પ્રાણી અર્હન્ત પ્રમુકી નિન્દા કરતા હૈ, એસા વહ પ્રાણી દુર્લભ વોધિતાકે ઉત્પાદક કર્મકા બન્ધ કરતા હૈ । અર્હન્ત પ્રમુકા અવર્ણવાદ ઇસ પ્રકારસે હોતા હૈ--

“નત્થી અરહંતત્તી” ઇત્યાદિ । ઇસકા એસા અર્થહૈ--અર્હન્ત નામકા કોઈ વ્યક્તિહૈ હી નહીં યદિ વહહૈ તો કેવલજ્ઞાનસે વહ સમસ્ત પદાર્થોંકો જાનતા

“ પંચહિં ઠાણેહિં જીવા દુર્લભવોહિયત્તાણ ” ઇત્યાદિ--

આ પાંચ સ્થાનો (કારણો) ને વોધે જીવને માટે યોધિની પ્રાસિ દુર્લભ બની જાય છે, તેથી તેઓ મોહનીય આદિ કર્મોને બન્ધ કરે છે. તે પાંચ કારણો નીચે પ્રમાણે છે--(૧) જે જીવ અર્હન્ત પ્રમુકો અવર્ણવાદ કરે છે, તેને યોધિની પ્રાસિ દુર્લભ બની જાય છે. અવર્ણવાદ એટલે નિન્દા. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જે જીવ અર્હન્ત પ્રમુકી નિન્દા કરે છે, તે જીવ દુર્લભ યોધિતાના ઉત્પાદક કર્મોને બન્ધ કરે છે. અર્હન્ત પ્રમુકો અવર્ણવાદ આ પ્રકારે થાય છે--“ નત્થી અરહંતત્તિ ” ઇત્યાદિ--

“ અર્હન્તતુ અસ્તિત્વ જ નથી. જે વિદ્યમાન કેવલજ્ઞાન વડે સમસ્ત

ज्ञानयुक्तः सन्नपि स कथं भोगान् भुङ्क्ते ? तु=पुनः स प्राभृतिकां=समवसरणा-
दिरूपाम् ऋद्धिम् उपजीवति । यदि अर्हन् भवेत् न स एवं कुर्यात् । एवमादिरर्हता
मवर्णवादो बोध्य इति । अत्रेदं बोध्यम् यदुच्यते अर्हन्तो नाभूवन्निति, तन्न,
तत्प्रणीतवचनानामद्याप्युपलब्धेः । यत्ते भोगान् भुक्तवन्तोऽतस्तेषामज्ञत्वं यत्
साध्यते, तदप्यकिञ्चित्करमेव, निश्चयज्ञानित्वेन सातर्कमणस्तीर्थकरनामादि-कर्म-
णश्चावश्यवेद्यत्वेन तदुपादानात् । यत्तूच्यते, ते प्राभृतिकासुपजीवन्तीति तदपि
न समीचिनम्, वीतरागत्वेन तेषां तदतिशयवशाज्जायमानासु प्राभृतिकादिषु प्रति-

हुआ भी भोगोंका भोक्ता कैसे हो सकता है ? और कैसे वह समवसर-
णादिरूप ऋद्धिका भोक्ता हो सकता है ? यदि वास्तवमें वह अर्हन्
होता तो वह ऐसा नहीं कर सकता है, इत्यादि रूपसे ऐसा कथन करना
अर्हन्त प्रभुका अवर्णवाद है । यहां ऐसा समझना चाहिये-जो लोग ऐसा
कहते हैं कि अर्हन्त हुएही नहीं हैं, सो उनका ऐसा कहना ठीक नहीं
है-क्योंकि उनके प्रणीत वचनरूप आगम अभी तकभी उपलब्ध हो
रहे हैं । जो उन्होंने भोगोंको भोगा है-सो इससे उनमें अज्ञता साध्यकी
जाती है, वह भी अकिञ्चित्करही है, क्योंकि वे निश्चय ज्ञानी थे
सातावेदनीय कर्म और तीर्थ कर नाम आदि कर्म उनके द्वारा अवश्यवेद्य
थे इसलिये उन्हें भोग भी भोगना पडे हैं । रही समवसरणादि रूप
ऋद्धिकी बात सो यह भी उनमें दोषावह नहीं है, क्योंकि वे तो वीत-
रागी होते हैं, अतः उसमें उनका किसीभी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं
होता है, वह तो केवल उनके अतिशयके वशासे उत्पन्न होती है, इस

पदार्थानि ज्ञातुवा छतां पशु ते लोगोना लोक्ता केवी रीते डोछं शके छे, अने
समवसरणु आदि रुप ऋद्धिने लोक्ता केवी रीते डोछं शके ? जे अरेअर
तेओ अर्हंत छोत तो ओवुं करत न नही ” आ प्रकारना कथन द्वारा अर्हंत
प्रभुने अवर्णवाद थाय छे. अर्हंत थया न नथी ओवी मान्यता साथी नथी,
कारणु के तेमना प्रणीत वचनरुप आगमे अत्यारे पशु भोजू छे. तेमणु
समवसरणु आदि रुप ऋद्धि लोगनी डोवाथी तेमनामां असता मान्य करवी
ओ वात पशु मानी शकय तेम नथी. कारणु के तेओ अवश्य ज्ञानी न छता.
सातावेदनीय कर्म अने तीर्थ कर नाम आदि कर्म तेमना द्वारा अवश्य वेद्य
छता ते कारणु तेमने लोगे पशु-लोगववा पयथा छता. समवसरणु आदि
ऋद्धिनी जे वात करवामां आवी छे, ते तो तेमना अतिशयने प्रभावे उत्पन्न
थय छती, तेओ तो वीतराग डोवाथी तेमां तेमनी केछं पशु प्रकारनी आसक्ति

બંધાભાવાદિતિ । इति प्रथमं स्थानम् १। तथा—अर्हत्पद्मस्य धर्मस्य=श्रुतचारि-
त्रात्मकस्य अवर्ण=“ प्राकृतभाषानिवद्धेन श्रुतेन किम् ? चारित्राद् दानमेव श्रेयः,
किं चारित्राराधनेने ” त्यादि रूपेण નિન્દાં વદન્ જીવો દુર્લભવોધિતા સમ્પાદક
કર્મ પ્રકરોતીતિ । તદાક્ષેપનિરાસસ્તુ एवं बोध्यः, तथाहि—श्रुतस्य प्राकृतभाषा
निवद्धत्वं स्त्रीवालकादीनामपि सुखेनावबोधार्थम् । निर्वाणं प्रति चारित्रस्य साक्षा-
दुपकारित्वं दानस्य तु परम्परया, इत्थं च दानात् चारित्रमेवश्रेय इति । इति द्वितीयं

प्रकारका यह प्रथम स्थान है १। दूसरा स्थान ऐसा है कि अर्हन्त पद्मस्य
श्रुत चारित्र रूप धर्मका अवर्णवाद करना इससे भी जीव दुर्लभ बोधि-
ताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है, इस प्रकारका अवर्णवाद करने-
वाला जीव ऐसा कहता है, कि श्रुत तो प्राकृत भाषामें निवद्ध है, उससे
हमें क्या लाभ है ? चारित्रकी अपेक्षा दान देनाही श्रेयस्कर है, चारि-
त्राराधनसे क्या लाभ होता है, इस प्रकारसे केवल प्रज्ञस श्रुत चारित्र
रूप धर्मका अवर्णवाद करनेवाला जीव दर्शन मोहनीय कर्मका बन्ध
करता है, यह दर्शनमोहनीय कर्मबोधिकी प्राप्तिको दुर्लभ बनाता है,
इसके द्वारा कृत आक्षेपका निरास इस प्रकारसे समझना चाहिये—श्रुत
जो प्राकृत भाषामें निवद्ध हुए हैं, सो उसका कारण ऐसा है, कि वे स्त्री
और बालकों तकको भी अच्छी तरहसे समझमें आजावे इसलिये
प्राकृत भाषामें निवद्ध किये गये हैं। निर्वाणके प्रति चारित्रमें साक्षात्

ન હતી. આ રીતે અર્હન્ત પ્રભુ થયા જ નથી એ માન્યતા ધરાવનાર તેમનો
અવર્ણવાદ કરે છે.

ખીજું કારણ—અર્હન્ત પ્રજ્ઞસ-શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મનો અવર્ણવાદ કરનાર
જીવ પણ દુર્લભ બોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે. આ પ્રકારનો
અવર્ણવાદ કરનાર જીવ એવું કહે છે કે શ્રુત તો પ્રાકૃત ભાષામાં નિવદ્ધ છે.
એવા શ્રુતથી શો લાભ થવાનો છે ? ચારિત્ર કરતાં તો દાન દેવું જ વધારે
શ્રેયસ્કર છે. ચારિત્રની આરાધનાથી શો લાભ થવાનો છે ? આ પ્રકારે શ્રુત-
ચારિત્ર રૂપ ધર્મનો અવર્ણવાદ કરનારો જીવ દર્શન મોહનીય કર્મનો બન્ધ
કરે છે. તે દર્શન મોહનીય કર્મ બોધિકી પ્રાપ્તિને દુર્લભ બનાવી નાખે છે.
તેમની આ દલીલનું નિરાકરણ આ પ્રમાણે કરી શકાય છે.

શ્રુતને પ્રાકૃત ભાષામાં નિવદ્ધ કરવા પાછળનો આશય એ છે કે એમ
કરવાથી સ્ત્રીઓ અને બાલકો પણ તેને સારી રીતે સમજી શકે છે. નિર્વાણની

स्थानम् २। तथा-आचार्योपाध्यायानाम् अवर्णम्=' बालोऽयमित्यादिनिन्दां वदन् जीवो दुर्लभबोधितासम्पादकं कर्म प्रकरोति, अतस्तेषां बालत्वादि निमित्तीकृत्य अवर्णवादो न कार्यः । न हि पलितशीर्षादिना वृद्धो, यस्तु बुद्ध्यादिना बुद्धः स एव यथार्थं वृद्धः ।

“ उहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया ”

छाया-दहरा अपि ये श्रुतबुद्ध्युपपेताः” इति । इति उहरा=बालकाः तृतीयम् ३। चातुर्वर्णस्य चत्वारो वर्णाः=श्रमणाः श्रमण्यः श्रावकाः श्राविकाश्चेति भेदा यस्मिन् स चातुर्वर्णः, स एव चातुर्वर्णस्तस्य तथाभूतस्य संघस्य=समुदायस्य अवर्णम्=

उपकारिता आती है, दानमें नहीं उसमें तो परम्परारूपसेही उपकारिता आती है, इस दानकी अपेक्षा चारित्रमेंही प्रधानताहै । इस प्रकारसे यह द्वितीय स्थान है, तृतीय स्थान ऐसा है, आचार्य उपाध्यायोंका अवर्णवाद करना यह जीव बाल है, इत्यादि रूपसे निन्दा करनेवाला जीव दुर्लभबोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है, अर्थात् पापका उपाजन करता है । इसलिये उनमें बालत्वादिको निमित्त बनाकर उनका अवर्णवाद नहीं करना चाहिये । अर्थात् ये आचार्य बाल हैं क्या समझते हैं इत्यादि कथन न करना । बालोंके सफेद हो जानेसेही कोई वृद्ध नहीं माना जाता है-असलीमें वृद्ध तो वही है, जो बुद्धि आदि गुणोंसे वृद्ध है “ उहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया ” इस प्रकारका यह तृतीय स्थान है, चतुर्थ स्थान इस प्रकारसे है-चार वर्णरूप-मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकारूप संघकी समुदायकी-निन्दा करना यह चातुर्वर्ण संघका अवर्णवाद है, जैसे-“ यह संघ कैसा है, जो

प्राप्ति भाटे अरित्र न साक्षात् उपकारी थछ, पडे छे-दानमां साक्षात् उपकारितानो सइलाव नथी. तेमां तो परम्परा इपे न उपकारिता आवे छे. तेथी दान करतां अरित्र न श्रेयस्कर छे.

त्रीणुं कारण्यु--आचार्य अथवा उपाध्यायनो अवर्णवाद करनार एव पणु दुर्लभ बोधिना उत्पादक कर्मनो बन्ध करे छे. आचार्यने बाल कहीने तेमनो अवर्णवाद करवो जेधये नही. वाण सइह थछ नवाथी न भाणुस वृद्ध थतो नथी. अरी रीते तो न ज्ञान आदिमां वृद्धि पाभ्यो होय छे, ये न वृद्ध छे कहुं पणु छे के-“ उहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया ”

चोथुं कारण्यु-साधु, साध्वी, श्रावक अने श्राविका इपे अतुर्विध संघनी निन्दा करवी ते चातुर्वर्ण्यु (अतुर्विध) संघनो अवर्णवाद छे. “ आ संघ

“ ક્ષીઢ્શોડયં સંઘો, યોડમાર્ગમપિ માર્ગીકરોતિ ” ઇત્યેવં નિન્દાં વદન્ ઢુર્લભ ષો-
ધિતાસમ્પાદકં કર્મ પ્રકરોતિ જીવઃ । વસ્તુતસ્તુ ચાતુર્વર્ણઃ સહ્યો જ્ઞાનાદિગુણ-
સમુદાયાત્મકત્વાન્ન ક્વદાચિદપિ અમાર્ગં માર્ગીકરોતિ, અપિ તુ સ તીર્થંકરાદિ પ્રવ-
ર્તિતં માર્ગત્વેનાશ્રયતીતિ નિન્દકાક્ષેપો ગૃપૈવેતિ ચતુર્થમ્ ડા તથા-વિપક્વતપો
બ્રહ્મચર્યાણાં-વિપક્વં=પરિપાકાવસ્થામુપગતં-પ્રકૃષ્ટતાં પ્રાપ્તં તપો બ્રહ્મચર્યં મવા-
ન્તરે યેપાં તેપામ્, યદ્વા-વિપક્વમ્=ઉદયાવસ્થાયામાગતં તપો બ્રહ્મચર્યં તદ્દેતુકં દેવા-
યુષ્કાદિ કર્મ-યેપાં તેપાં દેવાનામ્ અવર્ણમ્=“ ન સન્તિ દેવાઃ । યદિ તે મવેયુ-
સ્તર્હિતે ક્વદાચિદપ્યુપલભ્યેરન્નપિ । ન ચ તેપાં ક્વદાચિદપ્યુપલભ્વિર્ભવતિ । સન્તુ વા

અમાર્ગકો મી માર્ગ કરતા હૈ, હસ પ્રકારસે સંઘકી નિન્દા કરનેવાલા વ્યક્તિ
ઢુર્લભ ષોધિતાકે સમ્પાદક કર્મકા બન્ધ કરતા હૈ, વાસ્તવમ્ દેલા જાય તો
ચાતુર્વર્ણ સહ્ જ્ઞાનાદિ ગુણોકા સમુદાયરૂપહી હોતા હૈ, અતઃ યહ કમી
મી અમાર્ગકો માર્ગરૂપ નહીં કરતા હૈ, કિન્તુ તાર્થંકર આદિ દ્વારા પ્રવ-
ર્તિત માર્ગકોહી વહ માર્ગ રૂપસે આશ્રિત કમતાહૈ, અતઃ હસ તરહસે નિન્દ-
કકા આક્ષેપ છૂટાહી હૈ ડા પાંચવાં કારણ ઁસા હૈ, જો વ્યક્તિ વિપક્વ-
તપો બ્રહ્મચર્યવાલે દેવોકી નિન્દા કરતા હૈ, વહ ઢુર્લભ ષોધિતા સમ્પાદક
કર્મકા બન્ધ કરતા હૈ-મવાન્તરમ્ જિનકા તપ ઔર બ્રહ્મચર્ય વિપક્વ
વિશેષરૂપસે પરિપાકકો પ્રાપ્ત હુઆ હૈ, સર્વોત્કૃષ્ટ હુઆ હૈ, યદ્વા-
પરિપક્વ ઉદય અવસ્થામ્ આગ્રા હૈ, તપ ઁવં બ્રહ્મચર્ય હેતુક દેવા-
યુષ્કાદિ કર્મ જિન્હોકે ઁસે દેવોકા અવર્ણવાદ કરના “ અર્થાત્ દેવ
નહીં હૈ યદિ વે હોતે તો કમી તો દિલાઈ દેતે, અતઃ કૈસે

કેવો છે કે જે અમાર્ગને પણ માર્ગ ગણે છે । ” આ પ્રકારના વચનો દ્વારા
સંઘની નિન્દા કરનાર ઢુર્લભ ષોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે ંખરી
રીતે તો ચતુર્વિધ સંઘ જ્ઞાનાદિ ગુણોના સમુદાય રૂપ જ હોય છે, તેથી તે
કેહી પણ અમાર્ગને માર્ગ રૂપે માનતો નથી. તે તો તીર્થંકર અદિ દ્વારા
પ્રવર્તિત માર્ગ જ ચાલતો હોય છે. તેથી તેને અમાર્ગ ગણવો તે તેનો
અવર્ણવાદ જ કરવા બરાબર છે.

પાંચમું કારણ—જે માણસ વિપક્વ તપો બ્રહ્મચર્યવાળા દેવોની નિન્દા કરે
છે, તે પણ ઢુર્લભ ષોધિતાના ઉત્પાદક કર્મનો બન્ધ કરે છે ભવાન્તરમાં
જેમનું તપ અને બ્રહ્મચર્ય વિપક્વ થયેલું છે. વિશેષ રૂપે પરિપક્વ થયેલું છે
સર્વોત્કૃષ્ટ રહેલું છે અથવા જે તપ અને બ્રહ્મચર્ય હેતુક
દેવાયુષ્કાદિ કર્મનો જેમને ઉદય થયો છે એવા દેવોનો

તે, તથાઽપિ 'કામાસક્તમાનસૈર્વિરતિવર્જિતૈઃ, નિર્નિમેષેષ્છેષ્ટાવર્જિતૈ સ્ત્રિયમાર્ગરિવ પ્ર ચનકાર્યાનુપયોગિભિશ્ચ તૈર્ન કિંચિત્ પ્રયોજનમ્ " इत्येवं निन्दां वदन् जीवो दुर्लभबोधितासम्पादकं - कर्म ऽकरोति । देवविषयकाक्षेपनिरासस्त्वेवम्-विद्यमान च्चक्रा देवाः, तत्कृतनिग्रहानुग्रहयोः साक्षादुपलम्भात्, कामासक्तिस्तु तेषां मोहसातकर्मोद्भवात् ।

तदुक्तम्—“ एत्थ पसिद्धी मोहणीयसायवेयणीयकम्मउदयाओ ।

कामपसत्ता विरई कम्मोदयओ चिय न तेसि ॥१॥

માના જાવે કિ દેવ હૈં, અથવા માન મી લિયા જાવે કિ વે હૈં-તો મી અને લાભહી ક્યા હૈ, ક્યોંકિ રાતદિન વે કામસેવનમૈ આસક્તરહતે હૈં, વિરતિકા વે પાલન નહીં કરતે હૈં પણકેં અનેકી છપકની નહીં હૈં, શેષ્ટાવર્જિત વે હોતે હૈં, પ્રવચનકે કિસી કાર્યમૈ વે આતે નહીં હૈં, અતઃ મરે હુઓંકી તરહ અને કુછ મી પ્રયોજન નહીં હૈ " इस प्रकारका अवर्णवाद करनेवाला जीव दुर्लभबोधिताका उपार्जन कर्मका बन्ध करता है, देवविषयक आक्षेपका निराकरण इस प्रकारसे है, देवोंकी सत्ता विद्यमान है, क्योंकि उनके द्वारा निग्रह और अनुग्रह हुआ साक्षात् देखा जाता है, काममें आसक्ति तो उनमें मोह एवं सात कर्मके उदयसे देखी जाती है, तदुक्तम्—

“ एत्थ पसिद्धी मोहणीय ” इत्यादि । देवोंको चारित्र मोहनीय

અવર્ણવાદ કરનાર હુલ્લ બોધિના ઉત્પાદક કર્મના બન્ધ કરે છે. તેમનો અવર્ણવાદ કરનાર આ પ્રમાણે કહે છે—“ દેવોનું અસ્તિત્વ જ નથી. જો દેવો હોય તો કોઈ વાર પણ આપણી નજરે કેમ પડતાં નથી ? કદાચ તેઓનું અસ્તિત્વ માની દેવામાં આવે, તો તેમના દ્વારા આપણને શા લાભની પ્રાપ્તિ થવાની છે ? તેઓ રાતદિન કામલોગોનું સેવન કર્યા કરે છે, વિરતિનું પાલન તો કરતાં જ નથી, તેમની આંખોની પાંપણો તો અનિમિષ હોય છે (પલકારા રહિત હોય છે), તેઓ શેષ્ટાઓથી રહિત હોય છે, પ્રવચનના કોઈ પણ કાર્યમાં તેઓ આવતા નથી, તેથી મૃત આદમીની જેમ કોઈ પણ કામના નથી. ” દેવવિષયક આ આક્ષેપનું હવે નિરાકરણ કરવામાં આવે છે—

દેવોની સત્તા (પ્રભાવ) વિદ્યમાન છે, કારણ કે તેમના દ્વારા નિગ્રહ અને અનુગ્રહ થતો સાક્ષાત્ જોવામાં આવે છે. તેઓ કામલોગોમાં જે આસક્તિ ધરાવે છે, તે તો મોહનીય અને સાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી જોવામાં આવે છે. કહ્યું પણ છે કે : “ एत्थपसिद्धि मोहणीय ” इत्यादि—

અગ્નિમિસ દેવસહાવા, નિચ્ચેદ્વાઽણુત્તરા ડ કયકિચ્ચા ।
કાલણુભાવા તિત્થુન્નઈંપિ અન્નત્થ કુવ્વંતિ ॥૨૧॥ ”

છાયા—અત્ર પ્રસિદ્ધિ મેંહનીય સાતવેદનીય કર્મોદયાત્ ।
કામપસક્તિઃ, વિરતિઃ કર્મોદયત એવ ન તેપામ્ ॥૧૧॥
અનિમેપા દેવસ્વભાવાઃ નિશ્ચષ્ટા અનુત્તરાસ્તુ કૃતકૃત્યાઃ ।
કાલાંજુભાવાત્ તીર્થોન્નતિ મપિ અન્યત્ર કુર્વન્તિ ॥૨૧॥ ઇતિ ।

ઇતિ પશ્ચમં સ્થાનમ્ ૫। એમિઃ પશ્ચમિઃ સ્થાનેર્જીવા દુર્લભવોધિકા ભવન્તીતિ
વોધ્યમ્ । અથ સુલભવોધિતામાહ—‘ પંચહિ ઠાણેહિ ’ ઇત્યાદિ । પશ્ચમિઃ સ્થાનેઃ
જીવાઃ સુલભવોધિકતાસમ્પાદકં કર્મ પ્રકુર્વન્તિ । કાનિ તાનિ સ્થાનાનિ ?
ઇત્યાહ—તથા—અર્હતાં વર્ણમ્=સ્તુતિં વદન્-કુર્વન્ જીવઃ સુલભવોધિકતા સમ્પા-
દકં કર્મ પ્રકરોતિ । અર્હતાં વર્ણવાદો યથા—

કર્મકા ઉદય રહતા હૈ, અતઃ ઉનમેં વિરતિ નહીં હોતી હૈ, દેવ સ્વભાવતઃ
અનિમિષ હોતે હૈ, તથા અનુત્તરવાસી જો દેવ હૈં વે કૃતકૃત્ય હોનેસે
નિશ્ચેષ્ટ હોતે હૈં । દેવ કાલકે પ્રભાવસે અન્યત્ર તીર્થ કો ઉત્તત ધી
કરતે હૈં, ઇસ પ્રકારકા યહ પાંચવાં કારણ હૈ, ઇન પૂર્વેક્તિ પાંચ
કારણોસે જીવ દુર્લભ વોધિવાલે હોતે હૈં । અવ સુલભ વોધિવાલે જીવ
કૈસે હોતે હૈં—ઇસ વાતકો સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈં—

‘ પંચહિ ઠાણેહિ ’ ઇત્યાદિ । જીવ પાંચ કારણોસે સુલભ વોધિ-
તાકે સમ્પાદક કર્મકા બન્ધ કરતે હૈં વે પાંચ કારણ ઇસ પ્રકારસે હૈં—
અર્હન્તોંકી સ્તુતિ કરના ? ક્યોંકિ અર્હન્તોંકી સ્તુતિ કરનેવાલા જીવ

દેવાને આરિત્ર મોહનીય કર્મને ઉદય રહે છે, તેથી તેમનામાં વિરતિને
અભાવ રહે છે, દેવો સ્વાભાવિક રીતે જ અનિમિષ હોય છે, તથા અનુત્તર
વિમાનનિવાસી જે દેવો છે, તેઓ કૃતકૃત્ય હોવાથી નિશ્ચેષ્ટ (ચેષ્ટા રહિત)
હોય છે. દેવ કાલના પ્રભાવથી અન્યત્ર તીર્થની ઉત્તતિ પણ કરે છે. આ પ્રકાર
નું આ પાંચમું કારણ છે આ પાંચ કારણોથી જીવ દુર્લભ વોધિવાળો બને છે.

હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે જીવ સુલભ વોધિવાળો કેવી
રીતે બને છે. “ પંચહિ ઠાણેહિ ” ઇત્યાદિ—

જીવ નીચેના પાંચ કારણોને વીધે સુલભ વોધિતાના ઉત્પાદક કર્મને
બન્ધ કરે છે—(૧) અર્હન્તોને વર્ણવાદ કરવાથી એટલે કે તેમની સ્તુતિ

“ जियरागदोसमोहा, सव्वन्नु तिदसनाहकयमहिमा ।
अच्चंतसच्चवयणा, सिवगइगमणा जयति जिणा ” ॥१॥

छाया—जितरागद्वेषमोहाः, सर्वज्ञाः त्रिदशनाथकृतमहिमानः ।

अत्यन्तसत्यवचनाः, शिवगतिगमना जयन्ति जिना ॥१॥ इति ।

इति प्रथमं स्थानम् १। एवमेव अर्हत् प्ररूपितधर्मादि विपक्वतपो ब्रह्मचर्य-
देवान्तानां चतुर्णां वर्णं वदन् जीवः सुलभबोधिकतासम्पादकं कर्म प्रकरोति ।
तत्र-अर्हत्प्ररूपितधर्मस्य वर्णवादी यथा—

“ वत्थुपयासणसूरो, अइसयरयणाण सायरो जयइ ।

सव्वजगजीव वंधुरबंधू दुविहो वि जिणधम्मो ॥१॥”

छाया—वस्तुप्रकाशनसूर्यः, अतिशयरत्नानां सागरो जयति ।

सर्वं जगज्जीव बन्धुरबन्धु द्विविधोऽपि जिनधर्मः ॥१॥ इति ।

इति द्वितीयं स्थानम् २। आचार्योपाध्यायवर्णवादी यथा—

सुलभबोधिताके सम्पादक कर्मका बन्ध करता है, अर्हन्तोंका वर्णवाद
स्तुतिपाठइस प्रकारसे कहा गया है, “ जियरागदोसमोहा ” इत्यादि ।

अर्हन्त प्रभु रागद्वेषको जीतनेवाले होते हैं, वे सर्वज्ञ होते हैं, उनकी
महिमा इन्द्र करते हैं । उनके वचन अत्यन्त सत्य होते हैं, और निय-
मतः वे उसी भवसे मोक्षमें जाते हैं ऐसा यह प्रथम स्थान है, इसी
तरहसे अर्हत् प्ररूपित धर्मका जो वर्णवाद करते हैं, यावत् परिपक्वतप
और ब्रह्मचर्यवाले देवोंका जो वर्णवाद करते हैं, ऐसे जीव सुलभबोधि-
ताके सम्पादक कर्मका बन्ध करते हैं, अर्हत्प्ररूपित धर्मका वर्णवाद इस
प्रकारसे है—“ वत्थुपसायण सूरौ ” इत्यादि ।

अर्हत्प्ररूपित धर्म वस्तुओंको प्रकाशित करनेके लिये सूर्यके जैसा

करवाथी एव सुलभ बोधिदाना संपादक कर्मनो बन्ध करे छे अर्हंतोनी
स्तुति एव आ प्रभाण्णे करे छे—“ जियरागदोसमोहा ” इत्यादि—
अर्हंत प्रभु रागद्वेषने एतनारा डोय छे, तेणो सर्वज्ञ डोय छे, इन्द्रो पणु
तेमनो भडिमा गाय छे. तेमनां वचन सर्वथा सत्य जे डोय छे, तेणो
जे जे लवमां अवश्य मोक्ष प्राप्त करे छे. ”

णीणुं स्थान—अर्हंत प्ररूपित धर्मनो वर्णवाद करनार एव पणु सुलभ
बोधिदाना संपादक कर्मनो बन्ध करे छे. अर्हंत प्ररूपित धर्मनो वर्णवाद
आ प्रभाण्णे थाय छे. “ वत्थुपसायणसूरौ ” इत्यादि—अर्हंत प्ररूपित धर्म
वस्तुओंनो प्रकाशित करवामां सूर्यना समान छे, ते अतिशय रूप रत्नानो

“ તેસિં નમો તેસિં નમો, ભાવેણ પુણો તેસિં વેવ ણમો ।

બ્રહ્મવ્રતપરદિગરયા, જે નાણં દેંતિ ભવ્વાણં ” ॥૧॥

છાયા—તેમ્નો નમઃ, તેમ્નો નમઃ, ભાવેન પુનસ્તેમ્બ્ય એવ નમઃ ।

બ્રહ્મવ્રતપરદિગરતા એ જ્ઞાનં દદતિ ભવ્યેમ્બ્યઃ ॥૧॥ ઇતિ ।

ઇતિ તૃતીય સ્થાનમ્ ૩। ચાતુર્વર્ણમહ્યસ્ય વર્ણવાદો યથા—

“ તવ નિયમસચ્ચસંયમઃ વિનયઃ જવસંતિમુક્તિગુણજુતો ।

શીલવ્રતીકયલોઓ, સ જયડ મંયો ચાઠ્ઠવ્રણ્ણો ॥ ૧ ॥

છાયા—તવો નિયમસચ્ચસંયમ વિનયાર્જવક્ષાન્નિમુક્તિગુણયુક્તઃ ।

શીલવ્રતીકૃતલોકઃ સ જયતિ સહ્યશ્ચતુર્વર્ણઃ ॥૧॥ ઇતિ ।

ઇતિ ચતુર્થ સ્થાનમ્ ૪। દેવવર્ણવાદો યથા—

હૈ, અનિશચ રૂપ સ્તનોંકા સમુદ્ર હૈ, સમહત જગજીવોંકા અનોલા બન્ધુ
હૈ, યદ્ ગૃહસ્થ ધર્મ ઓર મુનિધર્મકે ભેદસે દો પ્રકારકા હૈ, હસ પ્રકાર-
કા યદ્ દ્વિતીય સ્થાન હૈ, આચાર્ય ઉપાધ્યાયકા વર્ણવાદ હસ પ્રકારસે
હૈ—“ તેસિં નમો તેસિં નમો ” ઇત્યાદિ ।

હન આચાર્ય ઉપાધ્યાયોંકો મેરા મન વચન કાપરૂપ ભાવસે બારબાર
નમસ્કાર હો જો વિના કિમી ચાહનાકે પરકા હિત કરનેમ્ લગે રહતે
હૈ, ઓર નિર્મલ જ્ઞાનકા દાન દેતે હૈં, એસા યદ્ તૃતીય સ્થાન હૈ, ચતુ-
ર્વર્ણ સચ્ચ વર્ણવાદ હસ પ્રકારસે હૈ—

“ તવ નિયમ સચ્ચ સંયમ ’ ઇત્યાદિ ।

જો ચતુર્વિધ સંચ તપ, નિયમ, સમ્ય, સંયમ, વિનય, આર્જવ, ક્ષાન્તિ,
મુક્તિ આદિ ગુણોંસે યુક્તહૈં, ઓર જિસને શીલસે લોકકો વશમ્ ક્રિયાહૈ,
એસા યદ્ ચતુર્વિધ શ્રીમંચ મદા જયશીલ રહો હસ પ્રકારકા યદ્ ચતુર્થ
સ્થાન હૈ,

જાગર છે તે સમસ્ત સંસારી હોયોનો અનોઓ બન્ધુ છે, તે ગૃહસ્થ ધર્મ
અને મુનિધર્મના ભેદથી હો પ્રકારનો છે

શ્રીમદ્ મોક્ષ—આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયનો વર્ણવાદ કરવાથી હવ સુલભ
બોલિયો અને હો તેમની સ્તુતિ આ પ્રમાણે કરી શકાય “ તેસિં નમો
તેસિં નમો ” ઇત્યાદિ. “ જેનો નિષ્કામ કાવે પન્દિતના ઠાચાંનાં પ્રવૃત્ત
કરે હો અને નિર્મલ જ્ઞાનના દાતા છે, એવા આચાર્યો અને ઉપાધ્યાયોન
મન વચન અને સચ્ચ વર્ણવાદ નમસ્કાર હો ”

જો ચતુર્વિધ સંચ તપ, નિયમ, સમ્ય, સંયમ, વિનય, આર્જવ,
ક્ષાન્તિ, મુક્તિ, આદિ ગુણોંસે યુક્ત હૈ, અને જેનો શીલથી લોકને વશ
કરે હો એવા સચ્ચ વર્ણવાદનો સ્થાન જય હો. ”

“ ધળ્ણા સ્વલુ તે દેવા, વિસર્યાવિમોઢાવિ હત્ત જિણસવિહે ।

ધમ્મં સુળંતિ સમ્મં, તિત્થપભાવં ચ કુવ્વંતિ ” ॥૧॥

છાયા—ધન્યાઃ સ્વલુ તે દેવાઃ વિપવવિમોઢા અપિ ઢ્વન્ત । જિનસવિવે ।

ધર્મં ષ્ઠવન્તિ સમ્યક્, તીર્થ પ્રભાવં ચ કુર્વન્તિ ॥ ઇતિ ॥

ઈતિ પશ્ચમં સ્થાનમ્ ૫। ઇમિઃ પશ્ચમિઃ સ્થાનૈઃ જીવાઃ સુલભવોધિકા ભવન્તીતિ વોઢ્યમ્ । સ્થાનસ્થાનિનૌરભેદોપચારાત્ સ્થાની ઇવ સ્થાનત્વેન નિર્દિષ્ટ ઇતિ ॥ સૂ. ૧૬ ॥

સંયતાસંયતસંવદ્ધમેવ ‘ પંચ પડિસંલીણ ઇત્યાધારભ્ય આરોપણા પર્યન્તેન સૂત્રસપ્તકેન પ્રાઢ—

મૂલમ્—પંચ પડિસંલીણા પળ્ણત્તા, તં જહા—સોઢંદિયપડિસંલીણે જાવ ફાસિંદિયપડિસંલીણે । પંચ અપ્પડિસંલીણા, પળ્ણત્તા, તં જહા—સોઢંદિય અપ્પડિસંલીણે જાવ ફાસિંદિય અપ્પડિસંલીણે । પંચવિહે સંવરે પળ્ણત્તે, તં જહા—સોઢંદિયસંવરે જાવ ફાસિંદિયસંવરે । પંચવિહે અસંવરે પળ્ણત્તે, તં જહા—સોઢંદિય અસંવરે જાવ ફાસિંદિય અસંવરે ॥ સૂ. ૧૭ ॥

દેવવર્ણવાદ હસ પ્રકારસે હૈ —“ ધળ્ણા સ્વલુ તે દેવા ” ઇત્યાદિ વે દેવ ધન્ય હૈ, જો વિષયોસે વિમુસ્ર રહતે હૈ ઓર જિનેન્દ્ર ભગવન્તકે નિકટ શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકા શ્રવણ કરતે હૈ, ઓર તીર્થકી પ્રભાવના કરતે હૈ । હસ પ્રકારકા યહ પાંચવાં સ્થાન હૈ—હસ પ્રકારકે ઇન પાંચ કારણોસે જીવ સુલભ વોધિવાલે હોતે હૈ—યહાં સ્થાન ઓર સ્થાનીમૈં અભેદકે ઉપચારસે સ્થાનીહી સ્થાન રૂપસે નિર્દિષ્ટ હુઢા હૈ ॥સૂ. ૧૬॥

પાંચમું સ્થાન—દેવોનો :વર્ણુવાઢ ડરવાથી પલુ ઓવ સુદલ યોધિની પ્રાપ્તિ કરે છે. દેવોનો વર્ણુવાઢ આ પ્રમાણે કરવો નેઢએ, “ ધળ્ણા સ્વલુ તે દેવા ” ઇત્યાદિ. “ ધન્ય છે તે દેવોને કે-જેઓ વિષયોથી સદા વિમુખ રહે છે અને જિનેન્દ્ર ભગવાનની સમીપે શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મતું શ્રવણ કરે છે, અને તીર્થની પ્રભાવના કરે છે ” આ પ્રકારતું પાંચમું સ્થાન છે. આ પ્રકારના આ પૂર્વોક્ત :પાંચ કારણોથી ઓવ સુદલ યોધિવાળો થાય છે. અહીં સ્થાન અને સ્થાનીમાં, અલેઢ ગણીને સ્થાનીનો જ સ્થાન રૂપે નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે. ॥ સૂ. ૧૬ ॥

छाया—पञ्च प्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनो यावत्
स्पर्शेन्द्रियप्रतिसंलीनः । पञ्च अप्रतिसंलीनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियाप्रति संलीनो
यावत् स्पर्शेन्द्रियाप्रतिसंलीनाः । पञ्चविधः संवरः, प्रज्ञप्तः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रिय
संवरो यावत् स्पर्शेन्द्रियसंवरः । पञ्चविधोऽसंवरः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रिया
संवरो यावत् स्पर्शेन्द्रियासंवरः ॥ सू० १७ ॥

टीका—‘ पंच पडिसंलीणा ’ इत्यादि—

प्रतिसंलीनाः=कूर्मवदिन्द्रियगोपना श्रोत्रेन्द्रियप्रतिसंलीनादिभेदैः पञ्च
संख्यकाः । अप्रतिसंलीना अपि श्रोत्रेन्द्रियाप्रतिसंलीनादिभेदैः पञ्च संख्यका
बोध्याः । संवरस्तु श्रोत्रेन्द्रियसंवरादिभेदैः पञ्चविधः । असंवरोऽपि श्रोत्रेन्द्रिया
संवरादिभेदैः पञ्चविधो बोध्यः । अत्र श्रोत्रेन्द्रियादिरूपेण यः क्रमो निर्दिष्टः
स तत्तदिन्द्रियस्य क्षयोपशमबाहुल्यकृतो बोध्यः । प्रतिसंलीनाप्रतिसंलीनत्वेन
च धर्मी पुरुष उक्तः । संवरासंवरत्वेन तु धर्म एवेति ॥ सू० १७ ॥

अब सूत्रकार संयतासंयत संबद्ध ही “ पंच पडिसंलीणा ” यहांसे
लेकर आरोपणा पर्यन्तके सात सूत्रों द्वारा कथन करते हैं—

पंच पडिसंलीणा पणत्ता इत्यादि सूत्र-१७ ॥

टीकार्थ-कूर्मकी तरह इन्द्रियोंका गोपन करनेवाले श्रोत्रेन्द्रिय प्रति संलीना-
दिके भेदसे पांच कहे गये हैं, तथा अप्रतिसंलीन भी श्रोत्रेन्द्रिय अप्र-
तिसंलीन आदिके भेदसे पांच कहे गये हैं संवर भी श्रोत्रेन्द्रिय संवर
आदिके भेदसे पांच प्रकारका कहा गया है, तथा असंवर भी श्रोत्रेन्द्रिय
असंवर आदिके भेदसे पांच प्रकारका कहा गया है, यहां जो श्रोत्रेन्द्रि-
यादि रूपसे क्रम कहा गया है, वह उन २ इन्द्रियोंके क्षयोपशमकी

इसे सूत्रकार संयतासंयत विषयक “ पंच पडिसंलीणा ” थी लधने
‘ आरोपणा ’ पर्यन्तना सात सूत्रोंनुं कथन करे छे.

“ पंच पडिसंलीणा पणत्ता ” इत्यादि—

टीकार्थ-कायभानी जे भन्द्रियोंनुं गोपन करतारा श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसंलीन आदिना
लेदथी पांच प्रकारना कछा छे. अप्रति संलीनता पणुं श्रोत्रेन्द्रिय अप्रतिसंलीन
आदि पांच लेद कछा छे. संवरना पणुं श्रोत्रेन्द्रिय संवर आदि
पांच लेद कछा छे. असंवर पणुं श्रोत्रेन्द्रिय असंवर आदिना लेदथी
पांच प्रकारना कछो छे. अही जे श्रोत्रेन्द्रिय आदि इपे कम कडेवामां आव्यो
छे ते कम ते ते भन्द्रियेना क्षयोपशमनी भडुलताने अनुसक्षीने कछो छे.

मूलम्—पंचविहे संजमे पण्णत्ते, तं जहा-सामाइयसंजमे
१ छेदोवट्ठावणियसंजमे, २ परिहारविशुद्धियसंजमे, ३ सुहुमसं-
परायसंजमे, ४ अहाक्खाय संजमे ५ ॥ सू० १८ ॥

छाया—पञ्चविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—सामायिकसंयमः १, छेदोप-
स्थापनीयसंयमः २, परिहारविशुद्धिकसंयमः ३ सूक्ष्मसंपरायसंयमः ४ यथा-
ख्यातसंयमः ५ ॥ सू० १८ ॥

टीका—‘ पंचविहे ’ इत्यादि—

संयमः—संयमनं संयमः—सावद्यव्यापारनिवृत्तिः । सच सामायिकसंय-
मादिभेदेन पञ्चविधः तत्र सामायिकसंयमः—समानां=सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र-
तपोरूपाणां रत्नानाम् आयो=लाभः । यद्वा=समानि=ज्ञानादीनि तेषु तैर्वा

बहुलताको लेकर कहा गया है, प्रतिसंलीन रूपसे और अप्रतिसंलीन
रूपसे धर्मी पुरुष कहा गया है, और संवर रूपसे धर्म कहा गया है सू० १७ ॥

‘पंचविहे संजमे पण्णत्ते’ इत्यादि सूत्र १८ ॥

संयम पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे सामायिक संयम १ छेदो-
पस्थापनीय संयम २ परिहारविशुद्धिकसंयम ३ सूक्ष्म संपराय संयम
४ और यथाख्यातसंयम ५

सावद्य व्यापारसे निवृत्ति होना इसका नाम संयम है, यह संयम
पूर्वोक्त रूपसे सामायिक आदिके भेदसे पांच प्रकार है, जिस संयममें
सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र सम्यक् तप रूप रत्नोंका
लाभ होता है, वह अथवा समरूप ज्ञानादिकोंमें अथवा समरूप ज्ञाना-

प्रतिसंलीन इपे अने अप्रतिसंलीनि इपे धर्मीपुरुष कह्यो छे अने संवर इपे
अने असंवर इपे धर्म कह्यो छे. ॥ सू. १७ ॥

“ पंचविहे संजमे पण्णत्ते ” इत्यादि—

संयमना नीचे प्रमाणे पांच प्रकार कहा छे—(१) सामायिक संयम,
(२) छेदोपस्थापनीय संयम, (३) परिहार विशुद्धिक संयम, (४) सूक्ष्म
संपराय संयम अने (५) यथाख्यात संयम.

सावद्य व्यापारोधी निवृत्त थवुं तेनुं नाम संयम छे. ते संयमना
सामायिक आदि पूर्वी कृपांच लेह छे. जे संयममां सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान,
सम्यक्चारित्र अने सम्यक् तप इपे रत्नानो लाभ थाय छे, ते संयमनुं नाम

આયો ગમનમ્ । અપિ વા સમો=રાગદ્વેષાદ્યસ્પૃષ્ટાન્તઃકરણઃ=સ્વચ્ચિન્નિસ્વિલ-
ભૂતદર્શી વિશુદ્ધ આત્મા તુચ્છિતાનલ્પચિન્તામણિ કલ્પવૃક્ષામધેનુભિર્ગહનભવ-
ગહનવરિભ્રમણજન્યક્લેશનાશકૈરપૂર્વજ્ઞાનદર્શનાદિભિઃ સંવૃતત્વાત્, તસ્ય
આયઃ=પ્રાપ્તિઃ સ્વાત્મવિશુદ્ધીકરણમિતિ યાવત્, સમાયઃ, સ એવ સામાયિકમ્ ।
સાવચ્ચયોગવિરમણાત્મકશેવમપિ ચારિત્રં સામાન્યતઃ સામાયિકમેવોચ્યતે ।
તદેવ છેદાદિવિશેષણૈર્વિગિષ્ટં સત્ શબ્દાર્થાભ્યામનેકવિધત્વં લભતે ।
તત્ત્વ તત્ર પ્રથમો ભેદો નિર્વિશેષણં સામાયિકમેવ ઇત્વરકાલિકયાત્ત્વજીવેતિભેદેન

દિકોં દ્વારા જો ગમન છે, વહ અથવા-રાગદ્વેષ આદિસે અસ્પૃષ્ટ અન્તઃ-
કરણકા જો લાભ છે, વહ સમાય છે, અર્થાત્-જો કામધેનુ, કલ્પવૃક્ષ
ઔર ચિન્તામણિ इनको भी तुच्छ फीका कर देते हैं, एवं गहनकान्तारके
जैसे इस भवके भ्रमणसे जन्य क्लेशोंका जो सर्वथा विनाश कर देते
हैं, ऐसे अपूर्व ज्ञान दर्शनादिकोंसे संवृत्त होनेके कारण विशुद्ध बना
हुआ जो आत्मा है, कि जो समस्त प्राणियोंको अपने समान देखता
है, वह सम है, इस समका जो आय प्राप्ति है, वह समाय है, यह समाय
आत्माकी विशुद्धि करने रूप होता है । ऐसा समायही सामायिक है ।
यह सामायिक जितना भी सावच्ययोग विरमणरूप चारित्र है, सामा-
न्यतः तद्रूपही कहा जाता है, यह सामायिक चारित्रही छेदादिक विशेष-
णोंसे विगिष्ट हुआ शब्द और अर्थकी अपेक्षा अनेक प्रकारताको प्राप्त
करता है । इनमें जो प्रथम भेद है, वह तो विना किसी विशेषणका है,

‘ સમાય ’ છે. અથવા સમરૂપ જ્ઞાનાદિકોમાં અથવા સમરૂપ જ્ઞાનાદિકો દ્વારા
જે ગમન છે તેનું નામ ‘ સમાય ’ છે.

અથવા--રાગદ્વેષ આદિ વડે અસ્પૃષ્ટ અન્તઃકરણનો જે લાભ છે તેનું
નામ ‘ સમાય ’ છે. એટલે કે જે કામધેનું, કલ્પવૃક્ષ અને ચિન્તામણિને પણ
દીપાં પાડી દે છે, જે ગહન અટવીના સમાન આ સંસારના ભ્રમણથી જનિત
ક્લેશોનો સર્વથા વિનાશ કરી નાખે છે, એવા સંસારના સમસ્ત ભવો તરફ
સમક્ષાવ રાખનારો જે આત્મા છે, અને જે જ્ઞાન દર્શનાદિ વડે સંવૃત હોવાને
લીધે વિશુદ્ધ બનેલો છે, તેને ‘ સમ ’ કહે છે. તે સમની જે આય (પ્રાપ્તિ)
થી તેનું નામ ‘ સમાય ’ છે તે સમાય આત્માની વિશુદ્ધિ કરવા રૂપ હોય
છે એવા સમાયને જ સામાયિક કહે છે. તેને આવધયે ગ વિરમણરૂપ જે
ચારિત્ર છે, તે ચારિત્રરૂપ સામાન્યતઃ ગણવામાં આવે છે તે સામાયિક રૂપ
ચારિત્ર જ છેદાદિક વિશેષણોથી યુક્ત થયેલા શબ્દ અને અર્થની અપેક્ષાએ
અનેક પ્રકારતાને પ્રાપ્ત કરે છે. તેમાંથી જે પહેલો ભેદ છે તે કોઈ પણ

द्विविधम् । तत्र—इत्वरकालिकं सामायिकं प्रथमान्तिमतीर्थकृतोस्तीर्थयोरनारोपित-
व्रतस्य भवति । यावज्जीवं तु मध्यमतीर्थकृतां महाविदेहवर्तितीर्थकृतां च तीर्थेषु
उपस्थापनाभावाद् अनारोपितव्रतस्य भवतीति बोध्यम् । तदुक्तम्—

“ सव्वमिणं सामाह्यं, छेदादिविसेसओ पुणं विभिन्नं ।
अविसेसियमादिमयं, ठियग्निह सामन्नसन्नाए ॥१॥
सावज्जजोगविरइत्ति तत्थ सामाह्यं दुहा तं च ।
इत्तरमावकहंति य, पढमं पढमंतिमजिणाणं ॥२॥
तित्थेसु अणारोवियवयस्स सेहस्स थोवकालीयं ।
सेसाणमावकहियं, तित्थेसु विदेहयाणं च ॥ ३ ॥

छाया—सर्वमिदं सामायिकं छेदादिविशेषतः पुनर्विभिन्नं ।
अविशेषितमादिमकं स्थितमिह सामान्यसंज्ञया ॥१॥

इसमें किसी भी प्रकारका विशेषण नहीं है, इस प्रकार निर्विशेषणरूप
यह सामायिक इत्वर कालिक और यावज्जीव इस प्रकारसे दो प्रका-
रका कहा गया है, इनमें इत्वरकालिक जो सामायिक है, वह प्रथम
और अन्तिम तीर्थकरके तीर्थके अनारोपित व्रतवाले प्राणीको होता है,
तथा यावज्जीव जो सामायिक है, वह मध्यके शेष २२ तीर्थकरोंके एवं
महा विदेहवर्ती तीर्थकरोंके तीर्थमें उपस्थानके अभावसे अनारोपित
व्रतवाले प्राणीको होता है, कहा भी है—“ सव्वमिणं सामाह्यं ” इत्यादि ।

यह समस्त सामायिक छेदादिके विशेषसे भिन्न २ हो जाता है,
“ सामायिक ” ऐसी यह सामान्य संज्ञा है, सावद्य योगसे विरति
होना इसका नाम सामायिक है, यह सामायिक इत्वर और यावत्कथिकके

विशेषण विना तो छेदादिके विशेषणरहित तो सामायिकना ये प्रकार कहा
छे—(१) इत्वरकालिक अने (२) यावज्जीव इत्वरकालिक सामायिकने सद्व्याप
पड़ेला अने छेदा तीर्थ करना तीर्थन अनारोपित व्रतवाणा एवोमां डाय
यावज्जीव सामायिकने सद्व्याप वच्चेना २२ तीर्थ करेना अने महाविदेहवर्ती
तीर्थ करेना तीर्थमा उपस्थानना अभावे अनारोपित व्रतवाणा एवोमां डाय छे,
उछु पछु छे के—“ सव्वमिणं सामाह्यं ” इत्यादि.

आ समस्त सामायिक छेदादिना विशेषणी रहित डाय छे. “ सामायिक ”
एवी आ सामान्य संज्ञा छे सावद्य योगेमाथी विरति थवुं तेनु नाम
सामायिक छे. तेना इत्वर अने यावत्कथिक नामना ये लेद छे. तेमांती इत्वर-

સાવચ્યયોગવિરતિરિતિ તત્ર સામાયિકં દ્વિધા તત્ત્વ ।

હત્વરં યાવત્કથિકમિતિ ચ પ્રથમ પ્રથમાન્તિમજિનયોઃ ॥૨॥

તીર્થયોરનારોપિતવ્રતસ્ય શૈક્ષકસ્ય સ્તોકકાલિકં ।

ષોપાણાં યાવત્કથિકં તીર્થેષુ વિદેહકાનાં ચ ॥૩॥ ઇતિ ।

સામાયિકં ચ તત્ સંયમધ્વેતિ સામાયિકસંયમઃ=સામાયિકરૂપઃ સંયમ
હત્યર્થઃ । ઇતિ પ્રથમં સ્થાનમ્ । તથા-છેદોપસ્થાનિકસંયમઃ-છેદઃ પૂર્વપર્યાયસ્ય
છેદનમ્, ઉપસ્થાપનં વ્રતેષુ આરોપણં, ચૈતદ્દ્વયં યત્ર તત્છેદોપસ્થાપનં, તદેવ
છેદોપસ્થાપનિકમ્, યદ્વા-છેદશ્ચ ઉપસ્થાપન ચ છેદોપસ્થાપને, તે વિવ્રેતે યત્ર
તત્છેદોપસ્થાપનિકમ્, અથવા-છેદેન=પૂર્વપર્યાયસ્ય છેદનેન ઉપસ્થાપ્યતે=આરો-
પ્યતે યન્મહાવ્રતરૂપં ચારિત્રં તત્છેદોપસ્થાપનોયમ્ । इदमप्यनतिचारसातिचा-

ભેદસે દો પ્રકારકા હૈ, હનમેં હત્વર સામાયિક પ્રથમ ઓર અન્તિમ તીર્થ-
કરકે તીર્થમેં અનારોપિત વ્રતવાલે શૈક્ષ શિષ્યકે સ્તોકકાલિક હોનાહૈ ।
તથા જો યાવત્કથિત સામાયિક હૈ, વહ ઘાકીકે ૨૨ તીર્થકરોકે ઓર
વિદેહક્ષેત્ર સમ્બન્ધી તીર્થકરોકે તીર્થમેં ઉપસ્થાનકે અભાવસે અનારોપિત
વ્રતવાલે જીવ કે શિષ્ય કો હોતા હૈ । સામાયિકરૂપ
જો સંયમ હૈ વહ સામાયિક સંયમ હૈ । પૂર્વપર્યાય કે
છેદનકા નામ છેદહૈ, ઓર વ્રતોમેં આરોપણ કરનેકા નામ ઉપસ્થાપનહૈ ।
યહ દોનોં જિસ સમયમેં હોતેહૈ, વહ છેદોપસ્થાનહૈ, યહ છેદોપસ્થાનહી છે-
દોપસ્થાનિક હૈ, અથવા-જો મહાવ્રતરૂપ ચારિત્ર પૂર્વપર્યાયકે છેદનસે
આરોપિત ક્રિયા જાતા હૈ, વહ છેદોપસ્થાપનીય હૈ, યહ ભી અનતિચાર

કાલિક સામાયિકને સદ્ભાવ પ્રથમ અને અન્તિમ તીર્થ કરેના તીર્થમાં
અનારોપિત વ્રતવાળા શૈક્ષોમાં શિષ્યોમાં હોય છે. તે સ્તોકકાલિક હોય છે.
યાવત્કથિક સામાયિકને સદ્ભાવ ળાકીના ળાવીશ તીર્થ કરેના અને વિદેહ
ક્ષેત્રના તીર્થ કરેના તીર્થમાં ઉપસ્થાનને અભાવે અનારોપિત વ્રતવાળા ળુવોના
શિષ્યોમાં હોય છે. સામાયિક રૂપ જે સંયમ છે તેનું નામ સામાયિક સંયમ
છે. આ પ્રકારનું સંયમના પ્રથમ ભેદનું સ્વરૂપ છે. । ૧ ।

પૂર્વપર્યાયના છેદનનું નામ છેદ છે, અને વ્રતોમાં આરોપણ કરવાનું
નામ ઉપસ્થાપન છે. આ બન્નેનો જે સમયમાં સદ્ભાવ હોય છે, તે સમયનું નામ
છેદોપસ્થાપન છે. આ છેદોપસ્થાપન જ છેદોપસ્થાપનિક છે. અથવા જે મહાવ્રત
રૂપ ચારિત્ર પૂર્વપર્યાયના છેદન વડે આરોપિત કરાય છે, તેનું નામ છેદોપ-

राभ्यां द्विविधम् । तत्र प्रथमम्- इत्वरसामायिकस्य शैक्षकस्य पञ्चयामप्रतिपत्तुः पार्श्वनाथसाधोः केशिश्रमणादेर्वा । द्वितीयं तु मूलप्रायश्चित्तप्रतिपन्नस्य साधो-
रारोप्यते । तदुक्तम्—

“परियायस्स उ छेओ, जत्थोवद्वावणं वएसुं च ।

छेओवद्वावणमिह, तमणइयारेतरं दुविहं ॥१॥

सेहस्स निरइयारं, तित्थंतरसंक्रमेव तं होज्जा ।

मूलगुणघाडणो साइयारमुभयं च ठियकल्पे ” ॥ २ ॥

छाया—पर्यायस्य तु छेदो, यत्रोपस्थापनं व्रतेषु च ।

छेदोपस्थापनमिह, तदनतिचारमितरद् द्विविधम् ॥१॥

शैक्षस्य निरतिचारं, तीर्थान्तरसंक्रमेवा तद् भवेत् ।

मूलगुणघातिनः सातिचारम् उभयं स्थितकल्पे ॥२॥

स्थितकल्पे=पथमान्तिमतीर्थकरयोरवस्थितसमाचारे इत्यर्थः । छेदोप-

और सातिचारके भेदसे दो प्रकारका होता है, इनमें प्रथम भेद इत्वर सामायिकबोले शिष्यको होता है, अथवा-तीर्थान्तरके संक्रममें होता है, जैसा कि पार्श्वनाथके साधु केशिश्रमण आदि को हुआ है और द्वितीय भेद मूल प्रायश्चित्त का स्वीकार करनेवाले साधुको होता है, कहा भी है—“परियायस्स उ छेदो ” इत्यादि ।

पूर्वपर्यायका छेद और व्रतोंमें उपस्थान जहां होता है, वह छेदोपस्थापनीय है, यह अनतिचार और सातिचारके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है, शैक्षको (नवीन) शिष्यको निरतिचार होता है, अथवा-तीर्थान्तरके संक्रममें वह होता है, और मूल गुणघाती साधुको वह सातिचार होता है, एवं प्रथम तथा अन्तिम तीर्थ करके अवस्थिति समाचाररूप स्थितकल्पमें दोनों प्रका-

स्थापनीय छे ते पणु अनतिचार अने सातिचारना लेदथी णे प्रकारनुं कहुं छे तेमांना प्रथम लेदनेो सद्दलाव धत्वर सामायिकवाणा शिष्यमां डाय छे, अथवा तीर्थान्तरना संक्रममा तेना सद्दलाव डाय छे. जेभके पार्श्वनाथना साधुओ केशिमुनि आदि अनतिचार छेदोपस्थापनीय डता. णीण लेदनेो सद्दलाव भूण प्रायश्चित्तनेो स्वीकार करनार साधुमां डाय छे.

कहुं पणु छे के “परियायस्स उ छेदो ” इत्यादि—

पूर्व पर्यायनुं छेदन अने व्रतोमां उपस्थान न्यां थाय छे, तेनुं नाम छेदोपस्थापनीय छे ते अनतिचार सातिचारना लेदथी णे प्रकारनुं कहुं छे. शैक्षमां निरतिचारनेो सद्दलाव डाय छे, अथवा तीर्थान्तरना संक्रममां ते डाय छे मूलगुणघाती साधुमां सातिचारनेो सद्दलाव डाय छे. प्रथम तथा अन्तिम तीर्थ करना अवस्थित समाचार इप स्थितकल्पमां णन्ने प्रकारना छेदोपस्थापनीय

આરતિકે ચ તત્તુ સંયમથેતિ હેદોપસ્થાપનિકસંયમઃ, અયમપિ પ્રથમાન્તિમતીર્થ-
 જ્ઞાતીર્યોગ્યતીર્થિ શોધ્યમિતિ । इति द्वितीयम् । तथा-परिहारविशुद्धिकसंयमः-
 परिहारं परिहारः-तपोविशेषः, तेन विशुद्धं-परिहारविशुद्धम्, अथवा-परि-
 हारो विशेषेण शुद्धो यस्मिन्तन् परिहारविशुद्धम्, तदस्ति यस्मिन्तत् परिहार-
 विशुद्धम् । यत्र=परिहारेण=तपोविशेषेण कर्म निर्जरारूपा विशुद्धि यस्मिन्तत्
 परिहारविशुद्धिकम् । एतच्च निर्विशमानकनिर्विष्टकायिकभेदेन द्विविधम् । तत्र
 इदं चારित्रं સંવમાનાઃ નાથવો નિર્વિશમાનકા ઉચ્યન્તે, તૈઃ સેવ્યમાનત્વાદિદં
 ચારિત્રમપિ નિર્વિશમાનકમુચ્યતે । એ તુ ઇદં ચારિત્રં નિર્વિષ્ટવન્તઃ=આસેવિતવન્તઃ,
 તે નિર્વિષ્ટકાયિકા ઉચ્યન્તે । તેરાસેવિત્વાદિદં ચારિત્રં નિર્વિષ્ટકાયિકમિત્યુચ્યતે ।

મહા હેદોપસ્થાપનીય હોના હૈ, હેદોપસ્થાપનીય રૂપ જો સંયમ હૈ, યહ
 યો પ્રથમ તીર્થકર ઓર અન્તિમ તીર્થકરકે તીર્થમેં હોનો હૈ । ઇસ પ્રકા-
 રમે યા દ્વિતીય સંયમ હૈ । પરિહાર વિશુદ્ધિક સંયમ-પરિહારણકા નામ
 પરિહાર હૈ, યહ પરિહાર તપો વિશેષરૂપ હોતા હૈ, ઇસ પરિહારસે જો
 વિશુદ્ધ હોતા હૈ, વહ અથવા પરિહારવિશેષરૂપસે શુદ્ધ જિસમેં હોતા
 હૈ, યહ પરિહાર વિશુદ્ધ હૈ, યહ પરિહાર વિશુદ્ધ જિસમેં હૈ, વહ પરિહાર
 વિશુદ્ધિક હૈ. અથવા-પરિહારરૂપ તપ વિશેષ કર્મકી નિર્જારારૂપ વિશુદ્ધિ
 વિષયમેં હોતી હૈ, વહ પરિહારવિશુદ્ધિક હૈ, યહ નિર્વિશમાનક ઓર
 નિર્વિષ્ટ કાયિકકે ભેદસે દો પ્રકારકા હૈ, ઇસ ચારિત્રકો પાલન કરતે
 વ્યક્તિ નાનુ નિર્વિશમાનક કહ્યન્તાહે, પરન્તુ उनके द्वारा सेव्यमान होनेसे

વિષય હે હેદોપસ્થાપનિક રૂપ જે સંયમ હે તેને હેદોપસ્થાપનિક સંયમ કહે
 છે તેને. અસ્થાવ પણ પહેલા તીર્થકર અને છેલ્લા તીર્થકરના તીર્થમાં હોય
 છે આ પ્રકારનું સંયમના બીજા બોધનું સ્વરૂપ છે.

પરિહાર વિશુદ્ધિ સંયમ—પરિહારણુ નામ પરિહાર છે. તે પરિહાર
 નો વિશેષરૂપ હોય છે. આ પરિહારની અપેક્ષાએ જે વિશુદ્ધ હોય છે તેને
 પરિહાર વિશુદ્ધિ કહેવાય. પરિહાર વિશેષ રૂપે વિશુદ્ધ હોય છે તેને પરિહાર વિશુદ્ધ
 કહે છે. આ પરિહાર વિશુદ્ધિ જેના હોય છે તેને પરિહાર વિશુદ્ધિક કહે છે.
 અથવા પરિહાર રૂપ તપવિશેષ કર્મની નિર્જારા રૂપ વિશુદ્ધિ જેમાં થાય છે
 તે નિર્વિશમાનક પરિહાર વિશુદ્ધિક કહે છે. તેના બીજા પ્રમાણે જે લેક છે—
 (૧) નિર્વિશમાનક, અને (૨) નિર્વિષ્ટકાયિક.

આ નિર્વિશમાનક પાલન કરતા જેવા આયુષ્યને નિર્વિશમાનક કહેવાય છે,
 પરન્તુ જેવડા હાલ જેવ્યમાન રહેવાને કહેવું તે ચારિત્રને પણ નિર્વિશમાનક

तदुक्तम्—“ परिहारेण विसुद्धं, सुद्धोय तवो जर्हि विसेसेण ।

तं परिहारविसुद्धं, परिहारविसुद्धियं नाम ॥ १ ॥

तं द्विकल्पं निर्विशमाननिर्विष्टकाइयवसेणं ।

परिहारियाणुपरिहारियाणकल्पद्वियस्सावि ” ॥२॥

छाया—परिहारेण विशुद्धं, शुद्धं च तपो यत्र विशेषेण ।

तत् परिहारविसुद्धं परिहारविसुद्धिकं नाम ॥१॥

तद् द्विकल्पं निर्विशमाननिर्विष्टकायिकवशेन ।

पारिहारिकानुपारिहारिकाणां कल्पस्थितस्यापि ॥२॥ इति

अत्रेदं बोध्यम्—इह हि नवसंख्यकः साधूनां गणो भवति । तत्र चत्वारः परिहारतपोविशेषं कुर्वन्ति, ते पारिहारिका उच्यन्ते, चत्वारस्तुतद्वैयावृत्यकारकाः अनुपारिहारिका भवन्ति, एकस्तु कल्पस्थितो वाचनाचार्यो गुरुकल्पो भवति । एतेषु निर्विशमानकानामयं परिहारो भवति । तथाहि—ग्रीष्मे जघन्यादीनि चतुर्थपष्ठाष्टमानि, शिशिरे तु षष्ठाष्टमदशमानि, वर्षास्वष्टमदशमद्वादशानि पारणके

यह चारित्र भी निर्विशमानक कहा गया है । जिन्होंने इस चारित्र का सेवन कर लिया है, वे निर्विष्टकायिक कहे जाते हैं कहा भी है—

“ परिहारेण विसुद्धं ” इत्यादि ।

यहां इस प्रकार समझना चाहिये—यहां नौ साधुओंका गण होता है, इनमें चार परिहार तपोविशेष करते हैं—इन्हें पारिहारिक कहा जाता है, और चार इनका वैयावृत्य करनेवाले होते हैं, इन्हें अनुपारिहारिक कहा जाता है, एक कल्पस्थित वाचनाचार्य होता है, जो गुरुके जैसा होता है, इनमें निर्विशमानकोंका यह परिहार होता है, जैसे—ग्रीष्ममें जघन्यादि रूपसे चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, शिशिरमें (शियालेमें) षष्ठ, अष्टम,

कडेवाभां आव्युं छे. जेमणे आ चारित्रनुं सेवन करी वीधुं छे तेमने निर्विष्टकायिक कडेवाभां आवे छे. कलुं पणु छे के “ परिहारेण विसुद्धं ” इत्यादि—

परिहार विशुद्धिक इय संयमनुं आ प्रकारनु स्वइय समञ्जुं—नव साधुओनुं अेक गणु डोय छे. तेमांथी चार साधुओ परिहार तपोविशेषनी आराधना करे छे. ते चार साधुने पारिहारिक कडेवाभां आवे छे. भीज चार साधुओ तेमनुं वैयावृत्य करे छे. वैयावृत्य करनारा ते साधुओने अनु पारिहारिक कडेवाय छे. आकीने अेक साधु कल्पस्थित वाचनाचार्य डोय छे. जे गुरुना जेवा डोय छे. तेमांता जे निर्विशमानके छे (पारिहारिके छे) तेमने आ प्रकारने परिहार डोय छे—ग्रीष्ममां तेओ अेक, जे अने त्रणु

આચામામ્લમ્ । ઇતરેપાં તુ સર્વેપામાચામામ્લમેવ । એવં ચત્વારો નિર્વિશમાનકાઃ
 પળ્માસાન્ યાવત્ પરિહારં કુર્વન્તિ । તત એતે નિર્વિશમાનકાઃ સન્તસ્તદ્વૈયાવૃત્યકારકા
 ભવન્તિ, યે પૂર્વે વૈયાવૃત્યકારસ્તે પારિહારિકા ભવન્તિ । તે પારિહારિકાઃ પઢ્
 માસાન્ યાવત્ પરિહારં કુર્વન્તિ । તતસ્તેઽપિ નિર્વિષ્ટકાયિકા ભવન્તિ । તતો વાચ-
 નાચાર્યઃ પઢ્ માસાન્ યાવત્ પરિહારં કરોતિ । નિર્વિષ્ટકાયિકેષ્વઘ્ટસુ ઇકો
 વાચનાચાર્યો ભવતિ, અન્યે તુ વૈયાવૃત્યકારકા ભવન્તિ । ઇત્યમ્ અયં પરિહાર-
 વિશુદ્ધિકઃ કલ્પઃ અષ્ટાદશમાસિકો ભવતિ । પરિહારવિશુદ્ધિકં ચ તત્ સંયમશ્ચેતિ
 પરિહારવિશુદ્ધિકસંયમઃ—પરિહારતપઃ=સાધ્યવિશુદ્ધિયુક્તઃ સંયમ ઇત્યર્થઃ ।
 ઇતિ તૃતીયં સ્થાનમ્ ।

દશમ ઓર વર્ષામેં અષ્ટમ દશમ ઓર દ્વાદશ દન પરિહારોંકો કરતે
 હેં, એવં પારણાકે દિન આચામામ્લ (આંબિલ) કરતે હેં વાકી ઓર સવ-
 સુનિ જન (આંબિલ) આચામામ્લહી કરતે હેં । હસ તરહસે ચાર નિર્વિ-
 શમાનક છહ મહીને તક પરિહાર તપ કરતેહેં, હસકે બાદસે ચાર નિર્વિષ્ટ-
 કાયિક બન જાતે હેં, ઓર ડનકી વૈયાવૃત્તિ કરનેવાલે હોતે હેં, ઓર
 જો પહિલે વૈયાવૃત્યકારક થે વે પારિહારિક તપ હોતેહેં । વે પારિહારિક
 છહ મહીને તક પરિહાર તપ કરતેહેં, તવ વે ખી નિર્વિષ્ટકાયિક હો જાતે
 હેં, હસકે બાદ જો વાચનાચાર્ય હૈ, વહ છહ મહીને તક પરિહાર કરતો
 હૈ, આઠ નિર્વિષ્ટકાયિકોંમેં એક વાચનાચાર્ય હો જાતા હૈ, ઓર દૂસરે
 વૈયાવૃત્યકારક હોતે હેં । હસ પ્રકારકા યહ પરિહારવિશુદ્ધિક કલ્પ
 ૧૮ માસકા હોતા હૈ, પરિહાર વિશુદ્ધિક રૂપ જો સંયમ હૈ, વહ પરિહાર

ઉપવાસ, શિશિરમાં ખેત્રણ અને ચાર ઉપવાસ અને વર્ષામાં ત્રણ, ચાર અને
 પાંચ ઉપવાસ કરે છે. પારણાને દિવસે તેઓ આયંબીલ કરે છે. બાકીના પાંચ
 સાધુઓ આયંબીલ જ કરે છે. આ રીતે છ માસ સુધી ચાર નિર્વિશમાનક
 પરિહાર કર્યા કરે છે, ત્યારબાદ તેઓ—નિર્વિષ્ટકાયિક બની જાય છે અને
 છ માસ સુધી તેમનું વૈયાવૃત્ય કરન રા ચાર સાધુઓ પરિહારક
 થાય છે. ત્યાર બાદ તેઓ પણ નિર્વિષ્ટકાયિક થઇ જાય છે. ત્યારબાદ
 તેમના વાચનાચાર્ય છ માસ સુધી પરિહાર કરે છે. તે સમય દરમિયાન
 આઠ નિર્વિષ્ટકાયિકોમાંથી એક વાચનાચાર્ય બને છે અને બાકીના સાધુઓ
 વૈયાવૃત્ય કરે છે. આ રીતે આ પરિહાર વિશુદ્ધિક કલ્પ ૧૮ માસ સુધી ચાલે
 છે. આ પ્રકારનો પરિહાર વિશુદ્ધિક ૩૫ જે સંયમ છે તેને પરિહાર વિશુદ્ધિક

તથા-સૂક્ષ્મ સંપરાયસંયમઃ-સંપરૈતિ-પર્યટતિ સંસારમેભિરિતિ સંપરાયાઃ= કષાયાઃ, સૂક્ષ્માઃ=લોભાંશાવિશેષાઃ સમ્પરાયા યત્ર સ સૂક્ષ્મસમ્પરાયઃ-લોભકિ-ટ્ટિકારૂપકષાયયુક્ત इत्यर्थः । स च विशुध्यमानकसंक्लिश्यमानकभेदेन द्विविधः । तत्र विशुध्यमानकक्षपकश्रेणिमुपशमश्रेणिचारोहतो भवति, संक्लिश्यमानकस्तु उपशमश्रेणितः प्रच्यमानस्य भवति । तदुक्तम्—

“ કોહાઈ સંપરાઓ, તેજઓ સંપરીઈ સંસારં ।

તં સુહુમસંપરાયં, સુહુમો જત્યાવસેસો ડ ॥૧॥

સેઠિં વિલગ્મઓ તં, ત્રિસુજ્જમાણં તઓચયં તસ્સ ।

તહ સંકિલિસ્સમાણં પરિણામવસેણ વિન્નેયં ॥૨॥”

વિશુદ્ધિક સંયમ હૈ, અર્થાત્ પરિહાર તપસે સાધ્ય જો વિશુદ્ધિ ઉક્ત વિશુદ્ધિસે યુક્ત જો સંયમ હૈ, વહ પરિહાર વિશુદ્ધિક સંયમ હૈ ૩। સૂક્ષ્મ સંપરાય સંયમ-જિનકે કારણ જીવ સંસારમેં ભટકતા હૈ, વે સંપરાય કષાય હૈ । જિત્ત સંપરાયોમેં સૂક્ષ્મ લોભકે અંશહી અવિશેષ રહતે હૈ-અર્થાત્ કેવલ સૂક્ષ્મ લોભ કષાયકા જો સદ્ભાવ હૈ, વહ સૂક્ષ્મ સંપરાય હૈ, હસ તરહ જો સંયમ લોભ રૂપ કષાયસે યુક્ત હોના હૈ, વહ સૂક્ષ્મ સંપરાય સંયમહૈ, યહ ૧૦ વેં ગુણસ્થાનવર્તી જીવકો હોતા હૈ, યહ સંયમ વિશુદ્ધમાનક એવં સંક્લિશ્યમાનકકે ભેદસે દો પ્રકારકા હોના હૈ, હનમેં વિશુદ્ધમાનક ક્ષપકશ્રેણિ એવં ઉપશમશ્રેણિ પર આરોહણ ચઢતે હુવે કરતે હુએ જીવકો હોતાહૈ, ઓર સંક્લિશ્યમાનક ઉપશમશ્રેણિસે ગિરતે હુએ જીવકો હોતા હૈ, તદુક્તમ્-“ કોહાઈ સંપરાઓ ” इत्यादि ।

સંયમ કહે છે એટલે કે પરિહાર તપ વડે સાધ્ય જે વિશુદ્ધિ છે તે વિશુ-
દ્ધિથી યુક્ત જે સંયમ છે તેનું નામ પરિહાર વિશુદ્ધિક સંયમ છે । ૩ ।

સૂક્ષ્મસંપરાય સંયમ-જેમને કારણે જીવ સંસારમાં ભટકે છે તે કષા-
યાને સંપરાય કહે છે. જે સંપરાયોમાં સૂક્ષ્મલોભનો અંશ જ બાકી રહી
બચ છે-એટલે કે સૂક્ષ્મલોભ કષાયનો જ જેમાં સદ્ભાવ હોય છે, તે સંપ
રાયને સૂક્ષ્મસંપરાય કહે છે. આ રીતે જે સંયમ લોભકિટ્ટિકા (સૂક્ષ્મલોભ)
રૂપ કષાયથી યુક્ત હોય છે, તેને સૂક્ષ્મસંપરાય સંયમ કહે છે. ૧૦ માં
શુભસ્થાનવર્તી જીવમાં તેનો સદ્ભાવ હોય છે. તેના વિશુદ્ધમાનક અને
સંક્લિશ્યમાનક નામના બે લેહ પડે છે. ક્ષપક શ્રેણિ અને ઉપશમ શ્રેણિ પર
આરોહણ કરતા જીવમાં વિશુદ્ધમાનક સૂક્ષ્મસંપરાયનો સદ્ભાવ હોય છે, પરંતુ
ઉપશમ શ્રેણિથી નીચે ઉતરતા જીવમાં સંક્લિશ્યમાનકનો સદ્ભાવ હોય છે.
કહું પ્રભુ છે કે “ કોહાઈ સંપરાઓ ” इत्यादि—

છાયા—ક્રોધાદિઃ સંપરાયઃ, તેન યતઃ સંપરૈતિ સંસારમ્ ।

સ સૂક્ષ્મસંપરાયઃ, સૂક્ષ્મો યત્રાવશેપસ્તુ ॥૧॥

શ્રેણિ વિલગતઃ સ વિશુદ્ધ્યમાનઃ, તતશ્ચવમાનસ્ય ।

તથા સંક્લિષ્ટ્યમાનઃ પરિણામવશેન વિજ્ઞેયઃ ॥૨॥ ઇતિ ।

અત્રેદં વોદ્યમ્—સંખ્યેયાનાં લોભસ્વંડાનામ્ ઉપશમનં વાદરસંપરાય ઉચ્યતે
ચરમસ્ય તુ સંખ્યેયસ્વંડસ્ય અસંખ્યેયાનિ સ્વંડાનિ ક્રિયન્તે, તેષુ પ્રતિસમયમેકૈ-
કસ્ય સ્વંડસ્ય ઉપશમનં સૂક્ષ્મસંપરાય ઉચ્યતે । તથા—વાદરસંપરાયોપશમયુક્તો
વાદરસંપરાયઃ, સૂક્ષ્મસંપરાયોપશમયુક્તસ્તુ સૂક્ષ્મસંપરાય ઉચ્યતે । ઇતિ ।
સૂક્ષ્મસંપરાયશ્ચ સ સંયમશ્ચેતિ સૂક્ષ્મસંપરાયસંયમઃ—લોભાંશરૂપકપાય-
યુક્તઃ સંયમ ઇત્યર્થઃ । ઇતિ ચતુર્થ સ્થાનમ્ । તથા—યથાખ્યાતચારિત્રસંયમઃ—

યહાં એમા સમજ્ઞના ચાહિયે—સંખ્યાતલોભ સ્વંડોકા ઉપશમ વાદર
સંપરાય કહલાના હૈ, હનમેંસે અન્તિમ સંખ્યાતવે સ્વંડકે અસંખ્યાત
ટુકડે અપની ઘુદ્ધિસે ઓર કરો હનમેંસે પ્રતિ સમયમેં એક ૨ સ્વંડકા જો
ઉપશમનહૈ, વહ સૂક્ષ્મ સંપરાયહૈ, તથા વાદર સંપરાયકે ઉપશમસે યુક્ત જો
વાદર સંપરાયહૈ, વહ વાદર સંપરાયહૈ । ઉપશમ રૂપ જો સંયમહૈ વહ સૂક્ષ્મ
સંપરાય સંયમહૈ, તાત્પર્ય હસકા યહીહૈ, કિ લોભ કષાયવાલા જો સંયમહૈ
વહ સૂક્ષ્મસંપરાય સંયમ હૈ, એસા યહ ચૌથા સંયમ હૈ ૪, યથાખ્યાત
સંયમ—ભગવાનને જો સંયમ યથાર્થ રૂપસે ઓર વિધિકે અનુસાર કહા
હૈ, વહ યથાખ્યાતસંયમ હૈ, અથવા સર્વ જીવ લોકમેં જો પ્રસિદ્ધ હો

અહીં એવું સમજવું જોઈએ કે સંખ્યાત લેભખંડાનું ઉપશમન વાદર
સંપરાય કહેવાય છે તેમાંથી અન્તિમ સંખ્યાતમાં ખંડના બીજા અસંખ્યાત
ટુકડા પોતાની કલ્પનાથી કરવામાં આવે. તેમાંથી પ્રત્યેક સમયે એક એક ખંડનું
જે ઉપશમન છે, તે સૂક્ષ્મસંપરાય છે, તથા વાદર સંપરાયના ઉપશમથી યુક્ત
જે વાદર સંપરાય છે, તે વાદર સંપરાય છે. સૂક્ષ્મસંપરાય ઉપશમ રૂપ જે
સંયમ છે તેનું નામ સૂક્ષ્મસંપરાય સંયમ છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે
કે લોભકિટ્ટકા (સૂક્ષ્મલોભ) રૂપ કષાયવાળો જે સંયમ છે તેનું નામ સૂક્ષ્મ
સંપરાય સંયમ છે. આ સંયમના ચોથા લેહરૂપ છે. ૪ ।

યથાખ્યાત સંયમ—ભગવાને જે સંયમ યથાર્થ રૂપે અને વિધિ અનુ-
સાર કહ્યો છે; તેને યથાખ્યાત સંયમ કહે છે. અથવા સમસ્ત જીવલોકમાં
જે પ્રસિદ્ધ છે તેનું નામ યથાખ્યાત છે. યથાખ્યાત અકષાય રૂપ હોય છે.
યથાખ્યાત ચારિત્રરૂપ જે સંયમ છે, તે યથાખ્યાત ચારિત્ર સંયમ છે. આ

यथा=याथातथ्येन आङ्=अभिविधिना च यद् भगवता ख्यातं=कथितम्—यथा-
ख्यातम्, यद्वा—सर्वस्मिन् जीवलोके ख्यातं—प्रसिद्धं यथाख्यातम् अकषायमिति ।
यथाख्यातं च तत् चारित्रं चेति यथाख्यातचारित्रम्, —तद्रूपः संयमः यथाख्यात-
चारित्रसंयमः । अयं च छद्मस्थस्य उपशान्तमोहस्य क्षीणमोहस्य च भवति, तथा-
सयोगस्यायोगस्य च केवलिनो भवति । इति पञ्चमं स्थानम् ॥ सू०-१८॥

संयमप्रस्तावासंयमं, तत्प्रतिपक्षभूतमसंयमं च प्राह—

मूलम्—एगिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविहे
संजमे कज्जइ, तं जहा—पुढविकाइयसंजमे जाव वणस्सइकाइय-
संजमे । एगिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे
कज्जइ, तं जहा—पुढविकाइयअसंजमे जाव वणस्सइकाइय
असंजमे ॥ सू० १९ ॥

छाया—एकेन्द्रियान् खलु जीवान् असमारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः
क्रियते, तद्यथा—पृथिवीकायिकसंयमो यावद् वनस्पतिकायिकसंयमः एके-
न्द्रियान् खलु जीवान् समारभमाणस्य पञ्चविधः असंयमः क्रियते, तद्यथा—पृथि-
वीकायिकासंयमो यावद् वनस्पतिकायिकासंयमः ॥सू० १९॥

वह यथाख्यात अकषायरूप होता है, यथाख्यात चारित्ररूप जो संयम
है, वह यथाख्यातचारित्रसंयम है, तात्पर्य इसको यह है, कि यथा-
ख्यात चारित्र संयम अकषायवाले उपशान्तमोह और क्षीणमोहको
होता है, ये दोनों छद्मस्थ वीतराग कहे गये हैं और सयोग केवली
१३ वें गुणस्थानवालेको एवं अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानवालेको
होता है, ऐसा यह यथाख्यात चारित्रका कथन है ॥सू० १८॥

अथ सूत्रकार इसी संयमके प्रस्तावको लेकर संयम और संयमके

कथनने 'भावाथ' ओ छे के यथाख्यात चारित्रसंयमने सदृभाव अकषायवाणा
उपशान्तमोह क्षीणमोहवाणा लोकोभां डोय छे. ते अन्नेने छद्मस्थ वीतराग
कहे छे. अयोगी केवली-१३ भां शुष्मस्थानवाणा अने अयोगी केवली १४ चौदहमां
शुष्मस्थानवाणाभां ते संयमने सदृभाव डोयछे. आ प्रकारनुं संयमना पांचमां
बेड ३५ यथाख्यातचारित्रनुं कथन समज्जुं. ॥ सू. १८ ॥

टीका—‘ एगिंदियाणं ’ इत्यादि—

एकेन्द्रियान् जीवान् असमारभमाणस्य=संघट्टादिना अनुपमर्दयमानस्य साधोः सप्तदशप्रकारेषु संयमेषु मध्ये पञ्चविधः=पञ्चप्रकारकः संयमः क्रियते= भवति । कर्मणः संयमस्य कर्तृत्वेन विवक्षितत्वात् ‘ कृञ् ’ धातुर्भवत्यर्थो भवतीति बोध्यम् । संयमस्य पञ्चविधत्वमेवाह—तद्यथा—पृथिवीकायिकसंयमः=संघट्टाद्युपरमः १। एवम्—अपूकायिकसंयमः २, तेजस्कायिकसंयमः ३, वायुकायिकसंयमो ४ वनस्पतिकायिकसंयमश्च ५ बोध्यः । एतद्वैपरीत्येन पञ्चविधोऽसंयमो बोध्य इति ॥ सू० १९ ॥

प्रतिपक्ष असंयमका कथन करते हैं—

‘एगिंदियाणं जीवा असमारभमाणस्य’ इत्यादि सूत्र १९ ॥

संघट्ट आदि द्वारा एकेन्द्रिय जीवका उपमर्दन नहीं करते हुए साधुको १७ प्रकारके संयममेंसे पांच प्रकारका संयम होता है । यहाँ “ कृञ् ” धातु “ भवति ” अर्थमें लिया गया है । वह पांच प्रकारका संयम ऐसा है, पृथिवीकायिक संयम यावत् वनस्पतिकायिक संयम यहाँ यावत्पदसे “ अपूकायिक संयम, तेजस्कायिक संयम वायुकायिक संयम ” इन तीन संयमोंका ग्रहण हुआ है । इन पांच संयमोंसे विरुद्ध पांच प्रकारका असंयम होता है । पृथिवीकायिक जीवोंका संघट्ट आदि करनेका त्याग करना यह पृथिवीकायिक संयम है, इसी तरहसे यावत् वनस्पतिकायिक संयम तक कथन जानना चाहिये ॥ सू० १९ ॥

इसे सूत्रकार संयम अने संयमना प्रतिपक्ष रूप असंयमनुं कथन करे छे.

“ एगिंदियाणं जीवा असमारभमाणस्य ” इत्यादि—

संघट्टन आदि द्वारा एकेन्द्रिय जीवोंनुं उपमर्दन (हत्या) नहीं करना साधु वडे १७ प्रकारना संयममांथी पांच प्रकारना संयमनुं पालन थाय छे. अर्धी “ कृञ् ” धातु ‘ भवति ’ ना अर्थमां वपराये छे. संयमना ते पांच प्रकार नीचे प्रमाणे समजवा—(१) पृथ्वीकायिक संयम, (२) अपूकायिक संयम (३) तेजस्कायिक संयम, (४) वायुकायिक संयम अने (५) वनस्पतिकायिक संयम. आ पांच संयमोथी विरुद्ध पांच प्रकारना असंयम डोय छे. पृथ्वीकायिक जीवोना संघट्टन आदिना त्याग करवो तेनुं नाम पृथ्वीकायिक संयम छे अने प्रमाणे अपूकायिक लघने वनस्पतिकायिक पर्यन्तना संयम विषे पणु समजवुं. ॥ सू. १९ ॥

मूलम्—पंचिदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ, तं जहा—सोइंदियसंजमे जाव फासिंदियसंजमे । पंचविया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ, तं जहा—सोइंदिय असंजमे जाव फासिंदिय असंजमे । सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ, तं जहा—एगिंदिय संजमे जाव पंचिदियसंजमे । सव्वपाणभूयजीवसत्ता णं समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ, तं जहा—एगिंदियअसंजमे जाव पंचिदिय असंजमे ॥ सू० २० ॥

छाया—पञ्चेन्द्रियान् खलु जीवान् असमारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः क्रियते, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियसंयमो यावत् स्पर्शेन्द्रियसंयमः । पञ्चेन्द्रियान् खलु जीवान् समारभमाणस्य पञ्चविधोऽसंयमः क्रियते, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियासंयमो यावत् स्पर्शेन्द्रियासंयमः । सर्वपाणभूतजीवसत्त्वात् खलु असमारभमाणस्य पञ्चविधः संयमः

‘पंचिदियाणं जीवा असमारभमाणस्स’ इत्यादि सूत्र २० ॥

सूत्रार्थ—पञ्चेन्द्रिय जीवोंका संघटन आदि द्वारा उपमर्दन करनेका त्याग करनेरूप जो संयम है, वह पांच प्रकारका है जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय संयम यावत् स्पर्शेन्द्रिय संयम इसी तरहसे संघटन आदि द्वारा पञ्चेन्द्रिय जीवोंका उपमर्दन करने रूप जो असंयम है, वह भी पांच प्रकारका है, जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय असंयम यावत् स्पर्शेन्द्रिय असंयम समस्त प्राण, भूत जीव एवं सत्त्वोंके संघटन आदि द्वारा मर्दन करनेका त्याग करनेवाले

“ पंचिदियाण जीवा असमारभमाणस्स ” इत्यादि—

सूत्रार्थ—पंचेन्द्रिय लोकोतुं संघटन आदि द्वारा उपमर्दन नहीं करवाइए के संयम छे, तेना पांच प्रकार नीचे प्रमाणे छे—श्रोत्रेन्द्रिय संयमथी लघने स्पर्शेन्द्रिय संयम पर्यन्तना पांचे छेन्द्रियोना संयम अर्ही अल्लु करवा लेछे. जे जे प्रमाणे संघटन आदि वडे पंचेन्द्रिय लोकोतुं उपमर्दन करवाइए असंयमना पण नीचे प्रमाणे पांच प्रकार पडे छे—श्रोत्रेन्द्रिय असंयमथी लघने स्पर्शेन्द्रिय असंयम पर्यन्तना पांच प्रकारो अर्ही अल्लु करवा लेछे. समस्त प्राण, भूत, लोको अने सत्त्वोतुं संघटन आदि द्वारा मर्दन करवानो त्याग करनार लोको द्वारा पांच प्रकारना संयमनुं पालन थाय

ક્રિયતે, તથા—એકેન્દ્રિયસંયમો યાવત્ પञ्चेन्द्रियसंयमः । सर्वप्राणभूतजीव
सन्धान् खलु समारभमाणस्य पञ्चविधः असंयमः क्रियते, तथા—એકેન્દ્રિયા-
સંયમો યાવત્ પञ્ચેન્દ્રિયાસંયમઃ ॥ સુ૦ ૨૦ ॥

ટીકા—‘ પંચિન્દ્રિયા ’ ઇત્યાદિ—

“ પુઠ્ઠવિદગઅગણિમારુય વળસ્તઙ્ વિતિચુપણિન્દિયાજીવોઃ । પેહુપ્પેહપમ-
હજણપરિદ્ધવગમણોર્વકાણ ॥ ૧ ॥ છાયા—પૃથિવ્યુદકાગ્નિમારુતાઃ વનસ્પતિ-
દ્વિત્રિચતુઃપञ्चेन्द्रिया अजीवाः प्रेक्षोत्प्रेक्षा प्रमार्जनं परिष्ठापनं मनोवाक् कायः
॥૧॥ ઇત્યત્ર સપ્તદશવિધઃ સંયમઃ પ્રોક્તઃ તત્ર તસ્ય સંયમસ્ય નવમો ભેદઃ પञ्च-
ન્દ્રિયસંયમઃ પ્રોક્તઃ । સ એવાત્ર શ્રોત્રેન્દ્રિયસંયમાદિભેદૈઃ પञ्चविधत्वेनोच्यते। तथाहि—
પञ્ચેન્દ્રિયાન્ જીવાન્ અસમારભમાણસ્ય=પञ्चेन्द्रियजीवानां विराधनामकुर्वतो
જીવસ્ય શ્રોત્રેન્દ્રિયસંયમાદિરૂપઃ પञ्चविधः संयमो भवति तत्र श्रोत्रेन्द्रियस्य
विराधनापरिवर्जनं श्रोत्रन्द्रियसंयमः एवं चक्षुरिन्द्रियादि तत्तदिन्द्रियस्य-

જીવકો પાંચ પ્રકારકા સંયમ હોતા હૈ, જૈસે—એકેન્દ્રિય સંયમ યાવત્
પંચેન્દ્રિય સંયમ સમસ્ત પ્રાણ ભૂત જીવ એવં સર્વોંકા સંઘટન આદિ
દ્વારા મર્દનકરનેરૂપ અસંયમ પાંચ પ્રકારકા હૈ, જૈસે—એકેન્દ્રિય અસંયમ
યાવત્ પञ्चेन्द्रिय असंयम ।

“ પુઠ્ઠવિદગ અગણિમારુય ” ઇત્યાદિ ।

હમ ગાથા દ્વારા જો ૧૭ પ્રકારકા સંયમ કહા ગયા હૈ, હમમેં સંય-
મકા નૌવાં ભેદ જો પञ्चेन्द्रिय संयम कहा है, वही यहां सूत्रमें श्रोत्रे-
न्द्रिय संयम आदिके भेदों द्वारा पांच प्रकार से कहा गया है, जो
जीव पञ्चेन्द्रिय जीवोंकी विराधना नहीं करता है, ऐसे जीवको श्रोत्रेन्द्रिय
संयम आदि रूप पांच प्रकारका संयम होता है, इनमें श्रोत्रेन्द्रियकी
विराधनाका त्याग करना वह श्रोत्रेन्द्रिय संयम है, इसी तरहसे चक्षु-

છે તે પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—એકેન્દ્રિય સંયમથી લઇને પંચેન્દ્રિય
સંયમ પર્યન્તના પાંચ પ્રકાર અહીં સમજી લેવા. સમસ્ત પ્રાણ, ભૂત, જીવો
અને સર્વેનું સંઘટન આદિ દ્વારા મર્દન કરવા રૂપ અસંયમના પશુ નીચે
પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર છે—એકેન્દ્રિય અસંયમથી લઇને પંચેન્દ્રિય અસંયમ પર્ય-
ન્તના પાંચ પ્રકારો અહીં સમજી લેવા.

“ પુઠ્ઠવિદગઅગણિમારુય ” ઇત્યાદિ—

આ ગાથા દ્વારા સંયમના જે ૧૭ પ્રકાર બતાવવામાં આવ્યા છે, તેમાં
નવમો ભેદ જે પંચેન્દ્રિય સંયમ કહ્યો છે, એ જ અહીં સૂત્રમાં શ્રોત્રેન્દ્રિય
સંયમ આદિના ભેદથી પાંચ પ્રકારનો કહ્યો છે. જે જીવ પંચેન્દ્રિય જીવોની
વિરાધના કરતો નથી, એવા જીવ દ્વારા શ્રોત્રેન્દ્રિય સંયમ આદિ રૂપ પાંચ
પ્રકારના સંયમનું પાલન થાય છે. તેમાં શ્રોત્રેન્દ્રિયની વિરાધનાનો ત્યાગ કરવો

विराधना परिवर्जनं तत्तदिन्द्रियसंयमो बोध्य इति । एतद्वैपरीत्येन पञ्चविध-
इन्द्रियासंयमो बोध्य इति । पूर्वमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजीवाश्रयेण संयमसंयमा-
सर्वजीवाश्रयत्वेन तावुच्येते 'सर्वपाणभूय'—इत्यादिना । सर्वप्राणभूतजीव-
सत्त्वान् सर्वे च ते प्राणाश्च भूताश्च जीवाश्च सत्त्वा*वेति—सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वा-
स्तान् असमारभमाणस्य=अविराधयतो जीवस्य एकेन्द्रियसंयमादिपञ्चेन्द्रिय-
संयमान्तः पञ्चविधः संयमो भवति । प्राणादीनां भेदस्त्वेवं बोध्यः, तथाहि—

“ प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ताः भूतास्तु तरवः स्मृताः ।

जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः शेषाः सत्त्वा इतीरिताः ” ॥१॥ इति ।

रिन्द्रिय आदि इन्द्रियोंकी विराधना करनेका त्याग करना वह इन्द्रिय संयम
है, इन इन्द्रियोंके संयमसे विपरीत पांच प्रकारका इन्द्रिय असंयम होता है,
संयम और असंयमका वह पूर्वोक्त कथन एकेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवोंके
आश्रयको लेकर कहा है, अब समस्त जीवोंके आश्रयसे संयम अस-
यमका कथन सूत्रकार करते हैं—“ सर्वपाणभूय ” इत्यादि—समस्त
प्राणोंकी समस्त भूतोंकी समस्त जीवोंकी और समस्त सत्त्वोंकी विरा-
धना करनेवाले जीवको एकेन्द्रिय संयम आदिसे लेकर पञ्चेन्द्रिय संयम
तक पांचों प्रकारका संयम होता है, प्राणादिकोंमें भेद इस प्रकारसे
कहा गया है—प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ता ” इत्यादि ।

दो इन्द्रियवाले तेइन्द्रियवाले और चार इन्द्रियवाले जीव “ प्राण ”

तेतुं नाम श्रोत्रेन्द्रिय संयम छे, ऐ ७ प्रभाणु यक्षुरिन्द्रिय, घ्राणुन्द्रिय, रस-
नेन्द्रिय अने र्पशेन्द्रियनी विराधनानो त्याग करवो तेतुं नाम आनुकमे
यक्षुरिन्द्रिय संयम, घ्राणुन्द्रिय संयम, रसनेन्द्रिय संयम अने र्पशेन्द्रिय
संयम छे. ऐ छिन्द्रियोना संयमथी विपरीत पांच प्रकारनो छिन्द्रिय असंयम
होय छे. संयम अने असंयमनुं आ कथन ऐकेन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रिय एवोने
आधारे करवामां आण्यु छे छेवे समस्त एवोने आधारे
संयम अने असंयमनुं कथन सूत्रकार करे छे—“ सर्वपाणभूय ”
इत्यादि—समस्त प्राणुनी, समस्त लूनी, समस्त एवोनी अने समस्त
सत्त्वोनी विराधना न करनार एवो ऐकेन्द्रिय संयमथी लछने पञ्चेन्द्रिय संयम
पर्यन्तना पांचे प्रकारना संयमनुं पालन करनारा गणाय छे. प्राणुदिकेनो
आ प्रभाणु अर्थ समणवो—“ प्राणा द्वि त्रि चतुः प्रोक्ता ” इत्यादि—

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अने यक्षुरिन्द्रिय एवोने 'प्राणु' कहे छे. पनस्पति

અત્ર પૃથિવ્યાદિપञ્ચેન્દ્રિયપર્યન્તા નવ સયમા વોધ્યાઃ । યતઃ એકેન્દ્રિય-સંયમેન પૃથિવ્યાદયઃ પञ્ચ, દ્વિત્રિચતુઃપञ્ચેન્દ્રિયા इति चत्वारः, इत्युभयेषां संकलनया नव । सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वानां विराधनां कुर्वतस्तु एकेन्द्रियासंयमादि-पञ्चેન્દ્રિયાસંયમાન્તઃ પञ્ચવિધાસંયમો ભવતિ ॥ સૂ૦ ૨૦ ॥

એકેન્દ્રિયભેદેનોક્તસ્ય વનસ્પતેર્વાદરભેદસ્ય પञ્ચવિધત્વમાહ—

મૂલમ્—પંચવિહા તળવળસ્સડ્કાઙ્યા પળગત્તા, તં જહા-
અગ્ગવીયા ૧ મૂલવીયા ૨ પોરવીયા ૩ સ્વંધવીયા ૪ વીયરુહા
૫ ॥ સૂ૦ ૨૧ ॥

છાયા—પञ્ચવિધાસ્તૃળવનસ્પતિકાયાિકાઃ પ્રજ્ઞતાઃ, તદ્યથા-અગ્ગવીજાઃ ૧
મૂલવીજાઃ ૨ પર્વવીજાઃ ૩ સ્વંધવીજાઃ ૪ વીજરુહાઃ ૫ ॥ સૂ૦ ૨૧ ॥

હસ શબ્દસે કહે ગયે હૈં, વૃક્ષ ‘ ભૂત ’ હસ શબ્દસે કહે ગયે હૈં ‘ પञ્ચેન્દ્રિય ’ જીવ હસ શબ્દસે કહે ગયે હૈં, इनसे अतिरिक्त एकेन्द्रिय जीव ‘ सत्त्व ’ શબ્દસે કહે ગયે હૈં । યહાં પૃથિવી આદિસે લેકર પञ્ચેન્દ્રિય તકકે નૌ સંયમ હૈં, क्योंकि एकेन्द्रिय संयमसे पृथिव्यादिक पांच द्वीन्द्रिय तेहन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चैन्द्रिय संयमसे चार हस प्रकारसे ये नौ संयम होते हૈં । सर्व प्राण, भूत, जीव एवं सत्त्व इनकी विराधना करनेवाले जीवके एकेन्द्रिय असंयमसे लेकर पञ्चैन्द्रिय असंयम तक पांच प्रकारका असंयम होता है ॥ સૂ૦ ૨૦ ॥

એકેન્દ્રિયકે ભેદસે કથિત હુએ વનસ્પતિકા જો વાદર ભેદ હૈ, उसकी पंचविधताका कथन अब सूत्रकार करते हૈं—

કાયિકને ‘ ભૂત ’ કહે છે, પંચેન્દ્રિયોને ‘ ભવ ’ કહે છે, તે સિવાયના એકેન્દ્રિય ભવોને ‘ સત્ત્વ ’ કહે છે. અહીં પૃથ્વીકાયિક સંયમથી લઇને પચેન્દ્રિય સંયમ પર્યન્તના નવ પ્રકારના સંયમ કહ્યા છે. ‘ એકેન્દ્રિય સંયમ ’ આ પદ દ્વારા પૃથ્વીકાયિક સંયમથી લઇને વનસ્પતિકાયિક સંયમ પર્યન્તના પાંચ લેહ શ્રદ્ધુ થયા છે. આ સિવાયના ચાર લેહ નીચે પ્રમાણે છે—દ્વીન્દ્રિય સંયમ, ત્રીન્દ્રિય સંયમ, ચતુરિન્દ્રિય સંયમ અને પંચેન્દ્રિય સંયમ સમસ્ત પ્રાણો, ભૂતો, ભવો અને સત્ત્વોની વિરાધના કરનારે ભવો વડે એકેન્દ્રિય અસંયમથી લઇને પંચેન્દ્રિય અસંયમ પર્યન્તના પાંચ પ્રકારના અસંયમ સેવાય છે ॥ સૂ. ૨૦ ॥

એકેન્દ્રિયના લેહરૂપ જે વનસ્પતિકાય છે, તેના બાદર વનસ્પતિ રૂપ લેહના પાંચ પ્રકારોનું સૂત્રકાર હવે કથન કરે છે.

ટીકા—‘ પંચવિહા ’ ઇત્યાદિ—

તૃણવનસ્પતિકાયાિકા:—તૃણરૂપા:—વાદરરૂપા યે વનસ્પતિકાયાિકાજીવાઃ સન્તિ તે અગ્રવીજાદિભેદેન પશ્ચવિધા વોધ્યાઃ । તત્ર—અગ્રવીજાઃ—કોરણ્ટકાદયઃ ૧, મૂલવીજાઃ—કમલકન્દાદયઃ ૨, પર્વવીજાઃ—શ્કુવંશાદયઃ ૩, સ્કન્ધવીજાઃ—શલ્લકયાદયઃ ૪ વીજરૂહાઃ—વટાદયઃ ૫ ઇતિ ॥ સૂં ૦ ૨૧ ॥

પૂર્વે વનસ્પતિકાયાિકજીવાઃ પ્રોક્તાઃ, તેષાં રક્ષણં ત્વાચારેણૈવ ભવતીત્યત્ આચારસ્વરૂપમાદ્ય—

મૂલમ્—પંચવિહે આયારે પળ્ણત્તે, તં જહા—ળાળાયાારે ૧ દંસળાયાારે ૨ ચરિત્તાયાારે ૩ તવાયાારે ૪ વારિયાયાારે ૫ ॥ સૂં ૦ ૨૨ ॥

છાયા—પશ્ચવિધ આચારઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તદ્ધયા—જ્ઞાનાચારઃ ૧ દર્શનાચારઃ ૨ ચારિત્રાચારઃ ૩ તપ આચારઃ ૪ વીર્યાચારઃ ૫ ॥ સૂં ૦ ૨૨ ॥

‘ પંચવિહા તળવળસ્સહકાહયા પળ્ણત્તા ’ ઇત્યાદિ સૂં ૦ ૨૧ ॥

તૃણરૂપ જો વાદર વનસ્પતિકાયાિક જીવ હૈં, લે અગ્રવીજ આદિકે ભેદસે પાંચ પ્રકારકે કહે ગયે હૈં, જિનકા અગ્રભાગહી વીજરૂપ હોતા હૈ, ઁસે કોરણ્ટક આદિ અગ્રવીજ હૈં ૧ । જિનકા મૂલહી વીજરૂપ હોતા હૈ, ઁસે કમલકન્દ આદિ મૂલવીજ હૈં ૨ । જિનકા પર્વહી વીજરૂપ હોતા હૈ, ઁસે શ્કુ (ગત્રા) વંશ આદિ પર્વવીજહૈં, તથા જિનકા સ્કન્ધહી વીજરૂપ હોતા હૈ, ઁસે શલ્લકી આદિ સ્કન્ધવીજ હૈં, ઁર જો વનસ્પતિ વીજસે ઉત્પન્ન હોતે હૈં ઁસે લે વડ આદિ વીજરૂપ વનસ્પતિ વીજ હૈં ॥ સૂં ૦ ૨૧ ॥

હન કથિત વનસ્પતિકાયાિક જીવાંકા રક્ષણ આચારસેહી હોતા હૈ, અતઃ અલ સૂત્રકાર આચારકા સ્વરૂપ કહતે હૈં—

“ પંચવિહા તળવળસ્સહકાહયા પળ્ણત્તા ” ઇત્યાદિ—

તૃષ્ણુ ઇપં જે બાદર વનસ્પતિકાયાિક હોલે છે, તેમના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર પડે છે—(૧) અગ્રબીજ—જેમના અગ્રભાગ જ બીજરૂપ હોય છે, ઁવા કોરણ્ટક આદિને ‘ અગ્રબીજ ’ કહે છે (૨) જેમનું મૂળ જ બીજરૂપ હોય છે, ઁવા કમલકન્દ આદિને ‘ મૂળબીજ ’ કહે છે (૩) જેમના પર્વ જ (ગાંઠ) બીજરૂપ હોય છે, ઁવા શેરડીના સાંઠા આદિને ‘ પર્વબીજ ’ કહે છે. (૪) જેનું થડ બીજરૂપ હોય છે, ઁવી શલ્લકી આદિને ‘ સ્કન્ધ બીજ ’ કહે છે (૫) જે વનસ્પતિ બીજમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે, ઁવા વડ આદિના બીજને ‘ બીજરૂપ વનસ્પતિ બીજ ’ કહે છે ॥ સૂ. ૨૧ ॥

ઉપર જે વનસ્પતિકાયાિક આદિ હોલેની વાત કરી તેમનું રક્ષણ આચાર દ્વારા જ થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર આચારનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરે છે.

ટીકા--' પંચવિદ્ધે ' ઇત્યાદિ--

આચરણમ્-આચારઃ-જ્ઞાનાદિવિષયકમનુષ્ઠાનમિત્યર્થઃ । સ ચ જ્ઞાનાચારા-
દિધેદેન પञ્ચવિધઃ । તત્ર-જ્ઞાનાચાર-જ્ઞાનં=શ્રુતજ્ઞાનં, તદ્વિષય આચારઃ-શ્રુતજ્ઞાન-
રૂપોઽષ્ટવિધ આચાર ઇત્યર્થઃ ।

તદુક્તમ્--" કાલે ૧, વિણ્ણ ૨ વહુમાણે ૩ ઉપધાણે ૪ તદ્વ્ય અનિહ્વણે ૫ ।

વંજ્ઞ ૬ અર્થ ૭ તદુભય ૮, અટ્ટવિદ્ધો નાણમાયારો ॥૧॥ "

છાયા--કાલો વિનયો વહુમાનમ્, ઉપધાનં તથા ચ અનિહ્વનમ્ ।

વ્યજ્ઞનમ્ અર્થસ્તદુભયમ્, અષ્ટવિદ્ધો જ્ઞાનાચારઃ ॥૧॥ ઇતિ ૧ ।

તથા-દર્શનાચારઃ-દર્શનં=સમ્યક્ત્વં, તદ્વિષયઆચારઃ-સમ્યક્ત્વવર્તાં વ્યવ-
હાર ઇત્યર્થઃ । અયમપ્યષ્ટવિધઃ । તદુક્તમ્--

'પંચવિદ્ધે આચારે પળગત્તે' ઇત્યાદિ સૂ૦ ૨૨ ॥

ટીકાર્થ-આચાર પાંચ પ્રકારકા કહા ગયાહૈ, જૈસે-જ્ઞાનાચાર ૧ દર્શનાચાર
૨ ચારિત્રાચાર ૩ તપ આચાર ૪ ઔર વીર્યાચાર ૫

આચરણકા નામ આચારહૈ, યહ આચાર જ્ઞાનાદિ વિષયક અનુ-
ષ્ઠાનરૂપ હોતા હૈ, યહ પૂર્વોક્તરૂપસે પાંચ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, ઇનમે
શ્રુતજ્ઞાન સમ્બધી જો આચાર હૈ, વહ જ્ઞાનાચાર હૈ, યહ જ્ઞાનાચાર આઠ
પ્રકારકા હૈ । કહા મી હૈ--" કાલે વિણ્ણ વહુમાણે " ઇત્યાદિ ।

કાલ ૧ વિનય ૨ વહુમાન ૩ ઉપધાન ૪ અનિહ્વ ૫ વ્યજ્ઞન ૬
અર્થ ૭ ઔર તદુભય ૮ દર્શનનામ સમ્યક્ત્વકા હૈ, ઇસ સમ્બન્ધી જો
આચાર હૈ, વહ દર્શનાચારહૈ, યહ દર્શનાચાર સમ્યક્ત્વ સહિત જીવોકો

ટીકાર્થ--" પંચવિદ્ધે આચારે પળગત્તે " ઇત્યાદિ--

આચારના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યાં છે--(૧) જ્ઞાનાચાર, (૨)
દર્શનાચાર, (૩) ચારિત્રાચાર, (૪) તપ આચાર અને (૫) વીર્યાચાર.

આચરણને આચાર કહે છે. તે આચારો જ્ઞાનાદિ વિષયક અનુષ્ઠાન રૂપ
હોય છે. તેના જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકાર છે. શ્રુતજ્ઞાન સંબધી જે આચાર
છે; તેને જ્ઞાનાચાર કહે છે. તે જ્ઞાનાચારના નીચે પ્રમાણે આઠ પ્રકાર છે--

" કાલે વિણ્ણ વહુમાણે " ઇત્યાદિ--

(૧) ક.ળ, (૨) વિનય, (૩) બહુમાન, (૪) ઉપધાન, (૫) અનિહ્વ,
(૬) વ્યજ્ઞન, (૭) અર્થ અને (૮) તદુભય

સમ્યક્ત્વને દર્શન કહે છે. દર્શન સંબધી જે આચાર છે તેને દર્શનાચાર
કહે છે. તે દર્શનાચાર સમ્યક્ત્વ યુક્ત શ્રુતોના વ્યવહાર રૂપ હોય છે. તેના

“ નિસ્સંક્રિય ૧ નિક્કંચિય ૨, નિઘ્વિતિગિચ્છા ૩ અમૂઢદિટ્ટી ૪ યા
ઉપવૂઢ ૫-ચિરીકરણે ૬, વચ્છલ્લ ૭, પ્રભાવણે ૮ અઢ ॥૧॥ ”

છાયા—નિશ્શક્તિં નિષ્કાંક્ષિતં, નિર્વિચિકિત્સા અમૂઢદષ્ટિશ્ચ ।

ઉપવૃંહા—સ્થિરીકરણે વાત્સલ્ય-પ્રભાવને અષ્ટ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

તથા--ચારિત્રાચારઃ-ચારિત્રં-સર્વવિરતિલક્ષણં, તદ્વિષયઆચારઃ, સમિત્યા-
દિરૂપ ચારિત્ર પાલનાત્મકોઽષ્ટવિધો વ્યવહારઃ ।

તદુક્તમ્--પણિહાણજોગજુતો, પંચર્હિં સમિર્હિં તિહિ ય ગુત્તીર્હિં ।

એમ ચરિત્તાચારો, અઢવિહો ઠોઙ્ગાયવ્વો ॥૧॥ ૧ ॥ ”

છાયા-પણિધાનયોગયુક્તઃ(પશસ્તવ્યાપારવાન)ચ્ચભિઃ સમિતિમિસ્તિસૃમિશ્ચગુત્તિમિઃ ।

એષ ચારિત્રાચારઃ અષ્ટવિધો ભવતિ જ્ઞાતવ્યઃ ॥૧॥ ઇતિ ।

વ્યવહારરૂપ હોતા હૈ, યહ મી આઠ પ્રકારકા હૈ, જૈસે-“ નિસ્સંક્રિય
નિક્કંચિય ” ઇત્યાદિ ।

નિશ્શંકિત ૧ નિષ્કાંક્ષિત ૨ નિર્વિચિકિત્સા ૩ અમૂઢદષ્ટિ ૪ ઉપ-
વૃંહા ૫ સ્થિરીકરણ ૬ વાત્સલ્ય ૭ ઓર પ્રભાવના ૮

ચારિત્રાચાર-સર્વવિરતિ રૂપ જો સંયમ હૈ, વહ ચારિત્ર હૈ, ઇસ
ચારિત્ર સમ્યન્ધી જો આચાર હૈ, વહ ચારિત્રાચાર હૈ. યહ ચારિત્રાચાર
સમિતિ આદિકે પાલને રૂપ હોતાહૈ, ઓર યહ મી અષ્ટ પ્રકારકા હૈ જૈસે-

“ પણિહાણજોગજુતો ” ઇત્યાદિ ।

પાંચ સમિતિયોંસે એવં તીન ગુપ્તિયોંસે યુક્ત જો પ્રશસ્ત વ્યાપાર-
વાલા હોતા હૈ, વહ ચારિત્રાચાર હૈ, ઇસ પ્રકાર યહ ચારિત્રાચાર પાંચ
સમિતિ ઓર તીન ગુપ્તિરૂપ હોનેસે આઠ પ્રકારકા હૈ, તપ આચાર ૧૨

પશુ નીચે પ્રમાણે આઠ પ્રકાર છે.

“ નિસ્સંક્રિય નિક્કંચિય ” ઇત્યાદિ—

(૧) નિ:શંક્તિ, (૨) નિષ્કાંક્ષિત, (૩) નિર્વિચિકિત્સા, (૪) અમૂઢ દષ્ટિ
(૫) ઉપવૃંહા, (૬) સ્થિરીકરણ, (૭) વાત્સલ્ય અને (૮) પ્રભાવના.

ચારિત્રાચાર—સર્વવિરતિ રૂપ જે સંયમ છે તેને ચારિત્ર કહે છે. તે
ચારિત્ર વિષયક જે આચાર છે તેને ચારિત્રાચાર કહે છે. તે સમિતિ આદિના
પાલન રૂપ હોય છે. તેના પશુ નીચે પ્રમાણે આઠ પ્રકાર ઠહ્યા છે.

“ પણિહાણજોગજુતો ” ઇત્યાદિ—

પાંચ સમિતિઓ અને ત્રણ ગુપ્તિઓથી યુક્ત એવો જે સાધુનો પ્રશસ્ત
વ્યાપાર છે, તેને ચારિત્રાચાર કહે છે. આ રીતે પાંચ સમિતિ રૂપ પાંચ પ્રકાર

તથા-તપ આચારો-દ્વાદશવિધ તપોઽનુષ્ઠાનાત્મકસ્તપસ્વિ નામાચારઃ ।

તપો દ્વાદશભેદાસ્તુ વાહ્યાભ્યન્તરભેદાદ્ વૌધ્યાઃ । તત્ર વાહ્યભેદાઃ પદ્
તથા હિ--

“ અગમણમૂળોચરિયા, મિત્રવાચરિયા ય રમપરિચ્છામો ।

કાયકિલેવો પહિવંલીળયા ય, વજ્જો તપો હોઃ ॥ ”

છાયા--અનશનમ્ ઋનોદરિકા મિક્ષાચર્યા ચ રસપરિત્યાગઃ ।

કાયક્લેશઃ પ્રતિસંલીનતા ચ વાહ્યં તપો ભવતિ ॥ ઇતિ ।

તથા-આભ્યન્તરભેદાઃ પદ્, તથાહિ--

“ પ્રાયશ્ચિત્તં વિણમો, વૈયાવૃત્તં તદેવ સજ્ઞાઓ ।

જ્ઞામં ચ ત્રિઉસ્મમ્ગો, યો અર્થિતરો તવો ॥

છાયા--પ્રાયશ્ચિત્તં વિનયો વૈયાવૃત્ત્યં તથૈવ સ્વાધ્યાયઃ ।

ધ્યાનં ચ વ્યુત્સર્ગઃ, એતદાભ્યન્તરં તપઃ ॥

પ્રકારકા હોના હૈ, તપસ્વિયોંકા જો તપોંકે અનુષ્ઠાન કરનેરૂપ આચાર
હૈ, વહ તપ આચાર હૈ, તપકે ૧૨ ભેદ ૬ વાહ્ય તપ ઓરં ૬ આભ્યન્તર
તપકે ભેદસે હોતે હૈં-જૈસે-“ અગમણમૂળોચરિયા ” ઇત્યાદિ ।

અનશન ૧ ઋનોદરિકા ૨ મિક્ષાચર્યા ૩ રસપરિત્યાગ ૪ કાય-
ક્લેશ ૫ ઓર પ્રતિસંલીનતા ૬ યે વાહ્ય તપ હૈં, આભ્યન્તર તપકે યે
૬ ભેદ હૈં-“ પ્રાયશ્ચિત્તં વિણમો ” ઇત્યાદિ ।

પ્રાયશ્ચિત્ત ૧ વિનય ૨ વૈયાવૃત્ત્ય ૩ સ્વાધ્યાય ૪ ધ્યાન ૫ ઓર
વ્યુત્સર્ગ ૬ આત્મા એવં શરીરકી શક્તિકા નામ વીર્યં હૈ, જ્ઞાનાચારકા

અને ત્રણ ગુણિરૂપ ત્રણ પ્રકાર મળીને તે કુલ આઠ પ્રકારનો હોય છે.

તપ આચાર-તપસ્વીઓનો-તપનું અનુષ્ઠાન કરવા રૂપ-જે આચાર હોય
છે તેને તપાચાર કહે છે. તેના ૧૨ પ્રકાર છે ૬ વાહ્ય તપ અને ૬ આભ્ય-
ન્તર તપ આરે ભેદોના નામ નીચે પ્રમાણે છે

“ અગમણમૂળોચરિયા ” ઇત્યાદિ-

(૧) અનશન, (૨) ઊલ્લોદરિકા, (૩) મિક્ષાચર્યા, (૪) રસપરિત્યાગ,
(૫) કાયક્લેશ અને (૬) પ્રતિસંલીનતા, આ ૬ વાહ્યતપ છે. આભ્યન્તર
તપના ૬ ભેદ નીચે પ્રમાણે છે “ પ્રાયશ્ચિત્તં વિણમો ” ઇત્યાદિ-

(૧) પ્રાયશ્ચિત્ત, (૨) વિનય, (૩) વૈયાવૃત્ત્ય, (૪) સ્વાધ્યાય (૫) ધ્યાન
અને (૬) વ્યુત્સર્ગ

વીર્યાચાર-આત્મા અને શરીરની શક્તિનું નામ વીર્યં છે જ્ઞાનાચારનો

तथा-वीर्याचारः-वीर्यम्=आत्मशरीरसामर्थ्यं, तस्यानन्तरोक्तेषु पट्टत्रि-
शद्विधेषु ज्ञानाचारादिषु स्फोरणम् । इति । सू० २२ ॥

आचारस्य प्रस्तुतत्वात् सम्प्रति आचारप्रकल्पस्य भेदानाह--

मूलम्-पंचविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते, तं जहा-मासिए
उग्घाइए १, मासिए अणुग्घाइए २, चाउमासिए उग्घाइए
३, चाउम्मासिए अणुग्घाइए ४, आरोवणा ५। आरोवणा
पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा-पट्टविया १ ठविया २ कसिणा ३
अकसिणा ४ हाडहडा ५ ॥ सू० २३ ॥

छाया-पञ्चविध आचारप्रकल्पः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-मासिकमुद्घातिकम् १,
मासिकमनुद्घातिकम् २, चातुर्मासिकमुद्घातिकम् ३, चातुर्मासिकमनुद्घातिकम् ४,
आरोपणा पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-प्रस्थापिता १, स्थापिता २, कृत्स्ना ३,
अकृत्स्ना ४, हाडहडा ५ ॥ सू० २३ ॥

८ दर्शनाचारका ८ चारित्राचारका ८ तप आचारका १२ कुल ३६ प्रकार-
के ज्ञानाचार आदिकोंके परिपालनमें जो वीर्यरूप शक्तिका प्रकट करना
है, वह वीर्याचार है ॥ सू० २२ ॥

अब सूत्रकार आचार प्रकल्पके भेदोंका कथन करते हैं—

'पंचविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते' इत्यादि सू० २३ ॥

सूत्रार्थ-आचार प्रकल्प पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे-मासिक उद्घा-
तिक १ मासिक अनुद्घातिक २ चातुर्मासिक उद्घातिक ३ चातुर्मासिक अनु-
द्घातिक ४ और आरोपणा ५ इनमें आरोपणा पांच प्रकारकी कही गई है -
जैसे-प्रस्थापिता १ स्थापिता २ कृत्स्ना ३ अकृत्स्ना ४ और हाडहडा ५

८, दर्शनाचारना ८, चारित्राचारना ८ अने तपाचारना १२ अने रीते कुल
३६ प्रकारना ज्ञानाचारादिकेना परिपालनमां जे वीर्यरूप शक्तिनुं प्रकाशन
थाय छे, तेनुं नाम वीर्याचार छे ॥ सू. २२ ॥

इवे सूत्रकार आचार प्रकल्पना लेदोनुं कथन करे छे.

सूत्रार्थ-" पंचविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते " इत्यादि—

आचार प्रकल्पना नीचे प्रमाणे पांच प्रकार कहां छे—(१) मासिक,
उद्घातिक, (२) मासिक अनुद्घातिक, (३) चातुर्मासिक उद्घातिक, (४) चातुर्मा-
सिक अनुद्घातिक अने (५) आरोपणा. तेमांथी आरोपणा पांच प्रकारनी
कही छे. जेभके (१) प्रस्थापिता, (२) स्थापिता, (३) कृत्स्ना, (४) अकृत्स्ना,
अने (५) हाडहडा.

ટીકા—‘ પંચવિદ્દે આચારપ્રકલ્પે ’ ઇત્યાદિ—

આચારપ્રકલ્પઃ—પ્રકૃષ્ટઃ કલ્પઃ=પ્રાયશ્ચિત્તરૂપો યત્ર સઃ પ્રકલ્પઃ, આચારસ્ય= આચારાક્ષરસ્ય પ્રકલ્પઃ=નિશીથારુયોઽધ્યયનવિશેષ આચારપ્રકલ્પઃ, સ ચ પશ્ચ- વિધપ્રાયશ્ચિત્તપ્રરૂપકત્વાત્ પશ્ચવિધઃ । તથાહિ—માસિકમુદ્ઘાતિકમ્—માસેન નિ- વૃત્તે માસિકમ્, ઉદ્ઘાતઃ=માગપાતઃ સાન્તરહાનં વા, તદ્ વિદ્યતે યત્ર તત્ ઉદ્ઘા- તિકમ્ । સાર્દ્ધસપ્તવિંશતિદિનપ્રમાણં પ્રાયશ્ચિત્તં માસિકમુદ્ઘાતિકમુચ્યતે । લઘુ- માસપ્રાયશ્ચિત્તમિત્યર્થઃ । ઉક્તંચાત્ર—

“ અદ્વેણ છિન્નસેસં, પુંવ્વદ્વેણ તુ સંજુયં કાઉં ।

દેજ્જાઙ્ઠ લહુયદાણં, ગુરુદાણં તત્તિયં ચેવ ॥૧૧॥”

છાયા—અર્દ્ધેન છિન્નશેષં, પૂર્વાર્દ્ધેન તુ સંયુતં કૃત્વા ।

દીયતે લઘુકદાનં ગુરુદાનં તાવદેવ ॥ ઇતિ ।

માસિકતપોઽધિકૃત્ય અસ્યા ગાથાયા ભાવાર્થ એવં વૌધ્યઃ, તથાહિ—માસે અર્દ્ધેન છિન્ને સત્તિ પશ્ચદશદિનાનિ શિષ્યન્તે । માસાપેક્ષયા પૂર્વસ્ય પૂર્વતપસઃ પશ્ચવિંશતિદિનાત્મકસ્ય અદ્ધ સાર્દ્ધદ્વાદશકમ્ ઉભયસંકલનયા સાર્દ્ધસપ્તવિંશતિ-

પ્રાયશ્ચિત્ત રૂપ પ્રકૃષ્ટકલ્પ જહાં હોતા હૈ, વહ પ્રકલ્પ હૈ, આચારાક્ષરૂપ આચારકા જો પ્રકલ્પ હૈ, વહ આચાર પ્રકલ્પ હૈ, યહ આ- ચારપ્રકલ્પ નિશીથ નામક અધ્યયન વિશેષ રૂપ હૈ યહ પૂર્વોક્ત રૂપસે પાંચ પ્રકારકા હૈ, કયોંકિ યહ પ્રાયશ્ચિત્તકા પ્રરૂપક હોતાહૈ, વહ માસિક ઉદ્ઘાતિક કહલાતાહૈ, હસે લઘુમાસ પ્રાયશ્ચિત્ત કહા ગયાહૈ । કહા બીહૈ—

‘ અદ્વેણ છિન્નસેસં ’ ઇત્યાદિ ।

માસિક તપકી અપેક્ષાસે હસ ગાથાકા એસા અર્થહૈ, માસકે આધે દિન પન્દ્રહ દિન હોતેહૈ, માસકી અપેક્ષાસે ૨૫ દિનાત્મક પૂર્વતપકે આધે ૧૨ ॥ દિન હોતેહૈ, ૧૫ ઓર ૧૨ ॥ સાઠે વારહકો પરસ્પરમેં જોડનેસે ૨૭ ॥ સાઠેસતા- હૈસ હોતેહૈ । લઘુ પ્રાયશ્ચિત્ત યદિ એક માસકા દેના હો તો વહ ૨૭ ॥ દિનકાહી

પ્રાયશ્ચિત્ત રૂપ પ્રકૃષ્ટ કલ્પ જ્યાં હોય છે, તે પ્રકલ્પ છે. આચારાંગ રૂપ આચારનો જે પ્રકલ્પ છે, તેનું નામ આચાર પ્રકલ્પ છે તે આચાર પ્રકલ્પ નિશીથ નામના અધ્યયન વિશેષરૂપ છે તેના પૂર્વોક્ત પાંચ પ્રકારે કહ્યાં છે તે પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રરૂપણા કરે છે માસિક ઉદ્ઘાતિકને લઘુમાસ પ્રાયશ્ચિત્ત પણ કહે છે. કહ્યું પણ છે કે “ અદ્વેણ છિન્ન સેસં ” ઇત્યાદિ—

માસિક તપની અપેક્ષાએ આ ગાથાનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે— માસથી અર્ધો દિવસ એટલે ૧૫ દિવસ થાય છે. માસની અપેક્ષાએ ૨૫ દિનાત્મક પૂર્વતપના અર્ધો દિવસો ૧૨ ॥ થાય છે. ૧૫ અને ૧૨ ॥ નો સરવાળો

दिनानि भवन्ति । एतावदिनात्मकं मासिकं लघुप्रायश्चित्तं दातव्यम् । गुरु प्रायश्चित्तं तु मासावधिकमेव दातव्यमिति ॥१॥

तथा—मासिकम् अनुद्घातिकम् न उद्घातिकम् अनुद्घातिकम्—यथाश्रुतप्रायश्चित्तं गुरुप्रायश्चित्तमित्यर्थः । एतत् त्रिंशद्दिनप्रमाणं भवतीति ॥२॥

तथा—चातुर्मासिकम् चतुर्भिर्मासैर्निर्गृत्तम् चातुर्मासिकं तद्रूपम् उद्घातिकम्—लघुचतुर्मासप्रायश्चित्तमित्यर्थः ॥३॥ तथा—चातुर्मासिकम् अनुद्घातिकम्=गुरुचतुर्मासप्रायश्चित्तमित्यर्थः ॥४॥ तथा—आरोपणा—आरोप्यते इत्यारोपणा—प्रायश्चित्तानामुपर्युपर्यारोपणं यावत् षणमासान्, तत ऊर्ध्वं तु भगवतो महावीरस्वामिनस्तीर्थे आरोपणा न भवति ।

अयं भावः—“ आरोपणाचडावणत्तिभाणियं होइ ”

छाया—आरोपणा आरोहणेति भाणितं भवति=इति । यो हि यथाप्रतिसेवितमालोचयति तस्य प्रतिसेवना—निष्पन्नमेव मासलघुमासगुरुप्रभृतिकं दीयते,

देना चाहिये और गुरु प्रायश्चित्त दिया जावे तो वह तो एक पूरे मास तककाही देना चाहिये ? तथा—मासिक अनुद्घातिक गुरु प्रायश्चित्त रूप होता है, और यह तीस दिनका होता है, जो प्रायश्चित्त चातुर्मासिक उद्घातिक होता है, वह ३ मास २७। दिनका होता है, इसे लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त भी कहा गया है, जो प्रायश्चित्त चातुर्मासिक अनुद्घातिक होता है, वह गुरु चातुर्मासिक होता है, अर्थात् पूरे चार मासका होता है, प्रायश्चित्तोंके ऊपर जो प्रायश्चित्त ६ मास तक लगातार दिये जाते हैं, वह आरोपणा है, इसके बाद महावीर स्वामीके शासनमें आरोपणा नहीं होती है, भाव यह है, “ आरोपणा चडावणत्ति भाणियं होइ ” आरोपणा आरोहणा कही गई है, जो प्राणी जैसे

२७। साडीसत्यावीस आवे छे जे एक मासनुं लघुप्रायश्चित्त देवुं डोय तो पूरा ३० दिवसनुं देवाने णहले २७। साडीसत्यावीस दिवसनुं देवुं जेधये, जे गुरुप्रायश्चित्त देवुं डोय तो ते पूरा ३० दिवसनुं डोय जेधये. आ प्रकारना ३० दिवसना प्रायश्चित्तने मासिक अनुद्घातिक कडे छे. जे प्रायश्चित्त ३ मास २७। दिवसनुं देवाभां आवे छे तेने लघुचातुर्मासिक अथवा चातुर्मासिक उद्घातिक कडे छे पूरा चार मासना प्रायश्चित्तने चातुर्मासिक अनुद्घातिक अथवा गुरुचातुर्मासिक कडे छे. सतत छ मास पर्यन्तनुं जे प्रायश्चित्त देवाभां आवे छे तेनुं नाम आरोपणा छे. महावीर प्रभुना शासनभां तेटला समय करतां वधादे समयनी आरोपणा देवाभां आवती नथी. “ आरोपणा चडावणत्तिभाणिय होइ ” आरोपणाने आरोहण कडेवाभां आवे

યસ્તુ ન તથા તસ્ય તત્તાવદ્ દીયત એવ માયા નિષ્પન્નં ચાન્યદ્દારોગ્યતે ઇત્યારો-
પણેતિ । આચારપ્રકલ્પસ્ય કેપુચિદ્દેશકેષુ લઘુમાસપ્રાયશ્ચિત્તં પ્રસ્તાયતે, કેપુ-
ચિત્ ગુરુમાસપ્રાયશ્ચિત્તમ્, કેપુચિદ્ લઘુચતુર્માસપ્રાયશ્ચિત્તં, કેપુચિદ્ ગુરુ
ચતુર્માસપ્રાયશ્ચિત્તમ્, કેપુચિત્ આરોપણા । ઇતિ પञ્ચવિધપ્રાયશ્ચિત્તપ્રરૂપકૃત્સા
દયમાચારપ્રકલ્પઃ પञ્ચવિધો વોધ્ય ઇતિ । અત્ર આરોપણા આચારપ્રકલ્પસ્ય પञ્ચમ-
ભેદત્વેનોક્તાઃ તસ્યા એવ સમ્પ્રતિ પञ્ચવિધત્વમાદૃ-‘ આરોપણા પંચવિદા ’ ઇત્યા-

દોષકા સેવન કરતા હૈ, વહુ ડસકી આલોચના ડમ્નીકે અનુનાર કરતા
હૈ, તો ડસે ડસ પ્રતિસેવનાકે અનુસારહી માસ લઘુ માસગુરુ આદિ
પ્રાયશ્ચિત્ત દિયે જાતે હૈ, ઓર જો પ્રતિસેવિત દોષકે અનુસાર આલોચના
નહીં કરતા હૈ, ડસે પ્રાયશ્ચિત્ત નો દિયાહી જાતા હૈ, પરન્તુ ડસ પ્રાય-
શ્ચિત્તમેં માયાસે નિષ્પન્ન હુઃ અન્ય પ્રાયશ્ચિત્તકી આરોપણાકી જાનો
હૈ, ઇસ પ્રકારસે યહ આરોપણા હોતી હૈ, આચાર પ્રકલ્પકે કિન્હીં ૨
ઉદ્દેશકોમેં લઘુમાસ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રરૂપિત્ત હુઆ હૈ, કિન્હીં ૨ ઉદ્દેશકોમેં
ગુરુમાસ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રરૂપિત્ત હુઆ હૈ, ઓર કિન્હીં ૨ ઉદ્દેશકોમેં આરો-
પણા પ્રરૂપિત્ત હુઈ હૈ, ઇસ તરહસે પાંચ પ્રકારકે પ્રાયશ્ચિત્તોંકા પ્રરૂપક
હોનેસે યહ આચારપ્રકલ્પ પાંચ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, તેમા જાનના
ચાહિયે યહાં આરોપણા આચાર પ્રકલ્પકે પञ્ચમ ભેદ રૂપસે કહી હૈ,
સો અવ ડસકેહી સૂત્રકાર પાંચ ભેદ પ્રકટ કરનેકે લિયે કહતે હૈ-

છે. જે જીવ જેવા દોષનું સેવન કરે છે, તે દોષની તેના દ્વારા તેને અનુરૂપ
આલોચના કરાય છે-તેને પ્રતિસેવનાને અનુરૂપ જ માસલઘુ, માસગુરુ આદિ
પ્રાયશ્ચિત્ત દેવામાં આવે છે. જે માણુસ પ્રતિસેવિત દોષને અનુરૂપ આલોચના
કરતો નથી, તેને પ્રાયશ્ચિત્ત તો દેવામાં આવે જ છે, પરન્તુ તે પ્રાયશ્ચિત્તમાં
માયાથી નિષ્પન્ન થયેલા અન્ય પ્રાયશ્ચિત્તની આરોપણા કરાય છે આ પ્રકારનું
તે આરોપણાનું સ્વરૂપ હોય છે. આચાર પ્રકલ્પના કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં
લઘુમાસ પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે, કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં ગુરુ-
માસ પ્રાયશ્ચિત્તની, કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં લઘુ ચાતુર્માસ પ્રાયશ્ચિત્તની, કોઈ
કોઈ ઉદ્દેશકોમાં ગુરુ ચાતુર્માસ પ્રાયશ્ચિત્તની અને કોઈ કોઈ ઉદ્દેશકોમાં
આરોપણાની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે. આ રીતે પાંચ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તોનું
પ્રરૂપક હોવાને કારણે આ આચાર પ્રકલ્પને પાંચ પ્રકારનો કહેવામાં આવેલ
છે, એમ સમજવું. અહીં આરોપણાને આચાર પ્રકલ્પના પાંચમાં ભેદ રૂપ
પ્રકટ કરવામાં આવી છે.

હવે સૂત્રકાર તે આરોપણાના પાંચ ભેદો પ્રકટ કરે છે.

दिना । आरोपणा हि प्रस्थापितादिभेदैः पञ्चविधा भवति । तत्र—प्रस्थापिता-
आरोपणीयेषु बहुषु प्रायश्चित्तेषु सत्सु यद् लघुमासगुरुमासादिप्रायश्चित्तेषु कस्य
चिदेकस्य प्रस्थापना सा प्रस्थापितेत्युच्यते ॥१॥ तथा—स्थापिता-यः कश्चित्
मासगुर्वादिप्रायश्चित्ताहर्णं भवति, स गुरोर्वैयावृत्त्यं करोति, अतस्तस्य प्रायश्चित्त
वैयावृत्त्यसमाप्तिं यावत् स्थापितम्, ततः पश्चात् स प्रायश्चित्तं करिष्यतीत्येषा
स्थापितेत्युच्यते ॥२॥ तथा—कृत्स्ना—यत्र झोषो न क्रियते सा । झोषस्त्वयम्—
भगवतो महावीरस्वामिनस्तीर्थे षण्मासान्तमेव तपो भवति षण्णां मासानामुपरि ये

“ आरोपणा पञ्चविहा ” इत्यादि ।

यह आरोपणा प्रस्थापित आदिके भेदसे पांच प्रकारकी होती है, इनमें जो आरोपणा आरोपणीय अनेक प्रायश्चित्तोंके होने पर लघुमास गुरुमास आदि प्रायश्चित्तोंमेंसे किसी एक प्रायश्चित्तके प्रस्थापनारूप होती है, वह आरोपणा “ प्रस्थापिता ” इस रूपसे कही गई है, तथा जो कोई मासगुरु आदि प्रायश्चित्तके योग्य होता है, वह पहिले गुरुकी वैयावृत्ति करता है, अतः जबतक वैयावृत्तिकी समाप्ति नहीं हो जाती है, तब तक उसका प्रायश्चित्त स्थापित रहता है, इसके बाद वह प्रायश्चित्त करता है, इस तरहसे यह आरोपणा स्थापितारूप कही गई है, तथा जिस आरोपणामें झोष नहीं किया जाता है, वह आरोपणा कृत्स्ना आरोपणा है, झोषका अभिप्राय ऐसा है, कि भगवान् महावीर स्वामीके तीर्थमें छह मास तकही तप होता है, छह मासके बाद जो मास अप-

“ आरोपणा पञ्चविहा ” इत्यादि—

ते आरोपणानां प्रस्थापित आदि पांच भेद कहां छे जे आरोपणा, आरोपणीय अनेक प्रायश्चित्तोना संभाव डाय तयारे लघुमास, गुरुमास आदि प्रायश्चित्तोमांथी एक प्रायश्चित्तनी प्रस्थापना रूप डाय छे, ते आरोपणने ‘ प्रस्थापिता ’ कहे छे. तथा जे केह साधु मासगुरु आदि प्रायश्चित्तने योग्य डाय छे, ते पहिलां गुरुनु वैयावृत्त्य करे छे, तेथी न्यां सुधी वैयावृत्तिनी समाप्ति थछ नथी, त्यां सुधी तेनु प्रायश्चित्त स्थापित रहे छे, तयारभाद ते प्रायश्चित्त करे छे. आ रीते आ आरोपणाने ‘ स्थापिता ’ रूप कडेवांमां आवी छे. तथा जे आरोपणांमां ‘ ओष ’ कराते नथी ते आरोपणाने “ कृत्स्ना आरोपणा ” कहे छे. ओषना लावार्थ नीचे प्रमाणे छे—

महावीर अणुना तीर्थमां छ मास सुधीनुं ज प्रायश्चित्त आपी शकत

मासा अपराधिनो भवन्ति, तेषां क्षयणं भवति, अर्थात् पण्मासाधिकमासानां प्रायश्चित्तमपराधिषु नारोप्यते । किमिव ? यथा प्रस्थे धान्ये मातव्ये तदधिकधान्यस्यापनं भवति तदिवेति । पण्मासाधिकमासानां यत्प्रायश्चित्तानारोपणं स एव क्षोपो बोध्यः । तस्याभावेन परिपूर्णत्वादियं कृत्स्नेत्युच्यते इति ॥३॥

तथा-अकृत्स्ना-यत्र पण्मासाधिकमासानां प्रायश्चित्तं नारोप्यते इति सा अपरिपूर्णत्वात् अकृत्स्नेत्युच्यते, इति ॥४॥ तथा-हाडहडा-यस्यापराधिनो लघुगुरुमासादिप्रायश्चित्तेषु यत् प्रायश्चित्तं प्राप्तं, तत् तस्मिन्नेव काले तस्मि-

राधीके होतेहैं, उसकी क्षयणा हो जातीहै, अर्थात् अपराधियोंमें छह माससे अधिक मासोंका प्रायश्चित्त आरोपित नहीं होता है, जैसे-जिस प्रस्थमें (नापविशेष) जितना धान्य समानेके योग्य होताहै, उस प्रस्थमें उतनाही धान्य समाता है, अधिक धान्य वहांसे गिर जाता है, इस तरह छह माससे अधिक मासोंके प्रायश्चित्तकी जो अनारोपणा है, वही क्षोप है, इसके अभावसे छह माससे अधिक प्रायश्चित्त देनेके अभावसे यह आरोपणा पूर्ण होनेके कारण कृत्स्ना आरोपणा कही जाती है । जिसमें छ माससे अधिक मास का प्रायश्चित्त की आरोपणा नहीं की जातीहै वह अपरिपूर्ण होनेसे "अकृत्स्ना" आरोपणा कही जातीहै. तथा हाडहडा जो आरोपणा है, वह ऐसी है कि जिस अपराधीके लघुमास गुरुमास आदि प्रायश्चित्तोंमेंसे जो प्रायश्चित्त हो वह उसी कालमें उसमें

छे अपराधीने छ मासथी वधारे मासतु प्रायश्चित्त आपी शकतुं नथी । मास करतां वधारे समयतुं प्रायश्चित्त आरोपित करी शकतुं नथी. जेम ठाई पात्रमां जेटलु धान्य समाई शके तेम डोय जेटलुं न धान्य तेमां लरी शकाय छे, परन्तु जे तेथी वधारे धान्य तेमां नाथवाभां आवे तो ते पात्र-मांथी गडार नीकणी जय छे, जेन प्रमाथे छ मासथी वधारे मासना प्रायश्चित्तनी जे अनारोपणु छे, तेनुं नाम ज "ओष" छे. छ मासथी अधिक समयना प्रायश्चित्तने अलाव डोवाने कारथे, ते आरोपणु (छ मासना प्रायश्चित्त इप आरोपणु) पूर्ण डोवाने कारथे तेने 'कृत्स्ना आरोपणु' कडे छे. 'जेमां छ मडीनाथी वधारे मडिमानुं प्रायश्चित्तनी आरोपणु करवाभां आवती नथी ते अपरिपूर्णुं डोवाथी "अकृत्स्ना आरोपणु कडेवाय छे. हाडहडा आरोपणु' आ प्रकारनी छे—जे अपराधीने लघुमास, गुरुमास आदि प्रायश्चित्तोंमांथी जे प्रायश्चित्त देवानुं डोय, ते प्रायश्चित्त जे न क्षणे ते अपराधीमां आरोपित करवाभां आवे छे, तेथी ते आरोपणुने

न्नारोप्यते इति सा ' हाडहडा ' इत्युच्यते । कृतापराधस्य सद्य एव यन्प्रायश्चित्तारोपणा सा ' हाडहडे 'ति भावः ॥सू० २३॥

संयतासंयतसम्बन्धितया सूत्राणि प्रागभिहितानि, तत्र संयतासंयतगत-वस्तुविशेषाः प्रोक्ताः, तेषां व्यतिकरस्तु मनुष्यक्षेत्र एव भवतीति मनुष्यक्षेत्रस्थान् पदार्थविशेषानाह—

मूलम्—जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महानईए उत्तरेणं पंच वक्खारपव्वया पणत्ता, तं जहा—मालवंते, १ चित्तकूडे २ पम्हकूडे ३ णल्लिणकूडे ४ एगसेले ५ ॥ १ ॥ जंबू मंदरस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महानईए दाहिणैणं पंच वक्खारपव्वया पणत्ता, तं जहा—तिकूडे १ वेसमणकूडे २ अंजणै ३ मायंजणै ४ सोमणसे ५ ॥२॥ जंबू मंदरस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महाणईए दाहिणैणं पंच वक्खारपव्वया पणत्ता, तं जहा—विज्जुप्पभे १ अंकावई २ पम्हावई ३ आसी-विसे ४ सुहावहे ५ ॥ ३ ॥ जंबू मंदरस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खारपव्वया पणत्ता, तं जहा—चंद-पव्वए १ सूरपव्वए २ णागपव्वए ३ देवपव्वए ४ गंधमायणै ५ ॥ ४ ॥ जंबूमंदरदाहिणैणं देवकुराए कुराए पंच महद्दहा पणत्ता, तं जहा—निसहदहे १ देवकुरुदहे २ सूरदहे ३ सुलः

आरोपित क्रिया जाता है, इसलिये यह “ हाडहडा ” कही गई है, तात्पर्य यह है, कि जिसने जो अपराध किया है, उस अपराधकी उसी समय जो प्रायश्चित्तकी आरोपणा है, वह हाडहडाआरोपणा है सू. २३॥

“ हाडहडा ” कही छे. अट्ठे डे नेबु ने अपराध कर्ये डोय ते अपराधना प्रायश्चित्तनी अ न समये ने आशेषणा करवाभां आवे छे तेने “ हाडहडा आरोपणा ” कही छे. ॥ सू. २३ ॥

सदहे ४ विञ्जुप्यभदहे ५ ॥ ५ ॥ जंबू मंदरस्त उत्तरकुराए
 कुगाए पंच महद्दहा पणत्ता, तं जहा-नीलवंतदहे १ उत्तरकु-
 न्दहे २ चंददहे ३ एरावणदहे ४ मालवंतदहे ५ ॥ ६ ॥ सव्वे
 वि णं वक्खारपव्वया सीया सीओयाओ महाणईओ मंदरं वा
 पव्वयंतेणं पंच जोयणसयाइं उड्डं उच्चत्तेणं पंच गाउयसयाइं
 उच्चहेणं ॥ ७ ॥ धायइसंडे दीव्वे पुरत्थिमद्धेणं मंदरस्त पव्व-
 यस्त पुगत्थिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खारप-
 व्वया पणत्ता, तं जहा-मालवंते, एवं जहा-जंबूदीव्वे तहा
 जाव पुक्खारवरदीव्वड्डुवच्चत्थिमद्धे वक्खारा दहा य उच्चत्तं
 भाणियव्वं । समयखंत्ते णं पंच भरहाइं पंच एरवयाइं एवं
 जहा चउट्टाणे विइयउद्देसे तहा एत्थ वि भाणियव्वं जाव पंच
 मंदरा पंच मंदरचूलियाओ, णवरं उसुयारा णत्थि ॥ सू० २४ ॥

जाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये सीताया महानद्या उत्तरे
 पञ्च वज्रकृतः पर्वताः प्रथमाः, नद्यथा—मान्यवान्, १ चित्रकूटः, २ पद्मकूटः, ३
 नरसिंहकूटः, ४ एरवन्तः ५ ॥१॥

संयत असंयतके सम्बन्धके सूत्र सूत्रकारने पहिले कह दिये हैं,
 उनमें संयत असंयत गत जो वस्तुविशेष कहे गये हैं, उनका व्यतिकर
 सम्बन्ध या सहायता मनुष्यश्रेयमेंही होना है, इस कारण अब सूत्र-
 कार मनुष्यश्रेयस्य पदार्थ विशेषोंका कथन करने हैं—

संयत अर्थात् संयत विषयस्य अग्रणी प्रश्नानां सूत्रकारे पठित्वा धरेत्री
 हे ते नदीनां संयत असंयत ते वस्तुविशेष इतिव भां आवेत्त छे तेभनो
 व्यतिकर सम्बन्ध सहायता मदकार ते मनुष्यश्रेयसां च संबन्धी शक्ये छे तेथी
 इति सूत्रकार मनुष्यश्रेयसां विशेष इतिव पदार्थविशेषोऽयं ध्यत धरे छे—

जम्बू मन्दरस्य पौरस्त्ये सीताया महानद्या दक्षिणे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—त्रिकूटः १, वैश्रमणकूटः, २ अञ्जनः, ३ मायाञ्जनः, ४ सौमनसः ५ ॥२॥ जम्बूमन्दरस्य पाश्चात्ये सीतोदाया महानद्या दक्षिणे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः प्रज्ञप्ताः तद्यथा विद्युत्प्रभः १, अङ्गावती, २ पद्मावती ३, आशीविषः ४, सुखावहः ५ ॥३॥ जम्बू मन्दरस्य पाश्चात्ये सीतोदाया महानद्या उत्तरे पञ्च वक्षस्कारपर्वताः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—चन्द्रपर्वतः, १ सूरपर्वत, २ नागपर्वतः, ३ देवपर्वतः, ४ गन्धमादनः ५ ॥४॥

जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्त इत्यादि सू० २४ ॥

सूत्रार्थ—जंबूद्वीप नामके इस द्वीपमें मन्दर(मेरु) पर्वतकी पूर्वदिशामें सीता महानदीकी उत्तर दिशामें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं उनके नाम इस प्रकारसे हैं—माल्यवान् १ चित्रकूट २ पद्मकूट ३ नलिनकूट ४ और एकशैल ५ । जम्बूद्वीपस्थ मन्दर (मेरु) पर्वतकी पूर्व दिशामें सीता महानदीकी दक्षिण दिशामें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं—उनके नाम इस प्रकारसे हैं—त्रिकूट १ वैश्रमण कूट २ अञ्जन ३ मायाञ्जन ४ और सौमनस ५

जम्बूद्वीपस्थ महामन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें सीतोदा महानदीकी दक्षिण दिशामें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं—उनके नाम इस प्रकारसे हैं—विद्युत्प्रभ १ अङ्गावती २ पद्मावती ३ आशीविष ४ और सुखावह ५ जम्बूद्वीपस्थ मन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें सीतोदा महानदीकी उत्तर दिशामें पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं । जैसे—चन्द्रपर्वत १ सूर पर्वत २ नाग पर्वत ३ देवपर्वत ४ और गन्धमादन पर्वत ५

“जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्त पञ्चयस्त ” इत्यादि—

सूत्रार्थ—जंबूद्वीप नामना आ द्वीपमां मन्दर पर्वतनी पूर्व दिशाभां वडेती सीता महानदीनी उत्तर दिशाभां पांच वक्षस्कार पर्वतो आवेला छे. तेमनां नाम आ प्रमाणे छे—(१) माल्यवान्, (२) चित्रकूट, (३) पद्मकूट, (४) नलिनकूट आने (५) एकशैल

जंबूद्वीपमां आवेला मन्दर पर्वतनी पूर्व दिशाभां वडेती सीता महानदीनी दक्षिण दिशाभां पांच वक्षस्कार पर्वतो आवेला छे तेमनां नाम आ प्रमाणे छे—(१) त्रिकूट, (२) वैश्रमणकूट, (३) अञ्जन, (४) मायाञ्जन आने (५) सौमनस.

जंबूद्वीपना मन्दर पर्वतनी पश्चिम दिशाभां आवेला सीतोदा महानदीनी दक्षिण दिशाभां पांच वक्षस्कार पर्वतो आवेला छे तेमनां नाम आ प्रमाणे छे—(१) विद्युत्प्रभ, (२) अङ्गावती, (३) पद्मावती, (४) आशीविष आने (५) सुखावह.

જરૂ મન્દરદક્ષિણે દેવકુરોઃ કુરોઃ પશ્ચ મહાહ્રદાઃ પ્રજ્ઞસાઃ, તથથા-નિપથ-
હ્રદઃ ૧, દેવકુરુહ્રદઃ, ૨ સૂરહ્રદઃ, ૩ સુલસ હ્રદઃ ૪ વિદ્યુત્પ્રભ હ્રદઃ ૫ ॥૫॥
જજ્ઞ મન્દરસ્યોત્તરકુરુયુ કુરુયુ પશ્ચ મહાહ્રદાઃ પ્રજ્ઞસાઃ, તથથા-નીલવદ્ હ્રદઃ, ૧
ઉત્તર-કુરુહ્રદઃ, ૨ ચન્દ્રહ્રદઃ, ૩ ઐરાવળહ્રદઃ, ૪ માલવદ્ હ્રદઃ ૫ ॥૬॥ સર્વેઽપિ
સ્વલુ વક્ષસ્કારપર્વતાઃ સીતા સીતોદે મહાનદી મન્દરં વા પર્વતં પ્રતિ પશ્ચ યો-
જનશતાનિ ઝર્ધ્વમુચ્ચત્વેન પશ્ચ ગવ્યુતિશતાનિ ઉદ્દેધેન ॥૭॥ ધાતકીસ્વળે ઢ્રીપે
પૌરસ્ત્યાર્દે સ્વલુ મન્દરસ્ય પર્વતસ્ય પૌરસ્ત્યે સીતાયા મહાનદ્યા ઉત્તરે પશ્ચ વક્ષસ્કાર-

જમ્બૂદ્વીપસ્થ મન્દર પર્વતકી દક્ષિણ દિશામેં દેવકુરુમેં પાંચ મહાહ્રદ
કહે ગયેહૈં-उनके नाम इस प्रकारसेहैं-निपथ ह्रद (द्रह) १ देवकुरु ह्रद २
सूर ह्रद ३ सुलस ह्रद ४ और विद्युत्प्रभ ह्रद ५। जम्बूद्वीपस्थ मन्दर पर्व-
तके उत्तर कुरुमें पांच महाह्रद कहे गये हैं उनके नाम इस प्रकारसे हैं
नीलवत् ह्रद १ उत्तरकुरु ह्रद २ चन्द्र ह्रद ३ ऐरावण ह्रद ४ और माल्य-
वद् ह्रद ५ समस्त वक्षस्कार पर्वत सीता सीतोदा महानदियोंकी तरफ
और मन्दर पर्वतकी तरफ पांचसौ योजन ऊँचे हैं और उद्देधसे (भू-
मिके अन्दर गहराइमें) पांचसौ गव्यूति (दो कोस) प्रमाण हैं ।

ધાતકી સ્વળ ઢ્રીપમેં પૌરસ્ત્યાર્ધમેં મન્દર(મેરુ)પર્વતકે પૂર્વદિશામેં સીતા
મહાનદીકે ઉત્તરમેં પાંચ વક્ષસ્કાર પર્વત કહે ગયે હૈં उनके नाम इस

જમ્બૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની પશ્ચિમ દિશામાં આવેલી સીતોદા મહા
નદીની ઉત્તર દિશામાં પાંચ વક્ષસ્કાર પર્વતો છે. તેમનાં નામ આ પ્રમાણે
છે—(૧) ચન્દ્ર પર્વત, (૨) સૂર પર્વત, (૩) નાગ પર્વત, (૪) દેવ પર્વત
અને (૫) ગન્ધમાહન પર્વત.

જમ્બૂદ્વીપમાં આવેલા મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં આવેલા દેવકુરુમાં
પાંચ મહાહ્રદ છે. તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે --(૧) નિપથ હ્રદ, (૨) દેવકુરુ
હ્રદ, (૩) સૂર હ્રદ, (૪) સુલસ હ્રદ અને (૫) વિદ્યુત્પ્રભ હ્રદ

જમ્બૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની ઉત્તર દિશામાં આવેલા ઉત્તરકુરુમાં પશુ
નીચે પ્રમાણે પાંચ મહાહ્રદ છે—(૧) નીલવત્ હ્રદ, (૨) ઉત્તરકુરુ હ્રદ, (૩)
ચન્દ્ર હ્રદ, (૪) ઐરાવળ હ્રદ અને (૫) માલ્યવત્ હ્રદ.

સમસ્ત વક્ષસ્કાર પર્વતો સીતા અને સીતોદા મહાનદીઓની તરફ અને
મન્દર પર્વતની તરફ ૫૦૦ યોજન ઊંચા છે, અને તેમનો ઉદ્દેધ (જમીનની
અંદરની ઊંડાઈ) ૫૦૦ ગવ્યૂતિપ્રમાણ છે.

ધાતકીખંડ ઢ્રીપના પૂર્વાર્ધમાં મન્દર પર્વતની પૂર્વ દિશામાં સીતા મહા
નદીની ઉત્તરે પાંચ વક્ષસ્કાર પર્વતો આવેલા છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે.

पर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—माल्यवान् एवं यथा जम्बूद्वीपे तथा यावत् पुष्करवर
द्वीपार्द्धपाश्चात्यार्द्धे वक्षस्कारा इदाश्च उच्चत्वं भणितव्यम् ॥८॥ समयक्षेत्रे खलु
पञ्चभरतानि पञ्च ऐरावतानि । एवं यथा चतुःस्थाने द्वितीयोद्देशे तथा अत्रापि
भणितव्यं यावत् पञ्च मन्दराः पञ्च मन्दरचूलिकाः । नवरम् इषुकारा न सन्ति ॥सू०२४॥

टीका—‘ जंबुद्वीपे ’ इत्यादि—

व्याख्या सुगमा, तथापि किञ्चिदत्र लिख्यते—वक्षसि=मध्ये गोप्यं क्षेत्रं द्वौ
संभूय कुर्वन्ति ये ते वक्षस्कारा गजदन्तापरपर्यायाः पर्वतविशेषाः । ते च माल्य-
वतो गजदन्तकाद् प्रदक्षिणया चतुर्दिक्षु वर्त्तमानाः चतुःसूत्रोक्ता विशतिसंख्यकाः

प्रकारसे हैं—माल्यवान् इत्यादि इनका नाम जैसा जम्बूद्वीपके प्रकरणमें
कहा गया है, वैसाही है, पुष्करवरद्वीपार्द्धमें और पाश्चात्यार्द्धमें
वक्षस्कारों का हदों का और इन की - वक्षस्कार पर्वतों
की ऊंचाई का कथन पहिले की तरहसेही कहना चाहिये । समय-
क्षेत्रमें पांच भरत और पांच ऐरावत क्षेत्रहैं । चतुःस्थानमें द्वितीय उद्देशे
में जैसा कहा गया है, वैसा यहाँ पर भी कह लेना चाहिये यावत्
पांच मन्दर और पांच मन्दर चूलिकाएँ हैं, विशेषता केवल इतनीसीही
है, कि इषुकार नहीं हैं ।

टीकार्थ—इसकी व्याख्या सुगम है, तब भी कुछ इस विषयमें
लिखा जाता है, वक्षस्कार पर्वतोंका दूसरा नाम गजदन्त भी है, यह
विशेष पर्वत है । इनका वक्षस्कार ऐसा नाम इसलिये हुआ है कि ये
दो एकत्रित होकर अपने मध्यमें क्षेत्रको गोप्य करते हैं । ये माल्यवान्

माल्यवान् इत्यादि नाम जम्बूद्वीपना प्रकरणमां उपर उक्त्वा अनुसार समञ्वा.
पुष्करवरद्वीपाधर्मां अने पश्चिमाधर्मां वक्षस्कारोत्तु, उदोत्तु अने वक्षस्कार
पर्वतनी उायाधनु कथन आगणना कथन प्रभाषे ज समञ्जु. समयक्षेत्रमां पांच
भरत अने पांच ऐरावतक्षेत्र छे चतुःस्थानकना भीज उद्देशामां तेमने विषे
जेवुं कथन करवामा आण्यु छे जेवुं ज कथन अहीं पणु करवुं जेधजे.

आ रीते “ पांच मन्दर अने पांच मन्दर चूलिकाओ छे, ” त्यां सुधीनुं
कथन उदणु करवुं जेधजे. अहीं केवण ओटली ज विशेषता छे के अहीं
इषुकारनो सहभाव नथी

टीकार्थ—आ सूत्रनी व्याख्या सुगम होवा छतां पणु अही तेमनुं
थोडुं स्पष्टीकरणु करवामां आवे छे. वक्षस्कार पर्वतोत्तुं भीजुं नाम गजदन्त
पणु छे. ते पर्वतोने वक्षस्कार उदोत्तुं कारणु जे छे के ते जे पडाडो जेकत्र
थधने तेमनी वखेना क्षेत्रने गोप्य (अदृश्य) करे छे. तेओ माल्यवान्

સન્તિ । તથા-દેવકુરુપુ નિષધવર્ષધરપર્વતાત્ ઉત્તરસ્યાં દિશિ સપ્તભાગવિભિન્ન-
 સ્યૈકસ્ય યોજનસ્ય ચતુરો ભાગાન્ ચતુસ્ત્રિંશદધિકાનિ અષ્ટશતયોજનાનિ ગત્વા
 શીતોદાયા મહાનદ્યાઃ પૂર્વાપરતટવર્તિનો વિચિત્રકૂટચિત્રકૂટનામાનો પર્વતો સ્તઃ ।
 તયોઃ પ્રત્યેકપર્વત-ઉચ્ચત્વેન યોજનસહસ્રપ્રમાણઃ, સૂલે સહસ્રયોજનાયામ-
 વિષ્કમ્ભયુક્તઃ, ઉપરિતનપ્રદેશે ચ પશ્ચશતયોજનાયામવિષ્કમ્ભયુક્તઃ । તૌ ચ
 પર્વતૌ પ્રાસાદપરિમણ્ડિતૌ સ્વ સ્વનામસદશવિચિત્રકૂટચિત્રકૂટનામક દેવ
 નિવાસધૂતૌ વિદ્નેયૌ । તતસ્તાભ્યાં પર્વતાભ્યાં પૂર્વોક્તાન્તર્યયુક્તઃ શીતોદા મહાનદી
 મધ્યભાગવર્તી દક્ષિણોત્તરતઃ સહસ્રયોજનાન્યાયતઃ પૂર્વાપરતઃ પશ્ચશતયોજનાનિ

ગજદન્તસે પ્રદક્ષિણા કરતે હુણ ચારોં દિશામેં સ્થિત હેં । યહાં ચારોં
 સૂત્રોં દ્વારા યે વીસ કહે ગયે હેં । તથા-દેવકુરુઓંમેં નિષધ વર્ષધર પર્વ-
 તસે ઉત્તર દિશામેં એક યોજનકે સાત ભાગમેંસે ચાર ભાગ અધિક
 ૮૩૪ યોજન તક આગે જાકર શીતોદા મહાનદીકે પૂર્વ ઓર પશ્ચિમ તટ
 પર સ્થિત વિચિત્રકૂટ ઓર ચિત્રકૂટ નામકે દો પર્વત હેં । इनमें प्रत्येक
 पर्वतकी ऊंचाई १ हजार योजनकी है, मूलमें प्रत्येक पर्वतका आयाम
 और विष्कम्भ एक हजार योजनका है, और ऊपरका इनका प्रदेश
 पांचसौ योजनका लम्बा चौड़ा है, ये दोनों पर्वत प्रासादोंसे मण्डित हैं,
 और अपने २ नामके जैसे विचित्रकूट एवं चित्रकूट नामवाले देवोंके
 ये निवासस्थानरूपहैं । इन दोनों पर्वतोंसे आगे पूर्वोक्त आन्तर्यसे युक्त
 शीतोदा महानदीके मध्य भागमें रहा हुआ दक्षिणसे उत्तर तक एक
 हजार योजनका आयामवाला पूर्वसे पश्चिम तक पांचसौ योजनका

ગજદન્તની પ્રદક્ષિણા કરતા હોય એવી રીતે તેની ચારે દિશાઓમાં આવેલા
 છે. અહીં ચાર સૂત્રો દ્વારા એવાં ૨૦ વક્ષસ્કાર પર્વતો પ્રકટ કરવામાં આવ્યાં
 છે. તથા દેવકુરુઓમાં નિષધ વર્ષધર પર્વતથી ઉત્તર દિશામાં ૮૩૪/૪/૭
 યોજનપ્રમાણ અંતરે શીતોદા મહાનદીના પૂર્વ અને પશ્ચિમ તટપર વિચિત્રકૂટ
 અને ચિત્રકૂટ નામના બે પર્વતો છે. તે પ્રત્યેક પર્વતની ઊંચાઈ ૧ હજાર
 યોજનની છે. તેમના મૂળભાગની લંબાઈ-પહોળાઈ ૧૦૦૦ યોજનની અને
 શિરોભાગની લંબાઈ-પહોળાઈ ૫૦૦ યોજનની કહી છે. તે બન્ને પર્વતો
 પ્રાસાદોથી મંડિત છે તે પર્વતો વિચિત્રકૂટ અને ચિત્રકૂટ નામના દેવોના
 નિવાસસ્થાન રૂપ છે. આ બન્ને પર્વતોથી આગળ જતા પૂર્વોક્ત આન્તર્યથી
 યુક્ત શીતોદા મહાનદીના મધ્યભાગમાં રહેલું, દક્ષિણથી ઉત્તરમાં ૧૦૦૦
 યોજનના આયામ (લંબાઈ) વાળું અને પૂર્વથી પશ્ચિમમાં ૫૦૦ યોજનની

विस्तीर्णां वेदिकावनपण्डद्वयवेष्टितो दश योजनानि भूमिमवगाहोऽर्द्धयोजन
वाहल्यैकयोजनविष्कम्भात्मकेन नानामणिमयेन दशयोजननालेन अर्द्धयोजन-
विस्तीर्णक्रोशोच्छ्रितकर्णिकायुक्तेन निपथनामकदेवनिवासभूतभवनविभूषित
मध्येन तदर्द्धप्रमाणयुक्तैरष्टोत्तरशतसंख्यकैः पद्मैः तदितरैश्च सामानिकादि
देवनिवासभूतैरनेकलक्षैः पद्मैः समन्ताद् संपरिक्षिप्तेन महापद्मेन विराजन्मध्य-
भागो निषधो नाम महाह्रदः। एवं देवकुरु ह्रदादयोऽपि तत्तद्भ्रदसमानदेव
निवासभूता उक्तान्तर्ययुक्ता विज्ञेयाः। अत्रेदं बोध्यम्-नीलवन्महाह्रदः स्वस्वसमान
नामकदेवनिवासभूताभ्यां विचित्रकूटचित्रकूटपर्वतवक्तव्यतासदृशवक्त-

विस्तारवाला वेदिका वनखण्डद्वयसे वेष्टित हुआ एवं १० योजन तक
भूमिमें विस्तृत ऐसा निषध नामका महाह्रद है, यह महाह्रद आठ
योजनके वाहल्यवाले एक योजनके विष्कम्भवाले नाना मणियोंसे युक्त
दश योजनके नालवाले आधे योजनकी विस्तारवाली एव एक कोशकी
ऊंची ऐसी कर्णिकासे युक्त एवं जिसका मध्य भाग निषध नाम के
देवके निवासभूत भवनसे विभूषित हैं, ऐसे एक महापद्मसे जिसका
मध्यभाग विराजित हैं, ऐसा है। यह महापद्म अपने प्रमाणसे आधे
प्रमाणवाले ऐसे १०८ पद्मोंसे (कमलों) एवं इनसे अतिरिक्त और भी अनेक
लक्ष पद्मोंसे जो कि सामानिक आदि देवोंके निवासभूत हैं, चारों ओरसे
घिरा हुआ है, इसी तरहसे देवकुरुह्रद आदि भी अपने २ समाननाम-
वाले देवोंके निवासभूत हैं, और युक्त आन्तर्यवाले हैं, ऐसा जानना
चाहिये। यहां ऐसा समझना-कि नीलवत् जो महाह्रद है, वह अपने समान

पडोणार्धवाणु वेदिका अने वनभ उद्वयथी वेष्टित अबुं, अने १० योजन सुधी
भूमिमां विस्तृत अबुं निषध नामनु मडाऽह्रद छे. ते मडाऽह्रद आठ योजन
लांभा, अेक योजन पडोणा, विविध मणुओथी युक्त, १० योजननी नाल-
वाणा, अर्धा योजननी विस्तारवाणी अने अेक कोश अी अेवी कर्णुकाथी
युक्त अने अेने मध्यभाग निषध नामना देवना निवासस्थान ३५ लवनथी
विभूषित छे अेवा अेक महापद्मथी युक्त छे ते महापद्म, तेना करतां अर्धा
प्रमाणवाणा १०८ पद्मोथी अने ते सिवायना थील पणु अनेक लक्षपद्मोथी
घेरायेलु छे ते पद्मो 'सामानिक आदि देवोना निवासस्थान ३५ छे. अे अ
प्रमाणे देवकुरु ह्रद आदि ह्रदो पणु तेमना अेवा अ नामवाणा देवोना निवास-
स्थान ३५ छे, अने उपर्युक्त आन्तर्यवाणा छे अेम समज्बुं.

વ્યતાયુક્તાભ્યાં યમકાધિધાનપર્વતાભ્યામનન્તરં દ્રુષ્ટવ્યઃ । તતો દક્ષિણત ઉત્તર
કુરુ હ્રદાદયશ્ચત્વારો હ્રદા વોધ્યા ઇતિ । એતેપુ સર્વેપુ મહાહ્રદેપુ એકૈકો મહાહ્રદો
દશમિર્દશમિઃ કાશ્ચનક્રનામકૈઃ પર્વતૈર્યુક્તો વિજ્ઞેથઃ । એતે પર્વતાસ્તુ શતયોજનો-
ચ્છ્રૂતા મૂલે શતયોજનવિષ્કમ્ભયુક્તાઃ ઉપરિ પશ્ચાશયોજનવિસ્તૃતા સ્વ સમાન
નામકૈર્દેવૈરધિષ્ઠિતાઃ પ્રત્યેકં પૂર્વાપરતો દશયોજનાન્તરેણ વ્યવસ્થિતા વોધ્યાઃ ।
એતે યે વિચિત્રકૂટાદિપર્વતહ્રદવાસિનો દેવાઃ સન્તિ, તેપામસંખ્યેયતમજમ્બૂ-
દ્વીપે દ્વાદશયોજનસહસ્રપમાણાસ્તન્નામિકા નગર્યો ભવન્તીતિ વોધ્યમ્ । એતે
વક્ષસ્કારપર્વતાઃ કસ્યાં દિશિ વર્તન્તે ? ઇતિ પ્રરૂપયિતુમાહ-

નામવાલે નિવાસ શૂન યમક નામકે દો પર્વતોંકે અન્તર વાદ્યેં હૈ, હન
દોનોં પર્વતોંકે સમ્બન્ધકી વક્તવ્યતા વિચિત્રકૂટ ઓર ચિત્રકૂટકી વક્ત-
વ્યતા જૈસી હૈ હસસે દક્ષિણ દિશામેં ઉત્તરકુરુ હ્રદાદિ ચાર હ્રદ હૈં । હન
સમસ્ત મહાહ્રદોમેં એકુ એક મહાહ્રદ દશ દશકા કાશ્ચન નામક પર્વતોંસે
યુક્ત હૈં । યે સ્વ પર્વત ૧૦૦ યોજન હૈં । મૂલમેં ઓ ૧૦૦ યોજનકે હી
વિસ્તારવાલે હૈં । તથા ઉપરમેં હનકા વિસ્તાર પાંચસો યોજનકા હૈ, ઓર
યે અપને ૨ જૈસે નામવાલે દેવોંસે અધિષ્ઠિત હૈં, યે પ્રત્યેક પર્વત પૂર્વસે
પશ્ચિમ તક ૧૦-૧૦ યોજનકે અન્તરસે વ્યવસ્થિત હૈં । યે વિચિત્રકૂટ
આદિ પર્વતવાસી ઓર હ્રદવાસી જો દેવ હૈં સો હનકી જમ્બૂદ્વીપકે અસં-
ખ્યાતવેં ભાગમેં ૧૨ યોજન પ્રમાણવાલી અનેકે નામવાલી નગરિયાં હૈં ।
યે વક્ષસ્કાર પર્વત કિણ ૨ દિશામેં હૈં ? હસ વાતકી પ્રરૂપણા કરનેકે

જેમકે જે નીલવત્ મહાહ્રદ છે તે નીલવત્ નામના દેવના નિવાસ ૩૫
છે. તે મહાહ્રદ યમક નામના જે પર્વતો પછી આવે છે આ બન્ને પર્વતનું
વર્ણન વિચિત્રકૂટ અને ચિત્રકૂટના વર્ણન પ્રમાણે જ સમજવું. તેની દક્ષિણ
દિશામાં ઉત્તરકુરુ હ્રદ આદિ ચાર હ્રદ આવેલાં છે. તે પ્રત્યેક મહાહ્રદ હસ
હસ કાંચન નામના પર્વતોથી યુક્ત છે તે બધાં પર્વતો ૧૦૦ યોજનના
વિસ્તારવાળા છે. તેમનો વિસ્તાર મૂળભાગમાં ૧૦૦ યોજનનો અને ઉપરના
ભાગમાં ૫૦૦ યોજનનો છે, તે પર્વતો તેમના જેવાં જ નામવાળા દેવોથી
અધિષ્ઠિત છે. તે પ્રત્યેક પર્વત પૂર્વથી પશ્ચિમ સુધી ૧૦-૧૦ યોજનના અંતરે
વ્યવસ્થિત છે. તે વિચિત્રકૂટ આદિ પર્વતવાસી અને હ્રદવાસી જે દેવો છે
તેમની જમ્બૂદ્વીપના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં ૧૨ યોજન પ્રમાણવાળી નગરીઓ
છે. તે નગરીઓનાં નામો તે દેવોનાં નામ જેવાં જ છે. તે વક્ષસ્કાર પર્વતો
કઈ કઈ દિશામાં છે, તે સૂત્રકાર હવે પ્રકટ કરે છે.

‘ सव्वे वि णं ’ इत्यादि । सर्वेऽपि जम्बूद्वीपादि सम्बन्धिनो वक्षस्कारपर्वताः सीता सीतोदे महानदी पुनः मन्दरं पर्वतं च ‘ तेण ’ ते द्वे खलु नदी पर्वते लक्षणी कृत्य नदीद्वयं मन्दरपर्वतं च प्रतीत्यर्थः एतन्महानदीद्वयदिशि मन्दरपर्वतदिशि-चेति भावः, पञ्चयोजनशतानि — ऊर्ध्वमुच्चत्वेन पञ्च गव्यूति शतानि च उद्वेधेन सन्ति । तत्र मन्दरपर्वतदिशि माल्यवत्सौमनस-विद्युत्प्रभगन्धमादननामानश्रुत्वारी गजदन्ताकारपर्वताः यथोक्तस्वरूपाः सन्ति । इतोऽन्ये वक्षस्कारपर्वताः सीता सीतोदा महानदी दिशि वर्तन्ते, इति । यथा जम्बूद्वीपे यावत्प्रमाणा वक्षस्कारपर्वता महाह्रदाश्च प्रोक्तास्तथैव धातकीखण्डस्य पूर्वार्धपरार्द्धे, पुष्करार्द्धस्य पूर्वार्द्धेपरार्द्धे च बोध्याः । अमुमेवार्थं दर्शयितुमाह सूत्रकारः ‘ धायइसंडे ’ इत्यादि ‘ वदखारा दहाय उच्चत्तं भाणियव्वं ’

लिये सूत्रकार कहते हैं “ सव्वे वि णं ” इत्यादि—

ये जम्बूद्वीपादि सम्बन्धी जो वक्षस्कार पर्वत हैं वे सब सीता सीतोदा नामकी जो महानदियाँ हैं, उनकी ओर और मेरुपर्वतकी ओर हैं, अर्थात् इन नदीद्वयकी एवं मन्दरकी दिशामें हैं । इनकी ऊंचाई इस दिशामें पांचसौ योजन की है और उद्वेध गन्धमादन इनका पांचसौ गव्यूतिका है । मन्दर पर्वतकी दिशामें माल्यवत् सौमनस विद्युत्प्रभ और गन्धमादन नामके चार गजदन्त के आकार जैसे पर्वत पूर्वोक्त स्वरूपवाले हैं । इनसे अन्य वक्षस्कार पर्वत सीता सीतोदा महानदियोंकी दिशामें हैं । जिस प्रकारसे जम्बूद्वीपमें जितने प्रमाणोपेत ये वक्षस्कार पर्वत और महाह्रद कहे हैं, उन्हीं प्रकारसे वे धातकीखण्डके पूर्वार्द्धमें और पश्चिमार्द्धमें पुष्करार्द्धके पूर्वार्द्धमें और पश्चिमार्द्धमें भी हैं, ऐसा जानना चाहिये । इसी बातको प्रकट करनेकेलिये सूत्रकारने “ धायइ संडे ” इत्यादि

“ सव्वे वि णं ” इत्यादि—ते वक्षस्कार पर्वतो सीता अने सीतोदा नामनी महानदीओ अने मन्दर पर्वतनी दिशाभां छे तेमनी उच्यार्ध ते दिशाभां ५०० योजननी छे. अने तेमने उद्वेध (भूमिनी अंदरने विस्तार) ५०० गव्यूति प्रमाण छे मन्दर पर्वतनी दिशाभां माल्यवत्, सौमनस, विद्युत्प्रभ अने गन्धमादन नामना गजदन्तना आकार जेवा पर्वतो पूर्वोक्त स्वरूपवाणा छे ते सिवायना जे अन्य वक्षस्कार पर्वतो छे, तेओ सीता अने सीतोदा महानदीओनी दिशाभां छे जम्बूद्वीपभां जेटला प्रमाणवाणा आ वक्षस्कार पर्वतो अने महारुहो कहां छे, जेटला ज प्रमाणवाणा वक्षस्कार पर्वतो अने महारुहो धातकीखण्डना पूर्वार्धभां, पश्चिमार्धभां अने पुष्करार्धना पूर्वार्ध अने पश्चिमार्धभां पणु आवेला छे. जे ज वातने सूत्रकारे “ धायइ

इत्यन्तमिति । सम्प्रति भरतादीनि क्षेत्राणि, तत्रस्थितपर्वनादींश्च पञ्चस्थानत्वेन प्ररूपयितुमाह—‘ समयक्षेत्रेण ’ इत्यादि समयक्षेत्रे समयः=आदित्यगतिसम-
मिव्यज्यमानऋत्वयनादिकाः, तद्युक्तं क्षेत्रं समयक्षेत्रं, मनुष्यक्षेत्रमित्यर्थः,
तस्मिन् पञ्च भरतानि पञ्च ऐरवतानि, यावत्करणात् पञ्च हैमवतानि पञ्च हैरण्य-
वतानि, एवमितोऽन्यान्यपि क्षेत्राणि भावनीयानि, तथा तत्र ‘ शब्दापातिनः पर्व-
तानारः ५ पञ्च मन्दराः पञ्च मन्दरचूलिकाः ’ इत्यन्तः सर्वेऽपि पाठश्चतुस्थानक-
द्वितीयो शकवद् वाच्यः । परन्तु इषुकारपर्वताश्चत्वार एव सन्ति, अतस्तेऽत्र न
वाच्याः । अत एवाह—‘ णवरं उमुयारा नत्थि ’ इति । सू० २४॥

सूत्रसे लेकर “वक्त्रारा दहा य उच्चत्तं भाणियव्वं” यहाँ तक सूत्र कहा है ।

अब सूत्रकार समयक्षेत्रमें अढाइद्वीप मनुष्यक्षेत्रमें भरतादि क्षेत्रोंकी
और उममें गृहे हुए पर्वत आदिकोंकी प्ररूपणा पांचस्थानकसे करते हुए
कहते हैं कि “ समयक्षेत्रेण ” इत्यादि—

आदित्यकी गतिसे प्रकट होने योग्य ऋतु अयन आदि रूप समय
से युक्त जो क्षेत्र है वह समयक्षेत्र है, ऐसा समयक्षेत्र मनुष्यक्षेत्र ढाई
द्वीप हैं । इन मनुष्यक्षेत्रमें पांच भरत पांच ऐरवत यावत्—पांच हैमवत
पांच हैरण्यवत और इनसेभी अन्य औरभी क्षेत्र हैं, तथा शब्दापाती
पर्वतोंसे लेकर पांच मन्दर और पांच मन्दर चूलिकाएँ हैं । इत्यादि यहाँ
तकका सब पाठ चतुर्थ स्थानकके द्वितीय उद्देशककी तरहसे कह लेना
चाहिये । परन्तु इषुकार पर्वत चारही हैं, अतः वे यहाँ नहीं कहना

संभे ” थी लधने “ वक्त्रारा दहाय उच्चत्तं भाणियव्वं ” आ सूत्रपाठ पर्य-
न्तना लभाणु द्वारा व्यक्त करी છે.

હવે સૂત્રકાર સમયક્ષેત્રમાં (મનુષ્યક્ષેત્રમાં) રહેલાં ભરતાદિ ક્ષેત્રોની
અને તેમાં આવેલા પર્વતાદિકોની પાંચ સ્થાનકની અપેક્ષાએ પ્રરૂપણા કરે છે.

“ સમયક્ષેત્રેણ ” ઇત્યાદિ—સૂર્યની ગતિ વડે પ્રકટ થતાં ઋતુ, અયન
આદિ રૂપ સમયથી યુક્ત જે ક્ષેત્ર છે, તેને સમયક્ષેત્ર કહે છે. એવું સમયક્ષેત્ર
(મનુષ્યક્ષેત્ર) અઢી દ્વીપ છે. આ મનુષ્યક્ષેત્રમાં પાંચ ભરત, પાંચ ઐરવત
યાવત્ પાંચ હૈમવત, પાંચ હૈરણ્યવત અને તે સિવાયના બીજાં ક્ષેત્રો પણ
છે. વળી ત્યાં શબ્દાપાતી પર્વતોથી લઈને પાંચ મન્દર અને પાંચ મન્દર
ચૂલિકાઓ પર્યન્તનું બધું છે. એવા સ્થાનકના બીજા ઉદ્દેશમાં આ વિષયને
અનુલક્ષીને જેવું કથન કરવામાં આવ્યું છે, તેવું કથન અહીં પણ ગ્રહણ
કરવું જોઈએ, પરન્તુ ઇષુકાર પર્વત ચાર જ છે, તેથી અહીં તેમનું કથન

अनन्तरं मनुष्यक्षेत्रस्थानि पर्वतादिरूपाणि वस्तूनि प्रोक्तानि, सम्प्रति तदधिकारादेव भारतक्षेत्रस्य वर्तमानावसर्पिणीभूषणानाम् ऋषभादीनां सम्बन्धिकं किञ्चित् प्ररूपयति—

मूलम्—उसभेणं अरहा कोसलिय पंच धनुसयाइं उड्डु उच्चत्तेणं होत्था । भरहे णं राया चाउरंतचक्रवट्टी पंच धनुसयाइं उड्डुउच्चत्तेणं होत्था । बाहुवली णं अणगारे एवंचेव । वंभी णामं अज्जा एवं चेव । एवं सुंदरी वि ॥ सू० २५ ॥

छाया—ऋषभः खलु अर्हन् कौसलिकः पञ्च धनुश्शतानि ऊर्ध्वम् उच्चत्वेनाभवत् । भरतः खलु राजा चातुरन्तचक्रवर्ती पञ्च धनुश्शतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेनाभवत् । बाहुवली खलु अनगार एवमेव । ब्राह्मी नामार्या एवमेव । एवं सुन्दरी अपि २५॥

टीका—‘ उसभेण ’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा । नवरं कोसले भवः कौसलिकः=कोसलदेशोत्पन्नः। ऋषभः=आदिजिनः । भरतादयश्च तदपत्यानि बोध्यानि ॥सू० २५ ॥

चाहिये, इसीलिये वे “ णवरं उसुयारा नत्थि ” इस सूत्रपाठसे वर्जित किये गये हैं ॥ सू० २४ ॥

इस प्रकारसे मनुष्यक्षेत्रस्थित पर्वतादिरूप वस्तुओंका कथन कर अब सूत्रकार इसी अधिकारको लेकर भारतक्षेत्रमें वर्तमान अवसर्पिणी कालके भूषणरूप जो ऋषभादि हुए हैं, उनसे सम्बन्धित थोडासा कथन करते हैं । “ उसभेणं अरहा कोसलिय पंच ” इत्यादि—

टीकार्थ—कोसल देशमें उत्पन्न हुए ऋषभदेव अर्हन्त पांचसौ धनुष ऊचे थे भरत राजा जो कि चातुरन्त चक्रवर्ती थे । पांचसौ धनुष ऊचे थे और

४२५' लेखने नही । “ णवरं उसुयारा नत्थि ” आ सूत्रपाठ द्वारा ये ४ वात प्रकट करवायां आवी छे के धनुषकार पर्वत आर ४ डोवाथी तेमनुं कथन आही' करवुं लेखने नही' ॥ सू० २४ ॥

आ प्रकारे मनुष्यक्षेत्रना पर्वत आदिनु कथन करीने हवे सूत्रकार भरतक्षेत्रमां वर्तमान अवसर्पिणीकाणना भूषण ३५ ने ऋषभदेव आदि पुरुषे थया हता तेमने विषे थोडुं कथन करे छे.

“ उसभेणं अरहा कोसलिय पंच ” इत्यादि—

टीकार्थ—देशल देशमां उत्पन्न थयेला ऋषभदेव जिनेश्वरनी ७'याध ५०० धनुषप्रमाणु हती आतुरन्त चक्रवर्ती भरत राज ५५० धनुषप्रमाणु ७'या हता. गाहुअती अणुगार, ब्राह्मी आर्या अने सुंदरीनी ७'याध ५५ अटली ४

ઉપરિ નિર્દિષ્ટાઃ સર્વેઽપિ બુદ્ધાઃ । બુદ્ધશ્ચ જીવો ભાવતો મોહક્ષયાદ્, દ્રવ્ય-
તશ્ચ નિદ્રાક્ષયાદ્ ભવતીતિ દ્રવ્યવોધં કારણત ઉપદર્શયતિ—

મૂલમ્—પંચહિં ઠાણેહિં સુત્તે ત્રિબુજ્જેજ્ઞા, તં જહા-સદેણં ૧
ફાસેણં ૨ ભોયણપરિણામેણં ૩ ણિદ્દક્ષણં ૪ સુવિણદંસણેણં
૫ ॥ સૂ૦ ૨૬ ॥

છાયા—પશ્ચભિઃ સ્થાનૈઃ સુપ્તો ત્રિબુદ્ધયેત, તથથા-શબ્દેન ૧ સ્પર્શેન ૨
ભોજનપરિણામેન ૩ નિદ્રાક્ષયેણ ૪ સ્વપ્નદર્શનેન ૫ ॥ સૂ૦ ૨૬ ॥

ટીકા—‘ પંચહિં ’ इत्यादि—

પશ્ચભિઃ સ્થાનૈઃ=કારણૈઃ સુપ્તો જીવો ત્રિબુદ્ધયેત=જાગરિતો ભવેત્ । તથથા-
તથાહિ-શબ્દેન=કસ્યચિત્ શબ્દં શ્રુત્વા ૧, સ્પર્શેન=કસ્યચિત્ સ્પર્શમુપલભ્ય ૨,
બાહુવલી અનગાર વ્રાહ્મી આર્યા એવં સુન્દરી ભી હતની હી કંચી થીં,
ઋષભદેવ સર્વ પ્રથમ તીર્થંકર હૈં । ધરન બાહુવલી આદિ સવ इनकी
સંતાન પુત્રપુત્રી હૈં ॥ સૂ૦ ૨૫ ॥

યે ऊपरमें कहे गये ऋषभादिक सव बुद्ध थे, जीव बुद्ध जो होता
है वह भावसे मोहके क्षयसे और द्रव्यसे निद्राके क्षयसे होता है ।
इसलिये सूत्रकार अब कारणको लेकर द्रव्यवोधका कथन करते हैं ।

“ पंचहिं ठाणेहिं सुत्ते त्रिबुज्जेज्जा ” इत्यादि—

સુપ્ત જીવ પાંચ કારણોસે જાગરિત હો સકતા હૈ, વે પાંચ કારણ
યે હૈ—શબ્દ ૧, સ્પર્શ ૨, ભોજન પરિણામ ૩, નિદ્રાક્ષય ૪ ઓર સ્વપ્ન-
દર્શન ૫ । કિસીકે શબ્દકો સુનકર ૧ કિસીકે સ્પર્શકો ઉપલબ્ધ કર

હતી. ઋષભદેવ સૌથી પહેલા તીર્થંકર થઈ ગયા, અને ભરત, બાહુબલી,
બ્રાહ્મી અને સુદરી તેમનાં પુત્રપુત્રી હતાં. ॥ સૂ ૨૫ ॥

ઉપર જેમનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, તે ઋષભાદિ બુદ્ધ હતા. ભાવની
અપેક્ષાએ મોહના ક્ષયથી અને દ્રવ્યની અપેક્ષાએ નિદ્રાના ક્ષયથી જ શુભ
બુદ્ધ થઈ શકે છે. તેથી હવે સૂત્રકાર દ્રવ્યબોધના કારણોનું નિરૂપણ કરે છે.

“ પંચહિં ઠાણેહિં સુત્તે ત્રિબુજ્જેજ્ઞા ” इत्यादि—

સુપ્ત શુભ નીચેના પાંચ કારણોને લીધે જાગૃત થઈ શકે છે—(૧) શબ્દ,
(૨) સ્પર્શ, (૩) ભોજનપરિણામ, નિદ્રાક્ષય અને (૫) સ્વપ્ન દર્શન.

કેઈનેા અવાજ સાંભળીને અથવા કેઈ વ્યક્તિ દ્વારા શરીરનેા સ્પર્શ
થવાથી સૂતેલી વ્યક્તિ જાગી જાય છે. એ જ પમાણે ભૂખને કારણે પણ તે

भोजनपरिणामेन=भोजनपरिपाकेन-बुभुक्षयेत्यर्थः ३, तथा निद्राक्षयेण=निद्राया अपगमेन ४, स्वप्नदर्शनेन चेति ५ । जागरणस्य निद्राक्षयः साक्षात्कारणम्, निद्राक्षयस्य च शब्दस्पर्शभोजनपरिणामाः परम्परा कारणम्, अतो जागरणकारणस्य निद्राक्षयस्य हेतुत्वेन शब्दादीन्यपि जागरणकारणानि बोध्यानीति सू० २६॥

इत्थं कारणनिर्देशपुरस्सरं द्रव्यप्रबुद्धमुत्तत्रा, सम्प्रति भावप्रबुद्धस्य कारणे सति जिनाज्ञानतिक्रमणतामाह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे निग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ, तं जहा—निग्गंथिंच णं अन्नयरे पसुजाइए वा पक्खिजाइए वा ओहाएज्जा, एत्थ निग्गंथे निग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा नाइक्कमइ ॥ १ ॥ निग्गंथे निग्गंथिं दुग्गंसि वा विसमंसि वा पक्खलमाणिं वा पवडमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ ॥ २ ॥ निग्गंथे निग्गंथिं सेयंसि वा पंकंसि वा पणगंसि वा उदगंसि वा उक्कसमाणिं वा उवुज्झमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंब-

सोता हुआ प्राणी जग जाता है, इस प्रकार वह भूखसे भी जग जाता है, तथा निद्राका अपगम हो जावे तो भी वह जग जाता है तथा सोती हुई अवस्थामें स्वप्नके देखनेसे भी जग जाता है । जागरणका साक्षात्कारण निद्रा क्षय है और निद्राक्षयके शब्द श्रवण, स्पर्शोपलब्धि एवं भोजन परिणाम-बुभुक्षा ये सब परम्परा कारण हैं । इसलिये जागरणके कारण निद्राक्षयके हेतु होनेसे शब्दादिकोंको भी जागरणकी कारण यहां कहा गया है ऐसा जानना चाहिये ॥ सू० २६ ॥

जगी जय छे, जिंघ पूरी थवाथी पणु ते जगी जय छे, अने जिंघमां स्वप्न हेणवाथी पणु ते जगी जय छे. जगरणुत्तं साक्षात्कारणु निद्रा छे, अने शब्द श्रवणु, स्पर्शोपलब्धि, भूष अने स्वप्नदर्शन, आ अर्थां निद्राक्षयना परम्परा कारणु छे, तेथी तेओ जगृतिना कारणुभूत निद्राक्षयमां हेतुइप डोवाथी तेमने पणु जगरणुना कारणु इपे अही प्रकट करवामां आओया छे, ओम समजवुं ॥ सू. २६ ॥

माणे वा णाङ्कमइ ॥ ३ ॥ णिग्गंथे णिग्गंथिं नात्रं आरोहमाणे
 वा ओरोहमाणे वा णाङ्कमइ ॥ ४ ॥ खित्तचित्तं दित्तचित्तं
 जक्खाइट्ठं उम्मायपत्तं उवसग्गपत्तं साहिंकरणं सपायच्छित्तं
 भत्तपाणपडियाइक्खियं अट्टजायं वा निग्गंथे निग्गंथिं णिग्गमाणे
 वा अवलंबमाणे वा णाङ्कमइ ॥ सू० २७ ॥

छायाः-पञ्चभिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो
 वा नातिक्रामति, तद्यथा-निर्ग्रन्थीं च अन्यतरः पशुजातिको वा पक्षिजातिको वा
 उपह्न्यात्, तत्र निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ॥१॥
 निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं दुर्गे वा विपमे वा प्रस्खलन्तीं वा प्रपतन्तीं वा गृह्णन् वा अ-
 लम्बमानो वा नातिक्रामति ॥२॥ निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं सेके वा पङ्के वा पनके वा

इस प्रकार कारणके निर्देशपूर्वक द्रव्य प्रबुद्धका कथन करके अथ
 सूत्रकार भाव प्रबुद्धमें कारणके होने पर जिनाज्ञाकी अनतिक्रमणता
 होती है ऐसा कथन करते हैं ।

सूत्रार्थ-“ पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे ” इत्यादि—

पांच कारणोंसे श्रमण निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी साध्वीको सहाय देता हुआ
 जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है, वे पांच कारण चेहैं-जैसे-किसी साध्वी
 को कोई पशु-उद्धत हुआ बैल आदि या पक्षिजातिक-गीध आदि
 चोट पहुंचा देता है और वह गिर पड़ती है, उठ नहीं सकती है तो
 ऐसी स्थितिमें अन्य साध्वी जनके अभावमें वहां पर स्थित हुआ साधु

आ प्रकारे कारणाना निर्देशपूर्वक द्रव्यप्रबुद्धतुं कथन करीने हवे सूत्रकार
 अये वाततुं प्रतिपादन करे छे के अमुक संयोगोमा लावप्रबुद्ध अमुक प्रकारे
 वर्तवाथी जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी.

सूत्रार्थ-“ पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे ” इत्यादि—

नीचेना पांच कारणोमाथी केछ पशु कारण उद्दलवे त्यारे केछ श्रमण
 निर्ग्रन्थ केछ निर्ग्रन्थीने (साध्वीलेने) सहाये आये, तो ते जिनाज्ञानो
 विराधक गणुतो नथी—(१) केछ उन्मत्त आणवेओ आदि पशु के गीध आदि
 पक्षी केछ साध्वी पर धसी जधने तेमने भूमि पर पछाडी नाये अने तेओ
 पोतानी जते ठिआ थवाने समर्थ न डोय तथा तेमने टेके आपीने ठिआ
 करनार केछ अन्य साध्वीले पशु त्या डावर न डोय, तो अयेरी परिस्थितिमां

उदके वा अवकृष्यमाणां वा अपोह्यमानां वा गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ॥३॥ निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थी नावमारोहयन् वा अवरोहयन् वा नातिक्रामति ॥४॥ क्षिप्तचित्तां दृप्तचित्तां यक्षाविष्टासु उन्मादप्राप्तासु उपसर्गप्राप्तासु साधिकरणां संप्रायश्चित्तां भक्तपानप्रत्याख्यातासु अर्थजातां वा निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थी गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ५ ॥सु० २७॥

टीका—‘ पंचहिं ठाणेहिं ’ इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः=कारणैः श्रमणो निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थी गृह्णन्=वाहादौ ग्रहणं कुर्वन् वा अवलम्बमानः=बाहादौ गृहीत्वा धारयन् वा, अथवा—‘ सव्वंगिय तु गहण अवलंबणं तु देसस्मि ’

छाया—‘ सार्वज्ञिकं तु ग्रहणं करेण अवलम्बनं तु देशे ’ इति, गृ न=सर्वाङ्गे ग्रहणं कुर्वन्, अवलम्बमानः=हस्तादौ धरन् वा नातिक्रामति=नोल्लङ्घयति जिनाज्ञाम् । तान्येव स्थानान्याह—तद्यथा—कांचित् निर्ग्रन्थी=साध्वीम् अन्यतरः=कश्चित् पशुजातिक=उद्धतगवादि वा पक्षिजातिको गृध्रादि वा उपहन्यात्=उपघातं कुर्यात्, तत्र=उपघाते अन्यस्या निर्ग्रन्थिकाया अभावे तां निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा निर्ग्रन्थ आज्ञां नातिक्रामति सकारणत्वात् । निष्कारणं तु गृह्णन् अवलम्बमानो वा जिनाज्ञामतिक्रामत्येव, अतश्च तत्र दोषा भवन्त्येव । दोषाश्चात्रैवमुक्ताः, तथाहि—

“ मिच्छत्त उड्ढाहो, विराहणा फास भाव संवंधो ।

पडिगमणाई दोसा, सुत्ताभुत्ते य नायव्वा ॥१॥”

उसे सहायता दे सकता है । इस स्थितिमें वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है,

टीकार्थ—बाहु आदि पकड़कर उठाना इसका नाम ग्रहण है और उसे अपने दोनों हाथोंमें उठा लेना इसका नाम अवलम्बन है ।

अथवा—“ सव्वंगियं तु गहणं करेण अवलंबणं तु देसस्मि ” उसे पूरा उठा लेना यह ग्रहण है और उसे अपने हाथका सहारा देकर उठाना यह अवलम्बन है । साधु जब बिना किसी कारण ऐसा करता है तो अवश्यही वह जिनाज्ञाका विराधक होता है, क्योंकि ऐसा कर-

डोई साधु तेमने मदद करे—तेमने डाथ अक्षीने तेमने ठेलां करे, तो ते साधु जिनाज्ञाने विराधक गणायते नही

टीकार्थ — डाथ आदि पकड़ने उठाउवा तेनुं नाम ‘ अडुणु ’ छे अने पोताना भन्ने डाथेमा उपाडी देवां तेनुं नाम ‘ अवलम्बन ’ छे अथवा—“ सव्वंगियं तु गहणं करेण अवलंबणं तु देसस्मि ” तेमने पूरेपूरा उठावी देवा तेनुं नाम अडुणु छे, अने तेमने पोताना डाथेने आधार आपीने ठेला करवा तेनुं नाम अवलम्बन छे. डोई पणुं करणु विना साधु अणुं वर्तन करे तो ते जिनाज्ञाने विराधक गणाय छे, करणुं के अणुं करवाभां तेने आ प्रकारना दोष लागे छे “ मिच्छत्त उड्ढाहो ” इत्यादि—

છાયા—મિથ્યાત્વમુઢાહો વિરાધના સ્પર્શે ભાવ સમ્વન્યઃ ।

પ્રતિગમનાદયો દોષા મુક્તાઽમુક્તે (મોગે અમોગે ચ સતિ) જ્ઞાતવ્યાઃઈતિ

ઈતિ પ્રથમં સ્થાનમ્ । તથા—નિર્ગ્રન્થો દુર્ગે—દુઃખેન ગમ્યતે ઇતિ દુર્ગઃ, સ ચ

ત્રિવિધઃ—વૃક્ષદુર્ગઃ શ્વાપદદુર્ગો *લેચ્છદુર્ગશ્ચ, તદુક્તમ્—

તિવિહં ચ હોઈ દુર્ગમં, સુખે સાવયમણુસસ દુર્ગમં ચ । ”

છાયા—ત્રિવિધશ્ચ સવતિ દુર્ગો વૃક્ષશ્વાપદમનુગ્યદુર્ગશ્ચ—ઈતિ । તસ્મિન્ તથોક્તે માર્ગે વા, વિપમે=ગર્તપાપાણાદિ સંકુલે પર્વતે વા પ્રસ્વલન્તી=ગત્યા પ્રસ્વલિતાં

નેમ્ એસે દોષ કહે ગયે હૈં “ મિચ્છતં ઉઢાહો ” ઇત્યાદિ--

મિથ્યાત્વ ઉઢાહ આદિ યે દોષ ઉસે લગતે હૈં, એ સ્તા યહ પ્રથમ કારણ હૈ । દૂસરા કારણ એસા હૈ—ઈસ કારણમ્ જવ સાધ્વી કિસી દુર્ગમ્ યા કિસી વિષમ સ્થાનમ્ રિપટકર ગિર પડતી હૈ યા ચલતે ૨ ઉસકા પૈર મોંચ જાતા હૈ કિ જિસસે વહ ચલનેમ્ સર્વથા અસમર્થ વન જાતી હૈ તો એસી સ્થિતિમ્ ભી સાધુ ઉસે સહાય દે સકતા હૈ તો વહ જિનાજ્ઞાકા વિરાધક નહીં માના ગયા હૈ । જિસ સ્થાન પર દુઃખસે ચલા જાય વહ દુર્ગ હૈ, યહ દુર્ગ ત્રીન પ્રકારકા કહા ગયા હૈ—એક વૃક્ષ દુર્ગ, દૂસરા શ્વાપદ દુર્ગ ઓર તિસરા લેચ્છ દુર્ગ કહા ભી હૈ ।

“ તિવિહં ચ હોઈ દુર્ગમં ” ઇત્યાદિ—

એસે દુર્ગમ્ અથવા-ગર્ત(સ્વઢા)પાપાણ આદિસે સંકુલ પર્વતકે ડગર ચલતી ચલતી સાધ્વી પ્રસ્વલિત હો જાતી હૈ, યા ભૂમિમ્ ગિર પડતીહૈ તો એસી

કારણ વિના એવું કરવાથી સાધુને મિથ્યાત્વ, ઉઢાહ આદિ દોષ લાગે છે આ પ્રકારનું પહેલું કારણ સમજવું.

બીજું કારણ આ પ્રમાણે છે—કોઈ સાધ્વી કોઈ દુર્ગમાં અથવા કોઈ વિષમ સ્થાનમાં ચાલતાં ચાલતાં લપસી જાય અથવા ચાલતાં ચાલતાં તેમને પગ મચકોડાઈ જવાને લીધે તેઓ ચાલી શકે તેમ ન હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં તેમને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી. દુર્ગ ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) વૃક્ષ દુર્ગ, (૨) શ્વાપદ દુર્ગ. અને (૩) લેચ્છ દુર્ગ. એવા સ્થાન પર ચાલવામાં મુશ્કેલી પડે છે. કહ્યું પણ છે કે “ તિવિહં ચ હોઈ દુર્ગમં ” ઇત્યાદિ—

એવા માર્ગ પર અથવા ગર્ત, પાપાણ આદિથી યુક્ત પર્વત ઉપર ચાલતાં ચાલતાં જો કોઈ સાધ્વીજી પ્રસ્વલિત થઈ જાય—લપસી જાય અથવા

भवन्तीं वा प्रपतन्तीं=भूमौ पतनं प्राप्नुवतीं वा, प्रस्खलन-प्रपतन लक्षण प्रदर्शिका गाथा यथा—

“ भूमौ असंपत्तं, पत्तं वा हृत्थजानुजाईहिं ।

प्रस्खलनं नायव्वं, पवडण भूमौ गत्तेहिं ” ॥१॥

छाया—भूमौ असंप्राप्तं प्राप्तं वा हस्तजानुकादिभिः ।

प्रस्खलनं ज्ञातव्यं, प्रपतनभूमौ गात्रैः ॥१॥

इति गाथाऽनुसारेण भूमौ असंप्राप्तिः, हस्तजानुकादिषु केनचिदेकेनाङ्गेन वा प्राप्तिः प्रस्खलनं, सर्वगात्रैर्भूमौ प्राप्तिस्तु प्रपतनम्, तत् प्रस्खलनं प्रपतनं वा प्राप्नुवतीं निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा आज्ञां नातिक्रामतीति द्वितीयं स्थानम् । तथा-निर्ग्रन्थः सेके सीयते=वध्यते यस्मिन्नसौ सेकः=सजलकर्म-

स्थितिमें साधु उसे सहाय दे सकता है । इसमें जिनाज्ञाके उल्लङ्घन करने जन्य दोषसे वह लिस नहीं हो सकता है, प्रस्खलन और प्रपतन का लक्षण इस प्रकारसे कहा गया है ।

“ भूमौ असंपत्तं ” इत्यादि—

जिसमें चलते २ इस प्रकारकी स्थिति हो जाय कि भूमि पर गिरना तो हो नहीं किन्तु फिसलना हो जाय वह स्खलन है अथवा हाथ घुटनोंके बलही जमीन पर गिरना हो जाय वह प्रस्खलन है । ऐसे प्रस्खलन में शरीर पशुके जैसा झुक जाता है, तथा उसमें भूमिका स्पर्श नहीं होता है, जमीन पर जो शरीरका पतन हो जाता है वह प्रपतन है । इस गाथाके अनुसार भूमि पर गिरना तो हो नहीं उस ओर केवल झुकना हो अथवा-हस्तजानुकादि अंगोंमें से किसी एक अङ्ग द्वारा भूमिका स्पर्श हो वह प्रस्खलन है और समस्त अङ्गोंसे जिस पतनमें जमीनका स्पर्श हो जाय वह प्रपतन है । तृतीय कारण ऐसा है कि

जमीन पर पडी लय, तो तेमने सडारे हेनार साधु जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी. प्रस्खलन अने प्रपतननुं लक्षणु आ प्रभाणु छे.

“ भूमौ असंपत्तं ” इत्यादि—त्यारे आलतां आलतां जमीन पर आणुं शरीर पडी लय छे, त्यारे प्रपतन थयुं गणुय छे, पणु लपसी जवाने डारणु शरीर अेक आणु अूडी लय छे अने डाय आदि डैअं अेक ज अंगने आधारे जमीन पर अडुं रहे छे, त्यारे तेनुं प्रस्खलन थयुं कडेवाय छे. प्रपतन वणते आणुं शरीर भूमिने स्पर्श करे छे, पणु प्रस्खलन वणते तो डैअं अेक ज अंग भूमिने स्पर्श करे छे.

स्तस्मिन् वा, पङ्के=जलरहिते कर्दमे वा, पनके-पनकः=शैवालः तत्र वा, उदके=जले वा अपकृष्यमाणाम्=गरिपतन्तीं वा, अपोह्यमानां=जलधाराभिः प्रवहमानां वा निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति जिनाज्ञाम् । इह पतनं पङ्के पनके च बोध्यम् । अपवाहनं तु सेके उदके च बोध्यम् । इति तृतीयं स्थानम् । तथा-निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं नावम् आरोहयन्=नौकोपरि निर्ग्रन्थ्या आरोहणं कारयन् वा, तथा-अरोहयन्=नौकातोऽवतारयन् वा नातिक्रामतीति चतुर्थं स्थानम् । तथा-क्षिप्तचित्तां=क्षिप्तं=नष्टं चित्तं यस्याः सा ताम्, क्षिप्तचित्ता तु, रागमयापमानादिना भवति । तदुक्तम्—

अव साध्वी सेकमें जल सहित कीचडमें फंस जाय, पङ्कमें जल रहित कीचडमें फंस जाय पनक में शैवाल में फंस जाय अथवा - जल में किसी प्रवाह में फंस जाय, उसमें गिर पड़े या उसमें वह जावे तो ऐसी स्थितिमें उसे सहायता करनेके अभिप्रायसे प्रेरित हुआ साधु सहारा देता है तो वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है । यहाँ पतन पङ्क और पनकमें समझना और अपवाहन सेक (सिंचन) एवं उदकमें समझना । चतुर्थ कारण ऐसा है—निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं नावमारोहयन् वा अवरोहयन् वा नातिक्रामति ” निर्ग्रन्थ जब निर्ग्रन्थीको नाव पर चढाता है या नावसे उसे नीचे उतारता है तो वह इस स्थितिमें जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है । पांचवां कारण ऐसा है—क्षिप्तचित्तां दृप्तचित्तां यक्षाविष्टाम्, उन्मादप्राप्ताम्, उपसर्गप्राप्ताम्, साधिकरणां, सप्रायश्चित्तां, भक्तपानप्रत्याख्याताम् अर्थजातां वा निर्ग्रन्थां—निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति ” जब साध्वी

श्रीशुं कारण आ प्रभाषे छे—ज्यारे केध साध्वीश्च केध जलयुक्त आडामां अथवा जलरहित कीचडमां इसाध जय, दील, शैवाल आदिमां इसाध जय, पाणीना प्रवाडमां इसाध जय अथवा तणुतां डोय, तो जेवी परिस्थितिमां तेमने मदद करवाना आशयथी तेमने सडारे डेनार साधु जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी अडीं पतन पङ्क अने पनकमां समजवु अने अपवाहन पाणीना प्रवाडमां समजवु

शेथुं कारण—“निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं नावमारोहयन् वा अवरोहयन् वा नातिक्रामति” केध निर्ग्रन्थ केध निर्ग्रन्थीने भेसाडवामां मदद करे अथवा नावमांथी उतरवामां मददइप अने, तो जेवी स्थितिमां ते जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी.

पात्रशुं कारण—“क्षिप्तचित्तां, दृप्तचित्तां यक्षाविष्टाम्, उन्मादप्राप्ताम्, उपसर्गप्राप्ताम्, साधिकरणां, सप्रायश्चित्तां, भक्तपानप्रत्याख्याताम् अर्थजातां वा

“ रागेण वा भएणवा, अहवा अत्रमाणिया महतेणं ।
एएहिं खित्तचित्ता, होई भणियं जिणिदेहिं ॥ ”

छाया—रागेण वा भयेन वा, अथवा अपमानिता महता ।

एतैः क्षिप्तचित्ता भवति कथितं जिनेन्द्रैः ॥ इति ।

अथवा-दृप्तचित्ताम्-दृप्तम्=दर्पयुक्तं उद्धतमिति यावत् चित्तं यस्याः सा ताम्,
उद्धतचित्ता तु सम्मानादिना भवति, तदुक्तम्--

“ इह एस असंमाणाखित्तो संमणओ भवे दित्तो ।

अग्गीव इंधणेणं, दिप्पइ चित्तं इमेहिं तु ॥१॥

लाभमएण उ मत्तो, अहवा जेऊण दुज्जयं सत्तुं ॥ ”

छाया—इत्येष असंमानात् क्षिप्तः सम्मानतो भवेद् दृप्तः ।

अग्निर्विव इन्धनैर् दृष्यति चित्तमेभिस्तु ॥१॥

लाभमदेन तु मत्तः अथवा जित्वा दुर्जयं शत्रुम् ॥ इति ।

क्षिप्त नष्ट चित्तवाली हो जाय क्योंकि क्षिप्तचित्ता तो राग, भय, अप-
मान आदिसे हो ही जाती है । कहा भी है—“रागेण वा भएण वा” इत्यादि ।

ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है कि क्षिप्तचित्ता राग, भय अथवा अप-
मानसे हो जाती है अथवा जब वह साध्वी दृप्त दर्पयुक्त-उद्धत चित्त-
वाली हो जाय, क्योंकि उद्धत चित्ता तो सम्मान आदि से हो ही
जाती है । कहा भी है—“ इह एस असंमाणाखित्तो ” इत्यादि ।

मनुष्य असंमानसे क्षिप्त होता है और सम्मानसे दृप्त होता है ।
जिस प्रकार अग्नि इंधनसे दृप्त होती है । लाभसे या मदसे अथवा दुर्जय

निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृहन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति.” न्यारे केहिं
साध्वीञ् क्षिप्त चित्तवाणां (उन्मादयुक्त) थर्ध नय त्त्यारे तेमने सद्धारे
देनार साधु जिनाज्ञाने विराधक गणुतो नथी. क्षिप्तचित्ता राग, भय, अप-
मान आदि कारणेने लीधे थर्ध नय छे कहु पणु छे के :

“ रागेण वा भएण वा ” इत्यादि—

जिनेन्द्रदेवे अबु कहुं छे के क्षिप्तचित्ता (चित्तभ्रम) राग, भय,
अथवा अपमानथी थाय छे अथवा न्यारे ते साध्वी दर्पयुक्त चित्तवाणां
थर्ध नय छे, त्त्यारे पणु अबुं अने छे, कारणु के सम्मान आदिने कारणे
उद्धत चित्ताने सद्धाव तो नेवा भणे न छे. कहुं पणु छे के :

‘ इह एस असंमाणाखित्तो ’ इत्यादि—

नेम अग्नि इंधनथी प्रबलिन थाय छे, तेम मनुष्य असंमानथी क्षिप्त
थाय छे, अने सम्मानथी दृप्त (दर्पयुक्त) थाय छे. लाभ प्राप्त थवाथी, मदथी
अथवा दुर्जय शत्रुने हराववाथी मनुष्य मत्त थाय छे.

અથવા-યક્ષાવિષ્ટામ્-યક્ષેણ=દેવવિશેષેણ આવિષ્ટા=આસ્થિતા તામ્ । યક્ષા-
વેશસ્તુ પૂર્વભવવૈરાદિના ભવતિ । તદુક્તમ્--

“ પુલ્લભવવૈરિણં, અહવા રાગેણ રાગિયા સંતી ।

एएहि जक्खइहा, कहिया सिरि जिणवरिंदिहि ॥१॥

છાયા--પૂર્વભવવૈરિકેણ અથવા રાગેણ રાગિતા સતી ।

एताभ्यां यक्षाविष्टा कथिता श्री जिनवरेन्द्रैः ॥ इति ।

અથવા-ઉન્માદપ્રાપ્તામ્=ઉન્માદઃ=ચિત્તાનવસ્થિતિઃ, તે પ્રાપ્તા તામ્ । ઉન્માદો
યક્ષાવેશો મોહનીયશ્ચેતિ દ્વિવિધો ભવતિ । તત્ર યક્ષાવેશઃ પૂર્વગુક્તઃ । અયં મોહ-
નીયો વોધ્યઃ । અયંચ રુપાન્નદર્શનેન પિત્તમૂર્ચ્છયાત્વા ભવતિ । તદુક્તમ્--

શત્રુકોં જીતનેસે મનુષ્ય મત્ત હોતા હેં અથવા વહ સાધ્વી યક્ષાવિષ્ટ હો
જાય, દેવવિશેષસે આસ્થિત હો જાય-યક્ષાવેશ તો પૂર્વભવકે વૈર આદિ
સે હો હી જાતી હૈ । કહાથી હૈ--“ પુલ્લભવવૈરિણં ” ઇત્યાદિ ।

જિનેન્દ્રદેવને હન દો કારણોસે સાધ્વીકો યક્ષાવિષ્ટા કહા હૈ, યા
તો વહ કિસી પૂર્વભવકે વૈરી દેવ આદિસે આક્રાન્ત હો જાય યા કિસી
વિશેષ રાગસે અનુરક્ત હો જાય તો એસી સ્થિતિમેં વહ યક્ષાવિષ્ટા કહી
જાતી હૈ અથવા જયં વહ સાધ્વી ઉન્માદકો પ્રાપ્ત હુઈ હો । ચિત્તકી અન-
વસ્થિતિકા (વિક્ષેપ)નામ્ ઉન્માદહૈ, હસ ઉન્માદકો સ્થિતિમેં વહ આગઈ હો,
ઉન્માદ યક્ષાવેશ ઓર મોહનીયકે ભેદસે દો પ્રકારકા હોતા હૈ, યક્ષા-
વેશ રૂપ ઉન્માદ તો ડપર પ્રકટ કરહી દિયા ગયા હૈ, યહ મોહનીય રૂપ

અથવા તે સાધ્વી ન્યારે યક્ષાવિષ્ટ થઈ નય એટલે કે તેમના શરીરમાં
યક્ષ નામના દેવવિશેષનો પ્રવેશ થવાને કારણે તે સાધ્વી ન્યારે ઉન્મત્ત બની
નય ત્યારે તેને અવલંબન આદિ રૂપે સહારો આપનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો
વિરાધક ગણાતો નથી. “ પુલ્લભવવૈરિણ ” ઇત્યાદિ--

જિનેશ્વર ભગવાને એવું કહ્યું છે કે નીચેના બે કારણોને લીધે સાધ્વીને
યક્ષાવિષ્ટા કહેવાય છે--(૧) કોઈ પૂર્વભવના વૈરી દેવાદિને શરીરમાં પ્રવેશ
થવાથી અથવા (૨) કોઈ વિશેષ રાગ વડે અનુરક્ત થઈ નય, તો એવી
સ્થિતિમાં તેને યક્ષાવિષ્ટા કહેવામાં આવે છે.

અથવા ન્યારે કોઈ સાધ્વી ઉન્માદાવસ્થામાં-ચિત્તબ્રમની હાલતમાં હોય
ત્યારે પણ તેને સહારો દેનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક થતો નથી. ઉન્મા-
દના બે પ્રકાર કહ્યા છે--યક્ષાવેશ રૂપ ઉન્માદ-તેનું સ્વરૂપ ઉપર સ્પષ્ટ કરવામાં
આવ્યું છે. (૨) મોહનીય રૂપ ઉન્માદ-ચિત્તબ્રમ રૂપ ત્યાં ઉન્માદ રૂપાળ

“ उम्माओ खलु दुविहो, जक्खाएसोयमोहणिज्जो य ।

जक्खाएसो वुत्तो, गोहेण इमं तु वोच्छामि ॥१॥

रुवंगं दट्ठणं, उम्माओ अहव पित्तमुच्छाप-

उम्मायस्स य भया, कहिया तित्थंकराईहिं ॥२॥ ”

छाया-उन्मादः खलु द्विविधो यक्षावेशश्च मोहनीयश्च ।

यक्षावेशउक्तो मोहेनैनं तु वक्ष्यामि ॥१॥

रूपसङ्गं च दृष्ट्वा उन्मादोऽथवा पित्तमूर्च्छया ।

उन्मादस्य च भेदौ कथितौ तीर्थङ्करादिभिः ॥ २ ॥ इति ।

अथवा-उपसर्गप्राप्तम्-उपसर्गम्=उपद्रव प्राप्त ताम् । उपसर्गश्च दिव्यमा-
नुषतिर्यक्कृतत्वात् त्रिविधो बोध्यः । तदुक्तम्—

उन्माद है, चित्तकी अनवस्थिति रूप यह उन्माद रूपाङ्ग दर्शनसे या
पित्तकी मूर्च्छासे होता है । कहाभी है—

“ उम्माओ खलु दुविहो ” इत्यादि ।

इस गाथाका अर्थ स्पष्ट है, अथवा जब वह साध्वी उपसर्ग प्राप्त
हुई हो, उपद्रवको प्राप्त करनेकी स्थितिवाली हो गई हो, देवकृत उप-
सर्ग, मानुषकृत उपसर्ग, तिर्यक्कृत उपसर्ग, इस प्रकारसे उपसर्ग तीन
प्रकारका होता है, जो उपसर्ग देव द्वारा कृत-होता है वह दिव्य उप-
सर्ग है, जो उपसर्ग मनुष्य द्वारा किया गया होता है वह मानुष उप-
सर्ग होता है और जो उपसर्ग पशु द्वारा किया गया होता है वह
तिर्यक् कृत उपसर्ग होता है । सो ही कहा गया है—

दर्शनथी अथवा पित्तनी मूर्च्छाथी थाय छे क्खुं पणु छे के : “उम्माओ खलु
दुविहो ” इत्यादि. आ गाथानो अर्थ स्पष्ट छे.

अथवा न्यारे केछ साध्वीने उपसर्गो अनुभववा पडतां डाय त्यारे
पणु तेने सडारे हेनार साधु जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी. उपसर्गना
नीये प्रमाणे त्रणु प्रकार छे— देवकृत उपसर्ग, मनुष्यकृत उपसर्ग, अने तिर्यक्-
कृत उपसर्ग. ७ उपसर्गो देव द्वारा कराय छे, तेमने दिव्य उपसर्गो कडे छे,
मनुष्य द्वारा कराना उपसर्गोने मानुषी-उपसर्गो कडे छे, अने तिर्यक्का द्वारा
कराना उपसर्गोने तिर्यक्कृत उपसर्गो कडे छे. ओ व वात “ त्रिविहे व
उपसर्गो ” इत्यादि गाथाओ द्वारा व्यक्त करवामां आवी छे.

छाया—अर्थं वा हेतुं वा श्रमणीनां विरहिते कथयतः ।

मूर्च्छया विपतितायाः कल्पते ग्रहणं परिज्ञया ॥ इति ।

अयमर्थः—संस्तारकस्य अर्थम्=उद्देश्यं हेतुं=कारणं वा कथयतः=उपदिशतो निर्ग्रन्थस्य पुरतो मूर्च्छया निपतितायाः निर्ग्रन्थ्याः श्रमणीनां विरहिते सति परिज्ञायाम्=अनशने ग्रहणं कल्पते इति । अथवा—अर्थजाताम्—अर्थः=पतिचौरादेः कार्ये प्रयोजनमिति यावत् जातो यतः सा तथा ताम्—पतिचौरादिना संयमाच्चाल्यमानामित्यर्थः । उक्तंचात्र—

“ अद्वोत्तिजीए कज्जं, संजयं एस अट्टजायाउ ।

तं पुण संजमभावा चालिज्जंतं समवलंबं ॥३॥”

छाया—अर्थ इति यस्याः कार्यं संजातम् एषा अर्थजाता तु ।

तां पुनः संयमभावाच्चाल्यमानां समवलम्बः ॥१॥ इति ।

इसका भाव ऐसा है—संस्तारकके (अनशन) प्रयोजनको अथवा कारणको कहते हुए, उपदेश देते हुए, निर्ग्रन्थके समक्ष यदि कोई यावज्जीव भक्तप्रत्याख्यानवाली साध्वी गिर पडी हो—और उस समय वहां अन्य साध्वियां न हो तो ऐसी अवस्थामें साधुका उसे सहारा देना दोषावह नहीं है अथवा—जब वह अर्थजाता हो, पति अथवा चोर आदि जिसे संयमसे चलायमान कर रहे हो । कहाभी है—

“ अद्वोत्ति जीए कज्जं ” इत्यादि ।

जिसे पति अथवा चोर आदिका भय उपस्थित हो गया हो, इस स्थितिमें जो साध्वी आगई हो ऐसी वह अर्थजाता साध्वी है । इस तरह

अथवा कौछ साध्वीके आलुवन अनशनप्रत अंगीकार कथुं डोय, अने शारीरिक अशक्तितने कारणे तेके पडी लय तो त्यां अन्य साध्वीके डांजर न डोय केवी परिस्थितिमां तेमने सहारो हेनार साधु जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी, अथवा न्यारे ते साध्वीके अर्थलता डोय (जेने पति अथवा चोर आदि संयमथी चलायमान करी रखा डोय केवी साध्वीने अर्थलता कडे छे) त्यांरे तेने सहारो हेनार साधु पणु जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी, कथुं पणु छे के “ अद्वोत्ति जीए कज्जं ” इत्यादि—

जेने पति अने चोर आदिने लय उपस्थित थयो डोय केवी परिस्थितिमां भूकायेला साध्वीने अही अर्थलता साध्वी कडेवामां आवेल छे.

क्षिप्तचित्ताद्यर्थजातापर्यन्तासु कामपि निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नातिक्रामतीति पञ्चमं स्थानम् ॥ सू० २७ ॥

अनन्तरं येषु कारणेषु वर्तमानो निर्ग्रन्थो जिनाज्ञां नातिक्रामति तान्युक्तानि, सम्प्रति निर्ग्रन्थविशेषा आचार्योपाध्याया येषु अतिशयेषु वर्तमाना जिनाज्ञां नातिक्रामन्ति तानाह—

मूलम्—आयरियउवज्झायस्स णं गणांसि पंच अइसेसा पणत्ता, तं जहा—आयरिय उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स पाए निगिज्झिय निगिज्झिय पफ्फोडेमाणे वा पमज्जेमाणे वा णाइक्कमइ १। आयरियउवज्झाएअंतो उवस्सयस्स उच्चारपासवणं विगिंच-माणे वा विसोहेमाणे वा णाइक्कमइ २। आयरियउवज्झाए पभू इच्छावेयावडियं करेज्जा इच्छा णो करेज्जा ३। आयरिय उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा एगागी वसमाणे णाइ-क्कमइ ४। आयरियउवज्झाए बाहि उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णाइक्कमइ ५ ॥ सू० २८ ॥

क्षिप्तचित्तसे लेकर अर्थजाता पर्यन्त तककी किसीभी अवस्थामें पतित हुई किसीभी साध्वीको संहारा देनेवाला साधु निर्ग्रन्थ जिनाज्ञाका अनिक्रमण—उल्लङ्घन करनेवाला नहीं होता है, इस तरहसे यह पांचवां स्थान है ॥ सू० २७ ॥

इस तरहसे जिन कारणोंको लेकर निर्ग्रन्थ जिनाज्ञाका उलङ्घन करनेवाला नहीं होता है, उनको प्रदर्शित कर अब सूत्रकार निर्ग्रन्थ विशेष जो आचार्य और उपाध्याय हैं, वे जिन अतिशयोंमें वर्तमान होकर जिनाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करते हैं, उनका कथन करते हैं—

आ रीते क्षिप्तचित्तथी लधने अर्थजाता पर्यन्तानी कोष्ठ पणु परिस्थितिमां भूधयेवा साध्वीलमे सहारे देनार श्रमणु निर्ग्रन्थ जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी आ प्रकारनु आ पायमुं कारणु समज्जपु ॥ सू० २७ ॥

क्या प्रकारनी परिस्थितिमां साध्वीलमे सहारे देनार श्रमणु निर्ग्रन्थ जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी, ये वात प्रकट करीने हवे सूत्रकार ये वात प्रकट करे, छे के आचार्य अने उपाध्याय इप निर्ग्रन्थ विशेषो क्या अतिशयोथी युक्त होवा छतां पणु जिनाज्ञानी अवगणुता करनारा गणुता नथी.

छाया—आचार्योपाध्यायस्य खलु गणे पञ्च अतिशेषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
 आचार्योपाध्यायः अन्तरूपाश्रयस्य षोडो निगृह्य निगृह्य प्रस्फोटयन् वा प्रमाज्ज-
 यन् वा नातिक्रामति १। आचार्योपाध्यायः अन्तरूपाश्रयस्य उच्चारप्रसन्नं विवे-
 चयन् वा विशोधयन् वा नातिक्रामति २। आचार्योपाध्यायः प्रभुः इच्छा वैग-
 वृत्यं कुर्यात् इच्छा न कुर्यात् ३। आचार्योपाध्यायः अन्तरूपाश्रयस्य एकरात्रं वा
 द्विरात्रं वा एकाकी वसन् नातिक्रामति ४। आचार्योपाध्यायो बहिरूपाश्रयस्य
 एकरात्रं वा द्विरात्रं वा वसन् नातिक्रामति ५ ॥सू० २८ ॥

टीका—‘आयरिय उवज्झायस्स’ इत्यादि—

आचार्योपाध्यायस्य—आचार्यः—केपांचिदर्थप्रदातृत्वात्, स एव उपाध्यायः
 केपांचित् साधूनां सूत्रप्रदातृत्वात्, आचार्यश्चासौ उपाध्यायश्चेति आचार्योपाध्यायः,
 यद्वा—आचार्योऽन्यः, उपाध्यायश्चान्यः, उभयोः समाहारे—आचार्योपाध्यायं, तस्यै-
 आचार्योपाध्यायस्य आचार्योपाध्याययोर्वा खलु=निश्चयेन गणे=साधुसमुदाये
 पञ्च अतिशेषाः=अतिशयाः अन्यसाध्वपेक्षया प्रज्ञप्ताः कथिताः। तद्यथा—आचार्यो-
 पाध्यायः—आचार्योपाध्यायपदविशिष्ट एकः साधुः आचार्यत्वोपाध्यायत्वविशिष्टं

“आयरिय उवज्झायस्स णं गणंसि” इत्यादि ।

आचार्योपाध्यायके अथवा आचार्य और उपाध्यायके गणमें पांच
 अतिशेष अन्य साधुकी अपेक्षा अतिशय कहे गये हैं, वे इस प्रकारसे
 हैं—“आयरिय उवज्झाय अंतो उवस्सयस्स” इत्यादि ।

जो आचार्योपाध्याय—आचार्यरूप उपाध्याय किन्हीं किन्हीं साधु-
 ओंको अर्थ और सूत्र प्रदाता होने से आचार्यरूप
 और उपाध्याय रूप हुआ ऐसा कहें। वह आचार्योपाध्याय
 अथवा स्वतंत्र उपाध्याय—उपाश्रयके भीतर शिष्यजनको इस अभि-
 प्रायसे ऐसा कहकर “कि चरणों परकी धूलिकी झटकारनेसे उडी हुई
 चरण रज अन्यके ऊपर पड जाती है, अतः वे न पड जायें इसलिये
 चरणोंको उपाश्रयके बाहरही झटकार लेना चाहिये,” उपाश्रयके भीतर

“आयरिय उवज्झायस्स णं गणंसि” इत्यादि—

आचार्योपाध्यायमां अथवा आचार्यं अने उपाध्यायमां पांच अतिशेष
 ओटले के अन्य साधुओंनी अपेक्षाओ अतिशय कहा छे, ते पांच अतिशयो
 नीचे प्रभावे छे—“आयरिय उवज्झाय अंतो उवस्सयस्स” इत्यादि—जे आचा-
 र्योपाध्याय—आचार्यं इप उपाध्यायं कोठ कोठ साधुओंने अर्थना दाता होवाने
 कारणे आचार्यं इप गणी शक्य छे अने कोठ कोठ साधुओंने सूत्रना प्रदाता
 होवाथी तेओ उपाध्यायं इप गणाय छे, जेवां ते आचार्योपाध्याय अथवा
 स्वतंत्र आचार्यं अने स्वतंत्र उपाध्याय उपाश्रयनी अंदर शिष्येने आ

સાધુદ્વયં વા ઉપાશ્રયસ્ય=વસતેઃ અન્તઃ=મધ્યે નિગૃહ્ય નિગૃહ્ય=પ્રસ્ફોટનેન ઉડ્ડીય માનૈશ્વરણરજોભિરન્યજીવવિરાધના મા ભવેદિતિ યતનયા શિષ્ય ભૂયો ભૂયો નિવાર્ય પાર્દૌ પ્રસ્ફોટયન્=આભિગ્રહિકેણ અન્યેન વા સાધુના સ્વકીય રજોહરણાદિના ચરણયોઃ પ્રસ્ફોટનં કારયન્ વા, પ્રમાર્જયન્=શનૈઃ શોધયન્ વા નાતિક્રામતિ જિનાજ્ઞામ્ । અયમત્રાભિપ્રાયઃ—આચાર્ય ઉપાધ્યાયો વા કુલગણાદિકાર્યેણ નિર્ગત્ય પ્રત્યાવૃત્તઃ । સત્ત્વોત્સર્ગેણ ઉપાશ્રયાદ્ વહિરેવ ચરણૌ પ્રસ્ફોટયતિ, યદિ તત્ર કશ્ચિત્ સાગારિકો ભવતિ તદા સ ઉપાશ્રયમધ્યે પ્રસ્ફોટયતિ । પ્રસ્ફોટનં ચ પ્રમાર્જનવિશેષ एव,

નहीं ” पैरोंके छटकारने से चार २ निषेध करता है और वह स्वयं अपने पैरोंको किसी आभिग्रहिकसे अथवा किसी अन्य साधुसे अपने रजोहरण आदिसे उपाश्रयके भीतर छटकारता है दूरकराता है या उनकी धीरे २ प्रमार्जना कराना है तो ऐसा कराता हुआ वह आचार्य या उपाध्याय जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है । तात्पर्य इस कथनका ऐसा है— आचार्य अथवा उपाध्याय कुलगण आदिके कार्यके निमित्त बाहर गये और उस कार्य करके वे फिर पीछे लौट आये तो उत्सर्ग मार्ग तो यही है कि वे उपाश्रयके बाहर ही अपने दोनों पैरोंको प्रमार्जन कर ले पीछे उपाश्रयके भीतर प्रविष्ट होते हैं, परन्तु यदि वहां कोई सागारिक होना है तो वे उपाश्रयके भीतर अपने पैरोंको प्रमार्जन करवाते हैं, यह प्रस्फो-

પ્રમાણે કહે છે. “ પગ પર લાગેલી રજને આપટવાથી તે રજ ઉડીને કોડની ઉપર પડે છે, તેથી તમારે ઉપાશ્રયની બહાર જ પગની રજને આપટી નાખવી જોઈએ, ઉપાશ્રયમાં આપટવી જોઈએ નહીં. ”

આ પ્રમાણે તેઓ શિષ્યોને ઉપાશ્રયની અંદર પગની રજ આપટી નાખવાનો વારંવાર નિષેધ કરે છે, પરન્તુ તેઓ પોતે કોઈ આભિગ્રહિક પાસે અથવા કોઈ અન્ય સાધુ પાસે પોતાના પગને રજોહરણ આદિ વડે ઉપાશ્રયની અંદર જ અપટાવે છે અથવા ધીરે ધીરે તેની પ્રમાર્જના કરાવે છે, તે એવું કરનાર તે આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાય જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે—

આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાયને કુલ, ગણુ આદિના કાર્યને નિમિત્તે બહાર જવું પડ્યું હોય. ત્યારબાદ જ્યારે તેઓ પાછા ફરે, ત્યારે ઉત્સર્ગવિધિ પ્રમાણે તે તેમણે ઉપાશ્રયની બહાર જ પોતાના બન્ને પગનું પ્રમાર્જન કરીને જ ઉપાશ્રયમાં પ્રવેશ કરવો જોઈએ, પરન્તુ જો ત્યાં કોઈ સાગારિક હોય છે તો તેઓ ઉપાશ્રયની અંદર દાખલ થયા બાદ પણ પોતાના પગનું

તત્ત્વ પ્રત્યુપેક્ષણપૂર્વકમેત્ર ભવતિ । પ્રત્યુપેક્ષણં ચ ચક્ષુર્વ્યાપાર એવેતિ સમ્પન્નઞ્જા
અત્ર ભવન્તિ । તથાહિ-ન પ્રત્યુપેક્ષતે ન ચ પ્રમાર્ષિ-ઈતિ પ્રથમો ભક્તઃ । ન પ્રત્યુ-
પેક્ષતે પ્રમાર્ષિં ચેતિ દ્વિતીયો ભક્તઃ । પ્રત્યુપેક્ષતે ન ચ પ્રમાર્ષિ-ઈતિ તૃતીયો ભક્તઃ ।
પ્રત્યુપેક્ષતે પ્રમાર્ષિં ચેતિ ચતુર્થો ભક્તઃ । પ્રત્યુપેક્ષણં પ્રમાર્જનં ચ દુષ્ટુતયા સુષ્ટુ-
તયા चापि भवतीति चतुर्थे भक्ते चत्वारो भक्ता बोध्याः । तत्र दुष्प्रत્યुपेक्षते दुष्प्र-
मार्षि-इति प्रथमो भक्तः । दुष्प्रत્યुपेक्षते सुप्रमार्षि इति द्वितीयो भक्तः । सुप्रत્યु-

ટન રૂપ પૈરોંકા જ્ઞટકારના પ્રમાર્જન વિશેષરૂપ હીહૈ, યહ પ્રત્યુપેક્ષણપૂર્વ-
કહી હોતા હૈ, ઓર પ્રત્યુપેક્ષણ-પડિલેહણ ચક્ષુર્વ્યાપાર રૂપ હોતા હૈ,
અતઃ યહાં સાત ભક્ત હોતે હૈ-જૈસે-“ ન પ્રત્યુપેક્ષતે ન પ્રમાર્ષિ ૧ ” ન
વહ પ્રત્યુપેક્ષા કરતાહૈ, ઓર ન પ્રમાર્જના કરતાહૈ ? “ન પ્રત્યુપેક્ષતે પ્રમાર્ષિ
ચ ૨ ” પ્રત્યુપેક્ષા તો નહીં કરતા હૈ પર પ્રમાર્જના કરતા હૈ ૨ “ પ્રત્યુ-
પેક્ષતે ન ચ પ્રમાર્ષિ ૩ ” પ્રત્યુપેક્ષા તો કરતા હૈ, પર પ્રમાર્જના નહીં
કરતા હૈ ૩ “ પ્રત્યુપેક્ષતે પ્રમાર્ષિ ચ ૪ ” ઓર પ્રત્યુપેક્ષા મી કરતા હૈ,
ઓર પ્રમાર્જના મી કરતા હૈ ૪ ઇસ ચતુર્થ ભક્તકે મી ચાર ભંગ હોતે હૈ,
કર્ચોંકિ પ્રત્યુપેક્ષણ ઓર પ્રમાર્જન દુષ્ટુરૂપસે વિના ઉપયોગકે ઓર સુ-
ષ્ટુરૂપસે ઉપયોગસે મી હોતે હૈ, વે ચાર ભંગ ઇસ પ્રકારસે હૈ “ દુષ્પ્ર-
ત્યુપેક્ષતે દુષ્પ્રમાર્ષિ ૧ ” યદિ વહ અસાવધાનીસે અચ્છી તરહસે નહીં
ઉપયોગ દિયે વિના હી-પ્રત્યુપેક્ષા કરતા હૈ, ઓર પ્રમાર્જના કરતા હૈ, તો
વહ પ્રથમ ભંગવાલા હૈ । “ દુષ્પ્રત્યુપેક્ષતે સુપ્રમાર્ષિ ૨ ” યદિ વહ પ્રત્યુ-

પ્રમાર્જન કરાવી શકે છે અનેહરણુ આદિ વડે બન્ને પગને કોઈ સાધુ પાસે
અપટાવવા એ પણ પ્રમાર્જન વિશેષરૂપ જ હોય છે. તે ક્રિયા પ્રત્યુપેક્ષણપૂર્વક
થાય છે, અને પ્રત્યુપેક્ષણુ ચક્ષુર્વ્યાપાર રૂપ હોય છે, તેથી અહીં સાત ભાંગા
(વિકલ્પો) બને છે “ ન પ્રત્યુપેક્ષતે ન પ્રમાર્ષિ ” (૧) તે પ્રત્યુપેક્ષા કરતો
નથી અને પ્રમાર્જના પણ કરતો નથી. (૨) “ ન પ્રત્યુપેક્ષતે ન પ્રમાર્ષિ ચ ”
પ્રત્યુપેક્ષા તો કરતો નથી પણ પ્રમાર્જના કરે છે (૩) પ્રત્યુપેક્ષતે ન ચ
પ્રમાર્ષિ ” પ્રત્યુપેક્ષા તો કરે છે, પણ પ્રમાર્જના કરતો નથી. (૪) પ્રત્યુપેક્ષતે
પ્રમાર્ષિ ચ ” પ્રત્યુપેક્ષા પણ કરે છે અને પ્રમાર્જના પણ કરે છે. આ ચોથા
ભાંગાના પણ ચાર ભાંગા પડી શકે છે, કારણ કે પ્રત્યુપેક્ષણુ અને પ્રમાર્જન
દુષ્ટ રૂપે (ઉપયોગ સહિત પશ્યે) અને સુષ્ટુ રૂપે (ઉપયોગ સહિત) પણ થાય
છે. તે ચાર ભાંગા નીચે પ્રમાણે સમજવા. “ દુષ્પ્રત્યુપેક્ષતે દુષ્પ્રમાર્ષિ ” જે તે
અસાવધાનીથી પ્રત્યુપેક્ષા કરે છે અને અસાવધાનીથી પ્રમાર્જના કરે છે, તો

પેક્ષતે દુષ્પ્રમાર્ષિ—इति तृतीयो भङ्गः । सुप्रत्युपेक्षते सुप्रमार्षि इति चतुर्थो भङ्गः । चतुर्थभङ्गस्य भङ्गचतुष्टयकरणेन शेषास्त्रय एवेति सप्तभङ्गा बोध्याः । अत्रान्तिमः शुद्धः । अवशिष्टेषु सामाचारी न भवति । यदि तु सागारिकस्ततो गमनोन्मुखो भवेत्तदा यावता कालेन सप्तपदान्यवक्रम्यन्ते तावन्तं कालम् उपाश्रयाद् वहिरेव तिष्ठेत्, गतेच तस्मिन् पादौ प्रस्फोटयेत् । आचार्यस्य पादप्रस्फोटनमाचार्या-

પેક્ષા તો અચ્છી તરહસે નહીં કરતા હૈ, પર પ્રમાર્જના અચ્છી તરહસે કરતાહૈ, તો વહ હસ ઢિતીય ંગવાલાહૈ । “સુપ્રત્યુપેક્ષતે દુષ્પ્રમાર્ષિ ૩” યદિ વહ પ્રત્યુપેક્ષણ અચ્છી તરહસે કરતા હૈ, ઓર પ્રમાર્જન ટીક તરહસે નહીં કરતા હૈ તો વહ હસ તૃતીય ંગવાલા હૈ ૩ “ સુપ્રત્યુપેક્ષતે સુપ્રમાર્ષિ ૪ ” ઓર યદિ વહ અચ્છી તરહસે પ્રત્યુપેક્ષણ કરતા હૈ, ઓર અચ્છી તરહસેહી પ્રમાર્જન કરતા હૈ, તો વહ હસ ચતુર્થ ંગવાલા હૈ, ચતુર્થ ંગકે ચાર ંગ કરનેસે શેષ ંગ ૩હી ંગ હૈ, હસ પ્રકાર કુલ યે ૭ ંગ હોતે હૈ । ચતુર્થ ંગકા જો અન્તિમ ચૌથા ંગ હૈ વહી શુદ્ધ હૈ, અવશિષ્ટ ંગોંમેં સામાચારી નહીં હોતી હૈ, યદિ સાગારિક વહાંસે ગમનોન્મુખ હોતા હૈ, તો જિતને સમયમેં વહ સાત પૈર આગે વઢતાહૈ, ઉતને કાલ તક ઉપાશ્રયસે ઘાહર રહના ચાહિયે ઓર ફિર ડસકે ચલે જાને પર ફિર ચરણોંકો પ્રમાર્જન કરના ચાહિયે આચાર્યકા પાદપ્રસ્ફોટન

પહેલા લાંગામાં (૨) દુષ્પ્રત્યુપેક્ષતે સુપ્રમાર્ષિ ” જે તે પ્રત્યુપેક્ષા તો સારી રીતે કરતો નથી પણ પ્રમાર્જના સારી રીતે કરે છે, તો તેને બીજા લાંગામાં મૂકી શકાય છે. “ સુપ્રત્યુપેક્ષતે દુષ્પ્રમાર્ષિ ” (૩) જે તે પ્રત્યુપેક્ષા તો સારી રીતે કરે છે પણ પ્રમાર્જના સારી રીતે કરતો નથી, તો તેને ત્રીજા લાંગામાં મૂકી શકાય છે. “ સુપ્રત્યુપેક્ષતે સુપ્રમાર્ષિ ” જે તે પ્રત્યુપેક્ષા પણ સારી રીતે કરે છે, અને પ્રમાર્જના પણ સારી રીતે કરે છે તો તેને ચોથા લાંગાવાળો કહે છે. આ રીતે આગળના ત્રણ લાંગા અને ચોથા લાંગા જે ચાર લાંગા બને છે, તે મળીને કુલ ૭ લાંગા થાય છે. ચોથા લાંગાના જે ચાર લાંગા કહેવામાં આવ્યા છે તેમાંના જે ચોથા લાંગો છે, જેજ શુદ્ધ છે, બાકીના લાંગાઓમાં સામાચારી થતી નથી. જે સાગારિક ત્યાંથી ગમન કરવા માટે, તો જેટલા સમયમા તે સાત ડગલાં આગળ વધે છે, તેટલા કાળ સુધી ઉપાશ્રયની બહાર રહેવું જોઈએ અને તે આવ્યા ગયા બાદ પગલું પ્રમાર્જન કરવું જોઈએ. આચાર્ય કરતાં દીક્ષાપર્યાયની અપેક્ષાએ જે સાધુ નાનો હોય તેણે જ આચાર્યના પગલું રજોડરણ

पेक्षया पर्यायलघुनैव साधुना कर्तव्यं न तु पर्यायज्येष्ठेन । पर्यायज्येष्ठास्तु
 आचार्यस्य गुरुतुल्या एव । आचार्यः सागारिकस्य सत्तायाश्रुपाश्रयान्तर्गत एव
 पादौ प्रस्फोटयतीत्युक्तम् । तत्र उपाश्रयो यदि विपुलो भवेत्तदाऽपरिशुक्तस्थाने
 उपविश्य पादौ तेन प्रस्फोटनीयौ । यदि उपाश्रयः सङ्कुचितः भवेत्तदा स्वसंस्तार-
 कावकाशे एव समुपविष्टेन तेन पादौ प्रस्फोटनीयौ । अथ वेदाचार्योपाध्यायौ
 सहैव समागच्छतस्तदा तयोर्यः पर्यायज्येष्ठस्तस्य पूर्वं पादप्रस्फोटना कार्या ।
 ततोऽन्यस्य । इति प्रथमोऽतिशेषः । तथा-आचार्योपाध्याय उपाश्रयस्य मध्ये

आचार्यकी अपेक्षा जो पर्यायमें लघु साधु हो ऐसेही साधुको करना
 चाहिये पर्यायकी अपेक्षा ज्येष्ठ साधुको नहीं करना चाहिये क्योंकि
 पर्याय ज्येष्ठ जो साधु हैं वे आचार्यके गुरुतुल्यही होते हैं । आचार्य
 सागारिककी सत्तामें मौजूदगीमें उपाश्रयके भीतरही दोनों पैरोंको पूंजता
 है, ऐसा कहा है, सो यदि उपाश्रय विपुल बडा हो तो उसे अपरि शुक्त
 स्थानमें बैठकर अपने दोनों पैरोंको शुद्ध करना चाहिये और यदि उपाश्रय
 छोटा है, तो उसे अपने संस्तारकके स्थान परही बैठकर पैरोंको पूंज
 लेना चाहिये यदि आचार्य और उपाध्याय साथही साथ आये हों तो
 उन दोनोंमें जो पर्यायसे ज्येष्ठ है, उसे पहिले चरणोंका प्रभार्जन करनी
 चाहिये उसके बाद दूसरेको करनी चाहिये इस प्रकारका यह प्रथम

आदि वडे प्रस्फोटन (२७ आपटवानुं कार्य) करवुं नोद्ये, परन्तु आचार्य
 करतां जे साधु दीर्घं दीक्षापर्यायवाणे डोय, तेणे आचार्यनुं पादप्रस्फोटन
 करवुं नोद्ये नडीं, कारणुं के पर्यायज्येष्ठ जे साधुओ डोय छे तेओ तो
 आचार्यना गुरु समान गणाय छे आचार्य सागारिकनी डोअरी डोय त्यारे
 उपाश्रयनी अंदर जे अन्ने पगनी प्रभार्जना करे छे, जेवुं अडीं जे कडेवामां
 आन्धुं छे तेना भावार्थ जे छे के जे उपाश्रय विशाण डोय तो तेमणे
 अपरिशुक्त स्थानमां जेसीने जे पोताना अन्ने पग घेवा नोद्ये, पणुं जे
 उपाश्रय नाने डोय तो तेमणे पोताना संस्तारकना स्थान पर जेसीने जे
 पोताना पगनी प्रभार्जना करवी नोद्ये. जे आचार्य अने उपाध्याय अन्ने
 गडारथी साथे आन्धे डोय, तो ते अन्नेमां दीक्षापर्यायनी अपेक्षाजे न्येष्ठ
 डोय तेमणे पोताना पगनी प्रभार्जना पडेलां करवी नोद्ये, अने त्यार भाद
 लघु दीक्षापर्यायवाणाजे पोताना पगनी प्रभार्जना करवी नोद्ये. आ प्रकारनुं
 पडेला अतिशेषनुं स्वरूप छे.

उच्चारप्रसवणं विवेचयन्=परिष्ठापयन् वा विशोधयन् वा जिनाज्ञां नातिक्रामति । अत्रेदं बोध्यम्—आचार्य उपाध्यायो वा उत्सर्गतो विचारभूमिं न गच्छति दोषसम्भवात्, तथाहि—आचार्यादिः कदाचिद् तिथिषु गच्छन् पूर्वं 'श्रुतादिगुणयुक्तोऽय'—मिति बुद्ध्या श्रावकादिभिरभ्युत्थानादिना सत्क्रियते, यवनेकशो विचारभूमिं गच्छति ततः श्रावकादय आलस्यवशात् न तथा कुर्वन्ति, ततोऽन्ये कदाचित् एवं मन्यन्ते—यदेते श्रावकादयो गुणिनां पूजका भवन्ति, ते चैनं

अतिशेष है । द्वितीय अतिशेष ऐसा है—आचार्य और उपाध्याय उपाश्रयमें उच्चार और प्रसवणका निवारण करते हैं तो वे जिनाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करते हैं, यहाँ ऐसा समझना चाहिये आचार्य अथवा उपाध्याय दोषोंकी संभावनासे विचारभूमिमें नहीं जाते हैं, इसका कारण ऐसा है, कि जब वे विचार भूमिमें जाते समय मार्ग से निकलतेहैं, तो उस समय पहिले श्रावक लोग उन्हें इस बुद्धिसे कि ये श्रुतादि गुणोंसे युक्त हैं, अभ्युत्थान आदि द्वारा सत्कृत करते हैं, पर यदि ये वारं विचार भूमिमें जानेके लिये मार्गसे होकर निकलने लगते हैं, तो श्रावक आदिजन आलस्यके वशसे वारं २ ऐसा नहीं भी करते हैं तो ऐसी उनकी दशा देखकर अन्य जन कदाचित् ऐसा भी मानने लगते हैं, कि ये श्रावकजन तो गुणिजनोंके पूजक होते हैं, और फिर

द्वितीय अतिशेष का प्रकारना छे—आचार्य अने उपाध्याय ले उपाश्रयमां उच्चार अने प्रसवणनी (भणभूत्रनी) परिष्ठापना अथवा विशोधना करे, तो तेजो जिनाज्ञानी विराधना करनारा गणुता नथी. अडीं अेम समजपुं लेधंअे के आचार्य अथवा उपाध्याय दोषोनी संभावनाने लीधे विचारभूमिमां (शीयभूमिमां) जता नथी. तेनुं धारणु नीधे प्रमाणे समजपुं. न्यारे विचारभूमिमां जवा भाटे तेजो नीकणे छे त्यारे तेमना मार्गमां जे जे श्रावके आवे छे, तेजो तेमने श्रुतादि शुद्धाथी युक्त गणुने उत्थान आदि द्वारा तेमने सत्कार करे छे. पणु ले तेजो वारं वर विचारभूमिमां जवाने भाटे मार्ग परधी पसार थाय छे, तो श्रावके वगेरे आणसने आधीन थधने अक्युत्थान आदि द्वारा तेमने सत्कार करवाने कदाच अंध पणु करी नाथे छे. मार्गथी पसार थतां ते आचार्य आदिने श्रावके द्वारा अक्युत्थान आदि द्वारा सत्कार न थतो लेधने पीज लेके कदाच अेवी पणु कल्पना करवा भाडे छे के श्रावके तो शुष्णीजनाना पूजक डाय छे, छतां तेजो आ

न सत्कुर्वन्ति, अतो नूनमयं पतित इति । तथा-अयं द्विभुङ्क्तते इत्यवर्णवादो भवति, मत्सरिकर्तृकमरणाथाशङ्काऽपि च तस्य भवतीति । इति द्वितीयोऽतिशेषः ।

तथा-आचार्य उपाध्यायो वा प्रभुः=स्वामी भवति गणनायकत्वात्, अतस्तस्य यदि इच्छा भवेत् तदा स वैयावृत्यं=साधुभ्यो भक्तपानादिदानरूपं कुर्यात्, तस्य इच्छा न भवेत्तदा न कुर्यात् । आचार्यादिर्गणनायको भवति, अतस्तस्य वैयावृत्यकरणे कामचारः, स स्वेच्छया कुर्यादपि, नापि च कुर्यात् । नास्ति तस्मिन् प्रतिबन्ध इति भावः । इति तृतीयोऽतिशेषः । तथा-आचार्य उपाध्यायो

ये अब ऐसा क्यों नहीं करते हैं, जो इनके ये गुरुजन यहाँसे होकर निकलते हैं, और ये उनका अभ्युत्थान आदि द्वारा सत्कार आदि नहीं करते हैं, अतः नियमसे ये पतित हैं, इसलिये ये ऐसा करते हैं, तथा ये दो बार भोजन करते हैं, इसीलिये इन्हें अनेक बार विचारभूमिमें जाना पड़ता है, ऐसा अवर्णवाद भी होता है, तथा जो मात्सर्य भावसे युक्त होते हैं, ऐसे व्यक्तियों द्वारा उन्हें अपने मारे जाने आदिकी शङ्का भी हो सकती है, इसीलिये वे उच्चार प्रसवण आदि उपाश्रयके भीतर ही करते हैं, और उसकी विशोधना करते हैं, ऐसा यह द्वितीय अतिशेष है, तृतीय अतिशेष ऐसा है, गणनायक होनेसे आचार्य या उपाध्याय अपने गणका स्वामी होता है, अतः यदि उसकी इच्छा होती है, तो वह अन्य साधुजनोंकी भक्तपान आदिके देनेरूप उनकी वैयावृत्ति करता है, और यदि उसकी इच्छा नहीं होती है, तो वह ऐसा नहीं भी करता है, आचार्य आदि गणनायक होते हैं, अतः अन्य सा-

तेमना आचर्यनेो अब्युत्थान आदि द्वारा सत्कार शा भाटे करतां नथी ? अवश्य आ साधुतुं पतन थयुं डोपुं जेधये, अने ते कारणे श्रावके तेमनेो सत्कार नडीं करता डोय वगी डोके जेवी कल्पना पणु करे छे के तेजो जे वार जमे छे, तेथी तेमने अनेकवार विचारभूमिमां जपुं पडे छे, आ प्रकारनेो तेमनेो अवर्णुंवाड (निंदा) पणु थाय छे. वगी मात्सर्यभाव युक्त विरोधीजो वडे पोतानी डत्या थर्ध जवानी शंका पणु तेमने रडे छे. ते कारणे तेजो उच्यार प्रसवणु आदि उपाश्रयनी अंदर ज करे छे अने तेनी विशोधना करे छे आ प्रकारनेो आ पीजे अतिशेष छे.

त्रीजे अतिशेष आ प्रकारनेो छे—गणनायक डोवाने कारणे आचार्य अथवा उपाध्याय पोताना गणना स्वामी डोय छे. अन्य साधुजोने लक्ष्मपान आदि देवा इप तेमनुं वैयावृत्य तेजो अशुभक रीते करे छे, अटले के तेमनी

वा साधनादिरूप कारणवशात् उपाश्रयस्य मध्ये एकरात्रं वा द्विरात्रं वा एकाकी वसन् नातिक्रामति जिनाज्ञामिति चतुर्थोऽतिशेषः । तथा—आचार्य उपाध्यायो वा साधनादिरूपकारणवशात् उपाश्रयाद् वहिः एकरात्रं वा द्विरात्रं वा एकाकी वसन् जिनाज्ञां नातिक्रामतीति पञ्चमोऽतिशेषः । अत्रेदं बोध्यम्—गणावच्छेदकस्यादितस्त्रयोऽतिशेषा न भवन्ति, अन्तिमौ द्वौ भवतः । तदुक्तम्—

“ गणावच्छेयगसस गणंसि णं दो अइसेसा पणत्ता, तं जहा—गणावच्छेयए अतो उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्कमइ १, गणावच्छेयए

धुओंकी वैयावृत्ति करनेमें उसकी कामचारता है, उसकी इच्छा होती है, तो वह करता है, और नहीं होती है तो नहीं करता है । अन्य साधुओंकी वैयावृत्ति करनेमें उसे प्रतिबन्ध नहीं है । चतुर्थ अतिशेष ऐसा है, आचार्य अथवा उपाध्याय साधनादि रूप कारणके वशसे उपाश्रयमें एक रात या दो रात तक अकेला रहता है, तो वह जिनाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करता है, पाँचवां अतिशेष ऐसा है, आचार्य अथवा उपाध्याय साधनादि रूप कारणके वशसे उपाश्रयके बाहर एक रात अथवा दो रात तक यदि बाहर रहता है, तो वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं करता है, आदिके तीन अतिशेष गणावच्छेदकको नहीं होते हैं, अन्तिम दो अतिशेष होते हैं तदुक्तम्—

“ गणावच्छेयगसस गणंसि णं दो अइसेसा पणत्ता—तं जहा गणावच्छेयए बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्क-

धञ्छा थाय तो करे छे अने धञ्छा न थाय तो करता नथी. तेओ गणुनायक डोवाथी तेमने माटे वैयावृत्य करवानुं इरञ्जियात नथी, अने वैयावृत्य करवानो निषेध पणु नथी.

योथो अतिशेष आ प्रकारने छे—आचार्य अथवा उपाध्याय साधना आदि इप कारणे उपाश्रयमां ओकथी जे रात सुधी ओकला रडे तो तेओ जिनाज्ञाना विराधक गणुता नथी.

पांचमो अतिशेष आ प्रकारने छे—आचार्य अथवा उपाध्याय साधना आदि इप कारणे लीधे उपाश्रयनी अडार ओक अथवा जे रात सुधी रडे छे, तो तेओ जिनाज्ञाना विराधक गणुता नथी.

पडेलां त्रणु अतिशेषने गणुवच्छेदकमां सहलाव डोतो नथी, छेदला जे अतिशेषोने न तेमनामां सहलाव डोय छे. कहु पणु छे के—

“ गणावच्छेयगसस गणंसि णं दो अइसेसा पणत्ता—तं जहा गणावच्छेयए बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइक्कमइ १ । गणावच्छेयए

बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइकमइ २ ॥”

छाया—गणावच्छेदकस्य गणे खलु द्वौ अतिशेषौ प्रज्ञप्तौ, तथा—गणावच्छेदकः अन्तरुपाश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा वसन् नातिक्रामति १, गणावच्छेदको वहिरुपाश्रयात् एकरात्रं वा द्विरात्रं वा वसन् नातिक्रामति २। इति ।

यदि आचार्योपाध्यायगणावच्छेदकाः सहैव समागच्छेद्युस्तत्र यदि गणावच्छेदः पर्यायज्येष्ठो भवति, तदा पर्यायज्येष्ठत्वाद् गणावच्छेदकस्य प्रथमं पादप्रस्फोटना, अनन्तरमाचार्योपाध्याययोः पर्यायक्रमानुसारेणेति ॥सू० २८॥

आचार्योपाध्याययोर्गणोऽतिशेषा उक्ताः, सम्प्रति तयोरतिशयविपरीतानि गणनिर्गमनकारणानि प्राह—

मूळम्—पंचहिं ठाणेहिं आयरियउवज्झायस्स गणावक्कमणे पणणत्ते तं जहा—आयरियउवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा नो सम्मं पउंजित्ता भवइ १। आयरियउवज्झाए गणंसि आहारायणियाए किइकम्मं वेणइयं णो सम्मं पउंजित्ता भवइ २। आयरियउवज्झाए गणंसि जे सुयपज्जवजाए धारेइ ते काले काले नो सम्ममणुप्पवाएत्ता भवइ ३। आयरियउवज्झाए

मह १ गणावच्छेदके बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइकमइ २ ” इसका अर्थ पूर्वोक्तानुसारही है—

यदि आचार्य उपाध्याय और गणावच्छेदक ये तीनों साथही आते हैं, तो उनमें यदि गणावच्छेदक पर्यायसे ज्येष्ठ है, तो उस गणावच्छेदककी पादप्रस्फोटना (प्रभार्जना) सबसे पहिले होतीहै, इसके बाद आचार्य और उपाध्यायकी पर्यायके क्रमानुसार होती है ॥सू० २८॥

बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णो अइकमइ २ ”

आ सूत्रपाठने लावार्थ पूर्वोक्त कथन अनुसार न समझे। जे आचार्य, उपाध्याय अने गणावच्छेदक जे त्रये साथे न आवे, तो गणावच्छेदक जे पर्यायनी अपेक्षासे ज्येष्ठ होय तो ते गणावच्छेदकनी पादप्रस्फोटना (पगनी प्रभार्जना) सौथी पडेलां थाय छे अने त्यार भाद पर्यायना क्रम अनुसार आचार्य अने उपाध्यायना पगनी प्रभार्जना थाय छे ॥ सू. २८ ॥

ગણંસિ સગણિયાણ વા પરગણિયાણ વા નિર્ગમ્થીણ વહિલ્હેસે
ભવઙ્ શા મિત્તે ણાઈગણે વા સે ગણાઓ અવ્વક્રમેજ્ઞા, તેસિં
સંગહાંવગ્ગહટ્ટયાણ ગણાવ્વક્રમણે પળ્લગ્ગત્તે ॥ સૂ. ૨૧ ॥

છાયા—પચ્ચમિઃ સ્થાનૈઃ આચાર્યોપાધ્યાયસ્ય ગણાપક્રમણં પ્રજ્ઞસમ્, તથથા—
આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે આજ્ઞાં વા ધારણાં વા નો સમ્યક્ પ્રયોક્તા ભવતિ ૧,
આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે વધારાત્તિક્રમયા કૃતિકર્મ વૈનયિકં નો સમ્યક્ પ્રયોક્તા
ભવતિ ૨। આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે યાનિ શ્રુતપર્યવજાનાનિ ધારયતિ તાનિ કાલે
કાલે નો સમ્યક્ અનુપવાચયિતા ભવતિ ૩। આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે સ્વગણિ-
કાયાં વા પરગણિકાયાં વા નિર્ગમ્થીણાં વહિલ્હેસ્યો ભવતિ ૪। મિત્તં જ્ઞાતિગણો વા
તસ્ય ગગાન્ આક્રમેન્ તેષાં સંગહોપગ્રહાર્ગથ ગણાપક્રમણં પ્રજ્ઞસમ્ ૪ ॥પૂ.૨૧॥

ટીકા—‘ પચ્ચિ ઠાણેહિ ’ इत्यादि—

પચ્ચમિઃ સ્થાનૈઃ=કારણૈઃ આચાર્યોપાધ્યાયસ્ય—આચાર્યોપાધ્યાયવત્રિશિષ્ટ-
સ્વરૂપ વાપોઃ આચાર્યસ્ય ઉપાધ્યાય-ય વ સાપુલ્કયસ્ય વા ગણાપક્રમણમ્—ગણાત્=
ગચ્છાન્ અપક્રમણં=નિસ્સરણં=વહિર્ગમનમ્ પ્રજ્ઞસમ્ । તથથા—તાનિ સ્થાનાન્યાહ—
આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે=ગચ્છે આજ્ઞાં=‘ હે મુને ! ભવતેદં પ્રિયેયમ્ ’ इत्येवंरूपाम्,

આચાર્ય ઓર ઉપાધ્યાયકે ગણમેં હવ પ્રકારસે જો અતિશેષ હોતે
હેં વે પ્રકટ ક્રિયે અવ ત્વચ્ચકાર હન દોનોંકે ગણસે નિર્ગમન હોનેકે કાર-
ણોંકો જો અતિશયોંસે કિપરીત હોતે હેં કહતે હેં—

‘પચ્ચિ ઠાણેહિ આચરિયવ્વજ્ઞ યસ્સ’ इत्यादि सूत्र २१ ॥

ટીકાર્થ—પાંચ કારણોંકો લેકર આચાર્ય રૂપ ઉપાધ્યાયકા અથવા આચાર્ય
પદ ઉપાધ્યાયકા ગચ્છસે નિસ્સરણ હોના કહા ગયા હૈ—વે પાંચ કારણ
હવ પ્રકારસે હેં—“આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે આજ્ઞાં વા ધારણાં વા ” इत्यादि

આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયના ગણુમા આ પ્રકારના જે અતિશેષો હોય
હેં તે પ્રકટ કરવામાં આવ્યા. હવે સૂત્રકાર તે બન્નેના ગણુમાંથી નીકળી
જવ ના કારણોંકો નિરૂપણ કરે છે. અતિશયો ક્રમતાં નિર્ગમન વિહરીત હોવાથી
અતિશયોંકો નિરૂપણ કરીને સૂત્રકાર નિર્ગમનના કારણો પ્રકટ કરે છે.

ટીકાર્થ—“ પચ્ચિ ઠાણેહિ આચરિયવ્વજ્ઞ યસ્સ ” इत्यदि—

નીલેના પાંચ કારણોંકોને લીધે આચાર્ય એ ઉપાધ્યાયને અથવા આચાર્ય
અને ઉપાધ્યાયને પ્રકટમાંથી નીકળી જવું પડે છે. તે કારણો આ પ્રમાણે છે.

(૧) “ આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે આજ્ઞા વા ધારણાં વા ઇત્યાદિ—જે આચાર્ય

धारणां= 'नेदं विधेयम्' इत्येवंरूपां वा नो सम्यग्=यथौचित्येन प्रयोक्ता=प्रवर्तकी भवति । अयं भावः—गणस्य दुर्विनीतत्वात् आज्ञां धारणां वा गणे प्रवर्तयितुमशक्नुवन् आचार्य उपाध्यायो वा गणादपक्रामति कालकाचार्यवदिति । आज्ञाधारणयोर्विशिष्टव्याख्याऽस्यैव स्थानकस्य प्रथमोद्देशे त्रयोदशसूत्रे द्रष्टव्या । इति प्रथमं स्थानम् । तथा—आचार्योपाध्यायो गणे=गणविषये यथारात्निक तथा=पर्यायज्येष्ठानुसारेण कृतिकर्म=वन्दनकं वैनयिकं=विनयं च नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति । अयं भावः—आचार्येणापि प्रतिक्रमणक्षामणादिषु पर्यायज्येष्ठानामुचितो

आचार्य या उपाध्याय गच्छन्तं आज्ञाका—“ हे मुने ! आपको यह करना चाहिये ” इस प्रकारका निषेधका औचित्यरूपसे यदि प्रवर्तक नहीं होता है, तथा आज्ञा और धारणा नहीं करा सकता है, तो उसे गणसे पृथक् हो जाना चाहिये ऐसा यह प्रथम कारण है । तात्पर्य इसका ऐसा है, कि अपना गण यदि दुर्विनीत हो गया है, और वह गणमें अपनी आज्ञा एवं धारणाको प्रवृत्त करानेमें अशक्य है, तो ऐसी स्थितिमें उसका कालकाचार्यकी तरह गणसे बाहर होना श्रेयस्कर है । आज्ञा और धारणाकी विशिष्ट व्याख्या इसी स्थानके प्रथम उद्देशकमें १३ वे सूत्रमें देख लेनी चाहिये । द्वितीय स्थान ऐसा है—आचार्य एवं उपाध्याय यदि अपने गणमें पर्याय ज्येष्ठके अनुसार कृतिकर्म वन्दनक एवं वैनयिक विनय इनके प्रयोक्ता नहीं होते हैं, तो उन्हें गणसे पृथक् हो जाना चाहिये इसका भाव ऐसा है. आचार्यको भी प्रतिक्रमण क्षामणा आ-

अथवा उपाध्याय पोताना गणुमां आज्ञा अने धारणातुं उचित रीते पालन कराववाने समर्थ न होय तो तेमण्णे गणुमांथी नीकणी ज्वुं न्नेधये. “ हे मुनि ! तमारे आ प्रमाणे करवुं न्नेधये ” आ प्रकारना आदेशने आज्ञा कुडे छे. “ हे मुनि ! तमारे आ प्रमाणे न करवुं न्नेधये ” आ प्रकारना निषेधनुं नाम धरणा छे. आ कथनतुं तात्पर्य ज्वेपुं छे के पोताने शिष्यसमुदाय दुर्विनीत थर्ध गयेो होय अने ते कारणे पोतानी आज्ञा अने धारणातुं तेमनी पासे पालन कराववानुं अशक्य ज्वनी गशुं होय, तो ज्वेवी परिस्थितिमां कालकाचार्यनी ज्वेम तेमण्णे गणुमांथी नीकणी ज्वुं न्नेधये. आज्ञा अने धारणाणी विस्तृत व्याख्या आज स्थानना पहिला उद्देशाना १३ मां सूत्रमां आपवामां आवी छे, तो त्यांथी वांथी लेवी न्नेधये.

धीनुं कारण आ प्रमाणे छे—जे आचार्य अने उपाध्याय पोताना गणुमां दीक्षापर्यायनी अपेक्षाजे कृतिकर्म, वन्दणा अने वैनयिकता प्रयोक्ता न होय, तो तेमण्णे गणुमांथी अलग धर्ध ज्वुं न्नेधये. आ कथनने लावार्थ

विनयः कर्तव्य एव । स चेत् आचार्यसम्पदा साभिमानस्तथा न करोति तदा तस्य गणान्निष्क्रमणं भवति । एवमुपाध्यायस्यापि बोध्यमिति । इति द्वितीयं स्थानम् । तथा—आचार्योपाध्यायो यानि श्रुतपर्यवज्ञातानि=सूत्रार्थप्रकारान्धारयति=अवगच्छति तानि काले काले=यथावसरं नो सम्यक्=याथातथ्येन अनुप्रवाचयिता=पाठयिता भवतीति—गणादपक्रामतीति तृतीयं स्थानम् । तथा—आचार्योपाध्यायो गणे स्थितः सन् स्वगणिकायां=स्वगच्छस्थितायां परगणिकायां=परगणस्थितायां वा निर्ग्रन्थ्यां=साध्यां वहिल्लेश्याः—प्राक्त्वाशुभरुमोदथवशेन सकलकल्याणाश्रयस्थानसंयमप्रासादाद् वहिर्गतालेख्या=अन्तःकरणं यस्य स तथाभूतः—आसक्तो भवतीति गणादपक्रान्तो भवति । गुणाढ्यस्याचार्यस्य नैवं

दिमें पर्यायसे ज्येष्ठ साधुजनोका उचित विनय करना चाहिये यदि वह आचार्य संपदासे अभिमान सहित होता हुआ ऐसा नहीं करता है, तो उसका गणसे निष्क्रमण होता है, इसी प्रकारसे उपाध्यायके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये ऐसा यह द्वितीय स्थान है, तृतीय स्थान ऐसा है, आचार्य और उपाध्याय जिन सूत्रार्थ प्रकारोंको जानते हैं, उन्हें यथावसर वे यदि सम्यक् रूपसे शिष्योंको पढानेवाले नहीं होते हैं तो उन्हें गणसे पृथक् हो जाना चाहिये । चतुर्थ कारण ऐसा है, कि आचार्य एवं उपाध्याय गणमें स्थित होता हुआ अपने गच्छमें रही हुई या पर गच्छमें रही हुई निर्ग्रन्थीके ऊपर वहिल्लेश्यावाला बन जाता है—आसक्त हो जाता है, तो वह गणसे बाहर निकाला जाता है “गुणाढ्य आचार्यके ऐसा भाव संभवित नहीं होता है “ ऐसी विचारणा नहीं करनी

अवे। छे के आचार्ये पणु प्रतिकभणु, आभणुं आदिमां दीक्षापर्यायनी अपेक्षाअे पोताना करतां ज्येष्ठ जे साधुअे डाय तेमने उचित विनय करवे जेष्ठअे अने आ प्रकारना पर्याय ज्येष्ठ साधुअेनो योग विनय अन्य साधुअे पासे पणु कराववे जेष्ठअे जे आचार्य अभिमानने कारणे पर्यायज्येष्ठ साधुअेनो विनय न करे तो तेमने गणुमांथी नीकणी जवुं पडे छे. उपाध्यायने पणु अे ज प्रकारना कारणने लीधे गणुमांथी नीकणी जवुं पडे छे.

त्रीणुं कारणु—आचार्य अने उपाध्याय जे सूत्रार्थ प्रकारने जणुता डाय, तेमनुं योग्य अवसर शिष्येने सम्यक् रीते अध्ययन न करावे, तो तेमणे गणुमांथी नीकणी जवुं जेष्ठअे.

चोथुं कारणु—जे आचार्य अथवा उपाध्याय पोताना गच्छनी अथवा अन्य गच्छनी निर्ग्रन्थीमां आसक्त थर्षण्य—तेना प्रत्ये कुदृष्टि करे तो, तेमने गणुमांथी नीकणी जवुं पडे छे. “ गुणाढ्य (गुणसंपन्न) आ आचार्यमां

संभाव्यते इति विचारणा न कार्या । यतः प्राक्तनाशुभघनचिक्कणगुरुवज्रसार-
कर्मेद्याद् ज्ञानाढ्या अपि उत्पथप्रवृत्ता भवन्ति । तदुक्तम्—

“ कम्माइं णूणं घनचिक्कणाइं गुर्याइं वज्रसाराइं ।

नाणडूयंपि पुरिसं, पंधाओ उप्पहं निति ॥१॥ ”

छाया—कर्मणि नूनं घनचिक्कणानि गुरुकाणि वज्रसाराणि ।

ज्ञानाढ्यमपि पुरुषं नूनं पथ उत्पथं नयन्ति ॥ १ ॥ इति ।

इति चतुर्थं स्थानम् ।

तथा—तस्य=आचार्यस्य मित्रं=सुहृत् ज्ञातिगणः=स्वजनवर्गो वा कुतश्चित्
कारणात् गणात् अपक्रामेत्=निर्गच्छेत्, तेषां=निर्गतानां सुहृत्स्वजनानां, संग्र-
होपग्रहार्थम्-सङ्ग्रहः=स्वीकरणम् उपग्रहः=वस्त्रादिदानैरुपप्लव्णम्, तदर्थं गणात्
क्रमणं=गच्छान्निर्गमनम् आचार्योपाध्यायस्य प्रज्ञप्तमिति पञ्चमं स्थानकम् ॥सू० २९॥

चाहिये क्योंकि प्राक्तन अशुभ घन चिक्कण वज्रसार कर्मके उदयसे
ज्ञानाढ्यजन भी उत्पथमें प्रवृत्त हो जाते हैं, जैसा कि कहा है—

“ कम्माइं णूणं ” इत्यादि

घनचिक्कण गुरु वज्रसार कर्म ज्ञानाढ्य पुरुषको भी उन्मार्गमें ले
जाते हैं । पांचवां स्थान ऐसा है, यदि आचार्य एवं उपाध्यायके सुहृत्-
जन अथवा ज्ञातिगण-स्वजनवर्ग गणसे बाहर हो गये हों तो उन
निकले हुए सुहृत् जन एवं स्वजनोंके संग्रह एवं उपग्रहके लिये-स्वीकार
एवं वस्त्रादिकोंसे उन्हें धर्ममें स्थिर करनेके लिये गच्छसे बाहर होना
कहा गया है, ऐसा यह पांचवां स्थान है ॥ सू० २९॥

प्रकारनेो भाव संलवी शकतो नथी, ” अथी विचारणा करवी लेधये नडीं,
धारणु के प्राक्तन, अशुभ, घन, चिक्कणा अने वज्रसार कर्मना उदयथी ज्ञानाढ्य
पुरुषतुं पणु पतन थध) नय छे अने ते अवणे भागे' थडी नय छे. कहुं
पणु छे के “ कम्माइं णूणं ” इत्यादि-घन, चिक्कणा, गुरु अने वज्रसार कर्म
ज्ञानाढ्य पुरुषने पणु उत्पथमां (अवणे भागे') लध नय छे.

पांचमं धारणु—ले आचार्य अथवा उपाध्यायना सुहृदजनो अथवा
ज्ञातिगणु (स्वजनोना समूह) गणुमांथी थडार नीकणी गयेदा डोय, तो
तेमना (नीकणी गयेदा ते लोकेना) संग्रह अने उपग्रहने माटे-स्वीकार
अने वस्त्रादिको वडे तेमने धर्ममां स्थिर करवाने माटे तेमणु गच्छमांथी
नीकणी नवुं लेधये. ॥ सू. २९ ॥

आचार्यस्य गणादपक्रमणपनन्तरसूत्रे प्रोक्तम् । आचार्यस्तु ऋद्धिमानेवं भवतीति ऋद्धिमतो मनुष्यविशेषानाह—

मूलम्—पञ्चविहा इद्धिमता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—
अरहंता चक्रवट्टी बलदेवा वासुदेवा भावियप्पाणो अणगारा
॥ सू० ३० ॥

॥ इइ पञ्चमट्टाणस्स विइओ उदेशो ॥

छाया—पञ्चविधा ऋद्धिसन्तो मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अर्हन्तः, चक्रव-
त्तिनः, बलदेवाः, वासुदेवाः, भावितात्मानोऽनगाराः ॥ सू० ३० ॥

॥ इति पञ्चमस्थानस्य द्वितीय उदेशः ॥

टीका—‘पञ्चविहा’ इत्यादि—

ऋद्धिमन्तः—ऋद्धिः=लब्धिः, सा च—आमर्शौषधिः विप्रुडौषधिः, *श्लेष्मौ-
षधिः—१—जल्लौषधिः २ जल्लो=मलः, स एव ओषधिः, सर्वौषधिः, संभिन्नश्रौ

आचार्यका गणसे उपक्रमण (निकलना) अनन्तर सूत्रमें कहा गया है, आचार्य तो ऋद्धिवालाही होता है, अतः अब सूत्रकार ऋद्धिवाले मनुष्य-विशेषोंका कथन करते हैं—

‘पञ्चविहा इद्धिमता मणुस्सा-पण्णत्ता’ इत्यादि सूत्र ३० ॥

टीकार्थ—ऋद्धिवाले मनुष्य पांच प्रकारके कहे गये हैं जैसे—अर्हन्त १ चक्रवर्ती २ बलदेव ३ वासुदेव ४ और भावितात्मा अनगार ५ ऋद्धि नाम लब्धिका है, यह ऋद्धि अनेक प्रकारकी होती है, जैसे—आमर्शौषधि १ विप्रुडौषधि २ श्लेष्मौषधि ३ जल्लौषधि ४ सर्वौषधि ५

आगला सूत्रमां आचार्यना गणुमांथी अपकमणु (नीकणी जवानी क्रिया) ना करण्णे प्रकट करवामां आण्वा. आचार्यो तो ऋद्धिवाणा डोय छे. तेथी डवे सूत्रकर ऋद्धिसंपन्न विशिष्ट व्यक्तियोंतुं कथन करे छे.

टीकार्थ—“पञ्चविहा इद्धिमता मणुस्सा पण्णत्ता” इत्यादि—

ऋद्धिसंपन्न मनुष्येना नीचे प्रमाणे पांच प्रकार कहे छे—(१) अर्हन्त, (२) चक्रवर्ती, (३) बलदेव, (४) वासुदेव अने (५) भावितात्मा अणुगार, ऋद्धि अर्हन्ते लब्धि. तेना अनेक प्रकारे कहे छे. जेभके (१) आम-
र्शौषधि, (२) विप्रुडौषधि, (३) श्लेष्मौषधि, (४) जल्लौषधि, (५) सर्वौषधि,

तृत्वलब्धिः ६, संमिन्नश्रोत्रत्वम्=युगपत्सर्वशब्दश्रवणशक्तिमत्ता अवधिलब्धिः ७
 ऋजुमतित्वलब्धिः ८, त्रिपुलमतित्वलब्धिः ९, चारणत्वलब्धिः १० आशीविषत्व-
 लब्धिः ११, आशीविषत्व=शापान्तुप्रहसामर्थ्यम् केवलित्वलब्धिः १२, गणधरत्व-
 लब्धिः १३, पूर्वधरत्वलब्धिः १४, अर्हत्वलब्धिः १५, चक्रवर्तित्वलब्धिः १६,
 बलदेवत्वलब्धिः १७, वासुदेवत्वलब्धिः १८ क्षीरास्रवत्व, मध्वास्रवत्व, सर्पिरा-
 स्रवत्वलब्धिः १९, कोष्ठबुद्धित्वलब्धिः २०, पदानुसारित्वलब्धिः २१, बीजबु-
 द्धित्वलब्धिः २२, तेजोलेख्यात्वलब्धिः २३, आहारकत्वलब्धिः २४, शीतलेख्यात्व-
 लब्धिः २५, वैक्रियत्वलब्धिः २६, अक्षीणमहानसत्वलब्धिः २७, पुलाकत्वलब्धिः
 २८, उक्तं च—“ उदयखयत्वओवसमसमुत्था बहुष्पगाराओ ।

एवं परिणामवशा, लब्धीभो ह्येति जीवाणं ” ॥

छाया—उदय क्षय क्षयोपशमोपशम समुत्था बहुष्पकाराः ।

एवं परिणामवशाद् लब्धयो भवन्ति जीवानाम् ॥ इति ।

एवं प्रकारा ऋद्धिरस्ति प्राचुर्येण येषां ते तथाभूता मनुष्याः पञ्चविधाः
 प्रज्ञाः । पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-अर्हन्त इत्यादयः । तत्र-भावितात्मानः-

संमिन्नश्रोत्र लब्धि ६, अवधि लब्धि ७, ऋजुमति लब्धि ८, त्रिपुल-
 मति लब्धि ९, चारण लब्धि १०, आशीविष लब्धि ११, केवलित्व लब्धि
 १२, गणधरलब्धि १३, पूर्वधर लब्धि १४, अर्हत्व लब्धि १५, चक्रव-
 र्तित्व लब्धि १६, बलदेव लब्धि १७, वासुदेव लब्धि १८, क्षीरास्रव,
 मध्वास्रव, सर्पिरास्रव लब्धि १९, कोष्ठबुद्धि लब्धि २०, पदानुसारि
 लब्धि २१, बीजबुद्धि लब्धि २२, तेजोलेख्या लब्धि २३, आहारक लब्धि
 २४, शीतलेख्या लब्धि २५, वैक्रिय लब्धि २६, अक्षीण महानस लब्धि
 २७, पुलाक लब्धि २८. सोही कहाहै—“उदयखय खओवसमा” इत्यादि ।

शुभ कर्मों के उदयसे कर्मों के क्षयसे कर्मों के क्षयोपशमसे कर्मों के
 उपशमसे एवं शुभ परिणामों के वशसे जीवोंको अनेक प्रकारकी लब्धियां
 उत्पन्न होती हैं । ऐसी ऋद्धि जिनके प्रचुर मात्रामें होती हैं वे ऋद्धि-

(६) संमिन्नश्रोत्रलब्धि, (७) अवधिलब्धि, (८) ऋजुमतिलब्धि, (९) त्रिपुलमति
 लब्धि, (१०) चारणलब्धि, (११) आशीविषलब्धि, (१२) केवलीलब्धि,
 (१३) गणधरलब्धि, (१४) पूर्वधरलब्धि, (१५) अर्हत्वलब्धि, (१६) चक्र-
 वर्तित्वलब्धि, (१७) गणदेवलब्धि, (१८) वासुदेवलब्धि, (१९) क्षीरास्रव,
 मध्वास्रव, सर्पिरास्रवलब्धि, (२०) केष्ठबुद्धिलब्धि, (२१) पदानुसारीलब्धि,
 (२२) बीजबुद्धिलब्धि, (२३) तेजोलेख्यालब्धि, (२४) आहारकलब्धि, (२५)
 शीतलेख्यालब्धि, (२६) वैक्रियलब्धि, (२७) अक्षीणमानसलब्धि, (२८) पुलाक-
 लब्धि वगैरे उक्तं पाठ्यं छे के “ उदय खय खओवसमो ” इत्यादि —

शुभ कर्मोंना उदयथी, कर्मोंना क्षयथी, कर्मोंना क्षयोपशमथी, कर्मोंना
 उपशमथी अने शुभ परिणामोंना निमित्तथी लब्धोने अनेक प्रकारकी लब्धि-
 योंनी प्राप्ति थाय छे. ऐसी लब्धि अथवा ऋद्धिथी भूषण संपन्न पुरुषोंने

ભાવિતઃ=સદ્વામનયા વાસિતઃ આત્મા ચૈસ્તે તથા—ધુમવાસનાવાસિતાન્તઃકરુણા
અનગારાઃ=સાધવઃ । एतेषु पञ्चसु आदितश्चतुर्णाम् ऋद्धिमत्त्वम् अर्हत्त्वादिभिः,
यथासम्भवआमशौषध्यादिभिश्च बोध्यम् । पञ्चमभेदस्य ऋद्धिमत्त्वं तु आमशौष-
ध्यादिभिरेवेति ॥ सू० ३० ॥

इति श्री विश्वविख्यातजगद्गुरुम प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलि-
तललितकलापालापरुप्रविशुद्धगद्यपद्यनैरुग्रन्थनिर्मापक—वादिमानमर्दक
श्रीशाहू छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ' जैनशास्त्राचार्य ' पदभूषित
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री
घासीलालव्रतिविरचितार्या श्री स्थानाङ्गसूत्रस्य सुधाख्यायां
व्याख्यायां पञ्चमस्थानके द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥५-२॥

આત્મ કહે જાતે હિં યે ઋદ્ધિયાં મનુષ્યોંકો હોતી હિં, અતઃ વે મનુષ્ય પાંચ
પ્રકારકે પૂર્વોક્ત રૂપસે પ્રકટ ક્રિયે મચે હિં । જલ્લ નામ મલકા હૈ, યહ
મલહી જબ ઔષધિરૂપ હો જાતા હૈ, વહ જલ્લૌષધિ હૈ, શાપ એવં અ-
નુગ્રહકી જો સામર્થ્ય હૈ, વહ આશીવિષ ઋદ્ધિ હૈ, એકહી સાથ સમસ્ત
શબ્દોંકો સુનનેહી શક્તિકા પ્રકટ હોના સંલિન્નશ્રોતૃત્વ હૈ, જો સાધુ-
જન સદ્વાસનાસે વાસિત અન્તઃકરુણવાલે હોતે હિં વે આવિનાત્મા અન-
ગાર હિં । इन पांचोंमेंसे जो आदिके चार मनुष्य हैं उनमें अर्हत्त्वादिसे
एवं यथासंभव आमशौषधि आदिसे ऋद्धिमत्ता जानना चाहिये तथा
जो पंचम भेद है उसमें आमशौषधि आदिसेही ऋद्धिमत्ता जानना
चाहिये ॥ सू० ३० ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ રચિત “ સ્થાનાન્ગસૂત્ર ”
કી સુધા નામકી વ્યાખ્યાકે પાંચવેં સ્થાનકા દ્વિતીય ઉદ્દેશા
સમાપ્ત ॥ ૫-૨ ॥

ઋદ્ધિમાન્ કહેવામાં આવે છે. એવા ઋદ્ધિમાન પુરુષોના અર્હત આદિ
પૂર્વોક્ત પાંચ પ્રકારો સમજવા. ‘ જલ્લ ’ એટલે ‘ મળ ’ તે જલ્લજ વ્યારે
ઔષધિ રૂપ બની જાય છે, ત્યારે તેને જલ્લૌષધિ કહે છે. શાપ અને અનુ-
ગ્રહતું જે સામર્થ્ય છે તેનું નામ આશીવિષ લખિય છે એકી સાથે સમસ્ત
શબ્દોને શ્રવણ કરવાની શક્તિ જે ઋદ્ધિને લીધે પ્રાપ્ત થાય છે, તે ઋદ્ધિને
સંલિન્નશ્રોતૃત્વ ઋદ્ધિ કહે છે. જે મુનિ સદ્વાસનાથી યુક્ત અન્તઃકરુણવાળા
હોય છે, તેમને ભાવિતાત્મા અણુગાર કહે છે. ઉપર્યુક્ત પાંચમાંથી જે શરૂ-
આતના ચાર મનુષ્યો છે તેમનામાં અર્હતવાદિની અપેક્ષાએ અને યથા સંભવ
આમશૌષધિ આદિની અપેક્ષાએ ઋદ્ધિમત્તા સમજવી જોઈએ અને જે પાંચમો
પ્રકાર છે તેમાં આમશૌષધિ આદિની અપેક્ષાએ જ ઋદ્ધિમત્તા સમજવી. સૂ. ૩૦

॥ પાંચમાં સ્થાનકનો બીજો ઉદ્દેશક સમાપ્ત ॥

अथ तृतीयोद्देशकः प्रारभ्यते

उक्तो द्वितीयोद्देशकः, सम्प्रति तृतीय आरभ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशकेन सहायमभिसम्बन्धः । पूर्वस्मिन्नुद्देशके जीवधर्माः प्रायः प्ररूपिताः । अस्मिन्तृतीयोद्देशके अजीवजीवधर्माः प्ररूप्यन्ते, इत्यनेन सवन्धेनायातस्यास्य तृतीयोद्देशकस्येदमादिमं सूत्रम्—

तथा—द्वितीयोद्देशकान्त्यसूत्रेण सहास्य तृतीयोद्देशकप्रथमसूत्रस्यायमभिसम्बन्धः—पूर्वोद्देशकान्त्यसूत्रे ऋद्धिमन्तो जीवास्तिकायविशेषा उक्ताः, इह तु असंख्येयानन्तप्रदेशलक्षणऋद्धिमन्तः समस्ता अस्तिकाया उच्यन्ते—

मूलम्—पंच अस्तिकाया पणत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए १, अधम्मत्थिकाए २, आगासत्थिकाए ३, जीवत्थिकाए ४, पोग्गलत्थिकाए ५। धम्मत्थिकाए अवन्ने अगंधे अरसे अफासे

— पाँचवे स्थानके तीसरा उद्देशका प्रारंभ —

पंचम स्थानका द्वितीय उद्देशा समाप्त हुआ अब सूत्रकार इसका तृतीय उद्देशक प्रारंभ करते हैं, पूर्व उद्देशकके साथ इसका ऐसा संबंध है, कि पूर्व उद्देशकमें प्रायः जीव धर्मोंकी प्ररूपणा हुई है, और अब इस तृतीय उद्देशकमें अजीव जीव धर्मोंकी प्ररूपणा होती है, तथा द्वितीय उद्देशकके अन्तिम सूत्रके साथ इस तृतीय उद्देशकके प्रथम सूत्रका संबंध ऐसा है, कि पूर्व उद्देशकके अन्तिम सूत्रमें ऋद्धिमान् जीवास्तिकाय विशेष कहे गये हैं, परन्तु यहां असंख्यात प्रदेशरूप और अनन्तप्रदेशरूप ऋद्धिवाले समस्त अस्तिकाय कहे जा रहे हैं—

— पांचमा स्थानको त्रीने उद्देशा —

पांचमां स्थानको त्रीने उद्देशक पूरे थयो. डवे सूत्रकार त्रीने उद्देशकको प्रारंभ करे छे. आ उद्देशकको आगला उद्देशक साथे आ प्रकारको संबंध छे. आगला उद्देशकमां अवधर्मेनी प्ररूपणा करवामां आवी छे, डवे आ त्रीने उद्देशांमां अवधर्मेनी प्ररूपणा करवानी छे. त्रीने उद्देशकना छेदला सूत्र साथे आ उद्देशकना पडेला सूत्रको संबंध आ प्रकारको छे—त्रीने उद्देशकना छेदला सूत्रमां ऋद्धिसंपन्न जीवास्तिकाय विशेषणुं कथन करवामां आवी छे, परन्तु अहीं असंख्यात प्रदेश रूप अने अनंत प्रदेश रूप ऋद्धिवाला समस्त अस्तिकायनी प्ररूपणा करवामां आवे छे.

अरुची अजीवे सासए अवट्टिए लोगदद्ये । मे समासओ पंच-
विहे पणत्ते, तं जहा-द्वओ खित्तओ कालओ भावओ
गुणओ । द्वओ णं धम्मत्थिकाए एगं द्वं खेत्तओ लोग-
पमाणत्ते, कालओ ण कयाइणासी, न कयाइ न भवइ, न
कयाइ न भविस्सइत्ति भुविं य भविस्सइ य, ध्रुवे णियए
सासए अक्खए अव्वए अवट्टिए णिच्चे, भावओ अवन्ने अगंधे
अरसे अफासे गुणओ गमणगुणे च १। अधम्मत्थिकाए अवन्ने
एवं चेव, णवरं गुणओ ठाणगुणे २। आगासत्थिकाए अवन्ने
एवं चेव, खेत्तओ लोगलोगपमाणमित्ते, गुणओ अवगाहणा
गुणे, सेसं तं चेव ३। जीवत्थिकाए णं अवन्ने एवं चेव, णवरं
द्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं द्वाइं अरुची जीवे सासए,
गुणओ उव्वओगगुणे, सेसं तं चेव ४। पोग्गलत्थिकाए पंचवन्ने
पंचरसे दुगंधे अट्टफासे रूची अजीवे सासए अवट्टिए जाव
द्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अणंताइं द्वाइं, खेत्तओ लोग-
पमाणत्ते, कालओ ण कयाइ णासी जाव णिच्चे, भावओ
वन्नमंते गधमंते रसमंते फासमंते, गुणओ गहणगुणे ॥ सू०१ ॥

छाया-पञ्च अस्तिकायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-धर्मास्तिकायाः १, अधर्मास्तिकायाः २
आकाशास्तिकाया ३ जीवास्तिकायाः ४ पुद्गलास्तिकायाः ५। धर्मास्तिकायाः अवर्णः
अगन्धः अरसः-अस्पर्शः अरूपी अजीवः शाश्वतः अवस्थितो लोकरुद्रव्यम् । स
समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-द्रव्यतः कालतः भावतो गुणतः । द्रव्यतः खलु-
धर्मास्तिकाय एकं द्रव्यम्, क्षेत्रतो लोक प्रमाणमात्रः, कालतो न कदापि नासीत्,
न कदापि न भवति, न कदापि न भविष्यतीति अभूद् भवति भविष्यति च
ध्रुवो नित्यः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितो नित्यः भावतः-अवर्णः अगन्धः

अरसः अस्पर्शः, गुणतो गमनगुणश्च १। अधर्मास्तिकायः अवर्णः एवमेव, नवरं गुणतः स्थानगुणः २। आकाशास्तिकायः अवर्ण एवमेव, क्षेत्रतो लोकालोकप्रमाणमात्रः, गुणतः—अन्नमाहनागुणः, शेषं तदेव ३। जीवास्तिकायः खलु अवर्णः एवमेव नवरं द्रव्यतः खलु जीवास्तिकायः अनन्तानि द्रव्याणि अरूपी जीवः शाश्वतः, गुणत उपयोगगुणः शेष तदेव ४। पुद्गलास्तिकायः पञ्चवर्णः पञ्चरसो द्विगन्धः अष्टस्पर्श रूपी अजीवः शाश्वतः अवस्थितो यावद् द्रव्यतः खलु पुद्गलास्तिकायः अनन्तानि द्रव्याणि, क्षेत्रतो लोकप्रमाणमात्रः, कालतो न कदापि नासीत् यावद् नित्यः, भावतो वर्णवान् गन्धवान् रसवान् स्पर्शवान्, गुणतो ग्रहणगुणः ५ ॥ सू० १ ॥

टीका—‘ पंच अस्तिकाया ’ इत्यादि—

अस्तिकायाः—अस्ति शब्दः अभूवन् भवन्ति भविष्यन्ति चेति त्रिकालवाचकः, अस्ति च ते कायाः=प्रदेशानां राशयश्चेति, यद्वा—अस्तिशब्दः प्रदेशवाचकः, अस्तीनां=प्रदेशानां कायाः—राशयः । ते च पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः । पञ्चविधमद्येवाह—

‘पंच अस्तिकाया पणत्ता’ इत्यादि सूत्र १ ॥’

टीकार्थ—पांच अस्तिकाय कहे गये हैं—जैसे—धर्मास्तिकाय १ अधर्मास्तिकाय २ आकाशास्तिकाय ३ जीवास्तिकाय ४ और पुद्गलास्तिकाय ५ यहाँ जो अस्ति शब्द है, वह त्रिकालका वाचक है, अर्थात् ये धर्मास्तिकाय आदि पहिले थे वर्तमानमें हैं, और आगे भी रहेंगे । प्रदेशोंकी राशिका नाम काय है, इस तरह जो अस्तिरूप काय हैं, वे अस्तिकाय हैं । अधवा—अस्ति शब्द प्रदेशका वाचक है, इस तरह जो अस्तियोंकी प्रदेशोंकी राशियां हैं, वे अस्तिकाय हैं, ये अस्तिकाय धर्मास्तिकाय आदिके भेदसे पांच प्रकारके कहे गये हैं, इन धर्मास्तिकायादि३ की व्याख्या

“ पंच अस्तिकाया पणत्ता ” इत्यादि—

टीकार्थ—पांच अस्तिकाय कहा छे—(१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय, (३) आकाशास्तिकाय, (४) जीवास्तिकाय अने (५) पुद्गलास्तिकाय

अहीं ले अस्ति यह छे, ते त्रिकाणतुं वाचक छे अटले छे आ धर्मास्तिकाय आदि पडेला इतां, इतिमां छे अने लविष्यमां पद्यु इशे ले प्रदेशोनी राशिने ‘ काय ’ कहे छे. आ रीते ले अस्ति इय काय छे, तेमने अस्तिकाय कहे छे अथवा ‘ अति ’ शब्द प्रदेशोनी वाचक छे आ रीते ले अस्तियोनी (प्रदेशोनी) राशिओ छे, तेमने अस्तिकाय कहे छे आ अस्तिकायना धर्मास्तिकाय आदि पाच प्रकारे छे तेमनी व्याख्या प्रथम स्थानमां आपनामां आवी छे, तो त्यांधी वाची लेवी.

તથા—ધર્માસ્તિકાયઃ અધર્માસ્તિકાય ઇત્યાદિ । ધર્માસ્તિકાયાદીનાં વ્યાખ્યા પ્રથમ સ્થાનતોડ્યસેયા । ધર્માસ્તિકાયાદિક્રમેણ ચો નિર્દેશઃ કૃત્વન્તત્રાયં દેતુર્વૈધ્યઃ । ધર્મશબ્દો યોગ્જલિયઃ, અતઃ પૂર્વ ધર્માસ્તિકાયઃ પ્રોક્તઃ । તદનુ ધર્માસ્તિકાય-પ્રતિ-પક્ષત્વાત અધર્માસ્તિકાયઃ । ધર્માધર્માસ્તિકાયયોરાધારભૂતત્વાત આકાશાસ્તિકાયઃ । તત્પશ્ચાદ્ જીવાસ્તિકાયસ્વોપગ્રાહકઃ પુદ્ગલાસ્તિકાયથ પ્રોક્તઃ । મસ્પ્રતિ ધર્માસ્તિકાયાદીનાં સ્વરૂપં ક્રમેણાહ—‘ ધર્મ-સ્થિકાઈ ’ ઇત્યાદિના તત્ર ધર્માસ્તિકાયઃ—અવર્ણઃ—ત વિદ્યતે વર્ણઃ=શુક્લાદિઃ પશ્ચવિધો યસ્ય મઃ—શુક્લાદિ પશ્ચવિધવર્ણરહિતઃ, અગન્યઃ=ચુરભિદુરભિ-

પ્રથમ સ્થાનસે જાન લેના ચાહિયે । હન ધર્માસ્તિકાયાદિકોંકા જો પૂર્વોક્ત રૂપસે નિર્દેશ ક્રિયા ગયા હૈ, હસમેં એસા વિચાર હૈ, કિ ધર્માસ્તિકાયમેં જો ધર્મ શબ્દ હૈ, વહ માજ્જલિય હૈ, હસલિયે સવસે પહિલે અસ્તિકા યોંમેં ધર્માસ્તિકાયકા કથન ક્રિયા ગયા હૈ, હસ ધર્માસ્તિકાયકા પ્રતિ-પક્ષ હોનેસે હસકે વાદ અધર્માસ્તિકાયકા કથન ક્રિયા ગયા હૈ, હન ધર્માસ્તિકાય ઓર અધર્માસ્તિકાયકા આધારભૂત હોનેસે હન દોનોંકે વાદ આકાશાસ્તિકાયકા કથન ક્રિયા ગયો હૈ, હસ આકાશાસ્તિકાયકા આધેય જીવાસ્તિકાય હૈં, ઓર હસ જીવાસ્તિકાયકા ઉપગ્રાહક પુદ્ગલાસ્તિકાય હૈ, હસલિયે જીવાસ્તિકાયકે વાદ પુદ્ગલાસ્તિકાયકા કથન ક્રિયા ગયા હૈ ।

અથ સ્વકાર ધર્માસ્તિકાયાદિકોંકે સ્વરૂપ કા કથન કરતે હૈં—‘ ધર્મસ્થિકાઈ ’ ઇત્યાદિ—યહ ધર્માસ્તિકાય શુક્લાદિકે ખેદસે પાંચ પ્રકારકે વર્ણસે રહિત હૈ, સુગન્ધ ઓર દુર્ગન્ધ હન દોનોં ગન્ધસે

ધર્માસ્તિકાયમાં ‘ ધર્મ ’ શબ્દ માંગલિક હોવાથી સમસ્ત અસ્તિકાયોમાં સૌથી પહેલાં ધર્માસ્તિકાયની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે. ધર્માસ્તિકાયના પ્રતિપક્ષ રૂપ હોવાને કારણે અધર્માસ્તિકાયની પ્રરૂપણા ત્યાર બાદ કરવામાં આવી છે. ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાયના અધારભૂત આકાશાસ્તિકાય છે, તે કારણે તે બંનેની પ્રરૂપણા કર્યા બાદ આકાશાસ્તિકાયની પ્રરૂપણા કરી છે. આ આકાશાસ્તિકાયનું આધેય જીવાસ્તિકાય છે અને જીવાસ્તિકાયનું ઉપગ્રાહક પુદ્ગલાસ્તિકાય છે, તે કારણે આકાશાસ્તિકાયનું કથન કર્યા બાદ અનુક્રમે જીવાસ્તિકાય અને પુદ્ગલાસ્તિકાયનું કથન કરવામાં આવ્યું છે. હવે સૂત્રકાર ધર્માસ્તિકાય વગેરેના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે.

“ ધર્મસ્થિકાઈ ” ઇત્યાદિ—ધર્માસ્તિકાય શુક્લ અદિ પાંચ પ્રકારના વર્ણથી રહિત છે, સુગન્ધ અને દુર્ગન્ધ રૂપ બંને પ્રકારના ગન્ધથી રહિત

गन्धद्रव्यवर्जितः । अससः=मधुरादिरसपञ्चकवर्जित । अस्पर्शः=गृदुकर्कशा-
द्यष्टविध स्पर्श वर्जितः । अरूपी-रूपम् आकारः-गुणादिमत्त्वं, तदस्यास्तीति रूपी,
न रूपी-अरूपी=अमूर्तः । अजीवः-जीवः=उपयोगलक्षणं जीवद्रव्यम्, न जीवः-
अजीवः=अचेतनः । शाश्वतः-प्रतिसमय तस्य सद्भावात् । अवस्थितः-धर्मास्ति-
कायस्य यत् स्वरूपं नित्यत्वात्तेनैव स्वरूपेण स सर्वदा स्थायी । तथा-लोकद्रव्यम्-
लोकस्य अंशभूतं द्रव्यम् । लोकस्य सर्वात्मकं द्रव्य त्वयं नास्ति, पञ्चास्तिकाया-
त्मकलोकस्यैकदेशत्वात् । तदुक्तम्—

‘ पंचस्थिकायमइये लोए अणाइनिहणे । ’

रहित है, मधुरादिके भेदसे पांचों प्रकारके रससे रहित है, एवं
मृत्यु कर्करा आदि आठ प्रकारके स्पर्शसे रहित है । आकाशका नाम
रूप है, रूप यह उपलक्षण है, इससे रूप रस आदि चारों गुणोंका ग्रहण
हुआ है अतः यह अरूपी है, इसका तात्पर्य ऐसा है, कि यह रूप रस
गन्ध आदिसे रहित होनेके कारण अरूपी है, अमूर्त है । उपयोग लक्ष-
णवाला जो होता है, वह जीव है, यह धर्मास्तिकाय ऐसा नहीं है अतः
अजीव है, प्रतिसमय इसका सद्भाव रहता है, अतः शाश्वत है, धर्मा-
स्तिकायका जो अपना स्वरूप है, उस स्वरूपसे यह नित्य होनेके कारण
सर्वदा स्थायी रहता है, अतः यह अवस्थित है, तथा यह लोकका अंश-
भूत द्रव्य है, इसलिये यह लोकद्रव्य है, यह लोक पंचास्तिकाय रूप है,
केवल धर्मद्रव्यरूप नहीं है, अतः यह लोकका सर्वात्मक द्रव्य नहीं
है, किन्तु उसका एक अंशभूत द्रव्य है । कहा भी है—

छे, मधुरादि पांचे प्रकारना रसथी रहित छे अने मृदु, कर्करा आदि आठे
प्रकारना स्पर्शथी रहित छे. आकाशतुं नाम रूप छे रूप ते उपलक्षणु छे,
तेना द्वारा रूप, रस, आदि चारे गुणोतुं ग्रहणु थयुं छे. तेथी ते अरूपी
छे आ कथनतुं तात्पर्यं ओ छे के धर्मास्तिकाय रूप, रस, गंध अने स्पर्शवी
रहित होवाने लीधे अरूपी छे-अमूर्त छे अनी नेम ते उपयोग लक्षणवाणुं
नथी, ते कारणे ते अजीव छे. प्रतिसमय तेना सद्भाव रहे छे, तेथी तेने
शाश्वत कहुं छे तेनु पोतातुं ने स्वरूप छे ते स्वरूपे ते नित्य होवाने
लीधे स्थायी रहे छे, तेथी तेने अवस्थित कहुं छे. धर्मास्तिकाय आ लोकना
अंशभूत द्रव्य होवाथी तेने लोकद्रव्य कहुं छे आ लोक पंचास्तिकाय रूप
छे, परन्तु मात्र धर्मद्रव्य रूप नथी, तेरी तेने लोकना सर्वात्मक द्रव्यरूप कहुं
शक्य नहि, परु तेना ओके अंशभूत द्रव्य रूप न कहुं शक्य छे.

छाया-पञ्चास्तिकायमयो लोकः अनादिनिधनः-इति ।

तदेव विशदयति- ' से समासओ ' इत्यादि । स धर्मास्तिकायो द्रव्यादिभेदेन संक्षेपतः पञ्चविधो बोध्यः । तत्र द्रव्यतः=द्रव्यत्वमाश्रित्य धर्मास्तिकायः एकं द्रव्यम्-तथाविधैरुपरिणामस्य सत्त्वेनैकत्वसंख्याया एवेह सद्भावात् । क्षेत्रतः= क्षेत्रमाश्रित्य लोकरुप्रमाणमात्रः-लोकस्य प्रमाणं-लोकप्रमाणम्=असंख्येयाः प्रदेशाः, तत्प्रमाणमस्येति । कालतः=कालमाश्रित्य अयं धर्मास्तिकायः त्रैकालिकः, त्रैकालिकत्वमेव विशदयति-न कदापि नासीत् अर्थात्-अस्य धर्मास्तिकायस्य भूतकालिकी सत्ता सर्वदा आसीदेव । तथा-अयं न कदापि न भवति-अस्य वर्तमानकालिकी सत्ता सर्वदा तिष्ठन्त्येव । तथा च-अयं न कदापि न भविष्यति-अस्य

“पञ्चस्तिकायमइये” इत्यादि । यह लोक पञ्चारितिकाय मय हैं, और अनादि अनन्त है, इसी विषयको अब सूत्रकार विशद रूपसे प्रकट करते हैं-“ से समासओ ” इत्यादि-यह धर्मास्तिकाय द्रव्यादिके भेदसे संक्षेपतः पांच प्रकारका कहा गया है-जैसे-द्रव्यकी अपेक्षा धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है, क्योंकि तथाविध एक परिणामके सत्त्वसे एकत्व संख्याकाही इसमें सद्भाव पाया जाता है । क्षेत्रकी अपेक्षा यह धर्मास्तिकाय लोकप्रमाण मात्र है, अर्थात् लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं, असंख्यात प्रदेश हैं-उतनेही प्रमाणवाला यह धर्मास्तिकाय है, क्योंकि तिलमें तैलकी तरह यह पूरे लोकाकाशमें व्यापक है, कालकी अपेक्षा यह धर्मास्तिकाय त्रैकालिक है, ऐसा भूतकालका कोई समय नहीं था कि जिसमें यह न रहा हो वर्तमानकाल भी ऐसा नहीं है, कि

कथुं पणुं छे के “पञ्चस्तिकायमइये” इत्यादि--

आ लोक पञ्चास्तिकायमय छे, अने अनादि अनन्त छे, ओ न विषयतुं उये सूत्रकार विस्तृत रूपे निरूपणुं करे छे

“से समासओ” इत्यादि-ते धर्मास्तिकायना द्रव्यादिना लेश्चै पांच प्रकार पडे छे-द्रव्यनी अपेक्षाओ धर्मास्तिकाय ओक द्रव्य छे, कारणुं के तथाविध (ते प्रकारना ओक परिणामना सत्त्व (सद्भाव) थी ओकत्व संख्याना न तेमां सद्भाव संख्यी शके छे, क्षेत्रनी अपेक्षाओ आ धर्मास्तिकाय लोकप्रमाण मात्र छे, ओटके के लोकाकाशना ओटला प्रदेश छे (लोकाकाशना असंख्यात प्रदेश छे) ओटला न प्रमाणवाणुं आ धर्मास्तिकाय छे, नेम तलमां तैल रडेसु डाय छे ओ न प्रमाणुं ते पूरेपूरा लोकाकाशमां व्यापक छे, कणनी अपेक्षाओ त्रैकालिकतामां तेना सद्भाव कथी छे, भूतकालना कौण पणुं समय ओवे न डते के न्यारे तेनुं अस्तित्व न डेय, वर्तमानकाले पणुं तेनुं अस्तित्व न डाय

भविष्यत्कालिकी सत्तापि सर्वदा रथास्यत्येव । इति हेतोरयम् अभून् भवति भविष्यति । इत्थं चायं धर्मास्तिकायस्रैकालिको बोध्यः । त्रैकालिकत्वादेव अयं धर्मारितिकायो ध्रुवः । ध्रौव्यं च एकसृष्ट्यापेक्षयाऽपि संभाव्यतेऽत आह-नियतः=सर्वदा एकरूपेण स्थित इति । नियतत्वमनेकसृष्ट्यपेक्षयाऽपि संभाव्यमत आह-शाश्वत इति, शाश्वतत्वं तु प्रलयाभावात् । एवम् अक्षयः सर्वदा सद्भावित्वात् । तथा-अव्ययः=अविनाशी-केपांचित् पर्यायानामपागमेऽप्यनन्तपर्यायत्वात् । अवस्थितः-अक्षयत्वेनाव्ययत्वेन च सर्वदा स्थितिशीलः । अनेन प्रकारेणागमोघतो नित्यः ।

अथवा यतोऽयं धर्मारितिकायस्रैकालिकः, अतएवासी ध्रुव । नियतः=एकरूप । शाश्वतः=प्रतिक्षणं विद्यमानः । अतएव-अक्षयः=क्षयश्रजितः-

जिसमें यह नहीं रहा है, और भविष्यत् काल भी ऐसा नहीं होगा कि जिसमें इसका सद्भाव नहीं रहेगा अर्थात् भूतकालमें वर्तमानकालमें और भविष्यत् कालमें सर्वदा यह रहा है, रहता है और रहेगा त्रैकालिक होनेसेही यह धर्मास्तिकाय ध्रुव है, ध्रुवना एक सृष्टिकी अपेक्षासे भी संभवित होती है, अतः इसके लिये कहा गया है, "नियतः" यह धर्मास्तिकाय सर्वदा एकरूपसे स्थित रहता है, नियतता अनेक सृष्टिकी अपेक्षासे भी संभवित हो सकती है, अतः इसके लिये कहा गया है- "शाश्वत" यह शाश्वत है, क्योंकि इसमें क्षयका अभाव है, इसी तरहसे यह अक्षय है, क्योंकि इसका सर्वदा सद्भाव रहता है, तथा यह धर्मास्तिकाय अव्यय है, अविनाशी है, क्योंकि कितनेक पर्यायोंके अपगम हो जाने पर भी यह अनन्तपर्यायवाला होनेसे कभी भी विनष्ट

येषु नथी अने लविष्यकाणमां पणु केअ समय जेवो नडी डोय डे न्यारे तेनुं अस्तित्व नडी डोय. जेटवे डे भूत, वर्तमान अने लविष्यकाणमां ते अनुक्रमे डतुं, छे अने रडेवानु न छे.

आ रीते त्रणे काणमा तेनु अस्तित्व डोय छे, ते डारणे तेने बुव कहु छे ध्रुवता जेअ सृष्टिनी अपेक्षाजे पणु स लवित डोय छे, तेथी तेने 'नियत' विशेषणु लगाडयु छे आ धर्मास्तिकाय सदा जेअ न इजे स्थित छे. नियतता अनेक सृष्टिनी अपेक्षाजे पणु स लवी शडे छे, तेथी तेने शाश्वत विशेषणु लगाडयु छे तेने क्षय थतो नथी तेथी तेने अक्षय कहु छे. अथवा तेने कायग सहलाव रडे छे तेथी तेने अक्षय कहु छे आ धर्मास्तिकाय अव्यय (अविनाशी) छे, डारणु डे डेटलाड पर्यायानु गमन थड नवा छता पणु ते अनन्त पर्यायवाणु डोवाथी कही पणु विनष्ट थनु नथी. तथा आ

અવયવિદ્રવ્યાપેક્ષયા, અક્ષત इतिच्छायापक्षेतु अक्षतः=परिपूर्णः । तथा-अव्ययः-
अवयवापेक्षया । तथा-अवस्थितः-निश्चलत्वात् । यतोऽयं ध्रुवत्वादिविशिष्टोऽत
एव नित्य इति । तथा-भावतोऽयं धर्मास्तिकायो वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जितः ।
तथा-गुणतः=कार्यतश्चायं गमनगुणः-गमनं=गतिः गुणः=गतिपरिणामपरि-
णतानां जीवपुद्गलानां सहकारिकारणत्वात् कार्यं मत्स्यानां जलस्येय यस्यासौ,
यद्वा-गतौ=गमने गुण उपकारो यस्मात् सः-गमनोपकारक इत्यर्थः । इति प्रथ-

नहीं होता है, तथा यह धर्मास्तिकाय अक्षय एवं अव्यय होनेसे सर्वदा
स्थितिशील है, इसलिये यह अवस्थित है, इसी प्रकारसे यह सामान्य
रूपसे नित्य है, अथवा-जिस कारण यह धर्मास्तिकाय त्रैकालिक है,
इसी कारणसे यह ध्रुव है, नियत एक रूप है, शाश्वत है-प्रतिक्षण
विव्यमान है, और इसीसे यह अक्षय है, अव्ययवि द्रव्यकी अपेक्षा क्षय-
रहित है, अथवा अक्षत है-परिपूर्ण है, तथा-अवयवकी अपेक्षा अव्यय
है, निश्चल होनेसे अवस्थित है, जिस कारण यह ध्रुवत्व आदि विशेष-
णोंवाला है, इसीलिये यह नित्य है, तथा भावकी अपेक्षासे-यह धर्मा-
स्तिकाय वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शसे रहित है, तथा कार्यकी अपेक्षासे
यह गमन है गुण जिसका ऐसा है, अर्थात् जिस प्रकार मत्स्योंके चल-
नेमें सहायक जल होता है, उसी प्रकार गति क्रिया परिणत जीव और
पुद्गलोंको गमन करनेमें यह सहायक होता है, अतः गमन है, गुण-
कार्य जिसका ऐसा हसे कहा गया है, अथवा गमनमं है उपकार जिससे

ધર્માસ્તિકાય અક્ષય અને અવ્યય હોવાથી સર્વદા સ્થિતિશીલ હોવાને કારણે
તેને અવસ્થિત કહ્યું છે આ પ્રકારે તે સામાન્ય રૂપે નિત્ય છે અથવા જે
કારણે આ ધર્માસ્તિકાય ત્રૈકાલિક છે, એ જ કારણે તે ધ્રુવ છે, નિયત (એક
રૂપ) છે, શાશ્વત (પ્રતિક્ષણ વિદ્યમાન) છે, અને તેથી જ તે અક્ષય છે,
અવયવિ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તે ક્ષયરહિત છે અથવા અક્ષત (પરિપૂર્ણ) છે,
તથા અવયવની અપેક્ષાએ અવ્યય છે, નિશ્ચલ હોવાને કારણે તે અવસ્થિત
છે. તે કારણે તે ધ્રુવત્વ આદિ વિશેષણોવાળું છે, તે કારણે જ તે નિત્ય છે.
ભાવની અપેક્ષાએ આ ધર્માસ્તિકાય વર્ણ, રસ, ગન્ધ અને સ્પર્શથી રહિત છે

હવે આ ધર્માસ્તિકાયના કાર્યનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે—જેવી રીતે
પાણીમાં ગતિ કરતે સહાયતાને પાણીમાં ગતિ કરવામાં જળ સહાયક બને
છે, એ જ રીતે ગતિક્રિયા પરિણત જીવ અને પુદ્ગલોને ગમન કરવામાં આ
ધર્માસ્તિકાય સહાયક બને છે. તેથી તેને ગમનરૂપ ગુણકાર્યવાળું કહ્યું છે
અથવા ગમનમા જેના દ્વારા ઉપકાર (સહાયતા) થાય છે તેને ગતિગુણ કહે

मोऽस्तिकायः । तथा—अधर्मास्तिकायोऽपि धर्मास्तिकायवदेव अवर्णादि स्वरूपो बोध्यः । द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्याऽप्ययं धर्मास्तिकायवदेव । विशेषस्त्वयम्—यद्यं गुणतः स्थानगुणः—स्थानं=स्थितिः गुणः=कार्यं यद्य सः, अयदि स्थिति परिणतानां जीवपुद्गलानामपेक्षाकारणातया स्थितिरूपं कार्यं दरोति । यद्वा—स्थाने=स्थितौ गुणः=उपकारो यस्मात् सः, जीवपुद्गलानां स्थितावुपकारक इत्यर्थः । इति द्वितीयोऽस्तिकायः । तथा—आकाशास्तिकायोऽपि धर्मास्तिकायवदेव अवर्णादिस्वरूपः । तथा—द्रव्यकालभावानाश्रित्यापि पूर्ववदेव । तथा—क्षेत्रमाश्रित्य

वह गतिगुण है, जीव और पुद्गलोंके अपनी २ गतिमें गमन करनेमें यह उपकारक होता है । इस प्रकारका यह प्रथम अस्तिकाय है । तथा अधर्मास्तिकाय भी धर्मास्तिकायकी तरहही अवर्णादि स्वरूपवाला है, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा लेकर यह धर्मास्तिकायकी तरहही है, विशेषता केवल इतनीसी है, कि यह गुणकी कार्यकी अपेक्षा स्थिति है गुणकार्य जिसका ऐसा है, यह अस्तिकाय स्थितिमें ठहरनेमें परिणत हुए जीव और पुद्गलोंको अपेक्षा कारणरूप होनेसे स्थितिरूप कार्य करता है, जिस प्रकार ठहरनेमें मुसाफिरोको छाया मदद करती है, उसी प्रकारसे यह भी ठहरनेमें उन्हें उदासीन रूपसे कारण होता है अथवा जीव और पुद्गलोंको अपनी स्थितिमें जिससे उपकार होता है, वह स्थिति-गुण है, तात्पर्य इसका यही है, कि जीव और पुद्गलोंको ठहरनेमें उपकार होता है इस प्रकारका यह द्वितीय अस्तिकाय है, तथा—आकाशास्तिकाय भी धर्मास्तिकायकी तरहही अवकाशदानअवर्णादि स्वरूपवाला है, एवं

छे. ७५ अने पुद्गलेने पोतपोतानी गति करवामां ते महद इप अने छे. आ प्रकारतुं धर्मास्तिकाय नामना अस्तिकायना पहेला लेहनुं स्वइप छे.

अधमर्मास्तिकाय पणु धर्मास्तिकायनी जेम अवर्णादि स्वइपवाणुं छे. द्रव्य, काण, क्षेत्र अने लावनी अपेक्षाजे ते धर्मास्तिकायना जेवुं ज छे, पणु मात्र गुणुनी (कार्यनी) अपेक्षाजे तेमां तक्षवत छे धर्मास्तिकाय पुद्गलेने गतिकार्यमां महद इप अने छे, तयारे अधर्मास्तिकाय तेमने स्थितिकार्यमां महद इप अने छे अटले के गतिपरिणत जेवो अने पुद्गलेने थोखवामां महदइप थाय छे जेम वृक्षनी छाया मुसाक्षेने थोखवामां महदइप अने छे, तेम धर्मास्तिकाय जेवो अने पुद्गलेनी गति अटकावीने तेमने थोखवामा सहायबूत अने छे आ रीते गतिने णदले स्थितिमा उपकारक बनवानुं कार्य तेना द्वारा थाय छे आ अस्तिकायना पीत लेहनु स्वइप छे

લોકાલોકપ્રમાણમાત્રઃ=લોકાલોકપ્રયોગ્યત્ અનન્તપ્રદેશાત્મકં પ્રમાણં, તત્પ્રમાણં
 यस્ય સઃ । લોકાલોકપ્રમાણમિદમ્ યદનન્તપ્રદેશાત્મકં પ્રમાણં, તત્પ્રમાણ આકાશા
 સ્તિકાયાઃ ક્ષેત્રતો વોદ્યઃ । તથા-ગુણતઃ=ગુણમાશ્રિન્ય અવગાહનાગુણ-અવગા-
 હના=ત્રીશાસ્ત્રીનામાશ્રયો ગુણઃ=કાર્યં यस્ય સ તથા । જીવાદ્યાશ્રયપદાનરૂપકાર્ય-
 યુક્ત ઇત્યર્થઃ । અથવા-અવગાહનાયામ્ ગુણ ઉપકારો યસ્માત્ સઃ-અવગાહના-
 વિપયતોપકારાહેતુક ઇત્યર્થઃ । ઇતિ તૃતીયોઽસ્તિકાયાઃ । તથા-ત્રીશાસ્ત્રિકાયાઃપિ
 પૂર્વવદેવ અવર્ણાદિ સ્વરૂપઃ । વિશેષસ્ત્યય યદયં દ્રવ્યતઃ-અનન્તાનિ દ્રવ્યાણિ=
 અનન્તદ્રવ્યસ્વરૂપઃ । પ્રત્યેકજીવસ્ય દ્રવ્યત્વાત્ જીવાનાં ચાનન્તત્વાત્ જીવાસ્તિ-
 કાયસ્ય અનન્તદ્રવ્યાત્મકત્વં વોદ્યમ્ । તથાયં જીવાસ્તિકાયાઃ-અરૂપી=અમૂર્તઃ,

દ્રવ્ય કોલ ઓર આવકી અપેક્ષાસે શી હમ સબ્ધન્ધસે કથન પૂર્વકે જૈસા હી
 હૈ, ક્ષેત્રકી અપેક્ષા યહ લોકાલોક પ્રમાણ માત્ર હૈ, અર્થાત્ આકાશકે
 પ્રદેશ અનન્ત હૈ, કયોંકિ લોક ઓર અલોકમેં સામાન્ય સ્વપ્સે આકાશ
 રહતા હૈ, અતઃ હમ અપેક્ષા આકાશાસ્તિકાયાકે ઇતને પ્રદેશ કહે ગયે
 હૈ. ઇતલિયે લોકાલોક સબ્ધન્ધી જો અનન્ત પ્રદેશ પ્રમાણતા હૈ, વહી
 પ્રદેશ પ્રમાણતા ક્ષેત્રકી અપેક્ષાસે આકાશાસ્તિકાયામેં કહી ગઈ હૈ, એસા
 સમસ્યના ચાહિયે તથા ગુણકાર્યકી અપેક્ષા યહ આકાશાસ્તિકાયા અવ-
 ગાહના ગુણવાલા હૈ, અર્થાત્ જીવાદિકોંકો અપદમેં આશ્રય દેના યહી
 હમકા કાર્ય હૈ, અથવા-અવગાહનામેં હૈ, ગુણ ઉપકાર-જિસસે વહ અ-
 વગાહના ગુણહૈ, હમ તરહ અવગાહના વિવિધક ઉપકારમેં યહ હેતુવાલાહૈ,
 જીવાસ્તિકાયા શી પૂર્વકી તરહહી અવર્ણાદિવાલાહૈ, ઇસમેં જો વિશે-
 પતા હૈ, વહ ઇસ પ્રકારસે હૈ, યહ દ્રવ્યકી અપેક્ષા અનન્ત દ્રવ્ય સ્વરૂપ

હવે આકાશાસ્તિકાયાના સ્વરૂપતું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે. તે પણ
 ધર્માસ્તિકાયા તથા અધર્માસ્તિકાયાની જેમ વર્ણુ, ગન્ધ, રસ અને સ્પર્શથી
 રહિત છે. દ્રવ્ય, કાળ અને ભાવની અપેક્ષાએ તે લોકાલોક પ્રમાણ માત્ર જ
 છે, એટલે કે આકાશના પ્રદેશ અનન્ત છે, કારણ કે લોક તથા અલોકમાં
 સામાન્યતઃ આકાશ રહે છે. તેથી તે દષ્ટિએ વિચાર કરતાં આકાશાસ્તિકાયાના
 એટલા પ્રદેશ કહ્યા છે. તેથી લોકાલોક સંબંધી જે અનન્ત પ્રદેશપ્રમાણતા
 છે, એ જ પ્રદેશપ્રમાણતા ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ આકાશાસ્તિકાયામાં કહી છે, એમ
 મમજ્જુ. ગુણકાર્ય (ઉપયોગીતા) ની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો
 તે અવગાહના ગુણવાળું છે એટલે કે છવાદિકેને આશ્રય દેવાનું જ તેનું
 કાર્ય છે. આ રીતે અવગાહના વિવિધક ઉપકાર કરનાર હોવાથી તેને અવ-
 ગાહના ગુણવાળું કહ્યું છે.

जीवः=चेतनावान् शाश्वतः=अविनाशी च बोध्यः । गुणतस्त्वयम्-उपयोगगुणः-
 उपयोजनमुपयोगः, उपभुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यते जीवोऽनेनेति वा
 उपयोगः-बोधरूपो जीवस्य तत्त्वभूतो व्यापारः । स च साकारानाकारभेदाद्
 द्विविधः । यदा सचेतनेऽचेतने वा वस्तुनि उपयुञ्जान आत्मा सपर्यायमेव वस्तु
 परिच्छिनत्ति तदा स उपयोगः साकार इत्युच्यते । स च छद्मस्थानामन्तर्मुहूर्त

है, क्योंकि प्रत्येक जीव स्वतंत्र द्रव्य है, और जीव हैं अनन्त इसलिये
 यह जीवास्तिकाय द्रव्यकी अपेक्षा अनन्त कहा गया है, तथा यह जी-
 वास्तिकाय अरूपी अमूर्त है, चेतनावाला होनेसे यह जीवरूप है, और
 शाश्वत अविनाशी है । गुणकी अपेक्षा यह उपयोगगुणवाला है क्योंकि
 पदार्थोंको जाननेकी तरफ यह उन्मुख होता है, पदार्थोंको जाननेकी
 तरफ उन्मुख होना इसीका नाम उपयोग है, इसीलिये-“ इन्द्रियप्रणा-
 लिकया शब्दादीनामुपलब्धिरूपयोगः ” ऐसा उपयोगका लक्षण क्रिया
 गया है, अथवा-वस्तु परिच्छेद करनेके प्रति जीव जिसके द्वारा व्या-
 पारयुक्त क्रिया जाता है, वह उपयोग है, यह उपयोग जीवका तत्त्वभूत
 एक व्यापाररूप होता है । यह साकार उपयोग और अनाकार उपयो-
 गके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है, जिस समय पर्याय सहित सचेतन
 अथवा अचेतन वस्तुको जाननेके लिये आत्माका बोधरूप व्यापार होता
 है, वह साकार उपयोग है, यह साकार उपयोग छद्मस्थ जीवोंको अन्त-

लुवास्तिकाय पणु अवर्णाद्विवाणुं छे तेमां अट्टली न विशेषता छे डे
 द्रव्यनी अपेक्षाअने ते अनंत द्रव्यस्वरूप छे, कारण डे प्रत्ये; एव स्वतंत्र
 द्रव्य छे, अने एव अनंत छे, तेथी लुवास्तिकायने द्रव्यनी अपेक्षाअने अनंत
 कहुं छे तथा ते लुवास्तिकाय अरूपी अमूर्त छे, चेतनावाणुं होवाथी ते
 एव रूप छे अने शाश्वत अविनाशी छे गुणनी अपेक्षाअने ते उपयोग गुण-
 वाणुं छे, कारण डे ते पदार्थोंने लक्षणाणी वृत्तिवाणुं छे “ पदार्थानां विषयमां
 लक्षुवाने तत्पर थनुं तेनु नाम न उपयोग छे तेथी न “ इन्द्रिय प्रणालिकया
 शब्दादीनामुपलब्धिरूपयोग ” आ प्रकारनुं उपयोगनुं लक्षण कहुं छे अथवा
 वस्तु परिच्छेद (वस्तु विषयक बोध) ने माटे एव जेना द्वारा व्यापारयुक्त
 कराय छे ते उपयोग छे अ उपयोग एवना तत्त्वभूत अेक व्यापार रूप
 होय छे ते उपयोगन जे प्रकार छे—(१) साकार उपयोग अने (२) अना-
 कार उपयोग पर्याय सहित सचेतन अथवा अचेतन वस्तुने लक्षुवाने माटे
 आत्मानो बोधरूप न व्यापार आवे छे तेनु नाम साकार उपयोग छे आ

कालं तिष्ठति, केवलानां तु एकं समयम् । यदा च वस्तुनः सामान्यतया परि-
च्छेदस्तदाऽनाकार उपयोगो भवति । अयमपि छद्मस्थानामन्तर्मुहूर्तं तिष्ठति,
केवलानां तु एकं समयम् । अत्रेदं बोध्यम्—छद्मस्थानां साकारोपयोगकालोऽना-
कारोपयोगकालादमख्येयगुणः पर्यायपरिच्छेदकतया चिरकालगलनाच्छद्मस्थानां
तथा स्वाभाव्यात् । उपयोगो गुणो धर्मोऽस्य स तथा, साकारानाकाररूपचैतन्य-
धर्मयुक्त इत्यर्थः । इतिचतुर्योऽस्तिकायः । तथा—पुद्गलास्तिकायः पञ्चवर्णः=शुक्ला-
दिपञ्चवर्णयुक्तः, पञ्चरसः=मधुरादि पञ्चरससंपन्नः, द्विगन्धः—सुरभिदुरभिगन्धद्वय-
युक्तः, अष्टस्पर्श =मृदु कर्कशाद्यष्टविधस्पर्शसंनिहितः, रूपी=मूर्त्तः, अजीवः=अचेतनः ।
तथा—शाश्वतः अस्थितो लोकद्रव्यं च । स पुनर्द्रव्यादिभेदैः पञ्चविधः । तत्र

मुहूर्त तक रहता है, और केवलियोंको एक समय तक रहता है, यहाँ
ऐसा समझना चाहिये—छद्मस्थोंके साकारोपयोगको काल अनाकारोप-
योगके कालसे असंख्यात गुण है, क्योंकि पर्यायोंको जाननेके रूपमें
इसका चिरकाल गल जाता है, क्योंकि छद्मस्थोंका ऐसाही स्वभाव
होना है, उपयोग है, गुणधर्म जिसका ऐसा यह जीव है, अर्थात् यह
जीव साकार अनाकाररूप चैतन्य धर्मसे युक्त है तथा—पुद्गलास्तिकाय
शुक्लादि पांच वर्णोंवाला है, मधुरादि पांच रसोंवाला है, सुरभि दु-
रभिरूप दोनों गन्धवाला है, और मृदु कर्कश आदि आठ प्रकारके स्पर्श-
वाला है, रूपी है, मूर्त्त है, अजीव अचेतन है, तथा शाश्वत अवस्थित
है, और लोकद्रव्य है, लोक भरमें यह व्यापक है, यह पुद्गलास्तिकाय
द्रव्यादिके भेदसे पांच प्रकारका है, द्रव्यकी अपेक्षा यह पुद्गलास्ति-
काय अनन्त द्रव्यात्मक है क्षेत्र की अपेक्षा यह लोकप्रमाण है,

साकार उपयोगने सदभाव छद्मस्थ ज्ञेयोंमें एक अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त रहे छे
अने देवलीओंमें एक समय पर्यन्त रहे छे अर्द्धी जेवु समयतुं जेधजे
के छद्मस्थानो साकारोपयोगने काण अनाकारोपयोगना काण करतां असंख्यात
गणो छे, कारण के पर्यायने ज्ञेयोंमें तेने चिरकाण व्यतीत थर्ध नय छे,
कारण के छद्मस्थानो जेवो न स्वभाव डोय छे आ जेव उपयोगइय गुण-
धर्मवाणो छे, जेटले के आ जेव साकार अनाकार इय चैतन्यधर्मथी युक्त छे.

पुद्गलास्तिकायतुं स्वइय आ प्रकारतुं छे—पुद्गलास्तिकाय शुक्ल आदि
पांच वर्णोंथी, मधुर आदि पांच रसोंथी, सुरभि अने दुरभि इय जे गन्धोंथी
अने मृदु, कर्कश आदि आठ प्रकारना स्पर्शथी युक्त डोय छे. ते रूपी—मूर्त्त
छे, अजिव—अचेतन छे, शाश्वत अवस्थित छे अने लोकद्रव्य छे. जेटले के
समस्त लोकमें व्यापक छे. द्रव्यादिना भेदथी ते पुद्गलास्तिकायना पांच भेद

द्रव्यतः पुद्गलास्तिकायोऽनन्त द्रव्यात्मकः । क्षेत्रतो लोकप्रमाणः । कालतश्च त्रैकालिकत्वमेवाह—' न कदापि विनासी ' इत्यादिना । भावतश्चायं वर्णगन्धरसरपर्शवान् । गुणतश्चायं ग्रहणगुणः—ग्रहणम्=भौदारिकशरीरादितया ग्राह्यत्वम्, इन्द्रियग्राह्यत्वं वा, अथवा—वर्णादिमत्त्वात् परस्परसम्बन्धो ग्रहणम्, तद्गुणो धर्मोऽस्य स तथा । इति पञ्चमोऽस्तिकायः ॥ सू० १ ॥

पञ्चास्तिकायाः प्रोक्ताः । सम्प्रति तद्वत् जीवास्तिकायसम्बन्धीनि वस्तूनि प्राह—अध्ययनसमार्तिं यावत् । तत्र प्रथमं गतिभेदानाह—

मूलम्—पञ्च गईओ पणत्ताओ, तं जहा—निरयगई १, तिरियगई २, मणुयगई ३, देवगई ४, सिद्धिगई ५ ॥ सू० २ ॥

छाया—पञ्च गतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—निरयगतिः १, तिर्यग्गतिः २, मनुष्यगतिः ३, देवगतिः ४, सिद्धिगतिः ५ ॥ सू० २ ॥

कालकी अपेक्षा यह त्रैकालिक है, इसी बातकी पुष्टिके लिये सूत्रकारने "न कदापि नासीत्" इत्यादि सूत्र कहा है, भावकी अपेक्षा यह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शवाला है, गुणकी अपेक्षा यह ग्रहण है, औदारिक शरीरादिरूप ग्राह्यता अथवा इन्द्रियों द्वारा ग्राह्यता अथवा—वर्णादिमत्त्व होनेसे परस्पर सम्बन्ध रूपता है, गुणधर्म जिसका ऐसा ग्रहण गुणवाला है । अर्थात् षडण षडन धर्मवाला है । इस प्रकारसे यह पंचम अस्तिकाय है ॥ सू० १ ॥

इस प्रकार पांच अस्तिकाय कहे अब सूत्रकार तद्गत जीवास्ति-

कक्षा छे द्रव्यनी अपेक्षाओ पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्यात्मक छे, क्षेत्रनी अपेक्षाओ ते लोकप्रमाण छे, कालनी अपेक्षाओ ते त्रैकालिक छे ओटले ७ सूत्रकारे "न कदापि नासीत्" आ सूत्रपाठ द्वारा तेनुं प्रष्टे कालमां अस्तित्व छेवानुं प्रतिपादन कथुं छे. भावनी अपेक्षाओ ते वर्ण, गन्ध, रस अने स्पर्शशी युक्त छे, अने गुणनी अपेक्षाओ ते ग्रहण गुणवाणुं छे, ओटले के औदारिक शरीरादि रूप ग्राह्यता अथवा इन्द्रियो द्वारा ग्राह्यता अथवा वर्णादिपी युक्त छेवाने कारणे परस्पर संबंध रूपना ७ अने गुणधर्म छे ओवुं ग्रहण गुणवाणुं ते छे ओटले के ते सडपुं, षडपुं वगेरे धर्मवाणुं छे. आ प्रकारनुं पुद्गलास्तिकायनुं स्वरूप कथुं छे ॥ सू० १ ॥

आ प्रकारे पांच अस्तिकायेनुं निरूपण करवामां आणुं. उवे सूत्रकार

ક્ષેત્રરૂપાગતિઃ ૨, તિર્યક્ત્વપ્રાપિક્ષા વા ગતિઃ ૩। ૨। एवं देवगति ३ मनुष्यगति
रपि ४ भावनीया । ४। सिद्धिगतिः—सिद्धौ गतिः १, मिद्धिश्चासौ गतिश्चेति वा,
इह नामप्रकृतिर्नास्तीति ५ ॥ सू० २ ॥

अनन्तरसूत्रे सिद्धिगतिः प्रोक्ता । सा च इन्द्रियार्थान् कषायादींश्च निमि-
त्तीकृत्य मुण्डितत्त्वे सति भवतीतीन्द्रियार्थान् इन्द्रियकषायादिमुण्डांश्च प्राह—

मूलम्—पंच इंद्रियतथा पण्यत्ता, तं जहा—सोइंद्रियतथे जाव
फासिंद्रियतथे । पंच मुंडा पण्यत्ता, तं जहा—सोइंद्रियमुंडे जाव
फासिंद्रियमुंडे । अहवा पंच मुंडा पण्यत्ता, तं जहा—कोहमुंडे
१ माणमुंडे २ मायामुंडे ३ लोहमुंडे ४ तिरमुंडे ५ ॥ सू० ३ ॥

छाया—पञ्च इन्द्रियार्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियार्थो यावत् स्पर्शेन्द्रि-
यार्थः । पञ्च मुण्डाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियमुण्डो यावत् स्पर्शेन्द्रियमुण्डः ।
अथवा—मुण्डाः पञ्च प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—क्रोधमुण्डो १ मानमुण्डो २ मायामुण्डो ३
लोभमुण्ड ४ शिरोमुण्डः ५ ॥ सू० ३ ॥

अथवा इस क्षेत्र विशेषरूप निरयके प्राप्त करानेवाली जो गति है, वह
निरयगति है, तिर्यञ्चोंमें जो गति-गमन किया जाता है, वह तिर्यञ्च गति है,
अथवा तिर्यक् क्षेत्र रूपवाली जो गति है, वह तिर्यञ्च गति है । इसी
तरहका कथन देवगति और मनुष्यगतिके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये
सिद्धिमें जो जाता है, वह सिद्धिगति है, अथवा सिद्धिरूप जो गति है,
वह सिद्धिगति है, यहां नामकर्मकी प्रकृति नहीं है ॥ सू० २ ॥

इस अनन्तर सूत्रमें जो सिद्धिगति कही गई है, वह इन्द्रियार्थ और
कषायोंको निमित्त करके मुण्डित होने पर होती है, अतः अब सूत्रकार

छे. अथवा ते क्षेत्रविशेष रूप निरयने प्राप्त करावनारी जे गति छे तेनु नाम
निरयगति छे. तिर्य'योमा जे गमन थाय छे तेनु' नाम तिर्य'यगति छे.
अथवा तिर्य'क्षेत्र रूप जे गति छे तेने तिर्य'यगति छे छे. अथवा तिर्य'य
दशाने प्राप्त करावनारी जे गति छे तेने तिर्य'यगति छे छे. ओ ७ प्रकारनु
कथन मनु'यगति अने देवगति विषे पशु सम'रुप' सिद्धिमा जे नय छे
तेनु नाम सिद्धिगति छे. अथवा सिद्धिरूप जे गति छे तेनु' नाम सिद्धिगति
छे अर्दी नामकर्मनी प्रकृतिने सदृशाव डोने नथी ॥ सू २ ॥

आगला सूत्रमा सिद्धिगतिने उद्देश्य थयो छे इन्द्रियार्थो अने कषा-
योना त्यागपूर्वक मुंडित थउने अभ्युपर्याय अंगीकार करवाधी तेनी प्रप्ति

ટીકા—‘ પંચ ઇન્દિયત્યા ’ ઇત્યાદિ—

ઇન્દ્રિયાર્થઃ—ઇન્દ્રનાત્=સર્વવિષયોપલવિધભોગલક્ષણપરમૈશ્વર્યસદ્ભાવાત્-ઇન્દ્રો-
જીવઃ, તસ્ય લિંગ્ગ, તેન વા દૃષ્ટં સૃષ્ટં જુષ્ટં દત્તં દુર્જયં વા ઇન્દ્રિયં શ્રોત્રાદિકમ્, તથ્ચ
નામસ્થાપનાદ્રવ્યભાવભેદાચ્ચતુર્વિધમ્ । તત્ર નામસ્થાપને સુગમે । દ્રવ્યેન્દ્રિયં તુ નિર્વૃ-
ત્યુપકરણભેદાદ દ્વિવિધમ્ । તત્ર નિર્વૃત્તિઃ=આકારઃ । સા ચ વાણાભ્યન્તરભેદાદ્

ઇન્દ્રિયાર્થો કો ઔર ઇન્દ્રિય કપાર્થોસે સુષ્ટિત દૃષ્ટ વ્યક્તિયોકો લેકર
કથન કરતે હૈં—‘પંચ ઇન્દિયત્યા પળ્ણત્તા’ ઇત્યાદિ સૂત્ર ૩ ॥

ટીકાર્થ—ઇન્દ્રિયોકે અર્થ વિષય પાંચ કહે ગયે હૈં જૈસે શ્રોત્રેન્દ્રિયકા અર્થઃ
યાવત્ સ્પર્શનેન્દ્રિયાર્થ ૫ ઇન્દ્રકા જો ચિહ્ન હૈ, વહ ઇન્દ્રિય હૈ, ઇન્દ્ર શબ્દસે
યહાં આત્મા લિયા ગયા હૈ, ક્યોંકિ વહ સર્વ વિષયોંકી ઉપલવિધ એવં
અનેકે ભોગરૂપ જો પરમૈશ્વર્ય અનુભવ કરનેવાલા હૈ, અસ જીવકા જો
ચિહ્ન હૈ, વહ ઇન્દ્રિય હૈ, અથવા અસ જીવરૂપ ઇન્દ્રસે જો દૃષ્ટ હૈ, સૃષ્ટ
હૈ જુષ્ટ હૈ દત્ત હૈ અથવા દુર્જય હૈ વહ ઇન્દ્રિય હૈ, અથવા ઇન્દ્રસે હોને-
વાલા હૈ, એસી યે ઇન્દ્રિયાં શ્રોત્રાદિક હૈં । યે શ્રોત્રાદિક ઇન્દ્રિયાં નામ
સ્થાપના દ્રવ્ય ઔર ભાવકે ભેદસે ચાર પ્રકારકી હૈં, અનમ્ નામ ઔર
સ્થાપનારૂપ ઇન્દ્રિયાં સુગમ હૈં । દ્રવ્યેન્દ્રિય નિર્વૃત્તિ ઔર ઉપકરણકે
ભેદસે દો પ્રકારકી હૈ નિર્વૃત્તિકા નામ આકાર હૈ, વહ નિર્વૃત્તિરૂપ

થાય છે તેથી હવે સૂત્રકર ઇન્દ્રિયાથોતુ’ અને ઇન્દ્રિય કપાયોથી સ્થિત થવા
રૂપ સ્થિત અવસ્થા ધારણ કરનાર વ્યક્તિઓતુ’ કથન કરે છે

ટીકાર્થ—“ પંચ ઇન્દિયત્યા પળ્ણત્તા ” ઇત્યાદિ—

ઇન્દ્રિયોના વિષયરૂપ અર્થ પાંચ કહ્યા છે—(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિયાર્થ, (૨)
નેત્રેન્દ્રિયાર્થ, (૩) શાણેન્દ્રિયાર્થ, (૪) રસનેન્દ્રિયાર્થ અને (૫) સ્પર્શેન્દ્રિયાર્થ.
ઇન્દ્રતુ’ જે ચિહ્ન છે તે ઇન્દ્રિય છે. ઇન્દ્ર શબ્દ દ્વારા અહીં આત્મા ગ્રહણ
થયો છે, કારણ કે સર્વવિષયોની ઉપલબ્ધિ અને અનેક ભોગ રૂપ પરમૈશ્વર્યનો
અનુભવ તે કરે છે, તેની જીવને પ્રાપ્તિ કરાવનાર જે બાહ્ય સાધનો છે તેને
ઇન્દ્રિયો કહે છે. અથવા તે જીવ રૂપ ઇન્દ્રથી જે દષ્ટ છે, સૃષ્ટ છે, જુષ્ટ છે, દત્ત છે,
અથવા દુર્જય છે, તે ઇન્દ્રિય છે. એવી ઇન્દ્રિયો શ્રોત્રેન્દ્રિય આદિ પાંચ છે.
તે શ્રોત્રાદિક ઇન્દ્રિયો નામ, સ્થાપના, દ્રવ્ય અને ભાવના લેહથી ચાર પ્રકારની
છે. તેમાંથી નામ અને સ્થાપના રૂપ ઇન્દ્રિયો સુગમ હોવાથી અહીં તેમતુ’
વધુ વિવેચન કર્યું નથી. દ્રવ્યેન્દ્રિયના નિર્વૃત્તિ અને ઉપકરણ નામના જે લેહ
કહ્યા છે. નિર્વૃત્તિ એટલે આકાર તે નિર્વૃત્તિરૂપ ઇન્દ્રિયના પણ બાહ્ય અને

द्विविधा । तत्र बाह्या अनेकविधा आभ्यन्तर्ग निर्वृत्तिः श्रोत्रादीनां क्रमेण कदम्ब-
पुष्पधान्यमसूरातिमुक्तकपुष्पचन्द्रिकाक्षुरप्रनानाप्रकारसंस्थाना । उपकरणेन्द्रिय तु
विषयगुणसामर्थ्यरूपम् । उदं छेद्यच्छेदने खड्गधारेव भवति । यथा धाराया-
मुपहृतायां खड्गच्छेद्यच्छेदने समर्थो न भवति तथैव उपकरणेन्द्रियासत्त्वे निर्वृत्तौ
सत्यामपि इन्द्रियं विषयान्न गृह्णातीति । तथा भावेन्द्रियलब्ध्युपयोगभेदाद् द्विवि-
धम् । तत्र लब्धीन्द्रियम्-तदावरणक्षयोपशमरूपम् । उपयोगेन्द्रियं च स्वविषये

इन्द्रिय भी बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारकी है । बाह्य
निर्वृत्ति इन्द्रिय अनेक प्रकारकी है, आभ्यन्तर निर्वृत्ति श्रोत्रादिकके
क्रमसे कदम्बपुष्प, धान्यमसूर अतिमुक्तकपुष्प चन्द्रिका क्षुरप तथा नाना
प्रकारके संस्थानवाली है । अर्थात् श्रोत्रेन्द्रियकी आभ्यन्तर निर्वृत्ति
कदम्ब पुष्पके समान है, आंखकी आभ्यन्तर निर्वृत्ति मसूरके दालके
समान है, नाककी आभ्यन्तर निर्वृत्ति अतिमुक्तकपुष्प चन्द्रिकाके
समान है, रसनेन्द्रियकी निर्वृत्ति क्षुरप्र (उस्तरा)के समान है, और
स्पर्शन इन्द्रियकी आभ्यन्तर निर्वृत्ति अनियमित आकारवाली है ।
विषयोंको ग्रहण करनेकी शक्तिरूप उपकरण इन्द्रिय होती है यह छेद्य-
को छेदनमें खड्गधाराके समान होती है, अर्थात् जिस प्रकारसे धारके
उपहत हो जाने पर खड्ग तलवार छेदनेके योग्य पदार्थोंको छेदनेमें समर्थ
नहीं होती है, उसी प्रकार उपकरण इन्द्रियके अभावमें निर्वृत्तिके होने
पर भी इन्द्रिय विषयोंको ग्रहण नहीं करती है, तथा यह भावेन्द्रिय

आभ्यन्तरना लक्षणी दो प्रकार कहा छे. बाह्यनिर्वृत्ति इन्द्रिय अनेक प्रकारनी
छे अने आभ्यन्तर निर्वृत्ति अनुक्रमे श्रोत्रेन्द्रियथी लक्षणे तो कदम्बपुष्प,
धान्यमसूर, अतिमुक्तक पुष्प चन्द्रिका, क्षुरप्र (असूर) अने विविध संस्थान-
वाणी छे. ओटसे के श्रोत्रेन्द्रियनी आभ्यन्तर निर्वृत्ति (आकार) कदम्बपुष्प
समान छे, आंखनी आभ्यन्तर निर्वृत्ति मसूरनी दाण समान छे, नाकनी
आभ्यन्तर निर्वृत्ति अतिमुक्तक पुष्पचन्द्रिका समान छे, लालनी आभ्यन्तर
निर्वृत्ति अस्मा समान छे, अने स्पर्शेन्द्रियनी आभ्यन्तर निर्वृत्ति अनियमित
आकारवाणी छे. विषयेने ग्रहण करवानी शक्ति रूप उपकरणे इन्द्रिय होय
छे. ते छेद्युं छेदन करवामां तलवारनी धारसमान होय छे ओटसे के नेम
धार विनानी तलवार-भूडी तलवार छेदना योग्य पदार्थने छेदवामा असमर्थ
निपडे छे, ओ न प्रमाणे उपकरणे इन्द्रियने अभाव होय तयारे निर्वृत्तिने
सदभाव होवा छतां यणे इन्द्रिय विषयेने ग्रहण करी शकती नथी.

વ્યાપારઃ । ઉક્તે ચ —

‘ હંદો જીતો સવ્વોવલલ્લિધ્મોગપરમેશ્વરત્તગમો ।
 સોનાઈ મેષમિન્દ્રિયમિદ્ધ તલ્લિલ્લાદિમાવાત્ ॥ ૧ ॥
 તં નામાદિ ચ્ચડ્ઢા, દવ્વં નિવ્વત્તિઓવરુરુણં ચ ।
 આનારો નિવ્વત્તી, ચિત્તા વજ્ઞા ઇમા અંતો ॥ ૨ ॥
 પુપ્ફં કલંવુયાપ્, ધન્નપસુરાહ્મુત્તચંદો ય ।
 હોઠ સુરુપ્પો નાનાગિઈ ય સોઠંદિયાઈ ણં ॥ ૩ ॥
 ત્રિપયગ્ગહ્ણણમત્તયં, ઉવગરુણં ઇન્દ્રિયંતરં તંપિ ।
 જં નેદ્ધ તદ્દુપ્પાપ્. મિણ્ઢ્ઢ નિવ્વિત્તિમાવે ત્તિ ॥ ૪ ॥
 લલ્લ્યુરઓગા માર્વિદિયંતુ લલ્લિત્તિ જો સ્વઓવમમો ।
 હોઠ તગાવરુણાણં. તલ્લામે ચેવ સેમંપિ ॥ ૫ ॥
 જો સત્તિપયચાવારો, મો ઉપ્પઓગો સચેમકાલમ્મિ ।
 ઇમેગ ચેવ તદ્ઢા, ઉવઓર્ગોગદિઓ સવ્વો ॥ ૬ ॥
 ઇન્દ્રિયાઈમેષા, પહુચ્ચ સેમિન્દ્રિયાઈ જીયાણં ।
 અદ્ઢવા પહુચ્ચ લલ્લિ દિયંપિ પંચિદિયા સવ્વે ॥ ૭ ॥
 જં કિર વડલાઈણં, દીસઈ સેમિદિઓવલંમો વિ ।
 તે ણત્થિ તદાવરુણક્કલ્લઓવરામસંમવો નેમ્મિ ॥ ૮ ॥

છાયા—હંદો જીવઃ મર્ષોલલ્લિધ્મોગપરમેશ્વર્યાત્ ।

ઓત્રાદિમેષમિન્દ્રિયમિદ્ધ તલ્લિલ્લાદિમાવાત્ ॥ ૧ ॥

લલ્લિધ્મ ઓર ઉપયોગકે મેદસે દો પ્રકારકી હોતી હૈ । હનમે લલ્લિધ્મરુપ જો ભાવેન્દ્રિય હૈ, વ્હ તદાવરુણક્ષયોપશમ રુપ હોતી હૈ, ઓર ઉપયોગ રુપ જો ભાવેન્દ્રિય હોતી હૈ, વ્હ અપને વિષયમે વ્યાપોરરુપ હોતી હૈ । કહ્દા ઓ હૈ—“ હંદો જીવો સવ્વોવલલ્લિ ” ઇત્યાદિ ।

હન ગાથાઓકા ભાવાર્થ એવાહૈ—“હન્દ્રસ્ય લિલ્લ ઇન્દ્રિયમ્ હન્દ્રેણ હન્દ્ર-જીવ દ્દષ્ટાદિત્વાત્ વા ઇન્દ્રિયમ્ ’ હસ વ્યુત્પત્તિકે અનુસાર હન્દ્રકા ચિહ્ન હોને

તે ઉપકરણ ઇન્દ્રિયના એ લેદ છે—(૧) ભાવેન્દ્રિય લલ્લિધ્મ અને (૨) ભાવેન્દ્રિય ઉપયોગ નેમાંથી એ લલ્લિધ્મરુપ ભાવેન્દ્રિય છે તે તદાવરુણક્ષયોપશમ રુપ હોય છે અને ઉપયોગ રુપ એ ભાવેન્દ્રિય હોય છે તે પોતાના વિષયમાં વ્યાપાર (પ્રવૃત્તિ) રુપ હોય છે. ઇહું પણ છે કે :

“ હંદો જીવો સવ્વોવલલ્લિ ” ઇત્યાદિ—

આ ગાથાઓનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—“ હન્દ્રસ્ય લિલ્લ ઇન્દ્રિયમ્ હન્દ્રેણ હન્દ્ર-જીવ દ્દષ્ટાદિત્વાત્ વા ઇન્દ્રિયમ્ ” આ વ્યુત્પત્તિ અનુસર ઇન્દ્રતુ ચિહ્ન હોવાથી

तत् नामादि चतुर्धा द्रव्यं निर्वृत्तिरूपकरणं च ।
 आकारो निर्वृत्तिः चित्रा याद्या अन्तरिमा ॥ २ ॥
 पुष्प कलम्बुकायाः धान्पत्रगुरातिसुक्तचन्द्रं च ।
 भवति क्षुद्रो नानाकृतिश्च श्रोत्रेन्द्रियादीनाम् ॥ ३ ॥
 विषयग्रहणानामर्थ्यम् , उपकरणम् इन्द्रियान्तरं तदपि ।
 यन्नेह तदुपघाते गृह्णाति निर्वृत्तिभावेऽपि । ४ ॥
 लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियं तु लब्धिरिति यः ज्ञयोपशमः ।
 भवति तदाऽरणानां तल्लाभे एव शेषमपि ॥ ५ ॥
 यः स्वविषयव्यापारः स उपयोगः स चैककाले ।
 एकेन एव तस्मात् उपयोगैकेन्द्रियं सर्वः ॥ ६ ॥
 एकेन्द्रियादिभेदाः प्रतीत्य शेषेन्द्रियाणि जीनानाम् ।
 अथवा प्रतीत्य लब्धीन्द्रियमपि पञ्चेन्द्रियाः सर्वे ॥ ७ ॥
 यत्किल वक्रलादीनां दृश्यते शेषेन्द्रियोपलम्भोऽपि ।
 तेनास्ति तदावरण क्षयोपशमसंभवस्तेषाम् ॥ ८ ॥ इति ॥

से या इन्द्रके द्वारा दृष्ट आदि होनेसे श्रोत्रादिकोंको इन्द्रिय कहा गयाहै ।
 “ इदि परमैश्वर्ये ” के अनुसार इद् धातुसे इन्द्र शब्द बनताहै, समस्त
 पदार्थोंका ज्ञाना दृष्टा बन जाता है, ऐसा बन जानाही आत्माका परमै
 श्वर्य है, ऐसे परमैश्वर्यवाला यह आत्माही हो सकता है, और द्रव्य
 नहीं हो सकताहै, अतः इन्द्रकी तरह यह जीव परमैश्वर्यवाला हो सकनेके
 कारण इन्द्र कहा गया है. इस इन्द्रकानी यह चिह्न है, इस इन्द्रिय रूप
 चिह्नसेही आत्मा जीवकी पहिचान होती है, यहां ज्ञानेन्द्रियोंकी ही यह
 यान चल रही है इसलिये श्रोत्रादिक इन्द्रियां पांचही कही गई हैं,
 क्योंकि लक्षस्थ जीव इनकी सहायतासे ही इनके विषयोंका ज्ञाना हो
 सकता है ॥ १ ॥

अथवा इन्द्रना द्वारा दृष्ट आदि होवाथी श्रोत्रादिकोने इन्द्रिया कहेवामां आवेद
 छे. “ इदि परमैश्वर्ये ” ना अनुसार “ इद् ” धातुमांथी इन्द्र बन्यो छे
 समस्त ज्ञानावरण् अने दर्शनावरण्कोने अभाव शर्तलय तयारे आत्मा समस्त
 पदार्थोनेा ज्ञाना (दृष्टा) अनि लय छे, ज्येवो अनि जपु ज्येव आत्मानु
 परमैश्वर्य छे, ज्येवा परमैश्वर्यवाणे आ आत्मा ज होई शकै छे-भीणुं द्रव्य
 होई शकतुं नथी तेथी ते इन्द्रनी जेम परमैश्वर्यसंपन्न होई शकवाने कारणे
 तेने इन्द्र कही छे आ इन्द्रनुं ज ते चिह्न छे आ इन्द्रिय रूप चिह्न वडे ज
 आत्माने (जयने) ज्येवो नी शक्य छे, अडी ज्ञानेन्द्रियोनी ज वात यादी
 रही छे अडी श्रोत्रादिक पांच इन्द्रियो कही छे, अने लक्षस्थ ज्येवो तेमनी
 सहायताथी ज तेमना नियेने (ते पांचे इन्द्रियोना विषयोने) लक्षी शकै छे । १ ।

इनमें निवृत्ति नाम रचनाका है, यह इन्द्रियाकार रचना पुद्गलों में भी होती है और आत्मप्रदेशोंमें भी होती है। अर्थात् पुद्गलोंके प्रदेश भी इन्द्रियाकार रूपसे परिणमते हैं और आत्मप्रदेश भी इन्द्रियाकार रूपसे परिणमते हैं। श्रोत्रादिक इन्द्रियों के आकारमें जो पुद्गलके प्रदेश एवं आत्माके प्रदेश परिणमते हैं वे द्रव्येन्द्रिय हैं। एवं क्षयोपशम विशेषसे होनेवाला जो आत्मा का परिणाम है, ज्ञानदर्शन रूप वह भावेन्द्रिय है, द्रव्येन्द्रियके दो भेद हैं—निवृत्ति और उपकरण—निवृत्तिका अर्थ रचना है, इसलिये निवृत्ति द्रव्येन्द्रियका अर्थ हुआ—इन्द्रियाकार रचना यह बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारकी है, बाह्य निवृत्ति से इन्द्रियाकार पुद्गल रचना ली गई है और आभ्यन्तर निवृत्ति से इन्द्रियाकार आत्मप्रदेशके लिये कहे गये हैं। यद्यपि प्रतिनियत इन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम सर्वाङ्ग होता है, तथापि अंगोपाङ्ग नाम कर्मके उदयसे यहां पुद्गल प्रचय-समूह रूप जिन द्रव्येन्द्रियकी रचना होती है, वहीं के आत्मप्रदेशोंमें उसर इन्द्रियको कार्य करनेकी क्षमता होती है। उपकरणका अर्थ है—उपकार का प्रयोजक साधन यह भी बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारका है, नेत्र इन्द्रिय में जो कृष्ण शुक्ल

तुं नाम निवृत्ति छे. आ इन्द्रियाकार रचना पुद्गलोभा पणु थाय छे अने आत्मप्रदेशोभा पणु थाय छे. अेटके के पुद्गलोभा प्रदेश पणु इन्द्रियाकार इपे परिणुमे छे अने आत्मप्रदेशो पणु इन्द्रियाकार इपे परिणुमे छे श्रोत्रादिक इन्द्रियोभा आकारमां ने पुद्गलभा प्रदेशो अने आत्माना प्रदेशो परिणुमे छे, द्रव्येन्द्रियइप छे, अने क्षयोपशम विशेष द्वारा उत्पन्न धतुं ने आत्मानु परिणुमां छे, ते ज्ञानदर्शन इप भावेन्द्रिय छे.

द्रव्येन्द्रियना भे भेद छे—(१) निवृत्ति अने उपकरण. निवृत्ति अेटके रचना निवृत्ति द्रव्येन्द्रिय अेटके इन्द्रियाकार रचना ते निवृत्तिना भे भेद छे—(१) बाह्य अने आभ्यन्तर. बाह्यनिवृत्ति द्वारा इन्द्रियाकार पुद्गलरचना श्रुणु करवी नेछे. ने के प्रतिनियत इन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञानावरणु कर्मना क्षयोपशम सर्वाङ्गी होय छे, छतां पणु अंगोपाङ्ग नामकरणना उदयथी न्यां पुद्गल प्रचयइप ने द्रव्येन्द्रियनी रचना थय छे, त्याना आत्मप्रदेशोभा ते ते इन्द्रियना कार्य करवानी क्षमता होय छे उपकरणु अेटके उपादानु प्रयोजक साधन ते पणु बाह्य अने आभ्यन्तरना भेदथी ने प्रकारनुं छे नेत्रेन्द्रियमां

નિવૃત્તિઃ ચિત્રા=અનેકવિધા । અર્થં ભારઃ-વાહ્યા નિવૃત્તિઃ, પર્પટિકાદિરૂપા । સા ચ ચિત્રિત્રા-પ્રતિનિયતરૂપતયા ઉપદેષ્ટુમશમ્યત્વાત્ । તથાહિ-મનુષ્યકર્ણા-નેત્રયોરુભયપાર્શ્વતોમવતઃ, ધ્રુવો વોપરિતનશ્રવણચન્ધાપેક્ષયા સમે, તુરગસ્ય નેત્ર-યોરુપરિ તીક્ષ્ણે ચાગ્રભાગે, इत्यादि प्रकारा जातिभेदान्तानानाविधा वाह्या निवृत्ति-रिति । अन्तरिमा=आभ्यन्तरा निवृत्तिस्तु सर्वेषां प्राणिनां समानैव । स्पर्शेन्द्रिय-निवृत्तिस्तु वाह्याभ्यन्तरभेदा न भवन्ति, नानाकृत्तिकत्वात् । ' इमा अंतो ' इत्यत्र प्राकृतत्वात् इमनिच् प्रत्ययः प्रकृतेः पूर्व निर्दिष्ट इति ॥ २ ॥ सम्प्रति-इन्द्रियाणाम् आभ्यन्तरसंस्थानान्याह-' पुष्कं कलंबुयाए ' इत्यादिना श्रोत्रेन्द्रि-

મળહલ હૈ वह आभ्यन्तर उपकरण है, और अक्षिपत्र आदि रूप जो है वह बाह्य उपकरण है । यही बात यहां " वाह्या निवृत्ति चित्रा " इस कथन से प्रदर्शित की गई है । बाह्य निवृत्ति अनेक प्रकार की होती है, क्योंकि यह प्रतिनियत आकार रूपसे कहीं नहीं जा सकती है । जैसे-मनुष्यके कान नेत्रोंके दोनों पार्श्वभाग में होते हैं और उपरितन श्रवणचन्धकी अपेक्षा से दोनों ओरें समान होती हैं । तुरग-घोडा के दोनों नेत्रों के ऊपर तीक्ष्ण अग्रभाग होते हैं, इत्यादि प्रकार के जाति भेदसे नाना प्रकारकी बाह्य निवृत्ति होती है । परन्तु आभ्यन्तर जो निवृत्ति होती है वह समस्त जीवों के समान होती है । स्पर्शनेन्द्रिय निवृत्ति के तो बाह्य और आभ्यन्तर ऐसे दो भेद नहीं होते हैं, क्योंकि वह नाना आकृतिवाली होती है ॥ २ ॥

જે કૃણુ શુદ્ધ મડળ છે, તે આભ્યન્તર ઉપકરણ છે અને જે અક્ષિપત્ર (પાંપણ) આદિ રૂપ ઉપકરણ છે, તે બાહ્ય ઉપકરણ છે. એ જ વાત અહીં " વાહ્યા નિવૃત્તિ ચિત્રા " આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરવામા આવી છે. બાહ્ય નિવૃત્તિ (બાહ્યાકાર) અનેક પ્રકારની હોય છે, કારણ કે તે પ્રતિનિયત આકારવાળી સંભવી શકતી નથી જેમકે માણુસના કાન નેત્રે તા બન્ને પાર્શ્વભાગોમાં હોય છે. અને ઉપરીતન શ્રવણબન્ધની અપેક્ષાએ બન્ને ભ્રમરો સમાન હોય છે. ઘોડાના બન્ને નેત્રો ઉપર તીક્ષ્ણ અર્ધભાગ (બન્ને કાન) હોય છે, ઇત્યાદિ પ્રકારે વૃત્તિભેદ અનુસાર વિવિધ પ્રકારની બાહ્ય ઇન્દ્રિય નિવૃત્તિ હોય છે. પરન્તુ સમસ્ત જીવોમાં જે આભ્યન્તર નિવૃત્તિ હોય છે તે તે સમાન જ હોય છે. સ્પર્શેન્દ્રિય નિવૃત્તિના તો બાહ્ય અને આન્તરિક રૂપ એ ભેદો પડતાં જ નથી કારણ કે તે વિવિધ આકૃતિવાળી હોય છે ॥ ૨ ॥

यादीनां=श्रोत्रचक्षुर्ग्राणरसनस्पर्शनेन्द्रियाणां क्रमेण कदम्बपुष्पादीनि संस्थानानि बोधयानि । तत्र श्रोत्रेन्द्रिय कदम्बपुष्पसंस्थानम्-कदम्बपुष्पाकारमांसगोलकरूपमित्यर्थः । चक्षुरिन्द्रियं-मसूरधान्यसंस्थानम् । घ्राणेन्द्रियम्-अतिमुक्तककुसुमचन्द्रकसंस्थानम् । रसनेन्द्रियं क्षुरप्रसंस्थानम् । स्पर्शनेन्द्रियं तु नानासंस्थानम् । इति ॥ ३ ॥ अथ द्रव्येन्द्रियस्य द्वितीयभेदं निरूपयति- 'विसयगमहण इत्यादि, उपकरणं विषयग्रहणसामर्थ्यं, तदपि इन्द्रियान्तरम्=निवृत्तीन्द्रियाद् अन्यदिन्द्रियं बोध्यम् । अयं भावः-कदम्बपुष्पाद्याकृतिमांसगोलकरूपायाः श्रोत्राद्यन्तर्निवृत्तेः

अथ सूत्रकार इन्द्रियों के आभ्यन्तर संस्थान का कथन करते हैं—
 "पुष्कं कलंबुयाए" इत्यादि—श्रोत्र, चक्षु, घ्राण एवं रसन इन इन्द्रियों का संस्थान क्रमसे कदम्बपुष्प के जैसा मसूर धान्यकेजैसा अतिमुक्तक कुसुम के चन्द्रक जैसा एवं क्षुरप्र के जैसा है । एवं स्पर्शनेन्द्रिय का संस्थान नियमित नहीं होने से वह नाना संस्थानवाला है । अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय का संस्थान कदम्ब पुष्पके जैसा, चक्षु इन्द्रिय का संस्थान चंद्र मसूर की दाल जैसा, घ्राणेन्द्रियका संस्थान अतिमुक्तक कुसुमके चन्द्रक जैसा, रसनेन्द्रिय का संस्थान क्षुरप्र के जैसा है ॥ ३ ॥

"विसयगमहणाइ" इत्यादि—द्रव्येन्द्रिय का द्वितीय भेद जो उप-घ्राणेन्द्रिय है, वह विषयको ग्रहण करने की सामर्थ्यरूप है, इसलिये इसे इन्द्रियान्तर रूप-निवृत्ति इन्द्रिय से अन्य इन्द्रिय रूप कहा गया है । तात्पर्य इसका यह है कि कदम्ब पुष्प आदि की आकृतिरूप जो मांसगोलक है, इस मांसगोलक रूप जो श्रोत्र आदि की आभ्यन्तर निवृत्ति

इसे सूत्रकार इन्द्रियोना आभ्यन्तर संस्थानतुं कथन करे छे—
 "पुष्कं कलंबुयाए" इत्यादि—श्रोत्र, चक्षु, घ्राण अने रसना इन्द्रियोनु संस्थान अनुक्रमे कदम्ब पुष्प जेवुं, मसूरनी दाण जेवुं, अतिमुक्तक कुसुमना चन्द्रक जेवुं अने क्षुरप्र (अस्त्रा) जेवुं छे स्पर्शनेन्द्रियनु संस्थान नियमित नथी पणु विविध आकारवाणु छे ओटले के श्रोत्रेन्द्रियने आकार कदम्ब पुष्प समान छे, चक्षुइन्द्रियने आकार मसूरनी दाण समान छे, घ्राणेन्द्रियने आकार अतिमुक्तक कुसुमना चन्द्रक समान छे, अने रसनेन्द्रियने आकार अस्त्रा समान छे ॥ ३ ॥

"विसयगमहणाइ" इत्यादि—द्रव्येन्द्रियने जे उपकरणेन्द्रिय रूप धीजे लेह छे ते विषयने ग्रहण करवाना सामर्थ्य रूप छे, तेथी तेने इन्द्रियान्तर रूप-निवृत्ति इन्द्रिय करतां अन्य इन्द्रिय रूप कडेवागां आवेल छे आ कथनतुं तात्पर्य नीचे प्रमाणे छे—कदम्बपुष्प आदिनी आकृति रूप जे मांसगोलक छे, आ मांसगोलक रूप जे श्रोत्र आदिनी आभ्यन्तर निवृत्ति छे, ते आभ्यन्तर

વિષયગ્રહણસામર્થ્યમ્ ઉપકરણદ્રવ્યેન્દ્રિયમિતિ । યદ્=યસ્માદ્ હેતોઃ તદુપઘાતે=
વિષયગ્રહણસામર્થ્યરૂપોપકરણેન્દ્રિયસ્ય ઉપઘાતે=નાશો સતિ નિર્વૃત્તિસદ્ભાવેડપિ=
ઇન્દ્રિયસ્ય વાહ્યાભ્યન્તરાકારસત્ત્વેડપિ ઇન્દ્રિયં વિષયાન્ ન ગૃહ્ણાતિ, યથા ધારાયામુપ-
હતાયાં । લઙ્ગઃ કિમપિ વસ્તુ ન છિન્તિ-ઇતિ ॥ ૪ ॥ અથ ભાવેન્દ્રિયં પરૂપયતિ-
'લઙ્કુવબોગો' ઇત્યાદિ । ભાવેન્દ્રિયં તુ લઙ્કીન્દ્રિયોપયોગેન્દ્રિયભેદાદ્ દ્વિવિ-
ધમ્ । તત્ર યસ્તદાવરણાનાં ક્ષયોપશમસ્તદ્ લઙ્કીન્દ્રિયમ્ । તલલાભે=લઙ્કીન્દ્રિયસ્ય
પ્રાપ્તાવેવ શેપમપિ=અવશિષ્ટમપિ ઇન્દ્રિયમ્ અર્થાદ્ દ્રવ્યેન્દ્રિયં ભવતીતિ बोध्यम्

હૈ, સો હસ આભ્યન્તર નિવૃત્તિ કી જો વિષય કો ગ્રહણ કરનેશી શક્તિ
હૈ જહ દ્રવ્યેન્દ્રિય હૈ, ક્યોંકિ વિષય ગ્રહણ કરને કી સામર્થ્ય રૂપ જો
ઉપકરણેન્દ્રિય હૈ ઉસકે નાશ હોને પર નિવૃત્તિકે સદ્ભાવ મેં બી વાહ્ય
એવં આભ્યન્તર કે હોને પર બી ઇન્દ્રિય વિષય કો ગ્રહણ નહીં કરતી હૈ,
જૈસે લઙ્કધારા કે બોધરી હો જાને પર કિસી બી વસ્તુકા છેદન નહીં
કર પાતા હૈ ॥ ૪ ॥

અથ સૂત્રકાર ભાવેન્દ્રિય કો પ્રરૂપણા કરતે હિં—“લઙ્કુવબોગો”
ઇત્યાદિ । યહ ભાવેન્દ્રિય લઙ્કિય એવં ઉપયોગ કે ભેદ સે દો પ્રકાર કી હૈ
તદાવરણોં કા જો ક્ષયોપશમ હૈ વહ લઙ્કીન્દ્રિય હૈ । અર્થાત્—મતિજ્ઞાના-
વરણ, ચક્ષુર્દર્શનાવરણ, ઔર અચક્ષુર્દર્શનાવરણ કા ક્ષયોપશમ હોકર
જો આત્મામેં જ્ઞાન ઔર દર્શન રૂપ શક્તિ ઉત્પન્ન હોતી હૈ વહ લઙ્કિય
ઇન્દ્રિય હૈ, યહ લઙ્કિય ઇન્દ્રિય આત્માકે સ્વ પ્રદેશોં મેં પાઈ જાતી હૈ,

નિવૃત્તિની વિષયકને ગ્રહણ કરવાની જે શક્તિ છે, તે
ઉપકરણ દ્રવ્યેન્દ્રિય છે, કારણ કે વિષય ગ્રહણ કરવાના સામર્થ્ય
રૂપ જે ઉપકરણેન્દ્રિય છે તેનો નાશ થાય તો નિવૃત્તિનો સદ્ભાવ હોવા છતાં
પણ એટલે કે બહુ અને આભ્યન્તરનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પણ ઇન્દ્રિય
વિષયને ગ્રહણ કરતી નથી. જેમ તલવારની ધાર ખૂટી થઈ ગઈ હોય તો
તલવાર કોઈ પણ વસ્તુનું છેદન કરી શકતી નથી, એ જ પ્રમાણે ઉપકરણે
ન્દ્રિયનો નાશ થવાથી ઇન્દ્રિય પણ વિષયને ગ્રહણ કરી શકતી નથી. ॥ ૪ ॥

હવે સૂત્રકાર ભાવેન્દ્રિયની પ્રરૂપણા કરે છે. “લઙ્કુવબોગો” ઇત્યાદિ—
આ ભાવેન્દ્રિય લઙ્કિય અને ઉપયોગના ભેદથી બે પ્રકારની કહી છે મતિજ્ઞાના-
વરણ, ચક્ષુર્દર્શનાવરણ અને અચક્ષુ દર્શનાવરણનો ક્ષયોપશમ થવાથી આત્મામાં
જે જ્ઞાન અને દર્શન રૂપ શક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે, તેનું નામ લઙ્કિય ઇન્દ્રિય
છે. તે લઙ્કિય ઇન્દ્રિયનો સદ્ભાવ આત્માના સત્ત્વ પ્રદેશોમાં હોય છે કારણ

॥ ५ ॥ भावेन्द्रियस्य द्वितीयभेदमाह—‘ जो सविषय ’ इत्यादिना । श्रोत्रादेरिन्द्रियस्य येः स्वविषयव्यापारः—स्वविषये=तत्तदिन्द्रियग्राह्ये शब्दादौ व्यापारः स उपयोगः—उपयोगेन्द्रियमित्यर्थः । स च एककाले=एकस्मिन् समये श्रोत्रादिषु एकेनैव केनचिदिन्द्रियेण भवति, तस्मात् हेतोः सर्वोऽपि जीव एकेन्द्रिय एव भवतीति ॥ ६ ॥ ननु सर्वोऽपि जीव एकेन्द्रियस्तर्हि एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादि जीवभेदो न सिध्यतीति चेदाह—‘ एगिंदियाइभेया ’ इत्यादि । जीवानाम् एकेन्द्रियद्वीन्द्रिय-

क्योंकि क्षयोपशम सर्वाङ्ग होता है । तथा—लब्धि निवृत्ति और उपकरण इन तीनों के होने पर जो विषयोंमें प्रवृत्ति होनी है, उपयोगेन्द्रिय है, यहाँ कोई ऐसी आशंका कर सकता है कि उपयोग इन्द्रिय का कार्य है, पर यहाँ उपचारसे अर्थात् कार्यमें कारण का उपयोग को भी इन्द्रिय कहा है । अथवा इन्द्रियका मुख्य अर्थ उपयोग है, इसलिये भी उपयोग को इन्द्रिय कह दिया है ॥ ५ ॥

“ जो सविषय ” इत्यादि—श्रोत्रेन्द्रिय आदिका जो स्वविषय के प्रति व्यापार है, अर्थात् अपने २ ग्राह्य शब्दादिको ग्रहण करने रूप जो प्रवृत्ति है वह उपयोग है, उपयोगेन्द्रिय है । ऐसा यह उपयोग एक समयमें किसी एक इन्द्रिय से ही होता है ॥ ६ ॥

“ एगिंदियाइभेया ” इत्यादि ।

इस कारण अमस्त भी जीव एक इन्द्रियवाले ही होते हैं । यदि यहाँ पर ऐसी शंका की जावे कि यदि समस्त जीव एक इन्द्रियवाले

के क्षयोपशम सर्वाङ्गी : होय छे तथा लब्धि, निवृत्ति अने उपकरण आ प्रबुद्धेना सदभाव होय त्पारे विषयोमां ने प्रवृत्ति थाय छे, ते उपयोगेन्द्रिय रूप छे अर्डी कोछि अेवी आशंका करी शकै छे के उपयोग इन्द्रिय नथी, पणु इन्द्रियनुं इल छे, छतां तेने इन्द्रिय रूप केवी रीते कडे छे ? तो तेनी शंकातुं समाधान आ प्रभाणे करी शकय छे—जे के उपयोग इन्द्रियनुं कार्य छे, परन्तु अर्डी कार्यमां कारणतुं आरोपण करीने उपयोगने पणु इन्द्रिय कडेवामा आवेल छे अथवा इन्द्रियनेो मुख्य अर्थ (विषय) उपयोग छे, तेथी उपयोगने इन्द्रिय कडेवामा आवेल छे ॥ ५ ॥

“ जो सविषय ” इत्यादि—श्रोत्रेन्द्रिय आदिनी चेत्योताना विषयने अेवले के शब्दादिकेने ग्रहण करवा रूप ने प्रवृत्ति छे, अेव उपयोग छे अने ते उपयोग न उपयोगेन्द्रिय रूप छे अेवो ते उपयोग अेक समयमां इन्द्रिय वडेव थाय छे ॥ ६ ॥

“ एगिंदियाइभेया ” इत्यादि—आ कारणे समस्त जेवो अेक इन्द्रिय-वाला न होय छे

ચત્રીન્દ્રિયચતુરિન્દ્રિયપञ્ચેન્દ્રિયભેદાઃ શેપેન્દ્રિયાણિ=નિર્વૃત્ત્યુપકરણલઘ્વિરૂપાઃ
 શિષ્ટેન્દ્રિયાણિ પ્રીત્ય=આશ્રિત્ય ઢ્રણ્યાઃ । અથવા-લઘ્વીન્દ્રિયં પ્રતીત્ય=
 આશ્રિત્ય મર્વેડપિ જીનાઃ પञ્ચેન્દ્રિયા ભવન્તીતિ ॥ ૭ ॥ ચતુ કથં મર્વેડપિ જીવાઃ
 પञ્ચેન્દ્રિયા ભવન્તિ ? ઇત્યાહ - ' જં કિર ' ઇત્યાદિગા । ચદ્ યસ્માદ્ હેનો ફિલ
 નિશ્ચયેન વકુલાદીનાં=અકુલવૃક્ષાદીનાં વનસ્પતિવિશેષાણાં શેપેન્દ્રિયોપલઘ્વોડપિ=
 સ્પર્શનેન્દ્રિયાતિરિક્તેન્દ્રિયલાભોડપિ દ્રુયતે, તેન હેતુના જ્ઞાપને યન્ તેપાં વકુલા
 દીનામપિ તદાવરણક્ષયોપશમસંભવોડસિન । અન્યથા વકુલસ્ય કામિનીપુત્રાર્પિત-
 મદિરાગવૃષ્ણે ચંપકસ્ય અતિસુરભિગન્ધોદકમેચનન, તિલકસ્ય કામિનીકુટા-

હૈ તો ફિર એન્દ્રિય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય ઔર પંચેન્દ્રિય રૂપ જો
 જીવોં કે ભેદ હૈં વે સિદ્ધ નહીં હો સકતે હૈં । તો ઇસકા ઉત્તર એસા હૈ
 કિ એસે જો વે ભેદ હુવ હૈં વે નિવૃત્તિ ઉપકરણ એવં લઘ્વિ ઇન ઇન્દ્રિયોં
 સે ભિન્ન જો ઇન્દ્રિયાંહૈ, ઉનકી પ્રતીતિ કરકે આશ્રિત કરકે ટી હુવહૈં અથવા
 લઘ્વીન્દ્રિય રૂપ ભાવેન્દ્રિય કો લેકર સમસ્ત જીવ પંચેન્દ્રિય હોતેહૈં ॥૭।

સમસ્ત જીવ પંચેન્દ્રિય કેસે હોતે હૈં ? તો ઇસકે લિયે " જં કિર " ઇત્યાદિ દ્વારા સમજાયા યવો હૈ કિ વકુલવૃક્ષ આદિ જો વનસ્પતિ વિશેષ હૈં ઉનકે સ્પર્શક ઇન્દ્રિય સે અતિરિક્ત ઇન્દ્રિયોં આ લાભ ખી દેખા જાના હૈ, કિ વકુલ આદિકોં કે ખી તદાવરણ કા ક્ષયોપશમ સંભવ હૈ નહીં તો વકુલ કો કામિની કે યુગ્મસે અર્પિત મદિરા કે કુલ્લે સે ચંપક કે અતિ સુરભિ ગન્ધોદક કે સિંચન સે તિલક કે કામિનીજનોંકે

શંકા—જે સમસ્ત જીવો એક ઇન્દ્રિયવર્ગના હોય, તે જીવોના એકેન્દ્રિય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય રૂપ લેદો શા માટે પાડયા છે ?

ઉત્તર—આ જે લેદો પડવામાં આવ્યા છે તે નિવૃત્તિ ઉપકરણ અને લઘ્વિ, આ ઇન્દ્રિયોથી ભિન્ન જે ઇન્દ્રિયો કહી છે તેમને આધારે જ પાડવામાં આવેલ છે અથવા લઘ્વીન્દ્રિય રૂપ ભાવેન્દ્રિયની અપેક્ષાએ સમસ્ત જીવ પંચેન્દ્રિય હોય છે. ॥ ૭ ॥

સમસ્ત જીવો પંચેન્દ્રિય કેવી રીતે હોય છે ? આ વાત નીચેના સૂત્ર-પાઠ દ્વારા સમજાવવામાં આવી છે. " જં કિર " ઇત્યાદિ—વકુલવૃક્ષ આદિ જે વનસ્પતિ વિશેષ છે તેમનામાં સ્પર્શેન્દ્રિય સિવાયની ઇન્દ્રિયોનો સહભાવ જોવામાં આવે છે તે કારણે એવું માની શકાય છે કે વકુલ આદિકોમાં પણ તદાવરણીય કર્મોનો ક્ષયોપશમ સંભવિત છે જો આ વાત અસંભવિત હોત તો વકુલવૃક્ષને અતિ યુગન્ધીદાર ગન્ધોદક છાંટવાથી, તિલકવૃક્ષને કોઈ

क्षविक्षेपेण, विरहकृष्टस्य च पञ्चमस्वरश्रवणेन पुष्पपल्लवादि संभवो न स्या-
दिति ॥ ८ ॥ ननु वकुलादयो यदि पञ्चेन्द्रियास्तर्हि ते पञ्चेन्द्रियत्वेन कथं न व्य-
ह्रियन्ते ? इत्यत आह—

“ पंचिन्द्रियव्व वउलो, नरोव्व सव्वविसओवलंभाउ ।

तहवि न भण्णइ पंचिन्द्रिओत्ति वज्झि दिया भावा ” ॥९॥

छाया—पञ्चेन्द्रिय एव वकुलः, नर इव सर्वविषयोपलम्भात् ।

तथापि न भण्यते पञ्चेन्द्रिय इति बाह्येन्द्रियाभावात् ॥९॥

अयमर्थः—उपलक्ष्यगत्वात् चम्पकादिश्च सर्वविषयोपलम्भात् नर इव पञ्चेन्द्रिय
एव । तथापि स बाह्येन्द्रियाभावात् पञ्चेन्द्रिय इति न भण्यते इति ॥९॥

एवं भूतस्य इन्द्रियस्य अर्थाः=विषयाः, शब्दादयः पञ्चसंख्यकाः प्रज्ञाः,

कटाक्ष विक्षेप से एवं विरहक वृक्षके पञ्चम स्वरके श्रवण से पुष्पपल्लव
आदिका जो संभव होता है वह नहीं होना चाहिये ॥ ८ ॥

यदि यहां पर ऐसी शंका की जावे कि वकुल आदि पंचेन्द्रिय माने
जाते हैं तो फिर इनमें पञ्चेन्द्रियत्व रूपका व्यवहार क्यों नहीं होता है ?
तो इसके लिये ऐसा कहा गया है—

“ पंचिन्द्रियव्ववउसो ” इत्यादि । वकुल चंपक आदि वृक्ष सर्व विष-
यके उपलम्भक होने से मनुष्य की तरह पंचेन्द्रिय ही हैं, फिर भी बाह्ये-
न्द्रियके अभावसे पंचेन्द्रिय इस रूपसे नहीं कहे जाते हैं ॥ ९ ॥

इस प्रकार की इन्द्रिय के जो अर्थ हैं, विषय हैं वे इन्द्रियार्थ हैं,
ऐसे ये इन्द्रियार्थ शब्दादिक रूपा पांच होते हैं । जिससे सुना जाना है

डोअ डामिनीना कटाक्ष विक्षेप संलणाववाथी अने विरहकवृक्षने पञ्चम स्वरना
सूरनुं श्रवणु कर ववाथी पुष्पपल्लव आदि ने आववा भाडे छे, ते आववानुं
संलवी शकत नही. ॥ ८ ॥

शंका—जे अकुल आदिने अही पंचेन्द्रिय रूप भताववामा आवेस छे,
ते तेमनामा पंचेन्द्रियत्व रूपे व्यवहार केम थतो नथी. शा भाटे तेमने
अकेन्द्रिय रूपे मानवामा आवे छे ?

आ शंकाता समाधान भाटे अेषु कथु छे के “ पंचिन्द्रियव्ववउसो ”
इत्यादि—अकुल, अ पक आदि वृक्षो सर्व विषयना उपलंभक होवाथी तेमने
मनुष्यनी जेम अही पंचेन्द्रिय रूप भताव्या छे. छता पणु बाह्येन्द्रियना
अभावे करीने तेमने अकेन्द्रिय रूप न गणुवामा आवे छे—पंचेन्द्रिय रूप
गणुतां नथी. ॥ ८ ॥

आ प्रकारना इन्द्रियोना जे अर्थ (विषय) छे, तेमने इन्द्रियार्थ कहे
रथो—२४

તાનેવાહ-તથા-શ્રોત્રેન્દ્રિયાર્થઃ-શ્રૂપતેડનેનેતિ શ્રોત્રમ્, તત્ત્વ તદિન્દ્રિયં ચ શ્રોત્રેન્દ્રિયં તસ્ય અર્થો વિષયઃ શબ્દઃ । યાવત્-શબ્દાત્-ચક્ષુરિન્દ્રિયાર્થઃ ઘ્રાણેન્દ્રિયાર્થઃ રસનેન્દ્રિયાર્થશ્ચ ગ્રાહ્યઃ । તત્ર ચક્ષુરિન્દ્રિયાર્થો રૂપમ્, ઘ્રાણેન્દ્રિયાર્થો ગન્ધઃ । રસનેન્દ્રિયાર્થો રસઃ, સ્પર્શનેન્દ્રિયાર્થશ્ચ સ્પર્શ ઇતિ ।

તથા—મુળ્હઃ-મુળ્હનમ્-અપનયનમ્-મુળ્હઃ । સ ચ દ્વિવિધો-દ્રવ્યતો ભાવ-તશ્ચ । ક્ષત્ર-દ્રવ્યતઃ ક્ષેષાપનયનમ્ । ભાવતસ્તુ મનસ ઇન્દ્રિયાર્થનિષ્ઠ રાગદ્વેપયોઃ કષાયાણાં વાડપનયનમ્ । દ્રવ્યભાવરૂપમુળ્હયોગાત્ પુરુષોડપિ મુળ્હઃ । સ ચ પञ્ચવિધઃ પ્રજ્ઞસઃ । પञ્ચવિધત્વમાહ-તથા-શ્રોત્રેન્દ્રિયમુળ્હઃ-શ્રોત્રેન્દ્રિયે મુળ્હઃ શ્રોત્રેન્દ્રિયેણ વા મુળ્હઃ । શ્રોત્રેન્દ્રિયવિષયશબ્દે રાગાધાનયનાત્ પુરુષઃ શ્રો-

એસી જો હન્દ્રિય હૈ વહ શ્રોત્રેન્દ્રિય હૈ । હસ હન્દ્રિય કા વિષય શબ્દ હૈ, યહાં યાવત્ શબ્દસે “ ચક્ષુરિન્દ્રિયાર્થઃ ઘ્રાણેન્દ્રિયાર્થઃ રસનેન્દ્રિયાર્થઃ સ્પર્શનેન્દ્રિયાર્થઃ ” હનકા ગ્રહણ હુઆ હૈ । ચક્ષુહન્દ્રિય કા વિષય રૂપ હૈ ઘ્રાણેન્દ્રિય કા વિષય ગન્ધ હૈ, રસનેન્દ્રિય કા વિષય રસ હૈ, ઓર સ્પર્શનેન્દ્રિય કા વિષય સ્પર્શ હૈ । દૂર કરને કા નામ મુળ્હ હૈ, યહ મુળ્હ દો પ્રકાર કા હોતા હૈ, ઇક દ્રવ્ય સે મુળ્હ ઓર દૂસરા ભાવ સે મુળ્હ કેશોં કા દૂર કરના, મસ્તક સે કેશોં કા લુંચન આદિ કરના યહ દ્રવ્ય સે મુળ્હ હૈ તથા મનસે હન્દ્રિય કે અર્થોં મેં રાગદ્વેપ કરને કા અથવા કષાય કરને કા ત્યાગ કરના યહ ભાવ સે મુળ્હ હૈ । હસ દ્રવ્ય ઓર ભાવરૂપ મુળ્હ કે સંબંધ સે પુરુષ ઓ મુળ્હ હોતા હૈ, યહ મુળ્હ પાંચ પ્રકાર કહા ગયા હૈ । જૈસે-શ્રોત્રેન્દ્રિય મુળ્હ, જો શ્રોત્રેન્દ્રિય મેં મુળ્હ અથવા શ્રોત્ર-

છે. એમાં તે ઇન્દ્રિયાર્થો શબ્દાદિ રૂપ પાત્ર પ્રકારના હોય છે. જેના દ્વારા સંભળાય છે તે ઇન્દ્રિયને શ્રોત્રેન્દ્રિય કહે છે. તે ઇન્દ્રિયનો વિષય શબ્દ છે. અહીં ‘ યાવત્ ’ પદ વડે ચક્ષુરિન્દ્રિયાર્થ, ઘ્રાણેન્દ્રિયાર્થ, રસનેન્દ્રિયાર્થ અને સ્પર્શેન્દ્રિયાર્થ ગ્રહણ કરવા જોઇએ ચક્ષુઇન્દ્રિયનો વિષય રૂપ છે, ઘ્રાણેન્દ્રિયનો વિષય ગન્ધ છે, રસનાઇન્દ્રિયનો વિષય રસ છે અને સ્પર્શેન્દ્રિયનો વિષય સ્પર્શ છે. દૂર કરવું તેનું નામ ‘ મુ’ ડ ’ છે. તે મુ’ ડ (મુ’ ડન) બે પ્રકારનું છે—(૧) દ્રવ્યની અપેક્ષાએ મુ’ ડન અને (૨) ભાવની અપેક્ષાએ મુ’ ડન મસ્તકના કેશનું લુંચન આદિ કરવું તેનું નામ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ મુ’ ડન છે. તથા મનથી ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં રાગદ્વેષ કરવાનો અથવા કષાય કરવાનો ત્યાગ કરવો તેનું નામ ભાવની અપેક્ષાએ મુ’ ડન છે. આ દ્રવ્ય અને ભાવ રૂપ મુ’ ડ-

त्रेन्द्रियमुण्ड इत्युच्यते । एवं चक्षुरिन्द्रिय-मुण्डादिरपि बोध्य इति । प्रकारान्तरेण पुनरपि पञ्चविधान् मुण्डानाह-क्रोधमुण्ड -क्रोधस्य अपनयात् क्रोधे मुण्डः क्रोधेन वा मुण्ड इति १। एवं मानमुण्डो २ मायामुण्डो ३ लोभमुण्डः ४ शिरो-मुण्डश्च ५ बोध्य इति ॥सू० ३॥

मुण्डनं च वादरजीवविशेषाणामेव भवतीति वादरजीव विशेषानाह-

मूलम्-अहेलोगे णं पंच वायरा पणत्ता, तं जहा-पुढवि-काइया १ आउकाइया२ वाउकाइया३ वणस्सई काइया ४ ओराला तसा पाणा ५ ।१। उडूलोगे णं पंच वाधरा पणत्ता, तं जहा-एवं तं चैव २। तिरियलोगे णं पंच वायरा पणत्ता, तं जहा-एगिंदिया जाव पंचिंदिया ३। पंचविहा वायरतेउकाइया पणत्ता, तं जहा-इंगाले १ जाला २ मुम्मुरे ३ अच्ची ४

इन्द्रिय से मुण्ड होता है-अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय के विषयभूत शब्दमें राग द्वेष होने रूप भाव कोई २ करता है, वह पुरुष श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड कहा जाता है, इसी प्रकार से चक्षु इन्द्रिय मुण्ड आदि भी समझ लेना चाहिये । इस द्वितीय प्रकारान्तर से भी मुण्ड पांच प्रकारके कहे गये हैं, जैसे-क्रोध मुण्ड, मान मुण्ड, माया मुण्ड, लोभ मुण्ड और शिरो मुण्ड है, जो क्रोध को हटा देता है, क्रोध करने का त्याग कर देता है, वह क्रोध मुण्ड है, इसी प्रकारसे मान मुण्ड आदि भी समझ लेना चाहिये ॥सू० ३॥

नना संघधथी पुरुष पणु मुडित थाय छे ते मुंड (मुडित) ना पाय प्रकार क्खा छे—(१) श्रोत्रेन्द्रिय मुंड, (२) चक्षुरिन्द्रिय मुंड, (३) घ्राणेन्द्रिय मुंड, (४) रसनेन्द्रिय मुंड अने (५) स्पर्शेन्द्रिय मुंड.

जे श्रोत्रेन्द्रियमां मुंड अथवा श्रोत्रेन्द्रियनी अपेक्षाये मुंड अथवा श्रोत्रेन्द्रियना विषय रुप शण्डमां रागद्वेषधी रडित छेय छे तेने श्रोत्रेन्द्रिय मुंड कडे छे. जे न प्रमाणे चक्षुरिन्द्रिय मुंड आदि विषे पणु समजवुं. णील्ल रीते पणु पांच प्रकारना मुंड क्खा छे—(१) क्रोधमुंड, (२) मानमुंड, (३) मायामुंड, (४) लोभमुंड अने (५) शिरोमुंड. जे मायुस क्रोधने हर करे छे-क्रोधने त्याग करे छे तेने क्रोधमुंड कडे छे. जे न प्रमाणे मानमुंड आदि विषे पणु समजवुं. ॥ सू. ३ ॥

अलाए । पंचविहा वायखाउकाइया पणत्ता, तं जहा-पाईण-
वाए १ पडीणवाए २ दाहिणवाए ३ उदीणवाए ४ विदिस-
वाए ५। पंचविहा अचित्ता याउकाइया पणत्ता, तं जहा-
अकंते १ धंते २ पील्लि ३ सरीराणुगए ४ संसुच्छिमए ५ ॥सू०४॥

छाया—अधोलोके खलु पञ्च वादराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकायिकाः १,
अप्कायिकाः २, वायुकायिकाः ३, वनस्पतिकायिकाः ४, उदारस्रवाः प्राणाः ५।
१। ऊर्ध्वलोके खलु पञ्च वादराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एवं तदेव । तिर्यग्लोके खलु पञ्च
वादराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एकेन्द्रिया यावत् पञ्चेन्द्रियाः । पञ्चविधा वादरतेज-
स्कायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अङ्गारो १ ज्वाला २ मुर्मुः ३ अर्चिः ४ अलातम्
५। पञ्चविधा वादरवायुकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्राचीनवातः १, प्रतीचीन-
वातः २, दक्षिणवातः ३, उदीचीनवातः ४ विदिग्वातः ५। पञ्चविधा अचित्ता
वायुकायिकाः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आक्रान्तः १ ध्मातः २ पीडितः ३ शरीरानुगतः
४ संसृच्छिमः ५ ॥सू० ४॥

टीका—‘अहेलोगे’ इत्यादि—

अधोलोके खलु=निश्चयेन पञ्च-पञ्च संख्यका वादराः सन्ति । ते च पृथिवी
कायिकाः १, अप्कायिकाः २, वायुकायिकाः ३, वनस्पतिकायिकाः ४ तथा—
उदाराः=स्थूलाः त्रसाः प्राणाः=प्राणिनः ५ । तेजस्कायिका वायुकायिका अपि
त्रसा भवन्तीति ‘उदाराः’ इति विशेषणमुक्तम् । उदारत्वं चैकेन्द्रियापेक्षया बोध्यम् ।

यह सुण्डित अवस्था जो विशेष वादरजीव होते हैं, उन्हीं को होती
है । अब सूत्रकार वादरजीव विशेषोंका कथन करते हैं—

“अहे लोकेणं पंच वायरा पणत्ता” इत्यादि ।

टीकार्थ—अधोलोकमें पांच वादर हैं जैसे—पृथिवीकायिक १, अप्कायिक २
वायुकायिक ३ वनस्पतिकायिक ४ तथा उदार स्थूल त्रसप्राणी ५ तेजस्का-
यिक एवं वायुकायिक भी त्रस होते हैं, इसलिये उदार ऐसा विशेषण

आ सुंडित अवस्थानो सद्वभाव आदर एव विशेषोभा डाय छे. तेथी
डवे सूत्रकार आदर एव विशेषणुं कथन करे छे .

“अहे लोकेणं पंच वायरा पणत्ता” इत्यादि—

टीकार्थ—अधोलोकमां नीचे प्रमाणे पांच आदर एवो डाय छे—(१) पृथ्वीकायिक
(२) अप्कायिक, (३) वायुकायिक, (४) वनस्पतिकायिक अने (५) उदार स्थूल

अधोलोकवदेव ऊर्ध्वलोकेऽपि पञ्च वादरा बोध्याः । अधोलोकोर्ध्वलोकयोश्च तै-
जसा वादरा न सन्तीति पञ्च वादरा उक्ताः । ननु अधोलोके ऊर्ध्वकपाटद्वये
चापि तैजसा वादराः सन्ति, तर्हि कथयुक्तम्—अधोलोकोर्ध्वलोकयोश्च तैजसा
वादरा न सन्ति ? इति चेदाह—यद्यपि सन्ति परन्तु तेऽत्यतया न विवक्षिताः । ये
चोर्ध्वकपाटद्वये तेऽपि उत्पत्स्यमानत्वेन उत्पत्तिस्थान-स्थितत्वाद् न विवक्षिता
इति । तिर्यग्लोकेऽपि एकेन्द्रियादि पञ्चेन्द्रियान्ताः पञ्च वादराः सन्ति । तत्र—
एकेन्द्रियाः—एकं=स्पर्शनलक्षणम् इन्द्रियम्=एकेन्द्रियजातिनामकर्मोद्घातदावर-

कहा है । एकेन्द्रियकी अपेक्षा से उदारता जाननी चाहिये, अधोलोक
की तरह उर्ध्वलोक में भी इसी तरह से पांच वादर हैं । अधोलोक एव
उर्ध्वलोक में तैजस वादर नहीं हैं ।

शंका—अधोलोक में एवं उर्ध्व कपाटद्वय में तैजस वादर हैं, तो
फिर आप अधोलोक एवं उर्ध्वलोक में तैजस वादर नहीं है ऐसा
कैसे कहते हैं ?

उत्तर—यद्यपि ये वहाँ हैं परन्तु वे वहाँ बहुत थोड़े हैं, इसलिये
वहाँ वे विवक्षित नहीं हुए हैं । तथा जो ऊर्ध्वकपाटद्वय में तैजस वादर
कहे गये हैं, वे भी उत्पत्स्यमान होने से उत्पत्तिस्थान के आश्रित होने
रूपसे विवक्षित नहीं हुए हैं । तिर्यग्लोक में भी एकेन्द्रिय से लेकर
पञ्चेन्द्रिय तकके पांच वादर हैं । जिनको एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म के
उदयसे और तदावरण के क्षयोपशम से एक स्पर्शन इन्द्रिय है वे

त्रस प्राणी. तेजस्कायिक अने वायुकायिक पशु त्रस डोय छे, तेथी स्थूल त्रस
प्राणीने ' उदार ' विशेषणु लगाडवामां आण्यु छे. आ उदारता ऐकेन्द्रियेानी
अपेक्षासे समजवी जेधजे. उर्ध्वलोकमां पशु जे त्र प्रकरना पांच आदरे
छे. अधोलोक अने उर्ध्वलोकमां तैजस आदर नथी.

शंका—अधोलोकमां अने उर्ध्वकपाट द्वयमां पशु तैजस आदरने सदृ-
लाव डोय छे, छतां आप शा कारणे जेवुं कडे छे के उर्ध्वलोक अने
अधोलोकमां तैजस आदरने सदृलाव नथी ?

उत्तर—जे के तेमनुं त्यां अस्तित्व छे जइं, पशु तेओ त्या घणुं ज
अदप प्रमाणुमां छे, तेथी अडीं तेमने उद्वेण करवामा आण्ये नथी.

तथा जे उर्ध्वकपाटद्वयमां तैजस आदर कहे छे, तेओ पशु उत्पत्स्य-
मान डोवाथी उत्पत्ति स्थानमां आश्रित डोवा उये विवक्षित थया नथी.
तिर्यग्लोकमां पशु ऐकेन्द्रियथी लधने पञ्चेन्द्रिय पर्यन्तना पांच प्रकारना आदर

ળક્ષ્યોપગમાચ્છ-પૃથિવ્યાદય इत्यर्थः एवमेव द्वीन्द्रियप्रभृतीनामप्यर्थो बोध्यः ।
 एकेन्द्रियादि पञ्चेन्द्रियान्तेषु पूर्वपूर्वापेक्षया उत्तरोत्तरत्र इन्द्रियविशेषो जाति विशेष-
 पश्च बोध्य इति । सम्प्रति एकेन्द्रियानेत्र त्रियञ्चरुस्थानकत्वेनाह—‘पंचविहा’
 इत्यादि । वादरतेजस्कायिका जीवाःपञ्चविधाः=पञ्चप्रकाराः प्रज्ञप्ताः=कथिताः ।
 पञ्चविधत्वयोद्-तद्यथा-अङ्गारः प्रसिद्धः १। ज्वाला=छिन्नमूलाऽग्निशिखा २।
 मुर्मुर्=समाग्निक्करूपः ३। अर्चिः=अच्छिन्नमूलाऽग्निशिखा ४। अलातम्=
 उल्मुकम्-अर्धदग्धकाष्ठरूपम् ५। तथा-वादर-वायुकायिकाः पञ्चसंख्यकाः सन्ति ।

एकेन्द्रिय हैं, ऐसे ये एकेन्द्रिय पृथिवि आदि हैं । इसी तरह से दो
 इन्द्रिय आदिकोंका भी अर्थ समझ लेना चाहिये । एकेन्द्रिय से लेकर
 पञ्चेन्द्रिय तकमें पूर्व २ की अपेक्षा उत्तरोत्तर में इन्द्रिय की विशेषता
 जाति नामकर्म की विशेषता कह लेनी चाहिये ।

अब सूत्रकार एकेन्द्रियोंको ही तीन पांच स्थानकों से कहते हैं ।

“ पंचविहा ” इत्यादि—वादर तेजस्कायिक जीव पांच प्रकारके
 कहे गये हैं, जैसे—अङ्गार १, ज्वाला २, मुर्मुर् ३, अर्चि ४ और अलात
 ५ । इनमें अङ्गार तो प्रसिद्ध है १ जो अग्निशिखा छिन्न मूलवाली होती
 है वह ज्वाला है जो भस्म सहित अग्निकण रूप होता है वह मुर्मुर् है,
 जो अग्निशिखा अच्छिन्न मूलवाली होती है वह अर्चि है । एवं जो
 अर्धदग्ध काष्ठ रूप होता है वह उल्मुक अलात है । वादर वायुकायिक

लये છે. એકેન્દ્રિય ભતિ નામકર્મના ઉદયથી અને તદ્વાવરણ (તેનું આવરણ
 કરનારા) ક્ષયોપશમથી જેમને એક સ્પર્શેન્દ્રિયનો જ સદ્ભલ વ હોય છે, તેમને
 એકેન્દ્રિય લયે કહે છે. પૃથ્વીકાય આદિ લયેને એકેન્દ્રિય કહે છે. એ જ
 પ્રમાણે દ્વીન્દ્રિય આદિકેના વિષયમાં પણ સમજવું એકેન્દ્રિયથી લઇને
 પંચેન્દ્રિય પર્યન્તના લયેમાં પૂર્વપૂર્વની અપેક્ષાએ ઉત્તરોત્તરમાં ઇન્દ્રિયની
 વિશેષતા અને ભતિનામકર્મની વિશેષતાનું કથન થવું જોઇએ.

હવે સૂત્રકાર જુદી જુદી ત્રણ રીતે એકેન્દ્રિયોના પાંચ પ્રકારોનું કથન
 કરે છે. “ પંચવિહા ” ઇત્યાદિ—આદર તેજસ્કાયિક લવ પાંચ પ્રકારના કહ્યા
 છે—(૧) અંગાર, (૨) જ્વાળા, (૩) મુર્મુર, (૪) અર્ચિ અને (૫) અલાત.

અંગાર એટલે દેવતાનો અંગારો. જે અતિશિખા છિન્ન મૂળવાળી હોય
 છે તેને ‘ જ્વાળા ’ કહે છે, જેના ઉપર રાખ ળાગી ગઈ હોય એવા અગ્નિ-
 કણને—અંગારાને ‘ મુર્મુર ’ કહે છે જે અગ્નિશિખા અછિન્ન મૂળવાળી હોય
 છે તેને ‘ અર્ચિ ’ કહે છે અર્ધ દગ્ધ કાષ્ટ આદિ રૂપ જે અગ્નિ છે તેને
 ‘ અલાત ’ કહે છે.

पञ्चसंख्यकन्वमेवाह-तद्यथा-प्राचीनवातः=पूर्वदिग्वातः १, प्रतीचीनवातः=पश्चिमदिग्वातः, २ दक्षिणवातः=दक्षिणदिग्वातः ३, उदीचीनवातः=उत्तरदिग्वातः ४। एभ्यो भिन्नो वातो विदिग्वात इति ५।

तथा-अचित्ता वायुकायिकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-आक्रान्तः=चरणादिना आक्रान्ते भ्रूललादौ यो भवति स आक्रान्त इत्युच्यते १। ध्मातः-ध्माते शङ्खादौ वायुधर्मातः २। पीडितः=निष्पीड्यमाने जलार्द्रवस्त्रे वायुः पीडितः ३। शरीरानुगतः=उद्गारोच्छ्वासादिः ४। सम्मूर्च्छिमः=व्यजनादि जन्मः ५। एते आक्रान्तादयः पूर्वमचेतनाः पश्चात् सचेतना अपि भवन्तीति ॥मू० ४॥

पांच प्रकारके हैं, जैसे--प्राचीनवात, प्रतीचीनवात, दक्षिणवात, उदीचीनवात और विदिग्वात ५ इनमें पूर्व दिशाका जो वात है वह प्राचीनवात है, पश्चिम दिशाका जो वात है वह प्रतीचीनवात है, दक्षिण दिशाका जो वात है वह दक्षिणवात है, उत्तर दिशाका जो वात है वह उदीचीनवात है तथा इनसे भिन्न जो वात है वह विदिग्वात है। अचित्त जो वायुकायिक हैं वे पांच प्रकार के हैं, जैसे-आक्रान्त १, ध्मात २, पीडित ३, शरीरानुगत ४ और सम्मूर्च्छिम ५। चरणादि द्वारा आक्रान्त होने पर भ्रूल आदिमें जो वायु होता है वह ध्मात वायु है, जलार्द्र वस्त्र जब निष्पीड्यमान होता है, तब जो वायु होता है वह पीडित वायु है, शरीर में जो उद्गार उच्छ्वास आदि रूप वायु होता है वह शरीरानुगत वायु है, एवं जो वायु व्यजन आदिसे जन्म होता

वादर वायुकायिक पांच प्रकारना कछा छे—(१) प्राचीनवात, (२) प्रतीचीनवात, (३) दक्षिणवात, (४) उदीचीनवात अने (५) विदिग्वात.

पूर्व दिशाना वायुने प्राचीनवात कडे छे, पश्चिम दिशाना वायुने प्रतीचीनवात कडे छे, दक्षिण दिशाना वायुने दक्षिणवात कडे छे, उत्तर दिशाना वायुने उदीचीनवात कडे छे, अने अे सिवायनी दिशाओना वायुने विदिग्वात कडे छे. अचित्त वायुकायिकना नीचे प्रमाणे पांच प्रकार छे—(१) आक्रान्त, (२) ध्मात, (३) पीडित, (४) शरीरानुगत अने (५) सम्मूर्च्छिम अरु दि द्वारा आक्रान्त थरी वणते भ्रूल आदिमांथी ने वायु नीकणे छे तेने आक्रान्तवायु कडे छे शंभ आदिने वगाउती वणने ने वायु छूटे छे तेनु नाम ध्मातवायु छे सीना वस्त्रने ल्याने इड्डकाववामां आवे छे, त्यारे ने वायु नीकणे छे तेने पीडितवायु कडे छे. शरीरमांथी उद्गारास वणने, वाछूट वणने अने शण्डना उच्छ्वासे वणने ने वायु नीकणे छे तेने शरीरानुगत वायु कडे

कुशीलः ४, यथा सूक्ष्मकुशीलो ५ नाम पञ्चमः । निर्ग्रन्थः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-प्रथमसमयनिर्ग्रन्थः, १ अप्रथमसमयनिर्ग्रन्थः, २ चरमसमयनिर्ग्रन्थः, ३ अचरमसमयनिर्ग्रन्थः, ४ यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थः, ५। स्नातः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः-तद्यथा-अच्छविः १, अश्वलः, २ अकर्मांशः, ३ संसृद्धज्ञानदर्शनधरः ४ अर्हन् जिनः केवली, ४ अपरिस्रावी ५ ॥सू० ५॥

टीका—‘ पंच निग्गंथा ’ इत्यादि—

निर्ग्रन्थाः-श्रमणाः, ते पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः । पञ्चविधत्वमेवाह-तद्यथा-पुलाकः-तन्दुलकणरहित पलञ्जिरूप निस्सारं धान्यं पुलाक इत्युच्यते, तत्सदृश-चारित्रयुक्तः साधुरपि पुलाक इत्युच्यते ।

अयं भावः-तपः-श्रुतसमुत्पन्नायाः संघादि प्रयोजने सति ससैन्यस्य

पहिले पञ्चेन्द्रिय सामान्य रूपसे कहे गये हैं । अब पञ्चेन्द्रियों में विशेषरूप जो निर्ग्रन्थ हैं उन्हें अथवा सचेतन अचेतन जो वायु कही गई है सो उसकी यथार्थ रूपसे रक्षा करनेवाले जो निर्ग्रन्थ हैं उन्हें अब सूत्रकार प्रकट करते हैं--“ पंच निग्गंथा पणत्ता ” इत्यादि ।

टीकार्थ-निर्ग्रन्थ पांच प्रकारके कहे गये हैं, वे ये हैं--पुलाक १ बकूशर कुशील ३ निर्ग्रन्थ ४ और स्नात ५ । तन्दुलकणों से रहित पलञ्जिरूप जो पोचा निस्सार धान्य होता है उसे पुलाक कहा जाता है, इसके जैसे चारित्र्य से युक्त जो साधु होता है वह भी पुलाक कहलाता है । तात्पर्य यह है कि तप और श्रुत की आराधना से उत्पन्न हुई-तथा संघादिके प्रयोजन होने पर ससैन्य चक्रवर्ती आदिके विनाश करने में समर्थ

पडेलां पञ्चेन्द्रियतु सामान्य इपे कथन करवामां आव्यु हुवे पञ्चेन्द्रिय विशेषरूपे णे निर्ग्रन्थां छे तेमतुं सूत्रकार निरूपणु करे छे. ते निर्ग्रन्थां ण सचेतन अचेतन णे वायु कइया छे, तेतुं यथार्थं इपे रक्षणु करे छे. आ प्रकारना संबधने अनुलक्षिने वायुकायिकेना प्रकारेतुं निरूपणु करीने हुवे सूत्रकार निर्ग्रन्थेतुं निरूपणु करे छे “ पंच निग्गंथा पणत्ता ” इत्यादि—

टीकार्थ-निर्ग्रन्थाना नीचे प्रमाणे पांच प्रकार कइया छे—(१) पुलाक, (२) बकूश, (३) कुशील, (४) निर्ग्रन्थ अने (५) स्नात

बोधाना कइयाथी रडित णे पराण डोय छे तेने पुलाक कडे छे. तेना णेवा चारित्र्यी युक्त णे साधु डेय छे तेने पणु पुलाक कडेवाय छे अटले डे तप अने श्रुतनी आराधनाथी उत्पन्न धयेत्ती अने संघादिना रक्षणेतुं प्रयोजन उद्देलवे त्तारे सैन्ययुक्त चक्रवर्ती आदिने विनाश करवाने समर्थ

बकुशः—शियिलाचारितया करचरणप्रक्षालनं नयनादिमलाद्यपनयनं च यः शरीर-
सौन्दर्यार्थं करोति सः । उपकरणबकुशश्च य अकाल एव चोलपट्टादिकं प्रक्षाल्य
पात्रादिकं च तैलेन चमत्कृत्य विभूपार्थं धारयति सः । उभयेऽप्येते प्रभूतवस्त्र-
पात्रादिरूपाम् ऋद्धिं 'एते गुणवन्तो विशिष्टाः साधवः' इत्यादि प्रवादरूपां
ख्यातिं च कामयन्ते, सातगौरवयुक्तयाऽहोरात्रानुष्ठेयक्रियासु नोद्युञ्जते, घृष्ट-
जङ्घतैलाभ्यञ्जितशरीरत्वादिना एषां शिष्यपरिवारोऽसंयमयुक्तो भवति, तथा-
सर्वदेशच्छेदाहीतिचारजनितशबलत्वेनैते बहुच्छेदशबलयुक्ताश्चापि भवन्तीति

प्रक्षालन एवं नयन आदि के मलादिक का अपनयन शारिरिक सौन्दर्य
के निमित्त करता है वह शरीर बकुश है । तथा जो अकाल में ही
चोलपट्टक आदि का प्रक्षालन करके एवं पात्रादिकों को तैलसे चिकना
करके सौन्दर्य के निमित्त धारण करता है वह उपकरण बकुश है । ये
दोनों भी वस्त्र पात्रादि रूप ऋद्धि को तथा ये "गुणशाली विशिष्ट
साधुजन हैं" इत्यादि प्रवादरूप ख्याति को कामनावाले होते हैं, सात
गौरव युक्त होने के कारण रातदिन की अनुष्ठेय क्रियाओंमें ये उपयोग
पूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले नहीं होते हैं । जङ्घादिकों में तैल की मालिश
करने से एव चिकनाचुपड़ा शरीर आदि रखनेसे इनका शिष्य परिवार
असंयम युक्त होता है तथा सर्वदेश संयम को छेदने के योग्य जो अति-
चार होते हैं अर्थात् समस्त रूपसे संयम को या देशरूपसे संयम को
छेदने योग्य जो अतिचार हैं, उन अतिचारों को ये सेवन करते हैं,

वारंवार प्रक्षालन करे छे, अने आभ, कान आदिने मेल वारवार कढया
करे छे—आ षधुं शरीर सौंदर्य निमित्ते करनार साधुने शरीर षधुश कडे छे.
जे साधु अकाणे चोलपट्टक आदिनुं प्रक्षालन करीने अने पात्रादिकेने तेल
अथवा वार्निश आदि वडे मुलायम अने अणकतां करीने सौंदर्यने निमित्ते
धारणु करे छे, ते साधुने उपकरणु षधुश कडे छे. आ षन्ने प्रकारना
साधुओ वस्त्रपात्रादि इप ऋद्धिनी अने "आ गुणसंपन्न विशिष्ट साधुजन
छे" आ प्रकारनी अथातिनी कामनावाणे डोय छे.

सात गौरवयुक्त डोवाने करणु रातदिननी अनुष्ठेय क्रियाओमां तेओ
उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करनारा डोता नथी. नं'व आदिपर तेलनुं मालिश
करवाथी अने स्निग्ध शरीरादि राभवाने करणु तेमने शिष्य परिवार पश्य
असंयमयुक्त डोय छे तथा समस्त इपे संयमनुं छेदन करनारा अथवा देश
इपे संयमनुं छेदन करनारा जे अतिचारे छे तेमनु तेओ सेवन करता डोय
छे तेथी तेमने संयम अतिचारयुक्त डोय छे.

चक्रवर्त्तपादेरपि विनाशने ममर्थायाः लब्धेहृपजीवनेन ज्ञानाद्यतिचारासेवनेन वा सफलसंयममारगलनात् पलञ्चिपत्रिस्तारो यः स पुलाक उच्यते इति ।

उक्तंचात्र—

“ जिन प्रणीतादागमात् सदैवाप्रतिपातिनो ज्ञानानुसारेण क्रियानुष्ठायिनो लब्धिसुपजीवन्तो निर्ग्रन्थाः पुलाकाः भवन्ति ” इति ।

इत्थं चायं लब्धिपुलाकाऽऽसेवनापुलाकभेदेने द्विविधो ज्ञेयः १। तथा—
वक्रुशः—वक्रुशमंयमयोगाद् वक्रुशः—शरीरोपकरणविभूपादिना शबलचारित्रः ।
अथ सोदनीयस्य प्रत्युद्युक्तः शरीरवक्रुशोपकरणवक्रुशभेदेन द्विविधः । तत्र—

पेसी लब्धिकी प्राप्तिसे अथवा ज्ञानादिकर्म अतिचारके आसेवन से सकल संयम रूप सारके गल जानेके कारण जो पलञ्चि (पलाल) की तरह सारसे रहित होना है, ऐसा वह साधु पुलाक कहलाता है । कहा भी है—“ जिनप्रणीतादागमात् सदैवाप्रतिपातिनो ज्ञानानुसारेण क्रियानुष्ठायिनो लब्धिसुपजीवन्तो निर्ग्रन्थाः पुलाकाः भवन्ति ” जो जिन प्रणीत आगम के अनुसार सदा अपनी क्रियाएँ करता है, एवं उसीका जो श्रद्धालु होता है और जो लब्धिवाला होता है वह पुलाकमुनि है । यह पुलाक लब्धिपुलाक और आसेवना पुलाक के भेद से दो प्रकार का है, जो शरीर और उपकरणको विभूपा आदि से शबल चारित्रवाला होता है और हमीसे जिसका संयम वक्रुश होना है, अतिचार सहित होता है, ऐसा साधु वक्रुश कहा गया है, यह वक्रुश शरीर वक्रुश और उपकरण वक्रुश के भेदसे दो प्रकारका है । इनमें जो कर, चरण का

येवी लब्धिनी प्राप्ति वटे, अथवा ज्ञानादिकर्मा अतिचारनुं आसेवन करवाथी गुरु संयम रूप सार शरीर लवाने कारणे पराणनी जेम साररहित डोय छे, येवा साधुने पुलाक कहे छे इत्यु पण्य छे के “ जिनप्रणीतादागमात् सदैवा प्रतिपातिनो ज्ञानानुसारेण क्रियानुष्ठायिनो लब्धिसुपजीवन्तो निर्ग्रन्थो पुलाका भवन्ति ” के साधु सदा जिनप्रणीत आगम अनुसार पोतानी क्रियाओ करे छे, अने तेना प्रत्ये के श्रद्धावणो डोय छे, अने के लब्धिवाणो डोय छे, ते साधुने पुलाकमुनि कहे छे ते पुलाकना लब्धिपुलाक अने आसेवना पुलाकना सेमी के प्रकटना डोय छे.

ते साधु शरीर अने उपकरणने विभूषित करवाने कारणे शबल (इषित) चारित्रवाणो डोय छे अने ते कारणे येना संयम गुरुश डोय छे—अतिचार सहित डोय छे, येवा साधुने गुरुश कहे छे. गुरुशना के प्रकटर पडे छे—
(१) शरीर गुरुश अने (२) उपकरण गुरुश के साधु डोय, पण आदिनुं

बकुशः—शिथिलाचारितया करचरणप्रक्षालनं नयनादिमलाद्यपनयनं च यः शरीर-
सौन्दर्यार्थं करोति सः । उपकरणबकुशश्च यः अकाल एव चोलपट्टादिकं प्रक्षाल्य
पात्रादिकं च तैलेन चमत्कृत्य विभूषार्थं धारयति सः । उभयेऽप्येते प्रभूतवस्त्र-
पात्रादिरूपाम् ऋद्धिं 'एते गुणवन्तो विशिष्टाः साधवः' इत्यादि प्रवादरूपां
ख्यातिं च कामयन्ते, सातगौरवयुक्ततयाऽहोरात्रानुष्ठेयक्रियासु नोद्युज्जते, घृष्ट-
जङ्घतैलाभ्यञ्जितशरीरत्वादिना एषां शिष्यपरिवारोऽसंयमयुक्तो भवति, तथा-
सर्वदेशच्छेदाहीतिचारजनितशबलत्वेनैते बहुच्छेदशबलयुक्ताश्चापि भवन्तीति

प्रक्षालन एवं नयन आदि के मलादिक का अपनयन शारिरिक सौन्दर्य
के निमित्त करता है वह शरीर बकुश है । तथा जो अकाल में ही
चोलपट्टक आदि का प्रक्षालन करके एवं पात्रादिकों को तैलसे चिकना
करके सौन्दर्य के निमित्त धारण करता है वह उपकरण बकुश है । ये
दोनों भी वस्त्र पात्रादि रूप ऋद्धि को तथा ये " गुणशाली विशिष्ट
साधुजन हैं " इत्यादि प्रवादरूप ख्याति को कामनावाले होते हैं, सात
गौरव युक्त होने के कारण रातदिन की अनुष्ठेय क्रियाओंमें ये उपयोग
पूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले नहीं होते हैं । जङ्घादिकों में तैल की मालिश
करने से एव चिकनाचुपड़ा शरीर आदि रखनेसे इनका शिष्य परिवार
असंयम युक्त होता है तथा सर्वदेश संयम को छेदने के योग्य जो अति-
चार होते हैं अर्थात् समस्त रूपसे संयम को या देशरूपसे संयम को
छेदने योग्य जो अतिचार हैं, उन अतिचारों को ये सेवन करते हैं,

वारंवार प्रक्षालन करे छे, अने आंभ, डान आदिने तेल वार वार डढया
करे छे—आ गधुं शरीर सौंदर्य निमित्ते करनार साधुने शरीर गधुश कडे छे.
वे साधु अकाणे चोलपट्टक आदिनुं प्रक्षालन करीने अने पात्रादिडेने तेल
अथवा वार्निश आदि वडे मुलायम अने अणकतां करीने सौंदर्यने निमित्ते
धारणु करे छे, ते साधुने उपकरणु गधुश कडे छे. आ गन्ने प्रकारना
साधुओ वस्त्रपात्रादि इय ऋद्धिनी अने " आ गुणसंपन्न विशिष्ट साधुजन
छे " आ प्रकारनी ज्ञातिनी कामनावाणे डोय छे.

सात गौरवयुक्त डोवाने डारणु रातदिननी अनुष्ठेय क्रियाओमां तेओ
उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करनारा डोता नथी. जंघ आदिपर तेलनुं मालिश
करवाथी अने स्निग्ध शरीरादि राखवाने डारणु तेमने शिष्य परिवार पशु
असंयमयुक्त डोय छे. तथा समस्त इपे संयमनुं छेदन करनारा अथवा देश
इपे संयमनुं छेदन करनारा वे अतिचारे छे तेमनु तेओ सेवन करता डोय
छे तेथी तेमने संयम अतिचारयुक्त डोय छे

૨। તથા—કુશીલઃ—ઉત્તરગુણપ્રતિસેવનેન સંજ્વલનકપાયોદયેન વા દૂપિતત્વાત્ કુત્સિતં શીલમ્=અષ્ટાદશશીલાઙ્ગ સહસ્રભેદં યસ્ય સ તથા । અયં પ્રતિસેવનાકુશીલ કપાયકુશીલભેદાદ્ દ્વિવિધઃ । તત્ર યે નૈર્ગ્રન્થ્યમાપન્ના અપિ અનિયતેન્દ્રિયત્વાત્ પિષ્કવિશુદ્ધિસમિતિભાવના તપઃ પ્રતિમાભિગ્રહાદિષુ ઉત્તરગુણેષુ કથંચિત્ કિંચિ- દેવ વિરાધનાં કુર્વન્તો જિનાજ્ઞાણુલ્લઙ્ગ્યન્તિ તે પ્રતિસેવનાકુશીલાઃ । યે તુ સંયતા સન્તોઽપિ કથંચિદુદીરિતસંજ્વલનકપાયા ભવન્તિ તે કપાયકુશીલા इति ३। તથા—નિર્ગ્રન્થઃ—નિર્ગતો ગ્રન્થાત્=મોહનીયાભિધાદ્ યઃ સઃ । અયં ચ ક્ષીણ- કપાયોપશાન્તમોહભેદેન દ્વિવિધ इति ४।

અતઃ इनका संयम अतिचार युक्त होता है। उत्तर गुणोंके प्रतिसेवन से अथवा संज्वलनकषाय के उदय से दूषित होने से १८००० शील के भेद जिसके कुत्सित हैं वह कुशील है, यह कुशील प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशीलके भेदसे दो प्रकारका है । जो निर्ग्रन्थभावको प्राप्त हुए भी अनियत इन्द्रियवाले होनेसे पिण्ड वि- शुद्धि समिति भावना तप एवं अभिग्रह आदिरूप उत्तर गुणोंमें किसी तरहसे कुछ थोड़ी बहुत विराधना करते हुए जिनाज्ञाका उल्ल- ङ्घन करते हैं वे प्रतिसेवनाकुशील हैं, तथा जो संयत होते हुए भी कथञ्चित् उदय प्राप्त संज्वलन कषायवाले होते हैं वे कषायकुशील हैं । तथा जो मोहनीय रूप ग्रन्थसे निर्गत होता है, वह निर्ग्रन्थ है यह नि- ग्रन्थ क्षीण कषाय और उपशान्त मोहके भेदसे दो प्रकारका होता है,

ઉત્તરગુણોના પ્રતિસેવનથી અથવા સંજ્વલન કષાયના ઉદયથી દૂષિત થવાને કારણે જેના ૧૮૦૦૦ શીલાના ભેદ કુત્સિત થયેલા છે, એવા સાધુને કુશીલ કહે છે તેના જે ભેદ કહ્યા છે—(૧) પ્રતિસેવનાકુશીલ અને (૨) કષાય કુશીલ.

જે સાધુ અનિયત ઇન્દ્રિયવાળો (ઇન્દ્રિયોપર કાળૂ રાખવાને અસમર્થ) હોવાને કારણે પિંડવિશુદ્ધિ, સમિતિ, ભાવના, તપ, પ્રતિમા અને અભિગ્રહ આદિ રૂપ ઉત્તરગુણોમાં કોઈપણ પ્રકારે વધુ ઓછી વિરાધના કરતો હોવાથી જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લઘન કરે છે, તે સાધુને પ્રતિસેવનાકુશીલ કહે છે. સંયત હોવા છતાં પણ જેમનામાં સંજ્વલન કષાયનો વધુ ઓછો ઉદય હોય છે, એવા સાધુઓને કષાય કુશીલ કહે છે.

જે સાધુ મોહનીય રૂપ ગ્રન્થ (બન્ધન) થી મુક્ત હોય છે, તેને નિર્ગ્રન્થ કહે છે. તે નિર્ગ્રન્થના નીચે પ્રમાણે જે ભેદ કહ્યા છે—(૧) ક્ષીણકષાય અને (૨) ઉપશાન્તમોહ.

સ્નાતકઃ -- શુક્લધ્યાનરૂપજલક્ષાલિતસકલઘાતિકર્મમલસમૃદ્ધતયા સ્નાત
 ઇવ સ્નાતઃ, સ એવ સ્નાતકઃ । અયમપિ સયોગ કેવલ્યયોગકેવલિભેદેન દ્વિવિધ
 ઇતિ ૫ । ઇત્યં નિર્ગ્રન્થભેદાનુક્તવા સમ્પતિ તેષામેવ એકૈકસ્ય પશ્ચ પશ્ચભેદાનાહ—

જો શુક્લધ્યાનરૂપ જલસે ક્ષાલિત હુણ સકલ ઘાતિયો કર્મરૂપ મલ-
 વાલા હોતા હૈ, અતએવ જો સ્નાતકી તૂહ સ્નાત હોતા હૈ, એસા વહ
 સાધુ સ્નાતક કહા ગયા હૈ । જિસમેં સવજ્ઞના પ્રકટ હો ચુકી હૈ, વહ
 સ્નાતક હૈ । યહ સ્નાતક સયોગ કેવલી ઓર અયોગ કેવલીકે ભેદસે
 દો પ્રકારકા હોતા હૈ । તાત્પર્ય ઇસ સમસ્ત કથનકા એસા હૈ કિ
 યહાં નિર્ગ્રન્થકે તરતમ રૂપસે હોનેવાલે ઓવોંકી અપેક્ષા યે પાંચ ભેદ
 કિયે ગયેહૈં । સૂલગુણ તથા ઉત્તર ગુણમેં પરિપૂર્ણતા પ્રાપ્ત ન કરતે ઓ
 વીતરાગ પ્રણીત આગમસે કમ્બી અસ્થિર ન હોનેવાલા પુલાક નિર્ગ્રન્થ
 હૈ । પુલાક નામ પલાલકા હૈ, વહ જૈસે સારભાગ રહિત હોતા હૈ, વૈસેહી
 યે નિર્ગ્રન્થ હોતે હૈં યે પુલાક ઉત્તર ગુણોંકો ઉત્તમતાસે નહીં પાલતે હૈં
 સાધમેં સૂલગુણોંમેં ઓ પૂર્ણતાકો પ્રાપ્ત નહીં હોતે હૈં । જો વ્રતોંકો પૂરી
 તરહસે પાલતે હૈં કિન્તુ શરીર ઓર ઉપકરણોંકો સંસ્કારિત કરતે રહતે
 હૈં ઋદ્ધિ ઓર યશકી અભિલાષા રખતેહૈં, શિષ્યાદિ પરિવારસે ધિરે રહતે
 હૈં । એવં મોહજન્ય દોષસે યુક્તહૈ વે ચકુશહૈં । કુશીલ નિર્ગ્રન્થ દો પ્રકારકે

શુક્લધ્યાન રૂપ જલ વડે જેનો ઘાતિયા કર્મરૂપ મળ (મેલ) ધોવાઈ
 જવાને કાણે જે સાધુ સ્નાત મનુષ્યના જેવો બની ગયો હોય છે તેને
 સ્નાતક કહે છે. અથવા જેનામાં સર્વજ્ઞતા પ્રકટ થઈ ચુકી છે તે સ્નાતક છે
 તે સ્નાતકના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ કહ્યા છે—(૧) સયોગ કેવલી, (૨) અયોગ કેવલી

આ સમસ્ત કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—અહીં નિર્ગ્રન્થના તરતમ
 રૂપે પ્રકટ થનારા ભાવોની અપેક્ષાએ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે મૂળગુણો અને
 ઉત્તરગુણોમાં પરિપૂર્ણતા પ્રાપ્ત ન કરવા છતાં પણ વીતરાગ પ્રણીત આગમમાં
 સદા સ્થિર રહેનાર સાધુને અહીં પુલાક નિર્ગ્રન્થ કહ્યો છે પુલાક એટલે
 પરાણ. પરાણ જેમ સારભાગ રહિત હોય છે, એ જ પ્રમાણે આ પુલાક
 નિર્ગ્રન્થ પણ સારરહિત હોય છે, કારણ કે તેઓ ઉત્તરગુણોનું સંપૂર્ણ રીતે
 પાલન કરતા નથી એટલું જ નહિ પણ મૂળગુણોમાં પણ પૂર્ણતા પ્રાપ્ત કરતા
 નથી જેઓ વ્રતોનું સંપૂર્ણ પાલન કરે છે, પરન્તુ શરીર અને ઉપકરણોને
 સંસ્કારિત કરતા રહે છે, ઋદ્ધિ અને યશની અભિલાષા એવે છે, પગ્વારથી
 વીંટળાયેલા રહે છે, અને મોહજન્ય દોષથી યુક્ત હોય છે, એવા સાધુઓને

‘ પુલાવ પંચવિદે ’ ઇત્યાદિના ।

પુલાકઃ=આસેવનાપુલાકલલ્લિધપુલાકભેદેન દ્વિવિધઃ પ્રોક્તઃ તત્ર-
આસેવનાપુલાકઃ - જ્ઞાનપુલાકાદિભેદેન પશ્ચવિધઃ । તત્ર - યસ્વ-
લિત્ મિલિતાદિભિરાચારૈ જ્ઞાતમાશ્રિત્યાત્માનમસારં કરોત્તિ સ જ્ઞાનપુલાકઃ ૧।

હોતે હૈં-પ્રતિસેવનાકુશીલ ઓરકષાય કુશીલ જિનકો પરિગ્રહસે
આસક્તિ નહીં હૈ જો મૂલગુણો ઓર ઉત્તરગુણોકો પાલતે હૈં તો મી
કદાચિત્ ઉત્તરગુણોકી વિરાધના કર લેતે હૈં, વે પ્રતિસેવનાકુશીલ
હૈં જો અન્ય કષાયો પર વિજય પાકર મી સંજ્વલન કષાયકે આધીન
હૈં વે કષાય કુશીલ નિર્ગ્રન્થ હૈં । જિન્હોને રાગદ્વેષકા અભાવ કરં દિયા
હૈ, ઓર અન્તર્મુહૂર્ત્તમો જો કેવલજ્ઞાનકો પ્રાપ્ત કરતે હૈં વે નિર્ગ્રન્થ નિર્ગ્રન્થ
હૈં । સર્વજ્ઞતા પ્રાપ્ત જો નિર્ગ્રન્થ હૈં વે સ્નાતક હૈં ।

હસ પ્રકાર નિર્ગ્રન્થકે ભેદોકો કહકર અવ સૂત્રકાર ઉનમોસે ંક
બકકે પાંચ ૨ ભેદોકો કહતે હૈં-“ પુલાવ પંચવિદે ” ઇત્યાદિ-પુલાક
આસેવના પુલાક ંવં લલ્લિધપુલાકકે ભેદસે દો પ્રકારકા કહા ગયા
હૈ-હનમો જો આસેવનાપુલાક હૈ, વહ જ્ઞાનપુલાક આદિકે ભેદસે પાંચ
પ્રકારકા હૈ, જો સ્વલના મિલિત આદિ આચારોસે જ્ઞાનકો આશ્રિત
કરકે આત્માકો અસાર કરતા હૈ, વહ જ્ઞાનપુલાક હૈ ૧ કુદષ્ટિકે સંસ્તવ

બકુશ કહે છે. કુશીલ નિર્ગ્રન્થના બે પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) પ્રતિસેવનાકુશીલ
અને (૨) કષાયકુશીલ.

બેમને પરિચલ્લ પ્રત્યે આસક્તિ નથી, બેઓ મૂળગુણો અને ઉત્તરગુણોનું
પાલન કરે છે, છતાં પણ બેઓ કયારેક ઉત્તરગુણોની વિરાધના કરી નાખે છે,
એવા સાધુઓને પ્રતિસેવનાકુશીલ કહે છે બે સાધુઓ અન્ય કષાયો પર
વિજય પ્રાપ્ત કરવા છતાં સંજ્વલન કષાયને આધીન રહે છે, તે સાધુઓને
કષાય કુશીલ કહે છે. બેમણે રાગદ્વેષને અભાવ કરી નાખ્યો છે અને અન્ત-
ર્મુહૂર્ત્તમાં બેઓ કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે છે, તેમને નિર્ગ્રન્થ કહે છે. બેમણે
સર્વજ્ઞતા પ્રાપ્ત કરી છે એવા નિર્ગ્રન્થને સ્નાતક કહે છે.

નિર્ગ્રન્થના ભેદોનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર તે પ્રત્યેક ભેદના બે
પાંચ પાંચ ઉપભેદો વડે છે તેનું કથન કરે છે. “ પુલાવ પંચવિદે ” ઇત્યાદિ
પુલાકના આસેવનાપુલાક અને લલ્લિધપુલાક નામના બે ભેદ કહ્યા છે.
તેમાંથી બે આસેવનાપુલાક છે તેમાંથી જ્ઞાનપુલાક આદિ પાંચ ભેદ કહ્યા છે. બે
સ્વલનામિલિત આદિ આચારો વડે જ્ઞાનને આશ્રિત કરીને આત્માને અસાર
કરે છે, તે સાધુને જ્ઞાનપુલાક કહે છે. (૨) કુદષ્ટિના સંસ્તવ આદિ વડે બે

તથા—કુદૃષ્ટિ સંસ્તવાદિના યો દર્શનં નિસ્સારં કરોતિ સ દર્શનપુલાકઃ ૨। તથા—
મૂલોત્તરગુણાન્ યઃ પ્રતિસેવતે સ ચરણપુલાકઃ ૩। યઃ સાધૂનાં યલ્લિઙ્ગં, તતો-
ઽધિકલિઙ્ગં ગૃહ્ણાતિ સ લિઙ્ગપુલાકઃ ૪। યસ્તુ ક્વિચિત્ પ્રમાદ્યતિ મનસા વા અ-
કલ્પ્યં ગૃહ્ણાતિ સ યથાસૂક્ષ્મપુલાકો નામ પુલાકસ્ય પશ્ચમો ભેદઃ ૫। લઘ્વિપુલાકથ
૧કવિધ એવેતિ સ નાત્ર વિવક્ષિત ઇતિ । તથા—શરીરવકુશોપકરણવકુશભેદદ્વય-
વિશિષ્ટો વકુશોઽપિ આભોગવકુશાદિભેદેન પશ્ચવિધઃ । તત્ર—યઃ શરીરવિભૂષા-
મુપકરણવિભૂષાં ચ ચિન્તનપુરસ્સરં કરોતિ સ આભોગવકુશઃ ૧। યઃ સહસા-
કરોતિ સઃ અનાભોગવકુશઃ ૨। યઃ પ્રચ્છન્નતયા કરોતિ સ સંતૃતવકુશઃ
૩। યઃ પ્રકટતયા કરોતિ સઃ અસંતૃત વકુશઃ ૪। સંતૃ

આદિસે જો દર્શનકો નિસ્સાર કરતા હૈ, વહ દર્શન પુલાક હૈ ૨ મૂલ-
ગુણોં એવં ઉત્તર ગુણોંકી જો પ્રતિસેવના કરતા હૈ, વહ ચરણપુલાક હૈ
૩ જો સાધુઓંકા લિઙ્ગ હૈ ઉસસે અધિક લિઙ્ગકો જો ગ્રહણ કરતા હૈ,
વહ લિઙ્ગ પુલાક હૈ, ૪ જો કુછ ૨ પ્રમાદ પતિત હો જાતા હૈ, અથવા
મનસે અકલ્પ્યકો ગ્રહણ કરતાહૈ, વહ યથાસૂક્ષ્મ પુલાક હૈ । યહ પુલા-
કકા પાંચવાં ભેદ હૈ । લઘ્વિપુલાક એક પ્રકારકાહી હોતા હૈ, અતઃ
ઉસકી યહાં વિવક્ષા નહીં હુઈ હૈ । શરીર વકુશ એવં ઉપકરણ વકુશકે
ભેદસે દો ભેદવાલા હુઆ વકુશ ઓ આભોગવકુશ આદિકે ભેદસે
પાંચ પ્રકારકા હૈ, ઇનમેં જો વિચારપૂર્વક શરીરકી વિભૂષા એવં ઉપકર-
ણકી વિભૂષાકો કરતા હૈ, વહ આભોગવકુશ હૈ ૧ ઓર સહસા વિના
વિચારેહી શરીરકી વિભૂષા એવં ઉપકરણકી વિભૂષાકો કરતા હૈ, વહ
અનાભોગ વકુશ હૈ ૨। તથા જો ગુપ્ત રૂપસે શરીરાદિકોંકી વિભૂષા

દર્શનને નિસ્સાર કરે છે, તેને દર્શનપુલાક કહે છે. (૩) મૂલગુણો અને ઉત્તર
ગુણોની જે પ્રતિસેવના કરે છે તેને ચરણપુલાક કહે છે (૨) રમેહરણ, મુદ્ધ
પત્તિ આદિ રૂપ સાધુઓના જે લિંગ છે, તેના કરતાં અધિક લિંગને ધારણ
કરનાર સાધુને લિંગપુલાક કહે છે. (૫) જે સાધુ થોડા થોડા પ્રમાણ
બની ગયો હોય છે તેને અથવા જે મનથી અકલ્પ્યને ગ્રહણ કરે છે તેને
યથાસૂક્ષ્મ પુલાક કહે છે. લઘ્વિપુલાક એક જ પ્રકારનો હોય છે તેથી અહીં
તેનું વિવેચન કયું નથી

હવે સૂત્રકાર બકુશના ભેદોતું નિરૂપણ કરે છે. બકુશના મુખ્ય બે ભેદ
કહ્યા છે—(૧) શરીર બકુશ અને (૨) ઉપકરણ બકુશ બકુશના નીચે પ્રમાણે
પાચ ભેદ પણ પડે છે—(૧) આભોગ બકુશ—જે સાધુ વિચારપૂર્વક શરીર
અને ઉપકરણોની વિભૂષા કરે છે તેને આભોગ બકુશ કહે છે. (૨) વિના વિચાર
જ સહસા શરીર અને ઉપકરણોની વિભૂષા કરનાર સાધુને અનાભોગ બકુશ કહે

તત્વમસંવૃતત્વં ચ મૂલોત્તરગુણાશ્રિતત્વં વોધ્યમ્ । તથા યઃ ક્વિચિત્ પ્રમાત્યતિ નેત્ર-
મલાઘપનયનં વા કરોતિ સ યથા સૂક્ષ્મવકુશો નામ પञ्चमवकुशभेदः ५। તથા-
પ્રતિસેવનાકુશીલકષાયકુશીલભેદદ્વયવિશિષ્ટઃ કુશીલોઽપિ જ્ઞાનકુશીલદર્શન
કુશીલાદિભેદેન પञ्चविधः । તત્ર-યો જ્ઞાનમુપજીન્ પિણ્ડવિશુદ્ધ્યાદિ સ્વલનાદિ
પૂર્વકં પિણ્ડાદિકં પ્રતિસેવમાનો જિનાજ્ઞામ્ ઉલ્લહ્યવતિ સ જ્ઞાનકુશીલઃ ૧। एवं
दर्शनचारित्रं लिङ्गं च उपजीवन् दर्शनकुशीलश्चारित्रकुशीलो ३। लिङ्गकुशीलश्च
वोध्यः । તથા-‘ અયં તપશ્ચરતીત્યેવં જનૈઃ પ્રગંસિતો યો હૃપ્યતિ સ યથામુધ્મ-

करताहै, वह संवृत षकुशाहै ३। एवं जो प्रकट रूपमें शरीरादिकोंकी वि-
भूषा करताहै, वह असंवृत षकुशाहै ४। संवृतत्व और असंवृतत्व मूल
गुण और उत्तर गुणोंके आश्रित जानना चाहिये । तथा जो कुछ प्रमाद
पतित होता है, अथवा नेत्रके मैल आदिका अपनयन करता है, वह
यथा सूक्ष्मवकुश नामका पांचवां भेद है, प्रतिसेवना कुशील और
कषाय कुशील इन दोनों भेदोंसे विशिष्ट जो कुशील है, वह ज्ञान-
कुशील दर्शनकुशील आदिके भेदसे पांचप्रकारका है । इनमें जो ज्ञानसे
युक्त होता भी पिण्ड विशुद्धि आदिमें स्वलना आदि पूर्वक पिण्डादि-
कका प्रतिसेवन करता है, वह जिनेन्द्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है,
ऐसा यह ज्ञानकुशील है १ । इसी प्रकारसे दर्शन और चारित्र एवं
लिङ्गको धारण करता हुआ अर्थात् उन्हे अपने निर्वाह करनेका साधन
मानता है, ऐसा वह दर्शनकुशील और चारित्रकुशील लिङ्ग कुशील
कहा गया है । तथा यह तपस्या करता है, ऐसी जनोंद्वारा कृत प्रण-

છે (૩) જે શુભ રૂપે શરીરાદિકોની વિભૂષા કરે છે તેને સંવૃત ષકુશ કહે
છે. (૪) જે પ્રકટ રીતે શરીરાદિકોની વિભૂષા કરે છે તેને અસંવૃત ષકુશ
કહે છે. સંવૃતત્વ અને અસંવૃતત્વ મૂલગુણ અને ઉત્તરગુણોને આશ્રિત સમજવું.
(૫) જે સાધુ થોડો થોડો પ્રમાદી થઈ ગયો હોય છે તેને અથવા જે સાધુ
નેત્ર આદિના મેલતુ અપનયન કરે છે તેને યથાસૂક્ષ્મવકુશ કહે છે.

કુશીલના પ્રતિસેવનાકુશીલ અને કષાયકુશીલ નામના જે ભેદોનું
પ્રતિપાદન તો આગળ કરવામાં આવ્યું છે તેના જ્ઞાનકુશીલ, દર્શનકુશીલ
આદિ પાંચ ભેદ પડે છે. જે સાધુ જ્ઞાનસંપન્ન હોવા છતાં પણ પિંડવિશુદ્ધિ
આદિમાં સ્ખલનપૂર્વક પિંડાદિકનું પ્રતિસેવન કરે છે, તે જિનાજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન
કરે છે. તેથી એવા સાધુને જ્ઞાનકુશીલ કહે છે. એ જ પ્રમાણે દર્શનકુશીલ,
ચારિત્રકુશીલ અને લિંગકુશીલ વિષે પણ સમજવું. લિંગને (સાધુવેષને) ધારણ

कुशील ५। इति । तथा कषायकुशीलस्य पञ्चविधत्वमेवं बोध्यम् । तथाहि—यः क्रोधादिना विद्यादिज्ञान प्रयुक्ते स ज्ञानकुशीलः १। क्रोधादिकषायेण यो निःशङ्कितत्वादिकं दर्शनाचार विराधयति स दर्शनकुशीलः २। तथा यः क्रोधादिविधात् कमपि शपति स चारित्रकुशीलः ३। यत्र क्रोधादिना लिङ्गान्तरं गृह्णाति स लिङ्गकुशीलः ४। तथा यो मनसा क्रोधादिकषायान् करोति स यथासूक्ष्मकुशीलो नाम पञ्चमः कुशीलभेदः ५। तथा—क्षीणकषायोपशान्तमोहभेदद्वयविशिष्टो निर्ग्रन्थः प्रथमसमयनिर्ग्रन्थादिभेदेन पञ्चविधः । तत्र यः अन्तर्मुहूर्तप्रमाणाया निर्ग्रन्थाद्वायाः प्रथमसमये तिष्ठति स प्रथमसमयनिर्ग्रन्थः १। प्रथम समयतिरिक्तसमयेषु

सासे जो हर्षित होता है, वह यथासूक्ष्मकुशील है १। तथा कषाय कुशील पांच प्रकारका इस तरहसे है जो क्रोध आदिके बल होकर विद्या-दिज्ञानको प्रयुक्त करता है वह 'ज्ञानकुशील' है १ क्रोधादिक कषायसे जो निःशङ्कित आदि दर्शनाचारकी विनाधना करता है, वह दर्शन-कुशील है २। जो क्रोधादिकके बलसे किसीको शाप देता है; वह चारि-त्रकुशील है ३। क्रोधादिकके बलसे जो अन्य लिङ्गको धारण करता है वह लिङ्गकुशील है ४। तथा जो अपने मनसे क्रोधादिक कषायोंको करता है वह यथासूक्ष्म कुशील है ५। क्षीणकषाय और उपशान्तमोह इन दो भेदोंवाला निर्ग्रन्थ प्रथम समयके निर्ग्रन्थादिकके भेदसे पांच प्रका-रका है—इन्में जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाले निर्ग्रन्थकालके प्रथम समयमें रहता है, वह प्रथमसमय निर्ग्रन्थ है १ जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाले नि-

करवा छता तेने पेताना निर्वाहनु साधन मानता साधुने विंगकुशील कहे छे. पेतानी तपस्थानी डोके द्वारा प्रशंसा थती नेधने डर्ष पभता साधुने सूक्ष्मकुशील कहे छे ध्याय कुशीलना पण्य जेवा ७ पांच प्रकार कहे छे. (१) जे क्रोधादिथी युक्त थधने विद्यादिज्ञानने प्रयुक्त करे छे तेने ज्ञानकुशील कहे छे. (२) क्रोधादिक कषायने अधीन थधने जे निःशङ्कित आदि दर्शना आरनी विराधना करे छे तेने दर्शनकुशील कहे छे (३) जे क्रोधादिने अधीन थधने क्रोधने शाप आये छे तेने चारित्रकुशील कहे छे (४) क्रोधादिकने अधीन थधने जे अन्यविधने धारण करे छे तेने विंगकुशील कहे छे. (५) जे पेताना मनसा ७ क्रोधादिक कषायो करे छे तेने यथासूक्ष्मकुशील कहे छे

क्षीणकषय अने उपशान्त मोह, आ जे लेहोवाणा निर्ग्रन्थोना नीचे प्रमाणे पांच प्रकार पण्य पडे छे—(१) प्रथम समय निर्ग्रन्थ—जे अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाला निर्ग्रन्थकालना प्रथम समयमा रडे छे, तेने प्रथम समय निर्ग्रन्थ कहे छे. (२) अप्रथमसमय निर्ग्रन्थ—जे अन्तर्मुहूर्त प्रमाणवाला निर्ग्रन्थ

ચસ્તિષ્ઠતિ સોડપ્રથમસમયનિર્ગ્રન્થઃ ૨। તથા-યોડન્તર્મુહૂર્તપ્રમાણાયા નિર્ગ્રન્થા-
 દ્વાયાચરમસમયે તિષ્ઠતિ સ ચરમસમયનિર્ગ્રન્થઃ ૩। તથા-યથ્રમસમયાદન્યસ્મિન્
 યાવચ્છૈલેક્યસ્થાચમસમયે તિષ્ઠતિ સોડચમ્રમસમયનિર્ગ્રન્થઃ ૪। યરતુ નિર્ગ્રન્થા-
 દ્વાયાઃ અન્તર્મુહૂર્તપ્રમાણાયાઃ પ્રથમસમયાદામશ્ચ શૈલેક્યવસ્થાયાચરમસમયપર્યન્તેપુ
 સર્વેપુ સમયેપુ તિષ્ઠતીતિ સ યથા લુક્ષ્મનિર્ગ્રન્થ ઇતિ ૫। તથા-મયોગકેવલ્યયોગ-
 કેવલિભેદદ્વયવિશિષ્ટઃ સ્નાતકઃ અચ્છવ્યાદિભેદેન પञ્ચવિધઃ । તત્ર-કાપયોગ-
 નિરોધેન યસ્ય હ્રિઃ=ગરીરં નાસ્તિ સોડચ્છવિઃ । અત્રેદં વોધ્યમ્-અયોગકેવલિનાં
 કાપયોગનિરોધો મત્સ્યેવેતિ તેપામચ્છવિત્વં મુસ્પટ્ટમ । સયોગકેવલિનોડપિ યદા

ર્ગ્રન્થકાલકે પ્રથમ સમયસે અતિરિક્ત સમયોમેં રહતા હૈ, વહ અપ્રથમ
 સમય નિર્ગ્રન્થ હૈ ૨। જો અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણવાલે નિર્ગ્રન્થકાલકે ચરમ
 સમયમેં રહતા હૈ, વહ ચરમ સમય નિર્ગ્રન્થ હૈ ૩। જો ચરમ સમયસે
 અન્ય સમયમેં યાવતુ શૈલેકી અવસ્થાકે ચરમ સમયમેં રહતા હૈ, વહ
 અચરમ સમય નિર્ગ્રન્થ હૈ ૪। જો અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણવાલે નિર્ગ્રન્થકાલકે
 પ્રથમ સમયસે લેકર શૈલેકી અવસ્થાકે ચરમ સમય પર્યન્ત સમ
 ચોમેં રહતા હૈ, વહ યથાસૂક્ષ્મ નિર્ગ્રન્થ હૈ ૫। સંયોગ કેવલી ઓર અયોગ
 કેવલી રુપ દો ભેદોસે વિશિષ્ટ જો નિર્ગ્રન્થ હૈ, વહ અચ્છવિ આદિકે
 ભેદસે પાંચ પ્રકારકા હૈ, इनमें काययोगके निरोधसे जिसको शरीर
 नहीं होता है, वह अच्छवि है, यहाँ इतन प्रकार समझना चाहिये-
 अयोग केवलियोंके काययोगका तो निरोध होता है, इसलिये उनमें अ-

કાળના પ્રથમ સમય સિવાયેનો સમયમાં રહે છે તેને અપ્રથમસમય નિર્ગ્રન્થ
 કહે છે. (૩) ચરમસમય નિર્ગ્રન્થ-ને અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણવાળા નિર્ગ્રન્થકાળના
 ચરમ (અન્તિમ) સમયમાં રહે છે, તેને ચરમસમય નિર્ગ્રન્થ કહે છે. (૪)
 અચરમ સમય નિર્ગ્રન્થ-ને ચરમ સમય કરતાં અન્ય સમયમાં કોઈકે અવ-
 સ્થામાં ચરમ સમય પર્યાંતના સમયમાં રહે છે, તેને અચરમસમય નિર્ગ્રન્થ
 કહે છે. (૫) યથાસૂક્ષ્મ નિર્ગ્રન્થ-ને અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણવાળા નિર્ગ્રન્થકાળના
 પ્રથમ સમયથી લઈને કોઈકે અવસ્થામાં ચરમ સમય પર્યાંતના અથા સમ-
 ચોમાં રહે છે, તેને યથાસૂક્ષ્મ નિર્ગ્રન્થ કહે છે

અયોગ કેવલી અને અયોગકેવલી રૂપ બે ભેદવાળા જે સ્નાતક નિર્ગ્રન્થ
 જે તેમના અચ્છવી આદિ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે.

કાયયોગના નિરોધને કારણે જેમનો શરીરનો-કાયાના વ્યાપારનો અભાવ
 હોય છે તે નિર્ગ્રન્થને અચ્છવિ કહે છે. અહીં એવું સમજવું જોઈએ કે અયોગ
 કેવલીના કાયયોગનો તો નિરોધ થઈ ગયેલો જ હોય છે, તેથી તેમનામાં

सूक्ष्मकाययोगेन वादरकाययोगं निरुन्धन्ति तदा शेषामपि अच्छवित्त्वं भवति । विरोधस्त्वेवं बोध्यः—भगवान् सयोगकेवली भवोपग्राहि कर्मक्षपणाय परमनिर्मल-
मत्यन्ताप्रकम्पं परमनिर्जराकारणं ध्यानं प्रतिपत्तुकामो योगनिरोधार्थमुपक्रमते । तत्र प्रथमं वादरकाययोगेन वादरमनोयोगं निरुणद्धि, ततो वादरवाग्योगम् । ततः
सूक्ष्मकाययोगेन वादरकाययोगं निरुणद्धि ततः सूक्ष्मकाययोगेनैव सूक्ष्ममनोयोगं
सूक्ष्मवाग्योगं च । सूक्ष्मकाययोगं तु सूक्ष्मक्रियमनिवृत्तिं शुक्लध्यानं ध्यायन् स्वाव-
ष्टम्भेनैव निरुणद्धि, अन्यस्य अवष्टम्भनीयस्य योगस्य तस्मिन् काले अभावात् ।

अच्छविता तो सुस्पष्टही है, संयोग केवलीके भी जब सूक्ष्म कायके यो-
गसे वादरकाय योगका निरोध करते हैं, तब उनके भी अच्छविता
होती है, निरोध इस प्रकारसे होता है—भगवान् सयोग केवली भवो-
पग्राहि कर्मके क्षपणके लिये परम निर्मल अत्यन्त अप्रकम्प एवं परम
निर्जराके कारणरूप ध्यान करनेके अनिलाषी होते हैं, तब वे योग
निरोधके लिये उपक्रम करते हैं, उसमें वे प्रथम काययोगसे वादर मनो-
योगका निरोध करते हैं, बादमें वादर वाग्योगका निरोध करते हैं ।
इसके बाद सूक्ष्म काययोगसे वादर काययोगका निरोध करते हैं, बादमें
वे सूक्ष्म काययोगसेही सूक्ष्म मनोयोगका और सूक्ष्म वाग्योगका निरोध
करते हैं । सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति शुक्लध्यानको ध्याते हुए वे केवली
अपने अवष्टम्भसेही सूक्ष्म कायका निरोध करते हैं । क्योंकि उस समय
अन्य अवष्टम्भनीय योगका अभाव होता है, उस ध्यानके लामर्थ्यसे वे

अच्छविता सुस्पष्ट न छे. संयोग केवली पणु न्यारे सूक्ष्म कायना योगथी
वादर काययोगना निरोध करे छे, त्यारे तेमनागा पणु अच्छविता न छेय
छे. निरोध आ प्रभाषे थाय छे—भगवान् सयोग केवली भवोपग्राहि कर्मना
क्षपणने भाटे परम निर्मल अत्यन्त अप्रकम्प परमनिर्जराना कारणरूप ध्यान
धरवानी अमिलाषावाणा थाय छे. त्यारे तेओ योगनिरोधने भाटे उपक्रम
करे छे. त्यारे तेओ पडेला काययोग द्वारा वादर मनोयोगना निरोध करे
छे, त्यार भाद वादर वाग्योगना निरोध करे छे त्यार भाद सूक्ष्म काययोग
वडे वादर काययोगना निरोध करे छे त्यारभाद तेओ सूक्ष्मकाययोग वडे
न सूक्ष्म मनोयोगना अने सूक्ष्म वाग्योगना निरोध करे छे सूक्ष्म क्रिया
निवृत्ति शुक्ल ध्यान धरता धरता ते केवली पोताना अवष्टमथी न सूक्ष्म
कायना निरोध करे छे, कारण के ते समये अन्य अवष्टमनीय योगना अभाव

તદ્ધ્યાનસામર્થ્યાત્ સ વદનોદરાદિવિવરપૂરણેન સંકુચિતદેહત્રિભાગવર્તિ પ્રદેશો ભવતિ । તદનન્તરં સમુચ્છિન્નક્રિયામપ્રતિપાતિ શુક્લધ્યાનં ધ્યાયન્ મધ્યમપ્રતિપત્ત્યા હ્રસ્વપશ્ચાક્ષરોચ્ચારણમાત્રકાલં શૈલેશીકરણં પ્રવિશતિ । વાદરકાયયોગનિરોધા-
નન્તરં યાત્રત્ સૂક્ષ્મકાયયોગં ન નિરુગદ્ધિ તાત્રત્ સયોગિકેવલી ભવતિ । અસ્થા-
મવસ્થાયાં વાદરકાયયોગાભાવેન અચ્છવિત્તમ્ । સૂક્ષ્મકાયયોગનિરોધાનન્તરં તુ
અયોગિકેવલી ભવતિ । તત્ર તુ અચ્છવિત્ત સુસ્થિતમેવેતિ તત્રામિતિ । ઇતિ સ્નાત-
કસ્ય પ્રથમો ભેદઃ । અતિચારેભ્યો નિર્ગતન્વાદગવલો દ્વિતીયઃ । અકર્માંશઃ—નાસ્તિ
કર્મણઃ અંશઃ=લેશોપિ ક્ષપિતકર્મત્પાદ્ધરય સ્વ ઇતિ તૃતીયઃ । તથા—સંશુદ્ધજ્ઞાન-
દર્શનધરઃ—સંશુદ્ધ—જ્ઞાનદર્શનાન્તરસંપર્કશૂન્યત્વાદ્ યદ્ જ્ઞાનદર્શનં તસ્ય ધરઃ=
ધારકઃ, અર્હન્—નરામરનસસ્કારાર્હત્વાત્, જિનો જિતરુપાયત્વાત્ કેવલી—પરિપૂર્ણ-
રત્નત્રયત્વાદિતિ ચતુર્થઃ । અપરિસ્ત્રાવી—સફલયોગનિરોધેન નિષ્ક્રિયસ્વાદિતિ
પશ્ચમઃ । ઇતિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

વદન ઉદર આદિ વિવરકે પૂરણ હોનેસે સંકુચિતદેહ ત્રિભાગવર્તી પ્રદે-
શવાલે હો જાતે હૈં । ઇસકે વાદ સમુચ્છિન્ન ક્રિયા અપ્રતિપાતી શુક્લ-
ધ્યાનકો ધ્યાતે હુપ વે મધ્યમ પ્રતિપત્તિસે હ્રસ્વ પંચાક્ષરકે ઉચ્ચારણ
માત્ર કાલતક શૈલેશીકરણસે પ્રવેશ કરતે હૈં । વાદર કાયયોગકે
નિરોધકે વાદ જત્ર તક સૂક્ષ્મ કાયયોગકા નિરોધ નહીં કર લેતે હૈં, તથ
તક વે સયોગ કેવલી હોતે હૈં, ઇસ અવસ્થામે વાદર કાયયોગકે અભા-
વસે ઉનમેં અચ્છવિત્તા સુસ્થિતહી હો જાતી હૈ, ઇસ પ્રકારકા યહ સ્નાત-
કકા પ્રથમ ભેદ હૈ, અગવલ યહ ઇસકા દ્વિતીય ભેદ હૈ ઇસ અવ-
સ્થામે વે અતિચારોસે રહિત હો જાતે હૈં । અકર્માંશ યહ તૃતીય ભેદ હૈ
ઇસ અવસ્થામે ક્ષપિત કર્મવાલે હો જાનેસે ઉનકે કર્મોંકા અંશ તક મી
નહીં રહતા હૈ । સંશુદ્ધ જ્ઞાન દર્શનધર યહ ચતુર્થભેદ હૈ, ઇસ અવસ્થામે

હોય છે. તે ધ્યાનના સામર્થ્યથી તેઓ વદન, ઉદર આદિ વિવર પૂરણ થવાથી
સંકુચિત દેહવાળા—ત્રિભાગવર્તી પ્રદેશવાળા થઈ જાય છે. ત્યાર બાદ સમુચ્છિન્ન
ક્રિયા અપ્રતિપાતી શુક્લધ્યાનને ધરના થઈ તેઓ મધ્યમ પ્રતિપત્તિ વડે પાંચ
હ્રસ્વાક્ષરોના ઉચ્ચારણ પ્રમાણકાળ સુધી જ શૈલેશીકરણમાં પ્રવેશ કરે છે.
બાદર કાયયોગનો નિરોધ કર્યા બાદ બીજા સુધી તેઓ સૂક્ષ્મ કાયયોગનો નિરોધ
કરી લેતા નથી ત્યાં સુધી તેઓ સયોગ કેવલી જ ગણાય છે. આ અવસ્થામાં
તેઓ અતિચારથી રહિત થઈ જાય છે (૩) અર્કમાંશ નામનો ત્રીજો ભેદ
છે. આ અવસ્થામાં તેમના કર્મોના ક્ષય થઈ જવાથી તેમના કર્મોના અંશ પણ

નિર્ગન્યપ્રસ્તાવાત્ સમ્પતિ તેપામેવ ઉપધિવિશેષાન્ પ્રદર્શયતિ—

મૂલમ્—કૃષ્ણ ણિગ્ગંથાળ વા ગિરગંથીળ વા પંચ વત્થાઈં
ધરિત્તણ વા પરિહરિત્તણ વા તં જહા-જંગિણ ૧ ધંગિણ ૨ સાળણ
૩ પોત્તિણ ૪ તિરીડપટ્ટણ ૫ ણાસં પંચમણ । કૃષ્ણ નિગ્ગંથાળ
વા નિગ્ગંથીળ વા પંચ રયહરણાઈં ધરિત્તણ વા પરિહરિત્તણ વા,
તં જહા-ઉણિણ ૧ ઉટ્ટિણ ૨ સાળણ ૩ પચ્ચાપિચ્ચયણ ૪ મુંજા-
પિચ્ચિણ ૫ નાસં પંચમણ ॥ સૂ. ૬ ॥

છાયા—કલ્પતે નિર્ગ્રંથાનાં વા નિર્ગ્રંથીનાં વા પચ્ચવસ્ત્રાણિ ધત્તું વા પરિહત્તું
વા, તથથા-જાઙ્ગમિકમ્ ૧ માક્કિકમ્ ૨ શાળકમ્ ૩ પૌત્તિકં ૪ તિરીટપટ્ટકં ૫
નામ પચ્ચમકમ્ । કલ્પતે નિર્ગ્રંથાનાં વા નિર્ગ્રંથીનાં વા પચ્ચ રજોહરણાણિ ધત્તું
વા પરિહત્તું વા, તથથા-ઔર્ણિકમ્ ૧, ઔટ્ટિકમ્ ૨, શાળકમ્ ૩ વલ્લવજકુટ્ટિત-
ત્વહ્મયં ૪ મુલ્લકુટ્ટિત્ત્વહ્મયં ૫ નામ પચ્ચમકમ્ ॥ સૂ. ૬ ॥

બનકા જ્ઞાનાન્તર ઔર દર્શનાન્તરકે સંપર્કસે જ્ઞાનદર્શન શૂન્ય હો જાતા
હૈ, ઇસલિધે એસે જ્ઞાન ઔર દર્શનકે વે ધારી હો જાતે હૈં । “ અર્હન્ જિન;
કેવલી અપરિસ્લાવી ૫ ” ઇસ પ્રકાર ભર ઔર અમરસં નક્કરકાર કરને
યોગ્ય હો જાનેસે વે અર્હન્ હો જાતે હૈં જિન કષાયવાલે હોનેસે વે જિન
હો જાતે હૈં, ઔર પરિપૂર્ણ રત્નત્રયવાલે હો જાનેસે કેવલી હો જાતે હૈં
એસા યહ ચતુર્થ ભેદ હૈ, ઔર અન્તમ્ સકલ યોગોંકે નિરોધસે વે નિષ્ક્રિય
બન જાનેકે કારણ અપરિસ્લાવી હો જાતેહૈં એસા યહ પાંચવાંભેદહૈ ॥ સૂ. ૫ ॥

બાકી રહેતો નથી (૪) સંશુદ્ધ જ્ઞાન દર્શનધર નામનેા ચોથો લેહ છે આ
અવસ્થામાં જ્ઞાનાન્તર અને દર્શનાન્તરના સપર્કથી તેમનું જ્ઞાન અને દર્શન
વિહીન થઈ જાય છે, તે કારણે તેઓ જ્ઞાન અને દર્શનને ધારણ કરનારા
બની જાય છે “ અર્હન્ જિન. કેવલી અપરિસ્લાવિ ” આ પ્રકારે મનુષ્યો અને
દેવો દ્વારા વન્દનીય થઈ જવાથી તેઓ અર્હત બની જાય છે. કષાયોને છૂટ-
નારા હોવાને કારણે તેઓ જિન કહેવાય છે અને પરિપૂર્ણ રત્નત્રયવાળા થઈ
જવાને લીધે તેઓ કેવલી બની જાય છે, એવો આ ચોથો લેહ છે અન્તે
સકળ યોગોને નિરોધ કરીને તેઓ નિષ્ક્રિય બની જવાને કારણે અપરિસ્લાવી

पट्टसुवर्णे मलय, अंगुय चीणंशुक य विकलेन्द्री ।

उन्नोद्वियमियलोमे, कृतवे क्रिद्वियपंचिदी ॥ २ ॥

अयती वंभीमाइय, भंगिय माणयं तु सणवको ।

पोत्तं कप्पासमयं, तिरीडरुक्खा तिरीडपट्टो ॥ ३ ॥

छाया—जङ्गमजातं जाङ्गमिकं तत् पुनर्विकलेन्द्रियं च पञ्चेन्द्रियम् ।

एकैकमपि च इतो भवति विभागेन पञ्चविधम् ॥ १ ॥

पट्टः सुवर्णमलयम् अंगुकं चीनांशुकं च विकलेन्द्रियम् ।

और्णम् औष्टिकं मृगलोमकुतुपं क्रिद्विजं पञ्चेन्द्रियम् ॥ २ ॥

अतसी वंश्यादिजं भाङ्गिकं शाणकं तु शणवलकः ।

पोत्तं कार्पासमयं तिरीटवृक्षात् तिरीटपट्टः ॥ ३ ॥

अयमर्थः—जङ्गमजातं वक्षं जाङ्गमिकं भवति । तत्पुनः विकलेन्द्रियजन्यत्वाद् विकलेन्द्रियं पञ्चेन्द्रिय जन्यत्वाच्च पञ्चेन्द्रियं भवति । इतः=अत्र भेदद्वयमध्ये एकैकमपि विभागेन=विकलेन्द्रियाणां पञ्चेन्द्रियाणां च जीवानां भेदेन अनेकविधं भवति ॥ १ ॥ पट्टवस्त्रं प्रसिद्धम् सुवर्णं=सुवर्णवर्णसूत्रनिर्मितं कृमिज-

है । कहा भी है—“ जंगमजायं जंगिय ” इत्यादि ।

जो वस्त्र जङ्गमसे उत्पन्न होता है, वह जाङ्गमिक है, यह वस्त्र विकलेन्द्रियोंके रोमसे जन्य होनेसे विकलेन्द्रिय होता है, और पञ्चेन्द्रियके रोमसे जन्य होनेसे पञ्चेन्द्रिय होता है, इस तरह इन दो भेदोंके बीचमें एक वस्त्र भी विकलेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवोंके भेदसे अनेक प्रकारका होता है ? पट्टवस्त्र ? सुवर्णवस्त्र २ मलयवस्त्र ३ अंगुक चारीक वस्त्र ४ और चीनांशुक वस्त्रके भेदसे वस्त्र पांच प्रकारका होता है, यह पांच प्रकारका वस्त्र विकलेन्द्रिय जीवोंके रोमसे उत्पन्न होता है, इनमें पट्टवस्त्र प्रसिद्ध है । अच्छे वर्णवाले सूत्रसे जो वस्त्र निर्मित होता है, वह सुवर्णवस्त्र है, यह

कह्यु पण्यु छे के “ जंगमजायं जंगिय ” इत्यादि—

ये वस्त्र जंगम ज्योना वाणमांथी उत्पन्न थाय छे तेने जंगमिक कहे छे ते वस्त्र विकलेन्द्रियेना रोममांथी उत्पन्न थतु डोवाथी विकलेन्द्रिय जन्य पण्यु डोय छे अने पञ्चेन्द्रियेना रोममांथी उत्पन्न थतु डोवाथी पञ्चेन्द्रियजन्य पण्यु डोय छे. विकलेन्द्रियजन्य वस्त्र पण्यु पांच प्रकारतुं डोय छे—(१) पट्टवस्त्र (२) सुवर्णवस्त्र, (३) मलय वस्त्र, (४) अंगुक वस्त्र (५) अने चीनांशुक वस्त्र आ पांचे प्रकारना वस्त्र विकलेन्द्रिय ज्योना रोममांथी अने छे पट्ट वस्त्र लणीतुं डोवाथी अर्धी तेतुं वस्तुन कथुं नथी. सुंदर वस्तु वाणा तंतुमांथी ये वस्त्र अने छे, तेने सुवर्ण

મિત્યર્થઃ, મલયં=મલયદેગોદ્ગ્રં વસ્તુ, અંશુકં=શુકલદેગવસ્તુ, ચીનાંશુકમ્=ચીનો-
 યમ્, -ચીનદેગોદ્ગ્રં વા શુકલપદ્મયં વસ્તુ, પતત્ પદાદિ પદ્મમેદ્ધિનં વસ્તુ
 વિકલેન્દ્રિયમ્ । તથા-ઔર્ગિકમ્=ઝર્ગમિયમ્, ઔષ્ટ્રિકમ્=ઉષ્ટ્રોમમ્, મૃગ
 લોમ્નો જાતત્વાદ્ વસ્તુ મૃગઓમમ્ । ઉપલક્ષણવાચ શશરોમજં મૂષકરોમજં ચાપિ
 વોધ્યમ્ । તથા-કુતુપમ્-ઝાગરોમમ્, કિટ્ટિજમ્=પતેપાસેવ નિકૃષ્ટરોમનિર્મિતમ્
 ॥ ૨ ॥ તથા-અવલીવરયાદિજં માત્તિકં વસ્તુ ભવતિ. ગણવત્પાનિષયનં તુ શાણકં

વસ્તુ કૃમિજ (રેશમી) હોતા હૈ, મલયવસ્તુ-મલયદેશકા ઘના હુઆ હોતા
 હૈ, જો વસ્તુ ચિકના હોતા હૈ, વહ અંશુક કહલાતા હૈ, જો વસ્તુ ચીન
 દેશકા ઘના હોતા હૈ, અથવા રેશમકા ઘના હોતા હૈ, વહ ચીનાંશુક
 કહલાતા હૈ, જો વસ્તુ ડાંટકે રોમોંકા ઘના હોતા હૈ, વહ ઔષ્ટ્રિકવસ્તુ
 હૈ, જો વસ્તુ ઝર્ગાકા ઘના હોતા હૈ, વહ ઔર્ગિક વસ્તુ હૈ, જો વસ્તુ મૃગકે
 રોમકા ઘના હોતા હૈ, વહ મૃગલોમ વસ્તુ હૈ, ઉપલક્ષણસે “ શશરોમજ
 મૂષકરોમજ ” હન વસ્તુઓંકા મી પ્રહણ હુઆ હૈ, સ્વરયોશકે રોમોંકા
 ઘના હુઆ વસ્તુ શશરોમજ હૈ, ઔર વહોંકે રોમસે ઘના વસ્તુ મૂષકરો-
 મજ હૈ, જો વસ્તુ વકરેકે રોમસે ઘના હૈ, વહ કુતુપ વસ્તુ હૈ, તથા હનહીંકે
 નિકૃષ્ટ (હલકે) રોમોંસે જો વસ્તુ ઘનાયા જાતા હૈ, વહ કિટ્ટિજવસ્તુ હૈ,
 તથા-મલસી આદિકી છાલસે જો વસ્તુ ઘનાયા જાતા હૈ, વહ માત્તિક
 વસ્તુ હૈ । શણકે ડોરોંસે જો વસ્તુ ઘનાયા જાતા હૈ, વહ શાણક હૈ,

વસ્તુ કહે છે. તે વસ્તુ રેશમના કીડાઓની લાળમાંથી બને છે. મલય વસ્તુ
 મલય દેશમાં બને છે જે વસ્તુ બહુ જ મુલાયમ હોય છે તેને અંશુક વસ્તુ
 કહે છે જે વસ્તુ ચીન દેશમાં બને છે અથવા રેશમમાંથી બને છે તેને
 ચીનાંશુક કહે છે.

પચેન્દ્રિયજન્ય વસ્તુના ત્રીણ પ્રમાણે અનેક પ્રકાર પડે છે—જે વસ્તુ
 જાંટની રુંવાટીમાંથી બને છે તેને ઔષ્ટ્રીક કહે છે. જે વસ્તુ બીનમાંથી બને
 છે તેને ઔષ્ટ્રિક વસ્તુ કહે છે જે વસ્તુ મૃગની રુંવાટીમાંથી બને છે તેને
 મૃગલોમ વસ્તુ કહે છે. ઉપલક્ષણથી “ શશરોમજ મૂષકરોમજ ” સસલાની
 રુંવાટીમાંથી બનેલું શશરોમજ વસ્તુ અને મૂષકોની રુંવાટીમાંથી બનાવેલું
 મૂષકરોમજ પણ અહીં ગ્રહણ થવું જોઈએ. (૪) ‘ કુતુપવસ્તુ ’ જે વસ્તુ બક-
 રાના વાળમાંથી બને છે, તેને કુતુપવસ્તુ કહે છે (૫) ‘ કિટ્ટિજવસ્તુ ’ તેમની જ
 નિકૃષ્ટ રુંવાટીમાંથી જે વસ્તુ બને છે તેને કિટ્ટિજવસ્તુ કહે છે

અળસી આદિની છાલમાંથી જે વસ્તુ બને છે, તેને ભાંગિકવસ્તુ કહે છે.
 શણના રેસામાંથી જે વસ્તુ વણવામાં આવે છે, તેને શાણકવસ્તુ કહે છે. કપાસ

ભવતિ કર્પાસનિર્મિતં તુ પોતમુન્યતે, તથા—તિરીટવૃક્ષત્વચયા યદ્ વહ્નં નિષ્પદ્યતે તત્ તિરીટપટ્ટકમુચ્યતે ॥ ૩ ॥

યદ્યપિ સાધુમૂલ્યનીયં પશ્ચવિધં પ્રોક્તં તથાપિ ઉત્સર્ગતઃ સાધુભિઃ કર્પાસમૌર્ણિકં ચ દ્વિવિધમેવ વહ્નં ગ્રાહ્યમ્ । તદુક્તમ્—

“ કપ્પાસિયા ઉ દોન્ની ઉચ્ચિય એકો ય પરિભોગો ” ।

છાયા—કાર્પાસિકસ્ય તુ દ્વે ઔર્ણિકમેકં ચ પરિભોગઃ ઇતિ ।

તથા — “ કપ્પાસિયસ્સ અસઈવાગયપટ્ટો ય કોસિયારો ય ।

અસઈ ય ઉણ્ણિયસ્સ વાગયકોસેજ્જપટ્ટો ય ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—કાર્પાસિકસ્યાસતિ વાલ્વજપટ્ટશ્ચ કૌશિકાકારશ્ચ ।

અસતિ ચ ઔર્ણિકે વાલ્વજઃ કોશેયપટ્ટશ્ચ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

एतदप्यल्पमूल्यरूपमेव ग्राह्यं न तु बहुमूल्यकम् । दशमुद्रादिमूल्यकं वह्नां बहुमूल्यं बोध्यमिति । तथा—निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा पञ्चविधानि रजोहरणानि धत्तुं परिग्रहीतुं वा कल्पते । पञ्चविधत्वमेवाह—तद्यथा—और्णिकम्—मेपलो-

और कपासके डोरोसे जो वस्त्र बनाया जाता है, वह पोटवस्त्र कहलाता है, तथा तिरीट वृक्षकी छालसे जो वस्त्र निष्पन्न होता है, वह तिरीटपट्टक है ३ । यद्यपि साधुजनोंको कल्पनीय पांच प्रकारका वस्त्र कहा गया है, तब भी उत्सर्गसे साधुजनोंको कार्पास और और्णिक ये दो वस्त्रही ग्रहण करना चाहिये । कहा भी है—

“ कप्पासिया उ दोन्नी ” इत्यादि ।

कार्पासिक आदि जो वस्त्र साधुजनोंको धारण करने योग्य कहे हैं, वे वस्त्र भी ऐसे धारण करना चाहिये जो अल्पमूल्यके हों बहुमूल्यवाला न हों । दशमुद्रा आदिके मूल्यवाला वस्त्र बहुमूल्य कहा गया है । तथा—निर्ग्रन्थोंको एवं निर्ग्रन्थनियोंको पांच प्रकारके रजोहरण

ના સૂતરમાથી જે વસ્ત્ર વણવામાં આવે છે, તેને પેટવસ્ત્ર કહે છે. તિરીટવૃક્ષની છાલમાંથી જે વસ્ત્ર બનાવવામાં આવે છે, તેને તિરીટપટ્ટક કહે છે. જે કે સાધુઓને માટે ઉપર્યુક્ત પાંચ પ્રકારના વસ્ત્રને કલ્પ્ય કહ્યા છે, છતાં સાધુઓએ સૂતરાઉ અને ઊતના બનાવેલા વસ્ત્રોજ ગ્રહણ કરવા તે વધારે ઉચિત છે. કહ્યું પણ છે કે “ કપ્પાસિયા ઉ દોન્ની ” ઇત્યાદિ—

સૂતરાઉ આદિ જે વસ્ત્રો સાધુજનોને માટે ધારણ કરવા યોગ્ય કહ્યા છે, તે પણ બહુ મૂલ્યવાન હોવા ભેદએ નહીં, પણ સસ્તા હોવા ભેદએ દશ મુદ્રા આદિ ભાવના કપડાને બહુમૂલ્ય કહ્યા છે.

સાધુ અને સાધ્વીઓને નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકારના રજોહરણ જે કલ્પે

टीका—‘ धम्मं चरमाणस्स ’ इत्यादि—

धर्म=श्रुतचारित्ररूपं चरतः=आसेवपानस्य पञ्च निश्चास्यातानि=आन्तर्यन-स्थानानि धर्मोपग्रहकारणानि प्रज्ञप्तानि, तान्येवाह-तद्यथा—गृह्णाय -षड्जीवनि-कायः, संयमोपकारकत्व शास्त्रे प्रसिद्धं, तथापि किञ्चिद्दर्शने-पृथिवीकायस्य संयमोपकारकत्वं स्थाननिपीदन त्वगवर्त्तनादिना १। अप्कायस्य धारणादिजलपानादिना २। तेजस्कायस्य वायुप्रकोपादौ तप्तेष्टिका तापिकादिना ३। वायुकायस्य श्वासोन्ध्या-

‘धम्मं चरमाणस्स पंच निस्सा ठाणा पणत्ता’ इत्यादि सूत्र ७ ॥

टीकार्थ-श्रुत चारित्ररूप धर्मसो आसेवन करनेवाले श्रमण निर्ग्रन्थोके धर्मोपग्रहमें कारणभूत पांच स्थान कहे गये हैं, जैसे-षड्जीवनिकायरूप षट्काय १ यह संयमका उपकारक होता है, यह बात यद्यपि शास्त्रमें प्रसिद्ध है, नद्य भी यहां उसे प्रकट किया जाता है-पृथिवीकायिक एक स्थान पर बैठनेमें और पार्श्व आदि परिवर्तन करनेमें सहायक होनेके कारण संयमका उपकारक होता है, अर्थात् पृथिवी पर संयमी जीव एक स्थान पर बैठता है, उस पर अपने पार्श्वभाग आदिको बदलता है, इस तरह पृथिवीकायिक जीव अपने ऊपर स्थान आदि देने रूपसे संयमके पालन करानेमें उपकारक होता है। अप्काय पान आदि क्रिया द्वारा संयमका उपकारक होता है, तेजस्कान्तिक वायुप्रकोप आदि के होने पर तप्त ईंटसे सेक आदि करानेरूपसे संयमका उपकारक होना

“ धम्म चरमाणस्स पंच निस्साठाणा पणत्ता ” इत्यादि—

टीकार्थ-श्रुतचारित्र ३५ धर्मनी आराधना करतारा श्रमणु निर्ग्रन्थोना धर्मोप-ग्रहमां कारणभूत नीचे प्रमाणे पांच स्थान कहां छे—

(१) षड्जीवनिकाय ३५ छकाय—तेजो संयममां उपकारक थर्ष पडे छे, ते वात तो शास्त्रोमां प्रसिद्ध छे तेजो देवी रीते संयममां उपकारक थाय छे ते डवे प्रकट करवामां आवे छे—पृथ्वीकायि, एरो जेक स्थान पर जेसवामां अने पडणुं ईश्वरा अदिमां सहायक होवाने लीधे संयमनी आराधनामा उपकारक थर्ष पडे छे जेटले के संयमी एव जेक स्थान पर जेसे छे अथवा ते स्थान पर पोताना पार्श्वभाग आदिने गदले छे ते स्थान पृथ्वीकाय ३५ जे होय छे. आ रीते पृथ्वीकायिक एव पोतानी उपर जेसवा, जेकवा आदि ३५ स्थान आपीने संयमना पालनमां सहायक अने छे अप्काय पांन (पीवानी किया) आदि द्वारा संयमना पालनमां उपकारक अने छे, वायुमो प्रकोप थाय त्पादे तप्त ईंट पडे सेक आदि करववामा तेजस्कान्तिक उपकारक

સાદિના ૪। વનસ્પતિકાયસ્ય પાત્રપીઠફલકૌપધમૈપજ્યાદિના ૬। ત્રસકાયસ્ય કમ્બલરજોહરણાદિના મુનેઃ સંયમોપકારકત્વમિતિ પ્રથમનિશ્રાસ્થાનમ્ ૧। તથા ગણઃ—ગચ્છોઽપિ ધર્મોપગ્રાહકઃ । તદુક્તમ્—

“ ગુરુપરિવારો ગચ્છો, તત્થ વસંતાણ નિજ્જરા વિણ્ણા ।

વિણયાઽ તથા સારણ, માઈહિં ન દોસ પહિવત્તી । ૧ ॥

અન્નોન્નાવેક્ખાણ, જોયમ્મિ તઠ્ઠિં તઠ્ઠિં પયટ્ઠંતો ।

નિયમેણ ગચ્છવાસી, અસંગપયસાહગો ણેત્તો ॥ ૨ ॥ ”

છાયા—ગુરુપરિવારો ગચ્છઃ, તત્ર વસર્તા નિર્જરા ત્રિપુલા ।

વિનયાત્તથા સારણાદિભિર્ન દોષપ્રતિપત્તિઃ ॥ ૧ ॥

અન્યોન્યાપેક્ષયા યોગે તત્ર તત્ર પર્યટન્ ।

નિયમેન ગચ્છવાસી અસન્ગપદ સાધકોજ્ઞેયઃ ॥ ૨ ॥

હૈ । વાયુકાય શ્વાસોચ્છ્વાસ રૂપસે સહાયક હોનેસે સ્યમકા ઉપકારક હોતા હૈ, ઔર વનસ્પતિકાય પાત્ર પીઠ, ફલક આદિ રૂપસે એવં ઔવધિ આદિ રૂપસે સંયમકા ઉપકારક હોતા હૈ । તથા ત્રસકાય સંયમકે ઉપકારક જો કમ્બલ રજોહરણ આદિ હૈં અનેકે રૂપસે સંયમકા ઉપકારક હોતા હૈ । હસ પ્રકારકા યહ પ્રથમ નિશ્રાસ્થાન હૈ, તથા ગણગચ્છ ધર્મોપગ્રાહક હોતા હૈ । કહા ધી હૈ— ‘ ગુરુ પરિવારોગચ્છો ’ હત્યાદિ ।

ગુરુ પરિવારકા નામ ગચ્છ હૈ, હસ ગચ્છમં રહનેવાલે સુનિજનોંકે કર્મોંકા વિનય એવં સારણ આદિસે નિર્જરા અધિક હોતી હૈ, તથા હસમેં રહનેવાલોંકે ચારિત્રમેં અતિચાર આદિરૂપ દોષ ધી નહીં લગતે હૈં । અન્ય અન્યકી અપેક્ષાસે હસ હસ યોગમેં વિહાર કરતા હુઆ સાધુ

થઈ પડે છે. વાયુકાયિક શ્વાસોચ્છ્વાસની ક્રિયામાં સહાયક બનીને સંયમપાલનમાં સહાયભૂત બને છે. વનસ્પતિકાયિક પાત્ર, ફલક, પીઠ આદિ ઉપકરણો રૂપે તથા ઔષધિ આદિ રૂપે સંયમના પાલનમાં ઉપકારક બને છે. ત્રસકાયની રુંવાટીમાંથી સંયમીના વસ્ત્ર, રત્નેહરણુ આદિ બને છે, તેથી તેઓ સંયમમાં ઉપકારક બને છે. આ પ્રકારનું આ પ્રથમ નિશ્રાસ્થાન સમજવું.

(૨) ગણુ અથવા ગચ્છ સાધુનું ખીચું નિશ્રાસ્થાન છે. કહ્યું પણ છે કે “ ગુરુપરિવારો ગચ્છો ” ઇત્યાદિ—એક જ ગુરુના પરિવારને ગચ્છ કહે છે. એવા ગચ્છમાં રહેનારા સાધુ દ્વારા વિનય અને સારણુ આદિ વડે કર્મોની નિર્જરા અધિક થાય છે. વળી ગચ્છમાં રહેનાર સાધુઓના ચારિત્રમાં અતિચાર આદિ રૂપ દોષો લાગવાનો સંભવ પણ ઓછો રહે છે. અન્ય અન્યની

योगः—कुशलमनोवाकायोदीरणलक्षणः । असङ्गः=मोक्षः । इति द्वितीयं निश्रास्थानम् २।

तथा—राजाऽपि धर्मोपग्राहको भवति, दुष्टकृतोपद्रवतः साधूनां रक्षणात् । उक्तं चात्र—

“ जिणुत्तं परमं धम्मं, पालिज्जासु क्हं जणा ? ।

सिया णो धम्मिओ राया, तेयंसी पुहवीतले ॥ १ ॥ ”

छाया—जिनोक्तं परमं धर्मं, पालयेयुः कथं जनाः ।

स्यात् नो धार्मिको राजा, तेजस्वी पृथिवीतले ॥१॥ ”

अन्यतीर्थिकैरप्युक्तम्—

“ क्षुद्रलोकाङ्गले लोके, धर्मं कुर्युः कथं हि ते ।

क्षान्ता दान्ता अहन्तारश्चेद्राजा तान्न रक्षति ॥ १ ॥

गच्छवासी संघमी नियमसे असङ्ग पदका साधक होता है, ऐसा जानना चाहिये २ । धार्मिक क्रियाओंमें कुशल मन वचन और कायका बना रहना यह यहां योग शब्दसे लिया गया है । अथवा सर्वदा मन वचन और कायकी शुद्धिका बना रहना यह योग शब्दसे गृहीत हुआ है । असङ्ग शब्दका अर्थ मोक्ष है । इस प्रकारका यह द्वितीय निश्रास्थान है २। तथा राजा भी धर्मोपकारक होता है, क्योंकि वह दुष्टजनकृत उपद्रवसे साधुओंकी रक्षा करना है । कहा भी है—

“ जिणुत्तं परमं धम्मं ” इत्यादि ।

इस भूमण्डल पर यदि तेजस्वी राजा न हो तो मनुष्य जिनोक्त धर्मकी आराधना कैसे कर सकते हैं । अन्य तीर्थिकोंने भी ऐसा कहा

अपेक्षाये ते ते योगमां विथरतो गच्छवासी संघमी साधु नियमथी न असंग (मोक्ष) पदना साधक णने छे.

धार्मिक क्रियाओंमां मन, वचन अने कायने प्रवृत्त कर्या न करवा तेनुं नाम योग छे. अथवा मन, वचन अने कायने सर्वदा शुद्ध राखवा तेनुं नाम योग छे. ‘ असंग ’ अेट्ठे ‘ मोक्ष ’. आ प्रकारतुं आ धीनुं निश्रास्थान छे.

(३) राजा पणु साधुओंने धर्मसाधनामां उपकारक थर्छ शकें छे. कारणु के इष्ट लोकें द्वारा करता उपद्रवोथी ते साधुओंनी रक्षा करे छे.

उल्लु पणु छे के “ जिणुत्तं परमं धम्मं ” इत्यादि—

आ पृथ्वी पर ने राजा न होत तो मनुष्य जिनोक्त धर्मना आराधना केवी रीते करी शकत । अन्य मतवादीओंने पणु अेवुं न उल्लु छे के

अराजके हि लोकेऽस्मिन्, सर्वतो विद्रुने भयान् ।

रक्षार्थमस्य सर्वस्य, राजानमस्तु प्रभुः ॥ २ ॥ इति । इति तृतीय निश्रा-
स्थानम् ३ ।

तथा-गृहपतिः=शय्यादायको धर्मोपग्रहकारको भवति, आवासदायकत्वेन
तस्यापि तथात्वात् । तदुक्तम्—

“ धृतिर्मतिर्गतिस्तेन, दत्ता दत्तं सुखं तथा ।

गुणिभ्यः साधुमुख्येभ्यो, येन दाम् समर्पितः ॥ १ ॥ ” इति ।

तथा—“ जो देह उचस्मयं जइवराणत । णियमजोगजुत्ताणं ।

तेगं दिन्ना वत्थन्नमाणसयगासगविग्घा ॥ १ ॥ ”

है—“ क्षुद्र लोकाकुले लोके ” इत्यादि ।

क्षुद्रलोकों से युक्त इस लोकमें अगर शांति दान दयालु की रक्षा
राजा नहीं करे तो धर्म की रक्षा कैसे किया जाय ।

इन दोनों श्लोकोंका अर्थ स्पष्ट है । इस प्रकारका यह तृतीय स्थान
है, चतुर्थ निश्रास्थान गृहपति है, क्योंकि गृहपति शय्यादायक होता है,
अतः वह धर्मोपकारक होता है, इसलिये निवासदायक होनेसे वह भी
निश्रास्थान है । कहा भी है—“ धृतिर्मतिर्गतिस्तेन ” इत्यादि ।

जिसने साधुजनोंके लिये दाम प्रदान किया है, उसने उनके लिये
धृति मति ज्ञान और गति प्रदान की है, तथा सुख दिया है । तथा—
“ जो देह उचस्मयं ” इत्यादि ।

जो तप, नियम, योग युक्त साधुजनोंके लिये उपाश्रय देता है, वह
उनके लिये शयन, आसन, वस्त्र, अन्न, पान आदि सब कुछ दिया

“ क्षुद्रलोकाकुले लोके ” इत्यदि. आ. अन्ने श्लोकने अर्थ स्पष्ट छे—

(४) साधुभ्योनुं योथुं निश्रास्थान गृहपतिः (गृहस्थ) छे. कारण के
गृहपति शय्यादायक छे आ. रीने साधुने निवासस्थान आपनार डोवाने
कारणु तेने पणु निश्रास्थान इप प्रकट करवामां आवेत्त छे.

कथु पणु छे के “ धृतिर्मतिर्गतिस्तेन ” इत्यादि—

जेणु साधुने निवासस्थान प्रदान करुं छे, तेणु तेमने धृति, मति,
ज्ञान अने गति प्रदान करी छे तथा तेमने सुख आप्युं छे. तथा “ जो देह
उचस्मयं ” इत्यादि—जे तप, नियम अने योगयुक्त साधुभ्योने उपाश्रय आपे
छे, तेणु तेमने शयन, आसन, वस्त्र, अन्न, पाण्डु आदि सबहुं आप्युं
छे, जेम समज्जुं. आ. प्रकारनुं आ. योथुं निश्रास्थान छे.

छाया—यो ददात्युपाश्रयं यन्निवरेभ्यस्ततो नियमयोगयुक्तेभ्यः ।

तेन दत्ता वस्त्रान्नपानशयनासनविकल्पाः (प्रकाराः) ॥१॥ इति ।

इति चतुर्थं निश्रास्थानम् ४।

तथा—शरीरमपि धर्मोपग्राहकम् । तथा चोक्तम्—

“ शरीरं धर्मसंयुक्तं, रक्षणीयं प्रयत्नतः ।

शरीरात् स्रवते धर्मः, पर्वतात् सलिलं यथा ॥ १ ॥ ” इति ।

इति पञ्चमं निश्रास्थानम् ५।

एतत्पञ्चविधनिश्रास्थानोपग्राहिका गाथा एवं निर्दिष्टा—

तथाहि—“ धर्मं चरतः साधोर्लोकैः निश्रापदानि पञ्चैव ।

राजा गृहपतिरपरः, षट्काया गणशरीरे च ॥१॥ इति । ” ॥मू०७॥

समझना चाहिये इस प्रकारका यह चौथा निश्रास्थान है । तथा पांचवां निश्रास्थान धर्मोपग्राहक शरीर भी है । कहा भी है—

“ शरीरं धर्मसंयुक्तं ” इत्यादि ।

धर्मसंयुक्त शरीरकी बड़ी सावधानीके साथ रक्षा करनी चाहिये क्योंकि जिस प्रकार पर्वतसे पानी झरता है, उसी प्रकार शरीरसे धर्मरूप पानी झरता है ।

इन पांच प्रकारके निश्रास्थानोंमें धर्मोपग्राहिकता प्रकट करनेवाली एक यह गाथा भी है—“ धर्मं चरतः साधोर्लोकैः ” इत्यादि ।

धर्मका आचरण करनेवाले साधुके निश्रापद पांचही होते हैं । एक षट्काय दूसरा गण तीसरा राजा चौथा गृहपति और पांचवां शरीरहै ७॥

(५) साधुओनु पांचमुं निश्रास्थान धर्मोपग्राहक शरीर छे कछु पञ्च छे के “ शरीरं धर्मसंयुक्तं ” इत्यादि—धर्मसंयुक्त शरीरनी धरुणी सावधानी पूर्वक रक्षा करवी जेधरुने, कारणु के जेभ पर्वतपरथी पाणी अरे छे जे न प्रभाणु शरीरमांथी धर्मरूपी पाणी अरे छे.

आ पांच प्रकारना स्थानोमा धर्मोपग्राहिकता प्रकट करनारी जेके गाथा नीचे प्रभाणु छे. “ धर्मं चरत साधोर्लोकैः ” इत्यादि—

धर्मनी आराधना करता साधुओने भाटे राज, गृहपति, छकायना लुयो, गणु अने शरीर जे पांच न निश्रास्थानो छे ॥ सू. ७ ॥

साधु सम्बन्धीनि पञ्च निश्रास्थानान्युत्तरा सम्प्रति निधिरूपाणि लौकिकानि
पञ्च निश्रास्थानान्याह—

मूलम्--पंच गिही पणत्ता, तं जहा--पुत्रगिही १ मित्र-
गिही २ सिष्पगिही ३ धनगिही ४ धनगिही ५ ॥ सू० ८ ॥

छाया-पञ्च निधयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-पुत्रनिधिः १ मित्रनिधिः २ शिल्प-
निधिः ३, धननिधिः ४, धान्यनिधिः ५ ॥ सू० ८ ॥

टीका—‘ पंच गिही ’ इत्यादि—

निधयः पञ्चसंख्यकाः प्रज्ञप्ताः, तानेवाह-तद्यथा-पुत्रनिधिः-न्तितां धीयते=
स्थाप्यते यत्र स निधिः=विशिष्टरत्न सुवर्णादि द्रव्यभाजनं, निधिरिव निधिः,
पुत्रश्चासौ निधिश्चेति । धनोपार्जनेन मातापित्रोः परिपोषकतया पुत्रस्य निधि-
त्वम् । अत एव पुत्रसुखावलोकनं पित्रोरानन्दजनकं भवति । तदुक्तम्—

“ जन्मान्तरफलं पुण्यं, तपोदानसमुद्भवम् ।

सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ॥ १ ॥ इति ॥

इति प्रथमो निधिः १ ।

इस प्रकारसे साधु संबन्धी पांच निश्रास्थानोंको कह कर अब
सूत्रकार निधिरूप लौकिक पांच निश्रास्थानोंका कथन करते हैं—

‘पंच गिही पणत्ता’ इत्यादि सूत्र ८ ॥

निधि पांच कही गई हैं—जैसे-पुत्रनिधि १ मित्रनिधि २ शिल्प-
निधि ३ धननिधि ४ और धान्यनिधि ५ ।

विशिष्ट रत्न सुवर्णादि द्रव्यका जो भाजन होता है, वह निधि
है, पुत्ररूप जो निधि है, वह पुत्रनिधि है, पुत्रको जो निधिरूप कहा गया
है, उसका कारण धनोपार्जन द्वारा मातापिताका परिपोषक होनेसे कहा
गया है, इसीलिये पुत्रके सुखका अवलोकन मातापिताको आनन्दका
जनक होता है । कहा भी है—“ जन्मान्तरं फलं पुण्यं ” इत्यादि ।

आ रीते साधुओंना पांच निश्रास्थानो प्रकट करीने हवे सूत्रकार निधि-
रूप पांच लौकिक निश्रास्थानोनुं निरूपण करे छे

“पंच गिही पणत्ता” इत्यादि पांच प्रकारना निधि कहा छे—(१) पुत्रनिधि,
(२) मित्रनिधि, (३) शिल्पनिधि, (४) धननिधि अने (५) धान्यनिधि.

विशिष्ट रत्न सुवर्णादिना ल'डारने निधि कहे छे पुत्र रूप ने निधि
छे तेने पुत्रनिधि कहे छे पुत्रने निधि रूप कहेवानुं कारण ओ छे के ते धनो
पार्जन करीने मातापितानुं पालन पोषण करे छे तेथी ओ पुत्रनुं दर्शन अथवा
पुत्रप्राप्ति मातापिताने माटे आनन्दजनक थ' पडे छे. कहुं पण छे के

“ जन्मान्तरं फलं पुण्यं ” इत्यादि—

तथा-मित्रनिधिः-मेवति=स्निह्यतीति मित्रं=सुहृन्, तच्चतन्निधिश्चेति । अर्थादि साधने साहाय्यकरणेन मित्रस्यानन्दजनकत्वात् निधित्वम् । तदुक्तम्—

“ कुतस्तस्यास्तु राज्यश्रीः, कुतस्तस्य मृगेक्षणाः ।

यस्य शूरं विनीतं च, नास्ति मित्रं विचक्षणम्ः ” ॥ १ ॥ इति ।
इति द्वितीयो निधिः २।

तथा-शिल्पनिधिः-शिल्पं=चित्रादिविज्ञानं, तदेव निधिः-शिल्प-निधिः । शिल्पं च विद्याया उपलक्षणम् । तेन विद्यापि निधिरिव पुरुषार्थसाधकत्वाद् बोध्या ।

तप और दानसे उत्पन्न हुआ पुण्य परलोकमें जीवोंको सुख देने-वाला होता है, परन्तु शुद्धवंशमें उत्पन्न हुई संतति परलोक एवं इह-लोक दोनों लोकोंमें आनन्द देनेवाली होती है ।

इस प्रकारकी यह पुत्ररूप निधि पहिली लौकिक निधि है । जो स्नेह करता है, वह मित्र सुहृत् है । सुहृत् रूप जो निधि है, वह सुहृत् निधि है । मित्रको जो निधिरूप कहा गया है, उसका कारण यह है, कि वह अर्थादिके साधनमें सहायता करनेसे आनन्दजनक होता है । कहा भी है—“ कुतस्तस्यास्तु राज्यश्रीः ” इत्यादि ।

जिसको शूर विनीत एवं विचक्षण मित्र नहीं है, उसको कहाँसे तो राज्यश्री हो सकती है, और कहाँसे मृगेक्षणा-मृगके जैमी नेत्र-वाली प्राणघ्यारी हो सकती है । इस प्रकारकी यह द्वितीय निधि है ।

चित्रादिके विज्ञानका नाम शिल्प है, यह शिल्परूप जो निधि है, वह शिल्पनिधि है । शिल्प यह विद्याका उपलक्षण है, इससे पुरुषा

तप अने दान करवाथी प्राप्त थतु पुण्य तो भवने परलेकमा न सुभ-
दायी थाय छे, पण सुपुत्र तो आलोक अने परलोक रुप अन्ने लोकमां
सुभदायक थछ पडे छे आ प्रकारना आ पुत्ररूप निधिने पडेले लौकिक निधि
कह्यो छे. (२) मित्रने भीजे लौकिक निधिरूप कह्यो छे. जे स्नेह करे छे ते
मित्र-सुहृत् छे. जेवा मित्ररूप निधिने मित्रनिधि अथवा सुहृत्निधि कहे छे
मित्रने निधिरूप कहेवानुं कारणे जे छे ते अर्थादिनी प्राप्तिमां सहायक
अनतो होवाथी आनंदायक थछ पडे छे. कह्युं पण छे के :

“ कुतस्तस्यास्तु राज्यश्रीः ” इत्यादि—

जेने शूर, विनीत अने विचक्षण मित्र होतो नथी तेने राज्यश्रीनी
प्राप्ति केवी रीते थछ शके अने मृगना जेवा नयनवाणी प्राणघ्यारी पण
केवी रीते संभवी शके ! आ प्रकारना आ भीजे लौकिकनिधि कह्यो छे.
(३) शिल्पनिधि—चित्रादिना ज्ञानतुं नाम शिल्प छे. आ प्रकारना शिल्परूप
जे निधि छे तेने शिल्पनिधि कहे छे. ‘ शिल्प ’ पद विद्यातुं उपलक्षण

ઉક્તે ચ—

“ વિદ્યાયા રાજપૂજ્યઃ સ્યાત્ , વિદ્યાયા રર્વમાન્યતા ।

વિદ્યા દિ સર્વલોકસ્ય, વશીકરણકારણમ્ ” ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

ઈતિ તૃતીયો નિધિઃ ૩। તથા-ધનનિધિઃ=કોશઃ । ધાન્યનિધિશ્ચ કોષ્ટાગારઃ
ઈતિ ચતુર્થપશ્ચમી નિધી । ૪ । ૫ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

ઈત્યં નિધિઃ પશ્ચવિધઃ પ્રોક્તઃ, સ ચ દ્રવ્યતઃ પુત્રાદિ, ભાવતસ્તુ કુશલાનુ-
ષ્ઠાનરૂપં બ્રહ્મચર્યં, તદેવ શૌચત્વેન વિવક્ષન્ અન્યાન્યપિ શૌચાનિ પ્રાહ—

મૂલમ્-સોષ્ટ પંચવિદ્ધે પષ્ણત્તે, તં જહા-પુઠ્ઠવિસોષ્ટ ૧
આડસોષ્ટ ૨ તેડસોષ્ટ ૩ મંતસોષ્ટ ૪ વંધસોષ્ટ ॥૫॥ સૂ૦ ૯ ॥

છાયા—શૌચં પશ્ચવિધં મત્તમમ્, તથથા-પૃથિવોશૌચમ્, ૧ અપૂશૌચમ્ ૨,
તૈજશૌચમ્ ૩, મન્ત્રશૌચમ્ ૪, બ્રહ્મશૌચમ્ ૫ ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ધિકા સાધનરૂપ હોનેસે વિદ્યા ધી નિધિકી તરહ સમજ્ઞની ચાહિયે ।
કહા ધી હૈ—“ વિદ્યાયા રાજ્યપૂજ્યઃ સ્યાત્ ” ઇત્યાદિ ।

મનુષ્ય વિદ્યાસે રાજ્યપૂજ્ય હો સકતા હૈ, ઓર વિદ્યાસે વહ સર્વ-
માન્ય હો સકતા હૈ, ક્ષયોંકિ વિદ્યા સર્વલોકકો વશમેં કરનેકા એક
વશીકરણ યન્ત્ર હૈ, હમ પ્રકારકા વહ તૃતીય નિધિસ્થાન હૈ ।

હસી પ્રકારસે કોશ ઓર ધાન્યાગાર રૂપ જો નિધિ હૈ, વહ ચતુર્થ
પંચમ નિધિ હૈ ૪-૫ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

હસ પ્રકારસે પાંચ નિધિયોંકા કથન કિયા હનમેં દ્રવ્યરૂપ નિધિ
પુત્રાદિક હૈ, ઓર ભાવરૂપનિધિ કુશલાનુષ્ઠાનરૂપ બ્રહ્મચર્ય હૈ, હસકો
શૌચરૂપસે કહનેકો હ્ચ્છાવાલે આચાર્ય અવ અન્ન શૌચોંકા કથન કરતેહૈ ।

હોત્રાથી તે વિદ્યાને ૫૫ નિધિરૂપ સમજવી. વિદ્યા જ પુરુષાર્થમાં સાધનરૂપ
બને છે. કહ્યું પણ છે કે “ વિદ્યાયા રાજ્યપૂજ્યઃ સ્યાત્ ” ઇત્યાદિ—

વિદ્યાને કારણે મનુષ્ય રાજ વડે પણ પૂજ્ય છે. વિદ્યા વડે માણસ
સમસ્ત લોકોમાં માનનીય બને છે, કારણ કે વિદ્યા સમસ્ત મનુષ્યોને વશ
કરવામાં વશીકરણ મંત્રની ગરજ સારે છે. આ પ્રકારનો આ ત્રીજો નિધિ
સમજવો. એ જ પ્રમાણે કોશ અને ધાન્યાગાર રૂપ બે ચોથે અને પાંચમે
નિધિ છે, તેને વિષે પણ સમજવું ॥ સૂ ૮ ॥

આ પ્રકારના પાંચ નિધિઓંનું કથન કરવામાં આંબું. તેમાંથી પુત્રા-
દિકને દ્રવ્ય રૂપ નિધિ સમજવા કુશલાનુષ્ઠાન રૂપ બ્રહ્મચર્યને ભાવરૂપ નિધિ
સમજવો. તેને શૌચ રૂપે પ્રકટ કરવાની અભિલાષાવાળા સૂત્રકાર હવે અન્ય

टीका—' सोए ' इत्यादि—

शुचिः=शुद्धिः सैत्र शौचम् । तच्च द्रव्यतः चतुर्विधं भावन एकविधम् । पञ्च-
विधमपीदं शौचं तत्तन्नाम्ना व्यपदिशति, तद्यथा—पृथ्वीशौचम्—पृथिव्या=मृत्ति-
कया शौच शुद्धिः—शरीरादिषु मृत्तिकाया घर्षणापलेपनेन ततो मलदुर्गन्धदूरीक-
रणमित्यर्थः । इति प्रथमं शौचम् । तथा=अप्शौचम्—अद्भिः=जलैः शौचम्=पक्षा-
लनम् २। तेजः शौचम्—तेजसा=अग्निना तद्विकारेण भस्मना वा शौचम् ३।
मन्त्र शौचम्—मन्त्रेण=शुचिविद्यया शौचम् ४। तथा=पञ्चमं ब्रह्मशौचम्—ब्रह्म-
ब्रह्मचर्यादि कुशलानुष्ठानं, तदेव शौचं ब्रह्मशौचम् । अनेन सत्यशौचं तपः शौचम्
इन्द्रियनिग्रहशौच सर्वभूतदयाशौचम् चेति चतुर्विधमपि शौचं गृहीतम्—

सोए पंचविहे पणत्ते' इत्यादि सूत्र ९ ॥

टीकार्थ—शौच पांच प्रकारका कहा गया है जैसे—पृथिवी शौच १ अप्शौच
२ तेजः शौच ३ मन्त्र शौच ४ और ब्रह्मचर्य शौच ५ शुद्धिका नाम
शौच है, यह द्रव्यकी अपेक्षा चार प्रकारका कहा गया है, और भावकी
अपेक्षा एक प्रकारका कहा गया है, पांच प्रकारके भी इस शौचको
सूत्रकारने उस २ नामसे कहा है, जैसे पृथिवीशौच आदि—मृत्तिका
द्वारा जो शुद्धि की जाती है वह पृथिवीशौच है, मिट्टीसे हाथोंको धोना
शरीर पर मिट्टी लगाना इत्यादि लौकिक क्रियाएँ इस पृथिवी शौचमें
आ जाती हैं । जलसे शुद्धि करना यह अप् शौच है । तेज अग्निसे
या राग्वसे शुद्धि करना यह तेजः शौच है मंत्र से शुचि विद्यासे
जो शुद्धि करता है यह मन्त्र शौच है, ब्रह्मचर्य आदि कुशल अनु-
ष्ठान करना यह ब्रह्मशौच है । इससे सत्यशौच, तपः शौच, इन्द्रिय

शौचाने प्रकट करे छे. ' सोए पंचविहे पणत्ते ' इत्यादि—

टीकार्थ—शौचना नीचे प्रमाणे पांच प्रकार कछा छे—(१) पृथ्वीशौच, (२)
अप्शौच, (३) तेजःशौच, (४) मन्त्रशौच, अने (५) ब्रह्मचर्यशौच

शौच अटवे शुद्धि द्रव्यनी अपेक्षाअे शौचना पृथ्वीशौचथी लधने
मन्त्रशौच पर्यन्तना चार प्रकार समजवा अने लावनी अपेक्षाअे तेना
ब्रह्मचर्यशौच नामने अेक न प्रकार समजवे।

माटी द्वारा शरीरनी अे शुद्धि थाय छे तेनु नाम पृथ्वीशौच छे. माटी
वडे हाथनी शुद्धि करवी, शरीर पर माटीने लेप करवे आदि लौकिक क्रिया-
अेने आ पृथ्वीशौच रूप कछी शक्य छे. पाणी वडे शरीर आदिनी शुद्धि
करवी तेनु नाम अप्शौच छे प्रकाश, अग्नि अथवा राग वडे शुद्धि करवी
ते तेजःशौच छे. मन्त्र वडे (शुचि विद्या वडे) शुद्धि करवी तेनु नाम मन्त्र-
शौच छे. ब्रह्मचर्य आदि कुशल अनुष्ठान करवा तेनु नाम ब्रह्मशौच छे. ब्रह्म-

“ સત્યં શૌચં તપઃ શૌચં, શૌચમિન્દ્રિયનિગ્રહઃ ।

સર્વભૂતદયા શૌચં, જલશૌચં ચ પશ્ચમમ્ ॥ ૧ ॥ ” ઇતિ ।

અન્યતીર્થિકૈઃ પુનરિદં શૌચં સપ્તવિધં પ્રોક્તં તથાદિ—

“ સપ્તસ્નાનાનિ પ્રોક્તાનિ, સ્વયમેવ સ્વયમ્ભુવા ।

દ્રવ્યભાવવિશુદ્ધયર્થમ્, ઋષીણાં બ્રહ્મવાદિણામ્ ॥ ૧ ॥

આગ્નેયં વારુણં બ્રાહ્મ, વાયવ્યં દિવ્યમેવ ચ ।

પાર્થિવં માનસં ચૈવ સ્નાનં સપ્તવિધ સ્મૃતમ્ ॥ ૨ ॥

આગ્નેયં મસ્મના સ્નાનમવગાહ્યંતુ વારુણમ્ ।

આપોહિષ્ઠામયં બ્રાહ્મં વાયવ્યં તુ ગવાં રજઃ ॥ ૩ ॥

નિગ્રહ શૌચ ઓર સર્વભૂત દયા શૌચ યે જો ચાર પ્રકારકે શૌચ હૈ, વહ ઓ ગૃહીત હો જાતા હૈ । કહા ઓ હૈ—

“ સત્યં શૌચ તપઃ શૌચં ” ઇત્યાદિ ।

અન્ય તીર્થિકોને જો સાત પ્રકારકા શૌચ કહા હૈ વહ્ હસ પ્રકારસે હૈ—“ સપ્ત સ્નાનાનિ પ્રોક્તાનિ ” ઇત્યાદિ ।

ઋષી બ્રહ્મચારિયોંકા દ્રવ્ય એવં ભાવકી શુદ્ધિકે લિયે સ્વયંભૂને યે સાત સ્નાન કહે હૈ—આગ્નેય ૧ વારુણ ૨ બ્રાહ્મ ૩ વાયવ્ય ૪ દિવ્ય ૫ પાર્થિવ ૬ ઓર માનસ સ્નાન ૭ હનમેં જો રાજસે સ્નાન કિયા જાતા હૈ, વહ આગ્નેય સ્નાન હૈ, જલસે જો સ્નાન કિયા જાતા હૈ, વહ વારુણ સ્નાન હૈ....મંત્રસે જો સ્નાન કિયા જાય ...વહ બ્રહ્મસ્નાન હૈ, ગોધૂલિસે

શૌચમાં સત્યશૌચ, તપ.શૌચ, ઇન્દ્રિય નિગ્રહશૌચ અને સર્વભૂત દયાશૌચનો પણ સમાવેશ થઈ જાય છે. કહ્યું પણ છે કે—

“ સત્યં શૌચ તપઃ શૌચં ” ઇત્યાદિ

અન્ય તીર્થિકોએ સાત પ્રકારના જે શૌચ કહ્યા છે, તે નીચે પ્રમાણે છે

“ સપ્તસ્નાનાનિ પ્રોક્તાનિ ” ઇત્યાદિ—

પ્રહ્મચારી ઋષિઓની દ્રવ્યશુદ્ધિ અને ભાવશુદ્ધિ નિમિત્તે સ્વયંભૂએ સાત સ્નાન કહ્યાં છે—(૧) આગ્નેય, (૨) વારુણ, (૩) બ્રાહ્મ, (૪) વાયવ્ય, (૫) દિવ્ય, (૬) પાર્થિવ અને (૭) માનસ સ્નાન.

રાખથી જે સ્નાન કરાય છે તેનું નામ આગ્નેય સ્નાન છે. પાણી વડે જે સ્નાન કરાય છે, તેનું નામ વારુણ સ્નાન છે. મંત્ર વડે જે સ્નાન કરાય છે, તેનું નામ બ્રહ્મસ્નાન છે. ગોધૂલિ વડે જે સ્નાન કરાય છે, તેનું

सूर्यदृष्टं तु यदृष्टं, तदिव्यमृपयो विदुः ।

पार्थिवं च मृदा स्नानं, मनः शुद्धिस्तु मानसम् ॥ ४ ॥ ” इति ॥ सू० ९ ॥

पूर्वमूत्रे ब्रह्मशौचशुक्तम् तच्च जीवशुद्धिरूपम् । जीवं तु छद्मस्थो न विजानाति केवली तु विजानातीति सम्बन्धाच्छद्मस्थकेवलिनोरज्ञेयज्ञेयपदार्थान् पञ्चधा प्रतिपादयति—

मूलम्—पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ, ण पासइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं १ अधम्मत्थिकायं २ आगासत्थिकायं ३ जीवं असरीरपडिबद्धं ४, परमाणुपोग्गलं ५। एयाणि चैव उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ धम्मत्थिकायं जाव परमाणुपोग्गलं ॥ सू० १० ॥

छाया—पञ्च स्थानानि छद्मस्थः सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तत्रथा—धर्मास्तिकायम् १ अधर्मास्तिकायम् २ आकाशास्तिकायम् ३ जीवम् अशरीर-प्रतिबद्धं ४ परमाणुपुद्गलम् ५। एतान्येव उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अहंन् जिनः केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति—धर्मास्तिकायं यावत् परमाणुपुद्गलम् ॥ सू० १० ॥

जो स्नान किया जाता है, वह वायव्य स्नान है, सूर्यका आताप लेना यह दिव्य स्नान है, मृत्तिका से जो स्नान है, वह पार्थिव स्नान है, और मनकी शुद्धि करना यह मानस स्नान है ॥ सू० ९ ॥

इस प्रकारसे यह शौच कहा है, यह शौच जीवकी शुद्धि रूप होता है, छद्मस्थ जीवको नहीं जानता है, केवलीही जीवको जानते हैं, सो इस सम्बन्धको लेकर अबसूत्रकार छद्मस्थ और केवलीके जो अज्ञेय ज्ञेय पदार्थ हैं, उनके पांच प्रकारोंका कथन करते हैं—

‘पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ इत्यादि’ सूत्र १० ॥

नाम वायव्यस्नान छे. सूर्यना तडका वडे जे आतापना लेवाय छे, तेतुं नाम दिव्यस्नान छे. माटी वडे जे स्नान कराय छे, तेतुं नाम पार्थिवस्नान छे. अने मननी शुद्धि करवा रूप मानसस्नान होय छे. ॥ सू. ९ ॥

आ प्रकारना आ शौच कहां छे ते शौच छवनी शुद्धिरूप होय छे. छद्मस्थ भनुव्य छवने लणुतो नथी, केवली जे छवने लखे छे. आ प्रकारना सम्बन्धने अनुलक्षीने हवे सूत्रकार छद्मस्थ अने केवलीने जे अज्ञेय अने ज्ञेय पदार्थ छे तेमना पांच प्रकारोंतुं कथन करे छे.

ટીકા—‘ પંચ ઠાણાં ’ ઇત્યાદિ—

છદ્મસ્થઃ—અવધિજ્ઞાનમનઃપર્યવજ્ઞાનવર્જિતો મુનિઃ પञ્ચસ્થાનાનિ સર્વભા-
વેન=સાક્ષાત્કારેણ=પ્રત્યક્ષતયેત્પર્યઃ, ન જાનાતિ ન પશ્યતિ । તાનિ સ્થાનાન્યાહ-
તથથા—ધર્માસ્તિકાયમિત્યાદિ । તત્ર=અશરીરપ્રતિબદ્ધમ્=શરીરવર્જિત જીવમ્ ।
પરમાણુપુદ્ગલમ્—પરમાણુથાસૌ પુદ્ગલ્લઘ્વતિ તમ્ । इदं द्वयणुकादीनामप्युपलक्षणम्,
તેન દ્વયણુકાદીનપિ છદ્મસ્થઃ સાક્ષાત્કારેણ નો જાનાતિ નો પશ્યતિ । શ્રુતજ્ઞાનેન

ટીકાર્થ—અવધિજ્ઞાન એવં મનઃ પર્યવજ્ઞાનસે રહિત મુનિરૂપ છદ્મસ્થ ઇન
પાંચ સ્થાનોંકો સર્વભાવસે સાક્ષાત્ રૂપસે પ્રત્યક્ષરૂપસે નહીં જાનતા હૈ,
નહીં દેખનાહૈ, વે પાંચ સ્થાન હસ પ્રકારસે હૈ—ધર્માસ્તિકાય ૧ અધર્માસ્તિ
કાય ૨ આકાશાસ્તિકાય ૩ અશરીરપ્રતિબદ્ધ જીવ ૪ ઓર પરમાણુ
પુદ્ગલ ૫ । इन्हीं पांच स्थानोंको उत्पन्नज्ञानदर्शनधारी अर्हन्त जिन
કેવલી સર્વભાવસે સાક્ષાત્ રૂપસે જાનતે હૈ દેખતે હૈ । વે પાંચ સ્થાન
ધર્માસ્તિકાય યાવત્ પરમાણુ પુદ્ગલ હૈ । અવધિજ્ઞાન એવ મન.પર્યવજ્ઞાન-
ઘાલે જીવ ઓ છદ્મસ્થ જીવમં ગૃહીત કિયે ગયે હૈ, અતઃ વે યહાં ગૃહીત
ન હૈ હસીલિયે ટીકાકારવે ઉન્હે વર્જિત કિયા હૈ, અશરીર પ્રતિબદ્ધકા
ભાવ હૈ, શરીરસે રહિત જીવ પરમાણુ પુદ્ગલ દ્વયણુક આદિકા ઉપ-
લક્ષણ હૈ, અતઃ જૈસા વહ છદ્મસ્થ પરમાણુ પુદ્ગલકો સાક્ષાત્ નહીં જાનતા
હૈ, વસી પ્રકારસે વહ દ્વયણુક આદિકો ઓ સાક્ષાત્ રૂપસે નહીં જાનતા

“ પંચ ઠાણાં છત્તમત્યે સત્ત્વભાવેણ ણ જાણહ ” ઇત્ય દિ—

અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યવજ્ઞાનથી રહિત એવો છદ્મસ્થ મુનિ આ પાંચ
સ્થાનોને સર્વભાવે, સાક્ષાત્ રૂપે, પ્રત્યક્ષ રૂપે જાણતો નથી. (૧) ધર્માસ્તિકાય
(૨) અધર્માસ્તિકાય, (૩) આકાશાસ્તિકાય, (૪) અશરીર પ્રતિબદ્ધ જીવ
અને (૫) પરમાણુ પુદ્ગલ.

એ જ પાંચ સ્થાનોને ઉત્પન્ન જ્ઞાન દર્શનધારી અહીંત જિન કેવલી
સર્વભાવે—સાક્ષાત્ રૂપે જાણે છે અને દેખે છે એટલે કે ધર્માસ્તિકાયથી
લઈને પરમાણુ પુદ્ગલ પર્યન્તના પાંચ સ્થાનોને કેવળજ્ઞાની જીવ પ્રત્યક્ષ રૂપે
જાણી શકે છે અને દેખી શકે છે અવધિજ્ઞાની અને મનઃપર્યવજ્ઞાનવાળા
જીવને પણ છદ્મસ્થ જ ગણવામાં આવે છે, તેથી તેમને અહીં ગૃહીત કરવાના
ન હોવાથી સૂત્રકારે તેમને અહીં વર્જિત કર્યા છે “ અશરીર પ્રતિબદ્ધ ”
એટલે શરીરથી રહિત જીવ પરમાણુ પુદ્ગલ દ્વયણુક આદિનું ઉપલક્ષણ છે. તે
છદ્મસ્થ જેમ પરમાણુ પુદ્ગલને સાક્ષાત્ રૂપે જાણતો નથી, એ જ પરમાણુ તે
દ્વયણુક આદિને પણ સાક્ષાત્ રૂપે જાણતો નથી. શ્રુતજ્ઞાનની સહાયતાથી જ

तु धर्मास्तिकायादीन् जानात्येवेति अत्रेदं बोध्यम्-अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी च यद्यपि छद्मस्थ एव तथापि स नेह विवक्षितः धर्मारित्तरायादीनां चतुर्णां साक्षात्कारेण ज्ञानाभावेऽपि परमाणुपुद्गलस्य साक्षात्कारेण ज्ञानात् । ननु सर्वभावेन इत्यस्य सर्वपर्यायेण इत्यर्थः, एवं च अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी च सर्वपर्यायेण परमाणुपुद्गलं न जानातीति छद्मस्थपदेन अवधिमनःपर्ययज्ञानिनोरपि ग्रहणे है, श्रुतज्ञानकी सहायतासेही जानता है, तात्पर्य ऐसा है-यद्यपि अवधिज्ञानी मनः पर्ययज्ञानी छद्मस्थही हैं, परन्तु यहां उनकी विवक्षा नहीं हुई है, क्योंकि वे परमाणु पुद्गलको तो साक्षात् रूपसे जानते हैं, भलेही वे धर्मास्तिकायादिक चारको साक्षात् रूपसे नहीं जानते ।

शंका—“ सर्वभाव ” इस पदका अर्थ है, सर्वपर्यायसे अतः अवधिज्ञानी एवं मनः पर्ययज्ञानी जो जीव है, वह सर्वभावसे सर्वपर्यायसे परमाणुपुद्गलको जानता नहीं है, इसलिये छद्मस्थ पदसे अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी इनका भी ग्रहण कर लिया जावे तो क्या हानि है ?

उत्तर—“ सर्वभावेन ” इस पदका अर्थ यदि “ सर्वपर्यायः ” ऐसा माना जाय और ऐसा मानकर यह कहा जायकि अशरीर प्रतिबद्ध जीवको छद्मस्थ सर्व पर्यायरूपसे साक्षात् नहीं जानता है, साक्षात् नहीं देखता है, तो इसका भाव ऐसा होता है, कि वह शरीर प्रतिबद्ध

जाने छे आ कथनतु तात्पर्यं ज्ञेयुं छे के अवधिज्ञानी अने मनःपर्ययज्ञानी छद्मस्थ ज छे, छतां पणु अडी तेमनी विवक्षा थथ नथी कारणु के तेजो परमाणु पुद्गलने तो साक्षात् इपे ज्ञेयुं छे, लले तेजो धर्मास्तिकाय आदि आरने साक्षात् इपे ज्ञेयुता नथी

शंका—“ सर्वभाव ” आ पदने अर्थ ‘सर्वपर्यायनी अपेक्षाजे’ थाय छे तेथी अवधिज्ञानी अने मनःपर्ययज्ञानी जे ज्ञेयो छे, तेजो सर्वभावे, सर्वपर्यायनी अपेक्षाजे-परमाणु पुद्गलने ज्ञेयुता नथी, ज्ञेयुं सिद्ध थाय छे तो यथी छद्मस्थ पद वडे अवधिज्ञानी अने मन पर्ययज्ञानीने पणु श्रद्धणु करवांमां शे वाधे छे ?

उत्तर—“ सर्वभावेन ” आ पदने अर्थ जे “ सर्व पर्याय इपे ” मानवांमां आवे, तो अने जे प्रकारने अर्थ मानीने जे ज्ञेयुं कडेवांमां आवे के “ अशरीर प्रतिबद्ध ज्ञेयने छद्मस्थ सर्व पर्याय इपे साक्षात् ज्ञेयुतो नथी अने साक्षात् हेयतो नथी, ” तो तेना द्वारा ज्ञेयो भाव प्रकट थाय छे

न कापि हानिरितिचेत्, अत्रोच्यते-यदि सर्वभावेन इत्यस्य सर्वपर्यायेण इत्यर्थः स्वीक्रियते, तर्हि 'अशरीरप्रतिबद्धं जीवं छद्मस्थः सर्वपर्यायेण न जानाति न पश्यतीत्युक्ते शरीरप्रतिबद्धं जीवं तु सर्वपर्यायेण जानाति पश्यतीत्यर्थे गम्यते। न च शरीरप्रतिबद्धं जीवम् अवधिज्ञानी मनःपर्यवज्ञानी च सर्वपर्यायेण जानाति। अतः 'सर्वभावेन' इत्यस्य 'साक्षात्कारेण' इत्येवार्थो युक्तः। परमाणु पुद्गलं तु साक्षात्कारेण अवध्यादिज्ञानीजानात्येव, अतः-छद्मस्थपदेनात्र अवध्यादि रहित एव ग्राह्य इति। जिनस्तु एतानि पञ्च स्थानानि साक्षात्कारेण जानाति-इत्याह-'एयाणि चैव' इत्यादि इति ॥सू० १० ॥

पूर्वोक्त धर्मास्तिकायाद्यतिरिक्तानध्यतीन्द्रियभावन् जिनो जानातीत्यधोलोकोद्ध्वलोकवतीन् अतीन्द्रियान् भावान् पञ्च स्थानकत्वेनाह--

मूलम्-अहोलोक्षणं पञ्च अणुत्तरा महइमहालया महा-
निरया पणत्ता, तं जहा--काले १ महाकाले २ रोरुए ३ महा-

जीवको साक्षात् जानता है, और साक्षात् देखता है, परन्तु ऐसा अर्थ मानना भी संगत नहीं होता है, क्योंकि अवधिज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी जीवको शरीर प्रतिबद्ध जीवको सर्वपर्याय सहित न जानता है, और न देखता है, इसलिये "सर्वभाव" पदका अर्थ "साक्षात्कार" ऐसाही यहां करना चाहिये "सर्वपर्याय" ऐसा नहीं करना चाहिये अतः ऐसी अर्थ संगतिमें कोई दोष नहीं आता है, क्योंकि अवधिज्ञान आदिवाले जीव परमाणु पुद्गलको साक्षात् रूपसे जानतेही हैं। इसलिये छद्मस्थ पदसे यद्यं अवधिज्ञान आदिसे वर्जित पुरुषही लेना चाहिये। जिन भगवान् तो इन पांच स्थानोंको साक्षात् रूपहीसे जानते हैं, यही बात "एयाणि चैव" इत्यादि सूत्र पाठ द्वारा प्रकटकी गई है ॥सू० १०॥

के ते शरीर प्रतिबद्ध होने साक्षात् नाले छे अने साक्षात् देखे छे, परन्तु जेवो अर्थ पण संगत लागतो नथी कारणे के अवधिज्ञानी अने मनःपर्यवज्ञानी मनुष्य शरीर प्रतिबद्ध होने सर्वपर्याय सहित नालेतो नथी अने देखेतो नथी तेथी "सर्वभाव" पदको अर्थ अर्ही "साक्षात्कार" न करवो जेधजे "सर्वपर्याय" जेवो अर्थ अर्ही करवो जेधजे नही तेथी जेवी अर्थसंगतिमां केध दोष रहेतो नथी, कारणे के अवधिज्ञान आदिवाणे एव परमाणु पुद्गलने साक्षात् रूपे नाले न छे, तेथी छद्मस्थ पद द्वारा अर्ही अवधिज्ञान न द्विती रहित पुरुषने न ग्रहण करवो जेधजे जिनेन्द्र भगवान तो आ पांचे स्थानने साक्षात् रूपे नाले छे, जे न वातने "एयाणि चैव" इत्यादि सूत्रपाठ द्वारा प्रकट करवामां आवेल छे, ॥ सू. १० ॥

रोरव ४ अप्पइट्टाणे ५। उड्डलोए णं पंच अणुत्तरा महइमहा-
लया महाविमाणा पणत्ता, तं जहा-विजए १ वैजयंते २
जयंते ३ अपराजिए ४ सर्वथसिद्धे ॥ सू० ११ ॥

छाया--अधोलोके खलु पञ्च अनुत्तरा महातिमहालयाः महानिरयाः प्रज्ञप्ताः,
तद्यथा--कालो १ महाकालो २ रौरवो ३ महारौरवः ४ अप्रतिष्ठानः ५। उर्ध्व-
लोके खलु पञ्च अनुत्तरा महातिमहालया महाविमानाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा--विजयो
१ वैजयन्तो २ जयन्तः ३ अपराजितः ४ सर्वार्थसिद्धः ५ ॥सू० ११॥

इतः पूर्वोक्त धर्मास्तिकाय आदिसे अतिरिक्त भी अतीन्द्रिय पदा-
र्थोंको जिन भगवान् जानते हैं, यही बात प्रकट करनेके लिये अधोलो-
कवर्ती उर्ध्वलोकवर्ती अतीन्द्रिय भावोंकी प्ररूपणा अथ सूत्रकार पांच
स्थानोंसे करते हैं--'अहोलोएणं पंच अणुत्तरा' इत्यादि सूत्र ११ ॥

सूत्रार्थ--इस सूत्र की व्याख्या स्पष्ट है--अधोलोकमें सात पृथिवी
हैं उनमें जो सातवीं पृथिवी है, उसमें पांच अनुत्तर बहुत बड़े विशाल
महानिरय कहे गये हैं, उनके नाम इस प्रकारसे हैं--काल १ महाकाल
२, रौरव ३, महा रौरव ४, और अप्रतिष्ठान ५, उर्ध्वलोकमें पांच
नाम अनुत्तर महाविमान जो कि बहुत बड़े विशाल कहे गये हैं,
उनके नाम इस प्रकारसे हैं--विजय १ वैजयन्त २ जयन्त ३ अपराजित ४
और सर्वार्थ सिद्ध ५ ।

आ पूर्वोक्त धर्मास्तिकाय आदि सिवायना अन्य अतीन्द्रिय पदार्थनि
पण जिन लजवान् जाणुं छे अणु वानने प्रकट करवा माटे सूत्रकार उवे
अधोलोकवर्ती अने उर्ध्वलोकवर्ती अतीन्द्रिय भावोनी प्ररूपणा पांच स्थानोनी
अपेक्षा करे छे. "अहोलोएण पंच अणुत्तरा " इत्यादि--

सूत्रार्थ--आ सूत्रनी व्याख्या सुगम छे अधोलोकमां सात पृथ्वी (रत्नप्रभा
आदि नरको) छे. तेमांनी जे सातभी पृथ्वी छे तेमां पांच अनुत्तर (धृष्ट्या
विशाल) नरकवासो आवेला छे. तेमना नाम आ प्रभाणु छे--(१) काल,
(२) महाकाल, (३) रौरव, (४) महारौरव अने (५) अप्रतिष्ठान.

उर्ध्वलोकमां पांच अनुत्तर महाविमानो छे तेमनां नाम आ प्रभाणु
छे--(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित अने (५)
सर्वार्थसिद्ध.

ટીકા--' અહોલોષ ' इत्यादि--

व्याख्या स्पष्टा । नरम्-अधोलोके सप्तमपृथिव्याम् । अनुत्तराः-नास्ति उत्तरः=उत्कृष्टो येभ्यस्ते-सर्वोत्कृष्टा इत्यर्थः । सर्वोत्कृष्टत्वं तु उत्कृष्टवेदनादि-त्वात्, ततः परं नरकामावाद वा बोध्यम् । महातिमहालयाः-अतिमहान्तः-अति-विशाला इत्यर्थः । अति महत्त्वमादितश्चतुर्वर्णां क्षेत्रतोऽप्यसख्यातयोजनत्वेन बो-ध्यम् । अप्रतिष्ठानो यद्यपि क्षेत्रतो योजनलक्षप्रमाण एव तथापि तत्रत्यानां नारकजीवानामायुषोऽतिमहत्त्वात्तस्य महत्त्वं बोध्यमिति । एवमूर्ध्वलोकेऽपि विज्ञेयम्, न वरम् ऊर्ध्वलोके सातावेदनादित्वं बोध्यम् ॥ सू० ११ ॥

ટીકાર્થ-હસ સૂત્રકી વ્યાખ્યા સ્પષ્ટહૈ, જિનકી અપેક્ષા કોઈ ઓર ઉત્કૃષ્ટ નહીં હોતા હૈ, વે અનુત્તર હૈ-સર્વોત્કૃષ્ટ હૈ । સર્વોત્કૃષ્ટતા इनमें उत्कृ-ष्टवेदनावाले होनेसे आई हैं । अथवा-इनके याद और नरक नहीं हैं, इस कारण भी इनमें उत्कृष्टता कही गई है, महातिमहालय शब्दका अर्थ अति विशाल है । इनमें अतिविशालता आदिके चारोंमें क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात योजनके होनेसे है । अप्रतिष्ठान यद्यपि क्षेत्रकी अपेक्षा १ लाख योजनकाही है । तब भी वहाँके नरक जीवोंकी आयु अति महान् है, इसलिये इसमें इस अपेक्षा अति महत्ता कही गई है । इसी तरहका कथन उर्ध्वलोकमें भी जानना चाहिये । यहाँ पर जो महत्ता प्रकट की गई है वह " सातावेदनीयका तीव्र उदय रहता है, अतः उससे यहाँ सातावेदन आदिका प्रकृष्ट अनुभव होता रहता है " इस अपेक्षासे प्रकट की गई है ॥ सू० ११ ॥

ટીકાર્થ-જેના કરતાં કોઈ પણ ઉત્કૃષ્ટ ન હોય તેને અનુત્તર અથવા સર્વોત્કૃષ્ટ કહે છે. કાલ, મહાકાલ આદિ પાંચ નરકવાસોમાં ઉત્કૃષ્ટ વેદનાવાળા નારકોને કારણે સર્વોત્કૃષ્ટતા સમજવી અથવા તે નરકવાસોની નીચે બીજી કોઈ પણ નરકો નહીં હોવાને કારણે પણ તેમાં સર્વોત્કૃષ્ટતા સમજવી. 'મહાતિમહાલય' એટલે 'અતિ વિશાળ' પહેલાં ચાર નરકવાસો અસંખ્યાત યોજનપ્રમાણ હોવાને કારણે તેમનામાં ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અતિ વિશાળતા સમજવી. જો કે અપ્રતિષ્ઠાન નામનો પાંચમો નરકવાસ એક લાખ યોજનપ્રમાણ જ છે, છતાં પણ તેમાં નારકોનું આયુષ્ય અતિ મહાન હોવાથી તે દષ્ટિએ તેમાં સર્વોત્કૃષ્ટતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે.

એ જ પ્રકારનું કથન ઉર્ધ્વલોકના પાંચ અનુત્તર વિમાનો વિષે પણ સમજવું. ત્યાં સાતાવેદનીયનો તીવ્ર ઉદય રહે છે. તેથી તે અનુત્તર વિમાન-નિવાસી દેવો સાતાવેદનીય આદિનો પ્રકૃષ્ટ અનુભવ કરે છે. તે કારણે તેમાં સર્વોત્કૃષ્ટતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. ॥ સૂ. ૧૧ ॥

અનુત્તરનરકેષુ અનુત્તરવિમાનેષુ ચ વિશિષ્ટસ્ત્વા એવ પુરુષા ગન્ડન્તીતિ
પશ્ચવિધાન પુરુષાનાહ—

મૂલમ્—પંચ પુરિસજાયા પળ્ણત્તા, તં જહા—હિરિસત્તે ૧
હિરિમળસત્તે ૨ ચલસત્તે ૩ થિરસત્તે ૪ ઉદયળસત્તે ૫ ॥સૂ.૦૧૨॥

છાયા—પશ્ચ પુરુષજાતાનિ પ્રજ્ઞાતાનિ, તદ્યથા—હી સત્ત્વઃ ૧ હ્રીમનઃ સત્ત્વઃ ૨
ચલસત્ત્વઃ ૩ સ્થિરસત્ત્વઃ ૪ ઉદયનસત્ત્વઃ ૫ ॥સૂ. ૧૨॥

ટીકા—‘ પંચ પુરિસજાયા ’ ઇત્યાદિ—

પુરુષજાતાનિ=પુરુષ પ્રકારાઃ પશ્ચ પ્રલ્પિતાનિ । તાન્યેવહ—તદ્યથા—હીસત્ત્વઃ—
હિયા=લજ્જયા સત્ત્વં=સ્થિતિઃ—અવષ્ટમ્મઃ અવિચલત્ત્વમિતિ યાવત્ પરીપદ્દેષુ યસ્ય
સંયતસ્ય, સંગ્રામાદિષુ વા યસ્ય સંયતેતરપુરુષસ્ય સઃ ।૧। તથા—હ્રીમનઃસત્ત્વઃ—
હિયા=મનસ્યેવ સત્ત્વં ન તુ શરીરે, શ્રીતાદી કમ્પાદિ-વિકારદર્શનાદ યસ્ય સઃ

અનુત્તર નારકોંમેં ઓર અનુત્તર વિમાનોંમેં વિશિષ્ટ શક્તિશાલી
પુરુષહી જાતે હેં, હસલિયે અથ સૂત્રકાર પાંચ પ્રકાર કે પુરુષ કા કથન
કરતે હેં—‘પંચ પુરિસજાયા પળ્ણત્તા’ ઇત્યાદિ સૂત્ર ૧૨ ॥

ટીકાર્થ—પુરુષ જાત પાંચ કહે ગયે હેં જૈસે—હીસત્ત્વ ૧ હ્રીમનઃ સત્ત્વ ૨ ચલ
સત્ત્વ ૩ સ્થિર સત્ત્વ ૪ ઓર ઉદયન સત્ત્વ ૫ જિસ સંયતકી પરીપદ્દકે
આને પર લજ્જાવશ અપને સંયમ ભાવસે અવિચલતા બની રહતી હૈ,
વહ હીસત્ત્વ હૈ, અથવા સંયતસે હલર જિસ પ્રાણીકી સંગ્રામ આદિકોંમેં
લજ્જાકે વશસે સ્થિરતા રહતી હૈ, વહ હ્રી સત્ત્વ હૈ, લજ્જાસે સ્થિતિ
અવિચલતા જિસકીહૈ એસા વહ પ્રાણી હ્રી સત્ત્વહૈ । લજ્જાકે વશ જિસકે

અનુત્તર નારકોંમાં અને અનુત્તર વિમાનોંમાં વિશિષ્ટ શક્તિશાળી જીવો જ
બધ છે. તેથી હવે સૂત્રકાર પાંચ પ્રકારના પુરુષોનું કથન કરે છે.

“ પંચ પુરિસજાયા પળ્ણત્તા ” ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—પુરુષોના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) હી સત્ત્વ, (૨)
હ્રીમનઃ સત્ત્વ, (૩) ચલ સત્ત્વ, (૪) સ્થિર સત્ત્વ અને (૫) ઉદયન સત્ત્વ.

પરીપદો આવી પડે ત્યારે જે સંયત લલ્ગને કારણે પોતાના સંયમ
ભાવમાંથી ચક્રાયમાન થતો નથી—અવિચલ જ રહે છે તેને હ્રીસત્ત્વ કહે છે.
અથવા સંગ્રામ આદિમાં લલ્ગને કારણે જે માણસ અવિચલ રહે છે તેને
હ્રીસત્ત્વ કહે છે. આ રીતે લલ્ગને કારણે જ જેની અવિચલતા ટકી રહી છે
એવા જીવને હ્રીસત્ત્વ કહે છે. લલ્ગને કારણે જેના મનમાં જ માત્ર હ્રીસત્ત્વ

१२। चलसत्त्वः—चलम्=अस्थिरं सत्त्वं यस्य सः । ३। अचलसत्त्वः—अचलं=स्थिरं सत्त्वं यस्य सः । ४। तथा—उदयनसत्त्वः—उत्=ऊर्ध्वम् अयन=गमनं यस्य तत् उदय-यनम्—उदयगामि प्रवर्द्धमानमिति यावत् सत्त्वं यस्य स इति पञ्चमः ९ ॥ १२ ॥

अनन्तरं सत्त्ववान् पुरुषः पञ्चमसंख्यकत्वेन प्रोक्तः । सत्त्ववान् पुरुषश्च पाशो भिक्षुरेवेति तत्स्वरूपं सदृष्टान्तमाह—

मूलम्—पंच सच्छा पणत्ता, तं जहा—अणुसोयचारी १, पडिसीयचारी २ अंतचारी ३ मज्झचारी ५। एवमेव पंच भिक्खागा पणत्ता, तं जहा—अणुसोयचारी १ जाव सव्वचारी ५ ॥ सू० १३ ॥

छाया—पञ्च मत्स्याः प्रज्ञाः, तद्यथा—अनुस्रोतधारी १ प्रतिस्रोतधारी २ अन्तचारी ३ मध्यचारी ४ सर्वचारी ५। एवमेव पञ्च भिक्षाकाः प्रज्ञाः तद्यथा—अनुस्रोतधारी १ यावत् सर्वचारी ५ ॥ सू० १३ ॥

केवल अनर्षेही हींसत्त्व स्थिरता रहती है, शरीरमें नहीं क्योंकि शीत आदिके समयमें शरीरमें क्रम्यादि विकार देखा जाता है, ऐसा वह प्राणी हीमनः सत्त्व है । जिसका सत्त्व अस्थिर होता है ऐसा वह प्राणी चल सत्त्व है, जिसका सत्त्व-बल स्थिर होता है, ऐसा वह प्राणी अचल सत्त्व है । और जिसका सत्त्व प्रवर्द्धमान होता है, ऐसा वह प्राणी उदयन सत्त्व है ॥ सू० १२ ॥

सत्त्ववान् पुरुष पांच प्रकारका कहा अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि सत्त्ववान् पुरुष प्रायः भिक्षुही होता है अतः भिक्षुका स्वरूप दृष्टान्त-पूर्वक प्रकट किया जाता है—‘ पंच सच्छा पणत्ता ’ इत्यादि सूत्र १३ ॥

स्थिरता रहे छे—शरीरमा रहेती नथी (कारण के शीतादिने अपसरे तेना शरीरमा कंपादि विकार नअरे पडे छे), ओवा अउने “ हीमनः सत्त्व ” कडे छे. अस्थिर सत्त्ववाणा अउने “ चलसत्त्व ” कडे छे. जेतुं सत्त्व (मनोणल) स्थिर डोय छे ओवा अउने “ अचल सत्त्व ” कडे छे जेतुं सत्त्व प्रवर्द्धमान डोय छे, ओवा अउने “ उदयन सत्त्व ” कडे छे. ॥ सू. १२ ॥

सत्त्ववान् पुरुषता पांच प्रकार प्रकट करवाभां आओ. सामान्य रीते भिक्षु (साधु) अ सत्त्ववान् डोई शके छे. तेथी डवे सूत्रकार दृष्टान्त सद्धित भिक्षुता स्वइयत्तुं निइयणु करे छे. “ पंच सच्छा पणत्ता ” इत्यादि—

ટીકા--' પંચ મઞ્જા ' ઇત્યાદિ--

મત્સ્યાઃ પશ્ચ સંલ્પકા ભવન્તિ । તત્ર પ્રથમઃ-અનુસ્રોતશ્ચારી-પ્રવાહાનુકૂલ-ચરણશીલઃ । ૧ । પ્રતિસ્રોતશ્ચારી=પ્રવાહસંમુલ્લચરણશીલઃ ૨ । અન્તચારી=પાર્શ્વચારી ૩ । મધ્યચારી=મધ્યભાગે સંચરણશીલઃ ૪ । તથા-સર્વચારી=અનુસ્રોતઃ પ્રતિસ્રોતો-સ્તમધ્યેષુ સર્વત્ર સંચરણશીલઃ ૫ । ઇતિ । ઇત્યં દૃષ્ટાન્તપુત્રવા સમ્પ્રતિ દાર્ણાન્તિક-માહ-' એવમેવ ' ઇત્યાદિ । એવમેવ=અનેનૈવ પ્રકારેણ પશ્ચ સંલ્પકા મિલ્લવોડપિ ભવન્તિ । તત્ર કશ્ચિત્ અનુસ્રોતશ્ચારી=ઉપાશ્રયભગીપાત્ ક્રમેણ મિક્ષાર્થ ચરણશીલઃ

ટીકાર્થ--મત્સ્ય પાંચ પ્રકારકે કહે ગયે હૈં-જૈસે-અનુસ્રોતશ્ચારી ૧ પ્રતિસ્રોતશ્ચારી ૨ અન્તચારી ૩ મધ્યચારી ૪ ઓર સર્વચારી ૫ ઇસી પ્રકારસે પાંચ મિક્ષુક કહે ગયે હૈં જૈસે-અનુસ્રોતશ્ચારી ૧ યાત્રત્ સર્વચારી ૫ ।

જો મત્સ્ય પ્રવાહકે અનુકૂલ ચલનેકે સ્વભાવવાલા હોના હૈ, વહ અનુસ્રોતશ્ચારી હોના હૈ, જો પ્રવાહકે સંમુલ્લ ચલનેકે સ્વભાવવાલા હોના હૈ, વહ પ્રતિસ્રોતશ્ચારી હોના હૈ, જો પાર્શ્વમે ચલનેકે સ્વભાવવાલા હોના હૈ, વહ પાર્શ્વચારી હોના હૈ, જિસકા સ્વભાવ મધ્યભાગમે સંચરણ કર-નેકા હોના હૈ, વહ મધ્યચારી હૈ, ઓર જિસકા સ્વભાવ પ્રવાહકે અનુ-કૂલ પ્રવાહકે પ્રતિકૂલ ચલનેકા એવં અન્તમે ઓર મધ્યમે ચલનેકા હોના હૈ વહ સર્વચારી હૈ, ઇસી તરહસે મિક્ષુ મી પાંચ પ્રકારકે હોતે હૈં, ઇનમે કોઈ એક મિક્ષુ એસા હોના હૈ, જો ઉપાશ્રયકે પાસસેહી ક્રમશઃ મિક્ષા કરનેકે સ્વભાવવાલા હોના હૈ, એસા વહ મિક્ષુ અનુસ્રોતશ્ચારી

ટીકાર્થ--મત્સ્યના ન ચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) અનુસ્રોતચારી, (૨) પ્રતિસ્રોતચારી, (૩) અન્તચારી, (૪) મધ્યચારી અને (૫) સર્વચારી.

એ જ પ્રમાણે મિક્ષુકના પણ અનુસ્રોતચારી આદિ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે.

જે મત્સ્ય પ્રવાહના વહેણની દિશામાં જ ચાલવાના સ્વભાવવાળો હોય છે, તેને અનુસ્રોતચારી કહે છે જે મત્સ્ય પ્રવાહના વહેણની વિરુદ્ધની દિશામાં ચાલવાના સ્વભાવવાળો હોય છે તેને પ્રતિસ્રોતચારી કહે છે જે પ્રવાહની બાબુમાં ચાલવાના સ્વભાવવાળો હોય છે, તેને અન્તચારી કહે છે જે મત્સ્ય પ્રવાહના મધ્યભાગમાં સંચરણ કરનારો હોય છે, તેને મધ્યચારી કહે છે. જે મત્સ્ય પ્રવાહની દિશામાં, પ્રવાહની સામે, પ્રવાહની પડખે અને પ્રવાહના મધ્યભાગમાં સંચરણ કરનારો હોય છે તેને સર્વચારી કહે છે. એ જ પ્રમાણે મિક્ષુક પણ પાંચ પ્રકારનો હોય છે. જે મિક્ષુક ઉપાશ્રયની નજીકના ઘરથી શરૂ કરીને ક્રમશઃ અન્ય ઘરોમાંથી મિક્ષા પ્રાપ્ત કરનારો હોય છે તેને અનુ-

टीका--‘ पंच वनीमगा ’ इत्यादि--

वनीपकाः--वन्वते=याचन्ते ये ते-याचका इत्यर्थः । स्वभक्तान् प्रशंसादिभिर्दानाभिमुखकारका इत्यर्थः । ते च पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः । तानेवाह-तद्यथा-अतिथिवनीपकः--भोजनकाले उपतिष्ठमानोऽतिथिः-सोऽतिथिदानप्रशंसया स्वभक्ताद्दातुराहारादिकं याचतेऽतः सोऽतिथिवनीपक इत्युच्यते ।

अतिथिदानप्रशंसा यथा--

“ पाएण देइलोगो, उवगारिसु परिजिएसु जुसिएसु ।

जो पुण अद्वाखिन्नं अतिहिं पूएइ तं दाणं ॥१॥”

छाया-प्रायेण ददाति लोकः उपकारिभ्यः परिचितेभ्योजुष्टेभ्यः ।

यः पुनरध्वखिन्नमतिथि पूजयति तद्दानमिति ॥१॥

वनीपक ३ श्ववनीपक ४ और श्रमण वनीपक ५ जो प्रशंसा आदि द्वारा अपने भक्तोंको दानके अभिमुख करनेवाले होते हैं वे वनीपक हैं । इनमें जो वनीपक भोजन कालमें आता है, और अतिथि दानकी प्रशंसासे अपने भक्त दानासे आहार आदिकी याचना करते हैं, ऐसा वह याचक अतिथिवनीपक है अतिथि दानकी प्रशंसा इस प्रकारसे है—

“ पाएण देइ लोगो इत्यादि ।

लोक प्रायः उपकारीके लिये या परिचितजनके लिये या सेवा करनेवालेके लिये जो कुछ बलता है, वह देता है पर वह दान नहीं है, पर दान वही है जो मार्गसे चलकर आये हुए खिन्न अतिथिजनके लिये प्रत्युपकारकी आकाङ्क्षा किये विना आहारादि देता है, कृपणवनीपक

ज्येष्ठा प्रशंसा आदि द्वारा पोताना लक्ष्मणने दान करवाने प्रेरे छे, तेमने ‘वनीपक’ कहे छे. जे वनीपक लोअन करवाने समये आवीने अतिथिदाननी प्रशंसा करीने दाता यानेशो आहारादिनी याचना करे छे, ते वनीपक (याचक) ने ‘अतिथि वनीपक’ कहे छे. अतिथिदाननी प्रशंसा आ प्रभाषे करवाभां आवी छे. “ पाएण देइ लोगो ” इत्यादि—

सामान्य रीते तो लोको उपकारीजनेने अथवा परिचितजनेने अथवा पोतानी सेवा करनार लोकने कंधने कंध आवे छे-यथाशक्ति मदद करे छे, परन्तु आ प्रकारनी मददने दान कही शकय नहीं. दान तो तेने जे कही शकय के जे कौंधिपणु प्रकारना प्रत्युपकारनी आकांक्षा विना आपनाभां आवे छे. आगळे आवीने लोअना कौंध दुःखी अने अलएया अतिथिने जे आहारादिनुं दान कराय छे तेने जे सायुं दान कहे छे.

કૃપણવનીપક:-કૃપણો=દરિદ્રા, સ હવ વનીપકઃ । ચોદિ સ્વરવ દારિદ્ર્યાસ્થાન-
પુરસ્સરં સ્વસ્મૈ દીયમાનં દાનં પ્રશંપતિ સકૃપણવનીપકઃ । કૃપણદાનપ્રશંસા યથા-

“ ક્રિવિણેસુ દુસ્મણેસુ ય, અવંધનાયંકિ જુંગિયંગેસુ ।

પૂયાહિજ્જેલોણ, દાણપહાગં દરહદંતો ॥૧॥

છાયા--કૃપણેભ્યો દુર્મનોભ્યશ્ચ અવાન્ધત્રાતઙ્કિવ્યઙ્કિતાઙ્કેભ્યઃ ।

પૂજાહં લોકે દાનપતાકાં હરતિ દદત્ ॥૧॥ ઇતિ ।

બ્રાહ્મણવનીપક:-યો દિ બ્રાહ્મણાય દીયમાનં દાનં પ્રશંસન્ મિક્ષર્યં ચરતિ
સઃ । બ્રાહ્મણદાનપ્રશંસા યથા--

“ લોગાણુગ્ગહકારિસુ, ભૂમીદેવેસુ વ્રહુક્કલં દાણં ।

અવિણામ વંમવંધુસુ, ફિં પુણ છક્કમ્મનિરયાણં ॥૧॥”

થે હૈં, જો અપની દરિદ્રતાકે પ્રકાશનપૂર્વક અપને લિયે દિયે જા રહે
દાનકી પ્રશંસા કરતા હૈ । કૃપણદાનકી પ્રશંસા હસ પ્રકારસે હૈ--

“ ક્રિવિણેસુ દુસ્મણેસુ ય ” ઇત્યાદિ ।

જિનકા કોઈ બન્ધુ નહીં હૈ, આતઙ્કસે જો સદા યુક્ત બને રહતે હૈં,
શરીર જિનકા ઉપાદ્ધ આદિસે રહિત હો રહા હૈ, એસે કૃપણ દુઃખિત
જનોંકે લિયે જો દેતા હૈ, વહ અપની દાન પતાકાકો હસ લોકમ્મેં ફહરાતા હૈ।

જો વનીપક બ્રાહ્મણકે લિયે દિયે જાતે દાનકી પ્રશંસા કરતા હુઆ
મિક્ષાકે લિયે ંમણ કરતા હૈ, વહ બ્રાહ્મણ વનીપક હૈ, બ્રાહ્મણ
દાન પ્રશંસા હસ પ્રકારસે હૈ--“ લોગાણુગ્ગહકારિસુ ” ઇત્યાદિ ।

લોકકા બનુગ્રહ કરનેવાલે ભૂમિદેવોંવેં બ્રાહ્મણોંમેં દિયા ગયા દાન

જે યાચક પોતાની દીનતા પ્રકટ કરીને દાતા પાસે દાન માગે છે અને
પોતાને આપવામાં આવતા દાનની પ્રશંસા કરે છે તેને ‘કૃપણ વનીપક’ કહે
છે. કૃપણદાનની પ્રશંસા આ પ્રમાણે કરી છે--“ ક્રિવિણેસુ દુસ્મણેસુ ય ”
ઇત્યાદિ જેમને કોઈ બન્ધુ નથી, જેઓ સદા આતકથી યુક્ત ન રહ્યા કરે
છે, જેમનું શરીર ઉપાંગ આદિથી રહિત હોય, એવા કૃપણ દુઃખિતજનોને
જે માણસ દાન આપે છે, તે પોતાની યશપતાકાને આ લોકમાં ફરકાવે છે

જે વનીપક (યાચક) બ્રહ્મણને અપાતા દાનની પ્રશંસા કરી કરીને
દાતા પાસેથી દાનની યાચના કરે છે તેને બ્રાહ્મણ વનીપક કહે છે. બ્રહ્મણને
અપાતા દાનની આ પ્રમાણે પ્રશંસા કરવામાં આવે છે.

“ લોગાણુગ્ગહકારિસુ ” ઇત્યાદિ--

લોકોત્તુ કલ્યાણ કરનાર ભૂદેવોને (બ્રાહ્મણોને) આપવામાં આવતું દાન

જાયા—લોકાનુગ્રહકારિણુ ભૂમિદેવેષુ વહુક્લં દાનમ્ ।

અપિ નામ વ્રહ્મવન્ધુષુ કિં પુનઃ પટ્કર્મનિરતેષુ । ૧॥ ઇતિ ।

વ્રહ્મવન્ધવઃ=જન્મના વ્રાહ્મણા ન તુ કર્મણા ।

તથા—શ્વવનીપકઃ—શ્વાર્થં વનીપકઃ । શ્વમ્યો દોયમાનસ્ય દાનરથ પ્રશંસા યથા—

“ અવિણામ હોજ્જ સુલભો, ગોણાર્ણિણં તળાઙ્ આહારો ।

છિચ્છિકારહયાણં, ન હુ સુલભો હોજ્જ સુણયાણં ॥૧॥

કૈલાસભવણા ણ, ગુજ્જગા આગયા મહિં ।

ચરંતિ જક્ષરૂવેણં, પૂયાઽપૂયા હિયાઽહિયા ॥૨॥”

છાયા—અપિ નામ ભવેત્ સુલભો ગવાદીનાં તૃણાદિરાહારઃ ।

છિચ્છીકારહતાનાં ન સ્વલુ સુલભો ભવેત્ શુનકાનામ્ ॥૧॥

કૈલાસભવનાદેતે ગુહ્યકા આગતા મહીમ્ ।

ચરંતિ યક્ષરૂપેણ પૂજિતા અપૂજિતા દિત્તા અદિતાઃ । ૨॥ ઇતિ

વહુત ફલવાલા હોતા હૈ, જવ ંસી વાતહૈ તો ફિર વટ્કર્મ નિરત વ્રહ્મ-વન્ધુઓમં દિયે ગયે દાનકી વાતહી વ્યા કહની ? યહાં વ્રહ્મવન્ધુસે જો જન્મસે વ્રાહ્મણ હૈ, કર્મસે નહીં ંસા વ્રાહ્મણ લિયા ગયા હૈ ।

જો કુત્તોકે લિયં વનીપક હોતા હૈ, વહ શ્વવનીપક હૈ, વહ કુત્તોકે લિયે દિયે ગયે દાનકી પ્રશંસા હસ પ્રકારસે કરતા હૈ—“ અવિણામ હોજ્જ સુલભો ” ઇત્યાદિ ।

ગવાદિકોકે લિયે તો તૃણાદિકા આહાર સુલભ હોતા હૈ, પરંતુ છિચ્છીકારસે હત હુવ કુત્તોકો આહાર સુલભ નહીં હોતા હૈ, ં કુત્તે, કૈલાસભવનસે આયે હુવ ગુહ્યક-દેવ વિશેષ હૈં । ં યક્ષરૂપસે પૃથ્વી

ઘણું જ ફલદાયી ગણાય છે. તો પછી વટ્કર્મ નિરત વ્રહ્મવન્ધુઓને અર્પણ કરાતાં દાનના ફળની તો વાત જ શી કરવી ! અહીં ભૂદેવ પદ જન્મે વ્રાહ્મણ ક્રમે વ્રાહ્મણ નહીં ંવે વ્રાહ્મણતું વાચક છે. અને “ વ્રહ્મવન્ધુ ” પદ જન્મે પણ વ્રાહ્મણ અને ક્રમે પણ વ્રાહ્મણતું વાચક છે.

એ વનીપક કૃતરાઓને નિમિત્તે અપાતાં દાનની પ્રશંસા કરે છે તેને ‘ શ્વવનીપક ’ કહે છે કૃતરાને માટે અપાતાં દાનની આ પ્રમાણે પ્રશંસા કરવામાં આવે છે.

ગાયઆદિને તો ઘાસચારો આદિ આહાર સરળતાથી પ્રાપ્ત થાય છે, પરંતુ ંના પ્રત્યે લોકો નક્ષરતથી જુવે છે અને ંને લોકો હડધૂત કરે છે ંવે વ્રાહ્મણોને તો આહારપ્રપ્તિ હુર્લભ થઈ પડે છે તે કૃતરાઓ કેલાસ ભવન-માંથી આવેલા ગુહ્યકો (દેવવિશેષો) છે તેઓ યક્ષ રૂપે ભૂમિપર સંચરણ

શુભકાઃ—દેવવિશેષાઃ । એ તે પૂજિતાઃ—ભોજનાદિના સત્ક્રતા દિતાય, અપૂજિતા અહિતાય ભવન્તીતિ ભાવઃ । તથા—શ્રમણવનીપકઃ—નિર્ગ્રન્થશાક્યતાપસ-ગૈરિકાજીવકરૂપ. પશ્ચવિધઃ શ્રમણઃ । તત્ર-નિર્ગ્રન્થો વનીપકો ન ભવતિ । શાક્યાદય એવ વનીપકા ઉચ્યન્તે । તત્ર શાક્યશ્રમણવનીપકદાનપ્રશંસા યથા—

“ મુંજતિ ચિત્તકમ્મદ્વિયા વ કારુણિય દાણરૂણો ય ।

અવિકામગર્દભેષુ વિ ન નક્ષયતિ કિં પુનર્યતિપુ ॥૧॥

છાયા—મુંજન્તિ ચિત્તકર્મ સ્થિતા ઇવ કારુણિકા દાનરૂચયશ્ચ ।

અપિ નામ કામગર્દભેષુ અપિ ન નક્ષયતિ કિં પુનર્યતિપુ ॥૧॥ ઇતિ ।

કામગર્દભાઃ—વિષય લોલુપાશ્તેષુ દત્તં દાનમપિ ન નક્ષયતિ કિં પુનર્યતિપુ દત્તમ્ એવમેવ તાપસવનીપકાદિ દાનપ્રશંસાઽપિ અવગમ્યેતિ । સૂ૦ ૧૪ ।

પર ચલતે રહતે હૈં । ભોજનાદિસે જો इनका सत्कार करता है, वह उसके हितके लिये होता है, और जो इनका सत्कार नहीं करता है, वह उसके आहितके लिये होता है ।

શ્રમણવનીપક-નિર્ગ્રન્થ, શાક્ય, તાપસ, ગૈરિકા અને આજીવકકે એરસે પાંચ પ્રકારકા હૈ, इनमें जो निर्ग्रन्थ होता है, वह वनीपक नहीं होता है, किन्तु जो शाक्य आदि होते हैं, वे ही वनीपक कहलाते हैं । इनमें शाक्य श्रमण वनीपक दान प्रशंसा इस प्रकारसे है—“ मુંजति चित्तकम્मद्विधा ” इत्यादि ।

જો પ્રાણી વિષયોએ લોલુપ હૈ, उनमें दिया गया दान भी जब नष्ट नहीं होता है, तो फिर यदि जनोंमें दिया गया दान निष्फल कैसे हो सकता है । इसी प्रकारसे दानकी प्रशंसा जानना चाहिये ॥સૂ૦ ૧૪॥

કરના રહ છે ભોજનાદિ વડે તેમને સત્કાર કરનારનું કલ્યાણ થાય છે, અને તેમને ભોજનાદિ વડે તૃપ્ત નહીં કરનારનું અહિત થાય છે

શ્રવણવનીપકના પાંચ પ્રકાર છે—(૧) નિર્ગ્રન્થ, (૨) શાક્ય, (૩) તાપસ, (૪) ગૈરિકા અને (૫) આજીવક તેમાંથી જે નિર્ગ્રન્થ હોય છે, તેઓ વનીપક હોતા નથી, પરંતુ શાક્ય આદિ જે વનીપક હોય છે. શાક્યશ્રમણ વનીપકને અપાતાં દાનની પ્રશંસા આ પ્રમાણે કરવામાં આવી છે.

“ મુંજતિ ચિત્તકમ્મદ્વિયા ” ઇત્યાદિ

વિષય લોલુપ મનુષ્યને દેવામાં આવેલુ દાન પણ જે નષ્ટ થતું નથી, તે યતિઓને અપાતાં દાનની તે વાત જ શી કરવી । આ પ્રકારની દાનની પ્રશંસા સમજવી. ॥ સૂ. ૧૪ ॥

अनन्तरमुत्रे पञ्चविधो वनीपकः प्रोक्तः । स च साध्वाभासो न तु साधुः ।
साधुश्च अचेल एव भवतीति अचेत्त्वस्य पञ्च प्रशसा स्थानानि प्राह--

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं अचेलए पसत्थे भवइ, तं जहा-
अप्पापडिलेहा १, लाघविष्ण पसत्थे २, रुवे वेसाणिए ३, तवे
अणुण्णाए ४, विउले इंदियनिग्गहे ५ ॥ सू० १५ ॥

छाया-पञ्चभिः स्थानैश्चेलकः प्रशस्तो भवति, तद्यथा-अल्पा प्रतिलेखा १, लाघविकं-
प्रशस्तम् २, रूपं वैश्वासिकम् ३, तपः अलुज्ञातम् ४, विपुल इन्द्रिय निग्रहः ५। १५।

टीका--' पंचहिं ठाणेहिं ' इत्यादि--

अचेलकः--न सन्ति चेलानि=वस्त्राणि यस्य सः । स च जिनकल्पिकस्थविर-
कल्पिकभेदेन द्विविधः । तत्र जिनकल्पिकस्याचेलत्वं चेलाभावादेव । स्थविर-
कल्पिकस्तु अत्यल्पमूल्यरूपपरिमितजीर्णमलिन-वस्त्रधारकः । अचेत्कत्वं चास्य

अनन्तर सूत्रमें जो पांच प्रकारके वनीपक कहे गये हैं, सो वनीपक
साध्वा भासरूप होते हैं, सच्चे साधु नहीं होते हैं । क्योंकि सत्य
साधु जो होता है, वह तो अचेलही होता है, इसलिये अब सूत्रकार
अचेलताके पांच प्रशंसा स्थानोंका कथन करते हैं--

पंचहिं ठाणेहिं अचेलए इत्यादि सूत्र १५ ॥

टीकार्य--जिसको वस्त्र नहीं होते हैं, वह अचेलक है, यह अचेल-
क जिन कल्पिक और स्थविरकल्पिकके भेदसे दो प्रकारका होता है,
इनमें चेलके अभावसे जिनकल्पिकमें अचेलता है । तथा जो स्थविर-
कल्पिक हैं, उनमें जो अचेलता आती है, वह अत्यल्प मूल्यवाले परि-

आगता सूत्रमां वनीपकना पांच प्रकारनुं निरूपणु करवाभां
आणु. ते वनीपक साया साधु डोता नथी-तेआ तो साधु डोवानो लास न
करावे छे साया साधु तो अचेत्त (वस्त्ररहित) न डोय छे. तेधी डुवे
सूत्रकार अचेत्तना पांच प्रशंसास्थानानुं कथन करे छे.

“ पंचहिं ठाणेहिं अचेलर ” इत्यादि--

जेमने वस्त्र डोतां नथी तेमने अचेत्तक कडे छे. ते अचेत्तकना नीचे
प्रमाणे जे प्रकार कइया छे--(१) जिनकल्पिक अने (२) स्थविरकल्पिक. येत्त
(वस्त्र) ना आसवने तीथे जिनकल्पिकमां अचेत्तता कइी छे. स्थविरकल्पि-
कमां अत्यल्पमूल्यवां, परिमित, शुभंशीर्षु अने मलिन वस्त्रोने धारणु करवाने

તથાવિધવસ્ત્રધારકત્વાદેવ । અર્થં ચ સદોરકમુખવસ્ત્રિકા રજોહરણપ્રભૃતિ ત્રિવિધા
 ઘુપકરણધારકઃ । સોડયમચેલકઃ પશ્ચમિઃ સ્થાનૈઃ પ્રશસ્તઃ=પ્રશંસનીયો ભવતિ
 તીર્થકરગણધરાદિમિઃ । તાન્યેવ સ્થાનાન્યાહ-તથયા-અલ્યા પ્રતિલેખા=પ્રતિ-
 લેખ્યોપધેઃ સ્વલ્પત્વસદ્ભાવાદ્ અલ્પં પ્રતિલેખનમ્ । इत्थं च न तेषां स्वाध्यायादौ
 પ્રતિગ્રાતો ભવતીતિ વોચ્યમ્ । इति प्रथमं स्थानम् १ । लाघविकं प्रशस्तम्-प्रश-
 स्तम्=अनिन्द्यं यथास्यात्तथा लाघविकम्-लघोर्भावी लाघवं तदेव लाघविकं
 દ્રવ્યતો ભાવતશ્ચ । इति द्वितीयं स्थानम् २ । रूपं वैश्वसिकम्-रूपम्=सदोरकमुख-
 वस्त्रिकारजोहरणादिधारणलक्षणः साधुवेपथुः, वैश्वसिकम्=विद्यासोत्पादकम् निर्लो-

ભિત્ત જીર્ણશીર્ણ મલિન વસ્ત્રોંકે ધારણ કરનેસે આતી હૈ । यह स्थविर-
 कल्पिक सदोरकमुखवस्त्रिका एवं रजोहरण आदि त्रिविध उपकरणका
 ધારક હોતા હૈ, ऐसा वह अचेरक पांच स्थानोंसे प्रज्ञात प्रशंसनीय
 તીર્થ કર ગણધરાદિકોસે કહા ગયાહૈ । ये पांच स्थान इस प्रकारसेहैं-एक
 અલ્યા પ્રતિલેખા ૧ દૂસરા-પ્રશસ્ત લાઘવિક ૨ ત્રીસરા-વૈશ્વાસિક રૂપ
 ૩ ચૌથા-અનુજ્ઞાતતપ ૪ એવં પાંચવાં-વિપુલ ઇન્દ્રિય નિગ્રહ ૫ ।

પ્રતિલેખન કરને યોગ્ય જો અનેકે પાસ ઉપધિ હોતી હૈ, वह अत्यल्प
 હોતી હૈ, इसलिये उनका प्रतिलेखन कर्म भी अल्प होता है, अतः
 અનેકે સ્વાધ્યાય આદિ કરનેમેં પ્રતિગ્રાત નહીં હોતા હૈ, इस प्रकारका
 यह प्रथम स्थान है, द्रव्य और भावकी अपेक्षा लघुताका होना यह
 પ્રશસ્ત લાઘવિક હૈ । ऐसा यह द्वितीय स्थान है । सदोरक मुखवस्त्रिका
 એવં રજોહરણ આદિરૂપ જો સાધુવેષ અનેકા હોતાહૈ, वह निर्लोभताका

કારણે અથેવના સમજવી. તે સ્થવિરકલ્પિક સાધુમે સદોરક મુહપત્તી, રજો-
 હરણ આદિ ત્રિવિધ ઉપકરણના ધારક કરનારા હોય છે. એવા તે અચેરકોને
 તીર્થકરોએ અને ગણધરોએ નીચેનાં પચ કારણે ને લીધે પ્રશસ્ત કહ્યાં છે—
 (૧) અલ્યા પ્રતિલેખા, (૨) પ્રશસ્ત લાઘવિક, (૩) વૈશ્વાસિક રૂપ, (૪) અનુ-
 જ્ઞાત તપ અને (૫) વિપુલ ઇન્દ્રિય નિગ્રહ.

તેની પાસે પ્રતિલેખના કરવા લાઘવ જે ઉપધિ હોય છે, તે અતિ અલ્પ
 હોય છે. તેથી તેની પ્રતિલેખના કરવાનું કામ પણ અલ્પ જ હોય છે, તેથી
 તેને સ્વાધ્યાય આદિ કરવામાં પ્રતિગ્રાત થતો નથી. આ પ્રકારનું આ પ્રથમ સ્થાન છે.

બીજું સ્થાન—દ્રવ્ય અને ભાવની અપેક્ષાએ લઘુતાનો સદ્ભાવ હોવો
 તેનું નામ પ્રશસ્ત લાઘવિક છે.

ત્રીજું સ્થાન—સદોરક મુહપત્તી, રજોહરણ આદિ રૂપ તેનો જે વેષ હોય
 છે તે નિર્લોભતાનો સ્વયં હોવથી અન્ય લોકોમાં વિશ્વાસોત્પાદક થઈ પડે છે.

भतामूचकत्वादिति तृतीयं स्थानम् ३। तपः=शरीरोपकरणसंगोपनरूपम् अनुष्णात= तीर्थकरानुमोदितं स्यादिति चतुर्थम् ४। तथा-त्रिपुल इन्द्रियनिग्रहः-इन्द्रियाणां निग्रहो-नियमनं त्रिपुलो=महान् भवेत्, प्रतिकूलशीतवातातपादि सहनादिति पञ्चमं स्थानमिति ५। अचेलरूपिण्ये विशेषजिज्ञासुभिरुत्तराध्ययनसूत्रस्य द्वितीयेऽध्ययने त्रयोदशगाथाया मत्कृता प्रियदर्शिनी टीकाऽवलोकनीयेति ॥ सू० १५ ॥

इन्द्रियनिग्रहं च सत्त्वोत्कटा एव कर्तुं प्रभवन्तीति उत्कटाणां पञ्चभेदानाह-

मूलम्—पांच उक्कला पणत्ता, तं जहा-दंडुकले १ रज्जुकले २ तणुकले ३ देसुकले ४ सत्वुकले ५ ॥ सू० १६ ॥

छाया—पञ्च उत्कटाः प्रज्ञप्ताः, तवया-दण्डोत्कटो १ राज्जोत्कटः २ स्तैन्योत्कटः ३ देशोत्कटः ४ सर्वात्कटः ५ ॥ सू० १६ ॥

सूचक होनेसे विश्वासोत्पादक होता है। ऐसा यह तृतीय स्थान होता है। शरीर और उपकरणका संगोपनरूप जो तप है, कि जिसे वे करते हैं, वह तीर्थकरादि द्वारा अनुमोदित होता है। ऐसा यह चतुर्थ स्थान है। तथा उनका जो इन्द्रियोंका निग्रह होता है, वह महान् होता है, क्योंकि प्रातिकूल शीत, वात, आनप आदिको वे सहन करते हैं, ऐसा यह पांचवां स्थान है। अचेलकके विषयमें विशेष जाननेके अभिलाषियोंको उत्तराध्ययन सूत्रके द्वितीय अध्ययनमें आगत १३ वीं गाथाकी प्रियदर्शिनी टीका देखनी चाहिये ॥सू० १५॥

इन्द्रियांका निग्रह वे ही कर सकते हैं, जो उत्कट होते हैं, अतः अब सूत्रकार उत्कटोंके पांच भेदोंका कथन करते हैं--

‘पांच उक्कला पणत्ता’ इत्यादि सूत्र १६ ॥

‘शोथु’ स्थान—शरीर अने उपकरणना संगोपन रूप जे तप तेजो करे छे, ते तीर्थकरादि द्वारा अनुमोदित छे

‘पांचभु’ स्थान—तेजो इन्द्रियेनो मूलज निग्रह करे छे. प्रतिकूल ताप, पवन आदि तेजो सहन करे छे

अचेलकना विषयमां मधु माडिनी भगवानी जिज्ञासावाणा पाठकेअे उत्तराध्ययन सूत्रना भील अध्ययननी १३ भी गाथानी आरा द्वारा लष्यायेली प्रियदर्शिनी टीका वांची जवी. ॥ सू. १५ ॥

ટીકા—‘ પંચ ઉક્કલા ’ इत्यादि—

હલયોરભેદાત્ ‘ ઉક્કલા ’ इत्यस्य ‘ उत्कटाः ’ इतिच्छाया । उत्कटा = प्रकृष्टाः पञ्चमुख्याः प्रज्ञप्ताः । तत्र प्रत्येकं नामतो निर्दिशति—तद्यथा—दण्डोत्कटः—दण्डः—आज्ञा अपराधे सति दमनं वा उत्कटः=प्रकृष्टः=प्रबलो यस्य स तथा । दण्डेन वा उत्कटो दण्डोत्कट इति ॥ १ ॥ एवं राज्योत्कट स्तैन्योत्कटादिष्वपि बोध्यम् । तत्र—राज्य=प्रभुताम् । स्तैन्यम्=चौर्यम् । देशः—प्रसिद्धः । सर्व=दण्डादि समस्तम् । इति । ‘ उत्कल ’ इतिच्छाया पञ्चेतु ‘ दण्डोत्कलः ’ इत्यादि

ટીકાર્થ—પાંચ પ્રકારકે ઉત્કટ કહે ગયે હૈં, જૈસે—દણ્ડોત્કટ ૧ રાજ્યોત્કટ ૨ સ્તૈન્યોત્કટ ૩ દેશોત્કટ ૪ ઓર સર્વોત્કટ ૫ હ ઓર લ ભેં અભેદ હોનેસે “ ઉક્કલ ” હસકી સંસ્કૃત્ત્વચ્છાયા નત્કટ એસી હોની હૈં । ઉત્કટ શબ્દકા અર્થ પ્રકૃષ્ટ હૈં । યે પ્રકૃષ્ટ દણ્ડોત્કટ આદિકે ભેદસે પાંચ પ્રકારકે કહે ગયે હૈં—દણ્ડ નામ આજ્ઞા હૈં, અથવા અપરાધ કે હોને પર દમન કરના હસકા નામ દણ્ડ હૈં, યહ દણ્ડ જિસકા પ્રબલ હોતા હૈં વહ દણ્ડોત્કટ હૈં, અથવા—જો દણ્ડસે ઉત્કટ હોતા હૈં, વહ દણ્ડોત્કટ હૈં । હસી તરહકા કથન રાજ્યોત્કટ સ્તૈન્યોત્કટ આદિકે સમ્બન્ધમેં ભી જાનના ચાહિયે । રાજ્ય નામ પ્રભુતાકા હૈં, ઓર સ્તૈન્ય નામ ચોરીકા હૈં, દેશ પ્રસિદ્ધ હૈં । તથા—દણ્ડોદિ સમસ્તસે જો ઉત્કટ હોતા હૈં, વહ સર્વોત્કટ હૈં । “ ઉક્કલ ” કી જવ સંસ્કૃત્ત્વચ્છાયા “ ઉત્કલ ” એસી હોગી

જે છવે ઉત્કટ હોય છે તેઓ જ ઇન્દ્રિયોનો નિગ્રહ કરી શકે છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ઉત્કટોના પાંચ ભેદોનું નિરૂપણ કરે છે.

“ પંચ ઉક્કલા પળ્ણત્તા ” इत्यादि—

પાંચ પ્રકારના ઉત્કટ કહ્યા છે તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) દંડોત્કટ, (૨) રાજ્યોત્કટ, (૩) સૈન્યોત્કટ, (૪) દેશોત્કટ અને (૫) સર્વોત્કટ.

“ ઉ ” અને ‘ લ ’ માં અભેદ હોવાથી “ ઉક્કલ ” ની સંસ્કૃત છાયા ‘ ઉત્કટ ’ થાય છે. ઉત્કટ શબ્દનો અર્થ પ્રકૃષ્ટ થાય છે. તે પ્રકૃષ્ટના દંડોત્કટ આદિ પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે. દંડ એટલે આ.જ્ઞા. અથવા અપરાધ થઈ બંધ ત્યારે દમન કરવું તેનું નામ દંડ છે તે દંડ જેનો પ્રબલ હોય છે તેને દંડોત્કટ કહે છે અથવા જે દંડની અપેક્ષાએ ઉત્કટ હોય છે તેને દંડોત્કટ કહે છે એ જ પ્રકારનું કથન રાજ્યોત્કટ, સ્તૈન્યોત્કટ આદિના વિષે પણ સમજવું. રાજ્ય નામ પ્રભુતાનું છે અને ચોરીને સ્તૈન્ય કહે છે. દેશ શબ્દ બાળીતો છે. તથા દંડોદિ સમસ્તની અપેક્ષાએ જે ઉત્કટ હોય છે, તેને સર્વોત્કટ કહે છે.

छाया । उत्कलीत्युत्कलः=प्रवृद्ध इत्यर्थः । दण्ड उत्कलो यस्य सः, दण्डेन वा उत्कल इति विग्रहः । एवं राज्योत्कलादिष्वपि विग्रहो बोध्य इति ॥ सू० १६ ॥

उत्कटोऽनन्तरसूत्रे पञ्चविधः प्रोक्तः । स चासंयत एव । संयतस्तु समिति-भिरेव उत्कटो भवतीति पञ्चविधाः समितीः प्राह—

मूलम्—पांच समिर्इओ पणत्ताओ । तं जहा—ईरियासमिर्इ
१ भासासमिर्इ २ जाव परिट्टावणियासमिर्इ ५ ॥ सू० १७ ॥

छाया—पञ्च समितयः प्रज्ञप्ताः । तद्यथा—ईर्यासमितिः १ भासासमितिः २ यावत् परिष्ठापनिकासमितिः ५ ॥ सू० १७ ॥

टीका—‘ पांच समिर्इओ ’ इत्यादि—

समितयः—सम्पक्=एकीभावेन इत्ययः=प्रवृत्तयः, शोभनैकाग्र परिणामवत्त्वेषु ।

तो इस पक्षमें उत्कल शब्दका अर्थ प्रवृद्ध होना है, इस तरह दण्डसे जो उत्कल है, वह अथवा दण्ड जिसका उत्कल है, वह दण्डोत्कल है। इसी तरहसे राज्योत्कल आदिमें भी विग्रह जानना चाहिये । सू० १६।

इस अनन्तर सूत्रमें जो यह उत्कट पांच प्रकारका कहा गया है, वह असंयतही होता है, तथा जो संयत होता है, वह तो समिति आदिसेही उत्कट होता है, अतः अत्र सूत्रकार पांच समितियोंका कथन करते हैं

‘पांच समिर्इओ पणत्ताओ’ इत्यादि सूत्र १७ ॥

टीकार्थ—समितियां पांच कही गई हैं जैसे—ईर्यासमिति १ भासासमिति २ यावत्परिष्ठापनिका समिति ५ एकीभावसे जो प्रवृत्तियां उनका नाम समिति है, शोभन एकाग्र परिणामवालेकी जो चेष्टाएँ हैं, वे

“ उत्कल ” आ पदनी संस्कृत छाया “ उत्कल ” देवामां आवे, तो तेना अर्थ ‘ प्रवृद्ध ’ थाय छे. तो तेना दंडोत्कल, राज्योत्कल आदि पांच प्रकारे पडे छे दंडनी अपेक्षाओ जे उत्कल छे तेने अथवा जेने दंड उत्कल छे तेने दंडोत्कल कहे छे ओ जे प्रभाषे राज्योत्कल आदि विषे पशु समन्वयुं. ॥ सू. १६ ॥

आगला सूत्रमां जे पांच प्रकारना उत्कट कहा तेओ असंयत जे होय छे. सयतो समिति आदिनी अपेक्षाओ जे उत्कट होय छे. तेथी उवे सूत्रकार पांच समितियोनुं कथन करे छे. “ पांच समिर्इओ पणत्ताओ ” इत्यादि—समितियो पांच कही छे—(१) ईर्यासमिति, (२) भासासमिति, (३) यावत्पणिका समिति, (४) आदान लाड मात्र निक्षेपण समिति अने (५) परिष्ठापनिका समिति.

इत्यर्थः, ताः पञ्च प्रज्ञप्ताः । ता एव समितीः प्राह-तद्यथा-ईर्यासमितिः-ईरणम्
 ईर्या=गमनं तत्र समितिः=सम्यक् प्रवृत्तिः । ईर्यासमिति नाम जीवश्वार्थं
 पुरतो युग्यमात्रभूभाग्न्यस्तदृष्टिना गमनम् । तथा-भाषासमितिः-भाषणं भाषा=
 वाणी, तस्यां समितिः । भाषासमितिर्नाम सावद्यपरिहारपूर्वकं निरवद्यद्वितमि-
 तासन्दिग्धार्थभाषणम्, यावच्छब्दात्-एपणासमितिरादानभाण्डामत्रनिक्षेपणा-
 समितिश्च ग्राह्या । तत्र-एपणासमितिः-एपणमेपणा=तस्यां समितिः । एपणास-
 मिति नाम द्वारिंशदोषवर्जनेन भक्तादिग्रहणे प्रवृत्तिः । तथा-आदानभाण्डामत्र-
 निक्षेपणासमितिः-भाण्डामत्रयोरादाने=ग्रहणे निक्षेपणे=स्थापने च समितिः=

સમિતિયાંહે, એ સમિતિયાં ઈર્યાસમિતિ આદિકે ભેદસે પાંચ પ્રકારકી કહી
 ગઈહે, ઉનમેંસે જો સાધુ ગમનમેં સમ્યક્ પ્રવૃત્તિ કરતાંહે એસી ઉસકી વહ
 પ્રવૃત્તિ ઈર્યાસમિતિહે । હસ ઈર્યાસમિતિમેં પ્રવૃત્તિ હુઆ સાધુ પહજીવનિકા-
 યકે રક્ષાકે નિમિત્ત યુગ્યમાત્ર (ભૂમરા પ્રમાણ) ભૂભાગકા નિરીક્ષગ કરતા
 હુઆ આને ૨ ચલના હૈ । સાવચ વચનકે પરિહારપૂર્વક નિરવચ હિતમિત
 એવં અસંદિગ્ધ અર્થકા કથન કરના હિતમિત મિચ વચન યોલના હસકા
 નામ ભાષાસમિતિ હૈ । યહાં યાવત્ શબ્દસે “ એપણાસમિતિ આદાન-
 આણ્ડમાત્રનિક્ષેપણ સમિતિ ” હન દો સમિતિઓંકા ગ્રહણ હુઆ હૈ ।
 ૪૨ દોષરહિત આહારકે ગ્રહણમેં જો પ્રવૃત્તિહે વહ એપણાસમિતિહે આણ્ડ
 એવં પાત્રકે લેનેમેં ઓર ધરનેમેં જો સુપતિલેખના એવં સુપમાર્જના આદિ
 યનવાપૂર્વક પ્રવૃત્તિ હૈ, વહ આદાનઆણ્ડમાત્રનિક્ષેપણ સમિતિ

જનતાપૂર્વકની જે પ્રવૃત્તિઓ છે તેમનું નામ સમિતિ છે. અથવા શોભન
 એકાગ્ર પરિણામવાળાઓની જે પ્રવૃત્તિઓ છે, તેમનું નામ સમિતિ છે.
 આગતી વખતે જનતાપૂર્વક આગવું, જીવલેખા ન થય એવી રીતે ચાલવું,
 એવી ગમનની સમ્યક્ પ્રવૃત્તિ કરનાર સાધુની તે પ્રવૃત્તિને ઈર્યાસમિતિ કહે
 છે જીવરક્ષા માટે સાધુએ ચાલતી વખતે યુગ્યપ્રમાણ (ધૂંસરી પ્રમાણ)
 ભૂમિતું નિરીક્ષણ કરતા કરતાં આગળ ચાલવું જોઈએ.

સાવધ વચનના પરિત્યાગપૂર્વક નિરવચ, હિત, મિત અને અસંદિગ્ધ
 વચન ચોલવું તેનું નામ ભાષાસમિતિ છે.

૪૨ દોષથી રહિત આહાર ગ્રહણ કરવાની સાધુની જે પ્રવૃત્તિ છે તેને
 એપણા સમિતિ કહે છે. ભાડ (પાત્ર) અને માત્રને લેતી વખતે અને મૂકતી
 વખતે જે સુપતિલેખના અને સુપમાર્જના આદિ પૂર્વકની પ્રવૃત્તિ થાય છે,
 તેને “ આદાન ભાંડામત્ર નિક્ષેપણ સમિતિ ” કહે છે.

सुप्रतिलेखितसुप्रमार्जितादिक्रमेण प्रवृत्तिः । तथा-परिष्ठापनिकासमितिः-उच्चारस्य=पुरीषस्य, प्रस्रवणस्य=मूत्रस्य, खेलस्य=श्लेष्मणः, शिङ्घाणस्य नासिकोद्भवमलस्य, जल्लस्य=शरीरमलस्य च परिष्ठापनिकायां=त्यागे समितिः=सम्यक् प्रवृत्तिः ॥ सू० १७ ॥

निर्ग्रन्थाश्च जीवरक्षार्थमेव समितियुक्ता भवन्तीति जीवस्वरूपमाह—

मूलम्--पंचविहा संसारसमावन्नगा जीवा पण्यत्ता, तं जहा-
एगिंदिया जाव पंचिंदिया । एगिंदिया पंचगइया पंचागइया
पण्यत्ता, तं जहा--एगिंदिए एगिंदिएसु उववज्जमाणे एगिंदि-
एहिंतो जाव पंचिंदिएहिंतो वा उववज्जेजा, से चैव णं एगिं-
दिए एगिंदियत्तं विप्पजहमाणे एगिंदियत्ताए वा जाव पंचिं-
दियत्ताए वा गच्छेजा २। बेदिया पंचगइया पंचागइया एवं
चैव ३। एवं जाव पंचिंदिया पंचगइया पंचागइया पण्यत्ता ४।
पंचिंदिया जाव गच्छेजा ५। पंचविहा सब्वजीवा पण्यत्ता, तं
जहा--कोहकसाई जाव लोहकसाई अरुसाई । अहवा पंचविहा
सुव्वजीवा पण्यत्ता, तं जहा--नेरईया जाव देवा सिद्धा ॥सू०१८॥

ह्याया—पञ्चविधाः संसारसमावन्नका जीवाः प्रज्ञताः, तद्यथा-एकेन्द्रिया
यावत् पञ्चेन्द्रियाः । एकेन्द्रियाः पञ्चगतिकाः पञ्चागतिकाः प्रज्ञताः, तद्यथा-
एकेन्द्रियएकेन्द्रियेषु उत्पद्यमान एकेन्द्रियेभ्यो यावत् पञ्चेन्द्रियेभ्यो वा उपप-
द्यते, स एव खलु एकेन्द्रिय एकेन्द्रियत्वं विप्रजहत् एकेन्द्रियतया वा यावत्
पञ्चेन्द्रियतया वा गच्छति २। द्वीन्द्रियाः पञ्चगतिकाः पञ्चागतिका एवमेव ३।
एवं यावत् पञ्चेन्द्रियाः पञ्चगतिकाः पञ्चागतिकाः प्रज्ञताः ४, पञ्चेन्द्रिया यावत्
गच्छन्ति ५। पञ्चविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञताः, तद्यथा-क्रोधरूपायिणो यावत् लोभ
है, एवं मलमूत्रके श्लेष्मणके शिङ्घाण-नासिकके मलके जल्ल शरीरके झैलके
त्यागमें जो सम्यक् प्रवृत्ति है वह परिष्ठापनिका समिति है ॥सू० १७॥

मणभूत्र, कइ, शिंघाणु-नासिकांथी नीकणतो चीकणो पदार्थ अने नदल
(शरीरमे भेल) ना त्यागनी ले सम्यक् प्रवृत्ति छे तेतुं नाम ' परिष्ठा-
पनिका समिति छे ॥ सू. १७ ॥

કષાપિણઃ અરુપાપિણઃ । અચ્ચા-પચ્ચવિધાઃ સર્વજીવાઃ પ્રજ્ઞતાઃ, તથથા-નેરયિક્તા
યાવત્ દેવાઃ સિદ્ધાઃ ॥ સૂ૦ ૧૮ ॥

ટીકા—‘ પંચવિદ્યા ’ इत्यादि—

સંસારસમાપન્નકાઃ-સંસારણં સંસારઃ=નારકતિર્યગ્નરામરભવાનુભવભ્રમણલક્ષણઃ,
તં સમ્યક્=એકીભાવેન આપન્નાઃ=પ્રાપ્તાઃ, સંસારસમાપન્નાઃ, ત એવ સંસારસમાપ-
ન્નકાઃ-ભવવર્તિનો જીવા इत्यर्थः । તે ચ પચ્ચવિધાઃ કથિતાઃ । પચ્ચવિધ્યત્વમેવ-
ગ્રાહ-તથથા-એકેન્દ્રિયાઃ=એકેન્દ્રિયજીવાઃ, યાવત્-પચ્ચેન્દ્રિયાઃ=પચ્ચેન્દ્રિયજીવાઃ ।
યાવત્પદેન-દ્વીન્દ્રિયત્રીન્દ્રિય-ચતુરિન્દ્રિયજીવા ગ્રાહ્યાઃ । एते प्रत्येकं पञ्चग-
તિકાઃ પચ્ચાગતિકાથ્ચ ભવન્તિ । તદેવ પ્રદર્શયતિ-‘ एगिंदिया पंचगइया ’-
इत्यादि । एकेन्द्रियाः-एकं=स्पर्शनलक्षणम् इन्द्रियं येषां ते तथाभूता जीवाः

નિર્મન્થ જીવરક્ષાકે નિમિત્તહી સમિતિયોસે યુક્ત હોતે હેં, અતઃ
અથ સૂત્રકાર જીવકે સ્વરૂપકા કથન કરતે હેં—

‘ પંચવિદ્યા સંસારસમાવન્નગા ’ इत्यादि सूत्र १८ ॥

ટીકાર્થ-નારક તિર્યક મનુષ્ય ઓર દેવકે ભવોંકા ભોગના-उनमें भ्रमण
કરના હસકા નામ સંસાર હૈ, હસ સંસારકો જો એકીભાવસે પ્રાપ્ત
હેં, વે સંસારસમાપન્નક હેં । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ જો ભવવર્તી જીવ હેં વે
સંસારસમાપન્નક હેં । વે સંસારસમાપન્નક જીવ એકેન્દ્રિય યાવત્
પચ્ચેન્દ્રિય જીવસે પાંચ પ્રકારકે હેં । યહાં યાવત્પદસે “ દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય
એવં ચતુરિન્દ્રિય ” જીવોંકા ગ્રહણ હુઆ હૈ । વે પ્રત્યેક પંચગતિક ઓર
પંચ આગતિક હોતે હેં । યહી વાન અવ સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હેં-“ एगिं-
दिया पंचगइया ” इत्यादि । जिनको एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है वे

નિર્મન્થ જીવરક્ષાકે નિમિત્તે જ પાંચ સમિતિઓથી યુક્ત હોય છે,
તેથી હવે સૂત્રકાર જીવના સ્વરૂપનું કથન કરે છે.

“ પંચવિદ્યા સંસારસમાવન્નગા ” इत्यादि—

ટીકાર્થ-નારક, તિર્યક, મનુષ્ય અને દેવના ભવોને ભોગવવા તે ભવોમાં
ભ્રમણ કરવું તેનું નામ સંસાર છે જેઓ આ સંસારમાં ઉપર્યુક્ત કોઈ પણ ગતિનું
જીવન જીવી રહ્યા છે તેમને સંસાર સમાપન્નક કહે છે. એટલે કે ભવવર્તી
જીવોને સંસાર સમાપન્નક કહે છે તેમના એકેન્દ્રિયથી લઈને પચ્ચેન્દ્રિય પર્ય-
ન્તના પાંચ ભેદ કહ્યા છે તે પ્રત્યેક પંચગતિક અને પંચ આગતિક હોય
છે. એ જ વાત સૂત્રકાર હવે પ્રકટ કરે છે. “ एगिंदिया पंचगइया ” इत्यादि—

જે જીવોને એક માત્ર સ્પર્શેન્દ્રિયનો જ સંદર્ભ હોય છે, તેમને એકે-

પશ્ચગતિકાઃ-પશ્ચતુ ગતિઃ=ગમનં યેષાં તે તથા, પશ્ચાગતિકા-પશ્ચમ્ય આગતિઃ= આગમનં યેષાં તે તથાશૂનાશ્ચ પ્રજ્ઞાઃ । તત્ર એકેન્દ્રિયાણાં પશ્ચાગતિકૃત્વમાદ- તથથા-એકેન્દ્રિયેષુ=એકેન્દ્રિયાણાં મધ્યે એકેન્દ્રિય ઉત્પદ્યમાનઃ=એકેન્દ્રિયત્વેન જાયમાનો જીવઃ એકેન્દ્રિયેભ્યો યાવત્ પશ્ચેન્દ્રિયેભ્યો વા=એકેન્દ્રિયાદિ પશ્ચેન્દ્રિ- યાન્તાનાં મધ્યે કુતશ્ચિદાગત્ય ઉત્પદ્યતે=જાયતે । इत्यं પશ્ચાગતિકૃત્વમુત્તવા સમ્પતિ પશ્ચગતિકૃત્વમાહ— ' સે ચેવ ણં ' इत्यादिना । स एव खलु एकेन्द्रियः=य एकेन्द्रियादेः कस्माच्चिदपि समागत्य एकेन्द्रियत्वेन समुत्पद्यः, स एव एकेन्द्रियो जीव एकेन्द्रियत्वं विप्रनहत्=परित्यजन् एकेन्द्रियतया वा यावत् पश्चेन्द्रियतया वा गच्छतीति । एवमेव द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपश्चेन्द्रियाणां पश्चागतिकृत्वं पश्चगतिकृत्वं च बोध्यमिति । अथ सर्वजीवानां पश्चविधत्वं प्रकारद्वयेन प्राह-

એકેન્દ્રિય જીવ હૈં । યે જીવ પંચ ગતિક્ર હોતે હૈં-પાંચ ગતિયોંમેં જિનકા ગમન હોતાહૈ વે પંચ ગતિક્રહૈં તથા પાંચ ગતિયોંસે જિનકા આગમન હોતા હૈં વે પંચોગનિકહૈં । એકેન્દ્રિયોંમેં ઉત્પદ્યમાન કોઈ જીવ એકેન્દ્રિયસે આકર, દ્વીન્દ્રિયસે આકર તેહન્દ્રિયસે આકર, ચૌહન્દ્રિયસે આકર ઓર પચેન્દ્રિયસે આકર હસ તરહ કિસી મી હન્દ્રિયવાલે જીવોંમેંસે આકર-એકેન્દ્રિય જીવ- રૂપસે ઉત્પન્ન હો સકતા હૈં । इसी तरहसे एकेन्द्रिय जीव मरकर एके-न्द्रिय जीवसे लेकर पश्चेन्द्रिय जीवों तकमें उत्पन्न हो सकता है । अर्थात् एकेन्द्रिय जीव मरकर एकेन्द्रिय रूपसे भी उत्पन्न हो सकता है, यावत् वह पंचेन्द्रिय रूपसे भी उत्पन्न हो सकता है । इसी तरहसे द्वीन्द्रिय जीव, તેહન્દ્રિય જીવ, ચૌહન્દ્રિય જીવ ઓર પંચેન્દ્રિય જીવ इनमें भी पच आगतिकता और पंच गतिकता जाननी चाहिये " पंचविहा स्वव-

ન્દ્રિય જીવો કહે છે. તેઓ પચગતિક હોય છે અને પચાગતિક હોય છે. પાંચ ગતિઓમાં જેમતું ગમન થાય છે, તે જીવોને પચગતિક કહે છે. પાંચ ગતિઓમાં જેમતુ આગમન થાય છે તેમને પચાગતિક કહે છે. એકે-ન્દ્રિયોમાં ઉત્પન્ન થતો જીવ એકેન્દ્રિયોમાંથી દ્વીન્દ્રિયોમાંથી, ત્રિન્દ્રિયોમાંથી, ચતુરિન્દ્રિયોમાંથી કે પચેન્દ્રિયોમાંથી, આ રીતે પાચે પ્રકારના જીવોમાંથી આવીને એકેન્દ્રિય જીવ રૂપે ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. એ જ પ્રમાણે એકેન્દ્રિય જીવ મરીને એકેન્દ્રિયથી લઈને પચેન્દ્રિય પર્યન્તના જીવોમાં ઉત્પન્ન થઈ જાય છે એટલે કે એકેન્દ્રિય જીવ મરીને એકેન્દ્રિય જીવ રૂપે પણ ઉત્પન્ન થાય છે, દ્વીન્દ્રિય જીવ રૂપે પણ ઉત્પન્ન થાય છે, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અથવા પંચેન્દ્રિય જીવરૂપે પણ ઉત્પન્ન થાય છે એ જ પ્રમાણે દ્વીન્દ્રિયોમાં, ત્રીન્દ્રિયોમાં, ચતુ-રિન્દ્રિયોમાં, અને પંચેન્દ્રિયોમાં પણ પચ ગતિકતા અને પચ આગતિકતા

‘ પંચવિહા સવ્વજીવા ’ इत्यादि । नैरयिका १ यावत्, यावत्पदेन तिर्यञ्चः २, मनुष्याः ३, देवाः ४, सिद्धाश्च ५। तत्र-संसारिणः सिद्धाश्च समस्ता अपि जीवाः क्रोधकषायिप्रभृतिभेदेन पञ्चप्रकारकाः बोध्याः । तत्र क्रोधकषायिप्रभृतयश्चत्वारः पसिद्धाः । अकषायिणस्तु उपशान्तमोहादयः । अथवा-नैरयिकादिभेदभिन्नाः पञ्चविधा जीवा बोध्याः इति ॥ सू० १८ ॥

जीवपस्तावात् सम्प्रतिव्रनस्पतिजीवानां योनिमाश्रित्म पञ्चस्थानानि प्राद-
मूलम्—अह भंते ! कलमसूरतिलमुद्गमासणिष्कान-
कुलत्थआलिसंदग सईणप्रलिमंथगाणं एएसि णं धन्नाणं कुट्टा
उत्ताणं जहा लालीणं जाव केवइयं कालं जोणी संचिट्टइ १,
गोयमा ! जहण्णेणं अंतो मुहुत्तं उक्कोसेणं पंच संवच्छराइं ।
तेण परं जोणी पसिलायइ जाव तेण परं जोणीनोच्छेए पणत्ते
॥ सू० १९ ॥

छाया—अथ भदन्त ! कलमसूरतिलमुद्गमापनिष्पावकुलत्थालिसन्दकवुव-
रीपलिमन्थकानाम् एतेषां खलु धान्यानां कोष्ठागुप्तानां यथा शालीनां यावत्
क्रियन्तं कालं योनिः सन्तिष्ठते ?, गौतम ! जवन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण
पञ्च संवत्सरान् । ततः परं योनिः प्रम्लायति यावत्ततः परं योनिव्युच्छेदः
प्रज्ञप्तः ॥ सू १९ ॥

जीवा ” इत्यादि—नैरयिक १ तथा यावत्पद ग्राह्य तिर्यञ्च २ मनुष्य ३
देव ४ और सिद्ध ५ इस प्रकारसे भी समस्त जीव पांच प्रकारके होते
हैं । तथा-संसारी और सिद्ध ये समस्त भी जीव क्रोध कषायी आदिके
एवं अकषायीके भेदसे पांच प्रकारके होते हैं । इनमें क्रोध कषायवाले,
मान कषायवाले, माया कषायवाले और लोभ कषायवाले ये चार प्रका-
रके कषायवाले जीव संसारी जीव हैं एवं उपशान्त कषायवाले, क्षीण
कषायवाले सयोग केवली और अयोग केवली ये अकषायी जीव हैं ॥ सू० १८ ॥

સમજવી. “ પંચવિહા સવ્વજીવા ” ઈત્યાદિ—

સમસ્ત જીવોના પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે કહ્યા છે—(૧) નારક, (૨)
તિર્યંચ, (૩) મનુષ્ય, (૪) દેવ અને (૫) સિદ્ધ

તથા સંસારી અને સિદ્ધ એ સમસ્ત જીવો ક્રોધકષાયી આદિના અને
અકષાયીના ભેદથી પાંચ પ્રકારના હોય છે. તેમાંથી ક્રોધકષાયવાળા, માનકષાય-
વાળા, માયાકષાયવાળા, અને લોભકષાયવાળા, આ ચાર પ્રકારના કષાયવાળા
સંસારી જીવો હોય છે, અને ઉપશાન્ત કષાયવાળા, ક્ષીણકષાયવાળા, સયોગ
કેવલી અને અયોગકેવલી, એ અકષાયી જીવો હોય છે. ॥ સૂ. ૧૮ ॥

टीका—‘अह भंते’ इत्यादि—

‘अथ’ इति प्रश्ने ‘भदन्त’ इत्यामन्त्रणे । हे भदन्त । कलमसूरतिल-
मुद्गमाषनिष्पावकुलत्यालिसन्दकतुवरीपलिमन्थकानां-तत्र कलः=‘मटर’ इति
भाषाप्रसिद्धो धान्यविशेषः, मसूरतिलमुद्गमाषाः प्रसिद्धाः, निष्पावो वल्लः-
‘वाल’ इति प्रसिद्धः, कुलत्थः=‘कुलथी’ इति ख्यातो धान्यविशेषः, आलिसन्दको
राजमाषः-‘चौला चोरा’ इत्यादिनाम्ना लोके प्रसिद्धाः, ‘सईणा’-तुवरी-
‘अरहर’ इति भाषा प्रसिद्धा, पलिमन्थकः-कृष्णचणक इति । कलमसूरादीनाम्
एतेषां धान्यानां शालीनां यथा=शालीनामिव कोष्ठागुमानां कोष्ठागारे रक्षितानां
यावत्-यावत् शब्दात् पल्यागुसानाम्-पलयम्=वंशकटकादिकृतो धान्याधारपात्र-
विशेषः, तत्र आगुसानाम्, म आगुसानाम्-मञ्चः-‘मंचान’ इति भाषाप्रसिद्धः,
तत्र आगुसानाम्, मालागुमानां=गृहोपरित्तभामे संरक्षितानाम्, अवलिप्तानाम्-
पात्रद्वारदेश्च पित्राय गोत्र्यादिना उदलिष्य रक्षिताना, लिप्तानाम्=वर्ततः कृत्वा-

जीवके प्रस्तावसे अब सूत्रकार वनस्पति जीवोंकी योनिको आश्रित
करके पांच स्थानोंका कथन करते हैं--

‘अह भंते ! कलमसूरतिलमुग्ग’ इत्यादि सूत्र १९॥

टीकार्थ-हे भदन्त ! कल, मटर, मसूर, तिल, मुद्ग, सुंग, माष, उडद, नि-
ष्पाव वाल, कुलत्थ-कुलथी, आलिसन्दक-राजमाष रौंशां-चौला, सईणा-
अरहर और पलिमन्थक-काला चना-इन सब धान्योंकी चाहे ये
कोष्ठागुप्त हों-कोष्ठागारमें भरकर रखे हुए हों यावत्-चाहे वांसके
बने हुए पित्रारेमें भरकर रखे हुए हों चाहे-आगुप्त हो-मञ्चोंके ऊपर
भरकर रखे गये हों चाहे मालागुप्त हों-वरके ऊपरके भागमें संरक्षित
हों चाहे लिप्त हों-सब तरफसे वर्तनमें भरकर जिसमें लेप कर दिया

लवने अधिकार आदी रह्यो छे, तेथी हवे सूत्रकार वनस्पति लवोनी
योनिने आश्रित करीने पाच स्थानोनुं कथन करे छे.

“अह भंते ! कलमसूरतिलमुग्ग” इत्यादि—

टीकार्थ-गीतमस्वामीने प्रश्न—हे लगवन् ! वटाण्डा, मसूर, तिल, मग, अउद,
पाल, कुलथी, चोणा, तुवेर, चण्डा वगेरे धान्योनी अंकुरोत्पादन शक्ति केटला
समयनी कडी छे ? अहीं अे धान्योने संत्रड करवानी जुदी जुदी रीते प्रकट
करवामां आवी छे. आ रीतेने आवरी लधने आ प्रमात्ते प्रश्न पूछवामां
आव्यो छे-“ हे लगवन् ! केठारमां लरीने संधरी राभेला, वांसनी अना-
वेदी पेटीमां राभेला, केठ उ या मांयडा उपर संधरेला, धरना उपरना लागमां
संधरेला (मालागुप्त), माटीथी लिप्त पात्रमां लरी राभेला, माटीथी अलिप्त
पात्रमां लरी राभेला, माटीथी लेप करेला ढांङ्गवाणा पात्रनी अंदर राभेला

लेयानां पिहितानाम्=आच्छादितानाम्, मुद्रितानाम्=मृत्तिकादिमुद्रावतां, लाञ्छितानाम्=रेखादिभिः कृतकाञ्चनानां क्रियन्तं कालं योनिः=उत्पादशक्तिः सन्ति-
 ष्टने ? कोष्ठागारादिरक्षितानां करुमपूरादिदशविधधान्यानां योनिः क्रियत्काला-
 लाञ्छि तिष्ठति ? इति प्रश्नाशयः । भगवानाह-हे गौतम ! एतेषां धान्यानां
 योनिः जगन्मयेन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कृष्टेण तु पञ्च संवत्सरान् तिष्ठति ततः परम्=
 तदनन्तरं योनिः पश्यायनि=वर्णादिना हीयते, यावच्छब्दात् ततः परं योनिः
 विधंसते=नश्यति, ततः परं बीजम् अबीजं भवति=उत्पन्नमपि तत् न प्ररोहति ।

गया हो ऐसी जगहमें रखे गये हों चाहे अब लिप्त हों-ऐसे पात्रमें भर-
 कर रखे गये हों कि जिसका द्वार पहिले ढकनसे ढांक दिया गया हो
 और बादमें गोबर आदिसे झाच कर दिया गया हो चाहे लिप्त हों-सा-
 लान्य रूपसे ढककर रखे हुए हों, चाहे भुद्रिन हों-मिट्टी आदिका लेप
 कर रखे गये हों चाहे लाञ्छित हों-रेखा आदि द्वारा जो चिन्हित कर
 दिये गये हों कितने काल तक उत्पादन शक्ति रहती है ? अर्थात्
 कोष्ठागार आदिमें भर कर रखे गये इन कल मपूर आदि दश प्रका-
 रके धान्योंकी अङ्कुरोत्पादन शक्ति कितने समय तक रहती है, ऐसा प्रश्ना-
 शय है-इस पर भगवान् कहते हैं-हे गौतम ! इन १० प्रकारके धान्योंकी
 अङ्कुरोत्पादन शक्ति जघन्यसे एक अन्तर्मुहूर्तकी है, और उत्कृष्टसे पांच
 वर्ष तककी है, इसके बाद उनकी वह अङ्कुरोत्पादन शक्ति वर्णादि
 द्वारा कमजोर हो जाती है फिर वे अङ्कुरोत्पादन करनेमें शक्ति सम्पन्न
 नहीं रहते हैं । यही वाक्य " बीजं अबीजं भवति " इस पाठ द्वारा प्रकट
 की गई है अर्थात् वह केवल देखनेमेंही बीज लगना है, पर वास्तवमें

के लेप कर्था वगरना ढांकणवाणा वासणुमां राणेसा, रेती राण आदिमा
 राणेसा वटाणु, मसूर, तल, मग अउद, वाल, कणथी, योणा, तुवेर, यणु
 आदि धान्योनी अङ्कुरोत्पादन शक्ति केटला कणनी कही छे ?

महावीर प्रभुने उत्तर—हे गौतम ! वटाणु आदि आ १० प्रकारना
 धान्योनी अङ्कुरोत्पादन शक्ति आछामां आछा ओक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण
 कणनी अने अधिकमां अधिक पञ्च वर्ष सुधीनी होय छे. तयारभाद तेनी
 अङ्कुरोत्पादन शक्तिने क्षय थछ नय छे अने आपरे तेमनी ते शक्ति नष्ट
 थछ नय छे, ओटला कण भाद तेओ अङ्कुरोत्पादन करवानी शक्तिथी रडित
 णनी नय छे. ओ न वात सूत्रकारे " बीजं अबीजं भवति " आ सूत्रपाठ
 द्वारा प्रकट करी छे. ओटले के पांच वर्ष भाद तेओ बीज ओवा होयातां

अत एव हे गौतम ! ततः पर तेषां योनिव्यवच्छेदः=प्ररोहणशक्ति प्रणाशः प्रज्ञप्तः= प्रहृषितः । अर्थात् उक्तकालानन्तरं कलमसूरादीनि अचित्तानि भवन्तीति ॥ सू० १९ ॥

अनन्तरसूत्रे कलमसूरादीनां योनिव्युच्छेदः पञ्चभिः संवत्सरैर्भवतीत्युक्तम् । सम्प्रति संवत्सरानेव पञ्चविधत्वेनाह —

मूलम्—पञ्च संवच्छरा पणत्ता, तं जहा-णक्खत्तसंवच्छरे
 १ जुगसंवच्छरे २ पमाणसंवच्छरे ३ लक्खणसंवच्छरे ४ सणि-
 चरसंवच्छरे ५ । १ । जुगसंवच्छरे पञ्चविहे पणत्ते, तं जहा-
 चंदे १ चंदे २ अभिवड्ढिण्ण ३ चंदे ४ अभिवड्ढिण्ण ५ चैव । २ ।
 पमाणसंवच्छरे पञ्चविहे पणत्ते, तं जहा-णक्खत्ते १ चंदे २
 उऊ ३ आइच्चो ४ अभिवड्ढिण्ण ५ । ३ । लक्खणसंवच्छरे पञ्च-
 विहे पणत्ते, तं जहा-समगं णक्खत्ता जोगं जोयंति ससमं
 उऊ परिणमंति । णच्चुण्हो णइसीओ बहूदओ होइ णक्खत्ते
 ॥ १ ॥ ...ससिसगलपुण्णमामी जोएई विसमचारणक्खत्ते ।
 कडुओ बहूदओ य तमाहु संवच्छरं चंदं ॥ २ ॥ विससं पवा-
 लिणो परिणमंते अणुदूसुदेति पुप्फफलं । वासं ण ससमं
 वासइ, तमाहु संवच्छरं कम्मं । ३ । पुढविदगाणं तु रसं, पुप्फ-
 फलाणं तु देइ आइच्चो । अप्पेण विवासेण, ससमं निप्फज्जए

वह जोज नहीं रहना है, क्योंकि वह खेतमें बोये जाने पर अङ्कुरोंको उत्पन्न नहीं कर सकता है । इसी कारण हे गौतम ! पांच वर्षके बाद उनकी योनि का विच्छेद-प्ररोहण शक्तिका विनाश-कहा गया है, अर्थात् ये कल मसूर आदि धान्य उक्त कालके बाद अचित्त हो जाते हैं ॥ सू० १९ ॥

डोवा छतां पणु भरी रीते अणीअ इपण भनी गया डोय छे. कारणु डे तेभने जेतसमां वाववाभा आवे तो तेमांथी अंकुरो उत्पन्न थना नयी ते कारणु डे गौतम ! पांच वर्ष आठ तेमनी योनिनो व्यवच्छेद-उत्पादन शक्तिनो विनाश कइयो छे. अट्ठे डे ते वराणु आदि धान्य उपर्युक्त काल दरनियान अचित्त थर्ध जाय छे. ॥ सू. १६ ॥

સસ્સં । ૪ । આહ્ચતેયત્રિયા, સ્વળલવદિવસા ડુકુ પરિણમંતિ
પૂરિંતિ રેણુથલયાઈં, તમાહુ અભિવદ્ધિયં જાણ ॥ ૫ ॥ સૂ૦૨૦ ॥

છાયા—પંચ સંવત્સરાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, તદ્યથા—નક્ષત્રસંવત્સરઃ ૧ યુગસંવત્સરઃ
૨ પ્રમાણસંવત્સરઃ ૩ લક્ષણસંવત્સરઃ ૪ શનૈશ્વરસંવત્સરઃ ૫ । ૧ । યુગસંવત્સરઃ
પંચવિધઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, તદ્યથા—ચન્દ્રઃ ૧ ચન્દ્રઃ ૨ અભિવદ્ધિતઃ ૩ ચન્દ્રઃ ૪ અભિવદ્ધિ-
તશ્ચૈવ ૫ । ૨ । પ્રમાણસંવત્સરઃ પંચવિધઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, તદ્યથા—નક્ષત્રઃ ૧ ચન્દ્રઃ ૨ ક્રતુઃ
૩ આદિત્યઃ ૪ અભિવદ્ધિતઃ ૫ । ૩ । લક્ષણસંવત્સરઃ પંચવિધઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, તદ્યથા—
સમકં નક્ષત્રાણિ યોગં યોજયન્તિ સમકમ્ ઋતવઃ પરિણમન્તે । નાત્પુષ્ણો નાતિ-
શીતો વહુદકો ભવતિ નક્ષત્રઃ । ૧ । જાશી સકૃત્તૃવૈર્ણમાસી યોજયતિ વિપમવાર
નક્ષત્રઃ । કદુક્તો વહુદકશ્ચ તમાહુઃ—સંવત્સરં ચાન્દ્રમ્ । ૨ ॥ વિષમે પ્રવાલિનઃ
પરિણમન્તે અનૃતુપુ દદતિ પુષ્પફલમ્ । વર્ષં ન સમ્યગ્ વર્ષતિ તમાહુઃ સંવત્સરં
કાર્મણમ્ ॥૩॥ પૃથિવ્યુદકાનાં તુ રસં પુષ્પફલેભ્યસ્તુ દદાતિ આદિત્યઃ । અરવે-
નાપિ વર્ષેણ સમ્યગ્ નિષ્પદ્યતે સસ્યમ્ ॥૪॥ આદિત્યતેજસ્તાપિતાઃ ક્ષણલવદિવસા
ઋતવઃ પરિણમન્તે । પૂરયન્તિ રેણુમિઃ સ્થલજ્ઞાનિ તમાહુઃ અભિવદ્ધિતં જાનીદ્ધિ
॥ ૪ ॥ સૂ૦ ૨૦ ॥

ટીકા — ‘ પંચ સંવત્સરા ’ इत्यादि—

સંવત્સરાઃ—નક્ષત્રસંવત્સરાદિભેદેન પંચવિધા વૌધ્યાઃ । તત્ર—દ્વાદશનક્ષત્ર-
જ્ઞાનાત્મકો વૌધ્યઃ । નક્ષત્રમાસસ્તુ ચન્દ્રસ્ય નક્ષત્રમણ્ડલભોગકાલઃ । ચન્દ્રસ્ય

હવ સૂત્રર્થે કલ મહર આદિ ધાન્યોક્તી યોનિકા છેદ પાંચ વર્ષકે
ચાદ હો જાના હૈ એસા કહાં હૈ સ્ત્રો અલ સૂત્રકાર લક્ષી સંવત્સરોંકા
પંચવિધ રૂપસે કથન કરતેહૈ—‘ પંચ સંવત્સરા પળગત્તા ’ इत्यादि सूत्र २०॥

ટીકાર્થ—સંવત્સર પાંચ પ્રકારકે કહે ગયેહૈ—જૈસે—નક્ષત્ર સંવત્સર ૧ યુગ
સંવત્સર ૨ પ્રમાણ સંવત્સર ૩ લક્ષણ સંવત્સર ૪ ઓર શનૈશ્વર સંવ-
ત્સર ૫ હનમેં જો નક્ષત્ર સંવત્સર હોતા હૈ, વહ ૧૨ નક્ષત્રોંકે માસ રૂપ

આગલા સૂત્રમા એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે વટાણા, મસૂર આદિ
ધાન્યની થોનિનો પાંચ વર્ષમાં વિનાશ થઈ જાય છે. હવે સૂત્રકાર એ જ
સંવત્સરો (વર્ષો) ના પાંચ પ્રકારોનું કથન કરે છે

“ પંચ સંવત્સરા પળગત્તા ” इत्यादि—

ટીકાર્થ—સંવત્સર પાંચ પ્રકારના કહ્યાં છે—(૧) નક્ષત્ર સંવત્સર, (૨) યુગ સંવ-
ત્સર, (૩) પ્રમાણ સંવત્સર, (૪) લક્ષણ સંવત્સર અને (૫) શનૈશ્વર સંવત્સર.
નક્ષત્ર સંવત્સર ઓર નક્ષત્રોના માસ રૂપ હોય છે. ચન્દ્રનો નક્ષત્ર મંડળનો
જે ભોગકાળ છે તેને નક્ષત્રમાસ કહે છે. નક્ષત્ર મંડળના ભોગકાળ રૂપ નક્ષત્ર

नक्षत्रमण्डलभोगस्तु सप्तविंशत्या दिनैः सप्तपण्डिभागविभक्तस्यैकस्य दिवसस्य एकविंशत्या भागैश्च (२७ $\frac{१}{३}$) भवति । एतावद्विद्वसप्रमाणो नक्षत्रमास एकस्मिन् नक्षत्रसंवत्सरे तु सप्तविंशत्यधिकानि त्रीणि शतानि दिनानि सप्तपण्डिभागविभक्तस्यैकस्य दिवसस्य एकपञ्चाशद्भागैश्च (३२७ $\frac{१}{३}$) भवन्तीति ।

युगसंवत्सरः—पञ्चसंवत्सरात्मकं युगं, तदेकदेशभूतश्चन्द्रादिसंवत्सरो युगसंवत्सर इति । प्रमाणसंवत्सरः प्रमाणं=परिमाणदिवसादीनां, तेनोपलक्षितो वक्ष्यमाण एव नक्षत्र संवत्सरादि लक्षणसंवत्सरः वक्ष्यमाण स्वरूपानां लक्षणानां प्राधान्येन प्रमाणसंवत्सर एव । शनैश्वरसंवत्सरः शनैश्वरेण निष्पादितः

होता है चन्द्रके नक्षत्र मण्डलका जो भोगकाल होता है वह नक्षत्र मास होता है, चन्द्रके नक्षत्र मण्डलका भोगकाल २७ दिन और ६७ भागोंमें विभक्त एक दिनके २१ भाग प्रमाण होता है, अर्थात् नक्षत्र मास नक्षत्र मण्डलका भोगकाल २७।२१-६७ सडसठिया इक्कीस दिनका होता है । एक नक्षत्र संवत्सरमें ३२७ दिन और एक दिनके ६७ भागोंमेंसे ५१ भाग होते हैं । युगसंवत्सर—पांच संवत्सरोका एक युग होता है, इसका एकदेश भूत चन्द्रादि संवत्सर होता है, यह चन्द्रादि संवत्सरही युग संवत्सर है । प्रमाण संवत्सर दिवस आदिके प्रमाणसे उपलक्षित जो नक्षत्र संवत्सर आदि है वही प्रमाण संवत्सर है, लक्षण संवत्सर—जिनका स्वरूप आगे कहा जानेवाला है, ऐसे लक्षणोंकी प्रधानतासे जो प्रमाण संवत्सर है, वही लक्षण संवत्सर है । शनैश्वर संवत्सर—जो संवत्सर शनै-

मास २७/२१/६७ सडसठिया ऐकवीस दिवसने डोय छे, जेवां ७।२ नक्षत्र-मासनुं ऐक नक्षत्र संवत्सर थाय छे ते नक्षत्र संवत्सरना ३२७।५१।६७ दिवस डोय छे.

युग संवत्सर—पांच संवत्सरोने ऐक युग थाय छे. तेना ऐकदेश-भूत (भाग ३५) चन्द्र संवत्सर डोय छे. ते चन्द्रादि संवत्सर ५ युग संवत्सर छे

प्रमाण संवत्सर—दिवस आदिना प्रमाणथी उपलक्षित जे नक्षत्र संवत्सर आदि छे, जे ५ प्रमाण संवत्सर छे.

लक्षण संवत्सर—तेना स्वरूपनुं प्रतिपादन आगण करवामां आवशे. जेवा लक्षणोनी प्रधानतावाणुं जे प्रमाण संवत्सर छे, तेनुं नाम ५ लक्षण संवत्सर छे

शनैश्वर संवत्सर—जे संवत्सरनु शनीयरो वडे निर्माण थाय छे, तेने शनैश्वर संवत्सर कडे छे जेट्से के जेटला समयमां शनीने श्रद्धे ऐक नक्ष-

तत्र-युगसंवत्सरः - चन्द्रचन्द्राभिवर्द्धितचन्द्राभिवर्द्धितसंवत्सरेति पञ्चविधः । चंद्रसंवत्सरो द्वादशभिश्चन्द्रमासैर् भवति । एकस्मिश्चन्द्रमासे एकोनत्रिंशद्दिनानि द्विपट्टिभागविभक्तस्यैकदिवसस्य द्वात्रिंशद्भागश्च (२९ ३२-६२) भवन्ति । अयं च कृष्णप्रतिपदा आरभ्य पौर्णमासी मभिव्याप्य भवति । एकस्मिश्चन्द्रसंवत्सरे चतुष्पञ्चाशदधिकानि त्रीणि शतानि दिनानि द्विपट्टिभागविभक्तस्यैकस्य दिवसस्य द्वादशभागाश्च (३५४ १२-६२) भवन्तीति । अभिवर्द्धितसंवत्सरस्तु द्वादशभिरभिवर्द्धितमासैस्तयोदशभिश्चन्द्रमासैर्वा भवति । एकस्मिन् अभिवर्द्धितमासे एकत्रिंशद्दिनानि चतुर्विंशत्यधिकैकशतभाग-विभक्तस्यैकस्य दिवसस्य एकत्रिंशत्यधिकैकशतभागाश्च (३१=१२१-१२४) भवन्ति । अनेन क्रमेण द्वादशमासप्रमाणे एकस्मिन्नभिवर्द्धितसंवत्सरे त्र्यशीत्यधिकानि त्रीणि शतानि दिनानि द्विपट्टिभागविभक्तस्य एकस्य दिवसस्य चतुश्चत्वारिंशद्

ताका कथन करते हैं—“ जुगसंवच्छरे ” इत्यादि—चन्द्र १ चन्द्र २ अभिवर्द्धित ३ चन्द्र ४ और अभिवर्द्धित ५ इनमें चन्द्र संवत्सर १२ चन्द्र मासोंसे होता है, एक चन्द्रमासमें २९ दिन एवं ६२ भागोंमें विभक्त एक दिनके ३२ भाग होते हैं, यह कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर पौर्णमासी तक होता है, एक चन्द्र संवत्सरमें ३५४ दिन और ६२ भागोंमें विभक्त हुए एक दिनके १२ भाग होते हैं । अभिवर्द्धित संवत्सर १२ अभिवर्द्धित महिनोसे अथवा १३ चन्द्र मासोंसे निष्पन्न होता है, एक अभिवर्द्धित मासमें एकतीस दिन और १२४ भागोंमें विभक्त हुए एक दिनके १२१ भाग होते हैं । इस तरह द्वादश मास प्रमाण एक अभिवर्द्धित संवत्सरमें ३८३ दिन और ६२ भागोंमें विभक्त हुए एक दिनके ४४ भाग होते हैं ।

“ जुग संवच्छरे ” इत्यादि—(१) चन्द्र, (२) चन्द्र, (३) अभिवर्द्धित, (४) चन्द्र अने (५) अभिवर्द्धित. तेभानुं चन्द्र संवत्सर १२ चन्द्रमासेनुं अने छे. अेक चन्द्रमासना २९.३२.६२ दिवस थाय छे. कृष्णपक्षनी प्रतिपदा (वही अेकम) थी लछने पूनम सुधीना द्विसोना अेक चान्द्रमास थाय छे. अेवा पार चान्द्रमासेनुं अेक चन्द्रसंवत्सर अने छे. तेना ३५४.१२.६२ दिवस थाय छे.

अभिवर्द्धित संवत्सर (अधिक मासवाणुं वर्ष) १२ अभिवर्द्धित महिनाअेनुं अथवा १३ चान्द्रमासेनुं अने छे. अेक अभिवर्द्धित मासना ३१.१२.११.१२४ दिवस डोय छे, अने १२ मासप्रमाळु अेक अभिवर्द्धित संव-

માગશ્ચ (૩૮૩ ૪૪-૬૨) ભવન્તીતિ । અભિવદ્ધિતસંવત્સરેઽધિકમાસો बोध्य इति । युगसंवत्सरमतिपादिका गाथाऽन्यत्रैवमभिहित्वा, । तथाहि—

“ चंदो चंदो अभिवद्धिभो य चंदमभिवद्धिभो चैव ।

पंच सहियं जुगमिणं, बिट्ट तेल्कोकदंसीहिं ॥ १ ॥ ”

છાયા—ચન્દ્રચન્દ્રોઽભિવદ્ધિતશ્ચ ચન્દ્રોઽભિવદ્ધિતશ્ચૈવ ।

पञ्चसहितं युगमिदं दृष्टं त्रैलोक्यदर्शिभिः ॥ १ ॥ इति ।

તથા—પ્રમાણસંવત્સરઃ નક્ષત્રઃ ૧ ચન્દ્રઃ ૨ ઋતુઃ ૩ આદિત્યઃ ૪ અભિવદ્ધિત ૫ इति पञ्चविधः । तत्र—नक्षत्रः नक्षत्रसंवत्सरः पूर्वोक्तलक्षणः । पूर्वस्माद् विशेषस्त्वयम्—तत्र नक्षत्रमण्डलस्य चन्द्रभोगमात्रं विवक्षितम् । इह तु दिन तद्भागादिप्रमाणमिति विशेषः । १ । तथा—चन्द्र - चन्द्रसंवत्सर उक्त लक्षण एव । २ । विशेषस्त्वयं—तत्र तस्य युगावयवत्वमात्रं विवक्षितम्, इह

इन चन्द्रादिक पांच संवत्सरोंसे एक युग बनता है, अभिवद्धित संवत्सरमें अधिक मास होता है, युग संवत्सरकी प्रतिपादिक गाथा अन्यत्र इस प्रकारसे कही गई है—“ चंदो चंदो अभिवद्धिभोय ” इत्यादि।

તથા—પ્રમાણ સંવત્સર-પાંચ પ્રકારકા કહ્યા ગયા છે—જેણે નક્ષત્ર ૧ ચન્દ્ર ૨ ઋતુ ૩ આદિત્ય ૪ ઓર અભિવદ્ધિત ૫ इनमें पूर्वोक्त लक्षणवाला नक्षत्र शब्दसे गृहीत हुआ है । पूर्वकी अपेक्षा इसमें ऐसी विशेषता है—कि वहां नक्षत्र मण्डलका चन्द्रभोग मात्र विवक्षित हुआ है, उक्त लक्षणवाला चन्द्र संवत्सरही यहां चन्द्र शब्दसे विवक्षित हुआ है । परन्तु उसकी अपेक्षा यहां ऐसी विशेषता है, कि वहां पर युगकी

તસરના ૩૮૩૪૪૬૨ દિવસ થાય છે. આ ચન્દ્રાદિક પાંચ સંવત્સરોનો એક યુગ બને છે. અભિવદ્ધિત સંવત્સરમાં એક અધિક માસ હોય છે. યુગ સંવત્સરનું પ્રતિપાદન કરતી ગાથા અન્યત્ર આ પ્રમાણે કહી છે—

“ चंदो चंदो अभिवद्धिभो य ” इत्यादि.

તથા પ્રમાણ સંવત્સર પાંચ પ્રકારનું કહ્યું છે—(૧) નક્ષત્ર, (૨) ચન્દ્ર, (૩) ઋતુ, (૪) આદિત્ય અને (૫) અભિવદ્ધિત. પૂર્વોક્ત લક્ષણવાળું નક્ષત્ર સંવત્સર જ અહીં નક્ષત્ર પદથી ગૃહીત થયું છે. અહીં પૂર્વની અપેક્ષાએ એટલી જ વિશેષતા છે કે ત્યાં નક્ષત્રમણડાના ચન્દ્રભોગની જ માત્ર વિવક્ષા કરવામાં આવી છે, અને અહીં દિન અને દિનનો ભાગ આદિ પ્રમાણ વિવક્ષિત થયેલ છે. ઉપર્યુક્ત લક્ષણવાળું ચન્દ્ર સંવત્સર જ અહીં ચન્દ્ર શબ્દ વડે વિવક્ષિત થયું છે. પરન્તુ તે કથન કરતાં અહીં એટલી જ વિશેષતા છે કે

तु प्रमाणं विवक्षितमिति । तथा-ऋतुः=ऋतुसंवत्सरः ऋतवो लोक-
प्रसिद्धा वसन्तादयः, तत्प्रधानः संवत्सर इत्यर्थः । अयं च सावनमासकर्ममास-
पर्यायैः द्वादशभिर्ऋतुमासैर्निष्पद्यते । एकैकस्मिन् ऋतुमासे त्रिंशद्द्वोरात्रा (३०)
भवन्ति । एकस्मिन् ऋतुसंवत्सरे तु पष्टयधिकशतत्रय प्रमाणा अहोरात्रा (३६०)
भवन्तीति । तथा-आदित्यः=आदित्य संवत्सरः अयं च द्वादशभिरादित्यमासै-
र्निष्पद्यते । एकस्मिन्नादित्यमासे तु सार्द्धत्रिंशद्दिनानि (३० १-२)
भवन्ति । एकस्मिन्नादित्य-संवत्सरे पट्पष्टयधिकशतत्रयप्रमाणानि (३६६)
दिनानि भवन्तीति ४। अभिवर्द्धित उक्तलक्षण एव । ५। नक्षत्रादि भेदैरुक्तो-
ऽयमेव प्रमाणसंवत्सरो लक्षणमाधान्येन यदा निर्दिश्यते तदा लक्षणसंवत्सरो
भवति । अयं लक्षणसंवत्सरोऽपि चन्द्रादिभेदेन पञ्चविधो भवति ।

अवयवता मात्र विवक्षित हुई है, और यहां उसका प्रमाण विवक्षित
हुआ है । वसन्त आदिक ऋतुओंकी प्रधानतावाला जो संवत्सर है,
वह ऋतुसंवत्सर है । यह संवत्सर सावन मास कर्ममास पर्यायोंवाले
१२ ऋतुमासोंसे निष्पन्न होता है । एक २ ऋतुमासमें तीस अहोरात्र होते
हैं । आदित्य संवत्सर—यह १२ आदित्य मासों द्वारा निष्पन्न होता है,
एक आदित्य मासमें ३० १/२ दिन होते हैं । एक आदित्य संवत्सरमें ३६६
दिन होते हैं । अभिवर्द्धित—इसको लक्षण कह दिया गया है । नक्षत्र
आदिके भेदोंसे कहा गया यही प्रधान संवत्सर लक्षणोंकी प्रधानतासे
जब निर्दिष्ट होना है, तब लक्षण संवत्सर होता है । यह लक्षणसंव-

त्यां युगनी अवयवतानी च विवक्षा यथं छे अने अडी तेनुं प्रमाणु विवक्षित
थयुं छे, वसंत आदि ऋतुयोनी प्रधानतावाणुं जे संवत्सर छे तेने ऋतु-
संवत्सर कडे छे, ते संवत्सर श्रावणुमास आदि १२ मासोनुं अने छे ते
प्रत्येक ऋतुमासमां ३० दिवस अने ३० रात्रि डोय छे, आ रीते अेक ऋतु-
संवत्सरना ३६० दिनरात थाय छे.

आदित्य संवत्सर—ते पार आदित्य (सूर्य) मासोनुं अने छे,
३० १/२ दिवसने अेक आदित्यमास अने ३६६ दिवसनुं अेक आदित्य
संवत्सर थाय छे.

अभिवर्द्धित संवत्सरनुं रवइय आगण प्रकट यथं युक्तयुं छे, नक्षत्र
आदिकेना लेहोनी अपेक्षाअे प्रतिपादित प्रमाणु संवत्सरनी ज्यारे लक्षणेनी
प्रधानतापूर्वक निर्देश थाय छे, त्यारे तेने लक्षणु संवत्सर कडे छे ते लक्षणु

પશ્ચવિધત્વમેવાહ— ' તથા ' ઇત્યાદિના । તત્ર પ્રથમં નક્ષત્રસંવત્સરમાહ—
 ' સમગં ' ઇત્યાદિના । નક્ષત્રાણિ=કૃત્તિકાદોનિ સમક્રં=સમતયા યોગ=કાર્ત્તિકી-
 પૌર્ણમાસ્યાદિતિથિના સહ સંવન્ધં યોજયન્તિ=કુર્વન્તિ । અયં માત્રઃ—યાનિ નક્ષ-
 ત્રાણિ યાસુ તિથિષુ ઉત્સર્ગતો ભવન્તિ તાનિ તાસ્વેવ યત્ર ભવન્તિ । તત્ર—જ્યેષ્ઠઃ
 શ્રાવણો માર્ગશીર્ષશ્ચેતિ ત્રયોમાસાસ્તત્તન્નામ્ના નો સમાગન્છન્તિ યથા જ્યેષ્ઠો
 માસો મૂલનક્ષત્રેણ, શ્રાવણો ધનિષ્ઠાનક્ષત્રેણ, માર્ગશીર્ષશ્ચ આર્દ્રાનક્ષત્રેણ સમાગ-
 ન્છતિ, શેષા માસાસ્તત્તન્નક્ષત્ર નામાનોભવન્તિ યથા કૃત્તિકાભિઃ કાર્ત્તિકો માસઃ,
 પુષ્યેણ પૌષઃ, ઇત્યાદિ ।

ત્સર ઓ ચન્દ્ર આદિકે એવસે પાંચ પ્રકારકા હોતા હૈ । જો હસ પ્રકા
 રસે હૈ—નક્ષત્ર ૧ ચન્દ્ર ઇત્યાદિ હનમેં અથ પહિલે સૂત્રકાર નક્ષત્ર સંવ-
 ત્સરકા કથન કરતે હૈ—“ સમગં ” ઇત્યાદિ—કૃત્તિકાદિ નક્ષત્ર સમ-
 તાસે કાર્ત્તિકી પૌર્ણમાસી આદિ તિથિકે સાથ જિસ્મમેં સ્મ્પન્ધ કરતે
 હૈ વહ નક્ષત્ર સંવત્સર હૈ, આવ યહ હૈ કિ જો નક્ષત્ર ત્રિન તિથિયોમેં
 ઉત્સર્ગસે સામાન્ય રુપસે હોતે હૈ વે નક્ષત્ર ડન્હીં તિથિયોમેં જર્હા હોતે
 હૈ જૈસે—જેઠ, શ્રાવણ, માર્ગશીર્ષ યે ત્રીન માસ ડન ૨ નક્ષત્રોંકે નામસે
 નહીં આતે હૈ ક્યોંકિ જ્યેષ્ઠ માસ મૂલ નક્ષત્રકે સાથ શ્રાવણમાસ ઘ-
 નિષ્ઠા નક્ષત્રકે સાથ ઓર માર્ગશીર્ષ આર્દ્રા નક્ષત્રકે સાથ આતા હૈ
 શેષ માસ ડન ૨ નક્ષત્રોંકે નામવાલે હોતે હૈ જૈસે કૃત્તિકાસે કાર્ત્તિક
 માસ પુષ્ય નક્ષત્રસે પૌષ માસ ઇત્યાદિ કહા ઓ હૈ—

સંવત્સર પશુ ચન્દ્ર આદિના ભેદોની અપેક્ષાએ પાંચ પ્રકારનું કહ્યું છે. જે
 પાંચ પ્રકારે નીચે પ્રમાણે છે—નક્ષત્ર, ચન્દ્ર ઇત્યાદિ. તે પાંચ પ્રકારોમાંના
 નક્ષત્ર સંવત્સર નામના પહેલા પ્રકારનું સૂત્રકાર હવે કથન કરે છે. “સમગં” ઇત્યાદિ.

કૃત્તિકાદિ નક્ષત્ર સમાનતાપૂર્વક, કાર્ત્તિકી પૂર્ણિમા આદિ તિથિની સાથે
 જેમાં સંબંધ કરે છે, તેનું નામ નક્ષત્ર સંવત્સર છે આ કથનનો ભાગ્યર્થ એ
 છે કે જે નક્ષત્રો જે તિથિઓમાં સામાન્ય રૂપે હોય છે તે નક્ષત્રો જે તિથિ-
 ઓમાં સામાન્ય રૂપે હોય છે, તે નક્ષત્રો એ જ તિથિઓમાં જ્યાં હોય છે,
 જેમકે જેઠ, શ્રાવણ, માર્ગશીર્ષ (માગશર) આ ત્રણ માસનાં નામ તે તે
 નક્ષત્રોના નામ ઉપરથી પડયા નથી, કારણ કે જેઠ માસ મૂલનક્ષત્ર સાથે,
 શ્રાવણ માસ ધનિષ્ઠા નક્ષત્રની સાથે અને માગશર માસ આર્દ્રા નક્ષત્રની સાથે
 આવે છે. બાકીના મહિનાઓ તે તે નક્ષત્રોના નામવાળા હોય છે. જેમકે
 કૃત્તિકા પરથી કારતક માસ, પુષ્ય નક્ષત્ર પરથી પૌષ માસ, ઇત્યાદિ નામો
 નક્ષત્ર પરથી જ પડયાં છે. કહ્યું પણ છે કે:

उक्तं च—“ जेट्टो वच्चइ मूलेणं सावणो धणिट्ठाहिं ।

अहासु य मग्गसिरो सेसा नक्खत्तनामिया मासा ॥ १ ॥ ”

छाया—उयेष्टो व्रजति मूलेन श्रावणो धनिष्ठाभिः ।

आर्द्रासु च मार्गशीर्षः, शेषा नक्षत्र नामानो मासाः ॥१॥ इति ।

तथा—यत्र समकं=साम्येनैव ऋतवः परिणमन्ते न विषमतया । अर्थात्—
कार्तिक्या अनन्तरं हेमन्तऋतुः, पौष्या अनन्तरं शिशिरऋतुरित्येवं साम्येनैव
ऋतवः परिणतिं गच्छन्तीति । तथा—यो न अत्युष्णः न चातिशीतः—अर्थात्
समशीतोष्णो भवति तथा—बहूदकः—बहून्युदकानि यास्मस्तथाभूतश्च भवति, स
लक्षणतः नक्षत्रसंवत्सरो भवतीति । नक्षत्रचारलक्षणलक्षितत्वादयं नक्षत्रसंवत्सरो
बोध्यइति १। अथ चन्द्रसंवत्सरे लक्षणतो निर्दिशति—‘ ससिसगल ’ इत्यादिना ।
शशी=चन्द्रो यत्र सकल पौर्णमासीः—योजयति—सकलपौर्णमासीभिः सह सम्बन्धं

“ जेट्टो वच्चइ, मूलेणं ” इत्यादि—

तथा—जहां छहौं ऋतुएँ समानरूपसे परिणमती हैं, विषम रूपसे
नहीं अर्थात्—कार्तिकीके बाद हेमन्त ऋतु पौषीके बाद शिशिर ऋतु
इस प्रकारकी समानतासेही जहां ऋतुएँ परिणतिको प्राप्त करती हैं,
तथा जो न अतिशीत होता है, और न अति उष्ण होता है, किन्तु
समशीतोष्ण रहता है, तथा जिसमें बहुत पानी होता है, ऐसा वह
प्रमाण संवत्सर नक्षत्र संवत्सर होता है, यह संवत्सर नक्षत्रोंकी गति-
रूप लक्षणोंसे लक्षित होनेके कारण नक्षत्र संवत्सर कहा गया है, ऐसा
जानना चाहिये १ चन्द्र संवत्सर—जिस संवत्सरमें चन्द्र सकल पौर्ण-

“ जेट्टो वच्चइ, मूलेणं ” इत्यादि—

तथा—जेमां छये ऋतुओ समान इपे परिणुमे छे—विषम इपे परि-
णमती नथी ओटले के कर्तक पछी हेमन्त ऋतु, पौष पछी शिशिर ऋतु,
आ प्रकारनी समानताथी न न्यां ऋतुओ परिणुमे छे, अने न्यारे अति
ठंडी पणु डोती नथी अने अति गरमी पणु डोती नथी, परन्तु समशीतोष्ण
आओइवा न रहे छे तथा जेमां पूष न वरसाइ वरसे छे ओवुं ते प्रमाण
संवत्सर नक्षत्र संवत्सर इप डोय छे. ते संवत्सर नक्षत्रोनी गति इप लक्ष-
णोथी लक्षित डोवाने कारणे नक्षत्र संवत्सरने नामे ओणभाय छे,
ओम समणवुं लेछे.

चन्द्र संवत्सर—जे संवत्सरमां चन्द्र मधी पूर्णिमाओ साथे संबन्ध
राभे छे तथा विषम आलवाणां नक्षत्रो जेमां डोय छे ओवा संवत्सरने चन्द्र

કરોતિ । તથા-યો વિપમચારનક્ષત્રઃ-વિપમઃ ચારઃ=ચલનં ચેપાં તાનિ તથાભૂ-
તાનિ નક્ષત્રાણિ યત્ર સ તથાભૂતો ભવતિ । તથા-કટુકઃ=અત્યુષ્ણઃ, અતિ શીતો
વા ભવતિ । તથા-વહુદકશ્ચ ભવતિ । एवंચિધો યઃ સંવત્સરઃ, તં ચન્દ્રમંવત્સર-
માહ-ચન્દ્રચારલક્ષણલક્ષિતત્વાદયં સંવત્સરો લક્ષણતથ્યન્દ્રો વોચ્ય इति ૨। અય
ઋતુસંવત્સર લક્ષણતો નિર્દિગતિ-‘વિસમં’ ઇત્યાદિના । યત્ર પ્રવાલિનઃ=વૃક્ષાઃ
વિપમં=વૈપમ્યેણ પરિણમન્તે=પરિણતા ભવન્તિ-અહુકુરાદ્યુદ્ભેદાવસ્થાં યાન્તિ ।
તથા-અત્યુષ્ણ=અસ્વકાલેડપિ પુષ્પફલં પ્રયન્છન્તિ=સ્વભાવતઃ ચત્રાદિષુ પુષ્પફલો-
દ્ભમશીલા અપિ રસાલવૃક્ષા માઘાદિષુ પુષ્પાદિશાલિનો ભવન્તિ । તથા-યત્ર મેઘો
વર્ષ=વૃષ્ટિ ન સમ્યગ્ વર્ષતિ, एवंભૂતો યઃ સંવત્સરસ્તં તીર્થઋત્વમ્ભૂતિભિલ્લક્ષણતઃ
કાર્યમં સંવત્સરમ્ આહ । અયં કામણ સંવત્સર એવ ઋતુમંવત્સરઃ સાવનસંવત્સ-

માસિયોંકે સાથ અમ્પ્રબ્ધ કરના હૈ, તથા વિષમ ચાલવાલે નક્ષત્રજિમમે
હોતે હૈ, એમા જો સંવત્સર હોતા હૈ, તથા જો કટુક અત્યુષ્ણ હોતા હૈ,
અથવા અતિશીત હોતા હૈ, તથા વહુદક-વહુત જલવાલા હોતા હૈ, એમા
જો સંવત્સર હોતા હૈ, વહુ ચન્દ્ર સંવત્સર ચન્દ્રકી ગતિરૂપ લક્ષણોંસે
લક્ષિત હોલેકે કારણ લક્ષણકી અપેક્ષા ચન્દ્ર સંવત્સર
કહા ગયા હૈ । ઋતુ સંવત્સર - જિસમે પ્રવાલી
વૃક્ષ વિપમતા રૂપલે પરિણત હોતે હૈ-અહુકુરાદિકોંકે ઉદ્ભેદ હોને રૂપ
અવસ્થાકો પ્રાપ્ત કરતે હૈ તથા-અકાલમે યી જો પુષ્પ ફલકો લેતે હૈ
જેસે સ્વભાવસે ચૈત્ર આદિમે પુષ્પફલોદ્ભમશીલ ધી રસાલવૃક્ષ-આમ્ર-
વૃક્ષ યાઘ આદિ ઘહીનોંમે પ્રષ્પાદિ લેનેવાલે હો જાતે હૈ, તથા જિસમે
વૃષ્ટિ અચ્છી તરસે નહીં હોતી હૈ, એમા જો સંવત્સર હૈ, વહુ ઋતુ-
સંવત્સર હૈ, હસ ઋતુ સંવત્સરકા નામહી કામણ સંવત્સર હૈ, યહ
કામણ સંવત્સરહી ઋતુ સવત્સર ઓર સાવન સંવત્સર નામાન્તરવાલા

સંવત્સર કહે છે. તે સંવત્સરમાં અતિશય ઠંડી અથવા અતિશય ગરમી પડે
છે અને ભારે વરસાદ પડે છે. આ સંવત્સર ચન્દ્રની ગતિરૂપ લક્ષણોથી લક્ષિત
હોવાને કારણે તેને લક્ષણુની અપેક્ષાએ ચન્દ્ર સંવત્સર કહે છે.

ઋતુ સંવત્સર—એમાં વૃક્ષ વિપમ રૂપે પરિણમન પામે છે અંકુરાદિને।
ઉદ્ભેદ થવા રૂપ દશાને પ્રાપ્ત કરે છે, તથા અકાળે પશુ જે કૃલક્ષણ લે છે,
એમકે ચૈત્ર માસમાં પુષ્પ અને શ્લેષ્મશીલ રસાળ આમ્રવૃક્ષ મહા આદિ
માસોમાં કૃલક્ષણ લેતાં થઈ જાય છે, તથા જે સંવત્સરમાં સારી વૃષ્ટિ થતી
નથી, તે સંવત્સરને ઋતુ સંવત્સર કહે છે. આ ઋતુ સંવત્સરને જ કામણ
સંવત્સર કહે છે. અથવા આ કામણ સંવત્સરના જ ઋતુસંવત્સર અને સાવન
સંવત્સર રૂપ બીજાં નામે કહ્યાં છે.

रश्मि प्रोच्यते इति ३। आदित्यसंवत्सर लक्षणतो निर्दिशति—‘पुढविदगाणं’ इत्यादि । यत्र संवत्सरे आदित्यः=सूर्यः पृथिव्युदकानां रसं=माधुर्यस्निग्धतादिलक्षणं पृथिवीजलसम्बन्धिरसं पुष्पफलेभ्यो ददाति=मयच्छति । तथा—अल्पेनापि वर्षेण=अल्पवृष्ट्याऽपि तथात्रिधवर्षाभावेऽपि सस्यं=शाल्यादिकम् अन्नं सम्यक्=याथातथ्येन निष्पद्यते=जायते । सोऽयं संवत्सरो लक्षणत आदित्यसंवत्सर उच्यते इति ४। अथ अभिवर्द्धितसंवत्सरं लक्षणतो निर्दिशति—‘आदिच्च तेयतविया’ इत्यादिना । यत्र संवत्सरे आदित्यतेजस्तापिताः=सूर्यकिरणैः संतापिताः क्षणलवमुहूर्त्तदिवसाः—क्षणः=कालविशेषः लवः=एकोनपञ्चाशदुच्छ्वासप्रमाणः, मप्तसप्तति लवप्रमाणः दिवसः=अहोरात्रः, एषां द्वन्द्वे ते तथाभूताः—क्षणलवमुहूर्त्तदिवसाः ऋतवश्च परिणमन्ति । तथा — यत्र सूर्यकिरणतापितास्त एव क्षणलवमुहूर्त्तदिवसाः ऋतवश्च रेणुभिः = वायुत्क्षिप्तरेणुभिः

कहा गया है, ‘पुढविदगाणं’ जिस संवत्सरमें सूर्य पृथिवी एवं उदकके रसको पृथिवी सम्बन्धी रसको एवं उदक सम्बन्धी रसको—मधुरता स्निग्धताको—पुष्प फलोंके लिये देता है, तथा अल्प भी वृष्टिसे जिस संवत्सरमें शालि आदि अन्न अच्छी तरहसे निष्पन्न होता है, ऐसा यह संवत्सर इन लक्षणोंकी अपेक्षासे आदित्य संवत्सर कहा गया है “आदिच्च तेयतविया” इत्यादि ।

जिस संवत्सरमें सूर्यके तेजसे किरणोंसे तापितकाल—विशेष रूप क्षण मुहूर्त्त ४०, उच्छ्वास प्रमाण लव एवं अहोरात्ररूप दिवस और ऋतुएँ, दो दो मास प्रमाणवाली होती हैं तथा—सूर्यकी किरणोंसे तापित हुए वे ही क्षण लव मुहूर्त्त और दिवस एवं ऋतुएँ वायुसे उड़ाई गई धूलि द्वारा स्थलोंको पूरित कर देती हैं,

आदित्य संवत्सर—“पुढविदगाणं” इत्यादि—ने संवत्सरमां सूर्य पृथ्वी अने उदकना रसने—पृथ्वीसंभंधी रसने अने पाणी संभंधी रसने अष्टौ के पुष्प अने इंदोने मधुरता अने स्निग्धता अर्पे छे, तथा ने संवत्सरमां अल्प वृष्टि थवा छता पद्य डगर आदि धान्ये विशेष प्रमाणमां उत्पन्न थाय छे, ते संवत्सरने आदित्य संवत्सर छडे छे

“आदिच्च तेयतविया” इत्यादि—

ने संवत्सरमा सूर्यना तेजथी (किरणो वडे) क्षणविशेष रूप क्षण, मुहूर्त्त ४० उच्छ्वास प्रमाण लव, अहोरात्र रूप दिन रात, तथा ऋतु मास प्रमाणवाणी अनुभवा नभ थाय छे अने सूर्यना किरणोथी तप्त थयेती अने ऋतु, लव, मुहूर्त्त दिवस अने अनुभवा पवन वडे उडेती धूलि वडे स्थाने लरी देछे, ते संवत्सरनुं नाम अद्वि-

स्थलानि पूर्यन्ति, तं संवत्सरम् अभिवर्द्धितम् आह तीर्थकृतप्रभृतिरिति हे शिष्य !
त्वं जानीहि । यद्यपि सूर्यतेजसा पृथिव्यादयस्ताप्यन्ते तथापि उपचारात् क्षणा-
दयोऽपि तथोच्यन्ते, इति ॥ सू० २० ॥

अनन्तरसूत्रे संवत्सर उक्तः । संवत्सरश्च कालः, काले व्यतीते तु शरीरणां
शरीरान्निर्गमो भवतीत्यतस्तन्मार्गं निरूपयति—

मूलम्—पञ्चविधे जीवस्य णिज्जाणमग्गो पणणत्ते, तं जहा-
पाएहिं १ ऊरूहिं २ उरेणं ३ सिरेणं ४ सव्वंगेहिं ५। पाएहिं
णिज्जाणमाणे निरयग्गामी भवइ १। ऊरूहिं णिज्जाणमाणे तिरि-
यग्गामी भवइ २। उरेणं णिज्जाणमाणे मणुयग्गामी भवइ ३।
सिरेणं णिज्जाणमाणे देवग्गामी भवइ ४, सव्वंगेहिं णिज्जाणमाणे
सिद्धिगइपज्जवसाणे पणणत्ते ५ ॥ सू० २१ ॥

छाया—पञ्चविधो जीवस्य निर्याणमार्गः प्रज्ञप्तः तद्यथा—पादाभ्याम्, १
ऊरुभ्याम् २, उरसा ३, शिरसा ४, सर्वाङ्गैः ५। पादाभ्यां निर्यान् निरयगामी
भवति । ऊरुभ्यां निर्यान् तिर्यग्गामी भवति २। उरसा निर्यान् मनुजगामी
भवति ३। शिरसा निर्यान् देवगामी भवति ४। सर्वाङ्गैः निर्यान् सिद्धिगतिपर्य-
वसानः प्रज्ञप्तः ॥ सू० २१ ॥

भर देती हैं, उस संवत्सरका नाम अभिवर्द्धित संवत्सर है । ऐसा
तीर्थंकर आदिकोंने कहा है, सो हे शिष्य ! तुम इस कथन पर विश्वास
करो । यद्यपि सूर्यकी किरणोंसे पृथिवी आदि तपाये जाते हैं क्षणादिक
नहीं परन्तु उपचारसे वे भी तपाये जाते हैं, ऐसा कह दिया जाता है,
इसीलिये क्षणादिक तपाये जाते हैं ऐसा कह दिया गया है ॥ सू० २० ॥

इस पूर्वोक्तमें संवत्सर कहा गया है, यह संवत्सर कालरूप होता
है । कालके व्यतीत होने पर शरीरधारियोंका शरीरसे निर्गम होता है,

द्धित संवत्सर छे, जेपुं तीर्थंकरो जे कह्युं छे, तो हे शिष्य ! तु आ कथनने
विश्वासपूर्वक सायुं मानी दे, जे के सूर्यना किरणो वडे पृथ्वी आदिने तपा-
ववाभां आवतां नथी, छतां पणु अहीं औपचारिक रीते जेपुं कडेवासां आण्युं
छे के क्षण, लव आदि सूर्यना किरणो वडे तपे छे, ॥ सू० २० ॥

आगला सूत्रभां संवत्सरनी प्रज्ञपणु करवामां आवी, ते संवत्सर काण
इप डेय छे, आयुकाण पूरो थतां शरीरधारीज्जेनो आत्मा शरीरभांथी नीकणी

टीका—‘पंचविहे’ इत्यादि—

जीवस्य निर्याणमार्गः—निर्याणं—मृत्युसमये शरीरिणः शरीरान्निस्सरणं, तस्य मार्गः पादादिरूपः पञ्चविधः कथितः । पञ्चविधत्वमेवाह—तद्यथा—पादाभ्याम् इत्यादि । जीवः शरीरात् पादादिभिः पञ्चभिर्मार्गैः परल्लोके गच्छतीति भावः । तत्र जीवो येन मार्गेण यत्र गच्छति तत् प्राह—‘पाएहि’ इत्यादि । पादाभ्यां=चरणरूपमार्गेण निर्याणं=शरीराद् निर्गच्छन् जीवो निरयगामी भवति १। एवम्—ऊरुभ्यां—जङ्घाभ्यां कटेरधोजान्वोरूपरिभागरूपाभ्यां तिर्यग्गामी २। उरसा—वक्षसा मनुजगामी ३। शिरसा देवगामी च भवति ४। तथा—सर्वाङ्गैः=पादादिभिः

अतः अब सूत्रकार उक्त मार्गाका निरूपण करते हैं—

“पंचविहे जीवस्स णिज्जाणमग्गे पणत्ते” इत्यादि सूत्र २१॥

टीकार्थ—जीवका निर्याण मार्ग पांच प्रकारका कहा गयाहै, जैसे—दो चरणोंसे १ दो जंघोंसे २ छातीसे ३ शिरसे ४ और सर्वाङ्गसे ५ मृत्युके समय जीवका जो शरीरसे बाहर निकलना होता है, उसका नाम निर्याण है, इस निर्याणका चरणादि रूप मार्ग पांच प्रकारका कहा गया है, अर्थात् जीव शरीरसे चरण आदि पांच मार्गोंसे होकर निकल कर परलोकमें जाताहै, यही बात यहां सूत्रकारने प्रकट कीहै, जो जीवशरीर से चरणरूप मार्गसे होकर निकलताहै, वह निरयगामी नरकगामी होता है १ जो जीव दो जङ्घाओंसे होकर निकलता है, वह तिर्यग्गामी होता है २। जो जीव छातीसे होकर निकलता है, वह मनुजगामी होता है, जो जीव शिरसे होकर निकलता है, वह देवगामी होता है, और चरणादि

न्य छे. ६३ सूत्रकार एवना निर्याणमार्गनी पंच विधातातुं निश्चय करे छे.

“पंचविहे जीवस्स णिज्जाणमग्गे पणत्ते” इत्यादि—

टीकार्थ—एवने निर्याणमार्ग पांच प्रकारने कह्यो छे जे पांच प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(१) जे चरणे द्वारा, (२) जे जंघे द्वारा, (३) छातीमांथी, (४) भस्तकमांथी अने (५) सर्वांगमांथी.

मृत्यु समये शरीरमांथी एवने जे षडार नीकणवानु थाय छे, तेतुं नाम निर्याण छे. ते निर्याणना चरणादि ३५ पांच मार्ग जाताव्या छे. सूत्रकारे आ सूत्र द्वारा जेव वात प्रकट करी छे के चरणादि पांच मार्गेंथी एव शरीर मांथी नीकणी न्य छे. जे एव शरीरमाथी चरणरूप मार्गें थधने नीकणी न्य छे ते निरयगामी अने छे जे न वाओ ३५ मार्गेंथी नीकणतो एव तिर्यंगेमां उत्पन्न थाय छे, छाती ३५ मार्गेंथी नीकणतो एव मनुष्य गतिमा उत्पन्न थाय छे. भस्तकरूप मार्गेंथी निकणतो एव देवगतिमां

સકલૈરજ્ઞૈઃ નિર્યાન=શરીરાદ્ નિર્ગચ્છન્ જીવઃ સિદ્ધિગતિપર્યવસાનઃ-ગતેઃ પર્યવ-
સાનં=પર્યન્તો ગતિપર્યવસાનં, સિદ્ધો ગતિપર્યવસાનં યસ્ય સઃ-સિદ્ધિપદગામી
પ્રજ્ઞસઃ=પ્રરૂપિતસ્તીર્થકૃદ્ધિરિતિ ॥ સૂ. ૨૧ ॥

શરીરિણઃ શરીરાન્નિક્રમણમાયુપશ્ચેદે ભવતીતિ છેદનં પશ્ચવિધત્વેનાહ—

મૂલમ્—પંચવિદ્દે છેયણે પળ્લન્તે, તં જહા—ઉપ્પાયછેયણે ૧

વિયછેયણે ૨ વંધચ્છેયણે ૩ પાસચ્છેયણે ૪ દોધારચ્છેયણે ૫

॥ સૂ. ૨૨ ॥

છાયા—પશ્ચવિધં છેદનં પ્રજ્ઞસં, તદ્વથા=ઉત્પાદચ્છેદનં ૧, વ્યવચ્છેદનં ૨,
વન્ધચ્છેદનં ૩ પ્રદેશચ્છેદનં ૪ દ્વિધાકારચ્છેદનમ્ ૫ ॥ સૂ. ૨૨ ॥

ટીકા—‘ પંચવિદ્દે ’ ઇત્યાદિ—

છેદનં=વિભજનં પશ્ચવિધં પ્રજ્ઞસમ્, પશ્ચવિધત્વમેવાહ-તદ્વથા—ઉત્પાદચ્છેદનમ્—
ઉત્પાદો—દેવત્વાદિ પર્યાયાન્તરસ્ય ઉત્પત્તિઃ, તેન છેદનં=જીવાદિદ્રવ્યસ્ય વિભજ-

રૂપ સમસ્ત અઙ્ગોસે હોકર નિકલના હૈ, વહ સિદ્ધિપદ ગામી હોતા હૈ ।
એસા તીર્થ કરોંકા કથન હૈ ॥ સૂ. ૨૧ ॥

જીવકા શરીરસે નિકલના આયુકે છેદ હોને પર હોતા હૈ, અતઃ અય
સૂત્રકાર છેદમેં પંચ પ્રકારતાકા કથન કરતે હૈ—

“પંચવિદ્દે છેયણે પળ્લન્તે” ઇત્યાદિ સૂત્ર ૨૨ ॥

છેદન પાંચ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, જૈસે—ઉત્પાદચ્છેદન ૧ વ્યવ-
ચ્છેદન ૨ વન્ધચ્છેદન ૩ પ્રદેશચ્છેદન ૪ ઓર દ્વિધાકારચ્છેદન ૫

ટીકાર્થ—વિભજનકા નામ છેદનહૈ, યહ છેદન ઉત્પાદ છેદન આદિકે ભેદસે
પાંચ પ્રકારકા જો કહા ગયા હૈ, ઉસકા તાત્પર્ય એસા હૈ, કિ જો છેદન-

ઉત્પન્ન થાય છે. જે જીવ ચરણાદિ રૂપ સમસ્ત અંગોમાંથી નીકળે છે, તે
સિદ્ધિગતિમાં ગમન કરે છે, એવું તીર્થ કર લગવાનો કથન છે. ॥ સૂ. ૨૧ ॥

ન્યારે આયુના અધનો છેદ થાય છે, તૂટે છે, ત્યારે જે જીવ શરીરમાંથી
નીકળે છે. તેથી હવે સૂત્રકાર છેદના પાંચ પ્રકારોની પ્રદર્શના કરે છે.

“ પંચવિદ્દે છેયણે પળ્લન્તે ” ઇત્યાદિ—

વિભજન અથવા તૂટવા રૂપ ક્રિયાનું નામ છેદન છે. તેના નીચે પ્રમાણે
પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) ઉત્પાદ છેદન, (૨) વ્યવચ્છેદન, (૩) વન્ધચ્છેદન,
(૪) પ્રદેશચ્છેદન અને (૫) દ્વિધારક છેદન.

ટીકાર્થ—જે છેદન રૂપ વિભજન દેવત્વ આદિ અન્ય પર્યાયની ઉત્પત્તિને લીધે
થાય છે, તેનું નામ ઉત્પાદચ્છેદન છે આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે પ્રત્યેક

नम् १। व्ययच्छेदनं—व्ययः=मानुषत्वादि—पर्यायस्य विनाशः, तेन छेदनं=जीवादिद्रव्यस्य विभजनम् २। बन्धच्छेदनं—बन्धनं बन्धः=जीवापेक्षया कर्म, स्कन्धापेक्षया सम्बन्धश्च, तस्य छेदनं=विनाशः ३। प्रदेशच्छेदनं—तस्यैव जीवादेः प्रदेशतः=निर्विभागावयवतो बुद्ध्या छेदनं=विभागः ४। तथा—द्विधाकारच्छेदनम्—द्विधाकरणं—द्विधाकारः=जीवादेरेव द्रव्यस्य भागद्वयकरणं, तद्रूपं छेदनम् । उपलक्षणं चैतत्त्रिधाकारच्छेदनादीनामपि १।

अथवा—उत्पादस्य=उत्पत्तेः छेदनं=विरह उत्पादच्छेदनं, यथा नरकगतौ द्वादश मुहूर्त्ताः १। तथा—व्ययच्छेदनम्—व्ययस्य=उद्वर्तनायाः छेदनं विरहः यथा—नरकगतौ द्वादश मुहूर्त्ताः २। बन्धच्छेदनं=बन्धनविरहः, अयम्—उपशान्तमोहस्य सप्तविध कर्मबन्धनापेक्षया भवति ३। प्रदेशच्छेदनम्=प्रदेशविरहः—अयं विसंयोजितारूप

विभजन देवत्वादि पर्यायान्तरकी उत्पत्तिसे होता है, वह उत्पादच्छेदन है, तात्पर्य ऐसा है कि प्रत्येक जीवादि द्रव्य परिणामन स्वभावरूप है, अतः उसमें पूर्व पर्यायका विनाश और उत्तर पर्यायका उत्पाद होता रहता है, जब उत्तर पर्यायकी विवक्षित किसी भी देवदत्तत्वादि रूप पर्यायकी उत्पत्ति होती है, उस समय जीवादि द्रव्यका भी विभाजन होता है, क्योंकि उस पर्यायके उत्पादमें उस पूर्व पर्यायवाले जीवादि द्रव्यका विभजन हो जाता है, इसी तरह जब पूर्व पर्यायका मानुषत्वादि रूप पर्यायका विनाशरूप व्यय होता है, उस समय उस व्ययसे जीवादि द्रव्यका विभाजन होता है २। जीवकी अपेक्षासे कर्मका बन्धन बन्ध है, और स्कन्धकी अपेक्षासे सम्बन्धका नाम बन्ध है, इस बन्धका जो विनाश है, वह बन्धच्छेदन है, जीवादिके प्रदेशसे निर्विभाग अव-

त्वादि द्रव्य परिणामन स्वभाववाणु होय छे, तेथी तेनी पूर्व पर्यायने विनाश अने उत्तर पर्यायने उत्पाद थतो न रहे छे. न्यारे उत्तर पर्यायनी (देव तिर्य्य आदि रूप पर्यायनी) उत्पत्ति थाय छे, त्यारे अत्रादि द्रव्यतुं पणु विलज्जन थाय छे, कारणु के ते पर्यायना उत्पादमां ते पूर्व पर्यायवाणा अत्रादि द्रव्यतुं विलज्जन थथ नय छे. आ रीते न्यारे मानुषत्व आदि रूप पूर्वपर्यायने विनाश रूप व्यय थाय छे, त्यारे ते व्ययने लीधे अत्रादि द्रव्यतुं विलज्जन थाय छे.

अवनी अपेक्षाये कर्मतुं न्ने बन्धन छे तेतुं नाम बन्ध छे. अने स्कन्धनी अपेक्षाये न्ने पुद्गलोने सणध छे तेतुं नाम पणु बन्ध छे. आ बन्धने विनाश थवे तेतुं नाम बन्धच्छेदन छे. अत्रादिना प्रदेशोनी अपेक्षाये

નામ્ અનન્તાનુબન્ધ્યાદિ-કર્મપ્રદેશાનામ્ ૪। તથા-દ્વિધારચ્છેદનમ્-દ્વે ધારે યસ્ય તદ્ દ્વિધારં, તચ્ચ તચ્છેદનં ચ ૫। ઉપલક્ષણત્વાત્-ત્રિધારચ્છેદનાદિકમપિ ગ્રાહ્યમ્ । તચ્ચ ક્ષુરચ્છેદનચક્રાદિકમ્ । છેદનશબ્દસામ્યાદિદમત્રોક્તમિતિ ॥ સૂ. ૨૨ ॥

યવસે બુદ્ધિ દ્વારા છેદનરૂપ વિભાગ હૈ, વહ પ્રદેશચ્છેદન હૈ ૪। જીવાદિ વ્રથકાહી વિભાગ દ્વયરૂપ છેદન કરના યહ દ્વિધાચ્છેદન હૈ, યહ ત્રિધા-કારક છેદનાદિકોંકા ખી ઉપલક્ષણ હૈ । અથવા-ઉત્પત્તિરૂપ ઉત્પાદકા જો છેદન વિરહ હૈ, વહ ઉત્પાદચ્છેદન હૈ, જૈસે-નરકગતિમ્ ૧૨ મુહૂર્ત્ત ૧ તથા વ્યયરૂપ ઉદ્ધર્તનકા જો છેદન હૈ, વહ વ્યયચ્છેદન હૈ, જૈસે નરક-ગતિમ્ ૧૨ મુહૂર્ત્ત બન્ધનકા જો વિરહ હૈ, વહ બન્ધચ્છેદન હૈ, યહ ઉપ-શાન્ત મોહવાલે જીવકે સાત પ્રકારકે કર્મબન્ધકી અપેક્ષાસે હોના હૈ, ૩। પ્રદેશ વિરહકા નામ પ્રદેશચ્છેદન હૈ, યહ વિસંયોજિત અનન્તાનુ-બન્ધ આદિ કર્મ પ્રદેશોંકા હોના હૈ તથા દ્વિધારચ્છેદન, દો હૈ ધારા જિસકી વહ દ્વિધાર હૈ એસા દ્વિધારરૂપ જો છેદન હૈ, વહ દ્વિધારચ્છેદન હૈ ૫। ઉપલક્ષણ હોનેસે ઇસ પદ દ્વારા ત્રિધારચ્છેદન આદિકા ખી ગ્રહણ કર લેના ચાહિયે એસા વહ દ્વિધારચ્છેદન ક્ષુર ચ્છેદન ચક્ર આદિ રૂપ હોના હૈ, છેદન ધર્મકી સમાનતાસે યહ યહાં કહા હૈ ॥ સૂ. ૨૨ ॥

નિર્વિભાગ અવયવની અપેક્ષાએ બુદ્ધિ દ્વારા છેદન રૂપ જે વિભાગ છે તેનું નામ પ્રદેશચ્છેદન છે. જીવાદિ દ્રવ્યનું જે જે વિભાગ રૂપ છેદન કરવું તેનું નામ દ્વિધારચ્છેદન છે. આ કથન ત્રિવિભાગકારક છેદનનું પણ ઉપલક્ષણ છે.

અથવા—ઉત્પત્તિ રૂપ ઉત્પાદનનું જે છેદન (વિરહ) છે, તે ઉત્પાદ-ચ્છેદન છે. જેમકે નરકગતિમાં ૧૨ મુહૂર્ત્તનો વિરહકાળ હોય છે. વ્યય રૂપ ઉદ્ધર્તનાનું જે છેદન છે, વિરહ છે, તેનું નામ વ્યયચ્છેદન છે જેમકે નરકમાં ૧૨ મુહૂર્ત્ત પ્રમાણુ જે બન્ધનનો વિરહ છે તેનું નામ બન્ધચ્છેદન છે. તે ઉપશાન્ત મોહવાળા જીવના સાત પ્રકારના કર્મબન્ધની અપેક્ષાએ થાય છે.

પ્રદેશ વિરહનું નામ પ્રદેશચ્છેદન છે. તે વિસંયોજિત અનન્તાનુબન્ધી આદિ કર્મપ્રદેશોનું થાય છે. તથા દ્વિધારચ્છેદન જેની બે ધારા છે તેને દ્વિધાર કહે છે એવું જે દ્વિધારરૂપ ચ્છેદન છે તેને દ્વિધારચ્છેદન કહે છે. ઉપલક્ષણની અપેક્ષાએ અહીં ત્રિધારચ્છેદન આદિ પણ ગ્રહણ કરવા જોઈએ એવું તે દ્વિધારચ્છેદન અન્નો, તલવાર, ચક્ર આદિ રૂપ હોય છે. છેદન ધર્મની સમાન-તાને લીધે અહીં તેનું કથન કરવામાં આવ્યું છે. ॥ સૂ. ૨૨ ॥

छेदनाभावे तु आनन्तर्यमेव भवतीतिच्छेदनविपरीतमानन्तर्यमाह—

मूलम्—पंचविहे आणंतरिए पणत्ते, तं जहा—उत्पायणं-
तरिए १, वियणंतरिए २ पएसाणंतरिए ३ समयणंतरिए ४
सामण्णाणंतरिए ५ ॥ सू० २३ ॥

छाया—पञ्चविधम् आनन्तर्यं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—उत्पादानन्तर्यम् १, व्ययानन्तर्यम् २, प्रदेशानन्तर्यम् ३, समयानन्तर्यम् ४, सामान्यानन्तर्यम् ५ ॥ सू० २३ ॥

टीका—‘पंचविहे’ इत्यादि—

आनन्तर्यम्—सातत्यं छेदनभावो विरहाभाव इति यावत्, तच्च पञ्चविधं प्रज्ञप्तम् । पञ्चविधत्त्वमेवाह—तद्यथा—उत्पादानन्तर्यम्—उत्पादस्य=उत्पत्तेः आनन्तर्यं=सातत्यम् । यथा—नरकगतौ जीवानामुत्कर्षतोऽसंख्येयाः समया इति १ । व्ययानन्तर्यम्—व्ययस्य=उद्धर्तनाया आनन्तर्यं=सातत्यम् । यथा—नरकगतौ जीवाना-

छेदनके अभावमें तो आनन्तर्यही होता है, अतः अब सूत्रकार छेदनसे विपरीत आनन्तर्यका कथन करते हैं—

“पंचविहे आणंतरिए पणत्ते” इत्यादि सूत्र २३ ॥

टीकार्थ—आनन्तर्य पांच प्रकारका कहा गया है जैसे—उत्पाद आनन्तर्य १ व्यय आनन्तर्य २ प्रदेशानन्तर्य ३ समयानन्तर्य ४ और सामान्यानन्तर्य ५ उत्पादका निरन्तर होना यह उत्पादानन्तर्य है । आनन्तर्य शब्दका अर्थ यही है कि निरन्तर होना या छेदनका अभाव होना या विरह कालका अभाव होना इस तरह उत्पत्तिका जो सातत्य है, सतत होना है, वह उत्पादानन्तर्य है । जैसे—नरकगतिमें जीवोंकी उत्पत्तिका आनन्तर्य उत्कृष्टसे असंख्यात समयका है । उद्धर्तनाका सातत्य निरन्तर

छेदनना अभावमां तो आनन्तर्यना जे सदभाव रहे छे तेथी डवे सूत्रकार छेदनथी विपरीत स्वरूपवाणा आनन्तर्यनुं निरूपणु करे छे .

“पंचविहे आणंतरिए पणत्ते ” इत्यादि—

टीकार्थ—आनन्तर्य पांच प्रकारनुं कछु छे—(१) उत्पाद आनन्तर्य, (२) प्रदेशानन्तर्य, (३) समयानन्तर्य अने (४) सामान्यानन्तर्य.

निरन्तर उत्पादनुं डोपुं तेनुं नाम उत्पाद आनन्तर्यं छे. आनन्तर्यं अत्रे निरन्तर डोपुं अथवा छेदनना अभाव डोवो अथवा विरहकालना अभाव डोवो आ रीते उत्पत्तिनुं सातत्य (सतत सदभाव) डोपुं तेनुं नाम ज उत्पादानन्तर्यं छे. जेभके नरक गतिमां जेवानी उत्पत्तिनुं आनन्तर्यं वधारेमां वधारे असंख्यात समयनुं छे उद्धर्तानुं निरन्तर सातत्य डोपुं

મુત્કર્ષતૌડસંખ્યેયાઃ સમયા ઇતિ ૨। પ્રદેશાનન્તર્યમ્-નિર્વિભાગાવયવરૂપાણાં પ્રદે-
શાનામ્ આનન્તર્યમ્ ૩। સમયાનન્તર્યમ્-સમયાનામ્ આનન્તર્યમ્ ૪। એતદ્વયં પ્રતી-
તમેવ । તથા-સામાન્યાનન્તર્યમ્-યત્ર ઉત્પાદવ્યયાદિરૂપં વિશેષણં ન વિવક્ષ્યતે,
એવંવિધં યદાનન્તર્યમાત્રં તત્ સામાન્યાનન્તર્યમ્ ૫। અથવા-શ્રામણ્યાનન્તર્યમિતિ-
ચ્છાયા । શ્રામણ્યસ્ય આનન્તર્યમ્=સાતત્યમ્ । એતત્ આકર્ષવિરહેણ વહુજીવાપેક્ષયા
શ્રામણ્યપ્રતિપત્ત્યા વા વોધ્યમ્ । એતત્પુનરઘૌ સમયા ઇતિ ॥ સૂ. ૨૩ ॥

પૂર્વસૂત્રે સમયપ્રદેશાનામ્ આનન્તર્યમુક્તમ્, સમયાઃ પ્રદેશાશ્ચાનન્તા એવ મ્ભવ
ન્તીતિ અનન્તર્ય પશ્ચવિધત્વમાહ--

મૂલમ્-પંચવિહે અર્ણાંતર્ય પળ્ણત્તે, તં જહા-ળામાર્ણાંતર્ય ૧
ઠવળાર્ણાંતર્ય ૨ દ્વાર્ણાંતર્ય ૩ ગળ્ણાર્ણાંતર્ય ૪ પર્ણસાર્ણાંતર્ય ૫।
અહવા પંચવિહે અર્ણાંતર્ય પળ્ણત્તે, તં જહા-એગઓડર્ણાંતર્ય ૧

હોના યહ વ્યયાનન્તર્ય હૈ, જૈસે-નરકગતિમેં જીવોંકા વ્યયાનન્તર્ય
ઉત્કૃષ્ટસે અસંખ્યાત સમયકા હૈ, નિર્વિભાગ અવયવરૂપ પ્રદેશોંકા જો
આનન્તર્ય હૈ વહ પ્રદેશાનન્તર્ય હૈ । સમયોંકા જો આનન્તર્યહૈ, વહ સમ-
યાનન્તર્ય હૈ, પ્રદેશાનાન્તર્ય ઓર સમયાનન્તર્ય વે દો પ્રતીતહી હૈં ।
જિસ આનન્તર્યમેં ઉત્પાદ, વ્યય આદિરૂપ વિશેષણ વિવક્ષિત ન હો
એસા જો આનન્તર્ય હૈ વહ સામાન્યાનન્તર્ય હૈ, અથવા-"સામળ્ણાર્ણાંત-
રિએ" કી સંસ્કૃત છાયા શ્રામણ્યાનન્તર્ય એસા મ્હી હોતી હૈ, યહ આક
ર્ષકે વિરહસે અથવા વહુ જીવોંકી અપેક્ષાસે યા શ્રામણ્યકી પ્રતિપત્તિસે
હોતા હૈ, યહ આઠ સમયકા હોતા હૈ ॥ સૂ. ૨૩ ॥

તેતુ' નામ વ્યયાનન્તર્ય છે. જેમકે નરક ગતિમાં જીવોંકા વ્યયાનન્તર્ય વધારેમાં
વધારે અસંખ્યાત સમયતુ' છે. નિર્વિભાગ અવયવ રૂપ પ્રદેશોંકા જે આન-
ન્તર્ય છે, તેતુ' નામ પ્રદેશાનન્તર્ય છે. સમયોંકા જે આનન્તર્ય છે, તેતુ' નામ
સમયાનન્તર્ય છે. પ્રદેશાનાન્તર્ય અને સમયાનાન્તર્ય, એ છે પ્રતીત જ છે
જે આનન્તર્યમાં ઉત્પાદ, વ્યય, આદિ રૂપ વિશેષણ વિવક્ષિત ન હોય એવા
આનન્તર્યને સામાન્યાનન્તર્ય કહે છે. અથવા "સામળ્ણાર્ણાંતરિએ" ની સંસ્કૃત
છાયા શ્રામણ્યાનન્તર્ય પણ થાય છે. તે આકર્ષના વિરહથી અથવા બહુ
જીવોંકી અપેક્ષાએ અથવા શ્રામણ્યની પ્રતિપત્તિની અપેક્ષાએ હોય છે. તે
આઠ સમયતુ' હોય છે. ॥ સૂ. ૨૩ ॥

दुहओऽणंतए २ देसवित्थाराणंतए ३ सब्वित्थाराणंतए ४
सासयाणंतए ५ ॥ सू० २४ ॥

छाया—पञ्चविधम् अनन्तकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—नामानन्तकं १ स्थापनानन्तकं २ द्रव्यानन्तकं ३ गणनानन्तकं ४ प्रदेशानन्तकम् ५। अथवा पञ्चविधम् अनन्तकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—एकतोऽनन्तकम् १, उभयतोऽनन्तकं २ देशविस्तारानन्तकं ३ सर्वविस्तारानन्तकं ४ शाश्वतानन्तकम् ५ ॥ सू० २४ ॥

टीका—‘ पंचविहे ’ इत्यादि—

अनन्तकस्य पञ्चविधत्वं प्रह्वरद्वयेनात्रोक्तम् । तत्र प्रथमं प्रकारो नामानन्तकम्—इत्यादि । तत्र—यस्य नाम ‘ अनन्त ’ इति कृतं स नामानन्तकम् १।

इस ऊपरके सूत्रमें समय एवं प्रदेशोंका आनन्तर्य कहा है समय और प्रदेश अनन्तही होते हैं, इसलिये अब सूत्रकार अनन्तकी पांच प्रकारताका कथन करते हैं—

‘पंचविहें अणंतए पणत्ते’ इत्यादि सूत्र २४ ॥

टीकार्थ—अनन्तक पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे—नामानन्तक १ स्थापनानन्तक २ द्रव्यानन्तक ३ गणनानन्तक ४ और प्रदेशानन्तक ५ अथवा एकतोऽनन्तक १ उभयतोऽनन्तक २ देशविस्तारानन्तक ३ सर्वविस्तारानन्तक ४ और शाश्वतानन्तक ५ इस सूत्र द्वारा अनन्तकमें पंचविधता दो तरहसे प्रकटकी गई है—इनमें प्रथम प्रकार नामानन्तक आदि रूपसे है, जिसका नाम “ अनन्त ” इस रूपसे कर दिया गया हो

आगला सूत्रमा समय अने प्रदेशाना आनन्तर्यं तु कथन करवाभां आ०युं. समय अने प्रदेश अनन्त होय छे तेथी हुवे सूत्रकार अनन्तना पांच प्रकारानुं कथन करे छे “ पंचविहे अणंतए पणत्ते ” इत्यादि—

टीकार्थ—आनन्तक पांच प्रकारना कछा छे—(१) नामानन्तक, (२) स्थापनानन्तक (३) द्रव्यानन्तक, (४) गणनानन्तक अने (५) प्रदेशानन्तक. अथवा तेना आ प्रमाणे पांच प्रकार पद्य पडे छे—

(१) एकतो अनन्तक, (२) उभयत अनन्तक, (३) देशविस्तारानन्तक, (४) सर्वविस्तारानन्तक अने (५) शाश्वतानन्तक

आ सूत्रमा जे प्रकारे अनन्तकभां पंचविधता प्रकट करवाभां आवी छे. जेनुं नाम ‘ अनन्त ’ राभवामां आ०युं होय, ते नामानन्तक छे. जे अक्ष

યસ્યાક્ષાદેઃ અનન્તેતિ કલ્પનયા સ્થાપના કૃતા તત્ સ્થાપનાનન્તકમ્ ૧। જીવ-
 દ્રવ્યાણાં પુદ્ગલદ્રવ્યાણાં વા યદનન્તકં તદ્ દ્રવ્યાનન્તકમ્ ૨। ગણનાનન્તકમ્-ગણના=
 સંખ્યાનં તદ્રૂપમ્ અનન્તકમ્ અવિવક્ષિતપરાપવાદિસંખ્યેયવિષયઃ સંખ્યાવિશેષ इत्यर्थः
 ૪। તથા પ્રદેશાનન્તકમ્ પ્રદેશાનાં=સંખ્યેયાદેશાનામ્ અનન્તકમિતિ ૫। અથ દ્વિતીયં
 પ્રકારમાહ-‘અથવા પંચવિદે’ इत्यादिना । તત્ર-૧કતોઽનન્તકમ્-૧કતઃ=
 આયામલક્ષણેન ૧કેનાશિન અનન્તકમ્-૧કત્રેણીકં ક્ષેત્રમિત્યર્થઃ ૧। ઉભયતોઽન-
 ન્તકમ્-ઉભયતઃ=આયામવિસ્તારાભ્યામ્ ઉભાભ્યામ્ અનન્તકમ્-પ્રતરક્ષેત્રમિત્યર્થઃ
 ૨। દેશવિસ્તારાનન્તકમ્-દેશઃ=ક્ષેત્રસ્ય રુચકાપેક્ષયા યઃ પૂર્વાઘન્યતમદિગ્લક્ષણઃ,

વહ નામાનન્તક હૈ, जिस अक्ष (पाशा) आदिकी “अनन्त” इस कल्प-
 नासे स्थापना करली गई हो वह स्थापनानन्तक है, जीव द्रव्योंका
 अथवा पुद्गल द्रव्योंका जो अनन्तक है, वह द्रव्यानन्तक है, गणना नाम
 गिनतीका है, इस गिनती रूप जो अनन्तक है, वह गणनानन्तक है,
 इस गणनानन्तकमें अणु आदिकोंकी जो संख्यातता है, वह अविव-
 क्षित होनेसे विषय नहीं होती है, यह गणनानन्तक संख्या विशेषरूप
 होता है, तथा संख्यात प्रदेशोंकी जो अनन्तता है वह प्रदेशानन्तक है,
 अथ अनन्तकी द्वितीय प्रकारता इस प्रकारसे है-आयाम रूप एक अंशसे
 जो क्षेत्र समश्रेणीवाला होता है, वह एकतोऽनन्तक है, आयाम एवं
 विस्तारसे दोनोंसे जो क्षेत्र प्रतररूप वर्गरूप होता है, वह उभयतोऽन-
 न्तक है, क्षेत्रका रुचक आदिकी अपेक्षा पूर्वादि अन्यतम दिशा आदिका

(पाशा) आदिनी “अनन्त” आ कल्पनाधी स्थापना करी लेवामां आवी
 डोय, ते स्थापनानन्तक छे. अथवा पुद्गल द्रव्योंके अथवा पुद्गल द्रव्योंके अथवा पुद्गल द्रव्योंके
 छे, ते द्रव्यानन्तक छे. गणना अथवा गणुतरी. आ गणुतरी रूप के अनन्तक
 छे तेने गणनानन्तक कहे छे आ गणनानन्तकमें अणु आदिनी के संख्यातता
 छे ते अविवक्षित डोवाधी ते प्रतिपादित यती नथी. ते गणनानन्तक संख्या-
 विशेष रूप डोय छे. संख्यात प्रदेशोनी के अनन्तता छे तेनुं नाम प्रदेशा-
 नन्तक छे. तीसरी रीते अनन्तता के पांच प्रकारो बताव्या छे, तेमनुं डेवे
 स्पष्टीकरण करवामां आवे छे--

आयाम (लंबाई) रूप एक अंशनी अपेक्षाके के क्षेत्र समश्रेणीवाणुं
 डोय छे, तेने ‘ एकतः अनन्तक ’ कहे छे. आयाम अने विस्तार, अने अनेनी
 अपेक्षाके के क्षेत्र प्रतर रूप-वर्गरूप डोय छे, तेने ‘ उभयतः अनन्तक ’
 कहे छे. क्षेत्रको रुचक आदिनी अपेक्षाके पूर्वादि कहे पणु दिशानो के

तस्य विस्तारो=विष्कम्भस्तस्य प्रदेशापेक्षया अनन्तरम् ३। सर्वविस्तारानन्तरकम्-
सर्वतो विस्तारो यस्य स सर्वविस्तारः-सर्वाकाशः, तस्य प्रदेशापेक्षया अनन्तरकम्
४। तथा-शाश्वतानन्तरकम्-शाश्वतम्-अनाद्यपर्यवसितं जीवादिद्रव्यं, तस्य अन-
न्तरकम्-अनन्तकालस्थितिकत्वादिति ॥ सू० २४ ॥

अनन्तरसूत्रोक्तार्थपरिच्छेदो ज्ञानाद् भवतीति ज्ञानस्वरूपं निरूपयितुमाह—
मूलम्-पंचविहे नाणे पणत्ते, तं जहां-आभिनिबोहिय-
णाणे १ सुयणाणे २ ओहिणाणे ३ मणपज्जवणाणे ४ केवल-
णाणे ५ ॥ सू० २५ ॥

छाया—पञ्चविधं ज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-आभिनिबोधिकज्ञानं १ श्रुतज्ञानम्
२ अवधिज्ञानं ३, मनःपर्यवज्ञानं ४ केवलज्ञानम् ५ ॥ सू० २५ ॥

टीका—‘पंचविहे’ इत्यादि ।

व्याख्या निगदसिद्धा । विस्तरस्तु नन्दीसूत्रस्य सत्कृतायां ज्ञानचन्द्रिका
व्याख्यायां विलोकनीयः ॥ सू० २५ ॥

जो विस्तार-विष्कम्भ है, सो इस विस्तारमें जो प्रदेशोंकी अपेक्षासे
अनन्तरक है, वह प्रदेशानन्तरक है, जिसका सर्व रूपसे विस्तार है,
ऐसा वह सर्वाकाश सर्व विस्तार पदसे यहां लिया गया है, इस सर्वा-
काशरूप सर्व विस्तारमें जो प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्तरक है, वह सर्व
विस्तारानन्तरक है । अनादि अनन्तररूप जो जीवादि द्रव्य हैं, वह यहां
शाश्वत शब्दसे गृहीत हुआ है, इस शाश्वतकी जो अनन्तता है, वह
अनन्तकाल तक स्थितिवाला होनेसे शाश्वतानन्तरक है ॥ सू० २४ ॥

इस ऊपरके सूत्रमें उक्त अर्थका परिच्छेद ज्ञानसे होता है, इसलिये
अब सूत्रकार ज्ञानके स्वरूपका निरूपण करते हैं—

विस्तार (विष्कम्भ) छे ते विस्तारमां प्रदेशोनी अपेक्षाये जे अनन्तरक छे
तेनुं नाम प्रदेशानन्तरक छे जेनेो सर्व रूपे विस्तार छे जेवा सर्वाकाशने, अर्ही
सर्व विस्तार पहथी अडुषु करवामा आवेल छे. ते सर्वाकाश रूपं सर्व विस्ता-
रमां प्रदेशोनी अपेक्षाये जे अनन्तरक छे तेने सर्व विस्तारानन्तरक कडे छे.
अनादि अनन्त रूप जे अनादि द्रव्य छे, तेने अर्ही शाश्वत पहथी अडुषु
करवामा आवेल छे. आ शाश्वतनी जे अनन्तता छे ते अनन्तकालनी स्थिति-
वाणी छे तेथी तेने शाश्वतानन्तरक कडे छे ॥ सू. २४ ॥

आगला सूत्रमा जे विषयतुं प्रतिपादन करवामा आव्युं छे ते विषयनेो
परिच्छेद (मोक्ष) ज्ञान वडे ज थाय छे. तेथी डवे सूत्रकार ज्ञानमा प्रकाशनुं

इत्थं ज्ञानं पञ्चविधत्वेनोक्त्वा सम्प्रति तदावरकं कर्म पञ्चविधत्वेनाह—

मूलम्—पञ्चविहे णाणावरणिज्जे कम्ममे पण्णत्ते, तं जहा—
आभिणिद्धोहियणाणावरणिज्जे जाव् केवलनाणावरणिज्जे ॥सू० २६॥

छाया—पञ्चविधं ज्ञानावरणीयं कर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञाना-
वरणीयं यावत् केवलज्ञानावरणीयम् ॥ सू० २६ ॥

टीका—‘ पञ्चविहे ’ इत्यादि—

ज्ञानावरणीयं—ज्ञानम्=उक्तलक्षणम् आवृणोति=आच्छादयति यत् कर्म तत्
पञ्चविधं प्रज्ञप्तम् । पञ्चविधत्वेनाह—तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयमित्यादि
॥ सू० २६ ॥

‘पञ्चविहे णाणे पण्णत्ते’ इत्यादि सूत्र २५ ॥

टीકાર્થ—જ્ઞાન પાંચ પ્રકારકા કહા ગયાહૈ, જૈસે—આભિનિબોધિક જ્ઞાન ૧
શ્રુતજ્ઞાન ૨ અવધિજ્ઞાન ૩ મનઃપર્યયજ્ઞાન ૪ ઔઠ કેવલજ્ઞાન ૫।

इन पांच स्थानोंके विषयमें विशेष कथन जाननेके अभिलाषियोंको
नन्दासूत्रकी ज्ञानचन्द्रिका नामकी व्याख्या देखनी चाहिये ॥ सू० २५ ॥

જ્ઞાનકી પંચવિધતા કહકર અવ સૂત્રકાર ઇનકે આવારક કર્મોકી
પંચવિધતાકા કથન કરતે હૈ—

‘પંચવિહે ણાણાવરણિજ્જે કમ્મે પણ્ણત્તે’ ઇત્યાદિ સૂ૦ ૨૬॥

टीकार्थ—જ્ઞાનકો આચરણ કરનેવાલા જો જ્ઞાનાવરણીય કર્મહૈ, વહ પાંચ
પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, જૈસે—આભિનિબોધિક જ્ઞાનાવરણીય યાવત્ કેવ-

નિરૂપણ કરે છે. “ પંચવિહે ણાણે પણ્ણત્તે ” ઇત્યાદિ—

टीकार्थ—જ્ઞાનના નીચે પ્રમાણે પાચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) આભિનિબોધિક જ્ઞાન
(૨) શ્રુતજ્ઞાન, (૩) અવધિજ્ઞાન, (૪) મનઃપર્યય જ્ઞાન અને (૫) કેવળજ્ઞાન.

આ પાંચે જ્ઞાનના સ્વરૂપનું વિસ્તૃત નિરૂપણ નન્દીસૂત્રની જ્ઞાનચન્દ્રિકા
નામની ટીકામાં કરવામાં આંચુ છે. તે જિજ્ઞાસુ પાઠકોએ ત્યાંથી તે
વાંચી લેવું. ॥ સૂ. ૨૫ ॥

જ્ઞાનના પાંચ પ્રકારોનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર તેના આવરક કર્મોની
પંચવિધતાનું કથન કરે છે. “ પંચવિહે ણાણાવરણિજ્જે કમ્મે પણ્ણત્તે ” ઇત્યાદિ—

જ્ઞાનાવરણીય કર્મ પાચ પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) આભિનિબોધિક જ્ઞાના-
વરણીય, શ્રુત જ્ઞાનાવરણીય, અવધિજ્ઞાનાવરણીય, મનઃપર્યય જ્ઞાનાવરણીય
અને કેવળ જ્ઞાનાવરણીય,

ઇત્યં જ્ઞાનાવરણીયં કર્મ પશ્ચવિધત્વેનોક્ત્વા સમ્પ્રતિ તત્ક્ષણોપાયવિશેષં સ્વાધ્યાયં પશ્ચવિધત્વેન પ્રરૂપયતિ—

મૂલમ્—પંચવિદ્દે સજ્ઞાણ પળ્લત્તે, તં જહા-વાચના ૧ પ્રચ્છના
૨ પરિવર્તના ૩ અનુપ્રેક્ષા ૪ ધર્મકથા ૫ ॥ સૂ. ૨૭ ॥

છાયા—પશ્ચવિધઃ સ્વાધ્યાયઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તદ્વથા-વાચના ૧ પ્રચ્છના ૨ પરિવર્તના ૩ અનુપ્રેક્ષા ૪ ધર્મકથા ૫ ॥ સૂ. ૨૭ ॥

ટીકા—‘ પંચવિદ્દે ’ ઇત્યાદિ—

સ્વાધ્યાયઃ—સુ=શોભનમ્ આ=મર્યાદયા અધ્યયનં=પઠનાદિકં સ્વાધ્યાયઃ, સ પશ્ચવિધો વોદ્યઃ । પશ્ચવિધત્વમેવાહ-તદ્વથા-વાચના=ગુણ. સકાશાદ્વિનય-લજ્ઞાનાવરણીય ૫ જો કર્મ જ્ઞાનકા આચરણ કરતા હૈ, ઉસે આચ્છાદિત કરતા હૈ, વહ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ હૈ, ઇસી પ્રકારસે શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મ હૈ ઇત્યાદિ ॥ સૂ. ૨૬ ॥

ઇસ પ્રકારસે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ પાંચ પ્રકારકા કહકર અથ સૂત્રકાર ઉસકે ક્ષયકે ઉપાય વિશેષકો ઓર સ્વાધ્યાયકો પાંચ પ્રકારકા કહતે હૈ—પંચવિદ્દે સજ્ઞાણ પળ્લત્તે’ ઇત્યાદિ સૂ. ૨૭ ॥

સ્વાધ્યાય પાંચ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, જૈસે—વાચના ૧ પ્રચ્છના ૨ પરિવર્તના ૩ અનુપ્રેક્ષા ૪ ઓર ધર્મકથા ૫ ।

ટીકાર્થ—મર્યાદાપૂર્વક જો મૂલ સૂત્રકા અચ્છી તરહસે પઠનાદિક કિયા જાતા હૈ, વહ સ્વાધ્યાય હૈ, વહ સ્વાધ્યાય પાંચ પ્રકારકા વાચના આદિકે

જે કર્મ જ્ઞાનના ઉપર આવરણુ રૂપ બની બનય છે, જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરી દે છે, તે કર્મને જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કહે છે. જેમકે શ્રુતજ્ઞાનનું આવરણુ કરનાર જે કર્મ છે તેને શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મ કહે છે એ જ પ્રમાણે બાકીનાં કર્મો વિષે પણ સમજવું. ॥ સૂ. ૨૬ ॥

જ્ઞાનાવરણીય કર્મના પાંચ પ્રકારો પ્રકટ કરીને હવે સૂત્રકાર તેના ક્ષયના ઉપાય વિશેષો રૂપ સ્વાધ્યાયના પાંચ પ્રકારોને હવે પ્રકટ કરે છે.

“ પંચવિદ્દે સજ્ઞાણે પળ્લત્તે ” ઇત્યાદિ—

સ્વાધ્યાય પાંચ પ્રકારનાં કહ્યાં છે—(૧) વાચના, (૨) પ્રચ્છના, (૩) પરિવર્તના, (૪) અનુપ્રેક્ષા, અને (૫) ધર્મકથા.

મર્યાદાપૂર્વક મૂળ સૂત્રનું જે પઠન આદિ કરવામાં આવે છે તેનું નામ સ્વાધ્યાય છે તેના વાચના આદિ જે પાંચ લેહો કહ્યા છે તેનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

પૂર્વકં સૂત્રાર્થતદુભયાનાં ગ્રહણમ્ ૧। પ્રચ્છના=ચાલિતસ્ય શિષ્યસ્ય વાચનાયાં સંશ-
યોત્પત્તૌ તન્નિગાકરણાય યદ્ ગુરોઃ સમીપે પ્રચ્છનં સા પ્રચ્છનો ૨। પરિવર્તનાંવા-
ચનયા વાચિતસ્ય પ્રચ્છનયા વિગોચિતસ્ય સૂત્રાર્થતદુભયસ્ય વિસ્મૃતિર્માભૂદિતિ યત્
સુત્રસ્ય પુનઃ પુનઃગાવૃત્તિઃ સા, ૩। અનુપ્રેક્ષા અનુપ્રેક્ષણમ્ અનુપ્રેક્ષા-ગૃહીતસ્ય સૂત્રાર્થ-
તદુભયસ્ય વિસ્મૃતિર્માભૂદિતિ યા તચ્ચિન્તના સા ૪। ધર્મકથા-ધર્મસ્ય=શ્રુતચા-
રિત્રરૂપમ્ કથનં=વ્યાખ્યાનં-ધર્મકથા ૫। વાચનાપ્રચ્છનાપરિવર્તનાનુપ્રેક્ષાભિરભ્ય-
સ્તશ્રુતેન સાધુના ધર્મકથાર્કર્તવ્યેતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૨૭ ॥

ભેદસે જો કહા ગયા હૈ, ઉસકા અભિપ્રાય એસા હૈ, કિ વિનયપૂર્વક
ગુરુકે પામસે જો સૂત્રકા અર્થકા ઓર સૂત્રાર્થ દોનોંકા ગ્રહણ કિયા
જાતા હૈ, પઢે હુણ વિષયમેં શિષ્યકો જો શંકા આદિ હો જાતી હૈ, સો
ઉસ શંકાકો દૂર કરનેકે નિમિત્ત જો ગુરુસે પૂછા જાતા હૈ, વહ પ્રચ્છના
હૈ, વાચનાસે સીખે ગયે ઓર પ્રચ્છનાસે વિશુદ્ધ કિયે
ગયે સૂત્રકી અર્થકો ઓર સૂત્રાર્થ દોનોંકી વિસ્મૃતિ ન હો જાય
હસ અભિપ્રાયસે જો પુનઃ પુનઃ આવૃત્તિ કરના હૈ, વહ પરિવર્તના કરના
હૈ, ગૃહીત સૂત્ર અર્થ ઓર તદુભયકી વિસ્મૃતિ ન હો જાય હસ અભિ-
પ્રાયસે જો ચિન્તના હૈ, વહ અનુપ્રેક્ષા હૈ, તથા શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મકા
જો વ્યાખ્યાન હૈ, વહ ધર્મકથા હૈ । વાચના, પ્રચ્છના, પરિવર્તના ઓર
અનુપ્રેક્ષા હનસે અભ્યસ્ત શ્રુતવાલે સાધુકો ધર્મકથા કરની ચાહિયે
એસા હમ કથનકા ભાવ હૈ ॥ સૂ૦ ૨૭ ॥

વિનયપૂર્વક ગુરુની પાસે જે સૂત્રનું અને અર્થને શક્ય કરવાનું કાર્ય
થાય છે, તેનું નામ વાચના છે. જે વિષયને શિષ્ય દ્વારા અભ્યાસ કરાયો
હોય તે વિષયમાં કોઈ શંકા ઉદ્ભવે તો તેના નિવારણ માટે ગુરુને જે પ્રશ્ન
પૂછવામાં આવે છે, તેનું નામ પ્રચ્છના છે. વાચના દ્વારા જે સૂત્ર અથવા અર્થને
શક્ય કરવામાં આવ્યો હોય અને પ્રચ્છના દ્વારા જે સૂત્ર અને અર્થને વિશુદ્ધ
કરવામાં આવ્યો હોય તેની વિસ્મૃતિ ન થઈ જાય તે માટે ફરી ફરીને તેનું
પુનરાવર્તન કરવું-તેનું નામ પરિવર્તના છે ગૃહીત સૂત્ર, અર્થ અને સૂત્રાર્થની
વિસ્મૃતિ થઈ ન જાય, તે માટે વારંવાર તેનું ચિન્તન કર્યા કરવું તેનું નામ
અનુપ્રેક્ષા છે. શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મનું જે વ્યાખ્યાન કરવામાં આવે છે, તેનું
નામ ધર્મકથા છે વાચના, પ્રચ્છના, પરિવર્તના અને અનુપ્રેક્ષા, આ ચાર
પદે જેને શ્રુતજ્ઞાન અપાદન કહ્યું હોય એવા સાધુએ જ ધર્મકથા (વ્યાખ્યાન)
કરી લેવું. ॥ ય. ૨૭ ॥

ધર્મકથાઽભિમૂતમિથ્યાભાવા એવ મવિનો વિશુદ્ધપ્રત્યાખ્યાનમાજો મન્વીતિ પ્રત્યાખ્યાનં નિરૂપયતિ--

મૂલમ્—પંચવિહે પચ્ચક્ષણે પળ્લન્તે, તં જહા—સદ્દહણ સુદ્ધે ૧ વિણયસુદ્ધે ૨ અણુભાષણાસુદ્ધે ૩ અણુપાલણાસુદ્ધે ૪ ભાવસુદ્ધે ૫ ॥ સૂ ૦ ૨૮ ॥

છાયા--પચ્ચવિધં પ્રત્યાખ્યાનં પ્રજ્ઞપ્તમ્, તદ્વથા—શ્રદ્ધાનશુદ્ધં ૧ વિનયશુદ્ધમ્ ૨ અનુભાષણાશુદ્ધમ્ ૩ અનુપાલનાશુદ્ધં ૪ ભાવશુદ્ધમ્ ૫ ॥ સૂ ૦ ૨૮ ॥

ટીકા--‘ પંચવિહે પચ્ચક્ષણે ’ इत्यादि--

પ્રત્યાખ્યાનમ્—પ્રતિ=પ્રતિષેધતઃ આ=મર્યાદયા વિવક્ષિત કાલમાનયા ધ્યાનં=પ્રકથનં પ્રત્યાખ્યાનમ્ । તચ્ચ પચ્ચવિધં પ્રજ્ઞપ્તં=પ્રરૂપિતમ્ । પચ્ચવિધત્વમેવાદ-તથયા-શ્રદ્ધાનશુદ્ધમ્-શ્રદ્ધાનં=શ્રદ્ધા-‘ તથેદ ’ મિતિ વિશ્વાસસ્તેન શુદ્ધં=નિરવધ, શ્રદ્ધાનાભાષે તુ તત્સાવધં ભવતિ । તદુક્તમ્—

ધર્મકથાસે જિનકે મિથ્યાત્વ નષ્ટ હો ચુકે હૈં, એસેહી ભવ્ય જીવ વિશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાનવાલે હોતે હૈં, અતઃ અબ સૂત્રકાર પ્રત્યાખ્યાનકા નિરૂપણ કરતે હૈં—‘ પંચવિહે પચ્ચક્ષણે પળ્લન્તે ’ इत्यादि सू ० २८ ॥

પ્રત્યાખ્યાન પાંચ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, જૈસે—શ્રદ્ધાનશુદ્ધ ૧ વિનયશુદ્ધ ૨ અનુભાષણા શુદ્ધ ૩ અનુપાલના શુદ્ધ ૪ ઓર ભાવ શુદ્ધ ૫

ટીકાર્થ—પ્રતિષેધ કરકે જિસકા કથન વિવક્ષિત કાલકો મર્યાદા તક ક્રિયા જાના હૈ, વહ પ્રત્યાખ્યાનહૈ, યહ પ્રત્યાખ્યાન શ્રદ્ધાન શુદ્ધ આદિકે મેદસે પાંચ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, જો પ્રત્યાખ્યાન શ્રદ્ધાસે યહ એસા હી હૈ, હસ પ્રકારકે વિશ્વાસસે શુદ્ધ નિરવધ હોતા હૈ, વહ શ્રદ્ધાન શુદ્ધ

ધર્મકથા દ્વારા જેમનો મિથ્યાભાવ નષ્ટ થઈ ચુક્યો હોય છે એવાં જ ભવ્ય જીવો વિશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાનવાળા હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર પ્રત્યાખ્યાનનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરે છે “ પંચવિહે પચ્ચક્ષણે પળ્લન્તે ” इत्यादि—

ટીકાર્થ—પ્રત્યાખ્યાનના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) શ્રદ્ધાનશુદ્ધ, (૨) વિનયશુદ્ધ, (૩) અનુભાષણાશુદ્ધ, (૪) અનુપાલનાશુદ્ધ અને (૫) ભાવશુદ્ધ.

પ્રતિષેધ (નિષેધ) કરીને જેનું કથન અમુક ચોક્ષસ કાળની મર્યાદા પર્યન્ત કરવામાં આવે છે તેનું નામ પ્રત્યાખ્યાન છે. તે પ્રત્યાખ્યાન શ્રદ્ધાન-શુદ્ધ આદિના લેહથી પાંચ પ્રકારના છે આ વસ્તુ આદિ ત્યાગ કરવાને પાત્ર છે, એવી શ્રદ્ધાપૂર્વક જે પ્રત્યાખ્યાન લેવામાં આવે છે, તે પ્રત્યાખ્યાનને શ્રદ્ધાન-શુદ્ધ કહે છે શ્રદ્ધાના સદ્ભાવમાં જ પ્રત્યાખ્યાન શુદ્ધ-નિરવધ હોઈ શકે છે,

“ પચ્ચક્ષાણં સવ્વન્નુદેસિયં જં જહિં જયા કાલે ।

તં જો સવ્વહ્દુ નરો, તં જાણસુ સવ્વહ્ણસુહં ॥ ૧ ॥ ”

છાયા--પ્રત્યાખ્યાનં સર્વજ્ઞદેશિતં યદ્ યત્ર યદા કાલે ।

તદ્ યઃ શ્રદ્ધધાતિ નરસ્તદ્ જાનીહિ શ્રદ્ધાનશુદ્ધમ્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ॥૧॥

વિનયશુદ્ધમ્-વિનયેન શુદ્ધં વિનયાભાવેત્વશુદ્ધમ્ । एवमप्येऽपि तत्तदभावे
અશુદ્ધતા વોધ્યા । વિનયશુદ્ધમેવમુક્તમ્--

“ કિંકકમ્મસ્સ વિસોહિં, પઝંજણ્ જો અહીણમરિત્તં ।

મળવયળકાયગુત્તો, તં જાણસુ વિનયમ્મો સુહં ॥ ૧ ॥ ”

છાયા--કૃતિકર્મણો વિશોધિ પ્રયુક્તે યઃ અહીનાતિરિક્તમ્ ।

મનોપચનકાયગુત્તઃ તં જાનીહિ વિનયતઃ શુદ્ધમ્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ॥ ૨ ॥

પ્રત્યાખ્યાન હૈ, શ્રદ્ધાનકે અભાવમેં તો વહ સ્વાચ્ચ હોતા હૈ । કહાં મ્મી હૈ-

“ પચ્ચક્ષાણં સવ્વન્નુદેસિયં ” ઇત્યાદિ ।

જિલ્લ કાલમેં જો પ્રત્યાખ્યાન સર્વજ્ઞ ભગવાનને કહાં હૈ, ઉસ પર જો વિશ્વાસ કરતા હૈ, વહ પ્રત્યાખ્યાન શ્રદ્ધાન શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન હૈ । જો પ્રત્યાખ્યાન વિનયસે શુદ્ધ હોતા હૈ, વહ પ્રત્યાખ્યાન વિનય શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન હૈ, જો પ્રત્યાખ્યાન વિનયકે અભાવમેં હોતા હૈ, વહ અશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન હૈ-હસી તરહસે આગે મ્મી ઉન ૨ કે અભાવમેં પ્રત્યાખ્યાનમેં અશુદ્ધતા જાનની ચાહિયે-વિનય શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાનકે વિષયમેં એસા હી કહાં ગયા હૈ--“ કિંક કમ્મસ્સ વિસોહિં ” ઇત્યાદિ .

મન વચન ઓર કાયસે ગુસ હુઆ જો મનુષ્ય કૃતિકર્મક્રી ન હીન ઓર ન અધિક એસી વિશુદ્ધિ કરતા હૈ, વહ વિનય શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન-

તેના અભાવમાં તો તે અશુદ્ધ-નિરવધ જ હોય છે. કહ્યું પણ છે કે :

“ પચ્ચક્ષાણં સવ્વન્નુદેસિયં ” ઇત્યાદિ--

જે કાળે જે પ્રત્યાખ્યાન કરવાનું સર્વજ્ઞ ભગવાને દેશમાવ્યું છે, તે કાળે શ્રદ્ધાપૂર્વક તે પ્રત્યાખ્યાન કરનારના પ્રત્યાખ્યાનને શ્રદ્ધાનશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. જે પ્રત્યાખ્યાન વિનયની અપેક્ષાએ શુદ્ધ હોય છે, તે પ્રત્યાખ્યાનને વિનય-શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. જે પ્રત્યાખ્યાનમાં વિનયનો અભાવ હોય છે-વિનયની અપેક્ષાએ અશુદ્ધ હોય છે, તે પ્રત્યાખ્યાનને અશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. એ જ પ્રમાણે આગળ પણ જે જે પ્રકાર કહેવામાં આવ્યા છે, તેમાં પણ તે વિષયના અભાવમાં અશુદ્ધતા સમજવી વિનયશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાનના વિષયમાં એવું કહ્યું છે કે “ કિંકમ્મસ્સ વિસોહિં ” ઇત્યાદિ--

અનુભાષણાશુદ્ધમ્-અનુભાષણમ્-જનુભાષણા=‘વોમિર’ ઇતિગુરુના પ્રોચતે
યત્ શિષ્યસ્ય ‘વોસિરામિ’ ઇતિ કવનં સા, તયા શુદ્ધમ્ । તદુક્તમ્--

“અણુભાસદ્ ગુરુવચનં, અક્ષરપદવ્યજ્જનૈર્હિ પરિશુદ્ધં ।

પંજલિઉડો અભિમુદ્નો, તં જાણશુભામણાશુદ્ધં ॥ ૧ ॥”

છાયા--અનુભાષણે ગુરુવચનમ્-અક્ષરપદવ્યજ્જનૈઃ પરિશુદ્ધમ્ ।

પ્રાક્કલિપુટઃ અભિમુલ્લસ્તદ્ જાનીહિ અનુભાષણાશુદ્ધમ્ ॥૧॥ ઇતિ ॥૩॥

અનુપાલનાશુદ્ધમ્-અનુપાલનમ્-અનુપાલના=ગૃહીતસ્ય વ્રતસ્ય પરીપહોપસર્ગાદિ-
ષ્વપિ પરિપાલનં, તયા ત્રિશુદ્ધમ્ । ઉક્તં ચ--

હૈ, અનુભાષણા શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન ઇસ પ્રકારસે હૈ, કિ જવ ગુરુકે દ્વારા
“વોસિરે” એસા કહા જાવે તય જો શિષ્ય “વોસિરામિ” એસા કહતા
હૈ વહ અનુભાષણ-અનુભાષણા હૈ ઇસ અનુભાષણાસે જો પ્રત્યાખ્યાન
શુદ્ધ હોતા હૈ, વહ અનુભાષણા શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન હૈ । કહા ખી હૈ-
“અણુભાસદ્ ગુરુવચન” ઇત્યાદિ ।

અક્ષર પદ એવં વ્યજ્જનોસે પરિશુદ્ધ જિલ ભાષણકો ગુરુ કહતા હૈ
વસ ભાષણકે વાદ જો દોનોં હાથ જોડકર ઓર અનેક સમક્ષ હોકર
શિષ્યકા ભાષણ કરતા હૈ, વહ અનુભાષણા શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન હૈ । અનુ-
પાલના શુદ્ધ-ગૃહીત વ્રતકા જો પરીપહ એવં ઉપસર્ગ આદિકે આને પર

મન, વચન અને કાયની અપેક્ષાએ ગુપ્ત થયેલા પુરુષ-મનોગુપ્તિ, વચન-
ગુપ્તિ અને કાયગુપ્તિથી યુક્ત પુરુષ-ને કૃતિકર્મની હીન વિશુદ્ધિ પણ કરતો
નથી અને અધિક વિશુદ્ધિ પણ કરતો નથી, તો તે વિનયશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાનવાળો
ગણાય છે. અનુભાષણા શુદ્ધપ્રત્યાખ્યાન—જ્યારે ગુરુ દ્વારા “વોસિરે” આ
પદ કહેવામાં આવે ત્યારે શિષ્ય “વોસિરામિ” આ પદ જોલે છે આ પ્રકાર-
ના અનુકથનને અનુભાષણા કહે છે. આ અનુભાષણાથી જે પ્રત્યાખ્યાન શુદ્ધ
હોય છે, તે પ્રત્યાખ્યાનને અનુભાષણશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. કહ્યું પણ છે
કે “અણુભાસદ્ ગુરુવચન” ઇત્યાદિ--

અક્ષર, પદ અને વ્યજ્જનોની અપેક્ષાએ પરિશુદ્ધ એવું જે ભાષણ
(વ્યાખ્યાન) ગુરુ કરે છે, તે ભાષણ સાંભળીને તેમની સમક્ષ ઊભા થઈને
વિનયપૂર્વક એ હાથ ભેડીને જે પ્રત્યાખ્યાન કરવામાં આવે છે, તેને અનુ-
ભાષણા શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. ગુરુ જ્યારે “વોસિરે” પઢે તો ઉચ્ચાર કરે
ત્યારે પ્રત્યાખ્યાન ધારણ કરનાર “વોસિરામિ” પઢે તો ઉચ્ચાર કરીને આ
પ્રકારના પ્રત્યાખ્યાન લે છે.

અનુપાલના શુદ્ધ--ગૃહીત વ્રતનું પરીપહો અને ઉપસર્ગો આવી પડે તો

“ કંતારે દુષ્કિંચલે, આયંકે વા મદ્દ સમુપ્પગો ।

જં પાલિયં ન ભગ્ગં, જાણણુપાલ્લના સુદ્ધં ॥૧૧॥ ”

છાયા—કાન્તારે દુષ્કિંચલે આતક્કે વા મદ્દતિ સમુપ્પન્ને ।

યત્પાલિતં ન ભગ્ગં તદ્ જાનીદિ અનુપાલનાશુદ્ધમ્ ॥૧૧॥ ઠિતિ ॥૧૧॥

આવશુદ્ધમ્—ભાવેન—રાગદ્વેષેલોકાગ્રાશંકારૂપં પરિણામરાહિત્યેન યદ્ નિર-
વદ્યં તદ્ આવશુદ્ધમ્ ।

તદુક્તમ્—“ રાગેણ વ દોષેણ વ, પરિણામેણ વ ન દૂષિતયં જં તુ ।

તં સ્વલુ પચ્ચલ્લાણં, આવવિશુદ્ધં ગુણેયવ્વં ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—રાગેણ વા દ્વેષેણ વા પરિણામેણ વા ન દૂષિતં ચતુ ।

તત્સ્વલુ પ્રત્યાખ્યાનં આવવિશુદ્ધં જ્ઞાતવ્યમ્ ॥૧૧॥ ઇતિ ॥૬॥ સૂ. ૨૮॥

બીચલાયમાન ન હો કર પરિપાલન કરતાહૈ, વહ અનુપાલનાહૈ ઇસ અનુ-
પાલનસે જો પ્રત્યાખ્યાન શુદ્ધ હોતા હૈ વહ અનુપાલના શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન
હૈ । કહાં બી હૈ—‘ કંતારે દુષ્કિંચલે ’ ઇત્યાદિ ।

ભયંકર ગહન વનમં પદ્ જાને પર દુષ્કિંચલેકે આજાને પર કિસી ભયં-
કર રોગમં ફંસ જાને પર જો અપને પાલિત વ્રતકો અગ્ન નહીં કરતા
હૈ વહ અનુપાલના શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન હૈ ।

જો પ્રત્યાખ્યાન રાગદ્વેષ હહલોક પરલોક આદિકી આશંકારૂપ
પરિણામસે રહિત ઠોકર ક્રિયા જાતા હૈ, એસા વહ નિરવદ્ય પ્રત્યાખ્યાન
આવશુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાનહૈ । કહાં બીહૈ—“રાગેણ વ દોષેણ વ” ઇત્યાદિ ।

જો પ્રત્યાખ્યાન રાગ એવં દ્વેષકે પરિણામસે દૂષિત નહીં હૈ, એસા વહ
પ્રત્યાખ્યાન આવવિશુદ્ધ કહાં ગયા હૈ ॥ સૂ. ૨૮ ॥

પશુ ચલાયમાન ન થતાં પાલન કરનારના પ્રત્યાખ્યાનને અનુપાલના શુદ્ધ
પ્રત્યાખ્યાન કહે છે. કહ્યું પશુ છે કે કંતારે દુષ્કિંચલે ” ઇત્યાદિ—

ભયંકર ગહન વનમાં અટવાઈ ગયા હોય, દુષ્કિંચલે કારણે ભૂખે મર-
વાનો પ્રસંગ આવી પડ્યો હોય, ભયંકર રોગમાં બંધાયો હોય, ત્યારે પશુ
જે માણસ પોતે અહણુ કરેલા વ્રતને દબતાપૂર્વક પાળે છે, એવા માણસના
પ્રત્યાખ્યાનને અનુપાલના શુદ્ધ પ્રત્યાખ્યાન કહેવાય છે.

જે પ્રત્યાખ્યાન રાગદ્વેષ અને આસોક પરલોકની આશંકા રૂપ વૃત્તિ
રાખ્યા વિના કરવામાં આવે છે, એવાં નિરવદ્ય પ્રત્યાખ્યાનને ભાવશુદ્ધ પ્રત્યા-
ખ્યાન કહે છે. કહ્યું પશુ છે કે “ રાગેણ વ દોષેણ વ ” ઇત્યાદિ—જે પ્રત્યા-
ખ્યાન રાગ અને દ્વેષના પરિણામથી દૂષિત હોતા નથી, તે પ્રત્યાખ્યાનને
ભાવવિશુદ્ધ કહેવાય છે. ॥ સૂ. ૨૮ ॥

कृतप्रत्याख्यानस्य कदाचिदतिचारसंभाषनाऽपि भवति, ततश्च तत्र प्रतिक्रमणं क्रियते इति प्रतिक्रमणस्य पञ्चविधत्वमाह—

मूलम्—पंचविधे पडिक्रमणे पणत्ते, तं जहा—आस्रवदार-
पडिक्रमणे १, मिच्छन्तपडिक्रमणे २ कषायपडिक्रमणे ३ योग-
पडिक्रमणे ४ भावपडिक्रमणे ५ ॥ सू० २९ ॥

छाया—पञ्चविधं प्रतिक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आस्रवदारप्रतिक्रमणं १ मिथ्या-
त्वप्रतिक्रमणं २ कषायप्रतिक्रमणं ३ योगप्रतिक्रमणं ४ भावप्रतिक्रमणम् ५ ॥
॥ सू० २९ ॥

टीका—पंचविधे पडिक्रमणे ' इत्यादि—

प्रतिक्रमणं—प्रति—प्रतीपं क्रमणम्—शुभयोगेभ्योऽशुभयोगान् प्रतिपन्नस्य
आत्मनः पुनः शुभयोगेषु गमनम् । तदुक्तम्—

“ स्वस्थानाद् यत् परस्थानं, प्रमादस्य वशाद् गतः ।

तत्रैव क्रमणं भूयः, प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ १ ॥

जिसने प्रत्याख्यान किया है, ऐसे पुरुषको कदाचित् अतिचारोंके होनेकी संभावना भी हो सकती है, अतः उसके होने पर प्रतिक्रमण किया जाता है, इसलिये अब सूत्रकार प्रतिक्रमणकी पंचविधताका वर्णन करते हैं—‘पंचविधे पडिक्रमणे पणत्ते’ इत्यादि सूत्र २९ ॥

प्रतिक्रमण पांच प्रकारका कहा गया है, जैसे—आस्रवदार प्रतिक्रमण १ मिथ्यात्व प्रतिक्रमण २ कषाय प्रतिक्रमण ३ योग प्रतिक्रमण ४ और भाव प्रतिक्रमण ५ शुभ योगोंसे अशुभ योगोंमें पहुँची हुई आत्माका पुनः शुभ योगोंमें आना इसका नाम प्रतिक्रमण है । कहा भी है—

प्रत्याख्यान करनेपर पुरुषोने क्यारेक अतिचार लागवाने संभव रहे छे. ते अतिचारोनी शुद्धि भाटे प्रतिक्रमणु करवाभां आवे छे. तेथी हुवे सूत्रकार प्रतिक्रमणुना पांच प्रकारेणुं कथन करे छे.

“ पंचविधे पडिक्रमणे पणत्ते ” इत्यादि—

प्रतिक्रमणुना नीचे प्रमाणे पांच प्रकार कहा छे—(१) आस्रवदार प्रतिक्रमणु, (२) मिथ्यात्व प्रतिक्रमणु, (३) कषय प्रतिक्रमणु, (४) योग प्रतिक्रमणु अने (५) भाव प्रतिक्रमणु.

शुभ योगोभाथी अशुभ योगोभां पडोचिदा आत्मानुं करीथी शुभ योगोभां आवणुं तेणुं नाम प्रतिक्रमणु छे. कहु पणु छे के “ स्वस्थानात् यत्

ક્ષાયોપશમિકાદ્ ભાનાદૌદયિકસ્ય વશં ગતઃ ।

તત્રાપિ ચ સ પ્વાર્થઃ પ્રતિક્ર્લગમાત્ સ્મૃતઃ ॥ ૨ ॥ ” ઇતિ ।

તદિદં પ્રતિક્રમણં પશ્ચવિધં પ્રજ્ઞસમ્ । પશ્ચવિધત્વમેવાહ-તચયા-આસ્રવદ્વાર-
પ્રલિક્રમણમ્-આસ્રવદ્વારાણિ=પાળાતિપાતાદીનિ, તતઃ પ્રતિક્રમણં=નિવર્તનમ્ ૧।
મિથ્યાત્વપ્રતિક્રમણમ્-મિથ્યાત્વમ્ આભોગ્યાનાભોગસહગાકારૈર્ભવતિ, તતઃ પ્રતિ-
ક્રમણં=નિવર્તનમ્ ૨। કષાયપ્રતિક્રમણમ્-કષાયેભ્યઃ પ્રતિનિવૃત્તિઃ ૩। યોગપ્રતિક્ર-

“સ્વસ્થાનાત્ યત્ પરસ્થાનં ” ઇત્યાદિ ।

પ્રમાદકે વશસે જીવકા જો અપને સ્થાનસે હટકર પરસ્થાનમેં ગમન
હૈ, ઔર ફિર વહાંસે જો પુનઃ અપને સ્થાન પર આજાના વહ પ્રતિક્રમણ
હૈ । “ક્ષાયોપશમિકાદ્ ભાવાદ્ ” ઇત્યાદિ ।

હસી તરહસે જો કોઈ જીવ ક્ષાયોપશમિક ભાવ સે
ઔદયિક ભાવકા વશંગત હો જાતા હૈ, ઔર પુનઃ ડસી ક્ષાયોપશમિક
ભાવમેં આકર પ્રાપ્ત જિસ્કે પ્રભાવસે હો જાતા હૈ વહ પ્રતિક્રમણ હૈ ।

એસા યહ પ્રતિક્રમણ પાંચ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, ઇનમેં જાં આસ્રવ-
દ્વાર પ્રતિક્રમણ હૈ, વહ પ્રાળાતિપાતાદિ રુપ જો આસ્રવ દ્વાર હૈ, ડનસે
નિવર્તન રુપ પીછે હટને રુપ હોતા હૈ । મિથ્યાત્વ પ્રતિક્રમણ-આભોગ
(જાનકર)અનાભોગ(અનજાન) એવં સહસાકાર (અકસ્માત્)સે મિથ્યાત્વ
હોતા હૈ, સો હસ મિથ્યાત્વસે જો જીવકા નિવર્તન હૈ, વહ મિથ્યાત્વ
પ્રતિક્રમણ હૈ, કષાયાર્યાસે જો પ્રતિનિવૃત્તિ હૈ, વહ કષાય પ્રતિક્રમણ હૈ,

પરસ્થાનં ” ઇત્યાદિ. પ્રમાદને કારણે જીવનુ સ્વસ્થાનમાંથી નીકળીને પરસ્થાનમાં
જે ગમન થાય છે, અને ફરીથી ત્યાંથી સ્વસ્થાનમાં જે આગમન થાય છે
તેનું નામ પ્રતિક્રમણુ છે “ક્ષાયોપશમિકાદ્ ભાવાદ્ ” ઇત્યાદિ---

કેાઈ જીવ ક્ષાયોપશમિક ભાવમાંથી ઔદયિક ભાવમાં આવી જાય અને
ફરી ઔદયિક ભાવમાંથી ક્ષાયોપશમિક ભાવમાં આવી જાય છે, આવું જેના
પ્રભાવથી બને છે તેનું નામ પ્રતિક્રમણુ છે

એવા પ્રતિક્રમણુના પાંચ પ્રકાર કહ્યા છે--અસ્રવદ્વાર રૂપ જે પ્રતિક્રમણુ
છે તે પ્રાણાતિપાત આદિ રૂપ જે આસ્રવ દ્વારો છે તેમનાથી નિવર્તન રૂપ
(તેમ કરતાં અટકવા રૂપ) હોય છે. આભોગ (જાણીને) અનાભોગ (અજા-
ણતા) અને અકસ્માતથી જે મિથ્યાત્વનું સેવન થઈ જાય છે, તે મિથ્યાત્વથી
નિવૃત્ત થવું તેનું નામ મિથ્યાત્વનું પ્રતિક્રમણુ છે. કષાયોમાંથી નિવૃત્ત થવું

મગ્નમ્—અશુભેષ્યો મનોવાકાયયોગેભ્યઃ પ્રતિક્રમણમ્=પ્રતિનિવર્તનમ્ ડા તથા—ભાવ-
મતિક્રમણમ્—અવિવક્ષિતવિશેષેભ્યઃ આસ્રવદ્વારાદિભ્યઃ પ્રતિનિવર્તનમ્ । તદુક્તમ્—

“ મિચ્છતાઈ ન ગચ્છઈ, ન ચ ગચ્છાવેઈ નાણુજાણાઈ ।

જં મગ્નવકાઈ, તં મગ્નિયં ભાવપટિક્રમણં ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—મિથ્યાત્વાદિ ન ગચ્છતિ ન ચ ગમયતિ નાણુજાનાતિ ।

યદ્ મનોવાકાયૈસ્તદ્ મગ્નિતં ભાવપટિક્રમણમ્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ॥

આસ્રવદ્વારાદિ વિશેષરૂપેણ વિવક્ષાયાં તુ આસ્રવદ્વારપટિક્રમણાદીનિ પૂર્વો-
ક્તાનિ ચત્વારિ સ્થાનાનિ વૌધ્યાનિ । તદુક્તમ્—

“ મિચ્છત્તપટિક્રમણં, તદેવ અસંજમા પટિક્રમણં ।

કસાયાણ પટિક્રમણં, જોગાણ ચ અપ્પસત્થાણં ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—મિથ્યાત્વપટિક્રમણં તથૈવ અસંજમાત્ પ્રતિક્રમણમ્ ।

કસાયાણાં પ્રતિક્રમણં યોગાનાં ચાપ્પસત્તાનામ્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ॥ સૂ૦ ૨૧ ॥

અશુભ મન વચન કાયયોગોસે જો પ્રતિનિવર્તન હૈ, વહ યોગ નિવર્તન
હૈ ડ અવિવક્ષિત વિશેષોવાલે આસ્રવદ્વારોસે જો પ્રતિનિવર્તન હૈ, વહ
ભાવપ્રતિક્રમણ હૈ । કહા મી હૈ—“ મિચ્છતાઈ ન ગચ્છઈ ” ઇત્યાદિ ।

જો જીવ મન વચન કાયસે મિથ્યાત્વ આદિ આયોમોં ન સ્વયં
જાતા હૈ, ન દૂસરાંકો પહુંચાતા હૈ, ઓર ન ડનકી અનુમોદના કરતા
હૈ, વહ ભાવ પ્રતિક્રમણ હૈ ।

આસ્રવ દ્વાર આદિકી વિશેષ રૂપસે વિવક્ષામોં તો પૂર્વોક્ત આસ્રવ
દ્વાર પ્રતિક્રમણ આદિ ચાર સ્થાન હોતે હોં । કહા મી હૈ—“ મિચ્છત્ત
પટિક્રમણં ” ઇત્યાદિ ।

તેનુ' નામ ક્ષયાય પ્રતિક્રમણુ છે. અશુભ, મન, વચન અને કાય યોગોનો
પરિત્યાગ કરવો તેનું નામ યોગપ્રતિક્રમણુ છે અવિવક્ષિત વિશેષોવાળા
આસ્રવદ્વારોથી જે પ્રતિનિવર્તન થાય છે, તેનું નામ ભાવપ્રતિક્રમણુ છે. કહું
પણુ છે કે “ મિચ્છતાઈ ન ગચ્છઈ ” ઇત્યાદિ—

જીવનું મન, વચન અને કાય વડે મિથ્યાત્વ આદિ ભાવોમાં જાતે જવું
નહીં, અન્યને તે ભાવોમાં લીન કરવા નહીં અને તે પ્રકારના ભાવોની અનુ-
મોદના કરતી નહીં તેનું નામ ભાવપ્રતિક્રમણુ છે. આસ્રવદ્વાર આદિની વિશેષ
રૂપે વિવક્ષામાં તો પૂર્વોક્ત આસ્રવદ્વાર પ્રતિક્રમણુ આદિ ચાર સ્થાન હોય છે.
કહું પણુ છે કે ‘ મિચ્છત્ત પટિક્રમણં ’ ઇત્યાદિ—(૧) મિથ્યાત્વ પ્રતિક્રમણુ,

यस्य मतिः सूत्रभाविता भवति, स एव भावप्रतिक्रमणं विधत्ते इति हेतोः सूत्रं वाचनीयं शिक्षणीयं च भवतीति सूत्रस्य पञ्चवाचनास्थानानि पञ्च शिक्षा स्थानानि चाह—

मूलम्—पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं वाएजा, तं जहा-संगहट्टयाए १, उवग्गहणट्टयाए २, णिज्जरणट्टयाए ३, सुत्ते वा मे पज्जव-जाए भविस्सइ ४, सुत्तस्स वा अवोच्छित्तिणयट्टयाए ५। पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं सिक्खिज्जा, तं जहा-णाणट्टयाए १, दंसणट्टयाए २, चरित्तट्टयाए ३, बुग्गहविज्जोयणट्टयाए ४, अहत्थे वा भावे जाणिस्सामित्तिकट्टु ४ सू० ३० ॥

छाया-पञ्चभिः स्थानैः सूत्रं वाचयेत्, तद्यथा-संग्रहार्थतायै, १ उवग्रहणार्थतायै, २ निर्जरणार्थतायै, ३ सूत्रं वा मे पर्यवयातं भविष्यति, ४ सूत्रस्य वा अव्युच्छित्ति-नयार्थतायै ५। पञ्चभिः स्थानैः सूत्रं शिक्षेत, तद्यथा-ज्ञानार्थतायै, दर्शनार्थतायै, चारित्र्यार्थतायै, व्युद्ग्रहविमोचनार्थतायै, यथास्थान् वा भावान् ज्ञास्यामीति कृत्वा ॥ सू० ३० ॥

टीका—‘ पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं ’ इत्यादि—

पञ्चभिः स्थानैः सूत्रं=श्रुतं वाचयेत्=राठयेत्, तान्येव पञ्चस्थानानि प्राह-तद्यथा-संग्रहार्थतायै-संग्रहणं संग्रहः-शिष्यकर्तृकं श्रुतोपादानं, तदेव अर्थः=प्रयो-जनं यस्य स तथा, तस्यभावस्तत्ता, तस्यै-‘ शिष्याः श्रुतानि संगृहीयु ’-रिति

सिध्यात्त्व प्रतिक्रमण १ असंघस्य प्रतिक्रमण २ कषाय प्रतिक्रमण ३ और अप्रशस्तयोग प्रतिक्रमण ४ ॥ सू० २९ ॥

टीकार्थ-जिसकी मति सूत्रभाविन होती है, वही भावप्रतिक्रमण करता है, इस कारणसे सूत्र वाचने योग्य होता है, और सिखने योग्य होता है, इसी अभिप्रायसे अब सूत्रकार पांच वाचना स्थानोंको कथन करते हैं।

(२) असंघस्य प्रतिक्रमण, (३) कषाय प्रतिक्रमण अने (४) अप्रशस्त योग प्रतिक्रमण ॥ सू० २९ ॥

टीकार्थ-नेनी मति सूत्रभाविन होय छे, ओ न लावप्रतिक्रमण करे छे. आ कसण्णे सूत्र वाचवा तथा शीणवा योग्य तथा शिष्यवा योग्य गण्णाय छे. तेथी न डवे सूत्रकार पांच वाचना स्थानानुं अने पांच शिक्षा स्थानानुं कथन

प्रयोजनेन सूत्रं वाचयेत् । अथवा-वाचनया एव शिष्या संगृहीता भवन्तीति शिष्यान् संग्रहीतुं सूत्रं वाचयेत् । इति प्रथमं स्थानम् १ । उपग्रहणार्थतायै-उपग्रहणं=पुष्टिः, तदेव अर्थः=प्रयोजनं यस्य स तथा, तस्य भावरतता, तस्यै-‘वाचिता एते शिष्यास्तपः संयमाराधने समर्थाः सन्त उपग्रह्णिता भवन्तु’ इति प्रयोजनेन सूत्रं वाचयेत्-इति द्वितीयं स्थानम् २ । निर्जरणार्थतायै-निर्जरणं=निर्जरा-कर्मक्षयः अर्थो यस्य स तथा तस्य भावरतता तस्यै-‘कर्मणि मे निर्जरतां गच्छन्तु’-इति हेतोः सूत्रं वाचयेत्-इति तृतीयं स्थानम् ३ । ‘सूत्रं वा मे पर्यवयातं भविष्यति, वा=अथवा वाचयतो मम सूत्रं पर्यवयातं श्यवान्=ज्ञानादि विशेषान् यात=प्राप्तं-ज्ञानविषयीकृतं भविष्यति’-इति हेतोः सूत्रं वाचयेत्-इति

‘पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं वाण्ज्जा’ इत्यादि सूत्र ३० ॥

टीकार्थ-पांच कारणोंसे सूत्र-श्रुत पढना चाहिये वे पांच स्थान इस प्रकारसे हैं-शिष्यजन श्रुतका संग्रह करे इस प्रयोजनसे शिष्यके लिये सूत्रकी वाचना देनी चाहिये अथवा वाचनासेही शिष्योंका संग्रहण होता है-वाचनासेही शिष्योंकी प्राप्ति होती है, इस अभिप्रायसे शिष्योंके लिये सूत्रकी वाचना देनी चाहिये ऐसा यह प्राप्रण कारण है, द्वितीय कारण ऐसा है, कि सूत्रकी वाचनासे युक्त किये गये शिष्य तप और संयमकी आराधना करनेमें समर्थ होते हैं, और तभी जाकर उनकी पुष्टि होती है, कर्म क्षय करनेके लिये वे शक्ति संपन्न बनते हैं, इस प्रयोजनसे श्रुत पढाना चाहिये तृतीय कारण ऐसा है-श्रुतकी वाचनासे मेरे कर्मोंकी निर्जरा हो इस अभिप्रायसे श्रुतकी वाचना देनी चाहिये

करे छे. “ पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं वाण्ज्जा ” इत्यादि--

टीकार्थ-नीचेना पांच छाण्णाने नीचे शिष्योने सूत्र-श्रुतनो अख्यास करावो जेधजे--(१) शिष्यो श्रुतनो संग्रह करे, आ प्रयोजनथी गुरुजे शिष्यने श्रुतनी वाचना देवी जेधजे, अथवा वाचना द्वारा जे शिष्योनी प्राप्ति थाय छे, जेवी मान्यताने करजे पण शिष्योने श्रुतनी वाचना देवी जेधजे.

(२) श्रुतनी वाचनाथी युक्त होय जेवो शिष्य जे तप अने संयमनी आराधना करवाने समर्थ होय छे, अने तयारे जे तेमनी पुष्टि थाय छे. कर्मनो क्षय करवाने तेजो समर्थ अने छे, आ प्रयोजनथी श्रुतनो अख्यास करावो जेधजे. (३) श्रुतनी वाचना देवाथी मारा कर्मनी निर्जरा थसे, जेवी वाचनाथी प्रेरणने पण श्रुतनी वाचना देवासां आवे छे. (४) “ सुत्ते

चतुर्थं स्थानम् ४। सूत्रस्य अव्युच्छित्तिनयार्थतायै-अव्युच्छित्तिः-अव्यवच्छेदो
 नैरन्तर्यमिति यावत्, तथा नयः=नयनं कालान्तरप्रापणं, स एव अर्थः=प्रयोजनं
 यस्य स तथा, तस्य भावस्तत्ता तरयै-कालान्तरेऽपि 'सूत्रपरम्परा अविच्छिन्ना
 तिष्ठतु' इति हेतोः सूत्रं वाचयेत्-इति पञ्चमं स्थानम् ५। तथा-पञ्चभिः स्थानैः
 कारणैः सूत्रं शिक्षेत, तान्येव स्थानान्याह-तत्रथा-ज्ञानार्थतायै-ज्ञानं=तत्त्वानां
 विवेकः, न एवार्थो यस्य स तथा तस्य भावरतता, तस्यै-तत्त्वपरिज्ञानार्थं सूत्रं
 शिक्षेत । १। दर्शनार्थतायै-दर्शनं=श्रद्धानं जिनवचनेष्वभिकचिस्तदर्थम् । २।
 चारित्र्यार्थतायै-चारित्र्यं=सदनुष्ठानं तदर्थम् । ३। व्युद्ग्रहविमोचनार्थतायै-
 विपरीत उद्ग्रहः-व्युद्ग्रहः=मिथ्यात्वाभिनिवेशः, तस्य विमोचनम्=स्वपरेभ्योऽप-

चतुर्थं कारण ऐसा है कि-“श्रुते वा मे पञ्जवयाण भविस्वइ” श्रुतकी
 वाचना देनेवाले श्रुते सूत्र ज्ञानादि विशेषोंका प्राप्त करानेवाला होगा
 पंचम कारण ऐसा है, कि सूत्रकी वाचना देनेसे सूत्र परम्परा विच्छिन्न
 नहीं होगी वह निरन्तर बनी रहेगी इस प्रकारके ये पांच कारण हैं,
 जो श्रुतकी वाचना देनेके लिये इस सूत्र द्वारा प्रकट किये गये हैं ।

अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं, कि इन पांच कारणोंसे सूत्र
 सीखना चाहिये-उनमें प्रथम कारण ऐसा है कि सूत्रके सीखनेसे तत्त्वोंका
 विवेक प्राप्त होगा अर्थात् तत्त्वोंके परिज्ञानके लिये सूत्र सीखना चाहिये
 १ तत्त्वोंकी श्रद्धा-जिनप्रणीत वचनोंमें लक्षि प्राप्त करनेके लिये सूत्र
 सीखना चाहिये-सदनुष्ठानरूप चारित्र्यकी आराधना करनेके लिये

वा मे पञ्जवयाण भविस्वइ” श्रुतनुं अध्ययन कराववाथी भने सूत्र (श्रुत)
 ज्ञानादि विशेषोनी प्राप्ति थये, ओवी लावनाथी पणु गुरु द्वारा शिष्योने श्रुतनी
 वाचना देवामां आवे छे. (५) शिष्योने सूत्रनी वाचना देवथी सूत्र परम्परा
 निरन्तर आलु रहेशे-सूत्रो विच्छन्न नहीं थाय, ओवी लावनाथी पणु
 शिष्योने श्रुतनुं अध्ययन कराववामां आवे छे. आ प्रकारना पांच कारणोने
 लीधे सूत्रनी वाचना देवामां आवे छे.

इसे सूत्रकार सूत्र शीघ्रवानुं शा कारणे जरूरी छे, ते गतावतां पांच
 कारणोनुं निरूपणु करे छे-(१) तत्त्वोना परिज्ञानने निमित्त सूत्रनुं अध्ययन
 थलुं लोभ्ये श्रुतना अध्ययन विना केवली प्ररूपित धर्माना तत्त्वोनुं ज्ञान प्राप्त
 थलुं शकतुं नथी. (२) तत्त्वोमां श्रद्धा-जिन प्रणीत वचनोमां लक्षि प्राप्त करवा
 माटे पणु सूत्रनुं अध्ययन करलुं लोभ्ये (३) सदनुष्ठान रूप चारित्र्यनी आरा-
 धना करवाने माटे सूत्रनुं अध्ययन करवुं लोभ्ये. (४) मिथ्यात्व रूप अभि

नयनं, तन्निमित्तम् । ४ । वा=अथवा ' यथास्थान्=तीर्थंकरप्ररूपितान् यथाऽव-
स्थितान् भावान्=जीवाजीवादिस्वरूपान् ज्ञास्यामि '-इतिकृत्वा=इति हेतोः सूत्रं
शिक्षेत । ५ ॥ सू० ३० ॥

पूर्वं यथावस्थितभावाः प्रोक्ताः, ते च ऊर्ध्वलोकादिषु सन्ति, तत्र सौधर्मा-
दीनां यथावस्थितान् भावानाश्रित्य सूत्रत्रयम्, तथा नारकादीनां यथावस्थितान्
भावानाश्रित्य सूत्रचतुर्विंशतिं च प्राड--

मूलम्—सोहर्मसीलाणेषु णं कप्पेषु विमाणा पंचवण्णा
पणत्ता, तं जहा-किण्हा जाव सुक्किह्हा १। सोहर्मसीलाणेषु णं
कप्पेषु विमाणा पंच जोयणत्तयाइं उहुं उच्चत्तेणं पणत्ता २।
वंभलोगलंतएसु णं कप्पेषु देवाणं भवधारणिज्जसरीरगा उक्कोसेणं
पंचरयणी उहुं उच्चत्तेणं पणत्ता ३। नेरइया णं पंचवन्ने
पंचरसे पुग्गले वंधिंसु वा वंधंति वा वंधिस्संति वा, तं जहा-
किण्हे जाव सुक्किह्हे, तित्ते जाव महुरे। एवं जाव वेसाणिया ॥सू०३१॥

छायण-सौधर्मेज्ञानयोः खलु कल्पयोः विमानाः पञ्चवर्णाः प्रज्ञप्ताः तत्रथा-कृष्णा-
यावत् शुक्लाः १। सौधर्मेज्ञानयोः खलु कल्पयोः विमानाः पञ्चयोजनशतानि
ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः । २। ब्रह्मलोक लान्तरुयोः खलु कल्पयोः देवानां भवधा-
रणीयशरीरकाणि उत्कर्षेण पञ्चरत्नीनि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ३। नेरयिकाः खलु
पञ्चवर्णान् पञ्चरसान् पुद्गलान् अवधन्न् वधन्ति भन्तस्यन्ति वा, तद्यथा-कृष्णान्
यावत् शुक्लान्, तिकान् यावद् मधुरान् एवं यावद् वैमानिकाः २४ ॥सू०३१॥

सूत्र सीखना चाहिये लिख्यात्त्व रूप अभिनिवेश दूर करनेके लिये सूत्र
सीखना चाहिये अथवा-तीर्थंकर प्ररूपित यथावस्थित जीवाजीवादि
रूप तत्त्व मुझे ज्ञान होंगे ऐसे प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये सूत्र
सीखना चाहिये इस प्रकारके ये पांच कारण सूत्रके सीखनेमें हैं ॥३०॥

निवेशने दूर करवा भाटे सूत्रतुं अध्ययन करवुं लेधये. (प) तीर्थंकर प्ररू-
पित यथावस्थित एव अथवादि रूप तत्त्वतुं मने ज्ञान थवुं लेधये, येवी
भावनाथी प्रेरार्थने पणु श्रुततुं अध्ययन करवाभां आवे छे. आ प्रकारता
पांच कारणेने दीधे सूत्र (श्रुत) तुं अध्ययन थाय छे. ॥ सू. ३० ॥

ટીકા—' સોહમ્મીસાણેસુ ણં ' ઇત્યાદિ—

વ્યાખ્યા સ્પષ્ટા । નવરમ્-અવધનન્, વધનન્તિ, એત્સ્યન્તિ, એપાં પદાનાં શરી-
રાદિતયા પુદ્ગલાનાં વન્ધનં કૃતવન્તઃ કુર્વન્તિ કરિષ્યન્તિ ચેત્યર્થઃ । નૈરયિકાણા-
મિવ સર્વેપાં ચતુર્વિંશતિદણ્ડકોક્તાનાં પશ્ચવર્ણપશ્ચરસાત્મકપુદ્ગલવન્ધનં ભવતિ ।
તદુક્તમ્—' એવં જાત્ર વેમાણિયા ' ઇતિ ॥ સૂ. ૩૧ ॥

કથિત યથાવસ્થિત આવ ઉર્ધ્વલોક આદિકોમં હોતે હૈં ડનમં સૌ-
ધર્માદિકોકે યથાવસ્થિત આવોંકો લેકર ત્રીન સૂત્ર, તથા નારકાદિસે
લેકર વૈશ્વાનિક તક ચૌવીસ દણ્ડકોં યથાવસ્થિત આવોંકો લેકર ૨૪ સૂત્ર
સૂત્રકાર કહતે હૈં—'સોહમ્મીસાણેસુ' ઇત્યાદિ સૂ. ૩૧ ॥

ટીકાર્થ—સૌધર્મ ઈશાન કલ્પોંકે વિમાન પાંચ વર્ણોંવાલે કહે ગયેહૈં । જૈસે-
કૃષ્ણવર્ણવાલે, નીલવર્ણવાલે, લાલવર્ણવાલે, પીતવર્ણવાલે, શુકલ વર્ણ-
વાલે સૌધર્મ ઓર ઈશાન ઇન દો કલ્પોંમં જો વિમાનહૈં વે ઝંચાઈમં પાંચસૌ
પાંચસૌ યોજનકે હૈં—અર્થાત્ ડનકી ઝંચાઈ પાંચસૌ યોજનકી હૈ । બ્રહ્મ
લોક ઓર લાન્તક ઇન દો કલ્પોંકે દેવોંકા ભવધારણીય શરીર ઉત્કૃષ્ટસે
પાંચ રત્નિ પ્રમાણ ઝંચા હૈ, નૈરયિક જીવોંને પાંચ વર્ણોંવાલે પુદ્ગલોંકા
પાંચ રસોંવાલે પુદ્ગલોંકા વન્ધ કિયા હૈ, અવ ઓ વે એસેહી પુદ્ગલોંકા
વન્ધ કરતે હૈ, ઓર ભવિષ્યસ્કાલમં ઓ વે એસેહી પુદ્ગલોંકા વન્ધ કરેગે ।
પાંચ વર્ણોંવાલે પુદ્ગલોં ડનહોંને કૃષ્ણવર્ણકે પુદ્ગલોંસે લેકર યાંવત્ શુકલ-

ઉપર્યુક્ત યથાવસ્થિત ભાવ ઉર્ધ્વલોક આદિકોમાં હોય છે. ઉર્ધ્વલોકમાં
આવેલા સૌધર્માદિકના યથાવસ્થિત ભાવોનું ત્રણ સૂત્રો દ્વારા અને નારકાદિ-
કોના યથાવસ્થિત ભાવોનું ૨૪ સૂત્ર દ્વારા સૂત્રકાર નિરૂપણ કરે છે—

“ સોહમ્મીસાણેસુ ” ઇત્યાદિ—

સૌધર્મ અને ઈશાન કલ્પોનાં વિમાનો પાંચ વર્ણવાળાં કહ્યાં છે. એટલે
કે તે વિમાનો કૃષ્ણ વર્ણવાળાં, નીલ વર્ણવાળાં, લાલ વર્ણવાળાં, પીત વર્ણ-
વાળાં અને શુકલ વર્ણવાળાં હોય છે. સૌધર્મ અને ઈશાન કલ્પોમાં જે વિમાનો
છે તેમની ઊંચાઈ ૫૦૦ યોજનની છે. બ્રહ્મલોક અને લાન્તક કલ્પોના દેવોના
ભવધારણીય શરીરની ઉત્કૃષ્ટ ઊંચાઈ પાંચ રત્નિપ્રમાણ (પાંચ હાથની) છે.

નારક જીવોએ પાંચ વર્ણવાળા પુદ્ગલોનો અને પાંચ રસોવાળા પુદ્ગલોનો
બન્ધ કર્યો છે, હાલમાં પણ તેઓ એવા જ પુદ્ગલોનો બન્ધ કરે છે અને
ભવિષ્યમાં પણ તેઓ એવા જ પુદ્ગલોનો બન્ધ કરશે. આ કથનનું તાત્પર્ય
એ છે કે તેમણે કૃષ્ણથી લઈને શુકલ પર્યન્તના પાંચ વર્ણવાળા પુદ્ગલોનો

तिर्यग्लोके च जम्बूद्वीपादयोयथावस्थिता भावाः सन्ति, तानाश्रित्य सूत्र चतुष्टयीं प्राह—

मूळम्-जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पन्वथस्स दाहिणैणं गंगाम-
हाणई, पंच महाणईओ समप्पेति, तं जहा-जउणा १, सरऊ
२ आदी ३ कोसी ४ मही ५। १। जंबू मंदरस्स दाहिणैणं सिंधु-
महाणई, पंच महाणईओ समप्पेति, तं जहा-सयहु १, विभासा
२, वितत्था ३, एरावई ४ चंदभागा ५। २। जंबू मंदरस्स उत्त-
रेणं रत्ता महाणई, पंच महाणईओ समप्पेति, तं जहा-किण्हा

वर्ण तकके पुद्गलोंका और पांच रसोंवाले पुद्गलोंमें उन्होंने तिक्त रससे लेकर यावत् मधुर रसवाले पुद्गलों तकका बन्ध किया है, इसी तरहका इनके बन्ध होनेका कथन वर्तमान कालमें और भविष्यत् कालमें भी कर लेना चाहिये इसी तरहका इन वर्णवाले पुद्गलोंका और रसवाले पुद्गलोंका कथन त्रिकालको लेकर यावत् वैमानिक देवों तक कर लेना चाहिये नारकसे लेकर वैमानिक तक चौबीस दण्डकों के जीवों में पांच वर्ण दो गंध पांच रस आठ स्पर्श वाले पुद्गलोंका बन्ध हुआ है, होता है, और आगे होगा ऐसा जो यह कथन है, वह शरीरादि रूपसे उनके उनका बन्ध हुआ है, वह होता है, और आगे भी उनका उनके बन्ध होगा इस रूपसे समझना चाहिये ॥ सूत्र ३१ ॥

अने तिक्तथी लघने मधुर पर्यन्तना पंच रसवाणा पुद्गलानो गन्ध लूत-
काणमां करीं छे. अे न प्रकारनो गन्ध तेओ वर्तमानकाणमां पणु भांधे छे
अने लविष्यकाणमां पणु भांधशे. अेवुं कथन पणु अडणु थवुं नेधअे. आ
पांधे वणुवाणा अने पांधे रसवाणा पुद्गलानो गन्धनुं कथन त्रिकाणने अनु-
लक्षीने वैमानिक पर्यन्तना लयोमां पणु थवुं नेधअे नारकोथी लघने वैमा-
निको पर्यन्तना थेवीसे दंडकना लयो पांध वणुवाणां अने पांध रसवाणा
पुद्गलानो गन्ध करता डता, करे छे अने करशे. आ कथननो लावार्थ अे छे
के तेमने शरीरादि इपे तेमनो गन्ध थयो डतो, थय छे अने लविष्यमां
पणु थवानो न छे. ॥ सू० ३१ ॥

૧ મહાકિણ્ણ ૨ નીલા ૩ મહાનીલા ૪ મહાતીરા ૫ ૩ । જંબૂ-
મંદરસ્સ ઉત્તરેણં રક્તાવર્હ મહાનર્હ, પંચમહાનર્હઓ સમર્પેતિ,
તં જહા-હંદા ૧ હંદસેળા ૨ સુસેળા ૩ વારિસેળા ૪ મહાભોયા
૫ ૪ ॥ સૂ૦ ૩૨ ॥

છાયા—જમ્બૂદ્વીપે મન્દરસ્ય પર્વતસ્ય દક્ષિણે ગઙ્ગા મહાનદી, પશ્ચ મહાનદ્યઃ
સમાપ્નુવન્તિ, તથથા—યમુના ૧, સરયુઃ ૨ આદી ૩ કોશી ૪ મહી ૫ । ૧ ।
જમ્બૂ મન્દરસ્ય દક્ષિણે સિન્ધુઃ મહાનદી, પશ્ચ મહાનદ્યઃ સમાપ્નુવન્તિ, તથથા—
શતદ્રૂઃ ૧, વિપાશા ૨, વિતસ્તા ૩, ણેરાવતી ૪, ચન્દ્રભાગા ૫ । ૨ । જમ્બૂ મન્દ-
રસ્ય ઉત્તરે રક્તા મહાનદીઃ પશ્ચ મહાનદ્યઃ સમાપ્નુવન્તિ, તથથા—કૃષ્ણા ૧ મહા-
કૃષ્ણા ૨ નીલા ૩ મહાનીલા ૪ મહાતીરા ૫ । ૩ । જમ્બૂ મન્દરસ્ય ઉત્તરે રક્તા-

તિર્યંગલોકર્મે જમ્બૂદ્વીપ આદિ ભાગ જૈસે અવસ્થિત હૈં, સૂત્રકાર અથ
અનકો આશ્રિત કરકે સૂત્ર ચલુપ્તયકા કથન કરતે હૈં—

‘જંબુદ્વીપે દીવે મંદરસ્સ પન્ચયસ્સ દાહિણેણં’ ઇત્યાદિ સૂત્ર ૩૨ ॥

જમ્બૂદ્વીપ નામકે દ્વીપમેં મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામેં જો ભરત-
ક્ષેત્રમેં ગંગા નામની મહાનદી હૈ, ઉસમેં પાંચ મહાનદિયાં મિલી
હુઈ હૈં—જૈસે—યમુના ૧ સરયુ ૨ આદી ૩ કોશી ૪ ઓર મહી ૫ (૧)

જમ્બૂદ્વીપ નામકે દ્વીપમેં મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામેં જો સિન્ધુ
મહાનદી હૈ, ઉસમેં ઓ પાંચ મહાનદિયાં મિલી હુઈ હૈં, જૈસે—શતદ્રૂ ૧
વિપાશા ૨ વિતસ્તા ૩ ણેરાવતી ૪ ઓર ચન્દ્રભાગા ૫ (૨)

જમ્બૂદ્વીપ નામકે દ્વીપમેં મન્દર પર્વતની ઉત્તર દિશામેં રક્તા નામની

તિર્યંગલોકમાં જંબૂદ્વીપ આદિ ક્ષેત્રો આવેલાં છે. તેમાં પર્વતો, નદીઓ
વગેરેનો સહભાવ છે. આ વિષયને અનુલક્ષીને સૂત્રકાર ૨૪ સૂત્રોનું કથન કરે છે—

“ જંબુદ્વીપે દીવે મંદરસ્સ પન્ચયસ્સ દાહિણેણં ” ઇત્યાદિ—

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં જે ભરતક્ષેત્ર
આવેલું છે, તે ભરતક્ષેત્રમાં ગંગા નામની મહાનદી વહે છે. તેને પાંચ મહા-
નદીઓ મળે છે જેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) યમુના, (૨) સરયુ,
(૩) આદી, (૪) કોશી અને (૫) મહી ॥ ૧ ॥

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં જે સિન્ધુ નામની
મહાનદી વહે છે તેને પાંચ મહાનદીઓ મળે છે—(૧) શતદ્રૂ (૨) વિપાશા
(૩) વિતસ્તા, (૪) ણેરાવતી અને (૫) ચન્દ્રભાગા । ૨ ।

જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં મન્દર પર્વતની ઉત્તર દિશામાં જે રક્તા

वती महानदी पञ्च महानद्यः समाप्नुवन्ति, तद्यथा—इन्द्रा १, इन्द्रसेना २, सुषेणा ३ वारिषेणा ४ महाभोगा ५ । ४ । ॥ सू० ३२ ॥

टीका—‘जंबुद्वीवे दीवे’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा । नवरं—जम्बूद्वीपाख्यमन्दरपर्वतस्य दक्षिणे=दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रे गङ्गा नाम महानदी वर्तते, तत्र पञ्च महानद्यः समाप्नुवन्ति=संगता भवन्ति । शेषं स्पष्टम् ॥ सू० ३२ ॥

अनन्तरसूत्रे भरतक्षेत्रे स्थिता महानद्यः प्रोक्ताः, तत्प्रस्तावात् सम्प्रति तद्वर्ति तीर्थकरसम्बन्धि सूत्रमाह—

मूलम्—पञ्च तित्थगरा कुमारवासमञ्ज्जे वासित्ता मुंडा जाव पव्वइया, तं जहा—वासुपुज्जे १ मल्ली २ अरिट्टिनेमी ३ पासे ४ वीरे ५ ॥ सू० ३३ ॥

छाया—पञ्च तीर्थकराः कुमारवासमध्ये उपित्वा मुण्डा यावत् प्रव्रजिताः, तद्यथा—वासुपूज्यो १ मल्लिः २ अरिट्टिनेमिः ३ पार्थः ४ वीरः ५ ॥ सू० ३३ ॥

जो महानदी है, उसमें पांच महानदियां मिली हैं जैसे—कृष्णा १ महा-कृष्णा २ नीला ३ महानीला ४ महातीरा ५ (३)

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें मन्दर पर्वतकी उत्तर दिशामें जो रक्ता-वती नामकी महानदी है, उसमें भी पांच महानदियां मिली हैं जैसे—इन्द्रा १ इन्द्रसेना २ सुषेणा ३ वारिषेणा ४ और महाभोगा ५ (४) ॥ सू० ३२ ॥

इस ऊपरके सूत्रमें भरतक्षेत्रमें स्थित जो महानदियां हैं, वे प्रकट की गई हैं, अब इसी भरतक्षेत्रके सम्बन्धको लेकर उसमें हुए जो तीर्थकर हैं उनके विषयमें सूत्रकार सूत्रका कथन करते हैं—

नामनी महानदी छे, तेने नीचेनी पांच महानदीओ मणे छे—(१) कृष्णा, (२) महाकृष्णा, (३) नीला, (४) महानीला अने (५) महातीरा ॥ ३ ॥

जम्बूद्वीप नामना द्वीपमां मन्दर पर्वतनी उत्तर दिशांमां जे रक्तावती नामनी महानदी छे तेने जे पांच महानदीओ मणे छे तेमनां नाम नीचे प्रभाषे छे—(१) इन्द्रा, (२) इन्द्रसेना, (३) सुषेणा, (४) वारिषेणा अने (५) महाभोगा । ४ ॥ सू. ३२ ॥

ऊपरना सूत्रमां भरतक्षेत्रमां आवेली महानदीओनां नाम प्रकट करवामां आया. हवे सूत्रकार जे भरतक्षेत्रमां थर्छ गयेला तीर्थकरैना विषयमां कथन करे छे. “पञ्च तित्थगरा कुमारवासमञ्ज्जे” इत्यादि—

टीका—‘ पंच तित्थगरा ’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा । नवरं-कुमारवायमध्ये कुमारं=कुमारत्वे वसनम्=अवस्थानम्-कुमारवासः, तन्मध्ये अर्थात्-कौमार्ये । उपित्वा=स्थित्वा । वासुपूज्यादयो भगवन्तो राज्येऽनभिषिक्ता एव दीक्षां गृहीतवन्त इति सूत्राख्यः ॥ सू० ३३ ॥

भरतादि क्षेत्रप्रस्तावात् क्षेत्रभूतचमरचञ्चादि वक्तव्यतां पञ्चस्थानकत्वेनाह-
मूलम्-चमरचञ्चाए राघहाणीए पंच सभा पणत्ता, तं जहा-सभासुहम्मा १, उत्रवायसभा २, अभिसेयसभा ३, अलंकारियसभा ४, ववसायसभा ५। एगमेगे णं इंदुट्टाणे पंच सभाओ पणत्ताओ, तं जहा-सभासुहम्मा १ जाव ववसायसभा ५ ॥ सू० ३४ ॥

छाया—चमरचञ्चायां राजधान्यां पञ्च सभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-सभा सुधर्मा १, उपपात सभा २, अभिषेक सभा ३, अलङ्कारिकसभा ४, व्यवसायसभा

‘पंच तित्थगरा कुमारवासनज्जे’ इत्यादि सू० ३३ ॥

पांच तीर्थंकर कुमारकालमेंही दीक्षित हुए हैं, उनके नाम इस प्रकारसे हैं—वासुपूज्य १ मल्लि २ अरिष्टनेमि ३ पार्श्वनाथ ४ और वीरप्रभु ५ इन पांचोंका राज्यमें अभिषेक नहीं हुआ है, इन्होंने विना राज्यमें अभिषिक्त हुएही दीक्षा ग्रहण की है ॥ ३३ ॥

भरतादि क्षेत्रके प्रस्तावको लेकर क्षेत्रभूत चमरचञ्चा आदिकी वक्तव्यताका कथन पांच स्थानोंको आश्रित करके अब सूत्रकार कहते हैं—

चमरचञ्चाए राघहाणीए’ इत्यादि सू० ३४ ॥

चमरचञ्चा नामकी राजधानीमें पांच सभा कही गई हैं जैसे—सुधर्मासभा १ उपपात सभा २ अभिषेक सभा ३ अलङ्कारिक सभा ४ एवं

पांच तीर्थंकरोंके पोटानी कुमारवस्थाभां न प्रमन्या लीधी डती. ओट्टे के राज्यगादीके तेमने अलिषेक थया पडेलं न तेमणे दीक्षा ग्रहण करी डती तेमनां नाम नीके प्रमाणे छे—(१) वासुपूज्य, (२) मल्लिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ अने (५) महावीर प्रभु ॥ सू. ३३ ॥

भरतादि क्षेत्रविषयक प्रस्ताव आली रह्यो छे अमरश्या नामनी राजधानी पणु ओक क्षेत्र उप छे तेथी हुवे सूत्रकार पांच स्थानाने आधार लधने अमरश्यानुं वर्णन करे छे. “चमरचञ्चाए राघहाणीए” इत्यादि—

अमरश्या नामनी राजधानीभां पांच सभा कही छे. ते सभाओंनां

५। एकैकस्मिन् खलु इन्द्रस्थाने पञ्च सभाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-सभा सुधर्मा १ यावद् व्यवसाय सभा ५ । ख० ३४ ॥

टीका—‘ चमरचंचाण ’ इत्यादि—

व्याख्या सुगमा । नवरं-चमरचञ्चा नाम राजधानी रत्नप्रभा पृथिव्यां चमरस्य असुरकुमारराजस्य बोध्या । यत्र देवसभा सा सुधर्मा सभा । यस्या-मुत्पद्यते सा उपपातसभा । यस्यामभिषेको भवति सा अभिषेकसभा । यस्यां मण्डनं क्रियते सा अलंकारिकसभा । यस्यां कर्तव्यानां विनिश्चयो भवति सा व्यवसाय सभा । एताः पञ्चाऽपि सभा यथाक्रमम् उत्तरपूर्वस्यां दिशि=ईशानकोणे द्रष्टव्या । इन्द्र स्थाने=इन्द्रनिवासभूते स्थाने इत्यर्थः ॥ सू० ३४ ॥

व्यवसाय सभा ५ एक एक इन्द्रस्थानमें पांच २ सभाएँ कही गई हैं जैसे-सुधर्मा सभा १ यावत् व्यवसाय सभा ५।

चमर चञ्चा नामकी राजधानी रत्नप्रभा पृथिवीमें असुरकुमारराज चमरकी है, जहाँ देवसभा है, वह सुधर्मा सभा है, जहाँ पर उत्पाद (जन्म) होता है, वह उपपात सभा है २ जिसमें अभिषेक होता है ३ जिसमें मण्डन किया जाता है, वह अलंकारिक सभा है, और जिसमें कर्तव्यकार्योंका विनिश्चय होता है, वह व्यवसाय सभा है, ये पाँचोंही सभाएँ यथाक्रमसे उत्तर पूर्व दिशामें ईशान कोनेमें हैं । इन्द्रका जो निवासभूत स्थान है, वह इन्द्रस्थान है ॥ सू० ३४ ॥

नाम नीचे प्रमाण्ये—(१) सुधर्मा सभा, (२) उपपात सभा, (३) अभिषेक सभा, (४) अलंकारिक सभा, अने (५) व्यवसाय सभा.

प्रत्येक इन्द्रस्थानमां सुधर्मा सभाथी लधने व्यवसाय सभा पर्यन्तनी पांच सभाओ डोय छे.

रत्नप्रभा पृथ्वीमां असुरकुमारराज चमरनी चमरचञ्चा नामनी राजधानी आवेदी छे. ते राजधानीमा ज्यां देवानी सभा भणे छे ते स्थानने सुधर्मा सभा कडे छे, ज्यां उत्पाद (जन्म) थाय छे ते स्थानने उपपात सभा कडे छे. जे सभामां अभिषेक थाय छे, तेने अभिषेक सभा कडे छे. जेमां मंडन करवामां आवे छे, तेनुं नाम अलंकारिक सभा छे. जे सभामां कर्तव्य कार्योंनि निर्णय थाय छे, ते सभाने व्यवसाय सभा कडे छे. ते पांचे सभाओ ईशान कोणुमां अनुक्रमे आवेदी छे. इन्द्रतुं जे निवासस्थान डोय छे तेने इन्द्रस्थान कडे छे. ॥ सू. ३४ ॥

अनन्तरसूत्रे देवनिवाम उक्तः, तदधिकारादेव सम्प्रति नक्षत्रसूत्रमाह—

मूलम्—पंच नक्षत्राणि पंचतारा पण्यत्ता, तं जहा-धनिष्ठा
१, रोहिणी २, पुनर्वसु ३, हस्तो ४, विशाखा ५ ॥ सू० ३५ ॥

छाया—पञ्च नक्षत्राणि पञ्चताराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—धनिष्ठा १, रोहिणी
२, पुनर्वसुः ३, हस्तः ४, विशाखा ५ ॥ सू० ३५ ॥

टीका—‘पंच नक्षत्राणि’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ३५ ॥

प्राणिनां नक्षत्रादि देव रूपता च कर्मपुद्गलचयादि सत्त्वे एव भवतीति
चगादीनाह—

मूलम्—जीवाणां पंचद्व्यणनिवृत्तिषु पोग्गले पावकर्मत्ताए
विणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा-एगिंदिय-
निवृत्तिषु जाव पंचिंदियनिवृत्तिषु । एवं--चिण उवचिण बंध
उदीर वेद तह तह णिज्जरा चेत्र । पंच पएस्सिया खंधा अणंता
पण्यत्ता । पंच पएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्यत्ता जाव
पंचगुणल्लुक्खवा पोग्गला अणंता पण्यत्ता ॥ सू० ३६ ॥

॥ पंचमद्व्यणस्स तर्हो उद्देशो ॥

॥ पंचमं ठाणं समत्तं ॥

इस ऊपरके सूत्रमें देव निवास कहा है, इसी अधिकारको लेकर
अब सूत्रकार नक्षत्र सूत्रका कथन करते हैं—

‘पंच नक्षत्राणि पंच तारा पण्यत्ता’ इत्यादि सू० ३५ ॥

पांच नक्षत्र पांच ताराओंवाले कहे गये हैं जैसे—धनिष्ठा १ रोहिणी
२ पुनर्वसु ३ हस्त ४ और विशाखा ५ ॥ सूत्र ३५ ॥

आगला सूत्रमां देवनिवासनुं कथन कथुं. नक्षत्रो पणु देवो न्छे. तेथी
इवे सूत्रकार पांच स्थानोने आधारे नक्षत्रानुं कथन करे छे

“पंच नक्षत्राणि पंच तारा पण्यत्ता” इत्यादि—

नीचे लगेलां पांच नक्षत्रो पांच-पांच ताराओवाणां छे—(१) धनिष्ठा,
(२) रोहिणी, (३) पुनर्वसु, (४) हस्त अने (५) विशाखा. ॥ सू. ३५ ॥

છાયા—જીવાઃ સ્વલુ પશ્ચસ્થાનનિર્વર્તિતાન્ પુદ્ગલાન્ પાપકર્મતયા અચિન્વન્
વા, ચિન્વન્તિ વા ચેષ્યન્તિ વા, તથથા—એકેન્દ્રિયનિર્વર્તિતાન્ યાવત્ પશ્ચેન્દ્રિય-
નિર્વર્તિતાન્ । એવં—ચય ઉપચયો વન્ધઃ ઉદીરો વેદસ્તથા નિર્જરા ચૈવ । પશ્ચમદે-
શિકાઃ સ્કન્ધાઃ અનન્તાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ । પશ્ચમદેશાવગાઠાઃ પુદ્ગલાઃ અનન્તા પ્રજ્ઞપ્તાઃ
યાવત્ પશ્ચગુણરુક્ષાઃ પુદ્ગલા અનન્તાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ ॥ સૂ ૩૬ ॥

॥ પશ્ચમસ્થાનસ્ય તૃતીય ઉદ્દેશઃ ॥

॥ પશ્ચમં સ્થાનં સમાપ્તમ્ ॥

પ્રાણિયોમેં જો નક્ષત્રાદિ દેવતા રૂપતા હોતી હૈ, વહ કર્મપુદ્ગલચય
આદિકે હોને પરહી હોતી હૈ અતઃ અવ સૂત્રકાર ચય આદિકા કથન કરતે હૈં

‘જીવાણં પંચદ્વાણનિવ્વત્તિણ’ ઇત્યાદિ સૂ ૩૬ ॥

જીવોને પાંચ સ્થાનોંસે નિર્વર્તિત હુણ પુદ્ગલોંકા પાપકર્મ રૂપસે ચયન
(ઉપાર્જન) ક્રિયા હૈ, વર્તમાનમેં વે ઉનકા ચયન કરતે હૈં, ઓર આગે
મી વે ઉનકા ચયન કરેંગે વે પાંચ સ્થાન ઇસ પ્રકારસે હૈં—એકેન્દ્રિયરૂપ
સ્થાન ૧ યાવત્ પશ્ચેન્દ્રિયરૂપ સ્થાન ઇસી તરહકા કથક ચય, ઉપચય,
વન્ધ, ઉદીરણા, વેદ તથા નિર્જરાકે સમ્બન્ધમેં મી જાનના ચાહિયે ।

પાંચ પ્રદેશોંવાલે પુદ્ગલ સ્કન્ધ અનન્ત કહે ગયે હૈં । પાંચ પ્રદેશોંમેં
અવગાઠ હુણ પુદ્ગલ સ્કન્ધ અનન્ત કહે ગયે હૈં । યાવત્ પાંચ ગુણ રુક્ષ-
વાલે પુદ્ગલ સ્કન્ધ અનન્ત કહે ગયે હૈં ?

જીવોમાં જે નક્ષત્રાદિ દેવતારૂપતા હોય છે તે કર્મપુદ્ગલોનો અથ આદિ
થવાથી જ થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર અથ આદિનું કથન કરે છે.

“ જીવાણં પંચદ્વાણનિવ્વત્તિણ ” ઇત્યાદિ—

જીવોએ પાંચ સ્થાનોમાંથી નિર્વર્તિત થયેલાં પુદ્ગલોનો પાપકર્મ રૂપે
અથ કર્યો છે—ઉપાર્જન કર્યું છે, વર્તમાન ક્ર.ને પણ તેઓ તેમનો અથ કરે
છે અને ભવિષ્યમાં પણ તેઓ તેમનો અથ કરશે તે પાંચ સ્થાનો નીચે
પ્રમાણ છે—(૧) એકેન્દ્રિય રૂપ સ્થાન, (૨) દ્વીન્દ્રિય રૂપ, (૩) ત્રીન્દ્રિય રૂપ,
(૪) ચતુરિન્દ્રિય રૂપ અને (૫) પશ્ચેન્દ્રિય રૂપ સ્થાન. એ જ પ્રકારનું કથન
ઉપચય, વન્ધ, ઉદીરણા, વેદન તથા નિર્જરા વિષે પણ સમજ્યું.

પાંચ પ્રદેશવાળા પુદ્ગલસ્કન્ધ અનન્ત કહ્યા છે, પાંચ પ્રદેશોમાં અવગાઠિત
થયેલા પુદ્ગલસ્કન્ધ અનન્ત કહ્યા છે, (યાવત્), પાંચ ગણી રુક્ષતાવાળાં પુદ્ગલ-

ટીકા--' જીવા ણં ' ઇત્યાદિ--

અસ્ય વ્યાખ્યા પૂર્વવદ્ વોધ્યા । નયરં તસ્મિન્-તસ્મિન્ સ્થાને તત્તસંખ્યક-
સ્થાનકત્વેનોક્તમ્ । અત્ર તુ પશ્ચ સ્થાનકત્વેનેતિ ॥ સૂ૦ ૩૬ ॥

ઇતિ શ્રી વિશ્વવિખ્યાત-જગદ્ગુહ્ય-પ્રસિદ્ધવાચક-પશ્ચદગમાપાકલિતલલિતકલા-
પાલાપક-પ્રવિશુદ્ધગદ્યપદ્યનૈકગ્રન્થનિર્માપક-વાદિમાનમર્દક - શ્રીશાહુત્ર-
પતિ કોલહાપુરરાજમદત ' જૈનશાસ્ત્રાચાર્ય ' પદ્મધૂષિત-કોલહાપુર-
રાજગુરુ વાલબ્રહ્મવારી- જૈનાચાર્ય - જૈનધર્મદિવાકર-પૂજ્યશ્રી --
ઘાસીલાલવ્રતિવિરચિતાયાં ' સ્થાનાંગસુત્રસ્ય ' સુધાખ્યાયાં
વ્યાખ્યાયાં પશ્ચમસ્થાનસ્ય તૃતીયોદ્દેશઃ સમ્પૂર્ણઃ ॥ ૬-૩ ॥

પશ્ચમં સ્થાનમ્ સમ્પૂર્ણમ્

इन सब सूत्रोंकी व्याख्या सुगम है, तथा पूर्वमें उस उस स्थानमें
उस उस स्थानकी संख्याके रूपसे उनकी व्याख्या जैसी की गई है,
वैसीही व्याख्या इनकी यहां पश्च स्थानक रूपसे कर लेनी चाहिये ।

श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवकर श्री घासीलालजी महाराजकृत स्थानांग-
सुत्रकी सुधा नामकी व्याख्या के पांचवें स्थानका तीसरा

उद्देशक समाप्त ॥ ६-३ ॥

॥ पांचवा स्थान समाप्त ॥

સ્થાનાંગ સૂત્રોની અનંત ક્રમાં છે આ ણમાં સૂત્રોની વ્યાખ્યા સુગમ છે. આગળ જે
સ્થાનમાં તે તે સ્થાનની સંખ્યા રૂપે તેમની જેવી વ્યાખ્યા કરવામાં આવી છે,
એવી જ વ્યાખ્યા અહીં પાંચ સ્થાન રૂપે કરવી લેઈએ. ॥ સૂ. ૩૬ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય જૈનધર્મ દિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજકૃત સ્થાનાંગસૂત્રની
સુધા નામની ટીકાના પાંચમા સ્થાનનો ત્રીજો ઉદ્દેશો સમાપ્ત ॥ ૫-૩ ॥

॥ પાંચમું સ્થાન સમાપ્ત ॥

षष्ठं स्थानकम् प्रारभ्यते—

उक्तं पञ्चमं स्थानम्, सम्प्रति संख्याक्रमप्राप्ते षष्ठं स्थानमुच्यते । अस्य च पूर्वेण सहायमभिसम्बन्धः—पूर्वस्मिन् स्थाने जीवादिपर्यायाः प्ररूपिताः अत्रापि तेषामेव प्ररूपणा क्रियते, इत्यनेन सम्बन्धेन आयातस्य अस्य षष्ठस्थानकस्येद-
मादिमं सूत्रम्—“छहिं ठाणेहिं इत्यादि

अस्यानन्तरसूत्रेण सहायं सम्बन्धः—

अनन्तर स्थानकान्तिमसूत्रे ‘पञ्चगुणरूक्षाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः, इत्यु-
क्तम्, एषां पुद्गलानां प्रज्ञापकत्वमर्थतरतीर्थकराणां, सूत्रतश्च गणधराणां भवति,
ते च यैर्गुणैर्युक्ताएव भवन्तीति तान् गुणान् प्रदर्शयति—

॥ छट्टा स्थानका प्रथम उद्देशक ॥

पांचवां स्थान कहा जा चुका है, अब संख्याके क्रमसे प्राप्त हुआ छठा स्थान कहा जाता है, इसका पूर्व स्थानके साथ ऐसा सम्बन्ध है, कि पूर्वस्थानमें जीवादि पर्याये प्ररूपित हुई हैं, यहां पर भी वे ही प्ररूपित की जा रही हैं, तथा पांचवे स्थानके अन्तके सूत्रके साथ इस छठे स्थानके प्रथम सूत्रका सम्बन्ध ऐसा है, कि पांचवे स्थानके अन्तिम सूत्रमें जो पंच गुणे रूक्ष पुद्गल स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं, सो इनकी ऐसी अर्थ रूपसे प्रज्ञापना तीर्थकरोंनेकी है, और सूत्र रूपसे प्ररूपणा गणधरोंने की है, अतः जिन गुणोंसे युक्त होते हैं, उन्हीं गुणोंका अब सूत्रकार कथन करते हैं—‘छहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे’ इत्यादि ॥

— स्थान ६ उद्देशक १ —

पांचवां स्थाननुं कथन समाप्त थयुं. डवे छट्टा स्थाननुं कथन करवावां आवे छे. पूर्वस्थान साथे तेना संभंध आ प्रकारने छे—

पूर्व स्थानवां लुवादि पर्यायीनी प्ररूपणा करवावां आवी छे, अह्नी पञ्च तेमनी न प्ररूपणा करवावां आवशे. पांचवां स्थानकना छेदला सूत्र साथे आ स्थानना पडेलो सूत्रने संभंध आ प्रकारने छे—पांचवां स्थानना अन्तिम सूत्रवां ओतुं कडेवावां आव्यु छे के पांच गणी रूक्षतावाणा पुद्गलस्कन्ध अनन्त कला छे. तेमनी अर्थरूपे आ प्रकारनी प्रज्ञापना तीर्थकरोंने करी छे, अने सूत्र रूपे प्ररूपणा गणधरोंने करी छे ते गणधरोंने गुणोथी युक्त डोय छे ते गुणोतु सूत्रकार डवे कथन करे छे.

“छहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे” इत्यादि—

मूलम्—छहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे अरिहृद्गणं धरित्तए,
तं जहा--सङ्गी पुरिसजाए १, सन्ने पुरिसजाए २, मेहावी पुरि-
सजाए ३, बहुस्सुए पुरिसजाए ४, सत्तिमं पुरिसजाए ५, अप्पा-
धिकरणे पुरिसजाए ६ ॥ सू० १ ॥

छाया-पङ्क्तिः स्थानैः सम्पन्नोऽनगारः अर्हति गणं धारयितुम्, तद्यथा-श्रद्धिपुरुष-
जातम् १, सत्यम् पुरुषजातम् २, मेधावि पुरुषजातम् ३, बहुश्रुतं पुरुषजातम्
४, शक्तिमत् पुरुषजातम् ५, अल्पाधिकरणं पुरुषजातम् ६ ॥ सू० १ ॥

टीका—‘ छहिं ठाणेहिं ’ इत्यादि—

पङ्क्तिः स्थानैः=शुणैः सम्पन्नः अनगारः=साधुरर्हति=योग्यो भवति गणं=
गच्छं धारयितुं=मर्यादायां संवाचयितुम् । तान्वेव सगानान्पाद-तद्यथा-श्रद्धिपु-
रुषजातम्=श्रद्धाशीलः पुरुषविशेषः-यः कश्चित् पुरुषः श्रद्धाशीलो भवति स-
इत्यर्थः । इति प्रथमो भेदः । तथा-सत्यं पुरुषजातम्-सद्भ्यो-जीवेभ्यो हित
सत्यं-जीवानां हितचिन्तनपरः पुरुषविशेषः । एवंविध पुरुषो गणधारक आदे-

टीकार्था—जो अणगार छह स्थानोंसे शुणोंसे युक्त होनाहै, वही अणगार
गच्छको धारण करनेके योग्य होता है, गणोंको मर्यादामें चलानेके
योग्य होता है । वे स्थान इस प्रकारसे हैं—श्रद्धि पुरुष जान १ सत्य
पुरुष जात २ मेधावि पुरुष जान ३ बहुश्रुत पुरुष जात ४ शक्तिमत्पुरुष
जात ५। और अल्पाधिकरण पुरुष जान ६ इनमें श्रद्धाशील जो पुरुष
विशेष है, वह श्रद्धि पुरुष जात है, जीवोंके लिये जो हितकारी होता
है वह सत्य है, जीवोंके हितके चिन्तनमें जो पुरुष विशेष लगा रहता
है, ऐसा वह पुरुष विशेष सत्य पुरुष जात है, ऐसा वह पुरुष विशेष

टीकार्थ—जे अणुगार छ स्थानोथी (छ प्रकारना शुणोथी) युक्त होय छे,
जे अणुगार गच्छने धारणु करवाने योग्य होय छे अने गच्छमां मर्या-
दानुं पावन करावनार होय छे. ते छ स्थान नीचे प्रमाणे छे—

(१) “ श्रद्धि पुरुषजात ”—जे श्रद्धाशील पुरुष विशेष होय छे, तेने
‘ श्रद्धि पुरुष जान ’ कहे छे. अष्टवे के गणुधरने तीर्थकर लगवानना वचनो
प्रत्ये अपार श्रद्धा होवी लोभजे.

(२) “ सत्य पुरुषजात ”—जोवने भाटे जे हितकारी होय छे, तानुं
नाम जे सत्य छे. जे पुरुष जोवना हितनुं चिन्तवन कयां करे छे तेने

યવચનશ્ચ ભવતિ । इति द्वितीयो भेदः । तथा-मेधाविपुरुषजातम्-धारणावती-
बुद्धिर्मेधा, सा वर्तते यस्य तत् मेधाविपुरुषजातम्-मेवायुक्तः पुरुषविशेषः ।
एवं प्रकारः पुरुषविशेषोऽन्यस्मात् जटिति श्रुतं गृहीत्वा शिष्यान्ध्यापयितु समर्थो
भवति । यद्वा-‘मेधावी’ इत्यभ्य मर्यादायां धावतीति निर्वचनम् । मर्यादायां
गमनशीलः पुरुषविशेषो गणं मर्यादायां प्रवर्तयति । इति तृतीयः । तथा-बहुश्रुतं-
बहु=प्रभूतं श्रुतं=सूत्रार्थरूप आगमो यस्य तत्तथा, पुरुषजातं=पुरुषविशेषः । अधी-
तप्रभूतश्रुतः पुरुषविशेषः इत्यर्थः । अबहुश्रुतस्तु न कदापि गणस्य उपकारको
भवति तदुक्तम् ।

गणधारक होता है, और आदेय वचनवाला होता है, यह द्वितीय
भेद है, धारणावाली जो बुद्धि है, उसका नाम मेधा है, ऐसी मेधासे
युक्त जो पुरुष विशेष होता है, वह मेधावि पुरुष जात है, ऐसा पुरुष
विशेष शीघ्रही दूसरोंसे श्रुतको ग्रहण कर शिष्योंको पढा देता है,
यद्वा-“ मेधावी ” इसका अर्थ जो “ मर्यादामें रहता है ” ऐसा भी
होता है, मर्यादामें गमनशील जो पुरुष विशेष होता है, वह गणको
गणकी मर्यादाके अनुसार अच्छी तरहसे चला सकता है, ऐसा यह
तृतीय स्थान है, जिसका सूत्ररूप एवं अर्थरूप आगम प्रभूत होना है,
है, अर्थात् जिसे सूत्रार्थरूप आगमका विशेष ज्ञान होता है, ऐसा वह
पुरुष विशेष बहुश्रुत पुरुषजात कहा गया है, क्योंकि जो अल्परूपसे
श्रुतका ज्ञाता है, वह गणका उपकारक नहीं होता है । कहा भी है—

‘सत्य पुरुष ज्ञत’ કહે છે. ગણધર આ પ્રકારનો પુરુષવિશેષ હોવો જોઈએ,
અને આદેય વચનોવાળો હોવો જોઈએ.

(૩) “મેધાવિ પુરુષજાત” —ધારણાવાળી જે બુદ્ધિ છે તેનું નામ ‘મેધા’
છે. એવી મેધાથી યુક્ત જે પુરુષવિશેષ હોય છે તેને મેધાવિ પુરુષ કહેવાય
છે. એવો મેધાવિ પુરુષ અન્યની પાસેથી શ્રુતનું ગ્રહણ પણ વિશેષ ઝડપથી
કરી શકે છે, અને શિષ્યોને ઝડપથી શ્રુત ભણાવી શકે છે. ‘મેધાવી’ એટલે
“ મર્યાદામાં રહેનારો ” એવો અર્થ પણ થાય છે. જે પુરુષ પોતે મર્યાદાનું
પાલન કરનારો હોય છે, તે ગણને પણ મર્યાદા અનુસાર સારી રીતે ચકાવી
શકે છે. માટે જ ગણધર મેધાવિ હોવા જોઈએ.

(૪) બહુશ્રુત પુરુષ જાત —જેનું સૂત્ર રૂપ અને અર્થ રૂપ આગમ પ્રભૂત
(વિશાળ) હોય છે એટલે કે જેને સૂત્રાર્થ રૂપ આગમનું વિશેષ જ્ઞાન હોય
એવા પુરુષને બહુશ્રુત પુરુષ કહેવાય છે એવા બહુશ્રુત અણગાર જ ગણધરના
પદને માટે યોગ્ય ગણાય છે જેને શ્રુતનું અદ્વિપજ્ઞાન હોય છે તે ગણને
ઉપકારક થઈ શકતો નથી. કહ્યું પણ છે કે—

“ सीमाण कुण्ड कह सो, तदाविहो हंद् नाणभाईणं ।

अद्वियाद्विय संपत्ति, संसारच्छेदणीं परमं ? ॥ १ ॥

छाया—शिष्याणां करोति कथं स तथाविधो हन्त ज्ञानादीनाम् ।

अधिकाधिकसंपत्तिं संसारोच्छेदनीं परमाम् ? ॥१॥ इति ।

तथा च—“ कहं सो जयउ अगीओ, कहं वा कुणउ अगीयनिस्ताए ।

कहं वा करेउ गच्छं, सवालवुड्डाउलं सो उ ॥ १ ॥ ”

छाया—कथं स यततामगीतं, कथं वा करोतु अगीतनिश्रायाम् ।

कथं वा करोतु गच्छं सवालवुड्डाकुलं स तु ॥ १ ॥ इति ।

अयमर्थः—अगीतार्थः साधुः स्वपरोद्धरणार्थं कथं यतताम्=प्रयत्नवान् भवतु ।

अबहुश्रुतत्वात् स स्वपरोद्धरणे न कदापि समर्थो भवति । तथा—अगीतनिश्रायाम्=अबहुश्रुतसाधोरधीनतायां वा कथं स्वोद्धरणार्थं प्रयत्नं करोतु । अबहुश्रु-

“ सीमाण कुण्ड कहं सो ” इत्यादि ।

अल्पश्रुतका ज्ञाना होना है, वह ज्ञानादिकोंकी अधिकाधिक संपत्तिको शिष्यजनोंमें उत्कृष्ट रूपसे कैसे कर सकता है, तात्पर्य यह है, कि जो अल्पश्रुतधारी होता है, वह पुरुष शिष्यजनोंमें ज्ञानादि रूप संपत्तिको अधिकाधिक रूपमें कैसे वृद्धि करता है, अर्थात् नहीं कर सकता है । तथा च—“ कहं सो जयउ अगीओ ” इत्यादि ।

इसका अर्थ ऐसा है, जो साधु अगीतार्थ होना है, वह स्व और परके उद्धार करनेमें प्रयत्नशाली कैसे हो सकता है, अर्थात् वह कदापि नहीं हो सकता है, क्योंकि वह अबहुश्रुतवाला होना है, तथा—अबहुश्रुत साधुकी अधीनतामें रहा हुआ गण अपने उद्धार करनेका प्रयत्न कैसे कर सकता है । अर्थात् कदापि वह आत्मोद्धार करनेमें प्रयत्नवाला नहीं हो सकता

“ सीमाण कुण्ड कहं सो ” इत्यादि—

अल्प श्रुतको ज्ञाना होय ओरो पुरुष शिष्योने ज्ञानादिक संपत्तिनी अधिकाधिक प्राप्ति केवी रीने करानी शके । श्रुतनुं विशाण ज्ञान धरावनार पुरुष न शिष्योने ज्ञानादि रूप संपत्तिनी वधादेमां वधादे प्राप्ति करानी शके छे. भाटे न गणधर अल्पश्रुतधारी होवा जेउओ.

वणी—“ कहं सो जयउ अगीओ ” इत्यादि—

जे साधु अगीतार्थ होय छे, ते पोताने अपने परने उद्धार करवावामां प्रयत्नशील केवी रीते थई शके छे । ओटने के ते तेम करवाने समर्थ थतो नथी. अल्पश्रुत साधुनी अधीनतामां रहयो गण कवी पणु आत्मोद्धार करवाना कार्यमां प्रयत्नशाली थई शकतो नथी. अल्पश्रुत साधुना वचनेमां

ताधीनो गणो न कदापि आत्मोद्धरणे समर्थो भवतीति । तथा-स गणाधिपोऽ-
बहुश्रुतः साधुरतु कथं वा सवालवृद्धाकुलं=वालवृद्धयुक्तं गच्छं करोतु=कार्यं प्रवर्त-
यतु । अबहुश्रुतत्वात् तस्य वचने गणो न निष्ठावान् भवतीति तेन प्रेरितोऽपि
गणः कार्यं न प्रवर्तते । इति चतुर्थः । तथा-शक्तिमत्-शक्तिः=शरीरादि सामर्थ्य-
रूपा, तद्युक्तं पुरुषजातं=पुरुषप्रकारः । एवंविध एव साधुरनेकविधापद्भ्यो गण
मात्मानं चोद्धर्तुं समर्थो भवति । इति पञ्चमः । तथा-अल्पाधिकरणम्-अल्पम्=
अविद्यमानम् अधिकरणं=स्वपरपक्षविषयः कलहो यस्य तत्तथाविधं पुरुषजातम् ।
' अल्प ' शब्दोऽत्र अभावार्थकः । एवविधः साधुरनुवर्तनया गणस्योपकारको

है । तथा वह अबहुश्रुतवाला साधु अपने गणके बालवृद्ध साधुओंको
अपने २ कार्यमें कैसे प्रवृत्त करा सकता है । क्योंकि उसके वचन पर
अबहुश्रुत होनेसे गण निष्ठावान् नहीं होता है, और न उसके द्वारा
प्रेरित हुआ भी गण अपने कर्तव्य कार्यमें प्रवृत्ति कर सकता है । ऐसा
यह चतुर्थ कारण है । तथा-जो शरीरादिकी सामर्थ्यरूप शक्तिसे संपन्न
होता है, ऐसा वह पुरुष विशेषही अनेकविध आपत्तियोंसे गणका
और अपना निजका उद्धार करनेमें समर्थ होता है, ऐसा यह पांचवां
स्थान है, अल्पाधिकरण यह छटा स्थान है, जिस साधुके स्वपर पक्ष
विषयक कलह रूप अधिकरण अल्प-अविद्यमान है, ऐसा वह साधु
विशेष अविद्यमान अधिकरण कहा गया है, यहाँ अल्प शब्द अभाव
अर्थका कहनेवाला है, ऐसा अल्प अधिकरणवाला साधु अनुवर्तनासे
गणका उपकारक होता है, गुणी और गुणमें अभेद सम्बन्ध मानकर

गणुने पुरती श्रद्धा पणु डोती नथी. ते धारणु अल्पश्रुत साधु गणुना आणाल
वृद्ध साधुओने पोतपोताना कर्तव्य पालनमां प्रवृत्ती पणु करी शकते नथी.
आ रीते गणुधर ञडुअतधारी डोय तो ञ गणु तेमना वयनो पर विश्वास
भूकीने तेमनी आशा प्रभाणु प्रवृत्ति कर्था करे छे.

(५) शक्तिमत्पुरुष जत—शारीरिक शक्ति आदिथी संपन्न डोय ओवो
पुरुषविशेष ञ अनेक प्रकारनी आपत्तियोभाथी गणुनुं अने पोतानुं रक्षणु
करवाने समर्थ डोय छे.

(६) अल्पाधिकरणु पुरुष जत—जे साधुमां स्व पक्ष अने परपक्ष
विषयक कलह रूप अधिकरणु अल्प डोय छे, ओवो साधुने अही अल्प अधिक
रणुवाणो कछो छे. ' अल्प ' पद " अलाव " नुं वाचक छे. ओवो अल्प-
अधिकरणुवाणो साधु अनुवर्तना वडे गणुने उपकारक थाय छे. शुष्ठी अने

भवति । इति षष्ठः । गुणगुणिनोरभेदोपचाराद् गुणी एवात्र गुणत्वेन निर्दिष्टः । अन्यथा तु श्रद्धित्वं सत्यत्वमित्यादि ब्रूयादिति । अन्यत्र तु गणिनः स्वरूपमेव मुक्तम्, तथाहि—

“सुत्तत्थे निम्माओ, पियदढधम्मोऽणुवत्तणाकुशलो ।

जाई कुठसंपन्नो, गंभीरो लब्धिमंतो य ॥ १ ॥

संगहुवग्गहनिरओ, कयररणो पववणाणुरागी य ।

एवं पिठोउ भणिओ, गगवामी जिगवरिदेहि ॥ २ ॥”

छाया—सूत्रार्थे निर्मातः (कुशलः) पियदढधर्मोऽनुवर्तनाकुशलः ।

जातिकुठसंपन्नो गम्भीरो लब्धिमंतश्च ॥ १ ॥

संग्रहोपग्रहनिरतः कृतकरणः प्रवचनानुरागी च ।

एवंविधस्तु भणितो गगस्यामी जिनपरिन्दैः ॥ २ ॥ इति ॥ सु० १ ॥

અભેદકા ઉપચાર કર-ગુણીહી યહાં ગુણરૂપલે પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈ, નહીં તો શ્રદ્ધિત્વ સત્યત્વ હત્યાદિ રૂપલે સૂત્રકારકો સૂત્રમેં કહના ચાહિયે યા । ગણિકા સ્વરૂપ અન્વયત્ર એલા કહાં ગયા હૈ-“સુત્તત્થે નિન્માઓ ” હત્યાદિ । જો સૂત્રકે અર્થમેં કુશલ ભતિવાલા હોના હૈ, જિનેન્દ્ર પ્રતિપાદિત ધર્મમેં જિસકી દૃઢતા હોતી હૈ, વહ ધર્મ જિસકો અપને પ્રાણોસે ભી અધિક પ્યારો હોના હૈ, અનુવર્તનામેં જો કુશલ હોના હૈ, જાનિ કુલસે જો સંપન્ન હોના હૈ, ગંભીર હોતો હૈ લબ્ધિવાલા હોતો હૈ ॥૧॥ સંગ્રહ એવં ઉપગ્રહ (રક્ષણ) કરનેમેં જો નિરત હોના હૈ, કૃત-કરણ હોના હૈ, ઓર પ્રવચનકા અનુરાગી હોના હૈ, વહી ગગકા સ્વામી હોના હૈ, એલા જિનેન્દ્રને કહા હૈ ॥૨॥ સુ० ૧ ॥

ગુણમાં અભેદ સંબંધ માનીને અહીં ગુણીને ૪ ગુણરૂપે પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે. જે આ પ્રકારનો અર્થ શક્ય કરવાનો ન હોત તો શ્રદ્ધિત્વ, સત્યત્વ, ઇત્યાદિ રૂપે સૂત્રકારે કથન કરવું ભેડવું હતું. ગણિતું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ કહ્યું છે : “સુત્તત્થે નિન્માઓ ” ઇત્યાદિ—

જે સૂત્રના અર્થમાં કુશળ ભતિવળા હોય છે, જિનેન્દ્ર ભગવાન દ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મપ્રત્યે જેને અવિચળ શ્રદ્ધા છે, જેને ધર્મ પ્રાણોથી પણ અધિક પ્યારો છે, અનુવર્તનામાં જે કુશળ હોય છે, જેઓ ઉત્તમ ભતિ અને કુશળી સંપન્ન હોય છે, જેઓ ગંભીર હોય, લબ્ધિધારી હોય છે, સંગ્રહ અને ઉપગ્રહ (રક્ષણ) કરવામાં જે નિરત હોય છે, કૃતકરણ હોય છે અને પ્રવચન પ્રત્યે અનુરાગવાળા હોય છે, જેવા સાધુ જ ગણના સ્વામી ગણધર બનવાને યોગ્ય ગણાય છે, એવું જિનેન્દ્ર ભગવાને કહ્યું છે. ॥ સુ. ૧ ॥

इत्थं यं गुणैर्गणधरतां साधवो यन्ति, ते गुणाः प्रोक्ताः । संप्रत्येवंगुणविशिष्टगणधराज्ञायां वर्तमानो निर्ग्रन्थो यैः स्थानैः जिनाज्ञाविराधको न भवति तानि स्थानानि प्राह—

मूलम्—छहिं ठाणेहिं निग्गंथे निग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा नाइक्कमइ, तं जहा—खित्तचित्तं; १, दित्तचित्तं, २ जक्खाइट्टं, ३ उम्मायपत्तं, ४ उवसग्गपत्तं, ५, साहिगरणं ६ ॥सू०२॥

छाया—षड्भिः स्थानैः निर्ग्रन्थो निर्ग्रन्थीं गृह्णन् वा अवलम्बमानो वा नातिक्रामति, तद्यथा—क्षिप्तचित्तां १, दृप्तचित्तां २, यक्षाविष्टाम् ३, उन्मादप्राप्ताम् ४, उपसर्गप्राप्ताम् ५, साधिकरणाम् ६ ॥ सू० २ ॥

टीका—‘ छहिं ठाणेहिं ’ इत्यादि—

अस्य सूत्रस्य व्याख्या पञ्चमस्थानकस्य द्वितीयोद्देशे सप्तावशतिश्लोके गता तत्र एवावगम्या । नवरम्—साधिकरणां=रुलह कुर्वतीम् ॥ २ ॥

इस प्रकार जिन गुणोंसे साधु गणधरताको प्राप्त करते हैं, वे गुण कहे । अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि जो निर्ग्रन्थ ऐसे गुण विशिष्ट गणधरकी आज्ञामें रहना है, वह जिन स्थानों द्वारा जिनकी आज्ञाका विराधक नहीं होता है, वे स्थान ये हैं—

टीकार्थ—‘छहिं ठाणेहिं निग्गंथे’ इत्यादि सू० २ ॥

इन ६ कारणोंको लेकर निर्ग्रन्थोंको अपने हाथसे ग्रहण करनेवाला या उसे अपने हाथोंमें उठानेवाला साधु जिन आज्ञाका विराधक नहीं होता है, वे कारण इस प्रकारसे हैं—क्षिप्तचित्ता १ दृप्तचित्ता २ यक्षाविष्टा ३ उन्मादप्राप्ता ४ उपसर्गप्राप्ता ५ और साधिकरणा ६ इस

वे शब्दाने तीथे साधु गणधर भनी शके छे, ते शब्दानु कथन उरीने डवे सूत्रकार अे वात प्रकट करे छे के वे निर्ग्रन्थ अेवा शब्दाथी युक्त गणधरनी आज्ञामां रडे छे, ते कथा स्थाने द्वारा (कथा संज्ञेगोमां) जिननी आज्ञाने विराधक थने नथी. “ छहिं ठाणेहिं निग्गंथे ” इत्यादि—

टीकार्थ—नीचे भतावेलां ६ कारणेने तीथे निर्ग्रन्थीने (साध्वीने) पोताना हाथ वडे सद्धारे आपनार अथवा पोताना हाथमां उपाडी लेनार साधु जिनेश्वर भगवाननी आज्ञाने विराधक गणुतो नथी.

(१) क्षिप्तचित्ता, (२) दृप्तचित्ता, (३) यक्षाविष्टा, (४) उन्माद प्राप्ता, (५) उपसर्ग प्राप्ता अने (६) साधिकरणा,

પુનરપિ ચૈઃ સ્થાનૈઃ સાધયો જિનાજ્ઞાં નાતિક્રામન્તિ તાનિ સ્થાનાનિ પ્રાહ—

મૂલમ્—છહિં ઠાળેહિં નિગ્ગંથા નિગ્ગંથીઓ ચ સાહમ્મિયં કાલગયં સમાચરમાણા ણાઙ્કમંતિ, તં જહા—અંતોહિંતો વા વહિં ણીણેમાણા ૧, વાહીહિતો વા નિવાહિં ણીણેમાણા વા ૨, ઉવેહમાણા વા ૩, ઉવાસમાણા વા ૪, અણુન્નવેમાણા વા ૫, તુલ્લિણીણ વા સંપવ્વયમાણા ૬ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—પડ્મિઃ સ્થાનૈઃ નિર્ગ્ગંથાઃ નિર્ગ્ગંથ્યથ્ચ સાધર્મિકં કાલગતં સમાચરમાણા નાતિક્રામન્તિ, તથથા—અન્તસ્તો વા વહિર્નયન્તઃ ૧, વહિપ્પિટો વા નિર્વહિઃ નયન્તઃ ૨, ઉપેક્ષમાણા વા ૩, ઉપાસીના વા ૪, અનુજ્ઞાપયન્તો વા ૫, તૂર્ણી વા સંપવ્વજન્તઃ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—' છહિં ઠાળેહિં' ઇત્યાદિ—

નિર્ગ્ગંથાઃ=સાધયો નિર્ગ્ગંથ્યઃ=સાધયો વા, ઉમયે વા પડ્મિઃ સ્થાનૈઃ સાધર્મિકં=સમાનધર્મણં સાધું કાલગતં સમાચરન્તઃ—ઉત્થાપનાદિ ક્રિયાત્રિપયં કુર્વન્તો સૂત્રકી વ્યાખ્યા પાંચવે સ્થાનકે દ્વિતીય ઉદ્દેશકે ૨૭ વે સૂત્રમેં કી ગઈહે, અતઃ ઘહીસે દેવ લેની ચાહિયે। વહાં પર પાંચ સ્થાનોંકા વર્ણન હૈ, ઘહાં— “ સાધિકરણા ” ઘહ ૬ વાં સ્થાનહૈ હસકા અર્થ હૈ ‘કલહ કરતી હુઈ ’૨॥

પુનરચ્ચ—સાધુ જિન્ સ્થાનોંકો લેકર જિનાજ્ઞાકા વિરાધક નહીં હોતા હૈ, વે સ્થાન હસ પ્રકારસે હૈં ઘહ પ્રકટ કરતે હુઈ સૂત્રકાર કહતે હૈં—

‘છહિં ઠાળેહિં નિગ્ગંથા નિગ્ગંથીઓ’ ઇત્યાદિ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકાર્થ—નિર્ગ્ગંથ સાધુ ઓર નિર્ગ્ગંથ સાધિવયાં યે દોનોં હન છહ કારણોસે

પાચમા સ્થાનના બીજા ઉદ્દેશાના ૨૭ માં સૂત્રમાં ક્ષિપ્તચિત્તા આદિ પહેલાં પાંચ કારણોની સ્પષ્ટતા કરવામાં આવી ચુકી છે. તે ત્યાંથી તે વાંચી લેતી. છકું સ્થાન “ સાધિકરણા ” છે. તેનો અર્થ “ કલહ કરતી ” થાય છે. એટલે કે કલહ કરતી સાધવીને હાથ પકડીને અથવા ઉપાડીને દૂર લઈ જનાર સાધુ જિનાજ્ઞાનો વિરાધક ગણાતો નથી ॥ સૂ. ૨ ॥

વળી—જે કારણોને લીધે જે જે સંજોગો ઉદ્ભવવાથી એક બીજાને સ્પર્શ કરનાર સાધુ સાધવીઓ જિનાજ્ઞાના વિરાધક ગણાતા નથી, તે કારણો હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે “ છહિં ઠાળેહિં નિગ્ગંથા નિગ્ગંથીઓ ” ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—સમાન ધર્મવાળા સાધુને કાળધર્મ પામેલા બાણીને તેની ઉત્થાપના,

नातिक्रामन्ति=जिनाज्ञां नोच्छेद्यन्ति । तान्येव स्थानान्याह—तद्यथा—अन्तस्तो=वसतेराभ्यन्तराद् वहि=बाह्यप्रदेशं नयन्तः=प्रापयन्तो नातिक्रामन्ति जिनाज्ञामिति प्रथमं स्थानम् । वा=अथवा वहिष्ठः=प्रसृतेर्वहिः प्रदेशात् निर्वहिः—नितरां वहिः निर्वहिः—बाह्यप्रदेशादपि वहिः—दूरप्रदेशं नयन्त इति द्वितीयं स्थानम् । तथा—उपेक्षमाणाः=विलापाद्यकरणरूपाम् उपेक्षां कुर्वन्तो वा, इति तृतीयं स्थानम् । उपासीनाः=रात्रिजागरया तत्समीपे उपविशन्तो वा इति चतुर्थं स्थानम् । अनुज्ञा-

समान धर्मवाले साधुको कालगत जानकर उसकी उत्थापनादिक क्रिया विशेष करते हुए जिनाज्ञाका उलङ्घन नहीं करते हैं वे स्थान इस प्रकारसे हैं

जब समान धर्मवाला कोई साधु कालगत हो जाता है, और वे जब उसे वसतिसे-उपाश्रयसे बाहर निकालते हैं, तो उस स्थितिमें वे जिनाज्ञाकी विराधना करनेवाले नहीं होते हैं । ऐसा यह प्रथम स्थान है । दूसरा स्थान ऐसा है, कि उपाश्रयके बाह्य प्रदेशसे भी बहुत दूर तक जब वे उसे ले जाते हैं, तब भी वे जिनाज्ञाकी विराधना करनेवाले नहीं होते हैं । तीसरा स्थान ऐसा है—समान धर्मवाले साधुके मरजाने पर जो वे विलाप आदि क्रिया नहीं करते हैं । अथवा—उत्सर्ग से वे विलकुल उपेक्षा भाव धारण कर लेते हैं, ऐसी स्थितिमें वे जिनाज्ञाके विराधक नहीं होते हैं । चतुर्थ कारण इस प्रकारसे हैं, जब वह समान धर्मवाला साधु यदि रात्रिमें सर जाता है, और वे यदि

आदि क्रियाविशेष करतां साधु अने साध्वीओ नीचे दर्शाव्या सुश्रुतना ६ प्रसंगोमां जिनाज्ञाना विराधक गण्यता नथी.

(१) न्याये समान धर्मवाणो केरु साधु काणधर्मं पासे, त्याये तेमना शयने उपाश्रयमांथी अडार काठनार साधु साध्वीओने जिनाज्ञानी विराधना करनारा गण्यतां नथी, जेवुं आ पडेवुं स्थान समजनु.

भीजु' स्थान—उपाश्रयनी अडार तो शुं पणु उपाश्रयथी हर हरना स्थणे तेना शयने अरु जनार साधु साध्वीओ पणु जिनाज्ञाना विराधक गण्यता नथी.

त्रीजु' स्थान—समान धर्मवाणा साधुनु' अवसान थरु जवाथी जेओ विलाप आदि करतां नथी—संसारना संगंधाने अनित्य मानीने जेओ आवे प्रसंगे पणु उपेक्षाभाव धारणु करी ले छे, जेरा साधुसाध्वीओ पणु जिनाज्ञानी विराधना करनारा गण्यता नथी.

ओथु' स्थान—केरु समान धर्मवाणो साधु रात्रे अवसान पासे, तो

वा, तं जहा-जीवं वा अजीवं करित्तए १, अजीवं वा जीवं करित्तए २, एगसमएणं वा दो भासाओ भासित्तए ३, सयं कडं वा कम्मं वेदेमि वा मा वा वेदेमि ४, परमाणुपोग्गलं वा छिंदित्तए वा भिंदित्तए वा अगणिकाएण वा समोदहित्तए ५ वहिया लोमंतागमणयाए ॥ सू० ५ ॥

छाया-पट्टसु स्थानेषु सर्वजीवानां नास्ति ऋद्धिरिति वा द्युतिरिति वा यश इति वा बलमिति वा वीर्यमिति वा पुरुषाकार इति वा पराक्रम इति वा, तद्यथा-जीवं वा अजीवं कर्तुम् १, अजीवं वा जीवं कर्तुम् २, एगसमयेन द्वे भाषे भाषितुम् ३, स्वयं कृतं वा कर्म वेद्यापि मा वा वेद्यामि ४, परमाणुपुद्गलं वा छेतुं वा भेतुं वा अग्निकायेन वा समादग्धुम् ५, वहि वीं लोकान्ताद् गमनाय ६ ॥ सू० ५ ॥

टीका—‘ छहिं ठाणेहिं ’ इत्यादि—

पट्टसु स्थानेषु=विषयेषु सर्वजीवानां=सर्वज्ञानस्थानां सरुजजीवानां नास्ति

छद्मस्थोंकी शक्ति ऐसी नहीं है, जो वे धर्मास्तिकाय आदिके विषयमें ज्ञान और दर्शनवाले हो सके अनः इस शक्तिके अभावमें वे धर्मास्तिकायादिकको नहीं जानते हैं और न देखते हैं, ऐसा कहकर अब सूत्रकार जिन स्थानोंसे समस्त जीवोंके भी ऋद्ध्यादि शक्ति नहीं होती है ऐसे उन स्थानोंका कथन करते हैं—

‘ छहिं ठाणेहिं सब्वजीवाणं णत्थि ’ इत्यादि ५ ॥

टीकार्थ—छह स्थानोंमें विषयमें सिद्ध एवं संसारी इन समस्त जीवोंको ऋद्धि विभूति नहीं है, द्युति-दान्ति-महात्म्य नहीं हैं, यश पराक्रमादि जनित प्रसिद्धि नहीं है, बल शारीरिक शक्ति नहीं है, वीर्य-आत्मा शक्ति नहीं

धर्मास्तिकाय आदिना विषयमां लभुवानी अने देणवानी शक्ति छद्मस्थ लोकोमां डोती नथी. तेओ केवणज्ञानने अभावे तेमने लक्ष्मी शकता नथी अने केवणदर्शनने अभावे तेमने देणी शकता नथी आ प्रकाशनुं कथन करीने डवे सूत्रकार समस्त लोकोमां जे जे ऋद्धि अने शक्तिने अभाव डोय छे ते अभावनां स्थानो प्रकट करे छे.

“ छहिं ठाणेहिं सब्वजीवाणं णत्थि ” इत्यादि—

टीकार्थ—नीचे दर्शावेला छ स्थानोमां (विषयोमां) सिद्ध अने संसारी लोकोमां ऋद्धि, द्युति, महात्म्य, यश, शारीरिक शक्ति अने आत्मशक्ति तथा पुरुषकार अने पराक्रम, केछ पञ्च रीते उपयोगी निवडतां नथी. कडेवानुं तात्पर्य अ

ऋद्धिः=विभूतिः, ' इति ' वाक्यालङ्कारे ' वा ' अथवाथे एवं सर्वत्रापि विज्ञेयम् । नास्ति घृतिः=कान्तिः=महात्म्यम्, नास्ति यशः=पराक्रमादिजनिता प्रसिद्धिः, नास्ति बल=शारीरिकशक्तिः, नास्ति वीर्यम्=आत्मशक्तिः, नास्ति पुरुषकारः= पौरुषम्, नास्ति पराक्रमः=उत्साह इति । अयं भावः=वक्ष्यमाणेषु पट्टसु स्थानेषु सिद्धसंसारिणः सर्वेऽपि प्राणिनः ऋद्ध्यादि शक्तिमन्तो न भवन्तीति । तान्येव स्थानानि प्राह-तद्यथा-जीवं वा अजीवं कर्तुम्-जीवमजीवत्वेन परिणतं कर्तुं न कोऽपि शक्नोतीति प्रथमं स्थानम् । एवम् अजीवं जीवं कर्तुं न कोऽपि शक्नोतीति द्वितीयं स्थानम् । एकसमयेन द्वे भाषे=सत्यासत्यादिरूपां भाषाद्वयं भाषितुं न कश्चित् शक्नोतीति तृतीयं स्थानम् । स्वयंकृतं=स्वोपार्जितं कर्म उदयावलिकायां प्रविष्टं सत् ' वेदयामि मा वेदयामि '=इति स्वेच्छया कश्चिद् वेदनम् अवेदनं वा कर्तुं न शक्नोति । अयं विशेषः-एतद्वयं सर्वज्ञानामामोगनिर्वर्तितम्, अन्येषां

है, पुरुषकार पौरुष नहीं है, और पराक्रम-उत्साह नहीं है, तात्पर्य यह है, कि इन छह स्थानोंमें समस्त जीव चाहे वे सिद्ध हो या संसारी हो ऋद्ध्यादि शक्तिवाले नहीं होते हैं, वे छह स्थान इस प्रकारसे हैं- " जीवं वा अजीवं कर्तुम् ? " कोई भी जीव जीवको अजीव रूपसे करनेकी क्षमता (सामर्थ्य) आदि नहीं रखता है ? " अजीवं वा जीवं कर्तुम् " कोई भी जीव अजीवको जीवरूपसे परिणमानेकी क्षमता आदि नहीं रखता है " एक समयेन द्वे भाषे भाषितुम् " कोई भी जीव एक समयमें सत्यासत्यादि रूप दो भाषाएँ बोल सके ऐसी क्षमता आदि नहीं रखता है, " स्वयं कृतं वा कर्म वेदयामि मा वा वेदयामि ४ " कोई भी जीव ऐसा नहीं है, जो अपनी इच्छाके अनुसार स्वयं कृतकर्मका वेदन करे या नहीं करे ऐसी शक्तिवाला हो । तात्पर्य ऐसा

छे के लव लवे संसारी डोय के सिद्ध डोय, परन्तु नीचेना छ डायो करवाने समर्थ डोतो नथी—

(१) " जीवं वा अजीवं वा कर्तुम् " डोय पणु लवमां लवने अलव करवानुं सामर्थ्य डोतुं नथी. " अजीवं वा जीवं कर्तुम् " डोय पणु लव अलवने लव इपे परिणुभाववाने समर्थ नथी. (३) " एक समयेन द्वे भाषे भाषितुम् " डोय पणु लव अेक न समये सत्यासत्यादि इप जे भाषाओ मोटी शकवाने समर्थ डोतो नथी. " स्वयं कृतं वा कर्म वेदयामि मा वा वेदयामि " डोय पणु लवमां अेवी ऋद्धि डोती नथी के ते पोतानी धन्धा अनुसार पोताना कृतकर्मनुं वेदन करे अथवा न करे. अेटके के पोतानी धन्धा

चानाभोगनिर्वर्तितं भवतीति । इति चतुर्थं स्थानम् । तथा न कश्चित् शक्नोति परमाणुपुद्गलं छेत्तुं=खड्गादिना द्विधा कर्तुम्, भेत्तुं=पूर्यादिना विदारयितुं, अग्नि-कायेन समादग्धुं=मस्मसात् कर्तुं वेति पञ्चमं स्थानम् । तथा न कश्चित् शक्नोति लोकान्ताद् वह्निगमनायेति षष्ठं स्थानम् ॥ सू० ५ ॥

जीवम् अजीवं कर्तुमित्युक्तमिति जीवप्रस्तावात्कम्पति तस्यैव पञ्च भेदानाह-

सूलम्—छज्जीवनिकाया पणगता, तं जहा—पुढविकाइया जाव तसकाइया ॥ सू० ६ ॥

छाया—पञ्जीवनिकायाः प्रज्ञप्ताः, तत्रथा—पृथिवीकायिका यावत् त्रसका-यिकाः ॥ सू० ६ ॥

है, कि अपनी इच्छाके अनुसार कृत कर्मका वेदन करना और कृतकर्मका वेदन नहीं करना ऐसी ऋद्धि आदिवाला कोई भी जीव नहीं है । सर्वज्ञके ये दो आभोग निर्वर्तित होते हैं । ऐसा यह चतुर्थ स्थान है । पांचवां स्थान ऐसा है, कि कोई भी जीव ऐसी ऋद्धि आदिवाला नहीं है, जो परमाणुपुद्गलको खड्ग आदि द्वारा टुकड़े कर सके या उसका सूची आदि द्वारा विदारण कर सके या अग्नि द्वारा उसे जला सके तथा छठा स्थान ऐसा है, कि कोई भी जीव ऐसी ऋद्धि आदिवाला नहीं है, कि जो लोकान्त बाहर जानेके लिये समर्थ हो ॥ सू० ५ ॥

जीवको अजीव करनेके लिये कोई भी समर्थ नहीं है, इत्यादि जो ऊपरके सूत्रमें कहा है, सो इसी जीव प्रस्तावको लेकर अब सूत्रकार

अनुसार कृतकर्मकुं वेदन करकुं के वेदन न करकुं, ऐवी ऋद्धि आदिवाणो कोष्ठं एव डोतो नथी, आ भन्ने सर्वज्ञमां आलोग निर्वर्तित डोय छे, अने अन्य लोकांमां अनालोग निर्वर्तित डोय छे, ऐवुं आ योथुं स्थान समञ्जकुं (५) कोष्ठं पणुं एवमां ऐवी ऋद्धि आदिना सदृभाव डोतो नथी के ते पर-माणु पुद्गलना अद्ग आदि द्वारा टुकड़ा करी शके के सोय आदि द्वारा तेने छेदी शके, के अग्नि द्वारा तेने भाणी शके (६) कोष्ठं पणुं एव ऐवी ऋद्धि वाणो डोतो नथी के ते लोकान्तनी पडार बध शकवाने समर्थ डोय. ॥ सू. ५ ॥

आगता सूत्रमां ऐवी उद्वेग थयो छे के “ एवने अलव करवाने कोष्ठं समर्थ नथी. ” आ एवना प्रस्तावना अनुसंधानमां डवे तेना ६

टीका—‘छज्जीवनिकाया’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा । नरं निकायानां षड्विधत्वं प्रतिज्ञाय षड्विधत्वोपदर्शने निकायिनो यदुक्ताः, तत् समुदायसमुदायिनोरभेदत्वमाश्रित्य । नहि समुदायात् समुदायी व्यतिरिच्यते । इति ॥ सू० ६ ॥

जीवा एव कालगतास्तारकाग्रहादिषूपपद्यन्ते, इति तारकाग्रहाणां षड्विधत्वमाह—

मूलम्—छ तारकाग्रहा पणत्ता, तं जहा—सुक्रे १ बुधे २ बृहस्पति ३ अंगारए ४ सनिच्चरे ५ केतु ६ ॥ सू० ७ ॥

छाया—एट ताराग्रहाः प्रज्ञाः, तद्यथा—शुक्रो १ बुधो २ बृहस्पतिः ३ अङ्गारकः ४ शनिश्चरः ५ केतुः ६ ॥ सू० ७ ॥

उसीके ६ भेदोंका कथन करते हैं—

‘छज्जीवनिकाया पणत्ता’ इत्यादि सूत्र ६ ॥

टीकार्थ—जीव निकाय ६ प्रकारके कहे गये हैं जैसे—पृथिवीकायिक १ यावत् प्रसकायिक ६ इस सूत्रकी व्याख्या स्पष्ट है । सूत्रकारने जो निकायोंमें षट् विधताकी प्रतिज्ञा करके जो उनके प्रदर्शनमें छ प्रकारके निकायी यहां प्रकट किये हैं सो समुदाय समुदायीमें अभेदका आश्रय करके उन्हें किया है, क्योंकि समुदायसे समुदायी भिन्न नहीं होता है ॥ सू० ६ ॥

कालगत हुए जीवही तारकाग्रह आदिकोमें उत्पन्न होते हैं । अब सूत्रकार उनकी षट् विधताका कथन करते हैं—

लेहेतुं कथन करवाभां आवे छे.

टीकार्थ—“ छज्जीवनिकाया पणत्ता ” इत्यादि—

जीवनिकाय ६ प्रकारका कहा छे पृथ्वीकायथी लधने प्रसकायिक पर्यन्तना ६ प्रकारे अही अकषु करवा लेधये. आ सूत्रने अर्थ सरण छे.

सूत्रकारे निकायोभां छ प्रकारता डोवानुं कथन करीने, तेमना छ प्रकार प्रकट करवाने अहले निकायोना छ प्रकारनुं ले प्रदर्शन कथुं छे ते निकाय (समुदाय) अने निकायी (समुदायी) भां अलेहेने आश्रय लधने करवाभां आणुं छे, कारण के समुदायथी समुदायी भिन्न डोतो नथी. ॥ सू. ६ ॥

काणधर्म पाभेदा लये ज तारा इप अडे आदिकोभां उत्पन्न थाय छे, तेथी डवे सूत्रकार तेमना छ प्रकारेनुं कथन करे छे.

ટીકા—‘ છ તારાગ્રહા ’ ઇત્યાદિ—

વ્યાખ્યા સુગમા । નવરમ્-તારાગ્રહાઃ=તારારૂપાગ્રહાઃ । ગ્રહા લોકે નવ પ્રસિદ્ધાઃ । પરન્તુ ચન્દ્રાદિત્યરાહુનામતારકારસ્ત્વાત્ પડેવ તારાગ્રહા વોધ્યા ઇતિ । અક્ષરકો મન્ગલઃ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

પૂર્વ તારાગ્રહા ઉક્તાઃ, તે ચ સંસાર એવ સન્તીતિ સંસારિજીવાનાહ—

મૂલમ્—છવિહા સંસારસમાપન્નગા જીવા પળ્ણત્તા, તં જહા—પુઠ્ઠવિકાઙ્ગયા જાવ તસકાઙ્ગયા । પુઠ્ઠવિકાઙ્ગયા છગઙ્ગયા છઆગઙ્ગયા પળ્ણત્તા, તં જહા—પુઠ્ઠવિકાઙ્ગય પુઠ્ઠવિકાઙ્ગયસુ ઉવ-વજ્જમાણે પુઠ્ઠવિકાઙ્ગયહિંતો વા જાવ તસકાઙ્ગયહિંતોવા ઉવવ-જ્જેજ્જા, સો ચેવ ણં પુઠ્ઠવિકાઙ્ગય પુઠ્ઠવિકાઙ્ગયત્તં વિપ્પજહમાણે પુઠ્ઠવિકાઙ્ગયત્તાય વા જાવ તસકાઙ્ગયત્તાય વા ગચ્છેજ્જા । આઠકાઙ્ગયાવિ છ ગઙ્ગયા છ આગઙ્ગયા । એવં ચેવ જાવ તસકા-ઙ્ગયા ॥ સૂ૦ ૮ ॥

‘ છાયા-પઢ્ઢિધાઃ સંસારસમાપન્નકા જીવાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ તથથા-પૃથિવ્વીકાયિકા યાવત્ ત્રસકાયિકાઃ । પૃથિવ્વીકાયિકાઃ પઢ્ઢગતિકાઃ પઢ્ઢાગતિકાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, તથથા-

‘ છ તારાગ્રહા પળ્ણત્તા ’ ઇત્યાદિ સૂ૦ ૭ ॥

તારા રૂપ ગ્રહ ૬ પ્રકારકે કહે ગયે હૈં જૈસે—શુક્ર ૧ બુધ ૨ વૃહસ્પતિ ૩ અંગારક (મંગલ) ૪ શનૈશ્ચર ૫ એવં કેતુ ૬ ।

વ્યાખ્યા ઇસકી સ્પષ્ટ હૈ, લોકમેં ગ્રહ નૌ પ્રસિદ્ધ હૈં, પરન્તુ ચન્દ્ર આદિત્ય રાહુ યે તારકા રૂપ નહીં હૈ, ઇસલિયે ૬ હી તારાગ્રહ હૈં । અક્ષરક નામ મંગલકા હૈ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

“ છ તારાગ્રહા પળ્ણત્તા ” ઇત્યાદિ—

તારા ૩૫ જે ગ્રહો છે તેમના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—
(૧) શુક્ર, (૨) બુધ, (૩) વૃહસ્પતિ (શુરુ), (૪) અંગારક (મંગળ)
(૫) શનૈશ્ચર (શનિ) અને (૬) કેતુ.

આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સરળ છે લોકમાં નવ ગ્રહ પ્રસિદ્ધ છે, પરન્તુ ચન્દ્ર, સૂર્ય અને રાહુ, આ ત્રણ ગ્રહો તારા ૩૫ નહીં હોવાથી આઠી તારા ૩૫ ગ્રહો છ જ કહ્યા છે. મંગળના ગ્રહને અંગારક કહે છે ॥ સૂ. ૭ ॥

પૃથિવીકાયિકાઃ પૃથિવીકાયિકેષુ ઉત્પદ્યમાનઃ પૃથિવીકાયિકેભ્યો વા યાવત્ ત્રસ-
કાયિકેભ્યો વા ઉત્પદ્યેત । સ એવ સ્વલુ પૃથિવીકાયિકઃ પૃથિવીકાયિકત્વં વિપ્ર-
જહત્ પૃથિવીકાયિકતયા વા યાવત્ ત્રસકાયિકતયા વા ગચ્છેત્ । અષ્કાયિકા
અપિ ષડ્ગતિકાઃ ષડાગતિકાઃ । એવમેવ યાવત્ ત્રસકાયિકાઃ ॥ સૂ० ૮ ॥

ટીકા—‘ છન્વિહા ’ इत्यादि—

સંસારસમાપન્નકાઃ=સંસરણં=પદ્ધિભ્રમણં સંસાર=નારકતિર્યગ્નરામરભવેષુ પરિભ્રમણમ્,
તં સમ્યક્=એકીભાવેન આપન્નાઃ=પાપ્તાઃ સંસારસમાપન્નાઃ, ત એવ સંસારસમાપન્નકાઃ
ભવવર્તિનો જીવા इत्यर्थः । તે વ ષડ્વિધાઃ પ્રજ્ઞાઃ=રુચિતાઃ । ષડ્વિધત્વમેવાહ-
તદથા-પૃથિવીકાયિકાઃ=પૃથિવીકાયિકજીવાઃ । યાવત્ ત્રસકાયિકાઃ । યાવત્પ-

ષે ऊपरके सूत्रमें कहे गये ताराग्रह संसारमेंही हैं, इसलिये अब सूत्रकार संसारी जीवोंका कथन करते हैं—

‘छन्विहा संसार समापन्नगा’ इत्यादि सू० ८ ॥

ટીકાર્થ—સંસાર સમાપન્નક જીવ સંસારી જીવ છ પ્રકારકે કહે ગયેહૈ, જૈસે-
પૃથિવીકાયિક ૧ યાવત્ ત્રસકાયિક ૨ इनमें जो पृथिवीकायिक जीव
हैं वे षट् गतिक और षट् आगतिक हैं—जैसे-पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न
हुआ पृथिवीकायिक जीव पृथिवीकायिकोंसे आकर पृथिवीकायिक रूपसे
उत्पन्न हो सकता है, यावत् त्रसकायिकोंमेंसे आकर पृथिवीकायिक
रूपसे उत्पन्न हो सकता है, वही पृथिवीकायिक जीव पृथिवीकायिक
रूप अपनी अवस्थारूप पर्यायको छोडकर पुनः पृथिवीकायिक रूपसे
उत्पन्न हो सकता है, यावत् त्रसकायिक रूपसे उत्पन्न हो सकता है,

આગલા સૂત્રમાં જે તારા ૩૫ ગ્રહોની વાત કરવામાં આવી છે, તેઓ
સંસારમાં જ છે. તેથી હવે સૂત્રકાર સંસારી જીવોનું કથન કરે છે.

ટીકાર્થ—“ છન્વિહા સંસારસમાપન્નગા ” इत्यादि—

સંસાર સમાપન્નક જીવો—સંસારી જીવો ૬ પ્રકારનાં કહ્યાં છે. પૃથ્વી-
કાયિકથી લઈને ત્રસકાયિક પર્યન્તના ૬ પ્રકારો અહીં ગણ્ય કરવા ભોધ્યો.
જે પૃથ્વીકાયિક જીવો છે તેઓ ષટ્ ગતિક (છ ગતિમાં ગમન કરનારા) અને
ષટ્ આગતિક (છ ગતિમાંથી પૃથ્વીકાયિકોમાં ઉત્પન્ન થનારા) હોય છે જેમકે
પૃથ્વીકાયિકોમાં ઉત્પન્ન થયેલો જીવ પૃથ્વીકાયિકોમાંથી આવીને પૃથ્વીકાયિક
રૂપે ઉત્પન્ન થઈ શકે છે, અને અપૃકાયિક, વાયુકાયિક, તેજસ્કાયિક, વનસ્પતિ-
કાયિક અને ત્રસકાયિકમાંથી આવીને પણ પૃથ્વીકાયિક રૂપે ઉત્પન્ન થઈ શકે
છે. એ જ પૃથ્વીકાયિક જીવ પેતાની પૃથ્વીકાયિક અવસ્થા ૩૫ પર્યાયને છોડીને
કરી પૃથ્વીકાયિકથી લઈને ત્રસકાયિક પર્યન્તના છ એ પ્રકારના જીવોમાં ઉત્પન્ન

देन-अप्कायिकतेजस्कायिकवायुकायिकवनस्पतिकायिकाः संग्राह्याः । एतेषु प्रत्येकजीवः पद्मगतिकः पडागतिकश्च भवति । तदेव प्रदर्शयति-‘ पुढविकाइया छगइया ’ इत्यादि-पृथिवीकायिका जीवाः पद्मगतिकाः-पट्टसु=पृथिवीकायिकादिषु पद्मजीवनिकायेषु गतिः=गमनं येषां ते तथा=पट्टकायेषु गमनशीलः । पडागतिकाः-पद्मभ्यो कायिकेभ्य आगतिः=आगमनं येषां ते तथाभूताश्च प्रज्ञप्ताः । तत्र पृथिवीकायिकानां पडागतिकत्वमाह-तद्यथा-पृथिवीकायिकेषु=पृथिवीकायिकानां मध्ये पृथिवीकायिक उत्पद्यमानः=पृथिवीकायिकत्वेन जायमानो जीवः पृथिवीकायिकेभ्यो वा यावत् त्रसकायिकेभ्यो वा=पृथिवीकायिकादि यावत्

इसी तरहसे अप्कायिक जीव भी पद्म गतिक और पट्ट आगतिक कहे गये जानना चाहिये इसी तरहसे यावत् त्रसकायिक भी जानना चाहिये

नारक तिर्यग्, नर अमर इन भवोंमें जो जीवका परिभ्रमण है, वह संसार है; इस संसारको जो एकी भावरूपसे प्राप्त हैं वे संसार समापन्नक हैं, अर्थात् भववर्ती जो जीव हैं वे संसार समापन्नक हैं, ये पृथिवीकायिक जीवसे लेकर त्रसकायिक जीव तक छह प्रकारके कहे गये हैं । यहां यावत् शब्दसे “ अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ” इनका ग्रहण हुआ है, इनमें प्रत्येक जीव छह गतिवाला और छह आगतिवाला होता है, यही बात सूत्रकारने “ पुढविकाइया छगइया ” इत्यादि सूत्रपाठसे प्रदर्शित की है, इसके द्वारा सूत्रकारने यह समझाया है, कि पृथिवीकायिक जीव पद्म जीवनिकायोमें गमनशील होता है, अर्थात् वह पृथिवीकायिक पर्यायको छोड़-

थई शके छे. ओ न प्रमाहे अप्कायिक एवने पञ्च छ गतिक अने छ आंग तिक समजवा. ओवुं न कथन त्रसकायिक पर्यन्तना एवो विषे पञ्च समजवुं.

नारक, तिर्यग्, मनुष्य अने देव, आ एवोतुं ने परिभ्रमण थाय छे, तेतुं नाम न संसार छे. आ संसार नेमहे प्राप्त कर्यो छे ओवां एवोने संसार समापन्नक कडे छे. ओटवे के आ चार गतिमांती कड पञ्च गतिमां रडेवा एवने अथवा पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक अने त्रसकायिक आ छ प्रकारना एवोने संसार समापन्नक कडे छे.

प्रत्येक एव छ गतिवाणो अने छ अगतिवाणो डोय छे ओ न वात सूत्रकारे “ पुढविकाइया-छगइया ” ई यादि सूत्रपाठ द्वारा प्रदर्शित करी छे. तेना द्वारा सूत्रकारे ओ समजवुं छे के पृथिवीकायिक एव छ निकायोमां गमनशील डोय छे. ओटवे के पृथिवीकायिक पर्यायने छोडीने ते इरी पृथ्वी-

त्रसकायिकान्तानां मध्ये कुतश्चित् आगत्य उत्पद्येत=जायेत । इत्थं पडागतिकत्व-
मुक्त्वा सम्प्रति षड्गतिक्रममाह-‘से चैव णं’ इत्यादिना । स एव खलु पृथि-
वीकायिकः यः पृथिवीकायिकादेः कुतश्चित् समागत्य पृथिवीकायिकत्वेन समु-
त्पन्नः स एव पृथिवीकायिको जीवः पृथिवीकायिकत्वं विप्रजहत्=परित्यजन्
पृथिवीकायिकतया वा यावत् त्रसकायिकतया वा गच्छेदिति । एवमेव अप्का-
यिकादि त्रसकायिकान्तानापि पडागतिकत्व षड्गतिकत्वं च बोध्यमिति ॥ सू० ८ ॥

कर पुनः पृथिवीकायिकमें उत्पन्न हो सकता है, अप्कायिकमें उत्पन्न
हो सकता है, तेजस्कायिकमें उत्पन्न हो सकता है, वायुकायिकमें उत्पन्न
हो सकता है, वनस्पतिकायिक में उत्पन्न हो सकता है
और त्रसकायिकमें भी उत्पन्न हो सकता है, इसी तरहसे
वह पृथिवीकायिकसे आकर पृथिवीकायिकमें उत्पन्न हो सकता है,
अप्कायिकसे आकर पृथिवीकायिकमें उत्पन्न हो सकता है, यावत्
त्रसकायिकसे आकर पृथिवीकायिकमें उत्पन्न हो सकता है, इस
प्रकारसे छह गतिमें जाने का और छह गति से आने का
कथन करके अब सूत्रकार अप्कायिक आदिकों में भी
षट् गति में जानेका और षट् गतिसे आनेका कथन इसी
प्रकारसे कर लेना चाहिये ऐसा समझते हैं, इसमें जैसा कथन पृथिवी-
कायिकमें किया गया है, वैसाही कथन यहां पर भी कर लेना चाहिये
और यह सब कथन त्रसकायिक तक करना चाहिये ॥ सू० ८ ॥

कायिकमां पणु उत्पन्न थर्ष जय छे, अथवा अप्कायिकमां अथवा तेजस्कायि-
कमां अथवा वायुकायिकमां अथवा वनस्पतिकायिकमां अथवा त्रसकायिकमां
उत्पन्न थर्ष जय छे. ओ न रीते एव पृथिवीकायिकमांथी आवीने इरी पृथ्वी-
कायिकमां उत्पन्न थर्ष शके छे, अप्कायिकमांथी आवीने पणु पृथ्वीकायिकमां
उत्पन्न थर्ष शके छे, अने त्रसकायिक पर्यन्तनी कोर्ष पणु पर्यायसांथी आवीने
पृथ्वीकायिकमां उत्पन्न थर्ष शके छे. आ प्रकारे छ गतिमां जवानुं अने छ
गतिमांथी आववानुं कथन करीने डवे सूत्रकार अप्कायिक आदिमांथी छ
गतिमां जवानुं अने छ गतिमांथी अप्कायिक आदिमां आववानुं कथन पणु
ओ न प्रमाणे करी लेवानुं सूचन करे छे. ओरवे के अप्कायिकथी लधने त्रस-
कायिक पर्यन्तना एवे पणु पोतपोतानुं ते गतिनुं आयुष्य पूर करीने पृथ्वी-
कायिकथी लधने त्रसकायिक पर्यन्तना छये प्रकारना एवेमां उत्पन्न थर्ष शके
छे. अने अप्कायिकमां पृथ्वीकायिक आदि छये प्रकारना एवेनी आगति थर्ष
शके छे ओ न प्रमाणे त्रसकायिक पर्यन्तना एवेनी गति अने आगति

सम्प्रति प्रकारत्रयेण सर्वजीवानां पञ्चिधत्वमाह—

मूलम्—छविहा सव्वजीवा पणत्ता, तं जहा—आभिणि-
बोहियणाणी जाव केवलणाणी अज्ञाणी । अहवा छविहा
सव्वजीवा पणत्ता, तं जहा—एणिंदिया जाव पंचिंदिया अणिं-
दिया । अहवा छविहा सव्वजीवा पणत्ता, तं जहा—ओरा-
लियसरीरी, १ वेउठियसरीरी २, आहारगसरीरी, ३, तेयग-
सरीरी, ४ कम्मगसरीरी, ५ असरीरी ६ ॥ सू० ९ ॥

छाया—पञ्चिधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानी यावत् केवलज्ञानी
अज्ञानी । अथवा पञ्चिधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एकेन्द्रियाः यावत् पञ्चे-
न्द्रिया अनिन्द्रियाः । अथवा षड्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—औदारिक-
शरीरी १ वैक्रियशरीरी २ आहारकशरीरी ३, तैजसशरीरी, ४ कर्मजशरीरी, ५
अशरीरी ६ ॥ सू० ९ ॥

टीका—‘ छविहा ’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा । नवरम्—अत्र प्रथमे प्रकारे पण्टे भेदे ये अज्ञानिनः=

अत्र सूत्रकार तीनप्रकार समस्त जीवोंमें छह प्रकारका कथन करते हैं
छविहा सव्वजीवा पणत्ता इत्यादि सू० ९॥

समस्त जीव छह प्रकारके कहे गये हैं—जैसे—आभिनिबोधिकज्ञानी
यावत् केवलज्ञानी और अज्ञानी अथवा—इस प्रकारसे भी समस्त जीव
छह प्रकारके कहे गये हैं—जैसे—औदारिक शरीरी १ वैक्रिय शरीरी २
आहारक शरीरी ३ तैजस शरीरी ४ कामण शरीरी ५ और अशरीरी ६

विषे पथु समञ्जु. ॥ सू. ८ ॥

इवे सूत्रकार त्रयु रीते समस्त ज्ञेयानां छ प्रकारानुं कथन करे छे—

“ छविहा सव्वजीवा पणत्ता ” इत्यादि—

समस्त सँसारी ज्ञेयानां छ प्रकारे पठे छे. जेभके आभिनिबोधि-
कज्ञानीथी केवलज्ञानी पर्यन्तना पांच प्रकारे अने (६) अज्ञानी. अथवा समस्त
ज्ञेयानां आ प्रमाणे ६ प्रकार पथु पठे छे—(१) औदारिक शरीरी, (२) वैक्रिय
शरीरी, (३) आहारक शरीरी, (४) तैजस शरीरी, ५ कामण शरीरी अने (६) अशरीरी
अर्ही पठेरी रीते जे ६ लेहो पाठनामां आण्णा छे, तेमाना जे अज्ञानी

मिथ्यात्वोपहतज्ञानास्ते देशज्ञानि सर्वाज्ञानिभावाज्ञानिभेदात् त्रिविधा बोध्याः । द्वितीये प्रकारे षष्ठे भेदे ये अनिन्द्रियास्ते अपर्याप्ताः, उपयोगतः केवलिनः, सिद्धाश्चेति त्रिविधा बोध्याः । तृतीये प्रकारे तैजसशरीरी कर्मजशरीरी च प्रोक्तौ, तत्रेदं बोध्यम्—ननु यत्र तैजसशरीरं तत्र कर्मणशरीरमपि भवति, उभयोर्नियमेन साहचर्यात् । एवं च तैजसशरीरी कर्मणशरीरी वा एकएव कश्चित् शरीरी निर्देष्टुं शक्यते, न तु द्वयमिति चेत् आह, यद्यपि तैजसकर्मणशरीरयोरेकजीवाश्रितत्वेन तद्द्वयशरीरान्यतरशरीराश्रितत्वेन एकएव शरीरी निर्देश्यरतथापि शरीरभेदात् शरीरी अपि भेदेन निर्दिष्ट इति । अशरीरीत्वत्र सिद्ध इति ॥ सू० ९ ॥

यहां प्रथम प्रकारके ६ भेदमें जो अज्ञानी मिथ्यात्वसे उपहत ज्ञान-वाले कहे गये हैं, वे देशज्ञानी, सर्वाज्ञानी और भावज्ञानीके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं, द्वितीय प्रकारमें जो छटा भेद है, वे अपर्याप्त उपयोगसे केवली और सिद्धके भेदसे ३ प्रकारके होते हैं, तृतीय प्रकारमें जो तैजस शरीरी एवं कर्मण शरीरी कहे गये हैं, सो इस विषयमें कोई ऐसी आशंका कर सकता है, कि जहां तैजस शरीर होता है, वहां कर्मण शरीर भी होता है, क्योंकि इन दोनोंका नियमसे साहचर्य सम्बन्ध है, इस तरहसे या तो तैजस शरीरीही कहना था या कर्मण शरीरीही कहना था, एकही कोई कहना था, दोनोंको नहीं कहना था, सो इसका उत्तर ऐसा है, कि बात तो ठीक है, पर यहां जो इस प्रकारसे निर्देश हुआ है, वह इस बातको प्रकट करनेके लिये निर्दिष्ट

मिथ्यात्वथी उपहत ज्ञानवाणा एवो कथा छे, तेमना देशज्ञानी, सर्वाज्ञानी अने भावाज्ञानी नामना त्रयु लेह छे. भीए रीते जे छ लेहो भताव्या छे, तेमांनो छट्टा लेहवाणा एवोना नीचे प्रमाणे त्रयु प्रकार पणु पडे छे— (१) अपर्याप्त, (२) उपयोगनी अपेक्षाअे केवली अने (३) सिद्ध.

भीए रीते समस्त एवोना जे छ लेहो भताववामां आव्या छे, तेमां तैजस शरीरी अने कर्मणु शरीरी नामना जे जे अलग लेहो पाडवामां आव्या छे, तेथी केधने एवी आशंका थाय के ' जयां तैजस शरीरनेो सद्भाव जे होय छे, त्यां कर्मणु शरीरनेो पणु सद्भाव जे होय छे. कारणु के ते अन्नेनेो नियमथी जे साहचर्य संबंध छे. आ प्रकारनी परिस्थितिमां कां तो तैजस शरीरी नामनेो अथवा तो कर्मणु शरीरी नामनेो अेक जे प्रकार कडेवो जेधतो हुतो. अन्नेना अलग अलग प्रकार भताववानी आवश्यकता न हुती. आ शंकातुं समाधान नीचे प्रमाणे करी शकय—अर्धी जे आ प्रकारे निर्देश थयो छे ते अे वातने प्रकट

एकेन्द्रियभेदेनोक्तस्य वनस्पतेर्वादरभेदस्य पङ्क्तिवत्त्वमाह—

मूलम्—छविहा तणवणस्सइकाइया पणत्ता, तं जहा—
अग्रबीया १, मूलबीया २, पौरबीया ३, खंधबीया ४, बीयरुहा
५, संमुच्छिमा ६ ॥ सू० १० ॥

छाया—पङ्क्तिविधाः तृणवनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अग्रबीजाः १,
मूलबीजाः २, पर्वबीजाः ३, स्क्रन्धबीजाः ४, बीजरुहाः ५, समुच्छिमाः ६
॥ सू० १० ॥

टीका—‘ छविहा ’ इत्यादि—

तृणवनस्पतिकायिकाः—तृणरूपाः=वादररूपा ये वनस्पतिकायिका जीवाः
सन्ति ते अग्रबीजादिभेदैः पङ्क्तिविधा बोध्याः । तत्र—अग्रबीजाः—करण्टकादयः १।
मूलबीजाः—उत्पलकन्दादयः २। पर्वबीजाः—इक्षुवंशादयः ३। स्क्रन्धबीजाः=शल-
लुआ है कि शरीरके भेदसे शरीरीमें भेद होता है। अशरीरीसे यहाँ
सिद्ध गृहीत हुए हैं ॥ सू० ९ ॥

एकेन्द्रियके भेदसे उक्त जो वनस्पति हैं वे सूक्ष्म और वादरके भेदसे
दो प्रकारके होते हैं, इनमें जो वादर वनस्पति हैं, वे छह प्रकारके हैं,
यही बात अब सूत्रकार प्रकट करते हैं—

‘छविहा तणवणस्सइकाइया पणत्ता’ इत्यादि सू० १० ॥

टीकार्थ—तृणरूप-वादर रूप जो वनस्पतिकायिक हैं, वे अग्रबीजादिके
भेदसे ६ प्रकारके कहे गये हैं । इनमें जो करण्टक आदि हैं, वे अग्र-
बीज वनस्पतिकायिक हैं, उत्पल कन्दादिक मूलबीज वनस्पतिकायिक
हैं । इक्षु वांश आदि पर्वबीज वनस्पतिकायिक हैं, शल्लकी आदिक

કરવા માટે થયો છે કે શરીરના લેદને કાચો શરીરમાં પણ લેદ સંભવી શકે
છે આ સૂત્રમાં સિદ્ધ થયેલા અશરીરી રૂપે ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે. ॥ સૂ. ૯ ॥

એકેન્દ્રિયના લેદ રૂપ જે વનસ્પતિકાયિક થયો છે, તેમના સૂક્ષ્મ અને
બાદર નામના બે પ્રકારો છે. તેમાંથી બાદર વનસ્પતિના ૬ લેદો પડે છે.
એ જ વાત હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે.

“ છવિહા તણવણસ્સइकाइया पणत्ता ” इत्यादि—

તૃણરૂપ-બાદર રૂપ જે વનસ્પતિકાયિક છે તેમના નીચે પ્રમાણે છ લેદ
કહ્યા છે—(૧) અગ્રબીજ-કરંટક આદિ અગ્રબીજ વનસ્પતિકાયિક છે. (૨)
મૂલબીજ-ઉત્પલ કન્દાદિક મૂલબીજ વનસ્પતિકાયિક છે. (૩) પર્વબીજ-શેરડી
વાંસ આદિ પર્વબીજ વનસ્પતિકાયિક છે. (૪) સ્કન્ધબીજ-શલ્લકી આદિ. સ્કન્ધ
બીજ વનસ્પતિકાયિક છે. (૫) બીજરૂહ-વડ આદિ બીજરૂહ વનસ્પતિકાયિક છે.

व्यादयः ४। बीजरूहाः-वटादयः ५। सम्मूर्च्छिमाः दग्धधूमौ असत्यपि बीजे ये प्ररोहन्ति ते ६ ॥ सू० १० ॥

अनन्तरसूत्रेषु जीवाः प्ररूपिताः । सम्प्रति तेषामेव जीवानां ये पर्यायविशेषा दुर्लभास्तानाह--

मूलम्-छट्टाणाइं सव्वजीवाणं णो सुलभाइं भवंति, तं जहा-
माणुस्सए भवे १, आयरिए खित्ते जम्मं २, सुकुले पच्चायाई
३, केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स सवणया ४, सुयस्स वा सहहणया
५, सहहिथस्स वा पत्तियस्स वा रोइयस्स वा सम्मं काएणं
फासणया ६ ॥ सू० ११ ॥

छाया--पट्ट स्थानानि सर्वजीवानां नो सुलभानि भवन्ति, तद्यथा-मानु-
ष्यको भवः १, आर्ये क्षेत्रे जन्म २, सुकुले प्रत्यायातिः ३. केवलिप्रज्ञसस्य धर्मस्य
श्रवणता ४, श्रुतस्य वा श्रद्धानता ५, श्रद्धितस्य वा प्रतीतस्य वा रोचितस्य वा
सम्यक् कायेन स्पर्शनता ६ ॥ सू० ११ ॥

स्कन्दधीज वनस्पतिकायिक हैं। वट आदि बीजरूह वनस्पतिकायिक हैं और
जो जलीहुई भूमिमें धीजके अभावमें उत्पन्न होजाते हैं वे सम्मूर्च्छिम
वनस्पतिकायिक हैं

अब सूत्रकार इस बातको प्रकट करते हैं, कि जीवोंको ये २ पर्याय
विशेष दुर्लभ हैं--'छट्टाणाइं सव्वजीवाणं' इत्यादि सू० ११ ॥

समस्त जीवोंके ये छह पर्याये रूप स्थान सुलभ नहीं हैं--वे इस
प्रकारसे हैं मनुष्यभव १ आर्यक्षेत्रमें जन्म २ सुकुलमें जन्म ३ केवलि
प्रज्ञस धर्मकी श्रवणता ४ श्रुतका श्रद्धान ५ एव श्रद्धाके विषयभूत
अथवा प्रतीतिके विषयभूत अथवा रुचिके विषयभूत पदार्थकी अच्छी

(६) सम्मूर्च्छिम-दग्धधूमिमां पीत्रना अभावमां पणु ने उत्पन्न थर्ष जय छे
तेने सम्मूर्च्छिम वनस्पतिकायिक कडे छे ॥ सू. १० ॥

इवे सूत्रकार ये वात प्रकट करे छे के लवने कर्ष कर्ष पर्यायविशेषोनी
प्राप्ति दुर्लभ छे " छट्टाणाइ सव्वजीवाणं " इत्यादि--

समस्त लवने भाटे आ छ पर्याये रूप स्थाननी प्राप्ति दुर्लभ
गणाय छे--(१) मनुष्य भव, (२) सुकुलमां जन्म, (३) आर्यक्षेत्रमां जन्म,
(४) केवलीप्रज्ञस धर्मनुं श्रवणु, (५) श्रुत प्रत्ये श्रद्धा, (६) श्रद्धाना विषयभूत
अथवा प्रतीतिना विषयभूत अथवा रुचिना विषयभूत पदार्थनी छाया वडे

ટીકા—‘ છદ્ધાણાઈ ’ इत्यादि—

પટ્ટ સ્થાનાનિ સર્વજીવાનાં સુલભાનિ નો ભવન્તિ કાનિ તાનિ સ્થાનાનિ ?
इत्याह—तद्यथा—मानुष्ययो=मनुष्यसम्बन्धी अयो-जन्म न सुलभो भवति । तदुक्तम्—

“ ननु पुनरिदमतिदुर्लभमगाधसंसारजलधिधिभ्रष्टम् ।

मानुष्यं खद्योतकतडिल्लताधिलसितप्रतिभम् ” ॥ ૧ ॥ इति ।

इति प्रथमं स्थानम् ।

તથા—આર્યે ક્ષેત્રે=અર્હ્યપદ્ધિવિશતિજનપદરૂપે જન્મ=ઉત્પત્તિઃ સુલભં ન ભવતિ ।
तदुक्तम्—

“ सत्यपि च मानુષત્વે, દુર્લભતરમાર્યભૂમિસંભવનમ્ ।

यस्मिन् धर्माचरणव्रणत्वं प्राप्नुयात् प्राणी ” ॥ ૧ ॥ इति ।

इति द्वितीयं स्थानम् ।

તરહસે કાચસે સ્પર્શનતા લે મનુષ્યભવ સુલભ નહીં હોતા હૈ, યંહ ઘાત
इस प्रकारसे प्रकट की गई है—“ ननु पुनरिदमतिदुर्लभम् ” इत्यादि ।

जिस प्रकारसे अगाध संसार ससुद्रमें पतित हुए रत्नका पुनः
मिलना अति दुर्लभ है, इसी प्रकारसे प्राप्त किये गये इस मनुष्यजन्मका
नष्ट हो जाने पर पुनः मिलना भी बड़ा दुर्लभ है, यह मनुष्यजन्म
खद्योत और विघ्नत्की चमकके जैसा देखते २ नष्ट हो जाता है, आर्य-
क्षेत्रमें जन्म मिलना सुलभ नहीं है, सो इस विषयमें ऐसी समझाया
गया है—“ सत्यपि च मानुषतवे ” इत्यादि ।

મનુષ્ય જન્મકે મિલ જાને પર બી આર્ય ભૂમિમેં જન્મ ધારણ કરના
इस जीवको महादुर्लभ है, क्योंकि इस जीवको धर्माचरण करनेमें

સારી રીતે સ્પર્શના. મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ સુલભ નથી, એ વાતનું નીચેની
गाथा द्वारा प्रतिपादन करवाया आंथुं छे: “ ननु पुनरिदमतिदुर्लभम् ” इत्यादि

જેમ અગાધ સમુદ્રમાં પડી ગયેલા રત્નની ફરીથી પ્રાપ્તિ થવી દુર્લભ
गणाय छे, એ જ પ્રમાણે પ્રાપ્ત થયેલા આ મનુષ્ય જન્મને બીયર્થ શુભાવી
मेसवाथी ફરી તેની પ્રાપ્તિ થવી ઘણી જ દુર્લભ ગણાય છે. આગિયા અને
વિજળીની ચમક જેમ જોત જોતામાં નષ્ટ થઈ જાય છે, તેમ મનુષ્ય જન્મ
પણ જોતજોતામાં નષ્ટ થઈ જાય છે.

આર્યક્ષેત્રમાં જન્મ થવો, તે પણ દુર્લભ છે. આ વાત નીચેના સૂત્ર
द्वारा पुष्ट करवाया आंथी छे “ सत्यपि च मानुषतवे ” इत्यादि—

કદાચ મનુષ્ય જન્મ મળી જાય, તો પણ આર્યભૂમિમાં જન્મ ધારણ
करवानुं तो आ खवने भाटे धखुं ज दुर्लभ गणाय छे, कारण के धर्माचरण

(૧) ननु=निश्चये ।

तथा—सुकुलै=ऐक्ष्वाकादौ कुले प्रत्यायातिः=जन्म सुलभा न भवति। उक्तं च—

“ आर्यक्षेत्रोत्पत्तौ, सत्यामपि सत्कुलं न सुलभं स्यात् ।

सच्चरणगुणमणीनां, पात्रं प्राणी भवति यत्र ॥१॥ ” इति ।

इति तृतीयं स्थानम् ।

तथा—केवलिप्रज्ञप्तस्य=तीर्थंकरप्ररूपित्तस्य धर्मस्य श्रतचारित्रलक्षणस्य

श्रवणता-ध्वणं न सुलभा भवति । तदुक्तम्—

“ सुलहा सुरलोगसिरी, रयणापरमेहला मही सुलहा ।

निव्वुइसुहजणियरुई, जिणवयणसुईजए दुलहा ॥१॥ ”

छाया—सुलभा सुरलोकश्रीः, रत्नाकरमेखला मही सुलभा ।

निर्दृति सुखजनितरुचि निनचचनश्रुतिर्जगति दुर्लभा ॥१॥ इति ।

इति चतुर्थं स्थानम् ।

प्रवीणता इस आर्य क्षेत्रमेंही प्राप्त होती है, आर्यक्षेत्रमें २५॥ क्षेत्रही कहे गये हैं । ऐक्ष्वाकु आदि कुलमें जन्म लेना सुलभ नहीं है, सो इसके लिये ऐसा कहा गया है—“ आर्यक्षेत्रोत्पत्तौ ” इत्यादि ।

जीवको मनुष्यभवकी प्राप्ति हो जाने पर और आर्य क्षेत्रमें जन्ममिल जाने पर भी ऐक्ष्वाकु आदि सत्कुलमें (उत्तम) जन्म मिलना सुलभ नहीं है—क्योंकि सम्यक् चारित्र रूपी गुण मणियोंका पात्र यह जीव सत्कुलमेंही बनताहै, केवलि प्रज्ञप्त-तीर्थंकर कथित श्रुतचरित्र रूप धर्मका सुनना महादुर्लभ है—सो कहा है—

“ सुलहा सुरलोगसिरी ” इत्यादि ।

देवलोककी लक्ष्मीका मिलना सुलभ है, जिसका मध्यभाग रत्नोंकी खनिसे भरा पडा हो ऐसी भूमिका मिल जाना भी सुलभ है, परन्तु

धरवानी प्रवीणतानी प्राप्ति तो आर्यक्षेत्रमां न थाय छे. जेवा आर्यक्षेत्रा २५॥ कहां छे. ऐक्ष्वाकु आदि कुलमां जन्म थवे, ते पण सुलभ नथी. कहुं पण छे के “ आर्यक्षेत्रोत्पत्तौ ” इत्यादि—

एवने कदाच मनुष्य लव पण मणी लय, आर्यक्षेत्र पण मणी लय, छतां पण ऐक्ष्वाकु आदि सत्कुलमां जन्म थवे सुलभ नथी. सत्कुलमां जन्मेजे एव न सम्यक् चारित्र इप शुभमणियोने पात्र गने छे.

केवली प्रज्ञप्त—तीर्थंकर प्ररूपित श्रुत चारित्र इप धर्मतुं श्रवण तो तेथी पण वधु दुर्लभ गणाय छे कहुं पण छे के “ सुलहा सुरलोग सिरी ” इत्यादि देवलोकांनी लक्ष्मीनी प्राप्ति सुलभ गणाय छे, रत्नोथी लरपूर भूमिभाग (भाष) नी प्राप्ति पण सुलभ गणाय छे, परन्तु एवने सुकितना सुभमां

તથા--શ્રુતસ્ય શ્રદ્ધાનં ન સુલભં ભવતિ । અયં ભાવઃ-કેવલિપ્રાપ્તે ધર્મે શ્રુતેઽપિ તત્ર શ્રદ્ધા દુર્લભા ભવતીતિ । તદુક્તમ્--

“ આહ્ચ સવર્ણં લઙ્કું, સદ્ધા પરમદુર્લભા ।

સોષા નેયાઉયં મર્ગં, વદ્ધવે પરિભસ્લઙ્ ॥ ૧ ॥ ”

છાયા--કદાચિત્ શ્રવણં લઙ્કવા, શ્રદ્ધા પરમદુર્લભા ।

શ્રુત્વા (અપિ) નૈયામિકં માર્ગં વદ્ધવઃ પરિભ્રશ્વન્તિ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

ઈતિ પશ્ચમં સ્થાનમ્ ।

તથા--શ્રદ્ધિતસ્ય=સામાન્યેન શ્રદ્ધાવિપયીકૃતસ્ય, વા=અથવા પ્રતીતસ્ય= ઉપપત્તિભિઃ પ્રત્યયવિપયીકૃતસ્ય, વા=અથવા રોચિતસ્ય=રુચિવિપયી કૃતસ્ય શ્રુતસ્ય સમ્યક્=યાથાતથ્યેન કાયેન=શરીરેણ સ્પર્શનતા-સ્પર્શનમ્ આચરણં સુલભા ન ભવતિ, મનોરથમાત્રેણ અવિરતત્ સ્પર્શનં તુ સુલભમેત્ર ।

હસ જીવકો મુક્તિકે સુખમેં રુચિકો ઉત્પન્ન કરનેવાલે જિન વચનકો સુનના મહા દુર્લભ હૈ । શ્રુતકા શ્રદ્ધાન હોના અર્થાત્ જિન વચનકે ડપર જીવકી પ્રતીતિકા જગના ઘડા હી દુર્લભ હૈ-કેવલિ પ્રજ્ઞસ ધર્મકે સુનને પર મી ઉસ પર શ્રદ્ધા હોના મહાદુર્લભ હૈ । કહા મી હૈ-‘ આ-હ્ચ સવર્ણં લઙ્કું ’ ઇત્યાદિ । જિન પ્રણીત વચનકો સુનકર મી ઉસ પર શ્રદ્ધાકા હોના જીવકે લિયે ઘડા કઠિન હૈ, કયોંકિ જીવ ન્યાયા-નુકૂલ માર્ગસે ભ્રષ્ટ હો જાતે હૈ ।

તથા જો શ્રુત સામાન્યસે શ્રદ્ધાકા વિષય મી વનાયા ગયા હો, અથવા-યુક્તિ આદિકોંસે જો શ્રુતજ્ઞાનકાં મી વિષય વનાયા ગયા હો અથવા રુચિકા વિષય મી વનાયા ગયા હો પરન્તુ શરીરસે સમ્યક્

રુચિ ઉત્પન્ન કરાવનાર જિનવચનના શ્રવણુને લાભ પ્રાપ્ત થવો અતિ દુર્લભ ગણાય છે કદાચ જીવને કેવલી પ્રજ્ઞસ ધર્મના શ્રવણુની પણ તક મળી નય, પરન્તુ કેવલી ભગવાનનાં વચનો પ્રત્યે શ્રદ્ધા ભગૃત થવી, રુચિ ઉત્પન્ન થવી અને તેની પ્રતીતિ થવી ઘણી દુર્લભ છે. કહ્યું પણ છે કે :

“ આહ્ચ સવર્ણં લઙ્કું ” ઇત્યાદિ--જિન પ્રણિત વચનોનું શ્રવણુ કરવા છતાં પણ જીવને તે વચનો પ્રત્યે શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થવી ઘણી મુશ્કેલ છે, કારણુ કે જીવ ન્યાયાનુકૂલ માર્ગથી ભ્રષ્ટ થઈ નય છે.

કદાચ એવું પણ બની શકે કે જીવને કેવલી પ્રજ્ઞસ વચનોમાં શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ નય છે. અથવા યુક્તિ આદિકો દ્વારા તેને જ્ઞાનનો વિષય પણ બનાવવામાં આવે છે, અથવા રુચિનો વિષય પણ બનાવવામાં આવે છે, પરંતુ

ઉક્તંચ—“ ધમ્મં પિ હુ સદ્દહંતયા, દુહ્હયા કાણ ફાસયા ।

ઇયકામગુણેહિં મુચ્છિયા, સમયં ગોયમ । મા પમાયણ ॥૧॥ ”

છાયા--ધર્મમપિ શ્રદ્ધધત્કાઃ, દુર્લભાઃ કાયેન સ્પર્શકાઃ ।

ઇતિ કામગુણેષુ મૂર્ચ્છિતાઃ, સમયં ગૌતમ । મા પ્રમાદીઃ ॥૧॥ ઇતિ ।

ઇતિ પૃષ્ઠં સ્થાનમ્ । પ્રમાદાદિષુ વ્યાપૃતા એવ પ્રાણિનોદુર્લભમનુષ્યભવકા
ભવન્તિ, નત્વન્યે । યતો મનુષ્યભવમાશ્રિત્ય ઉક્તપપિ—

“ એયં પુણ એવં સ્વલુ, અન્નાણપમાયદોસઓ નેયં ।

જં દીહા કાયઠિર્ઠે, મણિયા ઈર્ગિદિયાદીણં ॥ ૧ ॥

એસા ય અસદ્ દોસા સેવ્રણઓ ધમ્મવ્જ્જચિત્તાણં ।

તા ધમ્મે જઇયવ્વં, સમ્મં સદ્ ધીરપુરિસેહિં ॥ ૨ ॥ ”

છાયા--એતત્ પુનરેવં સ્વલુ અજ્ઞાન પ્રમાદદોષતો જ્ઞેયમ્ ।

યદ્ દીર્ઘા કાયસ્થિતિઃ મણિતા એકેન્દ્રિયાદીનામ્ ॥ ૧ ॥

રૂપમેં ઉસકી સ્પર્શનાં કરના તો હસ જીવકો મહા દુર્લભ છે, અચિરત
કી તરહ મનોરથ માધસે સ્પર્શના તો સુલભ છે સોહી કહા છે—

“ ધમ્મંપિ હુ સદ્દહંતયા ” ઇત્યાદિ ।

હે ગૌતમ ! ધર્મકી શ્રદ્ધા કરનેવાલે જીવ એસે દુર્લભ છે, જો ઉસકે
કથનકે અનુસાર અપની પ્રવૃત્તિકો બના લેતે હેં । ક્યોંકિ યહ સંસાર
કામગુણોમેં મૂર્ચ્છિત બના હુઆ છે અતઃ હે ગૌતમ તુમ એક સમય ઓ
પ્રમાદમેં પતિત બત બનો ક્યોંકિ પ્રમાદમેં પતિત હુએ જીવહી દુર્લભ
મનુષ્યભવવાલે બનતે હેં । અન્ય નહીં ક્યોંકિ મનુષ્યભવકો આશ્રિત
કરકે એસા કહા ગયા છે—“ એયં પુણ એવં સ્વલુ ” ઇત્યાદિ ।

શરીર વડે સમ્યક્ રૂપે તેની સ્પર્શના (આચરણ) કરવાનું કાર્ય તો જીવને
માટે સૌથી વધારે કઠણ ગણાય છે. અચિરતની જેમ મનોરથ માત્રથી જ
સ્પર્શના કાર્યનું કાર્ય તો સુલભ છે. કહું પણ છે “ ધમ્મં પિ હુ સદ્દહંતયા ” ઇત્યાદિ—

હે ગૌતમ ! ધર્મ પ્રત્યે શ્રદ્ધા ધરાવનારા જીવો દુર્લભ છે. ધર્મ પ્રત્યે
શ્રદ્ધા રાખના છતાં ધર્મ અનુસાર પોતાની પ્રવૃત્તિ કરનારા જીવો તો અતિ
દુર્લભ છે, કારણ કે આ સંસાર કામલોભોમાં મૂર્ચ્છિત બનેલો છે. માટે હે
ગૌતમ ! એક ક્ષણને માટે પણ પ્રમાદ કરવો ભેદબે નહીં. જે જીવ પ્રમાદ
કરે છે તેને માટે મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ દુર્લભ બની બય છે માટે મનુષ્યે
પ્રમાદનો ત્યાગ કરવો ભેદબે. મનુષ્યભવને આશ્રિત કરીને એવું કહું છે કે

“ એવં પુણ એવં સ્વલુ ” ઇત્યાદિ—

एषा चासकृद् दोषासेवततो धर्मवर्जचित्तानाम् ।

तस्माद् धर्मे यत्तितव्यं सम्यक् सदा धीरपुरुषैः ॥२॥ इति ॥सू० ११॥

इन्द्रियार्थસંવરે સતિ માનુષત્વાદિકં સુલભં ભવતિ, તદસંવરે દુર્લભમિતિ
इन्द्रियार्थस्य षड्विधत्वमाह—

मूलम्—छ इन्द्रियत्था पणत्ता, तं जहा--सोइन्द्रियत्थे जाव
फासिन्द्रियत्थे नो इन्द्रियत्थे ॥ सू० १२ ॥

छाया--षट् इन्द्रियार्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा श्रोत्रेन्द्रियार्थो यावत् स्पर्शेन्द्रियार्थो
नो इन्द्रियार्थः ॥ सू० १२ ॥

टीका—‘ छ इन्द्रियत्था ’ इत्यादि—

इन्द्रियार्थाः—इन्द्रियाणाम् अर्थाः=विषया षट्=षट् संख्यकाः प्रज्ञप्ताः । ताने-
वाह—तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियार्थः—श्रोत्रेन्द्रियस्य—अर्थो विषयः शब्दः । यावत्पदात्—

એકેન્દ્રિયાદિક જીવોની જો યહ દીર્ઘકાલની કાય સ્થિતિ પ્રકટની
गई है, कही गई है, उसका कारण जीवका चारंबार प्रमादका सेवन
करना है, प्रमादका सेवन करनेवाला जीव धर्मसे वर्जित चित्तवाला
हो जाता है, इसलिये धीर पुरुषोंका यह कर्त्तव्य है, कि वे धर्ममें सदा
प्रयत्नशील रहे ॥ सू० ११ ॥

इन्द्रियोंके अर्थमें यदि इस जीवको संवरकी प्राप्ति हो जाती है,
तो मानुषत्व आदिकी प्राप्ति उसे सुलभ हो जाती है, इन्द्रियार्थके असं-
वरमें नहीं उस अवस्थामें तो वह दुर्लभही बन जाती है, अतः अब
सूत्रकार इन्द्रियार्थकी षट्विधताका कथन करते हैं—

એકેન્દ્રિયાદિક જીવોની આ જે દીર્ઘકાળની કાયસ્થિતિ પ્રકટ કરવામાં
આવી છે, તેનું કારણ એ છે કે તે જીવોએ પૂર્વભવમાં વારંવાર પ્રમાદનું
સેવન કર્યું હોય છે. પ્રમાદનું સેવન કરનારો જીવ ધર્મથી વર્જિત (રહિત)
ચિત્તવાળો બની જાય છે. તેથી ધર્મની પ્રવૃત્તિમાં પ્રવૃત્તિશીલ રહેવાનું ધીર
પુરુષોનું કર્તવ્ય થઈ પડે છે ॥ સૂ. ૧૧ ॥

ઇન્દ્રિયોના અર્થમાં (વિષયોમાં) જે આ જીવને સંવરની પ્રાપ્તિ થઈ
જાય છે, તે તેને માટે માનુષત્વ આદિની પ્રાપ્તિ સુલભ બની જાય છે. ઇન્દ્રિ-
યાર્થના અસંવરમાં તે તે દુર્લભ બની જાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર છ
પ્રકારના ઇન્દ્રિયાર્થોનું કથન કરે છે.

चक्षुरिन्द्रियार्थः घ्राणेन्द्रियार्थो रसनेन्द्रियार्थश्च ग्राह्यः । तत्र-चक्षुरिन्द्रियार्थो रूपम् । घ्राणेन्द्रियार्थो गन्धः । रसनेन्द्रियार्थो रसः । स्पर्शनेन्द्रियार्थः स्पर्शः । नोइन्द्रियार्थः नो शब्दो देशनिषेधपरः सादृश्यपरश्च । तत्र-औदारिकत्वार्थपरिच्छेदकत्वरूपधर्मद्वययुक्तमिन्द्रियं भवति । तत्र धर्मद्वयमध्ये औदारिकत्वरूपो धर्मो मनसि नास्ति, इति देशनिषेधात् नोइन्द्रियं मनः । अथवा-नो शब्दः सादृश्यार्थकः । इन्द्रियसादृश्यं च अर्थपरिच्छेदकत्वेनेति नो इन्द्रियं मनः । तस्य अर्थः=

‘छ इंदियत्था पणत्ता’ इत्यादि सूत्र १२ ॥

इन्द्रियोंके अर्थ विषय छ कहे गये हैं जैसे-श्रोत्रेन्द्रियका विषय यावत् स्पर्शनेन्द्रियका विषय और नोइन्द्रियका विषय इन्द्रियोंके विषय ६ प्रकारके कहे गये हैं, इनमें श्रोत्रेन्द्रियका विषय शब्द है, यावत् शब्दसे गृहीत हुए चक्षुरिन्द्रियका विषयरूप है, घ्राणेन्द्रियका विषय गन्ध है, रसना इन्द्रियका विषय रस है, और स्पर्शन इन्द्रियका विषय स्पर्श है । नो इन्द्रियमें नो शब्द देश निषेध परक और सादृश्य परक है, इस तरह जो इन्द्रिय औदारिकरूप और अर्थ परिच्छेदकरूप दो धर्मसे युक्त होता है, वह इन्द्रिय है, इन दो धर्मोंमेंसे मनमें औदारिकादि रूप धर्म नहीं है, इस कारण औदारिकत्वरूप एक देशके निषेधसे मन नो इन्द्रिय है, अथवा नो शब्द सादृश्यार्थक जब माना जाता है, तब जो अर्थपरिच्छेदकताको लेकर इन्द्रियके समान होता है, वह नो

“ छ इंदियत्था पणत्ता ” इत्यादि—

इन्द्रियोना अर्थ (विषय) छ कहां छे—(१) श्रोत्रेन्द्रियथी लधने स्पर्शेन्द्रियना विषय पर्यन्तना पांच इन्द्रियार्थोने अर्धी अडणु करवा लेधजे. (५) नो इन्द्रियने विषय.

इन्द्रियोना विषय छ प्रकारना जताव्या छे. श्रोत्रेन्द्रियने विषय शब्द छे, चक्षुरिन्द्रियने विषय रूप छे, घ्राणेन्द्रियने विषय गन्ध छे, रसना इन्द्रियने विषय रस छे अने स्पर्शेन्द्रियने विषय स्पर्श छे. “ नो इन्द्रिय ” आ पहमां नो शब्द देशनिषेधपरक अने सादृश्यपरक छे. इन्द्रिय तेने कडे छे के जे औदारिक रूप अने अर्थ परिच्छेदक रूप धर्मद्वयथी युक्त होय छे. आ जे धर्मोमांथी औदारिकत्व रूप अेकदेशना निषेधने लीधे मनने नो इन्द्रिय रूप कहुं छे अथवा ‘नो’ पहने जे सादृश्यार्थक मानवाभां आवे, तो नो इन्द्रियने अर्थ आ प्रभावे थाय छे—“ जे अर्थ परिच्छेदकताने लीधे

ત્રિપયો જીમદિઃ । મનો હિ આન્તરકરણં, કરણં ચેન્દ્રિયમેવેતિ તદર્થોઽપિ ઇન્દ્રિ-
યાર્થં ઇતિ પઠિન્દ્રિયાર્થાં ઉક્તાઃ ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

ઇન્દ્રિયાર્થાનાં સંવરે અસંવરે ચ સતિ મનુષ્યત્વાદિકં સુલભં દુર્લભં ચ ભવતી-
ત્યુક્તમ્, ઇન્દ્રિયાર્થસંવરાસંવરૌ ચ ઇન્દ્રિયમંવરાસંવરાધીનામિતિ ઇન્દ્રિયાણાં સંવરાન્
અસંવસંથ પ્રાહ--

મૂલમ્--છવિવહે સંવરે પળગત્તે, તં જહા--સોઈન્દિયસંવરે જાવ
ફાસિન્દિયસંવરે નોઈન્દિયસંવરે । છવિવહે અસંવરે પળગત્તે, તં
જહા--સોઈન્દિયઅસંવરે જાવ ફાસિન્દિય અસંવરે નોઈન્દિય-
અસંવરે ॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

છાયા-પદ્ધિવિઃ સંવરઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તદ્વથા-શ્રોત્રેન્દ્રિયસંવરો યાત્રત્ સ્પર્શેન્દ્રિયસંવરો
ઇન્દ્રિય હૈ, એસા અર્થ હોતા હૈ, અર્થ પરિચ્છેદકતા મનમેં હૈ હી હસલિયે
મન નોઈન્દ્રિય હૈ, હસ મનકા વિષય જીવાદિ પદાર્થ હૈ, મન આન્તર-
કરણ હૈ, ઓર જો કાણ હોતા હૈ, વહ ઇન્દ્રિયરૂપહી હોતા હૈ, ઇન્દ્રિયકા
અર્થ ઇન્દ્રિયાર્થ હોતા હૈ, હસ કારણ ઇન્દ્રિયાર્થ છ કહે ગયેહેં ॥ સૂ.૧૨ ॥

ઇન્દ્રિયાર્થકે સંવર હોને પર મનુષ્યત્વ આદિ પર્વાય સુલભ હોતી
હૈ, ઓર અસંવર હોને પર વહ દુર્લભ હોતી હૈ, એસા જો કહા ગયા હૈ,
સો ઇન્દ્રિયાર્થકા સંવર ઓર અસંવર ઇન્દ્રિયોંકે સંવર ઓર અસંવરકે
આધીન હોતા હૈ, અતઃ અવ સૂત્રકાર ઇન્દ્રિયોંકે સંવર ઓર અસંવરકા
વિવેચન કરતે હૈ--“છવિવહે સંવરે પળગત્તે” ઇત્યાદિ સૂ૦ ૧૩ ॥

ઇન્દ્રિયોના સમાન છે, એવું મન નો ઇન્દ્રિય રૂપ છે અર્થ પરિચ્છેદકતાનો
મનમાં અવશ્ય સદ્ભાવ છે, તેથી મન ‘નો ઇન્દ્રિય’ જ છે. મનનો વિષય
જીવાદિ પદાર્થ છે. મન આન્તર કરણ છે, અને જે કરણ હોય છે તે ઇન્દ્રિય
રૂપ જ હોય છે ઇન્દ્રિયના વિષયને ઇન્દ્રિયાર્થ કહે છે ઇન્દ્રિયો ૬ હોવાથી
ઇન્દ્રિયાર્થ પણ છ કહ્યા છે. ॥ સૂ. ૧૨ ॥

ઇન્દ્રિયાર્થોમાં સંવરની પ્રાપ્તિ થવાથી મનુષ્યત્વ આદિ પર્વાયો સુલભ
થઈ જાય છે, અને અસંવરના સદ્ભાવમાં તે દુર્લભ બની જાય છે, એવું
આગળ કહેવામાં આંચું છે. ઇન્દ્રિયાર્થનો સંવર કે અસંવર ઇન્દ્રિયોના સંવર
અને અસંવરને આધીન હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર ઇન્દ્રિયોના સંવર અને
અસંવરનું વિવેચન કરે છે. “છવિવહે સંવરે પળગત્તે” ઇત્યાદિ--

નોહિન્દ્રિયસંવરઃ । પદ્ધિવિધોઽસંવરઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તદ્વથા-શ્રોત્રેન્દ્રિયાસંવરો યાવત્સ્પર્શેન્દ્રિ-
યાસંવરો નોહિન્દ્રિયાસંવરઃ ॥ સૂ. ૧૩ ॥

ટીકા—‘ છવિહે ’ इत्यादि—

વ્યાખ્યા સુગમા ॥ સૂ. ૧૩ ॥

સંવરે અસંવરે ચ સતિ સાતામસાતં ચ ભવતિ, इति सातासातयोः प्रत्येकं
पद्विधत्वमाह—

મૂલમ્--છવિહે સાતે પળ્લસે, તં જહા--સોહંદિયસાતે નોહં-
દિયસાતે । છવિહે અસાતે પળ્લસે, તં જહા--સોહંદિયાસાતે
જાવ નોહંદિયાસાતે ॥ સૂ. ૧૪ ॥

છાયા—પદ્ધિવિધમ્ સાતં પ્રજ્ઞપ્તમ્, તદ્વથા-શ્રોત્રેન્દ્રિયાસાતં યાવત્ નોહિન્દ્રિય-
સાતમ્ । પદ્ધિવિધમ્ અસાતં પ્રજ્ઞપ્તમ્, તદ્વથા-શ્રોત્રેન્દ્રિયાસાતં યાવત્ નોહિન્દ્રિયા-
સાતમ્ ॥ સૂ. ૧૪ ॥

ટીકા—‘ છવિહે ’ इत्यादि—

સાતં=સુખં, તત્ પદ્ધિવિધં=ષટ્પ્રકારકં પ્રજ્ઞપ્તં=પ્રરૂપિતમ્ । પદ્ધિવિધત્વમેવાહ-
તદ્વથા-શ્રોત્રેન્દ્રિયાસાતમ્-મનોજ્ઞશબ્દશ્રવણેન યત્ સુખં ભવતિ તત્ શ્રોત્રેન્દ્રિય-

સંવર છહ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, जैसे श्रोत्रेन्द्रियसंवर यावत्
स्पर्शनेन्द्रिय संवर और नो इन्द्रिय (याने मन) संवर । असंवर भी छह
प्रकारका कहा गया है, जैसे-श्रोत्रेन्द्रिय असंवर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय-
असंवर और नोहन्द्रिय असंवर इस सूत्रकी व्याख्या सुगम है ॥सू.१३॥

સંવર ઓર અસંવરકે હોને પર સાત ઓર અસાત હોતા હૈ, अतः
अब सूत्रकार प्रत्येक सात एवं असातमें षट् प्रकारताका कथन करते हैं—

સંવરના ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) શ્રોત્રેન્દ્રિય સંવર, (૨) ચક્ષુરિન્દ્રિય
સંવર, (૩) શ્રાણુરિન્દ્રિય સંવર, (૪) રસનેન્દ્રિય સંવર, (૫) સ્પર્શેન્દ્રિય સંવર
અને (૬) નો હિન્દ્રિય સંવર (મન સંવર)

અસંવરના પણ છ પ્રકાર કહ્યા છે—શ્રોત્રેન્દ્રિય અસંવરથી લઈને નો
હિન્દ્રિય અસંવર પર્યન્તના ઉપર્યુક્ત ૬ પ્રકારો અહીં ગ્રહણ કરવા જોઈએ.
આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સુગમ છે. ॥ સૂ. ૧૩ ॥

સંવર અને અસંવરના સદ્ભાવમાં જ સાત (સાતા, સુખ) અને
અસાત (અસાતા, દુઃખ) નો સદ્ભાવ રહે છે. તેથી હવે સૂત્રકાર સાત
અને અસાતના ૬ પ્રકારોનું કથન કરે છે.

प्राणम् । एवं चतुर्गुण्ड्रियानादिरूपमपि विज्ञेयम् । तथा-इष्टचिन्तनतो यत् सुखं भवति तन्न नोऽन्द्रियानामिति । तथा-अस्मात्=दुःखमपि पद्विधं भवति । तत्र-अमनोऽन्वयव्यक्तो यद् दुःखं भवति तन् श्रोत्रेन्द्रियानाम् । एवम् अमनोऽन्वयव्यक्तानां त्रिगुण्ड्रियानामपि बोध्यम् । अनिष्टचिन्तनतो यद् दुःखं भवति तन्न नोऽन्द्रियानामिति ॥ सू० १४ ॥

पूर्वप्रधाने दुःखे निरूपितं दुःखमन्य क्षयश्च प्रायश्चित्ताद् भवतीति प्रायश्चित्तस्य पञ्चमेऽङ्गनाह—

मृतम् - अद्विहे प्रायश्चित्ते पण्यत्ते, तं जहा-आलोच्यणारिहे १, पाडिक्रमणारिहे २, तदुभयारिहे ३, त्रिवेगारिहे ४, विउसगारिहे ५ तत्रारिहे ६ ॥ सू० १५ ॥

છાયા—પદ્ધિવિંધં પ્રાયશ્ચિત્તં પ્રજ્ઞાતમ્, તદ્વથા—આલોચનાર્હમ્ ૧, પ્રતિક્રમ-
નાર્હમ્ ૨, તદુભયાર્હમ્ ૩, વિવેકાર્હમ્ ૪, વ્યુત્સર્ગાર્હમ્ ૫, તપોડર્હમ્ ૬ ॥ સુ. ૧૫ ॥

ટીકા—‘ છવિંધે ’ इत्यादि । प्रायश्चित्तम् पद्दिविंघं वोध्यम् । तत्र यद् गुरुनिवेद-
नया शुध्यति—तदालोचनार्हं प्रायश्चित्तम् १। मिथ्यादुष्कृतेन यत् शुध्यति तत् प्रति-
क्रमणार्हम् । यदालोचनामिथ्यादुष्कृताभ्यां शुध्यति तत् उभयार्हम् ३। आधाक-
र्मादौ परिष्ठापिते यत् शुध्यति तद् विवेकार्हम् ४। कायचेष्टानिरोधतो यत्
शुध्यति तत् व्युत्सर्गार्हम् ५। निर्विकृत्तिकादिना तपसा यत् शुध्यति तत् तपोऽ-
र्हम् ६ इति ॥ सु. १५ ॥

સૂત્રકે અન્તમેં દુઃસ્વકા નિરૂપણ ક્રિયાહૈ ઔર દુઃસ્વકા ક્ષય પ્રાયશ્ચિ-
ત્તસે હોતાહૈ, હસલિયે અવ સૂત્રકાર પ્રાયશ્ચિત્તકે છહ મેદોંકા કથન કરતેહૈ
'છવિંધે પ્રાયશ્ચિત્તે પળ્ણત્તે' इत्यादि सू. १५ ॥

પ્રાયશ્ચિત્ત છહ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, જૈસે—આલોચનાર્હ ૧ પ્રતિ-
ક્રમણાર્હ ૨ તદુભયાર્હ ૩ વિવેકાર્હ ૪ વ્યુત્સર્ગાર્હ ૫ ઔર તપોડર્હ ૬ ।

इनमें जो गुरुसे निवेदन करने पर दोष शुद्ध होता है, वह आलो-
चनार्ह प्रायश्चित्त है, जो मिथ्यादुष्कृतसे शुद्ध होता है, वह प्रतिक्रम-
णार्ह प्रायश्चित्त है, जो आलोचना एवं प्रतिक्रमण इन दोनोंसे शुद्ध
होता है, वह तदुभयार्ह प्रायश्चित्त है, आधाकर्म आदिके परिष्ठापित
होने पर जो शुद्ध होता है, वह विवेकार्ह प्रायश्चित्त है, कायचेष्टाके

પૂર્વસૂત્રના અતમાં દુઃખનું નિરૂપણ કર્યું છે. અને દુઃખનો સૂત્રકાર
પ્રાયશ્ચિત્તના ૬ લેહોનું કથન કરે છે.

“ છવિંધે પ્રાયશ્ચિત્તે પળ્ણત્તે ” इत्यादि—

પ્રાયશ્ચિત્તના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) આલોચનાર્હ, (૨)
પ્રતિક્રમણાર્હ, (૩) તદુભયાર્હ, (૪) વિવેકાર્હ, (૫) વ્યુત્સર્ગાર્હ અને (૬) તપઃઅર્હ

गुरुनी पासै निवेदन करवा मात्रथी न नै दोषनी शुद्धि थछ लय छे,
ते दोषनी शुद्धिरूप प्रायश्चित्तने आलोचनार्हं प्रायश्चित्तं कहे छे. नै मिथ्या
दुष्कृत वडे शुद्ध थाय छे, तेने प्रतिक्रमणार्हं प्रायश्चित्तं कहे छे. नै दोषनी
शुद्धि आलोचना अने प्रतिक्रमण आ गनने द्वारा थाय छे, तेने तदुभयार्हं
प्रायश्चित्तं कहे छे. आधाकर्म दोषथी हूषित थयेला आडारादिने परिष्ठापित
करवाथी (परठववाथी) नै शुद्ध थाय छे तेने विवेकार्हं प्रायश्चित्तं कहे छे.
कायचेष्टाना निरोधथी नै शुद्ध थाय छे ते दोषना प्रायश्चित्तने व्युत्सर्गार्हं

પ્રાયશ્ચિત્તવહનશીલારતુ મનુષ્યા એવ ભવન્તીતિ ' છવિવિહા મણુસા ' इत्या-
रभ्य लोकस्थितिस्त्रपर्यन्तं मनुष्यसम्बन्धीनि सूत्राणि प्राह—

मूलम्--छविह्वा मणुस्सगा पणत्ता, तं जहा--जंबूदीवगा १,
धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धगा २, धायइसंडदीवपच्चत्थिमद्धगा ३,
पुक्खरवर दीवडुपुरत्थिमद्धगा ४, पुक्खरवरदीवडुपच्चत्थिमद्धगा
४, अंतरदीवगा ६। अहवा छविह्वा मणुस्सा पणत्ता, तं जहा-
संमुच्छिममणुस्सा--कम्मभूमिगा १, अकम्मभूमिगा २, अंतर-
दीवगा ३, गवभव्रकंतियमणुस्सा--कम्मभूमिगा १, अकम्मभू-
मिगा २, अंतरदीवगा ३ ॥ सू० १६ ॥

छाया—पह्विधा मनुष्यकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-जम्बूद्वीपगाः १ धातकी-
खण्डद्वीपपौरस्त्यार्धगाः २, धातकीखण्डद्वीपपाश्चात्यार्द्धगाः ३, पुष्करवरद्वीपा
र्धपौरस्त्यार्द्धगाः ४, पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्धगाः ५, अन्तरद्वीपगाः ६। अथवा

निरोधसे जो शुद्ध होता है, वह व्युत्सर्गार्ह प्रायश्चित्त है, एवं निर्वि-
कृतिक (बिनाविषय) आदि तपसे जो दोष शुद्ध होता है, वह तपोऽर्ह
प्रायश्चित्त है ॥ सु० १५ ॥

પ્રાયશ્ચિત્તકો અક્ષીકાર કરનેવાલે મનુષ્યહી હોતે હેં હસલિયે અવ
સૂત્રકાર “ છવિવિહા મણુસા ” યહાંસે લેકર લોકસ્થિતિ પર્યન્ન મનુષ્ય
સંબન્ધી સૂત્રોંકા કથન કરતેહેં—“છવિવિહા મણુસ્સગા પણત્તા” इत्यादि

मनुष्य ६ प्रकारके कहे गये हैं—जैसे जम्बूद्वीपग १ धातकीखण्ड
द्वीप पौरस्त्यार्धग २ धातकीखण्डद्वीप पाश्चात्यार्द्धग ३ पुष्करवरद्वीपार्ध-
पौरस्त्यार्द्धग ४ पुष्करवरद्वीपार्ध पाश्चात्यार्धग ५ एवं अन्तरद्वीपग ६

પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે. નિર્વિકૃતિક આદિ તપ દ્વારા દોષની શુદ્ધિ કરવાને યોગ્ય
પ્રાયશ્ચિત્તને (તપોઠ્ઠ) (તપઃ અર્હ) પ્રાયશ્ચિત્ત કહે છે ॥ સૂ. ૧૫ ॥

મનુષ્યો જ પ્રાયશ્ચિત્ત લે છે આ સબંધને લીધે હવે સૂત્રકાર મનુષ્ય
વિષયક સૂત્રોનું કથન કરે છે “ છવિવિહા મણુસા ” અર્હીથી શરૂ કરીને
લોકસ્થિતિ પર્યન્તના સૂત્રોમાં સૂત્રકારે મનુષ્ય વિષયક કથન કર્યું છે.

“ છવિવિહા મણુસ્સગા પણત્તા ” इत्यादि—

મનુષ્યના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકારો કહ્યા છે—(૧) જંબૂદ્વીપગ (જંબૂ-
દ્વીપમાં જન્મેલા) ધ તકી ખંડ દ્વીપના પૂર્વાર્ધમાં જન્મેલા, (૩) ધાતકી ખંડ
દ્વીપના પશ્ચિમાર્ધમાં જન્મેલા, (૪) પુષ્કરવર દ્વીપાર્ધના પૂર્વાર્ધમાં જન્મેલા,
(૫) પુષ્કરવર દ્વીપાર્ધના પશ્ચિમાર્ધમાં જન્મેલા અને (૬) અન્તરદ્વીપમાં જન્મેલા

षड्विधा मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सम्पूर्च्छिममनुष्याः—कर्मभूमिगाः १, अकर्मभूमिगाः २, अन्तरद्वीपगाः ३, गर्भव्युत्क्रान्तिकाः—कर्मभूमिगाः १, अकर्मभूमिगाः २, अन्तरद्वीपगाः ३ ॥ सू० १६ ॥

टीका—‘ छविहा ’ इत्यादि—

मनुष्याणां षड्विधत्वं प्रकारद्वयेन बोध्यम् । तत्र प्रथमे प्रकारे जम्बूद्वीपगाः’ इत्यादयः षड्भेदाः । द्वितीये प्रकारे पूर्वं सम्पूर्च्छिमगर्भव्युत्क्रान्तिकभेदेन मनुष्या द्विविधाः । तत्र सम्पूर्च्छिमा त्रिविधा भवन्ति, गर्भव्युत्क्रान्तिका अपि त्रिविधा भवतीति षड्विधा मनुष्या भवन्तीति ॥ सू० १६ ॥

तथा—

मूलम्—छविहा इड्डीमंता सणुस्सा पणत्ता, तं जहा—अर-
हंता १, चक्रवर्ती २, बलदेवा ३, वासुदेवा ४, चारणा ५,
विजाहरा ६ ॥ सू० १७ ॥

अथवा—इस प्रकारसे मनुष्य ६ प्रकारके कहे गये हैं जैसे—सम्पूर्च्छिम मनुष्य कर्मभूमिग १ अकर्म भूमिग २ अन्तरद्वीपग ३ गर्भव्युत्क्रान्तिक कर्मभूमिग १ अकर्मभूमिग २ और अन्तरद्वीपग ३ ।

इस सूत्रमें मनुष्योंकी षट् प्रकारता प्रकटकी गई है, वह दो प्रकारसे प्रकटकी गई है, इनमें प्रथम प्रकारतामें “ जम्बूद्वीपग ” यहाँसे लेकर “ अन्तरद्वीपग ” तक कथन हुआ है, द्वितीय प्रकारतामें सम्पूर्च्छिम एवं गर्भव्युत्क्रान्तिकके भेदसे मनुष्य दो दो प्रकारके होते हैं, इनमें सम्पूर्च्छिम मनुष्य कर्मभूमिग, अकर्मभूमिग, और अन्तरद्वीपग तीन प्रकारके होते हैं, और गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य भी ३ प्रकारके होते हैं, इस तरह ६ प्रकारके मनुष्य होते हैं । सू० १६ ।

अथवा—मनुष्यता नीचे प्रमाणे ६ प्रकार पणु पडे छे—(१) सम्पूर्च्छिम मनुष्य कर्मभूमिग, (२) सम्पूर्च्छिम अकर्मभूमिग, (३) सम्पूर्च्छिम अन्तरद्वीपग, (४) गर्भव्युत्क्रान्तिक कर्मभूमिग, (५) अकर्मभूमिग अने (६) अन्तरद्वीपग.

आ सूत्रमां जे रीते मनुष्यता ६ प्रकारे पाठवामां आंव्या छे. पडेकी रीते “ जम्बूद्वीपग ” थी लईने “ अन्तरद्वीपग ” पर्यन्तता ६ प्रकार प्रकट करवामां आंव्या छे भील रीते मनुष्यता मुख्य जे लेह पड्या छे—
(१) सम्पूर्च्छिम अने (२) गर्भव्युत्क्रान्तिक तेमांथी सम्पूर्च्छिम मनुष्योना कर्मभूमि अ आदि त्रणु प्रकार पडे छे, अने गर्भव्युत्क्रान्तिकना पणु कर्मभूमि अ, अकर्मभूमि अ अने अन्तरद्वीप ज नामना त्रणु प्रकार पडे छे. आ रीते कुल छे प्रकार थाय छे. ॥ सू. १६ ॥

છાયા--પદ્ધિયા ઋદ્ધિમન્તો મનુષ્યાઃ પ્રજ્ઞતાઃ, તથથા-અર્હન્તઃ ૧, ચક્ર-
વર્તિનઃ ૨, બલદેવાઃ ૩, વાસુદેવાઃ ૪, ચારણાઃ ૫, વિદ્યાધરાઃ ૬ ॥ સૂ૦ ૧૭ ॥

ટીકા--' છવિહા ' इत्यादि--

વ્યાખ્યા સ્પષ્ટા । નવરમ્-ચારણાઃ-જહ્વાચારણા વિદ્યાચારણાશ્ચ વોથ્યાઃ ।
વિદ્યાધરાઃ-વૈતાલ્યાદિવાસિનઃ ॥ સૂ૦ ૧૭ ॥

તથા--

મૂલપ્-છવિહા અણિહ્મિંતા પળગન્તા, તં જહા-હેમવંતગા
૧, હૈરણ્યવંતગા ૨, હરિવર્ષગા ૩, રમ્યગવંસગા ૪, કુરુવાસિણો
૫, અંતરદીવગા ૬ ॥ સૂ૦ ૧૮ ॥

છાયા--પદ્ધિયા અનૃદ્ધિમન્તઃ પ્રજ્ઞતાઃ, તથથા-હેમવતગાઃ ૧, હૈરણ્યવતગાઃ
૨, હરિવર્ષગાઃ ૩, રમ્યકર્ષગાઃ ૪, કુરુવાસિનઃ ૫, અન્તરદ્વીપગાઃ ૬ ॥ સૂ૦ ૧૮ ॥

ટીકા--' છવિહા ' इत्यादि ।

વ્યાખ્યા સુગમા ॥ સૂ૦ ૧૮ ॥

“છવિહા ઇહ્મિંતા મણુસ્સા” इत्यादि सू० १७ ॥

ઋદ્ધિધારી મનુષ્ય ૬ પ્રકારકે હોતે હે, જૈસે-અર્હન્ત ૧ ચક્રવર્તી
૨ બલદેવ ૩ વાસુદેવ ૪ ચારણ ૫ ઓર વિદ્યાધર ૬ ।

હસકી વ્યાખ્યા સ્પષ્ટ હૈ, જહ્વાચારણ ઓર વિદ્યાચારણકે ભેદસે
ચારણ મનુષ્ય દો પ્રકારકે હોતે હે, વૈતાલ્ય આદિ પર્વતવાસી જો મનુષ્ય
હોતે હે તે વિદ્યાધર હે ॥ સૂ૦ ૧૭ ॥

“છવિહા અણિહ્મિંતા પળગન્તા” इत्यादि सूत्र १८ ॥

જિનકો કિસી ઓ પ્રકારકી ઋદ્ધિ નહીં હોતી હૈ, તે અનૃદ્ધિમાન
પ્રાણી ૬ પ્રકારકે કહે ગયે હે જૈસે-હેમવર્ષગ ૧ હૈરણ્યવર્ષગ ૨ હરિવર્ષગ

“ છવિહા ઇહ્મિંતા મણુસ્સા ” इत्यादि--

ઋદ્ધિધારી મનુષ્યોના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર પડે છે—(૧) અર્હન્ત,
(૨) ચક્રવર્તી, (૩) બળદેવ, (૪) વાસુદેવ, (૫) ચારણ અને (૬) વિદ્યાધર.
આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સુગમ છે. જહ્વાચારણ અને વિદ્યાચારણના ભેદથી ચારણ
મનુષ્ય જે પ્રકારના કહ્યા છે. વિદ્યાધરો વૈતાલ્ય આદિ પર્વતોના નિવાસી
હોય છે. ॥ સૂ. ૧૭ ॥

“ છવિહા અણિહ્મિંતા પળગન્તા ” इत्यादि -

જેમને કોઈ પણ પ્રકારની ઋદ્ધિનો સદ્ભાવ હોતો નથી એવાં ઋદ્ધિ
રહિત મનુષ્યોના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) હેમવર્ષગ, (૨) હૈરણ્ય-

तथा—

मूलम्—छविहा ओसपिणी पणत्ता, तं जहा-दुसमदुसमा जाव सुसमसुसमा ॥ सू० १९ ॥

छाया—षड्विधा अवसर्पिणी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—दुष्पमदुष्पमा यावत् सुषमसुषमा ॥ सु० १९ ॥

टीका—‘ छविहा ’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा । नवरं यावत्पदात्-दुष्पम २ दुष्पम सुषमा ३ सुषमदुष्पमा ४, सुषमा ५ ग्राह्याः ॥ सू० १९ ॥

तथा—

मूलम्—जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवणसु वासेसु तीयाए उस्त-पिणीए सुसमसुसमाए समाए मणुया छच्च धणुसहस्साइं उड्डु-मुच्चत्तेणं हुत्था, छच्च अद्धपलिओवसाइं परमाउं पालइत्था १, जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवणसु वासेसु इमीसे ओसपिणीए सुसम-सुसमाए समाए एवं चैव २, जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवण आगमे-स्ताए उस्तपिणीए सुसमसुसमाए समाए एवं चैव जाव छच्च ३ रम्यकवर्षग ४ कुरुवासी ५ और अन्तरद्वीपग ६ इस सूत्रकी व्याख्या सुगम है ॥ सू० १८ ॥

“ छविहा ओसपिणी पणत्ता ” इत्यादि सूत्र १९ ॥

अवसर्पिणी ६ प्रकारकी कही गई है, जैसे—दुष्पम दुष्पमा १ यावत् सुषम सुषमा ६ यहाँ यावत्पदसे—दुष्पमा २ दुष्पम सुषमा ३ सुषम दुष्पमा ४ सुषमा ५ इनका ग्रहण हुआ है ॥ १९ ॥

वर्षग, (३) उरिवर्षग, (४) रम्यकवर्षग, (५) कुरुवासी अने (६) अन्तरद्वीपग आ सूत्रनी व्याख्या सुगम छे ॥ सू० १८ ॥

“ छविहा ओसपिणी पणत्ता ” इत्यादि—

अवसर्पिणीना नीचे प्रमाणे ६ प्रकार कहे छे—(१) दुष्पम दुष्पमा, (२) दुष्पमा, (३) दुष्पम सुषमा, (४) सुषम दुष्पमा, (५) सुषमा अने (६) सुषम सुषमा ॥ सू० १९ ॥

पालिओवमाइं परमाउं पालइस्संति ३, जंबुद्वीवे दीवे देवकुरु
उत्तरकुरासु मणुया छ धणुसहस्साइं उडुं उच्चत्तेणं पणत्ता,
छच्च अद्धपालिओवमाइं परमाउं पालेति ४, एवं धायइसंड-
दीवपुरत्थिमद्धे चत्तारि आलावगा जाव पुक्खरवरदीवडूपच्च-
त्थिमद्धे चत्तारि आलावगा ॥ सू० २० ॥

छाया--जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोः वर्षयोः अतीतायाम् उत्सर्पिण्यां
सुषमसुषमायां समायां मनुजाः पट् च धनुसहस्राणि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन अमवन्
पट् च अर्धपल्योपमानि परमायुः अपालयन् १। जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोः
वर्षयोः अस्यामत्सर्पिण्याम् सुषमसुषमायां समायामेवमेव २। जम्बूद्वीपे द्वीपे
भरतैरवते आगमिष्यन्त्यामुत्सर्पिण्यां सुषमसुषमायां समायाम् एवमेव यावत् पट्
अर्धपल्योपमानि परमायुः पालयिष्यन्ति ३। जम्बूद्वीपे द्वीपे देवकुरुत्तरकुरुषु

तथा--'जम्बुद्वीवे दीवे भरहेरवएसु' इत्यादि सूत्र २० ॥

टीकार्थं जम्बूद्वीप सम्वन्धी भरतक्षेत्रमें और ऐरवतक्षेत्रमें अतीत कालकी
उत्सर्पिणीमें सुषम सुषमा नामके आरेमें मनुष्य ६ हजार धनुषके उंचे
थे ६ अर्ध पल्योपमकी उनकी उत्कृष्ट आयु थी १ जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें
भरत ऐरवत क्षेत्रमें इस अवसर्पिणीमें सुषम सुषमा नामके आरेमें
ऐसाही कथन कर लेना चाहिये २ जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें भरतक्षेत्र
और ऐरवत क्षेत्रमें आगामी सुषमसुषमा नामके आरेमें इसी तरहसे
कथन जानना चाहिये यावत् ६ अर्ध पल्योपमकी वहां उत्कृष्ट आयु
थी ३ जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें देवकुरु और उत्तरकुरुमें मनुष्य ६ हजार

तथा " जम्बूद्वीवे दीवे भरहेरवएसु " इत्यादि--

जम्बूद्वीपना भरतक्षेत्र अने ऐरवतक्षेत्रमां अतीतकालनी उत्सर्पिणीना
सुषम सुषमा नामना आरामां मनुष्यनी अथ ६ हजार धनुषप्रमाण्णु इती,
अने तेमनुं उत्कृष्ट आयुष्य ६ अर्धपल्योपमनुं इतुं. । १ ।

जम्बूद्वीपना भरत अने ऐरवतक्षेत्रमां आ अवसर्पिणीना सुषम सुषमा
नामना आरामां मनुष्यनी अथ ६ अने आयुष्यना विषयमां पणु उपयुक्त
कथन अडणु थनुं लेधये. । २ ।

जम्बूद्वीपना भरत अने ऐरवत क्षेत्रमां आगामी उत्सर्पिणीना सुषम
सुषमा नामना आरामां पणु मनुष्यनी अथ ६ हजार धनुषप्रमाण्णु अने
तेमनुं उत्कृष्ट आयुष्य ६ अर्धपल्योपमनुं इथे. । ३ ।

मनुजाः पड्धनुः सहस्राणि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः षट् च अर्धपल्योपमानि पर-
मायुः पालयन्ति ४। एवं धातकीखण्डद्वीपपौरस्त्यार्द्धे चत्वार आलापका यावत्
पुष्करवरद्वीपार्धपाश्चात्यार्द्धे चत्वार आलापकाः ॥ सू० २० ॥

टीका--' जंबुद्वीवे दीवे ' इत्यादि--

जम्बूद्वीपनामक द्वीपस्थे भारते ऐरवते च क्षेत्रे अतीतायाम् उत्सर्पिण्याम्
सुषम सुषमा नामक समायां मनुजाः षट् च धनुः सहस्राणि=त्रीन्कोशान् ऊर्ध्वम्
उच्चत्वेन अभवन्, तथा-षट् च अर्धपल्योपमानि=त्रीणि पल्योपमानि परमायुः=
उत्कृष्टमायुःअपालयन्=पालयन्ति स्मेति १। एरमग्रेऽपि व्याख्या बोध्या ॥सू० २०॥

तथा--

मूलम्--छठ्विहे संघयणे पणत्ते, तं जहा--वङ्गरोसभ णारायसंघ-
यणे १, उत्सभणाराय संघयणे २, नारायसंघयणे ३, अद्धनाराय-
संघयणे ४, खीलियासंघयणे ५, छेवट्टसंघयणे ६ ॥ सू० २१ ॥

छाया--पड्विधं संहननं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-वज्रकपभनाराचसंहननत् १
ऋषभनाराचसंहननं २, नाराचसंहननं ३, कीलिका संहननं ४, सेवार्त्तसंहन-
नम् ५ ॥ सू० २१ ॥

धनुषके ऊंचे होते कहे गयेहैं, और ६ अर्ध पल्योपमकी इनकी उत्कृष्ट आयु
कही गईहै ४ इसी तरहसे धानकी खण्ड द्वीपके पौरस्त्यार्द्धमें (पूर्वके आधा
भाग)चार आलापक यावत् पुष्करवर द्वीपार्धके पाश्चात्यार्धमें चार आला-
पक कहलेना चाहिये । छह अर्ध पल्योपमका भाव है ३ पल्योपम ६
हजार धनुषसे ३ कोश लिये गये हैं, क्योंकि २ हजार धनुषका एक
कोश होता है ॥ सू० २० ॥

जंबूद्वीप नामना द्वीपना देवकुरु अने उत्तरकुरु नामना क्षेत्रोभां मनुष्योनी
जिंथाध ६ हजार धनुषप्रमाणु कही छे अने तेमनुं उत्कृष्ट आयुष्य ६ अर्ध-
पल्योपमनुं कहु छे. । ४ ।

जे ज प्रमाणु धातकीअंड द्वीपना पूर्वार्धना मनुष्यो विषे चार आला-
पक कडेवा नेधजे जे ज प्रमाणु पुष्करवर द्वीपार्धना पश्चिमाध पर्यन्तना
द्वीपाना मनुष्यो विषे पणु चार-चार आलापके कडेवा नेधजे. जे हजार
धनुषने जेक कोश थाय छे. तेथी ६००० धनुषप्रमाणु जिंथाध जेटदे ३
कोशप्रमाणु जिंथाध समजवी छे अर्धपल्योपमनुं आयुष्य जेटदे त्रणु पल्यो-
पमनुं आयुष्य समजवुं ॥ सू. २० ॥

टीका—‘ छन्विहे ’ इत्यादि—

संहननं—संहन्यन्ते=दृढतामायाद्यन्ते शरीरपुद्गला येन तत्, अस्यां रचनाविशेषः, शक्तिविशेषो वा । तत् पङ्क्तिं=षट्प्रकारकं प्रज्ञप्तम् । तद्यथा—वज्रऋषभनाराचसंहननम्, तत्र-वज्र=कीलिकाकारमस्थि, ऋषभः=तदुपरिपरिवेष्टनपट्टाकृतिकोऽस्थिविशेषः, नाराच=उभयतो मर्कटबन्धः । तथा च-द्वयोरस्थनो रुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थना परिवेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रयं पुनरपि दृढीकर्तुं निखातमस्थित्रयभेदकं कीलिकाकारं वज्रनाममस्थि यत्र भवति

टीकार्थ—तथा—“छन्विहे संवयणे पण्णत्ते तं जहा” इत्यादि

संहनन ६ प्रकारका कहा गया है, जिसके द्वारा शरीर पुद्गल दृढताको प्राप्त करते हैं, उसका नाम संहनन है, यह संहनन हड्डियोंकी रचना विशेषरूप होना है, अथवा शक्ति विशेषरूप होता है, संहनन ६ प्रकारका कहा गया है, जैसे—वज्र ऋषभनाराच संहनन ? इस संहननमें वज्र नामकी हड्डी कीलकके आकारकी होती है, और इसके ऊपर एक हड्डी ऐसी होती है, जो परिवेष्टन पट्टकी आकृतिके जैसी होती है, इसका नाम ऋषभ है, तथा दोनों तरफ जो मर्कटबन्ध होना है, उसका नाम नाराच है, तथा च दोनों तरफ मर्कटबन्धसे बन्ध एवं पट्टकी आकृति जैसी तृतीय हड्डीसे परिवेष्टित हुई ऐसी दो हड्डियोंके ऊपर जो इन तीनों हड्डियोंकी बहुत अधिक दृढ करनेके लिये कीलेके जैसी गद्दी हुई

टीकार्थ—तथा “ छन्विहे संवयणे पण्णत्ते तं जहा ” इत्यादि—

संहनना ६ प्रकार कक्षा छे—जेना द्वारा शरीरनां पुद्गलो दृढताने प्राप्त करे छे तेतुं नाम संहनन छे. ते संहनन डाडकाञ्चोनी विशिष्ट रचनारूप छे।य छे अथवा शक्ति विशेषरूप छे।य छे ते संहननना छ प्रकाश नीचे प्रभाञ्छे कक्षा छे—(१) वज्र ऋषभनाराच संहनन, (२) ऋषभनाराच संहनन, (३) नाराच संहनन, (४) अर्धनाराच संहनन, (५) क्षीलिका संहनन अने (६) सेवार्त्त संहनन

इवे वज्रऋषभनाराच संहननतुं स्वरूप केतुं छे।य छे ते प्रकट करवामां आवे छे—आ संहननमां क्षीलिकना आकारनी वज्र नामनी हड्डी (डाडकुं) छे।य छे. तेना उपर अेक अेपी हड्डी छे।य छे के जे परिवेष्टन पट्टना जेवा आकारनी छे।य छे, जेतुं नाम ऋषभ छे. तथा अन्ने तरफने जे मर्कटबन्ध छे।य छे तेतुं नाम ‘ नाराच ’ छे तथा अन्ने तरफना मर्कटबन्धनी साथे अन्ध अने पट्टनी आकृति जेतुं त्रीलुं डाडका वडे परिवेष्टित थयेला जे डाडकाञ्चोनी उपर अे त्रैलुं डाडकाञ्चोने पूष ज दृढ करवाने माटे भीलाना जेपी रचनावाणा

તદ્ વજ્રઋષભનારાચં, તત્ત્વસંહનન ચેતિ તન્ ૧૧ । તથા-ઋષભનારાચસંહન-
નમ્-યત્ર સંહનને વજ્રં નાસ્તિ ઋષભનારાચૌ તુ વિદ્યેતે તત્ ॥ ૨ ॥ નારાચસંહ-
નનમ્ યત્ર સંહનનેન વજ્રઋષભૌ ન સ્તઃ, કેવલો નારાચો ભવતિ, તત્ ॥ ૩ ॥
અર્ધનારાચસંહનનમ્-યત્ર તુ એકપાર્શ્વેન નારાચૌ દ્વિતીયપાર્શ્વેન ચ વજ્રં તત્ ॥ ૪ ॥

હઢી રહતી હૈ, કિ જિસકા નામ વજ્ર અસ્થિ હૈ, એસી રચના વિશેષ
જિસ શરીરમેં હોતા હૈ, વહ વજ્ર ઋષભનારાચ સંહનન હૈ, તાત્પર્ય હિસ
કથનકા કેવલ યહી હૈ, કિ જિસ શરીરકે વેષ્ટન કીલેં ઓર હઢિયાં
વજ્રમય હોતી હૈં, વહ પૂર્વોક્ત સંહનન હૈ, વ્યવહારમેં જિસ પ્રકાર દો
કાષ્ટોંકો જોડનેકે લિયે પહિલે તો લોહેકી પંચસે ઉન્હેં જકડ
દિયા જાતા હૈ, ઓર ફિર ઉસ પંચકે ડપર વિશેષ મજબૂતીકે લિયે
કીલે મી ઢોક દી જાતી હૈ, હસી તરહકી રચના જિસ શરીરમેં હઢિયોંકી
હોતી હૈ, વહી વજ્ર ઋષભનારાચ સંહનન હૈ, દૂસરા સંહનન હૈ ઋષભ-
નારાચ સંહનન હિસ સંહનનમેં વજ્ર નામકી અસ્થિ નહીં હોતી હૈ, કેવલ
ઋષભ ઓર નારાચહી હોતે હૈં, તૃતીય સંહનન હૈ નારાચ-હિસ સંહનનમેં
વજ્ર ઓર ઋષભ યે દોતોં નહીં હોતે હૈં, કેવલ નારાચ ઉભયતઃ મર્કટ-
બન્ધહી હોતા હૈ, ચતુર્ય સંહનન હૈ-અર્ધનારાચ-હિસ સંહનનમેં એક
તરફ તો નારાચ હોતા હૈ, ઓર દૂસરી ઓર વજ્ર રહના હૈ, પાંચવાં

જે હાડકા રહે છે તેનું નામ વજ્ર અસ્થિ છે આ પ્રકારની રચના વિશેષને જે
સંહનનમાં સદ્ભાવ હોય છે, તે સંહનનને વજ્રઋષભનારાચ સંહનન કહે છે.
આ કથનને ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે-જે શરીરમાં વેષ્ટન, કીલો (ખીલીઓ) અને
હાડકાંઓ વજ્રમય હોય છે તે શરીરને વજ્રઋષભનારાચ સંહનનવાળું કહે
જેમ જે લાકડાંને જોડવાને માટે પહેલાં તે લોહના પંચ વડે તેમને જકડી
લેવામાં આવે છે, અને ત્યાર બાદ વિશેષ મજબૂતીને માટે તે પંચ ઉપર
ખીલાઓ પણ ઠોકવામાં આવે છે. આ પ્રકારની હાડકાંની રચના જે શરીરમાં
હોય છે તે શરીરને વજ્રઋષભનારાચ સંહનનવાળું શરીર કહે છે.

(૨) ઋષભનારાચ સંહનન--આ સંહનનમાં વજ્ર નામના અસ્થિને
સદ્ભાવ હોતો નથી. માત્ર ઋષભ અને નારાચને જ સદ્ભાવ હોય છે

(૩) નારાચ સંહનન--આ સંહનનમાં વજ્ર અને ઋષભ, આ બંને
હોતાં નથી પણ નારાચ (ઉભયતઃ મર્કટ બન્ધ) જ હોય છે.

(૪) અર્ધનારાચ સંહનન--આ પ્રકારના સંહનનમાં એક તરફ નારાચ
હોય છે અને બીજી તરફ વજ્ર રહે છે.

કીલિકાસંહનનમ્—યત્ર સંહનનેઽસ્થીની વજ્રાપરનામધેયકીલિકામાત્રેણ અવવ-
દ્ધાનિ ભવન્તિ તત્ ॥ ૬ ॥ તથા—સેવાર્ત્તસંહનનમ્—સેવા=પરસ્પરં પર્યન્તસ્પર્શલ-
ક્ષણા; યત્ર સંહનને સેવામાગતાનિ અસ્થીની ભવન્તિ, સ્નેહાભ્યવહરણતૈલાભ્યઙ્ગવિ-
શ્રામણાદિરૂપાં ચ પરિશીલનાં નિત્યમપેક્ષતે તત્ ॥ ૧ ॥ इति । शक्तिविशेषपक्षे
तु—‘सागवान्’ इति भाषाप्रसिद्धशाखोटकाष्ठादेरिव दृढत्वं संहननं बोध्यम् ।
इति ॥ सू० २१ ॥

તથા—

મૂલમ્—છઠ્ઠિવહે સંઠાળૈ પળ્લત્તે, તં જહા-સમચતુરસે ૧,

ળગ્ગોહપરિમંડલે ૨, સાઈ ૩, યુજ્જે ૪ વામળે ૫ હુંડે ૬ સૂ ॥૨૨॥

હાયા—પદ્ધવિધં સંસ્થાનં પ્રજ્ઞસમ્, તથા—સમચતુરસમ્ ૧, ન્યયોધપરિ-
મલ્ડલં ૨, સાદિ ૩, કુબ્જં ૪, વામનં ૫, હુન્ડમ્ ૬ ॥ સૂ૦ ૨૨ ॥

સંહનન હૈ કીલિકા—હસ સંહનનમેં હઢિયાં વજ્ર નામક કીલિકા માત્રસે
વંધી હુઈ રહસી હૈ, તયા છઠા સંહનન હૈ—સેવાર્ત્ત—હસ સંહનનમેં સેવા
તક આગમ હઢિયાં હોની હૈં, અર્થાન્ હઢિયાં આપસમેં એક દૂસરી હઢિકે
કોનોસે મિલીજુતી રહસી હૈં । તૈલ લગાનો તૈલસે માલિશ કરના ધકા-
વટ હોને પર વિશ્રામ દેના આદિ રૂપ પરિશીલના કી જો નિત્ય અપેક્ષા
રખના હૈ, એસા જો સંહનન હૈ, વહ સેવાર્ત્ત સંહનન હૈ, ૬ હસ પ્રકારસે
યે ૬ સંહનન હૈં, શક્તિ વિશેષ પક્ષમેં તો “ સાગવાન્ ” શાલોટ કાષ્ઠ
આદિકી તરહ જો દઢના હૈ, વહ સંહનન હૈ, એસા જાનના ચાહિયે ॥ સૂ૦ ૨૧ ॥

(૫) કીલિકા સંહનન—આ સંહનનમાં હાડકાં માત્ર વળ નામની
કીલિકા વડે જ બંધાયેલાં રહે છે.

(૬) સેવાર્ત્ત સંહનન—આ સંહનનમાં હાડકાંએ અન્યોન્યની સાથે
એક બીજાના ખૂણાએ વડે મળેલાં રહે છે. આ પ્રકારના સંહનનવાળું શરીર
તેલના માલિશની તથા થાક લાગે ત્યારે વિશ્રામ આદિ રૂપ પરિશીલતાની
(સેવાની) અપેક્ષા રાખે છે, તેથી એવા સંહનનને સેવાર્ત્ત સંહનન કહે છે.
આ પ્રકારના આ છ સંહનન કહ્યા છે. શક્તિવિશેષ પક્ષે તો “ સાગવાન્ ”
શાલોટ કાષ્ઠ આદિની જેમ જે દઢતા છે, તે સંહનન છે, એમ સમજવું
જોઈએ ॥ સૂ. ૨૧ ॥

ટીકા—‘ છવ્વિહે ’ ઇત્યાદિ—

સંસ્થાનમ્—અચ્ચવરચનારૂપઃ શરીરાકારઃ પહ્લવિધં પ્રજ્ઞસમ્ । તદ્વથા—સમચ-
તુરસમ્—સમાઃ=તુલ્યાઃ ચતસ્રઃ અસ્રયઃ=કોટયો यस્ય તત્ । અસ્રયસ્તિત્વહ—ચતુ-
ર્દિગ્વિભાગોપલક્ષિતાઃ શરીરાવયવઃ । અયં ભાવઃ—યત્ર સંસ્થાને સર્વેઽપિ શરીરા-
વયવઃ ચતુર્દિગ્ વિભાગોપલક્ષિતાઃ=શરીરલક્ષણોક્તપ્રમાણપ્રમાતા ભવન્તિ, ન તું
=યુના અધિકાઃ તત્સંસ્થાનં સમચતુસ્સં બોધ્યમિતિ ॥ ૧ ॥ તથા—ન્યગ્રોધપરિમળ-
લમ્—યત્ર સંસ્થાને ન્યગ્રોધવત્ પરિતો મળ્ડલં ભવતિ તત્ । અયં ભાવઃ—યથા ન્યગ્રોધો-

ટીકાર્થ—તથા—“છવ્વિહે સંઠાણે પળ્લત્તે” ઇત્યાદિ સૂત્ર ૨૨ ॥

સંસ્થાન છ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, જૈસે—સમચતુરસ્રસંસ્થાન ૧
ન્યગ્રોધપરિમળ્ડલ સંસ્થાન ૨ સાદિ સંસ્થાન ૩ કુબ્જસંસ્થાન ૪ વામન
સંસ્થાન ૫ ઔર હુંડક સંસ્થાન ૬ અવયવોંકી રચના રૂપ જો શરીરકા
આકાર હૈ, ઉસકા નામ સંસ્થાન હૈ, જિસ સંસ્થાનમેં શરીરકા આકાર
ઠીક પ્રમાણમેં હોતા હૈ, વહ સમચતુરસ્ર સંસ્થાન હૈ, સમાન કોટિ
જિસકી હોતી હૈ, અર્થાત્ શરીરકે અમુક અવયવ અમુક દિશાકી ઔર
ઉસ શરીરકે અનુસાર હતને પ્રમાણવાલે હોના ચાહિયે અમુક દિશાકી
ઔર હતને પ્રમાણવાલે હોને ચાહિયે ઇસ તરહકે પ્રમાણસે યુક્ત જિસ
શરીરમેં ઉસકે અવયવ હોં કમતી વઢતી ન હોં એસા વહ સંસ્થાન સમ-
ચતુરસ્ર સંસ્થાનહૈ । દૂસરા સંસ્થાન—ન્યગ્રોધપરિમળ્ડલહૈ, ઇસ સંસ્થાનમેં
ન્યગ્રોધકી વટવૃક્ષ તરહ પરિતઃ મળ્ડલ હોનાહૈ, તાત્પર્ય એસાહૈ, જૈસે—

ટીકાર્થ—તથા “ છવ્વિહે સંઠાણે પળ્લત્તે ” ઇત્યાદિ—

સંસ્થાનના છ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) સમચતુરસ્ર સંસ્થાન, (૨) ન્યગ્રોધ
પરિમંડલ સંસ્થાન, (૩) સાદિ સંસ્થાન, (૪) કુબ્જ સંસ્થાન, (૫) વામન
સંસ્થાન અને (૬) હુંડક સંસ્થાન.

અવયવોની રચના રૂપ જે શરીરનો આકાર છે તેનું નામ સંસ્થાન છે.
જે સંસ્થાનમાં શરીરનો આકાર સપ્રમાણ હોય છે, તે સંસ્થાનને સમચતુરસ્ર
સંસ્થાન કહે છે. શરીરના જે ભાગના અવયવનું જેટલું પ્રમાણ હોતું જોઈએ
એટલા પ્રમાણવાળા તે અવયવો હોય—કોઈ પણ અવયવના પ્રમાણમાં વધારો
છટાકો ન હોય, એવા સપ્રમાણ અવયવોવાળા શરીરને સમચતુરસ્ર
સંસ્થાન કહે છે.

ન્યગ્રોધપરિમંડલ સંસ્થાન—ન્યગ્રોધ એટલે વડનું ઝાડ. જેમ વડનું ઝાડ
ઉપરના ભાગમાં પરિપૂર્ણ આકારવાળું હોય છે, પણ તે નીચેના ભાગમાં પરિ-

વટવૃક્ષ ઉપરિ પરિપૂર્ણાકારો ભવતિ, અધરતુ ન તથા, તથૈવ યત્સંસ્થાનં નાભે-
રુપરિ શરીરલક્ષણોક્તાવયવસમન્વિતં ભવતિ, તદધસ્તુ હીનમધિકં વા ભવતિ,
તત્સંસ્થાનં ન્યગ્રોધપરિમણ્ડલં વોદ્યમિતિ ॥ ૨ ॥ તથા-સાદિ-આદિના-પ્રમાણો-
પેતરૂપેણ સહ વર્તેતે इति સાદિ । અત્ર આદિ શબ્દેન નાભેરધોમાનો ગૃહ્યતે ।
તતથ ચ ત્ર સંસ્થાને નાભેરધસ્તનઃ પ્રદેશઃ શરીરલક્ષણોક્તપ્રમાણયુક્તો ભવતિ, ઉપ-
રિભાગત્તુ ન તથા, તત્ સંસ્થાનં સાદીત્યુચ્યતે, इति ॥ ૩ ॥ કુન્નમ્-યત્ર સંસ્થાને
પાણિપાદશિરોપ્રીતરૂપા અવયવાઃ અન્યૂનાધિકપ્રમાણા ભવન્તિ અવશિષ્ટા વક્ષઃ-

ન્યગ્રોધ-વટવૃક્ષ ऊपरमें परिपूर्ण आकारवाला होता है, और अपने नीचे
वह परिपूर्ण आकारवाला नहीं होताहै, उसी तरहसे जो संस्थान नाभिसे
ऊपर तो शरीर लक्षणोक्त प्रमाणवाले अवयवोंसे युक्त होता है, और
नीचे नाभिसे नीचे ऐसा नहीं होता है, हीन अवयवोंवाला भी होता
है, अधिक अवयवोंवाला भी होना है, ऐसा संस्थान न्यग्रोध परिमण्डल
संस्थान है, 'सादिसंस्थान' यह तृतीय संस्थान है, इस संस्थानमें आदि
शब्दसे नाभिका अग्रभाग गृहीत हुआ है, अतः जिस संस्थानमें
नाभिसे नीचेका प्रदेश शरीरके लक्षणोंमें जैसा आकारका प्रमाण कहा
गया है, उस प्रमाणसे युक्त हो और ऊपरका प्रदेश वैसा न हो ऐसे
संस्थानका नाम सादि संस्थान है, यह संस्थान न्यग्रोध परिमण्डल
संस्थान विपरीत होता है । कुन्ज यह चतुर्थ संस्थान है-इस संस्थानमें
कर, चरण, शिर, ग्रीवा ये सब अवयव अन्यूनाधिक प्रमाणवाले होते

પૂર્ણ આકારવાળું હોતું નથી, એ જ પ્રમાણે જે શરીરતું સંસ્થાન નાભિથી
ઉપરના ભાગમાં તે સપ્રમાણ અવયવોથી (શાસ્ત્રોક્ત લક્ષણોવાળાં અવયવોથી)
યુક્ત હોય, પરંતુ નાભિથી નીચે હીન અવયવોવાળું અથવા અધિક પ્રમાણ-
યુક્ત અવયવોવાળું હોય, તે સંસ્થાનને ન્યગ્રોધપરિમંડલ સંસ્થાન કહે છે.
આ સંસ્થાનમાં વટવૃક્ષની જેમ પરિતઃ મંડલ હોય છે. તેની સ્પષ્ટતા ઉપર
કહ્યા પ્રમાણે સમજવી.

સાદિ સંસ્થાન--અહીં આદિ પદ વડે નાભિનો અર્ધો ભાગ ગૃહીત થયો
જે સંસ્થાનમાં નાભિની નીચેના ભાગના અવયવોનો આકાર સપ્રમાણ
હોય પણ નાભિની ઉપરના ભાગના અવયવો સપ્રમાણ આકારવાળા ન હોય
એવા સંસ્થાનને સાદિ સંસ્થાન કહે છે. આ સંસ્થાન ન્યગ્રોધપરિમંડલ
સંસ્થાન કરતાં વિપરીત લક્ષણોવાળું હોય છે.

કુન્ન સંસ્થાન--આ સંસ્થાનમાં હાથ, પગ, મસ્તક, ડોક આદિ અવ-
યવો અન્યૂનાધિક પ્રમાણવાળા (સપ્રમાણ) હોય છે, પણ વક્ષઃસ્થલ આદિ

સ્થલાદયસ્તુ અવયવાઃ શરીરલક્ષણોક્તપ્રમાણરહિતા ભવન્તિ, તત્ ॥ ૪ ॥ વામનમ્-
યત્ર સંસ્થાને પાણિપાદશિરોગ્રીવરૂપા અવયવાઃ લઘ્વો ભવન્તિ, તત્ ॥ ૫ ॥ તથા-
હુણ્ડમ્-યત્ર સંસ્થાને એકમપ્યજ્ઞ શરીરલક્ષણોક્તપ્રમાણોપેતં ન ભવતિ, તત્ ૬ ॥ સૂ ૦ ૨૨ ॥

તથા-

મૂલમ્--છટ્ટાણા અણત્તવઓ અહિયાએ અસુહાએ અસ્વમાએ
અણિસ્સેયસાએ અણાણુગામિયત્તાએ ભવંતિ, તં જહા-પરિયાએ
૧, પરિયાલે ૨, સુએ ૩, તવે ૪, લાભે ૫. પૂયાસક્કારે ૬। છટ્ટાણા
અત્તવઓ હિયાએ જાત્ર આણુગામિયત્તાએ ભવંતિ, તં જહા-પરિ
યાલે જાત્ર પૂયાસક્કારે ॥ સૂ ૦ ૨૩ ॥

છાયા—પદ્ સ્થાનાનિ અનાત્મવતઃ અદિતાય અશુભાય અક્ષમાય અનિઃ-
શ્રેયસાય અનાનુગામિકૃતાયૈ ભવન્તિ, તદ્વથા-પર્યાયઃ ૧, પરિવારઃ ૨, શ્રુતમ્ ૩,
તપઃ ૪, લાભઃ ૫, પૂજાસત્કારઃ ૬। પદ્ સ્થાનાનિ આત્મવતો દિતાય યાવત્
આનુગામિકૃતાયૈ ભવન્તિ, તદ્વથા-પર્યાયઃ પરિવારો યાવત્ પૂજાસત્કારઃ ॥ સૂ ૦ ૨૩ ॥

હૈં, ઓર વક્ષઃસ્થલ આદિ અવયવ શરીર લક્ષણોક્ત પ્રમાણસે રહિત હોતે
હૈં, એસા વહ સંસ્થાન કુબ્જ સંસ્થાન હૈ, તાત્પર્ય યહ હૈ, કિ કુબ્જ-
સંસ્થાનમેં હાથ ચરણ આદિ તો લઘ્વે હોતેહૈં, ઓર મધ્યભાગ છોટા હોતા
હૈ, વામન યહ ૫ વાં સંસ્થાન હૈ, હસ સંસ્થાનમેં કર, ચરણ, શિર ઓર
ગ્રીવા યે અવયવ તો લઘુ હોતે હૈં, ઓર મધ્ય ભાગ વડા હોતા હૈ, તથા
જિસ સંસ્થાનમેં એક બી અંગ શરીર લક્ષણોક્ત પ્રમાણવાલા નહીં હોતા
હૈ, વહ હુણ્ડક સંસ્થાન હૈ ॥ સૂ ૦ ૨૨ ॥

અવયવો ન્યૂનાધિક પ્રમાણવાળા હોય છે. આ કથનતુ તાત્પર્ય એ છે કે આ
સંસ્થાનમાં હાથ, પગ આદિ અંગો તો યોગ્ય લંબાઈવાળા હોય છે, પણ
મધ્ય ભાગ ઓટો હોય છે.

વામન સંસ્થાન—આ સંસ્થાનમાં હાથ, પગ, મસ્તક, હોઠ આદિ અવ
યવો લઘુ (હીન પ્રમાણવાળા) હોય છે, પણ મધ્ય ભાગ (અધિક પ્રમાણ-
વાળો) હોય છે.

હુડક સંસ્થાન—જે સંસ્થાનમાં શરીરનું એક પણ અંગ શાઓક્ત
લક્ષણવાળા પ્રમાણવાળું હોતું નથી પણ પ્રત્યેક અંગ ન્યૂનાધિક પ્રમાણવાળું
હોય છે, તે સંસ્થાનનું નામ હુડક સંસ્થાન છે, ॥ સૂ. ૨૨ ॥

ટીકા—‘ છટ્ટાણા ’ ઇત્યાદિ ।

અનાત્મવતઃ—અક્રપાયો હિ આત્મા સ્વસ્વરૂપાવસ્થિતત્વાદાત્મેતિ ઉચ્યતે, એવં વિષ્ણુ આત્મા યસ્ય ભરતિ સ આત્મવાન્ ન આત્મવાન્—અનાત્મવાન્ તસ્ય અનાત્મવતઃ—સક્રપાયજીવસ્ય પદ્મ સ્થાનાનિ=વસ્તૂનિ અહિતાય=અપથ્યાય, અશુભાય=ષાપાય, ‘ અસુખાય ’ ઇતિચ્છાયા પક્ષે—અનુભવાય=દુઃસ્વાય, અક્ષમાય=

ટીકાર્થ—“છટ્ટાણા અણત્તવત્તો અહિયાણ અસુહાણ” ઇત્યાદિ સૂત્ર ૨૩।

અનાત્માવાલે જીવકે લિપે છઠ્ઠ સ્થાન અહિતકે નિમિત્ત અશુભકે નિમિત્ત અક્ષાન્તિકે નિમિત્ત અકલ્યાણકે નિમિત્ત ઓર અનાનુગામિકનાકે નિમિત્ત હોતે હૈં, યહાં અનાત્મા શબ્દસે જિસમેં આત્મા નહીં હૈ, એસા અર્થ નહીં લિયા ગયા હૈ, કિન્તુ જિસકી આત્મા કપાય સહિત હૈ, એસા પ્રાણો યહ અર્થ લિયા ગયા હૈ, ક્યોંકિ કપાય વિહીન આત્મા અત્ને સ્વરૂપમેં અવસ્થિત રહતા હૈ, અના સત્ત્વે અર્થમેં વહી આત્મા હૈ, એસા આત્મા જિસકા હોતા હૈ, વહ આત્માવાલા હૈ, ઓર એસા આત્મા જિસકા નહીં હોતા હૈ, વહ અનાત્માવાલા હૈ, એસે અનાત્માવાલે જીવકો પર્યાય આદિ ૬ સ્થાન અહિત આદિકે લિપે હોતે હૈં—વે ૬ સ્થાન હસ પ્રકારસે હૈં—પર્યાય ૧, પરિવાર ૨, શ્રુત ૩, તપ ૪, લાભ ૫ ઓર પૂજા સત્કાર ૬ અહિનકા ભાવ અપથ્ય હૈ, અશુભકા તાત્પર્ય પાપ હૈ, અથવા “ અસુહાણ ” શબ્દકી સંસ્કૃત છાયા—“ અસુખાય ” એસી ખી

ટીકાર્થ—તથા “ છટ્ટાણા અણત્તવત્તો અહિયાણ અસુહાણ ” ઇત્યાદિ—

અનાત્માવાળા જીવને નીચેનાં છ સ્થાન અહિતકારી, અશુભકારી, અક્ષાન્તિકારી, અકલ્યાણકારી, અને અનાનુગામિકતાના નિમિત્ત રૂપ થઈ પડે છે. અહીં ‘ અનાત્મા ’ પદ “ આત્મા વિનાનો ” આ અર્થનું વાચક નથી. પરન્તુ અહીં કપાયયુક્ત આત્માને માટે જ ‘ અનાત્મા ’ શબ્દનો પ્રયોગ થયો છે, કારણ કે કપાય રહિત આત્મા જ પોતાના મૂળ સ્વરૂપમાં અવસ્થિત રહે છે, માટે કપાય રહિત આત્મા જ ખરા અર્થમાં આત્મા કહેવાને યોગ્ય છે. જે જીવનો આત્મા કપાય રહિત હોય છે એવા જીવને જ આત્માવાળો કહી શકાય છે, જેનો આત્મા એવો હોતો નથી તેને અનાત્માવાળો કહી શકાય છે. એના કપાયયુક્ત જીવને માટે જે ૬ સ્થાન અહિત આદિનું નિમિત્ત બને છે તે હવે પ્રકટ કરવામાં આવે છે—(૧) પર્યાય, (૨) પરિવાર, (૩) શ્રુત, (૪) તપ, (૫) લાભ અને (૬) પૂજાસત્કાર.

આ સૂત્રમાં અહિત શબ્દ અપથ્યના અર્થમાં, અને અશુભ શબ્દ પાપના અર્થમાં વપરાયો છે. “ અસુહાણ ” આ શબ્દની સંસ્કૃત છાયા “ અસુખાય ”

असामर्थ्याय अक्षान्त्यै वा, अनिःश्रेयसाय अकल्याणाय, अनानुगामिकतायै= अशुभानुबन्धाय भवन्ति तद्यथा-पर्यायः=जन्मकालः, प्रव्रज्याकालो वा । अयं च महानेव गृह्यते, यतोऽनात्मवान् महापर्याययुक्तश्चिन्तयति - यदहं ज्येष्ठोऽस्मि जन्मना प्रव्रज्यया वेति । अथवा-स्त्रलोऽपि प्रव्रज्याकालो गृहस्थापेक्षयाऽभिमान-कारणं भवतीति । तत्र-जन्मपर्यायो ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिन इव, प्रव्रज्यापर्यायः-कण्ड-रीकस्येवाहितादितया भवति । इति ॥ १ ॥ तथा-परिवारः=शिष्यादिः । २ ।

होती है, तब इसका अर्थ असुख-दुःख ऐसा होता है, तथा अक्षम शब्दका अर्थ असामर्थ्य या अक्षान्ति, अनिःश्रेयसका अर्थ अकल्याण और अनानुगामिकताका अर्थ अशुभानुबन्ध ऐसा होता है, इस तरहसे ये ६ स्थान क्रोधादि कषाय सहित जीवके लिये अहित आदिके निमित्त होते हैं । पर्यायसे यहां जन्मकाल या प्रव्रज्याकाल लिया गया है, ये जन्मकाल और प्रव्रज्या-काल भी सहान् कालके ही गृहीत हुए हैं । अल्प कालके नहीं क्योंकि अनात्मवान् जीव महापर्याय युक्त होकर ऐसा विचार करता है, कि मैं जन्मसे अथवा पर्यायसे ज्येष्ठ हूँ इस तरहसे पर्याय उसे अहित अभिमान आदिका कारण बनती है, प्रव्रज्याकाल थोड़ा भी हो तब भी वह उसे अन्य गृहस्थकी अपेक्षा अभिमानका कारण बनता है, जिस प्रकारसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीके लिये जन्मपर्याय अहित अभिमान आदिका कारण हुई है, और प्रव्रज्या पर्याय कण्डरीकके लिये अहित आदिका

पणु थाय छे ते पणु तेनो अर्थ अपुण अथवा दु ष थाय छे. 'अक्षम' शब्दनेो अर्थ 'असामर्थ्य' अथवा 'अक्षान्ति' थाय छे. "अनिःश्रेयस" अटले 'अकल्याण' अने 'अनानुगामिकता' अटले 'अशुभानुबन्ध' अवेो अर्थ थाय छे आ प्रकारना पर्याय आदि ६ स्थान क्रोधादि कषायेधी युक्त अवेोने माटे अहित आदिना निमित्त ३५ अने छे पर्याय पद अडीं जन्म-काण अथवा प्रव्रज्याकाणनु वाचक छे ते जन्मकाण अने प्रव्रज्याकाणने पणु अडीं दीर्घकालिन ३५ अ अकणु करवामां आ०११ छे, अल्पकालिन ३५ अकणु करवाया नथी, कारणु के अनात्मवान् अणु महापर्यायवाणेो छेय तो अवेो विचार करे छे के "हु जन्मनी अपेक्षाअे अथवा पर्यायनी अपेक्षाअे न्येध छु" आ प्रकारे तेने तेनी पर्याय अलिमान आदितु कारणु अने छे प्रव्रज्या काण दूकेो छेय तो पणु अवेो अणुने माटे प्रव्रज्या अलिमाननु कारणु अनी शके छे, कारणु के ते ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीने माटे जन्मपर्याय अहित, अलिमान आदितु' कारणु अनी डती अने कडरीकने माटे प्रव्रज्या पर्याय अेवी रीते

શ્રુતં=પૂર્વગતાદિરૂપં ચ અહિતાદિતયા ભવતિ । તદુક્ત્—

“ જહ જહ વહુસ્સુઓ સંમઓ ય સીસગણસંપરિવુડો ય ।

અવિનિચ્છિઓ ય સમગ્ તહ તહ સિદ્ધાંતપડિનીઓ ॥ ૧ ॥ ”

હાયા—યથા યથા વહુશ્રુતઃ સમ્મતશ્ચ શિષ્યગણસમ્પરિવૃતશ્ચ ।

અવિનિશ્ચિતશ્ચ સમયે (શાસ્ત્રે) તયા તયા મિદ્ધાન્તપ્રત્યનીકઃ ॥૧॥ ઇતિ

ઈતિ દ્વિતીયતૃતીય સ્થાને ॥ ૨-૩ ॥ તયા-તપઃ-અનશનાદિ રૂપં દ્વાદશ-
વિભમ્ ૪। લાભઃ=અનશનાદીનાં પ્રાપ્તિઃ ૫। પૂજાસત્કારઃ-પૂજા=સ્તવાદિરૂપા,
તત્પૂર્વકઃ સત્કારઃ=વસ્ત્રાદિદાનરૂપઃ ૬। ઇતિ । તયા-ઈતાન્યેવ પદ્ સ્થાનાનિ

કારણ હુઈ હૈ । તયા શિષ્યાદિ રૂપ પરિવાર एवं પૂર્વગતાદિ રૂપ શ્રુત મ્હી
ઉસકે લિયે અહિત આદિકા નિમિત્ત હોતા હૈ । તદુક્તમ્ ।

“ જહા જહ વહુસ્સુઓ ” ઇત્યાદિ ।

મનુષ્ય જૈસે ૨ વહુશ્રુત હોતા હૈ, લોકમ્હે માન્ય હોતા હૈ, શિષ્ય
સમૂહસે પરિવૃત્ત હોતા હૈ, વૈસે ૨ વહુ સિદ્ધાન્તસે શ્રદ્ધા વિહીન હોકર
પ્રત્યનીક આચારવિચારવાલા બનતા જાના હૈ, ઓર ઉસસે દૂર હોના
જાતા હૈ, ઇસી તરહસે અનાત્મ જીવકો તપ અનશનાદિ રૂપ ૧૨ પ્રકાર
કા તપ, લાભ - અશનાદિકી પ્રાપ્તિ, પૂજાસત્કાર આદિ રૂપ
પૂજા ઓર પૂજા પૂર્વક વસ્ત્રાદિ દાન રૂપ સત્કાર યે
સથ સ્થાન રૂપ વાતેં ઉસ અનાત્મવાલે જીવકે લિયે અહિત આદિકે
નિમિત્ત હોની હૈં, પરન્તુ જો આત્મવાન્-નિષ્ક્રપાઘ જીવ હૈ, ઉસે યે

અહિત આદિતું કારણુ બની હતી એ પ્રમાણે અનાત્મવાન્ (કષાયયુક્ત)
જીવોને માટે પણ જન્મપર્યાય અને પ્રવચ્ચા પર્યાય અહિત આદિતું કારણુ
બને છે. અનાત્મવાન્ જીવને માટે શિષ્યાદિ રૂપ પરિવાર અને પૂર્વગત આદિ
રૂપ શ્રુત પણ અહિત, અધુલ, અકલ્યાણુ આદિતું નિમિત્ત બને છે. કહું પણ
છે કે “ જહા જહ વહુસ્સુઓ ” ઇત્યાદિ—

મનુષ્ય જેમ જેમ બહુશ્રુત થતો જાય છે, લોકમાં માન્ય થતો જાય છે,
શિષ્ય સમુદાયથી યુક્ત થતો જાય છે, તેમ તેમ મિદ્ધાન્ત પ્રત્યેની શ્રદ્ધાથી
વિહીન બનીને પ્રત્યનીક (વિપરીત) આગર વિચારવ.બો બનતો જાય છે
અને તેનાથી દૂર અને દૂર થતો જાય છે. આ કથન અનાત્મવાન્ જીવોને
અનુલક્ષીને કરવામાં આવ્યું છે. એ જ પ્રમાણે અનાત્મવાન્ જીવનું અનશનાદિ
રૂપ ૧૨ પ્રકારનું તપ પણ તેનું અહિત આદિ કરવાનું નિમિત્ત બને છે.
એ જ પ્રમાણે અશન પ્રાપ્તિ આદિ રૂપ લાભ અને પૂજાસત્કાર (વસ્ત્રાદિના
દાન દ્વારા થતો સત્કાર અને વદના નમસ્કાર રૂપ પૂજા) પણ એવા જીવને
માટે અહિત આદિતું નિમિત્ત બને છે.

निष्कषाय जीवस्य हितादित्वेन जायन्ते । अमुमेवाभिप्रायं प्रदर्शयितुमाह—‘ छ द्वाणा अत्तवओ हिताए ’ इत्यादि । अस्यार्थः पूर्वसूत्रवैपरीत्येन भावनीय इति ॥सू०२३॥
तथा--

मूलम्--छविहा जाइआरिया मणुस्सा पणत्ता, तं जहा--
अंबट्टा य १ कलंदा य २ वेदेहा ३ वेदिगाइ य ४। हरिया ५
चुंचुणा ६ चेव छप्पेया इब्भजाइया ॥ १ ॥ छविहा कुलारिया
मणुस्सा पणत्ता, तं जहा--उग्गा १ भोगा २ राइण्णा ३
इक्खागा ४ णाया ४ कोरव्वा ६ ॥ सू० २४ ॥

छाया--षड्विधा जात्यार्या मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तत्रथा-अम्बट्टाश्च १ काल-
न्दाश्च २ वेदेहा ३ वैदिका इति च ४। हरिता ५ श्चुञ्चुना ६ श्चैव, पडप्पेता
इभ्यजातयः ॥ १ ॥ षड्विधाः कुलार्या मनुष्याः प्रज्ञप्ताः, तत्रथा-उग्गाः १,
भोगाः २, राजन्याः ३, ऐक्ष्वाकाः ४, ज्ञाताः ५, कौरव्याः ६ ॥ सू० २४ ॥

सब स्थान हितादिके लिये होते हैं । इसी अभिप्रायको दिखानेके लिये
सूत्रकारने “ छद्वाणा अत्तवओ हियाए ” इत्यादि सूत्र कहा है, इस
सूत्रका अर्थ पूर्व सूत्रसे विपरीत रूपसे भावितकर लेना चाहिये ॥सू०२३॥

“छविहा जाइआरिया मणुस्सा पणत्ता” इत्यादि सूत्र २४ ॥

सूत्रार्थ-आर्य मनुष्य छह प्रकारके कहे गयेहैं, जैसे-अम्बट्टा १ कलन्द
२ वेदेह ३ वैदिक ४ हारित ५ एवं चुञ्चुना ६ कुलार्य मनुष्य ६ प्रकारके
कहे गयेहैं जैसे-उग्र १ भोग २ राजन्य ३ ऐक्ष्वाक ४ ज्ञात ५ और कौरव्य ६

परन्तु जे एव आत्मवान् (कषायेथी रक्षित) होय छे, तेने भाटे
तो पर्याय, परिवार आदि रूप अे जे ६ स्थान छित, शुभ, कल्याण आदिनु
भने छे. अे जे वात सूत्रकारे “ छद्वाणा अत्तवओ हियाए ” सूत्रपाठ द्वारा
प्रकट करी छे. आ सूत्रने अर्थ पूर्व सूत्र करतां विपरीत अडणु
करवे। नोथअे. ॥ सू. २३ ॥

तथा “ छविहा जाइआरिया मणुस्सा पणत्ता ” इत्यादि--

सूत्रार्थ-आर्य मनुष्येना नीचे प्रमाणे छ प्रकार कह्या छे--
(१) अम्बट्ट, (२) कलन्द, (३) वेदेह, (४) वैदिक, (५) हारित अने (६)
चुञ्चुना. कुलार्य मनुष्येना नीचे प्रमाणे ६ प्रकार कह्या छे--(१) उग्र, (२)
भोग, (३) राजन्य ऐक्ष्वाक, (५) ज्ञात अने (६) कौरव्य.

ટીકા—‘ હ્રિવિહા ’ ઇત્યાદિ—

જાત્યાર્યા:—લોકરુઢ્યા જાત્યાર્યત્વેન પ્રસિદ્ધા મનુષ્યા: પદ્ધિવા: પ્રજ્ઞતા:, તથા—અમ્બઘ્ઠાશ્ચેત્યાદિ ગાથા । એતા: પદ્ધિ ઇમ્બજાતય:—ઇમપર્હન્તીતિ, ઇમ્બ્યા: તે તુ જઘન્યમધ્યમોત્કૃષ્ટભેદાત્ ત્રિવિધા: । તત્ર—યે હસ્તિપરિમિતમણિ—મુક્તા—પ્રવાલ—સુવર્ણ—રજતાદિ દ્રવ્યરાશિસ્વામિનો ભવન્તિ તે જઘન્યા: । યે તુ હસ્તિ-મરિમિત વજ્ર—મણિ—માણિક્ય—રાશિસ્વામિનો ભવન્તિ તે મધ્યમા: । યે તુ હસ્તિ-પરિમિતકેવલવજ્રરાશિસ્વામિનો ભવન્તિ તે ઉત્તમા: । તેપાં જાતયો વોધ્યા: ૬ । તથા—કુલાર્યા:—લોકરુઢ્યા કુલાર્યત્વેન પ્રસિદ્ધા મનુષ્યા: પદ્ધિવા: પ્રજ્ઞતા:, તથા—ઉગ્રા મોગા ઇત્યાદિ । તત્ર—યે આદિનાથેન ભગવતા ઋપભેણ આરક્ષક-તયા વ્યવસ્થાપિતાસ્તે ઉગ્રા: ૧ યે તુ ગુરુરૂપેણ સ્થાપિતાસ્તે મોગા: ૨, યે પુન-

ટીકાર્થ—લોકરુઢિ દ્વારા જાતિસે આર્યરૂપમં પ્રસિદ્ધ જો મનુષ્ય હૈં, વે જાત્યાર્ય હૈં । યે જાત્યાર્ય આદિકે ભેદસે ૬ પ્રકારકે કહે ગયે હૈં । યે છઠો જાત્યાર્ય ઇમ્બ જાતિકે હોતે હૈં । યે જઘન્ય મધ્યમ ઓર ઉત્કૃષ્ટકે ભેદસે ત્રીન પ્રકારકે કહે ગયે હૈં । ઇનમં જો હસ્તિ પરિમિત મણિ, મુક્તા, પ્રવાલ, સુવર્ણ, રજત આદિ દ્રવ્યરાશિકે સ્વામી હોતે હૈં, વે જઘન્ય જાત્યાર્ય હૈં, જો હસ્તિ પરિમિત વજ્ર, મણિ, માણિક્ય આદિ રાશિકે સ્વામી હોતે હૈં વે મધ્યમ જાત્યાર્ય હૈં, ઓર જો હસ્તિ પરિમિત કેવલ વજ્રરાશિકે સ્વામી હોતે હૈં વે ઉત્તમ જાત્યાર્ય હૈં । લોકરુઢિ દ્વારા જો કુલાર્ય રૂપસે પ્રસિદ્ધ મનુષ્યહૈં વે કુલાર્ય મી ઉગ્ર મોગ, આદિ રૂપસે ૬ પ્રકારકે કહે ગયે હૈં । ઇન મં ભગવાન્ આદિનાથકે દ્વારા જો આરક્ષક (કોટવાલ) રૂપસે વ્યવસ્થાપિત ક્રિયે ગયે વે ઉગ્ર હૈં, જો ગુરુરૂપસે વ્યવ-

ટીકાર્થ—લોકરુઢિ દ્વારા જેઓ જાતિની અપેક્ષાએ આર્ય ગણાય છે, તે મનુષ્યોને જાત્યાર્ય કહે છે. તેના અમ્બઘ્ઠ આદિ ૬ લેહ પતાવ્યા છે. આ છએ જાત્યાર્ય ઇમ્બ જાતિના હોય છે. તેમને જઘન્ય, મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટના લેહથી ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે. જે આર્યો હસ્તિપરિમિત (હાથીના જેટલા વજનના) મણિ, મોતી, પ્રવાલ, સોનું, ચાંદી આદિ દ્રવ્યરાશિના સ્વામી હોય છે, તેમને જઘન્ય જાત્યાર્ય કહે છે. જેઓ હસ્તિપરિમિત વજ્ર, મણિ, માણિક્ય, આદિ દ્રવ્યરાશિના સ્વામી હોય છે, તેમને મધ્યમ જાત્યાર્ય કહે છે. જેઓ હસ્તિપરિમિત વજ્રના સ્વામી હોય છે, તેમને ઉત્તમ જાત્યાર્ય કહે છે. લોકરુઢિ દ્વારા જે મનુષ્યો કુલાર્ય રૂપે પ્રસિદ્ધ છે તેમને કુલાર્ય કહે છે. તે કુલાર્યના ત્રણ ઉગ્ર આદિ રૂપ છ પ્રકાર કહ્યા છે—

ભગવાન આદિનાથ દ્વારા જેમને આરક્ષક (કોટવાલ) રૂપે નિયુક્ત કરવામાં આવ્યા હતા તેમને ઉગ્ર કહે છે અને જેમને ગુરુ રૂપે નિયુક્ત કર-

वयस्यभावेन स्वीकृतास्ते राजन्या बोध्याः ३। ऐक्ष्वाकाः—ऋषभवंशजाः ४।
ज्ञाताः=भगवन्महावीरपूर्वजाः १। कौरव्या=जिनशान्तिनाथपूर्वजा. ६, इति॥सू० २४॥

मूलम्-छविहा लोगट्टिई पणत्ता, तं जहा-आगासपड्-
ट्टिए वाए १, वायपड्ट्टिए उदही २, उदहीपड्ट्टिया पुढवी ३,
पुढविपड्ट्टिया तसा थावरा पाणा ४, अजीवा जीवपड्ट्टिया
५, जीवाः कर्मपड्ट्टिया ६ ॥ सू० २५ ॥

छाया---पड्विधा लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आकाशप्रतिष्ठितो वातः १,
वातप्रतिष्ठित उदधिः २, उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी ३, पृथिवी प्रतिष्ठितास्त्रसाः
स्थावराः प्राणाः ४, अजीवा जीवप्रतिष्ठिताः ५, जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः ॥सू० २५॥

टीका—' छविहा ' इत्यादि—

लोकस्थितिः=लोकस्य=क्षेत्रलक्षणस्य स्थितिः=व्यवस्था, सा पड्विधा
प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आकाशप्रतिष्ठितो वातः=तनुवातवनवातलक्षणः । १। वातप्रति

स्थापित किये गये-वे भोग हैं २ जो वयस्य (मित्र) भावसे व्यव-
स्थापित किये गये स्वीकृत किये गये वे राजन्य हैं ऋषभके वंशके
जो हैं, वे ऐक्ष्वाक हैं, भगवान् महावीरके जो पूर्वज हैं वे ज्ञात हैं
शान्तिनाथ भगवान्के जो पूर्वज हैं वे कौरव्य हैं ॥ सू० २४ ॥

जातिसे आर्यपन जो होता है, वह लोकस्थितिसे होता है, इसलिये
अत्र सूत्रकार लोकस्थितिकी प्ररूपणा करते हैं—

' छविहा लोगट्टिई पणत्ता ' इत्यादि सूत्र २५ ॥

टीकार्थ—लोक क्षेत्रकी स्थिति व्यवस्था छह प्रकारकी कही गई है,
जैसे-आकाश प्रतिष्ठित वात १ आकाश प्रतिष्ठित वातमें तनुवात और

वामां आव्या डता तेमने लोग डडे छे. जेमने तेमना द्वारा वयस्य (मित्र)
लावे व्यवस्थापित (स्वीकृत) करवामां आव्या तेमने राजन्य डडे छे. ऋष
भना वंशमां जेमने जन्म थये डाय तेमने ऐक्ष्वाक डडे छे. भगवान
महावीरना पूर्वजने ज्ञात डडे छे अने शान्तिनाथ भगवानना पूर्वजने
कौरव्य (कौरव) डडे छे. ॥ सू. २४ ॥

लोकस्थितिने लीधे जतिनी अपेक्षासे आर्यत्व प्राप्त थाय छे. तेथी
डवे सूत्रकार लोकस्थितिनी प्ररूपणा करे छे—

“ छविहा लोगट्टिई पणत्ता ” इत्यादि—

टीकार्थ—लोकक्षेत्रनी स्थिति (व्यवस्था) छ प्रकारनी डडी छे—(१) आकाश
प्रतिष्ठित वात. तेमां तनुवात अने वनवात से अने वातने समावेश थाय

ष्ठितः-तनुवातघनवातलक्षणे वाते व्यवस्थित उदधिः=वनोदधिः २। उदधिप्रतिष्ठिता=वनोदधौ व्यवस्थिता पृथिवी=रत्नप्रभादिका । यद्यपि ईपत्प्राग्भारा पृथिवी आकाशप्रतिष्ठिता, अन्याश्चापि विमानपर्वतादि पृथिव्य आकाशादिप्रतिष्ठिता नतूदधिप्रतिष्ठिताः, एवं च “ उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी ” इति न वक्तव्यं, रत्नप्रभादीनां बाहुल्यात् उदधिप्रतिष्ठितत्वेन पृथिवी उक्तेति बोध्यम् । ३ । तथा-पृथिवीप्रतिष्ठिताः व्रसाः स्थावरा प्राणाः-तत्र व्रसाः प्राणाः=द्वीन्द्रियादयः प्राणिनः पृथिवीप्रतिष्ठिताः=पृथिव्यां व्यवस्थिताः । आकाशादिप्रतिष्ठितः पर्वतविमानादिः पृथिवीनामपि पृथिवीत्वात्तत्रप्रतिष्ठिताः व्रसा जीवा अपि पृथिवीप्रतिष्ठिता एव बोध्याः । तद्गतदेवादित्रसजीवानामविवक्षा वा बोध्या । तथा-

घनवात ये दोनों वात गर्भित हैं । वात प्रतिष्ठित उदधि २, उदधि प्रतिष्ठित पृथिवी-वनोदधिमें प्रतिष्ठित-व्यवस्थित रत्नप्रभा आदि पृथिवी यद्यपि ईपत्प्राग्भारा पृथिवी आकाश प्रतिष्ठित है, तथा और भी विमान पर्वत आदि रूप पृथिवियों आकाश आदिमें प्रतिष्ठित हैं, उदधिमें प्रतिष्ठित नहीं हैं, फिर भी यहां “उदधि प्रतिष्ठिता पृथिवी” ऐसा जो कहा गया है, वह रत्नप्रभा आदिकोंकी बहुलता लेकर कहा गया है, क्योंकि ये पृथिवियां तो उदधि प्रतिष्ठित हैं, ही ३ पृथिवी प्रतिष्ठित व्रस स्थावर जीव (द्वीन्द्रियादिक जीव पृथिवी पर प्रतिष्ठित व्यवस्थित) है । आकाश आदिमें प्रतिष्ठित पर्वत विमान आदि रूप पृथिवियोंमें भी पृथिवीत्व सामान्य होनेके कारण उनमें प्रतिष्ठित व्रस जीव भी पृथिवी प्रतिष्ठितही जानना चाहिये अथवा-विमान

छे. (२) वात प्रतिष्ठित उदधि--तनुवात घनवात रूप वातमा व्यवस्थित उदधि अद्वैते के घनोदधि (३) उदधि प्रतिष्ठित पृथ्वी--वनोदधिमां प्रतिष्ठित (व्यवस्थित) रत्नप्रभा आदि पृथ्वी ले के ईपत्प्राग्भारा पृथ्वी आकाशप्रतिष्ठित छे अने विमान, पर्वत आदि रूप भी पृथ्वीमां पणु आकाश आदिमां प्रतिष्ठित (व्यवस्थित) छे, उदधिमां प्रतिष्ठित नहीं, छतां पणु अही “ उदधि प्रतिष्ठित पृथ्वी ” आ प्रकाशनुं ले कथन करवामां आण्युं छे ते रत्नप्रभा आदि पृथ्वीमां नी बहुलताने लीधे करवामां आण्युं छे, कारणुं के ते पृथ्वीमां तो उदधि प्रतिष्ठित न छे. (४) पृथ्वी प्रतिष्ठित व्रस स्थावर जीव--कारणुं के द्वीन्द्रियादिक जीवो पृथ्वी पर न व्यवस्थित होय छे. आकाश आदिमां प्रतिष्ठित पर्वत, विमान आदि रूप पृथ्वीमां पणु पृथ्वीत्व सामान्य होवाने कारणुं तेमां प्रतिष्ठित (रहेला) व्रस जीवो पणु पृथ्वीप्रतिष्ठित न

पृथिवीप्रतिष्ठिताः स्थावराः=वादरवनस्पत्यादयो जीवाः । सूक्ष्माः स्थावरास्तु सकललोकप्रतिष्ठिता इति स्थावरपदेनात्र वादरा एव गृह्यन्ते इति बोध्यम् । इति चतुर्थं स्थानम् । तथा-अजीवाः=औदारिकादि पुद्गला जीवप्रतिष्ठिताः=जीवेषु व्यवस्थिताः । अजीवानां जीवप्रतिष्ठितत्वमनियतं, जीवाऽप्रतिष्ठितत्वेनापि बहुतराणां तेषां तद्भावादिति पञ्चमं स्थानम् । तथा-जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः-कर्मसु=ज्ञानावरणीयादिषु स्थिताः विज्ञेयाः । कर्मप्रतिष्ठितमिन्ना जीवास्तु प्रायो न सन्तीत्यपि बोध्यमिति षष्ठं स्थानम् ॥ सू० २५ ॥

‘जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः-’ इत्युक्तम्, तेषां जीवानां गत्यादयो भवन्ति, गत्यादयश्च दिक्ष्वेवेति दिशो गत्यादींश्च प्ररूपयति--

मूलम्--छद्दिसाओ पणत्ताओ, तं जहा,-पाईणा १, पडोणा २, दाहिणा ३, उईणा, ४, उड्ढा ५, अहा ६। छहिं दिसाहिं जीवाणं गई पवत्तइ, तं जहा--पाईणाए जाव अहाए । १। एव-

गत देवादि ब्रह्म जीवोंकी अविवक्षा समझना चाहिये तथा-पृथिवीमें प्रतिष्ठित स्थावर ऐसा जो कहा गया है, सो इससे वादर वनस्पत्यादि जीवही ग्रहण करना चाहिये क्योंकि सूक्ष्म स्थावर तो सकल लोकमें प्रतिष्ठित हैं, अतः स्थावर पदसे यहाँ वादर स्थावरही गृहीत हुए हैं, ऐसा समझना चाहिये ४ जीवमें प्रतिष्ठित अजीव औदारिक आदि पुद्गल ५ “अजीवमें प्रतिष्ठित जीव” ऐसा इसलिये नहीं कहा गया है, कि बहुतसे अजीव जीव द्वारा अप्रतिष्ठित हुए भी देखे जाते हैं, और कर्म प्रतिष्ठित जीव ६ ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंमें स्थित जीव ॥ सू० २५ ॥

समञ्जा नोद्ये. अथवा विमानगत देवादि ब्रह्मलोकानी अविवक्षा समञ्जी नोद्ये. अथवा के तेमने पृथ्वीप्रतिष्ठित ब्रह्मां समावेश थवे नोद्ये नडीं. ‘पृथ्वीप्रतिष्ठित स्थावर’ अबुं ने कडेवामां आण्युं छे ते कथन द्वारा आदर वनस्पति आदि लोके न् अद्युं करवा नोद्ये. कारणुं के सूक्ष्म स्थावर तो सकल लोकमां रडेवा छे. तेथी स्थावर पद द्वारा अडीं आदर स्थावरने न् अद्युं करवा नोद्ये. (५) लोवमां प्रतिष्ठित अलव—औदारिक आदि पुद्गल अडीं “अलवमां प्रतिष्ठित लव” आ प्रकारनुं कथन करवामां आण्युं नथी. तेनुं कारणुं अे छे के धरुा अलवे लव द्वारा अप्रतिष्ठित रूपे पणुं लोवामां आवे छे. (६) कर्मप्रतिष्ठित लव अथवा के ज्ञानावरणीय आदि कर्ममां स्थित लव. ॥ सू. २५ ॥

आगई २, बक्रंती ३, आहारे ४, बुद्धी ५, निबुद्धी ६, त्रिगुव्वणा
 ७, गइपरियाए ८, समुग्घाए ९, कालसंजोगे १०. दंसणामि-
 गमे ११, णाणाभिगमे १२, जीवाभिगमे १३, अजीवाभिगमे १३।
 एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिथाणवि सणुस्साणवि ॥सू० २६॥

छाया-पइ दिशः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-प्राचीना १, प्रतीचीना २, दक्षिणा ३, उदी-
 चीना ४, ऊर्ध्वा ५, अधः ६। पइमिदिग्गिमर्जीवानां गतिः प्रवर्तते, तद्यथा-
 प्राचीनया यावत् अधः । १ । एवम्-आगतिः २, व्युत्क्रान्तिः ३, आहारः ४,
 वृद्धिः ५, निवृद्धिः ६, त्रिक्रिया ७, गतिपर्यायः ८, समुद्घातः ९, कालसंयोगः
 १०, दर्शनाभिगमः ११, ज्ञानाभिगमः १२, जीवाभिगमः १३, अजीवाभिगमः
 १४। एवं पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानामपि मनुष्याणामपि ॥ सू० २६ ॥

टीका--' छद्दिसाओ ' इत्यादि--

दिशोद्दि-प्राचीना=पूर्वा, प्रतीचीना=पश्चिमा, दक्षिणा, उदीचीना=उत्तरा,
 ऊर्ध्वा, अधश्चेति पइ बोध्याः । आग्नेयैशानवायव्यनैर्ऋतानां चतसृणां विदिशां
 तु विदिकत्वात् दिक्त्वेनाग्रहणात् पडेव दिश उक्ताः । अथवा जीवानां गतिव्युत्क्रा-

जीव कर्म प्रतिष्ठित है, ऐसा कहा सो इसी जीवके सम्बन्धको
 लेकर अब सूत्रकार जन जीवोंकी जो गति होती है, वह दिशाओंमेंही
 होती है, इस अभिप्रायसे उनकी गतियोंका एवं दिशाओंकी प्ररूपणा
 करते हैं--'छद्दिसाओ पणज्जाओ' इत्यादि सूत्र २६ ॥

टीकार्थ-दिशाएँ छह कही गई हैं, जैसे-प्राचीन (पूर्व) १, प्रतीचीन २, दक्षिण ३,
 उदीचीन उत्तर ४, उर्ध्व ५ और अधः ६ आग्नेय, ऐशान वायव्य और नैर्ऋत्य
 ये चार विदिशाएँ हैं, अतः इनका ग्रहण विदिशा होनेके कारण नहीं

आगता सूत्रमा ज्येषु' कडेवामां आण्युं छे के लुव कर्म प्रतिष्ठित छे.

अथोनी गति दिशाओमां ज थय छे, तेथी डवे सूत्रकार तेमनी
 गतिओनी तथा दिशाओनी प्ररूपणा करे छे

“ छद्दिसाओ पणज्जाओ ” इत्यादि--

टीकार्थ-दिशाओ ६ कडी छे--(१) प्राचीन (पूर्व), (२) प्रतीचीन (पश्चिम),
 (३) दक्षिण, (४) उदीचीन (उत्तर), (५) उर्ध्व दिशा अने (६) अधोदिशा.
 ऐशान, अग्नि, नैऋत्य अने वायव्य, जे प्यार विदिशाओ डोवाथी तेमने
 अडी प्ररूपण करवामां आवी नथी, ते कारणे पूर्वादि ६ दिशाओ ज अडी

न्त्यादयः षट्स्वेव दिक्षु भवन्तीति षड् दिशः प्रोक्ताः । यद्वा-पटूस्थानकान्तु-
रोधेन षडेव दिश उक्ताः । सम्प्रति गत्यादिकं प्ररूपयति-‘ छहिं दिसाहिं ’
इत्यादिना । जीवानाम् अनुश्रेणिगमनात् पूर्वादिभिः षड्भिर्दिग्भिः गतिः=
उत्पत्तिस्थानगमनं प्रवर्तते=भवति ॥ १ ॥ एवम्-जीवानाम् आगतिः=उत्पत्तिस्था-
नागमनं षड्भिर्दिग्भिः प्रवर्तते । गतिरागतिश्चेति द्वयं प्रज्ञापकापेक्षया
पूर्वादिदिशाश्रितं बोध्यम् ॥ २ ॥ तथा-व्युत्क्रान्तिः=उत्पत्तिस्थानप्राप्तस्य जीवस्य
उत्पत्तिः । साऽपि ऋजुगतौ षट्स्वेव दिक्षु भवति ॥ ३ ॥ तथा आहारोऽपि षड्-

हुआ इसलिये दिशाएँ ६ ही कही गई हैं । अथवा-जीवों की गति एवं
व्युत्क्रान्ति आदि छह ही दिशाओं में होती है इसलिये छह ही दिशाएँ
कही गई हैं । अथवा-षट् स्थानक के अनुरोध से ही छह दिशाएँ कही
गई हैं । अब गत्यादिककी प्ररूपणा सूत्रकार करते हैं-“ छहिं दिसाहिं ”
इत्यादि जीवों की गति श्रेणिके अनुसार होती है इसलिये वे पूर्वादि
छह दिशाओं से होकर ही अपने अधिष्ठित स्थान से उत्पत्ति स्थानके
प्रति गमन करते हैं १ इसी प्रकार से जीवोंकी आगति उत्पत्तिस्थानके
प्रति आगमन भी छह दिशाओं से ही होता है । तात्पर्य यही है कि
गति और आगति ये दोनों ही जीवों की प्रज्ञापक स्थान की अपेक्षा
से पूर्वादि दिशाओं के आश्रित होती हैं । तथा-व्युत्क्रान्ति-उत्पत्ति-
स्थानमें प्राप्त जीव की उत्पत्ति भी ऋजुगति के होने पर छह ही दिशा-
ओंमें होती है ३ तथा आहार भी छह ही दिशाओं से होता है ४

कडेवांमां आवी छे अथवा-लुवोनी गति अने व्युत्क्रान्ति आदि ६ दिशा-
ओमां न थाय छे, ते कारणे दिशाओ छे न कडेवांमां आवी छे अथवा छ
स्थानकने अधिकार आलतो डोवाथी अडीं ६ मुज्य दिशाओनुं न कथन
करवांमां आव्युं छे. हुवे सूत्रकार गति आदिनी प्ररूपणा करे छे—

“ छहिं दिसाहिं ” इत्यादि—

लुवोनी गति श्रेणु अनुसार थाय छे, तेथी तेओ पूर्वादि छ दिशा-
ओमां थधने न पोताना अधिष्ठित स्थानमांथी उत्पत्तिस्थान तरङ्ग गमन करे
छे. ११। ओ न प्रमाणे लुवोनी आगति-उत्पत्तिस्थान तरङ्ग आगमन पणु
६ दिशाओमांथी न थाय छे. आ कथनतुं तात्पर्य ओ छे के लुवोनी गति
अने आगति आ अने प्रज्ञापक स्थाननी अपेक्षाओ पूर्वादि दिशाओने
आश्रित डोय छे । २। तथा व्युत्क्रान्ति-उत्पत्तिस्थानने प्राप्त लुवनी ते
उत्पत्तिस्थानमां उत्पत्ति-पणु ऋजु गतिना छओ दिशाओमां न थाय छे. ३।

भिरेव दिग्भिर्भवति । यतो जीवाः पूर्वादि दिग्व्यवस्थितप्रदेशावगाढपुद्गलानेव स्पृशन्ति, स्पृष्टानेव चाहरन्तीति ॥ ४ ॥ तथा-वृद्धिः=उपचयः पद्भिर्दिग्भिर्भवति ॥ ५ ॥ एवं पद्दिगाश्रितत्वं निर्वृद्धयादिष्वपि बोध्यम् । तत्र-निर्वृद्धिः=शरीरस्य हानिः ॥ ६ ॥ विक्रिया=शरीरस्य विक्रियकरणम् ॥ ७ ॥ गतिपर्यायः=गमनमात्रं न तु परलोकगमनरूपः, तस्य गत्यागतिशब्दे ग्रहणात् ॥ ८ ॥ समुद्घातः=वेदनादिकः सप्तप्रकारः ॥ ९ ॥ कालसंयोगः=समयक्षेत्रे आदित्यादिप्रकाशसम्बन्धलक्षणः । आदित्यादि प्रकाशस्यैव कालनियामकतया कालत्वं बोध्यम्

क्योंकि जीव पूर्वादि दिशाओं के व्यवस्थित प्रदेशों में अवगाढ हुए पुद्गलों का स्पर्श करते हैं और स्पृष्ट हुए उन्हीं पुद्गलों का आहार करते हैं । ४ । तथा-वृद्धि भी-उपचय भी छह दिशाओं से होती है ५ इसी प्रकार से निर्वृद्धि विकुर्वणा आदिकों में भी पद् दिगाश्रितता जाननी चाहिये । शरीर की हानि का नाम निर्वृद्धि है ६ । शरीर को भिन्न २ रूप से परिणमाना इसका नाम विक्रिया है ७ गतिपर्याय-सामान्य गमन का नाम है ८ । यहाँ गतिपर्याय से परलोक में जो जीवका गमन होता है वह गृहीत नहीं हुआ है क्योंकि उसका तो ग्रहण गति और आगति में हो चुका है । सूक्ष्म शरीर को न छोड़कर आत्मा के कुछ प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना इसका नाम समुद्घात है ९ और यह समुद्घात वेदना समुद्घात आदिके भेदसे ७ प्रकार का कहा गया है । समयक्षेत्रमें मनुष्यक्षेत्रमें-जो आदित्य आदि के प्रकाश का सम्ब-

तथा आहार पशु छम्मे दिशाभ्यामांथी ग्रहणु थाय छे, कारणु के ७व पूर्वादि दिशाभ्यामां रडेला प्रदेशोमां अवगाढ थयेलां पुद्गलेनो स्पर्श करे छे अने स्पृष्ट थयेलां ते पुद्गलेनो ७ आहार करे छे । ४ । तथा वृद्धि (उपचय) पशु छम्मे दिशाभ्यामांथी थाय छे । ५ । अ ७ प्रमाणे निर्वृद्धि, विकुर्वणा आदि पशु छम्मे दिशाभ्याने आश्रित होय छे, अम समञ्जुं ।

शरीरनी हानितुं नाम निर्वृद्धि छे । ६ । शरीरने कुछ कुछ रूपे परिष्णुभावुं तेनुं नाम विक्रिया छे । ७ । गतिपर्याय-सामान्य गतितुं नाम गतिपर्याय छे । अही ' गतिपर्याय ' पद परलोकमां ७वना गमनतुं वाच्य नथी, कारणु के तेनुं तो गति अने आगतिमां ग्रहणु थर्ध युक्तुं छे । मूण शरीरने छोड्या विना आत्माना केटलाक प्रदेशोने अहार डाठवा तेनुं नाम समुद्घात छे । ते समुद्घातना वेदना समुद्घात आदि सात प्रकार कहा छे । ९ । समयक्षेत्रमां-मनुष्यक्षेत्रमां ७े सूर्य आदिना प्रकाशने संबन्ध छे, ते

॥ १० ॥ दर्शनाभिगमः—दर्शनम्—सामान्यग्राही बोधः, तच्चेह—गुणप्रत्ययावध्या-
दिप्रत्यक्षरूपम्, तेन अभिगमः=वस्तुनः परिच्छेदः, तस्य अभिगमः=प्राप्तिर्वेति
॥ ११ ॥ ज्ञानाभिगमः—ज्ञानं=मत्यादि लक्षणं, तेन तस्य वा अभिगमः ॥ १२ ॥
जीवाभिगमः—जीवानां=प्राणिनाम् अभिगमो गुणप्रत्ययावध्यादिप्रत्यक्षतः ॥ १३ ॥
अजीवाभिगमः—अजीवानां=पुद्गलास्तिकायादीनाम् अभिगमः=परिच्छेदो गुणप्र-
त्ययावध्यादि प्रत्यक्षतः ॥ १४ ॥ इति । एवम्=अमुना प्रकारेण—यथा जीवानां
पञ्चभिर्दिग्भिः गत्यादीनि भवन्ति तथैव—चतुर्विंशतिदण्डकेषु पञ्चेन्द्रियतिर्यग्यो-

न्ध है वह काल संयोग है यहाँ काल का नियामक होने से आदित्य
आदि के प्रकाश को ही काल कह दिया गया है १० सामान्य को ग्रहण
करनेवाला जो बोध है उसका नाम दर्शन है वह दर्शन यहाँ गुण-
प्रत्यय जो अवधि आदि प्रत्यक्ष हैं तद्रूप लिया गया है इस दर्शन से
जो वस्तु का परिच्छेद है वह अथवा इसकी जो प्राप्ति है वह दर्शनाभि-
गम है ११ मत्यादि रूप ज्ञान से जो अभिगम है वह अथवा मत्यादि
रूप ज्ञान का जो अभिगम प्राप्ति है वह ज्ञानाभिगम है ; १२ जीवों का
जो गुण प्रत्यय अवधि आदि प्रत्यक्ष से परिच्छेद होता है वह जीवा-
भिगम है १३ पुद्गलास्तिकाय आदिकों का जो गुण प्रत्यय अवधि आदि
प्रत्यक्ष से परिच्छेद ज्ञान होता है वह अजीवाभिगम है १४ इस तरह
से जैसे जीवों की छह दिशाओं से ये गत्यादिक वस्तुएँ होती हैं उसी
तरह से चौबीस दण्डकों में पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों की छह दिशाओं

काणसंयोगे छे. आदित्य आदि द्वारा ज काणतुं नियमन थतुं होवाथी अही
आदित्य आदिना प्रकाशने ज काणरूपे प्रकट करवाभां आवेल छे. । १०।
सामान्यने ग्रहण करनार ने बोध छे, तेनुं नाम दर्शन छे. ते दर्शनने
अही गुणप्रत्यय अवधि आदि प्रत्यक्ष रूपे ग्रहण करवाभां आवेल छे. ते
दर्शन द्वारा वस्तुने ने परिच्छेद (बोध) थाय छे तेने अथवा तेनी ने
प्राप्ति छे तेनुं नाम दर्शनाभिगम छे. । ११। मतिज्ञान आदि रूप ज्ञान वडे
ने अभिगम थाय छे तेने अथवा मतिज्ञान आदि रूप ज्ञानने ने अभिगम
(प्राप्ति) थाय छे तेने ज्ञानाभिगम कडे छे. । १२। गुणप्रत्यय अवधि आदि
प्रत्यक्ष वडे लोवोने ने परिच्छेद (बोध) थाय छे तेनुं नाम लोवाभिगम
छे । १३। पुद्गलास्तिकाय आदिकोने गुणप्रत्यय अवधि आदि प्रत्यक्ष वडे ने
परिच्छेद (बोध-ज्ञान) थाय छे तेनुं नाम अलोवाभिगम छे. । १४। आ
रीते नेम लोवोनी गति आदि उपर्युक्त वस्तुओ छये दिशाभां थाय छे,
अे ज प्रमाणे चौबीस दंडकना लोवोभांना पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकोनी गति

નિકાનાં પૃથ્વીદિગ્મિર્ગત્યાદીનિ ભવન્તિ, મનુષ્યાણામપિ પૃથ્વીદિગ્મિર્ગત્યાદીનિ ભવન્તીતિ । નારકાદયો દ્વાવિંશતિદણ્ડકગતા જીવાસ્તુ પૃથ્વીદિગ્મિર્ગત્યાદિમન્તો ન ભવન્તિ । તથાહિ—નારકાદીનાં દ્વાવિંશતેર્જીવવિશેષાણાં તુ નારકદેવેષુ ઉત્પન્ન્યભાવાત્ ઊર્ધ્વાધોદિશૌ આશ્રિત્ય ગત્યાગત્યોરભાવઃ । તથા—ગુણપ્રત્યયાવધિલક્ષણપ્રત્યક્ષરૂપા દર્શનજ્ઞાનજીવાજીવાભિગમા અપિ તેષાં ન ભવન્તિ । ભવપ્રત્યયાવધિપક્ષેતુ નારકજ્યોતિષ્કાસ્તિર્યગવધયઃ, ભવનપતિવ્યન્તરા ઊર્ધ્વાવધયઃ, વૈમાનિકાસ્ત્વધોઽવધયઃ, શેષાસ્તુ નિસ્વધયો વૌધ્યાઃ ॥ ઇતિઃ સૂ૦ ૨૬ ॥

સે ગત્યાદિક વસ્તુએ હોતી હૈં મનુષ્યોં કી સી છહ દિશાઓં સે યે ગત્યાદિક વસ્તુએ હોતી હૈં । પરન્તુ જો નારકાદિ ૨૨ દણ્ડકગત જીવ હૈં વે છહ દિશાઓં સે ગત્યાદિવાલે નહીં હોતે હૈં ક્યોંકિ ૨૨ જીવ વિશેષ રૂપ નારક આદિકોં કા નારક દેવોં મેં ઉત્પત્તિ કા અભાવ રહતા હૈં હસલિયે ઊર્ધ્વદિશા ઓર અધો દિશા કો આશ્રિત કરકે ગતિ ઓર આગતિ કા અભાવ હૈં નારક મરકર દ્વિતીય ભવ મેં નારક ઓર દેવ નહીં હોતા હૈં ઓર દેવ મરકર અનન્તર ભવ મેં દ્વિતાય ભવ મેં દેવ એવં નારક નહીં હોતા હૈં । તથા ગુણ પ્રત્યય—તપસ્યાદિ જન્ય અવધિજ્ઞાન અવધિદર્શન જીવાભિગમ ઓર અજીવાભિગમ યે સવ મી ઉનકે નહીં હોતે હૈં પરન્તુ ભવપ્રત્યય અવધિપક્ષમેં તો નારક એવ જ્યોતિષ્ક તિર્યગવધિવાલે હોતેહૈં ભવનપતિ ઓર વ્યન્તર ઊર્ધ્વ અવધિવાલે હોતેહૈં ।

અધિક વસ્તુઓ છએ દિશામાંથી થાય છે. મનુષ્યોની ગતિ આદિક વસ્તુઓ પણ છએ દિશામાંથી થાય છે. પરન્તુ નારક આદિ ૨૨ દંડકગત જીવો છએ દિશાઓમાં ગતિ આદિવાળાં હોતા નથી, કારણ કે તે ૨૨ પ્રકારના જીવ-વિશેષ રૂપ નારક આદિકોના નારકો અને દેવોમાં ઉત્પત્તિનો અભાવ રહે છે. તે કારણે તે જીવોમાં ઊર્ધ્વદિશા અને અધોદિશા તરફની ગતિ અને આગ-તિનો અભાવ રહે છે. નારક જીવ તેનું નારકગતિનું આયુષ્ય પૂરું કરીને ત્યાર પછીના ભવમાં નારક રૂપે કે દેવ રૂપે ઉત્પન્ન થતો નથી, અને દેવ પણ તેનું દેવલોકનું આયુષ્ય પૂરું કરીને પછીના ભવમાં દેવ અથવા નારક રૂપે ઉત્પન્ન થતો નથી. તથા તેમનામાં ગુણપ્રત્યય (તપસ્યાદિ જન્ય) અવધિજ્ઞાન, અવધિ-દર્શન, જીવાભિગમ અને અજીવાભિગમનો સદ્ભાવ હોતો નથી. પરન્તુ ભવ-પ્રત્યય અવધિની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો નારક અને જ્યોતિષ્ક તિર્યગ્ અવધિવાળા હોય છે, ભવનપતિ અને વ્યન્તર ઊર્ધ્વ અવધિવાળા

मनुष्याणामजीवाभिगमः प्रोक्त इति मनुष्यप्रस्तावात् सम्प्रति संयतमनुष्या-
णाम् आहारग्रहणाग्रहणकारणानि प्राह—

मूलम्—छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहारमाहरमाणे
णाइक्कमइ, तं जहा--वेयणे वेयावच्चे २ ईरियट्टाए ३ य संजम-
ट्टाए ४ तह पाणवत्तियाए ४ छट्टं पुण धम्मचिंताए ६ ॥ १ ॥
छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहारं वोच्छिदमाणे णाइक्कमइ,
तं जहा--आयंके १ उवसग्गे २, तित्तिक्खणे बंभचेरगुत्तीए ३।
पाणिदयातव ५ हेउं, सरीरवुव्छेयणट्टाए ६ ॥१॥ सू० २७ ॥

छाया—पड्भिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थः आहारमाहरन् नातिक्रामति,
तद्यथा—वेदनावैयावृत्तये २ ईर्यार्थाय ३ च संयमार्थाय ४ तथा प्राणवृत्तये ५
पठं पुनर्धर्मचिन्तायै ६ ॥ १ ॥ पड्भिः स्थानैः श्रमणो निर्ग्रन्थः आहारं व्युच्छि-
न्दन् नातिक्रामति, तद्यथा—आतङ्के १ उपसर्गे २ तित्तिक्षणे ब्रह्मचर्यगुप्तेः ३।
प्राणिदया तपो ५ हेतोः शरीरव्युच्छेदनार्थाय ६ ॥१॥ सू० २७ ॥

टीका—‘ छहिं ठाणेहिं ’ इत्यादि—

श्रमणो निर्ग्रन्थः पड्भिः स्थानैः=कारणैः आहारम् आहरन्=भुञ्जानो नाति-

एवं वैमानिक देव अधो अवधिचाले होते हैं तथा इनसे बाकी बचे
हुए जीव अवधिरहित होते हैं ॥ सू० २६ ॥

मनुष्यों को अजीवाभिगम कहा गया है सो इसी मनुष्य के प्रस्ताव
को लेकर अब सूत्रकार संयत मनुष्यों के आहार ग्रहण और आहार
अग्रहण के जो कारण हैं उनका कथन करते हैं—

‘छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे’ इत्यादि सूत्र ॥ २७ ॥

टीकार्थ—छह कारणों से आहार को ग्रहण करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ

होय छे अने वैमानिक देवा अधो अवधिचाला होय छे. भाडीना लुवा
अवधि रडित होय छे. ॥ सू. २६ ॥

आगला सूत्रमां न मनुष्येने अलुवालिगभवणा कडेवामां आव्या छे.
तेथी ये न मनुष्येना प्रस्ताव साथे सुप्रगत येवा संयत मनुष्येना आहार
अहण अने आहार अग्रहणना ने कारणो छे तेमनुं सूत्रकार डवे निरूपणु
करे छे “ छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे ” इत्यादि—

सूत्रार्थ—नीचे दशावेला छ कारणोथी आहार अहण करनार श्रमण निर्ग्रन्थ
जिनाज्ञानुं उद्वेगन करनारो गणुतो नथी.

क्रामति=नोल्लङ्घयति जिनाज्ञाम् । तानि स्थानान्याह गाथया-तवथा-वेदनावै-
यावृत्त्ये-वेदना=क्षुद्वेदना, वैयावृत्त्यं=गुरुशुश्रूषा वेदना च वैयावृत्त्यं चेति समा-
हारः, तस्मिन्, क्षुद्वेदनारूपे गुर्वादिवैयावृत्त्यरूपे च कारणद्वये सति आहारमा-
हरन निर्ग्रन्थो जिनाज्ञा नातिक्रामति । १ । २ ॥ तथा-ईर्यापथ्य-ईर्या=गमनं,
तदर्थाय=तद्विशुद्धचर्थम् । बुभुक्षितो ह्यशक्तो भवति । न चाशक्त ईर्याविशुद्धिं
कर्तुं शक्नोतीति भावः ॥ ३ ॥ च=पुनः संयमार्थाय-संयमः=पृथिवीकायादिभेदैः
सप्तदशविधः, तस्य अर्थाय=तन्निमित्तम् ॥ ४ ॥ तथा-प्राणवृत्त्ये-प्राणाः=उच्छ्वा-

जिनाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करता है वे छह कारण ऐसे हैं एक वेदना
और दूसरा वैयावृत्त्य २ जब क्षुधा वेदना रूप कारण उपस्थित होता
है तब श्रमण निर्ग्रन्थ उसकी उपशान्तिके निमित्त आहार ग्रहण करता
है इस स्थितिमें वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है । इसी प्रकार गुरु
की शुश्रूषा (सेवा) करने रूप वैयावृत्ति रूप कारण जब उपस्थित हो जाता
है तब वह यदि आहार को ग्रहण करता है तब भी वह जिनाज्ञा का
विराधक नहीं है इसी प्रकार जब ईर्यापथ्य की विशुद्धि होने रूप कारण
उपस्थित हो जाता है तब भी यदि वह श्रमण निर्ग्रन्थ आहार ग्रहण
करता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है क्योंकि जो बुभु-
क्षित (भूखा) होता है वह अशक्त हो जाता है अशक्त से ईर्यापथ्य
की विशुद्धि यथावत् हो नहीं सकती है अतः उस ईर्यापथ्य की विशुद्धि
करने के लिये यदि वह आहार लेता है तो जिनाज्ञा का विराधक नहीं
होता है इसी प्रकार यदि श्रमण निर्ग्रन्थ पृथिवीकायादिक की रक्षा
करने रूप १७ प्रकार के संयम के निमित्त आहार ग्रहण करता है तो

(१) वेदना—ज्यादे क्षुधावेदना रूप कारण उपस्थित थाय छे त्यादे तेना
उपशमनने भाटे आहार ग्रहण करतो साधु जिनाज्ञाने विराधक गण्यतो नथी.

(२) वैयावृत्त्य—गुरुनी शुश्रूषा करवा रूप कारण ज्यादे उपस्थित थाय,
त्यादे ने ते आहार ग्रहण करे तो जिनाज्ञाने विराधक गण्यतो नथी.

(३) ईर्यापथ्यनी विशुद्धि रूप कारण ज्यादे उपस्थित थाय त्यादे पणु
ने ते श्रमण निर्ग्रन्थ आहार ग्रहण करे तो ते परिस्थितिमां पणु ते जिना-
ज्ञाने विराधक गण्यतो नथी, कारण छे ने साधु भूभ्ये डाय छे ते अशक्त
अनी जवाने कारणे ईर्यापथ्यनी विशुद्धि योग्य प्रकारे नगवी शक्तो नथी.
तेथी आ ईर्यापथ्यनी विशुद्धि करवाने निमित्ते ने ते आहार ले तो जिना-
ज्ञाने उल्लङ्घनकर्ता गण्यतो नथी.

सादयः, तेषां वृत्तिः=स्थितिस्तस्यै-प्राणधारणार्थमित्यर्थः ॥ ५ ॥ षष्ठं स्थानं पुनः धर्मचिन्तायै=धर्मचिन्तनार्थं = सूत्रार्थानुचिन्तनादि लक्षण - शुभचित्तप्रणिधानार्थमिति ६। एभिः षड्भिः कारणैराहारमाहरतां साधूनां जिनाज्ञाविराधना नास्तीति । तथा-श्रमणो निर्ग्रन्थः षड्भिः स्थानैः आहारं व्युच्छिन्दन्=परित्यजन् जिनाज्ञां नातिक्रामति । तानि स्थानान्याह-तद्यथा-आतङ्के=ज्वरादौ । १ ।

जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है इसी प्रकार से यदि श्रमण निर्ग्रन्थ उच्छ्रवास आदि रूप प्राणों की रक्षा के निमित्त आहार ग्रहण करता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है इसी प्रकारसे यदि वह श्रमण निर्ग्रन्थ धर्मचिन्तन के निमित्त-सूत्रार्थ के बार २ विचार करने रूप शुभचित्त प्रणिधान के निमित्त यदि आहार ग्रहण करता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है इस प्रकार के इन ६ कारणों को लेकर आहार को ग्रहण करने वाले साधुजनों में जिनाज्ञा की विराधकता नहीं आती है । इसी प्रकार से ६ कारणों को लेकर यदि श्रमण निर्ग्रन्थ आहार का परित्याग कर देता है तो भी उसमें जिनाज्ञा की विराधकता नहीं आती है-वे ६ कारण ये हैं-यदि श्रमण निर्ग्रन्थ ज्वरादि अवस्थावाला हो गया हो तो उस स्थिति में यदि वह आहार नहीं लेता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है १ यदि देव

पृथ्वीकायादिकनी रक्षा करवा इप १७ प्रकारना सयमने निमित्ते आहार अहणु करनार श्रमणु निर्ग्रन्थ पणु जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी.

(५) उच्छ्रवास आदि इप प्राणोनी स्थिति निमित्ते आहार अहणु करनार श्रमणु निर्ग्रन्थ पणु जिनाज्ञानो विराधक थतो नथी.

(६) जे ते श्रमणु निर्ग्रन्थ धर्मचिन्तनने निमित्ते-सूत्रार्थनो वारवार विचार करवा इप शुभ चित्तप्रणिधानने निमित्ते-आहार अहणु करे तो पणु ते जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी. आ प्रकारना आ ६ कारणोने लीधे आहार अहणु करनार साधुने जिनाज्ञाना विराधक गणुता नथी.

जे न प्रमाणे नीचे दशावेक्षा छ कारणोने लीधे जे कोठ श्रमणु निर्ग्रन्थ आहारनो परित्याग करी नाथे तो तेने पणु जिनाज्ञानो विराधक गणु शकतो नथी--

जे कोठ श्रमणु निर्ग्रन्थ ज्वर आदिथी पीडातो डोय तो जेवी परि स्थितिमां जे ते आहार देवो अंध करी दे तो तेने जिनाज्ञानो विराधक गणुतो नथी.

उपसर्गे=देवमनुष्यादिजनिते उपद्वे । २ । तथा-ब्रह्मचर्यगुप्तेः तितिक्षणे=अधि-
सहने च, आहारत्यागे हि ब्रह्मचर्यं सुरक्षितं भवतीति बोध्यम् । ३ । तथा-प्राणि-
दयातपोहेतोः-प्राणिदया=पृथिव्यादि जीवरक्षा, तपः=अनशननादिकं द्वादशविधम्,
तयोर्हेतोः-प्राणिदयानिमित्तं तपोनिमित्तं चेत्यर्थः । ४ । ५ ॥ तथा-शरीरव्यवच्छे-
दनार्थाय शरीरस्य व्यवच्छेदनं=त्यागः-भक्तप्रत्याख्यानारूपः, तदर्थाय=तन्नि-
मित्तम् आहारं परित्यजन् जिनाज्ञाविराधको न भवतीति पठं स्थानम् ॥ सू० २७ ॥

मनुष्य आदि कृत् उपसर्गो युक्त हो जाता है तो ऐसी स्थिति में आहार का परित्याग करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है २ ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के निमित्त यदि वह आहार का परित्याग कर देता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है क्योंकि कुछ समय के लिये किया गया आहार का परित्याग ब्रह्मचर्य का रक्षक माना गया है प्राणिदया पृथिव्यादिक जीवों की रक्षा के हेतु एवं अनशन आदि १२ प्रकार के तपों के आचरण के निमित्त यदि वह श्रमण निर्ग्रन्थ आहार का परित्याग कर देता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है इसी प्रकार से वह यदि भक्त प्रत्याख्या-
नादि (संधारा) रूप विशिष्ट तपस्या के निमित्त आहार का परित्याग कर देता है तो वह जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है इस प्रकार के इन ६ कारणों के निमित्त आहार का परित्याग करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जिनाज्ञा का विराधक नहीं होता है ॥ सू० २७ ॥

ले डोष श्रमण निर्ग्रन्थ पर देव, मनुष्य आदि कृत उपसर्गो आवी पडे, तो अेवी परित्यतिमां ले ते आहारने परित्याग करी नाणे तो तेने जिनाज्ञानुं उल्लघन करनारे गणी शक्य नही.

ब्रह्मचर्यनी रक्षा निमित्ते आहारने परित्याग करी नाणनारे श्रमण पणु जिनाज्ञाने विराधक गणुतो नथी, कारणु के अमुक समय पर्यन्तना आहारना त्याग द्वारा ब्रह्मचर्य व्रतनी रक्षा थाय छे, अेवुं मानवामां आवे छे.

(४) प्राणिदया-पृथ्वीकाय आदि श्रवणी रक्षाना हेतुथी अने (५) अनशन आदि १२ प्रकारना तपना आचरणने निमित्ते आहारने परित्याग करनारे साधु पणु जिनाज्ञाने विराधक गणुतो नथी.

(६) भक्तप्रत्याख्यान (संधारे) आदि ३५ विशिष्ट तपस्याने निमित्ते आहारने परित्याग करनारे श्रमण निर्ग्रन्थ पणु जिनाज्ञाने विराधक गणुतो नथी. आ प्रकारना छे कारणुने निमित्ते परित्याग करनार साधु जिनाज्ञाने विराधक णनते नथी. ॥ सू. २७ ॥

अनन्तरसूत्रे श्रमणस्याहारग्रहणाग्रहणकारणानि अभिहितानि, सम्प्रति श्रमणादयोऽनुचितकारिण उन्मत्ता भवन्तीत्युन्मादस्थानान्याह—

मूलम्--छहिं ठाणेहिं आया उम्मायं पाउणेज्जा, तं जहा--
अरहंताणमवणं वयमाणे १, अरहंतपणत्तस्स धम्मस्स
अवणं वयमाणे २, आयुरियउवज्झायाणमवणं वयमाणे
३, चाउव्वन्नस्स संघस्स अवणं वयमाणे ४ जक्खावेशेण चैव
५, मोहणिज्जस्स चैव कम्मस्स उदणं ६ ॥ सू० २८ ॥

छाया—षड्भिः स्थानैरात्मा उन्मादं प्राप्नुयात्, तद्यथा—अर्हतामवर्णं वदन्
१, अर्हत्प्रज्ञस्य धर्मस्य अवर्णं वदन् २, आचार्योपाध्यायानामर्णं वदन् ३, चातु-
र्वर्ण्यस्य संघस्य अवर्णं वदन् ४, यक्षावेशेन चैव ५, मोहनीयस्य चैव कर्मण उद-
येन ६ ॥ सू० २८ ॥

टीका—‘ छहिं ठाणेहिं ’ इत्यादि—

आत्मा=जीवः षड्भिः स्थानैः उन्मादम्=उन्मत्ततां प्राप्नुयात् । तान्येव
स्थानान्याह—तद्यथा—अर्हताम् अवर्णम्=अश्लाघाम् - अस्पृहणीयतां निन्दां वा
वदन्=ब्रुवाणः, उन्मादं प्राप्नुयात् १। एवम्—अर्हत्प्रज्ञस्य—धर्मस्य २, आचार्यो-

इस प्रकार से इस ऊपर के सूत्र में श्रमणको आहार लेने और
न लेने के कारणों को दिखाया अब सूत्रकार जिन कारणों से अनुचित
कार्य करनेवाले श्रमणजन उन्मत्त (पागल) होते हैं उन उन्माद होने
के कारणों का कथन करते हैं—

“छहिं ठाणेहिं आया उम्मायं पाउणेज्जा” सूत्र २८ ॥

टीकार्थ—छह कारणोंसे आत्मा जीव उन्मादको—उन्मत्तता को प्राप्त करता
है वे छह कारण इस प्रकार से हैं—अहन्तों का अवर्णवाद करना १
अर्हन्त भगवन्तों की अश्लाघा—अस्पृहणीयता अथवा निंदा करनेवाला

उपरना सूत्रमां श्रमणोने आहार अडणु करवाना तथा आहारने परि-
त्याग करवाना कारणो भताववाभा आल्यां हवे सूत्रकार ओ वात प्रकट करे
छे के कथां कथां अनुचित कार्यो करनार श्रमणु निर्ग्रथ उन्मत्त (पागल)
भनी लय छे. “ छहिं ठाणेहि आया उम्मायं पाउणेज्जा ” इत्यादि—

टीकार्थ—आत्मा (जीव) नीचेना छ कारणोने लीधे उन्मादने प्राप्त करे छे.
(१) अर्हन्त भगवानोने अवर्णुवाद करवाथी ओटसे के तेमनी अश्लाघा

પાધ્યાયાનાં ૩, સાધુસાધ્વીશ્રાવકશ્રાવિકારૂપચતુર્વિધસંઘસ્ય ૪ ચ અવર્ણ-
વદન્ ઉન્માદં પ્રાપ્નુયાત્ ૪। ઉન્માદશ્ચ મદ્દામિથ્યાત્વરૂપઃ, સ ચ અર્હદાદીનામવર્ણ-
વદતો ભવત્યેવ । યદ્વા-ઉન્માદો=વાતુલત્વં, સ ચ અર્હદાદવર્ણવક્તૃણાં ક્રુપિતશાસન-
દેવતાપ્રભાવાદ્ ભવત્યેવેતિ વોદ્યમ્ । ઇતિ સ્થાનચતુષ્ટયમ્ । તથા-યક્ષાવેશેન=
નિમિત્તાન્તરપ્રક્રુપિતદેવાધિષ્ઠિતતથા ઉન્માદં પ્રાપ્નુયાદિતિ પશ્ચમં સ્થાનમ્ ।

જીવ ઉન્માદકો પ્રાપ્ત કરતા હૈ ૧ એસા જીવ ઉન્મત્ત હુણ કી તરહ
માના જાતા હૈ હસી પ્રકાર સે જો જીવ અર્હત્પ્રજ્ઞસ અર્હન્ત ભગવન્ત
દ્વારા કથિત ધર્મકા-શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મકા અવર્ણવાદ કરતા હૈ વહ
ઉન્માદકો પ્રાપ્ત કરતા હૈ ૨ આચાર્ય ઉપાધ્યાય કા જો અવર્ણવાદ કરતા
હૈ વહ ઉન્માદ કો પ્રાપ્ત કરતા હૈ ૩ સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક ઇવં શ્રાવિકા
રૂપ ચતુર્વિધ સંઘ કા જો અવર્ણવાદ કરતા હૈ વહ ઉન્માદ કો પ્રાપ્ત
કરતા હૈ ૪ ઉન્માદ મહામિથ્યાત્વ રૂપ હોતા હૈ અતઃ યહ ઉન્હીં જીવોં
કો હોતા હૈ જો અર્હન્ત આદિકોં કા અવર્ણવાદ કરતે હિં અથવા-ઉન્માદ
શબ્દ કા અર્થ વાતુલતા ની હોતા હૈ ચિત્ત કી અસ્થિરતા રૂપ હોતા હૈ
-યહ અર્હત્ આદિકોં કે અવર્ણવાદ કો કહને વાલે જીવોં કો ક્રુપિત
હુણ શાસનદેવોં કે પ્રભાવ સે હો હી જાતા હૈ હસ પ્રકાર કે ઉન્માદ
હોને કે યે ચાર કારણ હિં તથા પાંચવાં કારણ યક્ષાવેશ હૈ-નિમિત્તા-
ન્તર સે ક્રુપિત હુણ દેવ સે અધિષ્ઠિત હોને કે કારણ જીવ ઉન્માદ દ્વા

અથવા નિંદા કરવાથી જીવ ઉન્માદને પ્રાપ્ત કરે છે. અથવા એવા જીવને ઉન્મત્ત
બેવો (પાગલ બેવો) માનવામાં આવે છે. (૨) જે જીવ અર્હન્તો દ્વારા
પ્રરૂપિત શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મનો અવર્ણવાદ કરે છે તે પણ ઉન્માદને પ્રાપ્ત
કરે છે. (૩) જે જીવ આચાર્ય કે ઉપાધ્યાયનો અવર્ણવાદ કરે છે તે પણ
ઉન્માદને પ્રાપ્ત કરે છે. (૪) સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકા રૂપ ચતુર્વિધ
સંઘનો અવર્ણવાદ કરનાર જીવ પણ ઉન્માદને પ્રાપ્ત કરે છે. ઉન્માદ મહા-
મિથ્યાત્વ રૂપ હોય છે, તેથી તેનો સદ્ભાવ એવાં જીવોમાં જ રહે છે કે
જેઓ અર્હન્ત આદિનો અવર્ણવાદ કરતા હોય છે. અથવા ઉન્માદ શબ્દનો
અર્થ બકવાટ પણ થાય છે અને તે ચિત્તની અસ્થિરતા રૂપ હોય છે, અર્હન્ત
આદિની નિંદા કરનાર જીવો પર શાસન દેવો ક્રુપિત થઈને તેમની આ પ્રકા-
રની હુર્દશા કરી નાખે છે. આ પ્રકારે ઉન્માદના ચાર કારણોનું નિરૂપણ
કરીને હવે સૂત્રકાર પાંચમાં કારણનું કથન કરે છે-યક્ષાવેશ-કોઈ પણ કારણે
કોપાયમાન થયેલા દેવથી અધિષ્ઠિત થવાને કારણે શરીરમાં દેવનો પ્રવેશ

तथा-मोहनीयस्य कर्मण उदयेन=मिथ्यात्ववेदशोकादिरूपमोहनीयकर्मण उदया-
वल्लिकायां प्रवेशेन उन्मादं प्राप्नुयादिति पठं स्थानम् ॥ सू० २८ ॥

यत्रोन्मादस्तत्र प्रमादोऽपि तिष्ठत्येवेति प्रमादस्य षड्विधत्वमाह—

शूलम्—छविहे पमाए पणत्ते, तं जहा—मज्जप्पमाए १,
णिहृप्पमाए २, विसयप्पमाए ३, कसायंप्पमाए ४, जूयप्पमाए
५, पडिलेहणापमाए ६ ॥ सू० २९ ॥

छाया—षड्विधः प्रमादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—मद्यप्रमादो १ निद्राप्रमादो २
विषयप्रमादः ३ कषायप्रमादो ४ द्यूतप्रमादः ५ प्रतिलेखनाप्रमादः ६ ॥सू०२९॥

को प्राप्त कर लेता है यह ध्यान तो प्रत्यक्ष ही है । तथा उन्माद होने का
छठा कारण मोहनीय कर्म का उदय है जीव को जब विशिष्टावस्था में
मिथ्यात्व वेद शोक आदि के रूप में मोहनीय कर्म का उदय होता है
तब जीव उन्माद की अवस्था को प्राप्त करता है इस प्रकार के ये ६ कारण
जीव को उन्माद अवस्था की प्राप्ति कराते हैं यह प्रकट क्रिया है ॥सू०२८॥

जहां उन्माद होता है वहां प्रमाद भी होता ही है इसलिये अब
सूत्रकार प्रमाद की षट् प्रकारता का निरूपण करते हैं—

‘छविहे पमाए पणत्ते’ इत्यादि सूत्र २९ ॥

टीकार्थ-प्रमाद ६ प्रकारका कहा गया है जैसे—मद्यप्रमाद १ निद्रा प्रमाद
२ विषय प्रमाद ३ कषाय प्रमाद ४ द्यूतप्रमाद ५ और प्रतिलेखना प्रमाद ६

थवाने कारणे ऽत्र उन्माद दशाने प्राप्त करे छे, आ वातने तो धणा बोडिने
प्रत्यक्ष अनुभव थतो डोय छे.

(६) मोहनीय कर्मना उदयथी पणु ऽत्र उन्माद दशा प्राप्त करे छे.
अवने न्यारे विशिष्टावस्थाभां मिथ्यात्व, वेद, शोक आदि रूपे मोहनीय
कर्मने उदय थाय छे त्यारे पणु ऽत्र उन्मादनी अवस्थाने प्राप्त करे छे.
आ प्रकारना ६ कारणेने लीधे ऽत्र उन्मादनी अवस्थाने प्राप्त करे छे,
अम समञ्जुं. ॥ सू २८ ॥

न्यां उन्माद डोय छे त्यां प्रमाद पणु डोय छे न. तेथी डवे सूत्रकार
प्रमादना ६ प्रकारानुं निरूपणु करे छे

“ छविहे पमाए पणत्ते ” इत्यादि—

प्रमादना नीचे प्रमाणे ६ प्रकार कहे छे—(१) मद्यप्रमाद, (२) निद्रा-
प्रमाद, (३) विषयप्रमाद, (४) कषायप्रमाद, (५) द्यूतप्रमाद अने (६) प्रति-

ટીકા—‘ છત્તિવિદે ’ ઇત્યાદિ—

પ્રમાદઃ—સદુપયોગાભાવઃ, સ ચ પઙ્ગવિધઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ તદ્યથા—મદ્યપ્રમાદઃ—મદ્ય=મદજનકં સુરાદિકં તદેવ પ્રમાદકારકત્વાત્ પ્રમાદઃ । અથવા—મદ્યપાનજનિતઃ પ્રમાદો મદ્યપ્રમાદઃ । ઉક્તં ચ—

“ ચિત્તભ્રાન્તિર્જાયતે મદ્યપાનાચ્ચિત્તે ભ્રાન્તે પાપચર્યામુપૈતિ ।

પાપં કૃત્વા દુર્ગતિં યાન્તિ મૂઢાઃ, તસ્માન્મદ્યં નૈવ દેયં ન પેયમ્ ” ॥૧॥૩૩૧૧

તથા—નિદ્રાપ્રમાદઃ—નિદ્રારૂપઃ પ્રમાદઃ નિદ્રાજનિતઃ પ્રમાદો વા ।

સદુપયોગ કે અભાવ કા નામ પ્રમાદ હૈ યહ પ્રમાદ મદ્યપ્રમાદ આદિ કે ભેદ સે ૬ પ્રકાર કા જો કહા ગયા હૈ ઉસકા તાત્પર્ય એસા હૈ—મદજનક જો સુરા શરાબ આદિક હૈં વે હી પ્રમાદ કારક હોને સે પ્રમાદ રૂપ કહ દિયે ગયે હૈં અથવા મદ્ય કે પાન સે જનિત જો પ્રમાદ હૈં વહ મદ્યપ્રમાદ હૈં । કહા બી હૈં—‘ ચિત્તભ્રાન્તિર્જાયતે મદ્યપાનાત્ ’ ઇત્યાદિ ।

મદ્યપાન સે જીવોં કે ચિત્ત મેં ભ્રાન્તિ અસાવધાનતા આ જાતી હૈં ઇસ ભ્રાન્તિ સે જ્ય ચિત્ત ભ્રાન્ત હો જાતા હૈં તો ફિર ઉસ મેં પાપ હી પાપ કરને કી વિચાર ધારા ઉઠને લગતી હૈં । વહ પાપ કરકે દુર્ગતિ મેં જાતા હૈં । ઇસલિયે મદ્ય ન કિસી કો દેના ચાહિયે ઓર ન ઉસે પીના હી ચાહિયે । એસા યહ પ્રથમ સ્થાન હૈં । દ્વિતીય સ્થાન નિદ્રાપ્રમાદ રૂપ હૈં નિદ્રા સ્વયં પ્રમાદ હૈં અથવા નિદ્રા સે ઉત્પન્ન જો પ્રમાદ હૈં વહ નિદ્રાપ્રમાદ હૈં । કહા બી હૈં—

લેખના પ્રમાદ. સદુપયોગના અભાવનું નામ પ્રમાદ છે. તે પ્રમાદના મદ્યપ્રમાદ આદિ ૬ પ્રકાર કહ્યા છે.

મદજનક જે સુરા (શરાબ) આદિ છે તેઓ પ્રમાદકારક હોવાથી તેમને પ્રમાદરૂપ કહેવામાં આવ્યા છે અથવા મદિરાપાન કરવાને લીધે જનિત જે પ્રમાદ છે તેનું નામ મદ્યપ્રમાદ છે. કહ્યું પણ છે કે—

“ ચિત્તભ્રાન્તિર્જાયતે મદ્યપાનાત્ ” ઇત્યાદિ—

મદ્યપાન કરવાથી મદ્યપાન કરનાર જીવોના ચિત્તમાં ભ્રાન્તિ—અસાવધાનતા આવી જાય છે. આ ભ્રાન્તિ દ્વારા જ્યારે ચિત્ત ભ્રાન્ત થઈ જાય છે, ત્યારે જીવને પાપ કૃત્યો કરવાના જ વિચારો આવવા લાગે છે, તેથી તે જીવ પાપ કૃત્યો કરીને દુર્ગતિમાં જાય છે. તે કારણે કોઈને મદિરા આપવી જોઈએ પણ નહીં અને પોતે પણ તેનું સેવન કરવું જોઈએ નહીં. આ પ્રકારનું આ પહેલું સ્થાન (કારણ) સમજવું.

હવે નિદ્રાપ્રમાદ રૂપ બીજા સ્થાનનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

उक्तं च—“ निद्राशीलो न श्रुतं नापि वित्तं लब्धुं शक्तो हीयतेचैव
ताभ्याम् (श्रुतवित्ताभ्याम्) ।

ज्ञान द्रव्याभावतो दुःखभागी, लोकद्वैतेस्यादतो निद्रयाऽलम् ” ॥ १ ॥
इति ॥ २ ॥

तथा—विषयप्रमादः—विषयाः=शब्दादयः, तद्रूपः प्रमादः, तज्जनितो वा
प्रमादः । उक्तं च—

“ विषयव्याकुलचित्तो, हितमहितं वा न वेत्ति जन्तुरयम् ।

तस्मादनुचितचारी, चरति चिरं दुःखकान्तारे ” ॥१॥ इति ॥३॥

“ निद्राशीलो न श्रुतं नापि वित्तं ” इत्यादि

निद्राशील प्राणी श्रुत की और वित्त द्रव्य की कमाई से वंचित
रहता है इन श्रुत और वित्त के अभाव से वह सदा दुःखी का दुःखी
ही बना रहता है इसलिये इस निद्रा को जीत कर जो अपने वश में
कर लेते हैं वे धन्य हैं २।

शब्दादि विषय रूप जो प्रमाद है वह अथवा शब्दादि जनित जो
प्रमाद है वह विषय प्रमाद है । कहाँ भी है—

“ विषय व्याकुल चित्तो ” इत्यादि ।

जब यह प्राणी विषयों से व्याकुल हो जाता है तब अपने हित
और अहित की पहिचान नहीं कर पाता है । ऐसे वह अनुचित कामों
को करनेवाला जीव बहुत काल तक इस संसार रूपी गहनवनमें परि-
भ्रमण करता है । उससे वह ऐसे काम करते हुए कभी पार नहीं हो पाता है ।

निद्रा पोते ञ प्रमाद इप छे अथवा निद्राजनित जे प्रमाद छे तेनुं नाम
निद्राप्रमाद छे. कहुं पणु छे के “ निद्राशीलो न श्रुतं नापि वित्तं ” इत्यादि—

निद्राशील एव श्रुतनी अने धननी प्र.सिथी वंचित रहे छे. अने श्रुत
अने धनना अलावथी ते सदा दुःखमां ञ सभउया करे छे. तेथी आ निद्राने
एती देनार अथवा तेने आधीन नहीं थनार एव धन्य छे.

इवे विषयप्रमादनुं स्वरूप समन्वयवामां आवे छे—शब्दादि विषयरूप
प्रमाद छे तेने विषयप्रमाद कडे छे. अथवा शब्दादि जनित जे प्रमाद छे
तेने विषयप्रमाद कडे छे. कहुं पणु छे के “ विषयव्याकुलचित्तो ” इत्यादि

न्यारे एव विषयोमां लीन थर्ध न्य छे त्यारे ते पोतानुं हित शेमां
छे अने अहित शेमां छे ते समए शक्तो नथी. तेथी ते अनुचित कायों
कर्या करे छे. तेने लीधे ते दीर्घाण सुधी आ संसार इप गहन वनमां
परिभ्रमणु कर्या करे छे. अने ते आ संसार सागरने पार करवाने कही
समर्थ थतो नथी.

कषायप्रमादः-कषायाः=क्रोधादयः, तद्रूपस्तज्जनितो वा प्रमादः ।

उक्तं च-“ चित्तरत्नमसंक्लिष्टमान्तरं धनमुच्यते ।

यस्य तन्मुपितं दोषै (क्रोधादिरूपै) स्तस्य शिष्टा (अवशिष्टाः) विपत्तयः इति ॥ ४ ॥

तथा—द्यूतप्रमादः-द्यूतं-प्रसिद्धं, तद्रूपस्तज्जनितो वा प्रमादः ।

उक्तंचात्र—“ द्यूतासक्तस्य सच्चित्तं, धनं कामाः सुचेष्टितम् ।

नश्यन्त्येव परं शीर्षं, नामापि च विनश्यति ॥ १ ॥ इति ५ ॥

कषाय रूप प्रमाद कषाय प्रमाद है अथवा क्रोधादि कषायों से जन्य जो प्रमाद है वह कषाय प्रमाद है । कहा भी है—

“ चित्तरत्नमसंक्लिष्टं ” इत्यादि ।

कषायों से असंक्लिष्ट जो चित्त है वही एक आन्तर रत्न कहा गया है । जिसका यह चित्त रूपी रत्न कषाय रूप दोषों से चुरालिया गया है उसके पास दुनिया भर की विपत्तियां आती रहती हैं और उसे दुःखित किया करती हैं ।

द्यून जुवा खेलना रूप जो प्रमाद है वह द्यूतप्रमाद है अथवा द्यूत से जन्य जो प्रमाद है वह द्यूत प्रमाद है । कहा भी है-द्यूतासक्तस्य सच्चित्तं ” इत्यादि ।

द्यूतक्रीडा में आसक्त हुए प्राणी का चित्त, धन, काम शुभचेष्टाये

डूवे कषाय प्रमादनुं स्वरूप स्पष्ट करवामां आवे छे—कषाय रूप ले प्रमाद छे तेनुं नाम कषाय प्रमाद छे. अथवा क्रोधादि कषायोथी जनित ले प्रमाद छे तेनुं नाम कषाय प्रमाद छे. कहु पणु छे के—

“ चित्तरत्नमसंक्लिष्ट ” इत्यादि—

कषायोथी असंक्लिष्ट (रहित) ले चित्त छे, तेने ले एक आन्तर रत्न रूप कहु छे. लेनुं ते चित्त रूपी रत्न कषाय रूप दोषो द्वारा चोरी लेवामां अथवा भूथवी लेवामां आव्युं छे जेवा जवनी पासे दुनियाभरनी विपत्तियो आवती रहे छे अने तेने दुःखित कर्या करे छे.

डूवे द्यूतप्रमादनुं स्वरूप प्रकट करवामां आवे छे. द्यूत (जुगार) रमवा रूप ले प्रमाद छे तेनुं नाम द्यूतप्रमाद छे. अथवा द्यूतोथी जन्य ले प्रमाद छे तेनुं नाम द्यूतप्रमाद छे. कहु पणु छे के :

“ द्यूतासक्तस्य सच्चित्तं ” इत्यादि—

द्यूतक्रीडामां आसक्त थयेला जवनुं चित्त, धन, काम-शुभचेष्टाओ अने

तथा-प्रतिलेखनाप्रमादः-प्रतिलेखना=प्रत्युपेक्षणा, सा च द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदाश्रयवृत्तिर्वा । तत्र द्रव्यप्रत्युपेक्षणा-वस्त्रपात्राद्युपकरणानामुभयकालम्, यच्चक्षुषानिरीक्षणं, तद्रूपा, उक्तञ्च--

“ वत्थपत्ताइवत्थूणं, कालदगनिरिक्खणे ।

पमायकरणा जीवो, पडिज्जा भवसागरे ॥ १ ॥ ”

छाया--वस्त्रपात्रादिवस्तूनां, कालद्विकनिरीक्षणो ।

प्रमादकरणाज्जीवः पतेद् भवसागरे ॥ १ ॥ (१) ।

कायोत्सर्गनिपदनशयनस्थानस्य स्थण्डिलानां मार्गस्य विहारक्षेत्रस्य च या

एवं शिर ये सब नष्ट हो जाते हैं, यहां तक कि उनका नाम भी संसार में लेना बुरा माना जाता है ।

छद्मा प्रमाद प्रतिलेखना प्रमाद है प्रतिलेखना नाम पडिलेहणा का है यह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से चार प्रकार की है दोनों समय वस्त्र पात्रादि उपकरणों की पडिलेहणा करना यह द्रव्य प्रतिलेखना चक्षु से अच्छी तरह से देखने रूप होती है । कहा भी है

“ वत्थपत्ताइवत्थूणं ” इत्यादि ।

जो जीव दोनों काल वस्त्र पात्रादि वस्तुओं के पडिलेहणा करने में प्रमादी होते हैं वे इस संसार में ही परिभ्रमण करते रहते हैं कायोत्सर्ग करने के स्थानका बैठने के स्थान का शयन करने के स्थान का स्थण्डिल जाने के रास्ते का और विहार क्षेत्र का जो अच्छी तरह

धुद्धि नष्ट થઈ જાય છે એટલું જ નહીં પણ સંસારમાં તેનું નામ લેવું એ પણ પાપ ગણાય છે.

હવે પ્રતિલેખના પ્રમાદનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—પ્રતિલેખના એટલે પડિલેહણા અથવા વસ્ત્રાદિની પલેવણા તે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવના લેહથી ચાર પ્રકારની છે. બંને સમય વસ્ત્ર, પાત્રાદિની પ્રતિલેખના (પલેવણા) કરવી તેનું નામ દ્રવ્ય પ્રતિલેખના છે. તે દ્રવ્ય પ્રતિલેખના ચક્ષુ વડે સંભાળ પૂર્વક નિરીક્ષણ કરવા રૂપ હોય છે. કહ્યું પણ છે કે :

“ વત્થપત્તાइवत्थूणं ” ઇત્યાદિ—

જે જીવ બંને કાળ વસ્ત્ર, પાત્રાદિની પ્રતિલેખના કરવામાં પ્રમાદ કરે છે, તે આ સંસાર સાગરમાં પરિભ્રમણ કર્યા જ કરે છે. કાયોત્સર્ગ કરવાના સ્થાનનું, બેસવાના સ્થાનનું, શયન કરવાના સ્થાનનું, સ્થંડિલ જવાના (ઠંડે જવાના) સ્થાનનું અને વિહાર ક્ષેત્રનું જે સારી રીતે નિરીક્ષણ કરવું

કપાયપ્રમાદઃ—કપાયાઃ=ક્રોધાદયઃ, તદ્રૂપસ્તજ્જનિતો વા પ્રમાદઃ ।
 ઉક્તં ચ—“ ચિત્તરત્નમસંકિલ્ષ્ટમાન્તરં ધનમુચ્યતે ।

યસ્ય તન્મુપિતં દોષૈ (ક્રોધાદિરૂપૈ) સ્તસ્ય શિષ્ટા (અવશિષ્ટાઃ) વિપ-
 ત્તયઃ ઇતિ ॥ ૪ ॥

તથા—ઘૂતપ્રમાદઃ—ઘૂતં—પ્રસિદ્ધ, તદ્રૂપસ્તજ્જનિતો વા પ્રમાદઃ ।
 ઉક્તંચાત્ર—“ ઘૂતાસક્તસ્ય સચ્ચિત્તં, ધન કામાઃ સુચેષ્ટિતમ્ ।
 નશ્યન્ત્યેવ પરં શીર્ષ, નામાપિ ચ વિનશ્યતિ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ૫ ॥

કપાય રૂપ પ્રમાદ કપાય પ્રમાદ હૈ અથવા ક્રોધાદિ કપાયોં સે
 જન્ય જો પ્રમાદ હૈ વહ કપાય પ્રમાદ હૈ । કહા ઢી હૈ—

“ ચિત્તરત્નમસંકિલ્ષ્ટ ” ઇત્યાદિ ।

કપાયોં સે અસંકિલ્ષ્ટ જો ચિત્ત હૈ વહી ંક આન્તર રત્ન કહાં
 ગયા હૈ । જિસકા યહ ચિત્ત રૂપી રત્ન કપાય રૂપ દોષોં સે ચુરાલિયા
 ગયા હૈ ઁસકે પોસ ઢુનિયા અર કી વિપત્તિયાં આતી રહતી હૈં ંર
 ઁસે ઢુઃખિત ક્રિયા કરતી હૈં ।

ઘૂન જુવા ઁલના રૂપ જો પ્રમાદ હૈ વહ ઘૂનપ્રમાદ હૈ અથવા ઘૂત
 સે જન્ય જો પ્રમાદ હૈ વહ ઘૂન પ્રમાદ હૈ । કહા ઢી હૈ—ઘૂતાસક્તસ્ય
 સચ્ચિત્તં ” ઇત્યાદિ ।

ઘૂતક્રીડા મેં આસક્ત હું પ્રાણી કા ચિત્ત, ધન, કામ શુભચેષ્ટાયેં

હવે કપાય પ્રમાદનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે—કપાય રૂપ જે
 પ્રમાદ છે તેનું નામ કપાય પ્રમાદ છે. અથવા ક્રોધાદિ કપાયોથી જનિત જે
 પ્રમાદ છે તેનું નામ કપાય પ્રમાદ છે. કહું પણ છે કે—

“ ચિત્તરત્નમસંકિલ્ષ્ટ ” ઇત્યાદિ—

કપાયોથી અસંકિલ્ષ્ટ (સ્કિલ્ષ્ટ) જે ચિત્ત છે, તેને જ ંક આન્તર રત્ન
 રૂપ કહું છે. જેતુ તે ચિત્ત રૂપી રત્ન કપાય રૂપ દોષો દ્વારા ચોરી લેવામાં
 અથવા ખૂંચવી લેવામાં આવ્યું છે ંવા ંવની પાસે ઢુનિયાલરની વિપત્તિઓ
 આવતી રહે છે અને તેને ઢુઃખિત કર્યા કરે છે.

હવે ઘૂતપ્રમાદનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવે છે. ઘૂત (જુગાર) રમવા
 રૂપ જે પ્રમાદ છે તેનું નામ ઘૂતપ્રમાદ છે. અથવા ઘૂતથી જન્ય જે પ્રમાદ
 છે તેનું નામ ઘૂતપ્રમાદ છે. કહું પણ છે કે :

“ ઘૂતાસક્તસ્ય સચ્ચિત્તં ” ઇત્યાદિ—

ઘૂતક્રિયામાં આસક્ત થયેલા ંવનું ચિત્ત, ધન, કામ—શુભચેષ્ટાઓ અને

तथा-प्रतिलेखनाप्रमादः-प्रतिलेखना=प्रत्युपेक्षणा, सा च द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदाश्चतुर्विधा । तत्र द्रव्यप्रत्युपेक्षणा-वस्त्रपात्राद्युपकरणानामुभयकालम्, यच्चक्षुषानिरीक्षणं, तद्रूपा, उक्तञ्च--

“ वत्थपत्ताइवत्थूणं, कालद्गनिरिक्खणे ।

पमायकरणा जीवो, पडिज्जा भवसागरे ॥ १ ॥ ”

छाया--वस्त्रपात्रादिवस्तूनां, कालद्विकनिरीक्षणो ।

प्रमादकरणाज्जीवः पतेद् भवसागरे ॥ १ ॥ (१) ।

कायोत्सर्गनिपदनशयनस्थानस्य स्थण्डिलानां मार्गस्य विहारक्षेत्रस्य च या

एवं शिर ये सब नष्ट हो जाते हैं, यहाँ तक कि उनका नाम भी संसार में लेना बुरा माना जाता है ।

छद्मा प्रमाद प्रतिलेखना प्रमाद है प्रतिलेखना नाम पडिलेहणा का है यह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से चार प्रकार की है दोनों समय वस्त्र पात्रादि उपकरणों की पडिलेहणा करना यह द्रव्य प्रतिलेखना चक्षु से अच्छी तरह से देखने रूप होती है । कहा भी है

“ वत्थपत्ताइ वत्थूणं ” इत्यादि ।

जो जीव दोनों काल वस्त्र पात्रादि वस्तुओं के पडिलेहणा करने में प्रमादी होते हैं वे इस संसार में ही परिभ्रमण करते रहते हैं कायोत्सर्ग करने के स्थानका बैठने के स्थान का शयन करने के स्थान का स्थण्डिल जाने के रास्ते का और विहार क्षेत्र का जो अच्छी तरह

धुद्धि नष्ट थर्ध लय छे अट्ठुं न नडीं पणु संसारमां तेनुं नाम लेवुं अे पणु पाप गणाय छे.

इवे प्रतिलेखना प्रमादनुं स्वरूप प्रकट करवामां आवे छे--प्रतिलेखना अट्ठे पडिलेहणा अथवा वस्त्रादिनी पलेवणु ते द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावना लेहथी आर प्रकारनी छे. अन्ने समय वस्त्र, पात्रादिनी प्रतिलेखना (पलेवणु) करवी तेनुं नाम द्रव्य प्रतिलेखना छे. ते द्रव्य प्रतिलेखना अक्षु वडे संलाण पूर्वक निरीक्षणु करवा रूप छे। छे। पणु छे के :

“ वत्थपत्ताइवत्थूणं ” इत्यादि--

जे एव अन्ने काल वस्त्र, पात्रादिनी प्रतिलेखना करवामां प्रमाद करे छे, ते आ संसार सागरमा परिभ्रमणु कर्यां करे छे. कायोत्सर्ग करवाना स्थाननुं, भेसवाना स्थाननुं, शयन करवाना स्थाननुं, स्थण्डिल नवाना (ठेदे नवाना) रस्तानुं अने विहार क्षेत्रनुं जे सारी रीते निरीक्षणु करवुं

નિરીક્ષણા સા ક્ષેત્રપ્રત્યુપેક્ષણા (૨) । યા ચ કાલવિશેષપર્યાલોચના સા કાલપ્રત્યુ-
પેક્ષણા (૩) । યા ચ પુનઃ ધર્મજાગરિકાદિરૂપા સા ભાવપ્રત્યુપેક્ષણા (૪) ॥
ઉક્તં ચ--

“ કિં કયં કિંવા સેસં, કિં કરણિજ્ઞં તવં ચ ન કરેમિ ? ।

પુત્રાવરત્તકાલે, જાગરઓ ભાવપલિલેહા ॥ ૧ ॥

છાયા--કિં કૃતં કિંવા શેષ કિંકરણીયં તપશ્ચ ન કરોમિ ? ।

પૂર્વાપરરાત્રકાલે જાગરકો ભાવપતિલેહા ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

તત્ર-પ્રત્યુપેક્ષણાયાં યઃ પ્રમાદઃ=શિથિલતા જિનાજ્ઞાતિક્રમો વા સ પ્રત્યુપેક્ષ-
ણાપ્રમાદઃ ॥ ૬ ॥ ઇતિ । અનેન દશવિધસામાચારીલક્ષણેષુ પ્રમાર્જનભિક્ષાચ-
ર્યાદિષુ ઇચ્છાકારમિથ્યાકારાદિષુ યઃ પ્રમાદઃ સોઽપિ ગૃહીતઃ, પ્રત્યુપેક્ષણાયાઃ

સે નિરીક્ષણ કરના હૈ વહ ક્ષેત્ર પ્રત્યુપેક્ષણા (પલિલેહણા) હૈ ૨ જો
કાલ વિશેષ કી વિચારણા હૈ વહ કાલ પ્રત્યુપેક્ષણા હૈ ૩ જો ધર્મ કે
નિમિત્ત જાગરણ આદિ રૂપ પ્રત્યુપેક્ષણા (પલિલેહણા) હૈ વહ ભાવ
પ્રત્યુપેક્ષણા (પલિલેહણા) હૈ ૪ કહા ઓહૈ--“કિં કય કિં વા સેસં”હત્યાદિ ।

મૈને અબી તક વ્યા કિયા હૈ અથ ઓર વાકી સુજ્ઞે વ્યા કરના
હૈ મૈ તપ નહીં કરતા હૂં હસ પ્રકાર કી જો પૂર્વાપર-રાત્રકાલ મેં વિચા-
રણા હૈ વહ ભાવપતિલેહા હૈ । હસ પ્રત્યુપેક્ષણા મેં જો પ્રમાદ હૈ
શિથિલતા હૈ અથવા જિનેન્દ્ર ભગવાન કી આજ્ઞા કા અતિક્રમ કરના
હૈ વહ પ્રત્યુપેક્ષણા પ્રમાદ હૈ ॥ ૬ ॥ હસ કથન સે દશ પ્રકાર કી સામા-
ચારી રૂપ જો પ્રમાર્જન ભિક્ષાચર્યા આદિ હૈં એવં ઇચ્છાકાર મિથ્યા-
કાર આદિકોં સેં જો પ્રમાદ હૈ વહ ગૃહીત હો ગયા હૈ । ક્યોંકિ પ્રત્યુ-

તેનું નામ ક્ષેત્ર પ્રત્યુપેક્ષણા (ક્ષેત્ર પડિલેહણા) છે. કાળવિશેષની જે વિચા-
રણા છે તેનું નામ કાળ પ્રત્યુપેક્ષણા છે. ધર્મને નિમિત્તે જે જાગરણ આદિ
રૂપ પ્રત્યુપેક્ષણા (પડિલેહણા) છે તેનું નામ ભાવ પ્રત્યુપેક્ષણા (પડિલેહણા)
છે. કહું પણ છે કે : “ કિં કય કિં વા સેસ ” ઇત્યાદિ--

“ મેં હજી સુધી શું કર્યું અને હવે મારે શું કરવાનું બાકી છે ? હું
તપ તો કરતો નથી, મારું શું થશે ? ” આ પ્રકારની પૂર્વાપર રાત્રિકાળમાં
જે વિચારણા આવે છે તેનું નામ ભાવ પ્રતિલેખના છે. આ પ્રત્યુપેક્ષણામાં જે
પ્રમાદ છે-શિથિલતા છે, અથવા જિનેન્દ્ર ભગવાનની આજ્ઞાનું જે ઉલ્લંઘન
થાય છે તેનું નામ જ પ્રત્યુપેક્ષણા પ્રમાદ છે આ કથન દ્વારા દસ પ્રકારની
સમાચારી રૂપ જે પ્રમાર્જન, ભિક્ષાચર્યા આદિ છે, તેમાં જે પ્રમાદ છે તે
પ્રમાદ તથા ઇચ્છાકાર મિથ્યાકાર આદિકોમાં જે પ્રમાદ છે, તે ગૃહીત થઈ

सामाचारीत्वात् प्रमार्जनादीनां सामाचार्यन्तर्गतत्वेन प्रत्युपेक्षणाप्रमादेन प्रमार्जनादिप्रमादस्यापि संग्रहणादिति ॥ सू० २९ ॥

अनन्तरसूत्रे प्रत्युपेक्षणाप्रमाद उक्तः, सम्प्रति प्रमादविशिष्टा तामेव प्रत्युपेक्षणांमाह--

मूलम्—छविहा पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, तं जहा—आरभडा १ सम्मदा २ वजेयवा य मोसली ३ तइया । प्फोडणा ४ चउत्थी वक्खित्ता ५ वेइया ६ छट्ठी ॥ १ ॥ छविहा अप्पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, तं जहा—अणच्चाविणं १ अवलियं २ अणाणुबंधिं ३ अमोसलिं ४ चैव । छप्पुरिमा नवखोटा ५ पाणीपाणविसोहणं ६ ॥ २ ॥ सू० ३० ॥

छाया—पडविधा प्रमादप्रतिलेखना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—आरभटा १ सम्मर्दा २ वर्जयितव्या च मोसली ३ तृतीया । प्रस्फोटना ४ चतुर्थी व्याक्षिप्ता ५ वेदिका ६ पष्ठी ॥ १ ॥ पडविधा अप्रमादप्रतिलेखना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अनर्तितम् १ अवलिप्तम् २ अननुबन्धि ३ अमोशल ४ चैव । पट्टपुरिमा नवखोटाः ५ पाणीपाणविशोधनम् ६ ॥ २ ॥ सू० ३० ॥

टीका—‘ छविहा पमायपडिलेहणा ’ इत्यादि—

प्रमादप्रतिलेखना—प्रमाद=सदुपयोगाभावः, तत्पूर्विका प्रतिलेखना पडपेक्षणा सामाचारी रूप होती है इससे प्रमार्जना आदि ये सब सामाचारी के अन्तर्गत हो जाने के कारण प्रत्युपेक्षणा प्रमाद से प्रमार्जनादि प्रमाद का भी ग्रहण हो जाता है ॥ सू० २९ ॥

इस ऊपर के सूत्र में प्रत्युपेक्षणा (पडिलेहणा) प्रमाद कहा सो अब सूत्रकार प्रमादविशिष्ट उसी प्रत्युपेक्षणा (पडिलेहणा) का कथन करते हैं—“छविहा पमाय पडिलेहणा पण्णत्ता” इत्यादि सूत्र ३० ॥

गये छे, कारणु के प्रत्युपेक्षणा सामाचारी इप डोय छे प्रमार्जना आदिने सामाचारीमां समावेश थई ज्वाने कारणु प्रत्युपेक्षणा प्रमादमां प्रमार्जनादि प्रमादने पणु समावेश थई नय छे ॥ सू. २६ ॥

आगला सूत्रमां प्रत्युपेक्षणा (पडिलेहणा) प्रमादनी प्रज्ञप्ता करवामां आवी. डवे सूत्रकार प्रमाद विशेष इप ओ ज प्रत्युपेक्षणा (पडिलेहणा) ना छ प्रकारनुं कथन करे छे. “ छविहा पमायपडिलेहणा पण्णत्ता ” इत्यादि—

વિધા=પટ્ટપ્રકારા પ્રજ્ઞા । ષ્ઙ્વિધત્વમેવાહ-તદ્વથા-' આરભટે ' ત્યાદિ ગાથયા । તત્ર-આરભટા-વિપરીતકરણરૂપા પ્રત્યુપેક્ષણા, અથત્રા-ત્વરિતં સર્વમ્ આરભમાણસ્ય વા પ્રત્યુપેક્ષણા સા, યદ્વા-એકસ્મિન્ વસ્ત્રેઽર્ધપ્રત્યુપેક્ષિતે એવ યદધરાપરવસ્ત્રસ્ય ગ્રહણં સા, ઇયં વર્જયિતવ્યા । ૧ । તથા-સમ્મર્દા-યત્ર વસ્ત્રસ્ય મધ્યભાગે સંકુચિતાઃ કોના ભવન્તિ સા, અથવા યત્ર પ્રત્યુપેક્ષણીયોપધેસ્વરિ સમુવચિચ્ય પ્રત્યુ-

પ્રમાદ પ્રતિલેખના ૬ પ્રકાર કી કહી ગઈ હૈ-જૈસે-આરભટા ૧ સમ્મર્દા ૨ યોશલી ૩ પ્રસ્ફોટના ૪ વ્યાક્ષિપ્તા ૫ ઓર વેદિકા યહ પહિલે પ્રકટ કર દિયા હૈ કિ ઉપયોગ કા જો અભાવ હૈ વહ પ્રમાદ હૈ ઇસ પ્રમાદ પૂર્વક જો પ્રતિલેખના હૈ વહ પ્રમાદ પ્રતિલેખના હૈ યહ પ્રમાદ પ્રતિલેખના આરભટા આદિ કે ભેદ સે જો ૬ પ્રકાર કી કહી ગઈ હૈ સો ઉસકા ભાવ ઇસ પ્રકાર સે હૈ જો પ્રત્યુપેક્ષણા વિપરીત રૂપ સે કી જાતી હૈ વહ આરભટા પ્રત્યુપેક્ષણા હૈ અથવા સ્વસ્તકાર્ય કો શીઘ્ર સે કરને વાલે કી જો પ્રત્યુપેક્ષણા હૈ વહ અથવા એક વસ્ત્ર કો આઘા પ્રત્યુપેક્ષિત કર લેને પર જો દુસરે વસ્ત્ર કો ગ્રહણ કર લેતા હૈ વહ આરભટા પ્રત્યુપેક્ષણા હૈ એસી યહ પ્રત્યુપેક્ષણા વર્જનીય હૈ તથા સંમર્દા-જિસ વસ્ત્ર કે મધ્ય ભાગ મેં સંકુચિત કોને હોતે હૈં એસે વસ્ત્ર કી પ્રત્યુપેક્ષણા સંમર્દા પ્રત્યુપેક્ષણા હૈ અથવા પ્રત્યુપેક્ષણીય (અપ્રતિલેખિત) ઉપધિ કે ડપર વૈઠકર જો પ્રત્યુપેક્ષણા (પડિલેહણા)

પ્રમાદ પ્રતિલેખના (પલેવણા) છ પ્રકારની કહી છે. તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) આરભટા, (૨) સમ્મર્દા, (૩) યોશલી, (૪) પ્રસ્ફોટના, (૫) વ્યાક્ષિપ્તા અને (૬) વેદિકા.

ઉપયોગનો જે અભાવ છે તેનું નામ જ પ્રમાદ છે. તે પ્રમાદ પૂર્વકની જે પ્રતિલેખના થાય છે તેને પ્રમાદ પ્રતિલેખના કહે છે તેના આરભટા પ્રતિલેખના આદિ ૬ ભેદ કહ્યા છે, તેનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

આરભટા પ્રતિલેખના—જે પ્રત્યુપેક્ષણ વિપરીત રૂપે કરવામાં આવે છે, તેને આરભટા પ્રત્યુપેક્ષણ કહે છે. અથવા ઘણી જ ઉતાવળથી જે પલેવણા થાય છે તેને આરભટા પ્રત્યુપેક્ષણા કહે છે એક વસ્ત્રની પૂરેપૂરી પ્રતિલેખના કર્યા પહેલાં બીજા વસ્ત્રની પ્રતિલેખના શરૂ કરનારની પ્રતિલેખના આ પ્રકારની ગણાય છે. આ પ્રકારની પલેવણા વર્જનીય છે.

સંમર્દા પ્રત્યુપેક્ષણા—જે વસ્ત્રના મધ્યભાગમાં સંકુચિત ખૂણા હોય છે તે વસ્ત્રની પ્રત્યુપેક્ષણાને સંમર્દા પ્રત્યુપેક્ષણા કહે છે. અથવા અપ્રતિલેખિત

पेक्ष्यते सा सम्मर्दा । इयमपि वर्जयितव्या । एवमग्रेऽपि ' वर्जयितव्ये ' ति योजनीयम् ॥ २ ॥ तथा तृतीया प्रत्युपेक्षणा—मोशली, प्रत्युपेक्षमाणं यद् वस्त्रं तस्य भागेन यत् तिर्यग्ध्वंमधो वा संघटनं सा मोशली बोध्येति ॥ ३ ॥ तथा—प्रस्फोटना—धूलिधूसरितवस्त्रस्येव यत्र प्रत्युपेक्षणीयवस्त्रस्य प्रकर्षेण धूननं सा चतुर्थी । ४ । तथा—व्याक्षिप्ता वस्त्रं प्रत्युपेक्ष्य नागदन्तादौ तस्य वस्त्रस्य व्याक्षेपणं यत्र क्रियते सा । ५ ॥ तथा—वेदिका पठ्ठी प्रत्युपेक्षणा भवति । इयं हि ऊर्ध्ववेदिका १ अधोवेदिका २ तिर्यग्वेदिका ३ द्विधावेदिका ४ एकतोवेदिके ५ ति पञ्चप्रकी जाती है वह सम्मर्दा प्रत्युपेक्षणा है २ यह सम्मर्दा प्रत्युपेक्षणा भी वर्जनीय है । मोशली-प्रत्युपेक्षणीय (प्रत्युपेक्षा करने योग्य) इधर उधर संघटाकरते हुवे जो वस्त्र है उस वस्त्र के भाग से जो तिर्यग् उर्ध्व अथवा अधः संघटन है वह मोशली प्रत्युपेक्षणा है यह मोशली प्रत्युपेक्षणा भी वर्जनीय है । प्रस्फोटना—धूलि से धूसरित हुए वस्त्र की तरह प्रत्युपेक्षणीय वस्त्र का जो जोर से छत्रकारना है वह प्रस्फोटना प्रत्युपेक्षणा है यह प्रत्युपेक्षणा भी वर्जनीय है । वस्त्र की प्रत्युपेक्षा करके जो नागदन्त आदि पर—खूंटी आदि के ऊपर उस वस्त्र का टांग देना जिस प्रत्युपेक्षणा में होता है ऐसी वह प्रत्युपेक्षणा व्याक्षिप्ता प्रत्युपेक्षणा है यह प्रत्युपेक्षणा भी वर्जनीय है । छट्ठी प्रत्युपेक्षणा वेदिका है यह वेदिका ऊर्ध्ववेदिका १ अधोवेदिका २ तिर्यग्वेदिका ३ द्विधावेदिका ४ और एकतोवेदिका के भेद से ५ प्रकार की है इनमें दोनों

उपधिनी उपर जेसीने जे प्रत्युपेक्षणा (पदेवणा) कराय छे तेतुं नाम सम्मर्दा प्रत्युपेक्षणा कडे छे. आ प्रकारनी प्रत्युपेक्षणा पणु वर्जनीय छे

मोशली प्रत्युपेक्षणा—प्रत्युपेक्षणीय जे वस्त्र छे, ते वस्त्रना भाग वडे ते तिर्यग्, उर्ध्व अथवा अध संघटन छे, तेतुं नाम मोशली प्रत्युपेक्षणा छे. ते मोशली प्रत्युपेक्षणा पणु वर्जनीय छे.

प्रस्फोटना प्रत्युपेक्षणा—धूणवाणा वस्त्रने जेम अटकारवामां (अंगेरवामां) आवे छे तेम प्रत्युपेक्षणीय वस्त्रने जेरथी जे अटकारवामां आवे छे तेतुं नाम प्रस्फोटना प्रत्युपेक्षणा छे. ते प्रत्युपेक्षणा पणु वर्जनीय छे.

व्याक्षिप्ता प्रत्युपेक्षणा—वस्त्रनी प्रत्युपेक्षणा करीने वस्त्रने भाँटी आदि पर टांगी देवातुं कार्य जे प्रत्युपेक्षणांमां थाय छे, ते प्रत्युपेक्षणांने व्याक्षिप्ता प्रत्युपेक्षणा कडे छे ते प्रकारनी प्रत्युपेक्षणा पणु वर्जनीय छे.

वेदिका प्रत्युपेक्षणा—वेदिका प्रत्युपेक्षणांना नीचे प्रमाणे पाय प्रकार पडे छे—(१) ऊर्ध्व वेदिका, (२) अधोवेदिका, (३) तिर्यग् वेदिका, (४) द्विधा वेदिका अने (५) एकतो वेदिका.

कारा । तत्र-जानुनोरपरि हस्तौ निधाय यत्र प्रत्युपेक्षणं सा ऊर्ध्ववेदिका १ । यत्र तु जानुनोरधो हस्तौ निवेश्य प्रत्युपेक्षणं सा अधोवेदिका २ । यत्र पुनः जानुनोः पार्श्वभागे हस्तौ निधाय प्रत्युपेक्षणं सा तिर्यग्वेदिका ३ । यत्र तु जानुद्वयं बाहोर्मध्ये कृत्वा प्रत्युपेक्षणं सा द्विधावेदिका ४ । तथा-यत्र एकं जानुबाहोर्मध्ये कृत्वा प्रत्युपेक्षणं सा एकतोवेदिकेति ५ । एताः सर्वा अपि सदोषा अतो वर्ज्याः ॥१॥

इत्थं प्रमादप्रतिलेखनायाः षड्विधत्वमुक्त्वा सम्प्रति तद्विपरीतायाः अप्रमाद-प्रतिलेखनायाः षड्विधत्वमाह—‘ छव्विहा अप्पमायपडिलेहणा ’ इत्यादि । अप्रमादप्रतिलेखना-अप्रमादपूर्विका या प्रतिलेखना सा षड्विधा प्रज्ञप्ता, षड्विधत्व-

घुटनों के ऊपर हाथों को रखकर जो प्रत्युपेक्षणा की जाती है वह ऊर्ध्ववेदिका है १ जो दोनों घुटनों के नीचे हाथों को रखकर प्रत्युपेक्षणा की जाती है वह अधोवेदिका है २ जो दोनों घुटनों के पार्श्व-भागों में हाथों को रखकर प्रत्युपेक्षणा की जाती है वह तिर्यग्वेदिका है ३ दोनों हाथों के बीच में दोनों घुटनों को करके जो प्रत्युपेक्षणा की जाती है वह द्विधावेदिका है ४ जो एक जानु को दोनों हाथों के मध्य में करके प्रत्युपेक्षणा वह एकतो वेदिका है ५ यहाँ तक की जब प्रत्युपेक्षणाएँ सदोष होती हैं अतः वे वर्जनीय कही गई हैं । इस प्रकार से प्रमाद प्रतिलेखना में षट् प्रकारता कह कर अब सूत्रकार उससे विपरीत जो अप्रमाद प्रतिलेखना है उसमें षट् विधता का कथन करते हैं—‘ छव्विहा अप्पमायपडिलेहणा ’ इत्यादि—अप्रमाद पूर्वक जो प्रति-

अन्ने धुं'टण्णेनी ङपर ङाथ राभीने ँ प्रत्युपेक्षणा कराय छे तेने ङर्ध्ववेदिका प्रत्युपेक्षणा कडे छे. अन्ने धुं'टण्णेनी नीचे ङाथेने राभीने ँ प्रत्युपेक्षणा कराय छे तेने अधोवेदिका प्रत्युपेक्षणा कडे छे. अन्ने ङनुअो (ङा'धो) नी ङानुअोमां ङाथ राभीने ँ प्रत्युपेक्षणा कराय छे तेनु' नाम तिर्यग् वेदिका प्रत्युपेक्षणा छे. अन्ने ङाथनी वर्ये अन्ने ङनुअोने राभीने ँ प्रत्युपेक्षणा कराय छे तेनु' नाम द्विधावेदिका प्रत्युपेक्षणा छे. अके ङनुने (ङा'धने) अन्ने ङाथनी वर्ये राभीने ँ प्रत्युपेक्षणा कराय छे तेनु' नाम अकेतोवेदिका प्रत्युपेक्षणा छे. आ ङधी प्रत्युपेक्षणाअो सदोष ङोवाने दीधे वर्यनीय छे.

आ प्रमाअे प्रमाद प्रतिलेखनाना छ प्रकाशेनुं निरूपण करीने हवे सूत्रकार अप्रमाद प्रतिलेखनाना छ प्रकाशेनुं निरूपण करे छे.

“ छव्विहा अप्पमायपडिलेहणा ” इत्यादि—

મેવાહ—‘ તદ્વધા—અનર્તિતમ્ ’ इत्यादि—गाथया । तत्र—अनर्तितम्—यत्र प्रत्युपेक्ष-
णायां तत्कर्त्रा वस्त्रम् शरीरं वा न नश्यते तत् ॥ १ ॥ तथा—अवलितम्—यत्र प्रत्युपेक्षणे
वस्त्रं शरीरं च न वलितं=संकुचितं तत् ॥ २ ॥ तथा—अननुबन्धि—अनुबन्धः=
सातत्यम्, तच्चेह प्रस्फोटनस्य ग्राह्यम्, न अनुबन्धः, अननुबन्धः सोऽस्ति यस्मिं
स्तत्, सातत्यप्रस्फोटनाभावयुक्त प्रत्युपेक्षणमित्यर्थः ॥ ३ ॥ तथा—अमौशलि—

लेखना है वह अप्रमाद प्रतिलेखना है यह प्रतिलेखना भी ६ प्रकार
की कही गयी है जैसे—अनर्तित १ अवलित २ अननुबन्धि ३ अमो-
शलि ४ षट् पुरिमा नवखोट ५ और प्राणि प्राणविशोधन ६ जिस
प्रत्युपेक्षणा में प्रत्युपेक्षणा करने वाले के द्वारा वस्त्र अथवा शरीर नचाया
नहीं जाता है ऐसी वह अनर्तित अप्रमाद प्रतिलेखना है जिस प्रत्यु-
पेक्षणा में वस्त्र और शरीर दोनों संकुचित नहीं किये जाते हैं ऐसी
वह अवलित अप्रमाद प्रतिलेखना है जिस प्रत्युपेक्षणा में निरन्तर
प्रस्फोटन का अभाव रहता है वह प्रत्युपेक्षणा अननुबन्धी प्रत्युपेक्षणा
है यहाँ पर प्रस्फोटन का निरन्तरपना ग्रहण हुआ है यह प्रस्फोटन का
सातत्य रूप अनुबन्ध जिस में प्रत्युपेक्षण में नहीं होता है उसी प्रत्यु-
पेक्षण को अननुबन्धी अप्रमाद प्रतिलेखना कहा गया है ३ पूर्वोक्त लक्षण

अप्रमादपूर्वक ७ प्रतिलेखना કરવામાં આવે છે તેનું નામ અપ્રમાદ
પ્રતિલેખના છે તેના નીચે પ્રમાણે છ પ્રકારો છે—(૧) અનર્તિત, (૨) અવ-
લિત, (૩) અનનુબન્ધિ, (૪) અમોશલિ, (૫) ષટ્ પુરિમા નવ ખોટ અને
(૬) પ્રાણી પ્રાણવિશોધન.

અનર્તિત અપ્રમાદ પ્રતિલેખના—જે પ્રત્યુપેક્ષણમાં પ્રત્યુપેક્ષણ કરનાર
બ્યક્તિ દ્વારા વસ્ત્ર અથવા શરીરને નચાવવામાં (ઠોલાવવામાં) આવતું
નથી તે પ્રત્યુપેક્ષણને અનર્તિત અપ્રમાદ પ્રતિલેખના કહે છે.

અવલિત અપ્રમાદ પ્રતિલેખના—જે પ્રત્યુપેક્ષણમાં વસ્ત્ર અને શરીર,
એ બંનેને સંકુચિત કરવામાં આવતા નથી એવી પ્રતિલેખનાને અવલિત
અપ્રમાદ પ્રતિલેખના કહે છે.

અનનુબન્ધી પ્રત્યુપેક્ષણ—જે પ્રત્યુપેક્ષણમાં નિરન્તર પ્રસ્ફોટન (ઝટ-
કારવાની ક્રિયા) નો અભાવ રહે છે તે પ્રત્યુપેક્ષણને અનનુબન્ધી પ્રત્યુપેક્ષણ
કહે છે. અહીં પ્રસ્ફોટનનું સાતત્ય ગ્રહણ થયું છે. તે પ્રસ્ફોટનના સાતત્ય રૂપ
અનુબન્ધનો જે પ્રત્યુપેક્ષણમાં અભાવ હોય છે તે પ્રત્યુપેક્ષણને અનનુબન્ધી
અપ્રમાદ પ્રતિલેખના કહી છે.

મૌશલી=પૂર્વોક્તલક્ષણા ન વિદ્યતે યત્ર તત્ ॥ ૪ ॥ તથા-પટ્ટ પુરિમા નવ સ્વોડાઃ કર્તવ્યાઃ । અયં ભાવઃ-વસ્ત્રં પ્રસાર્ય તસ્ય સંમુખભાગમ્ ઊર્ધ્વમધ્યાધશ્ચક્ષુપા વિલોક્ય ત્રયઃ પુરિમાઃ=પ્રસ્ફોટાઃ કર્તવ્યાઃ, તતરતત્ પરાવર્ત્ય તથૈવ ચક્ષુપા વિલોક્ય ત્રયઃ પુરિમાઃ કર્તવ્યા ઇતિ પટ્ટ પુરિમાઃ । તથા-નવ સ્વોડાઃ-કૃતભાગ-ત્રયસ્ય પ્રત્યુપેક્ષ્યમાણવસ્ત્રસ્ય પ્રથમભાગં ત્રારત્રયં જીવં યતનયા પ્રમાર્જ્ય યતનયા ત્રયઃ પ્રસ્ફોટાઃ કર્તવ્યાઃ, તતો મધ્યમાન્તિમભાગયોરપિ તથૈવ ત્રયઃ પ્રસ્ફોટાઃ કર્તવ્યા ઇતિ નવ સ્વોડાઃ । ચક્ષુપા નિરીક્ષ્ય યત્પ્રસ્ફોટનં તત્ પુરિમશ્ચ્યુચ્યતે,

વાલી મોશલી જિસ પ્રત્યુપેક્ષણા મેં નહીં હતી છે એવી વહ પ્રત્યુપેક્ષણા અમૌશલી અપ્રમાદ પ્રતિલેખના છે ૪ વસ્ત્ર કો પસાર કર ઉસકે ઓગે કે ભાગકો ડાંચે મધ્ય ઓર અધોભાગ મેં ઓઁલોં સે અચ્છી તરહ દેઁલકર ત્રીન પુરિમા પ્રસ્ફોટ કરના ચાહિયે હસકે ઘાદ ઉસે ફિર ફેર-કર ઉસી તરહ સે ઓઁલોં સે દેઁલકર ત્રીન પુરિમા કરના ચાહિયે હસ પ્રકાર સે યે ૬ પુરિમા હેં તથા નૌ સ્વોડ હસ પ્રકાર સે હેં-જિસ વસ્ત્રકી પ્રત્યુપેક્ષણા કરની છે એસે વસ્ત્ર કો પહિલે ઉસકી ઘરી કો સંભાલ કર ઓલ લેના ચાહિયે ઓર ઓલ કર સંમુખ ભાગ કી ત્રીન વાર યતના પૂર્વક પ્રમાર્જના કરની ચાહિયે ઓર પ્રમાર્જના કરકે ફિર ત્રીન પ્રસ્ફોટ કરના ચાહિયે હસી પ્રકાર મધ્ય ભાગ ઓર અન્તિમ ભાગ મેં ત્રીન વાર યતના પૂર્વક પ્રમાર્જના કરકે ૩-૩ પ્રસ્ફોટ કરના ચાહિયે હસ પ્રકાર સે યે નૌ સ્વોટ હોતે હેં ચક્ષુ સે દેઁલકર જો પ્રસ્ફોટન ક્રિયા જાતા છે વહ પુરિમ કહલાતા છે ઓર જો પ્રમાર્જના કે

અમૌશલી અપ્રમાદ પ્રતિલેખના—પૂર્વોક્ત લક્ષણવાળી મૌશલીને જે પ્રત્યુપેક્ષણામાં સદ્ભાવ ડાલે નથી એવી પ્રત્યુપેક્ષણાને અમૌશલી અપ્રમાદ પ્રતિલેખના કહે છે.

૬ પુરિમા નવ ખોટ અપ્રમાદ પ્રતિલેખના—આંખો વડે જોધને જે પ્રસ્ફોટન (અટકારવાની ક્રિયા) કરાય છે, તેને ' પુરિમ ' કહે છે. પ્રમાર્જના કર્યા બાદ જે પ્રસ્ફોટન થાય છે તેને ખોટ કહે છે. આ પ્રકારનું પુરિમ અને ખોટ વચ્ચે અન્તર છે વસ્ત્રને ઉઠેલીને તેના આગલા ભાગનું ઉપર, વચ્ચે અને નીચેના ભાગોમાં આંખો વડે ખારીક નિરીક્ષણ કરીને ત્રણ પુરિમા (ત્રણ પ્રસ્ફોટન) કરવા જોઈએ. ત્યારબાદ તેને ફેરવી નાખીને ફરીથી એ જ પ્રમાણે આંખોથી ખારીક નિરીક્ષણ કરીને ત્રણ પુરિમા કરવા જોઈએ. આ પ્રકારના ૬ પુરિમા સમજવા, નવ ખોટનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—જે વસ્ત્રની

यत्तु प्रमार्जनानन्तरं प्रस्फोटनं तत् खोट इत्युच्यते, इति पुरिमखोटयो र्भेदो बोध्य इति ॥ ५ ॥ तथा-प्राणी-प्राणविशोधना=हस्तस्थितानां प्राणानां=कुन्ध्वा-दिप्राणिनां विशोधना=प्रमार्जना । ६ । इति पट् अप्रमादप्रतिलेखनाः ॥ इति । विस्तरस्तु उत्तराध्ययनसूत्रस्य पड्विंशतितमेऽध्ययने मरुतायां प्रियदर्शिनी टीकायां विलोकनीयः ॥ २ ॥ सू० ३० ॥

प्रमादाप्रमादप्रतिलेखना प्रोक्ता, सा च लेख्याविशेषादेव भवतीति सामान्यतो विशेषश्च लेख्यास्वरूपं परूपयति—

मूलम्—छलेसाओ पणत्ताओ, तं जहा-कणहलेसा जाव सुकलेसा । पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं छलेसाओ पणत्ताओ, तं जहा-कणहलेसा जाव सुकलेसा । एवं मणुस्सदेवाणञ्च । सू० ३१ ।

बाद ही प्रस्फोटन होता है वह खोट कहलाना है इस तरह से पुरिम और खोट में अन्तर है इस प्रकार की जो प्रत्युपेक्षणा है वह पट् पुरिमा और नौ खोट रूप अप्रमाद प्रत्युपेक्षणा है ५ एवं हस्त में रहा हुवा जो कुन्धु आदिक प्राणी है उनकी जो विशोधना है वह “ प्राणिप्राण-विशोधन ” नाम की ६ वीं अप्रमादप्रतिलेखना है इनका विस्तार यदि देखना हो तो मेरे द्वारा कृत उत्तराध्ययन सूत्र के २६ वे अध्ययन की प्रियदर्शिनी टीका देखनी चाहिये ॥ सू० ३० ॥

प्रत्युपेक्षणा (पदेवणा) करवानी छाय तेने पडेला तो संभाणपूर्वक उठेवणुं लेधये. त्यारभाह संभुण लागनी त्रणु वार यतनापूर्वक प्रमार्जना करवी लेधये, अने प्रमार्जना करीने इरी त्रणु प्रस्फोटन करवा लेधये. ये ज प्रमाणे मध्यलागमां अने अन्तिम लागमा त्रणु वार यतनापूर्वक प्रमार्जना करीने त्रणु त्रणु प्रस्फोट करवा लेधये. आ प्रकारे कुल नव जोट धाय छे. आ प्रकारनी जे प्रत्युपेक्षणा छे तेने “ ५२ पुरिमा अने नौ जोट ३५ अप्रमाद प्रत्युपेक्षणा ” कडे छे

प्राणि प्राण विशोधन अप्रमाद प्रतिलेखना—कुन्धु (अंतयो) आत्कि लवेनी जे विशोधना छे तेनुं नाम ‘ प्राणिप्राण विशोधन अप्रमाद प्रतिलेखना ’ छे. उत्तराध्ययन सूत्रना २६ मां अध्ययननी प्रियदर्शिनी टीकांमां आ अप्रमाद प्रतिलेखनानुं विस्तृत विवेचन करवामां आण्यु छे. तो जिजायु पाठकेअे त्यांथी ते वांथी देवानी ललाभणु करवामां आवे छे. ॥ सू. ३० ॥

છાયા-પડ્લેશ્યાઃ પ્રજ્ઞતાઃ, તદ્યથા-કૃષ્ણાલેશ્યા યાવત્ શુક્લલેશ્યાઃ । પશ્ચેન્દ્રિય-
તિર્યગ્યોનિકાનાં પડ્લેશ્યાઃ પ્રજ્ઞતાઃ, તદ્યથા કૃષ્ણલેશ્યા યાવત્ શુક્લલેશ્યાઃ । एवं
मनुष्यदेवानामपि ॥ सू० ३१ ॥

ટીકા—‘ છ લેસાઓ ’ ઇત્યાદિ--

લિશ્યતે=શિલ્ષ્યતે પ્રાણી કર્મણા યામિસ્તાઃ લેશ્યાઃ=કૃષ્ણાદિ દ્રવ્યસા-
ચિવ્યાદાત્મનઃ પરિણામવિશેષાઃ, તદુક્તમ્--

“ કૃષ્ણાદિદ્રવ્યસાચિવ્યાત્, પરિણામો ય આત્મનઃ ।

સ્ફટિકસ્યેવ તત્રાયં, લેશ્યા શબ્દઃ પ્રવર્તતે ॥ ૧ ॥ ” ઇતિ ।

હવ્સ જ્વર કે સૂત્ર મેં જો પ્રમાદ પ્રતિલેખના ઓર અપ્રમાદ પ્રતિલે-
ખના હન્વ પ્રકાર સે દો પ્રતિલેખનાઈં કહીં ગઈં હીં સો યહ લેશ્યા વિશેષ
સે હીં હોતીં હૈં ઇત્થલિયે અવ સૂત્રકાર સામાન્ય ઓર વિશેષરૂપ સે
લેશ્યા કે સ્વરૂપ કી પ્રરૂપણા કરતે હૈં--

“છલેસાઓ પળણત્તાઓ” ઇત્યાદિ સૂત્ર ૩૧ ॥

ટીકાર્થ-જિનકે દ્વારા પ્રાણી કર્મ સે લિપ્ત હોતા હૈં વે લેશ્યાઈં હૈં એસી યે
લેશ્યાઈં ૬ પ્રકાર કી હોતીં હૈં-કૃષ્ણલેશ્યા યાવત્ શુક્લલેશ્યા પશ્ચે-
ન્દ્રિય નિર્યગ્યોનિકોં મેં ૬ લેશ્યાઈં હોતીં હૈં જૈસે-કૃષ્ણલેશ્યા યાવત્
શુક્લલેશ્યા હસીં તરહ કા કથન મનુષ્ય એવં દેવોં કોં ખીં જાનનાં ચાહિયે
કૃષ્ણાદિ દ્રવ્ય કી મહાયના સે આત્મા કે પરિણામ વિશેષ રૂપ
યે લેશ્યાઈં હોતીં હૈં । સોં હીં કહાં હૈં--

“ કૃષ્ણાદિદ્રવ્યસાચિવ્યાત્ ” ઇત્યાદિ ।

જિમ પ્રકારસે જપાયુષ્પ લાલ રંગકે સંસર્ગસે સ્ફટિક ઘણિમેં

ઉપરના સૂત્રમાં પ્રમાદ પ્રતિલેખના અને અપ્રમાદ પ્રતિલેખનાનું મિરૂપણ
કરવામાં આવ્યું. લેશ્યાવિશેષ પર તેનો આધાર હોવાથી હવે સૂત્રકાર
સામાન્ય અને વિશેષ રૂપે લેશ્યાઓના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે.

“ છ લેસાઓ પળણત્તાઓ ” ઇત્યાદિ--

ટીકાર્થ-જેમના દ્વારા જીવ કર્મથી લિપ્ત (આચ્છાદિત) થાય છે, તે લેશ્યાઓ
છે. એવી લેશ્યાઓના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર છે--(૧) કૃષ્ણલેશ્યા, (૨) શુક્લ
લેશ્યા, (૩) કાપોતલેશ્યા, (૪) તેજલેશ્યા, (૫) પદ્મલેશ્યા અને (૬) શુક્લ
લેશ્યા. એ જ પ્રકારનું કથન મનુષ્ય અને દેવોના વિષયમાં પણ સમજવું.
કૃષ્ણાદિ દ્રવ્યની સહાયતાથી જન્ય આત્માના પરિણામ વિશેષ રૂપ આ લેશ્યાઓ
હોય છે કહ્યું પણ છે કે : “ કૃષ્ણાદિદ્રવ્યસાચિવ્યાત્ ” ઇત્યાદિ--

જે પ્રકારે જપાયુષ્પના સંસર્ગથી સ્ફટિકમાં (મણિમાં) તેના આકારનું
પરિણમન થઈ જાય છે, એ જ પ્રમાણે કૃષ્ણાદિ દ્રવ્યના સંસર્ગથી આત્મામાં
એ જ જાતનું જે પરિણમન થાય છે, એ જ લેશ્યા છે.

પશ્ચેન્દ્રિય તિર્યગ્યોમાં અને મનુષ્યોમાં ૬ લેશ્યાઓનો સદ્ભાવ હોય

ताः पट् संख्यकाः प्रज्ञप्ताः । तद्यथा—कृष्णलेङ्ग्या यावत् शुक्ललेङ्ग्या । यावत्पदात्—नीललेङ्ग्या कापोतलेङ्ग्या तेजोलेङ्ग्या पद्मलेङ्ग्या च ग्राह्याः । तथा—पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां मनुष्याणां च प्रत्येकं कृष्णादि षड्लेङ्ग्याः । देवानां तु जात्यपेक्षया षड्लेङ्ग्या बोध्याः । लेङ्ग्या विषये विशेष जिज्ञासुभिरावश्यकमत्रस्य मत्कृता मुनितोषिणी टीकाऽवलोकनीयेति ॥ सू० ३१ ॥

देवप्रस्तावात् सम्प्रति देव सूत्राणि प्राह—

मूलम्—सवक्रस्स णं देविंदस्स देवरत्तो सोमस्स महारत्तो छ अग्गमहिस्सीओ पणत्ताओ । सवक्रस्स णं देविंदस्स देवरत्तो जमस्स महारत्तो छ अग्गमहिस्सीओ पणत्ताओ ॥सू०३२॥

छाया—शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य प अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः । शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य यमस्य महाराजस्य प अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः ॥ सू० ३२ ॥

उसके आकार का परिणाम हो जाता है उसी प्रकार से कृष्णादि द्रव्य के संसर्ग से आत्मा में इसी जाति का जो परिणमन होता है वही लेङ्ग्या है । यहाँ सूत्र में यावत् पद से “ नीललेङ्ग्या, कापोतलेङ्ग्या, तेजोलेङ्ग्या और पद्मलेङ्ग्या ” इन लेङ्ग्याओं का ग्रहण हुआ है । पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनों में और मनुष्यों में प्रत्येक को कृष्णादिक ६ लेङ्ग्याएँ होनी हैं । परन्तु देवों को तो जाति की अपेक्षा से ६ लेङ्ग्याएँ होती हैं । लेङ्ग्या के विषय में विशेष जिज्ञासुओं को आवश्यक सूत्र की मुनितोषिणी टीका जो कि मेरे द्वारा रची गई है देखनी चाहिये ॥ सू० ३१ ॥

देव प्रस्ताव को लेकर अब सूत्रकार देव सूत्रों का कथन करते हैं—

छे. परन्तु देवोमां तो नतिनी अपेक्षाओ ६ लेश्याओ। डोय छे ओट्ते के अमुक देवोमां अमुक लेश्याओनो अने भीन देवोमा अमुक लेश्याओनो सहलाव डोय छे. आवश्यक सूत्रनी मुनितोषिणी ने टीका मारा द्वारा लप्पाध छे तेमां लेश्याओना स्वइपतुं विस्तृत विवेचन करवामां आओयुं छे. ते जिज्ञासु पाठकोओ ते वांछी लेवुं. ॥ सू. ३१ ॥

देवोनी लेश्याओनो आगता सूत्रमां उल्लेख थयो छे ते संबधने अनुलक्षीने डवे सूत्रकार देवविषयक सूत्रानुं कथन करे छे

टीका—‘सकस्स णं’ इत्यादि—

शक्रेन्द्राधीनयोः सोमयमयोः षट् षड् अग्रमहिष्यो वीध्याः ॥ सू० ३२ ॥

मूलम्—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सज्झिमपरिसाए
देव्वाणं छ पलिओवसाइं ठिई पण्णता ॥ सू० ३३ ॥

छाया—ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य मध्यमपरिपदि देवानां षट्
पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ॥ सू० ३३ ॥

टीका—‘ईसाणस्स’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ३३ ॥

मूलम्—छ दिसिकुमारि सहत्तरियाओपण्णत्ताओ, तं जहा--
रूवा १, रूवंता २, सुरूवा ३, रूववई ४, रूवकंता ५, रूव-
पभा ६। छ विज्जुकुमारि सहत्तरियाओ पण्णत्ताओ तं जहा-
आला १, सक्का २, सतेरा ३, सोयामणी ४, इंदा ५, घण-
विज्जुया ६ ॥ सू० ३४ ॥

“सकस्स णं देविंदस्स देवरत्तो सोमस्स” इत्यादि सूत्र ३२ ॥

टीकार्थ—देवेन्द्र देवराज शक्रके सोम महाराज की ६ षट्देवियां कही गई
हैं—इसी तरह देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराज की ६
षट्देवियां कही गई हैं ॥ सू० ३२ ॥

“ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो” इत्यादि सूत्र ३३ ॥

टीकार्थ—देवेन्द्र देवराज ईशानकी मध्यम परिपदामें देवों की ६ पल्योपम
की स्थिति कही गई हैं ॥ सू० ३३ ॥

“सकस्स णं देविंदस्स देवरत्तो सोमस्स” इत्यादि—

टीकार्थ—देवेन्द्र देवराज शक्रना लोकपाल सोम महाराजने ६ षट्शास्त्रीयो कही
छे. ये ७ प्रभाणे देवेन्द्र देवराज शक्रना लोकपाल यम महाराजने षण्ण ६
षट्शास्त्रीयो कही छे. ॥ सू. ३२ ॥

“ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो” इत्यादि—

टीकार्थ—देवेन्द्र देवराज ईशाननी मध्यम परिपदना देवोनी ६ पल्योपमनी
स्थिति कही छे ॥ सू. ३३ ॥

छाया—पद् दिक्कुमारीमहत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—रूपा १ रूपांशा २, सुरूपा ३, रूपवती ४, रूपकान्ता ५, रूपप्रभा ६। पद् विद्युत्कुमारी महत्तरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आला १, शक्रा २, शतेरा ३, सौदामनी ४, इन्द्रा ५, घनविद्युत् ६ ॥ सू० ३४ ॥

टीका—‘ छ दिसिकुमारी ’ इत्यादि—

दिक्कुमारी महत्तरिकाः-दिक्कुमार्यः=दिक्कुमार भवनपतिदेव विशेष जातीयदेव्यः, ताश्च महत्तरिकाः=प्रधानतमाश्च तास्ताथोक्ताः, ताश्च रूपा सुरूपादिभेदैः पद्-संख्यका बोध्याः । तथा-विद्युत्कुमारी महत्तरिका-विद्युत्कुमार भवनपति देव विशेषजातीय प्रधानतया देव्योऽपि ‘ आलाशक्रा ’ दिभेदैः पद्संख्यका बोध्याः ॥ सू० ३४ ॥

मूलम्—धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररत्तो छ अगमहिंसीओ पणत्ताओ, तं जहा-आला १, सक्का २, सतेरा

“छ दिसिकुमारि महत्तरियाओ” इत्यादि सूत्र ३४ ॥

टीकार्थ-दिक्कुमार जाति के जो भवनपति विशेष हैं उनकी जाति की देवियां जो दिक्कुमारी महत्तरिकाएँ हैं वे ६ कही गई हैं उनके नाम इस प्रकार से हैं—रूपा १ रूपांशा २ सुरूपा ३ रूपवती ४ रूपकान्ता ५ और रूपप्रभा ६ इन्हे महत्तरिका प्रधानतम होने से कहा गया है । इसी प्रकार विद्युत्कुमार जाति के भवनपति देव विशेष हैं उनकी जाति की जो विद्युत्कुमारी महत्तरिकाएँ हैं वे भी ६ ही कही गई हैं उनके नाम इस प्रकार से हैं—आला १ शक्रा २ शतेरा ३ सौदामनी ४ इन्द्रा-५ और घनविद्युत् ६ ॥ सू० ३४ ॥

“ छ दिसिकुमारि महत्तरियाओ ” इत्यादि—

टीकार्थ—लवनपति देवाना इस प्रकारे छे. तेभाने ओक प्रकार दिक्कुमारिणे छे. ते दिक्कुमार जतिनी ६ दिक्कुमारी महत्तरिकाओ (गुण्य देवीओ) कही छे. तेभनां नाम नीचे प्रभाणे छे—(१) रूपा, (२) रूपांशा, (३) सुरूपा (४) रूपवती, (५) रूपकान्ता अने (६) रूपप्रभा ते देवीओ प्रधानतम-गुण्य देवाने कारणे तेभने महत्तरिका कही छे

ओ न प्रभाणे विद्युत्कुमार जतिना लवनपति देवानी जतिनी ले विद्युत्कुमारी महत्तरिकाओ छे, ते पणु छ न कही छे तेभनां नाम नीचे प्रभाणे छे—(१) आला, (२) शक्रा, (३) शतेरा, (४) सौदामनी, (५) इन्द्रा अने (६) घनविद्युत् ॥ सू. ३४ ॥

३, सोयामणी ४, इंदा ५, घणविज्जुया ६। भूयाणंदस्स णं नाग-
कुमारिंदस्स नागकुमाररणो छ अग्गमहिंसीओ पणत्ताओ, तं
जहा-रूवा १, रूवंसा २, सुरूवा ३, रूववई ४, रूवकंता ४,
रूवप्पभा ६। जहा धरणस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लायं जाव
घोसस्स । जहा भूयाणंदस्स तहा सव्वेसि उत्तरिल्लायं जाव
महाघोसस्स ॥ सू० ३५ ॥

छाया-धरणस्य खलु नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य पड् अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः,
तद्यथा-आला १, शक्रा २, शतेरा ३, सौदामनी ४, इन्द्रा ५, घनविद्युत् ६।
भूतानन्दस्य नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य पड् अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-
रूपा १ रूपांशा २, सुरूपा ३, रूपवती ४, रूपकान्ता ५, रूपप्रभा ६। यथा-

“धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररन्नो” इत्यादि सूत्र ३५॥

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणका ६ अग्रमहिषियां कही गई हैं
जैसे-आला १ शक्रा २ शतेरा ३ सौदामनी ४ इन्द्रा ५ और घनवि-
द्युत् ६ नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्दकी छह अग्रमहिषियां कही
गई हैं जैसे-रूपा १ रूपांशा २ सुरूपा ३ रूपवती ४ रूपकान्ता ५ और
रूपप्रभा ६ जिस प्रकार से धरण की पट्टवेवियों के विषय में कहा गया
है उसी प्रकार से समस्त दक्षिण दिशा के अधिपतियों का यावत्
घोष तक का कथन जानना चाहिये तथा जैसा कथन भूतानन्द की

“ धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररन्नो ” इत्यादि—

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणने ६ अग्रमहिषीओ छे, तेमनां नाम
नीचे प्रभाणे छे—(१) आला, (२) शक्रा, (३) शतेरा, (४) सौदामनी, (५)
इन्द्रा अने (६) घनविद्युत्

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्दने ६ अग्रमहिषीओ छे, तेमनां
नाम नीचे प्रभाणे छे—(१) रूपा, (२) रूपांशा, (३) सुरूपा, (४) रूपवती,
(५) रूपकान्ता अने (६) रूपप्रभा।

घोष पर्यन्तना दक्षिण दिशाना समस्त अधिपतियोनी अग्रमहिषीओना
विषयमां धरणनी अग्रमहिषीओना जेहुं न कथन समज्जुं. महाघोष पर्य-

धरणस्य तथा सर्वेषां दाक्षिणात्यानां यावद् घोपस्य । यथा भूतानन्दस्य तथा सर्वेषाम् उत्तरीयाणां यावद् महाघोपस्य ॥ सू० ३५ ॥

टीका—‘ धरणस्स णं ’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ३५ ॥

मूलम्—धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररणो छ सामाणियसाहस्सीओ पणत्ताओ । एवं भूयाणंदस्सवि जाव महाघोसस्स ॥ सू० ३६ ॥

छाया—धरणस्य खलु नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य पट् सामानिकसाहस्रः प्रज्ञप्ताः एवं भूतानन्दस्यापि यावद् महाघोपस्य ॥ सू० ३६ ॥

टीका—‘ धरणस्स णं ’ इत्यादि ।

नवरम्—सामानिकसाहरत्र्यः—ऋद्धिमत्त्वेन ये इन्द्रसमानतया चरन्ति ते देवाः सामानिकाः । तेषां साहस्रः इति ॥ सू० ३६ ॥

पट्टरानियों का किया गया है वैसे ही समस्त उत्तर दिशा के अधिपतियों का यावत् महाघोष तक का कथन जानना चाहिये ॥ सू० ३५ ॥

“धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स” इत्यादि सूत्र ॥ ३६ ॥

टीकार्थ—नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणकी सामानिक देवोंकी संख्या ६ हजार कही गई है इसी प्रकार से भूतानन्द के यावत् महाघोष के सामानिक देवों की संख्या ६ हजार कही गई है । ऋद्धिवाले होने से जो इन्द्र के जैसे होते हैं वे सामानिक देव हैं ॥ सू० ३६ ॥

इस ऊपर के सूत्र में देवों के सम्बन्धमें कुछ थोड़ा सा कथन किया गया है । अब सूत्रकार भवप्रत्ययसे ही विशिष्ट मतिवाले हुए उन

न्तना उत्तर दिशाना समस्त अधिपतियोनी अत्रमडिपीओना विषयमां भूतानन्दनी अत्रमडिपीओना नेवुं न कथन अडणु करवुं ॥ सू. ३५ ॥

“ धरणस्स ण णागकुमारिंदस्स ” इत्यादि—

टीकार्थ—नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणना सामानिक देवोनी संख्या ६००० नी कही छे. ओ न प्रमाणे भूतानन्दथी लथने महाघोष पर्यन्तना प्रत्येक धन्द्रना सामानिक देवो ६-६ हजार कही छे सामानिक देवो ऋद्धिवाणा होवाने तीथे धन्द्रना समान होय छे. ॥ सू. ३६ ॥

ऊपरना सूत्रोमां देवोना विषयमां श्रोतुं कथन करवामां आण्युं छे. आ देवो लवप्रत्ययथी न (देव लवनी प्राप्ति थवाने करण्णु) विशिष्ट मतिवाणा

અનન્તરમૂત્રે દેવસમ્બન્ધિકં કિંચિત્ પ્રોક્તમ્, સમ્પતિ ભવપ્રત્યયાદેવ ત્રિશિ-
ષ્ટમતિમતાં તેષાં મતિભેદાનાદ—

મૂલમ્—છવિહા ઉગ્ગહમર્દૈ પ્પણત્તા, તં જહા—સ્વિપ્પમોગિ-
પ્પહૈ ૧, બહુમોગિપ્પહૈ ૨, બહુવિહમોગિપ્પહૈ ૩, ધ્રુવમોગિપ્પહૈ
૪, અણિસ્સિયમોગિપ્પહૈ ૫, અસંદિહ્મમોગિપ્પહૈ ૬। છવિહા
ર્દૈહામર્દૈ પ્પણત્તા, તં જહા—સ્વિપ્પમીહૈ ૧, બહુમીહૈ ૨, જાવ
અસંદિહ્મમીહૈ ૬। છવિહા અવાયમર્દૈ પ્પણત્તા, તં જહા—
સ્વિપ્પમવેહૈ ૧, જાવ અસંદિહ્મ મવેહૈ ૬। છવિહા ધારણા
પ્પણત્તા, તં જહા--વહુંધારેહૈ ૧, બહુવિહં ધારેહૈ ૨, પોરાણં ધારેહૈ ૩,
દુહ્ધરં ધારેહૈ ૪, અણિસ્સિયં ધારેહૈ ૫, અસંદિહ્મં ધારેહૈ ૬। સૂ૦ ૩૭।

છાયા—પૃથ્વીયા અવગ્રહમતિઃ પ્રજ્ઞપ્તા તદ્વથા—ક્ષિપ્રમવગૃહ્ણતિ ૧, વહુ અવગૃહ્ણતિ
૨, વહુપ્રિધમવગૃહ્ણતિ ૩, ધ્રુવમવગૃહ્ણતિ ૪, અનિશ્રિતમવગૃહ્ણતિ ૫, અસદિગ્ધ-
મવગૃહ્ણતિ ૬। પૃથ્વીયા ર્દૈહામતિઃ પ્રજ્ઞપ્તા, તદ્વથા—ક્ષિપ્રમીહતે ૧, વહુ ર્દૈહતે ૨,
યાવત્—અસન્દિગ્ધમીહતે ૬। પૃથ્વીયા અવાયમતિઃ પ્રજ્ઞપ્તા, તદ્વથા—ક્ષિપ્રમવૈતિ
૧ યાવત્ અસન્દિગ્ધમવૈતિ ૬। પૃથ્વીયા ધારણા પ્રજ્ઞપ્તા, તદ્વથા—વહુ ધારયતિ ૧,
વહુવિધં ધારયતિ ૨, પુરાણં ધારયતિ ૩, દુર્ધરં ધારયતિ ૪, અનિશ્રિતં ધારયતિ
૫, અસન્દિગ્ધં ધારયતિ ૬ ॥ સૂ૦ ૩૭ ॥

ટીકા—‘ છવિહા ’ ઇત્યાદિ—

મનનં મતિઃ=આભિનિબોધિકં જ્ઞાનં, સા ચ—અવગ્રહેહાડવાયધારણાભેદાત્
ચતુર્વિધા । તત્ર—અવગ્રહણમ્—અવગ્રહઃ=સામાન્યાર્થસ્ય અણેપવિણેપનિરપેક્ષસ્ય અનિ-
દેવોંકી મતિકે ભેદોંકા કથન કરતે હૈં ।

“છવિહા ઉગ્ગહમર્દૈ પ્પણત્તા” ઇત્યાદિ સૂત્ર ૩૭ ॥

ટીકાર્થ—અવગ્રહમતિ ૬ પ્રકાર કી કહી ગઈહૈ । મનન કરનેકા નામ મતિ
હૈ, યહ મતિ આભિનિબોધિક જ્ઞાનરૂપ હોતી હૈ । આભિનિબોધિક જ્ઞાન-

હોય છે. તેથી હવે તે દેવોની મતિના ભેદોનું સૂત્રકાર નિરૂપણ કરે છે

ટીકાર્થ—“ છવિહા ઉગ્ગહમર્દૈ પ્પણત્તા ” ઇત્યાદિ—

અવગ્રહમતિ ૬ પ્રકારની કહી છે. મનન કરવું તેનું નામ મતિ છે. તે
મતિ આભિનિબોધિક જ્ઞાનરૂપ હોય છે. આભિનિબોધિક જ્ઞાનરૂપ મતિના ત્રીયે

दर्शयस्य रूपादेरेव प्रथमतो ग्रहणं परिच्छेदनम् १। ईद्वनम्-ईहा=अवग्रहगृहीत-
सामान्यार्थस्य विशेषत आलोचनम् २। तथा-अवग्रहेहाभ्यां सामान्यविशेषरूपेण
गृहीतस्यार्थस्य यो निश्चयः सोऽवायः ३। एभिस्वग्रहेहाऽवायैरधिगतस्यार्थस्य
याऽविच्युतिः सा धारणा ४। तदुक्तम्—

‘ सामन्नत्थावगहण मोग्गहो भेयमुग्गहणमिहेहा ।

तस्सावगमोऽवाओ, अविच्चुई धारणा तस्स ॥ १ ॥

छाया—सामान्यार्थावग्रहणमवग्रहः, भेदोद्ग्रहणमिहेहा ।

तस्यावगमः अत्रायः अविच्युतिर्धारणा तस्य ॥१॥ इति ।

तत्र-अवग्रहादिषु चतुर्विधासु मतिषु मध्ये या अवग्रहरूपा मतिः अवग्रहमतिः ।
इयं च व्यञ्जनावग्रहमत्यर्थावग्रहमतिभेदाभ्यां द्विधा । तत्र-व्यञ्जनावग्रहमतिः—

रूप मति अवग्रह १, ईहा २ अवायएवं धारणा के भेदसे चार प्रकारकी
है । इनमें समस्त विशेषोंसे निरपेक्ष एवं अनिर्देश्य ऐसे सामान्य
अर्थरूप रूपादि का ही जो प्रथमतः ग्रहण होता है वह अवग्रह है ।
अवग्रहसे जाने हुए पदार्थ का विशेष रूपसे आलोचन होता है वह
ईहा है, अवग्रह एवं ईहा इन दोनों से सामान्य विशेष रूपसे जाने
गये पदार्थ का जो निश्चय है वह अवाय है ३ तथा अवग्रह ईहा और
अवाय इनसे अधिगत अर्थ की जो अविस्मृति (नहीं भूलना) है वह
धारणा है । कहा भी है “ सामन्नत्थावगहणं ” इत्यादि ।

इस तरहसे अवग्रहादि रूप चार प्रकारकी मतिके बीचमें जो अव-
ग्रह रूप मति है वह अवग्रहमति है । यह अवग्रह रूप मति व्यञ्जनाव-

प्रमाणे चार लेद पडे छे—(१) अवग्रह, (२) ईहा, (३) अवाय अने (४) धारणा।

समस्त विशेषोत्थी निरपेक्ष अने अनिर्देश्य जेवा सामान्य अर्थ रूप
रूपादितुं जे पडेलां अडख थाय छे तेनुं नाम अवग्रह छे. अवग्रह वडे
जखेला पदार्थनुं जे विशेष रूपे आलोचन थाय छे, तेनुं नाम ईहा छे अव
ग्रह अने ईहा, आ जन्ने वडे सामान्य अने विशेष रूपे जखेला पदार्थनो
जे निश्चय थाय छे, तेनुं नाम अवाय छे अवग्रह, ईहा अने अवाय, जे
त्रजे द्वारा अधिगत अर्थनी जे अविस्मृति (भूलनुं नडीं ते) छे, तेनुं नाम
धारणा छे. कहुं पणु छे के: “ सामन्नत्थावगहणं ” इत्यादि—

आ प्रकारे मतिना चार लेदोमानो जे पडेलां लेद छे तेनुं नाम
अवग्रह मति छे. ते अवग्रह मतिना व्यञ्जनावग्रहमति अने अर्थावग्रहमति
नामना जे लेद पडे छे. व्यञ्जनावग्रहमतिनुं स्वयं आ प्रकारनुं छे—

વ્યવ્યતે પ્રકૃતીક્રિયતેડનેનાર્થઃ પ્રદીપેનેવ ઘટ ઇતિ વ્યજ્ઞનમ્-ચક્ષુર્મનસોરપ્રાપ્યકા
સ્તિવાત્તદ્વર્જિતં, શ્રોત્રગ્રાણરસનસ્પર્શનરૂપં-ચતુર્વિધમુપકરણેન્દ્રિયં, તેન સ્વ સમ્બદ્ધ-
સ્વાર્થસ્ય-શબ્દાદેરવગ્રહણમ્-અવ્યક્તરૂપઃ પરિચ્છેદો વ્યજ્ઞનાવગ્રહઃ । અયં ભાવઃ-
ઉપકરણેન્દ્રિયસ્ય શબ્દાદિપરિણતદ્રવ્યસ્ય ચ સમ્બન્ધે પ્રથમસમયાદારભ્ય અર્થાવ-
ગ્રહાત્ પ્રાક્ યા મુપ્તમત્તમૂર્ચ્છિતાદિપુરુપાણામિત્ર શબ્દાદિ દ્રવ્યમાત્રસમ્બન્ધવિપયા
કાચિદવ્યક્તા જ્ઞાનમાત્રા સા વ્યજ્ઞનાવગ્રહ ઇતિ । તદ્રૂપા મતિ-વ્યજ્ઞનાવગ્રહમતિઃ-

ગ્રહ મતિ એવં અર્થાવગ્રહમતિ કે ભેદ સે દો પ્રકારકી હૈ, હનમં વ્યજ્ઞ-
નાવગ્રહમતિ હસ પ્રકારસે હૈ—જૈસે દીપકકે દ્વારા પદાર્થ વ્યક્ત ક્રિયા
જાતા હૈ । ડસી પ્રકાર જિસકે દ્વારા પદાર્થ વ્યક્ત ક્રિયા જાતા હૈ વહ
વ્યજ્ઞનાવગ્રહ મતિ હૈ યહ વ્યજ્ઞનાવગ્રહ રૂપ મતિ ચક્ષુ ઓર મનસે હસ
લિયે નહીં હોતી હૈ કિ યે દોનોં હન્દ્રિયાં અપ્રાપ્યકારી હૈ । શ્રોત્ર, ગ્રાણ,
રસના ઓર સ્પર્શન યે જો ચાર ઉપકરણેન્દ્રિયાં હૈં હનસે હોતી હૈ ક્યોંકિ
યે હન્દ્રિયાં પ્રાપ્યકારી હૈ અતઃ હન હન્દ્રિયોંસે સમ્બદ્ધ શબ્દાદિ રૂપ અર્થ
કા જો અવ્યક્ત રૂપ વોધ હોતાહૈ, વહ વ્યજ્ઞનાવગ્રહહૈ । ભાવ ઈસા હૈ
ઉપકરણેન્દ્રિય કા ઓર શબ્દાદિ રૂપ પરિણત દ્રવ્યકા સમ્બન્ધ હોને પર
પ્રથમ સમયસે લેકર અર્થાવગ્રહ હોને કે પહિલે તક જો સુપ મત્ત મૂર્ચ્છિત
આદિ પુરુષોં કે જ્ઞાનકી તરહ શબ્દાદિ દ્રવ્ય માત્રકે સમ્બન્ધકો વિષય
કરનેવાલી કોઈ અવ્યક્ત જ્ઞાન માત્રા હૈ વહ વ્યજ્ઞનાવગ્રહ મતિ હૈ ।

જેમ દીપકના દ્વારા પદાર્થ વ્યક્ત કરાય છે તેનું નામ વ્યજ્ઞનાવગ્રહમતિ છે.
ચક્ષુ અને મન વડે વ્યજ્ઞનાવગ્રહ થતો નથી, કારણ કે તે બંને ઇન્દ્રિયો
અપ્રાપ્યકારી છે. વ્યજ્ઞનાવગ્રહ શ્રોત્ર, ગ્રાણ, રસના અને સ્પર્શેન્દ્રિય, આ ચાર
ઇન્દ્રિયો વડે જ થાય છે, કારણ કે આ ચાર ઇન્દ્રિયો ઉપકરણેન્દ્રિયો છે.
અને તે ઇન્દ્રિયો પ્રાપ્યકારી છે. તેથી તે ચાર ઉપકરણેન્દ્રિયો સાથે સંબદ્ધ
શબ્દાદિ રૂપ અર્થનો જે અવ્યક્ત રૂપે બોધ થાય છે, તેનું નામ વ્યજ્ઞનાવગ્રહ
છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

ઉપકરણેન્દ્રિયનો અને શબ્દાદિ રૂપ પરિણત દ્રવ્યનો સંબંધ થતાં પ્રથમ
સમયથી લઈને અર્થાવગ્રહ થવાના સમય સુધી, જે સુપ, ઉન્મત્ત, મૂર્ચ્છિત
આદિ પુરુષોના જ્ઞાનની જેમ શબ્દાદિ દ્રવ્ય માત્રના સંબંધને વિષય કરનારી
કોઈ અવ્યક્ત જ્ઞાનમાત્રા હોય છે તેનું નામ વ્યજ્ઞનાવગ્રહ મતિ છે.

अर्थावग्रहमतिः—अवग्रहणम् अवग्रहः—अर्थस्यावग्रहोऽर्थावग्रहः—अनिर्देशसामान्यमात्ररूपाद्यर्थस्य व्यक्तरूपः परिच्छेदः । तद्रूपा मतिः—अर्थावग्रहमतिरिति । तत्रार्थावग्रहमतिर्निश्चयव्यवहाराभ्यां द्विधा । व्यञ्जनावग्रहोत्तरमेकसामयिकी निश्चयार्थावग्रहमतिः । व्यवहारार्थावग्रहमतिस्तु अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणा । इयं यद्यपि अवायरूपा तथापि उत्तरकालभाविनोरी हावाययोः कारणत्वादवग्रहमतिरित्युपचर्यते । उक्तं च—

“सामन्नमेत्तगहणं, नेच्छइयो समयमोगगहो पहमो ।
तत्तोऽणंतरकीहिय वत्थु विसेसस्स जोऽवाओ ॥ १ ॥
सो पुण ईहावायावेक्खाउ अवग्गहोत्ति उवयरिओ ।
एस विसेसावेक्खं, सामन्नं गेण्हए जेण ॥ २ ॥
तत्तोऽणंतरमीहा, तत्तोऽवाओ य तव्विसेसस्स ।
इय सामन्नविसेसावेक्खा जावंतिमो भेओ ॥ ३ ॥
सव्वत्थेहावाया, निच्छइयो मोत्तुमाइ सामन्नं ।
सव्ववहारत्थं पुण, सव्वत्थावग्गहोवाओ ॥ ४ ॥

अर्थावग्रह—यह क्या है इस प्रकारसे अनिर्देश्य सामान्य मात्र रूप अर्थ का जो व्यक्तरूपसे परिच्छेद (निर्णय) होता है वह अर्थावग्रह है । इस अर्थावग्रह रूप जो मति है वह अर्थावग्रहमति है यह अर्थावग्रह रूपमति निश्चय और व्यवहारके भेदसे दो प्रकारकी है इनमें व्यञ्जनावग्रह के बाद एक समय तक जो मति है वह निश्चय अर्थावग्रहमति है और अन्तर मुहूर्त्त प्रमाणवाली जो मति है वह व्यवहार अर्थावग्रह मति है यह मति यद्यपि अवायरूप होती है फिरभी उत्तरकाल भावी जो ईहा एवं अवाय है उनका कारण होने से इसे अवग्रह मति इस रूपसे उपचरित किया गया है । कहा भी है—“सामन्नमेत्तगहणं” इत्यादि ।

अर्थावग्रह मति—“आ शुं छे ?” आ प्रकारे अनिर्देश्य सामान्य मात्ररूप अर्थने जे व्यक्त रूपे परिच्छेद (भेद) थाय छे, तेनुं नाम अर्थावग्रह छे, अर्थावग्रह रूप जे मति छे तेने अर्थावग्रह मति कहे छे, ते अर्थावग्रह मति निश्चय अने व्यवहारना लेखी जे प्रकारनी छे, व्यञ्जनावग्रह तथा आद अेक समय सुधी जे मति होय छे तेनुं नाम निश्चय अर्थावग्रह मति छे, अने अन्तर मुहूर्त्त प्रमाणवाणी जे मति छे तेनुं नाम व्यवहार अर्थावग्रह मति छे, आ मति जे के अवाय रूप होय छे, छां पणु उत्तरकालभावी जे छे अने अवाय छे तेमना कारणभूत होवाथी तेने अर्थावग्रह मति आ रूपे उपचरित करवामां आवेद छे, कहुं पणु छे के:

તરતમજોગાભાવેઽવાઉચ્ચિય ધારણા તદંતમ્મિ ।

સવ્વથવાસના પુન, મળિયા કાલંતર સઙ્ગિ ॥ ૫ ॥ ”

છાયા—સામાન્યમાત્રગ્રહણં નૈશ્ચયિકઃ સમયમવગ્રહઃ પ્રથમઃ ।

તતોઽનન્તરમીહિતવસ્તુ વિશેષસ્ય યોઽવાયઃ ॥ ૧ ॥

સ પુનરીહાવાયાપેક્ષયા અવગ્રહ ઇત્યુપચરિતઃ ।

એપ વિશેષાપેક્ષં, સામાન્યં ગૃહ્ણાતિ યેન ॥ ૨ ॥

તતોઽનન્તરમીહા, તતોઽવાયશ્ચ તદ્વિશેષસ્ય ।

ઇતિ સામાન્યવિશેષાપેક્ષા યાવદન્તિમો ભેદઃ ॥ ૩ ॥

સર્વત્રેહાવાયૌ, નિશ્ચયતો મુક્તવા આદિ સામાન્યમ્ ।

મંવ્યનહારાર્થં પુનઃ, સર્વત્રાવગ્રહોઽવાયઃ ॥ ૪ ॥

તરતમયોગાભાવેઽવાય એવ ધારણા તદન્તે ।

સર્વત્ર વાસના પુનર્મળિતા કાલાન્તરસ્મૃતિરિતિ ॥૫॥ ઇતિ ।

અથાસામર્થઃ પ્રકાશ્યતે—‘ સામન્નમેત્તગ્રહણં ’ ઇત્યાદિ—

યઃ સામાન્યમાત્રં ગૃહ્ણાતિ સ એકસામાયિકો નૈશ્ચયિકઃ પ્રથમોઽવગ્રહઃ ।

દ્વિતીયસ્તુ તતઃ પશ્ચાત્ ઈહિતવસ્તુવિશેષગ્રહણશીલોઽન્તર્મુહૂર્ત્તપ્રમાણોઽવાયરૂપો વ્યા-
વહારિકો બોધ્યઃ ॥ ૧ ॥ અયં પુનરીહાવાયાપેક્ષયાઽવગ્રહહન્યુપચર્યતે, યતોઽયં
વિશેષાપેક્ષં સામાન્યં ગૃહ્ણાતિ ॥ ૨ ॥ તતઃ પશ્ચાત્ અવગ્રહગૃહીતસામાન્યાર્થસ્ય

इन गाथाओं का अर्थ इस प्रकार से है—जो सामान्य मात्रको ग्रहण करता है वह एक समय प्रमाणकालवाला नैश्चयिक प्रथम अव-
ग्रह है । द्वितीय जो अवग्रह है वह इसके बाद ईहितवस्तु विशेष को
ग्रहण करनेके स्वभाववाला होता है, इसके कालका प्रमाण एक अन्त-
र्मुहूर्त्तका है और यह अवाय (निश्चय) रूप होता है यही व्यावहारिक
अवग्रह है इसे जो अवग्रह कहा गया है वह ईहा और अवाय की
अपेक्षासे उपचार से कड़ा गया है, क्योंकि यह विशेषापेक्ष सामान्यको

“ સામન્નમેત્તગ્રહણં ” ઇત્યાદિ—

આ ગાથાઓનો અર્થ આ પ્રમાણે છે—જે સામાન્ય માત્રને ગ્રહણ કરે
છે તે એક સમયના પ્રમાણ કાળવાળો નૈશ્ચયિક પ્રથમ અવગ્રહ છે. બીજો જે
અવગ્રહ છે તે ત્યાર બાદ ઇહિત વસ્તુવિશેષને ગ્રહણ કરવાના સ્વભાવવાળો
હોય છે. તેના કાળતું પ્રમાણ એક અન્તર્મુહૂર્ત્તું છે અને તે અવાય (નિશ્ચય)
રૂપ હોય છે, એ જ વ્યાવહારિક અવગ્રહ છે. તેને જે અવગ્રહ રૂપે પ્રકટ
કરવામાં આવેલ છે તે ઇહા અને અવાયની અપેક્ષાએ ઔપચારિક રીતે કહેલ

विशेषत आलोचनरूपा ईहा भवति । ततोऽनन्तरम् अवग्रहहाभ्यां सामान्यविशेष-
तया गृहीतार्थस्य निश्चयरूपोऽवायो भवति । इति=इत्थं सामान्यविशेषापेक्षा
यावत् धारणारूपोऽन्तिमो भेदो भवति तावद् बोध्या ॥ ३ ॥ आदि सामान्यं
मुक्त्वा निश्चयतः सर्वत्र ईहावायो भवतः । पुनः संव्यवहारार्थं सर्वत्र अवग्रहरूपो-
ऽवायो बोध्यः ॥ ४ ॥ तरतमयोगाभावे=तारतम्याभावेऽवाय एव तदन्ते अवग्रहे-

ग्रहण करता है इसके बाद अवग्रहसे गृहीत हुए सामान्य अर्थकी
विशेष रूपसे जो आलोचना होनी है वह ईहा है इसके बाद अवग्रह
और ईहासे सामान्य विशेषरूपसे गृहीत हुए पदार्थ का अवाय होना
है । यह अवाय निश्चयरूप होता है, बादमें सामान्य विशेषकी अपेक्षा
जब तक रहती है तब तक धारणा रूप अन्तिम भेद होना है । आदिमें
सामान्य को छोड़कर निश्चय से सर्वत्र ईहा और अवाय होते हैं,
तात्पर्य यह है कि सामान्य में तो अवग्रह कहीं भी बोध होना है और
विशेषमें ईहा अवायरूप बोध होता है । व्यवहारार्थावग्रह मति यद्यपि
अवायरूप होती है परन्तु वह उत्तर काल भावी ईहा और अवाय का
कारण होती है इसलिये वह अवाय अवग्रह कहा गया है तारतम्य के
अभाव में अवाय ही होता है अर्थात् जहाँ पर अवग्रह के बाद ऐसा
बोध होता है कि यह दक्षिण का रहने वाला है या उत्तरके
रहनेवाला है तो इस शंका की निवृत्ति के लिये

ये, कारण के ते विशेषापेक्ष सामान्यने ग्रहण करे छे. त्थार णाढ अवग्रह
द्वारा ग्रहण करायेल सामान्य अर्थनी विशेष इपे ले आलोचना थाय छे,
तेनुं नाम 'ईहा' छे. त्थार णाढ अवग्रह अने ईहा द्वारा सामान्य विशेष
इपे गृहीत थयेला पदार्थनी 'अवाय' इपे बोध थाय छे ते अवाय निश्चय
इपे डोय छे. त्थार णाढ सामान्य विशेषनी अपेक्षा न्यां सुधी रहे छे, त्यां
सुधी धारणा इपे छेलेले लेक रहे छे शङ्कातमां सामान्यने छोडीने निश्चय
पडे सर्वत्र ईहा अने अवायनी सहलाव डोय छे. आ कथननुं तात्पर्य अ
छे के सामान्यमां तो अवग्रह इपे बोध न थय छे अने विशेषमां ईहा
अवाय इपे बोध थाय छे. व्यवहारार्थावग्रह मति ले के अवाय इपे डोय
छे, परन्तु ते उत्तरकालभावी ईहा अने अवाय इपे बोध थवामां कारणभूत
डोय छे तेथी तेने अवाय अवग्रह कडेवामां आवेल छे. तारतम्य (निश्चय)
ना अलावमां अवाय इपे बोधनी न सहलाव रहे छे. अटले के न्यां अवग्रह
पछी अवेले बोध थाय छे के आ दक्षिणत्य छे के औदित्य छे. तो आ
शङ्कानुं निवारण करवाने भाटे निश्चय करायवा तरङ्ग अकते अवेले ले बोध

हास्यां सामान्यरूपेण गृहीतस्यार्थस्य निश्चयरूपेण यत् ग्रहणं तस्य अन्ते=अव-
साने सर्वत्र धारणा भवति । इयं पुनः कालान्तरस्मृतिरूपा वासना भणिता ॥५॥
इति गाथा पञ्चकार्यः ।

तत्र-व्यवहारार्थावग्रहमतिमाश्रित्य पञ्चविधत्वं व्याख्यायते-तद्यथा-साऽव-
ग्रहमतिः पञ्चविधा यथा-क्षिप्रम् अवगृह्णाति-तदावरणीयक्षयोपशमाधिक्यात्
शीघ्रं चन्दनादि स्पर्शं स्वेनात्मना जानाति १। बहु अवगृह्णाति-बहु=अधिकं

निश्चय की ओर झुकना हुआ ऐसा जो बोध होता है
कि इसे दक्षिणी होना चाहिये तो ऐसे ज्ञान का नाम ईहा है परन्तु यह
दक्षिणी ही है ऐसा जो अवाय रूप बोध होता है उसमें तारतम्य नहीं
होता है उसमें तो निश्चय ही होता है । अन्त में अवग्रह और ईहा से
सामान्य रूपमें गृहीत हुए अर्थ का अवाय द्वारा निश्चयरूपसे ग्रहण किये
जानेके बादमें-सर्वत्र धारणा होती है । यह धारणा उस पदार्थ को
कालान्तरमें विस्मरण नहीं होने देती है क्योंकि इस धारणा द्वारा
आत्मामें ऐसा संस्कार उत्पन्न हो जाता है कि जिसकी वजह से वह
आत्मा उस पदार्थको कालान्तर में भी याद रखता है ऐसा यह पांच
गाथाओं का अर्थ है ।

अब सूत्रकार व्यवहारार्थावग्रहरूप मतिको लेकर षट् विधताका
व्याख्यान करते हैं-जो इस प्रकारसे है-कोई एक व्यवहारार्थावग्रह
रूपमति ऐसी होती है जो ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमकी अधिकता
से शीघ्र ही चन्दनादिके स्पर्शको जान लेती है । कोई एक मति ऐसी

थाय-छे के ते दक्षिणी न डोवो जेधये, तो जेवा ज्ञाननुं नाम धडा छे, परन्तु
आ दक्षिणी न डोवो जेधये जेवा जे अवाय रूप बोध थाय छे तेमां तारतम्य
(शंकाको सडेन पणु सहलाव) छे तुं नथी-तेमां तो निश्चय न डोय छे,
अन्ते अवग्रह अने धडा द्वारा सामान्य रूपे गृहीत थयेवे अर्थ अवाय द्वारा
निश्चय रूपे ग्रहण थई गया जाद सर्वत्र धारणा थाय छे, आ धारणा गृहीत
थयेल पदार्थने धणु काणना अन्तर जाद पणु विस्मृत थवा देती नथी,
धारणु के ते धारणा द्वारा आत्मामां जेवा संस्कार उत्पन्न थई जय छे के
ते संस्कारने कारणे आत्मा ते पदार्थने धणु काण व्यतीन थई गया जाद
पणु याद राणी शके छे, आ प्रकारने आ पांच गाथाज्जेना अर्थ थाय छे.

उवे सूत्रकार व्यवहारार्थावग्रह रूप मतिना छ लेहोनुं विवेचन करे
छे--कोई एक व्यवहारार्थावग्रह रूप मति जेवी डोय छे के जे ज्ञानावरणीय
कर्मना क्षयोपशमनी शीघ्रताथी चन्दनादिना स्पर्शने जणु ले छे, कोई एक

वस्तु भिन्नभिन्नजातीयमेकैकं तत्तद्रूपेण अवगृह्णाति=अवबुध्यते, यथा=स्पर्शाव-
ग्रहः। कश्चिज्जनश्चन्दनादिस्पर्शस्य बहुत्वे चन्दनस्पर्शोऽयं चीनांशुकस्पर्शोऽयं नवनीत-
स्पर्शोऽयमिति तत्तद्रूपेण तमवबुध्यते। बहुविधमवगृह्णाति बहुवो विधाः प्रकारा यस्य
सबहुविधोऽर्थस्तम् अवगृह्णाति। यथा स एव चन्दनादिस्पर्शः एकैकः शीतस्नि-
ग्धमृदुकठिनत्वादिरूपेण यदाऽवबुध्यते तदा बहुविधं शीतत्वस्निग्धत्वमृदुत्व-
कठिनत्वादि गुणैर्भिन्नं स्पर्शं भिन्नतया कुर्वन् सोऽवबोधः 'बहुविधम् अवगृ-
ह्णाति' इत्युच्यते ॥ ३ ॥ यम् अवगृह्णाति-ध्रुवं=नित्यं निश्चलम् अर्थम् अवगृ-
ह्णाति=भिन्नतयाऽवबुध्यते, जनस्य यदा यदा तेन तेन चन्दनादिस्पर्शेन सम्बन्धी

होती है जो भिन्न २ जातिकी एक एक वस्तुको उस उस रूपसे जान
लेनी है जैसे स्पर्शावग्रह जानता है-चन्दनादि अनेक पदार्थों के धरे
होने पर जैसे स्पर्शावग्रह से कोई मनुष्य यह चन्दन का स्पर्श है यह
चीनांशुक का स्पर्श है यह नवनीतका (मक्खन) स्पर्श है। इस प्रकारसे
तत्तद्रूपसे उस २ पदार्थके स्पर्शको जानता है, इसी प्रकारसे बहुका अवग्रह
भी बहुत पदार्थोंको बहुत रूपसे जानता है २, बहुविधका तात्पर्य
बहुत प्रकारसे है-जैसे वही चन्दनादि स्पर्शका अवग्रह जब शीत,
स्निग्ध, मृदु, कठिनादि स्पर्श रूपसे भिन्न २ रूपमें स्पर्शको जानता
है, तो इस प्रकारसे जाननेवाला स्पर्शावग्रह बहुविधका अवग्रह कहा
जाता है ३ " ध्रुवं अवगृह्णाति " यहाँ ध्रुवका अभिप्राय नित्य निश्चल
अर्थसे है, ऐसे ध्रुव अर्थको जाननेवाला जो अवग्रह ज्ञान है, वह ध्रुवका
अवग्रह ज्ञान है-ध्रुवावग्रह है, जब किसी मनुष्यका उस उस चन्दनादिके

मति ऐवी डाय छे के के लिन्न लिन्न मतिनी दरेक वस्तुने ते ते इपे नाली
ले छे. जेमके स्पर्शावग्रह नाले छे अटले के चन्दनादि अनेक वस्तुओ के
ज्याओ मूकेती डाय अने केछ मनुष्य स्पर्शावग्रह द्वारा ओ नाली ले छे के
आ चन्दननो स्पर्श छे, आ चीनांशुकनो स्पर्श छे, आ नवनीतनो स्पर्श
छे, आ शीते ते ते इपे ते ते पदार्थने स्पर्श वडे ते नाली ले छे ओ
प्रमाणे णहुने अवग्रह पणु णहु पदार्थने णहु इपे नाले छे. जेमके ओ
चन्दनादि स्पर्शनो अवग्रह जे शीत, स्निग्ध, मृदु, कठिनादि स्पर्श इपे
बुढे बुढे इपे स्पर्शने नाले छे तो ते प्रकारे नालुनारा स्पर्शावग्रहने णहु-
विधनो (धनुा प्रधारनो) अवग्रह कडेवाभां आवे छे.

' ध्रुवं अवगृह्णाति ' अही ध्रुव अटले नित्य अने निश्चल अर्थ थाय
छे. ओवा ध्रुव अर्थने नालुनारु जे अवग्रहज्ञान छे तेने ध्रुवतुं अवग्रहज्ञान
अथवा ध्रुवावग्रह कडे छे. न्यारे केछ मनुष्य चन्दनादिनो स्पर्श करे छे त्यारे ते

भवति, तदा तदा चन्दनस्पर्शोऽयं, नवनीतस्पर्शोऽयं, चीनांशुकस्पर्शोऽयमित्यादिकं तत्तद्रूपेण तत्तत्स्पर्शमवच्छिनत्ति ॥ ४ ॥ अनिश्रितमवगृह्णाति—निश्रितो= हेतुप्रमितो, यथा केनचित् पूर्वं चन्दनादि स्पर्शाः शीतमृदुस्निग्धत्वादिनाऽनुभूताः, कालान्तरे पुनस्तदुपस्थितौ ‘अयं चन्दनादिस्पर्शः शीतमृदुस्निग्धत्वादितः’ इति शीतत्वादिना हेतुना प्रमितोयोऽर्थश्चन्दनादिस्पर्शरूपः स निश्रितोऽभिधीयते, तद्भिन्नोऽनिश्रितः, अर्थात्तादृशानुभावेन हेतुना विनैव तदा तं विषयं तज्ज्ञानं परिच्छिनत्ति तदाऽनिश्रितमहेतुरुपर्यमवगृह्णातीति व्यरदिश्यते ॥ ५ ॥ असंदिग्ध-

स्पर्शके साथ સમ્બન્ધ હોના હૈ, તો વહ નિશ્ચિત રૂપસે યહ જ્ઞાન લેતા હૈ, કિ યહ ચન્દનકા સ્પર્શ હૈ, યહ નવનીતકા સ્પર્શ હૈ, યહ ચીનાંશુક કા સ્પર્શ હૈ, इत्यादि रूपसे वह उस उसके स्पर्शको जान लेना है, “अनिश्रितं अवगृह्णाति” हेतुसे प्रमित वस्तुका नाम निश्रित है, जैसे—किसी पुरुषने पहिले चन्दनादिका स्पर्श शीतरूपसे वा मृदु स्निग्ध रूपसे अनुभूत किया अब कालान्तरमें जब वही विषय उपस्थित होता है, तो वह शीत मृदु आदि रूपसे यह जान लेना है, कि यह चन्दनादिका स्पर्श है, इस तरह शीतत्वादि रूप हेतुसे प्रमित जो चन्दनादि स्पर्श रूप अर्थ है, वह निश्रित है । इस निश्रितसे जो भिन्न है, वह अनिश्रित है । अर्थात् ऐसे हेतुके बिनाही जो ज्ञान विषयको जान लेता है, ऐसा वह ज्ञान अनिश्रित बिना हेतुके अर्थका अवग्रहण करनेवाला होनेसे अनिश्रित अवग्रह माना जाता है ५ “असंदिग्धं अव-

નિશ્ચિત રૂપે તે એ વાત જાણી લે છે કે આ ચન્દનનો સ્પર્શ છે, આ ચીનાંશુકનો સ્પર્શ છે, અને આ નવનીત (માખચુ) નો સ્પર્શ છે, ઈત્યાદિ રૂપે તે તે માણસ તે પ્રત્યેકના સ્પર્શને જાણી લે છે.

“અનિશ્રિતં અવગૃહ્ણાતિ” હેતુ વડે પ્રમિત વસ્તુનું નામ નિશ્ચિત છે. જેમકે કોઈ પુરુષે પહેલાં ચન્દનાદિનો સ્પર્શ શીત રૂપે અથવા મૃદુ-સ્નિગ્ધ રૂપે અનુભવ્યો હોય, ત્યાર બાદ અમુક કાળ વ્યતીત થઈ ગયા બાદ ત્યારે એ જ પદાર્થ ઉપસ્થિત થાય છે ત્યારે શીત, મૃદુ આદિ પ્રકારના તેના સ્પર્શ દ્વારા તે જાણી લે છે કે આ ચન્દનાદિનો સ્પર્શ છે. આ રીતે શીતત્વ આદિ રૂપ હેતુ વડે પ્રમિત જે ચન્દનાદિ સ્પર્શ રૂપ અર્થ છે, તેનું નામ નિશ્ચિત છે. આ નિશ્ચિતથી જે ભિન્ન હોય છે તેને અનિશ્ચિત કહે છે. એટલે કે એવા હેતુના સદ્ભાવ વિના જ જે જ્ઞાન વિષયને જાણી લે છે એવા જ્ઞાનને અનિશ્ચિત અવગ્રહ માનવામાં આવે છે, કારણ કે તે જ્ઞાન હેતુના સદ્ભાવ વિનાજ અર્થનું અવગ્રહણ કરનાર હોય છે.

મવગૃહ્ણાતિ-અસંદિગ્ધં=સકલ સંશયાદિદોષરહિતં, યથાચન્દનાદિસ્પર્શમ્ અવગૃહ્ણદ્-
જ્ઞાનં “ ચન્દનસ્યૈવ, ચીનાંશુકસ્યૈત્ર, નવનીતસ્યૈવાયં સ્પર્શઃ ” इत्येवं रूपं यदा
प्रवर्तते तदाऽसन्दिग्धमवगृह्णातीत्युच्यते ॥ ६ ॥ इति । एवम् ईहामतिरवायम-
तिश्चापि प्रत्येकं षड्विधा बोध्या । तथा-धारणामतिरपि षड्विधा प्रज्ञप्ता,
गृह्णाति ” जिस समय समस्त संशयादि दोषोंसे रहित होकर ज्ञान
चन्दनादिके स्पर्शको जानता है, कि यह चन्दनकाही या चीनांशुककाही
या नवनीत (मन्त्रवन)का ही यह स्पर्श है, अन्यका स्पर्श नहीं है, इस
प्रकारसे निश्चित रूपसे स्पर्शको जाननेवाला ज्ञान असंदिग्धग्राही अंव-
ग्रहज्ञान कहा गयाहै ६ तो जिस प्रकारसे यह अवग्रह रूप ज्ञान ६ प्रकारका
पूर्वोक्तरूपसे प्रकट किया गयाहै, उसी प्रकारसे ईहाज्ञान और अवायज्ञान
भी ६-६ प्रकारके कहे गये हैं । इसी प्रकारसे धारणाज्ञान भी ६
प्रकारका कहा गया है, तात्पर्य इस कथनका यही है, कि बहुग्राही अव-
ग्रह बहुग्राहिणी ईहा, बहुग्राही अवाय और बहुग्राहिणी धारणा १ बहु-
विधग्राही अवग्रह बहुविधग्राहिणी ईहा बहुविधग्राही अवाय और बहु-
विधग्राहिणी धारणा २ ध्रुवग्राही अवग्रह ध्रुवग्राहिणी ईहा ध्रुवग्राही अवाय
और ध्रुवग्राहिणी धारणा ३ क्षिप्रग्राही अवग्रह क्षिप्रग्राहिणी ईहा,
क्षिप्रग्राही अवाय और क्षिप्रग्राहिणी धारणा ४ अनिश्चितग्राही अवग्रह
अनिश्चित ग्राहिणी ईहा अनिश्चित ग्राही अवाय और अनिश्चितग्राहिणी
धारणा ५ एवं असंदिग्धग्राही अवग्रह असंदिग्धग्राहिणी ईहा

“ असदिग्धं अवगृह्णाति ” એ સમયે સમસ્ત સંશયાદિથી રહિત થઇને
જ્ઞાન એતું બાણી લે છે કે આ ચન્દનનો જ સ્પર્શ છે, આ ચીનાંશુકનો જ
સ્પર્શ છે અને આ માખણનો જ સ્પર્શ છે-અન્યનો સ્પર્શ નથી, આ પ્રકારે
નિશ્ચિત રૂપે સ્પર્શને બાણીના જ્ઞાનને અસંદિગ્ધગ્રાહી અવગ્રહજ્ઞાન કહે છે.
જેમ આ અવગ્રહજ્ઞાનને પૂર્વોક્ત ૬ પ્રકારનું કહેવામાં આવ્યું છે, એ જ પ્રમાણે
ઇહાજ્ઞાન અને અવાયજ્ઞાનને પણ ૬-૬ પ્રકારનું કહ્યું છે. એ જ પ્રમાણે
ધારણાજ્ઞાનને પણ ૬ પ્રકારનું કહ્યું છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે--
(૧) બહુગ્રાહી અવગ્રહ, બહુ ગ્રાહિણી ઇહા, બહુગ્રાહી અવાય અને બહુ
ગ્રાહિણી ધારણા, (૨) બહુવિધ ગ્રાહી અવગ્રહ, બહુવિધ ગ્રાહિણી ઇહા, બહુ-
વિધગ્રાહી અવાય અને બહુવિધ ગ્રાહિણી ધારણા, (૩) ધ્રુવગ્રાહી અવગ્રહ,
ધ્રુવગ્રાહિણી ઇહા, ધ્રુવગ્રાહી અવાય અને ધ્રુવગ્રાહિણી ધારણા, (૪) ક્ષિપ્રગ્રાહી
અવગ્રહ, ક્ષિપ્રગ્રાહિણી ઇહા, ક્ષિપ્રગ્રાહી અવાય અને ક્ષિપ્રગ્રાહિણી ધારણા,
(૫) અનિશ્ચિતગ્રાહી અવગ્રહ, અનિશ્ચિત ગ્રાહીણી ઇહા, અનિશ્ચિતગ્રાહી અવાય
અને અનિશ્ચિત ગ્રાહીણી ધારણા, (૬) અસંદિગ્ધગ્રાહી અવગ્રહ, અસંદિગ્ધ

તથા-વહુધારયતિ-વહુ=મિત્રજાતીયમનેનું તત્ત્વરૂપેણ ધારયતિ=નિર્ણીતાર્થસ્યા-
વિચ્યુતિવાસનાસ્મૃતિલક્ષણાં ધારણાં નયતિ ॥ ૧ ॥ વહુવિધ=નાનાપ્રકારં શીત-
ત્વાદિગુણોર્મિન્નં મિન્નં સ્પર્શાદિકં ધારયતિ ॥ ૨ ॥ પુરાણામ્=અતીતકાલજાતં
વસ્તુ ધારયતિ, યથા અનેન મુનિનાઽમુકસ્મિન્ વર્ષે, માસિ, પક્ષે, પ્રહરે, પહે,

અસંદિગ્ધગ્રાહી અવાય ઓર અસંદિગ્ધગ્રાહિણી ધારણા
યે સઘ એદ વ્યવહાર અર્થકે વિષયમેં હુણ અવગ્રહ ઈહા
અવાય ઓર ધારણાકે હેં । અર્થાત્ વ્યવહાર અર્થકો વહુરૂપસે વહુવિધ
રૂપસે ક્ષિપ્ર (જલ્દી) રૂપસે ધ્રુવરૂપસે અનિશ્ચિતરૂપસે ઓર અસંદિગ્ધ
રૂપસે અવગ્રહ ઈહા આદિ જ્ઞાન જાનતે હેં, ક્યોંકિ વહુ વ્યવહાર રૂપ
અર્થ વહુવહુ વિધ આદિકે એદસે ૬ પ્રકારકા હોના હે, અતઃ ઈસી
પ્રકારસે ઉસે અવગ્રહ આદિ જ્ઞાન જાનતેહેં । યે સઘ એદ મતિજ્ઞાનકેહીહેં ।

ધારણામતિ ઈસ પ્રકારસે મી ૬ પ્રકારકી હે, જૈસે—“ વહુ ધાર-
યતિ ” ઈત્યાદિ—જો મતિ મિન્ન ૨ જાતીય અનેક પદાર્થોંકો તત્ત્વરૂપેસે
ધારણ કરાતી હે, નિર્ણીત અર્થકો અવિચ્યુતિ, વાસના, સ્મૃતિરૂપ ધાર-
ણામેં લે જાતી હે, એસી વહુ મતિ વહુ ધારણામતિ હે ૧. વહુવિધ ધાર-
ણામતિ ઈસ પ્રકારસે હે, નાના પ્રકારકે શીતત્વાદિ ગુણોંસે મિન્ન ૨
સ્પર્શાદિકકો જો ધારણ કરાતી હે, વહુ વહુવિધ ધારણામતિ હે ૨
અતીતકાલમેં હુઈ વસ્તુકો જો ધારણ કરાતી હે, જૈસે—ઈસ મુનિને

ગ્રાહિણી ઇહા, અસંદિગ્ધગ્રાહી અવાય અને અસંદિગ્ધગ્રાહિણી, ધારણા, આ-
ગધા વ્યવહાર અર્થના વિષયમાં અવગ્રહ, ઇહા, અવાય અને ધારણાના લેહો
છે. એટલે કે વ્યવહાર અર્થને બહુ રૂપે ક્ષિપ્ર (શીઘ્ર) રૂપે, અવાય
ધ્રુવ રૂપે, અનિશ્ચિત રૂપે અને અસંદિગ્ધ રૂપે અવગ્રહ, ઇહા, અવાય
અને ધારણા રૂપ જ્ઞાન બળે છે, કારણ કે તે વ્યવહાર રૂપ અર્થ બહુ, બહુ-
વિધ આદિના લેહથી ૬ પ્રકારનો હોય છે, તેથી એ જ પ્રકારે તેને અવગ્રહ
આદિ જ્ઞાન બળે છે. આ બધાં મતિજ્ઞાનના લેહો છે.

ધારણામતિના આ પ્રકારના પણ ૬ લેહો કહ્યા છે—જેમકે “ વહુ
ધારયયતિ ” ઇત્યાદિ—(૧) જે મતિ ભિન્ન ભિન્ન બતના અનેક પદાર્થોંને તે
તે રૂપે ધારણ કરાવે છે, નિર્ણીત અર્થને અવિચ્યુતિ, વાસના અને સ્મૃતિ
રૂપ ધારણામાં લઈ બંધ છે, એવી તે મતિને બહુધારણા મતિ કહે છે. (૨)
બહુવિધ ધારણામતિનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—વિવિધ પ્રકારના શીત-વ આદિ
ગુણો વડે બુદ્ધ બુદ્ધ સ્પર્શાદિકને જે ધારણ કરાવે છે, તે બહુવિધ ધારણા-
મતિ છે. (૩) ત્રીજા પ્રકારની ધારણામતિ ભૂતકાળના અર્થને ધારણ કરાવનારી
છે. જેમકે આ મુનિએ અમુક વર્ષમાં, અમુક માસમાં, અમુક પક્ષમાં (શુક્રે

विपले, क्षणे दीक्षा गृहीतेति साधारणजनविस्मरणयोग्यकालज्ञानं धारयतीति
 दृष्टान्तः ॥ ३ ॥ दुर्धर-दुःखेन=बुद्धेरतिपरिश्रमेण धार्यतेऽसौ दुर्धरः=कठिनो
 भङ्गजालश्रेणि समारोहणादि विषयस्तं धारयति ॥ ४ ॥ अनिश्रितम्-अहेतुकम्-
 औत्पत्तिक्यादिवुद्धयैः धारयति ॥ ५ ॥ असंदिग्ध=सकलसंशयरहितं धारयति
 ॥ ६ ॥ इति । क्षिप्रबहु बहुविधादीनां विपर्ययेणापि अत्रग्रहादीनामेकैकस्य षड्
 षड्भेदा भवन्तीति अविपर्ययविपर्ययाभ्यां अत्रग्रहेहावायधारणामतिषु प्रत्येकं

अमुक वर्षमें अमुक मासमें अमुक पक्षमें अमुक प्रहरमें अमुक पलमें
 अमुक विपलमें एवं अमुक क्षणमें दीक्षा ग्रहणकी है, इस प्रकारसे साधा-
 रण जनको विस्मय हो जाने योग्य कालज्ञानको यह धारणा धारण
 कराती है, ऐसी वह धारणा ३ तीसरे नंबरकी धारणा है, जो बुद्धिके अति
 परिश्रमसे धारण किया जाता है, वह दुर्धर है, ऐसा वह दुर्धर कठिन
 विषय-भङ्ग जाल या श्रेणि समारोहण आदि रूप होता है, ऐसे विष-
 यको जो धारण कराती है, वह दुर्धर धारणामति है ४ औत्पत्तिकी
 आदि बुद्धिसेही जो अनिश्रितको धारण कराती है, वह अनिश्रित
 धारणा है ५ एवं जो असंदिग्ध पदार्थको धारण कराती है, वह असं-
 दिग्ध धारणा है ६ अक्षिप्रका उलटा क्षिप्र बहुका उलटा एक बहुविधका
 उलटा एकविध अनिश्रितका उलटा निश्रित ध्रुवका उलटा अध्रुव और
 असंदिग्धका उलटा सदिग्ध इस तरहसे ६ तरहका पदार्थ और होता

पक्ष के कृषण पक्षमां) अमुक तिथिमें, अमुक प्रहरमां, अमुक पणमां, अमुक
 विपणमां अने अमुक क्षणें दीक्षा ग्रहण करी डती. ” आ प्रकारे सामान्य
 भाष्यसे नेनी विस्मृति यथ ज्ञय एवा कालज्ञानने धारण करावनारी आ
 धारणा छे. (४) दुर्धर धारणामति—जे बुद्धिना अतिशय परिश्रम वडे धारण
 करी शक्य छे एवी धारणाने दुर्धर धारणा कडे छे. एवे ते दुर्धर (कठिन)
 विषय लंगलण (अनेक लांगाओना समूह रूप लण) अथवा श्रेणि समा
 रोहण आदि रूप होय छे. एवा कठिन विषयने जे धारण करावे छे तेने
 दुर्धर धारणामति कडे छे. (५) अनिश्रित धारणा—औत्पत्तिकी आदि बुद्धि
 वडे जे जे अनिश्रितने धारण करावे छे ते धारणाने अनिश्रित धारणा कडे
 छे. (६) असंदिग्ध धारणा—जे धारणा असंदिग्ध पदार्थने धारण करावे छे,
 तेनुं नाम असंदिग्ध धारणा छे.

अक्षिप्र (अशीघ्र) थी उल्टो शब्द क्षिप्र (शीघ्र) छे, अहुथी उल्टा
 अर्थना शब्द ओक छे, अहुविधथी उल्टो शब्द ओकविध छे अनिश्रितथी
 उल्टो शब्द निश्रित छे, ध्रुवथी उल्टो शब्द अध्रुव छे, अने असंदिग्धथी
 उल्टो शब्द सदिग्ध छे. आ प्रकारे ६ प्रकारना भीम पदार्थ पणु होय छे,

मतिः द्वादशविधाः द्वादशविधा भवति । सर्वासां मतीनां भेदास्तु षट्त्रिंशदधिकानि त्रीणिशतानि बोध्याः । तथाहि-श्रोत्रघ्राणजिहास्पर्शेन्द्रियग्राह्यत्वाद् व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः । श्रोत्र-चक्षु-घ्राण-जिहा-स्पर्श - नोइन्द्रियग्राह्यत्वात् अर्थावग्रहः षड्विधः । एवमेव श्रोत्रादि षडिन्द्रियग्राह्यत्वात् ईहाऽपि षड्विधा, अवायोऽपि षड्विधः धारणाऽपि च षड्विधा । एव सर्वसंकलनयाऽष्टाविंशति

है, सो जिस प्रकारसे अक्षिप्त पदार्थके बहु पदार्थके बहुविध पदार्थके ध्रुव पदार्थके और अनिश्रित एव असंदिग्ध पदार्थके विषयमें यह अवग्रह ईहा अवाय और धारणा रूप मतिज्ञान होता है, उसी प्रकारसे वह मतिज्ञान अवग्रहादि रूपसे क्षिप्त पदार्थमें एक पदार्थमें बहु पदार्थमें अध्रुव पदार्थमें और सन्दिग्ध पदार्थमें भी होता है, इसलिये अवग्रहके विषयभूत १२ प्रकारके पदार्थ हुए ईहाके विषयभूत १२ प्रकारके पदार्थ हुए अवायके विषयभूत १२ प्रकारके पदार्थ हुए और धारणाके विषयभूत भी १२ प्रकारके पदार्थ हुए और अर्थके विषयमें प्रकट पदार्थके विषयमें हुए ये अवग्रहादिक ५ इन्द्रिय और मनसे होते हैं इस तरह अर्थ विषयक मतिज्ञानके २८८ भेद हो जाते हैं, एवं व्यञ्जन अप्रकट पदार्थके विषयमें केवल एक अवग्रह रूपही ज्ञान होता है, और यह अप्रकट रूप पदार्थ भी बहु आदिके भेदसे १२ प्रकारका

जेम अक्षिप्त पदार्थना, षडु पदार्थना, षडुविध पदार्थना, ध्रुव पदार्थना, अनिश्रित पदार्थना अने असंदिग्ध पदार्थना विषयमां आ अवग्रह, छंडा, अवाय अने धारणा इप मतिज्ञान थाय छे, जे न प्रमाणे क्षिप्त, जेक पदार्थनां, षडु पदार्थनां, अध्रुव पदार्थनां, निश्रित पदार्थनां अने संदिग्ध पदार्थनां पशु आ अवग्रह, छंडा, अवाय अने धारणा इप मतिज्ञानने सद्भाव रहे छे. तथा अवग्रहना विषय इप १२ प्रकारना पदार्थ थया, छंडाना विषय इप १२-प्रकारना पदार्थ थया, अवायना विषयभूत १२ प्रकारना पदार्थ थया अने धारणाना विषयभूत पशु १२ प्रकारना पदार्थ थया. अने अर्थना संबंधमां-प्रकट पदार्थना विषयमां जे अवग्रहादि इप ज्ञान थाय छे ते पांच इन्द्रियो अने मननी सहायताथी थाय छे. आ प्रकारे मतिज्ञानना अर्थ विषयक कुल २८८ भेद थाय छे. व्यञ्जन इप जे अवग्रह छे तेना कुल ४८ भेद थाय छे. व्यञ्जनना विषयमां अप्रकट पदार्थना विषयमां केवल जेक अवग्रह इप न ज्ञान थाय छे. ते अप्रकट इप पदार्थ पशु पूर्वोक्त षडु आदिना लेखी १२ प्रकारना छाय छे. १२ प्रकारना आ व्यञ्जन अवग्रह

संख्यका मतिभेदा भवन्ति । ते च द्वादशभिः सह युगनात् मतिभेदाः षट्त्रिंशद्-
धिक शतत्रयसंख्यकाः भवन्तीति ॥ सू० ३७ ॥

अनन्तरसूत्रे मतिरुक्ता, मतिभेदवन्त एव तपरिचिनो भवन्तीति तपोभेदात्
निरूपयति—

मूलम्—छविहे वाहिरए तवे पणत्ते, तं जहा—अणसणं
१, ओमोयरिया २, भिकखायरिया ३, रसपरिच्चाए ४, काय-
किलेसो ५, पडिसंलीणया ६। छविहे अब्भंतरिष् तवे पणत्ते
तं जहा—पायच्छित्तं १, विणओ २, वेयावच्चं ३, सज्झाओ
४, ज्ञाणं ५, विडसग्गो ७ ॥ सू० ३८ ॥

छाया—षट्त्रिंशं वाह्य तपः प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अनगनम् १, अवमोदरिका
२, भिक्षाचर्या ३, रसपरित्यागः ४, कायक्लेशः ५, प्रतिसंलीनता ६। षट्त्रि-
ंशम् आभ्यन्तरिकं तपः प्रज्ञप्तम् तद्यथा—प्रायश्चित्तं १, विनयो २, वैयावृत्यं ३,
स्वाध्यायः ४, ध्यानं ५, व्युत्सर्गः ६ ॥ सू० ३८ ॥

टीका—' छविहे वाहिरिए ' इत्यादि—

तपेति—दहति ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधं कर्मेति तपः, तद्वाह्याभ्यन्तरभेदाद्
द्विविधम् । तत्र—आसेव्यमानं यत्तयो लोकेरपि तपस्त्वेन ज्ञायते, प्रायो वहिः

होता है, इसलिये १२ प्रकारके इस व्यञ्जन पदार्थके विषयमें होनेवाला
अवग्रह चक्षु और मनसे नहीं होनेके कारण और शेष इन्द्रियोंसेही
होनेके कारण ४८ प्रकारका होना है, २८८ और ४८ को परस्परमें
मिला देनेसे ३६६ भेद मतिज्ञानके हो जाते हैं, यही विषय टीकाकारने
इस टीका द्वारा प्रकट किया गया है ॥सू० ३७ ॥

इस प्रकारसे ऊपरके सूत्रमें मतिज्ञानका कथन किया है, मतिज्ञान
के भेदवाले तपस्वीजन होते हैं, अतः अब सूत्रकार तपके भेदका

यक्षु अने मन वडे थतो नथी पशु णाकीनी अर उन्द्रियो वडे ज थाय छे.
तेथी तेना १२×४=४८ लेह थथ न्य छे मतिज्ञानना पूर्वोक्त २८८ लेहोमां
आ ४८ लेहो उभेरवाथी कुल उदद लेहो थाय छे ओ ज विषयतुं टीकाकारे
आ टीका द्वारा अर्धी स्पष्टीकरणुं कथुं छे ॥ सू ३७ ॥

सूत्रकारे उपरना सूत्रमां मतिज्ञाननी प्रपशु करी. मतिज्ञानना लेहवाणा
तपस्वीओ होय छे. तेथी हुवे सूत्रकार तपना लेहोतुं निपशु करे छे.

शरीरस्य तापकृतया शोषकृतया वा यत् कर्माणि क्षययति तद् बाह्यं तप इत्युच्यते । यत्तु तपोलोकैस्त्वपस्तया नागिलक्षयते तत्तपो मोक्षप्राप्त्यन्तरङ्गसाधनत्वात् आभ्यन्तरिकमित्युच्यते । तत्र- बाह्यं तपः अनशनान्नमोदरिकादिभेदैः पञ्चविधं भवति । तत्र-अनशनम्=आहारत्यागः, तत्र-इत्वरयावत्कथिकभेदेन

निरूपण करतेहैं—“छव्विहे वाहिरतवे पणत्ते” इत्यादि सूत्र ३८ ॥

टीकार्थ—बाह्य तप ६ प्रकारका कहा गया है। जैसे—अनशन १ अन्नमोदरिका २ शिक्षाचर्या ३ रसपरित्याग ४ कायक्लेश ५ और प्रतिसंलीनता ६ इसी प्रकारसे आभ्यन्तर तप भी ६ प्रकारका होता है, जैसे—प्रायश्चित्त विनय २ वैद्यावृत्त्य ३ स्वाध्याय ४ ध्यान ५ और व्युत्सर्ग ६ ।

जो ज्ञानावरणीय आदि ८ प्रकारके कर्मों को जला देना है, वह तप है, यह तप बाह्यतप और आभ्यन्तर तपके भेदसे दो प्रकारका है। जो तप बाहरमें लोकों द्वारा तप रूपसे किया जाता है, अथवा बाहरमें शरीरका प्रायः तपानेवाला होनेके कारण उसका शोषक होनेके कारण जो कर्मोंको क्षय करता है, वह बाह्यतप है, तथा जो तप बाहरमें लोकों द्वारा तप रूपसे नहीं देखा जाता है, ऐसा वह तप मोक्ष प्राप्तिमें अन्तरङ्ग कारण होनेसे आभ्यन्तर तप है। इनमें बाह्यतप अनशन अन्नमोदरिका आदि भेदोंसे छह प्रकारका कहा गया है, इनमें चतुर्विध आहारका त्याग करना यह अनशन है, यह अनशन तप इत्वर एवं यावत्कथिकके भेदसे

टीकार्थ—“ छव्विहे वाहिरतवे पणत्ते ” इत्यादि—

बाह्यतपना नीचे प्रमाणे ६ प्रकार कहे छे—(१) अनशन, (२) अन्नमोदरिका, (३) शिक्षाचर्या, (४) रसपरित्याग, (५) कायक्लेश अने (६) प्रतिसंलीनता. अने ७ प्रमाणे आभ्यन्तर तपना पण्ण ६ प्रकारे कहे छे—

(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैद्यावृत्त्य, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान अने (६) व्युत्सर्ग. जे ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारनां कर्मोनि पाणीनाणे छे, तेतुं नाम तप छे. ते तपना बाह्यतप अने आभ्यन्तर तप नामना जे लेठ कहे छे.

जे तपने णडारथी जे लोकें द्वारा तप इपे ओणभवामां आवे छे अथवा बाह्य शरीरने सामान्यतः तपावनाइं अने कृश करनाइं डोय छे अने कर्मोना क्षय करनाइं डोय छे. ते तपने बाह्यतप कहे छे जे तपने बाह्यदृष्टिजे-लोकें द्वारा तप इपे हेणवामां आवतुं नथी जेतुं आन्तरिक तप के जे मोक्षप्राप्तिमां कारणभूत भने छे तेने आभ्यन्तर तप कहे छे तेमां जे बाह्यतप छे तेना अनशन, अन्नमोदरिका (अन्नमोदरिका) आदि ६ लेठ छे. अनशन, पान आदि आरे प्रकारना आहारना त्याग करवे तेतुं नाम अनशन छे. तेना इत्वर अने यावत्कथिक नामना

द्विविधम् । तत्र-इत्वरम्-इदं तीर्थनाश्रित्य चतुर्थीदि षण्मासान्तं बोध्यम् । यावत्कथिकं तु मरणावधि । इदं पुनः पादपोषगमनेङ्गितमरणभक्तपरिज्ञाभेदात्रिवि-
दम् ॥ १ ॥ तथा-अवमोदरिका-अवमम्-ऊनम् उदरं=जठरम्=अवमोदरं, तस्य-
करणम्-अवमोदरिका, सा च द्रव्यतो भक्तपानविषया, उपलक्षणादुपकरणविष-
या च । भावतस्तु क्रोधादिपरित्यागः ॥ २ ॥ भिक्षाचर्या-भिक्षार्थं चरणम्=
अष्टनं भिक्षाचर्या, निर्जराङ्गत्वात् अनशनवत् साऽपि तपः । अथवा-यद्यपि भिक्षा-
चर्या सामान्येनोक्ता तथापि विचित्राभिग्रहयुक्तत्वेन वृत्तिसंक्षेपरूपा विशिष्टा
साऽत्र ग्राह्या । यतोऽत्र वक्ष्यति-'छन्विहा गोवरचरिया' इति । इयं च न

दो प्रकारका कहा गया है, इनमें इत्वर तप पण्ड आदिकी तपस्यासे लेकर छह महिनेकी तपस्या तक होता है, और जो तप मरणावधि होता है, वह यावत्कथिक होता है, यावत्कथिक तप पादपोषगमन इंगित मरण एवं भक्तपरिज्ञाके भेदसे तीन प्रकारका होना है ? भूखसे कर्म आहारका लेना यह अवमोदरिका है । यह अवमोदरिका द्रव्यकी अपेक्षा भक्तपान विषयक और उपलक्षणसे उपकरण विषयक होती है । तथा भावकी अपेक्षासे क्रोधादि कषायोंके त्यागने रूप होती है । भिक्षाके निमित्त चर्या (भ्रमण) करना इसका नाम भिक्षाचर्या है । यह भिक्षाचर्या निर्जराका कारण होनेसे अनशनकी तरह तपरूप कही गई है । अथवा-यद्यपि भिक्षाचर्या सामान्य रूपसे यहाँ कही गई है, परन्तु वह विचित्र अभिग्रह युक्त होनेके कारण वृत्ति संक्षेप रूप विशिष्ट भिक्षा-

मे लेह कहा छे. अेक उपवास, जे उपवास अने जे प्रभाणे छे तास पर्यन्तना उपवासने इत्वर तप कडे छे जे अनशन भरषुकाण पर्यन्त आले छे ते अनशन ताने यावत्कथिक तप कडे छे यावत्कथिक तपना नीचे प्रभाणे त्रषु लेह छे—(१) पादपोषगमन, (२) इंगितमरण अने (३) भक्तपरिज्ञा अवमोदरिका—जेटडी भूष डाय तेटडी आहार न देतां आछे आहार देवे तेनुं नाम अवमोदरिका छे. द्रव्यनी अपेक्षाजे ते भक्तपान विषयक अने उपलक्षणनी अपेक्षाजे उपकरण विषयक डाय छे, तथा भावनी अपेक्षाजे क्रोधादि कषायाना त्यागइप डाय छे. भिक्षाचर्या--भिक्षाप्राप्ति निमित्ते चर्या करवी (इरवुं) तेनु नाम भिक्षाचर्या छे. आ भिक्षाचर्या निर्जराभां कारणभूत णनती डेवाथी तेने अनशननी जेम तपइप कही छे. अथवा-जे डे अडी भिक्षाचर्यानुं सामान्य इपे कथन करवामां आंयुं छे, परन्तु ते विविध अलिग्रह इप डेवाने अरजे वृत्तिसंक्षेप इप विशिष्ट भिक्षा अडीं त्रडषु

ततोऽत्यन्तभिन्ना । भिक्षाचर्यायामभिग्रहास्तु-द्रव्यक्षेत्रकालभावविषयतया चतु-
विधाः । तत्र द्रव्यतः ' अलेपकृतादिकमेव द्रव्यं ग्रहीष्ये ' इति । क्षेत्रतः ' परग्रा-
मगृहपञ्चकादिलब्धं ग्रहीष्ये ' इति । कालतः ' पूर्वाह्णादौ ' भावतः- ' मौनादि-
प्रवृत्ताद् ग्रहीष्ये ' इति ॥ ३ ॥ तथा-रसपरित्यागः-रसाः=दुग्धघृतादयः तेषां
परित्यागः ॥ ४ ॥ कायक्लेशः-कायस्य=शरीरस्य क्लेशः-वीरासनादिरूपः केश-
लुञ्चनादिरूपश्च ॥ ५ ॥ तथा-प्रतिसंलीनता=शुष्यता ॥ इयं च-इन्द्रियकषाययो-

चर्या यहाँ गृहीत हुई है, क्योंकि यहाँ पर आगे सूत्रकार कहनेवाले
हैं कि-" छत्रिहा गोयरचरिया " यह उससे अत्यन्त भिन्न नहीं
है । भिक्षाचर्यामें द्रव्य क्षेत्र काल और भावके अनुसार चार प्रकारके
अभिग्रह होते हैं, इनमें द्रव्यके अनुसार ऐसा अभिग्रह होता है, कि
में अलेपकृत आदि रूप द्रव्यही ग्रहण करूंगा । क्षेत्रकी अपेक्षा ऐसा
अभिग्रह होता है, कि मैं पर ग्रामके पांच आदि घरोंसे जो मिलेगा
वही ग्रहण करूंगा कालकी अपेक्षा ऐसा अभिग्रह होना है, कि पूर्वाह्न
आदि कालमें जो प्राप्त होगा वही मैं लूंगा एवं भावकी अपेक्षा ऐसा
अभिग्रह होता है, कि जो मौनादि रखकर मुझे आहार दो पोरसीके
पहले देगा उससे ही मैं आहार ग्रहण करूंगा
३ दुग्धघृत आदि रसोंका परित्याग करना यह रस परित्याग तप है,
वीरासन आदिसे स्थिर होना एवं केशलुञ्चना आदि करना यह सब
कायक्लेश तप है, प्रतिसंलीनता नाम शुष्यताका है, यह इन्द्रिय कषाय

करवायां आवी छे. सूत्रकार डवे पछीना सूत्रमां " छत्रिहा गोयरचरिया "
धृत्यादि भिक्षाचर्यानां ६ लोकोत्तं निरूपणं करवाना छे. भिक्षाचर्यामां द्रव्य, क्षेत्र
काण अने लावनी अपेक्षाअे अर प्रकारना अलिग्रह थाय छे. द्रव्यनी अपे-
क्षाअे अेवो अलिग्रह थाय छे के हु अलेपकृत आदि रूप द्रव्य अे अडणु
करीश. क्षेत्रनी अपेक्षाअे अेवो अलिग्रह थाय छे के हु गाममांथी पांच
आदि घरमांथी अे आहार प्राप्त थशे ते आहार अे अडणु करीश. काणनी
अपेक्षाअे अेवो अलिग्रह करवायां आवे छे के पूर्वाह्णु आदि काणमां अे
अनपान आदि प्राप्त थशे तेने अे हु अडणु करीश. लावनी अपेक्षाअे अेवो
अलिग्रह थाय छे के अे व्यक्ति मौनादि रात्रीने भने आहार वडोरावशे
तेना छथे अपायेवो आहार अे हु अडणु करीश.

दूध, घी आदि रसोना परित्याग करवो तेनुं नाम रसपरित्याग तप छे.
वीरासन आदि आसने अे अेसनुं, केशलुञ्चन करनुं वगेरे तपने कायक्लेश तप

ગવિષયા વિવિક્તશયનાસનવિષયાવેતિ ॥ ૬ ॥ इति । तथा—आभ्यन्तरिकं तपो-
ऽपि प्रायश्चित्तविनयादिभेदेन षड्विधम् । तत्र—प्रायश्चित्तम्—अतीचारशोधनम् ।
तच्च आलोचनादि भेदेन दशविधं बोध्यम् ॥ १ ॥ विनयः—विनीयते=दूरीक्रियते
कर्म येन सः, स च वक्ष्यमाण ज्ञानादि सप्तभेदरूपः । उक्तं च विनयस्वरूपम्—

“ जम्हा विणयइ कम्मं, अट्टविहं चाउरंतमोक्खाए ।

तम्हा उ वयंति विऊ, विणयंति विलीणससारा ॥ १ ॥ ”

छाया—यस्माद् विनयति कर्म अष्टविधं चातुरन्तमोक्षाय ।

तस्मात्तु वदन्ति चिद्वांसो विनयमिति विलीनसंसाराः

(तीर्थकरगणधराः) इति ॥ २ ॥

वैयावृत्यम्—व्यावृत्त्य=गુર્વાદિસેવારૂપશુભવ્યાપારવતઃ કર્મ વૈયાવૃત્યમ્ ગુર્વા
દીનામશનાદિના શુશ્રૂષણમ્ । તદુક્તમ્—

योग વિષયવાલી અથવા વિવિક્ત શય્યાસન વિષયવાલી होती है,
६ तथा आभ्यन्तर तप प्रायश्चित्त आदिके भेदसे ६ प्रकारका कहा
गया है, अतिचारोंका शोधन करना यह प्रायश्चित्त है, यह प्रायश्चित्त
आलोचना आदिके भेदसे १२ प्रकारका होता है १ जिससे कर्म “ विनी-
यते ” दूर कर दिये जाते हैं, वह विनय है यह विनय आगे कहे जाने-
वाले ज्ञानादिके भेदसे ७ प्रकारका है । कहा भी है—

“ जम्हा विणयइ कम्मं ” इत्यादि ।

व्यावृत्तका—गुरु आदिकी सेवा रूप शुभ व्यापारवालेका जो कर्म
है, वह वैयावृत्य है, अनशन आदि द्वारा गुरु आदि जनोंकी सुश्रूषा
करना इसका नाम वैयावृत्य है ।

કહે છે. પ્રતિસંલીનતા એટલે શુભતા. તે ઇન્દ્રિયો, કષાયો અને યોગરૂપ વિષ-
યવાળી હોય છે અથવા વિવિક્ત શય્યાસન વિષયવાળી હોય છે.

આભ્યન્તર તપના પ્રાયશ્ચિત્ત આદિ ૬ ભેદો કહ્યા છે. અતિચારોની
શુદ્ધિ કરવી તેનું નામ પ્રાયશ્ચિત્ત છે. તે પ્રાયશ્ચિત્તના આલોચના આદિ ૧૨
ભેદ કહ્યા છે. વિનય—જેના દ્વારા કર્મોને “ વિનીયતે ” દૂર કરી નાખવામાં
આવે છે, તેનું નામ વિનય છે. તે વિનયના જ્ઞાનાદિ જે સાત ભેદ છે તેનું
સૂત્રકાર આગળ વર્ણન કરવાના છે. કહ્યું પણ છે કે :

“ જમ્હા વિણયઈ કમ્મં ” ઇત્યાદિ—

ગુરુ આદિની સેવા કરવા રૂપ જે શુભ પ્રવૃત્તિ કરવામાં આવે છે તેનું
નામ વૈયાવૃત્ય છે. અજ્ઞાનાદિ દ્વારા ગુરુ આદિની જે શુશ્રૂષા કરવામાં આવે

“ વૈયાવચ્ચં વાવહભાવો ઇહ ધર્મ સાહનનિમિત્તમ્ ।

અળ્લાહ્યાણ ત્રિઠિના, સંપાચનમેસ ભાવત્યો ॥ ૧ ॥

છાયા—વૈયાવૃત્યં વ્યવૃત્તભાવઃ ઇહ ધર્મસાધનનિમિત્તમ્ ।

અન્નાદિકાનાં ત્રિધિના સંપાદનમેષ ભાવત્યઃ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

વૈયાવૃત્યં તુ આચાર્યવૈયાવૃત્ત્યાદિભેદાત્ દશવિધમ્ । તદુક્તમ્—

“ આચરિય ઉચ્ચજ્ઞાય, -થેરત્તયસ્મિન્ન ગિલાનસેઠાણં ।

સાહમ્પિયકુલગણસંઘમંતયં તમિદ્દકાયવં ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—આચાર્યોપાધ્યાયસ્થવિરતપસ્વિગ્લાનશૈક્ષાણામ્ ।

સાધર્મિક-કુલ-ગણ સહુ સંગતં તદિદ્દકર્તવ્યમ્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ॥ ૩ ॥

સ્વાધ્યાયઃ-સુપ્તુ આ=મર્યાદયા અધ્યયનં-સ્વાધ્યાયઃ-શ્રુતધર્મારાધનમ્ ।

સ ચ-વાચના પ્રચ્છના પરાવર્તનાડનુપેક્ષા ધર્મકથાભેદાત્ પચ્ચવિધો વોધ્ય ઇતિ

॥ ૪ ॥ ધ્યાનમ્-ધ્યાતિધર્માનમ્-એકમાત્રાવલમ્બનેન પરનાસંપૃક્તનીપશિત્વાયા

કહા ઠી હૈ—“ વૈયાવચ્ચં વાવહભાવો ” ઇત્યાદિ ।

હસ ગાથાકા પૂર્વોક્ત રૂપસેહી અર્થ હૈ, યહ વૈયાવૃત્ત્ય આચાર્ય વૈયા-
વૃત્ત્યાદિકે ભેદસે ૧૦ પ્રકારકા હૈ । કહા ઠી હૈ—

“ આચરિય ઉચ્ચજ્ઞાય ઠેર ” ઇત્યાદિ ।

આચાર્ય ૧ ઉપાધ્યાય ૨ સ્થવિર ૩ તપસ્વી ૪ ગ્લાન ૫ શૈક્ષ ૬
સાધર્મિક ૭ કુલ ૮ ગણ ૯ ઠૌર સંઘ ૧૦ હનકી વૈયાવૃત્તિ કરનેકે
ભેદસે વૈયાવૃત્ત્ય ૧૦ પ્રકારકા હૌતા હૈ, શ્રુતધર્મકી આરાધનાકા નામ
સ્વાધ્યાય હૈ, યહ સ્વાધ્યાય-વાચના ૧ પ્રચ્છના ૨ પરાવર્તના ૩ અનુપેક્ષા
૪ ઠૌર ધર્મકથા ૫ કે ભેદસે પાંચ પ્રકારકા હૈ । પચ્ચકે અભાવમેં જિસ

છે તેને વૈયાવૃત્ત્ય કહે છે. કહ્યું પણ છે કે “ વૈયાવચ્ચં વાવહભાવો ” ઇત્યાદિ.
આ ગાથાનો અર્થ ઉપર કહ્યા અનુસાર જ છે. તે વૈયાવૃત્ત્યના આચાર્ય વૈયા-
વૃત્ત્ય આદિ ૧૦ ભેદ કહ્યા છે. કહ્યું પણ છે કે :

“ આચરિય ઉચ્ચજ્ઞાય ઠેર ” ઇત્યાદિ—

વૈયાવૃત્ત્યનાં ૧૦ ભેદ છે—(૧) આચાર્ય, (૨) ઉપાધ્યાય, (૩) સ્થવિર,
(૪) તપસ્વી, (૫) ગ્લાન (ખીમાર), (૬) શૈક્ષ (નવ દીક્ષિત), (૭) સાધર્-
મિક, (૮) કુલ, (૯) ગણ અને (૧૦) સંઘ, આ દસેની સેવાશુશ્રૂષા કરવા
રૂપ ૧૦ પ્રકારનું વૈયાવૃત્ત્ય સમજવું.

શ્રુતધર્મની આરાધના રૂપ સ્વાધ્યાય હોય છે. તે સ્વાધ્યાયના વાચના,
પ્રચ્છના, પરાવર્તના, અનુપેક્ષા અને ધર્મકથા નામના પાંચ ભેદ કહ્યા છે.
પવનને અલાવે જેમ દીપકની જ્વાલા (આજ) સ્થિર રહે છે, તેમ કોઈ એક

इव चित्तस्य स्थिरीकरणम् । तच्च चतुर्थस्थानके चतुर्विधमुक्तम् । तत्र धर्म-शुक्ल-
ध्यानद्वयमेव तपोरूपं बोध्यम्, तयोरेव निर्जराकारणत्वात् । तद्धिन्नम् आर्त्तरौद्र-
ध्यानद्वयं तु बन्धकारणत्वात् तपोरूपमिति ॥ ५ ॥ तथा-व्युत्सर्गः-परित्यागः,
स च द्रव्यभावभेदाभ्यां द्विविधः । तत्र-द्रव्यतोव्युत्सर्गो गणशरीरोपध्याहारवि-
षयः, भावतस्तु क्रोधादिविषयः ६ इति ॥ सू० ३८ ॥

पूर्वोक्तेषु तपः स्वरूपेषु केचिद् विवादमध्यासन्ते, इति विवादस्वरूपमाह-

मूलम्—छविवहे विवाए पणत्ते, तं जहा-ओसक्कइत्ता १

उस्सक्कइत्ता २, अणुलोमइत्ता ३, पडिलोमइत्ता ४, भइत्ता ५,
भेलइत्ता ७ ॥ सू० ३९ ॥

छाया—पइविधो विवादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अववण्णक्य, उत्त्वण्णक्य, अनुलो-
मयित्त्वा, पडिलोमयित्त्वा, भत्त्वा, मिश्रयित्त्वा ॥ सू० ३९ ॥

प्रकार दीपककी लौं स्थिर रहती है, उसी प्रकारसे किसी एकके आल-
म्बनसे चित्तका स्थिर करना यह ध्यान है, चौथे स्थानमें वह ध्यान
चार प्रकारका कहा गया है, धर्म और शुक्ल ये ध्यानही तपोरूप होते
हैं, क्योंकि इन दोनोंमेंही निर्जराके प्रति हेतुता है । इनसे भिन्न जो
आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान हैं ये कर्मके कारण होनेसे तपोरूप नहीं
हैं । ५ परित्यागका नाम व्युत्सर्ग है, यह व्युत्सर्ग द्रव्य और भावसे
दो प्रकारका है, इनमें गणका शरीरका उपधिका एवं आहारका जो
परित्याग है, वह द्रव्य व्युत्सर्ग है, एवं क्रोधादि कषायोंका जो परित्याग
है, वह भावव्युत्सर्ग है ॥ सू० ३८ ॥

पूर्वोक्त इन तपके स्वरूपोंमें कितनेक जन विवाद करते हैं, अतः

वस्तुना आलम्बन वडे चित्तने स्थिर करवुं तेनुं नाम ध्यान छे. यथा
स्थानमां आ ध्यानना अर प्रकार कइया छे. धर्मध्यान अने शुक्ल ध्यानने अ
तपइय समजवा, कारणु के ते ये ध्याने अ निर्जरां कारणुभूत अने छे.
आर्त्तध्यान अने रौद्रध्यान कर्मअन्धनमां कारणुभूत अनता डोवाथी तेमने
तपोइय गण्णी शकाय नडीं व्युत्सर्ग--परित्यागतु नाम व्युत्सर्ग छे. ते
व्युत्सर्ग द्रव्य अने भावनी अपेक्षाये ये प्रकारने कइयो छे गणुने शरी-
रने, उपधिने अने आहारने अ परित्याग छे, ते द्रव्य व्युत्सर्ग छे, अने
क्रोधादि कषायोने अ परित्याग छे, ते भावव्युत्सर्ग छे. ॥ सू. ३८ ॥

ટીકા—‘ છન્વિહે ’ इत्यादि—

વિવાદઃ—ઋવિદર્થે વિ=વિરુદ્ધયોઃ—અસમ્મતયોર્યો વાદઃ=જલ્પઃ સ વિવાદઃ,
ઉક્તં ચાસ્ય સ્વરૂપમ્—

“ લન્ધિખ્યાત્યાદિના તુ સ્યાદ્, દુઃસ્થિતેનામહાત્મના ।

છલજાતિપ્રધાનો યઃ, સ વિવાદ ઇતિ સ્મૃતઃ ” ઇતિ ।

અયં ચ પદ્ધવિધઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ । તથથા—વિવાદસમયે પ્રતિપક્ષિણઃ પ્રશ્નસ્યોત્તરદા-
નેऽસમર્થઃ કેનાપ્યુપાયેન અવબ્ધવ્ય=અપસૃત્ય—દૂરીભૂય—અવસરલાભાય કાલક્ષેપં

અવ સૂત્રકાર વિવાદકે સ્વરૂપકા કથન કરતે હૈં—

“ છન્વિહે વિવાદે પળ્લત્તે ” इत्यादि सूत्र २९ ॥

ટીકાર્થ—વિવાદ ૬ પ્રકારકા કહા ગયાહૈ, જૈસે—ઓસક્કહત્તા આદિઃ
કિસી અર્થમેં નિરુદ્ધ અસંગત દો વિષયોંકો લેકર જલ્પ (બોલના) હોતા
હૈ, વહ વિવાદ હૈ, વિવાદકા સ્વરૂપ હસ પ્રકારસે કહા ગયા હૈ—

“ લન્ધિખ્યાત્યાદિના તુ ” इत्यादि ।

લન્ધિ ઋયાતિ આદિકી ઇચ્છાસે દુઃસ્થિત કિસી અમહાત્મા દ્વારા
જો જય પરાજયકી ભાવના લેકર છલજાતિ પ્રધાનતાવાલા જલ્પ હૈ, વહ
વિવાદ હૈ, યહ વિવાદ વાદી પ્રતિવાદીકા હોતાહૈ, યહ છહ પ્રકારકા હસ
પ્રકારસે હૈ—વિવાદકે સમય પ્રતિપક્ષીકે પ્રશ્નકે ઉત્તર દેનેમેં અસમર્થ
બના હુઆ યદિ કોઈ વાદી ડસસે દૂર હોકરકે અવસર લાભકે લિયે
કાલક્ષેપ કરકે જો પુનઃ વિવાદ કરના હૈ, વહ અવબ્ધવ્ય વિવાદ હૈ,

આગલા સૂત્રમાં તપના પ્રકારોનું નિરૂપણ કર્યું તે તપના વિષયમાં
કેટલાક ઘોઠા વિવાદ કરતા હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર વિવાદના સ્વરૂપનું
નિરૂપણ કરે છે. “ છન્વિહે વિવાદે પળ્લત્તે ” इत्यादि—

વિવાદ ૬ પ્રકારનો કહ્યો છે. જેમકે ‘ ઓસક્કહત્તા ’ આદિ ૬ પ્રકાર
સમજવા. કોઈ વિષયને અનુલક્ષીને—વિરુદ્ધ, અસમ્મત યે વિષયોને અનુલક્ષીને
કોઈ યે વ્યક્તિઓ વચ્ચે જે ચર્ચા ચાલે છે તેનું નામ વિવાદ છે. તેનું સ્વરૂપ
આ પ્રકારનું કહ્યું છે. “ લન્ધિખ્યાત્યાદિના તુ ” इत्यादि—

લન્ધિ ઋયાતિ આદિની કામનાથી કોઈ અમહાત્મા દ્વારા જય પરાજયની
ભાવના પૂર્વકની છળપ્રધાનતાવાળી જે ચર્ચા ચાલે છે તેનું નામ વિવાદ છે.
વાદી પ્રતિવાદી વચ્ચે આ વિવાદ થાય છે. તેના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર છે—
(૧) વિવાદ વખતે પ્રતિપક્ષીના પ્રશ્નનો ઉત્તર આપવાને અસમર્થ બનેલો વાદી
તે વખતે તો ત્યાંથી ખસી જાય છે, પણ અમુક કાળ જવા દઈને ફરી તેની
સાથે જે વિવાદ કરે છે તેનું નામ “ અવબ્ધવ્ય વિવાદ ” છે. (૨) ઘોઠા

कृत्वा यो विवादः पुनः क्रियते स तथा ॥ १ ॥ उत्प्लव्य लब्धावसरेण उत्सृत्य= स्वयं गत्वा यो विवादो विधीयते स तथा ॥ २ ॥ अनुलोमयित्वा-मध्यस्थं साम्ना, प्रतिपक्षिणं वा पूर्वं तत्पक्षाभ्युपगमेन अनुकूलं कृत्वा यो विवादः स तथा ॥ ३ ॥ प्रतिलोमयित्वा-पूर्णसामर्थ्यवता पूर्वं मध्यस्थं प्रतिपक्षिणं वा प्रतिकूलं कृत्वा यो विवादः स तथा ॥ ४ ॥ भक्त्वा मध्यस्थम् आसेव्य यो विवादः सः तथा ॥ ५ ॥ तथा-मिश्रयित्वा-मध्यस्थं स्वपक्षे कृत्वा यो विवादः स तथा ॥ ६ ॥ इति ॥ सू० ३९ ॥

‘ विवादासक्तचित्ताः क्षुद्रप्राणितया समुत्पद्यन्ते ’ इति क्षुद्रप्राणिस्वरूपं निरूपयति—

मूलम्—छविहा खुड्डा पाणा पण्णत्ता, तं जहा-वेदिया १, तेइंदिया २, चउरिंदिया ३, संमुच्छिमपंचिंदियातिरिक्खजो-णिया ४, तेउकाइया ५, वाउकाइया ६ ॥ सू० ४० ॥

अवसर पाकर पुनः जो स्वयं जा करके विवाद किया जाता है, ऐसा वह विवाद उत्प्लव्य है, मध्यस्थको अथवा शान्तिसे प्रतिपक्षीको पहिले उसके पक्षको स्वीकार कर अनुकूल करके जो विवाद किया जाता है, वह अनुलोमयित्वा विवाद है, पूर्ण सामर्थ्यसे युक्त हुए वादीके द्वारा पहिले मध्यस्थको अथवा प्रतिपक्षीको प्रतिकूल करके जो विवाद किया जाता है, वह प्रतिलोमयित्वा विवाद है, मध्यस्थकी अच्छी तरहसे सेवा करके जो विवाद किया जाता है, वह भक्त्वा विवाद है, तथा मध्यस्थको अपने पक्षमें करके जो विवाद किया जाता है, वह मिश्रयित्वा विवाद है ॥ सू० ३९ ॥

भणतां करी लते न न्धने ने विवाह करवामां आवे छे ते विवाहने ‘ उत्प्लव्य विवाह कडे छे. (३) मध्यस्थनी अथवा प्रतिपक्षीनी वातने पहिला स्वीकार करी लधने तेभने अनुकूल करी लधने ने विवाह करवामां आवे छे तेने “ अनुलोमयित्वा विवाह ” कडे छे. (४) पूर्ण सामर्थ्यथी युक्त अथवा वादी द्वारा पहिलां मध्यस्थने अथवा प्रतिपक्षीने प्रतिकूल करीने ने विवाह करवामां आवे छे तेनुं नाम “ प्रतिलोमयित्वा विवाह ” छे. (५) मध्यस्थनी सारी रीते सेवा करीने ने विवाह करवामां आवे छे तेनुं नाम “ लक्त्वा विवाह ” छे. “ मध्यस्थने पोताना पक्षमां करी नाभीने ने विवाह करवामां आवे छे तेनुं नाम “ मिश्रयित्वा विवाह ” छे. ॥ सू. ३९ ॥

छाया—पद्मविधाः क्षुद्राः प्राणाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—द्वीन्द्रियाः १, त्रीन्द्रियाः २, चतुरिन्द्रियाः ३, सम्भूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ४ तेजस्कायिकाः ५, वायुकायिकाः ६ ॥ सू० ४० ॥

टीका—‘ छत्रिहाखुडा ’ इत्यादि—

क्षुद्राः प्राणाः=क्षुद्रजीवाः, द्वीन्द्रियादिभेदैः पदसंख्यका बोध्याः । एषां क्षुद्रत्वं च अनन्तरभवे सिद्धिगमनाभावाद् बोध्यम् ।

अत्र सूक्ष्मत्रसाः तेजोवायुकायिका जीवा बोध्याः । किंच—एतेषु देवाना मुत्पत्तिर्न भवतीति हेतोरपि द्वीन्द्रियादीनां क्षुद्रत्वं बोध्यम् । देवानां यत्रोत्पत्तिर्भवति यत्र च न भवति, तदुक्तमेकया गाथया—

विवादासक्त चित्तवाले प्राणी क्षुद्रप्राणी रूपसे उत्पन्न होते हैं, अतः अब सूत्रकार क्षुद्र प्राणियोंके स्वरूपका कथन करते हैं—

“छत्रिहा खुडा पाणा पणत्ता” इत्यादि सूत्र ४० ॥

टीकार्थ—क्षुद्र प्राणी ६ प्रकारके कहे गये हैं जैसे—द्वीन्द्रिय १ त्रीन्द्रिय २ चतुरिन्द्रिय ३ सम्भूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च ४ तेजस्कायिक ५ और वायुकायिक ६ द्वीन्द्रियादिकोंके भेदोंसे जो क्षुद्र जीव ६ प्रकारके कहे गये हैं, सो इसका कारण यह है, कि ये सब अनन्तर भवमें सिद्धिमें गमन नहीं करते हैं अतः सिद्धिमें गमन करनेके अभावको लेकर इनमें क्षुद्रताका प्रतिपादन किया गया है । यहां तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव त्रस जानना चाहिये किंच इनमें देवोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, इस कारण भी द्वीन्द्रियादिकोंमें क्षुद्रता जाननी चाहिये देवोंकी जहां

विवादासक्त चित्तवाणा एवो क्षुद्रएवो इये उत्पन्न थाय छे. तेथी डवे सूत्रकार एवो क्षुद्रएवोना स्वरूपतुं निरूपणु करे छे.

टीकार्थ—“ छत्रिहा खुडा पाणा पणत्ता ” इत्यादि—

क्षुद्रएवोना ६ प्रकारे कथा छे—(१) द्वीन्द्रिय, (२) त्रीन्द्रिय, (३) चतुरिन्द्रिय, (४) सम्भूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, (५) तेजस्कायिक अने (६) वायुकायिक. द्वीन्द्रियादिक एवोने क्षुद्रएवो गणुवानुं कारणु नीचे प्रमाणु छे—
आ एवो अनन्तर लवमां सिद्धिगमन करी शकता नथी अ. रीते ते एवोमां अनन्तर लवमां सिद्धिगतिनी प्राप्तिने अलाव होवथी तेभनामां अर्ही क्षुद्रतानुं प्रतिपादन करवामां आव्युं छे. अर्ही तेजस्कायिक अने वायुकायिक एवोने सूक्ष्म त्रस जणुवा जेधजे. वणी द्वीन्द्रियादिकेमां देवानी उत्पत्तिथती नथी. ते कारणु पणु ते एवोने क्षुद्र गणी शकय छे. नीचेनी गाथामां

“ पुढवी आउवणस्सइ,—गम्भयपज्जत्तसंखजीवीसु ।

सगञ्चुयाणवासो, सेसा पडिसेहिया ठाणा ॥ १ ॥ ”

छाया—पृथिव्यन्वनस्पति गर्भजपर्याप्तसंख्यजीविषु ।

स्वर्गच्युतानां वासः शेषाणि प्रतिषेधितानि स्थानानि ॥१॥ इति ।

संभूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां तु पञ्चेन्द्रियत्वेऽपि मनसोऽभावेनावि-
वेकितया निर्गुणत्वात् क्षुद्रत्वं बोध्यमिति ॥ सू० ४० ॥

पद्भविधाः क्षुद्राः प्राणिनः प्रोक्ताः, तेषां विराधना यथा न भवेत्तथा साधु-
भिर्मिक्षाचर्या कर्तव्येति प्राप्तावसरां गोचरचर्यां पद्भविधत्वेन निरूपयति—

मूलम्—छविहा गोयरचरिया पणत्ता, तं जहा—पेडा १,
अछपेडा २, गोमुत्तिया ३, पतंगवीहिया ४, संबुक्कावट्टा ५,
गंतुं पच्चागया ६ ॥ सू० ४१ ॥

उत्पत्ति होती है, और जहां नहीं होती है यह बात इस गाथा द्वारा
व्यक्त की गई है—“ पुढवी आउ वणस्सइ ” इत्यादि ।

पृथिवीकायिकमें अप्कायिकमें वनस्पतिकायिकमें एवं गर्भज पर्याप्त
संख्यात वर्षकी आयुवालोंमें स्वर्गसे च्युत हुए जीवोंकी-देवोंकी उत्पत्ति
होती है । संभूर्च्छिम तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियोंमें जो देवोंकी उत्पत्ति होनेका
निषेध किया गया है, सो उसका कारण ऐसा है, कि उनमें पंचे-
न्द्रियता होने पर भी मनका अभाव रहता है, अत इससे उनमें अवि-
वेकनाके कारण निर्गुणता होनेसे क्षुद्रता रहती है । इस तरह सूत्र-
निर्दिष्ट क्षुद्र जीवोंमें देवोंकी उत्पत्ति नहीं होती है ॥ सू० ४० ॥

ये बात प्रकट करवायां आनी छे छे देवोनी उत्पत्ति कयां कयां थाय छे अने
कयां कयां थती नथी. “ पुढवी आउ वणस्सइ ” इत्यादि—

पृथ्वीकायिकोमां, अप्कायिकोमां, वनस्पतिकायिकोमां, अने गर्भज पर्याप्त
संख्यात वर्षना आयुवाणा जिवोमां देवलोकाभाथी च्युत थयेता जिवोनी
(देवोनी) उत्पत्ति थाय छे—अन्यत्र थती नथी संभूर्छिम तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रि-
योमां देवोनी उत्पत्ति थती नथी, अेबुं जे कडेवामां आव्यु छे तेतुं कारण
अे छे छे तेजो पञ्चेन्द्रिय डोवा छतां पणु तेमनामां मननेा अभाव डोय
छे. तेथी ते जिवोमां अविवेकताने कारणे निर्गुणता डोवाने बीधे क्षुद्रता डोय
छे. आ रीते सूत्रनिर्दिष्ट क्षुद्रजिवोमां देवोनी उत्पत्ति थती नथी,
अेम समज्जुं. ॥ सू. ४० ॥

છાયા—પદ્ધિધા ગોચરચર્યા પ્રજ્ઞતા, તદ્વથા—પેટા ૧, અર્ધપેટા ૨, ગોમૂ-
ત્રિકા ૩, પતજ્જવીથિકા ૪, શમ્બૂકાવર્તા ૫, ગત્વાપ્રત્યાગતા ૬ ॥ સૂ. ૪૧ ॥

ટીકા—‘ છન્વિહા ગોચરચરિયા ’ इत्यादि—

ગોચરચર્યા—ગોશ્વરણં ગોચરઃ, તદ્વદ્ યા ચર્યા સા । અયં ભાવઃ—યથા ગૌઃ
ઉચ્ચનીચત્વણાનિ સામાન્યતશ્ચરતિ, તથૈવ રાગદ્વેપરાહિત્યેન યઃ સાધુસ્ત્વનીચમધ્યમ-
કુલેષુ ધર્મસાધનનિમિત્તભૂતં દેહં પરિપાલયિતું ભિક્ષાર્થં ચરતિ, તસ્ય તથાચરણં
ગોચરચર્યૈત્યુચ્યતે । इयं—ગોચરચર્યા પેટાઽર્ધપેટાદિભેદેન પદ્ધિધા વોધ્યા । તત્ર—

યે ૬ પ્રકારકે ક્ષુદ્ર પ્રાણી કહે સો જિસ તરહસે ઇનકી વિરાધના ન હો
સકે હસ પ્રકારસે ભિક્ષાચર્યા સાધુકો કરની ચાહિએ અતઃ હસી સમ્બન્ધકો
લેકર અવ સૂત્રકાર ૬ પ્રકારકી ભિક્ષાચર્યા પ્રકટ કરતે હૈં—

“છન્વિહા ગોચરચરિયા પળ્ણત્તા” इत्यादि सूत्र ४१ ॥

ટીકાર્થ—ગોચરચર્યા ૬ પ્રકારકી કહી ગઈ હૈ, જૈસે—પેટા ૧ અર્ધપેટા ૨
ગોમૂત્રિકા ૩ પતજ્જવીથિકા ૪ શમ્બૂકાવર્તા ૫ ગત્વા પ્રત્યાગતા ૬ ગૌ કે
ચરનેકી જૈસી જો ચર્યા હોતી હૈ, વહ ગોચરચર્યા હૈ, તાત્પર્ય એસા હૈ,
કિ જૈસે ગાય સામાન્ય રૂપસે ઝંચે નીચેકે સ્થાનોકે તૃગોંકો ચરતી હૈ,
વસી પ્રકાર જો સાધુ રાગદ્વેષ રહિત હોકર ઝંચ નીચ કુલોંમૈં ધર્મ
સાધનકે નિમિત્તભૂત દેહકી પરિપાલનાકે લિયે ભિક્ષા કરતા હૈ, એસે
વસ સાધુકી વહ ભિક્ષાચર્યા ગોચરચર્યા હસ રૂપસે કહી ગઈ હૈ, ગોચર-
ચર્યા જો પેટા ૧ અર્ધપેટા આદિકે ભેદસે ૬ પ્રકારકી કહી ગઈ હૈ, સો હસક્તા

આગલા સૂત્રમાં છ પ્રકારના ક્ષુદ્રજીવે તું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે.
તેમની વિરાધના ન થાય એવી રીતે સાધુએ ભિક્ષાચર્યા કરવી જોઈએ આ
પ્રકારના સંબંધને અનુલક્ષીને હવે સૂત્રકાર ભિક્ષાચર્યાના ૬ પ્રકારોનું કથન
કરે છે. “ છન્વિહા ગોચરચરિયા પળ્ણત્તા ” इत्यादि—

ટીકાર્થ—ભિક્ષાચર્યા (ગોચર ચર્યા) છ પ્રકારની કહી છે—(૧) પેટા, (૨) અર્ધ-
પેટા, (૩) ગોમૂત્રિકા, (૪) પતજ્જવીથિકા, (૫) શમ્બૂકાવર્તા અને (૬) ગત્વા
પ્રત્યાગતા. ગાયની ચરવાની ક્રિયા જેની જે ચર્યા હોય છે તેનું નામ ગોચર-
ચર્યા છે. એટલે કે ગાય જેમ જાયે અને નીચે આવેલાં સ્થળોનું ઘાસ ચરે
છે, એ જ પ્રમાણે જે સાધુ રાગદ્વેષથી રહિત થઈને ધર્મની સાધનામાં નિમિત્ત
રૂપ દેહના પોષણ નિમિત્તે જાય, નીચ અને મધ્યમ કુળોમાં ગોચરની પ્રાપ્તિ
નિમિત્તે જે ચર્યા (ભ્રમણ) કરે છે તે ચર્યાને ભિક્ષાચર્યા કહે છે. તેના પેટા
અર્ધપેટા આદિ ૬ પ્રકારોનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

पेटा—पेटिकामञ्जूषा तद्वत् अभिग्रहविशेषवशात् साधुर्घस्यां भिक्षाचर्यायां ग्रामादीं
पाटकस्य चतुर्भागं कृत्वा विहरति सा 'पेटा' इत्युच्यते । १ ॥ अर्धपेटापेटाव-
च्चतुर्भागं क्षेत्रं कृत्वा तदर्धभागे भिक्षार्थं चरणम् ॥ २ ॥ गोमूत्रिका गोमूत्रिकेव
गोमूत्रिका । गोमूत्रिकावद् वक्राकारेण वामदक्षिणतो भ्रमणम् ॥ ३ ॥ पतङ्गवी-
थिका—पतङ्गोड्डयन सदृशी, तिड्डवदन्तरा बहुगृहाणि मुक्त्वा मुक्त्वा भ्रमणम् ॥४॥
शम्बूकावर्त्ता—शम्बूकः=शङ्खः, तद्वदावर्तो यस्यां सा तथा । सा द्विविधा—आभ्य-
न्तरशम्बूकावर्त्ता वहिः शम्बूकावर्त्ता च । यस्यां मध्यभागादारभ्य बाह्यगृहं याव-

भाव ऐसाहै, कि पेटा पेटिका मंजूषाकी तरह जिस भिक्षाचर्यामें अभि-
ग्रह विशेषके वश साधु ग्रामादिमें पाटकके (महोल्ला) चार भाग करके
भ्रमण करता है, ऐसी वह भिक्षाचर्या "पेटा" इस रूपसे कही गई
है १। पेटाकी तरह चार भागवाला क्षेत्र करके उसके आधे भागमें जो
साधु भिक्षाके निमित्त भ्रमण करता है, ऐसी वह भिक्षाचर्या अर्धपेटा
इस रूपसे कही गई है, गोमूत्रिकाकी तरह वक्राकारसे जिस भिक्षाचर्यामें
दायेंसे बायें, बायेंसे दायें भ्रमण करना होता है, ऐसी वह भिक्षाचर्या
"गोमूत्रिका" इस रूपसे कही गई है, पतङ्ग पक्षीके उड़नेकी तरह जिस
भिक्षाचर्यामें बीच २ में घरोंको छोड २ कर भ्रमण करना होता है, ऐसी
वह भिक्षाचर्या "पतङ्गवीथिका" इस रूपसे कही गई है, शम्बूक शङ्ख
की तरह जिस भिक्षाचर्यामें आवर्त होता है, ऐसी वह भिक्षाचर्या
"शम्बूकावर्ता" इस रूपसे कही गई है, शम्बूकावर्त्ता आभ्यन्तर

(१) पेटा भिक्षाचर्या—जेम पेटिका (मंजूषा) ना विभागो पाडेका
डोय छे तेम ग्रामादिना चार विभागो पाडी ने तेमांथी केर्य पणु ओक
विभागमां न भिक्षाप्राप्ति माटे भ्रमण करवुं तेनुं नाम पेटा भिक्षाचर्या छे.
(२) अर्धपेटा भिक्षाचर्या—पेटा भिक्षाचर्यामां आभादिना चार भाग पाडवामां
आवे छे तेमांथी ओक भागना अर्धा भागप्रमाणु क्षेत्रमां न भिक्षाप्राप्ति माटे
भ्रमण करवुं तेनुं नाम अर्धपेटा भिक्षाचर्या छे. (३) गोमूत्रिका—जे भिक्षा-
चर्यामां गोमूत्रिकानी जेम नमणुी तरइथी डाणी तरइ अने डाणी तरइथी
नमणुी तरइ भ्रमण करवुं पडे छे, ते भिक्षाचर्यानि गोमूत्रिका भिक्षाचर्या कडे
छे. (४) पतङ्गवीथिका—जे भिक्षाचर्यामां पतङ्गियानी जेम वर्येना घराने
छोडीने छूटा छत्राया घरामां भ्रमण करवामां आवे छे ते भिक्षाचर्यानि पतङ्ग-
वीथिका भिक्षाचर्या कडे छे (५) शम्बूकावर्ता—शम्बूक अटले शंभु जे
भिक्षाचर्यामां शंभुना जेवा आवर्तो डोय छे ते भिक्षाचर्यानि शम्बूकावर्ता

દટને પ્રથમા, વાહ્યગૃહાદારસ્ય મધ્યભાગવર્તિગૃહં યાવદ્ભ્રમણે તુ દ્વિતીયા ॥ ૬ ॥
 તથા-ગત્વા પ્રત્યાગતા ગત્વા પ્રત્યાગતં=પ્રત્યાગમનં યસ્યાં ભિક્ષાચર્યાયાં સા । અયં
 માવઃ-યસ્યાં ભિક્ષાચર્યાયાં સાધુરૂપાશ્રયાન્નિર્ગતઃ પ્રથમમેકસ્યાં ગૃહપક્ષ્ઠી ભિક્ષાં
 ગૃહ્ણન્ ક્ષેત્રપર્યન્તં યાતિ, તતઃ પ્રત્યાવૃત્તઃ પુનર્દ્વિતીયસ્યાં ગૃહપક્ષ્ઠી ભિક્ષાં ગૃહ્ણન્
 ઉપાશ્રયમાયાતિ સા તથા ॥ સૂ૦ ૪૧ ॥

અનન્તરસૂત્રે સાધૂનાં વિશિષ્ટાચર્યા પ્રોક્તા, સમ્પ્રતિ ચર્યાપ્રમ્તાવાદસાધુચ

શમ્બૂકાવર્ત્તાં ઓર વહિઃ શમ્બૂકાવર્ત્તાંકે ભેદસે દો પ્રકારકી કહી ગઈ
 હૈ, જિસ ભિક્ષાચર્યામં મધ્ય ભાગસે લેકર વાહ્ય ઘર તક ભ્રમણ કરનેમં
 ફિરનેમં આભ્યન્તર શમ્બૂકાવર્ત્તાં ભિક્ષાચર્યાં હોતી હૈ, એવં વાહ્ય ગૃહસે
 લેકર મધ્ય ભાગવર્ત્તાં ઘર તક ફિરનેમં દ્વિતીયા શમ્બૂકાવર્ત્તાં ભિક્ષા-
 ચર્યા હોતી હૈ ૫ । જા કરકે પ્રત્યાગમન જિસ ભિક્ષાચર્યામં હોતા હૈ,
 એસી વહ ભિક્ષાચર્યા ગત્વા પ્રત્યાયાતા ૬ હૈ, ઇસકા તાત્પર્ય એસા હૈ,
 કિ જિસ ભિક્ષાચર્યામં સાધુ ઉપાશ્રયસે નિકલ કર પ્રથમ એક ગૃહપક્ષ્ઠિમં
 ભિક્ષા લેના હૈ, વહાંસે ભિક્ષા લેકર ફિર વહ ક્ષેત્ર પર્યન્ત તક આગે ચલા
 જાતા હૈ, ઇસકે વાદ ફિર વહ વહાંસે ઊડતા હૈ ઓર દ્વિતીય ગૃહપક્ષ્ઠિમં
 ભિક્ષાકે નિમિત્ત પ્રવિષ્ટ હોતા હૈ, વહાંસે ભિક્ષા લેકર ફિર વહ ઉપા-
 શ્રયમં આ જાતા હૈ, એસી વહ ભિક્ષાચર્યા ૬ઠ્ઠે નમ્પરકી ભિક્ષાચર્યા હૈ ॥ સૂ૦ ૪૧ ॥

ઇસ ઉપરકે સૂત્રમં સાધુઓંકી વિશિષ્ટ ચર્યા કહી અથ સૂત્રકાર

ભિક્ષાચર્યા કહે છે તેના બે ભેદ છે--(૧) આભ્યન્તર શમ્બૂકાવર્ત્તાં, અને
 (૨) બહિર્શમ્બૂકાવર્ત્તાં આમાદિના મધ્યભાગમાં આવેલા ઘરોથી શરૂ કરીને
 બહારના ભાગમાં આવેલા ઘરો સુધી ભિક્ષાપ્રાપ્તિ માટે ભ્રમણ કરવું તેનું
 નામ આભ્યન્તર શમ્બૂકાવર્ત્તાં ભિક્ષાચર્યા છે. બહારના ભાગમાં આવેલા ઘરોથી
 શરૂ કરીને મધ્યભાગના ઘરો સુધી ભિક્ષાપ્રાપ્તિ માટે ભ્રમણ કરવું તેનું નામ
 બહિર્શમ્બૂકાવર્ત્તાં ભિક્ષાચર્યા છે.

(૬) ગત્વા પ્રત્યાયાતા—જે ભિક્ષાચર્યામાં ગમન કરીને પ્રત્યાગમન થાય
 છે, તે ભિક્ષાચર્યાને ગત્વાપ્રત્યાયાતા કહે છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે
 પ્રમાણે છે—જે ભિક્ષાચર્યામાં સાધુ ઉપાશ્રયમાંથી બહાર નીકળીને પહેલા
 એક ગૃહપક્ષ્ઠિમાંથી ભિક્ષા ગ્રહણ કરીને ક્ષેત્રપર્યન્ત સુધી આગળ આવ્યો
 જાય છે અને પછી ત્યાંથી પાછો ફરીને બીજા ગૃહપક્ષ્ઠિમાં ભિક્ષાને નિમિત્તે
 પ્રવેશ કરે છે અને ત્યાંથી ભિક્ષા ગ્રહણ કરીને તે ઉપાશ્રયમાં આવી જાય છે.
 આ પ્રકારની ભિક્ષાચર્યાને ગત્વાપ્રત્યાયાતા ભિક્ષાચર્યા કહે છે. ॥ સૂ. ૪૧ ॥

ઉપરના સૂત્રમાં સાધુઓની વિશિષ્ટ ચર્યાનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું.

र्यायाः फलभोक्तारो यान् स्थानविशेषान् प्राप्नुवन्ति तानाह—

मूलम्—जम्बुद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स य दाहिणेणं
इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए छ अवकंतमहानिरया पणत्ता,
तं जहा—लोले, १, लोलुए २, उद्दुडे ३, निदुडे ४, जरए ५,
पजरए ६। चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए छ अवकंता
महानिरया पणत्ता, तं जहा—आरे १, वारे २, मारे ३, रोरे ४,
रोरुए ५, खाडखडे ६ ॥ सू० ४२ ॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य च दक्षिणे अस्यां रत्नप्रभायां
पृथिव्यां षट् अपक्रान्तनिरयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—लोलो १, लोलुपः २, उद्दग्धः
३, निर्दग्धः ४, जरकः ५, प्रजरकः ६। चतुर्थ्यां खलु पङ्कप्रभायां पृथिव्यां षट्
अपक्रान्ता महानिरयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आरः १, वारः २, मारः ३, रोरः ४,
रोरुकः ५, खाडखडः ६ ॥ सू० ४२ ॥

टीका—‘ जम्बुद्वीवे दीवे ’ इत्यादि—

जम्बूद्वीपाख्य मध्यद्वीपान्तर्गतमन्दरपर्वतस्य दक्षिणे=दक्षिणतः अस्यां रत्न-
प्रभानामकपृथिव्याम् अपक्रान्तनिरयाः—अपक्रान्ताः=सकल शुभभावेभ्योऽपगता
अतिनिकृष्टा इत्यर्थः, ते च ते निरयाः=नरकाः, अथवा—‘ अपक्रान्तनिरयाः ’

चर्याके प्रतावको लेकर असाधुचर्याके फलको भोगनेवाले जिन स्थान
विशेषोंको प्राप्त करते हैं उन स्थानोंको कहते हैं—

“जम्बुद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स” इत्यादि सूत्र ४२ ॥

टीकार्थ—जम्बूद्वीप नामके मध्यद्वीपके अन्तर्गत जो मन्दर (मेरु) पर्वतहै,
उस पर्वतकी दक्षिण दिशामें इस रत्नप्रभा नामकी पृथिवीमें छह अप-
क्रान्त-सकल शुभ भावोंसे रहित-अतिनिकृष्ट ऐसे नरक कहे गये

हुवे सूत्रकार चर्याना विषय साथे सुसगत जेवा विषयतुं निरूपण करे छे.
जे साधु साधुचर्याना नियमोतुं पालन करतो नथी—असाधुचर्यातुं सेवन करे
छे. जेवा साधुने तेना इलस्वइपे जेवा स्थानोमां जन्म लेवे। पडे छे, ते हुवे
सूत्रकार प्रकट करे छे “ जम्बूद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स ” इत्यादि—

टीकार्थ—जम्बूद्वीप नामना मध्य द्वीपमां जे मन्दर पर्वत आवेले छे तेनी दक्षिण
दिशामां रत्नप्रभा नामनी पृथ्वीमां (पड़ेली नरकमां) ६ अपक्रान्त (सकल
शुभ भावोधी रहित, अतिनिकृष्ट जेवां) नरकावासो आवेलां छे अथवा

इतिच्छाया । तत्पक्षे-अपक्रान्ताः-अकमनीयाः अशोभनाश्च ते निरयाश्चेति विग्रहः । ते हि पट्ट संख्यकाः प्रज्ञप्ताः । यद्यपि सर्वेऽपि नरका एवमेव, तथापि तेष्वप्येषां वक्ष्यमाणनिरयाणां प्राधान्येनैते एव 'अवक्रन्त' इति विशेषणविशिष्टतया प्रोक्ताः । तेऽपक्रान्तनिरया लोग लोलुपादयो मूलोक्ता विज्ञेयाः । एवं 'चउत्थीए' त्ति-चतुर्थ्या पङ्कप्रभायाम् आरवासादयः पट्ट अपक्रान्तनिरयाः प्रज्ञप्ताः, तेऽपि मूलोक्ताएव बोध्याः ॥ सू० ४२ ॥

इत्थमसाधुचर्या फलभोक्तृस्थानत्वेन अपक्रान्तनरकानुत्तवा सम्प्रति साधुचर्या-फलभोक्तृस्थानविशेषानाह—

मूलम्—बंभलोए णं कप्पे छ विमाणपत्थडा पणत्ता, तं जहा-अरए १, विरए २, णीरए ३ णिम्मले ४ वितिमिरे ४ विसुद्धे ६ ॥ सू० ४३ ॥

हैं। अथवा—“ अवक्रन्त ” की संस्कृत छाया “ अपक्रान्त ” ऐसी भी होती है, इस पक्षमें अकमनीय अशोभन-ऐसे छह नरकावास कहे गये हैं। यद्यपि समस्त नरकावास ऐसेही हैं, परन्तु उन सबमें से इन निरयोमेंही प्रधान रूपसे “ अवक्रान्तता या अपक्रान्तता ” इसीलिये इन्हें इस विशेषणसे विशिष्ट करके कहा गया है, उनके नाम इस प्रकारसे हैं—लोल १ लोलुप २ उदग्ध ३ निर्दग्ध ४ जरक ५ और प्रजरक ६ इसी तरह चौथी पङ्कप्रभा पृथिवीमें ६ अपक्रान्त महानिरय (नरकावास) कहे गये हैं उनके नाम इस प्रकारसे हैं—आर १ वार २ मार ३ रोर ४ रोरक ५ और खाडखड ६ ॥ सू० ४२ ॥

“ अवक्रन्त ” आ पट्टनी संस्कृत छाया “ अपक्रान्त ” पणु थाय छे. ते संस्कृत छायांनी अपेक्षाये ते नरकावासोने अशोभन अथवा अकमनीय विशेषणु पणु लगाडी शक्य छे. जे के अथां नरकावासो अथां ज छे, छातां पणु आ ६ नरकावासोमां भास करीने “ अपक्रान्तता ” अथवा “ अपक्रान्तता ” छे, तेथी तेमने आ विशेषणु लगाडवामां आण्युं छे ते नरकावासोनां नाम आ प्रभाणु छे—(१) लोल, (२) लोलुप, (३) उदग्ध, (४) निर्दग्ध, (५) जरक अने (६) प्रजरक. अे ज प्रभाणु पङ्कप्रभा नामनी थोथी नरकमां पणु छ अपक्रान्त महानिरयो (नरकावासो) आवेलां छे तेमनां नाम आ प्रभाणु छे—१ आर, २ वार, ३ मार, ४ रोर, ५ रोरक अने ६ खाडखड ॥ सू. ४२ ॥

छाया—ब्रह्मलोके खलु कल्पे पद् विमानप्रस्तटाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अरजाः
१ विरजाः २ नीरजाः ३ निर्मलो ४ वितिमिरो ५ विशुद्धः ६ ॥ सू० ४३ ॥

टीका—‘ बंभलोगे ’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा । नवरम्-ब्रह्मलोको हि पञ्चमो देवलोकः । तत्र तु षडेव
प्रस्तटाः=भवनमध्यान्तरालभागाः सन्ति । यत्र देवलोकं यावन्तः प्रस्तटाः सन्ति,
तदुक्तमेकया गाथया, तथाहि—

“ तेरस वारस छ पंच चेत्र चत्तारि चउसु कप्पेसु ।

गेवेज्जेसु तिय तिय, एगो य अणुत्तरेसु भवे ॥ १ ॥ ”

छाया—त्रयोदश द्वादश षट् पञ्च चैव चत्वार श्रुतुषु कल्पेषु ।

त्रैवेयकेषु त्रयस्त्रय एकश्च अनुत्तरेषु भवेत् ॥ १ ॥ इति ।

ये ऊपरके सूत्रमें जो ६ अपक्रान्त निरयस्थान कहे गये हैं वे उन्हे
प्राप्त होते हैं, जो असाधुचर्या करते हैं, क्योंकि ये असाधुचर्याके फलको
भोगनेवालोंके स्थान हैं । अथ सूत्रकार साधुचर्याके फलको भोगनेवा-
लोंके स्थान विशेषोंका कथन करते हैं—

“ बंभलोए णं कप्पे छ विमाणपत्थडा पणत्ता ” इत्यादि सूत्र ४३ ॥

टीकार्थ—ब्रह्मलोककल्पमें ६ विमान प्रस्तर कहे गये हैं जैसे—अरजा, विरजा,
नीरजा, निर्मल, वितिमिर, और । विशुद्ध ब्रह्मलोक यह ५ वां देवलोक
है, भवनके मध्यमें अन्तराल भाग होते हैं उनका नाम प्रस्तट है, जिस
देवलोकमें जितने अन्तराल (बीचका खाली भाग) रूप प्रस्तट हैं, वे
इस गाथा द्वारा कहे गये हैं—“ तेरस वारस छपंच ” इत्यादि ।

उपरना सूत्रमां ६ अपक्रान्त निरयस्थानो कथां, तेमनी प्राप्ति असाधुचर्या
करनार लोपोने थाय छे, कारणु के असाधुचर्याना इलने लोगववानां ये स्थानो
छे. डवे सूत्रकार साधुचर्याना इलने लोगववानां ये स्थानो छे, ते स्थानोनुं
कथन करे छे. “ बंभलोए णं कप्पे छ विमाणपत्थडा पणत्ता ” इत्यादि—

टीकार्थ—ब्रह्मलोक कल्पमां नीचे प्रमाणे ६ विमान प्रस्तर आवेलां छे—

(१) अरजा, (२) विरजा, (३) नीरजा, (४) निर्मला, (५) वितिमिर अने (६)
विशुद्ध. ब्रह्मलोक पात्रमुं देवलोक छे लवननी मध्यमां ये अन्तराल (वच्येनो
ये आली लाग) डाय छे तेनुं नाम प्रस्तट छे. कथा देवलोकमां डेटला अन्त
राल इप प्रस्तट डाय छे ते नीचेनी गाथामां अताववामा आंशुं छे—

“ तेरस वारस छ पंच ” इत्यादि—

अयं भावः—प्रथमद्वितीययोस्त्रयोदशविमानप्रस्तटा भवन्ति । तृतीयचतुर्थयोर्द्वादश, पञ्चमे षट्, षष्ठे पञ्च, सप्तमे चत्वारः, अष्टमे चत्वारः, नवमे दशमयोश्चत्वारः, एकादशद्वादशयोश्चत्वारः, नवानां त्रैवेयकविमानानाम् अधोभागे त्रयो मध्यभागे त्रयः ऊर्ध्वभागे च त्रय इति नव, पञ्चषु अनुत्तरविमानेषु चैक इति सर्वविमानप्रस्तट् संख्या द्विषष्टि (६२) प्रमाणा भवतीति ॥ सू० ४३ ॥

अनन्तरं विमानवक्तव्यता प्रोक्ता, तन्प्रस्तावान् सम्प्रति नक्षत्रवक्तव्यतामाह—

मूलम्—चंद्रस्स षं जोइसिंदस्स जोइसरन्नो छ णक्खत्ता पुवंभागा ससखेत्ता तीसइसुहुत्ता पणत्ता, तं जहा—पुव्वाभइ-वया १, कत्तिया २ सहा ३ पुव्वाफग्गुणी ४ सूलो ५ पुव्वा-साढा ६। चंद्रस्स षं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो छ णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढुक्खेत्ता पन्नरससुहुत्ता पणत्ता, तं जहा—साय-मिसया १ भरणी २ अहा ३ अस्सेसा ४ साई ५ जेट्टा ६। चंद्रस्स षं

प्रथम और द्वितीय देवलोकमें १३ विमान प्रस्तट हैं, चतुर्थ देवलोकमें १२ विमान प्रस्तट हैं, पंचम देवलोकमें ६ विमान प्रस्तट हैं, छठे देवलोकमें पांच विमान प्रस्तट हैं, सातवे देवलोकमें चार विमान प्रस्तट हैं, नौवे दशमें देवलोकमें चार विमान प्रस्तट हैं, ग्यारहवें चारहवें देवलोकमें चार विमान प्रस्तट हैं, नौ त्रैवेयक विमानोंके अधोभागमें तीन मध्य भागमें तीन और उर्ध्वभागमें ३ इस प्रकारसे ९ विमान प्रस्तट हैं । तथा पञ्च अनुत्तर विमानोंमें एक प्रस्तट है, इन सब विमान प्रस्तटोंकी संख्या ८६२ हैं ॥ सू० ४३ ॥

पडेल्ले अने णीण देवलोकमां १३ विमान प्रस्तट छे त्रीण अने चोथा देवलोकमां १२ विमान प्रस्तट छे. पांचमां देवलोकमां छ, छट्ठा देवलोकमां पांच सातमां देवलोकमां ४ अने आठमा देवलोकमा पणु ४ विमान प्रस्तट छे. नवमां अने दसमां देवलोकमां चार विमान प्रस्तट छे अगियारमां अने बारमां देवलोकमां पणु चार विमान प्रस्तट छे. नव त्रैवेयक विमानानां अधो-भागमां ३, मध्यभागमां ३ अने उर्ध्वभागमां ३ विमान प्रस्तट छे. पांच अनुत्तर विमानानां अेक प्रस्तट छे. ते णथां विमान प्रस्तटोनी संख्या ६२ छे. ॥ सू. ४३ ॥

जोइसिंदस्स जोइसरन्नो छ नक्खत्ता उभयंभागा दिवड्डुखेत्ता पण-
यालीसमुहुत्ता पणत्ता, तं जहा-रोहिणी १, पुणवसू २ उत्तराफ-
ग्गुणी ३, विसाहा ४ उत्तरासाढा ५ उत्तराभद्रवया ॥सू०४४॥

छाया—चन्द्रस्य खलु ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य षट् नक्षत्राणि पूर्व-
भागानि समक्षेत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—पूर्वाभाद्रपदा १, कृत्तिका
२, मघा ३, पूर्वाफाल्गुनी ४, मूलम् ५, पूर्वाषाढा ६। चन्द्रस्य खलु ज्योतिषे-
न्द्रस्य ज्योतिषराजस्य षट् नक्षत्राणि नक्तं भागानि अपार्द्धक्षेत्राणि पञ्चदशमुहू-
र्त्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—शतभिषक् १ भरणी २ आर्द्रा ३ आश्लेषा ४, स्वातिः
५, ज्येष्ठा ६। चन्द्रस्य खलु ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य षट् नक्षत्राणि उभय-
भागानि द्व्यपार्द्धक्षेत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—रोहिणी १,
पुनर्वसू २, उत्तराफाल्गुनी ३, विशाखा ४, उत्तराषाढा ५, उत्तराभाद्रपदा ६, ॥सू०४४॥

टीका—‘ चंद्रस्स णं ’ इत्यादि—

ज्योतिषेन्द्रस्य=ज्योतिषदेवानां मध्ये ऐश्वर्ययुक्तस्य ज्योतिषराजस्य चन्द्रस्य
खलु षट् नक्षत्राणि पूर्वभागानि—पूर्वेण=पूर्वभागेण अग्रेण—अप्राप्तेनैव चन्द्रेण
इत्यर्थः, भुज्यन्ते सेव्यन्ते—युज्यन्ते यानि तानि—अप्राप्तेनैव चन्द्रेण भुज्यमानानि
समक्षेत्राणि—समं—स्थूलन्यायमाश्रित्य त्रिंशन्मुहूर्त्तभोग्यत्वेन समानं क्षेत्रम्=आका-
शदेशलक्षणं येषां तानि, अतएव—त्रिंशन्मुहूर्त्तानि—त्रिंशत् मुहूर्त्तानि चन्द्रभोगो येषां
तानि तथोक्तानि प्रज्ञप्तानि । तद्यथा—पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिकेत्यादीनि । उक्तंचात्र—

अथ सूत्रकार विमानके अन्तरालका वक्तव्यताका कथन करके
नक्षत्र वक्तव्यताका कथन करते हैं—

“चंद्रस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरन्नो” इत्यादि सूत्र ४४ ॥

टीकार्थ—ज्योतिषेन्द्र ज्योतिष देवोंके मध्यमें ऐश्वर्ययुक्त-ज्योतिषराज चन्द्र
के ये ६ नक्षत्र पूर्वसेव्य हैं, अर्थात् अप्राप्त चन्द्रके द्वारा भुज्यमान हैं,
और समक्षेत्रवाले हैं तथा तीस मुहूर्त्तवाले हैं । उनके नाम इस प्रकारसे
हैं पूर्वाभाद्रपदा १ कृत्तिका २ मघा ३ पूर्वाफाल्गुनी ४ मूल ५ और

विमाननी अन्तरालनी वक्तव्यतानुं कथन करीने हवे सूत्रकार नक्षत्रानुं
कथन करे छे. “ चंद्रस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरन्नो ” इत्यादि—

टीकार्थ—ज्योतिषेन्द्र (ज्योतिष देवोंमें ऐश्वर्य संपन्न) ज्योतिषराज चन्द्रना
आ ६ नक्षत्रो पूर्वसेव्य छे ओटवे के अप्राप्त चन्द्र द्वारा भुज्यमान छे,
समक्षेत्रवाणां छे अने ३० मुहूर्त्तवाणां छे. (१) पूर्व भाद्रपदा, (२) कृत्तिका,

“ पुव्वा तिन्नि य मूलो, मह कित्ति य अग्गिमा जोगा ” ।

छाया—पूर्वाणि त्रीणि च मूलं मघा कृत्तिका अग्रिमयोगानि । इति ।

तथा—ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिपराजस्य चन्द्रस्य खलु पट् नक्षत्राणि नक्त भागानि—नक्तं=रात्रौ भज्यन्ते=सेव्यन्ते चन्द्रेण यानि तानि—चन्द्रस्य समयोगीनि, तथा—अपार्थक्षेत्राणि—अपार्थ=समक्षेत्रापेक्षयाऽर्थं क्षेत्रम्=आकाशदेशलक्षणं येषां तानि, अत एव—पञ्चदशमुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि । तथा—शतभिषगित्यादि । उक्तं च—

“ अद्दाऽसेसा साई सयभि समभिई य जेट्ट समजोगा ” ।

छाया—आर्द्राऽश्लेषा स्वातिः शतभिषक् अभिजिच्च ज्येष्ठा समयोगानि ” इति ।

तथा—ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिपराजस्य चन्द्रस्य पट् नक्षत्राणि उभयभागानि—उभयतः=पूर्वतः पश्चाच्च भज्यन्ते=सेव्यन्ते चन्द्रेण यानि तानि—पूर्वापरतश्चन्द्रेण भुज्यमानानि, तथा—द्वयपार्थक्षेत्राणि—द्वितीयम् अपार्थं यत्र तद् द्वयपार्थ—

पूर्वापाठा ६ । कहा भी है—“ पुव्वा तिन्नि य मूलो ” इत्यादि ।

मूल मघा और कृत्तिका ये तीन और पूर्वके तीन नक्षत्र ये अग्रिम योगवाले हैं । तथा—ज्योतिषेन्द्र ज्योतिपराज चन्द्रके ये ६ नक्षत्र रात्रिमें चन्द्रमाके द्वारा सेव्य हैं, अपार्थ क्षेत्रवाले हैं, समक्षेत्रकी अपेक्षा आधा है, आकाशदेशरूप क्षेत्र जिन्होंका ऐसे हैं—एवं १५ मुहूर्त्तवाले हैं । उनके नाम इस प्रकारसे हैं—शतभिषक् १ भरणी २ आर्द्रा ३ अश्लेषा ४

“ अद्दाऽसेसा साह ” इत्यादि ।

आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, शतभिषक्, अभिजा और ज्येष्ठा ये नक्षत्र समयोगवाले हैं, ज्योतिषेन्द्र ज्योतिपराज चन्द्रके ६ नक्षत्र उसके द्वारा पूर्वसे और ऊपरसे दोनों तरफसे सेव्य कहे गये हैं—द्वयपार्थ क्षेत्र—

(३) मघा, (४) पूर्व शङ्खुनी, (५) मूल अने (६) पूर्वापाठा. कल्यु पलु छे डे

“ पुव्वा तिन्नि य मूलो ” इत्यादि—

मूल, मघा अने कृत्तिका तथा पूर्वना (आगता) त्रयु नक्षत्रो अग्रिम योगवाला छे. तथा आ ६ नक्षत्रो रात्रे ज्योतिषेन्द्र ज्योतिपराज चन्द्र द्वारा सेव्य छे, अपार्थ क्षेत्रवाला छे, समक्षेत्रकी अपेक्षासे अर्धा आकाश देशरूप क्षेत्रवाला छे अने १५ मुहूर्त्तवाला छे. तेमना नाम आ प्रमाणे छे—

(१) शतभिषक, (२) भरणी, (३) आर्द्रा, (४) अश्लेषा, (५) स्वाती अने (६) ज्येष्ठा. कल्यु पलु छे डे “ अद्दाऽसेसा साई ” इत्यादि—

आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाती, शतभिषक, अभिजित अने ज्येष्ठा आ नक्षत्रो समयोगवाला छे. नीचेनां ६ नक्षत्रो ज्योतिषेन्द्र ज्योतिपराज चन्द्र द्वारा पूर्व अने अपर (पश्चिम), अने तरङ्गी सेव्य कल्यु छे, द्वयपार्थ क्षेत्रवालां

સાર્થકં ક્ષેત્રમ્=આકાશદેશલક્ષણં પञ્ચચત્વારિંશન્મુહૂર્તપ્રમાણં येषां तानि तथोक्तानि, अत एव-पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्तानि प्रज्ञप्तानि । तद्यथा-‘रोहिणी पुनर्वसु’-इत्यादि । उक्तं च—

“ उत्तरतिन्नि विसाहा, पुणव्वसू रोहिणी उभयजोगा । ”

છાયા—ઉત્તરાત્રીણિ વિશાખા પુનર્વસુ રોહિણી ઉભયયોગાનિ—ઇતિ ।

एवं विधानि नक्षत्राणि यदा भवन्ति, तदा सुभिक्षं भवति, अन्यथा तु दुर्भिक्षम् । तदुक्तम्—

“ उक्तक्रमेण नक्षत्रैर्युज्यमानस्तु चन्द्रमाः । ”

સુભિક્ષકૃદ્ વિપરીતં, યુજ્યમાનોઽન્યથા ભવેત્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ॥ સૂ૦ ૪૪ ॥

અનન્તરસૂત્રે ચન્દ્રેણ યુજ્યમાનાનિ નક્ષત્રાણિ સ્થાનપદ્કત્વેનોક્તાનિ, ચન્દ્ર

વાલે કહે ગયે હૈં—સાર્થકં એક ક્ષેત્રવાલે કહે ગયે હૈં, અર્થાત્ ડેઠ ક્ષેત્રવાલે ઓર ૪૫ મુહૂર્તવાલે કહે ગયે હૈં । ઉનકે નામ હસ પ્રકારસે હૈં—રોહિણી ૧ પુનર્વસુ ૨ ઉત્તરાષાઠગુની ૩ વિશાખા ૪ ઉત્તરાષાઠા ૫ ઓર ઉત્તરાભાદ્રપદા ૬ । કહા ઓ હૈ—“ ઉત્તરતિન્નિ વીસાહા ” ઇત્યાદિ ।

ઉત્તરાકે ૩ ત્રીજ તથો વિશાખા, પુનર્વસુ એવં રોહિણી યે ૬ નક્ષત્ર ઉભય યોગવાલે કહે ગયે હૈં । હસ પ્રકારકે નક્ષત્ર જષ્ હોતે હૈં, તવ સુભિક્ષ હોતા હૈ નહીં હોતે હૈં તવ દુર્ભિક્ષ હોતા હૈ—કહા ઓ હૈ—

“ ઉત્તક્રમેણ નક્ષત્રૈઃ ” ઇત્યાદિ ॥ સૂ૦ ૪૪ ॥

હસ ઝબરકે સૂત્રમેં ચન્દ્રમાકે દ્વારા યુજ્યમાન નક્ષત્ર છહ સ્થાનક રૂપસે કહે અથ સૂત્રકાર ચન્દ્ર શબ્દકે પ્રસ્તાવકો લેકર ચન્દ્ર શબ્દ ઘટિત

કહ્યા છે, ડેઠ ક્ષેત્રવાળા કહ્યા છે અને ૪૫ મુહૂર્તવાળા કહ્યા છે. તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે--(૧) રોહિણી, (૨) પુનર્વસુ, (૩) ઉત્તરા ઠાલગુની, (૪) વિશાખા, (૫) ઉત્તરાષાઠા અને (૬) ઉત્તર ભાદ્રપદા. કહ્યું પણ છે કે :

“ ઉત્તર તિન્નિ વીસાહા ” ઇત્યાદિ--

ઉત્તરના ત્રણ તથા વિશાખા, પુનર્વસુ અને રોહિણી આ ૬ નક્ષત્રો ઉભય યોગવાળા કહ્યાં છે. આ પ્રકારના નક્ષત્રો જ્યારે હોય છે ત્યારે સુભિક્ષ (સુકાળ) હોય છે, અને જ્યારે નથી હોતાં ત્યારે દુષ્કાળ પડે છે. કહ્યું પણ છે કે : “ ઉત્તક્રમેણ નક્ષત્રૈઃ ” ઇત્યાદિ—॥ સૂ ૪૪ ॥

આગલા સૂત્રમાં ચન્દ્ર દ્વારા યુજ્યમાન નક્ષત્રોનું છ સ્થાનક રૂપે કથન કરવામાં આવ્યું. હવે સૂત્રકાર જેના નામની સાથે ચન્દ્ર શબ્દ ઘટિત થયો છે

शब्दस्य प्रस्तुतत्वात् सम्प्रति तद्व्यतिनामिचन्द्रकुलकरसूत्रमाह—

मूलम्—अभिचन्दे षं कुलकरे छ धणुसयाइं उइं उच्चत्तेणं
होत्था ॥ सू० ४५ ॥

छाया—अभिचन्द्रः खलु कुलकरः पइ धनुश्शतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेनाभवत् ।
॥ सू० ४५ ॥

टीका—‘ अभिचन्देण ’ इत्यादि—

अमुष्यामवसर्पिण्याम् उत्पन्नः पञ्चदशकुलकरेषु दशमः, मत्तसु चतुर्था वा
अभिचन्द्रनामा कुलकर उच्चत्वेन पट्गत्तधनुः प्रमाणोऽभवदिति ॥ सू० ४५ ॥

अभिचन्द्र कुलकरवंशोत्पन्नत्वाद् भरतविषयकं सूत्रमाह—

मूलम्—भरहे षं राया चाउरंतचक्रवटी छ पुवसयसहस्ताइं
महाराया होत्था ॥ सू० ४६ ॥

छाया—भरतः खलु राजा चातुरन्तचक्रवर्ती पट् पूर्वशतसहस्राणि महाराजो-
ऽभवत् ॥ सू० ४६ ॥

टीका—‘ भरहे षं ’ इत्यादि—

चातुरन्तचक्रवर्ती—चत्वारः=समुद्रत्रयहिमवल्लक्षणा अन्ताः=भवसानानि यस्याः

अभिचन्द्र कुलकरके सम्बन्धमें सूत्र कहते हैं—

“अभिचन्देण कुलकरे धणु” इत्यादि सूत्र ४५ ॥

टीकार्थ—अभिचन्द्र कुलकर १५ कुलकरोंमेंसे १० वां कुलकर जो इस अव-
सर्पिणी कालमें उत्पन्न हुआ है, वह अथवा सात कुलकरोंमें चौथा कुल-
कर ऊंचाईमें ६०० धनुषप्रमाण कहा गया है ॥ सू० ४५ ॥

अभिचन्द्र कुलकरके वंशमें उत्पन्न होनेके कारण अब सूत्रकार
भरतविषयक सूत्र कहते हैं—

येवा अभिचन्द्र कुलकरना विषयमां सूत्रनुं कथन करे छे,

“ अभिचन्देण कुलकरे धणु ” इत्यादि—

टीकार्थ—अभिचन्द्र कुलकरना शरीरनी ऊंचाई ६०० धनुषप्रमाणु होती, १५
कुलकरोंमांसा दसमां कुलकर अभिचन्द्र थय गया तेओ आ अवसर्पिणीकाणमां
थय गया अथवा सात कुलकरोंमां चौथा कुलकर अभिचन्द्र होता, ॥ सू. ४५ ॥

उवे सूत्रकार अभिचन्द्र कुलकरना वंशमां उत्पन्न थयेला भरतना विष-
यमां सूत्र कहे छे. “ भरहेणं राया चाउरंत ” इत्यादि—

सा चतुरन्ता, तस्या अयं चातुरन्तः, स चासौ चक्रवर्तीचेति तथोक्तो भरतो राजा
षट्पूर्वशतसहस्राणि=षट्पूर्वलक्षाणि महाराजोऽभवदिति । चतुरशीतिलक्षवर्षाणि
चतुरशीतिलक्षसंख्यया गुणितानि एकं पूर्वं विज्ञेयमिति ॥ सू० ४६ ॥

अभिचन्द्रकुलोत्पन्नत्वात् पार्श्वस्य, तत्साधर्म्यात् वासुपूज्यचन्द्रप्रभयोश्च
संबन्धिकं किञ्चित् स्थानपट्टकत्वेनाह—

मूलम्—पापस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स छे सया
वाईणं सदेवमणुयासुराए परिस्ताए अपराजियाणं संपया होत्था ।
वासुपुज्जे णं अरहा छहिं पुरिसप्रएहिं सद्धिं मुंडे जाव पँवइए ।
चंदप्पभे णं अरहा छम्मासे छउमत्थे हुत्था ॥ सू० ४७ ॥

छाया—पार्श्वस्य खलु अर्हतः पुरुषादानीयस्य षट् शतानि वादिनां सदेव-
मनुजासुरायां परिषदि अपराजितानां सम्पद् अभवत् । वासुपूज्यः खलु अर्हन्
षड्भिः पुरुषशतैः सार्द्धं मुण्डो यावत् प्रतजितः । चन्द्रप्रभः खलु अर्हन् पण्मासान्
छन्नस्थोऽभवत् ॥ सू० ४७ ॥

टीका—‘पापस्स णं’ इत्यादि—
पुरुषदानीयस्य आदीप्यंते=उपादीयते यः स आदानीयः—उपादेयः—पुरुषाणाम्
आदानीयः—पुरुषादानीयः पुरुषश्रेष्ठइत्यर्थः तस्य पार्श्वस्य अर्हतः खलु ‘सदेव

“भरहेणं राया चाउरंत” इत्यादि सूत्र ४६ ॥
टीकार्थ—चतुरन्तके तीन समुद्र और हिमवत् रूप अन्तवाली पृथिवीके चक्र-
वर्ती भरतराजा ६ लाख पूर्वतरु महाराज पदमें रहे हैं । ८४ लाख वर्षका
१ पूर्वाङ्ग होता है, और ८४ लाख पूर्वाङ्गका एक पूर्व होता है ॥ सू० ४६ ॥
अभिचन्द्रके कुलमें उत्पन्न होनेके कारण पार्श्वनाथ भगवान्के
सम्बन्धमें और इसी साधर्म्यसे वासुपूज्य एवं चन्द्रप्रभुके सम्बन्धमें
सूत्रकार कुछ कथन के स्थानकोसे करते हैं—

चातुरन्त चक्रवर्ती (त्रिषु समुद्र अने हिमवत् पर्वत इय आर अत-
वाणी पृथ्वीना चक्रवर्ती राज) भरत राजअे ६ लाख पूर्व सुधी महाराजानुं
पदं लोण०युं छतुं ८४ लाख वर्षानुं अेक पूर्वांग थाय छे अने ८४ लाख
पूर्वांगनुं अेक पूर्व थाय छे ॥ सू. ४६ ॥
अभियन्द्रना कुलमां उत्पन्न थयेला पार्श्वनाथ भगवानना साधर्म्यां
अने अे ७ साधर्म्यं छेवाने कारणे वासुपूज्य अने चन्द्रप्रभुना विषयमां
सूत्रकार ६ स्थानकेने अनुइय सूत्र कडे छे,

मनुजा सुरायात्-देवैः सहिता मनुजाः सदेवमनुजाः, ते च असुराश्च यस्यां सा तथा-
तस्यां-देवमनुजासुरसहितायां परिषदि=तमायाम् अपराजितानां=पराजयमप्राप्त-
वतां वादिनां=वादकर्तृणां पट्ट शतात्मिका सम्पदभूदिति । तथा-वासुपूज्योऽर्हन्-
खलु पट्टशतसंख्यकैः पुरुषैः सह मुण्डो भूत्वाऽगारात् अनगारितां प्रव्रजित इति ।
तथा-चन्द्रप्रभोऽर्हन् खलु पट्टासान् यावत् छत्रस्थावस्थायामतिष्ठदिति । सू० ४७।

पूर्वसूत्रे 'छत्रस्थः' इत्युक्तम्, छत्रस्थश्चेन्द्रियोपयोगवान् भवतीतीन्द्रिय-
प्रत्यासत्त्या त्रीन्द्रियाश्रितं संयममसंयमं चाह—

मूलम्-तेइंदिया जीवा णं अस्मारभमाणस्स छविहे संजमे
कज्जइ, तं जहा-घाणामयाओ सोक्खाओ अवरोवेत्ता भवइ
१, घाणमएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवइ २। जिब्भामयाओ
सोक्खाओ अवरोवेत्ता भवइ ३, जिब्भामएणं दुक्खेणं असं-
जोएत्ता भवइ ४। एवं चैव फासामयाओ वि ॥ ६ ॥ तेइंदिया
जीवा णं समारभमाणस्स छविहे असंजमे कज्जइ, तं जहा-
घाणामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवइ १, घाणामएणं
दुक्खेणं संजोएत्ता भवइ २, जाव फासामएणं दुक्खेणं संजो-
एत्ता भवइ ३ ॥ सू० ४८ ॥

“पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स” इत्यादि सूत्र ४७ ॥

पुरुषश्रेष्ठ पार्श्वनाथ अर्हन्तकी देवो मनुजो एवं असुरोस्से सहित
परिषदामे अपराजित अन्य प्रतिवादियो द्वारा अजेयवादियोकी सम्पत्ति
रूप संख्या ६०० थी वासुपूज्य भगवान् ६०० पुरुषोंके साथ मुंडित होकर
अगारावस्थासे अनगारावस्थासे प्रव्रजित हुए थे । चन्द्रप्रभ भगवान् ६
महीना तक छत्रस्थावस्थामे रहे थे ॥ सू० ४७ ॥

“पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स” इत्यादि—

पुरुषश्रेष्ठ पार्श्वनाथ अर्हन्तकी देवो, मनुजो एवं असुरोस्से सहित
परिषदामे अन्य प्रतिवादीयो द्वारा अजेय येवा वादीयो रूप शिष्यसंपत्ति
६०० नीं डती, वासुपूज्य भगवान् ६०० पुरुषो साथे मुंडित थडने गृहस्था-
वस्थानो परित्याग करीने अणुगारावस्थासां प्रव्रजित थया डता, चन्द्रप्रभ
भगवान् ६ मास सुधी छत्रस्थ अवस्थाभां रह्या डता ॥ सू० ४७ ॥

छाया—त्रीन्द्रियान् जीवान् खलु असमारभमाणस्य षड्विधः संयमः क्रियते, तद्यथा—घ्राणमयात् सौख्यात् अव्यवरोपयिता भवति १, घ्राणमयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति २ । जिह्वामयात् सौख्यात् अव्यवरोपयिता भवति ३, जिह्वामयेन दुःखेन असंयोजयिता भवति ४ । एवमेव स्पर्शमयादपि ६ । त्रीन्द्रियान् जीवान् समारभमाणस्य षड्विधोऽसंयमः क्रियते, तद्यथा—घ्राणमयात् सौख्यात् व्यवरोपयिता भवति १, घ्राणमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति २, यावत् स्पर्शमयेन दुःखेन संयोजयिता भवति ६ ॥ सू० ४८ ॥

टीका—‘ ते इंदिया ’ इत्यादि—

त्रीन्द्रियान्=घ्राणजिह्वास्पर्शरूपेन्द्रियत्रयवतो जीवान् असमारभमाणस्य=अविराधयतो जीवस्य षड्विधः संयमः क्रियते=भवति । तद्यथा—घ्राणमयात् सौख्यात्=घ्राणमयं यत् सौख्यं तत्त्रीन्द्रियान् जीवान् अव्यवरोपयिता—अपृथकारको भवति १, ततश्च घ्राणमयेन दुःखेन—घ्राणेन्द्रियसंबन्धि यद्दुःखं तेन तान्त्रीन्द्रियजीवान् असंयोजयिता=असंयोजको भवति २ । एवं जिह्वामयात् स्पर्शमयाच्च सौख्यात् अव्यवरोपयिता भवति, ततश्च जिह्वामयेन स्पर्शमयेन च दुःखेन असंयो-

ऊपरके सूत्रमें छद्मस्थ ऐसा कहा है, सो छद्मस्थ प्राणी इन्द्रियोपयोगवाला होता है, अतः अब सूत्रकार इन्द्रिय प्रत्यासत्तिको लेकर त्रीन्द्रियको आश्रित करके संयम और असंयमका कथन करते हैं—

“तेइंदिया जीवाणं असमारभमाणस्त” इत्यादि सूत्र ४८ ॥

टीकार्थ—जो घ्राण जिह्वा स्पर्शन इन तीन इन्द्रियोंवाले जीवोंकी विराधना नहीं करताहै, उसको ६ प्रकारका संयम होताहै, जैसे—एक तो वह घ्राणमय सौख्यसे उनका अव्यवरोपयिता (नहीं झारनेवाला) होता है, १ दूसरे घ्राणमय दुःखसे वह उनका असंयोजित होताहै २, अर्थात् घ्राण नासिकाका दुःख उत्पन्न नहीं करता है । तीसरे जिह्वामय—सौख्यसे अव्यवरोपयिता (नाश करने वाला) नहीं होता

ऊपरना सूत्रमें ‘ छद्मस्थ ’ पहले प्रयोग थयो छे. ओवो छद्मस्थ एव इन्द्रियोपयोगवाणो डाय छे. तेथी उवे सूत्रकार त्रीन्द्रिय लवोनी रक्षा अने विरोधता इप संयम अने असंयमनु कथन करे छे.

“ तेइंदिया जीवाणं असमारभमाणस्त ” इत्यादि

टीकार्थ—जे एव घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय अने स्पर्शेन्द्रिय आ त्रयु इन्द्रियोवाणा लवोनी डिक्षा करतो नथी, तेना द्वारा ६ प्रकारना संयमनु पालन थाय छे—(१) ते तेने (त्रीन्द्रिय लवने) घ्राणेन्द्रिय द्वारा प्राप्त थतां सुभने नाशकर्ता थतो नथी. (२) ते तेनी घ्राणेन्द्रियने दुःख उत्पन्न करनाशे थतो

જયિતા ભવતિ ૬। અત્ર સંયમાસંયમવતોરભેદોપચારાત્ સંયમી એવ સંયમત્વેનોક્ત
 હતિ વોધ્યમ્ । તથા—ત્રીન્દ્રિયાનુ જીવાનુ વિરાધયતસ્તુ તત્તદિન્દ્રિયજનિત સૌખ્યાત્
 વ્યપરોપણરૂપઃ, તત્તદિન્દ્રિયસમ્વન્ધિદુઃસ્વસંયોજનરૂપશ્ચેતિ પઢ્વિધોઽસંયમો
 ભવતિ । એતદેવાહ સૂત્રકારઃ ‘ તેહિન્દ્રિયા જીવાણં સમારભમાણસ્ત ’ ઇત્યાદિના ।
 અત્ર—અવ્યવરોપણસંયોજન ચાનાસૂત્રરૂપત્વાત્ સંયમઃ, તદ્વિન્નં વ્યપરોપણં સંયો-
 જનં ચાસૂત્રરૂપત્વાદસંયમો વોધ્ય ઇતિ ॥ સૂ૦ ૪૮ ॥

હૈ ૩ ચૌથે વહ જિહ્વામય દુઃસ્વસે અસંયોજયિતા હૈ ૪ અર્થાત્ જિહ્વાકો
 દુઃસ્વ ઉત્પન્ન નહીં કરતા હૈ, હસી તરહસે વહ સ્પર્શમય સુખસે અવ્યવ-
 રોપયિતા હોના હૈ ૫ ઓર હસી તરહ વહ સ્પર્શમય દુઃસ્વસે અસંયોજ-
 યિતા હોતા હૈ ૬ જો જીવ તેહિન્દ્રિય જીવોંકી વિરાધના કરતા હૈ, ડસકો
 ૬ પ્રકારકા અસંયમ હોનાહૈ, કયોંકિ—એક તો વહ ઘ્રાણમય સૌખ્યસેડસે
 વ્યપરોપિત (નાશ) કરતાં હૈ ૧ ડૂસરે ઘ્રાણમય દુઃસ્વસે ડસે
 સંયોજિત કરતા હૈ ૨ તીસરે, વહ રસના હિન્દ્રિયકે સુખ કા
 જિહ્વામય સૌખ્ય સે વ્યવરોપિત કરતા હૈ ૩ ચૌથે
 વહ જિહ્વામય દુઃસ્વસે ડસે સંયોજિત કરતા હૈ ૪ પાંચવે વહ
 સ્પર્શન હિન્દ્રિયકે સુખસે ડસે વંચિન રહિત કરતા હૈ ૫ ઓર છઠે સ્પર્શન
 હિન્દ્રિયકે દુઃસ્વસે વહ ડસે સંયોજિત કરતા હૈ ૬ યહાં પર સંયમ ઓર
 અસંયમવાલેયેં અભેદકે ડપચારસે સંયમીહી સંયમરૂપસે ક્રહા ગયા હૈ,
 યહાં પર અવ્યવરોપણ ઓર અસંયોજન યે અનાસૂત્રરૂપ હોનેસે સંયમ

નથી. (૩) તે તેના રસનેન્દ્રિય દ્વારા પ્રાપ્ત થતાં સુખનો નાશકર્તા થતો નથી.
 (૪) તે તેની જિહ્વાને દુઃખ ઉત્પન્ન કરનારો બનતો નથી (૫) તે તેની
 સ્પર્શેન્દ્રિય દ્વારા તેને પ્રાપ્ત થતાં સુખનો નાશકર્તા થતો નથી (૬) તે તેની
 સ્પર્શેન્દ્રિયને દુઃખ આપનારો બનતો નથી.

જે જીવ ત્રીન્દ્રિય જીવોની વિરાધના કરે છે તેના દ્વારા ૬ પ્રકારનો
 અસંયમ સેવાય છે—(૧) તે માણસ તેના ઘ્રાણેન્દ્રિયના સુખનો નાશકર્તા બને
 છે. (૨) તે તેને ઘ્રાણેન્દ્રિયના સુખનો જનક બને છે (૩) તે તેના રસને-
 ન્દ્રિયના સુખનો નાશકર્તા બને છે. (૪) તે તેના રસનેન્દ્રિયના દુઃખનો ઉત્પા-
 દક બને છે. (૫) તે તેના સ્પર્શેન્દ્રિયના સુખનો નાશકર્તા બને છે. (૬) તે
 તેના સ્પર્શેન્દ્રિયના દુઃખનો ઉત્પાદક બને છે.

અહીં સંયમ અને સંયમવાળામાં અભેદના ઉપચારની અપેક્ષાએ
 સંયમીને જ સંયમ. રૂપે પ્રતિપાદિત કરવામાં આગ્યો છે. અહીં અવ્યવરોપણ
 (અલગ નહીં કરવાનું) નામ અવ્યવરોપણ છે) અને અસંયોજન અનાસૂત્ર

अनन्तर सूत्रे संयमोऽसंयमश्च स्थानपट्टकत्वेन निर्दिष्टः; संयमासंयमयोः प्ररूपणा च मनुष्यक्षेत्र एव क्रियते इति तद्गतवस्तूनि स्थानपट्टकत्वेन प्ररूपयन् पञ्चपञ्चाशत्सूत्राणि प्राह —

मूलम्—जंबुद्वीवे दीवे छ अकम्मभूमीओ पणत्ताओ, तं जहा—हेमवए १, हेरणवए २, हरिवासे ३, रम्मगवासे ४, देव-कुरा ५, उत्तरकुरा ६ । १ । जंबुद्वीवे दीवे छवामा पणत्ता, तं जहा—भग्हे १, एश्वए २, हेमवए ३, हेरन्नवए ४, हरिवासे ५, रम्मगवासे ६ । २ । जंबुद्वीवे दीवे छ वासहरपवत्तया पणत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते १; महाहिमवंते २, निसढे ३, नीलवंते ४ रूपी ५ सिहरी ६ । ३ । जंबूमंदरदाहिणे णं छ कूडा पणत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंतकूडे १, वेसमणकूडे २, महाहिमवंतकूडे ३, वेरुलियकूडे ४, निसढकूडे ५, रुयगकूडे ६ । ४ । जंबूमंदर उत्तरे णं छ कूडा पणत्ता, तं जहा—नीलवंतकूडे १, उवदंसणकूडे २, रुपिकूडे ३, मणिकंभणकूडे ४, सिहरिकूडे ४, तिगिच्छकूडे ६ । ५ । जंबुद्वीवे द्वीवे छ महद्वहा पणत्ता, तं जहा—पउमद्वहे १, महापउमद्वहे २, तिगिच्छद्वहे ३, केसरिद्वहे ४, महापोंडरीयद्वहे ४, पुंडरीयद्वहे ६ । ६ । तत्थ णं छ देवयाओ महिड्डियाओ जाव पल्लोवमट्टिइयाओ परिवसंति, तं जहा—सिरी १, हिरी २, धिई

रूप हैं, और इनसे भिन्न जो व्यपरोपण और संयोजन हैं वे आस्रव रूप होनेसे असंयम रूप हैं । अव्यपरोपयिता “ का तात्पर्य जो अपृथक्-कारक होता है ” ऐसा है ॥ सू० ४८ ॥

३५ डोवाथी संयम ३५ छे, अने व्यपरोपण अने संयोजन आस्रव ३५ डोवाथी असंयम ३५ छे. ‘अव्यपरोपयिता’ आ पदने अर्थ “ अलग नई करनार ” थाय छे. ॥ सू. ४८ ॥

३, किन्ती ४, बुद्धी ४, लच्छी ६ । ७ । जंबू मंदरदाहिणे णं छ
महानईओ पणत्ताओ, तं जहा-गंगा १, सिंधू २, रोहिया ३,
रोहितंसा ४, हरी ४, हरिकंता ६ । ७ । जंबू मंदरउत्तरेणं छ
महानइओ पणत्ताओ, तं जहा-नरकंता १, नारीकंता २, सुव-
न्नकूला ३, रूपकूला ४, रत्ता ४, रत्तवई ६ । ९ । जंबूमंदरपुरत्थिमे
णं सीयाए महानईए उभयकूले छ अंतरनईओ पणत्ताओ तं
जहा-गाहावई १, दहावई २, पंकवई ३, तत्तजला ४, मत्तजला
४, उम्मत्तजला ६ । १० । जंबूमंदर पच्चत्थिमेणं सीओदाए महा-
नईए उभयकूले छ अंतरनईओ पणत्ताओ, तं जहा-खोरोदा
१, सीहसोया २, अंतोवाहिणी ३, उम्मिमालिणी ४, फेगमा-
लिणी ५, गंभीरमालिणी ६ । ११ । धायईमंडदीवपुरत्थिमद्धे णं
छ अकम्मभूमीओ पणत्ताओ, तं जहा-हेमवए १, एवं जहा
जंबुदीवे दीवे तथा । नदी जाव अंतरणईओ । २२, जाव पुक्ख-
रवरदीवडूपच्चत्थिमद्धे भाणियव्वं । ५५। सू० ४९ ॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे पद् अकम्मभूमयः प्रज्ञप्ताः, नद्यथा—हेमवतं १, हेरण्य-
वतं २, हरिषर्प ३, रम्पकवर्ष ४, देवकुरवः ५, उत्तरकुरवः ६ । १ । जम्बूद्वीपे

इस ऊपरके सूत्रमें संघम और असंघम ६ स्थानोंसे कहा गया है,
संघम और असंघमकी प्ररूपणा मनुष्य क्षेत्रमेंही होती है, अतः अब
सूत्रकार मनुष्यक्षेत्र गत वस्तुओंकी प्ररूपणा ६ स्थानोंसे करते हैं इस
प्ररूपणामें ये ५५ सूत्र हैं—“जम्बूद्वीपेण दीवे ॥ इत्यादि।

आगला सूत्रमां संघम अने असंघमनां ६ स्थानोनी प्रज्ञप्ता करवामां
आवी. संघम अने असंघमनी प्रज्ञप्ता. मनुष्य क्षेत्रमां ज थाय छे. तेथी
हुवे सूत्रकार मनुष्यक्षेत्रमां आवेदा स्थानोनी ६ स्थानोनी अपेक्षाअे प्रज्ञप्ता
करे छे. ५५ सूत्रो वडे आ प्रज्ञप्ता करवामां आवी छे.

द्वीपे षड् वर्षाणि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-भरतम् १, ऐरवतं २, हैमवतं ३, हैरण्यवतं ४, हरिवर्षं ५, रम्यकवर्षम् ६ । ६। २। जम्बूद्वीपे द्वीपे षड् वर्षधरपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-क्षुद्र हिमवान् १, महाहिमवान् २, निषधो ३, नीलवान् ४, रुक्मी ५, शिखरी ६ । ३। जम्बूमन्दरदक्षिणे खलु षट्कूटाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-क्षुद्रहिमवत्कूटः १, वैश्रवणकूटः २, महाहिमवत्कूटः ३, वैडूर्यकूटः ४, निषधकूटः ५, रुचक कूटः- ६ । ४। जम्बू मन्दरोत्तरे खलु षट्कूटाः - प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-नीलवत्कूटः १, उपदर्शन कूटः २, रुक्मिकूटः ३, मणिकाञ्चनकूटः ४, शिखरि कूटः ५, तिगिच्छ कूटः ६ । ५। जम्बूद्वीपे द्वीपे षड् महाह्रदाः प्रज्ञप्ताः

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें ६ अकर्म्मभूमियां कही गई हैं, उनके नाम इस प्रकारसे हैं-हैमवत १ हैरण्यवत २ हरिवर्ष ३ रम्यकवर्ष ४ देव-कुरु ५ और उत्तरकुरु ६ (१)

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें ६ वर्ष कहे गये हैं-जैसे-भरत १ ऐरवत २ हैमवत ३ हैरण्यवत ४ हरिवर्ष ५ और रम्यकवर्ष ६ (२)

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें छह वर्षधर पर्वत कहे गये हैं-जैसे क्षुद्रहिमवान् १ महा हिमवान् २ निषध ३ नीलवान् ४ रुक्मी ५ और शिखरी ६ (३)

जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी दक्षिण दिशामें छह कूट कहे गये हैं-जैसे-क्षुद्रहिमवत्कूट १ वैश्रवणकूट २ महाहिमवत्कूट ३ वैडूर्य कूट ४ निषधकूट ५ और रुचक कूट ६ (४)

जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी उत्तर दिशामें छह कूट कहे गये हैं-जैसे-

“ जम्बूद्वीपेण दीवे ” इत्यादि-

जम्बूद्वीप नामना द्वीपमां ६ अकर्म्मभूमियो कही छे तेमनां नाम नीये प्रमाणे छे--(१) हैमवत, (२) हैरण्यवत, (३) हरिवर्ष, (४) रम्यकवर्ष (५) देवकुरु अने (६) उत्तरकुरु ॥ १ ॥

जम्बूद्वीप नामना द्वीपमां ६ वर्ष कहां छे--भरत, (२) ऐरवत, (३) हैमवत, (४) हैरण्यवत, (५) हरिवर्ष अने (६) रम्यकवर्ष ॥ २ ॥

जम्बूद्वीप नामना द्वीपमां ६ वर्षधर पर्वता आवेला छे तेमनां नाम नीये प्रमाणे छे--(१) क्षुद्रहिमवान् (२) महाहिमवान् (३) निषध, (४) नीलवान् (५) रुक्मी, अने (६) शिखरी ॥ ३ ॥

जम्बूद्वीपना मन्दर पर्वतनी दक्षिण दिशामां ६ कूट आवेलां छे-

तद्यथा-पद्महृदः १, महापद्महृदः २, तिगिच्छहृदः ३, केशरिहृदः ४, महा-
पुण्डरीक हृदः ५, पुण्डरीक हृदः ६। ६। तत्र खलु पद् देवताः महर्द्धिका यावत्
पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा-श्रीः १, ह्रीः २, धृतिः ३, कीर्तिः ४,
बुद्धिः ५, लक्ष्मीः ६। ७। जम्बू मन्दरदक्षिणे खलु पद् महानद्यः प्रज्ञप्ताः
तद्यथा-गङ्गा १, सिन्धुः २, रोहिता ३, रोहितांशा ४, हरिः ५, हरिकान्ता
६। ८। जम्बूमन्दरोत्तरे खलु पद् महानद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-नरकान्ता १, नारी-
कान्ता २, सुवर्णकूला ३, रुक्मकूला ४ रक्ता ५ रक्तवती ६। ९। जम्बूपन्दस्य-

नीलवत्कूट १ उपदर्शनकूट २ रुक्मिकूट ३ मणिकाञ्चन कूट ४ शिखरि-
कूट ५ और तिगिच्छकूट ६ (५)

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें छह महाहृद (द्रह) कहे गये हैं-जैसे-पद्महृद १
महापद्म हृद २ तिगिच्छहृद ३ केशरिहृद ४ महापुण्डरीक हृद ५ और
पुण्डरीक हृद ६ (६) इनमें छह देवियां महाकृद्धिवाली यावत् एक पल्योप-
सकी स्थितिवाली रहती हैं उनके नाम इस प्रकारसे हैं-श्री १ ह्री २ धृति ३
कीर्ति ४ बुद्धि ५ एवं लक्ष्मी ६ (७)

जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी दक्षिण दिशामें छह महानदियां कही
गई हैं-जैसे-गङ्गा १ सिन्धु २ रोहिता ३ रोहितांशा ४ हरि ५ और
हरिकान्ता ६ (८) जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी उत्तरदिशामें छह महा-

(१) भुद्रुडिमवत्कूट, (२) वैश्रवणकूट, (३) मंडाडिमवत्कूट, (४) वैदूर्यकूट, (५)
निषधकूट अने (६) रुचककूट ॥ ४ ॥

जम्बूद्वीपना मन्दर पर्वतनी उत्तर दिशामें ६ कूट आवेलां छे--
(१) नीलवत्कूट, (२) उपदर्शनकूट, (३) रुक्मिकूट, (४) मणिकाञ्चनकूट, (५)
शिखरीकूट अने (६) तिगिच्छकूट ॥ ५ ॥

जम्बूद्वीप नीमना द्वीपमां नीचे प्रमाणे ६ मंडाहृद आवेलां छे--
(१) पद्महृद, (२) महापद्महृद, (३) तिगिच्छहृद, (४) केशरीहृद, (५) महा-
पुण्डरीकहृद अने (६) पुण्डरीकहृद ॥ ६ ॥

उपयुक्त ङ्कोमां मंडाकृद्धि आदिथी संपन्न ६ देवीयो रडे छे तेमनां
नाम (१) श्री, (२) ह्री, (३) धृति, (४) कीर्ति, (५) बुद्धि अने (६) लक्ष्मी ॥ ७ ॥

जम्बूद्वीपना मन्दर पर्वतनी दक्षिण दिशामें ६ महानदीयो ङ्की छे--
(१) गंगा, (२) सिन्धु, (३) रोहिता, (४) रोहितांशा, (५) हरि अने
(६) हरिकान्ता ॥ ८ ॥

जम्बूद्वीपमां मन्दर पर्वतनी उत्तर दिशामें नीचे प्रमाणे ६ मंडा

पौरस्त्ये खलु सीताया महानद्या उभयकूले षट् अन्तरनद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
 ग्राहावती १, हृदावती २, पङ्कवती ३, तप्तजला ४, मत्तजला ५, उन्मत्तजला ६।
 १०। जम्बूमन्दरपाश्चात्ये खलु सीतोदाया महानद्या उभयकूले षट् अन्तरनद्यः
 प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—क्षीरोदा १, सिंहस्रोताः २, अन्तर्वाहिनी ३, ऊर्मिमालिनी ४,
 फेनमालिनी ५, गम्भीरमालिनी ६। ११। धातकी खण्ड पौरस्त्यार्द्धे खलु षट्
 अकर्मभूमयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—हैमवतम् १, एवं यथा जम्बूद्वीपे द्वीपे तथा । नद्यो
 यावत् अन्तरनद्यः। २२, यावत् पुष्करवरद्वीपाद्धि पाश्चात्यार्द्धे भणितव्यम् ५५ सू. ४९

टीका—‘ जंबुद्वीपे द्वीपे ’ इत्यादि—

जम्बूद्वीपस्था अकर्मभूमयः षड्भिः स्थानैरुक्ताः। १। एवमेव वर्षाणि २,
 वर्षधरपर्वताः ३, जम्बूमन्दरस्य दक्षिणदिग्वात्तिनः कूटाः ४, तस्यैव उत्तरदिग्वा-
 त्तिनः कूटाः ५, महाह्रदाः ६, तत्रस्था देवताः ७, जम्बूमन्दरस्य दक्षिणदिग्वा

नदियां कही गई हैं—जैसे—नरकान्ता १ नारीकान्ता २ सुवर्णकूला ३
 रुक्मकूला ४ रक्ता ५ और रक्तवती ६ जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी
 पूर्व दिशामें सीता महानदीके दोनों तट पर छ अन्तर नदियां कही
 गई हैं—जैसे—ग्राहावती १ हृदावती २ पङ्कवती ३ तप्तजला ४ मत्तजला
 ५ और उन्मत्तजला ६ (१०)

जम्बूद्वीपके मन्दर पर्वतकी पश्चिम दिशामें सीतोदा महानदीके दोनों
 तटपर छह ६ अन्तर नदियां कही गई हैं—जैसे—क्षीरोदा १ सिंहस्रोता २
 अन्तर्वाहिनी ३ ऊर्मिमालिनी ४ फेनमालिनी ५ और गम्भीरमालिनी ६ (११)

धातकीखण्डके पौरस्त्यार्द्धमें (पूर्वार्धमें) ६ अकर्मभूतियां कही गई हैं—
 जैसे—हैमवत १ हैरण्यवत २ हरिवर्षा ३ रम्यकवर्ष ४ देवकुरु ५ और

नदीओ कही छे—(१) नरकान्ता, (२) नारीकान्ता, (३) सुवर्णकूला, (४)
 रुक्मकूला, (५) रक्ता अने (६) रक्तवती ॥ ६ ॥

जम्बूद्वीपना मन्दर पर्वतनी पूर्व दिशामें सीता महानदीना अने तट
 पर छ अन्तरनदीओ कही छे—(१) ग्राहावती, (२) हृदावती, (३) पङ्कवती,
 (४) तप्तजला, (५) मत्तजला अने (६) उन्मत्तजला ॥ १० ॥

जम्बूद्वीपना मन्दर पर्वतनी पश्चिम दिशामें सीतोदा महानदीना अने
 तट पर छ अन्तरनदीओ कही छे—(१) क्षीरोदा, (२) सिंहस्रोता, (३) अन्त-
 र्वाहिनी, (४) ऊर्मिमालिनी, (५) फेनमालिनी अने (६) गम्भीरमालिनी ॥ ११ ॥

धातकीखण्डना पूर्वार्धमें छ अकर्मभूमिओ कही छे—(१) हैमवत, (२)
 हैरण्यवत, (३) हरिवर्षा, (४) रम्यकवर्षा, (५) देवकुरु अने (६) उत्तरकुरु

त्तिन्यो महानद्यः ८, तस्यैशोतरदिग्दत्तिन्यो महानद्यः ९, जम्बूमन्दरपूर्वदिग्दत्तिन्याः सीताया महानद्या उभयकूलवत्तिन्योऽन्तरनद्यः १०, जम्बूमन्दर पश्चिमदिग्दत्तिन्यः सीतोदा महानद्या उभयकूलवत्तिन्योऽन्तरनद्यश्च पङ्क्तिः पङ्क्तिः स्थानैरुक्ताः ११। यथा जम्बूद्वीपेऽर्कमभूम्यादयः प्रोक्तास्तथैव धातकी खण्ड द्वीपस्य पौरस्त्यार्द्धे ११ पाश्चात्यार्द्धे च ११, पुष्करवरद्वीपार्द्धस्यापि पौरस्त्यार्द्धे ११, पाश्चात्यार्द्धे च ११ विद्येयाः । एवं सर्वसंकलनया पञ्च पञ्चाशत् (५५) सूत्राणि जातानीति ॥ सू० ४९ ॥

अनन्तरोक्तक्षेत्राणि तु कालविशिष्टानि भवन्तीति कालविशेषानाह—

मूलम्—छ उऊ पणञ्जा, तं जहा—पाउसे १, वरिसारत्ते २, सरण ३, हेमंते ४, वसंते ५, गिम्हे ६। १ ॥ छ ओमरत्ता पणञ्जा, तं जहा—तइए पवे १, सत्तमे पवे २, एक्काहसमे पवे ३, पन्नरसमे पवे ४, एगूणनीसइमे पवे ४, तेवीसइमे पवे ६। २ ॥ छ अइरत्ता पणञ्जा, तं जहा—चउत्थे पवे १, अट्टमे पवे २, टुवालसमे पवे ३, सोलसमे पवे ४, वीसइमे पवे ५ चउवीसइमे पवे ६। ३ ॥ सू० ५० ॥

उत्तरकुरु ६। नदियां एवं यावत् अन्तर नदियां यह सत्र कथन यहाँ ऊपर सूत्रमें जम्बूद्वीपके प्रकरण जैसा किया गया है, वैसा कर लेना चाहिये २२ इसी तरह का कथन पुष्करवर द्वीपार्द्धके पाश्चात्यार्द्धमें पश्चिमार्ध भी कर लेना चाहिये ये ५५ सूत्र इस प्रकारसे हुए हैं, कि जम्बूद्वीप सम्यन्धी ११ धातकीखण्ड द्वीपके पौरस्त्यार्द्धके ११ ग्यारह इस पाश्चात्यार्द्धके ११ ग्यारह पुष्करवरद्वीपार्द्धके पौरस्त्यार्द्धके ११ और पाश्चात्यार्द्धके ११ इस प्रकार ये सब मिलकर ५५ हो जाते हैं ॥ सू० ४९ ॥

त्याख्याद अन्तरनदीयो सुधीना सूत्रानुं कथन उपर सुखम न करवुं लेउये. आ रीते धातकीअ'उना पूर्वार्ध विषयक ११ सूत्रो न'भूद्वीपना ११ सूत्रो लेवां न अनशे. ये न प्रभाणे धातकीअ'उना पश्चिमार्धना पणु ११ सूत्रो अनशे. ये न प्रभाणे पुष्करवर द्वीपार्धना पूर्वार्धना ११ अने पश्चिमार्धना ११ सूत्र भणीने कुल पय सूत्र भनी नय छे ॥ सू. ४६ ॥

छाया—षड् ऋतवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रावृट् १ वर्षारत्रः २, शरत् ३, हेमन्तो ४, वसन्तो ५, ग्रीष्मः ६ । १। षड् अत्रमरात्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तृतीये पर्वणि १, सप्तमे पर्वणि २, एकादशे पर्वणि ३, पञ्चदशे पर्वणि ४, एकोनविंशति- तमे पर्वणि ५, त्रयोविंशतितमे पर्वणि ६। २। षट् अतिरात्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— चतुर्थे पर्वणि १, अष्टमे पर्वणि २, द्वादशे पर्वणि ३, षोडशे पर्वणि ४, विंशति- तमे पर्वणि ५, चतुर्विंशतितमे पर्वणि ६ । ३। ॥ सू० ५० ॥

टीका—‘ छ उऊ ’ इत्यादि—

ऋतवः=मासद्वयप्रमाणात्मरूपाकालविशेषाः प्रावृट् वर्षारत्रादिभेदेन षट्-संख्यका बोध्याः । तत्र प्रावृट् आपाढश्रावणमासद्वयात्मिका । वर्षारत्रौ भाद्र-पदमासद्वयप्रमाणः । एवं शरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मा अपि कार्तिकादिक्रमेण द्वि-द्वि मासात्मका बोध्याः । लौकिकास्तु वर्षाशरद्धेमन्तशिशिरवसन्तग्रीष्माख्यान् श्रावणादि क्रमेण द्वि द्वि मासात्मकान् षड् ऋतून् मन्यन्ते इति । १। तथा—अत्र-

“छ उऊ पणत्ता” इत्यादि सूत्र ५० ॥

टीकार्थ—दो सहिनोकी १-१ ऋतु होती है, ऐसी ऋतुएँ प्रावृट् वर्षारत्र आदिके भेद से छ प्रकार की है, जो इस प्रकार है— प्रावृट् १ वर्षारत्र २ शरत् ३ हेमन्त ४ वसन्त ५ और ग्रीष्म ६। इनमें आपाढ श्रावणकी प्रावृट् ऋतु होती है, भाद्रपद आश्विन इन दो सहिनोकी वर्षारत्र होती है, कार्तिक अगहनकी शरत् ऋतु होती है, पूष माहकी हेमन्त एवं फाल्गुन चैत्रकी वसन्त ऋतु होती है, वैशाख ज्येष्ठ मासकी ग्रीष्म ऋतु होती है, इस तरहसे ये ऋतुएँ दो दो मासकी होती हैं। लौकिक जन शरत्-शिशिर हेमन्त वसन्त और ग्रीष्म वर्षा ये ऋतुएँ आसोज कार्तिक मास आदि दो दो मासके योगसे

टीकार्थ—“ छ उऊ पणत्ता ” इत्यादि—

ज्येष्ठे मासनी दशैक ऋतु थाय छे. ज्येष्ठी छ ऋतुओ नीये प्रमाणे छे. (१) प्रावृट्, (२) वर्षारत्र, (३) शरत् (४) हेमन्त, (५) वसन्त अने (६) ग्रीष्म. आपाढ अने श्रावण मासमां प्रवृट् ऋतु आवे छे. लाहरवा अने आसोज मासमां वर्षारत्र आवे छे. कार्तिक अने भागशरमां शरत् ऋतु आवे छे, पोष अने महामां हेमन्त ऋतु आवे छे, श्रावण अने चैत्रमां वसन्त अने वैशाख अने जेठमां ग्रीष्म ऋतु आवे छे. आ प्रमाणे ज्येष्ठे मासनी प्रत्येक ऋतु समजवी छतां लोक आ प्रकारनी छ ऋतुओ गण्छे छे— शरत्, शिशिर, हेमन्त, वसन्त अने ग्रीष्म. आ ऋतुओ आसोज अने कार्तिक मास विगेरे ज्येष्ठे मासना योगथी थाय छे. वर्षा

મરાત્રાઃ-અવમાઃ=હીના રાત્રયઃ-અમરાત્રાઃ-દિનક્ષયાઃ પઠ સંખ્યકાઃ મજ્જતાઃ,
તદ્વથા-તૃતીયે પર્વણિ ' इत्यादि ।

તદત્ર પર્વ—

“ આસાઢવહુલપક્ષે, મદ્વણ કર્ત્તિણ ય પોસેય ।

ફાલ્ગુણવૈશાખેસુય, નાથવ્વા આમરત્તાઓ ॥૧૧॥”

(ઉત્તરા૦ અધ્ય૦ ૨૬ ગા૦ ૧૫)

છાયા--આપાઢવહુલપક્ષે, કાર્ત્તિકે ચ પૌષે ચ ।

ફાલ્ગુણ વૈશાખયોથ, જ્ઞાતવ્યાઃ અવમરાત્રાઃ ॥૧૧॥

હ્યુત્તરાધ્યયનસૂત્રવાક્યાનુસારેણ લૌકિકગ્રીષ્મઋતુમારમ્ય ષોધ્યમ્ ।

એવં ચ તૃતીયે પર્વણિ-આપાઢકૃષ્ણપક્ષે इत्यर्थः १। तथा-સપ્તમે પર્વણિ=માદ્રપદ-
કૃષ્ણપક્ષે, એકાદશે પર્વણિ=કાર્ત્તિક કૃષ્ણપક્ષે, પચ્ચદશે પર્વણિ=પૌષકૃષ્ણપક્ષે,

હોતી હૈં, એસા જ્ઞાનતે હૈં ॥૧૧॥ છહ અવમરાત્ર અર્થાત્ ન્યૂનદિન કહે ગયે
હૈં-જૈસે - તૃતીય પર્વમે-આપાઢ કૃષ્ણપક્ષમે-' આસાઢવહુલપક્ષે ”
इत्यादि ।

હસ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રકે વાક્યકે અનુજ્ઞાર લૌકિક ગ્રીષ્મ ઋતુસે
લેક્ષર જાનના ચાહિયે હસ તરહ યહાં તૃતીય પર્વકા વાચ્યાર્થ હોતા હૈં,
આપાઢ કૃષ્ણ પક્ષ હસ આપાઢ કૃષ્ણપક્ષમે પ્રથમ અવમરાત્ર હોતા હૈં,
અર્થાત્ હસ પક્ષ મેં ૧૪ ચૌરહ દિન હોતે હૈં દ્વિતીય
અવમરાત્ર ચ્યારહવે પર્વમે કાર્ત્તિક કૃષ્ણ પક્ષમે ચતુર્થ અવમરાત્ર
પન્દ્રહવે પર્વમે-પૌષ કૃષ્ણપક્ષમે પંચમ અવમરાત્ર ૧૯ વે પર્વમે-ફાલ્ગુણ
કૃષ્ણપક્ષમે ઔર ષષ્ઠમ અવમરાત્ર ૨૩ વે પર્વમે-વૈશાખ કૃષ્ણપક્ષમે

આવે છે એ જ પ્રમાણે બીજી ઋતુઓના પણ બાબતે માસ અનુક્રમે
સમજી લેવા. ॥ ૧ ॥

વર્ષમાં છ અવમરાત્ર થાય છે. અવમરાત્ર એટલે દિનક્ષય. જેમકે—
તૃતીય પર્વમાં એટલે કે અપાઢ માસના કૃષ્ણપક્ષમાં. કહ્યું પણ છે કે “ આસાઢ
વહુલપક્ષે ” ઇત્યાદિ. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં કહ્યા પ્રમાણે લૌકિક ગ્રીષ્મ ઋતુથી
લઈને વસન્ત ઋતુ પર્યાન્તનું વર્ષુન સમજવું. તૃતીય પર્વમાં એટલે કે અપાઢ
માસના કૃષ્ણપક્ષમાં પહેલો દિનક્ષય થાય છે. સપ્તમ પર્વમાં એટલે કે ભાદરવા
માસના કૃષ્ણપક્ષમાં બીજો દિનક્ષય થાય છે. અગિયારમાં પર્વમાં એટલે કે
કારતક માસના કૃષ્ણપક્ષમાં ત્રીજો દિનક્ષય થાય છે. પંદરમાં પર્વમાં એટલે
કે પૌષ માસના કૃષ્ણપક્ષમાં ચોથો દિનક્ષય થાય છે. આગણીસમાં પર્વમાં એટલે
કે ફાગણ માસના કૃષ્ણપક્ષમાં પાંચમો દિનક્ષય થાય છે. ૨૩ માં પર્વમાં

एकोनविंशतितमे पर्वणि=फाल्गुनकृष्णपक्षे, त्रयोविंशतितमे पर्वणि=वैशाख-
कृष्णपक्षे इति । एतेषु षट्सु अवसरात्र सद्भावात् षट् अवसरात्रा भवन्तीति भावः । २।

तथा—अतिरात्राः—अतिशया रात्रयः, अतिरात्राः—दिनवृद्धयः षड्विधाः
प्रज्ञप्ताः । तत्र—आषाढशुक्लपक्षः—चतुर्थं पर्व १, भाद्रशुक्लपक्षः—अष्टमं पर्व २,
कार्तिक शुक्लपक्षो द्वादशं पर्व ३, पौषशुक्लपक्षः षोडशं पर्व ४, फाल्गुन-
शुक्लपक्षो त्रिंशतितम पर्व ५, वैशाख शुक्लपक्षस्तु चतुर्विंशतितमं पर्वेति । ३। सू० ५०।

अनन्तस्मृतोक्तार्थरतु ज्ञानेनावगम्यते इति ज्ञानमभिधातुं सूत्रद्वयमाह—

मूलम्—आभिनिवोहियणागस्स णं छविविहे अत्थोवग्गहे
पण्णत्ते, तं जहा--सोइंदियत्थोवग्गहे जाव नोइंदियत्थोवग्गहे
॥ सू० ५१ ॥

छाया—आभिनिवोधिक ज्ञानस्य खलु षड्विधः अर्थावग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहो यद्यत् नो इन्द्रिर्थावग्रह ॥ सू० ५१ ॥

टीका—‘ आभिनिवोहियणागस्स ’ इत्यादि—

आभिनिवोधिकज्ञानस्य=मतिज्ञानस्य खलु अर्थावग्रहः—अर्थस्य अवग्रहणम्,
अर्थावग्रहः - सकलरूपादिविशेष निरपेक्षाऽनिर्देश्यसामान्यमात्रार्थग्रहणरूपः ।

होना है, इन छहमें अवसरात्र-दिनक्षपके सद्भावसे ये ६ अवसरात्र
होते हैं ॥ २॥ तथा-अतिरात्र-दिनवृद्धि-छह प्रकारके कहे गये हैं जैसे-
चतुर्थ पर्व-आषाढ शुक्लपक्ष १ भाद्र शुक्लपक्ष २ कार्तिक शुक्लपक्ष
३ पौषशुक्लपक्ष ४ फाल्गुन शुक्लपक्ष ५ और वैशाख शुक्लपक्ष ॥ सू० ५० ॥

इस ऊपरके सूत्रमें कहा गया अर्थ ज्ञानसे जाना जाता है, इसलिये
अथ सूत्रकार ज्ञानका कथन करनेके लिये दो सूत्र कहते हैं—

अेट्ठे के वैशाख मासना छठ्ठा पर्वमां छठ्ठो दिनक्षय थाय छे. आ रीते कुल
छ अवसरात्र (दिनक्षय) थाय छे. ॥ २ ॥

अतिरात्रि (दिनवृद्धि) छ प्रकारनी उली छे—(१) चतुर्थ पर्व अेट्ठे
के अषाढ मासना शुक्ल पक्षमां, (२) भाद्रवना शुक्ल पक्षमां, (३) कार-
तकना शुक्ल पक्षमां, (४) पौषना शुक्ल पक्षमां, (५) फाल्गुना शुक्ल पक्षमां
अने वैशाखना शुक्ल पक्षमां. ॥ ३ ॥ ॥ सू. ५० ॥

ऊपरना सूत्रमां जे विषयनुं प्रतिपादन करवामां आऽयुं छे, ते विषय
ज्ञान द्वारा जल्दी शक्य छे. तेथी उवे सूत्रकार जे सूत्रो वडे ज्ञाननी प्रदपणु।

પ્રથમ પરિચ્છેદનમ્ અર્થાવગ્રહ इति निर्विकल्पकं ज्ञान दर्शनरूपमित्युच्यते । अयं च नैश्वयिक एक सामायिकः । यस्तु व्यावहारिकः 'शब्दोऽयम्' इत्याद्युल्लेखवान् स आन्तर्मुहूर्तिक इति । स तु मनःसहितेन्द्रियजन्यत्वात् पञ्चिधः प्रज्ञः तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः-श्रोत्रेन्द्रियेण अर्थावग्रहः । एवं चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहादिषु बोध्यम् । इदमत्र बोध्यम्-चक्षुर्मनसोस्तु अगाप्यकारित्वाद् व्यञ्ज-

“अभिनिबोहिय नाणस्स” इत्यादि सूत्र ५१ ॥

અભિનિબોધિક જ્ઞાનકા-મતિજ્ઞાનકા અર્થાવગ્રહ સમસ્ત રૂપાદિ વિશેષકી અપેક્ષાસે રહિત એસે અનિર્દેશ્ય સામાન્ય માત્રરૂપ અર્થકા જો ગ્રહણ કરતા હૈ, વહ અર્થાવગ્રહ હૈ, વહ અર્થાવગ્રહ પ્રથમ પરિચ્છેદન રૂપ હોતા હૈ, પ્રથમ પરિચ્છેદ નિર્વિકલ્પ જ્ઞાન રૂપ હોતા હૈ । તથા-નિર્વિકલ્પક જ્ઞાન દર્શનરૂપ હોતા હૈ । અર્થાવગ્રહ નૈશ્વયિક ઓર વ્યાવહારિક ભેદસે દો પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, યહાં જો અર્થાવગ્રહ કહા ગયા હૈ, વહ નૈશ્વયિક અર્થાવગ્રહ કહા ગયા હૈ, હસ નૈશ્વયિક અર્થાવગ્રહ કાલ પ્રમાણ ૧ સમયકા હોતા હૈ । વ્યાવહારિક જો અર્થાવગ્રહ હોતા હૈ-જૈસે-યહ શબ્દ હૈ, એસા જો અર્થકા અવગ્રહ રૂપ જ્ઞાન હોતા હૈ, વહ વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ હૈ-સો યહ વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ એક અન્તર્મુહૂર્તકાલકે પ્રમાણવાલા હોતા હૈ, યહ પાંચ ઈન્દ્રિયોસે એવં મનસે ઉત્પન્ન હોતા હૈ, અનઃ હસે છહ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ, જૈસે-શ્રોત્રેન્દ્રિયજન્ય અર્થાવગ્રહ ચક્ષુઃકેન્દ્રિયજન્ય અર્થાવગ્રહ હ્યાદિ યહાં તાત્પર્ય

કરે છે. “ આભિનિબોહિયાણસ્સ ” ઇત્યાદિ--

આભિનિબોધિક જ્ઞાનનો (મતિજ્ઞાનનો) અર્થાવગ્રહ (સમસ્ત રૂપાદિ વિશેષોની અપેક્ષાથી રહિત એવા અનિર્દેશ્ય સામાન્ય માત્રરૂપ અર્થને બે ગ્રહણ કરવાનું થાય છે તેનું નામ અર્થાવગ્રહ છે) પ્રથમ પરિચ્છેદન રૂપ હોય છે. પ્રથમ પરિચ્છેદ નિર્વિકલ્પ જ્ઞાનરૂપ હોય છે. તથા નિર્વિકલ્પ જ્ઞાન દર્શન રૂપ હોય છે અર્થાવગ્રહના બે ભેદ કહ્યા છે-(૧) નૈશ્વયિક અને (૨) વ્યાવહારિક. અહીં બે અર્થાવગ્રહ કહ્યો છે તે નૈશ્વયિક અર્થાવગ્રહ સમજવો. આ નૈશ્વયિક અર્થાવગ્રહનું કાળપ્રમાણ એક સમયનું હોય છે. “ આ શબ્દ છે ” એવું બે અર્થના અવગ્રહ રૂપ જ્ઞાન હોય છે, તેનું નામ વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ છે. તે વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહનું કાળપ્રમાણ એક અન્તર્મુહૂર્તનું હોય છે. તે પાંચ ઇન્દ્રિયો અને મનથી ઉત્પન્ન થાય છે. તેથી તેના ત્રણ પ્રમાણે છ પ્રકાર કહ્યા છે-શ્રોત્રેન્દ્રિય જન્ય અર્થાવગ્રહથી લઈને નેષ્ટ્રેન્દ્રિયજન્ય અર્થાવગ્રહ

नावग्रहो न भवति, ततस्तयो रर्थावग्रह एवेति । षष्ठ भेदमाह—‘ नो इन्द्रियत्थुग्गहे’ इति । नो इन्द्रियार्थावग्रहः—नो इन्द्रियेण=भाव मनसा अर्थावग्रहो द्रव्येन्द्रिय व्यापार निरपेक्षो घटाद्यर्थस्वरूपपरिभाषनाभिमुखः प्रथममेकसामायिको रूपाद्यर्थाकारादि विशेषचिन्तारहितोऽनिर्देश्यसामान्यमात्र चिन्तात्मको बोधो नो इन्द्रियार्थावग्रहः । नो इन्द्रियं हि मनः, तच्च द्विधा—द्रव्यरूपं भावरूपं च । तत्र मनः पर्याप्ति नामकर्मोदयात् यन्मनः—प्रायोग्य वर्गणा दलिकानादाय मनस्त्वेन परिणमते

ऐसा है, चक्षु और मन ये दोनों अप्राप्यकारी माने गये हैं इसलिये व्यञ्जनावग्रह अप्रकट पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान इन दोनों इन्द्रियोंसे नहीं होता है, इन दोनों इन्द्रियोंसे तो अर्थावग्रहही होता है, इस तरह पांच इन्द्रियोंसे जन्य अर्थावग्रह पांच प्रकारका हो जाता है, और जो मनसे जन्य अर्थका अवग्रह रूप ज्ञान होता है, वह नो इन्द्रियार्थावग्रह है, भाव मनसे द्रव्येन्द्रियके व्यापारकी अपेक्षा रखे बिना घटादिरूप पदार्थके स्वरूपको जाननेके अभिमुख जो बोध होता है, वह नो इन्द्रियार्थावग्रह है, यह नो इन्द्रियार्थावग्रह जब तक रूपादि अर्थके आकार आदिकी चिन्तासे रहित होता है, तब तक यह प्रथम एक समयका नैश्चयिक अर्थावग्रह कहलाता है, क्योंकि यह अनिर्देश्य सामान्य मात्रका चिन्तारूप होता है, नो इन्द्रिय नाम मनका है, यह मन द्रव्यमन और भाव मनके भेदसे दो प्रकारका कहा है । इनमें जो मन मनः पर्याप्ति नामकर्मके उदयसे मनःप्रायोग्य वर्गणादलिकोंको लेकर

पर्यन्तना छ प्रकार अर्धी समष्टि देवा. अक्षु अने मन, आ णन्नेने अप्राप्यकारी मानवाभां आंव्या छे, तेथी व्यंजनावग्रह—अप्रकट पदार्थना अवग्रह रूप ज्ञान—ते णन्ने इन्द्रियो द्वारा थतुं नथी ते णन्ने इन्द्रियो वडे तो अर्थावग्रह ज थाय छे आ रीते पाय इन्द्रियो वडे जन्य अर्थावग्रह पांच प्रकारने डोय छे अने जे मनथी जन्य अर्थना अवग्रह रूप ज्ञान डोय छे तेतुं नाम ‘नो इन्द्रियार्थावग्रह’ छे. आ अवग्रहने छठ्ठे प्रकार छे. भावमन वडे द्रव्येन्द्रियना व्यापारनी अपेक्षा राख्या बिना घटादि रूप पदार्थना स्वरूपने दर्शननारे जे बोध थाय छे ते नो इन्द्रियार्थावग्रह छे. आ नो इन्द्रियार्थावग्रह ज्यां सुधी रूपादि अर्थना आकार आदिनी चिन्ताथी रहित डोय छे त्यां सुधी प्रथम अेक समयने नैश्चयिक अर्थावग्रह कडेवाय छे, कारण छे ते अनिर्देश्य सामान्य मात्रना चिन्तन रूप डोय छे. मनने नो इन्द्रिय कडे छे. ते मनना द्रव्यमन अने भावमन नामना जे लेक कइल छे. जे मनः पर्याप्ति नामकर्मना

तद् द्रव्यरूपं मनः । तथा—द्रव्यमनोऽवष्टम्भेन जीवस्य यो मननपरिणामः स भाव
मनः । तत्रेह भावमनो गृह्यते । तद्ग्रहणे हि द्रव्यमनसोऽपि ग्रहणं भवत्येव
द्रव्यमनोविनाभावमनसोऽसंभवात् । भावमनोविनाऽपिच द्रव्यमनो भवति । सू० ५१ ।

तथा—

मूलम्—छविहे ओहिनाणे पणत्ते, तं जहा—आणुगामिए
१ अणाणुगामिए २ वड्डमाणए ३ हीयमाणए ४ पडिवाई ४
अपडिवाई ५ ॥ सू० ॥ ५२ ॥

छाया—पञ्चविधमवधिज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तथा—आनुगामिकम् १, अनानुगा-
मिकं २ वर्द्धमानकं ३ हीयमानकं ४ प्रतिपाति ५ अप्रतिपाति ६ ॥ सू० ५२ ॥

उन्हें मनरूपसे परिणमना है, वह द्रव्यमन है, तथा द्रव्यमनके सहारेसे
जो जीवका मनन करनेरूप परिणमन होता है, वह भावमन है, यहां
नो इन्द्रियार्थावग्रहमें इसी भाव मनसे अर्थका अवग्रहरूप ज्ञान होता
है, अतः उसे नो इन्द्रियार्थावग्रह कहा गया है, ऐसा जानना चाहिये
भाव मनके ग्रहणसे द्रव्य मनका भी ग्रहण हो जाता है, क्योंकि भाव-
मनका व्यापार द्रव्यमनके विना नहीं होता है, द्रव्यमन तो भावमनके
विना भी होता है ॥ सू० ५१ ॥

तथा—“छविहे ओहिनाणे पणत्ते” इत्यादि सूत्र ५२ ॥

सूत्रार्थ—अवधिज्ञान ६ प्रकारका कहा गया है—जैसे—आनुगामिक १ अनानु-
गामिक २ वर्द्धमानक ३ हीयमानक ४ प्रतिपाति ५ और अप्रतिपाति ६ ।

उक्त्यर्थी मनः प्रायोग्य वर्गाण्युत्तिकेने लधने तेमने मनरूपे परिणुभावे छे, ते
द्रव्यमन छे. तथा द्रव्यमननी मद्धथी लुपनी मनन करवा रूप ने प्रवृत्ति
आदि छे तेने भावमन कडे छे नोऽन्द्रिय अर्थावग्रहमां आ भावमन वडे न
अर्थना अवग्रह रूप ज्ञान थाय छे, तेथी तेने नोऽन्द्रियार्थावग्रह कडेवामां
आये छे, ओम समज्जुं. भावमनना अडणु वडे द्रव्यमननुं पणु अडणु
थरु लय छे, कारणु के द्रव्यमन विना भावमननेो व्यापार आदी शकतेो नथी.
द्रव्यमन तो भावमन विना पणु डोऽरु शकते छे ॥ सू. ५१ ॥

तथा—“छविहे ओहिनाणे पणत्ते”—इत्यादि—(सू. ५२)

सूत्रार्थ—अवधिज्ञानना नीचे प्रमाणे ६ प्रकार कहे छे—(१) आनुगामिक, (२)
अनानुगामिक (३) वर्द्धमानक, (४) हीयमानक, (५) प्रतिपाति अने (६) अप्रतिपाति.

टीका—‘ छवित्रहे ’ इत्यादि—

अवधिज्ञानम्—आत्मनोऽर्थमाक्षात्करण, व्यापारोऽवधिः । यद्वा—‘ अव ’ शब्दोऽव्ययत्वेनानैकार्थकत्वादयः शब्दार्थकः । अव—अधो नीचप्रदेशे विस्तृतं वस्तु धीयते—परिच्छिद्यतेऽन्नेनेत्यवधिः—अधोविस्तृतविषयकज्ञानम् । अवधिश्चासौ ज्ञानं चेत्यवधिज्ञानम् । विषयस्य बहुत्वं स्त्रीकृत्यैवं व्युत्पत्तिरिति बोध्यम् । अन्यथा तिर्यग्ध्वं वा विषयं परिच्छिन्द्यानस्यावधिव्यपदेशो न स्यात् । यद्वा—अवधिर्मर्यादा—रूपिण्येव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा, तदुपलक्षितं ज्ञानमवधिज्ञानम् । यद्वा—

विना किसी इन्द्रियकी सहायतासे जो अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे रूपीद्रव्यको स्पष्ट रूपसे जाननेवाला ज्ञान होता है, वह अवधिज्ञान है । अवधिज्ञानके बलसे आत्मा द्रव्यक्षेत्र काञ्च भावकी मर्यादा लेकर रूपी पदार्थोंको जानता है, अथवा—अव शब्द अव्यय है, यह अनेक अर्थका वाचक है, यहां इसका अर्थ अधः लिया गया है, अतः जिसके द्वारा नीचे प्रदेशमें विस्तृत वस्तु जानी जाती है, वह अवधि है “ अवधीयते ” इति अवधिः अवधिश्चासौ ज्ञानं च इति अवधिज्ञानम् ” ऐसी जो यह यहां व्युत्पत्ति प्रदर्शित की गई है, वह विषयकी बहुलताको लेकर की गई है । नहीं तो फिर तिर्यग् अथवा ऊर्ध्वगत वस्तुको जाननेवाला ज्ञान अवधिज्ञान नहीं कहलासकेगा अथवा अवधि नाम मर्यादाका है, इस ज्ञानमें रूपी पदार्थोंको ही जाननेकी अपेक्षासे है, अतः इस मर्यादासे उपलक्षित जो ज्ञान है, यह

अवधिज्ञानावरण कर्मना क्षयोपशमथी, कोष्ठं पणुं धन्द्रियनी भदद विना इपी द्रव्यने स्पष्ट इये जणुनारु जे ज्ञान छे तेने अवधिज्ञान कडे छे अवधिज्ञानना प्रभावथी आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काण अने लवनी मर्यादाभां रहीने इपी पदार्थने जणुी शके छे अथवा “ अव ” आ पद अव्यय छे अने ते अनेक प्रकारना अर्थनुं वाचक छे अही तेना अर्थ “ अधः ” लेवाभां आये छे, तेथी अवधिज्ञानने अर्थ नीचे प्रभाणु थाय छे—जेना द्वारा नीचेना प्रदेशभां रडेरी वस्तुने जणुी शकय छे तेनुं नाम अवधिज्ञान छे, “ अवधीयते इति थवधिः अवधिश्चासौ ज्ञानं च इति अवधिज्ञानम् ” आ प्रकारनी जे अवधिज्ञान पी व्युत्पत्ति प्रकट करवाभां आवी छे ते विषयनी बहुत्ताने लीधे प्रकट करवाभां आवी छे, नही तो तिर्यग् अथवा ऊर्ध्वगत वस्तुने जणुनारा ज्ञानने अवधिज्ञान कही शकत नही अथवा अवधि अेटले मर्यादा आ ज्ञान इपी पदार्थने जे जणुी शके छे—अइपी पदार्थने जणुी शकतुं नथी, आ प्रकारनी मर्यादावाणुं आ ज्ञान होवाथी तेने अवधिज्ञान कडे छे,

અવધિના=મર્યાદયા રૂપિ દ્રવ્યાણ્યેવ જાનાતીતિ વ્યવસ્થયા જ્ઞાનમ્-અવધિજ્ઞાનમ્ ।
 યદ્વા-અવ=મર્યાદયા-एतावन् क्षेत्रं पश्यन् एतावन्ति द्रव्याणि एतावन्तं कालं
 पश्यतीत्यादि नियमित क्षेत्रादि लक्षणया धीयते-परिच्छिद्यते रूपि वस्तु अगेनेत्य-
 वधिः, अवधिश्चासौ ज्ञानं चेत्यवधिज्ञानम् । आत्मनोरूपि द्रव्य साक्षात्कार कारण-
 मिन्द्रिय-मनो निरपेक्षो ज्ञानविशेषोऽवधिज्ञानमिति । तत् पङ्क्तिं=पङ् मकारकं
 प्रज्ञप्तम् । तद्यथा-आनुगामिकम्-अनुगमन शीलं, यदवधिज्ञानं गच्छन्तमवधिज्ञानिनं
 लोचनवदनुगच्छति तदिति । अनानुगामिकम्-यद् गच्छन्तमवधिज्ञानिनं नानु-
 गच्छति शृङ्खलाप्रतिबद्धपदीपवत् तदित्यर्थः २। वर्द्धमानकम्-वर्द्धते इति वर्द्धमानं,
 तदेव वर्द्धमानकम् उत्पत्तिकालतः समारभ्य प्रवर्द्धमानं शुक्लपक्षचन्द्रवदित्यर्थः ३।

અવધિજ્ઞાન હૈ, અથવા-મર્યાદાસે દ્રવ્ય ક્ષેત્રકાલ એવં ભાવકી મર્યાદાસે
 જો જ્ઞાન રૂપીહી પદાર્થો'કો જાનતા હૈ, વહ અવધિજ્ઞાન હૈ, યહ અવધિ-
 જ્ઞાન આનુગામિક આદિકે ભેદસે જો ૬ મકારકા કહા ગયા હૈ, ઉસકા
 તાત્પર્યાર્થ એસા હૈ-જો અવધિજ્ઞાન જિસ ઉત્પત્તિ ક્ષેત્રમ્ જીવકો ઉત્પન્ન
 હુઆ હો ઉસકે ઉસ ઉત્પત્તિ ક્ષેત્રકો છોડકર દૂસરી જગહ ચલે જાને
 પર ખી નેત્રકી તરહ ઉસ જીવકે સાથ જો ચલા જાના હૈ, એસા વહ
 અવધિજ્ઞાન આનુગામિક હૈ । જો અવધિજ્ઞાન અપને ઉત્પત્તિકે ક્ષેત્રકો
 છોડકર ચલે જાનેવાલે જીવકે સાથ નહીં જાતા હૈ, કિન્તુ શૃંગ્લાસે
 પ્રતિબદ્ધ દીપકી તરહ વહીંકા વહીં રહતા હૈ, એસા વહ અવધિજ્ઞાન
 અનાનુગામિક હૈ, જિસ પ્રકાર શુક્લ પક્ષમ્ ચન્દ્ર પ્રતિદિન વઢતા જાતા
 હૈ, ઉસી પ્રકાર જો અવધિજ્ઞાન અપની ઉત્પત્તિકે સમયસે લેકર વઢતા
 હી જાતા હૈ, વહ વર્દ્ધમાનક અવધિજ્ઞાન હૈ ૩ જિસ પ્રકાર કૃષ્ણ પક્ષકા

અથવા દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની મર્યાદામાં રહીને જે જ્ઞાન રૂપી પદાર્થોને જે જાણી શકે છે તે જાનને અવધિજ્ઞાન કહે છે. તેના આનુગામિક આદિ પ્રકારોનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

જે અવધિજ્ઞાન ઉત્પત્તિશ્ચેત્રમાથી (જે ક્ષેત્રમાં ઉત્પન્ન થયેા હોય તે ક્ષેત્રમાંથી) ખીજા ક્ષેત્રમાં ચાલ્યા જવા છતાં પણ લોચનની જેમ તે જીવની સાથે જ ચાલ્યું જાય છે તે અવધિ જ્ઞાનને આનુગામિક કહે છે. જે અવધિજ્ઞાન પોતાનું ઉત્પત્તિશ્ચેત્ર છોડીને ચાલ્યા જતાં જીવની સાથે જતું નથી, પરન્તુ સાંકળ વડે બાંધેલા દીપકની જેમ ત્યાંને ત્યાં જ રહે છે તે અવધિજ્ઞાનને અનાનુગામિક કહે છે. જેમ શુક્લપક્ષનો ચન્દ્ર પ્રતિદિન વૃદ્ધિ પામતો રહે છે, એ જ પ્રમાણે જે અવધિજ્ઞાન પોતાના ઉત્પત્તિ સમય બાદ વૃદ્ધિ જ પામતું રહે છે તે અવધિજ્ઞાનને વર્દ્ધમાનક અવધિજ્ઞાન કહે છે. જેમ

तथा=हीयमानकम्-हीयते इति हीयमानं, तदेव हीयमानकम्, उदयसमनन्तरमेव हीयमानं कृष्णपक्षचन्द्रवदित्यर्थः ४। तथा-प्रतिपाति-प्रतिपत्तनशीलम्, यत् फूत्कारनष्टप्रदीपवत्-सर्वथा विनश्यति तदित्यर्थः ५। तथा-अप्रतिपाति-न प्रतिपाति अप्रतिपाति, केवलज्ञानात्पूर्वयत्न विनश्यति तदित्यर्थः ६ ॥ सू० ५२ ॥

एवंविधज्ञानवतो हि यादृशानि वचनानि वक्तुं न कल्पन्ते तान्याह—

मूलम्—नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाइं छ
अवयणाइं वइत्तए, तं जहा—अलियवयणो १, हीलियवयणो २,
खिसियवयणो ३, फरुसवयणो ४, गारस्थियवयणो ४, विउस-
वियं वा पुणो उदीरित्तए ६ ॥ सू० ५३ ॥

छाया—नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा इमानि पट् अवचनानि
वदितुम्, तथा—अलीकवचनम् १, हीलिनवचनम् २, खिसितवचनं ३, परुप-
वचनम् ४, अगारस्थितवचनम्, व्युपसमितंवा पुनरुदीरयितुम् ॥सू० ५३ ॥

चन्द्रमा प्रतिदिन घटताहो जाता है, उसी प्रकार जो अवधिज्ञान अपनी
उत्पत्तिके बादसेही घटने लगता है, वह हीयमान अवधिज्ञान है, जिस
तरह फूंकसे दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकारसे जो अवधिज्ञान सर्वथा
नष्ट हो जाता है, वह प्रतिपाति अवधिज्ञान है, तथा जो केवलज्ञानके
पहिले नष्ट नहीं होता है, वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान है ॥ सू० ५२ ॥

इस प्रकारके ज्ञानीको जो वचन बोलने योग्य नहीं कहे गये हैं,
सूत्रकार उन वचनोंका कथन करते हैं—

कृष्णपक्षना अन्द्रमानो क्षय थरा भाडे छे अे न प्रभाण्णे ने अवधिज्ञान
पोतानी उत्पत्ति भाह घटतु न रडे छे ते अवधिज्ञानने हीयमान अवधि-
ज्ञान कडे छे. नेम कूंक मारवाथी हीये. डोलवाथ नय छे अे न प्रभाण्णे
ने अवधिज्ञान मिलकुल नष्ट थथ नय छे ते अवधिज्ञानने प्रतिपाति अव-
धिज्ञान कडे छे. ने अवधिज्ञान केवणज्ञाननी प्राप्ति पडेलां नाश पामतु नथी,
ते अवधिज्ञानने अप्रतिपाति अवधिज्ञान कडे छे. ॥ सू. ५२ ॥

ज्ञानी भाणुसे-केवा वचनेो जोलवा नेथअे नडी, ते सूत्रकार डवे प्रकट
करे छे—“ नो कप्पइ निग्गंथाण वा ” इत्यादि—(सू. ५३)

टीका--' नो कप्पइ ' इत्यादि--

नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा इमानि पट् अत्रचनानि नञः कुत्सित-
वचनत्वात् कुत्सितानि वचनानि वदितुम्=वक्तुम् । वक्ष्यमाणानि पट् कुत्सित वच-
नानि साधुभिः साध्वीभिर्वा न वक्तव्यानि । तद्यथा-अलीकवचनम्=मृषावचनम्-
यथा निद्राणं कञ्चित् साधुं कोऽपि साधुः पृच्छति-' किं निद्रासि ? ' उत्तरयति-
' नो निद्रामि ' इति ॥१॥

तथा-हीलितवचनम्-जन्मकर्माद्युद्घाटनरूपम्, यथा-' अरे दासीपुत्र ' इत्यादि । २। खिसितवचनम्-हस्तमुखआदि विकारपूर्वकापमानजनकवचनोच्चारणं, यथा-' अरे जानामि जानामि तत्राचरणम् ' इत्यादि । ३। परुषवचनम्-कठोरवचनं-

"नो कप्पइ निर्ग्रन्थाण वा" इत्यादि सूत्र ५३ ॥

टीकार्थ-निर्ग्रन्थ स्नाघुजनोंको अथवा निर्ग्रन्थी साध्वीजनोंको ये छ अवचन कुत्सित वचन कहने योग्य नहीं कहे गये हैं, वे छह अवचन इस प्रकारसे हैं-अलीक वचन ? मृषावचन जैसे-निद्रा लेते हुए किसी साधुसे कोई साधु पूछता है, कि क्या तुम निद्रा ले रहे हो ? तो उत्तरमें वह कहताहै, मैं निद्रा नहीं ले रहा हूं ? १ तथा हीलितवचन जन्मकर्म आदिको उद्घाटन करनेवाले वचन कुत्सितवचन जैसे २ओ दासी पुत्र ! २ इत्यादि-हस्तमुख आदि विकृत जिसमें हों ऐसे अपमानजनक वचन खिसित वचन हैं, ३ जैसे मुखको थिगाड़ करके किसीसे ऐसा कहना कि परे हठमें जानता हूं तेरे आचरणको इत्यादि ४ कठोर वचनका नाम परुषवचन है, ५

निर्ग्रन्थो (साधुओ) अने निर्ग्रन्थीओओ (साध्वीओओ) नीचे भना-
' वेलां ६ प्रकारतां अवयवो (कुत्सित वयवो) ओलवा ओधओ नही'-(१)-
अलीक वयव (असत्य वयव) ओम के निद्रा लेता कोध सधुने कोध साधु
पूछे छे. " शुं तमे निद्रा लध रखा छे ? " त्यादे ते सधु नवाभ आवे
छे के " हुं निद्रा लध रह्यो नथी. " आ प्रकारतां वयवोने अलीकवयव कडे
छे. (२) हीलित वयव-जन्म, कर्म अ दिने भूदला पाउतारा वयवोने हीलित
वयव कडे छे. ओम के " हे दासीपुत्र ! " इत्यादि.

(३) खिसित वयव-डाथ, मुभ आदि विकृत करीने ओ अपमान
जनक वयवो ओलाय छे तेमने खिसित वयव कडे छे. ओमके मुभ भगाडीने
कोधने ओम कडेवामां आवे के " अहीथी हर, भस. तारा, भधा धंधा हुं

यथा—‘दुष्ट शैल !’ इत्यादि । ४। अगारस्थितवचनम्—अगारस्थितानां=गृहस्थानां यद् वचनं तत् । यथा—‘पुत्र ! मातुल ! भागिनेय !’ इत्यादि ॥५॥ तथा—व्युपशमितं वा कलहादिक पुनरुदीरयितुं न कल्पते । अयं भावः—यत् अधिकरणं व्युपशान्तं तद् येन पुनरुदीरितं भवति तादृशं वचनं वक्तुं न कल्पते इति ।

उक्तं च—

“खामियवो समियाइं, अहियरणाइं तु जे उदीरेंति ।

ते पावा नायन्वा, तेसिं चारोवणा इणमो ॥१॥”

छाया—क्षमितव्युपशमितानि अधिकरणानि तु ये उदीरयन्ति ।

ते पापा ज्ञातव्याः तेषां चारोवणा इयम् ॥१॥ इति ॥६॥ सू० ५३॥

अवचनेषु हि प्रायश्चित्तप्रस्तारो भवतीति प्रस्तारस्य षड्विधत्वमाह—

मूलम्—छ कप्पस्स पत्थारा पणत्ता, तं जहा-पायाइवायस्स वायं वयमाणे १, सुत्तावायस्स वायं वयमाणे २, अदिन्नादाणस्स वायं वयमाणे ३, अत्रिरइवायं वयमाणे ४, अपुरिसवायं वयमाणे ४, दासवायं वयमाणे ६, इच्छेए छ कप्पस्स पत्थरे पत्थरेत्ता समं अपरिपूरेमाणे तट्टाणपत्ते ॥ सू० ५४ ॥

जैसे हे दुष्ट शिष्य ! इत्यादि ४ गृहस्थजनोंके जैसे—वचन अगारस्थित वचन हैं, जैसे—हे पुत्र ! हे मातुल ! हे भागिनेय ! इत्यादि—तथा शान्त हुई लडाईं जिन वचनोंसे पुनः उदीरित हो जाय ऐसी वाणी वचन ६ कहा भी है—“खामियवो समियाइं” इत्यादि ।

इस प्रकारके ये ६ अवचन साध्वी एवं साधुजनोंको बोलनेके योग्य नहीं कहे गये हैं ॥ सू० ५३ ॥

लक्ष्ं छुं.” (४) परुषवचन—ठठोर वचनने परुष वचन कडे छे. जेमके “दुष्ट, आयला हर था भारी सामेथी” (५) अगारस्थित वचन—गृहस्थ जनानां जेवां वचन. जेम के “छेजेरा ! छे मामा ! छे काका ! छे भनेवी” इत्यादि (६) शान्त पडेला अधडा जे वचनेथी इरी यालू थर्धं नय जेवा वचन पणु भोलावा जेथंजे नहीं. कछुं पणु छे के—

“खामियवो समियाइं” इत्यादि.

आ छ प्रकारनां वचन कुत्सित वचन ३५ डोवाथी साधु साध्वीजो जे जेवां वचने भोलावा जेथंजे नहीं. ॥ सू. ५३ ॥

छाया—पट् कल्पस्य प्रस्ताराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्राणातिपातस्य चादं वदन् १, मृषावादस्य चादं वदन् २, अदत्तादानस्य चादं वदन् ३, अविरतिवादं वदन् ४, अपुहावादं वदन् ५ दासवादं वदन् ६, इत्येतान्—पट् कल्पस्य प्रस्तारान् प्रस्तारविता सम्यगपरिपूरयन् तत्रथानपात्ताः ॥ सू० ५४ ॥

टीका—‘ छ कप्परस ’ इत्यादि—

कल्पस्य=साध्याचारस्य—साध्याचारसम्बन्धिनो लघुगृहपश्रुति—प्रदान रूपाः षट् संख्यकाः प्रस्ताराः=अतीचारकर्तारि व्यवस्थाप्यमानाः प्रायश्चित्तस्य रचना विशेषाः प्रज्ञप्ताः=कथिताः । प्रस्तराणां कल्पविशुद्धयर्थत्वात् कल्पसम्बन्धिता बोध्या । तानेवाह—तद्यथा—प्राणातिपातस्य चादं=वार्तां वदन्—कस्मिंश्चित् साधुं असत्यमेव प्राणातिपातदोषम् आरोपयन् साधुः प्रायश्चित्तपरतारभाग् भवति । अत्र प्रस्तारो यथा भवति तथोच्यते—

गाथा—खुडो पेरिज्जंतो, अहमादीसु मणसि धारेइ ।

अहमवि णं पेरिसं, न लभइ सो तारिसं जिइं ॥१॥

अवचनोंसे प्रायश्चित्त लगता है, इसलिये अब सूत्रकार प्रायश्चित्तकी षट् विधताका कथन करते हैं—

‘ ६ कप्परस पत्थारा पणगत्ता ’ इत्यादि सूत्र ५४ ॥

टीकार्थ—कल्पके साधुके आचारके प्रस्वार—अतिचार करनेवाले पर प्रायश्चित्तके व्यवस्थाप्यमान रचना विशेष ६ प्रकारके कहे गये हैं, प्रस्तारोंमें कल्प सम्बन्धिता कल्पकी विशुद्धिके लिये होनेके कारणसे है, इनमें जो साधु किसी साधु पर असत्यही प्राणातिपात दोषका जब आरोपण करता है, तब वह प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र होना है १ यहाँ प्रस्तार जैसा होना है, वैसा कहते हैं—“ खुडो पेरिज्जंतो ” इत्यादि ।

अवयवनामां प्रायश्चित्तना प्रस्तार थाय छे तेथी उवे सूत्रकार प्रस्तारना ६ प्रक्षारोतुं निइपणु करे छे ६ कप्परस पत्थारा पणगत्ता ” इत्यादि—(सू. ५३)

कल्पना—साधुना आचरना—प्रस्तारना ६ प्रकार कछा छे अतिचारतुं सेवन करन रमाटे प्रायश्चित्तनी जे आस विधि छे तेनुं नाम प्रस्तार छे. प्रस्तारो कल्पनी विशुद्धिने माटे डोवाथी कल्प साथे तेना सम्बन्ध छे. अथारे कोर् सधु भीज कोर् साधु पर प्राणु तिपात दोषतुं जूहुं आरोपणु करे छे, त्यारे ते दोषतुं जूहुं आरोपणु करनार सधु प्रायश्चित्त प्रस्तारने पात्र भने छे अडीं केवो प्रायश्चित्त प्रस्तारो डोय छे ते प्रकट करवामां आवे छे—

“ खुडो पेरिज्जंतो ” इत्यादि—

छाया--क्षुल्लः प्रेर्यमाणः, अतिक्रमादिषु मनसि धारयति ।

अहमपि-एवं प्रेरयिष्यामि, न लभते तादृशं छिद्रम् ॥१॥

अयमर्थः--क्षुल्लः-क्षुल्लकः पर्यायलघुमुनिः-अतिक्रमादिषु दुष्प्रेक्षितादिषु स्वल्पितेषु सत्सु प्रेर्यमाणः-शिक्षयन् मनसि धारयति-विचारयति-यद् अहमपि-एवं मत्प्रेरकं प्रेरयिष्यामि-शिक्षयिष्यामि, किन्तु-सः-क्षुल्लकस्तस्य तादृशम् अतिक्रमादि रूपं छिद्रं न लभते ॥१॥

उक्तं च--अन्नेण घाहए ददुरम्मि दहुं चलणं कयं ओमो ।

उद्विभो एस तुमे णवत्ति विइयंपि ते णत्थि । २॥

छाया--अन्येन घातिते ददुरे दृष्ट्वा चलन कृतम् अवमः ।

उद्रावित एषत्वया न वेत्ति द्वितीयमपि ते नास्ति ॥२॥

अयमर्थः--तस्य साधोश्चिद्रान्वेषणे तत्परः स क्षुल्लकीऽन्यदा तेन साधुना सह भिक्षाचर्यार्थं गतः । तत्र अन्येन केनापि घातिते ददुरे चरणं कृतं=न्यस्त-

पर्यायकी अपेक्षा कोई लघु मुनि जब उससे अतिक्रम आदि दोष हो जाते हैं, और उस पर जब उसे शिक्षा दण्ड प्रायश्चित्त दिया जाता है, तब वह मनमें ऐसा विचार करता है, कि मैं भी इस शिक्षा देने-वालेको दण्डित कराऊंगा परन्तु वह क्षुल्लक उसके अतिक्रमादिरूप छिद्रको नहीं पाता है ? ।

“ अन्नेण घाहए ददुरम्मि ” इत्यादि ।

उस साधुके छिद्रान्वेषणमें तत्पर वह क्षुल्लक उस साधुके साथ किसी एक समय भिक्षाचर्याके लिये गया-रास्तेमें किसी अन्य पुरुषके द्वारा मरा हुआ एक मेंढक पड़ा था, उस पर उस साधुका पग पड़ गया इस

पर्यायनी अपेक्षासे नाना षेवा केछ भुनि द्वारा अतिक्रम आदि केछ दोष थछ गया छाय. तेनी शुद्धि निमित्ते न्यारे तेने प्रायश्चित्त आपवामां आवे त्यारे ते भनमां षेवा विचार करे छे के छे हुं पष्पु भने शिक्षा करना-रने-(प्रायश्चित्त देनारने) शिक्षा करावीश षेवा विचार करीने ते तेना दोषो शोध्यां करे छे, परन्तु ते भुनिना अतिक्रमादि इप केछ दोष तेनी नञ्जे पडतां नथी.

“ अन्नेण घाहए ददुरम्मि ” इत्यादि-हवे षेवुं भने छे के ते साधुना दोषो शोधतो ते क्षुल्लक साधु ते साधुनी साथे भिक्षाचर्या भाटे नीकणे छे. रस्तामां केछ पुरुषना पग नीचे आवी नवाथी केछ हेडके भरेदी पडयो

चरणं तं साधुं दृष्ट्वा अवमः=क्षुल्लकः साधु स्तं साधुं वदति एष ददुरस्त्वया
उद्रावितः=मारितः । एवं क्षुल्लकेनोक्ते स साधुर्वदति नैव मया मारितो ददुर
इति । एवं तस्य साधोर्वचः श्रुत्वा क्षुल्लको वदति—ददुरुहननेन तव प्राणाति-
पातविरमणरूप प्रथमं व्रतं दिनष्टमेव । सम्प्रति मृषावापणेन मृषावादविरमण-
रूपं द्वितीयमपि व्रतं ते—तव नास्ति ॥२॥ एवमुक्त्वा सः—

गाथा—वचइ भगइ आलोयनिकाए पुच्छिए णिसिद्धे य ।

साहु गिहि मिलिय सव्वे पत्थारो जाय वयमाणो ॥३॥

मासो लहुओ गुरुओ चउरो लहुगा य होति गुरुगाय ।

उम्मासा लहु गुरुगा छेदो मूलं तइ दुगं च ॥४॥

छाया—व्रजति भगति आलोचय निकाचयति पृष्ठे निषिद्धे च ।

साधवो गृहिणो मिलिताः सर्वे प्रस्तारो यावद् वरन् ॥३॥

मासो लघुको गुरुकः चत्वारो लघुकाश्च भवन्ति गुरुकाश्च ।

पणमासा लवओ गुरुका छेदोमूलं तथा द्विकं च ॥४॥

अयमर्थ—क्षुल्लको भिक्षाचर्यातो निवृत्त्य आचार्यसमीपे व्रजति=गच्छ-
तीति क्षुल्लकस्य मासलघुप्रायश्चित्तम् । ततो भगति—यथा तेन ददुरो मारित

वातको देखकर वह क्षुल्लक साधु उस साधुसे कहने लगा यह मेंढक
आपने मारा है, तब वह बोला—मैंने नहीं मारा है, इस प्रकारसे उस
साधुके वचन सुनकर पुनः वह क्षुल्लक कहने लगा—इस ददुरके मारनेसे
आपका प्राणातिपात विरमणव्रत विनष्टही हो गया है, तथा मैंने इसे
नहीं मारा है, इस प्रकारके कहने रूप मृषा भाषणसे मृषावाद
विरमणरूप द्वितीय व्रत भी आपका खण्डित हो गया है, इस प्रकारसे
उससे कहकर वह—“ वचइ भगइ आलोय ” इत्यादि ।

क्षुल्लक भिक्षाचर्यासे निवृत्त हो करके आचार्यके निकट आया इस
स्थितिमें उस क्षुल्लकको मास लघु प्रायश्चित्त होता है, और आकर

डतो. ते भरेसा देडका पर ते साधुनो पण पडी जवाथी ते क्षुल्लक साधु ते
निर्दोष साधु पर ओवो आरोप भूके छे के “ आ देडकाने तमे मारी नांथो
छे. ” पेसा साधुओ जवाथ आथो—“ मे मारी नथी. ” तयारे ते क्षुल्लक
साधु ओली उठ्यो. “ आ देडकाने मारी नांथवाथी तमारुं प्राणातिपात विर-
मण्य व्रत ञडित थयुं छे. अने ‘ मे तेने मारी नथी ’ जेवुं असत्य उडे-
वाथी तमारुं मृषावाद विरमण्य रूप णीरुं व्रत ञडित थयुं छे ” “ वचइ
भगइ आलोय ” इत्यादि आ प्रमाणे उडेतार क्षुल्लक साधुओ मास लघु
प्रायश्चित्त लेवुं पडे छे. जे ते क्षुल्लक साधु आचार्यनी पासे जडने जेम

इति । एवं भणतस्तस्य क्षुल्लकस्य मासगुरुः । ततः "क्षुल्लकारोपितदोषः-स साधुरप्याचार्यसमीपे समागतः । तस्माचार्यः मोह-सम्यगालोचय=कथय, किं त्वया दर्दुरो मारितः ? स साधुः कथयति-न मया मारितः । एवं तेन साधुनोक्ते दोषारोपणकर्तुः क्षुल्लकस्य चतुर्थलघुप्रायश्चित्तं भवति । ततः "क्षुल्लको निकाचपति=पुनस्तमेव दोषं तस्मिन्नारोपयति; स साधुः पुनरपि तदारोपितदोषो-स्वकीयत्वेन न मनुते । ततः "क्षुल्लकस्या-चतुर्गुरु-ततः; क्षुल्लको वदति-यदि मम वचनेन विश्वासस्तदा गत्वा गृहस्थान् पृच्छतु । एवं क्षुल्लकेनोक्ते पर्यायज्येष्ठाः साधवो गत्वा गृहस्थान् पृच्छन्तीति पृष्टे क्षुल्लकस्य

जब वह ऐसा कहता है, कि उस साधुने मेंढक मारा दिया है, तब उस क्षुल्लकको मास गुरु प्रायश्चित्त होता है, इतनेमें जिस पर इस क्षुल्लकने दोषारोपण किया था वह साधु भी आचार्यके पास आ जाता है, आचार्य उससे पूछते हैं-क्या तुमने मेंढक मारा है ? वह कहता है, गुरुदेव ! मैंने नहीं मारा है, इस प्रकार उस साधुके कहने पर दोषारोपणकर्ता क्षुल्लकको चतुर्थ लघु प्रायश्चित्त होता है, तब पुनरपि क्षुल्लक उस साधु पर उसी दोषका आरोपण करता है, साधु कहता है-मैंने ऐसा नहीं किया है, तब उस क्षुल्लकको चतुर्थ गुरु प्रायश्चित्त होता है । क्षुल्लक कहता है यदि मेरी बात पर आपको विश्वास न हो तो आप जा करके गृहस्थोंसे पूछ सकते हैं, तब पर्याय ज्येष्ठ साधु वहां जाकर गृहस्थोंसे पूछते हैं, इस प्रकार क्षुल्लकके कहने पर उसे षड्मास लघु

कडे के "आ साधुओ देउकाने भारी नाज्यो छे," तो ते क्षुल्लक साधुने मासगुरु प्रायश्चित्त लेवुं पडे छे. डेवे न्यारे ते निर्दोष साधुने ते आचार्य द्वारा जेवो प्रश्न करवाभां आवे के "शुं तसे देउकाने भारी नाज्यो छे ? त्यारे ते निर्दोष साधु जेवो न्याय आवे छे के "डे गुरुदेव ! मे तेने भायो नथी." ते निर्दोष साधु द्वारा आ प्रमाणे न्यारे कडेनाभां आवे, त्यारे ते क्षुल्लकने (दोषारोपण करनार साधुने) चतुर्थ लघु प्रायश्चित्त लागे छे. ते निर्दोष साधु द्वारा दोषने अस्वीकार थवा छतां पणु ते क्षुल्लक इरी पणु जे न ह्वनुं तेना पर आरोपण करे छे अने निर्दोष साधु इरी ते दोषने अस्वीकार करे छे. त्यारे ते क्षुल्लकने चतुर्थ गुरु प्रायश्चित्त लागे छे. त्यार भाड ते दोषारोपण करनार साधु कडे छे के जे तमने भारी बात पर विश्वास न भेसतो डाय तो आय त्यां नधने गृहस्थोने पूछीने जे बातनी आतरी करी शके छे. त्यारे कोठ पर्यायज्येष्ठ साधु त्यां नधने गृहस्थोने आ भाषा-तमां प्रश्न करे छे: "गृहस्थने पूछीने आतरी करी." आ प्रमाणे कडेवाथी

पद्मलघु । पृष्ठा गृहस्था निषेधन्ति-नास्माभिर्दृष्टः स साधुर्दुर्दुरं मारयन्निति क्षुल्लकस्य पद्मगुरु । ततः पर्यायज्येष्ठाः आचार्यसमीपे समागत्य वदन्ति-नानेन साधुना दुर्दुरो मारित इति तदाऽस्य क्षुल्लकस्य छेदः । ततः क्षुल्लको वदति गृहस्था असंयताः, ते तु प्रतिशब्दं असत्यं ब्रुवते एवं ब्रुवतः क्षुल्लकस्य मूलं प्रायश्चित्तं भवति । ततो यदि क्षुल्लको वदति-गृहस्था यूयं च एकत्र मिलिता अहं पुनरेक इति, तर्हि तस्य अनवस्थाप्यं भवति । ततो यदि स वदति यूयं सर्वेऽपि प्रवचनस्य बाह्याः, ततस्तस्य पाराश्रिकं प्रायश्चित्तं भवति । एवमुत्तरोत्तरं वदतः क्षुल्लकस्य पाराश्रिकं यावत् प्रायश्चित्तप्रस्तारो भवतीति । ३ । ४ ॥ अत्रेदं बोध्यम्-क्षुल्ल-

प्रायश्चित्त होता है । पूछने पर गृहस्थजन निषेध करते हैं कि हमने मेंढक मारते हुए उस साधुको नहीं देखा है, तब क्षुल्लकको षड्मास गुरु प्रायश्चित्त होता है, पर्याय ज्येष्ठ साधु आ करके आचार्यसे कहते हैं कि इस साधुने मेंढक नहीं मारा है तब उस क्षुल्लकको षड्मास छेद प्रायश्चित्त लगता है, पुनः जब वह क्षुल्लक ऐसा कहता है-गृहस्थ असंयत होते हैं-वे तो शब्द शब्द पर असत्य बोलते हैं, इस प्रकारसे कहनेवाले क्षुल्लकको मूल प्रायश्चित्त लगता है, तब यदि क्षुल्लक कहता है, तुम सब गृहस्थ तो एक हो गये हो और मैं अकेला हूँ तो फिर उस क्षुल्लकको अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त लगता है, और यदि वह उस समय ऐसा कहता है, कि तुम सबके सब ही प्रवचनसे बाहर हो तब उसको पाराश्रिक प्रायश्चित्त लगता है, इस प्रकार उत्तरोत्तर करनेवाले

ते क्षुल्लक छ मासिक लघु प्रायश्चित्तने पात्र भवे छे. न्यारे ते पर्याय ज्येष्ठ साधुने ते गृहस्थो ज्येष्ठो ज्येष्ठ आये छे के “अये ते साधुने देउकाने भारतो ज्येष्ठो नथी, त्यारे ते क्षुल्लक छ मासिक गुरु प्रायश्चित्तने पात्र भवे छे. न्यारे पर्याय ज्येष्ठ साधु आचार्यनी पासे ज्येष्ठने कहे छे के गृहस्थोना कहेवाथी अमने आतरी थय गय छे के ते साधुजे देउकाने भार्यो नथी, त्यारे ते क्षुल्लकने छ मासनुं छेद प्रायश्चित्त लागे छे. त्यार भाद जे क्षुल्लक ज्येष्ठ कहे के गृहस्थो तो असंयत होय छे, तेजो वात वातभां जुहुं जोसता होय छे, तो ते क्षुल्लकने मूल प्रायश्चित्त लागे छे. वणी त्यार भाद पञ्च जे क्षुल्लक ज्येष्ठ कहे के तमे अधां गृहस्थो तो ज्येष्ठ थय गया छे अने हुं ज्येष्ठो छुं, तो तेने अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त लागे छे. त्यार भाद जे ते क्षुल्लक ज्येष्ठ कहे के तमे सौ प्रवचननुं पालन करनारा नथी, तो तेने पाराश्रिक प्रायश्चित्त लागे छे. आ, रीते उत्तरोत्तर असत्य होपारोपण करनार ते

कस्यार्थं प्रायश्चित्तप्रस्तारो मृषावाद विरमणव्रतभङ्गजनितो भवति । यदि तु तेन साधुना सत्यमेव ददुरश्चरणन्यासेन मारितः, ततः सोऽपलपति च, तदा तस्याप्येवमेव प्राणातिपातविरमणमृषावादविरमणव्रतद्वयभङ्गजनितप्रायश्चित्तप्रस्तारो भवतीति प्रथमः प्रस्तारः । १ ।

तथा—मृषावादस्य वादं वदन्—कस्मिंश्चित् साधौ असत्यमेव मृषावादविरमणव्रतभङ्गजनितं दोषमारोपयन् साधुः प्रायश्चित्तप्रस्तारभाग् भवति । २ । तथा—अदत्तादानस्य वादं वदन्—कस्मिंश्चित्साधावसत्यमेव अदत्तादानविरमणव्रतभङ्गजनितं दोषमारोपयन् साधुः प्रायश्चित्तप्रस्तारभाग् भवति । ३ । अत्र द्वितीय-तृतीयप्रायश्चित्तप्रस्तारावेवं बोध्यौ । तथाहि—

उस क्षुल्लकको पाराश्रिक प्रायश्चित्त तक प्रायश्चित्त प्रस्तार होता है, यह प्रायश्चित्त प्रस्तार उसे मृषावाद विरमण व्रतके भङ्गसे होता है, और यदि उस साधुने यथार्थ रूपमें अपने पैरसे मेंढक मार दिया है, और फिर भी वह अपलाप करता है, तो उसे भी प्राणातिपात विरमण एवं मृषावाद विरमण ये दोनों व्रतोंके भङ्ग हो जानेसे इसी प्रकारसे प्रायश्चित्त प्रस्तार होता है । इसी प्रकार यदि कोई साधु किसी अन्य साधु पर व्यर्थ मेंही मृषावाद विरमण व्रत भङ्ग जनित दोषका आरोपण करता है, तो वह साधु भी प्रायश्चित्तके प्रस्तारवाला होता है । इसी प्रकारसे अदत्तादानके भङ्ग होनेके झूठे दोषका आरोपण कोई साधु किसी साधु पर करता है, तो वह भी इसी तरहसे प्रायश्चित्तके प्रस्तारवाला होता है, यहां द्वितीय और तृतीय प्रायश्चित्त प्रस्तार जानना चाहिये

साधुने भाटे पाराश्रिक प्रायश्चित्त पर्यन्तना प्रायश्चित्त प्रस्तार कछां छे. मृषा-
वाद विरमणु व्रतने ल'ग करवाने कारणे ते आ प्रकारना प्रायश्चित्त प्रस्ता-
रने पात्र भने छे जे भीज साधु (जेना पर हेडकानी हत्याने आरोप
भूकवामां आब्ये छे ते साधु) कर, अरेअर हेडकानी हत्या थर्छ गछि डेथ
अने ते जुहुं जोलतो डोय, तो तेने पणु प्राणातिपात विरमणु अने मृषा-
वाद विरमणु, आ अन्ने प्रकारना व्रतने ल'ग थछ जवाथी उपयुक्ता प्राय-
श्चित्त प्रस्तारने पात्र अन्तुं पडे छे (१) अे ज प्रमाणे जे कोछ साधु
भीज कोछ साधु पर मृषावाद विरमणु व्रतने ल'ग करवाने जोटे आरोप
भूके, तो ते जोटे आरोप भूकनार साधु पणु प्रायश्चित्त प्रस्तारने पात्र भने
छे. (२) अे ज प्रमाणे अदत्तादानने ल'ग थछ जवाने जोटे आरोप कोछ
साधु पर भूकनार साधु पणु प्रायश्चित्त प्रस्तारने पात्र भने छे. डवे सूत्रकार
भीज अने त्रीज प्रायश्चित्त प्रस्तारनुं स्वइय प्रकट करे छे—

તત્રાકાલત્વાત્ પ્રતિપિદ્ધૌ તૌ અન્યત્ર ગતૌ । તતઃ સમ્પ્રાપ્તે કાલે તયોર્યૌ જ્યેષ્ઠઃ
 સ પ્રોક્તવાન્-સમ્પ્રાપ્તઃ કાલઃ, ગચ્છાન્નઃ સંસ્વડીકર્તૃગૃહે । શુલ્લકો મળતિ-પ્રતિ-
 પિદ્ધોઽહમ્, અતો ન તત્ર ગમિષ્યામિ । તતો, ભિક્ષાચર્યાતો, નિવૃત્તઃ, શુલ્લકઃ
 આચાર્યાયેદં નિવેદયતિ, યથા-અયં સાધુર્દીનકરુણૈર્વચનૈર્યાચતે, પ્રતિપિદ્ધોઽપિ ગૃહં
 પ્રવિશતિ, ઇષણાં ચ દન્તિ=નાશયતિ । ચ=પુનરયં મુલપ્રિયાણિ યોગચિકિત્સાનિ-
 મિત્તાનિ, જલપતિ=ત્રદતીતિ । અત્રાપિ-પૂર્વવદેવ પ્રાયશ્ચિત્તપ્રસ્તારો- વૌધ્યઃ ।

સાધુ કિસી સંસ્વડીકર્તા (જીમ્મણ કરનેવાલા)કે-ઘર-પર-ગયે-ઉસ-
 સમયે-વહાં-સંસ્વડી-નિષ્પન્ન-નહીં-હોને-સે-વે-દોનો-વ્રહાંસે-
 દૂસરી-જગહ-ચલે-ગયે-વાદમેં-ઇનમેં-જો-પર્યાય-જ્યેષ્ઠ-થા-વહ-સમય-
 આને-પર-કહને-લગા-અચ-સંસ્વડી-નિષ્પન્ન-હો-ગઈ-હોગી-ચલો-સંસ્વડી-
 કર્તાકે-ઘર-પર-ચલેં-તવ-શુલ્લકને-છોટે-સાધુને-કહા-સંસ્વડીકર્તાને-
 દેનેસે-મના-કર-દિયાં-હૈ, અતઃ-મૈં-તો-વહાં-નહીં-આજંગા-ઇસકે-વાદ-
 ભિક્ષાચર્યાસે-નિવૃત્ત-હુઆ-વહ-શુલ્લક-વાપિસ-આકર-આચાર્યાસે-કહને-
 લગા-હૈ-ગુરો!-યહ-સાધુ-દીન-કરુણે-વચનોસે-માંગતા-હૈ, પ્રતિપિદ્ધ-
 હોને-પર-મી-ઘરમેં-હુસ-જાતા-હૈ, ઔર-ઇષણાંકા-વિનાશ-કરતા-હૈ,
 તથા-મુલપ્રિય-વચન-બોલકર-મીઠે-૨-વચન-કર્હકર-દાતાકો-આહાર-
 દેનેકે-નિમિત્ત-રિક્ષાતાં-હૈ, ઇસ-પ્રકાર-કહનેવાલે-ઉસ-શુલ્લકકે-ઝપર-
 પ્રાયશ્ચિત્ત-પ્રસ્તાર-પૂર્વોક્ત-રૂપસે-કહ-લેના-ચાહિયે । જૈસે-ભિક્ષાચર્યાસે

એ સાધુએ કોઈ એક સુખડીઆને ત્યાં પહોંચ્યા, તેઓ જ્યારે ત્યાં પહોંચ્યા
 ત્યારે મીઠાઈ તૈયાર થઈ ન હતી. વળી ત્યાં વહોરવા આવવાની તે માણસે
 મનાઈ પણ કરી, તેથી તેઓ ત્યાંથી આસતાં થયાં હવે થોડા સમય બાદ
 પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુએ લઘુપર્યાયવાળા સાધુને કહ્યું—“હવે ખેલા માણસને
 ત્યાં મીઠાઈ તૈયાર થઈ ગઈ હશે. ચાલો ત્યાં જઈને મીઠાઈ વહોરી આવીએ.”
 ત્યારે શુલ્લકે (લઘુ પર્યાયવાળા સાધુએ) કહ્યું—“તે માણસે આપણને
 વહોરવા આવવાની મનાઈ કરી છે, તેથી હું તો ત્યાં નહીં આવું.” ત્યાર
 બાદ તે બંને સાધુ ઉપાશ્રયમાં પાછા ફર્યા. તે શુલ્લક સાધુએ શુરુ પાસે
 એવી વાત કરી કે “આ સાધુ દીન, કરુણ વચનો બોલીને ભિક્ષા માગે છે.
 ગૃહસ્થ દ્વારા નિષેધ કરાવા છતાં પણ તે તેના ઘરમાં દાખલ થઈ લાય છે.
 અને એપણા દોષથી દૂષિત થયેલો આહાર ગ્રહણ કરે છે. તે મીઠાં વચનો
 બોલીને દાતાને ખુશ કરીને તેની પાસેથી આહાર ગ્રહણ કરે છે.” આ
 પ્રકારે બોલ્યા દોષારોપણ કરનાર તે સાધુને પૂર્વોક્ત પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને

તથાહિ-ભિક્ષાચર્યાતો નિવૃત્તઃ ક્ષુલ્લક આચાર્યસમીપે વ્રજતીતિ તસ્ય માસલઘુ ।
 અયં દીનકરુણાદિ વ્રજનૈર્યાચતે-इत्यादि आचार्याय यदि निवेदयति तर्हि तस्य
 માસ ગુરુ । एवं क्रमेण पूर्ववत् पाराश्रिकं यावत् प्रायश्चित्तप्रस्तारो बोध्य इति ।
 अत्र क्षुल्लकस्य मृषावादविरमणव्रतभङ्गनिमित्त एव प्रायश्चित्तप्रस्तारः । यदि
 रात्निकः सत्यमेव क्षुल्लकारोपितातीचारयुक्तो भवति, तदा तस्य गृहस्थप्रतिषेधा-
 नन्तरमपि ' न प्रतिषेधः कृतो गृहस्थेन ' इत्युक्त्या प्रथमं मृषावादविरमणव्रत-

નિવૃત્ત દુઝા ક્ષુલ્લક જય આચાર્યકે પાસ આતા હૈ, તથ ઉસે માસ
 લઘુ પ્રાયશ્ચિત્ત હોતા હૈ, ઓર જય વહ આચાર્યસે એસા કહતા હૈ, કિ
 યહ દીનકરુણ વચનોસે આહારકી યાચના કરતા હૈ, તથ ઉસકો માસ
 ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્ત હોતા હૈ, હસી ક્રમસે પૂર્વકી તરહ યાવન્ પારાશ્ચિન પ્રાય-
 શ્ચિત્ત તક પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તાર સમજ્ઞ લેના ચાહિયે । ક્ષુલ્લક તો જો
 પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારકા કથન ક્રિયા ગયા હૈ, વહ હસલિયે ક્રિયા ગયા હૈ,
 કિ ઉસને અપને મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતકા ભઙ્ગ ક્રિયા હૈ, ઓર યદિ
 વહ રાત્નિક સાધુ પર્યાય ડબેઠ સાધુ જૈસા-ક્ષુલ્લકને કહા હૈ, યદિ
 ઉસી પ્રકારકી પરિસ્થિતિવાળા હૈ, તો ઉસકો બી મૃષાવાદ વિરમણ
 વ્રતકા ભઙ્ગ હોના હૈ, કયોંકિ વહ ગૃહસ્થકે પ્રતિષેધ કરનેકે ઘોદ બી
 “ ઉસને પ્રતિષેધ નહીં ક્રિયા હૈ ” એસા કહતા હૈ, અતઃ વહ અપને
 કથનસે ઉસ ગૃહસ્થકે કથનકા અપલાપ કરનેકે કારણ જૂઠ ઘોલતા

પાત્ર કહ્યો છે. એટલે કે ભિક્ષાચર્યાથી નિવૃત્ત થઈને બ્યારે તે ક્ષુલ્લક સાધુ
 દોષારોપણ કરવા માટે ગુરુ પાસે આવે છે, ત્યારે તેને લઘુ માસ પ્રાયશ્ચિત્ત
 લાગે છે, બ્યારે તે ગુરુને કહે છે કે આ સાધુ દીન વચનો બોલીને આહાર-
 ની યાચના કરે છે, ત્યારે તેને માસ ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે. ‘અહીં’
 પૂર્વોક્ત કથથી પારાશ્ચિક પ્રાયશ્ચિત્ત પર્યાન્તના પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારનું કથન થવું
 જોઈએ. ક્ષુલ્લકને માટે આ પ્રકારનો પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તાર બતાવવાનું કારણ
 એ છે કે તેણે મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતનું ખંડન કર્યું છે. જો તે પર્યાય બંધે
 સાધુએ ક્ષુલ્લક સાધુના કહ્યા અનુસાર ભિક્ષાપ્રાપ્તિ કરી હોય તો તેના દ્વારા
 પણ મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતનો ભંગ કરાયો છે એમ કહી શકાય. કારણ કે
 ગૃહસ્થે નિષેધ કર્યો હોવા છતાં પણ તે એવું કહે છે કે “ ગૃહસ્થે નિષેધ
 કર્યો ન હતો. ” આ રીતે પોતાના આ કથન દ્વારા તે સાધુ તે ગૃહસ્થની
 ઘાતને ખોટી રીતે રજુ કરે છે. તે કારણે તે સાધુ મૃષાવાદ વિરમણ વ્રતનો

भङ्गो भवति । ततः स्वोक्त्यपलापने द्वितीयमपि तस्य मृषावादविरमणव्रतभङ्गो भवति । प्रायश्चित्तप्रस्तारस्तु पूर्ववदेवेति ॥ २ ॥

साम्प्रतमदत्तादानस्य वैशिष्ट्यमाश्रित्य प्राह—

गाथा—जा फुसइ भाणमेगो, विइओ अण्णत्थ लड्डुए ताव ।

लड्डूण णीइ इयरो, तद्विस्स इमं कुणइ कोई ॥ १ ॥

छाया—यावत् स्पृशति भाण्डमेको, द्वितीयोऽन्यत्र लड्डुकांस्तावत् ।

लब्धा (णीइ) गच्छति इतरः तद् दृष्ट्वा इदं करोति कीऽपि ॥१॥

अयमर्थ—गुरुणा प्रेषितौ द्वौ साधु भिक्षाचर्यार्थं गतौ । तत्र एकेन भिक्षा लब्धा गृहीता च । स यावद् भाण्डं=पात्रं स्पृशति=भिक्षाधान्यां स्थापयति तावत् द्वितीयेन ज्येष्ठेन साधुना समीपस्थगृहे लड्डुका लब्धाः । तत्र इतरः कोऽपि स क्षुल्लक इत्यर्थः, तान् लड्डुकान् दृष्ट्वा इदं=वक्ष्यमाणं करोति भिक्षाचर्यातो निवृत्त्य

है, इस तरह वह अपने मृषावाद विरमण व्रतका भङ्ग कर्ता हो जाना है, यहां प्रायश्चित्त प्रस्तार पूर्वकी तरहसे समझ लेना चाहिये ॥ २ ॥

अथ सूत्रकार अदत्तादान की विशिष्टताको लेकर “ जा फुसइ ” इत्यादि गाथा द्वारा प्रायश्चित्त प्रस्तारका कथन करते हैं—

“ जा फुसइ भाणमेगो ” इत्यादि ।

इस गाथाका भावार्थ ऐसा है—गुरुने दो साधुओंको भिक्षाचर्याके लिये भेजा इनमें एकको भिक्षाका योग मिल गया सो उसने भिक्षा लेली और वह जब तक भिक्षाके पात्रको भिक्षाधानीमें रखने लगा कि इतनेहीमें द्वितीय ज्येष्ठ साधुको वहींके किसी पासके घरमें मोदक मिल गये तब उस क्षुल्लकने लड्डुओंको देखकर ऐसा विचार किया

बांग कर्ता अने छे अही पणु प्रायश्चित्त प्रस्तार पूर्वोक्त प्रकारने न समज्यो ॥ २ ॥

इसे सूत्रकार अदत्तादाननी विशिष्टतानी अपेक्षाके “ जा फुसइ ” इत्यादि गाथा द्वारा प्रायश्चित्त प्रस्तारनु कथन करे छे—

“ जा फुसइ भाणमेगो ” इत्यादि—

आ गाथाने लावार्थ नीचे प्रभावे छे—गुरुके जे साधुओने भिक्षाचर्या भाटे भोड्येया. तेमांथी अेकने भिक्षाने योग मणी गये. तेखे भिक्षा लई लीधी अने जेयो ते भिक्षापात्रने ओणीमां भूकवा नय छे के थोजे ज्येष्ठ साधु पणु नष्टकना केछ घरमांथी लाडु वडोरीने तेनी पासे आवी पडोअ्ये. ते लघु पर्यायवाण साधुके अेयो विचार कये के “-आ रत्तिहे

'रात्निकेनाऽदत्ता मोदका गृहीता इति तस्यालोचनीं श्रुत्वा तस्मै प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्तु' इति वक्तुं गुरुसमीपे व्रजति । ततस्तस्य सांसलघुः भणति, 'तदा मासगुरुः । एवमेव पूर्वोक्तक्रमेण पाराश्रिकं यावत् प्रायश्चित्तं प्रस्तारो बोध्यः । अत्र क्षुल्लकस्य प्रायश्चित्तं प्रस्तारो सृषावादे विरमणव्रतभङ्गजनितो भवति । यदि रत्नाधिकेन सत्यमेव अदत्ता लड्डुका गृहीता निह्वननगोपनं च क्रियते तदा तस्य अदत्तादानविरमणव्रतभङ्गजनितो सृषावादे विरमणव्रतभङ्गजनितश्च प्रायश्चित्त-प्रस्तारो भवतीति ॥३॥ इति द्वितीयतृतीयप्रस्तारी ।

कि इस रात्निकने बिना द्विये हुए इन मोदकोंको लिया है, अतः गुरुको इसे इसका प्रायश्चित्त देना चाहिये ऐसा विचार कर वह भिक्षा चर्यासे लिपट कर आचार्यके पास आया उस बातको कहनेके लिये इस तरहसे इसका गुरुके समीप आगमन मासलघु प्रायश्चित्तके योग्य होता है, और जब वह क्षुल्लक गुरुसे उसकी बातका निवेदन कर देता है, तब उसका वह कथन मासगुरु प्रायश्चित्तसे योग्य होता है, इसी तरहसे पाराश्रिक प्रायश्चित्त वक्त प्रायश्चित्त प्रस्तार उद्गाविन कर लेना चाहिये, यहां क्षुल्लकको जो प्रायश्चित्त प्रस्तार प्रकट किया गया है, वह उसके सृषावाद विरमण व्रतके भङ्ग हो जानेसे किया गया है, यदि च रात्निकने पर्यायज्येष्ठ दूसरे साधुने—वास्तवमें अदत्त मोदकोंका आदान किया है, और वह उस अपनी बातको यदि छिपाता है, तो उसे अपने अदत्तादान विरमण व्रतका भङ्ग होनेके कारण और सृषावाद विरमण

(ज्येष्ठ पर्यायवाणा साधुमे) कोछ गृहस्थना धरमांथी लड्डु चोरी दीधां छे आ धीते तेणे अदत्तादान विरमण व्रतने लग क्यो छे, तो गुरुमे तेने आ दोषमे भाटे प्रायश्चित्त देवु लेउं छे, आ प्रकारने विचार करीने गुरुनी प से आवनार ते क्षुल्लक साधु लघुमास प्रायश्चित्तने पात्र भने छे, न्यारेसे क्षुल्लक गुरुने आ पंधी बात कडे छे त्यारे ते (क्षुल्लक) जोटा दोषतु तेना पर आरोपणु करवाने कारणे गुरु मास प्रायश्चित्तने पात्र भने छे, छे न प्रकारे पाराश्रिक प्रायश्चित्त पर्यन्तनी पूर्वोक्त प्रायश्चित्त प्रस्तारतु अडी पणु कथन थवु लेउंछे अडी क्षुल्लकने भाटे न प्रायश्चित्त प्रस्तार प्रकट करवांमां आओ छे ते तेना सृषावाद विरमण व्रतने लग थध नवाने दीधे करवांमां आओ छे, पर्याय ज्येष्ठ पीन साधुमे भरेभर छे दोषतु सेन क्युं डोय अने छे वातने ते छुपावतो डोय तो तेने पणु प्रायश्चित्त प्रस्तारने पात्र गनवु पडे छे, कारणे के अम करवांथी

तथा-अविरतिवादम्-अविरतिः=अब्रह्मचर्यं, तस्याः वादं वदन् कस्मिंश्चित् साधौ असत्यमेव मैथुनविरमणव्रतभङ्गजनितं दोषमारोपयन् साधुः प्रायश्चित्त-भाग् भवति । प्रायश्चित्तप्रस्तारोऽत्रैवं बोध्यः । तथाहि—

गाथा--राङ्णियवाइएणं, खलियमिलिय पेळएण उदएणं ।

देवउळे मेहुगम्मि, आक्खाणं वा कुडंमे वा ॥१॥

छाया--रत्निकवातिकेन स्वलितमिलितप्रेरणेन उदयेन ।

देवकुले मैथुने आख्यानं वा कुटङ्के वा ॥ १ ॥

अयमर्थः—कश्चित् क्षुल्लको रत्नाधिकेन मुहुर्मुहुः शिक्ष्यमाणो मनसि एवं चिन्तयति-यदयं रत्निकः उदयेन=रूपाद्योदयवशाद्, रत्निकवातिकेन='रत्नाधिकोऽह'—मितिगर्वरूपवातरोगेण पीडितोऽस्ति, अत एवायं स्वलितमिलित

व्रतका भङ्ग होनेके कारण प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र होना पड़ता है । इस प्रकारसे द्वितीय और तृतीय प्रस्तार हैं ।

तथा—"अविरतिवादं" इत्यादि-किसी साधुके ऊपर असत्य रूपसे ब्रह्मचर्य व्रतके भङ्ग हो जानेरूप दोषका आरोपण करनेवाला कोई दूसरा साधु प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र होताहै, प्रायश्चित्त प्रस्तार प्रकार यहां ऐसा जानना चाहिये—"राङ्णियवाइएणं" इत्यादि ।

इस गाथाका भावार्थ ऐसाहै-पर्याय ज्येष्ठ किसी रत्नाधिक साधुने किसी क्षुल्लक साधुको जब स्वीख दी तो वह मनमें ऐसा सोचने लगा-यह रत्नाधिक साधु कषायके उदयके वशसे कि "मैं रत्नाधिक हूँ" इस अहंकाररूप वात रोगसे पीडित हो रहाहै, अतएव यह स्वलित मिलित

तेना अहत्ताहान विरमणुने पणु लंग थाय छे अने मृषावाह विरमणु व्रतने पणु लंग थाय छे. आ प्रक्षारतुं पील अने त्रील प्रायश्चित्त प्रस्तारतुं स्वइय छे.

इवे योथा प्रायश्चित्त प्रस्तारतुं स्वइय प्रकट करवाभां आवे छे—
"अविरतिवादं" इत्यादि—

कोई साधु पर असत्य इये ब्रह्मचर्य व्रतने लंग करवा इय दोषतुं आरोपणु करनार साधु पणु प्रायश्चित्त प्रस्तारने पात्र गने छे. अे न वात "राङ्णिय वाइएणं" इत्यादि गाथा द्वारा स्पष्ट करवाभां आवी छे. आ गाथाने अर्थ नीचे प्रभाणु छे—

कोई पर्याय ज्येष्ठ साधु कोई लघु पर्यायवाणी साधुने उभेशा सारी सारी शिष्यामणु देता हुता. परन्तु ते क्षुल्लक (लघु पर्यायवाणी) साधुना मनभां जेवुं लागतुं के आ पर्याय ज्येष्ठ साधु कषायना उदयने लीधे "हुं रत्नाधिक (पर्याय ज्येष्ठ) हूँ" आ प्रकारना धमंड इय वात रोगथी

પ્રેરણેન=સ્વલિતેન મિલિતેન પ્રેરણેન ચ માં તર્જયતિ । અયં ભાવઃ-‘ અરે દુષ્ટ શિષ્યક । સ્વલિતોઽસિ ’ इत्यस्वलितमपि मां तर्जयति । तथा भिन्नमपि पदमुच्चारयन्तं मां ‘ हा दृष्ट शैश !-मिञ्जितमुच्चारयति ’ इति तर्जयति । तथा साधुभिर्वार्यमाणोऽपि मां हस्तेन प्रेरणापूर्वकं तर्जयतीति । एतत्सर्वमस्य रत्नाधिकस्य कषायोदयजनितमेवेति मन्ये । अत्र प्रतिर्कर्तुमप्यहं न पारयामि, यत् एषा सामा-

और प्रेरणासे लुझे तर्जित कर रहा है, अरे दुष्ट शिष्य ! तुम अपने कर्तव्यसे स्वलित चलायमान हो रहे हो यद्यपि मैं कर्तव्यसे चलायमान नहीं हो रहा हूं फिर भी लुझे चलायमान कह कर व्यर्थमें उपालम्भ करता रहता है, तथा मैं बोलते समय बहुतही स्वावधानीसे एक २ शब्दको ठीक २ रूपसे असंमिलित करकेही बोलता हूं, फिर भी यह कहता है, हा दुष्ट शिष्य ! तुम मिलित करके पदका उच्चारण करते हो तथा-अन्य और भी साधुजन उसे मेरे प्रति इस प्रकारके व्यवहार निषेध करते हैं, परन्तु वह तो मानता ही नहीं है, और हाथ उठा २ कर लुझे प्रेरणापूर्वक वह दवाता रहता है, अतः मैं तो यही मानता हूं कि यह जो कुछ भी मेरे साथ इस प्रकारका व्यवहार करता है, वह सब कषायोदयके बशसे ही करता है, यद्यपि यह जैसा व्यवहार मेरे साथ करता है, वैसाही व्यवहार मैं भी इसके साथ कर सकता हूं. परन्तु मैं जो इन सब बातोंको सहन कर रहा हूं उससे कुछ नहीं कहता हूं उसका कारण ऐसी ही सामाचारीका होना है, अब मैं ऐसा कहेगा

भीडाઇ રહ્યો છે. તેથી તે સ્ખલિત, મિલિત અને ઉપાલભ યુક્ત શબ્દો દ્વારા બંધુ કે મને આડકતરી રીતે એવું કહી રહ્યો છે કે “ હે દુષ્ટ શિષ્ય ! તું તારા કર્તવ્યમાર્ગમાંથી ચલાયમાન થઈ રહ્યો છે ” બે કે હું તો મારા કર્તવ્યમાંથી ખિલકુલ ચલાયમાન થયો નથી, છતાં પણ તે મને વારંવાર ટકોર કરતો રહે છે અને ઠપકો અને ધમકી આપતો રહે છે. બોલતી વખતે પણ હું ઘણી સાવધાનીથી પ્રત્યેક શબ્દને અસંમિલિત કરીને. સ્પષ્ટ રૂપે બોલું છું, છતાં પણ તે મને કહે છે કે હે દુષ્ટ શિષ્ય ! તું મિલિત (અસ્પષ્ટ) શબ્દો બોલે છે. ણીબ સાધુઓ પણ તેને મારી સાથે એવું વર્તન ન રાખવા સમજાવે છે પણ તેઓ તો માનતા જ નથી, અને હાથ બંધો કરી કરીને મને શિખામણો આપ્યા જ કરે છે, ટક ટક કર્યા કરે છે અને એ રીતે મને ખોટી ઇમામણી કરે છે હું તો એમ જ માનું છું કે તેઓ કષાયના ઉદયને વશવર્તી થઈને આ પ્રકારનું વર્તન મારી તરફ બતાવે છે. હું પણ ધારું તો તેમની સાથે એવું જ વર્તન બતાવી શકું છું. પરન્તુ હું તો

चारी । अतो मया एतत्कृतं तर्जनादिकं सोढव्यमेव । परन्त्वहमेवं करिष्यामि यथाऽयं सत्तो लघुर्भवेत् । एवं क्षुल्लकविचारणानन्तरमन्यदा तौ भिक्षाचर्यायं गतौ तृपितौ बुभुक्षितौ चेत्येवं चिन्तितवन्तौ—यदस्मिन् देवकुले=व्यन्तरायतने कुटङ्के=लतामण्डपे वा किञ्चिद् भुक्त्वा पानीयं पास्यावः । इत्थं विचार्य तौ तत्र गत्वा सुखेन स्थितौ । तावत् स क्षुल्लकः स्वस्थितस्थानाभिमुखमागच्छन्तीं काञ्चित् आर्यां ददर्श । स चिन्तितवान् 'सम्प्रति वैरनिर्यातनाय लब्धो मयाऽवसरः' इति चिन्तयित्वा स तं रत्नाधिकं प्राह=आर्य ! करोतु भवान् लघ्नाहारं प्रिवतु पानीयं च, अहं तावत् संज्ञाभूर्मि गत्वा प्रत्यायामि, इत्युक्त्वा स रत्नाधिके,

कि जिससे यह मुझे लघु-दीक्षापर्यायकी अपेक्षा लघु ही जावे, इस तरहके क्षुल्लकके विचारके बाद वे दोनों क्षुल्लक और रास्त्रिक किसी एक समय भिक्षाचर्याके लिये विचरण करते करते तृपित और बुभुक्षित बने हुए उन दोनोंने इस प्रकारसे विचार किया चलो इस व्यन्तरायनमें अथवा लतामण्डपमें बैठकर कुछ खाकर पानी पीलेवे ऐसा सोच कर वे वहाँ गये और बैठ गये इतनेमें उस क्षुल्लकने अपने बैठे हुए स्थानकी ओर आती हुई एक किसी आर्याको देखा । देखकर उसने विचार किया "अब इस साधुसे वैर चुकानेका मुझे यह अच्छा अवसर हाथ लगा है" ऐसा विचार कर उसने रत्नाधिक साधु पर्याय ज्येष्ठसे कहा-आर्य ! आप लघु आहार कर लेवे और पानी पी लेवे मैं तब तक संज्ञाभूमि विचार भूमिकी ओर जाकर वापिस आ जाता हूँ, ऐसा कह कर वह

समाचारीना नियम प्रमाणे आलानारे छुं, तेथी आ अधुं सडन करी लठं छुं अने तेमने अेक शण्ठ पणु डेडनेो नथी परन्तु डवे डुं अेवुं करीश डे नेथी मारी लघु दीक्षापर्याय डोवा छतां पणु तेओ मारा करतां लघु गबुय. आ प्रमाणे ते लघु दीक्षापर्यायवाणा साधुअे निश्चय कर्यो. त्पार पाठ डोअं अेक द्विसे ते क्षुल्लक अने ते रास्त्रिक लिक्षापर्याय माटे नीकण्या भिक्षापर्याय करतां करतां सुधा अने पिपासाथी व्याकुण अनेला ते अन्नेअे विचार कर्यो डे आलो आ व्यन्तरायनमां-लतामंडपमां जधने आहार पाणी करी लधअे. आ प्रमाणे विचार करीने तेओ त्यां जधने अेभी गया. अे वधते ते क्षुल्लके डोअं अेक आर्याने (साध्वीलने) ते आणुअे आवतां नेयां. तेमने जेधने ते क्षुल्लकना मनमां अेवो विचार आव्यो डे "आने आ साधुतुं वेर वाणवानो सुंदर भोडो डाय आव्यो छे"—

आ प्रमाणे विचार करीने ते क्षुल्लके ते पर्याय ज्येष्ठ साधुने कथुं डे आप थोडो आहार करी लो अने पाणी पी लो. त्यां सुधीमां डुं इवे

મૈથુનવિષયકમસત્યં દોષમારોપયિતુમના આચાર્યસમીપે ગત્વા વદતિ—

ગાથા—જેદ્વજ્જેણ અકજ્જં, સજ્જં દેવાલણ કયં અજ્જં ।

ઉવજીવિઓ ન મંતે ! મણ તુ સંસદ્ધકપ્પોડત્થ ॥ ૨ ॥

છાયા—જ્યેષ્ઠાર્યેણ અકાર્યં, સઘો દેવાલયે કૃતમઘ ।

ઉપજીવિતો ન મદન્ત ! મયા તુ સંસદ્ધકલ્પોડત્ત ॥ ૨ ॥

અયમર્થઃ—હે મદન્ત ! અઘ સઘઃ—ઈદાનીમેવ દેવાલયે=વ્યન્તરાયતને જ્યેષ્ઠાર્યેણ અકાર્યં=મૈથુનસેવાલક્ષણમ્ અકૃત્યં કૃતમ્=આચરિતમ્ । અત્ર મૈથુનસેવનરૂપે પ્રસ્તાવે મયા તુ સંસદ્ધકલ્પો ન ઉપજીવિતઃ મયા તુ તદકાર્યં નાચરિતમિત્યર્થઃ । ઇતિ । અત્રાપિ આચાર્યસમીપગમને માસલઘુ । ‘જ્યેષ્ઠાર્યેણ અકાર્યં કૃત—’ મિત્યાદિ કથને માસગુરુ । एवं क्रमेण पाराश्रिकं यावत्प्रायश्चित्तप्रस्तारो बोध्यः । अत्रापि क्षुल्लकस्य मृषावादविरमणव्रतमङ्गजनितः प्रायश्चित्तप्रस्तारः । रत्नाधिको यदि सत्यमेव तथाविधाकृत्यकारी भवति, तदपह्वं च

उस रत्नाधिक साधुमें झूठा मैथुन विषयक दोषको आरोपित करनेकी इच्छासे वहांसे चला आता है, और आचार्यके पास जाकर कहता है—“जेद्वज्जेण अकज्जं सज्जं” इत्यादि ।

हे मदन्त ! आज अभी व्यन्तरायतनमें - ज्येष्ठ आर्यने मैथुन सेवनरूप अकार्य कार्यका सेवन किया है, मैंने इसे देख लिया है, अपने व्रतकी रक्षा करनेके अभिप्रायसे मैंने उस अकार्यका सेवन नहीं किया है, इस तरह आचार्यके समीप आनेमें उसे मास लघु प्रायश्चित्त लगता है, और ऐसा कहने पर मास गुरु प्रायश्चित्त लगता है, इसी क्रमसे पूर्वोक्त कथनके अनुसार पाराश्रित प्रायश्चित्त तक उस क्षुल्लकको प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र जानना चाहिये तथा—

જઘને આવી પહોંચું છું. આ પ્રમાણે કહીને તે પર્યાય જ્યેષ્ઠ સાધુ પર પ્રહસ્યર્થ વાતના ભંગને આરોપ મૂકવાની ઇચ્છાથી તે ત્યાંથી ચાલી નીકળ્યો. આચાર્યની પાસે જઘને તેણે આ પ્રમાણે કહ્યું—“જેદ્વજ્જેણ અકજ્જં સજ્જં” ઇત્યાદિ—“હે ભગવન્ ! આજે અત્યારે જ વ્યન્તરાયતનમાં (દેવાલયમાં) જ્યેષ્ઠ સાધુએ મૈથુન સેવન રૂપ અકાર્યત્વું સેવન કર્યું છે. મેં તેતું તે હુષ્કૃત્ય જોઈ લીધું છે. મારા વ્રતની રક્ષા કરવા માટે મેં તે હુષ્કૃત્યત્વું સેવન કર્યું નથી” આ પ્રકારતું જોઈને દોષારોપણ કરવાની ઇચ્છાથી ત્યાં આવેલા તે લઘુ પર્યાય સાધુને માસ લઘુ પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે. અને ગુરુની સમક્ષ આ પ્રકારે ખોટી વાત કરવાથી તેને માસ ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે. પારાશ્રિત પ્રાયશ્ચિત્ત પર્યાન્તના પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર તે સાધુ ક્યારે બને

करोति, तदा तस्य मैथुनविरमणमृषावादविरमणव्रतद्वयभङ्गजनितः प्रायश्चित्तप्रस्तारो बोध्य इति चतुर्थः प्रस्तारः ।

तथा—अपुरुषवादं वदन्=कस्मिंश्चित्साधौ असत्यमेव नपुंसकत्वमारोपयन् साधुः प्रायश्चित्तप्रस्तारभागभवति । प्रायश्चित्तप्रस्तारस्त्वेवं बोध्यः । तथाहि—कश्चित् क्षुल्लको रत्नाधिकेन मुहुर्मुहुः शिक्ष्यमाणस्तच्छिद्रान्वेषणे तत्पर एकदा कदाचित् रत्नाधिकेन सह भिक्षार्थं गतस्ततएकाकी निवृत्त आचार्यमाह—भदन्त !

यदि वह रत्नाधिक, वास्तविक रूपमें तथाविध अकृत्यज्ञा सेवन करनेवाला है, और उसे वह छिपाता है, तो ऐसी स्थितिमें वह मैथुन विरमण व्रतके भङ्ग होनेसे और मृषावाद विरमण व्रतके भंग होनेसे जनित प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र हो जाता है, ऐसा यह चतुर्थ प्रस्तार है, तथा—“अपुरुषवादं वदन्” इत्यादि—किसी साधु पर असत्य रूपसेही नपुंसक होनेका आरोप करनेवाला साधु प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र होता है, प्रायश्चित्त प्रस्तार ऐसे जानना चाहिये—किसी क्षुल्लक साधुको किसी रत्नाधिक साधुने बार २ समझाया—सो समझानेके अभिप्रायको न समझकर वह क्षुल्लक उसके प्रति उल्टा अन्यथा विचारशाली हो गया और उसके छिद्रान्वेषण करनेमें वह तत्पर रहने लग गया एक दिन वह उसी रत्नाधिकके साथ भिक्षाचर्याके लिये गया वहांसे वह भिक्षाचर्या करके अकेलाही लौट आया और आचार्यके पास आकर कहने

छे ते वात पूर्वोक्त ऽथने आधारे समञ्ज लेवी. जे ते पर्याय ज्येष्ठ साधु द्वारा भरेभर ते प्रकारना दुष्कृत्यनुं सेवन थर्ध गथुं डोय अने तेने ते छुपावतो डोय तो तेना द्वारा मैथुनविरमण व्रतने तथा मृषावाद विरमण व्रतने ल'ग थाय छे. ते कारणे ते साधु आ जन्ने व्रतना ल'गने दीधे पूर्वोक्त प्रायश्चित्त प्रस्तारने पात्र जने छे. आ प्रकारनुं योथा प्रायश्चित्त प्रस्तारनुं स्वरूप छे. डवे पांथभां प्रायश्चित्त प्रस्तारनुं स्वरूप प्रकट करवाभां आवे छे—“अपुरुषवाद वदन्” इत्यादि—कोई साधु पीन कोई साधु पर ते नपुंसक डोवानो जोटो आरोप भूके तो आरोप भूकनार ते साधु प्रायश्चित्त प्रस्तारने पात्र जने छे आ वातनुं स्पष्टीकरण नीचे प्रमाणे छे. कोई एक शुद्ध दीक्षापर्याय वाणा साधुजे कोई एक लघु दीक्षापर्यायवाणा साधुने अमुक कार्य न करवा अने अमुक प्रकारनुं वर्तन राखवा वारंवार सम-जोयो. परन्तु पोताना कट्याणुने भाटे ते जेवु कडे छे जेम मानवाने भद्वे तेणे कंठ अवणुं न धारी दीधुं, अने तेणे तेना दोषो शोधवा मांड्या जेक द्विस ते साधु ते पर्याय ज्येष्ठ साधु साथे भिक्षाचर्या भाटे गयो

अयं रत्नाधिको नपुंसकः । अत्र आचार्य क्षुल्लकयोः प्रश्नोत्तररूपं गाथाद्वयमाह—
गाथा—तद्वत्ति कंहं जाणसि ? दिट्ठा णियया से तेहि मे वुत्तो ।

वट्टइ तद्वत्तो तुज्झं पव्वावेउं मम वि संका ॥ १ ॥

दीसइ य पाडिख्वं, ठिय चंक्रमिय सरीरभासाहिं ।

वहुसो अपुरिसवयणे, सवित्थरारोवणं कुज्जा ॥ २ ॥

छाया—तृतीय इति कथं जानासि ? दृष्टा निजका अस्य तैर्मे उक्तम् ।

वर्तते तृतीयो युष्माकं प्रत्राजयितुं ममापि शक्त्वा । ॥ १ ॥

दृश्यते च प्रतिरूपं स्थितचङ्क्रमितशरीरभाषाभिः ।

वहुशः अपुरूपवचने सविस्तरारोपणां कुर्यात् ॥ २ ॥

अयमर्थः—‘अयं रत्नाधिको नपुंसकः’ इति ब्रुवाणं क्षुल्लकमाचार्यः पृच्छति—
‘अयं तृतीयः-तृतीया प्रकृतिः-नपुंसकः’ इति कथं जानासि ? एवमाचार्येण
पृष्ठः क्षुल्लकः प्राह-मया अस्य=रत्नाधिकस्य निजकाः=कुटुम्बिनः दृष्टाः । तैः मे=
मम उक्तम् यत्-‘तृतीयो-नपुंसको युष्माकं प्रत्राजयितुं वर्तते=कल्पते किम्?’
इति । ‘किं भवन्तो नपुंसकमपि प्रत्राजयन्ति’ इति रत्नाधिकस्यास्य सांसारिक-

लगा हे भदन्त ! यह रत्नाधिक नपुंसक है । इस विषयमें आचार्य
और क्षुल्लकका प्रश्नोत्तर रूप संवाद इस प्रकारसे है—

“तद्वत्ति कंहं जाणसि ?” इत्यादि ।

“रत्नाधिक नपुंसक है” इस प्रकारसे कहनेवाले क्षुल्लकसे आचा-
र्यने पूछा यह “तृतीय प्रकृतिवाला है-नपुंसक है” यह तुझने कैसे
जाना तब क्षुल्लकने आचार्यसे कहा-महाराज ! मैंने इसके कुटुम्बी-
जन देखे हैं, सो उन्होंने सुझसे पूछा-कि क्या तुम नपुंसकको भी
दीक्षित करते हो ? मैंने कहा नपुंसकको दीक्षा देनेका अधिकार ही

होता । त्योंही पाछा श्रीने तेण्णे आचार्य पासे जणिने आ प्रभाण्णे कहुं—

“हे भगवन् ! आ रत्नाधिक (शुरु दीक्षा पर्यायवाचो साधु) नपुंसक
छे” आ विषयने अनुसक्षीने ते आचार्य अने क्षुल्लकने संवाद नीचे
प्रभाण्णे समज्यो. “तद्वत्ति कंहं जाणसि” इत्यादि—

आचार्ये ते क्षुल्लकने अयो प्रश्न कर्यो के “तसे ओ देवी रीने जण्णुं
के ते तृतीय प्रकृतिवाचो (नपुंसक) छे ?

क्षुल्लकने जवाब—“हे शुरुदेव ! मने तेमना कुटुम्बीजनो मज्या
हता. तेओ मने पूछतां हतां के शुं तमे नपुंसकने पण्णु दीक्षा आयो छे
थरां ? मे तेमने अयो जवाब आय्यो हतो के नपुंसकने दीक्षा देवानो

सम्बन्धिनो मां पृष्टवन्तः ' इत्यर्थः । तथा-ममाप्यस्य विषये शङ्काऽस्ति, यत्-
अयं नपुंसकोऽस्ति । यतोऽस्य स्थितचङ्क्रमितशरीरभाषाभिः-स्थित्या गत्या
शरीरेण भाषया च प्रतिरूपं=नपुंसकानुरूपं सर्वं दृश्यते, अतोऽहं ब्रवीमि-यदयं
नपुंसक इति । एवंप्रकारेण रत्नाधिकविषये बहुशः अपुरुषवचने=नपुंसकवचने
वर्तमानस्य साधोः सविरतरारोपणं-मासलघुप्रारभ्य पाराश्रिकं यावत् प्रायश्चि-
त्तस्य प्रस्तारं कुर्यादिति । अत्रापि क्षुल्लकस्य मृषावादजनित एव प्रायश्चित्त
प्रस्तारः । रत्नाधिको यदि सत्यमेव तथा भवति तदा तस्य साधुसङ्ख्याद् बहि-
ष्कारो भवतीति पञ्चमः प्रायश्चित्तप्रस्तारः । १ ।

नहीं है, तब उन्होंने कहा जो वह तुम्हारे पास रत्नाधिक है, वह नपुं-
सक है, तथा मुझे भी इसके विषयमें शङ्का है, क्योंकि इसकी स्थितिसे
गतिसे शरीरसे और भाषासे मुझे सब इसमें नपुंसकके अनुरूपही
दिखलाई देता है, इसलिये मैं कहता हूँ कि यह नपुंसक है, इस प्रका-
रसे रत्नाधिकमें नपुंसक होनेका आरोप करनेवाले उस क्षुल्लक साधुमें
मास लघु प्रायश्चित्तसे लेकर पाराश्रिक प्रायश्चित्त तकके प्रायश्चित्त प्रस्ता-
रोंकी पात्रता जाननी चाहिये यहां क्षुल्लक साधुमें जो प्रायश्चित्त प्रस्तार
की पात्रता कही गई है, वह उसके मृषावाद विरमण व्रतके भंग हो
जानेसे कही गई है, तथा वह रत्नाधिक सत्य रूपमें जैसा क्षुल्लक
साधुने प्रकट किया है, वैसाही यदि नपुंसक है, तो उसे साधु संघसे
बहिष्कृत कर देना चाहिये इस प्रकारसे यह पांचवां प्रायश्चित्त प्रस्तारहै-

अधिकार ७ अमारा शासनमां मत्थे नथी त्यारे तेमणे मने कहुं डतुं के
तमारी साथे ७ रत्नाधिक छे ते नपुंसक छे. वणी डे गुरुदेव तेनी रीतभात,
भाषा, डलनयलन, डापलाव वगेरे जेतां मने पणु जेवी शंका थाय छे के
ते अरेअर नपुंसक ७ छे." आ प्रकारने जेठे. आरोप ते साधु पर
मुकनार ते साधु (क्षुल्लक) मास लघु प्रायश्चित्तथी लधने पाराश्रिक प्रायश्चित्त
पर्यन्तना प्रायश्चित्तोने पात्र भने छे. अर्ही क्षुल्लकमां ७ प्रायश्चित्त प्रस्तारनी
पात्रता कडेवामां आवी छे ते मृषावाद विरमण व्रतने तेना द्वारा लंग
थवाने कारणे कही छे. अने ते रत्नाधिक अरेअर नपुंसक ७ डोय ते तेने
संधमांथी डांकी दाठवे जेधये. आ प्रकारने आ पांचमे प्रायश्चित्त प्रस्तार छे,

તથા — દાસવાદં વદન્ — ‘ દાસોઽયમ્ ’ ઇતિ અમન્યસેવ કસ્મિશ્ચિત્-સાધૌ દોષમારોપયન્ સાધુઃ પ્રાયશ્ચિત્તપ્રસ્તારભાગમ્વતિ । અત્રેદં વોદ્યમ્-દુષ્પેક્ષિતા-દિષુ રત્નાધિકેન પ્રેર્યમાણઃ ક્ષુલ્લકઃ ક્રોધમુપગતઃ કદાચિદ્વાચાર્યસમીપે સમા-ગત્ય કથયતિ-મદન્ત ! અયં રત્નાધિકો દાસોઽસ્તિ । અત્રાચાર્યક્ષુલ્લકયોઃ પ્રશ્નોત્તરરૂપં ગાથાત્રયમાહ —

ગાથા — સ્વરહત્તિ કહં જાણસિ, દેહાઽઽયારા કહેંતિ સે હંદી ।

છિક્કોવળદુઃખંડો, ણીયાસી દારુગસભાવો ॥ ૧ ॥

છાથા — સ્વરક ઇતિ કથં જાનાસિ, દેહાકારાઃ કથયન્ત્યસ્ય હન્ત ।

ક્ષિપ્રકોપનો દુર્માળ્ડો, નીચાસી દારુગસ્વભાવઃ ॥ ૧ ॥

અયમર્થઃ — રત્નાધિકોઽયં દાસોઽસ્તીતિ ક્ષુલ્લકેનોક્તે આચાર્યસ્તં પૃચ્છતિ-

“ દાસવાદં વદન્ ” હસી પ્રકારસે કિસી સાધુકે ડપર એસે અસત્ય દોષકા આરોપણ કરના કિ “યહ સાધુ દાસહૈ” હસ પ્રકારસે અસત્ય દોષકા આરોપણ કરનેવાલા સાધુ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારકા પાત્ર હોતા હૈ, હસ વિષયમેં એસા સમજના ચાહિયે, કિસી રત્નાધિકને કિસી ક્ષુલ્લક સાધુસે અઠ્ઠી તરહસે દેહમાલ કરકે પ્રવૃત્તિ કાનેહી વાત કહી તથ વહ ક્ષુલ્લક ઉક્ત પર ક્રોધાવિષ્ટ હો ગયા ઓર આચાર્યકે પાસ જાકર કહને લગા હૈ મદન્ત ! યહ રત્નાધિક દાસ હૈ, હસ વિષયમેં દોનોંકા આચાર્ય ક્ષુલ્લકકો પ્રશ્નોત્તર રૂપ સંવાદ હસ પ્રકારસે હૈ —

“ સ્વરહત્તિ કહં જાણસિ ” ઇત્યાદિ ।

યહ રત્નાધિક દાસ હૈ, એસા જન ક્ષુલ્લકને કહા તથ આચાર્યને

હવે છક્કા પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રસ્તારતું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવે છે.

“ દાસવાદં વદન્ ” ઇત્યાદિ —

કોઈ સાધુ ણીજા કોઈ સાધુ ઉપર એવો ખોટો આરોપ મૂકે છે કે “ આ સાધુ દાસ છે. ” તો તે પ્રશ્નરતું ખેટું દોષારોપણ કરનાર સાધુ પ્રાય-શ્ચિત્ત પ્રસ્તારને પાત્ર બને છે. આ વિષયમાં વધુ સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે સમજવું.

કોઈ એક ગુરુ દીક્ષા પર્યાયવાળા સાધુએ કોઈ લઘુ દીક્ષા પર્યાયવાળા સાધુને જતનાપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરવાની સલાહ આપી તેથી તેણે ક્રોધાવેશમાં આવી જઈને આચાર્યની પાસે જઈને આ પ્રમાણે કહ્યું — “ હે ભગવન્ ! આ રત્નાધિક દાસ છે ” આ વિષયમાં તે ક્ષુલ્લક અને આચાર્ય વચ્ચેનો સંવાદ હવે આપવામાં આવે છે. “ સ્વરહત્તિ કહં જાણસિ ” ઇત્યાદિ —

બ્યારે તે ક્ષુલ્લકે તે પર્યાયબ્યેષ્ઠ સાધુ દાસ છે એવી વાત કરી ત્યારે આચાર્યે તેને પૂછ્યું “ તમે કેવી રીતે બ્રહ્મ્યું કે તે ખરક (દાસ) છે ? ”

સ્વરકઃ=દાસોડયમસ્તીતિ કથં જાનાસિ ? તદા ક્ષુલ્લકઃ કથયતિ-ઇન્તેતિ સ્વેદે ।
હે ભદન્ત ! અસ્ય દેહાકારાસ્તથા કથયન્તિ । તથાચાયં ક્ષિપ્રક્રોપનઃ=શીઘ્રક્રોધ-
કરણશીલઃ, દુર્માણ્ડઃ=અસંતૃપ્તપરિધાનાદિઃ, નીચાસી-નીચતરે આમને ઉપવેશન-
શીલો દારુણસ્વભાવઃ ક્રૂરસ્વભાવશ્ચાસ્તિ । અથ દાસાનાં યથાડકારા ભવન્તિ
તાનેવાહ—

ગાથા—દેહેણ વા વિરૂવો, કુઝ્જો વડમ્મો ય વાહિરપ્પાદો ।

કુઝમેવ સે આયારા કહેતિ જહ એસ સ્વરહત્તિ ॥ ૨ ॥

છાયાઃ—દેહેન વા વિરૂપઃ કુઝ્જો વડમ્મશ્ચ વાહ્યપાદઃ ।

સ્ફુટમેવાસ્ય આકારાઃ કથયન્તિ યથૈવ સ્વરક ઇતિ ॥ ૨ ॥

અયમથેઃ—અયં દેહેન વા=શરીરેણાડપિ વિરૂપઃ=વિકૃતરૂપવાનસ્તિ । વૈરુ-
પ્યમેવાહ-અયં શરીરેણ કુઝ્જો, વડમ્મઃ=વામનઃ, વાહ્યપાદઃ=શીર્ષચરણશ્ચાસ્તિ ।
एतादृशा आकारा एवास्य स्फुटं कथयन्ति-यथा एष स्वरको=दासोऽस्तीति ।

ઉસસે પૂછા—“ યહ સ્વરક-દાસ હૈ ” હસ વાતકો લુમ કૈસે જાનતે હો
તવ ક્ષુલ્લકને ઉનસે કહા હે ભદન્ત ! મૈ કયા કહું હસકે દેહાકારહી
હસ વાતકો કહ રહે હૈ તથા હસે જરા ૨ સો વાતોમૈ જલ્દી ક્રોધ આ
જાતા હૈ, ઉલાડે શરીરહી યહ ઘૈટા રહતા હૈ, વસ્ત્ર આદિ ઓઢતા નહીં
હૈ, નીચાસી-નીચતર આસન પર યહ બૈઠતા હૈ, ઓર સ્વભાવમૈ યહ
ક્રૂર હૈ । દાસોકે જૈસે આકાર હોતે હૈ વહ ઉન્હે અવ પ્રકટ કરતાહુઆ
કહતા હૈ—“ દેહેણ વા વિરૂવો ” ઇત્યાદિ ।

દાસ જૈસા શરીરસે વિકૃતરૂપવાલા હોના હૈ, વૈસાહી યહ વિરૂપ
હૈ, વિકૃત રૂપવાલા હૈ—દેલ્ખિયે કિ-યહ શરીરસે કુઝ્જ હૈ, વામન હૈ,
વાહ્યપાદવાલા હૈ, લમ્બે પગવાલા હૈ, હસ તરહકે યે શારીરિક આકાર

ત્યારે તે ક્ષુલ્લકે જગાળ આપ્યો—“ તેના શરીરની આકૃતિ, વર્તન આદિ
દાસના જેવાં જ છે. તેને વાત વાતમાં ક્રોધ આવી જાય છે, તે ખૂલ્લે શરી-
રે જ બેસી રહે છે-શરીર પર કોઈ વસ્ત્ર ઓઢતો નથી, તે નીચતર આસને
બેસે છે, અને તે સ્વભાવે ક્રૂર છે. ” દાસના શરીરનો આકાર કેવો હોય છે
તેનું શાસ્ત્રોમાંથી પ્રમાણ આપીને તે ક્ષુલ્લક આચાર્યને કહે છે કે :

“ દેહેણ વા વિરૂવો ” ઇત્યાદિ—

દાસોનું શરીર જેવું વિકૃત (બેડાળ) હોય છે, એવું જ વિકૃત શરીર
આ રત્નાધિક સાધુનું છે—તેના શરીરે ખૂંધ છે, તે વામન છે, તેના પગ લાંબા
છે. આ પ્રકારની તેની શરીર રચના વડે જ એ વાત સિદ્ધ થઈ જાય છે કે

તથા—एतस्य संवन्निनोऽपि मामुक्तवन्तो—यदयं दासोऽस्तीति । एवं तेनोक्ते
आचार्यः प्राह—

गाथा—केइ सुख्ख दुख्खा, खुज्जा वडभा य वाहिरप्पाया ।

न ह्यु ते परिभरियन्वा, वयणं च अगारियं वोत्तुं ॥ ३ ॥

ज्ञाया—केऽपि सुखणाः कुरुषाः कुज्जा वडभाश्च बाह्यपादाः ।

न खलु ते परिभवितव्याः, वचनं च अनार्यं वक्तुम् ॥ ३ ॥

अयमर्थः—इह नामकर्मोदयवेचित्र्यात् केचित् नीचकुलोत्पन्ना अपि दासा-
दयः सुखपा भवन्ति । केचित् पुनः राजकुलोत्पन्ना अपि कुरुपा अर्थात् कुब्जा
वामना बाह्यपादाश्च भवन्ति । अतस्ते न खलु=नैव परिभवितव्याः—तिरस्करणीयाः।
न च तेषां त्रिपयेऽनार्यं वचनं वक्तुमुचितमिति । ३ ।

एवमाचार्येणोपदिष्टोऽपि क्षुल्लको रत्नाधिकत्रिपये दामत्वमेव साधयति ।

હી સ્પષ્ટ રૂપસે યહ પ્રકટ કર રહેહીં, કિ યહ સ્વરક-દાસ હૈ, તયા હસકે
જો સ્વચન્ધી જન હીં, ઉન્હોને ધી સુજ્જસે યહી કહા હૈ; કિ યહ દાસહૈ,
હસ પ્રકાર જવ ક્ષુલ્લકને આચાર્યસે કહા તવ વે કહને લગે—“કેહ
સુલ્લવ દુલ્લવા ” ઇત્યાદિ ।

हे क्षुल्लक संसारमें नामकर्मके उदयकी विचित्रताको लेकर कितनेक
नीच कुलमें उत्पन्न हुए दासादिजन सुखवाले होते हैं, और कितनेक
राजकुलमें उत्पन्न हुए भी जन कुरुष अर्थात् कुब्ज वामन एवं बाह्य-
पादवाले होने हैं अतः ऐसे व्यक्ति न तिरस्करणीय होते हैं, और न
उनके प्रति अनार्य वचनका प्रयोग शोभनीय होता है—

हस प्रकारसे आचार्यके द्वारा समझाया गया भी वह क्षुल्लक

તે દાસ છે. વળી તેમના જે સખંધીઓ છે તેમણે પણ મને કહ્યું છે કે તે
દાસ છે ” તે ક્ષુલ્લકની આ પ્રકારની દલીલો સાંભળીને તે આચાર્યે, તેને કહ્યું:

“કેહ સુલ્લવ દુલ્લવા ” ઇત્યાદિ—

“હે ક્ષુલ્લક ! સંસારમાં નામકર્મના ઉદયની વિચિત્રતાને લીધે નીચ
કુળમાં ઉત્પન્ન થયેલા કેટલાક દાસાદિ જન પણ સૌંદર્ય સંપન્ન હોય છે અને
રાજકુળ આદિ ઉત્તમ કુળમાં ઉત્પન્ન થયેલા કેટલાક લોકો કદરૂપાં (ખૂંધ
આદિ વિકૃત શરીરવાળા, વામન રૂપ, લાંબા પગવાળાં) પણ હોય છે. તેથી
એવા લોકો તિરસ્કારને પાત્ર નથી અને એવા લોકો માટે આવા કઠોર વચનો
બોલવા તે કોઈ પણ રીતે યોગ્ય નથી ”

આચાર્ય દ્વારા આ પ્રમાણે સમજાવવામાં આવ્યા છતાં પણ જે તે

अत्र पूर्ववदेव क्षुल्लकस्य सृषायादजनितो मासलध्वादि पाराश्रिकं यावत्प्रायश्चित्तप्रस्तारो बोध्यः । यदि तु रत्नाधिकः सत्यमेव दासो भवति तदा स साधु सङ्घाद् बहिष्कृतो भवतीति षष्ठः प्रस्तारः । ६ ।

पूर्वोक्तमेवार्थं स्पष्टयितुमाह—‘ इच्चेए ’ इत्यादि । इत्येतान् कल्पस्य=साध्वाचारस्य षट् प्रस्तारान्=मासलध्वादिपाराश्रिकान्तान् प्रायश्चित्ताचनाविशेषान् प्रस्तारयिता=रत्नाधिके दोषारोपणकर्ता साधुः सम्यक्=याथातथ्येन अप्रतिपूरयन्-प्रमाणीकर्तुम् अशक्तुवन् स्वयं तत्स्थानप्राप्तः=प्रायश्चित्तप्रस्तारभाग् भवतीति ॥ सू० ५४ ॥

जब अपनी हठको नहीं छोड़ता है, और रत्नाधिकके विषयमें अपने विचारोंमें परिवर्तन नहीं लाता है, प्रत्युत दास भावकीही उसमें पुष्टि करता है, तब क्षुल्लक पूर्वकी तरहसे ही सृषायादजनित मास लघु आदि पाराश्रित्त तक प्रायश्चित्त प्रस्तारोंको पात्र होता है, यदि वह रत्नाधिक क्षुल्लकके कथनानुसार यदि यथार्थ रूपमें दास है, तो उसको साधु संस्थोसे बाहर कर देना चाहिये इस प्रकार यह छट्टा प्रस्तार है, ६ “ इच्चेए छ कप्पस्स पत्थारे पत्थरेत्ता सम्मं अपरिपूरेमाणे तट्ठाणपत्ते ” इस तरह इन साध्वाचारके षट् प्रस्तारोंको मास लघु आदिसे लेकर पाराश्रित्त तकके प्रायश्चित्त रचना विशेषोंको रत्नाधिकमें दोषारोपण करनेवाला साधु यदि अपने द्वारा आरोपित दोषको उसमें प्रमाणित करनेमें असमर्थ है, तो वह दोषारोपण करनेवाला स्वयं प्रायश्चित्त प्रस्तारका पात्र होता है ॥ सू० ५४ ॥

क्षुल्लक पीतानी डठ छोडतो नथी अने रत्नाधिक विषेना पीताना विषादेमां ने परिवर्तन लावतो नथी, अत्रा ते रत्नाधिकमां दासलावनी न पुष्टि करतो रडे छे तो ते आगण कल्या मुन्यपना सृषायाद जनित मासलधुथी लधने पाराश्रित्त प्रायश्चित्त पर्यन्तना प्रायश्चित्त प्रस्तारोने पात्र भने छे. ने ते रत्नाधिक क्षुल्लकना कथन अनुसार थरेथर दास न डाय, तो तेने साधुओना गरुडमांथी डाढी भूकेवे नेधये आ प्रकारने आ छट्टी प्रायश्चित्त प्रस्तार छे.

“ इच्चेए छ कप्पस्स पत्थारे पत्थरेत्ता सम्मं अपरिपूरेमाणे तट्ठाणपत्ते ” कैध पणु रत्नाधिक पर दोषारोपणु करनार साधु ने पीते भूकेला दोषेने साभित करवाने असमर्थ निवडे, तो ते पीते मासलधु आदिथी लधने पाराश्रित्त पर्यन्तना ६ प्रायश्चित्त प्रस्तारोने पात्र भने छे. साध्वाचारना ते ६ प्रस्तारोनुं आ सूत्रमां निरूपणु करवामां आणुं छे. साथे साथे ओवा ६ भंडारना दोषारोपणु पणु उपर प्रकट करवामां आणुं छे. ॥ सू. ५४ ॥

પુનરપિ કલ્પવિષયમેત્ર સૂત્રદ્વયમાહ—

મૂલમ્—છ કલ્પસ્સ પલિમંથૂ પળ્ણત્તા, તં જહા—કોકુઙ્ગ
સંજમસ્સ પલિમંથૂ ૧ મોહરિણ સચ્ચવયળસ્સ પલિમંથૂ ૨,
ચક્કુલોલણ ઇરિયાત્તહિયાણ પલિમંથૂ ૩ તિંતિણિણ ઇસળાગો-
ચરસ્સ પલિમંથૂ ૪ ઇચ્છાલોભિણ મુત્તિમગ્ગસ્સ પલિમંથૂ ૫
મિજ્જાણિયાળકરણે મોક્કલમગ્ગસ્સ પલિમંથૂ ૬, સવ્વત્થ મગ્ગવયા
અળિયાળયા પલ્લત્થા ॥ સૂ૦ ૫૫ ॥

છાયા—પટ્ કલ્પસ્ય પરિમન્થવઃ પ્રજ્ઞતાઃ, તદ્વયા—કૌકુચિકઃ સંયમસ્ય પરિમન્થુઃ
૧, મૌસ્વરિકઃ સત્યવચનસ્ય પરિમન્થુઃ ૨, ચક્કુલોલકઃ દેર્શાપથિકયાઃ પરિ-
મન્થુઃ ૩, તિન્તિણિક ઇપગાગોચરસ્ય પરિમન્થુઃ ૪, ઇચ્છાલોભિકો મુક્તિમાર્ગસ્ય
પરિમન્થુઃ ૫, અભિધ્યાનિજ્ઞાનકરણો મોક્ષમાર્ગસ્ય પરિમન્થુઃ ૬, સર્વત્ર મગ્ગવતા
અનિદાનતા પ્રશસ્તા ॥ સૂ૦ ૫૫ ॥

ટીકા—‘ છ કલ્પસ્સ ’ इत्यादि ।

પરિમન્થુઃ—દ્રવ્યમાત્રભેદાદ્ દ્વિવિધઃ । તત્ર—દ્રવ્યપરિમન્થુ દૈધિમન્થનસાધનો
મન્થાનદણ્ડઃ । માત્રપરિમન્થુસ્તુ—દૈધિમદ્દશસ્ય કલ્પસ્ય મન્થને—વિનાશને સાધ-
નભૂતો મન્થાનસદ્દશઃ કૌકુચિકાદિઃ । તદુક્તમ્—

પુનરપિ સૂત્રકાર કલ્પ વિષયકુ દો સૂત્ર કહતે હૈં—

“ છ કલ્પસ્સ પલિમંથૂ પળ્ણત્તા ’ इत्यादि सूत्र ५५ ॥

ટીકાર્થ—કલ્પકે પરિમન્થૂ ૬ કહે ગયે :હૈં, હનમેં દ્રવ્ય ઓર માવકે ભેદસે
પરિમન્થૂ દો પ્રકારકા હોતા હૈ, દૈધિકો મન્થન કરનેકા સાધનભૂત જો
મન્થાન-દણ્ડ રહૈ હોતા હૈ, વહ દ્રવ્ય પરિમન્થૂ હૈ, ઓર દૈધિકે સદ્દશ

સૂત્રકાર હવે કલ્પવિષયક ખીજા જે સૂત્રોનું કથન કરે છે—

ટીકાર્થ—“ છ કલ્પસ્સ પલિમંથૂ પળ્ણત્તા ” इत्यादि—

જેના દ્વારા સાધુના આચાર નષ્ટ થાય છે એવી ચેષ્ટાનું નામ પરિમન્થન
છે અને એવી ચેષ્ટા કરનારને કલ્પના (આચારના) પરિમન્થુ કહે છે પરિ-
મન્થુના દ્રવ્ય અને ભાવના લેદ્ધી જે પ્રકાર પડે છે દહીંને વડોવવા માટેનો
જે રવૈથો હોય છે તે દ્રવ્ય પરિમન્થુ છે. દૈધિ સમાન કલ્પના
મન્થનમાં (વિનાશ કરવામાં) સાધનભૂત જે ભાવો છે (કૌકુચિકાદિ ભાવો

“ દ્વન્મિ મંથિણ સ્વલુ, તેણ મંથિજ્જણ જહા દહિણ ।
દધિતુલ્લો સ્વલુ કપ્પો મંથિજ્જણ કુક્કુયાઈર્હિ ॥ ૧ ॥ ”

છાયા--દ્રવ્યે મન્થિકઃ સ્વલુ, તેન મથયતે યથા દધિક્રમ્ ।

દધિતુલ્યઃ સ્વલુ કર્પો મથયતે કૌકુચિકાદિભિઃ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

અત્ર હિ ભાવપરિમન્થવ એવ ચિત્તક્ષિતા ઇત્યાહ-‘ છ કપ્પસ્સ ’ ઇત્યાદિ ।
કલ્પસ્ય=સાધ્વાચારસ્ય પટ્ પરિમન્થવઃ=મન્થાનમ્થૂતાઃ પ્રજ્ઞતાઃ । તથથા-કૌકુ-
ચિકઃ=માણ્ડવત્ કુચેષ્ટાકારકઃ સાધુઃ, અયં હિ-સ્થાન-શરીરભાષાભેદાત્ ત્રિવિધઃ ।
તદુક્તમ્--

“ ઠાણ સરીરભાસા તિવિદો પુણ કુક્કુઈ સમાસેણ । ”

કલ્પકે મન્થનમે વિનાશ કરનેમે-સાધનમ્થૂત જો મન્થાન-મથાનીકે જૈસા
કૌકુચિકાદિ હૈં વે પરિમન્થૂ હૈં । કહા મી હૈં--

“ દ્વન્મિ મંથિણ સ્વલુ ” ઇત્યાદિ ।

જિસ પ્રકાર મન્થાન ઢણ્ડલે દહીં મથા જાતા હૈ, ઉસી પ્રકાર કૌકુ-
ચિકા ઓદિકોસે દહીં તુલ્ય કલ્પ (સાધુકા આચાર) મી મથા જાતા
હૈ, નષ્ટ ક્રિયા જાતા હૈ, અતઃ યહાં ભાવ પરિમન્થૂહી ચિત્તક્ષિત હુણ હૈં,
યે ભાવ પરિમન્થૂ સાધ્વાચાર રૂપ કલ્પકે વિનાશક હોતે હૈં-ઇત્યે પ્રથમ
પરિમન્થૂ કૌકુચિક હૈ, માણ્ડકી તરહ જો કુચેષ્ટા કરનેવાલા સાધુ
હોતા હૈ, વહ કૌકુચિક શબ્દસે યહાં પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈ, યહ કૌકુ-
ચિક સ્થાન શરીર ઓર ભાષાકે ભેદસે ત્રિવ પ્રકારકા હોતા હૈ । કહા
મી હૈ--“ ઠાણ સરીરભાસા ” ઇત્યાદિ ।

સાધુના આચારનો વિનાશ કરનારા છે,) તેમને ભાવ પરિમન્થુ કહે છે.
કહુ પણુ છે કે “ દ્વન્મિ મંથિણ સ્વલુ ” ઇત્યાદિ--

જેવી રીતે રવૈયા વડે દહીંનું મન્થન કરવામાં આવે છે, એ જ પ્રમાણે
કૌકુચિકા આદિ વડે દહીં સમાન કલ્પ (સાધુના આચાર) નું પણુ મન્થન
કરાય છે. એટલે કે કૌકુચિકા આદિ વડે સાધુના આચારોનો ભંગ થાય છે.
તેથી સૂત્રકારે અહીં ભાવ પરિમન્થુની જ પ્રરૂપણા કરી છે તે ભાવ પરિ-
મન્થુએ સાધુના આચાર રૂપ કલ્પના વિનાશક હોય છે. તેના નીચે પ્રમાણે
૬ પ્રકાર છે--(૧) કૌકુચિક-ભાંડના જેવી કુચેષ્ટા કરનાર સાધુને અહીં
કૌકુચિક પરિમન્થુ કહ્યો છે. તે કૌકુચિકના સ્થાન, શરીર અને ભાષાના ભેદથી
ત્રણ પ્રકાર પડે છે. કહુ પણુ છે કે :

“ ઠાણ સરીરભાસા ” ઇત્યાદિ--

છાયા--સ્થાનં શરીરભાષા ત્રિવિધઃ પુનઃ કૌકુચિકઃ સમાસેન ઇતિ ।

તત્ર-યન્ત્રરુવત્ નર્તિકાવદ્ વા યો ભ્રામ્યતિ સ સ્થાનતઃ કૌકુચિકઃ । યસ્તુ કરાદિભિઃ શાષાણાદીન્ સિપતિ સ શરીરતઃ કૌકુચિકઃ । તદુક્તમ્--

“ કરગોફળધણુવાયાહર્હિ ઉન્નુહ્ન પત્થરાઈષ્ ।

મયુઢાદાદિય પુય પમિહ કંપણં ણદ્વાઈત્તં ॥ ૧ ॥

છાયા--કરગોફળધણુઃપાદાદિકૈ રુક્ષિપતિ પ્રસ્તરાન્ ।

બ્રૂહનુપુતપ્રમૃતિકમ્પનં નાટ્યશાદિત્વમ્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

તથા-યો હિ સેષિતયુલ્લવાદિત્રાદિ કરોતિ, તથા ચ જલ્પતિ યથાઽન્યો હસતિ, સ માપાતઃ કૌકુચિકઃ । તદુક્તમ્--

“ છેલિમ્ મુહ્વાઈત્તં, જંપઈ ય તદ્વા જદ્વા પરી હસઈ ।

કુઙઈ ય સપ્ વહુવિદ્દે વઘ્વાહિય દેસમાસામો ॥ ૧ ॥ ”

જો યન્ત્રની તરહ અથવા નાચનેચાલીની તરહ હથર ઉધર ભ્રમણ કરતા હૈ, વહ સ્થાનની અપેક્ષા કૌકુચિક હૈ, જો હાથ આદિકોસે પત્થર આદિકોંકો ફેંકતા હૈ, વહ શરીરની અપેક્ષા કૌકુચિક હૈ, કહા મી હૈ--“ કર ગોફળધણુવાયાહર્હિ ” ઇત્યાદિ ।

જો હાથસે ગોફળસે ધણુસે ઓર પગ આદિકોંસે પત્થર ફેંકતા હૈ, તથા મૂ, ઢાઢી, પોંદ ઇત્યાદિકોંકો કંપાતા હૈ, વિવિધ નાટ્યની ક્રીડાઓંકો જો કરતા હૈ, વહ શરીરની અપેક્ષા કૌકુચિક હૈ, તથા-જો સેષિત એવં અનેક પ્રકારસે છુલ્લકો ચજાતા હૈ, તથા ઇસ પ્રકારસે ઘોલતા હૈ, કિ જિસસે દૂસરોંકો હંસી આ જાંતી હૈ, વહ ભાષાની અપેક્ષા કૌકુચિક હૈ । કહા મી હૈ--“ છેલિય મુહ્વાઈત્તં ” ઇત્યાદિ ।

જે સાધુ યંત્રની જેમ અથવા નાચનારીની જેમ આમ તેમ ભ્રમણ કર્યા કરે છે તેને સ્થાનની અપેક્ષાએ કૌકુચિક કહે છે. જે હાથ આદિ વડે પત્થર આદિ ફેંક્યા કરે છે તેને શરીરની અપેક્ષાએ કૌકુચિક કહે છે.

કહું પણ છે કે “ કરગોફળધણુવાયાહર્હિ ” ઇત્યાદિ--

હાથ વડે, ગોફળ વડે, અને પગ વગેરે વડે પત્થર ફેંકનાર તથા મૂ, ઢાઢી ઇત્યાદિને કંપાવનાર અને વિવિધ નાટ્યક્રીડાઓ કરનાર માણસને શરીરની અપેક્ષાએ કૌકુચિક કહે છે જે માણસ મુખ વડે સીટી બળવે છે, અને વિવિધ સૂરો કાઠે છે અને બીજા લોકોને હસવું આવી બય એવી ભાષા બોલે છે તેને ભાષાની અપેક્ષાએ કૌકુચિક કહે છે. કહું પણ છે કે :

“ છેલિય મુહ્વાઈત્તં ” ઇત્યાદિ--

છાયા—સેષ્ટિતં મુખવાદિત્રં જલ્પતિ ચ તથા યથા પરો હસતિ ।

કરોતિ ચ રુતં વહુવિધં વગ્વાહી દેશભાષાઃ ॥ ૧ ॥ ઇતિ

‘ છેલિઅ ’ ઇતિ ચીત્કારવાચકો દેશીશબ્દઃ । હાસ્યજનિકા ભાષા ‘વગ્વાહી’ ઇત્યુચ્યતે । અયં ત્રિવિધોઽપિ કૌકુચિકઃ સંયમસ્ય=ચારિત્રસ્ય પરિમન્થુઃ=વિઘાતંકો ભવતીતિ પ્રથમઃ । ૧ । તથા—મૌખરિકઃ—મુખરો=વાચાલઃ, સ એવ મૌખરિકઃ । યદ્વા—મુખેન અરિં શત્રુમ્ આવહતિ=કરોતિ યઃ સ પૃષોદરાદિત્વાત્ મૌખરિકઃ=અવિચાર્યભાષી ।

જો ભિન્ન ઢંગસે ચીત્કાર કરતા હૈ, મુખકો વાજાકે રૂપમેં કરકે જો વજાતા હૈ, ઓર બોલનેકે ઢંગકો જો હસ પ્રકારસે અપનાતા હૈ, કિ જિસસે દૂસરે જનકો હંસી આ જાતી હૈ—જો હાસ્યોત્પાદક ભાષા બોલના હૈ, જો અનેક પ્રકારકી અવાજેં કરતા હૈ, એસા વહ સાધુ ભાષાકી અપેક્ષા કૌકુચિક હૈ, હસ ગાથામેં “ છેલિઅ ” યહ શબ્દ ચીત્કાર ધ્વનિકા વાચક દેશી શબ્દ હૈ, તથા “ વગ્વાહી ” યહ શબ્દ હાસ્યજનક ભાષાકા વાચક હૈ, યહ તીનોં પ્રકારકા કૌકુચિક ચરિત્રકા વિઘાતક હોતા હૈ, યહ કલ્પકા પ્રથમ પરિમન્થુ હૈ ૧ દ્વિતીય પ્રકારકા પરિમન્થુ મૌખરિક હૈ ૨ મુખર શબ્દકા અર્થ વાચાલ હૈ, મુખરહી મૌખરિક કહા જાતા હૈ, અથવા “ મુખેન—મુખસે—યદ્વા તદ્વા બોલનેસે—જો અવના “અરિં કરોતિ ” શત્રુ બનતા હૈ, વહ મૌખરિક હૈ, વિના વિચારે જો બોલનેકા સ્વભાવવાલા હોતા હૈ, અર્થાત્ જો મનમેં આયા વહી બોલનેવાલા વ્યક્તિ

ને સાધુ કિત્ત રીતે ચીત્કાર કરે છે, મુખને વાબની જેમ વગાડે છે, હાસ્યોત્પાદક વાણી બોલે છે—એવા એવા ભાષાપ્રયોગો કરે છે કે શ્રોતાઓને હસવું આવી જાય છે, જે અનેક પ્રકારના સૂરો કાઢે છે, તે સાધુને ભાષાની અપેક્ષાએ કૌકુચિક કહે છે. આ ગાથામાં “ છેલિઅ ” પદ ચીત્કારનું વાચક છે તથા “ વગ્વાહી ” આ પદ હાસ્યોત્પાદક ભાષાનું વાચક છે. આ ત્રણે પ્રકારના કૌકુચિકે ચરિત્રના વિઘાતક હોય છે. કલ્પના (આચારના) પ્રથમ પરિમન્થુનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે

પરિમન્થુનો બીજો પ્રકાર મૌખરિક છે મુખર એટલે વાચાળ. એવા વાચાળ સાધુને મૌખરિક કહે છે જે માણસ વગર વિચાર્યે મનને કાવે તેમ બોલનારો હોય છે તેને મૌખરિક કહે છે. અથવા મુખ વડે ગમે તેવું બોલીને જે “ અરિં કરોતિ ” અન્યને પોતાના દુશ્મન બનાવે છે તેને મૌખરિક કહે છે.

ઉક્તં ચ—“ મુલ્લરિસ્સ ગોન્નનામં, આવહ્હ મુદ્દેણ માસંતો । ”

છાયા—મૌલ્લરિક્કસ્ય ગોળનાય આવહ્હતિ (અરિં) મુલ્લેન માપમાણઃ—ઇતિ ।

સ ચાયં મૌલ્લરિક્કઃ સત્યવચનસ્ય=મૃષાવાદવિરમણત્રનસ્ય પરિમન્થુર્ભવતિ । મુલ્લરસ્ય વહુમાપિત્વાન્ માપણકાલે મૃષાવાદસ્યાસ્તિ સંભવહ્હતિ માવઃ । ઇતિ દ્વિતીયઃ । ૨ ।

તથા—વક્ષુર્લોલકઃ=વક્ષુવાહોલઃ=વક્ષુલઃ, સ એવ, યદ્વા—વક્ષુર્લોલં ચક્ષુલં વક્ષુ સઃ યો હિ ઉદ્યાનાદીન્ પદ્યન્ વ્રજતિ સઃ । અયં ચ ધર્મકથાદીનામપ્યુપલક્ષણમ્ । તેન યો હિ ધર્મકથાં કુર્વન્ વ્રજતિ સોઽપિ ગ્રાહ્યઃ ।

તદુક્તમ્—“ આલોચંતો વચ્ચહ્, ઉજ્જાણાઃ કહેહ્ વા ધર્મમં ।

પરિયદ્ધુણાણુપ્પેહ્ણ, ણ પેહ્ પંથં અણુરુત્તો ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—આલોચવન્ વ્રજતિ ઉદ્યાનાદિકમ્ કથયતિ વા ધર્મમ્ ।

પરિવર્તનાણુપ્પેક્ષણે ન પેક્ષેને પન્યાનમનુપયુક્તઃ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

મૌલ્લરિક્ક કહ્લાના હૈ, કહ્લા ખી હૈ—મુલ્લરિસ્સ ગોન્નનામં” હ્ત્યાદિ ।

યહ મૌલ્લરિક્ક—સત્ય વચનકા મૃષાવાદવિરમણત્રનકા પરિમન્થુ હોતા હૈ, ક્યોંકિ બહુત ચોલનેકે સ્વભાવવાલા હોનેકે કારણ ઉસકે માપણકાલમેં મૃષાવાદ ખી સંભવિત હોના હૈ ૨ તૃતીય પરિમન્થુ ચક્ષુર્લોલક હૈ, ચક્ષુસે જો ચક્ષુલ હોતા હૈ, વહ અથવા—વક્ષુ જિલકી ચંચલ હોની હૈ, વહ ચક્ષુર્લોલક હૈ, ચલતે સમય જો ઇધર ઉધારકી ચીજોંકો દેખના ૨ ચલના હૈ, વહ ચક્ષુર્લોલક કહ્લા જાતા હૈ, ધર્મકથા કરતે હુણ ચલનેવાલોંકા ખી યહ ઉપલક્ષણ હૈ, અતઃ ધર્મકથા કરતે ૨ ચલનેવાલા ખી ચક્ષુર્લોલક હૈ । કહ્લા ખી હૈ—

“ આલોચંતો વચ્ચહ ” હ્ત્યાદિ ।

કહું પણુ છે કે “ મુલ્લરિસ્સ ગોન્નનામ ” ઇત્યાદિ—

તે મૌલ્લરિક્ક મૃષાવાદ વિરમણ ત્રનનો પરિમન્થુ (વિરાધક) હોય છે, કારણુ કે તેની વાચાણનાને કારણુ તે જે કોઈ વત કરતો હોય તેમાં અસત્યતા (મૃષાવાદ) સંભવી શકે છે. હવે ત્રીજા પ્રકારના પરિમન્થુ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—

જે સાધુના નેત્ર અંચલ હોય છે તેને ચક્ષુર્લોલક કહે છે. માર્ગમાં ચાલતી વખતે તે આસપાસની ચીજોંને નેતાં નેતાં ચાલે છે, તેથી તેના દ્વારા ધર્માસમિતિની વિરાધના થાય છે. ચાલતાં ચાલતાં ધર્મકથા કરનાર સાધુને પણુ ઉપલક્ષણની અપેક્ષાએ ચક્ષુર્લોલક કહી શકાય છે.

કહું પણુ છે કે “ આલોચંતો વચ્ચહ ” ઇત્યાદિ—

एवं विधो हि साधुः ऐर्यापथिक्याः—ईरणम् ईर्या=गमनं, तस्याः पन्थाः—
ईर्यापथः, तत्र भवा समितिः—ऐर्यापथिकी, तस्याः परिमन्थुर्भवति । उक्तं च—

“ छकायाणविराहण, संजम आयाए कंटगाईओ ।

आवडणभाणभेओ लोमे उड्हाह परिहाणी ॥ १ ॥ ”

छाया—षट्कायानां विराधना संयमे आत्मनि कण्ठकादयः ।

आपतनं भाण्डभेदः लोके उड्हाहः परिहानिश्च ॥ १ ॥ इति ।

चक्षुर्लोलत्वादिना हि गमनकाले षट्कायविराधनादयो दोषा भवन्ति, ततश्च
ऐर्यापथिकीसमितेर्विघातो भवतीति भावः । इति तृतीयः । ३ । तथा—तिन्नि-
गिकः—यो हि भिक्षाचर्यादिषु पर्याप्ताहाराद्यलाभेन खेदात् संजातक्रोधावेशेन
यत्किञ्चना भिधायी भवति स ‘ तिन्निगिकः ’ इत्युच्यते । अयं हि एषणा गोच-

अर्थात्—उद्यान आदिकोंको देखते हुए जो चलता है, या धर्मकथा
करते हुए जो चलता है, वह अनुपयुक्त होता है, अपने गमन मार्ग
पर उपयोग रखनेवाला नहीं होता है, इस प्रकारका साधु ऐर्यापथिकी
ईर्यापथ समितिका परिमन्थु होता है, ईर्या नाम गमनका है, इस गम-
नका जो मार्ग है, वह ईर्यापथ है, इस ईर्यापथमें जो समिति होती है,
वह ऐर्यापथिकी है, चक्षुर्लोलक इस ऐर्यापथिकीका परिमन्थु विनाशक
होता है—“ छकायाण विराहण ” इत्यादि ।

छकायोंकी विराधना होनेसे संयम विराधना होती है, और कंटक
आदिसे आत्म विगडना धर्मकी होनी है, गिरना और पात्रोंका फूटना
लोकमें उड्हाह अर्थात् निन्दा और हानि भी होती है, चतुर्थ परिमन्थु

उद्यान आदिने जेतां जेतां आलनारे। अथवा धर्मकथा करतां करतां
आलनारे साधु अनुपयुक्त होय छे—अत्रे के पोताना गमन मार्ग पर
उपयोगपूर्वक आलनारे होतो नथी आ प्रकारने साधु ऐर्यापथिकी समि-
तिने परिमन्थु (विनाशक) होय छे, धर्या अत्रेले गमन ते गमनना
मार्गने धर्या कडे छे, चक्षुर्लोलक साधु आ धर्यापथ समितिनुं सम्यक् रीते
पालन करी शकते नथी ते कारणे ते अर्थापथिकी समितिने विराधक अने छे,

कथुं पणु छे के “ छक्कायाण विराहाण ” इत्यादि—

छकायेनी विराधना धवाथी संयमनी विराधना थाय छे, असावधानी
पूर्वक आलनाथी कटो वागे, पडी जवाय, पात्र आदि कूटे अने ते कारणे
दोकेमां निन्दा पणु थाय अने पोताने हानि थाय छे, साथे साथे धर्मनी
पणु विराधना थाय छे,

રસ્ય-૨૫ળા=૩દ્દમાદિદોપરહિતમક્તપાનગવેપળરૂપા, તત્પ્રધાનો ગોચરઃ તસ્ય પરિમન્થુ ઁવતિ । સ્વેદયુક્તો હિ ક્રોધાવેશેન અનેપળીયમપિ ગૃહ્ણાતીતિ ભાવઃ । ઇતિ ચતુર્થઃ । ૪ । તથા-ઇચ્છાલોભિક્કઃ-ઇચ્છા=સ્પૃહા, લોભઃ=તૃષ્ણા, તૌ વિદ્યેતે યસ્ય સઃ-અભિઝપિતપદાર્થ સતૃષ્ણઃ-અધિકોપધિરિત્યર્થઃ । સ હિ મુક્તિમાર્ગસ્ય-મુક્તિનિર્લોભતા, તદ્રૂપસ્ય માર્ગસ્ય-પરિમન્થુઁવતિ । અધિકોપધિ હિ નિષ્પરિગ્રહત્વરૂપં વ્રતં ન પાલયિતું શકનોતીતિ સ તસ્ય વિઘાતકો ભવતીતિ ભાવઃ ।

“ તિન્તિણિક ” હૈ, ૩દ્દમાદિ દોપ રહિત મક્તપાન કી ગવેપળા રૂપ ૨૫ળા હોતી હૈ, ઇસ ૨૫ળા પ્રધાન જો ગોચર-ગોચરી ભિક્ષાચર્યા હૈ, વહ ૨૫ળા ગોચર હૈ, ભિક્ષાચર્યા આદિમૈં પર્યાપ્ત ઓહાર આદિકૈ અલાભસે જો સ્વેદ સ્વિન્ન હો જાતા હૈ, ૨વં ૩દ્ભૂત ક્રોધકૈ આવેશસે જો મનમૈં આતા હૈ વહી વકને લગ જાતા હૈ, ૨ૈમા પુરુવ સાધુ-તિન્તિણિક કહલાતા હૈ, ૨ૈસા સ્વેદયુક્ત સાધુ ક્રોધકૈ આવેશસે અનેપળીય મી આહારાદિકો ગ્રહણ કર લેના હૈ, અતઃ વહ ૨૫ળા ગોચરકા પરિમન્થુ હોતા કહા ગયા હૈ ૪ પાંચવાં પરિમન્થુ ઇચ્છાલોભિક્ક હૈ-ઇચ્છા નામ સ્પૃહાકા હૈ, ઓર લોભ નામ તૃષ્ણાકા હૈ, સ્પૃહા ઓર તૃષ્ણા જિસકૈ હૈં ૨ૈસા અધિક ૩પધિવાલા ઇચ્છાલોભિક્ક મુક્તિ માર્ગકા પરિમન્થુ હોતા હૈ, ક્યોંકિ મુક્તિ નિર્લોભતારૂપ હોતી હૈ, અધિક ૩પધિવાલા નિષ્પરિગ્રહતા રૂપ વ્રતકા પાલન નહીં કર સકતા હૈ, અતઃ નિર્લોભતારૂપ મુક્તિકૈ નિષ્પરિગ્રહતા રૂપ માર્ગકા ઇચ્છા લોભિક્ક અનુસરણ નહીં કર સકતા ૨ૈસા વહ માર્ગ કિસી પ્રકાર ૩સકૈ હાય નહીં આતા હૈ, ક્યોંકિ વહ

એવો પરિમન્થુ ‘ તિન્તિણિક ’ ગણાય છે ૩દ્દમાદિદોપ રહિત આહાર પાણીની ગવેપળા ૩પ એપળા હોય છે તે એપળા પ્રધાન જે ગોચરી (ભિક્ષાચર્યા) છે તેને એપળા ગોચર કહે છે. ભિક્ષાચર્યા આદિમાં પુરતાં આહાર પાણીની પ્રાપ્તિ ન થવાથી જે સાધુ ખિન્ન થઈ જાય છે અને ક્રોધના આવેશમાં આવી જઈને મનમાં આવે તે બધવા માંડે છે, એવા સાધુને ‘ તિન્તિણિક ’ (તિતાલિષો) કહે છે. એવો સાધુ અનેપળીય આહારાદિ પછી ગ્રહણ કરી લે છે તેથી એવો સાધુ એપળા ગોચરનો પરિમન્થુ (વિરાધક) ગણાય છે.

પાંચમો પરિમન્થુ ‘ ઇચ્છા લોભિક્ક ’ ગણાય છે. સ્પૃહા એટલે ઇચ્છા અને લોભ એટલે તૃષ્ણા. જે સાધુમાં વસ્ત્ર, પાત્ર આદિ ૩પધિની સ્પૃહા અને તૃષ્ણા અધિક હોય છે એવા સાધુને ઇચ્છાલોભિક્ક કહે છે એવો સાધુ મુક્તિમાર્ગનો પરિમન્થુ (વિરાધક) હોય છે. કારણ કે મુક્તિ નિર્લોભતા ૩પ હોય છે. અધિક ૩પધિવાળો સાધુ પોતાના અપરિગ્રહ વ્રતનું પાલન કરી

इति पञ्चमः । ५ । तथा-अभिव्यानिदानकरणः-अभिधया=लोभेन यो निदानं=चक्रवर्तीन्द्रादि पदप्राप्तये प्रार्थनां करोति स मोक्षमार्गस्य-सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र-तपोरूपस्य परिमन्थुर्भवति । अभिधयावशाभिदानकारको हि आर्त्तध्यानवान् भवति । तत्रश्च स मोक्षमार्गात्स्खलितो भवति । अत्र एवाय मोक्षमार्गस्य परिमन्थुरित्यु-च्यते । 'अभिधया' इति विशेषणेन यः पुनरलोभो जन्ममरणादिनिवारिणो प्रार्थनां कुरुते, तस्यैवंविधं निदानं न मोक्षमार्गस्य परिमन्थुरिति सूचितम् ।

ननु तर्हि तीर्थंकरत्वादि पदप्राप्तिप्रार्थनं न चक्रवर्त्यादिपदपार्थनवद्दुष्टम्, अतस्तीर्थंकरत्वादिविषयकं निदानं न मोक्षस्य परिमन्थुरिति चेत्, आह सूत्रकारः

उसका विघातक होता है, छद्वा परिमन्थु अभिधया निदान करनेवाला अभिधया नाम लोभका है, लोभसे जो चक्रवर्ती आदि पद पानेकी चाहना करता है, ऐसा वह साधु आर्त्तध्यानवाला होता है, आर्त्त-ध्यानसे साधु मुक्तिमार्गसे गिर जाता है, इसीलिये इसे मोक्ष-मार्गका परिमन्थु कहा गया है । "अभिधया" इस विशेषणसे सूत्र-कारने यह प्रकट किया है, कि जो लोभ रहित होकर जन्म मरण आदिको नष्ट करनेकी आकांक्षा (वांछा) करता है, उसका इस प्रकारका निदान मोक्षमार्गका परिमन्थु-विनाशक नहीं होता है ।

शंका--तो तीर्थंकर आदि पदकी चाहना जो कि जन्म जरा मर-णकी विनाश करनेवाली है, चक्रवर्ती आदि पदकी चाहनाकी तरह दुष्ट नहीं होती है, तो इसके लिये तीर्थंकरत्व आदि विषयक निदान मोक्षका परिमन्थु नहीं होता होगा क्या ?

शकतो नथी. ते कारणे ते साधु निर्दोषता इय मुक्तिमार्गं पर-आगण वधी शकतो नथी. तेथी अथवा साधुने मुक्तिमार्गने परिमन्थु (विशोधक) कही छे.

अभिध्यानिदान करनारने छद्वा प्रकारने परिमन्थु कही छे-अभिधया अर्थात् लोभ. जे साधु लोभने वश थधने चक्रवर्ती आदि पद प्राप्त करवानी धिच्छा सेवे छे, ते साधु आर्त्तध्यानवाणे होय छे. आर्त्तध्यानने लोभ साधु मुक्तिमार्गथी स्थलित थध नय छे, ते कारणे तेने मोक्षमार्गने परिमन्थु कही छे. "अभिधया" आ विशेषणना प्रयोग द्वारा सूत्रकार अे वात प्रकट करे छे के जे साधु दोषरहित अनीने जन्ममरण आदिने अन्त लाववानी आशा सेवे छे, ते साधुनी ते प्रकारनी आकांक्षा मोक्षमार्गनी विनाशकअनती नथी.

शंका--जेवी रीते चक्रवर्ती आदि पदनी चाहना मोक्षमार्गनी विनाशक असाय छे, जेवी जे रीते जन्म, जरा अने मरणने विनाश करनार तीर्थंकर पदनी चाहना इय निदान शुं मोक्षमार्गनुं विनाशक अनतुं नथी ?

‘ સન્વત્થ ’ इत्यादि । भगवता तीर्थकरेण सर्वत्र-सर्वस्मिन्नपि विषये अनिदानता=अपार्थनमेव प्रशंसिता । अयं भावः-भगवता जिनेन न केवलं चक्रवर्त्यादिविषय एव अनिदानता श्लाघिता, अपि तु तीर्थकरत्वचरमदेहत्वादि विषयेऽपि अनिदानतैव श्लाघितेति । उक्तं च—

“ इह परलोगनिमित्तं, अत्रि तित्थगरत्तचरमदेहत्ते ।
सन्वत्थेषु भगवया, अणियाणत्तं पसत्थं तु ॥ १ ॥

છાયા—इहपरलोकनिमित्तम् अपि तीर्थकरत्वचरमदेहत्वे ।

सर्वार्थेषु भगवता अनिदानत्वं प्रशस्तं तु ॥ १ ॥ इति ॥ सू० ५५ ॥

उत्तर--ऐसी बात नहीं है, इसी निमित्त सूत्रकारने “ सन्वत्थ भगवया अनियाणया पसत्था ” ऐसा सूत्रपाठ कहा है, इस सूत्रपाठ द्वारा ऐसा समझाया गया है कि चक्रवर्ती पद आदि विषयकः अनिदानताही केवल प्रशंसनीय नहीं मानी गई है, अपितु तीर्थकरत्व चरमदेहत्व आदिके विषयमें भी अनिदानता प्रशंसनीय मानी गई है । कहा भी है--“ इह परलोगनिमित्तं ” इत्यादि ।

इहलोक सम्बन्धी तथा परलोक सम्बन्धी अनिदानताही केवल प्रशंसनीय नहीं कही गई है, किन्तु सर्व अर्थोंमें सर्व चीजोंमें भी अनिदानता प्रशंसनीय कही गई है, इस तरह तीर्थकर चरमदेह आदिका निदान प्रशंसनीय नहीं कहा गया है ॥ सू० ५५ ॥

उत्तर--“ सन्वत्थ भगवया अनियाणया पसत्था ” आ सूत्रपाठ द्वारा सूत्रकारने એ જ વાતનું સમાધાન કર્યું છે. તીર્થ કર પદની આકંક્ષા મોક્ષ-માર્ગની વિનાશક બનેતી નથી. છતાં એ વાત પણ અહીં સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે કે “ ચક્રવર્તી આદિ પદ વિષયક અનિદાનતાને જ પ્રશંસનીય માનવામાં આવેલ નથી, પરંતુ તીર્થકરત્વ ચરમ દેહત્વ આદિ વિષયક અનિદાનતાને પણ પ્રશંસનીય માનવામાં આવેલ છે. કહ્યું પણ છે કે :

“ इह परलोगनिमित्तं ” इत्यादि—

માત્ર આલોક અને પરલોક વિષયક અનિદાનતાને જ પ્રશંસનીય કહેલ નથી, પરંતુ સમસ્ત અર્થોમાં અને સમસ્ત જાગ્યેનામાં પણ અનિદાનતાને પ્રશંસનીય કહી છે. આ રીતે તીર્થકર, ચરમદેહ આદિના નિદાનને પ્રશંસનીય કહેવામાં આવ્યું નથી. ॥ સૂ. ૫૫ ॥

તથા—

મૂલમ્-છવિહા કલ્પટ્ટિર્દૈ પળ્લતા, તં જહા--સામાયિકકલ્પ-
ટ્ટિર્દૈ ૧, છેદોપસ્થાપનીયકલ્પટ્ટિર્દૈ ૨, નિર્વિશમાણકલ્પટ્ટિર્દૈ ૩,
નિર્વિષ્ટકલ્પટ્ટિર્દૈ ૪, જિણકલ્પટ્ટિર્દૈ ૫, સ્થવિરકલ્પટ્ટિર્દૈ ૬ ॥ સૂ ૦ ૫૬ ॥

છાયા-પદ્ધિયા કલ્પસ્થિતિઃ પ્રજ્ઞસા, તદ્વથા-સામાયિકકલ્પસ્થિતિઃ ૧,
છેદોપસ્થાપનીયકલ્પસ્થિતિઃ ૨, નિર્વિશમાણકલ્પસ્થિતિઃ ૩, નિર્વિષ્ટકલ્પસ્થિતિઃ ૪,
જિણકલ્પસ્થિતિઃ ૫, સ્થવિરકલ્પસ્થિતિઃ ૬ ॥ સૂ ૦ ૫૬ ॥

ટીકા—‘ છવિહા ’ इत्यादि—

કલ્પસ્થિતિઃ—કલ્પઃ=સાધ્વાચારઃ, તરવ્ સ્થિતિઃ=મર્યાદા, સા પદ્ધિયા
પ્રજ્ઞસા, તદ્વથા-સામાયિકકલ્પસ્થિતિઃ—સમાનિ=જ્ઞાનાદીનિ, તેષામ્ આયો=લાભઃ
સમાયઃ, સ એવ સામાયિકમ્, તદ્રૂપઃ કલ્પઃ—સામાયિકકલ્પઃ । અયં કલ્પો હિ
પ્રથમચરમતીર્થકરતીર્થસ્થિતાનાં સાધુનામલ્પકાલિકઃ, તદનન્તરં છેદોપસ્થાપની-

“ છવિહા કલ્પટ્ટિર્દૈ પળ્લતા ” इत्यादि सूत्र ५६ ॥

ટીકાર્થ—કલ્પસ્થિતિ ૬ પ્રકારકી કહી ગઈ છે, જેણે—સામાયિક
કલ્પસ્થિતિ ૧ છેદોપસ્થાપનીય કલ્પસ્થિતિ ૨ નિર્વિશમાણકલ્પસ્થિતિ
૩ નિર્વિષ્ટ કલ્પસ્થિતિ ૪ જિણ કલ્પસ્થિતિ ૫ ઓર સ્થવિર કલ્પસ્થિતિ ૬ ।

સાધ્વાચારકા નામ કલ્પ છે, હસ કલ્પકી જો મર્યાદા છે, વહ
કલ્પસ્થિતિ છે, યહ કલ્પસ્થિતિ જો ૬ પ્રકારકી કહી ગઈ છે, સો ઉસકા
તાત્પર્ય એસા છે—જ્ઞાનાદિકોંકા જો લાભ છે, વહ સમાય છે, યહ સમા-
યહી સામાયિક છે, હસ સામાયિક રૂપ જો કલ્પ છે, વહ સામાયિક
કલ્પ છે, યહ કલ્પ પ્રથમ ચરમ તીર્થકરકે તીર્થમેં સ્થિત સાધુઓંકો

“ છવિહા કલ્પટ્ટિર્દૈ પળ્લતા ” इत्यादि—

કલ્પસ્થિતિ ૬ પ્રકારની કહી છે—(૧) સામાયિક કલ્પસ્થિતિ, (૨) છેદો-
પસ્થાપનીય કલ્પસ્થિતિ, (૩) નિર્વિશમાણ કલ્પસ્થિતિ, (૪) નિર્વિષ્ટ કલ્પસ્થિતિ
(૫) જિણ કલ્પસ્થિતિ, અને (૬) સ્થવિર કલ્પસ્થિતિ.

સાધુના જે આચાર છે તેનું નામ કલ્પ છે. તે કલ્પની જે મર્યાદા છે
તેને કલ્પસ્થિતિ કહે છે. તે કલ્પસ્થિતિના ૬ પ્રકાર કહ્યા છે.

(૧) સામાયિક કલ્પ—જ્ઞાનાદિકનો જે લાભ છે, તેનું નામ જ સમાય
છે. તે સમાય જ સામાયિક છે. તે સામાયિક રૂપ જે કલ્પ છે તેને સામાયિક
કલ્પ કહે છે. પ્રથમ તીર્થકર અને ચરમ તીર્થકરના તીર્થના સાધુઓનાં

યસ્ય વિધીયમાન્ત્વાત્ । મધ્યમતીર્થકરણાં તીર્થેષુ મહાવિદેહેષુ ચ સાધુનામયં
 કલ્પો યાવત્કથિકઃ, તેષાં છેદોપસ્થાપનીયાભાવાત્ । તસ્ય સામાયિકકલ્પસ્ય
 સ્થિતિઃ - સામાયિકકલ્પસ્થિતિઃ । ઇયં પુનર્નિયમલક્ષણાઽનિયમલક્ષણાભેદેન
 દ્વિવિધા । તત્ર-શય્યાતરપિંડપરિહારે, ચાતુર્યામપાલને, પુરુષજ્યેષ્ઠત્વે, રત્નાધિ-
 કસ્યાવરરાત્નિકેન વન્દનક્રદાને ચ નિયમલક્ષણા । તથા-ઔદેશિકભક્તાચગ્રહણે
 રાજપિંડાગ્રહણે, પ્રતિક્રમણકરણે, માસકલ્પકરણે, પર્યુષણકલ્પકરણે ચાનિય-
 મલક્ષણા । તદુક્તમ્—

અલ્પ કાલિક હોતા હૈ, અર્થાત્ સાત જયન્ય દિન મધ્યમ ચાર મહિનેકી
 ઔર ઉત્કૃષ્ટ છ મહિનેકી સ્થિતિ હોની હૈ । ક્યૌંકિ ઉસકે અનન્તર
 છેદોપસ્થોપનીયકા વિધાન હોના હૈ, મધ્યમ તીર્થકરૌંકે તીર્થોંમેં એવં
 મહાવિદેહોંમેં સાધુઓંકા યહ કલ્પ યાવત્કથિક કહા ગયા હૈ, ક્યૌંકિ
 યહાં છેદોપસ્થાપનીયકા અભાવ રહતા હૈ, હસ સામાયિક કલ્પકી જો
 સ્થિતિ હૈ, વહ સામાયિક કલ્પસ્થિતિ હૈ, યહ નિયમ લક્ષમ ઔર અનિ-
 યમ લક્ષણકે ભેદસે દો પ્રકારકી હોતી હૈ, હનમેં શય્યાતર પિંડકે પરિ-
 હારમેં ચાતુર્યામકે પાલન કરનેમેં પુરુષ જ્યેષ્ઠતામેં ઔર રત્નાધિકકી
 અવરરાત્નિક દ્વારા વન્દના કરનેમેં યહ નિયમરૂપ હૈ તથા-ઔદેશિક
 ભક્ત આદિકે અગ્રહણ કરનેમેં રાજપિંડકે અગ્રહણ કરનેમેં પ્રતિક્રમણ
 કરનેમેં માસકલ્પ કરનેમેં એવં પર્યુષણ કલ્પ કરનેમેં યહ અનિયત રૂપ હૈ ।

આ કલ્પસ્થિતિ અલ્પકાલિક હોય છે. એટલે કે જયન્ય સાત દિનની, મધ્ય-
 મની અપેક્ષાએ આર માસની અને ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ છ માસની આ સ્થિતિ
 હોય છે, કારણ કે ત્યારબાદ છેદોપસ્થાપનીયતું વિધાન થાય છે. મધ્યમ
 તીર્થકરોના તીર્થમાં અને મહાવિદેહોમાં સાધુઓનું આ કલ્પ યાવત્કથિક કહું
 છે; કારણ કે ત્યાં છેદોપસ્થાપનીયનો અભાવ રહે છે. આ સામાયિક કલ્પની
 જે સ્થિતિ છે તેનું નામ સામાયિક કલ્પસ્થિતિ છે. તેના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ
 કહ્યા છે—(૧) નિયમ લક્ષણ અને (૨) અનિયમ લક્ષણ. શય્યાતરપિંડના
 પરિહારમાં (ત્યાગમાં), ચાતુર્યામના પાલનમાં, પુરુષ જ્યેષ્ઠતામાં અને
 રત્નાધિક (વધુ લાંબી દીક્ષા પર્યાયવાળા) ને લઘુ દીક્ષા પર્યાયવાળા સાધુ
 દ્વારા વંદણા કરવામાં તે નિયમ રૂપ હોય છે. પરન્તુ ઔદેશિક આહારાદિનું
 અગ્રહણ કરવામાં રાજપિંડના અગ્રહણમાં, પ્રતિક્રમણ કરવામાં, માસકલ્પ
 કરવામાં અને પર્યુષણ કલ્પ કરવામાં તે અનિયત રૂપ છે.

“ सिञ्जायरपिंडे य, चाउज्जामे य पुरिसजेद्वे य ।

किङ्कम्मस्स य करणे, चत्तारि अवट्टियाकप्पा ॥ १ ॥

आचेलुक्कुद्देसिय, सपडिकमणे य रायपिंडे य ।

मासे पज्जोसवणा, छप्पेयणवट्टिया कप्पा ॥ २ ॥ ”

छाया—शय्यातरपिण्डश्च (शय्यातरपिण्डपरिहारः) चातुर्यामश्च पुरुषज्येष्ठश्च ।

कृतिकर्मणश्च करणं, चत्वारः अवस्थिताः कल्पाः ॥ १ ॥

आचेलक्यम् औद्देशिकं सप्रतिक्रमणश्च राजपिण्डश्च ।

मासः पर्युषणा षडप्येतेऽनवस्थिताः कल्पाः ॥ २ ॥ इति ।

अत्र आचेलक्यमित्युक्तम् । तच्च सचेलासचेलत्वेन द्विविधं भवति । तत्र-
असचेलत्वेनाचेलक्यं जिनानाम् । सचेलत्वेन आचेलक्यं तु जीर्णखण्डितवस्त्र-
धारिणां च भवति । अत एव निर्ग्रन्थाः सत्यप्यल्पजीर्णखण्डितवस्त्रेऽचेल-
उच्यन्ते । इति । इति प्रथमा कल्पस्थितिः । १ । तथा-छेदोपस्थापनीयकल्प-

कहा भी है—“ सिञ्जायरपिंडे य ” इत्यादि ।

शय्यातर पिण्डका परिहार १ चातुर्याम २ पुरुष ज्येष्ठ ३ कृति-
कर्मकरण (पर्याय ज्येष्ठको वंदना) ४ ये अवस्थित कल्प हैं । आचे-
लक्य औद्देशिक २ प्रतिक्रमण ३ राजपिण्ड ४ मासकल्प ५ पर्युषणा
कल्प ६ ये ६ अनवस्थित कल्प हैं ।

“ आचेलक्य ” ऐसा कहा गया है, सो यह सचेल और अचेलके
भेदसे दो प्रकारका होता है, इन अचेलताको लेकर आचेलक्य जिनोंको
होता है, तथा सचेलताको लेकर आचेलक्य जीर्ण खण्डित वस्त्र धारण
करनेवालोंको होता है, इसीलिये निर्ग्रन्थ अल्पजीर्ण वस्त्रादिके सद्भावमें
भी अचेल कहलाते हैं । यह प्रथम कल्पस्थिति हैं । पूर्व पर्यायके छेद-

कहुं पणु छे डे “ सिञ्जायरपिंडेय ” इत्यादि—

शय्यातरपिंडेना परिहार, चातुर्याम, पुरुषज्येष्ठ अने कृतिकर्मकरण
(पर्याय ज्येष्ठने वंदना) आ चार अवस्थित (नियत) कल्प छे. आचेलक्य
औद्देशिक, प्रतिक्रमण, राजपिंड, मासकल्प अने कल्प आ ६ अनवस्थित
(अनियत) कल्प छे.

“ आचेलक्य ” के प्रकारतुं कहुं छे—(१) सचेल अने अचेल.
अचेलतानी अपेक्षाअे आचेलक्यने (जिनोसां सद्भाव डोय छे, तथा सचे-
लतानी अपेक्षाअे आचेलक्यने सद्भाव एणुंशीणुं वस्त्र धारणुं करनारमां
डोय छे ते कारणे अल्प भूदथ, एणुं अने णडित वस्त्रादिने सद्भाव
डोवा छतां पणुं निर्ग्रन्थेने अचेल कडे छे आ प्रकारनी प्रथम कल्पस्थिति छे.

સ્થિતિઃ—છેદનેન=પૂર્વપર્યાયસ્ય છેદનેન ઉપસ્થાપનીયમ્—આરોપણીયં છેદોપસ્થાપનીયં—વ્યક્તિવો મહાવ્રતારોપણમિત્યર્થઃ । इदं च प्रथमान्तिमतीर्यकरतीर्थयोरेव भवति । तद्रूपः कल्पः=साध्याचारस्तस्य स्थितिः । इति द्वितीया । २ । तथा—निर्विशमानकल्पस्थितिः—निर्वિગન્તિ=પરિહારવિશુદ્ધિતપોડુચરન્તિ ये ते निर्विशमानकाः=પારિહારિકા इत्यर्थः, तेषां कल्पः, तत्र स्थितिः । इयं तु ग्रीष्मशीतवर्षाकालेषु जघन्य मध्यमोत्कृष्टतपोयुक्ता भवति । तत्र जघन्यं तप एतेषु क्रमेण चतुर्थषष्ठमष्टमानि, मध्यमं षष्ठाष्टमदशमानि, उत्कृष्टम् अष्टमदशमद्वाद-

વસે જો ઉપસ્થાપનીય આરોપણીય હોના હૈ વહ છેદોપસ્થાપનીય હૈ, યહ છેદોપસ્થાપનીય પુનઃ સ્પષ્ટ રૂપસે મહાવ્રતકે આરોપણ કરનેરૂપ હોતા હૈ, યહ છેદોપસ્થાપનીય પ્રથમ અન્તિમ તીર્થ કરોકે તીર્થોમ્હી હોના હૈ, ઇમ છેદોપસ્થાપના રૂપ જો કલ્પ હૈ, સાધુકા આચાર હૈ, ડસ આચારકી જો સ્થિતિ હૈ, વહ છેદોપસ્થાપનીય કલ્પાસ્થિતિ હૈ ૨ પરિહાર વિશુદ્ધિ તપકા જો પાલન કરતે હૈં વે નિર્વિશમાનક હૈં, ઇન્હેં પારિહારિક ભી કહા ગયા હૈ; ઇનકા જો કલ્પ હૈ, વહ નિર્વિશમાન કલ્પ હૈ, ઓર ઇસ કલ્પમ્હેં જો સ્થિતિ હૈ, વહ નિર્વિશમાન કલ્પ સ્થિતિ હૈ । યહ સ્થિતિ ગ્રીષ્મમ્હેં શીતમ્હેં એવં વર્ષાકાલમ્હેં જઘન્ય મધ્યમ ઓર ઉત્કૃષ્ટ તપસે યુક્ત હોતી હૈ । ઇનમ્હેં જઘન્ય તપ ક્રમશઃ ચતુર્થ ષષ્ઠ ઓર અષ્ટમકી તપસ્યા રૂપ હોતાહૈ, મધ્યમ તપ ષષ્ઠ, અષ્ટમ ઓર દશમકી તપસ્યા રૂપ હોતાહૈ, પાર-
ણાકે દિન આચામારુલ(આયંચિલ)તપસ્યાસેહી યુક્ત હોતાહૈ, અર્થાત્ આમી-

(૨) છેદોપસ્થાપનીય કલ્પસ્થિતિ—પૂર્વ પર્યાયના છેદનથી જે ઉપસ્થાપનીય—આરોપણીય હોય છે, તેનું નામ છેદોપસ્થાપનીય છે. આ છેદોપસ્થાપનીય મહાવ્રતનું પુનઃ સ્પષ્ટ રૂપે આરોપણ કરવા રૂપ હોય છે. આ છેદોપસ્થાપનીયનો સદ્ભાવ પહેલા અને છેદના તીર્થકરોના તીર્થોમાં હોય છે આ છેદોપસ્થાપના રૂપ જે કલ્પ છે—જે સાધુનો આચાર છે, તે આચારની સ્થિતિનું નામ છેદોપસ્થાપનીય કલ્પસ્થિતિ છે.

(૩) નિર્વિશમાન કલ્પસ્થિતિ—પરિહાર વિશુદ્ધિ તપનું જેઓ પાલન કરે છે તેમને નિર્વિશમાનક કહે છે. તેમને પારિહારિક પણ કહે છે. તેમનો જે કલ્પ (આચાર) છે તેનું નામ નિર્વિશમાન કલ્પ (આચાર) છે તે કલ્પમાં જે સ્થિતિ (મર્થોદા) હોય છે તેનું નામ નિર્વિશમાન કલ્પસ્થિતિ છે. તે સ્થિતિ ગ્રીષ્મ, શીત અને વર્ષાકાળમાં જઘન્ય, મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટ તપથી યુક્ત હોય છે. જઘન્ય તપ ક્રમશઃ એક ઉપવાસ, છઠ્ઠ અને અઠમની તપસ્યા રૂપ હોય છે. મધ્યમ તપ ક્રમશઃ છઠ્ઠ,

ज्ञानि । पारणके चात्राचामाम्लमेव । तथा-असंसृष्टा १, संसृष्टा २, संसृष्टा-
ऽसंसृष्टा ३, अल्पलेपा ४, अवगृहीता ५, प्रगृहीता ६, उज्ज्वलधर्मिका ७, इत्ये-
तासु सप्तसु पिण्डैषणासु आद्ययोर्द्वयोरभिग्रहः, अवशिष्टासु पञ्चसु पुनरेकया
भक्तग्रहणम्, एकया च पानकग्रहणम् । तदुक्तम्—

“ पारणगे आयामं, पंचसु गहो दोसभिगहो भिक्षवा ” ।

छाया—पारणके आचामाम्लं पञ्चसु ग्रहो द्वयोरभिग्रहो भिक्षायाम् । इति ।

इति तृतीया । ३ । तथा-निर्विष्टकल्पस्थितिः-निर्विष्टाः=आसेवितविव-
क्षितचारित्राः-अनुपारिहारिका इत्यर्थः, तेषां कल्पस्तस्य स्थितिः । अत्र-प्रति-
दिनमाचामाम्लं तपो भिक्षा तथैव । उक्तं च—

लसे पारणा होता है, तथा असंसृष्टा १ संसृष्टा २ (लेपयुक्त) संसृष्टासंसृष्टा
३ अल्पलेपा ४ अवगृहीता ५ प्रगृहीता ६ एवं उज्ज्वलधर्मिका इन्
सात पिण्डैषणाओंमेंसे आदिकी दो ऐषणाओंका अभिग्रह होता है,
बाकीकी पांच ऐषणाओंमेंसे एक एक ऐषणासे भक्त ग्रहण और पानक
ग्रहण होता है, अर्थात् एक ऐषणासे भक्त ग्रहण और एक ऐषणासे
पानकका ग्रहण होता है । कहा भी है—“ पारणगे आयामं ” इत्यादि ।

इस प्रकारसे यह तृतीय कल्पस्थिति है, निर्विष्टकल्पस्थिति
जिन्होंने विवक्षित चारित्रका अच्छी तरहसे आसेवन किया है, ऐसे अनु-
पारिहारिकोंके कल्पकी जो स्थिति है, वह निर्विष्ट कल्पस्थिति है, यहाँ पर
प्रतिदिन आचामाम्लकी (आयंबिल) तपस्या और भिक्षा भी उसी तरहसे

अहम अने दशम (चार उपवास) नी तपस्या इप डोय छे. उल्लेख तप
कमशः अहम, दशम अने द्वादश (पांच उपवास) नी तपस्या इप डोय
छे. पारणाने दिवसे आयंभिल करवामां आवे छे, तथा (१) असंसृष्टा, (२)
संसृष्टा, (३) असंसृष्टासंसृष्टा, (४) अल्पलेपा, (५) अवगृहीता, (६) प्रगृहीता
अने (७) उज्ज्वलधर्मिका, आ सात पिण्डैषणाओंमांथी पडेदी जे ऐषणाओंने
अभिग्रह थाय छे अने बाकीनी पांच ऐषणाओंमांथी ऐक ऐक ऐषणाथी
आडार ग्रहण अने पानक ग्रहण थाय छे. अटले के ऐक ऐषणाथी आडार
ग्रहण थाय छे अने ऐक ऐषणाथी पानकनुं ग्रहण थाय छे. कहुं पहुं छे
के “ पारणगे आयामं ” इत्यादि. आ प्रकारनी निर्विशमान कल्पस्थिति छे.

(४) निर्विष्ट कल्पस्थिति—जेमणे विवक्षित चारित्रनुं सम्यक् रीते
पालन क्युं छे ओवा अनुपारिहारिकेना कल्पनी जे स्थिति छे, तेने निर्विष्ट
कल्पस्थिति कडे छे. अहाँ पद्य प्रतिदिन आयंभिलनी तपस्या अने भिक्षाययो

“ કમ્પટ્ટિયાવિ પહ્દિણં, કરેતિ એમેવ ચાયામં ” ।

છાયા—કલ્પસ્થિતા અપિ પ્રતિદિનં કુર્વન્તિ એવમેવ ચાચામામ્લમ્—ઈતિ ।

અત્રેદં વોદ્યમ્—એતે નિર્વિશમાનકા નિર્વિષ્ટાશ્ચ પરિહારવિશુદ્ધિકા ઉચ્યન્તે ।
 હહ નવસંખ્યકો ગણો ભવતિ । તત્ર ચત્વારો યે પરિહારં તપઃ કુર્વન્તિ તે પરિહારિકા ઉચ્યન્તે, ચત્વારસ્તુ તદ્વૈયાવૃત્યકરા અનુપારિહારિકા ઉચ્યન્તે । એકસ્તુ કલ્પસ્થિતો વાચનાચાર્યો ગુરુકલ્પો ભવતિ । તત્ર પરિહારિકાઃ પઠ્ માસાન્ તપઃ કુર્વન્તિ । તત્ એતે નિર્વિષ્ટકાયિકા ભવન્તિ । યે ચ વૈયાવૃત્યકરા આસન્, તે તપઃ કુર્વન્તિ, નિર્વિષ્ટકાયિકાસ્તુ તેષાં વૈયાવૃત્યકરા ભવન્તિ । ષમ્માસાંસ્તપઃ કૃત્વા તેઽપિ નિર્વિષ્ટકાયિકા ભવન્તિ । તતઃ કલ્પસ્થિતો વાચનાચાર્યસ્તપઃ પ્રતિ-

હોતી છે, કહાં મી છે—“ કમ્પટ્ટિયા વિ પહ્દિણં કરેતિ એમેવ ચાયામં ”
 યહાં હસ પ્રકારસે સમજ્ઞના ચાહિયે—યે, નિર્વિશમાનકા ઓર નિર્વિષ્ટ પરિહારવિશુદ્ધિકા કહે જાતે હૈં । યહાં નૌ સંખ્યાકા ગણ હોતા હૈ, અર્થાત્ નૌ સાધુઓકા સમૂહ હોતા હૈ, હનમૈં ચાર જો પરિહાર-તપ કરતે હૈં વે પારિહારિકા કહલાતે હૈં, ઓર ચાર જો હનકી વૈયાવૃત્ય કરનેવાલે હોતે હૈં વે અનુપારિહારિકા કહલાતે હૈં, ઓર એક કલ્પસ્થિત વાચનાચાર્ય હોતા હૈ, જો ગુરુકલ્પ—ગુરુ જૈસા હોતા હૈ, હનમૈં પારિહારિકા ૬ મહિને તક તપ કરતે હૈં, તથ યે નિર્વિષ્ટકાયિકા હો જાતે હૈં, ઓર જો હનકી વૈયાવૃત્ય કરનેવાલે યે, વે તપ કરને લગતે હૈં, તથા જો નિર્વિષ્ટકાયિકા ઘન જુકે હૈં, વે હનકી વૈયાવૃત્ય કરનેવાલે હો જાતે હૈં વે હહ મહિને તક તપ કરતે હૈં, ઓર તપ કરકે વે મી નિર્વિષ્ટકાયિકા

પશુ ઉપર બતાવ્યા અનુસાર જ થાય છે. કહ્યું પણ છે કે “ કમ્પટ્ટિયા વિ પહ્દિણં કરેતિ એમેવ ચાયામં ” અહીં આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ. આ સાધુઓને નિર્વિશમાનકા અને નિર્વિષ્ટ પરિહાર વિશુદ્ધિકા કહે છે. અહીં નવ સાધુઓનો સમૂહ હોય છે. તેમાંથી જે ચાર સાધુઓ પરિહાર તપ કરે છે તેમને પારિહારિકા કહેવાય છે, અને જે ચાર સાધુઓ તેમનું વૈયાવૃત્ય કરે છે તેમને અનુપારિહારિકા કહેવાય છે બાકીનો એક સાધુ કલ્પસ્થિત વાચનાચાર્ય થાય છે. તે ગુરુકલ્પ—ગુરુ જેવો હોય છે. તેમાં જે ચાર પારિહારિકા હોય છે તેઓ છ માસ સુધી તપ કરે છે અને ત્યાર બાદ તેઓ નિર્વિષ્ટકાયિકા થઈ જાય છે અને તેમનું વૈયાવૃત્ય કરનારા ચાર સાધુઓ તપ કરવા લાગી જાય છે અને જેઓ નિર્વિષ્ટકાયિકા બની ગયા છે તેઓ તેમનું વૈયાવૃત્ય કરવા માંડી જાય છે. છ માસ સુધી આ કમ પણ ચાલ્યા કરે છે. ત્યાર બાદ તપ કરનારા તે ચાર સાધુઓ

पद्यते, एको वाचनाचार्यो भवति, अन्ये तद्वैयावृत्यकरा भवन्ति । ततः षण्मा-
सांस्तपः कृत्वा सोऽपि निर्विष्टकायिको भवति । इत्थमयं परिहारविशुद्धिकः
कल्पोऽष्टादशमासिको भवति । उक्तं च—

“ परिहारिय छम्मासे, यह अणुपरिहारियावि छम्मासे ।

कप्पट्टिओ छम्मासे, एए अट्टारसवि मासा ॥ १ ॥ ”

छाया—परिहारिकाः षण्मासान् तथा अनुपारिहारिका अपि षण्मासान् ।

कल्पस्थितः षण्मासान् एतेऽष्टादशापि मासाः ॥ १ ॥ इति ।

एते कीदृशा भवन्तीत्याह—

“ सव्वे चरित्तवंतो उ, दंसणे परिनिट्टिया ।

नवपुण्विया जहन्नेण, उक्कोसा दसपुण्विया ॥ १ ॥

पंचविहे ववहारे, (आगमादिक) कप्पस्मि दुविहस्मि य ।

दसविहे य पच्छित्ते, सव्वे ते परिनिट्टिया ॥ २ ॥ ”

छाया—सर्वे चारित्र्यदन्तस्तु दर्शने परिनिष्ठिताः ।

नवपूर्विका जघन्येन, उत्कर्षाद् दशपूर्विकाः ॥ १ ॥

पञ्चविधे व्यवहारे, कल्पे द्विविधे च ।

दशविधे च प्रायश्चित्ते, सर्वे ते परिनिष्ठिताः ॥ २ ॥ इति चतुर्थी । ४१

हो जाते हैं। इस के बाद कल्पस्थित वाचनाचार्य तप करता है, उनमेंसे एक वाचनाचार्य होता है, और बाकीके उसकी वैयावृत्य करनेवाले हो जाते हैं, वाचनाचार्य भी छ माह तक तप करके निर्विष्टकायिक हो जाता है, इस तरह यह परिहार विशुद्धिक कल्प अठारह मासका होता है। कहा भी है—“ परिहारिय छम्मासे ” इत्यादि ।

इस श्लोकका अर्थ पारिहारिक छह मासका होता है, अनुपारिहारिक छह मासका होता है, और कल्पस्थिति छह मासका होता है, इस तरह अठारह महिने परिहारविशुद्धिमें लगते हैं, ये सब चारित्र्यवाले

पशु निर्विष्टकायिक थर्ज लय छे. त्यार आठ इदपस्थित वाचनाचार्य छ मास सुधी तप करे छे, आकीनामांथी ऐक वाचनाचार्य अने छे अने आकीना मांत तेमनु वैयावृत्य करे छे. छ मास पछी ते तप करनार साधु पशु निर्विष्टकायिक थर्ज लय छे. आरीते आ परिहारविशुद्धिक तप अठार मास सुधी आदे छे. कहुं पशु छे डि “ परिहारिय छम्मासे ” इत्यादि.

अट्टे के पारिहारिकमां छ मास, अनुपारिहारिकमां छ मास अने कल्पस्थितिमां छ मास, अरीते परिहार विशुद्धिमां कुल १८ मासना समथ

તથા-જિનકલ્પસ્થિતિઃ-જિનાઃ=ગચ્છનિર્ગતસાધુવિશેષાઃ તેણાં કલ્પ-
સ્થિતિઃ । સા ત્વેવં વિજ્ઞેયા-યો હિ પ્રથમસંહનનસંપન્નો ભવતિ સં જિનકલ્પપ્રતિ-
પન્નો ભવતિ, અયં ચ જઘન્યતો નવમપૂર્વેસ્ય તૃતીયમાચાર વસ્તુ યાવદ્ ધારકો ભવતિ,
ઉત્કૃષ્ટતસ્તુ કિંચિન્ન્યૂનદશપૂર્વાર્ણામ્ । અસૌ પુનરેકાકી વિહરતિ । દિવ્યાઘુપસર્ગ-
રોગવેદનાશ્ર સહતે । દશગુણયુક્તસ્થણિડછે એવ ઉચ્ચારાદિ પરિત્યજતિ । સર્વોપ-
ધિવિશુદ્ધાયાં વસતૌ વસતિ । તૃતીયપૌરુષ્યાં મિશ્રાચર્યાં કરોતિ । પિષ્ઠૈપણાસ્વા-

હોતે હૈં, દર્શનમેં પૂર્ણ પરિપક્વ હોતે હૈં । કમસે કમ ચે નૌ પૂર્વકે ઔર
ઉત્કૃષ્ટસે ૧૦ પૂર્વકે ધારી હોતે હૈં । પાંચ પ્રકારકે વ્યવહારમેં દો પ્રકા-
રકે કલ્પમેં ઔર દશ પ્રકારકે પ્રાયશ્ચિત્તમેં ચે પૂર્ણ નિર્ણાન હોતે હૈં ।
પાંચવાં જિનકલ્પસ્થિતિ ગચ્છનિર્ગત સાધુવિશેષ જિન હોતે હૈં ।
હન જિનોંકી જો કલ્પસ્થિતિ હૈં, વહ હસ પ્રકારસે હોતી હૈં, જો પ્રથમ
સંહનનકા ધારી હોનો હૈં, વહ જિનકલ્પપ્રતિપન્ન હોતો હૈં, યહ જઘ-
ન્યસે નવમ પૂર્વકી તૃતીય આચાર વસ્તુ તકકા ધારક હોતો હૈં, ઔર
ઉત્કૃષ્ટસે કિશ્ચિત્ કમ દશવેં પૂર્વકા ધારી હોતો હૈં, યહ અકેલાહી
વિચરતા હૈં, દિવ્ય આદિ ઉપસર્ગોંકો એવં રોગજન્ય વેદનાઓંકો સહન
કરતા હૈં, દશ ગુણોંસે યુક્ત સ્થણિડલમેંહી ઉચ્ચાર આદિ પરઠતા હૈં,
સર્વોપધિસે વિશુદ્ધ વસતિ-ઉપાશ્રયમેં રહતા હૈં, તૃતીય પૌરુષીમેં યહ

વ્યતીત થાય છે. તે સાધુઓ આરિત્રસંપન્ન અને દર્શનમાં પૂર્ણ પરિપક્વ
હોય છે. તેઓ એછામાં એછા નવ પૂર્વના ધારક અને વધારેમાં વધારે
દસ પૂર્વના ધારક હોય છે. તેઓ પાંચ પ્રકારના વ્યવહારના, બે પ્રકારના
કલ્પના અને દસ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તના પૂર્ણ રૂપે નિષ્ણાત હોય છે.

(૫) જિન કલ્પસ્થિતિ—ગચ્છનિર્ગત સાધુવિશેષને જિન કહે છે. તે
જિનોની કલ્પસ્થિતિ આ પ્રકારની હોય છે—

તેઓ પ્રથમ સંહનના ધારક હોય છે, જિનકલ્પપ્રતિપન્ન હોય છે,
તેઓ એછામાં એછા નવમાં પૂર્વની ત્રીજી આચારવસ્તુ પર્યંતના ધારક
હોય છે અને અધિકમાં અધિક સહેજ ન્યૂન દસ પૂર્વના ધારક હોય છે.
તેઓ એકલા જ વિચરે છે. તેઓ દિવ્ય આદિ ઉપસર્ગોને અને રોગજન્ય વેદ-
નાઓને સહન કરે છે, દસ ગુણોથી યુક્ત સ્થણિડલ (ઉચ્ચારાદિ પરઠવાનું સ્થાન
વિશેષ) માં જ ઉચ્ચાર (ખળત્યાગ) આદિ પઠે છે, અને સર્વોપધિની
અપેક્ષાએ, વિશુદ્ધ વસતિમાં (ઉપાશ્રયમાં) રહે છે. તેઓ ત્રીજા પ્રકારમાં જ

घयोरग्रहणं भवति । अत्रशिष्टासु ग्रह्यासु पञ्चसु पिण्डैषणासु द्वेयोर्योगे सति तन्म-
ध्यादेकरस्या अभिग्रहधारी भवति । उक्तं च—

“ गच्छम्मिय निम्मायाधीरा जाहेयगाहियपरमत्था ।

अग्रहे जोग अभिग्रहे, उवेति जिण कप्पियचरित्तं ॥ १ ॥ ”

गच्छे च निर्माताः धीरा यदा च गृहीतपरमार्थाः । अग्रहे योगे अभिग्रहे
उपयन्ति जिणकल्पिकचरित्रम् ॥ इति पञ्चमी । ५ । तथा—स्थविरकल्पस्थितिः—
स्थविराः गच्छपतिवद्वा आचार्यादयः तेषां कल्पस्थितिः । उक्तं च—

“ संजमकरणुज्जोगा, निष्फायगा नाणदंसणचरित्ते ।

दीहाऊ बुडुवासे, वसही दोसेसु विप्पमुक्ता ॥ १ ॥ ”

छाया—संजमकरणाद्योगा निष्पादका ज्ञानदर्शनचारित्रेषु ।

दीर्घायुषो वृद्धवासे, दोषैश्च विप्रमुक्ता वसतिः ॥ १ ॥

भिक्षाचर्या करता है, सात पिण्डैषणाओंमेंसे आदिकी दो पिण्डैषणा-
ओंका नहीं ग्रहण करने वाला होता है इत्यादि । बाकीकी पांच
एषणाओंमेंसे दोका योग होने पर उनमें से किसी एक एषणासे
भिक्षा-भक्तपानको लेना है, कहा भी है—“ गच्छम्मिय निम्माया ” ५।
इस प्रकारसे यह पांचवीं कल्पस्थिति है, छठी स्थविरकल्पस्थिति
इस प्रकारसे है—गच्छमें जो आचार्य आदि साधु रहते हैं वे स्थविर
कहलाते हैं, इनके कल्पकी जो स्थिति है, वह स्थविरकल्पस्थिति है।
कहा भी है—“ संजमकरणुज्जोगा ” इत्यादि ।

इसका भाव ऐसा है कि स्थविर कल्पका काम इस प्रकारसे है,
प्रथम श्रुत चारित्र्य रूप धर्मका श्रवण उससे सम्यक्त्वका लाभ प्राप्तमें
आलोचनापूर्वक प्रव्रज्याकी प्रतिपत्ति उससे ग्रहणशिक्षा एवं आसेवन-
शिक्षाके अधिकारका लाभ सूत्रके ग्रहण करनेरूप ग्रहणशिक्षा एवं

भिक्षायथा करे छे तेना पडेकी छे पिण्डैषणा अडणु करवावाणा होता नथी
छे अने पाकीती पांच एषणाओंमेंथी तेना योग थतां तेमांथी कोछ ओक
एषणा वडे भिक्षा (आहार पाणी) अडणु करता डोय छे कहु पणु छे—
“ गच्छम्मिय निम्माया इत्यादि । आ प्रकारनुं पांचमी कल्पस्थितिनुं स्वरूप छे ।

(६) स्थविरकल्पस्थिति—जे आचार्य आदि साधु गच्छमां रहे छे
तेमने स्थविर कडे छे, तेमना कल्पनी जे स्थिति छे तेने स्थविरकल्पस्थिति
कडे छे, कहु पणु छे के “ संजमकरणुज्जोगा ” इत्यादि—

आ गाथामां स्थविर कल्पने आ प्रकारने काम गताव्ये छे—
प्रथम श्रुतचारित्र्य रूप धर्मनुं श्रवण अने तेना द्वारा सम्यक्त्वनी प्राप्ति,
स्वार्ज्जाद आलोचनापूर्वक प्रव्रज्यानी प्रतिपत्ति अने तेना द्वारा अडणुशिक्षा
अने आसेवनशिक्षाका अधिकारने लाभ, (सूत्रने अडणु करवा रूप अडणु

तथा च—“ पञ्चज्जा सिक्खापयमत्थग्गहणं च अनियतो वासो ।

निष्फत्ती य विहारो, सामाचारी ठिई चेत्र ॥ १ ॥

छाया—प्रव्रज्या शिक्षापदम् अर्थग्रहणं च अनियतो वासः ।

निष्पत्तिश्च विहारः सामाचारी स्थितिश्चैव ॥ १ ॥ इति ।

इति पट्टी । ६ । जिनकल्पिकस्थविरकल्पिकस्थितिविषये विशेषजिज्ञासु-
भिरुत्तराध्ययनसूत्रस्य द्वितीयेऽध्ययने मत्कृतायां प्रियदर्शिनीटीकायामवलोक-

प्रतिलेखनादि रूप आसेवनशिक्षा है, इसके बाद सूत्रोंका अर्थ ग्रहण करना पश्चात् अनियतवास अनियतवासका तात्पर्य है, गुरुकी आज्ञासे ग्राम नगर एवं सन्निवेश आदिकोंमें अथवा देशान्तरमें विचरण करना यह विचरण करनेकी योग्यतासंपन्न जो साधु होता है, उसीका विचरण होता है, फिर भी मह एकाकी विहार नहीं कर सकता किन्तु अन्य साधुओंके साथही विहार करता है, स्थविरकल्पका आराधक साधु संयमके पालन करनेमें विशेष उद्योगवाला होता है, ज्ञानदर्शन एवं चारित्रका पूर्ण रूपसे आराधक होता है, लम्बी आयुवाला होने से वह जंघाबल कम हो जाने पर स्थिरवास अंगीकार कर लेता है, और इसी स्थिरवाससे वह उसी क्षेत्रमें रहता हुआ भी दोषोंसे रहित वसतिमें रहता है । तथा—“ पञ्चज्जा सिक्खावय ” इत्यादि ।

इस गाथाको अर्थ पूर्वोक्त रूपसेही है, जिन कल्पिक एवं स्थविरकल्पिक की स्थितिके विषयमें विशेष जिज्ञासुओंको उत्तराध्ययन सूत्रकी द्वितीय अध्ययनकी मेरी बनाई हुई प्रियदर्शिनी टीका देखनी चाहिये यहां जो इस

शिक्षा-अने प्रतिषेधना आदि रूप आसेवन शिक्षा डोय छे) त्थारणां
सूत्रानो अर्थ ग्रहण करवाभां आवे छे अने त्थार णाठ अनियतवास
करे छे. ग्राम, नगर, सन्निवेश आदिकोभां गुरुनी-आज्ञाथी विचरणुं तेनुं
नाम अनियतवास छे. विचरणुं करवानी योग्यतावाणा साधुने न आ प्रमाणे
विचरणुं करवानी आज्ञा भणे छे. छतां ते साधु ओकाकी विहार करी शकतो
नथी गुरुनी आज्ञाथी अन्य साधुओ तेनी साथे विहार करे छे. स्थविर
कल्पने आराधक साधु संयमनां पालनभां विशेष प्रयत्नशील डोय छे ज्ञान
दर्शन अने चारित्रना पूर्ण रूपे आराधक डोय छे जे तेनुं आयुध्य लाणु
डोय अने ते आलवाने अशक्त थअ गये डोय ते कोर क्षेत्रभां ते स्थिर-
वास अंगीकार करी ले छे. आ सीते स्थिरवासभां ओक न क्षेत्रभां रहेवा छतां
पणु ते साधु दोषोथी रहित वसतिभां न रहे छे

तथा—“ पञ्चज्जा सिक्खावय ” इत्यादि—

आ गाथानो लावार्थ उपर क्हा प्रमाणे न छे. जिनकल्पिक अने स्थविर
कल्पिकनी स्थितना विषयभां विशेष लणुवानी ध्यानवाणा पाठकोअे उत्तराध्ययन
सूत्रना भीत अध्ययननी मारी णनावेदी प्रियदर्शिनी टीका वाची लेवी. अर्धी

कनीयम् । अत्र योऽयं सामायिककल्पस्थितिरित्यादिक्रमेण पाठः स युक्ततर-
एव । यतः पूर्वं सामायिकमेवारोप्यते ततश्छेदोपस्थापनीयम् । गृहीतछेदोप-
स्थापनीया एव निर्विशमानका भवन्ति, ततश्च ते निर्विष्टकायिका भवन्ति । ततो
जिनकल्पिकाः स्थविरकल्पिका वा भवन्तीति ॥ सू० ५६ ॥

अनन्तरसूत्रे कल्पस्थितिरुक्ता, सा च भगवता महावीरेण निर्दिष्टेति तत्स-
म्बन्धिकं किमपि वक्तुमाह—

मूलम्—समणे भगवं महावीरे छट्टेणं भत्तेणं अपाणणं
मुंडे जाव पव्वइए । समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छट्टेणं
भत्तेणं अपाणणं अणंते अणुत्तरे जाव समुप्पण्णे । समणे
भगवं महावीरे छट्टेणं भत्तेणं अपाणणं सिद्धे जाव सव्वदुक्ख-
प्पहीणे ॥ सू० ५७ ॥

प्रकारसे—सामायिककल्पस्थिति १ छेदोपस्थापनीयकल्पस्थिति २—इत्यादि
क्रमसे पाठ रखा गया है, सो इस कारणसे रखा गया है, कि पहिले सामा-
यिककाही आरोपण होता है, बादमें छेदोपस्थापनीयका आरोपण होता
है, तथा गृहीतछेदोपस्थापनावालेही निर्विशमानक होते हैं, इसके
बाद वे निर्विष्टकायिक हो जाते हैं, बादमें वे जिनकल्पिक या स्थविर-
कल्पिक हो जाते हैं ॥ सू० ५६ ॥

इस ऊपरके सूत्रमें कल्पस्थिति जो कही गई है, वह भगवान् महावीरने
प्रदर्शित की है, इसलिये अब सूत्रकार महावीरके सम्बन्धमें कुछ कहते हैं—

जे सामायिककल्पस्थिति, छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति, इत्यादि कभथी पाठ राखवामां
आंथ्ये छे तेनुं कारण्णं जे छे के पडेदां सामायिकनुं जे आरोपण्णं थाय छे,
त्यार भाद छेदोपस्थापनीयनुं आरोपण्णं थाय छे.

तथा गृहीत छेदोपस्थापनावाणां जे निर्विशमानक थाय छे, त्यार भाद जे
तेआ निर्विष्टकायिक थय जय छे, अने त्यार भाद तेआ जिनकल्पिक अथवा
स्थविरकल्पिक थय जय छे ॥ सू. ५६ ॥

उपरना सूत्रमां कल्पस्थितितुं जे प्रतिपादन करवामां आंथुं छे ते
भडावीर प्रभु द्वारा करवामां आंथुं छे, तेथी डवे सूत्रकार भडावीर प्रभु
विषे थोडुं कथन करे छे. “ समणे भगवं महावीरे ” इत्यादि—

હાયા—શ્રમણો ભગવાન્ મહાવીરઃ પષ્ઠેન ભક્તેન અપાનકેન મુણ્ડો યાવત્ પ્રવ્રજિતઃ । શ્રમણસ્ય સ્વલુ ભગવતો મહાવીરસ્ય પષ્ઠેન ભક્તેન અપાનકેન અનન્તમ્ અનુત્તરં યાવત્ સમુત્પન્નમ્ । શ્રમણો ભગવાન્ મહાવીરઃ પષ્ઠેન ભક્તેન અપાનકેન સિદ્ધો યાવત્ સર્વદુઃખપ્રહીણઃ ॥ સૂ૦ ૫૭ ॥

ટીકા—‘ સમણે ભગવં ’ ઇત્યાદિ ।

વ્યાખ્યા સ્પષ્ટા । નવરમ્—અપાનકેન=પાનીયરહિતેન । ‘ મુણ્ડો યાવત્ ’ ઇત્યત્ર યાવત્પદેન—‘ ભૂત્વા આગારાદનગારિતામ્ ’ ઇત્યસ્ય સંગ્રહઃ । ‘ અનુત્તરં યાવત્ ’ ઇત્યત્ર યાવત્પદેન—‘ નિર્વ્યાધાતં નિરાવરણં કૃત્સ્નં પ્રતિપૂર્ણં કેવલવરજ્ઞાન-દર્શનમ્ ’ ઇત્યેષાં સંગ્રહઃ । ‘ સિદ્ધો યાવત્ ’ ઇત્યત્ર યાવત્પદેન—‘ બુદ્ધો મુક્તઃ પરિ-નિર્વૃત્તઃ ’ ઇત્યેષાં સંગ્રહઃ ॥ સૂ૦ ૫૭ ॥

“ સમણે ભગવં મહાવીરે ” ઇત્યાદિ સૂત્ર ૫૭ ॥

ટીકાર્થ—શ્રમણ ભગવાન્ મહાવીર અપાનક પષ્ઠ ભક્તસે મુણ્ડિત્ત હોકર યાવત્ પ્રવ્રજિત્ત હુણ્ । શ્રમણ ભગવાન્ મહાવીરકો અપાનક પષ્ઠ ભક્તસે અનન્ત અનુત્તર યાવત્ કેવલવર જ્ઞાન દર્શન ઉત્પન્ન હુણ્ । શ્રમણ ભગવાન્ મહાવીર અપાનક પષ્ઠ ભક્તસે સિદ્ધ યાવત્ સર્વ દુઃખોસે રહિત્ત હુણ્ । અપાનક શબ્દકા અર્થ પાનીરહિત્ત હૈ “ મુણ્ડો યાવત્ ” યહાં યાવત્પદસે “ ભૂત્વા આગારાદનગારિતામ્ ” ઇસ પાઠકા ગ્રહણ હુઆ હૈ “ અનુત્તરં યાવત્ ” યહાં યાવત્પદસે “ નિર્વ્યાધાતં નિરાવરણં કૃત્સ્નં પ્રતિપૂર્ણં કેવલવરજ્ઞાનદર્શનં ” ઇસ પાઠકા સંગ્રહ હુઆ હૈ, एवं “ સિદ્ધો યાવત્ ” યહાંકે યાવત્પદસે “ બુદ્ધો મુક્તઃ પરિનિર્વૃત્તઃ ” ઇસ પાઠકા સંગ્રહ હુઆ હૈ ॥ સૂ૦ ૫૭ ॥

શ્રમણુ ભગવાન મહાવીર અપાનક પષ્ઠ ભક્ત પૂર્વક (નિર્જળ છઠ્ઠી તપસ્યા કરીને) મુંડિત થઈને ગૃહસ્થાવાસના ત્યાગપૂર્વક પ્રવ્રજિત થયા હતા. શ્રમણુ ભગવાન મહાવીરને અપાનક પષ્ઠ ભક્તની તપસ્યા વડે અનન્ત, અનુ-ત્તર, નિર્વ્યાધાત, નિરાવરણુ, કૃત્સ્ન અને પ્રતિપૂર્ણુ કેવલવરજ્ઞાનદર્શન ઉત્પન્ન થયા હતાં. અપાનક પષ્ઠ ભક્તની તપસ્યા દ્વારાજી શ્રમણુ ભગવાન મહાવીર સિદ્ધ, બુદ્ધ, મુક્ત પરિનિર્વૃત્ત અને સમસ્ત દુઃખોથી રહિત થયા હતા.

જે ઉપવાસમાં પાણીનો પણ ત્યાગ કરવામાં આવે છે તે ઉપવાસને અપાનક ઉપવાસ કહે છે. એવા જે દિવસના નિર્જળ ઉપવાસને અપાનક પષ્ઠ ભક્ત કહે છે. ॥ સૂ. ૫૭ ॥

भगवन्महावीरप्ररूपितधर्मानुयायिनस्तु देवत्वेनोत्पद्यन्त एवेति देवविषयकं किञ्चिन्निरूपयति—

मूलम्—सणकुमारमाहिंदेसु णं कप्पेसु विमाना छं जोयण-
सयाइं उड्डं उच्चत्तेणं पणत्ता । सणकुमारमाहिंदेसु णं कप्पेसु
देवाणं भवधारणिज्जगा सरीरगा उक्कोसेणं छ रयणीओ उड्डं
उच्चत्तेणं पणत्ता ॥ सू० ५८ ॥

छाया—सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः खलु कल्पयोः विमानानि षड् योजनश-
तानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि । सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः खलु कल्पयोर्देवानां भव-
धारणीयकानि शरीरकाणि उत्कर्षेण षड् रत्नयः ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ॥ सू० ५८ ॥

टीका—‘सणकुमारमाहिंदेसु’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ५८ ॥

उक्तरूपेषु च देवशरीरेष्वाहारपरिणामोऽस्तीत्याहारपरिणामं परिणामसं-
न्धाद् विषपरिणामं च निरूपयति—

मूलम्—छव्विहे भोयणपरिणामे पणत्ते, तं जहा--मणुत्ते १,
रसिष् २, पीणणिज्जे ३, बिंहणिज्जे ४, दीवगिज्जे ५, दप्पणिज्जे ६।

भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित धर्मके जो अनुयायी होते हैं वे
देवकी पर्यायसे उत्पन्न होते हैं अतः अब सूत्रकार देवोंके सम्बन्धमें
कथन करते हैं—

“सणकुमारमाहिंदेसु ण कप्पेसु” इत्यादि सूत्र ५८ ॥

सूत्रार्थ—सनत्कुमार और माहेन्द्र इन दो कल्पोंके विमान छसोछसो ६००-
६०० योजनके ऊंचे कहे गयेहैं । सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पके देवोंके
भवधारणीय शरीर उत्कृष्टसे छ रत्नप्रमाण ऊंचे कहे गयेहैं ॥ सू० ५८ ॥

भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित धर्मना जेओ अनुयायी होय छे
तेओ देवनी पर्याये उत्पन्न थई जय छे, तेथी हवे सूत्रकार देवाना विषयमां
थोडुं कथन करे छे “सणकुमारमाहिंदेसु णं कप्पेसु” इत्यादि—

सूत्रार्थ—सनत्कुमार कल्पमां अने माहेन्द्र कल्पमां विमानेनी जियाछसो छसो
६००-६०० थोजननी कही छे आ अने कल्पना देवाना अवधारणीय शरीरनी
उत्कृष्ट जियाछ छ रत्नप्रमाण कही छे, ॥ सू. ५८ ॥

છત્ત્વિહે વિષપરિણામે પળ્લસે, તં જહા-હક્રે ૧ મુક્તે ૨
નિવદ્ધ ૩ માંસાણુસારી ૪ શોણિયાણુસારી ૫ અદ્ધિમિજાણુસારી
૬ ॥ સૂ૦ ૫૧ ॥

છાયા--પદ્ધવિયો ભોજનપરિણામઃ પ્રજ્ઞસઃ, તથથા-મનોજ્ઞો ૧ રસિકઃ ૨
પ્રીણનીયો ૩ વૃંહણીયો ૪ દીપનીયો ૫ દર્પણીયઃ ૬। પદ્ધવિયો વિષપરિણામઃ
પ્રજ્ઞસઃ, તથથા-દદ્ધો ૧ મુક્તો ૨ નિપતિતો ૩ માંસાણુસારી ૪ શોણિતાણુસારી ૫
અસ્થિમજ્જાણુસારી ૬ ॥ સૂ૦ ૫૧ ॥

ટીકા--' છત્ત્વિહે ' ઇત્યાદિ--

ભોજનપરિણામઃ-ભોજનસ્ય=આહારવિશેષસ્ય પરિણામઃ=પરિણતિઃ પદ્ધવિયઃ
પ્રજ્ઞસઃ ; તથથા-મનોજ્ઞઃ=સુન્દરઃ શુભતાન્મનોજ્ઞભોજનસંવન્નાદ્ વા ૧, રસિકઃ=

ઉક્ત રૂપવાલે દેવશરીરોં આહાર પરિણામ હોતા હૈ, અતઃ અથ
સૂત્રકાર આહાર પરિણામકા ઓર પરિણામકે સમ્બન્ધસે વિષ પરિણામકા
નિરૂપણ કરતેહૈ--"છત્ત્વિહે ભોષણ પરિણામે પળ્લસે" ઇત્યાદિ સૂત્ર૫૧॥

ટીકાર્થ-ભોજન પરિણામ ૬ પ્રકારકા કહા ગયાહૈ, જૈસે-મનોજ્ઞ ૧ રસિક
૨ પ્રીણનીય ૩ વૃંહણીય ૪ દીપનીય ૫ ઓર દર્પણીય ૬

છ પ્રકારકા વિષપરિણામ કહા ગયા હૈ, જૈસે-દદ્ધ ૧ મુક્ત ૨
નિપતિત ૩ માંસાણુસારી ૪ શોણિતાણુસારી ૫ ઓર અસ્થિમજ્જાણુ-
સારી ૬ આહાર વિશેષકા પરિણામ પરિણતિ પરિણમન ૬ પ્રકારકા
જો કહા ગયા હૈ, અસક્તા તાંત્પર્ય એસા હૈ-જો આહાર મનોજ્ઞ ભોજનકે
સમ્બન્ધસે શુભ હોતા હૈ, અસક્તા પરિણામ ઓ-પરિણામ ઓ સુન્દર હોતા

ઉપરના સૂત્રમાં દેવોની વાત કરી. તે દેવશરીરોમાં આહાર પરિણામનો
પણ સદ્ભાવ હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર આહાર પરિણામનું અને પરિણામના
સંબંધથી વિષ પરિણામનું નિરૂપણ કરે છે. "છત્ત્વિહે ભોષણપરિણામે પળ્લસે" ઇત્યાદિ-

ભોજન પરિણામના નીચે પ્રમાણે ૬ પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) મનોજ્ઞ,
(૨) રસિક, (૩) પ્રીણનીય, (૪) વૃંહણીય, (૫) દીપનીય અને (૬) દર્પણીય

વિષ પરિણામના પણ ૬ પ્રકાર કહ્યા છે--(૧) દદ્ધ, (૨) મુક્ત, (૩)
નિપતિત, (૪) માંસાણુસારી, (૫) શોણિતાણુસારી અને (૬) અસ્થિ મજ્જાણુસારી

આહાર વિશેષની પરિણામ પરિણતિ અથવા આહારના પરિણામનના જે
છ પ્રકારો કહ્યા છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે--

જે આહાર મનોજ્ઞ ભોજનના સંબંધથી શુભ હોય છે તેનું પરિણામ
(પરિણામ) પણ સુન્દર હોય છે. જે આહાર રસયુક્ત ભોજનવાળો હોય છે

રસયુક્તો રસયુક્તભોજનસંબન્ધાત્ ૨, પ્રીણનીયઃ=રસાદિધાતુસમતાકારી ૩, વૃંહणीયઃ=ધાતુપચયકારી ૪, દીપનીયઃ=અગ્નિબલજનકઃ ૫, દર્પणीયઃ=બલ-કર ઉત્સાહકરો વા ૬। અથવા-પરિણામઃ=પર્યાયઃ સ્વભાવો ધર્મ इति यावत् । પરિણામપરિણામવતોરભેદોપચારાત્ પરિણામવદ્ ભોજનમેવાત્ર મનોજ્ઞાદિભેદમિત્રં વોધ્યમ્ । મનોજ્ઞાદિશબ્દાશ્ચ નપુંસકલિજ્ઞા વોધ્યાઃ । તન્ન-મનોજ્ઞમ્-અભિલષणीયં ભોજનમ્ ૧, રસિકં=માધુર્યાદિરસયુક્તં ભોજનમ્ ૨। પ્રીણનીયાદીનામર્થઃ પૂર્વ-વદ્ વોધ્યઃ ૬ इति । તથા-વિપરિણામઃ-વિપસ્ય પરિણામો દષ્ટાદિભેદૈઃ ૫૬-

હૈ, જો આહાર રસયુક્ત ભોજનવાલા હોતા હૈ, ઉસકા પરિણામ ઓ રસયુક્ત હોતા હૈ ૨, જો આહાર રસાદિ ધાતુઓમે સમતાકા કરનેવાલા હોતા હૈ, ઉસકા પરિણામ ઓ એસાહી હોતા હૈ, અતઃ પ્રીણનીય કહા ગયા હૈ ૩, જો આહાર ધાતુકા ઉપચય-વૃદ્ધિ-કરનેવાલા હોતા હૈ, વહ આહાર પરિણામકી અપેક્ષા વૃંહणीય કહા ગયા હૈ ૪, જો આહાર અગ્નિબલજનક હોતા હૈ, વહ દીપનીય કહા ગયા હૈ ૫, જો આહાર બલકર અથવા ઉત્સાહકર હોતા હૈ, વહ દર્પणीય કહા ગયા હૈ ૬। અથવા-પરિણામ શબ્દકા અર્થ પર્યાય સ્વભાવ ધર્મ એસા ઓ હોતા હૈ, ફસલિયે પરિણામ ઓર પરિણામીમે અભેદકે ઉપચારસે પરિણામ શબ્દ દ્વારા પરિણામવાલા ભોજનહી યહાં મનોજ્ઞ આદિ ભેદસે ગ્રહણ હુઆ હૈ; એસા જાનના ચાહિયે જલ મનોજ્ઞાદિ શબ્દ ભોજનકે વિશેષણ રૂપસે કહે જાયેંગે તલ લે યહાં નપુંસક લિજ્ઞવાલે જાને જાયેંગે અતઃ જો ભોજન અભિલષणीય હોતા હૈ, વહ મનોજ્ઞ હૈ, જો ભોજન માધુર્યાદિ

તેના પરિણામ પશુ રસયુક્ત હોય છે જે આહાર રસાદિ ધાતુઓમાં સમતા કરનારો હોય છે તેનું પરિણામ પશુ એવું જ હોય છે. તેથી એવા આહારને પ્રીણનીય કહ્યો છે જે આહાર ધાતુની વૃદ્ધિ કરનારો હોય છે એવા આહારને પરિણામની અપેક્ષાએ વૃહણીય કહ્યો છે જે આહાર અગ્નિબલ જનક (ગરમી ઉત્પન્ન કરનાર) હોય છે તેને દીપનીય કહ્યો છે. જે આહાર બલ-વર્ધક અથવા ઉત્સાહવર્ધક હોય છે તેને દર્પણીય કહ્યો છે અથવા 'પરિણામ' પદનો અર્થ પર્યાય, સ્વભાવ અને ધર્મ પણ થાય છે. તેથી પરિણામ અને પરિણામીમાં અભેદતા ઉપચરની અપેક્ષાએ પરિણામ, શબ્દ દ્વારા પરિણામવાળું ભોજન જ અહીં મનોજ્ઞ આદિ ભેદો વડે ગ્રહણ થયું છે, એમ સમજવું જોઈએ. જે મનોજ્ઞ આદિ શબ્દોને ભોજનના વિશેષણ રૂપે વાપરવામાં આવે તો અહીં નાન્યતર જાતિમાં તે પદોનો પ્રયોગ કરવો પડશે. જેમકે-જે ભોજન અભિલષણીય (મન ભાવતું) હોય છે તેને મનોજ્ઞ ભોજન કહે છે. જે ભોજન

વિષો ભવતિ । અયં ભાવઃ—શ્વાદિના દષ્ટસ્ય જનસ્ય તદ્દંષ્ટ્રાશ્રિતવિપં પીડાં જન-
યતીતિ તદ્વિપં દશનાનન્તરપીડાકારિત્વાદ્ દષ્ટમિત્યુચ્યતે, તદ્દિ જઙ્ગમં વિપં
ભવતિ । ૧ । યત્ પુનર્મુક્તં સત્ પીડાકારિ ભવતિ તદ્ શુક્તમ્ । इदं च स्थावरं
વિષમ્ । ૨ । નિપતિતમ્—યત્ પુનરુપરિ પતિતં સત્ પીડયતિ તન્નિપતિતમિત્યુ-
ચ્યતે । इदं च त्वग्निषं दृष्टिविषं चेति द्विविधं भवति । ૩ । માંસાનુસારિ—યદિપં
માંસાન્તઘાતું વ્યાપ્નોતિ તત્ ॥ ૪ ॥ શોણિતાનુમારિ—યદિપં પુનઃ શોણિતમનુ-

રસસે યુક્ત હોતા હૈ, વહ રસિક હોતા હૈ, પ્રોળનીય આદિ શબ્દોંકા
અર્થ પૂર્વંવત્હી હૈ, વિષકા પરિણામ દષ્ટ આદિકે ભેદસે ૨ પ્રકારકા
હોતા હૈ, ભાવ હસકા યહ હૈ કિ—ક્રુત્સે આદિકે દ્વારા કાટે ગયે જનકો
ડસકી દંષ્ટ્રામોં રહા હુઆ વિષ પીડા ઉત્પન્ન કરતા હૈ, હસલિયે યહ
વિષ કાટનેકે વાદ પીડા કરનેવાલા હોનેસે દષ્ટ એસા કહા જાતા હૈ,
યહ વિષ જંગમ વિષ કહલાના હૈ, તથા જો વિષ ર્વાને પર પીડા કરને-
વાલા હોતા હૈ, વહ શુક્ત વિષ કહલાતા હૈ, યહ સ્થાવર વિષ હોતા હૈ,
જો વિષ શરીર પર પડતેહી પીડા જનક હોતા હૈ, વહ વિષ નિપતિત
વિષ કહલાતા એસા યહ ત્રિષ ત્વગ્વિષ ઓર દૃષ્ટિવિષકે ભેદસે દો
પ્રકારકા હોતા હૈ, જો વિષ માંસ તકકી ધાતુકો વ્યાસ કર લેતા હૈ,
વહ વિષ માંસાનુસારી વિષ કહલાના હૈ, ર્વૂનકો જો વિષ વ્યાસ કર
લેતા હૈ, વહ શોણિતાનુસારી વિષ હૈ ૫ ઓર જો વિષ અસ્થિ એવં

માધુર્ય આદિ રસથી યુક્ત હોય છે તેને રસિક અથવા રસાળ કહે છે. પ્રીષુ-
નીય આદિ પદોનેા અર્થ પણ આગળ કહ્યા મુજબ સમજવો. હવે વિષના
જે છ પ્રકારના પરિણામ કહ્યા છે તેમનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—

કૂતરા આદિ કરડે ત્યારે તેમની દાઢે માં રહેલું વિષ માણસના શરીરમાં
પીડા ઉત્પન્ન કરે છે આ રીતે કરડયા બાદ આ વિષ પીડા ઉત્પન્ન કરનારૂં
હોવાથી તેને દૃષ્ટિવિષ કહે છે આ વિષને જંગમ વિષ પણ કહે છે.

જે વિષ ખાવાથી પીડા ઉત્પન્ન કરનારૂં હોય છે તેને ભુક્તવિષ કહે છે.
આ પ્રકારના વિષને સ્થાવર વિષ પણ કહે છે. જે વિષ શરીર પર પડવાથી
શરીરમાં પીડા ઉત્પન્ન કરે છે તે વિષને નિપતિત વિષ કહે છે. તે વિષના
ત્વગ્વિષ અને દૃષ્ટિવિષ નામના બે ભેદ પડે છે જે વિષ માંસ પર્યન્તની
ધાતુને વ્યાસ કરી લે છે તે વિષને માંસાનુસારી વિષ કહે છે. જે વિષ રક્તમાં
વ્યાપી બંધ છે તેને શોણિતાનુસારી વિષ કહે છે. જે વિષ અસ્થિ અને

गच्छति तत् । ५ । तथा—अस्थिमज्जानुसारि—यद्विषम् अस्थिमज्जां चानुगच्छति तत् ॥ ६ ॥ विषस्य षड्विधत्वात्त्परिणामोऽपि षड्विध उक्तः ॥ सू० ५९ ॥

उपर्युक्तानामर्थानां निर्णयस्तु सातिशयाप्तसकाशात् प्रश्नपूर्वकमेव भवतीति प्रश्नस्य षड्विधत्वमाह—

मूलम्—छत्विहे पट्टे पण्णत्ते, तं जहा--संशयपट्टे १, व्युद्ग्रह-पट्टे २, अणुजोगी ३, अणुलोमे ४, तहणाणे ५, अतहणाणे ६ ॥ सू० ६० ॥

छाया—षड्विधं पृष्ठं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—संशयपृष्ठम् १, व्युद्ग्रहपृष्ठम् २, अनुयोगि ३, अनुलोमम् ४, तथाज्ञानम् ५ अतथाज्ञानम् ६ ॥ सू० ६० ॥

टीका—‘ छत्विहे ’ इत्यादि—

पृष्ठं=प्रश्नः षड्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—संशयपृष्ठम्—कास्मश्चिद्विषये संशये सति यः प्रश्नो विधीयते स संशयपृष्ठमिति । यथा—

“ जइ तवसा वोदाणं, संजमभोऽगासवोत्ति ते कइ णु ।

देवत्तं जंति जइ ?, सरागसंजमभो गुरुप्पाह ॥ १ ॥

मज्जाको व्यास कर लेना है, वह अस्थिमज्जानुसारी विष है ६ इस तरहसे विषकी षट् प्रकारतामें उसके परिणाममें भी षट् प्रकारता कही गई है ॥ सू० ५९ ॥

उपर्युक्त अर्थोंका निर्णय सातिशय आससे प्रश्नपूर्वकही होना है, अतः अब सूत्रकार प्रश्नमें षट् प्रकारता कहते हैं—

‘ छत्विहे पट्टे पण्णत्ते ’ इत्यादि सूत्र ६० ॥

टीकार्थ—पृष्ठ प्रश्न छ प्रकारका कहा गया है, जैसे—संशयपृष्ठ १ व्युद्ग्रह पृष्ठ २ अनुयोगी ३ अनुलोम ४ तथाज्ञान ५ और अतथाज्ञान ६ किसी विषयमें संशय होने पर जो प्रश्न किया जाता है, वह संशयपृष्ठ है ।

मज्जामां व्यापी जय छे तेने अस्थि मज्जानुसारी विष कडे छे. आ प्रकारे विषनी छ प्रकारताना कथन द्वारा तेना परिणाममां पणु छ प्रकारतानु कथन थर्ध जय छे, अेम समज्जुं. ॥ सू. ५९ ॥

सातिशय आप्तने प्रश्न पूछवाथी जे उपर्युक्त अर्थोना निर्णय थर्ध शके छे तेथी डवे सूत्रकार प्रश्नना छ प्रकारतानुं निरूपणु करे छे.

“ छत्विहे पे पण्णत्ते ” इत्यादि—

टीकार्थ—प्रश्नना नीचे प्रमाणे छ प्रकार कइया छे—(१) संशयपृष्ठ, (२) व्युद्ग्रह पृष्ठ, (३) अनुयोगी, (४) अनुलोम, (५) तथाज्ञान, (६) अतथाज्ञान.

(१)केरि पणु विषयमां शंका थवाथी जे प्रश्न पूछवामां आने छे तेने

હાયા—યદિ તપસા વ્યવદાનં સંયમતોઽનાસ્ત્રવ ઇતિ તે કથં તુ ।

દેવત્વં યાન્તિ યતયઃ ? સરાગસંયમતો ગુરુઃ પ્રાહ ॥ ૧ ॥

અર્થ માર્ગ:--તપસા દ્વાદશવિધેન વ્યવદાનં=કર્મણાં છેલ્લો ભવતિ, તથા-સંયમતઃ અનાસ્ત્રવો ભવતિ-ઇતિ તે=તવ મતં કથં તુ સંગચ્છતે ? યતઃ તપસ્વિનો ગૃહીતસંયમા અપિ યતયો દેવત્વં યાન્તિ । એવં શિષ્યપ્રશ્ને ગુરુઃ પ્રાહ-તે હિ સરાગસંયમતો દેવત્વં યાન્તીતિ । ઇતિ પ્રથમઃ પ્રશ્નઃ ૧ । તથા-વ્યુદ્ગ્રહપૃષ્ટમ્-વ્યુદ્ગ્રહેણ=વિપરીતગ્રહેણ-મિથ્યાભિનિવેશોન પરપક્ષદૂષણાર્થ યઃ પ્રશ્નઃ ક્રિયતે સઃ । યથા--“ સામન્ના ડ વિસેસો, અન્નોઽનન્નો વ હોજ્જઙ્ઙ અન્નો ।

સો નસ્થિ-સ્વપુષ્કં પિવ, ણન્નો સામન્નમેવ તયં ॥ ૧ ॥ ”

યથા--“ જહ તવમા વોદાણં ” ઇત્યાદિ ।

માત્ર હસક્કા એસા હૈ-પ્રારહ મકારકે તપસે કર્મોક્કા નાશ હોતા હૈ, ઓર સંયમસે અનાસ્ત્રવ-આસ્ત્રવકા અભાવ હોતા હૈ, એસા જો મત હૈ, વહ સમીચીન કૈસે માના જા સકના હૈ ? કયોંકિ ગૃહીત સંયમવાલે ઓ તપસ્વિજન દેવ પર્યાયકો પ્રાપ્ત કરતે હૈ, એસા યહ શિષ્યકા પ્રશ્ન હૈ, હસ પર ગુરુદેવ ડસસે કહતે હૈ--“ તે હિ સરાગસંયમતો દેવત્વં યાન્તિ ” વે સરાગસંયમસે દેવ પર્યાયકો પ્રાપ્ત કરતે હૈ, યહ સંશય પ્રપ્તહૈ, ૧ વ્યુદ્ગ્રહપૃષ્ટ-વિપરીત ગ્રહકા નામ વ્યુદ્ગ્રહહૈ, હસે શબ્દાન્તરસે મિથ્યાભિનિવેશ ઓ કહાં ગયા હૈ, હસ મિથ્યાભિનિવેશસે જો પર પક્ષકો દૂષિત કરનેકે લિયે પ્રશ્ન ક્રિયા જાતા હૈ, વહ વ્યુદ્ગ્રહ પૃષ્ટ હૈ-યથા--“ સામન્ના ડ વિસેસો ” ઇત્યાદિ ।

સંશયપૃષ્ટ કહે છે. જેમકે “ જહ તવમા વોદાણં ” ઇત્યાદિ--

પ્રશ્ન--“ આર પ્રકારના તપથી કર્મોના નાશ થાય છે અને સંયમ વડે અનાસ્ત્રવ (આસ્ત્રવનો અભાવ) થાય છે, આ પ્રકારનો જે મત છે તેને ખરો કેવી રીતે માની શકાય ? કારણ કે ગૃહીત સંયમવાળા તપસ્વીઓ પણ દેવ પર્યાયને પ્રાપ્ત કરે છે. ” શિષ્યનો આ પ્રશ્ન સંયમપૃષ્ટ છે.

ઉત્તર--“ તે હિ સરાગસંયમતો દેવત્વં યાન્તિ ” તેઓ સરાગ સંયમ વડે દેવપર્યાયને પ્રાપ્ત કરે છે.

(૨) વ્યુદ્ગ્રહ પૃષ્ટ--વિપરીત ગ્રહતુ' નામ વ્યુદ્ગ્રહ છે. તેને મિથ્યાભિનિવેશ પણ કહે છે. આ મિથ્યાભિનિવેશ પૂર્વક પર પક્ષને દૂષિત કરવાને માટે જે પ્રશ્ન પૂછવામાં આવે છે તેતુ' નામ વ્યુદ્ગ્રહ પૃષ્ટ છે.

જેમકે “ સામન્ના ડ વિસેસો ” ઇત્યાદિ--

छाया—सामान्याद् विशेषोऽन्योऽन्यो वा भवति यदि अन्यः ।

स नास्ति स्वपुष्पमिव नान्यः सामान्यमेव सः ॥ १ ॥ इति ।

अयं भावः—सामान्याद्=धर्माद् विशेषः=धर्मी अन्यो भवति अनन्यो वा ? यदि अन्यो भवति तदा स स्वपुष्पमिव नास्ति । अथ अनन्यो भवति तदा स सामान्यमेव भवतीति । एवंरूपो व्युद्ग्रहप्रश्नो भवतीति द्वितीयः प्रश्नः । २ । अनुयोगि-अनुयोगो=व्याख्यानं प्ररूपणेति यावत्, स यत्रारित तत् । अनुयोगार्थं क्रियमाणः प्रश्न इत्यर्थः । यथा—सौधर्मकल्पिकदेवानामुपपातविषये प्रश्नः—‘सोहम्मकप्पदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पणत्ता’ इति । इति तृतीयः प्रश्नः ३ । अनुलोमम्—पराननुकूलयितुं यः प्रश्नः क्रियते सः । यथा—

भाव ऐसा है—सामान्यसे—धर्मसे विशेष—धर्मी भिन्न है—या अभिन्न है ? यदि धर्मसे धर्मी भिन्न है, तो वह आकाशपुष्पकी तरह नहीं है, और यदि वह उससे अभिन्न है, तो वह सामान्य—धर्म ही हो जावेगा विशेष धर्मी नहीं होगा ? व्युद्ग्रह प्रश्न ऐसा होता है २

अनुयोगी - अनुयोग नाम व्याख्यान या प्ररूपणाका है, यह जिसमें होती है, वह अनुयोगी है, अनुयोगके लिये किया गया प्रश्न अनुयोगी प्रश्न है जैसे - सौधर्म कल्पिक देवोंसे उपपातके विषयमें ऐसा प्रश्न किया गया है—“सोहम्मकप्पदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पणत्ता” हे भदन्त ! सौधर्मकल्पके देवोंका उपपातसे विरह कितने कालका कहा गया है ३ । अनुलोम—दूसरोंको अनुकूल करनेके लिये जो प्रश्न किया

प्रश्न—“सामान्य धर्मनी अपेक्षासे विशेष—धर्मी भिन्न छे के अभिन्न छे ? जे धर्म करतां धर्मी भिन्न होय तो ते आकाशपुष्प समान नथी जे ते तेनाथी अभिन्न होय तो ते सामान्य धर्म जे थई जेसे—विशेष—धर्मी थसे नही” या व्युद्ग्रह प्रश्ननुं दृष्टांत छे.

(३) अनुयोगी प्रश्न—व्याख्यान अथवा प्ररूपणातुं नाम अनुयोग छे. ते जेमां थाय छे ते अनुयोगी छे. अनुयोगने माटे पूछायेला प्रश्नने अनुयोगी प्रश्न छडे छे. जेभके सौधर्म कल्पना देवोना उपपातना विषयमां जेवो प्रश्न पूछवाभां आयो छे के “सोहम्मकप्पदेवाणं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पणत्ता ?” छे लगवन् ! सौधर्म कल्पना देवोना उपपातना विरह केटला काणना कछो छे ?

(४) अनुलोम प्रश्न—अन्यने अनुकूल करवाने माटे जे प्रश्न करवासां आवे छे ते प्रश्नने अनुलोम प्रश्न छडे छे, जेभके “कुरलं भवताम्” इत्यादि,

‘कुशलं भवता’—मित्यादि,—इति चतुर्थः प्रश्नः ४। तथाज्ञानम्—यत्र विषये प्रश्न-
कर्तुरपि प्रष्टव्यस्येव ज्ञानं भवति स प्रश्नस्तथाज्ञानमित्युच्यते । एवंविधप्रश्न
ज्ञानवान् गौतमादिविद्योध्यः । स च प्रश्नविषयीभूतार्थं जानन्नपि भगवन्तं
पृच्छति, यथा—‘ केवह्यं कालं भंते ? चमरचंचा रायहाणी विरहिया उववाएणं ’
इत्यादि । इति पञ्चमः प्रश्नः ५। तथा—अतथाज्ञानम्—यत्र प्रश्नविषयीभूतेऽर्थे प्रश्न
कर्तुः प्रष्टव्यस्येव ज्ञानं न भवति, स प्रश्नः—अतथाज्ञानमित्युच्यते । यथा—राज्ञः
प्रदेशिनो जीविषये केशिकुमारश्रमणं प्रति प्रश्नः । इति षष्ठः प्रश्नः ६ ॥ सू० ६० ॥

जाता है, वह अनुलोम प्रश्न है, जैसे—“ कुशलं भवताम् ” इत्यादि ४।
तथाज्ञान—जिस प्रश्नके विषयमें प्रश्नकर्त्ताको भी प्रष्टव्यविशेषका
ज्ञान होना है, वह तथाज्ञान प्रश्न है, ऐसे प्रश्न ज्ञानवाले गौतमादि
हुए हैं, क्योंकि जिन प्रश्नोंको उन्होंने भगवान्से पूछा है, वे स्वयं
उस प्रश्नके अर्थको जानते थे, जैसे—“ केवह्यं कालं भंते ! चमरचंचा
रायहाणी विरहिया उववाएणं ” हे भदन्त ! चमरचञ्चा राजधानी
किनने काल तक उपपातसे विरहित रही ? इत्यादि ५। अतथाज्ञान—जहाँ
प्रश्नकर्त्ताको प्रश्न विषयक ज्ञान जिससे प्रश्न पूछा गया है, उसकी
तरह नहीं होता है, वह अतथाज्ञान प्रश्न है, जैसे—प्रदेशी राजाने जीव
विषयमें केशिकुमार श्रमणसे प्रश्न किया है ६ ॥ सू० ६० ॥

(५) तथाज्ञान प्रश्न—जे प्रश्न पूछवामां आवे ते प्रश्नना विषयतुं ज्ञान
प्रश्नकर्त्ता पणु धरावतो डोय, तो तेना ते प्रश्नने तथाज्ञान प्रश्न कडे छे.
जेभके गौतम स्वामीजे महावीर प्रभुने जे प्रश्नो पूछ्या हुता ते प्रश्नोना
उत्तर तेजो न्णुता हुता. छतां अन्य साधुजो अने लोकाने धर्मतत्त्वतुं
ज्ञान थाय ते हेतुपूर्वक तेजो महावीर प्रभुने जेवा प्रश्नो पूछता हुता.
“ केवह्यं कालं भंते ! चमरचंचा रायहाणी विरहिया उववाएणं ? डे
लगवन् ! चमरचञ्चा राजधानी डेटला काण सुधी उपपातधी विरहित
रही ? ” इत्यादि. आ प्रश्नने उत्तर गौतम स्वामी चेते न्णुता हुता, छतां
आ प्रकारने प्रश्न पूछवामां आव्थो छे भाटे तेने तथाज्ञान प्रश्न कडी शक्या.

(६) अतथाज्ञान प्रश्न—प्रश्नमां पूछवामां आवेला विषयतुं ज्ञान प्रश्नकर्त्तामां
न डोय त्तारे तेना प्रश्नने अतथाज्ञान प्रश्न कडे छे. प्रदेशी राजाजे ज्वना
विषे केशि अणुगारने जे प्रश्न पूछ्यो हुतो तेने अतथाज्ञान प्रश्न
कडी शक्या. ॥ सू. ६० ॥

अनन्तरमूत्रे तथाज्ञानप्रश्नविषये ' केचइयं कालं भंते ! चमरचंचा रायहाणी विरहिया उववाएणं ' इत्युक्तम्, अतस्तदुत्तरं दातु ' चमरचंचा ' इति, विरहाधिकारात् इन्द्रस्थानादिकं च निरूपयति—

मूलम्- चमरचंचा रायहाणी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववाएणं । एगमेगेणं इंदट्टाणे उक्कोसेणं छम्मासा विरहिण उववाएणं । अहे सत्तमाएणं पुढवी उक्कोसेणं छम्मासां विरहिया उववाएणं । सिद्धिगई णं उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववाएणं ॥ सू० ६१ ॥

छाया—चमरचञ्चा राजधानी उत्कर्षेण षण्मासान् विरहिता उपपातेन । एकमेकं खलु इन्द्रस्थानम् उत्कर्षेण षण्मासान् विरहितम् उपपातेन । अधःसप्तमी खलु पृथिवी उत्कर्षेण षण्मासान् विरहिता उपपातेन । सिद्धिगतिः खलु उत्कर्षेण षण्मासान् विरहिता उपपातेन ॥ सू० ६१ ॥

इस ऊपरके सूत्रमें “ तथाज्ञान ” प्रश्नके विषयमें “ केचइयं कालं भंते ! चमरचंचा रायहाणी विरहिया उववाएणं ” ऐसा जो कहा गया है, सो उसका उत्तर देनेके लिये “ चमरचञ्चा ” का एवं विरहाधिकारको लेकर इन्द्रस्थान आदिका अब सूत्रकार कथन करते हैं—

“ चमरचंचा रायहाणी उक्कोसेणं ” इत्यादि सूत्र ६१ ॥

सूत्रार्थ—चमरचञ्चा राजधानी उत्कृष्टसे छ मास तक उपपातसे शूनी रह सकती है, अर्थात् छ मास तक उपपातका विरह काल होता है, एक एक इन्द्रस्थान उत्कृष्टसे छ मास तक उपपातसे शूना रह सकता है, अधःसप्तमी पृथिवी उत्कृष्टसे छ माह तक उपपातसे शूनी रह सकती है, अर्थात् छ मासका विरह होता है और सिद्धगति भी उत्कृष्टसे छ

आगला सूत्रमा अवेो प्रश्न पूछवामां आर्वीं छे के “ चमरचंचा राजधानी केटला काण सुधी उपपातथी शून्य रडे छे ” तेना उत्तर आपतां चमरचंचातुं अने विरहाधिकारने लधने इन्द्रस्थान आदितुं डवे सूत्रकार कथन करे छे. “ चमरचंचा रायहाणी उक्कोसेणं ” इत्यादि—

चमरचंचा राजधानी वधारेमां वधारे छ मास सुधी उपपातथी रडित रडी शके छे अेटवे के त्यां उपपातनेा विरडकाण वधारेमां वधारे छ मासनेा डेाड शके छे प्रत्येक इन्द्रस्थान वधारेमां वधारे छ मास सुधी उपपातथी शून्य रडी शके छे, अने सिद्धगति पणु वधारेमा वधारे छ मास सुधी उपपातथी शून्य रडी शके छे.

टीका—‘ चमरचंवा ’ इत्यादि—

चमरचञ्चा—चमरस्य=दक्षिणात्यस्य अमुरनिकायस्वामिनः चञ्चाऽभिधेया राजधानी चमरचञ्चाऽभिधीयते । जम्बूद्वीपस्थमन्दरपर्वतस्य दक्षिणे तिर्यगसंख्येयान् द्वीपसमुद्रान् अतिक्रम्य अरुणवरद्वीपस्य बाह्याद् वेदिकान्तात् अरुणोदं समुद्रं द्विचत्वारिंशद्योजनसहस्राण्यवगाह्य चमरस्य अमुरराजस्य तिगिच्छकूटनामा उत्पातपर्वतोऽस्ति । स हि उच्चत्वेन एतद्विंशत्यधिकसप्तदशशतयोजनप्रमाणः । तस्य दक्षिणे अरुणोदे समुद्रे सायिकानि षट्कोटिगतानि योजनानि तिर्यगतिक्रम्याधो रत्नप्रभायाः पृथिव्याः चत्वारिंशत्सहस्रयोजनान्यवगाह्य जम्बूद्वीपप्रमाणा चमरचञ्चाऽभिधेया राजधानी व्यवस्थिता । सा चैवं चमरचञ्चा राजधानी उत्कर्षेण षण्मासान् उपपातेन=इत्रोत्पत्त्या विरहिता भवति । चमरचञ्चायामुत्कर्षतः

मास तत्र उपपातले शूली रह सकृन्नी है ।

चमर यह दक्षिणात्य अमुर निकाय (दक्षिण दिशा) का स्वामी है, इसकी जो राजधानी है, वह चञ्चा है, अतः चमरके योगसे वह राजधानी चमरचञ्चा कहलाती है, इस जम्बूद्वीपके मन्दरपर्वतकी दक्षिण दिशामें तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रोंको पार करके अरुणवर द्वीपकी बाह्य वेदिकान्तसे लेकर अरुणोद समुद्रमें च्यालीस हजार योजन आगे जाकर अमुरराज चमरका तिगिच्छकूट नामका उत्पात पर्वत आता है। यह उत्पात पर्वत सत्रहसोइकीस १७२१ योजन ऊंचा है । इस पर्वतकी दक्षिण दिशामें अरुणोद समुद्रमें कुछ अधिक छसौ करोड योजन तिरछे जाकर नीचे रत्नप्रभा पृथिवीको च्यालीस हजार योजन पार करके जम्बूद्वीपके बराबर चमरचञ्चा नामकी राजधानी है, यह चमरचञ्चा

चमर दक्षिणात्य अमुरनिकायनेो स्वामी छे. तेनी राजधानीतुं नाम चंवा छे. चमरना योगथी ते राजधानी चमरचंवाने नामे ओणभाय छे. आ जंबूद्वीपना मन्दर पर्वतनी दक्षिण दिशामां तिरछां (तिरकस) असंख्यात द्वीपसमुद्रोने पार करीने, अरुणवर द्वीपनी बाह्यवेदिकान्तथी लघने अरुणोद समुद्रमां ओतालीस हजार योजन आगग जातां अमुरराज चमरनेो तिगिच्छकूट नामनेो उत्पात पर्वत आवे छे. ते उत्पात पर्वत सत्तरसो ओकवीस १७२१ योजन ओथे छे. आ पर्वतनी दक्षिण दिशामां अरुणोद समुद्रमा छसो करोड योजन करतां पणु थोडुं वधादे तिरछुं पार करीने, नीचे रत्नप्रभा पृथ्वीने च्यालीस हजार योजन पार करीने जंबूद्वीपना जेवडी ज चमरचंवा राजधानी आवे छे. आ चमरचंवा राजधानी वधादेमां वधादे छ मास सुधी देवोना उत्पातथी (उत्पात्तिथी) रहित रहे छे. ओटवे के त्यां छ मास सुधी देवोनी

षण्मासान् देवानामुत्पत्तिविरहो भवतीति भावः । तथा—एकैरुम् इन्द्रस्थानम्-
यत्र चमरादय इन्द्रास्तिष्ठन्ति, एतादृशं भवननगरविमानरूपं स्थानम् उत्कर्षेण
षण्मासान् यावत् उपपातेन इन्द्रापेक्षया विरहितं तिष्ठतीति । तथा—अधःसप्तमी,—
सप्तमी तु पश्चानुपूर्व्या रत्नप्रभाऽत्यभिधीयते इत्यध इति विशेषणम्, ततश्चाधः-
सप्तमीशब्देन तमस्तमा ग्राह्या । सा तु उत्कर्षेण षण्मासान् यावत् उपपातेन विर-
हिता भवति । तदुक्तम्—(उत्कर्षतः प्रथमादिसप्तनरकेषु)

“ चउवीसई सुहुत्ता १, सत्त अहोरत्त २ तह य पन्नरस ३।

मासो ४ य दौ ५ य चउरो ६, छम्मासा ७ विरहकालो ३ ॥ १ ॥”

छाया—चतुर्विंशतिर्गृह्णतीः १ सप्त अहोरात्रा २ क्षथा च पञ्चदश ३।

मासश्च ४ द्वौ च ५ चत्वारः ६ षण्मासा ७ विरहकालस्तु ॥१॥ इति ।

राजधानी उत्कृष्टसे छह मास तक देवोंकी उत्पत्तिसे विरहवाली होती
है, अर्थात् इस राजधानीमें छ मास तक देवोंकी उत्पत्तिका विरह होता
है, इसके बाद फिर कोई न कोई देव वहां अवश्य उत्पन्न हो जाता
है, तथा—जहाँ चमरादिक इन्द्र रहते हैं, ऐसा जो भवन नगर एवं
विमान रूप एक २ स्थान है, वह भी उत्कृष्टसे छ मास तक उन
इन्द्रोंकी उत्पत्तिसे विरहयुक्त होता है, तथा—अधःसप्तमी पृथिवी
तमस्तमा पृथिवी भी छह मास तक नारकके उपपातसे विरहित होती
है, यहाँ जो सप्तमी पृथिवीके साथ अधः पद दिया है, उसका कारण
ऐसा है, कि पश्चानुपूर्वसे रत्नप्रभा पृथिवी भी सप्तमी पृथिवी हो
सकती है, अतः वह यहाँ गृहीत न हो इसके लिये “ अधः ” पदका
प्रयोग किया गया है । कहा भी है—“ चउवीसई सुहुत्ता ” इत्यादि ।

उत्पत्तिने विरह (अभाव) रहे छे, त्थार भाद डोछने डोछ देव त्या अवश्य
उत्पन्न थछ न्य छे. तथा न्यां यमरदिक छन्दो रहे छे जेवा लवन, नगर
अने विमान रूप अत्येक स्थान पणु वधारेमां वधारे छ मास सुधी छन्दोनी
उत्पत्तिथी रहित संलवी शके छे.

तथा अधःसप्तमी पृथ्वी (तमस्तमां नामनी सातमी नरक पृथ्वी)
पणु छ मास सुधी नारकना उपपातथी रहित डोछ शके छे. अहीं सातमी
पृथ्वीनी साथे ‘अध’ पद योजवातुं कारणु जे छे के पश्चानुपूर्वीथी गणुनामां
आवे तो रत्नप्रभा पृथ्वीने पणु सातमी पृथ्वी कडी शक्य छे आ प्रकृरनी
गेरसंभूति निवारवा भाटे अहीं सातमी पृथ्वीनी आगण ‘अधः’ पद भूक
वासां आण्युं छे. कहुं पणु छे के “ चउवीसईसुहुत्ता ” इत्यादि—

તથા-સિદ્ધિગતિઃ સ્વત્વ ઉત્કર્ષેણ પળ્પાસાન્ ઉપપાતેન=ગમનેન વિરહિતા તિષ્ઠતિ । ઉપપાત ઇહ ગમનમેવ ન તુ જન્મ । જન્મકારણાનાં સિદ્ધેષ્વઽભાવાત્ । ઉત્તં ચ-“ એગમમત્રો જહન્નં, ઉક્તોસેણં હવંતિ હમ્માસા ।

વિરહો સિદ્ધિર્ગૈર્, ઉવ્વટ્ટણવ્વજ્જિયા નિયમા ॥ ૧ ॥”

છાયા—એકસમયો જગન્યમ્ ઉત્કર્ષેણ ભવન્તિ પળ્પાસાઃ ।

વિરહઃ સિદ્ધિગતૌ ઉદ્વર્તનવર્જિતા નિયમાત્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

ઉદ્વર્તનવર્જિતા=નિસ્સરણરહિતા સિદ્ધિગતિર્ગતિ ॥ સૂ૦ ૬૧ ॥

પ્રથમ પૃથિવીમાં વિરહકાલ ઉપપાતકી અપેક્ષા ઉત્કૃષ્ટસે ૨૪ મુદ્ધ-
ર્ત્તકા છે, દ્વિતીય પૃથિવીમાં સાત અહોરાત્રકા હૈ તૃતીય પૃથિવીમાં ૧૫
દિનકાઠૈ, ચૌથી પૃથિવીમાં ૧ માસકાઠૈ, પંચમી પૃથિવીમાં ૨ માસકા છટ્ટી
પૃથિવીમાં ૪ માસકા ઓર સાતમી પૃથિવીમાં ૬ માસકા ઉત્કૃષ્ટસે વિરહ-
કાલ છે, તથા-સિદ્ધિગતિમાં ઉપપાતસે વિરહકાલ છહ માસકા ઉત્કૃષ્ટસે
હૈ યહાં ઉપપાત શબ્દકા અર્થ ગમન છે, જન્મ નહીં કયોંકિ જન્મકે કાર-
ણોંકા સિદ્ધોંમાં અભાવ હો જાતા છે । કહા મી છે-

“ એગ સમત્રો જહન્નં ” ઇત્યાદિ ।

સિદ્ધિગતિમાં જગન્યસે ગમનકા અન્તર ૧ સમયકા હોતા છે, ઓર
ઉત્કૃષ્ટસે છહ માસકા હોતા છે, ફિર યહાંસે જીવકા નિકલના નહીં
હોતા છે એસા નિયમ છે ॥ સૂ૦ ૬૧ ॥

પહેલી પૃથ્વીમાં વધારેમાં વધારે ૨૪ મુદ્ધર્ત્ત સુધી ઉપપાતનો વિરહ
રહે છે, બીજી પૃથ્વીમાં સાત દિનરાતનો, ત્રીજી પૃથ્વીમાં ૧૫ દિનરાતનો
ચોથી પૃથ્વીમાં એક માસનો, પાંચમી પૃથ્વીમાં બે માસનો, છઠ્ઠી પૃથ્વીમાં
ચાર માસનો અને સાતમી પૃથ્વીમાં છ માસનો વધારેમાં વધારે ઉપપાતનો
વિરહકાળ કહ્યો છે. તથા સિદ્ધિ ગતિમાં ઉપપાતનો ઉત્કૃષ્ટ વિરહકાળ ૬
માસનો કહ્યો છે. અહીં ઉપપાત શબ્દ ગમનના અર્થમાં વપરાયો છે. જન્મના
અર્થમાં વપરાયો નથી, કારણ કે જન્મનાં કારણોનો સિદ્ધોમાં અભાવ થઈ
નથી છે. કહ્યું પણ છે કે “ એગ સમત્રો જહન્નં ” ઇત્યાદિ—

સિદ્ધિગતિમાં ગમનનું અન્તર ઓછામાં ઓછું એક સમયનું અને
વધારેમાં વધારે છ માસનું હોય છે. ત્યાં ગયા બાદ જીવને ત્યાંથી બીજી
કોઈ ગતિમાં જવું પડતું નથી. ॥ સૂ. ૬૧ ॥

अनन्तरमुपपातविरह उक्तः । उपपातश्चायुर्बन्धे सति भवतीति समेदमायुर्बन्ध-
सूत्रमाह—

मूलम्-छठ्विहे आउयबंधे पणत्ते, तं जहा-जाइणामणि-
हत्ताउए १, गइणामणिहत्ताउए २, ठिइणामणिहत्ताउए ३,
ओगाहणाणामणिहत्ताउए ४, पएसणामणिहत्ताउए ५, अणुभा-
वणामणिहत्ताउए ६। नेरइयाणं छठ्विहे आउयबंधे पणत्ते, तं
जहा--जाइणामणिहत्ताउए १ जाव अणुभावणामणिहत्ताउए
६। एवं जाव वेसाणियाणं । नेरइया णियमा छम्मासावसेसा-
उया परभवियाउयं पगरेति । एवामेव असुरकुमारा वि जाव
थणियकुमारा । असंखेज्जवासाउया सन्निपंचिंदियतिरिक्ख-
जोणिया णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेति ।
असंखेज्जवासाउया सन्निमनुस्सा नियमा जाव पगरेति । वाण-
मंतरा जोइसवासिया वेसाणिया जहा नेरइया ॥ सू० ६२ ॥

छाया—पञ्चविध आयुर्बन्धः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—जातिनामनिधत्तायुः १, गति-
नामनिधत्तायुः २, स्थितिनामनिधत्तायुः ३, अवगाहनानामनिधत्तायुः ४,
प्रदेशनामनिधत्तायुः ५, अनुभावनामनिधत्तायुः ६ । नैरयिकाणां पञ्चविध-

इस ऊपरके सूत्रमें उपपातका विरह कहा सो उपपात आयुके बन्ध
होने पर होता है, अतः अब सूत्रकार भेद सहित आयुर्बन्ध का
व्यथन करते हैं—“ छठ्विहे आउयबंधे पणत्ते ” इत्यादि सूत्र ६२ ॥

सूत्रार्थ—आयुर्बन्धछ प्रकारका कहा गया है । जैसे—जातिनामनिधत्तायु १
गतिनामनिधत्तायु २ स्थितिनामनिधत्तायु ३ अवगाहनानामनिधत्तायु
प्रदेशनामनिधत्तायु ५ और अनुभावनामनिधत्तायु ६ ।

उपरना सूत्रमां उपपातना विरहकाणनी वात करी. उपपात आयुने
अन्ध पडवाथी थाय छे, तेथी डवे सूत्रकार आयुअन्धनुं अने तेना लेहोनुं
निश्पणु करे छे. “ छठ्विहे आउयबंधे पणत्ते ” इत्यादि—

सूत्रार्थ—आयुअन्धना नीचे प्रमाणे छ प्रकार कइया छे—(१) जातिनामनिधत्तायु
(२) गतिनामनिधत्तायु, (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहनानाम-
निधत्तायु, (५) प्रदेशनामनिधत्तायु, अने (६) अनुभावनामनिधत्तायु.

આયુર્વન્ધઃ પ્રજ્ઞતઃ, તથથા-જાતિનામનિધત્તાયુઃ ૧ યાવત્ અનુભાવનામનિધત્તાયુઃ
૬। એવં યાવદ્ વૈમાનિકાનામ્ । નૈરયિકા નિયમાત્ પળ્લાસાવશેષાયુષ્કાઃ પર-
માવિકાયાુષ્કં પ્રકુર્વન્તિ । એવમેવઅમુરકુમારા અપિ યાવત્સ્વનિતકુમારાઃ । અસંખ્યેય
વર્ષાયુષ્કાઃ સંજ્ઞિપશ્ચેન્દ્રિયતિર્યગ્યોનિકાઃ નિયમાત્ પળ્લાસાવશેષાયુષ્કા પરમ-
વિકાયાુષ્કં પ્રકુર્વન્તિ । અસંખ્યેયવર્ષાયુષ્કાઃ સંજ્ઞિમનુષ્યાઃ નિયમાત્ યાવત્
પ્રકુર્વન્તિ । વ્યન્તરા ડ્યોતિર્વાસિકા વૈમાનિકા યથા નૈરયિકાઃ ॥ સૂ ૬૨ ॥

ટીકા—‘ છવિવહે ’ ઇત્યાદિ—

આયુર્વન્ધઃ—આયુષો વન્ધો નિષેકઃ—પ્રતિસમયં વહુહીનહીનતરસ્ય કર્મદલિક-
સ્થાનુભવનાર્થં રચનાવિશેષઃ, સ પઙ્કવિધઃ પ્રજ્ઞતઃ, તથથા-જાતિનામનિધત્તાયુઃ—
જાતિઃ=એકેન્દ્રિયાદિઃ પશ્ચવિદ્યા, મૈત્ર નામ=નામકર્મણ ઉત્તરપ્રકૃતિવિશેષ અથવા
નામઃ=જીવપરિણામઃ તેન સહ નિયત્તં=નિષિક્તમ્—કર્મદલિકાતુભવનાર્થં વહુલ્પા-
લ્પતરક્રમેણ વ્યવસ્થાપિતં યદાયુસ્તન્ । ઉક્તં ચ—

“ મોતૂગ સગમવાહં, પઠમાણ ઠિર્ફે વહુતરં દવ્વં ।

સેસે ત્રિસેપહીણં, જાવુકોસંતિ સવ્વાસિ ॥૧॥”

આયુક્તા જો વન્ધ-નિષેક-પ્રતિ સમય વહુહીન હીનતર-કર્મદલિકાકે
અનુભવકે લિધે રચનાવિશેષ હૈ, વહ આયુર્વન્ધ હૈ, વહ વન્ધ જો છ
પ્રકારકા કહા હૈ, ઉલ્લકા આવ એસા હૈ, એકેન્દ્રિય જાતિકે
ભેદસે જાતિ પાંચ પ્રકારકી હૈ વહ જાતિહી નામ હૈ, સાપ્ર કર્મકા ઉત્તર
પ્રકૃતિયોમેકા એક ભેદ હૈ, અથવા જીવકે પરિણામકા નામ નામહૈ, હસ
જાતિરુપ નામકે સાથ જીવકે પરિણામકે સાથ વા જાતિકર્મકે સાથ
જો આયુ નિષિક્ત હૈ કર્મદલિકાકે અનુભવકે લિધે વહુ અલ્પ અલ્પતરકે
ક્રમસે વ્યવસ્થાપિત હૈ, વહ જાતિનામ નિધત્તાયુ હૈ । કહા મી હૈ—

આયુષો વે વન્ધ—નિષેક પ્રતિસમય વહુ હીન હીનતર કર્મદલિકાના
અનુભવનને માટે વે સ્થાનાવિશેષ છે, તેનું નામ આયુર્વન્ધ છે. તે વન્ધના
વે છ પ્રકારો પાડવામાં આવ્યા છે તેમનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે.

એકેન્દ્રિય આદિના લેહથી જાતિ પાંચ પ્રકારની છે. તે જાતિ જ નામ
છે જેનું એવો નામકર્મની ઉત્તર પ્રકૃતિયોનો એક લેહ છે. અથવા જીવના
પરિણામને નામ કહે છે. આ જાતિરુપ નામની સાથે, જીવના પરિણામની
સાથે અથવા જાતિનામ કર્મની સાથે વે આયુ નિષિક્ત છે—કર્મદલિકાના
અનુભવનને માટે વહુ અલ્પ અને અલ્પતરના ક્રમે વ્યવસ્થાપિત છે, તેનું
નામ જાતિનામનિધત્તાયુ છે.

छाया—मुक्त्वा स्वकामवाधां प्रथमायां स्थितौ बहुतरं द्रव्यम् ।

शेषासु विशेषहीनं यावदुत्कर्षमिति सर्वासाम् ॥१॥ इति ।

इति प्रथम आयुर्वधः ।

तथा—गतिनामनिधत्तायुः—गतिः=नरकादिका चतुर्विधा, सैव नाम=नाम-
कर्मण उत्तरप्रकृतिविशेषो नामो=जीवपरिणामो वा, तेन सह निधत्तं यदायु-
स्तदिति द्वितीयः । स्थितिनामनिधत्तायुः—स्थितिः—केनचिद् विवक्षाविषयीभूतेन
भावेन जीवेन आयुष्कर्मणा वा यत् स्थातव्यं सा स्थितिरित्युच्यते, सैव नाम=
परिणामो धर्मः स्थितिपरिणामः, तेन सह निधत्तं यदायुः=दलिकरूप तन् ।

“ सोत्तूण संगमवाहं ” इत्यादि ।

अपनी २ अबन्धाको छोड़कर प्रथम स्थितिमें बहुतर द्रव्य देना वाकी
की स्थितियोंमें विशेष २ हीन द्रव्य देना चाहिये यह क्रम समस्त कर्मोंकी
उत्कृष्ट स्थिति तकका जानना चाहिये इस प्रकारसे यह प्रथम आयुबन्ध है

गतिनामनिधत्तायु—नरकादिकके भेदसे चार प्रकारकी गति
होती है, यह गति भी नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमेंका एक भेद है,
अथवा नामसे जीव परिणाम लिया गया है, सो इस गतिनाम कर्मके
साथ अथवा गतिरूप जीव परिणामके साथ जो आयु निधत्त है, वह
द्वितीय आयुबन्ध है, स्थितिनामनिधत्तायु—जीव जिस किसी विवक्षा-
भूत भावसे अथवा आयु कर्मसे स्थित रहता है वह स्थिति है, सो
इस स्थितिरूप परिणामके साथ जो दलिकरूप आयु निधत्त है, वह

४४ पञ्च छे के “ सोत्तूण संगमवाहं ” इत्यादि—

पोतपोतानी अभाधाने छोडीने प्रथम स्थितिमां बहुतर द्रव्य देवुं
नेधये, आडीनी स्थितियोंमां विशेष विशेष हीन द्रव्य देवुं नेधये. आ क्रम
समस्त कर्मोंनी उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त लक्षणो नेधये. प्रथम आयुबन्धनुं
आ प्रकारनु स्वइय छे.

गतिनामनिधत्तायु—नारक आदिना लेहथी चार प्रकारनी गति कडी
छे. आ गति पञ्च नामकर्मनी उत्तर प्रकृतियोंना अेक लेह इय छे. अथवा
नाम द्वारा लवपरिणाम देवामां आण्युं छे. आ गतिनामकर्मनी साथे
अथवा गतिइय लवपरिणामनी साथे ने आयु निधत्त छे तेनुं नाम गतिनाम
निधत्तायु छे, अने ते आयुबन्धना भील प्रकार इय छे.

स्थितिनामनिधत्तायु—लव ने कोथ विवक्षाभूत लव इये अथवा
आयुकर्म इये स्थित रहे छे, तेनुं नाम स्थिति छे. आ स्थिति इय परि-
णामनी साथे ने दलिक इय आयु निधत्त छे, तेने त्रील प्रकारने आयुबन्ध

यद्वाऽत्र सूत्रे जातिनामगतिनामावगाहनानामग्रहणात् जातिगत्यवगाहनानां प्रकृति-
मात्रगुक्तम् । स्थिति प्रदेशानुभावनामग्रहणात् जातिगत्यवगाहनानामेव स्थिति-
प्रदेशानुभागा उक्ताः । स्थित्याद्यस्तु जात्यादिनाम सम्यन्वित्वान्नामकर्मरूपा
एवेति नाम शब्दः सर्वत्र कर्मार्थो बोध्यः । इत्थं च स्थितिरूपं नाम, कर्मस्थिति
नाम, तेन सह निश्चितं तदायुस्तत् स्थितिनाम निश्चितायुरिति तृतीयः । अवगाहना
नाम-निधत्तायुः-अवगाहने जीवोस्तिष्ठति यस्यां साऽवगाहना औदारिकादि शरीरं,
तस्या नाम=नामकर्म-अवगाहना नाम-औदारिकादि शरीर नामकर्मैत्यर्थः तेन सह

तृतीय आयुबन्ध है, अथवा इस सूत्रमें जातिनाम गतिनाम और
अवगाहना नाम इनके ग्रहणसे जाति, गति और अवगाहना इनको
प्रकृतिबन्ध मात्र कहा गया है और स्थिति नाम प्रदेश नाम एवं
अनुभाव नाम, इनके ग्रहणसे जाति गति और अवगाहना इनकेही
स्थितिबन्ध प्रदेशबन्ध अनुभावबन्ध कहे गये हैं । क्योंकि स्थिति आदि
बन्ध जाति आदि नामके साथ सम्बन्धवाले होते हैं, इसलिये वे नाम-
रूप अर्थात् कर्मरूपही होते हैं, अतः नाम शब्द सर्वत्र कर्म अर्थवाला
जानना चाहिये इस तरह स्थितिरूप जो नाम है, -कर्म है, वह स्थिति
नाम है, इस स्थितिरूप कर्मके साथ जो आयु निश्चित होनी है, वह
स्थितिनामनिश्चितायु है, इस प्रकारका यह तृतीय बन्ध है, जीव जिसमें
अवगाहिन होता है, वह अवगाहना है, ऐसी अवगाहना औदारिकादि
शरीररूप होनी है, इसका जो नाम है, -नामकर्म है, वह अवगाहना

कहे छे अथवा आ सूत्रमां जातिनाम, गतिनाम अने अवगाहनानामना
ग्रहण द्वारा जाति, गति अने अवगाहनानाम प्रकृतिबन्ध न मात्र ग्रहण
करायो छे, अने स्थितिनाम, प्रदेशनाम, अने अनुभावनामना ग्रहण द्वारा
जाति, गति अने अवगाहनानाम न स्थितिबन्ध, प्रदेशबन्ध, अने अनुभाव-
बन्ध कहेवामां आया छे, कारण के स्थिति आदि बन्ध जाति आदि नामनी
साथे संबन्धवाला होय छे, तेथी तेआ नाम रूप अट्टवे के कर्मरूप न होय
छे. तेथी नाम पदने सर्वत्र कर्म अर्थवाणुं न समजवुं लेधये. आ रीते
स्थिति रूप ने नाम (कर्म) छे, ते स्थितिनाम छे आ स्थितिरूप कर्मनी
साथे ने आयु निश्चित होय छे तेने स्थितिनामनिश्चितायुकहे छे.
आ प्रकारने आ त्रीने आयुबन्ध छे.

अवगाहनानामनिश्चितायु—एव नेमां अवगाहित (रहेवो) होय
छे, ते अवगाहना छे, ओवी अवगाहना औदारिक आदि शरीर रूप होय छे.

निधत्तं यदायुस्तत् । इति चतुर्थः । प्रदेशनामनिधत्तायुः—प्रदेशानाम्=आयुष्कर्म-द्रव्याणां नाम=तथाविधः परिणामः प्रदेशानाम्, यद्वा-प्रदेशरूपं नाम=कर्म-विशेषः प्रदेशनाम, तेन सह निधत्तं यदायुस्तदिति पञ्चमः । तथा-अनुभावा-नामनिधत्तायुः—अनुभावः=आयुर्द्रव्याणामेव विपाकः, तद्रूपो नाम=परिणामः—अनुभावनाम, यद्वा-अनुभावरूपं नाम=नामकर्म-अनुभावनाम, तेन सह निधत्तं यदायुस्तदिति षष्ठं आयुर्बन्धः । ननु किमर्थं जात्यादि नामकर्मणाऽऽयुर्विशिष्यते ?

नाम है, यह अवगाहना नाम औदारिक आदि शरीर नामकर्म रूप होता है, इस औदारिक शरीर नामकर्मके साथ निधत्त जो आयु है, वह अवगाहना नामनिधत्तायु है ४ प्रदेशनाम निधत्तायु-आयुष्कर्म कर्मद्रव्यरूप प्रदेशोंका जो तथाविध परिणाम है, वह प्रदेश नाम है यद्वा-प्रदेशरूप जो नामकर्म विशेष है, वह प्रदेशनाम है, इसके साथ जो आयु निधत्त है, वह प्रदेशनाम निधत्तायु है ५ अनुभावनाम निधत्तायु ६-आयु द्रव्योंकाही जो विपाक है, उसका नाम अनुभाव है, इस अनुभाव रूप जो नाम परिणाम है, वह अनुभावनाम है, यद्वा-अनुभावरूप नाम नामकर्म है, वह अनुभावनाम है, इस अनुभाव नामके साथ निधत्त जो आयु है वह अनुभावनाम निधत्तायु है, इस प्रकारसे यह छठा आयुबन्ध है ।

शंका—जात्यादि नाम कर्मद्वारा आयुको विशेषित क्यों किया गया है ? आयुके द्वाराही जात्यादि नामों को विशेषित करना चाहिये था ।

तेतुं ने नाम (नाम कर्म) छे तेतुं नाम अवगाहना नाम छे. आ अवगाहना नाम औदारिक आदि शरीर नामकर्म रूप छे. आ औदारिक शरीर नामकर्मनी साथे निधत्त ने आयु छे तेने अवगाहना नाम निधत्तायु कडे छे.

प्रदेशनाम निधत्तायु—आयुष्कर्म कर्म द्रव्य रूप प्रदेशोतुं ने तथाविध परिणाम छे तेने प्रदेशनाम कडे छे. तेनी साथे ने आयु निधत्त छे तेने प्रदेशनाम निधत्तायु कडे छे.

अनुभाव नाम निधत्तायु—आयु द्रव्योना ने ने विपाक छे तेतुं नाम अनुभाव छे आ अनुभाव रूप ने नाम (कर्म) परिणाम छे तेने अनुभाव नाम कडे छे अथवा अनुभाव रूप ने कर्म छे तेने अनुभाव नामकर्म कडे छे. ते अनुभाव नामनी साथे निधत्त ने आयु छे तेने अनुभाव नाम निधत्तायु कडे छे. आ प्रकारतुं छुका आयुबन्धतुं स्वरूप छे.

शंका—जाति आदि नामकर्म द्वारा आयुने विशेषित था भाटे करवासां

આયુષ્યેવ જાત્યાદિનામ વિશિષ્યતામ્ ? इतिचेदाह-आयुषः प्राधान्यख्यापनार्थमेव जात्यादि नामकर्मणा तद् विशिष्यते । प्राधान्यं च तस्य नारकादि भवोपग्राहि-
त्वात् । न हि नारकाद्यायुरुद्याभावे तज्जातिनामकर्मणामुदयसंभवः । अत-
एवोक्तं व्याख्याप्रज्ञप्त्याम्—(भग० श० ६ उ० ७)

“ नेरइएणं भंते ! नेरइएसु उववज्जइ ? अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ ? गोयमा !
नेरइए नेरइएसु उववज्जइ । नो अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ । ”

છાપા—નૈરયિકઃ સ્વલુ ભદન્ત ! નૈરયિકેષૂપપવતે ? અનૈરયિકો નૈરયિકેષુ
ઉપપવતે ? ગૌતમ ! નૈરયિકો નૈરયિકેષૂપપવતે, નો અનૈરયિકો નૈરયિકેષૂપપ-
વતે इति 'अयं भावः—जीवो नरकायुः संवेदनप्रथमसमय एव नारक इत्युच्यते ।
तत्सहचारिणां च पञ्चेन्द्रिय जात्यादि नामकर्मणामप्युदयो भवतीति । इह आयु-

૭૦—આયુક્તી પ્રધાનતા દિશ્વાનેકે લિયે પ્રકટ કરનેકે લિયેહી
જાત્યાદિ નામકર્મ દ્વારા ઉસે વિશેષિત ક્રિયા ગયા હૈ, કયૌંકિ નારકાદિ
ભવોપગ્રાહી હોનેસે હસમે પ્રધાનતા હૈ, નારકાદિ આયુકે ઉદયકે અર્ભો-
વમે તજ્જાતિકર્મોંકા ઉદય નહીં હોતા હૈ, યહી ચાત વ્યાખ્યાપજ્ઞસિમે
હસ પ્રકારસે કહી ગઈ હૈ (ભગ. શ ૬ ઉદે ૮)

“ नेरइएणं भंते ! नेरइएसु उववज्जइ ? अनेरइए नेरइएसु उव-
वज्जइ ? गोयमा ! नेरइए नेरइएसु उववज्जइ नो अनेरइए नेरइएसु
उववज्जइ ” इसका भाव ऐसा है—जीव नरकायु संवेदनके प्रथम सम-
यमेंही नारक ऐसा कहाने लगता है, क्योंकि उसके सहचारी जो पञ्चे-

કરવામાં આવ્યું છે ? આયુ દ્વારા જ જ્ઞતિ આદિ નામકર્મોંને વિશેષિત
કરવા ભેદતા હતા.

ઉત્તર—આયુની પ્રધાનતા પ્રકટ કરવાને માટે જ જ્ઞત્યાદિ નામકર્મ
દ્વારા તેને વિશેષિત કરવામાં આવેલ છે, કારણ કે નારકાદિ ભવોપગ્રાહી
હોવાથી તેમાં પ્રધાનતા છે. નારકાદિ આયુના ઉદયનો અભાવ હોય તો
તજ્જાતિ (તે જ્ઞતિ) નામકર્મોંનો ઉદય સંભવી શકેનો નથી. આ વાતનું
ભગવતી સૂત્રના છઠ્ઠા શતકના આઠમાં ઉદ્દેશામાં આ પ્રમાણે પ્રતિપાદન
કરવામાં આવ્યું છે.—

“ नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जइ ? अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ ?
गोयमा ! नेरइए नेरइएसु उववज्जइ नो अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ ”

આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જીવ નરકાયુ સંવેદનના પ્રથમ
સમયે જ નારક તરીકે ઓળખાવા લાગે છે, કારણ કે તેના સહચારી જે

वन्धस्य पड्विधमुपक्रम्य यदायुषः पड्विधत्वमुच्यते, तत् आयुषोवन्धाव्यतिरे-
काद् बद्धस्य चैत्रायुष आयुर्वर्षपदेशविषयत्वादिति । इत्थं सामान्यतः पड्विध-
मायुर्वन्धमभिधाय सम्प्रति तमेव नारकादिजीवाश्रितत्वेन प्राह—‘नेरइयाणं’
इत्यादि । नैरयिकादि वैमानिकान्तानामेकस्य आयुर्वन्धः पूर्वोक्तः पड्विधो
बोध्यः । तथा—नैरयिकाजीवाः नियमात् षणमासावशेषायुष्काः—षणमासा अव-
शेषाः=अवशिष्टा यस्मिस्तादृशमायुर्येषां ते तथाभूताः सन्तः परभयिकायुष्कं=
परभवसम्बन्धिकम् आयुः प्रकुर्वन्ति=वधन्ति । एवमेव असुरकुमारादिस्तनितकु-
मारान्ता भवनवासिनो देवा अपि बोध्याः । असंख्येयवर्षायुष्काः संज्ञिपञ्चेन्द्रिय-

न्द्रिय जात्यादि नाम कर्म हैं, उनका भी उद्घष उस समय जीवको हो
जाता है, आयुवन्धमें षट्विधताका उपक्रम करके जो आयुमें षट्विधता
कही है, वह आयुवन्धसे अभिन्न होनेके कारण कही गई है, क्योंकि
बद्ध आयुमेंही आयुका व्यपदेश होता है, इस प्रकार सामान्यतः छ
प्रकारके आयुवन्धका कथन करके अब उसी वन्धका कथन नारकादि
जीवोंका आश्रित करके सूत्रकार करते हैं “नेरइयाणं छविवहे आउय-
बंधे०” इत्यादि । नैरयिकसे लेकर वैमानिक तकके एक २ जीवका
आयुवन्ध पूर्वोक्त रूपसे ६ छह प्रकारका होना है, तथा—नैरयिक जीव परि-
श्रमसे जब उनकी आयु ६ छहमासकी शेष रह जाती है, तब परभवकी
आयुका वे वन्ध करते हैं । इस तरहसे आयुवन्धका यह कथन असुर
कुमारसे लेकर स्तनितकुमारों तकमें जानना चाहिये तथा असंख्यात
वर्षकी आयुवाले संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च भी नियमसे जब उनकी आयु

पञ्चेन्द्रिय जात्यादि नामकर्म छे तेमनो पणु ते समये लवमां उदय थणं नय
छे. आयुवन्धमां पद विधता (छ प्रकारता) नो उपक्रम करीने अ.युमां न
पद विधता कही छे ते आयुवन्धधी अलिप्त होवाने कारणे कही छे. कारणे
के अद्ध आयुमां न आयुनो व्यपदेश थय छे आ प्रकारे छ प्रकारता आयु-
वन्धतुं सामान्य रूपे कथन करीने हवे सूत्रकार नारकादि लवने, आश्रित
करीने अ न वन्धतुं कथन करे छे.

“नेरइयाणं छविवहे आउयबंधे” इत्यादि—

नारकधी लघने वैमानिक पर्यन्तना प्रत्येक लघने आयुवन्ध पूर्वोक्त
छ प्रकारनो होय छे. न्यारे नारक लघतुं छ मासतुं आयुव्य भाडी रहे
त्यारे ते नियमधी न परभवने वन्ध करे छे आयुवन्धतुं ‘आ प्रकारतुं’
कथन असुरकुमारधी लघने स्तनितकुमारो सुधीना लवने पणु लागु पडे छे.

તિર્યગ્યોનિકાઃ પૂર્વમદેવ । અસંખ્યેયવર્ષાણુકાઃ સંજ્ઞિન एव भवन्तीति संज्ञिग्रहण-
 मंत्र नियमार्थं बोध्यम्, न त्वपञ्जिनां व्यवच्छेदार्थम्, असंज्ञिनामसंख्येयवर्षाणु-
 ष्कत्वाभावादिति । एवमेव — युगलापेक्षया असंख्येयवर्षाणुष्काः संज्ञि मनुष्या
 व्यन्तरा ज्योतिष्का वैमानिका अपि बोध्या इति ।

उक्तं चात्र गाथाद्वयम्—

“ निरइसुरअसंखाऊ, तिरिणणुआ सेसए उ छम्मासे ।

इगत्रिगला निरुक्कप,—तिरिणणुआ आउयत्तिभागे ॥ १ ॥

अत्रसेसा सोवक्कम—तिभाग नवभाग संत्तवीसइमे ।

વંધંતિ પરમવાઉં, નિયમશ્રવે સ્વજીરા ઉ ॥ ૨ ॥ ”

છાયા—નિરયિસુરા અસંખ્યાયુપસ્થિતિર્યગ્મનુષ્યાઃ શેષકે તુ ષમ્માસે ।

एकत्रिकलाः निरूपक्रमतिर्यगमनुजाः आयुषस्त्रिभागे ॥ १ ॥

अत्रशेषाः सोपक्रमास्त्रिभागे नवभागे सप्तविंशतितमे ।

વધ્નન્તિ પરમયાયુઃ નિજરૂમવે સર્વજીવાસ્તુ ॥ ૨ ॥ इति ।

છહ સાહકી ઢાકી રહતી હૈ, નષ પરમવકી આયુકા ઘન્વ કરતે હૈ ।
 અસંખ્યાત વર્ષકી આયુવાલે સંજ્ઞીહી જીવ હોતે હૈં ઇસલિયે “સંજ્ઞિગ્રહણ”
 યહ યહાં નિયમર્થ હૈ, એસા જાનના ચાહિયે અસંજ્ઞિયોંકી નિવૃત્તિકે
 લિયે નહોં ક્યોંકિ અસંજ્ઞિયોંકી આયુ અસંખ્યાત વર્ષકી નહોં હોતી
 હૈ, ઇસી તરહ યુગલિયોંકી અપેક્ષાસે અસંખ્યાત વર્ષકી આયુવાલે
 સંજ્ઞી મનુષ્ય વ્યન્તર જ્યોતિષ્ક ઓર વૈમાનિક બી જાનના ચાહિયે ઇસ
 વિષયમેં દો ગાથાઈં ઇસ પ્રકાર કહી ગઈં હૈ—

“ નિરइसुरअसंखाऊ ” इत्यादि ।

અસંખ્ય ત વર્ષના આયુષ્યવાળા સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય તિર્યંચો પણ બ્યારે તેમનું
 છ માસનું આયુષ્ય બાકી રહે છે ત્યારે પરલવના આયુને બન્ધ કરે છે.
 સંજ્ઞી જીવોનું આયુષ્ય જ અસંખ્યાત વર્ષોનું હોય છે તેથી “ સંજ્ઞિગ્રહણ ”
 આ પદ અહીં નિયમ દર્શાવવા માટે વપરાયું છે અસંજ્ઞીઓની નિવૃત્તિને
 માટે આ પદ વપરાયું નથી. કારણ એ અસંજ્ઞીઓનું આયુષ્ય અસંખ્યાત
 વર્ષનું હોતું નથી.

એ જ પ્રમાણે યુગલીયોઓ, અસંખ્યાત વર્ષના આયુવાળા સંજ્ઞી મનુષ્યો
 વ્યન્તર, જ્યોતિષ્કો, અને વૈમાનિકો વિષે પણ સમજવું. આ વિષયને અનુ-
 લક્ષીને નીચે પ્રમાણે બે ગાથાઓ આપવામાં આવી છે : “ નિરइसुरअसंखाऊ ”
 ઇત્યાદિ. આ ગાથાઓનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

અયં માત્રઃ-નૈરચિક્ષાઃ સુરા અસંસ્થાપુપસ્તિર્યમ્નુષ્યાશ્ચ આયુષઃ પળ્માસૈ
 અવશિષ્ટે સતિ નિજક્રમવે-અસ્મિન્ ભવે પરમવિક્રાયાયુ વધનન્તિ । એકેન્દ્રિયાઃ
 વિકલેન્દ્રિયાઃ નિરુપક્રમાસ્તિર્યશ્ચો મનુષ્યાશ્ચ આયુષસ્ત્રિભાગે-તૃતીયે ભાગેઽવશિષ્ટે
 સતિ નિજક્રમવે પરમવિક્રાયાયુર્વધનન્તિ । અવશેષાઃ-પૂર્વોક્તેભ્યોઽવશિષ્ટાઃ સોપ-
 ક્રમા જીવાસ્તુ આયુષસ્તૃતીયે ભાગે નવમે ભાગે સપ્તવિંશતિતમે ભાગે વા નિજક્રમવે
 પરમવિક્રાયાયુર્વધનન્તિ । इत्थं सर्वे जीवा निजकमवे परमविक्रायुर्वधन्तीति ।
 કેચિત્તુ અગ્રમેવાર્થમેવં વદન્તિ, તથાદિ-इह तिर्यङ्मनुष्याः स्वतीयायुपस्तृतीयवि-
 भागेऽवशिष्टे सति परमविक्रायुर्वद्धुं योग्या भवन्ति । देवा नारकास्तु स्वायुषः
 પળ્માસૈઽવશિષ્ટે સતિ તથા ભવન્તિ । તત્ર તિર્યઙ્મનુષ્યાઃ સ્વાયુષસ્તૃતીયત્રિભાગેઽ

इनका मात्र हस प्रकारसे है-नैरयिक सुर और असंख्यात वर्षकी
 आयुवाले तिर्यञ्च एवं मनुष्य अपने वर्तमान भवमेंही जब उनकी आयु
 ६ छह माहकी शेष रह जाती है, परमकी आयुका बन्ध करतेहैं, तथा
 एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय निरुपक्रमायुवाले तिर्यञ्च और मनुष्य ये स्व
 अवशिष्ट आयुके तृतीय भागमें परभवकी आयुका बन्ध करते हैं ।
 तथा इनसे जो अवशिष्ट जीव हैं-सोपक्रमायुवाले जीव हैं वे तो आयुके
 तृतीय भागमें नौवें भागमें अथवा सत्ताईसवें भागमें परभवकी आयुका
 बन्ध करते हैं । किन्तुक इस अर्थको इस प्रकारसे कहते हैं कि तिर्यञ्च
 एवं मनुष्य अपनी आयुके त्रिभागमें परभवकी आयुका बंध करनेके
 योग्य होते हैं, परन्तु देव और नारकी अपने आयुके ६ छह माह बाकी
 रहने पर परभवकी आयुको बांधनेके योग्य होते हैं, तिर्यञ्च और

નારકો, દેવો અને અસંખ્યાત વર્ષના આયુષ્યવાળા તિર્યંચો અને
 મનુષ્યોના વર્તમાન લવતુ છ માસનું આયુષ્ય બાકી રહે છે ત્યારે તેઓ
 પરલવના આયુનો બન્ધ કરે છે. એકેન્દ્રિયો, વિકલેન્દ્રિયો, નિરુપક્રમ આયુ-
 વાળા તિર્યંચો અને મનુષ્યો, આ બધા જીવો અવશિષ્ટ (બાકી રહેલા)
 આયુના ત્રીજા ભાગમાં પરલવના આયુનો બન્ધ કરે છે. તથા તે સિવાયના
 સોપક્રમાયુવાળા જે જીવો છે તેઓ આયુના ત્રીજા ભાગમાં, નવમાં ભાગમાં,
 અથવા સત્યાવીસમાં ભાગમાં પરલવના આયુનો બન્ધ કરે છે. કેટલાક આ
 વિષયને અનુલક્ષીને એવું કહે છે કે તિર્યંચો અને મનુષ્યો પોતાના આયુ-
 ષ્યના ત્રીજા ભાગમાં પરલવના આયુનો બન્ધ કરે છે, પરન્તુ દેવો અને
 નારકોના આયુષ્યના છ માસ બ્યારે બાકી રહે છે ત્યારે તેઓ પરલવના
 આયુનો બન્ધ કરતા હોય છે. જે તિર્યંચ અને મનુષ્ય પોતાના આયુના

वक्षिष्टे यदि परभविकायुर्न वध्नन्ति, तदा पुनस्ते तृतीयत्रिंशत्तमस्य तृतीयत्रिंशत्तमस्य वक्षिष्टे सति परभविकायुर्वध्नन्ति । एवं तावत् संक्षिप्तं त्वायुर्यावत् सर्वजघन्योऽन्त-
र्मुहूर्त्तात्मक आयुर्वन्धकाल उत्तरकालश्च शेषस्तिष्ठति, इह तिर्यङ्मनुष्याः परमवि-
कायुर्वध्नन्ति । अथ चासंक्षेपकाल उच्यते तदुत्तरं संक्षेपाभावात् । तथा—देवा-
नैरयिकाश्च स्वायुषः पण्मासे शेषे सति यदि परभविकायुर्न वध्नन्ति, तदा ते
स्वकीयायुषः पण्मासशेषं तावत् संक्षिपन्ति यावत्सर्वजघन्योऽन्तर्मुहूर्त्तात्मक आयु-

मनुष्य यदि अपनी आयुके त्रिभागमें भां परभवकी आयुका बंध नहीं
कर पाते हैं तो फिर वे उस अवशिष्ट त्रिभागके तृतीय भागमें पर-
भवकी आयुका बंध करते हैं, इस तरहसे उनकी आयु तब तक संक्षिप्त
होनी जावेगी जबतक उनकी आयुका काल अन्तर्मुहूर्त्त कालमें नियमसे
उन्हें परभवकी आयुका बंध होना है । इस कालको असंक्षेप काल
कहा गया है, क्योंकि इसके बाद आयुके संक्षेप होनेका अभाव है,
तथा—देव और नैरयिक अपनी आयुके ६ मास शेष रहने पर भी यदि पर-
भवकी आयुका बंध नहीं कर पाते हैं, तो वे अपनी आयुके पण्मासरूप
शेषको इतना संक्षिप्त करते हैं, कि जब तक उसमें सर्व जघन्य अन्त-
र्मुहूर्त्तात्मक आयुपन्ध काठ बाकी बचा रहना है, इसमें वे नियमसे
परभवकी आयुका बंध कर लेते हैं । तात्पर्य कहनेका यह है, कि तिर्यञ्च
और मनुष्य अपनी आयुके त्रिभागमेंही आयुका बंध करते हैं, तथा
देव एवं नारकी तथा असंख्यात वर्णवाले युगान्तिक मनुष्य अपनी

त्रिभागमां पण् परलवना आयुनेो अन्ध करी ले नडीं तो तेओ अवशिष्ट
त्रिभागना तृतीय भागमां परलवना आयुनेो अन्ध करी ले छे. - आ प्रकारे
तेमना आयुष्यनेो काण अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण् भाडी रडी जय त्यां सुधी तेमनुं
आयुष्य संक्षिप्त थतुं नशे. आ भाडी रडेला अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण् काणमां
तो ते परलवना आयुनेो अन्ध अवश्य करे छे. आ काणने असंक्षेप काण
कही छे, काश्चु के त्पार भाड आयुनेो संक्षेप थवानेो अलाव रडे छे. तथा
नारक अने देवो न्यारे तेमनुं छ मासनुं आयुष्य भाडी रडे त्पारे पण्
परलवना आयुनेो अन्ध करी न ले, तो तेओ पोताना आयुना छ मास
रूप शेषकाणने ओटलो संक्षिप्त करी ले छे के आणरे तेमां ओछाभां ओछो
अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण् आयुअन्धकाण न भाडी रडी जय छे. त्पारे तेओ नियमथी
न परलवना आयुनेो अन्ध करी ले छे. आ कथननेो भावार्थ नीचे प्रमाण्छे—

तिर्यञ्च अने मनुष्य पोताना आयुना त्रिभागमां न परलवना आयुनेो
अन्ध करे छे, तथा देवो, नारको अने असंख्यात वर्णना आयुवाणा युग

बन्धकाल उत्तरकालश्च शेषो भवति । अत्र परभविकायुर्देवा नैरयिकाश्च बध्नन्तीत्य-
यमसंक्षेपकाल इति ॥ सू० ६२ ॥

पूर्वसूत्रे आयुर्कर्मबन्ध उक्तः । आयुस्तु औदयिकभावहेतु भवन्तीत्यौदयिक-
भावं, तत्साधर्म्यच्छेषान् भावांश्च निरूपयितुमाह—

मूलम्-छविद्वहे भावे पण्णत्ते, तं जहा-ओदइए १, उवस-
मिए २, खइए ३, खओवसमिए ४, पारिणामिए ५, सन्निवा-
इए ६ ॥ सू० ६३ ॥

छायाः—पञ्चविधो भावः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—औदयिकः १, औपशमिकः २,
क्षायिकः ३, क्षयोपशमिकः ४, पारिणामिकः ५, सान्निपातिकः ॥ सू० ६३ ॥

आयुके ६ छह धाम शेष रहने पर परभवकी आयुका बंध करते हैं परन्तु-
यदि इतने पर भी परभवकी आयुका उन्हें बंध न हो पावे तो नियमसे
आयुके अन्तर्मुहूर्त्त काल बाकी रहने पर वे उसमें परभवकी आयुका
बन्ध कर लेते हैं ॥ सू० ६२ ॥

इस ऊपरके सूत्रमें आयुष्क कर्मका बंध कहा आयुष्यकर्म औदयिक
भाव है, हेतु जिसका ऐसा होता है, इसलिये अब सूत्रकार औदयिक
भावकी और औदयिक भावके साधर्म्यसे शेष भावोंकी निरूपणा करते हैं

“छविद्वहे भावे पण्णत्ते” इत्यादि सूत्र ६३ ॥

भाव छह प्रकारके कहे गये हैं, जैसे—औदयिक भाव १
औपशमिक भाव २ क्षायिक भाव ३ क्षयोपशमिक भाव ४ पारिणा-
मिक भाव ५ और सन्निपातिक भाव ६ ।

दिके तेमना आयुष्यना छ भास भाडी रडे त्यारे परलवना आयुने अन्ध
करे छे. परन्तु जे तेजो ते वणते परलवना आयुने अन्ध न करे, तो
न्यारे तेमनु अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाण आयु भाडी रडे त्यारे तो तेजो परलवना
आयुने अन्ध अवश्य बांधे छे. ॥ सू. ६२ ॥

आगला सूत्रमां आयुष्ककर्मना अन्धतुं निरूपण करवामां आणुं.
औदयिकभाव आयुष्ककर्ममां कारणुभूत अने छे, तेथी डवे सूत्रकार औदयिक
भावनी अने औदयिक भावना साधर्म्यनी अपेक्षाजे भाडीना भावोनी प्ररूपणा
करे छे—“ छविद्वहे भावे पण्णत्ते ” इत्यादि—

भावपरिष्ठाभना नीचे प्रमाणे ६ प्रकार कहा छे—(१) औदयिक भाव
(२) औपशमिक भाव, (३) क्षायिकभाव, (४) क्षयोपशमिक भाव, (५)
पारिष्ठाभिक भाव अने (६) सान्निपातिक भाव.

ટીકા—‘ છવ્વિહે ’ इत्यादि—

भावः—मवन्नं भावः पर्यायः—पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—औद्ययिकः, औपश-
मिक इत्यादि । तत्र—औद्ययिकः—उदय उदयनिष्पन्न^२वेति द्विविधः । तत्र—उदयः—
अष्टानां ज्ञानावरणीयादि कर्मगृहीतीनामुदयः—उपशान्तावस्थां परित्यज्य उदीर-
णावलिकामतिक्रम्य उदयावलिकायामात्मीयरूपेण विपाक इत्यर्थः । औद्ययिक
निष्पन्नस्तु कर्मोदयजनितो जीवस्य मनुष्यत्वादिपर्यायः ॥ १ ॥ तथा—औपश-
मिकः, अयम् उपशमोपशमनिष्पन्नभेदेन द्विविधः । तत्र—उपशमः—उपशमश्रेणीग-
तस्य जीवस्य अष्टाविंशतिविधमोहनीयकर्मोदयाभावः । उपशमनिष्पन्नस्तु उपशा-
न्तक्रोधाद्युपशान्तकषायच्छन्नस्थवीतरागान्तः । अयं तु मोहनीयकर्मण उदयाभाव-

इनमें जो भाव कर्मोदयसे निष्पन्न होना है, वह औद्ययिक भाव
है, यह औद्ययिक भाव उदयरूपसे और उदय निष्पन्न रूपसे दो प्रका-
रका है, इनमें जो आठ ज्ञानावरणीय आदि कर्म प्रकृतियोंका उदय
है—उपशान्तावस्थाको छोड़ कर उदीरणावलिकाको अतिक्रमण कर उदया-
वलिकामें जो आत्मीयरूपसे विपाक है, वह उदय है, वह उदय रूप
औद्ययिक भाव है, तथा कर्मोदयजन्य जो मनुष्यत्व आदि पर्याय हैं
वे उदयनिष्पन्न औद्ययिक भाव हैं औपशमिक भावकी उपशमरूप और
उपशम निष्पन्न रूपसे दो प्रकारका होना है, इनमें उपशम श्रेणी पर
आरूढ हुए जीवके जो २८ प्रकृतिरूप मोहनीय कर्मके उदयका अभाव
है, वह उपशमरूप औपशमिक भाव है, तथा उपशान्त कषायरूप ११ प्रकार
वां जो छन्नस्थ वीतराग भाव है, वह उपशम निष्पन्न औपशमिक भाव

ને ભાવ કર્મોદયથી નિષ્પન્ન થાય છે, તે ભાવને ઔદયિક ભાવ કહે છે.
તે ઔદયિક ભાવના બે પ્રકાર છે—(૧) ઉદય રૂપ પ્રકાર, (૨) ઉદય નિષ્પન્ન
રૂપ પ્રકાર જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મ પ્રકૃતિઓનો જે ઉદય છે-ઉપશાન્તા-
વસ્થા છોડીને ઉદીરણાવસ્થાનુ અતિક્રમણ કરીને ઉદયાવલિકામાં જે આત્મીય
રૂપે વિપાક છે, તેનું નામ ઉદય છે અને તે ઉદય રૂપ ઔદયિક ભાવ હોય
છે. તથા કર્મોદય જન્ય જે મનુષ્યત્વ આદિ જે પર્યાયો છે, તેનું નામ ઉદય
નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવ છે.

औपशमिक भावना પણ उपशम રૂપ અને ઉપશમ નિષ્પન્ન રૂપ બે
પ્રકાર હોય છે. ઉપશમ શ્રેણી પર આરૂઢ થયેલા જીવમાં જે ૨૮ પ્રકૃતિ રૂપ
મોહનીય કર્મના ઉદયનો અભાવ છે, તે ઉપશમ રૂપ ઔપશમિક ભાવ છે.
તથા ઉપશાન્ત કષાય રૂપ ૧૧ મો જે છન્નસ્થ વીતરાગભાવ છે, તે ઉપશમ

फलरूप आत्मपरिणामो बोध्य इति ॥ २ ॥ तथा-क्षायिकः, अयं क्षयः क्षयनिष्पन्न^२वेति द्विविधः । तत्र-क्षयः-ज्ञानावरणादिभेदानाम् अष्टानां कर्मप्रकृतीनां नाशः, कर्माभाव इत्यर्थः । क्षयनिष्पन्नस्तु-ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मप्रकृत्यभावजनितः केवलज्ञानदर्शनचारित्रादिरूपो विचित्रभात्मपरिणाम इति ॥ ३ ॥ तथा-क्षयोपशमिकः, अयं-क्षयोपशमः क्षयोपशमनिष्पन्न^२वेति द्विविधः । तत्र-क्षयोपशमः-केवलज्ञानप्रतिबन्धकानां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयान्तरायाणां चतुर्णां घातिकर्मणां क्षयोपशमः । उदीर्णस्य क्षयोऽनुदीर्णस्य च विपाकमधिकृत्य उपशमः-क्षयोपशमो बोध्यः । ननु औपशमिकोऽप्येवमेव, ततः कोऽनयो भेदः ? इति चेदाह-औपश-

है, यह मोहनीय कर्मके उदयाभाव फलरूप होता है, और ऐसा यह आत्माका परिणाम होना है । क्षायिकभाव-क्षयरूप और क्षयनिष्पन्न रूपसे दो प्रकारका होता है, ज्ञानावरणादि रूप आठ प्रकारके कर्मोंका जो क्षय है, वह क्षयरूप क्षायिकभाव है, यह क्षय कर्मोंके अभावरूप होता है, तथा ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकारके कर्मोंके क्षयसे जनित जो केवलज्ञान केवलदर्शन एवं चारित्र हैं वह क्षय निष्पन्न क्षायिक भाव है । क्षायोपशमिक भाव-यह क्षायोपशमरूप और क्षायोपशम निष्पन्न रूपसे दो प्रकारका होता है, इनमें केवलज्ञानको रोकनेवाले ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय कर्मोंका जो क्षयोपशम है, वह क्षायोपशमरूप क्षायोपशमिक भाव है, उदीर्णका क्षय और विपाककी अपेक्षा अनुदीर्णका उपशम यही क्षायोपशम कहलाता है ।

निष्पन्न औपशमिक भाव छे ते मोहनीय कर्मना उदयाभाव इत्युच्यते इत्युच्यते छे अने अत्रु ते आत्मानु परिणाम इत्युच्यते छे ।

क्षायिकभाव-क्षायिकभावना क्षयरूप अने क्षयनिष्पन्न रूप छे प्रकार पडे छे । ज्ञानावरणादि रूप आठ प्रकारना कर्मोना जे क्षय छे ते क्षयरूप क्षायिक भाव इत्युच्यते छे । अः क्षय कर्मोना अभाव रूप इत्युच्यते छे । तथा ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारना कर्मोना क्षयशी जनित जे केवलज्ञान, केवलदर्शन अने चारित्र छे, तेने क्षयनिष्पन्न क्षायिकभाव कडे छे ।

क्षायोपशमिक भाव-ते क्षयोपशम रूप अने क्षयोपशम निष्पन्न रूप छे प्रकारना इत्युच्यते छे । केवलज्ञानने रोकनारा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय अने अन्तराय, आ कर्मोना जे क्षयोपशम थाय छे तेने क्षयोपशम रूप क्षायोपशमिक भाव कडे छे । उदीर्णना क्षय अने विपाकनी अपेक्षा अने अनुदीर्णना जे उपशम थाय छे तेनु नाम जे क्षयोपशम छे ।

મિકે ઉપશાન્તસ્ય પ્રદેશાનુમત્તોડપ્યવેદનં ભવતિ, ક્ષયોપશમિકે તુ વેદનમિત્યે વાનયોર્ભેદ ઇતિ । ક્ષયોપશમો હિ ક્રિયારૂપ એવ વોધ્ય ઇતિ । ક્ષયોપશમનિષ્પન્નસ્તુ આત્મન આમિનિત્રોધિઠ્ઠાનાદિ લઘ્વિરૂપઃ પરિણામ ઇતિ ॥ ૪ ॥ તથા=

શંકા—ઔપશમિકભાવ મી એસાહી હોતા હૈ, ફિર ઇન દોનોમ્ને કયા અન્તર હૈ ?

ઉત્તર—ઔપશમિક ભાવમ્ને ઉપશાન્ત હુએ પ્રદેશોંકા વેદન નહીં હોતા હૈ, ઔપશમિક ભાવમ્ને ઉદિત ત્વા વેદન હોના હૈ, તાત્પર્ય યહ હૈ કિ ઔપશમિક ભાવમ્ને કર્મોંકા સત્તારૂપ ઉપશમ હોતા હૈ, અતઃ ઉસમ્ને નીરસ ક્રિયે હુએ કર્મદલિકોંકા-દવે હુએ કર્મદલિકોંકા વેદન નહીં હોતા હૈ, પરન્તુ ક્ષાયોપશમિકમ્ને દેશઘાતિ પ્રકૃતિયોંકા વેદન હોતા હૈ, સર્વ ઘાનિયોંમ્ને ક્લિનનિક સર્વઘાતિયોંકો ઉદ્યાભાવી ક્ષય ઔર ક્લિનનેક સર્વઘાતિયોંકા સદવસ્થારૂપ ઉપશમ રહતા હૈ, હસે દૃષ્ટાન્તસે યોં સમજના યાહિયે કિસી સેઠકે ઘર ૯નવ ચોર ચોરી કરનેકે લિયે ચલે ઇનમ્નેસે ૪ ચાર તો આઘે રાસ્તે તક આકર લૌટ ગયે ઔર ૫ પાંચ સેઠકે મકાન તક આકર વેઠ ગયે ઇનમ્નેસે ૧ એક ચોર ઉઠા ઔર સેઠ કે મકાનકે મીતર છુલ્લ ગયા ઔર ચોરી કરને લગા અવ યહાં યોં સમજ લેના યાહિયે જો ચોર ચોરી કર રહા હૈ, વહ દેશઘાનિયા પ્રકૃતિકા

શંકા—ઔપશમિક ભાવ પશુ એવો જ હોય છે, તો પછી તે બંને વચ્ચે શો તફાવત છે ?

ઉત્તર—ઔપશમિક ભાવમાં ઉપશાન્ત થયેલા પ્રદેશોનું વેદન થતું નથી અને ક્ષાયોપશમિક ભાવમાં ઉદિતનું વેદન થાય છે આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે ઔપશમિક ભાવમાં કર્મોના સત્તારૂપ ઉપશમ થાય છે, તેથી તેમાં નીરસ કરાયેલા કર્મદલિકોનું-દબાયેલા કર્મદલિકોનું વેદન થતું નથી. પરન્તુ ક્ષાયોપશમિકમાં દેશઘાતિ પ્રકૃતિઓનું વેદન થાય છે અને સર્વઘાતિ પ્રકૃતિ ઓમાંની કેટલીક સર્વઘાતિ પ્રકૃતિઓના ઉદયભાવી ક્ષય અને કેટલીક સર્વઘાતિ પ્રકૃતિઓના સદવસ્થારૂપ ઉપશમ રહે છે. આ વાતને એકે દૃષ્ટાન્ત દ્વારા સમજાવવામાં આવે છે—

નવ ચોર કોઈ શેઠને ત્યાં ચોરી કરવા ઉપડયા. તેમાંથી ચાર ચોર તો માર્ગમાંથી પાછા ફરી ગયા. બાકીના પાંચ ચોર શેઠના મકાન પાસે આવીને ઘેસી ગયા. તેમાંથી એક ચોર ઉઠ્યો. તેણે મકાનમાં દાખલ થઈને ચોરી

ઉદયહૈ, ૮ આઠમેં સે જો ચાર સાય આકર મી રાસ્તેમેંસે લૌટ ગયેહેં, વે સર્વઘાતિ પ્રકૃતિયોમેંસે કિતનેક પ્રકૃતિયોંકે ઉદયાભાવી ક્ષયરૂપ હૈ, વ્યોંકિ ઉદયાભાવી ક્ષય જો હોતા હૈ, વહ ઉદયમેં આકર ફલ દેનેરૂપ નહીં હોતા હૈ, તથા ચાર ઓર જો ચોર હૈં કિ જો મકાનકે વાહરહી બૈઠે હુએ હૈં, વે સદવસ્થા ઉપશમ રૂપ હૈં. ઇસ સમસ્ત કથનસે હમ યહી તાત્પર્ય નિકાલતે હૈં કિ જિન ભાવોંકે હોનેમેં કર્મકા ઉપશમ નિમિત્ત હોતા હૈ, વહ ઔપશમિક ભાવ હૈ, કર્મકી અવસ્થા વિશેષકા નામ ઉપશમ હૈ—જૈસે કનકાદિ (નિર્મલી ફલ) દ્રવ્યકે નિમિત્તસે જલમેંસે મલ એક ઓર હટકર બૈઠ જાતા હૈ, વૈસેહી પરિણામ વિશેષકે કારણ વિવક્ષિત કાલકે કર્મનિષેકોંકા અન્તર હોકર ઉસ કર્મકા ઉપશમ હો જાતા હૈ, ક્ષાયોપશમિક ભાવ કર્મકે ક્ષાયોપશમસે હોના હૈ, જૈસે—જલમેં કુછ મલિનતાકે દષ્ટ જાને પર ઓર કુછ મલિનતાકે ઘને રહને પર ઉસ જલમેં મલકી ક્ષીણાક્ષીણવૃત્તિ દેખી જાતીહૈ, જિસસે જલ પૂરા નિર્મલ ન હોકર સમલ (મેલવાલા) બના રહતા હૈ, વૈસેહી આત્માસે લગે હુએ કર્મકે ક્ષાયોપશમકે હોને પર જો ભાવ પ્રકટ હોના હૈ, ઉસે ક્ષાયોપ

કરવા માંડી. આ દષ્ટાન્તને અહીં આ પ્રમાણે ઘટાવી શકાય. જે ચોર ચોરી કરી રહ્યો છે તે દેશઘાતિના પ્રકૃતિના ઉદયરૂપ છે, જે ચાર ચોર રસ્તામાંથી જ પાછા ફરી ગયા છે તેઓ સર્વઘાતિ પ્રકૃતિઓમાંથી કેટલીક પ્રકૃતિઓના ઉદયાભાવી ક્ષયરૂપ છે, કારણ કે ઉદયાભાવી જે ક્ષય છે તે ઉદયમાં આવવા છતાં પણ ફલ આવવા રૂપ હોતો નથી. મકાનની બહાર બેસી રહેલા ચાર સદવસ્થા ઉપશમ રૂપ છે આ સમસ્ત કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જે ભવોની ઉત્પત્તિમાં કર્મનો ઉપશમ નિમિત્ત રૂપ હોય તે ભવોને ઔપશમિક ભાવ કહે છે. કર્મની અવસ્થા વિશેષનું નામ ઉપશમ છે.

જેમ કતક (નિર્મલી ફળ), ફટકડી આદિ દ્રવ્યના પ્રભાવથી પાણીમાં રહેલો મળ અલગ પડી જઈને નીચે બેસી જાય છે, એ જ પ્રમાણે પરિણામ વિશેષને કારણે વિવક્ષિત કાળના કર્મનિષેકોતું અન્તર પડી જઈને તે કર્મનો ઉપશમ થઈ જાય છે. ક્ષાયોપશમિક ભાવ કર્મના ક્ષયોપશમથી થાય છે. જેમ પાણીમાં રહેલી કેટલીક મલિનતા નીચે બેસી જવાથી અને કેટલીક મલિનતા તે પાણીમાં કાયમ રહેવાથી તે જલમાં મેલની ક્ષીણાક્ષીણતા ભવોમાં આવે છે અને તેને કારણે તે પાણી પૂરેપૂરું નિર્મળ દેખાવાને બદલે મળવાનું (મેલુ) જ દેખાય છે, એ જ પ્રમાણે આત્માને લાગેલાં કર્મોનો ક્ષયોપશમ

પરિણામિકઃ—પરિણમનમ્=સર્વથાઽપરિત્યક્તપૂર્વાવસ્થસ્ય યદ્ રૂપાન્તરેણ ભવનં સ
પરિણામઃ । તદુક્તમ્—

“ પરિણામો હ્યર્થાન્તરગમનં ન ચ સર્વથા વ્યવસ્થાનમ્ (સ્થિતિઃ)
ન ચ સર્વથા વિનાશઃ પરિણામસ્તદ્વિદામિષ્ટઃ ॥ ૧ ” ઇતિ ।

સ એવ પારિણામિકઃ । અયં ચ સાધનાદિભેદેન દ્વિવિધઃ । તત્ર સાદિઃ પરિ-
ણામો જીર્ણઘૃતાદીનામ્ , તદ્ભાવસ્ય સાદિત્વાત્ । અનાદિપરિણામસ્તુ ધર્માસ્તિકા-

શમિક ભાવ ક્ષહતે હૈં । ઇસ તરહસે ઇન દોનોમૈં ભેદ હૈ, ક્ષાયોપશમ
ક્રિયારૂપ હી હોતા હૈ, ઓર ક્ષાયોપશમ નિષ્પન્ન રૂપ જો ભાવ હૈ, વહ
આત્માકા આભિનિયોધિક જ્ઞાનાદિ લઙ્ઘિરૂપ પરિણામ હોતા હૈ ।

પારિણામિક ભાવ—જિસમૈં પૂર્વાવસ્થાકા સર્વથા પરિત્યાગન હોકર
રૂપાન્તરસે જો પરિગમન હોના હૈ, વહ પરિણામ હૈ કહા ખી હૈ—

“ પરિણામોહ્યર્થાન્તર ” ઇત્યાદિ ।

સર્વથા એકસી સ્થિતિમૈં રહના યહ પરિણામ નહીં હૈ, ઓર ન
સર્વથા વિનાશ હોના યહ પરિણામ હૈ, કિન્તુ એક અવસ્થાસે દૂસરી
અવસ્થામૈં આતે રહના યહી પરિણામ હૈ, યહ પરિણામહી પારિણામિક
હૈ, યહ પારિણામિક સાદિ ઓર અનાદિકે ભેદસે દો પ્રકારકા હોતા હૈ,
જીર્ણ ઘૃત આદિકા જો પરિણામ હૈ, વહ સાદિ પરિણામ હૈ, ક્યોંકિ
જીર્ણ ઘૃતાદિ હોને રૂપ જો ભાવ હૈ, અવસ્થા હૈ, વહ સાદિ હૈ, તથા-

થવાથી જે ભાવ પ્રકટ થાય છે તેને ક્ષાયોપશમિક ભાવ કહે છે આ પ્રકારનો
તે બંને વચ્ચે ભેદ છે. ક્ષાયોપશમ ક્રિયા રૂપ જ હોય છે. અને તે ક્ષાયોપશમ નિષ્પન્ન
ભાવ છે તે આત્માના આભિનિયોધિક જ્ઞાનાદિ લઙ્ઘિ રૂપ પરિણામ હોય છે.

પારિણામિક ભાવ—જેમાં પૂર્વાવસ્થાનો સર્વથા પરિત્યાગ થયા વિના
રૂપાન્તર રૂપ જે પરિણમન થાય છે તેનું નામ પણ પરિણામ છે. કથું પણ
છે કે : પરિણામો હ્યર્થાન્તર ” ઇત્યાદિ—

સર્વથા એક સરળી સ્થિતિમાં રહેવું તેનું નામ પણ પરિણામ
નથી, અને સર્વથા વિનાશ થયો તે પણ પરિણામ નથી પરન્તુ
એક અવસ્થામાંથી બીજી અવસ્થામાં આવી જવું તેનું નામ જ પરિણામ
છે. તે પરિણામ જ પારિણામિક છે. તે પારિણામિકના સાદિ અને અનાદિ
નામના બે ભેદ પડે છે. છલ્લઘૃત આદિનું જે પરિણામ છે તે સાદિ પરિણામ
છે, કારણ કે છલ્લઘૃતાદિ થયા રૂપ જે ભાવ-અવસ્થા છે તે સાદિ હોય છે.

યાદીનામ્, તદ્ભાવમ્પાનાદિત્વાદિતિ ॥ ૫ ॥ તથા—સાન્નિપાતિકઃ—સન્નિપતનમ્= ઔદયિકાદિ પચ્ચાનાં ભાવાનાં મિલનં સન્નિપાતઃ, તેન નિર્વૃત્તઃ સાન્નિપાતિકઃ । અયં ચ ઔદયિકાદીનાં પચ્ચાનાં ભાવાનાં સંભવાસંભવાપેક્ષાપરિત્યાગેન દ્વિક-ત્રિક-ચતુષ્ક-પચ્ચકસંયોગેન षઢ્વિંશતિભક્કરૂપઃ । તત્ર દશ દ્વિકસંયોગે, દશ ત્રિક-સંયોગે, પચ્ચ ચતુષ્કસંયોગે, ઁક પચ્ચકસંયોગે, ઁવં ષઢ્વિંશતિભક્કાઃ । ઁષુ ષઢ્વિં-

અનાદિ પરિણામ રૂપ અવસ્થા ધર્માસ્તિકાયાદિકોમ્ને હૈ ક્યોંકિ ધર્માસ્તિકાયાદિરૂપ જો અવસ્થા હૈ વહ ઉત્તમ્ને અનાદિ કાલસે હૈ ૫ ।

સાન્નિપાતિક—ઔદયિક આદિ પાંચ ભાવોંકા જો મિલન હૈ, વહ સન્નિપાત હૈ, હસ સન્નિપાતસે જો નિર્વૃત્ત હો ગો હૈ, વહ સન્નિપાતિક હૈ, ઁ પાંચ ભાવ સમસ્ત સંસારી જીવોંમ્ને ઁક સાથ પાયા જાવે ઁસા મી નિયમ નહોં હૈ, ઁર અજીવમ્ને મી ઁ પાંચો ભાવવાલે પર્યાય સમ્ભવ નહોં હૈ । સમસ્ત સુક્ત જીવોંમ્ને ક્ષાયિક ઁર પારિણામિક ઁ ઢો ભાવ હોતે હોં । સંસારી જીવોંમ્ને કોઈ તોન ભાવવાલા કોઈ ચાર ભાવવાલા ઁર પાંચ ભાવવાલા હોના હૈ, પર ઢો ભાવવાલા જીવ નહોં હોના હૈ, હસ તરહ ઔદયિક આદિ પાંચ ભાવોંકે સંભવ હોનેકી અપેક્ષા ઁર કિસો જીવમ્ને સંભવ નહોં હોનેકી અપેક્ષાસે દ્વિક, ત્રિક, ચતુષ્ક ઁવં પચ્ચકકે સંયોગસે ઁહ સાન્નિપાતિક ભાવ ૨૬ ભંગરૂપ હોતા હૈ, હનમ્ને દ્વિક સંયોગમ્ને ૧૦ ત્રિક સંયોગમ્ને ૧૦ ચતુષ્ક સંયોગમ્ને પાંચ ઁર

ધર્માસ્તિકાયાદિકોમાં અનાદિ પરિણામ રૂપ ભાવ અવસ્થા હોય છે, કારણ કે ધર્માસ્તિકાયાદિ રૂપ જે અવસ્થા છે તેનો તેમનામાં અનાદિકાળથી સદ્ભાવ હોય છે.

સાન્નિપાતિક ભાવ—ઔદયિક આદિ પાંચ ભાવોંતું જે મિલન છે તેનું નામ સન્નિપાત છે. આ સન્નિપાતથી જે નિર્વૃત્ત થાય છે તે સાન્નિપાતિક છે. આ પાંચે ભાવોંનો સંસારી જીવોંમાં ઁક સાથે સદ્ભાવ હોય છે, ઁવે કોઈ નિયમ નથી, અને અજીવોંમાં ષષ્ટ આ પાંચે ભાવવાળી પર્યાય સંભવિત હોતી નથી સમસ્ત મુક્ત જીવોંમાં ક્ષાયિક અને પારિણામિક, ઁ ઢો ભાવ હોય છે. સંસારી જીવોંમાં કોઈ જીવ ત્રણ ભાવવાળો, કોઈ ચાર ભાવવાળો અને કોઈ પાંચ ભાવવાળો હોય છે, પરંતુ જે ભાવવાળો કોઈ જીવ હોતો નથી. આ રીતે ઔદયિક આદિ પાંચ ભાવોંનો સંભવ હોવાની અપેક્ષા ઁ અને કોઈ જીવમાં સંભવ નહોં હોવાની અપેક્ષા ઁ દ્વિક, ત્રિક, ચતુષ્ક અને પચ્ચકના સંયોગની અપેક્ષા ઁ આ સાન્નિપાતિક ભાવ ૨૬ ભંગ રૂપ (વિકલ્પ રૂપ) હોય છે. તેમાં દ્વિક સંયોગથી ૧૦, ત્રિક સંયોગથી ૧૦, ચતુષ્ક સંયોગથી પાંચ અને પાંચના સંયોગથી ઁક ભંગ (વિકલ્પ) અને

શતિત્રિયેષુ સાન્નિપાતિકભેદેષુ પશ્ચદશ અવિરુદ્ધા ભવન્તિ । તે ચેત્યમ્—

“ ઉદહ્ય સ્વઓવસમિષ્, પરિણામિક્કેક ગચ્ચત્કે વિ ।

સ્વય જોગેણ વિ ચરો, તયભાવે ઉવસમેણં પિ ॥ ૧ ॥

ઉવસમસેઠી ઈકો કેવલિણો વિ ય તદેવ સિદ્ધસ્ત ।

અવિરુદ્ધ સંનિવાહ્ય, મેયા એમેવ પંચદસ ॥ ૨ ॥

છાયા—ઔદયિકઃ ક્ષયોપશમિકઃ પારિણામિકઃ ઈકૈકો ગતિચતુષ્કેડપિ ।

ક્ષયયોગેનાપિ ચત્વારસ્તદભાવે ઉપશમેનાપિ ॥ ૧ ॥

ઉપશમશ્રેણ્યામેકઃ કેવલિણોડપિ ચ તથૈવ સિદ્ધસ્ય ।

અવિરુદ્ધ સાન્નિપાતિક ભેદા એવમેવ ॥ ૨ ॥ ઈતિ ॥

અર્થ ભાવઃ—ઔદયિકક્ષયોપશમિકપારિણામિકેતિ ત્રિકસંયોગનિષ્પન્નઃ સાન્નિપાતિકો ભાવો ગતિચતુષ્કેડપિ=નારકતિર્યક્નરામરલક્ષણો ગતિચતુષ્ટયેડપિ ઈકૈકો ભવતિ । તત્ર નારકગતિમાશ્રિત્ય-ઔદયિકો નારકત્વં, ક્ષયોપશમિક ઈન્દ્રિયાણિ, પારિણામિકો જીવત્ત્વમિતિ ઈકો ભેદઃ । એવં તિર્યક્નરામરાનાશ્રિત્ય ત્રયો ભેદાઃ । ઈતિ ચત્વારો ભેદાઃ । ૪ । તથા-ઔદયિક-ક્ષયોપશમિક-ક્ષાયિક-

પાંચકે સંયોગમે ૧ અંગ હોના હૈ, હન ૨૬ પ્રકારકે સાંનિપાતિક ભેદોમે પન્દ્રહ ભેદ અવિરુદ્ધ હોતે હેં વે હસ પ્રકારસે હેં—

“ ઉદહ્ય સ્વઓવસમિષ્ ” ઈત્યાદિ ।

હન દોનોં ઘાથાઓંકા ભાવ એસા હૈ-ઔદયિક ક્ષાયોપશમિક ઔર પારિણામિક-હન તીનકે સંયોગસે નિષ્પન્ન સાંનિપાતિક ભાવ નારક, તિર્યક્, મનુષ્ય ઔર દેવ હન ચાર ગતિયોમેં એકર હોનાહૈ, જૈસે-નારકગતિકો આજીવત્ત્વ (જહાંતક રહે) યહ પારિણામિક ભાવ હૈ, યહ એક ભેદ હૈ, ઈસી તરહસે તિર્યક્ ગતિમેં મનુષ્યગતિમેં ઔર દેવગતિકો આશ્રિત કરકે તીન ભેદ કહ લેના ચાહિયે હસ પ્રકારસે ચારોં ગતિયોમેં એક ૨ ગતિકી અપેક્ષા યે ત્રિક સંયોગમેં ૪ ચાર ભેદ હોતેહૈં । તથા ઔદયિક

એ આ ૨૬ પ્રકારના સાન્નિપાતિક ભેદોમાં ૧૫ ભેદ અવિરુદ્ધ હાય છે. તે નીચે પ્રમાણે છે, “ ઉદહ્ય સ્વઓવસમિષ્ ” ઈત્યાદિ—

આ બન્ને ઘાથાઓનો ભાવર્થ નીચે પ્રમાણે છે—ઔદયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભવના સંયોગથી નિષ્પન્ન સાન્નિપાતિક ભાવ નારક, તિર્યક્, મનુષ્ય અને દેવ આ ચાર ગતિઓમાં એક એક હાય છે. જેમકે નારક ગતિમાં આજીવત્ત્વ પારિણામિક ભવ છે. આ એક ભેદ થયો. એ જ પ્રમાણે તિર્યક્ ગતિમાં, મનુષ્ય ગતિમાં અને દેવ ગતિમાં પણ એક એક ગતિની અપેક્ષાએ ત્રિક સંયોગમાં ચાર ભેદ થાય છે. તથા ઔદયિક,

पारिणामिकेति चतुष्कसंयोगनिष्पन्नाश्चतुर्गतिमाश्रित्य चत्वारः सान्निपातिक-
भेदाः । तथाहि-औदयिको नारकत्वं, क्षायोपशमिकइन्द्रियाणि, क्षायिकः
सम्यक्तत्वं, पारिणामिको जीवत्वमिति । एवं तिर्यङ् नरामरेष्वपि चक्तव्यम् । क्षायि-
कसम्यग्दृष्टयो नारकादिष्वपि भवन्तीति बोध्यम् । एवं पूर्वोक्तभेदचतुष्टयमेल-
नेन जाता अष्ट भेदाः । ८ । पुनरपि चतुष्कसंयोगिभेदानाह—‘ तयभावे ’
इत्यादि-तदभावे=क्षायिकाभावे ‘ च ’ शब्दाच्छेषत्रयभावेन च औपशमिकेन
योगे अर्थात्-औदयिकक्षायोपशमिकौपशमिक-पारिणामिकेति चतुष्कसंयोगे
सति चतुर्गतिमाश्रित्य चत्वारो भेदा बोध्याः । तथाहि-औदयिको नारकत्वं,

क्षायोपशमिक क्षायिक और पारिणामिक इन चार भावोंके संयोगसे
निष्पन्न चार सान्निपातिक भेद चार गतिघोंको आश्रित करके
होते हैं जैसे-नारक पर्याय उबमें औदयिक भाव हैं, इन्द्रियां क्षायोप-
शमिक भाव हैं, क्षायिक सम्यक्तव क्षायिक भाव है, और जीवत्व
पारिणामिक भाव है, इसी तरहका कथन तिर्यञ्च गतिमें अनुप्य गतिमें
और देवगतिमें भी कह लेना चाहिये नारकादिकोंमें भी क्षायिक सम्य-
ग्दृष्टि होतेहैं । इस तरह पूर्वोक्त ४ चार भेद मिलानेसे ८ भाग भेद होते
हैं, पुनः इस तरहसे भी चतुष्क संयोगी भेद बनते हैं-जैसे क्षायिकके
अभावमें समझलेना और शेषत्रयके सद्भावमें औपशमिकके साथ योग
करने पर अर्थात्-औदयिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक और पारिणा-
मिक-इस प्रकारसे संयोग होने पर चार गतिको आश्रित करके चार
भेद होते हैं-नारक पर्याय औदयिक भाव है, इन्द्रियां क्षायोपशमिक

क्षायोपशमिक, क्षायिक અને પારિણામિક આ ચાર ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન
ચાર સાંનિપાતિક ભેદ ચાર ગતિઓને આશ્રિત કરીને થાય છે. જેમકે નારક
પર્યાય, તેઓમાં ઔદયિક ભાવ છે, ઇન્દ્રિયો ક્ષાયોપશમિક ભાવ છે, ક્ષાયિક
સમ્યક્ત્વ ક્ષાયિકભાવ છે અને જીવત્વ પારિણામિક ભાવ છે. એ જ પ્રકારનું
કથન તિર્યંચ ગતિમાં, અનુપ્ય ગતિમાં અને દેવ ગતિમાં પણ સમજ લેવું
લેઈએ. નારકાદિકોમાં પણ ક્ષાયિક સમ્યગ્દૃષ્ટિ હોય છે. આ પ્રમાણેના ૪ ચાર
ભેદો સાથે પૂર્વોક્ત ચાર ભેદો મેળવવાથી ૮ આઠ ભેદો થાય છે વળી આ પ્રકારે
પણ ચતુષ્ક સંયોગી ભેદો બને છે-જેમકે ક્ષાયિકના અભાવમાં અને યાકીના
ત્રણના સદ્ભાવમાં ઔપશમિકની સાથે યોગ કરવાથી એટલે કે ઔદયિક,
ક્ષાયોપશમિક, ઔપશમિક, અને પારિણામિક આ પ્રકારે સંયોગ થવાથી ચાર
ગતિને આશ્રિત કરીને ચાર ભેદ થાય છે, નારક પર્યાય ઔદયિક ભાવ છે,

क्षायोपशमिक इन्द्रियाणि, औपशमिकः सम्यक्तवं, पारिणामिको जीवत्वमिति प्रथमो भेदः । एवमेव तिर्यङ्मरामरान् आश्रित्य भेदत्रयं बोध्यम् । इत्थं द्वादश-सान्निपातिकभेदाः भवन्ति । तथा—उपशमश्रेण्यामेक एव पञ्चसंयोगी सान्निपा-तिकभेदो भवति, तस्या मनुष्येष्वेव सत्त्वात् । स च क्षायिकसम्यग्दृष्टेर्मनुष्यस्य उपशमश्रेणिप्रतिपन्नस्य भवति, तथाहि—औद्यिको मनुष्यत्वं, क्षायोपशमिक इन्द्रियाणि, औपशमिकश्चारित्रं, क्षायिकं सम्यक्तवं, पारिणामिको जीवत्वमिति जाता-स्त्रयोदशभेदाः । १३ । तथा—केवलिन एक एव त्रिकसंयोगी भेदः, तथाहि—औद्यिको मानुषत्वं, क्षायिकः सम्यक्तवं, पारिणामिको जीवत्वमिति चतुर्दश । १४ ।

भाव है, सम्यक्तव औपशमिक भाव है, और जीवत्व पारिणामिक भाव है, इस प्रकारसे यह प्रथम भेद है । इसी प्रकारका कथन तिर्यङ्मरामिमें मनुष्यगतिमें और देवगतिमें भी कर लेना चाहिये । इस तरहसे सान्नि-पातिक भावके ये १२ बारह भेद हो लेहैं । तथा—उपशम श्रेणीमें एकही पंचक संयोगी सान्निपातिक भेद होता है, उपशमश्रेणी मनुष्योंमेंही होती है, यह पंचक संयोगी सान्निपातिक भावक्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्यको जो कि उपशम श्रेणी पर चढा हुआ होता है जैसे—उसके मनुष्यत्व औद्यिक भाव है, इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव है, चारित्र औपशमिक भाव है, सम्यक्तव क्षायिक है, और जीवत्व पारिणामिक है, इस तरहसे १३ तेरह भेद हो जातेहैं । तथा—केवलिके एकही त्रिक संयोगी भेद होता है, जैसे मानुषत्व औद्यिक सम्यक्तव क्षायिक है, और जीवत्व

इन्द्रियो क्षायोपशमिक भाव छे, सम्यक्तव औपशमिक भाव छे अने जीवत्व पारिणामिक भाव छे, आ प्रकारने आ प्रथम लेद छे, ओ न प्रकारनुं कथन तिर्यङ् गतिमां, मनुष्य गतिमां अने देव गतिमां पणु करवुं लेउअे, आ रीते सांनिपातिक भावना आ १२ गार लेद थई जय छे.

तथा—उपशम श्रेणीमां ओक न पंचक संयोगी सान्निपातिक लेद थाय छे, मनुष्यमां न उपशम श्रेणीने सदभाव छाय छे, आ पंचक संयोगी सान्निपातिक भाव उपशम श्रेणी पर आइठ थयेदा क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनु-ष्यमां न संलवी शके छे, जेभके मनुष्यत्व तेने औद्यिक भाव छे, इन्द्रियो क्षायोपशमिक भाव छे, चारित्र औपशमिक भाव छे, सम्यक्तव क्षायिक भाव छे अने जीवत्व पारिणामिक भाव छे आ प्रकारे अर्डी सुधीमां १३ लेद अताववामां आव्या, तथा केवलीमां ओक न त्रिकसंयोगी लेद संलवी शके छे, जेभके केवलीमां मानुषत्व औद्यिक भाव छे, सम्यक्तव क्षायिकभाव छे, अने

तथा—सिद्धस्याप्येक एव द्विक संयोगी भेदः तथाहि क्षायिकः सम्यक्त्वं पारिणामिको जीवत्वमिति पञ्चदश । इत्यमेते पञ्चदश भङ्गा भवन्ति । एते च पञ्चदश भङ्गा अविच्छिन्न सान्निपातिकभेदा भवन्तीति । अपि च—त्रिपञ्चाशत् पञ्चानामपि भावानां भेदा भवन्ति । तथा हि—

“ उवसमिण २ खड्ग त्रिय ९ खय उवसम १८ उदय २१ परिणमे य ३ ।

दो नव अद्वारसगं इगवीसा तिन्नि भेषणं ॥ १ ॥

सम्म चरित्ते पढमे, दंसणे नाणे य दाणलाभे य ।

उवभोग भोग वीरिय, सम्मचरित्ते य तह चीए ॥ २ ॥

चउनाणऽन्नाणतियं दंसणतियं पं व दाणलद्धीओ ।

सम्मत्तं चारित्तं च संजमासंजसे तइए ॥ ३ ॥

चउगइ चउकप्पाया लिंगतियं लेस छक अन्नार्ण ।

मिच्छत्तमसिद्धत्तं असंजमे तह चउत्ये ॥ ४ ॥

पंचमगम्मि य भावे जीव १ अभवत्त २ भवतामेव ।

पंचण्हवि भावाणं भेया एमेव तेवन्ता ॥ ५ ॥

छाया—औपशमिकः २ क्षायिकोऽपिच ९ क्षायोपशमिक १८ औदयिकः २१ पारिणामिकश्च । ३

द्वौ नव अष्टादश एक त्रिंशतिः त्रयश्च भेदेन ॥ १ ॥

सम्यक्त्व चारित्रे प्रथमे दर्शनं ज्ञानं च दानं लाभश्च ।

उपभोगो भोगो वीर्यं सम्यक्त्वं चारित्रं च तथा द्वितीये ॥ २ ॥

पारिणामिक है, १३ में इन एक भेदको मिलानेसे १४ भेद हो जाते हैं ।

तथा—सिद्धके भी एकही द्विक संयोगी भेद होता है—जैसे—सम्यक्त्वरूप

क्षायिकभाव और जीवत्वरूप परिणामिक भाव यहाँ तक ये १५ भेद होते हैं । ये १५ भङ्ग अविच्छिन्न सान्निपातिक भेद होते हैं । अपि च

अवत्त पारिणामिक भाव छे. आगला १३ लेहोमां अ ओक लेह उमेरवाथी १४ लेह थाय छे तथा सिद्धमां पणु ओक न द्विकसंयोगी लेह णनी शके छे. जेमके सम्यक्त्व ३५ क्षायिक भाव, अने अवत्त ३५ पारिणामिक भाव. आगला १४ लेहोमां अ ओक लेह उमेरवाथी कुल १५ लेह थध नय छे आ १५ लांगा ३५ लेहोने अविच्छिन्न सान्निपातिक लेहो कडे छे. तथा पांचे भावोना ५३ त्रेपन लेहो डोय छे जेमके—सम्यक्त्व ३५ क्षायिक भाव, अने अवत्त ३५ पारिणामिक भाव अही सुधीमां १५ लांगाओ प्रकट करवाभां आव्या छे. आ १५ लांगाओ अविच्छिन्न सान्निपातिक लेह ३५ डोय छे. जे के पांचे भावोना कुल ५३ लेह थाय छे. जेमके :

चत्वारि ज्ञानानि अज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं पञ्चदानलब्धयः ।

सम्यक्त्वं चरित्रं संयमासंयमस्तथा ॥ ३ ॥

चतस्रो गतयः चत्वारः कृपायाः लिङ्गत्रिकं लेश्यापट्टकम् अज्ञानम् ।

मिथ्यात्वमसिद्धत्वमसंयमस्तथा चतुर्थे ॥ ४ ॥

पञ्चमके च भावे जीवत्वम् अभव्यत्वं भव्यता चैव ।

पञ्चानामपि भावानाम् भेदा एवमेत त्रिपञ्चाशम् ॥५॥ इति ।

अयं भावः—औपशमिक क्षायिकः क्षायोपशमिक औद्यमिकः पारिणामिकश्चेति पञ्च भावा भवन्ति । तेषु औपशमिकस्य सम्यक्त्वं चारित्रं चेति द्वौ भेदौ १। क्षायिकस्य—दर्शनं ज्ञानं दानं लाभ उपभोगो भोगो वीर्यं सम्यक्त्वं चारित्रं चेति नव भेदाः २। क्षायोपशमिकस्य—चत्वारि ज्ञानानि, त्रीणि भ्रजानानि, त्रीणि दर्श-
पांचो भावोंके भेद ५३ होते हैं जैसे—“उवसमिण २ खइएवियण ” इत्यादि । औपशमिक भावके दो भेद हैं—एक औपशमिक सम्यक्त्व और दूसरा औपशमिक चारित्र २ इनमें दर्शन मोहनीय कर्मके उपशमसे औपशमिक सम्यक्त्व होता है, और चारित्र मोहनीय कर्मके उपशमसे औपशमिक चारित्र होता है ।

क्षायिक भावके नौ भेद हैं, क्षायिकज्ञान केवलज्ञान १ क्षायिक-दर्शन केवलदर्शन २ क्षायिकलाभ ३ क्षायिकदान ४ क्षायिक भोग ५ क्षायिक उपभोग ६ क्षायिक वीर्य ७ क्षायिक सम्यक्त्व ८ और क्षायिक चारित्र ९ क्षायोपशमिक मात्र १८ प्रकारका होता है—चार ज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान—तीन अज्ञान—मत्यज्ञान, श्रुता-

“ उवसमिण २ खइए वियण ” इत्यादि—

औपशमिक भावना ये लेते हैं—(१) औपशमिक सम्यक्त्व अने (२) औपशमिक चारित्र. दर्शन मोहनीय कर्मना उपशमथी औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त थाय है अने चारित्र मोहनीय कर्मना उपशमथी औपशमिक चारित्र उत्पन्न थाय है.

क्षायिकभावना नीचे प्रमाणे नव लेते हैं—(१) क्षायिक ज्ञान—केवल ज्ञान, (२) क्षायिक दर्शन—केवल दर्शन, (३) क्षायिक लाभ, (४) क्षायिक दान, (५) क्षायिक भोग (६) क्षायिक उपभोग, (७) क्षायिक वीर्य, (८) क्षायिक सम्यक्त्व अने (९) क्षायिक चारित्र.

क्षायोपशमिक भावना नीचे प्रमाणे १८ प्रकार कक्षा है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अने मनःपर्यवज्ञान, आ चार ज्ञान ३५ चार प्रकार.

नानि, पञ्च च दानलब्धयः, तथा-सम्यक्तत्वं चारिं संयमासंयमश्चेति अष्टादश भेदाः ३। औदयिकस्य-चतस्रो गतयः, चत्वारः कपायाः, त्रीणि लिङ्गानि, षट् ज्ञान, विभङ्गज्ञान तीन दर्शन चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन पाँच दानकी लब्धियां दानलब्धि, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य-सम्यक्तत्वं चारित्र्य और संयमासंयम इनमें मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्यय ज्ञानावरण के क्षयोपशम से मत्यादिक चार ज्ञान उत्पन्न होते हैं। मति अज्ञानावरण, श्रुत अज्ञानावरण और विभंगज्ञानावरण के क्षयोपशम से ३ तीन मत्यादिक अज्ञान होते हैं। चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण के क्षयोपशमसे चक्षुदर्शन आदि ३ तीन दर्शन होते हैं। पाँच प्रकारके अन्तराय के क्षयोपशम से दान, लोभ, भोग आदि पाँच लब्धियां होती हैं, सम्यक्तत्व प्रकृति के उदयसे क्षायोपशमिक सम्यक्तत्व होता है, अनन्तानुबन्धी आदि बारह प्रकारका कषाय के उदयाभावी क्षय और सद्वस्त्वारूप उपशम से तथा चार संज्वलनमें से किसी एकके और नौ नो-कषाय के यथासंभव उदय होने पर क्षायोपशमिक सर्वविरतिरूप चारित्र्य प्रकट होता है तथा अनन्तानुबन्धी आदि आठ प्रकार की कषाय

मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, अने विलंगज्ञान ३५ त्रय अज्ञान अक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अने अवधिदर्शन ३५ त्रय दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग अने वीर्य, आ पाँच लब्धियो. आ रीते ४ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन अने पाँच लब्धियो भगिने १५ प्रकार तथा. गाडीना त्रय प्रकार नीचे प्रमाणे छे—(१) सम्यक्तत्व, (२) चारित्र्य अने (३) संयमासंयम. आ रीते क्षायोपशमिक भावना कुल १८ प्रकार समज्वा. मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, अने मनःपर्ययज्ञानावरणना क्षयोपशमथी मतिज्ञान अदि चार ज्ञान उत्पन्न थाय छे. मति अज्ञानावरण, श्रुत अज्ञानावरण अने विलंगज्ञानावरणना क्षयोपशमथी मत्यज्ञान आदि त्रय अज्ञान उत्पन्न थाय छे अक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अने अवधिदर्शनावरणना क्षयोपशमथी अक्षुदर्शन आदि त्रय दर्शन उत्पन्न थाय छे. पाँच प्रकारना अन्तरयना क्षयोपशमथी दान, लाभ, भोग आदि पाँच लब्धियो प्राप्त थाय छे. सम्यक्तत्व प्रकृतिना उदयथी क्षायोपशमिक सम्यक्तत्व प्राप्त थाय छे अनन्तानुबन्धी आदि १२ प्रकारना कषायना उदयाभावीक्षय अने सद्वस्त्वाइप उपशमथी तथा चार संज्वलनमाथी केठ अकेना अने नव नोकषायोना यथासंभव उदय थाथी क्षायोपशमिक सर्वविरति ३५ चारित्र्य-प्रकट थाय छे. तथा अनन्तानुबन्धी आदि ८ प्रकारना

કે ઉદયઅભાવી ક્ષય ઓર સદવસ્થારૂપ ઉપશમસે એવં પ્રત્યાખ્યાનાવરણ એવં સંજ્વલનકષાય કે ઓર નોકષાય કે યથાસંભવ ઉદય હોને પર ક્ષાયોપશમિક સંયમાસંયમ ભાવ પ્રકટ હોતા હૈ, હસ પ્રકાર સે અઠારહ પ્રકાર કા ક્ષાયોપશમિકભાવ હૈ ।

શંકા—સંજિત્વ સમ્યગ્ મિથ્યાત્વ ઓર યોગ મી ક્ષાયોપશમિક ભાવ હૈ, ઉનકા યહાં ગ્રહણ કયોં નહીં ક્રિયા ।

ઉત્તર—સંજીવના જ્ઞાન કી અવસ્થાવિશેષ હૈ હસલિયે ઉસે અલગ સે ગ્રહણ નહીં ક્રિયા । સમ્યગ્ મિથ્યાત્વ સમ્યક્ત્વ કા એક ભેદ હૈ, હસલિયે સમ્યક્ત્વકે ગ્રહણ કરનેસે હી સમ્યક્ત્વ મિથ્યાત્વ કા ગ્રહણ હો જાતા હૈ, યોગકા સસ્વન્ધ વીર્યલબ્ધિસેહૈ હસલિયે ઉસેમી અલગ નહીં કહા ।

ઔદયિકભાવ ૨૧ ઠક્કીસ પ્રકાર કાહૈ—ચારગતિ-નામકર્મ કે ઉદયસે નરક, તિર્થંચ, મનુષ્ય ઓર દેવ યે ચાર ગતિયાં—ચાર કષાય મોહનીય કે ઉદયસે ક્રોધ, માન, માયા ઓર લોભ યે ચાર કષાય વેદ નોકષાય કે ઉદયસે સ્ત્રી પુરુષ ઓર નપુંસક યે ર્તીન વેદ કષાય કે ઉદયસે અનુરંજિત યોગકી પ્રવૃત્તિ રૂપ કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત, પીત, પદ્મ ઓર શુક્લ

કષાયોના ઉદયાભાવી ક્ષય અને સદવસ્થા રૂપ ઉપશમથી અને પ્રત્યાખ્યાનાવરણ અને સંજ્વલન કષાયનો યથાસંભવ ઉદય થવાથી ક્ષાયોપશમિક સંયમાસંયમ ભાવ પ્રકટ થાય છે. આ પ્રમાણે ૧૮ પ્રકારના ક્ષાયોપશમિક ભાવ છે.

શંકા—સંજિત્વ, સમ્યગ્ મિથ્યાત્વ અને યોગ પણ ક્ષાયોપશમિક ભાવ રૂપ જ છે. છતાં અહીં તેમને શા માટે ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા નથી ?

ઉત્તર—સંજિત્વ જ્ઞાનની એક અવસ્થાવિશેષ રૂપ છે. તેથી અહીં તેને અલગ રૂપે ગ્રહણ કરવામાં આવેલ નથી સમ્યગ્મિથ્યાત્વ સમ્યક્ત્વના એક ભેદ રૂપ હોવાથી સમ્યક્ત્વમાં જે તેના સમાવેશ થઈ જાય છે. યોગનો સંબંધ વીર્યલબ્ધિ સાથે હોવાથી તેને અહીં અલગ રૂપે ગણાવવાની જરૂર રહેતી નથી.

ઔદયિક ભાવના નીચે પ્રમાણે ૨૧ પ્રકાર છે—ચાર ગતિનામકર્મના ઉદયથી નરક તિર્થંચ, મનુષ્ય અને દેવ આ ચાર ગતિઓ રૂપ ચાર પ્રકાર કષાયમોહનીયના ઉદયથી ક્રોધ, માન, માયા અને લોભરૂપ ચાર કષાય, વેદ નોકષાયના ઉદયથી સ્ત્રી, પુરુષ અને નપુંસક રૂપ ત્રણ વેદ, કષાયના ઉદયથી અનુરંજિત યોગની પ્રવૃત્તિ રૂપ કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત, પીત, પદ્મ અને શુક્લ, આ ૬ લેશ્યાઓ. આ રીતે ૧૭ પ્રકાર થયા. (૧૮) જ્ઞાનાવરણના ઉદયથી

ये ६ लेश्या हैं। ज्ञानावरण के उदय से हुआ अज्ञान मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से हुआ अतत्त्व अज्ञानरूप मिथ्यादर्शन किसी भी कर्म के उदय से हुआ अखिद्धत्व और चारित्रमोहनीय के सर्वघाति स्पर्द्धकों के उदयसे हुआ असंयम ये २१इकीस प्रकारके भाव औदयिक भावहैं।

शंका—दर्शनावरण के उदय से अदर्शन भाव भी होता है, उसको यहां अलग से क्यों नहीं गिनाया ?

उत्तर—मिथ्यादर्शन से ही अदर्शन भावका ग्रहण हो जाता है तथा निद्रा, निद्रा निद्रा आदि का भी इसीमें अन्तर्भाव कर लेना चाहिये क्योंकि ये भी अदर्शन के भेद हैं।

शंका—हास्य आदि के उदय से हास्य आदि औदयिक भाव भी होते हैं, अतः उन्हें तो अलग से गिनाना चाहिये ?

उत्तर—माना कि हास्य आदि स्वतन्त्र औदयिक भाव हैं—तब भी लिङ्ग के ग्रहण करने से इनका ग्रहण हो जाता है क्योंकि भाव लिङ्ग के सहचारी हैं।

शंका—अघातिया कर्मों के उदय से भी जाति आदि औदयिक भाव होते हैं सो उन्हें यहां अलग से क्यों नहीं गिनाया ?

प्रकट यत्तु अज्ञान, (१८) मिथ्यात्व मोहनीयना उदयथी प्रकट यथेत्तु अतत्त्व अज्ञानरूप मिथ्यादर्शन, (२०) डोष पशु कर्मना उदयने लीधे जनित असिद्धत्व अने (२१) चारित्र मोहनीयना सर्वघाति स्पर्द्धकोना उदयथी जनित असंयम. आ २१ प्रकारना औदयिक भाव कइया छे.

शंका—दर्शनावरणना उदयथी अदर्शनभावना पशु सद्रभाव रहे छे. अर्डी तेने अलग रूपे शा कारण्ये गणुवेद नथी ?

मिथ्यादर्शनने अडणु करवाथी अदर्शनभाव पशु अडणु थर्ष नय छे तथा निद्रा, निद्रानिद्रा, आदिना पशु तेमां सभावेश करी वेवे न्नेधये, कारण्ये के ते पशु अदर्शनना लेदो न छे.

शंका—हास्य आदिना उदयथी हास्य आदि औदयिक भाव पशु डोष शके छे, तेथी तेमने अलग रूपे गणुववा न न्नेधये।

उत्तर—भानी लधये के हास्य आदि स्वतंत्रभाव छे. तो पशु दिगने अडणु करवाथी तेमनुं अडणु पशु थर्ष नय छे, कारण्ये के ते भावे दिगना सहचारी छे.

शंका—अघातिया कर्मना उदयथी पशु जाति आदि औदयिक भाव संलवी शके छे तो तेमने अर्डी अलग रूपे शा भाटे गणुववा नथी ?

लेश्याः, अज्ञानं मिथ्यात्वम् असिद्धत्वम् असंयमश्चेति चत्वार इत्येकविंशतिभेदाः
 ४। पारिणामिकस्य—जीवत्वम् अभव्यत्वं भव्यताचेति त्रयोभेदाः ५। इत्थं पञ्चानां
 भावानां सर्वे त्रिपञ्चाशद् भेदाः भवन्तीति ॥ सू० ६३ ॥

उत्तर—अघातिया कर्मों के उदय से होने वाले जितने भी औद्-
 यिक भाव हैं उन सबका गति उपलक्षण है। इसके ग्रहण करने से
 उन सबका ग्रहण हो जाता है इसलिये अघातिया कर्मों के उदय से
 होनेवाले जाति आदि अन्य भावों को अलग से नहीं गिनाया।

शंका—उपशान्त कषाय क्षीण कषाय और सयोग केवली गुण-
 स्थान में लेश्या का विधान तो किया है पर वहां कषाय का उदय नहीं
 पाया जाता अतः लेश्या मात्र को औद्दयिक मानना उचित नहीं है।

उत्तर—पूर्वभाव प्रज्ञापन नय की अपेक्षा वहां औद्दयिक पने का
 उपचार किया जाता है इसलिये लेश्या मात्र को औद्दयिक मानने में
 कोई आपत्ति नहीं है।

पारिणामिक भाव तीन हैं—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व।
 इनमें जीवत्व का अर्थ चैतन्य है, यह शक्ति आत्मा की स्वाभाविक है
 इसमें कर्म के उदयादि की अपेक्षा नहीं पडती है इसलिये यह पारि-
 णामिक है। यही बात भव्यत्व और अभव्यत्व के विषय में भी जाननी

उत्तर—अघातिया कर्मोंना उदयथी जनित जेटला औद्दयिक लावे छे
 ते सौनुं उपलक्षणु गति छे. गतिनुं ग्रहणु थवाथी ते सौनुं ग्रहणु पणु थर्ध
 नय छे. तेथी अघातिया कर्मोंना उदयथी जनित नति अदि लावोने बुद्ध
 गणुआ नथी.

शंका—उपशान्त कषाय, क्षीण कषाय अने सयोग केवली गुणस्थानमां
 लेश्यानुं विधान तो करवामां आणु छे परन्तु त्यां कषायने उदय लेवामां
 आवतो नथी, तेथी लेश्या मात्रने औद्दयिक मानवानुं उचित लागतुं नथी.

उत्तर—पूर्वभाव प्रज्ञापन नयनी अपेक्षाअ- त्यां औद्दयिकपणुने
 उपचार करवामां आवे छे, तेथी लेश्या मात्रने औद्दयिक मानवामां
 केध द्दोष नथी.

पारिणामिक भाव—त्रयु छे—(१) जवत्व, (२) लव्यत्न अने (३)
 अव्यत्व. जवत्वने अर्थ चैतन्य छे. आ शक्ति आत्मानी लाविक शक्ति
 छे. तेमां कर्मना उदयादिनी अपेक्षा रडेती नथी, तेथी ज तेने पारिणामिक
 भाव इये प्रकट करवामां आवेल छे अज वात लव्यत्व अने अव्यत्वना

अनन्तरसूत्रे भाषा अभिहिताः, तत्र च प्रशस्तेषु या अप्रवृत्तिः, अप्रशस्तेषु च या प्रवृत्तिः कृता, यच्च वा विपरीतश्रद्धानं विपरीतप्ररूपणं च कृतम्, तत्र साधवः प्रतिक्राम्यन्तीति प्रतिक्रमणमाह—

मूलम्—छविहे षडिक्रमणे पण्णत्ते, तं जहा—उच्चारपडिक्रमणे १, पासवणपडिक्रमणे २, इत्तरिए ३, आवकहिए ४, जं किंचि मिच्छा ५, सोमणंतिए ६ ॥ सू० ६४ ॥

छाया—षडविधं प्रतिक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-उच्चारप्रतिक्रमणं १, प्रस्र वणप्रतिक्रमणम् २, इत्वरिकं ३, यावत्कथिरुम् ४, यत्किंचिन्मिध्या ५, स्वाप- नान्तिकम् ६ ॥ सू० ६४ ॥

टीका—‘ छविहे ’ इत्यादि—

प्रतिक्रमणं—विध्यादुष्कृतकरणरूपम् प्रायश्चित्तस्य षड् भेदाः पूर्वं पञ्चदश- सूत्रे प्रदर्शिताः, तद् यथा—भालोचनार्हम्, प्रतिक्रमणार्हम्, तदुभयार्हम् ३, विवे- चाहिये, जिस आत्मा में रत्नत्रय प्रकट होने की योग्यता है वह भव्य और जिसमें इस प्रकार की योग्यता नहीं है वह अभव्य है, इस प्रकार से ५३ भाव जीव के होते हैं ॥ सू० ६३ ॥

इस ऊपर के सूत्र में भाव कहे गये हैं। इनमें प्रशस्त भावों में जो अप्रवृत्ति है और अप्रशस्त भावों में जो प्रवृत्ति है अथवा—जो विपरीत श्रद्धान हो गया है या विपरीत प्ररूपणा हो गई है सो इस स्थिति में साधु प्रतिक्रमण करते हैं अतः इसी बात को लेकर अब सूत्रकार प्रतिक्रमण का कथन करते हैं—

“ छविहे षडिक्रमणे पण्णत्ते ” इत्यादि सूत्र ६४ ॥

मिध्यादुष्कृत देने रूप प्रतिक्रमण नामका प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त

विषयमां पण्णत्तं सभञ्जी. जे आत्मामां रत्नत्रय प्रकट थवानी योग्यता होय छे, तेने अलव्यात्मा कहे छे, जे आत्मामां आ प्रकारनी योग्यता होती नथी तेने अलव्यात्मा कहे छे. आ प्रभाणे लवमां पउ भाव होय छे. ॥ सू. ६३ ॥

आगला सूत्रमां लावनी प्ररूपणा करवामां आवी. प्रशस्त भावोमां अप्रवृत्ति थवाथी, अने अप्रशस्त भावोमां प्रवृत्ति थवाथी, अथवा विपरीत तत्त्वमां श्रद्धा प्रकट थछ जवाथी अथवा विपरीत प्ररूपणा थछ जवाथी ते दोषनी निवृत्ति माटे साधु प्रतिक्रमणु करे छे तेथी उवे सूत्रकार प्रतिक्रमणुं निरूपणु करे छे. “ छविहे षडिक्रमणे पण्णत्ते ” इत्यादि—

કાર્દમ્ ૪, વ્યુત્સર્ગાર્દમ્ ૬, તપોડર્દ ૬ ચેતિ, ઇપાં વ્યાખ્યા તત્રૈવ દ્રઘ્ટવ્યા । તેષુ યદ્ દ્વિતીયં પ્રતિક્રમણાર્દમ્ પ્રાયશ્ચિત્તં તત્ પઙ્કવિધં પ્રજ્ઞતમ્, તદ્યથા-ઉચ્ચારપ્રતિક્રમણમ્-ઉચ્ચારોત્સર્ગં કૃત્વા યત્ ઐર્યાપથિકં પ્રતિક્રમણં તત્ ॥૧॥ પ્રસ્રવણપ્રતિક્રમણમ્-પ્રસ્રવણં=મૂત્રં, તદુત્સર્ગં કૃત્વા યત્ ઐર્યાપથિકં પ્રતિક્રમણં તત્ ॥૨॥ઉક્તંચ-

“ ઉચ્ચારં પાસવર્ણં, ભૂમીણ વોસિરિત્તુ ઉવ્રઉત્તો ।

ઓસરિ ડ્ઞણં તત્તો, ઇરિયાવહિયં પઙ્કિકમઃ ॥૧॥

વોસિરઃ મત્તગે જઃ, તો ન પઙ્કિકમઃ ય મત્તગં જો ડ્ઞ ।

સાહુ પરિદ્ઢવેઢ, નિયમેણ પઙ્કિકમઃ સો ડ્ઞ ॥૨॥

છહ પ્રકાર કા જોતા હૈ, પ્રાયશ્ચિત્ત કૈ છહ ભેદ પહલૈ પન્દ્રહવૈ સૂત્ર મૈ કહૈ ગયૈ હૈ વૈ હસ પ્રકાર હૈ--આલોચનાર્દ ૧, પ્રતિક્રમણાર્દ ૨, તદ્-ભયાર્દ ૩, વિવેકાર્દ ૪, વ્યુત્સર્ગાર્દ ઓર તપોડર્દ ૬ ।
 હનકી વ્યાખ્યા વહીં પન્દ્રહવૈ સૂત્રમૈ કહી ગઈ હૈ, ત્હાં દેઝ લેના ચાહિયૈ ડન છહ પ્રકારકૈ પ્રાયશ્ચિત્તૈમૈ યહ પ્રતિક્રમણ નામકા પ્રાયશ્ચિત્ત દૂસરા હૈ, યહ છહ પ્રકારકો જોતા હૈ, જો ૧-ઉચ્ચાર પ્રતિક્રમણ ૧ પ્રસ્રવણ પ્રતિક્રમણ ૨ ઇત્તરિક પ્રતિક્રમણ ૩ યાવત્કથિક પ્રતિક્રમણ ૪ યત્ કિશ્ચિત્ મિથ્યા પ્રતિક્રમણ ૫ ઓર સ્વાપનાન્તિક પ્રતિક્રમણ ૬ ઉચ્ચાર પ્રતિક્રમણ વહ હૈ, જો બહિર્ભૂમિસૈ આકર ઐર્યાપથિકી ક્રિયાકી જાતી હૈ, પ્રસ્રવણ પ્રતિક્રમણ વહ હૈ, જો પ્રસ્રવણકૈ ચાદ ઐર્યાપથિકી ક્રિયાકી જાતી હૈ । કહા ઓી હૈ-“ ઉચ્ચારં પાસવર્ણં ” ઇત્યાદિ ।

મિથ્યાદુષ્કૃત દેવારૂપ પ્રતિક્રમણુનું નામ પ્રાયશ્ચિત્ત છે. પ્રાયશ્ચિત્તના છ પ્રકાર પડે છે—(૧) આલોચનાર્દ, (૨) પ્રતિક્રમણાર્દ, (૩) તદ્ભયાર્દ, (૪) વિવેકાર્દ, (૫) વ્યુત્સર્ગાર્દ, અને (૬) તપોર્દ. પ્રાયશ્ચિત્તના આ છ પ્રકારોનું વિસ્તૃત નિરૂપણ ૧૫ માં સૂત્રમાં કરવામાં આવ્યું છે, તો ત્યાંથી વાંચી લેવું.

પ્રાયશ્ચિત્તના પ્રતિક્રમણ નામનો જે ખીજો ભેદ છે, તેના નીચે પ્રમાણે છ પ્રકાર પડે છે. (૧) ઉચ્ચાર પ્રતિક્રમણ, (૨) પ્રસ્રવણ પ્રતિક્રમણ, (૩) ઇત્તરિક પ્રતિક્રમણ, (૪) યાવત્કથિક પ્રતિક્રમણ, (૫) યત્કિંચિત્ મિથ્યાપ્રતિક્રમણ અને (૬) સ્વાપનાન્તિક પ્રતિક્રમણ.

બહિર્ભૂમિમાંથી આવીને (કલ્પે જઈને આવ્યા બાદ) ઐર્યાપથિકી ક્રિયા કરવામાં આવે છે તેનું નામ ઉચ્ચાર પ્રતિક્રમણ છે. પ્રસ્રવણ (મૂત્ર ત્યાગ) બાદ જે ઐર્યાપથિકી કરવામાં આવે છે તેનું નામ પ્રસ્રવણ પ્રતિક્રમણ છે. કથું પણ છે કે : “ ઉચ્ચાર પાસવર્ણં ” ઇત્યદિ—

छाया- उच्चारं मस्रर्णं भूमौ व्युत्सृज्य उपयुक्तः ।

अवसृत्य तत ईर्यापथिकां प्रतिक्रामति ॥१॥

व्युत्सृजति मात्रके यदि ततो न प्रतिक्रामति च मात्रकं यस्तु ।

साधु. परिष्ठापयति नियमेन प्रतिक्रामति स तु ॥२॥ इति ।

इत्वरिकम्-स्वल्पकालिकं दैवसिकरात्रिकादिरूपम् ॥ ३ ॥ यावत्कथिकम्= यावज्जीविकं महाव्रतभक्तपरिज्ञादिरूपम् । प्रतिक्रमणत्वं चात्र विनिवृत्तिलक्षणा- न्वर्थयोगाद् बोध्यम् ॥४॥ तथा-यत्किंचिन्मिथ्या-खेलशिङ्घाणाविधिनिसर्गा- भोगानाभोगसहसाकाराद्यसंयम-स्वरूपं यत्किंचित्=यत्किमपि मिथ्या=अस- म्यक्कृतं तद्विषयं यत् मिथ्येदमित्येवं प्रतिपत्तिपूर्वकं मिथ्यादुष्कृतकरणं तद् यत्किंचिन्मिथ्या प्रतिक्रमणमिति । उक्तं च--

“ संजमजोगे अब्भुद्वियस्स जं किंचि वितहमायरियं ।

मिच्छा एयं तु वियाणिऊण मिच्छत्ति कायव्वं ॥१॥”

दैवसिक रात्रिकादि रूप जो स्वल्पकालिक प्रतिक्रमण है, वह इत्वरिक प्रतिक्रमण है, महाव्रत भक्त परिज्ञादि रूप जो यावज्जीविक प्रतिक्रमण है. वह यावत्कथिक प्रतिक्रमण है, प्रतिक्रमणता विनिवृत्ति रूप सार्थक योगसे यहां आती है, खेल शरीरका मैल शिङ्घाण-नाकका मैल इनका अविधिपूर्वक छोडना आभोग अनाभोग (जानते अजानते) सहसाकार आदिरूप जो असंयम है, इन सबका सेवन करना सो इस असंयमके हो जाने पर “ यह सब मेरा मिथ्या हो जावे” इस प्रकारसे जो मिथ्या दुष्कृति दिया जाता है, वह यत् किञ्चित् मिथ्या प्रतिक्रमण है। कहा भी है-“ संजम जोगे अब्भुद्वियस्स ” इत्यादि ।

दैवसिक, रात्रिक आदि ३५ ने स्वल्पकालिक प्रतिक्रमण्युं छे तेने धर्त्वरिक प्रतिक्रमण्युं कडे छे महाव्रत भक्तपरिज्ञादि ३५ ने यावज्जीविक प्रतिक्रमण्युं छे, तेने यावत्कथिक प्रतिक्रमण्युं कडे छे

विनिवृत्ति ३५ सार्थक योगथी अडीं प्रतिक्रमण्युता आवे छे. जेदा (शरीरनेा मैल) अने शिङ्घाण्यु (नाकमांथी नीकणतेा श्रीकण्ठेा पदार्थ) आदिने अविधिपूर्वक छोडवा ३५ तथा आलोग, अनाभोग, सहसाकार आदि ३५ ने असंयम छे, तेनुं सेवन करवाथी ने दोष लागे छे तेनी निवृत्ति निमित्ते “ भाइं अे कथं मिथ्या हो ” आ प्रकारे ने मिथ्या दुष्कृति देवाभां आवे छे तेनुं नाम यत्किञ्चित् मिथ्याप्रतिक्रमण्युं छे. कहुं पण्युं छे क;

“ संजमजोगे अब्भुद्वियस्स ” इत्यादि—

છાયા--સંયમયોગે અભ્યુત્થિતસ્ય યત્ કિંચિદ્ વ્રિતથમાચરિતમ્ ।

મિથ્યા એતત્તુ વિજ્ઞાય મિથ્યેતિ કર્તવ્યમ્ ॥૧॥ ઇતિ ।

તથા--“ સ્વેલં સિંઘાણં વા, અપ્પહિલેહાપમ્જ્જિંતં તહય ।

વોસરિય પહિક્કમઈ, તં પિય મિચ્છુકકં દેઈ ॥૧॥”

છાયા--સ્વેલં સિંઘાણં વા, અપ્પહિલેહ્યાપમ્જ્જય તથા ચ ।

વ્યુત્સૃજ્ય પ્રતિક્રામ્યતિ, તસ્યાપિ મિથ્યાદુષ્કૃતં દદાતિ ॥૧॥ ઇતિ ॥ ૫ ॥

તથા--સ્વાપનાન્તિકમ્-સ્વપનસ્ય=શયનક્રિયા અન્તઃ=અવસાનં સ્વપનાન્તઃ, તત્ર ભવં પ્રતિક્રમણં સ્વાપનાન્તિકમ્ । સુષોત્થિતાહિ સાધવ ઈર્યાં પ્રતિક્રામન્ત્યે-વેતિ । અથવા-‘સ્વાપનાન્તિકમ્’ ઇતિચ્છાયા । તત્ર-સ્વપ્નો=નિદ્રાવશવિકલ્પઃ, તસ્ય અન્તો વિભાગઃ સ્વપનાન્તઃ, તત્ર ભવં પ્રતિક્રમણં સ્વાપનાન્તિકમ્ । સ્વપ્ન-વિશેષેહિ સાધવઃ પ્રતિક્રામન્ત્યેવ । તદુક્તમ્--

સંયમયોગમેં સાવધાન વને હુએ જીવકે દ્વારા જો કુછમી અસત્ય સેવિત્ત હો જાતા હૈ, વહ બેશ નિષ્ફલ હો હસકે લિયે જો મિથ્યા દુષ્કૃત દિયા જાતા હૈ, વહ યત્ કિચ્ચિત્ મિથ્યા પ્રતિક્રમણ હૈ । તથા-“સ્વેલં સિંઘાણં વા” ઇત્યાદિ । શયનક્રિયાકે અન્તમેં જો પ્રતિક્રમણ ક્રિયા જાતા હૈ, વહ સ્વાપનાન્તિક પ્રતિક્રમણ હૈ । સુષોત્થિત સાધુજન ઈર્યા પ્રતિક્રમણ કરતેહી હૈં । અથવા-“સોમણંતિએ” કી સંસ્કૃત છાયા “સ્વાપનાન્તિકમ્” એસી મી હોતી હૈ, નિદ્રાવશ જો વિકલ્પ હૈ, ઉસકા નામ સ્વપ્ન હૈ, હસકા જો અન્ત વિભાગ હૈ, વહ સ્વપ્નાન્ત હૈ, હસ સ્વપ્નાન્તમેં જો પ્રતિક્રમણ હોતા હૈ, વહ સ્વાપનાન્તિક પ્રતિક્રમણ હૈ, સ્વપ્નવિશેષકી અવસ્થામેં સાધુજન પ્રતિક્રમણ કરતેહી હૈં । કહા મી

સંયમ યોગમાં સાવધાન રહેતા જીવ દ્વારા જે કોઈ પણ અસત્યનું સેવન થઈ જાય છે તે મિથ્યા હો-નિષ્ફલ હો, એવી ભાવનાપૂર્વક જે મિથ્યા દુષ્કૃત દેવામાં આવે છે તેને યદ્ધિચિત્ મિથ્યાપ્રતિક્રમણ કહે છે.

કથં પણ છે કે : “સ્વેલં સિંઘાણં વા” ઇત્યાદિ--

સ્વાપનાન્તિક પ્રતિક્રમણ--શયન ક્રિયાને અન્તે જે પ્રતિક્રમણ કરવામાં આવે છે તેને સ્વાપનાન્તિક પ્રતિક્રમણ કહે છે. જોઈ લઈને જોઈતો સાધુ ઈર્યા પ્રતિક્રમણ તો કરે જ છે. અથવા “સોમણંતિએ” આ પદની સંસ્કૃત છાયા “સ્વાપનાન્તિકમ્” પણ થાય છે. નિદ્રાને અધીન થવા રૂપ જે વિકલ્પ છે તેનું નામ સ્વપ્ન છે. તેનો જે અન્તવિભાગ છે તેનું નામ સ્વપ્નાન્ત છે. આ સ્વપ્નાન્તે જે પ્રતિક્રમણ થાય છે તેને સ્વાપનાન્તિક પ્રતિક્રમણ કહે છે. સ્વપ્ન વિશેષની અવસ્થામાં સાધુઓ પ્રતિક્રમણ કરે જ છે.

“गमणागमण विहारे, सुप्तं वा सुमिणदंसणे रात्रौ ।

नावा नइ संतारे, इरियात्रहिया पडिक्रमणं ॥१॥”

छाया—गमनागमनविहारे सुप्तेवा स्वप्नदर्शने रात्रौ ।

नावा नदी संतारे ईर्यापथिका प्रतिक्रमणम् ॥१॥ इति ।

प्रतिक्रमणसूत्रेऽपि—“आउलमाउलाए, सोवणवत्तियाए” छाया—
आकुलाकुलया स्वप्नप्रत्ययया, इत्यादिना स्वप्नविशेषे प्रतिक्रमणमुक्तम् । प्रति-
क्रमणमत्र कायोत्सर्गरूपं, तच्च स्वप्नकृतप्राणातिपातादितो विनिवृत्तिरूपम्
अन्वर्थं बोध्यम् । इति ॥ सू० ६४ ॥

अनन्तरं प्रतिक्रमणमुक्तम्, प्रतिक्रमणं चावश्यकमित्युच्यते । तच्च नक्षत्रोदया-
वसरे कुर्वन्तीति नक्षत्राणि षटस्थानत्वेनाह—

“गमणा गमण विहारे” ईर्यापथिक प्रतिक्रमण साधु इतनी बातोंमें करते
हैं गमनागमनमें विहारमें सुसावस्थासे प्रबुद्ध (जगनेपर) होने पर रात्रिमें
नावसे नदी पार करने पर अथवा बिना नावके नदी पार करने पर
प्रतिक्रमण सूत्रमें भी “आउलमाउलाए सोवणवत्तियाए” इत्यादि
पाठ द्वारा स्वप्नविशेषमें प्रतिक्रमण करना कहा गया है, प्रतिक्रमण
यहां कायोत्सर्गरूप है, और वह स्वप्नकृत प्राणातिपात आदिसे विनि-
वृत्तिरूप है, इसलिये सार्थक है ॥ सू० ६४ ॥

इस ऊपरके सूत्रमें प्रतिक्रमण कहा यह प्रतिक्रमण आवश्यक रूप
होता है, अतः यह नक्षत्रके उदय आदिके अवसरमें किया जाता है,
इसलिये सूत्रकार अब नक्षत्रोंका कथन ६ स्थानकोंसे करते हैं—

कहुं पणु छे ङे : गमणागमण विहारे” इत्यादि—

ईर्यापथिक प्रतिक्रमण साधु आटनी आणनामां करे छे—गमनागमनमां
विहारमां, गंवांथी लगृत थाय त्तारे, रात्रे नावमां गेसीने नदी पार कर-
वामां आवे त्तारे अथवा नाव विना नदी पार करवामां आवे त्तारे. प्रति-
क्रमण सूत्रमां पणु “आउल माउलाए सोवणवत्तियाए” इत्यादि पाठ द्वारा
स्वप्नविशेषमां प्रतिक्रमण करवानुं कहुं छे. अकीं प्रतिक्रमण कायोत्सर्गं इप
छे, अने ते स्वप्नकृत प्राणातिपात आदिमांथी विनिवृत्त थवा इप डोवाथी
सार्थक छे. ॥ सू. ६४ ॥

ऊपरना सूत्रमां प्रतिक्रमणनुं निरूपण कर्तुं. प्रतिक्रमण आवश्यक इप
डोय छे, तेथी नक्षत्रना उदय आदिना अवसरे ते करवामां आवे छे. तेथी
उवे सूक्ष्मकर छ स्थानोनी अपेक्षासे नक्षत्रोनुं कथन करे छे—

मूलम्—कृत्तियाणक्खत्ते छत्तारे पणत्ते । असिलेसा णक्खत्ते
छत्तारे पणत्ते ॥ सू० ६५ ॥

छाया—कृत्तिकानक्षत्रं पट्टतारं प्रज्ञप्तम् । अश्लेषानक्षत्रं पट्टतारं प्रज्ञप्तम्
॥ सू० ६५ ॥

टीका—‘ कृत्तिया णक्खत्ते ’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ६५ ॥

नक्षत्राणि चापि जीवरूपाण्येव । जीवानां नक्षत्ररूपता च कर्मपुद्गलचयादि
सत्त्वे एव भवति चयादीनाह—

मूलम्—जीवा णं छट्ठाणणिवत्तिण् पोग्गले पावकम्मत्ताण्
चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—पुढविका-
इयनिवत्तिण् जाव तसकाइयनिवत्तिण् । एवं चिण उवचिण-
बंधउदीरवेय तह निज्जरा चैव । छप्पएसिया णं खंधा अणंता
पणत्ता । छप्पएसोगाढा पोग्गला अणंता पणत्ता । छ सम-
यट्टिइया पोग्गला अणंता पणत्ता । छ गुणकालगा पोग्गला
जाव छ गुणलुक्खा पोग्गला अणंता पणत्ता ॥ सू० ६६ ॥

॥ छट्ठं ठाणं समत्तं

छाया—जीवाः खलु पट्टस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचि-
न्वन् वा, चिन्वन्ति वा, चेष्यन्ति वा, तद्यथा—पृथिवीकायिकनिर्वर्तितान् यावत्
त्रसकायिकनिर्वर्तितान् । एवं—चय उपचयोवन्ध उदीरो वेदस्तथा निर्जरा चैव ।
पट्टप्रदेशिकाः खलु पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः । पट्टप्रदेशावगाढाः पुद्गला अनन्ताः
पट्टसमय स्थितिकाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः । पट्टगुणकालकाः पुद्गला यावत्
पट्टगुणरूक्षाः पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञप्ताः ॥ सू० ६६ ॥

॥ पण्ठं स्थानं समाप्तम् ॥

कृत्तियाणक्खत्ते छत्तारे पणत्ते इत्यादि सूत्र ६५ ॥

कृत्तिका नक्षत्र छ तारावालां हें आश्लेषा नक्षत्र छ तारावाला है । सू० ६५ ॥

“ कृत्तियाणक्खत्ते छत्तारे पणत्ते ” इत्यादि—

कृत्तिका नक्षत्र छ तारावालां छे, आश्लेषा नक्षत्र पण्ठ छ
तारावालां छे ॥ सू० ६५ ॥

ટીકા—‘ જીવા ણં ’ ઇત્યાદિ—

અસ્ય વ્યાખ્યા પૂર્વવદ્ વોધ્યા । નવરં તસ્મિન્ તસ્મિન્ સ્થાને તત્તસ્થાન-
કત્વેનોક્તમ્, અત્ર તુ પટસ્થાનકત્વેનેતિ ॥ સૂ ૬૬ ॥

ઇતિ શ્રી વિશ્વવિખ્યાત-જગદ્ગુહ-પ્રસિદ્ધવાચક-પશ્ચદશભાષાકલિત્કલિતકલા-
પાલાપક-પ્રવિશુદ્ધગદ્યપદ્યનૈકગ્રન્થનિર્માપક-વાદિમાનમર્દક - શ્રીશાહુચ-
પતિ કોલ્હાપુરરાજપદત્ત ‘ જૈનશાસ્ત્રાચાર્ય ’ પદ્મભૂષિત-કોલ્હાપુર-
રાજગુરુ વાલબ્રહ્મચારી- જૈનાચાર્ય - જૈનધર્મદિવાકર-પૂજ્યશ્રી --
ઘાસીલાલવ્રતિવિરચિતાયાં ‘ સ્થાનાંગસૂત્રસ્ય ’ સુધાખ્યાયાં
વ્યાખ્યાયાં ષષ્ઠં સ્થાનમ્ સમ્પૂર્ણમ્ ॥૬-૩ ॥

નક્ષત્ર ઓ જીવરૂપહી હૈં, જીવોમૈં નક્ષત્ર રૂપતા કર્મપુદ્ગલચય આદિકે
હોને પરહી હોતી હૈ, અતઃ અબ સૂત્રકાર ચય આદિકા કથન કરતે હૈં-

“ જીવાણં છટ્ટાણણિવ્વત્તિણ પોગગલે ” ઇત્યાદિ સૂત્ર ૬૬ ॥

હસ સૂત્રકી ઓ વ્યાખ્યા સ્પષ્ટ હૈ, ક્યોંકિ યહ વ્યાખ્યા ડસ ૨
સ્થાનમૈં ડસ સ્થાનક રૂપસે પહિલેકી જા ચુકી હૈ ઓર અબ યહાં વહ
છહ ૬ સ્થાનક રૂપસે કહી ગઈ હૈ ॥ સૂ ૬૬ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય જૈનધર્મદિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ રચિત
“ સ્થાનાંગ સૂત્ર ” કી સુધા નામકી વ્યાખ્યાકે છટ્ટા સ્થાન
સમાપ્ત ॥ ૬ ॥

નક્ષત્રો પથુ ૭૪ ૩૫ ૪ છે. કર્મપુદ્ગલમાં ચય આદિનો સદ્ભાવ
હોવાથી ૪ ૭માં નક્ષત્રરૂપતા સંભવી શકે છે, તેથી હવે સૂત્રકાર ચય
આદિનું કથન કરે છે.

“ જીવાણં છટ્ટાણણિવ્વત્તિણ પોગગલે ” ઇત્યાદિ—

આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સ્પષ્ટ છે, કારણ કે પ્રત્યેક સ્થાનમાં તે તે સ્થાનક
રૂપે આ વ્યાખ્યા આગળ આપવામાં આવી ચુકી છે, અને અહીં છ સ્થાનક
રૂપે તેનું કથન કરવામાં આવ્યું છે. ॥ સૂ. ૬૬ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય જૈનધર્મ દિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ રચિત
“ સ્થાનાંગ સૂત્ર ” ની સુધા નામની વ્યાખ્યાનું
છટ્ટું સ્થાન સમાપ્ત ॥ ૬ ॥

॥ अथ सप्तमं स्थानकम् ॥

पठं स्थानमुक्तं, सम्प्रति क्रमप्राप्तं सप्तममारभ्यते, अस्यतु पूर्वेण सहाय-
मभिसम्बन्धः—पूर्वस्मिन् स्थाने पदार्थाः षट्स्थानकत्वेनोक्ताः, अत्र तु त एव
पदार्थाः सप्तस्थानकत्वेन प्ररूप्यन्ते, इत्यनेन संबन्धेनायातस्यास्य स्थानस्येद-
मादिमं सूत्रम्—

तथा—अनन्तरस्थानस्यान्तिमसूत्रेण सहास्य स्थानस्यादिमसूत्रस्यायमभि-
संबन्धः—तत्र सूत्रे पुद्गलाः पर्यायतः प्रोक्ताः । अस्मिन् सूत्रे तु—पुद्गलविशेषाणां
क्षयोपशमानन्तरं यो जीवकृतोऽनुष्ठानविशेषो भवति, तस्य सप्तविधत्वमुच्यते,
इत्यनेन सम्बन्धेनायातमिदं सूत्रम्—

सातवां स्थानका प्रारंभ

छठा स्थान कहा जा चुका है, अब क्रम प्राप्त सप्तम स्थान प्रारंभ
होता है, इस स्थानका पूर्व स्थानके साथ ऐसा सम्बन्ध है—कि पूर्व
स्थानमें पदार्थ ६ स्थानक रूपसे कहे गये हैं, और यहाँ वेही पदार्थ
सप्त स्थानकरूपसे कहे जावेंगे. तथा अनन्तर स्थानके अन्तिम सूत्रके
साथ इस स्थानके प्रथम सूत्रका सम्बन्ध ऐसा है, कि उस सूत्रमें पुद्गल
पर्यायकी अपेक्षासे कहे गये हैं, परन्तु सूत्रमें पुद्गल विशेषोंका क्षयोप-
शमके अनन्तर जो जीव कृत अनुष्ठान विशेष होता है, उसमें सप्त-
विधता कही जावेगी इसी अभिप्रायसे “ सत्तविधे गणावक्रमणे ”
इत्यादि सूत्रपाठ कहा जाता है—

सातमां स्थाननो प्रारंभ—

छठा स्थाननं निरूपणं पूर्वं थयु. इवे सातमां स्थाननं निरूपणं शरु
करवामां आवे छे. पूर्वस्थान साथे सातमां स्थाननो संबन्ध आ प्रकारनो छे.
पूर्व स्थानमां पदार्थानुं स्थानक रूपे निरूपणं करवामां आव्युं छे, इवे
अधीं ओ. न पदार्थानुं सात स्थानक रूपे निरूपणं करवामां आवशे. आगला
स्थाननो छेला सूत्र साथे आ स्थाननो पडेला सूत्रनो संबन्ध आ प्रकारनो
छे—त्यां पर्यायनी अपेक्षाओ पुद्गलानुं कथन करवामां आव्युं छे, परन्तु आ
सातमां स्थाननो पडेला सूत्रमां पुद्गलविशेषाना क्षयोपशम पूर्व ओ लवकृत
अनुष्ठान विशेष थाय छे, तेमां सप्तविधता प्रकट करवामां आवशे. तेथी न
अधीं “ सत्तविधे गणावक्रमणे ” इत्यादि सूत्रपाठ भूक्ये छे—

मूलम्—सत्तविहे गणावक्रमणे पणत्ते, तं जहा-सव्वधम्मा रोएमि १, एगइया रोएमि एगइया णो रोएमि २, सव्वधम्मा वितिगिच्छामि ३, एगइया वितिगिच्छामि एगइया नो वितिगिच्छामि ४, सव्वधम्मा जुहुणामि ५, एगइया जुहुणामि एगइया णो जुहुणामि ६, इच्छामि णं भंते ! एगल्लविहारपडिसं उवसंपजित्ता णं विहरित्तए ॥ ७ ॥ सू० १ ॥

छाया-सप्तविधं गणापक्रमणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-सर्वधर्मान् रोचयामि १, एककान् रोचयामि एककान् नो रोचयामि २, सर्वधर्मान् विचिकित्सामि ३, एककान् विचिकित्सामि एककान् नो विचिकित्सामि ४, सर्वधर्मान् जुहोमि ५, एककान् जुहोमि एककान् नो जुहोमि ६, इच्छामि खलु भदन्त ! एकलविहारप्रतिमाम् उपसंपद्य खलु विहर्तुम् ॥ सू० १ ॥

टीका—‘ सत्तविहे गणावक्रमणे ’ इत्यादि—

गणापक्रमणम्-गणात्=गच्छात् अपक्रमणं=निर्गमनं सप्तविधं=प्रयोजनभेदेन भिन्नत्वात् सप्त प्रकारकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-सर्वधर्मान्-सर्वे च ते धर्माश्चेति सर्व-

‘ सत्तविहे गणावक्रमणे ’ इत्यादि सूत्र १

गणसे अपक्रमण-निर्गमन-प्रयोजनके भेदसे सात प्रकारका कहा गया है, गण नाम गच्छका है, जैसे-अपने गणमें बहुश्रुतका अभाव जब-सर्व धर्मोंको रुचिका विषय बनानेवाला शिष्य-मुनि-देखता है, तो वह अपने गुरुसे ऐसी आज्ञा मांगता है, कि हे भदन्त ! मैं अपने गणसे निकलता हूँ, क्योंकि मैं समस्त धर्मका अभिलाषी हूँ “ सर्वे च

“ सत्तविहे गणावक्रमणे ” इत्यादि—

गण्युमांथी अपक्रमण (निर्गमन) प्रयोजनना लेहने आधारे सात प्रकारकं कह्यु छे. गण्यु अट्ठे गच्छ. कोरु साधु नीचे दर्शाववाभां आवेला सात कारणेने लीये पोताना गण्युमांथी नीकणी ज्जने, पीण गण्युमां ज्ज शके छे—(१) पोताना गण्युमां अहुश्रुतने अलाव ज्यारे कोरु मुनिमां सर्व धर्मं प्रत्ये रुचि जगे अने तेने जेम लागे के पोताना गण्युमां अहुश्रुतने अलाव छे, त्यारे ते पोताना गुरु पासे जेवी आज्ञा मागे छे के “ हे जगवन् ! समस्त धर्मने (धर्मना समस्त तरवने) जण्युवानी भारी अकि-

ધર્માઃ—નિર્જરાહેતુભૂતા અપૂર્વગ્રહણવિસ્મૃતમન્ધાનપૂર્વાધીતપરાવર્તનરૂપાઃ
 સૂત્રાર્થોભયત્રિપયાઃ શ્રુતભેદાઃ, ક્ષપણવૈયાવૃત્ત્યરૂપાશ્ચારિત્રભેદાઃ, તાન્ રોચ-
 યામિ=રુચિત્રિપયી કરોમિ—સ્વીકૃત્વમિચ્છામીત્યર્થઃ । એતે ચ સ્વગણે પ્રાપ્તું ન
 શક્યન્તે, વહુશ્રુતાભાવાત્, પરગણે તુ પ્રાપ્તું શક્યન્તે, તન્ન વહુશ્રુતાનાં સદ્ભાવાત્ ।
 અતો હે મદન્ત ! સ્વગણાદહમપક્રમામિ इत्येवं गुरुं पृष्ट्वा यत्स्वगणादपक्रमणं
 तत् प्रथमं गणापक्रमणं बोध्यम् ।

નનુ ' સર્વધર્માન્ રોચયામિ ' इत्येतावन्मात्रोक्तौ ' गुरुपृच्छा गणादपक्रमम् '
 इति कथं गम्यते ? इति चेदाह—सप्तमे भेदे—' इच्छामि णं भंते । ' इत्याद्युक्तम्,

તે ધર્માશ્ચ इति सर्वधर्माः ” इस व्युत्पत्तिके अनुसार अपूर्वका ग्रहण
 विस्मृतका सन्धान, और पूर्वमें पठित विषयका परावर्तन इस प्रकारके
 जो सूत्रके, अर्थके एवं सूत्रार्थ दोनोंके भेद हैं, उन्हें तथा क्षपण एवं
 वैयावृत्य रूप जो चारित्रके भेद हैं, वे यहां सर्वधर्म शब्दसे गृहीत
 हुए हैं—तथा जिस दूसरे गणमें वह जाना चाहता है—वहां वह बहुश्रुतका
 सद्भाव जान करही जाना चाहता है, अतः वे समस्त धर्म उसे वहां
 प्राप्त हो सकते हैं, इस प्रकार गुरुसे पूछकर जो अपने गणसे—गच्छसे
 बाहर होता है, वह प्रथम गणापक्रम ग जानना चाहिये

શંકા—“ સર્વ ધર્માન્ રોચયામિ ” સૂત્રમાં એસાહી પાઠ કહા ગયા
 હૈ—અતઃ યહ ઘાત યહાં કૈસે જાની જાતી હૈ—કિ વહ ગુરુસે પૂછકર
 લાખા છે. આપણા ગણમાં બહુશ્રુતનો અભાવ હોવાથી મને આ ગણ
 છોડવાની રત્ન આપો.

“ સર્વે ચ તે ધર્માશ્ચ इति सर्वधर्माः ” આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર અપૂર્વતું
 ગ્રહણ, વિસ્મૃતતું સંધાન, પૂર્વપઠિત વિષયતું પરવર્તન, આ પ્રકારના જે
 સૂત્રના, અર્થના અને સૂત્રાર્થના ભેદ છે તેમને તથા ક્ષપણ અને વૈયાવૃત્ય-
 રૂપ જે ચારિત્રના ભેદ છે તેમને અહીં ' સર્વધર્મ ' પદ દ્વારા ગ્રહણ કરવામાં
 આવેલ છે. તથા જે અન્ય ગણમાં તે જવા માગે છે ત્યાં બહુશ્રુતનો સદ્-
 ભાવ છે એવું જાણીને જ તે ત્યાં જવા માગે છે, તેથી તે સમસ્ત ધર્મની
 તેને ત્યાં પ્રાપ્તિ થઈ શકવાનો સંભવ છે આ પ્રકારના કારણને લીધે ગુરુની
 આજ્ઞા લઈને તે ગણમાંથી અપક્રમણ કરી શકે છે. ગણાપક્રમણ માટે સમસ્ત
 ધર્મની પ્રાપ્તિ રૂપ આ પહેલું પ્રયોજન સમજવું.

શંકા—“ સર્વધર્માન્ રોચયામિ ” આ સૂત્રમાં ગુરુની આજ્ઞા લઈને
 ગણાપક્રમણ કરવાતું તો લખ્યું નથી, છતાં આપ શા કારણે એવું કહો છો

તત્ર ગુરુપૃચ્છાપૂર્વકમેવ એકલવિહારપ્રતિમાર્થં ગણાદપક્રમણમ્ વક્ષ્યતે, તત્સાધર્મ્યાદત્રાપિ ગુરુપૃચ્છાપૂર્વકમેવ ગણાદપક્રમણં વોધ્યમિતિ ।

તથા—એકકાન્ કાશ્ચન ધર્માન્ શ્રુતરૂપાન્ ચારિત્રરૂપાન્ વા સ્વગણેઽવસ્થિતાન્ રોચયામિ=રુચિવિષયી કરોમિ—એકકાન્ કાશ્ચિત્ શ્રુતધર્માન્ ચારિત્રધર્માન્ વા સ્વગણેઽવસ્થિતાન્ ન રોચયામિ, યાશ્ચ ધર્માન્ રોચયામિ તે ધર્માઃ સ્વગણે પ્રાપ્તું ન શક્યન્તે, તથાવિધવામદ્યાભાવાત્ । ઇતિ દ્વિતીયમ્ । તથા—સર્વધર્માન્—

ગણસે અપક્રમણ (ગણકોં છોડતા હૈ) કરતા હૈ ?

ઉત્તર—આગે સાતવે ભેદમેં “ ઇચ્છામિ ણં મંતે । ” એસા કહા ગયા હૈ, અનઃ ઇસસે વહાં યુક્ત પૃચ્છાપૂર્વકહી એકલ વિહાર પ્રતિમાકે લિયે ગણસે અપક્રમણ કહા જાવેગા સો ડસકે સાધર્મ્યસે યહાં પર મી ગુરુપૃચ્છાપૂર્વકહી ગણસે નિર્ગમન (જાના) હોતા હૈ એસા જાનના ચાહિયે— તથા—“ એગહ્યા રોએમિ એગહ્યા ણો રોએમિ ” ૨—કિતનેક શ્રુતરૂપ અથવા ચારિત્રરૂપ ધર્મોકો મેં જો કિ અપને ગણમેં અવસ્થિત નહીં હૈ, રુચિકા વિષય બનાતા હૂં તથા—કિતનેક શ્રુતરૂપ અથવા ચારિત્ર રૂપ ધર્મોકો મેં જો કિ અપને ગણમેં અવસ્થિત હૈ, અપની રુચિકા વિષય નહીં બનાતા હૂં—ઇસ તરહ સ્વ ગણમેં અવસ્થિત ધર્મોકો મેં નહીં ચાહતા હૂં, ઓર જો ધર્મ સ્વગણમેં અવસ્થિત નહીં હૈ, ડન્હે મેં ચાહતા હૂં—વે સ્વગણમેં તથાવિધ સામગ્રીકે અભાવસે પ્રાપ્ત નહીં હો સકતે હૈ—અતઃ

કે તે ગુરુની આજ્ઞા લઈને ગણાપક્રમણ કરે છે ?

ઉત્તર—હવે પછી આવનારા સાતમાં લેહમાં એવો સૂત્રપાઠ આવે છે કે “ ઇચ્છા મિણં મંતે । ” ઇત્યાદિ. ત્યાં ગુરુની આજ્ઞા લઈને જ ગણમાંથી નીકળવાની શિષ્યની ઇચ્છા પ્રદર્શિત થઈ છે. તે પ્રયોજન સાથેના સાધર્મ્યને લીધે અહીં પણ ગુરુની અનુજ્ઞાપૂર્વક જ ગણમાંથી શિષ્યનું નિર્ગમન પ્રહણ્યથવુલેઈએ.

બીજું કારણ—“ એગહ્યા રોએમિ, એગહ્યા ણો રોએમિ ” કેટલાક શ્રુતરૂપ અથવા ચારિત્રરૂપ ધર્મો કે જે આપણા ગણમાં અવસ્થિત (વિદ્યમાન) નથી, તે મારી રુચિને અનુકૂળ લાગે છે, અને કેટલાક શ્રુતરૂપ અથવા ચારિત્રરૂપ ધર્મો કે જે આપણા ગણમાં અવસ્થિત છે, તે મારી રુચિને અનુકૂળ લાગતા નથી. આ રીતે આપણા ગણમાં અવસ્થિત ધર્મોને હું ચાહતો નથી અને જે ધર્મો આપણા ગણમાં અવસ્થિત નથી તેને હું ચાહું છું. જે ધર્મો મને ગમે છે તેમની સ્વગણમાં પ્રાપ્તિ થવાનું શક્ય નથી, કારણ કે સ્વગણમાં તથ વિધ સામગ્રીનો અભાવ છે. તો ‘ હે ગુરુદેવ ! જે આપ અનુજ્ઞા આપો તો હું

श्रुतभेदान् चारित्रभेदोश्च समस्तानपि धर्मान् विचिकित्सामि=तन्दिहामि-संशय-
 विषयी करोमि, तेषां सन्देहानां निराकरणं स्वगच्छे न संभवति, तथाविधबहु-
 श्रुताभावात्, परगच्छे तु तथाविधसाधूनां सद्भावात् सन्देहनिराकरणं भवितु-
 मर्हति । इति तृतीयम् । तथा-एककान् काँश्चन श्रुतधर्मान् चारित्रधर्मान् वा विचि-
 कित्सामि, एककान् काँश्चन श्रुतधर्मान् चारित्रधर्मान् वा नो विचिकित्सामि ।
 यद्विषयिणी मम विचिकित्सा वर्त्तते तदपनयने नास्ति कश्चित्समर्थः स्वगणे,

मैं आपसे आज्ञा प्राप्त कर इस गणसे निकलना चाहता हूँ यह गणसे
 बाहर होनेका दूसरा कारण है २

“ सव्वधम्मा वित्तिगिच्छामि ” तथा मुझे समस्त धर्मों पर श्रुत-
 भेदों पर और चारित्र भेदों पर संशय है, सो उनके संदेहोंका निरा-
 करण होना स्वगच्छमें संभवित नहीं होता है, क्योंकि यहां पर तथाविध
 बहुश्रुत रूप सामग्रीका अभाव है, दूसरे गच्छमें तथाविध साधुओंके
 सद्भावसे सामग्रीका सद्भाव है अतः वहां पर उन संदेहोंका निराकरण
 संभवित है-इसलिये मैं गच्छसे हे गुरो ! आपकी आज्ञा लेकर जाता
 हूँ ऐसा यह तृतीय कारण है ३ ।

“ एगइया वित्तिगिच्छामि, एगइया नो वित्तिगिच्छामि ” ४ तथा
 कितनेक श्रुत धर्मोंके ऊपर अथवा-चारित्र धर्मोंके ऊपर मुझे सन्देह
 है; और कितनेक श्रुत धर्मोंके ऊपर अथवा चारित्र धर्मोंके ऊपर

गणुमांथी नीकणी ज्वा भाशुं छुं. ? कैथ पणु साधु आ प्रकारना कारणुने
 दीधि पोताना गणुने त्याग करीने भीज गणुमां ज्थ शके छे.

त्रीणुं कारणु—“सव्वधम्मा वित्तिगिच्छामि” भने समस्त धर्मों पर
 श्रुत लेहो पर अने चारित्र लेहो पर-संशय उद्भलन्थे छे. ते संशयनुं
 स्वगणुमां निवारणु थर्ध थर्ध शके तेम नथी, कारणु छे आपणु गणुमां ते
 संशयोनुं निवारणु करी शके जेवा षडुश्रुत साधुजोना-अलाव छे. अन्य
 गणु के ज्वां हुं ज्वा भाशुं छुं, त्यां भासा संशयोनुं निवारणु करे जेवा
 षडुश्रुत साधुजोना सद्भाव छे. तेथी त्यां ज्वाथी भासा संशयोनुं निवारणु
 थर्ध शक्ये भाटे छे गुरुं भडाराज ! भने आपणु गणुमांथी अन्य गणुमां
 ज्वाणी अनुशा प्रदान करे.

चौथुं कारणु—“ एगइया वित्तिगिच्छामि, एगइया नो वित्तिगिच्छामि ”
 तथा कैटताक श्रुतधर्मों प्रत्ये अथवा चारित्र धर्मों प्रत्ये भासा मनमां सदेह
 छे अने कैटताक श्रुतधर्मों प्रत्ये अथवा चारित्र धर्मों प्रत्ये भासा मनमां

परगणे त्वस्ति तथाविधः इति चतुर्थम् । तथा-सर्वधर्मान्-श्रुतभेदाश्चारित्रभेदाश्च ये धर्मा मया ज्ञायन्ते, तान् सकृन्नानि धर्मान् जुहोमि=अन्येभ्यो दातु मित्छामि । न चास्ति स्वगणे कश्चित्ग्रहण समर्थः, परगणे तु तथाविधोऽस्ति । इति पञ्चमम् । तथा-एककान् काँश्चिद् धर्मान् जुहोमि । यान् धर्मान् अन्येभ्यो दातु-

सन्देह नहीं है, अतः जिस विषयके ऊपर मुझे विचिकित्सा है, उसे हटानेके लिये इस गणमें कोई समर्थ नहीं है, पर गणमें तो ऐसा समर्थ विद्वान् है-अतः मैं आपसे आज्ञा चाहता हूँ कि मैं इस गणसे बाहर चला जाऊँ अतः इस प्रयोजन वश वह गणको छोड़कर दूसरे गणमें चला जाता है, ऐसा यह अपने गणको छोड़नेका चतुर्थ कारण है ४।

“सर्वधर्मा जुहुणामि” ऐसा यह पाँचवां कारण है-इसमें शिष्य ऐसा अपना अभिप्राय प्रकट करता है कि हेः भद्रन्त ! समस्त धर्मश्रुत धर्म और चारित्र धर्म-जिन्हे मैं जानता हूँ मैं उन समस्त धर्मोंको दूसरोंके लिये देना चाहता हूँ परन्तु अपने इस गणमें कोई ऐसा समर्थ नहीं है-जो उन धर्मोंको ग्रहण कर सके हां परगणमें तो ऐसा समर्थ व्यक्ति है-इस प्रकारसे अपना प्रयोजन उससे कहकर और उनसे आज्ञा लेकर वह गणसे बाहर हो जाता है-यह गणसे बाहर होनेका पाँचवां कारण है ५।

संदेह नहीं. जे विषय प्रत्ये भारा मनमां विचिकित्सा (आ षड् डे पेतुं षड् जे गडमथलने विचिकित्सा डडे छे) छे, तेतुं निराकरण करी शकवाने समर्थ जेवा विद्वान साधुनी स्वगणुमां उणुप छे, पणु परगणुमां तो जेवा विद्वान साधुज्यो विद्यमान छे डे जेज्यो भारा ते सँडेडोने इर करी शके. डे गुरुदेव ! आ डारणु हुं आ गणुने छोडवा भाटे आपनी अनुज्ञा भाशुं छुं. आ रीते धर्मविषयके विचिकित्सा रूप डारणुने वश थधने डेडि पणु साधु स्वगणुमांथी नीकणी नथं शके छे.

पाँचमुं डारणु—“सर्वधर्मा जुहुणामि” शिष्य गुरुने विनति करे छे डे डे गुरु भडारान ! समस्त धर्मने अने चारित्रने में नखी वीधि छे. डवे हुं ते धर्मोतुं डेडि योग्य साधुने प्रदान करवा भाशुं छुं, परन्तु ते धर्मोने भारी यासेथी ग्रहण करी शके जेवा डेडि पणु समर्थ साधु आपणा गणुमां नथी. परगणुमां तेने ग्रहण करी शके जेवा समर्थ साधुज्योनी जोर नथी, तो डे गुरुदेव ! आप भने स्वगणु छोडवानी अनुज्ञा आपनी मडे-पानी करे. आ प्रमणु प्रयोजन प्रकट करीने गुरुनी आज्ञा लधने डेडि पणु साधु-स्वगणुमांथी परगणुमां नथं शके छे.

मिच्छामि, तद्ग्रहणाधिकारी स्वगणे कश्चिन्नास्ति, परगणेत्यस्ति । इति षष्ठम् ।
 तथा—हे भदन्त ! इच्छामि खलु अहम् एकलविहारप्रतिमाम्—एकलस्य=एकाकिनो
 गच्छनिर्गतत्वाद् जिनकल्पिकृतया यो विहारो=विचरणं तस्य प्रतिमा=अभिग्रहः,
 ताम् उपसम्पद्य स्वीकृत्य विहर्तुम् । अतो भवदाज्ञामादाय गणादपक्रमितुमिच्छा-
 मीति सप्तमं गणापक्रमणम् ।

“ एगहया जुहुणामि, एगहया नो जुहुणामि ” में कितनेक धर्मोंको दूसरोंके लिये देना चाहता हूँ, और कितनेक धर्मोंको मैं दूसरोंको नहीं देना चाहता हूँ, अतः जिन धर्मोंको मैं दूसरोंके लिये देना चाहता हूँ—उन धर्मोंको ग्रहण करनेके योग्य अपने गणमें मुझे कोई दिखाता नहीं है, परगणमें तो ऐसा व्यक्ति है, अतः इस प्रयोजनके वशवर्ती होकर छोड़ना चाहता हूँ इस प्रकार कहकर यह गणको छोड़ देता है, यह गणको छोड़नेका छद्म कारण है ६ ।

“ इच्छामि णं भंते । एगल्लविहारपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए ” ऐसा यह सातवां कारण है—इसमें वह इस प्रकारका अपना प्रयोजन प्रकट करता है, कि हे भदन्त ! मैं एकल विहार अभिग्रहको स्वीकार करके गच्छनिर्गत होनेसे जिनकल्पके समान विहार करना चाहता हूँ—इसलिये मैं आपसे आज्ञा लेकर इस गणसे निकलना चाहता हूँ—ऐसा यह गणसे बाहर होनेका सातवां कारण है ७ ।

छठुं कारण—“ एगहयाजुहुणामि, एगहया नो जुहुणामि ” शिष्य शुरुने कडे छे के छे शुरुदेव । डेटलाक धर्मो (धर्मत्त्वतुं ज्ञान) अन्यने प्रदान करवानी अने डेटलाक धर्मो अन्यने प्रदान करवानी भारी धर्मछा छे. जे धर्मो हुं अन्यने प्रदान करवा भाशुं छुं, ते धर्मोने ग्रहण करवाने योग्य व्यक्ति आपणु गणुमां भने कोछ देभाती नथी, परन्तु परगणुमां ओधी व्यक्तिओ नइर भोजूद छे. तो आ प्रयोजनने लीधे आपनी आज्ञा लधने हुं आ गणु छोडवा भाशुं छुं. आ प्रकारे शुरुनी आज्ञा लधने कोछ पणु साधु पोताना गणुमांथी नीकणी नछ शके छे.

सातमुं कारण—“ इच्छामि णं भंते । एगल्ल विहारपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए ” शिष्य शुरु पासेथी गणु छोडवा भाटे आ प्रमाणु कहीने आज्ञा भागे छे—“ छे शुरु महाराज ! हुं एकलविहार अभिग्रहने स्वीकार करीने, गणुमांथी नीकणीने जिनकल्प साधुनी जेम विहार करवा भाशुं छुं. तो छे शुरुदेव ! हुं आ गणुमांथी नीकणी नवा भाटे आपनी अनुज्ञा भाशुं छुं. स्वगणुमांथी नीकणी नवानुं आ सातमुं कारण समज्जुं.

यद्वा-अत्र आद्यपदद्वयेन सम्यग्दर्शनार्थं गणापक्रमणमुक्तम् २ । तृतीय-
चतुर्थपदद्वयेन सम्यग्ज्ञानार्थम् । पञ्चमपठपदद्वयेन च सम्यक्चारित्र्यार्थम् ।
तथाहि-सर्वधर्मान् रोचयामि=श्रद्धयामि अहमिति तेषां स्थिरीकरणार्थं गणाद-
पक्रमामीति प्रथमम् । १। तथा-एककान् धर्मान् रोचयामि एककांस्तु न रोच-
यामि-इति श्रद्धानाविषयोभूतानां धर्माणां श्रद्धानार्थं गणादपक्रमामीति द्विती-
यम् । २। इत्यनेन पदद्वयेन सर्वविषयं देशविषयं च सम्यग्दर्शनं श्रद्धातुं गणाद-
पक्रमणमुक्तम् ॥२॥

यद्वा-यहां सूत्रमें आदिके दो पदों द्वारा सम्यग्दर्शनके लिये
गणसे अपक्रमण कहा गया है, तृतीय और चतुर्थ पदसे सम्यग्ज्ञानके
लिये गणसे अपक्रमण (बाहर निकलना) कहा गया है, पंचम छठे पद
द्वयसेसम्यक् चारित्र्यके लिये गणसे अपक्रमण कहा गया है, जैसे-“ सर्व
धर्मान् रोचयामि ” मैं समस्त श्रुतचारित्र्य धर्मों पर श्रद्धा करता हूँ
इसलिये उनकी स्थिरताके लिये मैं गणसे निकलता हूँ ? ऐसा यह
प्रथम कारण है-तथा जो धर्म मेरे श्रद्धानके विषयभूत नहीं हैं, उन्हें
श्रद्धानका विषयभूत बनानेके लिये मैं इस गणसे निकलता हूँ-ऐसा
यह द्वितीय कारण है २ इसतरह इन दो पदोंसे सर्व विषयवाले अथवा
देश विषयवाले सम्यग्दर्शन पर विश्वास करनेके लिये गणसे अपक्रमण
कहा गया है २ तथा-सर्व धर्म विषयक अथवा देश धर्म विषयक

अथवा-आ सूत्रमां पडेलों में प्रयोजनो द्वारा ओ वात प्रकट करवाभां
आवी छे के सम्यग्दर्शननी प्राप्तिने माटे साधु पोताना गणुमांथी अपक्रमणेषु
करी शके छे. त्रीण अने योथा पठ द्वारा ओ वात सूचित थाय छे के
सम्यग्दर्शननी प्राप्तिने माटे साधु पोताना गणुमांथी नीकणी नई शके छे
पांचमां अने छटा पठ द्वारा ओ वात सूचित थाय छे के सम्यक् चारित्र्यने
माटे साधु स्वगणुमांथी निर्गमन करी शके छे.

“ सर्वधर्मान् रोचयामि ” आ सूत्रपाठ द्वारा गणुमांथी नीकणी नवतुं
आ प्रकारतुं कारण भताववाभां आब्युं छे-“ मने समस्त श्रुतचारित्र्य इप धर्मों
पर श्रद्धा छे तेनी स्थिरता टकावी राअवा माटे हुं गणुमांथी नीकणीवा भागु, छु ”

भीणुं कारण आ प्रमाणे छे-“ जे धर्मतत्वे प्रत्ये, मने श्रद्धा नथी
तेमां श्रद्धा स्थिर करवाने माटे हुं स्वगणुमांथी नीकणी नवा भागुं छु. ”
आ जे कारणो द्वारा सर्व विषयवाणा अथवा देश विषयवाणा सम्यग्दर्शन
पर विश्वास स्थिर करवाने माटे स्वगणुमांथी नीकणी नवानी छिछा प्रकट
करवाभां आवी छे.

તથા-સર્વધર્મવિષયક - દેશધર્મવિષયક સન્દેહવિનિવૃત્તિસમર્થ સમ્ય-
જ્ઞાનમધિગન્તું ગણાપક્રમણમિતિ 'સર્વધર્માન્ વિચિન્તિસામિ ।૩। એકકાન્ વિચિ-
ન્તિસામિ ॥૪॥' इति तृतीय-चतुर्थपदद्वयेन सूचितम् । तथा-धातूनामनेकार्थ-
त्वात् ' जुहोमि ' इत्यस्य आसेवे-इत्यर्थः । ततश्च-" सर्वधर्मान् जुहोमि
(५) तथा-एककान् जुहोमि एककान् नो जुहोमि (६)" इति पञ्चमपष्ठपदद्वयेन
सम्यक्चारित्रार्थं गणापक्रमणमिति सूचितम् ॥ सू० १ ॥

एवं श्रद्धास्थैर्याद्यर्थमन्यथा वा गणापक्रान्तस्य कस्यचिद् विभक्तज्ञानमुत्प-
द्यते इति तस्य भेदानाह—

सूत्रम्-सत्तविहे विभंगणणे पणन्ते, तं जहा-एगदिसि-
लोगाभिगमे १, पंचदिसिलोगाभिगमे २, किरियावरणे जीवे ३,
मुदग्गे जीवे ४, अमुदग्गे जीवे ५, ख्वी जीवे ६, सव्वमिणं

सन्देहको हटानेमें समर्थ जो सम्यग्ज्ञान है, उसे प्राप्त करनेके लिये
गणसे अपक्रमण तृतीय चतुर्थ पदद्वयसे सूचित किया गया है, तथा-
धातुओंके अनेक अर्थ होते हैं-इस कथनके अनुसार " जुहोमि " इस
क्रिया पदका अर्थ-" आसेवे " ऐसा होता है-अतः इसके अनुसार
मैं समस्त धर्मों का अच्छी तरहसे सेवन करता हूँ ६ ढे पदसे किन्हीं
श्रुतचारित्र धर्मों का मैं सेवन करता हूँ-किन्हींका सेवन नहीं करता
हूँ-इस तरहके पांचवें और छठे पदद्वयसे वह सम्यक् चारित्रके लिये
गणसे अपक्रमण (गणको छोड़ता है) करता है ऐसा सूचित किया
गया है ॥ सू० १ ॥

सर्व धर्म विषयक अथवा देशधर्म विषयक सन्देहने दूर करवाने
समर्थ એવા સમ્યજ્ઞાનની પ્રાપ્તિને માટે સ્વગણમાંની અપક્રમણ કરવાની
વાત ત્રીજા અને ચોથા પદ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે.

ધાતુઓના અનેક અર્થ થાય છે. " જુહોમિ " આ ક્રિયાપદનો અર્થ
" આસેવે " પણ થાય છે. આ પ્રકારે તે ક્રિયાપદનો અર્થ લેવામાં આવે
તો પાંચમાં પદનો અર્થ આ પ્રમાણે થશે-" હું સમસ્ત ધર્મોનું સારી રીતે
સેવન કરું છું, " છઠા પદનો આ પ્રમાણે અર્થ થઈ શકે-" હું કેટલાક શ્રુત
ચારિત્ર ધર્મોનું સેવન કરું છું અને કેટલાકનું સેવન કરતો નથી. આ રીતે
પાંચમાં અને છઠા પદ દ્વારા એ વાત સૂચિત થાય છે કે તે સમ્યક્ ચારિત્રને
માટે ગણમાંથી નીકળી જવા માગે છે. ॥ સૂ. ૧ ॥

जीवे ७। तत्थ खलु इमे पढमे विभंगनाणे जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पन्नेणं पासइ-पाईणं वा पडीणं वा दाहिणं वा उदीणं वा उडुं वा जाव सोहम्ममे कप्पे । तस्स णं एवं हवइ अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे एगदिसिं लोगाभिगमे । संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु-पंचदिसिं लोगाभिगमे । जे ते एवमाहंसु-मिच्छं ते एवमाहंसु । पढमे विभंगणाणे ॥ १ ॥ अहावरे दोच्चे विभंगनाणे, जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पन्नेणं पासइ पाईणं वा पडीणं वा दाहिणं वा उदीणं वा उडुं वा जाव सोहम्ममे कप्पे, तस्स णं एवं हवइ-अत्थिणं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पन्ने पंचदिसिं लोगाभिगमे । संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु एगदिसिं लोगाभिगमे । जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु । दोच्चे विभंगनाणे ॥ २ ॥ अहावरे तच्चे विभंगनाणे-जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगनाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं पासइ-पाणे अइवाएमाणे, सुसं वएमाणे, अदिन्नमादियमाणे, मेहुणं पडिसेवमाणे, परिग्गहं परिगिण्हमाणे, राइभोयणं भुंजमाणे वा, पावं च णं कम्मं कीरमाणं णोपासइ, तस्स णमेवं हवइ-अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पन्ने, किरियावरणे जीवे,

संतेगइया समणा वा साहणा वा एवमाहंसु-नो किरियावरणे
 जीवे । जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु । तच्चे विभंग-
 नाणे । ३ । अहावरे चउत्थे विभंगनाणे-जया णं तहारूवस्स
 समणस्स वा साहणस्स वा जाव समुप्पज्जइ, से णं तेणं
 विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं देवामेव पासई, बाहिरब्भंतरए
 पोग्गले परियाइत्ता पुढेगत्तं णाणत्तं फुसिया फुरेत्ता फुट्ठित्ता
 विउव्वित्ता णं विउव्वित्ता णं चिट्ठित्तए, तस्स णं एवं हवइ-
 अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे-मुयग्गे जीवे ।
 संतेगइया समणा वा साहणा वा एवमाहंसु-अमुयग्गे जीवे ।
 जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु । चउत्थे विभंगनाणे
 ॥ ४ ॥ अहावरे पंचमे विभंगनाणे,-जया णं तहारूवस्स सम-
 णस्स वा जाव समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगनाणेणं समुप्प-
 णेणं देवामेव पासइ, बाहिरब्भंतरए पोग्गले अपरियाइत्ता-
 पुढेगत्तं णाणत्तं जाव विउव्वित्ता णं २ चिट्ठित्तए, तस्स णं एवं
 हवइ-अत्थि जाव समुप्पन्ने अमुयग्गे जीवे । संतेगइया समणा
 वा साहणा वा एवमाहंसु-मुयग्गे जीवे । जे ते एवमाहंसु
 मिच्छं ते एवमाहंसु । पंचमे विभंगनाणे ॥ ५ ॥ अहावरे छट्ठे
 विभंगनाणे, जयाणं तहारूवस्स समणस्स वा साहणस्स वा
 जाव समुप्पज्जइ । से णं ते णं विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं देवा-
 मेव पासइ-बाहिरब्भंतरिए पोग्गले परियाइत्ता वा अपरिया-
 इत्ता वा पुढेगत्तं णाणत्तं फुसेत्ता जाव विउव्वित्ता णं २ चिट्ठि-

सप्त । तस्स णं एवं हवइ-अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे
समुप्पण्णे रूवी जीवे । संतेगइया समणा वा माहणा वा एव-
माहंसु-अरूवी जीवे । जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु ।
छट्ठे विभंगनाणे ॥ ६ ॥ अहावरे सत्तमे विभंगनाणे जया णं
तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगनाणे समुप्पज्जइ,
से णं तेषां विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं पासइ-सुहुमेणं वाउका-
एणं फुडं पोग्गलकायं एयंतं वेयंतं चलंतं खुब्भंतं फंदंतं
घटंतं उदीरंतं तं तं भावं परिणमंतं । तस्स णं एवं हवइ-
अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे, सव्वभिणं जीवा
संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु-जीवा चैव
अजीवा चैव । जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, तस्स णं
इमे चत्तारि जीवनिकाया णो सम्ममुवगया भवंति, तं जहा-
पुढविकाइया, आऊ, तेऊ, वाउकाइया, इच्चएहिं चउहिं जीव-
निकाएहिं मिच्छा दंडं पवत्तेइ । सत्तमे विभंगनाणे ॥सू० २ ॥

छाया-सप्तविधं विभङ्गज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-एकदिशि लोकाभिगमः १,
पञ्चदिशि लोकाभिगमः २, क्रियाकरणो जीवः ३, सुदग्रो जीवः ४, अमुदग्रो
जीवः ५, रूपी जीवः ६, सर्वमिदं जीवाः ७ । तत्र खलु इदं प्रथमं विभङ्गज्ञानम्
यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते, स खलु
तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति-प्राचीनां वा प्रतीचीनां वा दक्षिणां वा
उदीचीनां वा ऊर्ध्वां वा यावत् सौधर्मं कल्पम् । तस्य खलु एवं भवति-अस्ति
खलु मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् एकदिशि लोकाभिगमः । सन्ति एकके
वा माहना वा एवमाहुः-पञ्चदिशि लोकाभिगमः । ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते
एवमाहुः । प्रथमं विभङ्गज्ञानम् १ । अथापरं द्वितीयं विभङ्गज्ञानम्-यदा खलु
तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्ग-

ज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति-प्राचीनां वा प्रतीचीनां वा दक्षिणां वा उदीचीनां वा ऊर्ध्वां वा यावत् सौधर्मं कल्पम् । तस्य खलु एवं भवति-अस्ति खलु मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्न-पञ्चदशि लोकाभिगमः । सन्ति एकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः-एकदशि लोकाभिगमः । ये ते एवमाहुः मिथ्या ते एवमाहुः । द्वितीयं विभङ्गज्ञानम् । अथापरं तृतीयं विभङ्गज्ञानम्-यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति-प्राणान् अतिपातयमानान् मृपावदतः, अदत्तमाददानान्, मैथुनं प्रतिसेवमानान्; परिग्रहं परिगृह्णतो, रात्रिभोजनं भुञ्जानान् वा, पापं खलु कर्म क्रियमाणं नो पश्यति । तस्य खलु एवं भवति-अस्ति खलु मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्-क्रियावरणो जीवः । सन्ति एकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः-नो क्रियावरणो जीवः । ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः । तृतीयं विभङ्गज्ञानम् ३। अथापरं चतुर्थं विभङ्गज्ञानम्-यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा यावत् समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन देवानेव पश्यति वाह्याभ्यन्तरकान् पुद्गलान् पर्यादाय पृथक् एकत्वं नानात्वं वा स्फोरयित्वा स्फोटयित्वा विकुर्वित्वा खलु विकुर्वित्वा खलु स्थातुम् । तस्य खलु एवं भवति-अस्ति खलु मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, मुदगो जीवः । सन्ति एकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः-अमुदगो जीवः । ये एवमाहुः मिथ्या ते एवमाहुः । चतुर्थं विभङ्गज्ञानम् ४। अथापरं पञ्चमं विभङ्गज्ञानम्-यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा यावत् समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन देवानेव पश्यति, वाह्याभ्यन्तरान् पुद्गलान् अपर्यादाय पृथक् एकत्वं नानात्वं यावद् विकुर्वित्वा खलु २ स्थातुम् । तस्य खलु एवं भवति-अस्ति यावत् समुत्पन्नम् अमुदगो जीवः । सन्ति एकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः मुदगो जीवः । ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः । पञ्चमं विभङ्गज्ञानम् ५। अथापरं षष्ठं विभङ्गज्ञानम्-यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा यावत् समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन देवानेव पश्यति-वाह्याभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादाय वा अपर्यादाय वा पृथक् एकत्वं नानात्वं स्पृष्ट्वा यावत् विकुर्वित्वा खलु २ स्थातुम् । तस्य खलु एवं भवति-अस्ति मम अतिशेषं ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, रूपी जीवः । सन्ति एकके श्रमणा वा माहना वा एवमाहुः-अरूपी जीवः । ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः । षष्ठं विभङ्गज्ञानम् ६। अथापरं सप्तमं विभङ्गज्ञानम्-यदा खलु तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते, स खलु तेन विभङ्गज्ञानेन समुत्पन्नेन पश्यति-सूक्ष्मेण वायुकायेन स्पृष्टं

पुद्गलकायम् एजमानं व्येजमानं चलन्तं क्षुभ्यन्तं स्पन्दमानं घट्टयन्तम् उदीरयन्तं तं तं भावं परिणमन्तम् । तस्य खलु एवं भवति—अस्ति खलु मम अतिशेषं ज्ञान-दर्शनं समुत्पन्नम्—सर्वमिदं जीवाः । सन्ति एकके श्रमणा वा माहना वा एव-माहुः—जीवाश्चैव अजीवाश्चैव । ये ते एवमाहुः मिथ्या ते एवमाहुः । तस्य खलु इमे चत्वारो जीवनिक्कायाः नो सम्यगुपगता भवन्ति, तद्यथा—पृथिवीका-यिका, आपः, तेजांसि, वायुकायिकाः । इत्येतैश्चतुर्भिर्जीवनिकायैः मिथ्यादण्डं प्रवर्तयति । सप्तमं विभङ्गज्ञानम् । सू० २ ॥

टीका—‘ सप्तविधे विभंगनाणे ’ इत्यादि—

विभङ्गज्ञानम्—वि=विरुद्धो वितथः—अन्यथा वा भङ्गः=वस्तुभङ्गो=वस्तुविकल्पो यस्मिंस्तद् विभङ्गम्, तच्च तज्ज्ञानं चेति विभङ्गज्ञानम्—मिथ्यात्वसहितोऽवधि-त्यर्थः, तन् सप्तविधं=सप्तप्रकारं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—एकदिशि—एकस्यां दिशि—पूर्वा-दिकया कदाचिदेकया दिशा लोकाभिगमः=लोकावबोधः । विभङ्गता चास्य शेष-

इस तरह श्रद्धाकी स्थिरताके लिये याँ और किसी कारणसे गच्छसे बाहर हुए किसी माधुको विभङ्गज्ञान उत्पन्न हो जाता है अतः अब सूत्रकार उसके भेदोंका कथन करते हैं—

“ सप्तविधे विभंगनाणे पण्णत्ते ” इत्यादि सूत्र २ ॥

टीकार्थ—विभंगज्ञान सात प्रकारका कहा गया है, वि—विरुद्ध वितथ—अन्यथा है, भङ्ग—वस्तुका भङ्ग—वस्तुका विकल्प जिसमें ऐसा वह विभंग है, विभंग रूप जो ज्ञान वह विभंग ज्ञान है—मिथ्यात्व सहित अवधि-ज्ञानका नाम विभंगज्ञान है, यह विभंग ज्ञान सात प्रकारका होता है, इनमें कोई एक विभङ्ग ज्ञान ऐसा होता है, जो किसी एक दिशासे—

आ प्रकारे श्रद्धानी स्थिरताने माटे अथवा णील कोर्ष कारणुने दीधि गणुमांथी नीकणी जाता कोर्ष साधुने क्यारेक विभंगज्ञान उत्पन्न थर्ष लय छे, तेथी छवे सूत्रकार विभंगज्ञानना लेहेतुं कथन करे छे.

“ सप्तविधे विभंगनाणे पण्णत्ते ” इत्यादि—

टीकार्थ—विभंगज्ञान सात प्रकारनुं कथ्युं छे. ‘वि’ अटले विशुद्ध अथवा विपरीत, अने “ लंग ” अटले वस्तुनो विकल्प. जेमां वस्तुनो विपरीत विकल्प होय छे तेने विभंग कहे छे. अथवा विभंग रूप जे ज्ञान छे तेने विभंग-ज्ञान कहे छे. अथवा मिथ्यात्वयुक्त अवधिज्ञानने विभंगज्ञान कहे छे. तेना नीचे प्रमाणे सात प्रकार कहे छे—

(१) कोर्ष अेक विभंगज्ञान अेषुं होय छे के जे दोकणी कोर्ष अेक दिशाभां-पूर्वादि अेक जे दिशाभां-रुडेदा पदार्थनो अलिगम (आध.) कशावे

દિશુ લોકસ્થાનવવોધેન તસ્ય પ્રતિવોધાદિતિ પ્રથમં વિમજ્જજ્ઞાનમ્ ૧ । તથા-
 પશ્ચદિશિ=પશ્ચસુ દિશુ લોકાભિગમો ભવતિ, કસ્યાંચિદેકસ્યાં લોકાભિગમો ન
 ભવતિ । વિમજ્જતા ચાત્રાપિ એકસ્યાં દિશિ લોકાવવોધપ્રતિવેધનાદ વોધ્યા ।
 ઇતિ દ્વિતીયં વિમજ્જજ્ઞાનમ્ ૨ । તથા-ક્રિયાવરણ:-ક્રિયૈવ આવરણં=જ્ઞાનાદિ
 સ્વરૂપાચ્છાદકં યસ્ય સ તાદૃશો જીવો, ન તુ કર્માવરણો જીવઃ ઇત્યભ્યુપગમપરં-
 વિમજ્જજ્ઞાનમ્ । એવંવિધવિમજ્જજ્ઞાનવાન્ જીવૈઃ ક્રિયમાણપ્રાણાતિપાતાદિકં
 ક્રિયામાત્રમેવ પશ્યતિ ન તુ તદ્દેતુર્કર્મ । કર્મણામ દર્શનેન અનભ્યુપગમાદત્ર વિમજ્જતા
 ઇતિ તૃતીયં વિમજ્જજ્ઞાનમ્ ૩ ।

પૂર્વાદિ દિશાસે લોકકા અભિગમ વોધ કરતા હૈ, હસમેં વિમજ્જતા શેષ
 દિશાઓમેં લોકકે અનવવોધસે હૈ, વયોંકિ શેષ દિશાઓમેં વહ ઉસકા
 પ્રતિવેધ કરતાહૈ, એસા યહ પ્રથમ વિમજ્જ જ્ઞાનહૈ? કોઈ એક વિમજ્જ જ્ઞાન
 એસા હોતાહૈ, કિ જિસસે પાંચ દિશાઓમેં લોકાભિગમ(લોકકા જ્ઞાન હોતા
 હૈ, કિસી એક દિશામેં લોકાભિગમ નહીં હોતા હૈ, યહાં પર મી વિમ-
 જ્જતા એક દિશામેં લોકકે અવવોધકા પ્રતિવેધ હોનેસે હૈ, એસા યહ
 દ્વિતીય વિમજ્જ જ્ઞાન હૈ ૨ ।

ક્રિયાવરણ—ક્રિયારૂપ આવરણવાલાહી જીવ હૈ, અર્થાત્ જ્ઞાનાદિ
 નિજ સ્વરૂપકી આચ્છાદક ક્રિયાહી હૈ—કર્મરૂપ આવરણવાલા જીવ
 નહીં હૈ—કર્મ રૂપ આવરણ જીવકે જ્ઞાનાદિ નિજસ્વરૂપકા આચ્છાદક
 નહીં હૈ એસી માન્યતા જિલ વિમજ્જ જ્ઞાનકો હૈ, એસા વહ તૃતીયવિમજ્જ

છે. બાકીની દિશાઓમાં રહેલા પદાર્થોનો બોધ તે કરાવી શકતું નથી, તે
 કારણે જ તેમાં વિલગતા સમજવી. કારણ કે લોકની બાકીની દિશાઓમાં
 રહેલા પદાર્થોનો અભિગમ (બોધ) થવાનો અહીં પ્રતિવેધ (નિવેધ) કહ્યો છે.

(૨) કોઈ એક વિલગજ્ઞાન એવું હોય છે કે જેના દ્વારા લોકની પાંચ
 દિશાઓમાં રહેલા પદાર્થોનો બોધ થાય છે, પણ બાકીની એક દિશામાં રહેલા
 પદાર્થોનો અભિગમ (બોધ) તેના દ્વારા થતો નથી. અહીં પણ એક દિશામાં
 લોકના અવબોધના પ્રતિવેધને કારણે તે જ્ઞાનમાં વિલગતા સમજવી બેધએ.

(૩) ક્રિયાવરણ—“ક્રિયા રૂપ આવરણવાળો જ હવ છે. એટલે કે
 જ્ઞાનાદિ નિજસ્વરૂપની આચ્છાદક ક્રિયા જ છે. કર્મરૂપ આવરણવાળો હવ
 નથી એટલે કે કર્મરૂપ આવરણ હવના જ્ઞાનાદિ નિજસ્વરૂપનું આચ્છાદક
 નથી.” આ પ્રકારની માન્યતાવાળું જે વિલગજ્ઞાન છે તેને વિલગજ્ઞાનના
 ત્રીજા ભેદ રૂપ સમજવું. આ પ્રકારના વિલગજ્ઞાનવાળો હવ હવો દ્વારા

तथा-मुद्गो जीवः-बाह्याभ्यन्तररचितशरीरो जीव इत्यभ्युपगमपरं विभङ्ग-
ज्ञानम् । बाह्याभ्यन्तरपुद्गलानादाय वैक्रियं कुर्वतो भवनपत्यादीन् देवान् दृष्ट्वा
एवं विभङ्गज्ञानमुत्पद्यते । इति चतुर्थं विभङ्गज्ञानम् ।

तथा-अमुद्गो जीवः-भवधारणीयापेक्षया बाह्याभ्यन्तरपुद्गलादानं विनैव
रचितशरीरो जीव इत्यभ्युपगमपरं विभङ्गज्ञानम् । बाह्याभ्यन्तरपुद्गलान् अना-
दायैव वैक्रियकरणेन रचितशरीरान् देवान् दृष्ट्वा एवंविधं विभङ्गज्ञानमुत्पद्यते

ज्ञान है । इस प्रकारके विभङ्ग ज्ञानवाला जीव जीवों द्वारा क्रियमाण
प्राणातिपातादिक क्रियामात्रकोही जानताहै-देखताहै उसके हेतुभूत कर्मको
नही देखताहै, यहां पर विभङ्गता कर्मोंके नहीं दिखनेके कारण उसकी
अनभ्युपगमतासे(नहीं जाननेसेहै)जो विभङ्गज्ञान ऐसा मानताहै, कि बाह्य
और आभ्यन्तर पुद्गलोंसे रचित शरीरवालाही जीव है, विभङ्ग ज्ञानीको
बाह्य आभ्यन्तर पुद्गलोंको ग्रहण करके वैक्रियकी उत्तर वैक्रिय शरीरकी
रचना करते हुए भवनपत्यादिक देवोंको देखकर ऐसा यह विभङ्ग
ज्ञान उत्पन्न होता है । यह चौथे प्रकारका मुद्गनामका विभङ्गज्ञान
है । अमुद्गोजीव भवधारणीय शरीरकी अपेक्षासे पांचवें नम्बरवाला
विभङ्गज्ञान ऐसा मान्यतावाला होता है, कि जीव बाह्य आभ्यन्तर
पुद्गलोंको ग्रहण किये बिनाही रचित शरीरवाला होता है, अर्थात्-
बाह्य एवं आभ्यन्तर पुद्गलोंको बिना ग्रहण कियेही रचित शरीरवाला
देवोंको देखकर इस प्रकारका यह विभङ्ग ज्ञान उत्पन्न होता है

क़राती प्राण्वातिपादिक क्रिया मात्रने न् न्ने छे-हेणे छे, परन्तु तेना डेतलूत
कर्मने हेणतो नथी. अडीं कर्मने नडीं हेणने करण्णु-तेनी अनभ्युपगमताने
दीधे विलंगता समजवी.

(४) मुद्गथ नामतुं विलंगज्ञान—जे विलंगज्ञान अणु भाने छे के
आह्य अने आभ्यन्तर पुद्गलोथी रचित शरीरवाणो न् अणु छे, ते विलंग-
ज्ञानने, योथा प्रकारतुं विलंगज्ञान कडे छे लवनपति आदि देवाने आह्य
अने आभ्यन्तर पुद्गलाने अडणु करीने, उत्तर वैक्रिय शरीरनी रचना करता
लेधने विलंगज्ञानीमां आ प्रकारतुं विलंगज्ञान उत्पन्न थध न्णय छे. आ
योथा प्रकारतुं मुद्गथ नामतुं विलंगज्ञान छे.

(५) अमुद्गथ विलंगज्ञान—आह्य अने आभ्यन्तर पुद्गलाने अडणु कर्था
बिना न् रचित शरीरवाणा देवाने लेधने अणु विलंगज्ञान कध अणुमां
उत्पन्न थध न्णय छे अने आभ्यन्तर पुद्गलाने अडणु कर्था बिना न् रचित
शरीरवाणो थध न्णय छे. लवधारणीय शरीरनी अपेक्षाअे पांचमां प्रकारतुं
विलंगज्ञान आ प्रकारनी मान्यता धरावे छे.

इति पञ्चमं विभङ्गज्ञानम् । ५ । तथा-रूपी जीवः-वैक्रियशरीरवतो देवान् दृष्ट्वा रूप्येव जीव इति यदभ्युपगच्छति तत् षष्ठं विभङ्गज्ञानम् । ६ ।

तथा-सर्वमिदं जीवाः-वायुना चलन्तं पुद्गलकायं दृष्ट्वा ' इदं सर्वं वस्तु जीवा एव, चलनधर्मत्वात् ' इति निश्चयतो यदभ्युपगच्छति, तत्र सप्तमं विभङ्ग-ज्ञानम् ७ इति । इत्थं सामान्यतः सप्तविधं विभङ्गज्ञानमुद्दिश्य सम्प्रति तदेव विशेषतो विवरीतुमाह-' तत्थ ' इत्यादि ।

तत्र=तेषु सप्तसु विभङ्गज्ञानेषु मध्ये खलु इदं वक्ष्यमाणं प्रथमं विभङ्ग ज्ञानम्, तथाहि-यदा=यास्मिन् काले तथारूपस्य=तथाविधस्य श्रमणस्य=निर्ग्रन्थ मुनेर्वा, माहनस्य=मूलगुणधरस्य वा, विभङ्गज्ञानं समुत्पद्यते, स खलु विभङ्गज्ञानवान् श्रमणो माहनो वा समुत्पन्नेन तेन विभङ्गज्ञानेन प्राचीनां=पूर्वादिशं, वा-अथवा-

“रूपीजीवः” वैक्रिय शरीरवाले देवोंको देखकर रूपीही जीवहै ऐसा जो मानता है, वह छठे नम्बरका विभंग ज्ञान है । “ सर्वमिदं जीवाः ” वायुसे चलित पुद्गलकायको देखकर ये सब वस्तुएँ जीव स्वरूप है, क्योंकि ये सब चलन धर्मवाली है, ऐसी मान्यतावाला जो विभङ्ग ज्ञान होता है, वह सातवें प्रकारका विभंगज्ञान है । इस प्रकारसे सामान्य-प्रकारके विभङ्गज्ञानका कथन करके अब सूत्रकार विशेषरूपसे इसका कथन करते हैं-“ तत्थ ” इत्यादि-जब इन सात प्रकार विभंगज्ञान तथाविध श्रमणके निर्ग्रन्थ मुनिके अथवा-माहनके मूल गुण धारीके उत्पन्न होता है-तब वह विभंग ज्ञानवाला श्रमण अथवा माहन समु-

(૬) “રૂપી જીવઃ” વૈક્રિય શરીરવાળા દેવોને જોઈને “રૂપી જીવ એવો છે,” આ પ્રકારની માન્યતા જે વિભંગજ્ઞાનવાળો એવો ધરાવે છે, તે જીવના વિભંગજ્ઞાનને છઠ્ઠા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન કહે છે.

(૭) “સર્વમિદં જીવાઃ” વાયુથી ક'પાયમાન થતાં પુદ્ગલકાયને જોઈને “સઘળી વસ્તુઓ એવો રૂપ જ છે, કારણ કે તેઓ ચલન ધર્મવાળી છે,” આ પ્રકારની માન્યતાવાળું જે વિભંગજ્ઞાન છે તેને સાતમાં પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન કહે છે.

આ પ્રકારે વિભંગજ્ઞાનના સાત પ્રકારોનું સામાન્ય કથન કરીને હવે સૂત્રકાર તેમનું વિસ્તૃત નિરૂપણ કરે છે. “તત્થ” ઇત્યાદિ—

ઉપર દર્શાવેલા સાત પ્રકારના વિભંગજ્ઞાનમાંથી પહેલા પ્રકારનું વિભંગ-જ્ઞાન ત્યારે કોઈ શ્રમણ નિર્ગ્રન્થને અથવા માહણને (મૂલ શુભધારીને) ઉત્પન્ન થાય છે, ત્યારે તે વિભંગજ્ઞાનવાળો તે શ્રમણ અથવા માહણ તેના તે

प्रतीचीनां=पश्चिमां दिशं, दक्षिणां वा दिशम्, उदीचीनाम्=उत्तरां वा दिशम्, ऊर्ध्वां वा दिशं यावत्सौधर्मं कल्पं पश्यति । अधोदिक् तु विभङ्गज्ञानिनां दृश्यत्वेन नोक्ता । सा तु अवधिज्ञानिनामपि दुरधिगमा भवति, विभङ्गज्ञानिनां तु सुतरामेवेति त्रिस्थानके चतुर्थोद्देशे प्रपञ्चितं, तत एव बोध्यमिति । ततस्तस्य=पूर्वदिगाद्यन्यतमदर्शिनो विभङ्गज्ञानिन एव भवति=एवंविधो विकल्पो जायते-यत् सम अतिशेषम् शेषाण्यतिक्रान्तम्-अतिशेषं-अतिशयं ज्ञानदर्शनम्-ज्ञानं च दर्शनं चेति ज्ञानेन सहितं दर्शनं चेति समुत्पन्नम् । किमात्मकं ज्ञानदर्शनं समुत्प-

त्पन्न उस विभंग ज्ञानसे पूर्व दिशाको अथवा उत्तर दिशाको अथवा उर्ध्व दिशाको यावत् सौधर्मकल्पको देखता है, विभंग ज्ञानियोंको अधोदिशाका अवलोकन नहीं कहा गया है, क्योंकि अवधिज्ञानियोंको भी उसका देखना जानना दुरधिगम रूप कहा गया है, अतः जब वह अवधिज्ञानियों द्वारा भी दुरधिगम है, तब विभंग ज्ञानियोंके लिये तो दुरधिगम है ही यह बात अपने आपही सध जाती है, इस विषयको यदि अच्छी तरहसे देखना हो तो यह हमने त्रिस्थानकके चतुर्थ उद्देशकमें विस्तारके साथ विवेचित किया है, सो वहाँसे देख लेना चाहिये अत जब वह विभंगज्ञानी पूर्व दिशा आदिमेंसे किसी एक दिशाका अवलोकन करता है-तब उसका ऐसा विचार होता है-उसके मनमें ऐसा विकल्प उठता है-कि मुझे अतिशय ज्ञान एवं दर्शन-अथवा

विलंगज्ञानना प्रलापथी केअ पथ्य अेक दिशाभां रडेला दोकगत पदाथेने नेछ शके छे. विलंगज्ञानी अधोदिशानुं अवलोकन करी शकनो नथी, परन्तु पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण अथवा उर्ध्व दिशानुं अवलोकन करी शके छे उर्ध्व दिशाभां सौधर्मकल्प पर्यन्तना पदाथे ते नेछ शके छे. विलंगज्ञानीअो अधो-दिशानुं अवलोकन करी शकता नथी. अवधिज्ञानीअेने भाटे पथ्य अधोदिशाभां देअवानुं दुरधिगम इय कहुं छे. ने अधोदिशानुं अवलोकन अवधिज्ञानीअो भाटे पथ्य दुरधिगम इय कहुं छे, ते विलंगज्ञानीअो भाटे दुरधिगम इय डोय अेभां नवाछ शी !

त्रिस्थानकना योथा उद्देशाभां आ विषयनुं विस्तारपूर्वक निरूपण करवाभां आन्थुं छे, तो निज्ञासु पाठकेअे ते त्याथी वांसी लेवु.

पडेला प्रकारना विलंगज्ञानवाणे पुरुष पूर्वादि केअ पथ्य अेक दिशाभां रडेला पदाथेने ने लक्ष्मी-देभी शके छे. तेथी आ विलंगज्ञान प्रकट थता ने तेनां भेनभां अेवो विचार थाय छे-अेवो विकल्प उठे छे के मने अतिशय

ન્નમ્ ? इत्याह—एकदिशि लोकाभिगमः—एकस्यामेव दिशि लोकोपलम्भो नत्वन्यासु दिक्षु इति । सन्ति पुनरेके श्रमणा वा माहना वा, ये एवमाहुः—पञ्चदिशि लोकाभिगमः—पञ्चसु दिक्षु लोकोपलम्भ इति । ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः, यत एकदिश्येव लोकोपलम्भ इति प्रथमं विभङ्गज्ञानमिति ? । द्वितीयं विभङ्गज्ञानमपि विभङ्गज्ञानवद् व्याख्येयम् । नवरमत्र वा शब्दाः समुच्चयार्थकाः बोध्याः । प्रथमभङ्गे एकदिशि लोकाभिगमः, अत्र तु पञ्चदिशीति । इति द्वितीयम् २. । यदा

ज्ञान सहित दर्शन उत्पन्न हो चुका है, इससे मुझे ऐसा जानना देखना होता है—मैं ऐसा जानना देखना हूँ—कि एकही दिशामें लोकका उपलम्भ है, अन्य दिशाओंमें नहीं है, अर्थात् लोक किसी एकही दिशामें है, सब दिशाओंमें नहीं है, ऐसाही बतानेवाले ज्ञान दर्शन मुझे उत्पन्न हुए हैं. अतः मेरा यधी पूर्वोक्त विचार ठीक है, इस प्रकारकी मान्यता-वाला जो उसे ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वह विभंग इसलिये कहा गया है, कि उसने शेष दिशाओंमें लोकके होने का निषेध किया है, क्योंकि ऐसा तो नहीं कि लोक एकही दिशामें हो—अन्य दिशाओंमें नहीं हो—तथा कितनेक श्रमण अथवा माहन ऐसे होते हैं जो ऐसा कहते हैं कि—पांच दिशाओंमेंही-लोकका उपलब्धि है, यह विभंगज्ञान इसलिये है, कि यहाँ एक दिशामें लोकका उपलम्भ (देखना) उसने निषिद्ध किया है; यही वान—“ये ते एवमाहुः मिथ्या ते एवमाहुः” इस

ज्ञान અને દર્શન—અથવા જ્ઞાનસહિત દર્શન ઉત્પન્ન થઈ ગયું છે. તેના પ્રભાવથી હું એવું બાણી અને દેખી શકું છું કે એક જ દિશામાં લોકનું અસ્તિત્વ છે, અન્ય દિશાઓમાં લોકનું અસ્તિત્વ જ નથી. આ વિભંગજ્ઞાનના પ્રભાવથી તે વિભંગજ્ઞાનીમાં આ પ્રકારની માન્યતા ધર કરે છે, તે કારણે બાકીની દિશાઓમાં લોકનું અસ્તિત્વ હોવાનો જ તે નિષેધ કરે છે. તેની આ માન્યતા ખોટી જ છે લોકનું અસ્તિત્વ તો બધી જ દિશામાં હોય છે. એક જ દિશામાં લોકનું અસ્તિત્વ સ્વીકારવાને કારણે તેના તે જ્ઞાનને વિભંગજ્ઞાન કહે છે.

કેટલાક શ્રમણો અથવા માહણોમાં બીજા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ બંધ છે. તેઓ લોકની અંદર કોઈ પાંચ દિશાઓમાં રહેલા પદાર્થોને બાણી દેખી શકે છે, પરંતુ બાકીની એક દિશામાં રહેલા પદાર્થોને જોઈ શકતા નથી. તેથી તેઓ તે પાંચ દિશાઓમાં જ લોકનું અસ્તિત્વ માની લે છે. બાકીની એક દિશામાં લોકના અસ્તિત્વને તેઓ સ્વીકારતા નથી, તેથી જ તેમના જ્ઞાનને વિભંગજ્ઞાન કહ્યું છે. એ જ વાત સૂત્રકારે “ये ते एवमाहुः

ચ તથાવિધસ્ય શ્રમણસ્ય વા માહનસ્ય વા તૃતીયં વિભક્તજ્ઞાનમુત્પદ્યતે, તદા સ પ્રાણાત્તિપાતાન્ મૃષાયાદાન્ અદત્તાદાનાનિ, મૈથુનસેવાં, પરિગ્રહસંગ્રહં, રાત્રિભોજનં વા કુર્વતો જીવાન્ પશ્યતિ, ક્રિયમાણં પાપં કર્મં ચ ન પશ્યતિ । તતઃ સ ક્રિયા-વરણો જીવ इति प्रतिपद्यते, કર્માવરણો જીવ इति ન પ્રતિપદ્યતે । इति તૃતીયં વિભક્તજ્ઞાનમ્ ૩ । તથા—યસ્ય તથાવિધસ્ય શ્રમણસ્ય વા માહનસ્ય વા ચતુર્થં વિભક્તજ્ઞાનમુત્પદ્યતે, તતઃ સ તેન વિભક્તજ્ઞાનેન દેવાન્ પશ્યતિ, કર્મભૂતાન્ દેવાન્ પશ્યતિ ? इत्याह—‘वाहिरुभंतरण’ इत्यादि ।

સૂત્ર પાઠ દ્વારા પ્રકટ કી ગઈ, જ્ય તથાવિધ શ્રમણકો અથવા માહનકો તૃતીય વિભંગ જ્ઞાન ઉત્પન્ન હોતા હૈ, ત્ય વહ પ્રાણાતિપાતોંકો—મૃષા-વાદોંકો, અદત્તાદાનોંકો, મૈથુન સેવાકો, પરિગ્રહકે સંગ્રહકો, ઓર રાત્રિ-ભોજનકો કરતે હુએ જીવોંકો દેખતા હૈ, ક્રિયમાણ પાપ કર્મકો નહીં દેખતા હૈ, ઇસસે જીવ ક્રિયાવરણવાલા હૈ, ઇસી ડસકી માન્યતા હો જાતી હૈ, કર્મરૂપ આવરણવાલા જીવ હૈ—ઇસી ડસકી માન્યતા નહીં રહતી હૈ, ઇસા ડસકા જ્ઞાન વિભંગ ઇસલિયે કહા ગયા હૈ, કિ ઘહ જીવકો જો કિ વાસ્તવિક રૂપમં કર્માવરણવાલા હૈ, ઇસા ન માનકર વિપરીત રૂપ ક્રિયાવરણવાલા માનતા હૈ, ઇસા યહ તૃતીય વિભંગ જ્ઞાન હૈ, તથા જિસ તથાવિધ શ્રમણકો અથવા માહનકો ચતુર્થ વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન હોતા હૈ, ડસસે વહ ઇસ પ્રકારસે દેવોંકોં દેખતા હૈ—કિ યે

મિથ્યા તે एवमाहु. ” આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે. પાંચ જ દિશામાં લોકનું અસ્તિત્વ સ્વીકારી તેમની આ માન્યતા પણ ખોટી જ છે.

જે શ્રમણ અથવા માહણમાં ત્રીજા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, તે પ્રાણાતિપાત, મૃષાવાદ, અદત્તાદાન, મૈથુન સેવન, પરિગ્રહ અને રાત્રિભોજન કરતાં જીવને દેખે છે, પણ ક્રિયામાણ પાપકર્મને દેખતો નથી. તે કારણે તે વિભંગજ્ઞાની એવું માનતો થાય છે કે જીવ ક્રિયાવરણવાળો જ છે, તે જીવને કર્મરૂપ આવરણવાળો માનતો નથી. તેના આ જ્ઞાનને વિભંગ-જ્ઞાન કહેવાનું કારણ એ છે કે જીવ વાસ્તવિક રીતે તો કર્માવરણવાળો હોવા છતાં પણ તે તેને ક્રિયાવરણવાળો માને છે આ પ્રકારની વિપરીત માન્યતા તે જ્ઞાનને કારણે જ તેનામાં આવી હોય છે, તેથી જ તેના તે પ્રકારના જ્ઞાનને વિભંગજ્ઞાન કહે છે

ચોથા પ્રકારના વિભંગજ્ઞાનનું વિવેચન—જે કોઈ શ્રમણ અથવા માહણને ચોથા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, તે એવું માનતો થઈ જાય

वाह्याभ्यन्तरान् वाह्याःशरीरावगाहक्षेत्राद् वहिर्भूताश्चते आभ्यन्तराः= शरीरावगाहक्षेत्रान्तरालवर्तिनश्च ते तथा, तान् पुद्गलान्=वैक्रियवर्गणारूपान् तद्भिन्नान् वा पर्यादाय=वैक्रियसमुद्घातेन समन्ताद् गृहीत्वा, स्पृष्टा=तानेव पुद्गलान् स्पर्शविपयीकृत्य, स्फोरयित्वा स्पन्दयित्वा, स्फोटयित्वा=विकसितो- कृत्य पृथक्-देशकालभेदेन पृथक्-रचित् कदाचिदित्यर्थः, एकत्वम्=एकरूपत्वं नानात्वं=नानारूपत्वं विकुर्व्य विकुर्व्य उत्तरवैक्रियतया किञ्चित्कालं स्थातुं प्रवृ- त्तान् देवान् पश्यति । एवंविधान् देवान् पश्यतस्तस्य एवंविधो विकल्पो जायते यद्-मुद्ग्रः=वाह्याभ्यन्तरपुद्गलरचितशरीरो जीव इति । इति चतुर्थं विभङ्ग- ज्ञानम् ४ । तथा-यस्य तथाविधस्य श्रमणस्य माहनस्य वा पञ्चमं विभङ्गज्ञान

देव वाह्य-शरीरावगाह क्षेत्रसे वहिर्भूत, एवं आभ्यन्तर शरीरावगाह क्षेत्रके अन्तरालवर्ती-वैक्रियवर्गणारूप पुद्गलोंको अथवा तद्भिन्न पुद्गलोंको वैक्रिय समुद्घात द्वारा चारों ओरसे ग्रहण करके उन्हीं स्पर्श करके, उन्हेही स्पन्दित करके उन्हेही विकसित करके देशकालके अनुसार कदाचित् एक रूपसे कदाचित् नाना रूपसे विक्रिया करके उत्तर विक्रि- यामें कुछकाल तक स्थित रहते हैं, अतः इस प्रकारके देवोंको देखकर उसके मनमें ऐसा विकल्प उत्पन्न हो जाता है, कि जीव वाह्य एव आभ्यन्तर पुद्गलोंसे रचित शरीरवाला है, ऐसा यह ज्ञान विभंग इस- लिये कहा गया है, कि इस ज्ञानमें यह शरीर नामकर्मके द्वारा रचा गया है, इस बातको छोड़ दिया गया है, ऐसा यह विभंग ज्ञान चतुर्थ- प्रकारका है, तथा-जिस तथाविध श्रमणको अथवा माहनको पाँचवाँ

छे के देव वाह्य अने आभ्यन्तर पुद्गलोंसे बडे रचित शरीरवाला होय छे. तेनी आ प्रकारनी मान्यतायुं कारण नीचे प्रमाणे छे—

ते देवाने वाह्य (शरीरावगाह क्षेत्रनी पहारना) अने आभ्यन्तर (शरीरावगाह क्षेत्रनी अंदरना) वैक्रिय वर्गणाइय पुद्गलाने अथवा तेना करतां. बिन्न पुद्गलाने वैक्रिय समुद्घात बडे बोभेरथी थडण करीने, तेमने स्पर्श करीने, तेमने न स्पन्दित करीने, तेमने न विकसित करीने. देशकाल अनुसार क्यारेक अेक इये अने क्यारेक विविध इये विक्रिया करीने उत्तर विक्रियामां अमुक काल सुधी स्थित रहेता नेवे छे. देवाने आ प्रकारे उत्तर वैक्रिय शरीरनी रचना करता नेधने तेओ अेपुं मानी वे छे के अथवा वाह्य अने आभ्यन्तर पुद्गलोंसे रचित शरीरवाला होय छे. वास्तविक रीते नेधने तेओ आ शरीर नामकर्म द्वारा रचायुं छे. तेथी उपर्युक्त विपरीत मान्यता- वाणा ते ज्ञानने विभंगज्ञान कडेवामां आण्युं छे

मुत्पद्यते । ततः स तेन विभङ्गज्ञानेन देवान् पश्यति, कीदृशान् देवान् पश्यति ? इत्याह— 'वाहिरब्धन्तरए' इत्यादि ।

बाह्याभ्यन्तरान् पुद्गलान् अपर्यादाय=वैक्रियसमुद्घातापेक्षया अगृहीत्वा उत्पत्तिक्षेत्रस्थांस्तूत्पत्तिकाले गृहीत्वा, स्पृष्ट्वा=उत्पत्तिक्षेत्रस्थान्-पुद्गलान् स्पर्श-विषयीकृत्य, स्फोरयित्वा, स्फोटयित्वा पृथक्=क्वचित् कदाचित् एकत्वम्=एकरूपत्वम्-भवधारणीयशरीरस्य एकत्वम् एकदेशापेक्षया कण्ठाद्यवयवापेक्षया वा, नानात्वं=नानारूपत्वम्-अनेकदेशापेक्षया हस्ताङ्गुलाद्यवयवापेक्षया वा त्रिकुर्व्य विकुर्व्य स्थातुं प्रवृत्तान् देवान् पश्यति । ततस्तस्य एवं विकल्पो जायते यत्-अमुदग्रः=अबाह्याभ्यन्तरपुद्गलरचितशरीरो जीवो न तु मुदग्रोजीव इति । इति पञ्चमं विभङ्गज्ञानम् ।

विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है-तब वह उस विभंग ज्ञानसे इस प्रकार देवोंको देखता है, और उन्हें देखकर वह ऐसा विचार करता है-कि ये देव बाह्य एवं आभ्यन्तर पुद्गलोंको वैक्रिय समुद्घातकी अपेक्षा नहीं ग्रहण करके तथा उत्पत्ति क्षेत्र स्थित पुद्गलोंको तो उत्पत्ति कालमेंही ग्रहण करके, एवं उत्पत्ति क्षेत्र स्थित पुद्गलोंको स्पर्शन्द्रियका विषयभूत करके उन्हें स्पन्दित करके क्वचित् एकरूपसे-भवधारणीय शरीरकी अपेक्षासे अथवा कण्ठ आदि अवयवकी अपेक्षासे-एक रूपवाली-अथवा-नाना रूपसे अनेक देवोंकी अपेक्षासे या हस्त-अङ्गुलि आदि अवयवोंकी अपेक्षासे अनेक रूपवाली-चार २ विक्रिया करते हैं, और इसी विक्रियामें इस समय रहते हैं, अतः जीव अमुदग्र है-

पात्र्यां प्रकारतुं विलंगज्ञान-७ श्रमण अथवा आडणुने पात्र्यां प्रकारतुं विलंगज्ञान उपन्न थर्णन्य छे । ते अत्र भानतो थर्णन्य छे के एव अमुदग्र छे-अटवे के एत आह्य अने आभ्यन्तर पुद्गलो वडे रचित शरीरवाणो नथी । तेनी आ भान्यतानुं कारण आ प्रमाणे छे-

ते तेना विलंगज्ञानथी एवुं हेणे छे के-हेवो आह्य अने आभ्यन्तर पुद्गलोने वैकीय समुद्घातनी अपेक्ष अे आडणु न करीने तथा उत्पत्ति क्षेत्रस्थित पुद्गलोने ते उत्पत्तिकालमां ७ अडणु करीने, अने उत्पत्ति क्षेत्रस्थित पुद्गलोने स्पर्शन्द्रिना विषयभूत करीने, तेमने स्पन्दित करीने क्यारेक अेक इपेक्षलव-धारणीय शरीरनी अपेक्षाअे अथवा कंठ आदि अवयवनी अपेक्षाअे अेक इपवाणी अथवा विविध इपे-अनेक हेवोनी अपेक्षाअे अथवा डाथ, आंगणी आदि अवयवोनी अपेक्षाअे अनेक इपवाणी विक्रियामां तेअो आ समने

તથા—યસ્ય તથારૂપસ્ય શ્રમણસ્ય વા માહનસ્ય વા પઠં વિભક્તજ્ઞાનમુત્પદ્યતે, સ સમુત્પન્નેન તેન જ્ઞાનેન પશ્યતિ—વાહ્યાભ્યન્તરપુદ્ગલાન્ પર્યાદાય—અપર્યાદાય વા પૂર્વવત્ એકરૂપત્વમ્ અનેકરૂપત્વં વા ત્રિકુર્વ્ય ત્રિકુર્વ્ય સ્થાતું પ્રવૃત્તાન્ દેવાન્ । એવંવિષદેવદર્શનેન સ 'રૂપી એકજીવઃ' ઇતિ પ્રતિપદ્યતે । રૂપમિન્નસ્ય કદાચિદપ્યદર્શનાત્ 'અરૂપી જીવઃ' ઇતિ તુ ન પ્રતિપદ્યતે ઇતિ પઠં વિભક્ત જ્ઞાનમ્ ॥ તથા—યસ્ય તથારૂપસ્ય શ્રમણસ્ય માહનસ્ય વા સમમં વિભક્તજ્ઞાનમુત્પદ્યતે, સ સમુત્પન્નેન તેન વિભક્તજ્ઞાનેન પુદ્ગલાયં પશ્યતિ, કીદશં પુદ્ગલાયં પશ્યતિ ?

વાહ્યાભ્યન્તર પુદ્ગલોંસે રચિત શરીરવાલા નહીં હૈ, એસા યહ પાંચવાં વિભક્ત જ્ઞાન હૈ, તથા—જિસ તથા રૂપવાલે શ્રમણકો અથવા માહનકો છઠા વિભક્ત જ્ઞાન ઉત્પન્ન હોતા હૈ, વહ ઉસ સમય ઉસ જ્ઞાનસે દેવોંકો હસ પ્રકારસે દેલના હૈ—કિ વાહ્ય ઓર આભ્યન્તર પુદ્ગલોંકો ગ્રહણ કરકે ઓર નહીં ગ્રહણ કરકે યે દેવ એક રૂપવાલી અથવા અનેક રૂપવાલી વિક્રિયા ઘાર ૨ કરતે હૈં, ઓર અવ મી યે હસી પ્રકારકી વિક્રિયામૈ સ્થિત હૈં, અતઃ જીવરૂપી હૈ, એસા વહ દેવોંકો ઉસ વિભંગ જ્ઞાનસે દેલ-કર માનને લગતા હૈ, એસા યહ છઠા વિભક્ત જ્ઞાન હૈ, હસ જ્ઞાનમૈ વિભ-ક્તતા હસ લિયે કહી ગઈ હૈ, કિ જીવ સૂલ રૂપમૈ રૂપી નહીં હૈ, અરૂપી હૈ, પરન્તુ એસા દર્શન ઉસે કમી હોતા નહીં હૈ । તથા જિસ શ્રમણકો તથા માહનકો સાતવાં વિભક્ત જ્ઞાન ઉત્પન્ન હોતા હૈ, વહ ઉત્પન્ન હુણ

• રહેલોં છે. તેથી જીવ અમુદ્ય છે—બાહ્ય અને આભ્યન્તર પુદ્ગલો વડે રચિત શરીરવાળો નથી. આ પ્રકારનું આ પાંચમું વિભંગજ્ઞાન છે.

છઠા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન—જે શ્રમણ અથવા માહણને છઠા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. તે પોતાના તે જ્ઞાનના પ્રભાવથી દેવાને બાહ્ય અને આભ્યન્તર પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરીને અને ગ્રહણ કર્યા વિના એક રૂપવાળી અથવા અનેક રૂપવાળી વિક્રિયા કરતાં, અને તે કાળે પણ એ જ પ્રકારની વિક્રિયામાં સ્થિત રહેલા નિહાળે છે. તેથી તે હાલતમાં દેવાને (પોતાના વિભંગજ્ઞાન) વડે ભેદને તે એવું માનતો થઈ જાય છે કે જીવ રૂપી જ છે. આ જ્ઞાનમાં વિભંગતા માનવાતું કારણ એ છે કે જીવ મૂળ રૂપે વાસ્તવિક રૂપે—નથી પણ અરૂપી જ છે. પરન્તુ વિભંગજ્ઞાનીને એવું દર્શન કહી થતું જ નથી.

સાતમા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન—જે શ્રમણ અથવા માહણને સાતમા પ્રકારનું વિભંગજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે તે તેના તે વિભંગજ્ઞાન વડે તે

इत्याह—'सुहुमेण वाउकाएण' इत्यादि। सूक्ष्मेण=मन्देन, नतु सूक्ष्मनामकर्मोदयवर्तिना, तस्य वस्तु चालनासमर्थत्वात्; वायुकायेन स्पृष्टम् अतएव—एजमानं=कम्पमानं, व्येजमानं=विशेषेण कम्पमानं, चलन्तम्=स्थानान्तरं संक्रमन्तम्, क्षुभ्यन्तम्=अधो निमज्जन्तम्, स्पन्दमानम्=ईषच्चलन्तं घट्टयन्तं=वस्त्वन्तरं स्पृशन्तम्, उदीरयन्तं=वस्त्वन्तरं, प्रेरयन्तं, तथा—तं तम्=निर्वक्तुमशक्यमनेकविधं भावं=पर्यायं परिणमन्तं=गच्छन्तं पश्यतीति।

ततः आत्मानमतिशयज्ञानसम्पन्नं मन्यमानः स विभङ्गज्ञानी मन्यते—इदं प्रत्यक्षं सर्वं पुद्गलजातं जीवाः—कम्पनादि लक्षणधर्मवत्त्वात्। ये तु श्रमणा माहनाः कम्पनादि—धर्म—विशिष्टमपि पुद्गलजातं जीवा अजीवाश्चेति प्राहुः, ते

उस विभङ्ग ज्ञानसे पुद्गलकायको इस प्रकारसे देखता है, कि मन्द वायुसे (सूक्ष्म नामकर्मके उदयवर्ती सूक्ष्म वायुसे नहीं, क्योंकि सूक्ष्मनाम कर्मोदय वशवर्ती वायुद्वारा किसीमें भी कंपन उत्पन्न नहीं किया जाता है) ये वस्तुएँ हलाई जाती हैं, विशेष रूपसे कंपाई जाती हैं, एक स्थानसे दूसरे स्थान पर पहुँचा दी जाती हैं, ऊपरसे नीचे गिरा दी जाती हैं एक वस्तुको दूसरी वस्तुके साथ मिला दिया जाता है, इत्यादि और भी रूपसे कहनेके लिये अशक्य स्थितिवाला जब वह पुद्गलकायको देखता है—तब वह अपने आपको अतिशय ज्ञानवाला मानता हुआ वह विभंग ज्ञानी ऐसा मानने लगता है, कि ये सब प्रत्यक्षभूत पुद्गलजात जीवस्वरूप हैं।

क्योंकि कम्पनादिरूप धर्मवाले ये सब पुद्गल जात हैं, जिन श्रमणोंने अथवा माहनोंने कम्पनादि धर्म विशिष्ट भी पुद्गल जातको जीव

पुद्गलकायना विषयमां अपुं जेवे छे के मन्दवायु वडे (सूक्ष्म नामकर्मना उदयवर्ती सूक्ष्मवायु वडे नहीं, कारण के सूक्ष्म नामकर्मोदय वशवर्ती वायु द्वारा केछ पण वस्तुमां कंपन उत्पन्न करातुं नथी) आ वस्तुओ थोडी थोडी कंपाववामां आवे छे, विशेष इपे कंपाववामां आवे छे, अेक स्थणथी थीने स्थणे लठ नवामां आवे छे, उपरथी नीचे पाडी नाणवामां आवे छे, अेक वस्तु साथे थीण वस्तुने अथडाववामां आवे छे, इत्यादि थीण पण धणी स्थितिवाणा पुद्गलकायने लेधने, पोतने अतिशय ज्ञानी मानतो अेवो ते विलगज्ञानी अपुं मानवा लागे छे के "आ जधां प्रत्यक्षभूत पुद्गलो एव इथ छे, कारण के ते पुद्गलोमां कंपन दि एवना धर्मोना सइलाव छे, जे श्रमणोअे अथवा माहणोअे कंपनादि धर्मवाणां पुद्गलोने पण एवइप अने अणवइप कइयां छे, तेमणु अे जधुं जूडं न कइछे."

મિથ્યા પ્રાહુરિતિ સ પ્રતિપદ્યતે । તસ્યૈવંવિધવિભક્તજ્ઞાનિનઃ પૃથિવ્યપ્તેજો વાયુ-
કાયિકાશ્ચત્વારો જીવનિકાયાઃ=જીવસમૂહા ન સમ્યક્ ઉપગતાઃ=અચલનાવસ્થાયાં
પૃથિવ્યાદયો જીવત્વેન જ્ઞાતા ભવન્તિ ।

અર્થ ભાવઃ—એવંવિધવિભક્તજ્ઞાની ચલનદોહદાદિધર્મવતસ્ત્વસાનેવ દોહદાદિ-
ત્રસધર્મવતો વનસ્પતીનેવ ચ જીવત્વેનાભ્યુપગચ્છતિ । પૃથિવ્યપ્તેજોવાયુકાયિ-
કાંસ્તુ વાયુચલનેન સ્વતઃચલનેન ચ સ ત્રસત્વેનૈવ જાનાતિ, સ્થાવરજીવત્વેન તુ
તાન્ જાનાતીતિ । इति हेतोः=अचरत्सु पृथिव्यादिकायेषु जीवत्वानभ्युपगमाद्
हेतोः स पृथिव्यादिषु चतुर्षु जीवनिकायेषु मिथ्यादण्डं—मिथ्यात्वपूर्वो दण्डो

રૂપસે એવં અજીવ રૂપસે કહા હૈ, ઉન્હોને વહ સય ઝૂટા-મિથ્યા કહા
હૈ, એસા વહ વિભંગ જ્ઞાની વિભંગ જ્ઞાનકે જોરસે માનતા હૈ, હસ પ્રકાર
કે ઉસ વિભંગજ્ઞાનીકે પૃથિવી, અપ્ તેજ ઓર વાયુકાયિક જો ચાર
જીવનિકાય હૈ વે ઠીક નહીં માને ગયે હૈ—અચલનાવસ્થામે પૃથિવ્યાદિક
જીવ રૂપસે ઉસકે દ્વારા જ્ઞાત નહીં હોતે હૈ, હસકા ભાવ યહ હૈ—હસ
પ્રકારકા વિભંગ જ્ઞાની ચલન દોહદ આદિ ધર્મવાલે ત્રસોંકોહી ઓર
દોહદ આદિ ત્રસ ધર્મવાલે વનસ્પતિયોંકોહી જીવ રૂપસે સ્વીકાર કરતા
હૈ, પૃથિવી, અપ્, તેજ ઓર વાયુકાયિકોંકો તો વહ વાયુસે ચલને આદિકે
કારણસે ઓર સ્વતઃ ચલને આદિકે કારણસે ત્રસ રૂપસેહી જાનતા હૈ,
સ્થાવર જીવરૂપસે ઉન્હે નહીં જાનતા હૈ । इसलिये वह जब वे अच-
लन धर्मवाले रहते हैं, तब वह उनमें जीवरूपता नहीं मानता है । इस

તેના તે વિભંગજ્ઞાનના પ્રભાવથી તે વિભંગજ્ઞાની આ પ્રકારની ખોટી
માન્યતા ધરાવતો થઈ જાય છે. આ પ્રકારના વિભંગજ્ઞાનવાળો તે શ્રમણ
અથવા માહણ્ય પૃથ્વીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય અને વાયુકાયિક, આ ચાર જે
જીવનિકાયો છે તેમને જીવ રૂપે જ માનતો નથી—અચલનાવસ્થામાં પૃથ્વીકાય
આદિને તે જીવ રૂપે સ્વીકારતો નથી. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે

આ પ્રકારના વિભંગજ્ઞાનવાળો તે શ્રમણ અથવા માહણ્ય, ચલન, દોહદ
આદિ ધર્મવાળા ત્રસોને જ અને દોહદ આદિ ત્રસ ધર્મવાળા વનસ્પતિકાયિ-
કાને જ જીવ રૂપે સ્વીકારે છે. પૃથ્વી, અપ્, તેજ, અને વાયુકાયિકાને તો
તે વાયુથી કંપવા આદિ કારણોને લીધે અને સ્વતઃ (આપમેળે) ચાલવા
આદિને કારણે ત્રસ રૂપે જ જાણે છે—સ્થાવર જીવ રૂપે તેમને માનતો નથી.
તેથી જ્યારે તેઓ અચલન ધર્મવાળાં રહે છે ત્યારે તો તે તેમને જીવરૂપ
માનતો જ નથી. તે કારણે તે પૃથ્વીકાય આદિ ચાર જીવનિકાયોની મિથ્યાત્વ

मिथ्यादण्डस्तं विभङ्गज्ञानवशात् हिंसां प्रवर्त्तयति-पृथिव्यादि चतुर्जीवनिकाय-
रूपानभिज्ञःसंस्तान् हिनस्ति, तेषां जीवत्वं चापलपति, इति सप्तमं विभङ्ग-
ज्ञानम् ७ ॥ सू० २ ॥

मिथ्यादण्डं प्रवर्त्तयतीत्युक्तम्, दण्डश्च जीवेषु भवतीति योनिसंग्रहतो जीवान्
सप्तविधत्वेन प्ररूपयितुमाह—

मूलम्—सत्तविहे जोणिसंगहे पणत्ते, तं जहा—अंडया १
पोयया २, जराउया ३, रसया ४, संसेइमा ५, संमुच्छिमा ६,
अब्भिया ७। अंडया सत्तगइया सत्तागइया पणत्ता, तं जहा—
अंडए अंडएसु उववज्जमाणे अंडएहितो वा पोयएहितो वा
जाव उब्भिएहितो वा उववज्जेजा । से चेव णं से अंडए अंड-
यत्तं विप्पजहमाणे अंडयत्ताए वा पोययत्ताए वा जाव उब्भि-
यत्ताए वा गच्छेज्जा । पोयया सत्तगइया सत्तागइया । एवं
चेव सत्तण्हं गई आगई भाणियद्वा जाव उब्भियत्ति ॥सू०३॥

कारण पृथिवी आदि चार जीवनिकार्योके वह मिथ्यात्वपूर्वक दण्डको
विभंग ज्ञानवश हिंसाको करता है, अर्थात्—पृथिव्यादि चार जीव निका
यके स्वरूपसे अनभिज्ञ हुआ वह उनकी हिंसा करता है, और उनमें
जीवत्वका अपलाप (छिपाता है) करता है, इस प्रकारका यह सातवां
विभंगज्ञानहै ७ ॥ सू० २ ॥

पृथिवी आदि जीवके स्वरूपसे अनभिज्ञ हुआ जीव उनकी मिथ्या-
त्वपूर्वक हिंसा करता है, ऐसा कहा—सो यह मिथ्यादण्ड जीवोंमें होता
है, इसलिये योनिके संग्रहसे अब सूत्रकार जीवोंमें सप्तविधताका प्रति-

पूर्वक हिंसा करे छे. आ गधुं तेना विभंगज्ञानने दीधे अने छे कडेवातुं
तात्पर्य अे छे के पृथ्वीकाय आदि चार लवनिकायना वास्तविक स्वरूपधी
अनभिज्ञ अेवा ते विभंगज्ञानी तेमनी हिंसा करे छे अने तेमनामां लव-
त्वना अपलाप करे छे अेटडे के तेमनामां लव डोवांनी वातने न मान्य
करतो नथी. आ प्रकारनुं सातभुं विभंगज्ञान छे. ॥ सू. २ ॥

आगला सूत्रमां अेवुं कडेवामां आंयुं छे के “ पृथ्वी आदि लवना
स्वरूपधी अनभिज्ञ डोय अेवा लव मिथ्यात्वपूर्वक तेमनी हिंसा करे छे.”
आ मिथ्यादण्डना सदृशाव लवोमां डोय छे. ते कारणे येनिना निरूपण

છાયા—સપ્તવિધો યોનિસંગ્રહઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તથથા—અળ્ડજાઃ ૧ પોતજાઃ ૨ જરાયુજાઃ ૩ રસજાઃ ૪ સંસ્વેદિમાઃ ૫ સંમૂર્ચ્છિમાઃ ૬ ઉદ્ભિજ્જાઃ ૭ । અળ્ડજાઃ સપ્તગતિકાઃ સપ્તગતિકાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, તથથા—અળ્ડેપુ અળ્ડજેષુ ઉત્પદ્યમાનઃ અળ્ડજેભ્યો વા પોતજેભ્યો વા યાવત્ ઉદ્ભિજ્જેભ્યો વા ઉત્પદ્યેત । સ એવ યલ્લસઃ અળ્ડજઃ અળ્ડજત્વં વિપ્રજઠત્ અળ્ડજતયા વા પોતજતયા વા યાવત્ ઉદ્ભિજ્જતયા વા ગચ્છેત્ । પોતજાઃ સપ્તગતિકાઃ સપ્તગતિકાઃ । એવમેવ સપ્તાનાં ગત્યાગતી ભણિતત્ત્યે યાવત્ ઉદ્ભિજ્જા ઇતિ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—‘ સત્તવિદ્દે જોણિસંગહે ’ ઇત્યાદિ ।

યોનિસંગ્રહઃ—યોનિભિઃ=ઉત્પત્તિસ્થાનવિશેષૈઃ સંગ્રહઃ=જીવાનાં સમૂહઃ, સપ્તવિધઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તથથા—અળ્ડજાઃ—અળ્ડે=પક્ષ્યાદિ પ્રાદુર્ભાવકકોષે જાયન્તે=ઉપપન્તે ઇત્યળ્ડજાઃ—પક્ષિસર્પાદયઃ ૧, પોતજાઃ—પોતાએવ જાતાઃ પોતજાઃ—ન જરાચ્ચાદિના વેષ્ટિતાઃ પૂર્ણાવયવા યોનિનિર્ગતમાત્રા એવ પરિસ્પન્દાદિસામર્થ્યોપેતાઃ

પાદન કરતે હૈં—‘ સત્તવિદ્દે જોણિસંગહે પળ્ણત્તે ’ ઇત્યાદિ । સૂ૦ ૩ ।

ટીકાર્થ—ઉત્પત્તિ સ્થાનરૂપ યોનિ વિશેષોકો લેકર જીવોંકા સમૂહ સાત પ્રકારકા કહા ગયા હૈ—જૈસે—અળ્ડજ ૧ પોતજ ૨, જરાયુજ ૩, રસજ ૪, સંસ્વેદિમ ૫, સંમૂર્ચ્છિમ ૬, ઓર ઉદ્ભિજ ૭, પક્ષિ આદિ જિસમેં ઉત્પન્ન હોતે હૈં, એસે કોષકા નામ અળ્ડા હૈ, ઇસ અળ્ડેસે જો પૈદા હોતે હૈં વે અળ્ડજ હૈં, એસે વે અળ્ડજ પક્ષી સર્પ આદિ હૈં । ૧ ।

જો ઉત્પત્તિકે સમય જરાયુ આદિસે વેષ્ટિત નહીં હોતેહૈં, પૂર્ણ અવયવવાલે હોતેહૈ, ઓર યોનિસે નિકલતેહી પરિસ્પન્દ (ચલન) આદિ સામર્થ્ય-

દ્વારા સૂત્રકાર જીવેમાં સપ્તવિધતાનું હવે પ્રતિપાદન કરે છે.

“ સત્તવિદ્દે જોણિસંગહે પળ્ણત્તે ” ઇત્યાદિ—

ઉત્પત્તિ સ્થાનરૂપ યોનિવિશેષોનાં અપેક્ષાએ જીવોનો સમૂહ સાત પ્રકારનો કહ્યો છે. તે સાત પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(૧) અંડજ (૨) પોતજ (૩) જરાયુજ, (૪) રસજ, (૫) સંસ્વેદિમ, (૬) સંમૂર્ચ્છિમ અને (૭) ઉદ્ભિજજ (૧) પક્ષી આદિ જેમાં ઉત્પન્ન થાય છે એવા કોષનું નામ ઇંડું છે. આ ઇંડામાંથી પેદા થતા જીવોને અંડજ કહે છે. એવા પક્ષી, સર્પ આદિને અંડજ જીવો કહેવામાં આવે છે.

(૨) જે જીવો ઉત્પત્તિના સમયે જરાયુ આદિ વડે વેષ્ટિત હોતાં નથી, પૂર્ણ અવયવોવાળાં હોય છે અને યોનિમાંથી બહાર આવતાની સાથે જ પરિસ્પન્દન આદિ સામર્થ્યવાળાં હોય છે, તેમને પોતજ કહે છે. અથવા વચ્ચેને

पोतजाः यद्वा-पोतो वस्त्रम्, तत्सम्पार्जिता इव जायन्ते गर्भवेष्टनचर्माऽनावृतत्वाद्
ये ते पोतजाः, यद्वा-पोताद्=गर्भवेष्टनचर्मरहितगर्भाशयात् जायन्ते इति पोतजाः
कुञ्जरशल्लकशशनकुलमूषिकचर्मचटिकाबल्गुलिकादयः २ । जरायुजाः-जरा-
मेति=गच्छतीति जरायुः=गर्भवेष्टनचर्म, तस्माज्जायन्ते ये ते तथा-नरमहिष-
गवादयः ३ । रसजाः-रसे=मधे जायन्ते इति रसजाः-मद्यकीटाः, “ रसजो मद्य-
कीटः ” इति हैमात् । यद्वा-रसे=विकृतमधुरादीं जायन्ते इति रसजाः ४। संस्वे-
दिमाः-संस्वेददा=घर्माद् जायन्ते ये ते तथा, यूकालिक्षा-मत्कुणप्रमुखाः ५।

वाले होते हैं-वे पोतज हैं, अथवा-पोत नाम वस्त्रका है, इस वस्त्रसे
पोछे हुएकी नरह जो गर्भवेष्टन चर्मसे अनावृत होनेके कारण उत्पन्न
होते हैं, वे पोतज हैं, अथवा-पोतसे-गर्भवेष्टन चर्मसे रहित गर्भा
शयसे जो उत्पन्न होते हैं, वे पोतज हैं, ऐसे वे पोतज कुञ्जर, शल्लक, शश-
खरगोश, नकुल, मूषिक, चमगादड़, और बल्गुलिका आदि जीव हैं । २।
गर्भवेष्टन चर्मका नाम जरायु है । इस जरायुसे जो जीव पैदा
होते हैं, वे जरायुज हैं, ऐसे वे जरायुज जीव नर-मनुष्य, महिष एवं
गाय आदि हैं । ३।

जो जीव रसमें उत्पन्न होते हैं, वे रसज हैं-ऐसे ये रसज मद्यकीट
(कीड़े) होते हैं । “रसजो मद्यकीटः ” ऐसा हैमकोषमें कहा गया है ।
अथवा-विकृत मधुर (बिगडी मिठाई) आदि रसमें जीव उत्पन्न होते हैं वे
रसज हैं । ४।

जो जीव पसीनेसे उत्पन्न होते हैं, वे संस्वेदिम हैं जैसे-यूक, (जू)
लीख एवं मत्कुण-खटमल वगैरह । ५ ।

पोत कहे छे. ते वस्त्र वडे लूश्रवामां आंव्या डोय अेवी रीते-गर्भवेष्टन
चर्म वडे अनावृत (अनावृत्त हित डोव ने कारणे) उत्पन्न थाय छे तेमने
पोतज कहे छे अथवा पोतम थी गर्भवेष्टन चर्मरहित गर्भाशयमांथी जेओ
उत्पन्न थाय छे तेमने पोतज कहे छे. डायी, सप्तलां, नोणियां, मूषक.

आदि प्राणीओनो आ प्रकारमां समावेश थाय छे.

(३) गर्भवेष्टन चर्मने जरायु कहे छे. आ जरायुमांथी जे लुवो
उत्पन्न थाय छे तेने जरायुज कहे छे. अेवा जरायुज लुवो मनुष्य, गाय,
बैस आदि छे.

(४) जे लुवो रसमां उत्पन्न थाय छे तेमने रसज कहे छे. मद्यकीटाने
अेवां रसज लुवो कहे छे. “ रसजो मद्यकीटः ” आ प्रकारतुं कथन रसज
लुवो विषे डैमकोशमां करवामां आंव्युं छे तेमने रसज कहे छे.

સમ્મૂર્ચ્છિમાઃ—સમ્મૂર્ચ્છનં સમ્મૂર્છઃ—ગર્ભાધાનમન્તરેણૈવ સ્વયં સમુત્પત્તિઃ, યદ્વા-
સમન્તતો દેહસ્ય મૂર્ચ્છનમ્=અવયવસંયોગઃ સમ્મૂર્છઃ, તેન નિવૃત્તાઃ સમ્મૂર્ચ્છિમાઃ=
માતાપિતૃસંયોગં વિનૈવ સ્વયમુત્પન્નાઃ=પિપીલિકા મક્ષિકા-મત્કોટકાદયઃ ૬।
ઉદ્ભિજ્જાઃ—ઉદ્ભિજ્જ=ભૂમિં ખિસ્વા જાયન્તે યે તે તથા—શલભાદય ઇતિ । સમ્પત્તિ
પ્તેપામણ્ડજાદીનાં સપ્તગતિકત્વં સપ્તાગતિકત્વં ચ નિરૂપયિતુમાહ—‘ અંડયા સત્ત-
ગહયા ’ ઇત્યાદિ । અંડજાઃ=પક્ષિસર્પાદયઃ સપ્તગતિકાઃ—સપ્તસુ યોનિષુ ગતિઃ=
સૃત્વા ગમનં યેપાં તે તથા—સપ્તસુ યોનિષુ ગમનશીલાઃ સપ્તાગતિકાઃ—સપ્તભ્યો
યોનિભ્ય આગતિઃ=આગમનં યેપાં તે તથાભૂતાશ્ચ પ્રજ્ઞાસાઃ, તથથા—અણ્ડજઃ=

ગર્ભાધાનકે વિનાહી જિનકી સ્વયં ઉત્પત્તિ હો જાતી હૈ, એસે જીવ
સમ્મૂર્ચ્છિમ હૈ । અથવા—સઘ તરફસે દેહકા જો મૂર્ચ્છન—અવયવ સંયોગ
હૈ વહ સમ્મૂર્ચ્છ હૈ, હસ સમ્મૂર્ચ્છસે જો ઉત્પન્ન હોતે હૈ વે સમ્મૂર્ચ્છિમ હૈ
માતાપિતાકે સંયોગ હુણ વિનાહી જો અપને આપ ઉત્પન્ન હો જાતે હૈ—
એસે પિપીલિકા, (ચૂંટી) મક્ષિકા, મકોડા આદિ જીવ સમ્મૂર્ચ્છિમ હૈ । ૬।

જો ભૂમિકો ભેદ કરકે ઉત્પન્ન હોતે હૈ એસે શલભ આદિ જીવ
યા વનસ્પતિ ઉદ્ભિજ્જ હૈ । ૭।

અવ સૂત્રકાર :હન અણ્ડજ આદિકોં કી સાતગતિકતા
ઔર સાત આગતિકતાકા નિરૂપણ કરનેકે નિમિત્ત “ અંડયા
સત્ત ગહયા ” ઇત્યાદિ રૂપસે કથન કરતે હૈ—હન સાતમેં જો અણ્ડજ
હૈ—પક્ષી, સર્પ આદિ હૈ વે મરકર હન સાતોમેં ઉત્પન્ન હો સકતે હૈ,

(૫) જે જીવો પરસેવામાંથી ઉત્પન્ન થાય છે તેને સંસ્વેદિમ કહે છે.
જૂ, લીખ, માકડ વગેરે આ પ્રકારના જીવો છે.

(૬) ગર્ભાધાન વિના જ જેમની આપોઆપ ઉત્પત્તિ થઇ નાય છે, એવાં
જીવોને સંમૂર્ચ્છિમ કહે છે. અથવા—ખમ્પી તરફથી દેહનો જે મૂર્ચ્છન (અવ-
યવ સંયોગ) છે તેને સંમૂર્ચ્છ કહે છે. આ સંમૂર્ચ્છ વડે જેઓ ઉત્પન્ન
થાય છે તેમને સમ્મૂર્ચ્છિમ કહે છે. માતાપિતાના સંયોગ વિના જ જે જીવો
પોતાની નતે જ ઉત્પન્ન થઇ નાય છે એવા કીડી, મકોડા, માખી આદિ
જીવોને સમ્મૂર્ચ્છિમ કહે છે.

(૭) જે જીવો ભૂમિને લેટીને ઉત્પન્ન થાય છે એવા શલભ આદિ
જીવોને અથવા વનસ્પતિને ઉદ્ભિજ્જ કહે છે.

હવે સૂત્રકાર આ અંડમદિકોની સાત ગતિકતાનું અને સાત આગતિ-
કતાનું નિરૂપણ કરે છે. “ અંડયા સત્ત ગહયા ” ઇત્યાદિ—

સર્પ, પક્ષી, આદિ જે અંડજ જીવો છે તેઓ મરીને અંડજ આદિ
સાતેમાં ઉત્પન્ન થઇ નાય છે, એટલે કે અંડજ જીવો મરીને ફરીથી અંડજમાં

निबद्धाण्डजनामकर्मा अतएव अण्डजेषु उत्पद्यमानो जीवः अण्डजेष्वो वा पोत-
जेभ्यो वा यावद् उद्भिज्जेभ्यो वा आगत्य उत्पद्येत—इति सप्तगतिकत्वमाश्रित्यो
क्तम् । सम्प्रति सप्तगतिकत्वमाश्रित्याह—‘ से चैव णं ’ इत्यादि । स एव खलु
अण्डजः—योऽण्डजादेः कस्माच्चिदपि योनिविशेषात् समागत्य अण्डजत्वतोत्पन्नः
स एव अण्डजो जीवः अण्डजत्वं विपजहत्=परित्यजन् अण्डजतया वा पोतजतया
वा यावत् उद्भिज्जतया वा गच्छेदिति । एवमेव पोतजा अपि सप्तगतिरूपाः सप्ता-

अर्थात् अण्डज मरकर पुनः अण्डज हो सकता है, अण्डज मरकर
पोतज हो सकता है, अण्डज मरकर जरायुज हो सकता है, अण्डज
मरकर रसज हो सकता है, अण्डज मरकर संस्वेदिम हो सकता है,
अण्डज मरकर सम्भूर्च्छिम हो सकता है, और अण्डज मरकर उद्भिज्ज
हो सकता है । इसी तरहसे वह सात इन जगहोंसे आकर इनमें उत्पन्न
हो सकता है, अण्डज—निबद्ध अण्डज नामकर्मवाला जीव अण्डजोंमें
उत्पन्न होता हुआ अण्डजोंसे अथवा पोतजोंसे यावत् उद्भिज्जोंसे आकर
उत्पन्न होता है, इसी तरह वही अण्डज—जो अण्डज आदि किसी भी
योनि विशेषसे आकर अण्डज रूपसे उत्पन्न होता है, ऐसा वह
अण्डज जीव अण्डजत्वरूप पर्यायको छोड़ता हुआ पुनः अण्डज रूपसे
अथवा पोतज रूपसे यावत् उद्भिज्ज रूपसे जन्म धारण कर लेता है,

उत्पन्न थर्ष शके छे. अथवा अण्डज एवो मरीने पोतजोमां पशु उत्पन्न थर्ष
शके छे. अथवा अण्डज एवो मरीने जरायुजमां पशु उत्पन्न थर्ष शके छे.
अथवा अण्डज एवो मरीने रसजमां पशु उत्पन्न थर्ष शके छे, अथवा अण्डज
एवो मरीने संस्वेदिममां पशु उत्पन्न थर्ष शके छे, अथवा अण्डज एवो
मरीने सम्भूर्च्छिमोमां पशु उत्पन्न थर्ष शके छे, अथवा अण्डज एवो मरीने
उद्भिज्जोमां पशु उत्पन्न थर्ष शके छे. ये न प्रमाणे उपर्युक्त साते प्रकारना
एवो-मरीने उपर्युक्त अण्डज आदि साते प्रकारना एवो इपे उत्पन्न थर्ष शके छे.

अण्डज—निबद्ध अण्डज नामकर्मवाणो एव अण्डजोमांथी, अथवा पोत-
जोमांथी, अथवा जरायुजोमांथी, अथवा रसजोमांथी, अथवा संस्वेदिमोमांथी
अथवा सम्भूर्च्छिमोमांथी, अथवा उद्भिज्जोमांथी आवीने अण्डजोमां उत्पन्न
थर्ष जाय छे. ये न प्रमाणे ये न अण्डज के ने अण्डज आदि षोडश पशु
योनिविशेषमांथी आवीने अण्डज इपे उत्पन्न थयेलो छे, ते अण्डज एव
अण्डज इप पर्यायने छोडीने इरीथी अण्डज इपे अथवा पोतज इपे, अथवा
जरायुज इपे अथवा रसज इपे - जन्म धारणु करी ले छे. आ प्रका-

गतिका बोध्याः—एवमेव=अनेन प्रकारेणैव सप्तानामपि—अण्डजपोतजयोः संग्र-
हात् सप्तानामिति—अण्डजादि सप्तानामपीत्यर्थः, ततश्च जरायुजमारभ्योद्भिज्जव-
र्यन्तानां पञ्चानामपि गत्यागती भणितव्ये इति भावः ॥ सू० ३ ॥

अनन्तरसूत्रे योनिसंग्रह उक्तः इति संग्रहप्रस्तावात् संग्रहस्थानसूत्रमाह—

मूलम्—आयरियउवज्ज्ञायस्स णं गणंसि सत्त संगहट्ठाणा
पणत्ता, तं जहा—आयरियउवज्ज्ञाए गणंसि आणं वा धारणं
वा सम्मं पउंजित्ता हवइ, एवं जहा पंचट्ठाणे जाव
आयरियउवज्ज्ञाए गणंसि आपुच्छियचारी यावि हवइ, णो
अणापुच्छियचारी यावि भवइ, आयरियउवज्ज्ञाए गणंसि अणु-
प्पन्नाइं अवगरणाइं सम्मं उप्पाइत्ता हवइ, आयरियउवज्ज्ञाए
गणंसि पुवुप्पन्नाइं उवगरणाइं सम्मं सारक्खेत्ता संगोवित्ता भवइ,
णो असम्मं सारक्खेत्ता संगोवित्ता भवइ । आयरियउवज्ज्ञा-
यस्स णं गणंसि सत्त असंगहट्ठाणा पणत्ता, तं जहा—आयरि-
यउवज्ज्ञाए गणंसि आणं वा धारणं वा नो सम्मं पउंजित्ता भवइ,
एवं जाव उवगरणाणं नो सम्मं सारक्खेत्ता संगोवेत्ता भवइ ॥ सू० ४ ॥

इसी प्रकारकी गति आगतिका कथन पोतज जीवोंके सम्यन्धमें भी
कर लेना चाहिये, अर्थात् पोतज जीव भी सात गतिवाले और सातही
आगतिवाले होते हैं। इसी तरह जरायुजसे लेकर उद्भिज्ज तकके
पांचों जीव भी सात गतिवाले और सात आगतिवाले होते हैं, ऐसा
जानना चाहिये ॥ सू० ३ ॥

रतुं गति अने आगति विषयक कथन पोतज जीवोंमें पणु समलु देवु
लेधये. ओटवे के पोतज जीव पणु सात प्रकारनी गतिवाणे अने सात
प्रकारनी आगतिवाणे डाय छे, ओम समलु. ओर प्रमाणे जरायुजथी
सधने उद्भिज्ज पर्यन्तना पांचे प्रकारना जीव पणु सात गतिवाणे अने
आगतिवाणे डाय छे. ओवु समलु लेधये ॥ सू. ३ ॥

छाया—आचार्योपाध्यायस्य खलु गणे सप्त संग्रहस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां वा धारणां वा सम्यक् प्रयोक्ता भवति, एवं यथा पञ्चमस्थाने यावत् आचार्योपाध्यायो गणे आपृच्छयचारी चापि भवति, नो अनापृच्छयचारी चापि भवति । आचार्योपाध्यायो गणे अनुत्पन्नानि उपकरणानि सम्यक् उत्पादयिता भवति । आचार्योपाध्यायो गणे पूर्वोत्पन्नानि उपकरणानि सम्यक् संरक्षिता, संगोपिता भवति नो असम्यक् संरक्षिता संगोपिता भवति । आचार्योपाध्यायस्य खलु गणे सप्त असंग्रहस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां वा धारणां वा नो सम्यक् प्रयोक्ता भवति, एवं यावत् उपकरणानां नो सम्यक् संरक्षिता संगोपिता भवति ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘ आयरिय उवज्जायस्स ’ इत्यादि—

आचार्योपाध्यायस्य—आचार्यश्चासी उपध्यायश्चेति कर्मधारयः, आचार्यश्च उपध्यायश्चेति समाहारो वा, तस्य तथाभूतस्य—गणे=गच्छे संग्रहस्थानानि—

इस ऊपरके सूत्रमें योनिका संग्रह कहा गया है, इस कारण संग्रहके प्रकरणसे अब सूत्रकार संग्रह सूत्रका कथन करते हैं—

“ आयरिय उवज्जायस्स णं गणंसि सत्त संगहट्ठाणा पणत्ता ” इत्यादि । सूत्र ४ ॥

आचार्य एवं उपाध्यायके गणमें सात संग्रहस्थान कहे गये हैं । यहाँ आचार्योपाध्यायमें आचार्य रूप उपाध्याय अथवा आचार्य एवं उपाध्याय ऐसा अर्थ लिया गया है, आचार्यरूप उपाध्याय जब ऐसा लिया जाता है, तब तो वहाँ कर्मधारय समास हो जाता है, और जब आचार्य और उपाध्याय ऐसा अर्थ लिया जाता है, तब वहाँ समाहार द्वन्द्व समास हो जाना है, ज्ञानादिकोंका अथवा शिष्योंका जो संबन्ध

उपरना सूत्रमां योनिना संग्रहं प्रतिपादन करवाभां आ०यु. आ संग्रह पदधी सूचित यतां संग्रहसूत्रं डवे सूत्रकार कथन करे छे.

“ आयरिय उवज्जायस्स णं गणंसि सत्त संगहट्ठाणा पणत्ता ” इत्यादि—

आचार्य अने उपाध्यायना गणुमां सात संग्रहस्थान कहां छे. अही आचार्योपाध्याय पदने अर्थ आचार्य इप उपाध्याय अथवा आचार्य अने उपाध्याय थाय छे ले आ पदने अर्थ आचार्य इप देवाभां आवे, तो अही कर्मधारय समास अने छे. पणु ले आचार्य अने उपाध्याय, आ अर्थ देवाभां आवे, तो समाहार द्वन्द्व समास थाय छे. सान दिठेने अथवा शिष्येने ले संबन्ध छे तेने संग्रह कडे छे. ते संग्रहना सात स्थान नीचे प्रभाषे छे—

संग्रहः=ज्ञानादीनां शिष्याणां वा संवयः, तस्य स्थानानि सप्त प्रज्ञप्तानि, तथा-
आचार्योपाध्यायो गणे आज्ञां= ' हे मुने ! भवतेदं विधेयम् ' इति विधिरूपां,
धारणां= ' नेदं विधेयम् ' इति निषेधरूपां वा सम्यक् यथोचित्येन प्रयोक्ता=
प्रवर्तको भवति ? । एवं करणे शिष्यसंग्रहो ज्ञानादिसंग्रहश्च भवति, अन्यथा गण-
ध्वंस एव भवति । उक्तं च—

“ जहि नत्थि सारणा वारणा पडिचोयणा य गच्छम्मि ।

सो उ अगच्छो गच्छो, मोत्तव्यो संजमत्थीहि ” ॥ १ ॥

छाया—यत्र नास्ति स्मरणा वारणा प्रतिनोदना च गच्छे ।

स तु अगच्छो गच्छो मोक्तव्यः संयमार्थिभिः ॥ १ ॥ इति ।

अयं भावः—यत्र गच्छे स्मरणा=विस्मृते क्वचित् कर्तव्ये ' भवतेदं न कृतम् '
इत्येवं रूपा, वारणा=कस्मिंश्चिदकर्तव्ये प्रवृत्तस्य ' भवतेदं न कर्तव्यम् ' इत्येवं-

है, वह संग्रह है, इस संग्रहके सान स्थान इस प्रकारसे हैं—जब आचार्य
या उपाध्याय अपने गणमें—गच्छमें—हे मुने ! तुम्हें यह करना चाहिये
इस प्रकारकी विधिरूप आज्ञाका अथवा हे मुने ! तुम्हें यह नहीं करना
चाहिये इस प्रकारकी विधिरूप आज्ञाका यथोचित रूपसे प्रयोक्ता-
प्रवर्तक होता है, तब वह शिष्य संग्रह करनेवाला और ज्ञानादिका
संग्रह करनेवाला होता है, यदि वह अपने गणमें इस प्रकारकी आज्ञा
और धारणाका प्रवर्तक नहीं होता है, तो उसके गणका विनाशही हो
जाना है कहा भी है “ जहि नत्थि सारणा ” इत्यादि—

जिस गणमें स्मरणा—किसी कर्तव्यके भूल जाने पर आपने यह
नहीं किया इस प्रकारकी भूले हुए कर्तव्यको याद दिलानेवाली प्रणाली—

(१) जे आचार्य पोताना गणुमां उचित रूपे आज्ञाना प्रयोक्ता
(प्रवर्तक) होय छे, तेज्जे शिष्याना समुदायनी वृद्धि करवाने अने ज्ञाना-
दिना संग्रह करवाने समर्थ अने छे. ' हे मुने ! तमारे आ प्रभाणु करवुं
लोछ्छे, ” आ प्रकारनी विधि रूप आज्ञाना प्रवर्तक अथवा “ हे मुनि !
तमारे आ प्रभाणु न करवुं लोछ्छे, ” आ प्रकारनी धारणा प्रवर्तक आचार्य
पोताना गणुमां साधुओना समुदाय वधारनारा अने ज्ञाननी वृद्धि करनारा
होय छे. परन्तु जे आचार्य पोताना गणुमां आ प्रकारनी आज्ञा अने
धारणा प्रवर्तक होता नथी, तेमना गणुना विनाश ज थाय छे.

कथं पणु छे के “ जहि नत्थि सारणा ” इत्यादि—

जे गणुमां स्मारणा—कोई कर्तव्य भणववानुं भूझी जनार शिष्यने
“ तमे आ कथुं नर्डी—आ कर्तव्य भणववानुं तमे भूझी गया, ” आ प्रका-

रूपा निषेधना, प्रतिनोदना=असकृत्स्खलितादौ-‘ धिक् ते जन्म ’ इत्यादि निष्ठुरवाक्यैर्गाढतरप्रेरणा च नास्ति स तु गच्छः अगच्छो भवति । अत एव संयमार्थिभिः स गच्छो मोक्तव्यः=परित्याज्य इति ॥ १ ॥

एवं यथा पञ्चमस्थाने=पञ्चमस्थानरूपस्य प्रथमोद्देशे उक्तं, तथैवात्रापि वक्तव्यं यावत्-(२-३-४) आचार्योपाध्यायो गणे आपृच्छयचारी चापि भवति, नो अनापृच्छयचारी चापि भवतीति । तत्र यावत्पदेन-त्रीणि स्थानानि पञ्चम-स्थानोक्तानि संग्राह्याणीति तान्याह-आचार्योपाध्यायः खलु गणे यथारात्निक-

धारणा-किसी अकर्त्तव्यमें प्रवृत्त हुएको तुम्हें यह नहीं करना चाहिये ” इस प्रकारसे निषेध करनेकी पद्धति, और प्रतिनोदना-बार २ गलती करने पर “ तेरे जन्मको धिक्कार है ” इत्यादि रूप निष्ठुर वाक्योंसे प्रताड़ना नहीं है, ऐसा गच्छ अगच्छ हो जाता है, और संयमार्थी पुरुषों द्वारा, वह गच्छ परित्याज्य हो जाता है । १।

इस तरहसे जैसा पंचम स्थानमें-पंचम स्थानरूपके प्रथम उद्देशरूपमें कथन किया गया है, वैसाही यहां पर भी कथन कर लेना चाहिये यावत् (२-३-४) आचार्योपाध्याय गणमें आपृच्छयचारी-पूछकर बाहर जानेके योग्य होता है, अनापृच्छयचारी होता है, यहां यावत् शब्दसे पंचम स्थानोक्त ३ स्थान ग्रहण किये गये हैं । जो इस प्रकारसे हैं-जो आचार्य उपाध्याय अपने गणमें पर्यायज्येष्ठ अनुसार कृतिकर्मका

रनी भूलाध गयेला कर्त्तव्यने याद कशवनारी प्रष्टाली, अने केध अकर्त्तव्यमां प्रवृत्त थयेलाने “ तमारे आवुं करवुं लेधये नहीं ” आ प्रकारना निषेध रुप वारष्टा करवानी प्रष्टाली, तथा प्रतिनोदना-वारवार भूल करनारने “ धिक्कार छे तने ” धत्यादि कठोर (निष्ठुर वाक्ये वडे तेने कपके आपवानी प्रष्टाली नथी जेवा गच्छने विनाश थध जय ते गच्छ परा अर्थमां गच्छ कडेवाने योग्य नहीं रडेवाने कारणे संयमार्थी पुरुषे द्वारा परित्याज्य अनी जय छे. । १ ।

आ प्रकारे जेवुं पांचमां स्थानकना पडेला उद्देशामां कथन करवामां आव्युं छे, जेवुं न कथन अहीं पद्य अडलु करवुं लेधये ते कथन अहीं कथां सुधी अडलु करवानुं छे ते नीचे दर्शावामां आव्युं छे—

“ आचार्योपाध्याय गणुमां आपृच्छयचारी-पूछीने अडार गमन (विडार) करनारा होवा लेधये ” अहीं सुधीना कथन द्वारा त्यां त्रष्टु स्थानानुं कथन थयुं छे. पांचमां स्थानकमां प्रतिपादित ते त्रष्टु स्थाने नीचे प्रमाणे छे—

તયા કૃતિકર્મ સમ્યક્ પ્રયોક્તા ભવતિ ૧, આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે યાનિ શ્રુતપર્યવજાતાનિ ધારયતિ તાનિ કાલે કાલે સમ્યક્ અનુપ્રવાચયિતા ભવતિ ૨, આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે ગ્લાનશૈક્ષવૈયાવૃત્ત્યં સમ્યક્ અભ્યુત્થાતા ભવતિ ૩। અત્ર-મૂલોક્ત્રયમસ્થાનસંમેલનેન જાતાનિ ચત્વારિ ૪। અથ પશ્ચમમાહ-આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે આપૃચ્છચારી ચાપિ ભવતિ નો અનાપૃચ્છચારી ચાપિ ભવતિ। વ્યાખ્યા સુગમા।

નવરસુ-‘ ગણે આપૃચ્છચારી ’ ઇતિ તદુક્તમ્, તત્ર-ગણશબ્દેન સાધુસહ્જો ગ્રાહ્યસ્તેન ગણે=સાધુસહ્જે ઇત્યર્થઃ, તત્તોઽત્ર-આપૃચ્છનં સાધુસહ્જસ્ય વોધ્યમ્।

સમ્યક્ પ્રયોક્તા હોતા હૈ, વહ તથા જિતને શ્રુત પર્યવજાન હૈ-અન્હે ધારણ કાનેલા જો આચાર્યોપાધ્યાય અન્હે સમય ૨ પર અગ્ને શિષ્યોંકો સિલ્લાના હૈ, વહ ૨ તથા જો આચાર્યોપાધ્યાય અપને ગણમે ગ્લાન શૈક્ષકી વૈયાવૃત્તિ સમ્યક્ પ્રકારસે કરને કરાનેલા હોતા હૈ, વહ શિષ્ય સંગ્રહ ઓર જ્ઞાનાદિકા સંગ્રહ કરનેલા હોતા હૈ, હસ પ્રકારકે હન ત્રીન સ્થાનોંકો ઓર મૂલોક્ત (મૂલમે કહે હુવે) પ્રથમ સ્થાનકો મિલાકર ચે ૪ સ્થાન હો જાતે હૈ। તથા-“ આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે આપૃચ્છચ ચારી ” ઇત્યાદિ રુપ યહ પાંચવાં સ્થાન હૈ, યહાં પર જો “ આપૃચ્છચારી ” એસા કહા હૈ, સો યહાં ગણ શબ્દસે સાધુ સંગ્રહ ગ્રાહ્ય હૈ, અતઃ “ સાધુસંગ્રહસે પૂજના ” એસા હસકા અર્થ હોના હૈ,

(૧) જે આચાર્ય અને ઉપાધ્યાય પોતાના ગણમાં પર્યાય ન્યેષ્ટના અનુસાર કૃતિકર્મના (પર્યાય ન્યેષ્ટ સાધુએને લઘુપર્યાયવાળા સાધુઓ દ્વારા વન્દના અદિના) સમ્યક્ પ્રયોક્તા (પ્રવર્તક) હોય છે, તેઓ શિષ્યસંગ્રહ અને જ્ઞાનાદિનો સંગ્રહ કરનારા હોય છે. (૨) જે આચાર્ય પોતાના શિષ્યોને સમય સમય પર શ્રુતનું અધ્યયન, પુનરાવર્તન આદિ કરાવે છે, તે શિષ્યસંગ્રહ અને જ્ઞાનાદિનો સંગ્રહ કરનાર હોય છે. (૩) જે આચાર્યોપાધ્યાય પોતાના ગણના ગ્લાન (બિમાર), શૈક્ષ (નવનીક્ષિત) આદિનું વૈયાવૃત્ત્ય સારી રીતે કરતા કરાવતા હોય છે, તેઓ શિષ્યસંગ્રહ અને જ્ઞાનાદિનો સંગ્રહ કરનાર હોય છે. આ ત્રણ સ્થાન અને મૂલસૂત્રોક્ત એક સ્થાન મળીને ચાર સ્થાન અહીં સુપ્રીમાં પ્રકટ કરવામાં આવ્યાં છે. હવે પાંચમું સ્થાન પ્રકટ કરવામાં આવે છે—“ આચાર્યોપાધ્યાયો ગણે આપૃચ્છચારી ”, ઇત્યાદિ—

આ સૂત્રપાઠમાં ‘ ગણ ’ પદ સાધુસંઘના અર્થમાં વપરાયું છે. “ સાધુ સંઘને પૂજવું, ” આ પ્રકારનો તેનો અર્થ થાય છે.

। अथ-पष्ठं संग्रहस्थानम्-आचार्योपाध्यायो गणे अनुत्पन्नानि=अलब्धानि उपकरणानि=वस्त्रपात्रादीनि सम्भक्=एषणादि शुद्ध्या उत्पादयिता=उपार्जको भवतीति ६। सप्तमं तु-आचार्योपाध्यायो गणे पूर्वोत्पन्नानि=पूर्वकालोत्पादितानि उपकरणानि=वस्त्रपात्रादीनि सम्भक् संरक्षिता=प्रयत्नतो रक्षणकर्त्ता, संगोपिता वा भवति, न तु असम्भक् संरक्षिता संगोपिता भवतीति ७। एतद्विपरीत्येव आचार्योपाध्यायस्य सप्त असङ्ग्रहस्थानानि विज्ञेयानि । एतदेव सूचयितुमाह—

“ आयरियं उवज्ज्ञायस्स णं गणंसि सत्त असंगहट्ठाणा पणत्ता ” इत्यादि । व्याख्याऽस्य संग्रहस्थानविपरीत्येन बोधयेति ॥ सू० ४ ॥

छठा स्थान इस प्रकारसे है—“ आयरियउवज्ज्ञाय गणंसि अणुप्पन्नाइं ” इत्यादि-जो आचार्य उपाध्याय गणमें अलब्ध उपकरणोंका वस्त्र पात्रादिकोंका-एषणा शुद्धिसे उपार्जक होता है, वह आचार्य शिष्यका संग्राहक और ज्ञानादिकों संग्राहक होता है ।

सातवां स्थान इस प्रकारसे हैं—“ आयरियउवज्ज्ञाय ” इत्यादि-जो आचार्योपाध्याय पूर्वकालोत्पादित वस्त्र पात्रादि उपकरणोंका प्रयत्नपूर्वक रक्षण करता होता है, असम्भक् रूपसे उनका रक्षण करनेवाला नहीं होता है, ऐसा वह आचार्योपाध्याय शिष्यका संग्राहक और ज्ञानादिकोंका संग्राहक होता है, इन सातों संग्रह स्थानोंसे विपरीत जो स्थान हैं-वे सात असंग्रह स्थान हैं । यही बात “ आयरिय उवज्ज्ञायस्स णं गणंसि सत्त असंगहट्ठाणा पणत्ता ” इस सूत्रपाठ द्वारा प्रकट की गई है, यहांके पदोंकी व्याख्या संग्रहस्थान गत पदोंकी व्याख्यासे विपरीत होती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ सूत्र ४ ॥

छठुं स्थान—“ आयरियउवज्ज्ञाय गणंसि अणुप्पन्नाइं ” इत्यादि—जे आचार्य अलब्ध उपकरणाना (वस्त्रपात्रादिकाना) एषणा शुद्धिपूर्वक उपार्जक होय छे, तेजो शिष्येनो तथा ज्ञानादिनो संग्रह करी शकें छे.

सातमुं स्थान—“ आयरियउवज्ज्ञाय ” इत्यादि—जे आचार्योपाध्याय पूर्वकालोत्पादित वस्त्र, पात्रादि इप उपकरणानं प्रयत्नपूर्वक रक्षण करनारा होय छे, तेजो शिष्येनो अने ज्ञानादिनो संग्रह करी शकें छे संग्रहना आ सात स्थानो करतां जे विपरीत प्रकारना स्थानो छे, तेमने असंग्रहना अथवा गणुना विनाशनां स्थानो समञ्जवा लोछये. जे ज वात “ आयरियउवज्ज्ञायस्स णं गणंसि सत्त असंगहट्ठाणा पणत्ता ” आ सूत्रपाठ द्वारा प्रकट करवाभां आवी छे. संग्रहना स्थानो करतां असंग्रहनां स्थानो विपरीत होवाथी संग्रहना स्थानानां पटोनी व्याख्या करतां असंग्रहना स्थानानां पटोनी व्याख्या विपरीत समञ्जवी. ॥ सू. ४ ॥

अनन्तरसूत्रे 'आज्ञादिकं न सम्यक् प्रयोक्ता भवति' इत्युक्तम् । आज्ञा च पिण्डैषणादिविषयेति पिण्डैषणादीनि निरूपयति —

मूलम्—सत्त पिण्डैषणाओ पण्णत्ताओ । सत्त पाणैसणाओ पण्णत्ताओ । सत्त उग्गहपडिमाओ पण्णत्ताओ । सत्त सत्तिकया पण्णत्ता । सत्तमहज्जयगा पण्णत्ता । सत्त सत्तमियाणां भिक्खुपडिमा एकूणपण्णयाए राइंदिएहिं एगेण य छण्णउष्णां भिक्खासएणां अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहोतच्चं अहासम्मं काएणां फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया आराहिया आणाए अणुपालियावि भवइ ॥ सू० ५ ॥

छाया—सप्त पिण्डैषणाः प्रज्ञप्ताः । सप्त पानैषणाः प्रज्ञप्ताः । सप्त अवग्रहप्रतिमाः प्रज्ञप्ताः । सप्त सप्तैककानि प्रज्ञप्तानि । सप्त महाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि । सप्त सप्तमिका खलु भिक्षुप्रतिमा एकोनपञ्चाशता रात्रिन्दिवैः एकेन च पण्यवत्या भिक्षाशतेन यथासूत्रं यथाकल्पं यथामार्गं यथातत्त्वं यथासाम्यं कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्त्तिता आराधिता आज्ञया अनुपालिताऽपि भवति ॥ सू० ५ ॥

टीका—'सत्त पिण्डैषणाओ' इत्यादि—

पिण्डैषणाः—पिण्डः=भक्तम्, तस्य एषणाः=ग्रहणप्रकाराः सप्त प्रज्ञप्ताः । तांश्च—

इस ऊपरके सूत्रमें अन्तमें "आज्ञादिकका वह सम्यक् प्रयोक्ता नहीं होता है" ऐसा कहा गया है, सो आज्ञा 'पिण्डैषणादि' विषयवाली होती है—अतः अब सूत्रकार पिण्डैषणादिकका निरूपण करते हैं—
"सत्त पिण्डैषणाओ पण्णत्ताओ" इत्यादि । सूत्र ५ ॥

टीकार्थ—पिण्डैषणा—पिण्ड—आहारकी जो एषणा हैं—ग्रहण करनेके प्रकार हैं—वे पिण्डैषणा हैं—ये सात प्रकारकी कही गई हैं, जैसे—असं-

उपरना सूत्रने अन्ते एवुं लभाणु आ०युं' छे डे "तेओ आज्ञादिकना सम्यक् प्रयोक्ता (प्रवर्तक) डोता नथी" आज्ञा पिण्डैषणादि विषयवाणी डोथ छे, तेथी डवे सूत्रकार पिण्डैषणादिकनुं निरूपणु करे छे.

"सत्त पिण्डैषणाओ पण्णत्ताओ" इत्यादि—

टीकार्थ—पिण्डैषणा ओटवे पिण्डने (आहारने) ग्रहण करवाने प्रकार, आहारने ग्रहण करवाने प्रकार ३५ पिण्डैषणांना नीचे प्रभाणु सात प्रकार कथा छे—

અસંસૃષ્ટા ૧ સંસૃષ્ટા ૨ ઉદ્ધૃતા ૩, અલ્પલેપિકા ૪ અવગૃહીતા ૫ પ્રગૃહીતા ૬
 ઉજ્જિતધર્મા ૭ ચેતિ । તન્ન-યન્ન પિણ્ડૈષણાયાં હસ્તઃ પાત્રં ચેતિ દ્વયમપ્યસંસૃષ્ટમ્
 સા-અસંસૃષ્ટા=અલ્પલેપિકાદિ ગ્રહણરૂપેત્યર્થઃ । ૧ ।
 સંસૃષ્ટા=લ્પલેપિકાદિ ગ્રહણરૂપેત્યર્થઃ ॥ ૨ ॥ ઉદ્ધૃતા=ગૃહસ્થેન
 સ્વાર્થ સ્થાલ્યાદી ભોજનજાતમુદ્ધૃતમ્ તદેવંત્રિયં ભોજનજાતમ્ સંસૃષ્ટહસ્તતઃ
 અસંસૃષ્ટપાત્રતઃ સંસૃષ્ટપાત્રતઃ અસંસૃષ્ટહસ્તતો વા ગૃહ્ણતઃ । અસ્યાઃ સંસૃષ્ટાઽસંસૃ-

સૃષ્ટ ૧ સંસૃષ્ટ ૨ ઉદ્ધૃત ૩ અલ્પલેપિકા ૪, અવગૃહીત ૫ પ્રગૃહીત ૬,
 ઓર ઉજ્જિતધર્મા ૭, જિસ પિણ્ડૈષણામેં હાથ ઓર પાત્ર યે દોનોંં બી
 અસંસૃષ્ટ હોતે હેં એસી વહ પિણ્ડૈષણા અસંસૃષ્ટપિણ્ડૈષણા હૈ, એસી યહ
 પિણ્ડૈષણા મુજે હુએ ચનોંં આદિકો ગ્રહણ કરને રૂપ હોતી હૈ-ક્યોંકિ
 યે ન હાથમેં ચિપકતે હેં, ઓર ન પાત્રમેંહી ચિપકતે હેં । જિસ પિણ્ડૈ-
 ષણામેં હાથ ઓર પાત્ર દોનોંં લ્પલેપિકા-સંસૃષ્ટ હો જાતે હૈ, એસી વહ
 પિણ્ડૈષણા સંસૃષ્ટ પિણ્ડૈષણા હૈ, યહ પિણ્ડૈષણા કૃશારાદિ-લીચડી
 આદિકો ગ્રહણ કરનેરૂપ હોતી હૈ । ઉદ્ધૃત-ગૃહસ્થને અપને નિમિત્ત જિસ
 ભોજનસે ભોજનકો સ્થાલી આદિમેં નિકાલ કર રલ્પ લિયા હો એસે
 ભોજનકો સંસૃષ્ટ હાથસે, અસંસૃષ્ટ પાત્ર અથવા સંસૃષ્ટ પાત્રસે અસં-
 સૃષ્ટ હાથસે લેનેવાલેકી યહ ઉદ્ધૃત પિણ્ડૈષણા હોતી હૈ, હસકા દૂસરા
 નામ સંસૃષ્ટાસંસૃષ્ટ પિણ્ડૈષણા બી હૈ । સ્વલ્પલેપ યુક્ત એસી જો પુરાને

(૧) અસંસૃષ્ટ, (૨) સંસૃષ્ટ, (૩) ઉદ્ધૃત, (૪) અલ્પલેપિકા, (૫) અવગૃહીત,
 (૬) પ્રગૃહીત અને (૭) ઉજ્જિતધર્મા.

જે પિંડૈષણામાં હાથ અને પાત્ર, એ બન્ને અસંસૃષ્ટ (ખરડાયા વિનાના)
 રહે છે, તે પ્રકારની પિંડૈષણાને અસંસૃષ્ટ પિંડૈષણા કહે છે. પત્રાણેતા યજ્ઞાં
 આદિને ગ્રહણ કરવા રૂપ આ પિંડૈષણા હોય છે, કારણ કે તે હાથ સાથે
 પણ ચોટી જતાં નથી અને પત્ર સાથે પણ ચોટી જતાં નથી. જે પિંડૈષણામાં
 હાથ અને પાત્ર, બન્ને સંસૃષ્ટ-ખરડાયેલા થાય છે, તે પ્રકારની પિંડૈષણાને
 સંસૃષ્ટ પિંડૈષણા કહે છે. તે પિંડૈષણા ખીચડી આદિને ગ્રહણ કરવા રૂપ
 હોય છે, કારણ કે તે વસ્તુ હાથ અને પાત્ર સાથે ચોટી જાય છે.

ઉદ્ધૃત પિંડૈષણા—ગૃહસ્થે ચોતાને નિમિત્તે જે લોજનને કોઈ લોજન
 (પાત્ર) માંથી થાળી આદિમાં કાઢવું હોય એવા લોજનને સંસૃષ્ટ હાથ વડે
 અથવા અસંસૃષ્ટ હાથ વડે અને અસંસૃષ્ટ પાત્ર વડે અથવા સંસૃષ્ટ પાત્ર
 વડે ગ્રહણ કરવા રૂપ જે પિંડૈષણા છે તેને ઉદ્ધૃત પિંડૈષણા કહે છે. તેવું
 બીજું નામ સંસૃષ્ટાસંસૃષ્ટ પિંડૈષણા પણ છે.

ષ્ટેત્યપિ નામ ॥ ૩ ॥ અલ્પલેપિકા-સ્વલ્પલેપયુક્તા પુરાણશાલિમક્તગ્રહણરૂપા
 ॥ ૪ ॥ અવગૃહીતા-ભોજનકાલે શરાવોદિપુ યદ્ ભોજનજાતમુપહતં તતો ગૃહ્ણતઃ
 ॥ ૫ ॥ પ્રગૃહીતા-ભોજનવેલાયાં દાતુમશ્યુચ્ચતેન હસ્તાદિના ગૃહીતં યદ્ ભોજન-
 જાતં, મોક્તું વા હસ્તાદિના ગૃહીતં, તતો ગૃહ્ણતઃ । ૬ । તથા-ઉજ્જિતધર્મા-યદ્
 ભોજનજાતં નીરસતયા પરિત્યાગયોગ્યમન્તપ્રાન્તલક્ષણં યદન્યે દ્વિપદાદયો નામિ-
 લપન્તિ, તદ્ ગૃહ્ણતઃ, ॥ ૭ ॥ ઇતિ । પાનૈષણાઽપિ એવમેવ સપ્તત્રિધા વિજ્ઞેયા ।

શાલીકે ચાવલોંકે માતકો ગ્રહણ કરનેરૂપ પિંડૈષણા છે, વહ અલ્પ-
 લેપિકા પિંડૈષણા છે । ભોજન કાલમેં શરાવ-સકોરા-આદિમેં જો
 ભોજન આદિ નિકોલ કર રખા ગયા હો ઉસે ગ્રહણ કરનેવાઠેકી યહ
 અવગૃહીતા પિંડૈષણા હોની છે, ભોજનકે સમય દેનેકો અશ્યુચ્ચત હુએ
 હાથ આદિસે જો ભોજન ગૃહીત હુઆ હોના છે, વહ અથવા યાનેકે
 લિયે હાથ આદિસે ગૃહીત હુઆ જો ભોજન છે, ઉસે લેનેવાલેકી યહ
 પ્રગૃહીત પિંડૈષણા હોની છે । ઉજ્જિત ધર્મા-જો ભોજન નીરસ હોનેસે
 પરિત્યાગ કરનેકે યોગ્ય હોના છે, એસે ઉસ અન્ત પ્રાન્તરૂપ ભોજનકો
 કિ-જિસે દૂસરે દ્વિપદ આદિ મી નહોંં ચાહતે હોંં, ગ્રહણ કરનેવાલેકી
 યહ ઉજ્જિત ધર્મા પિંડૈષણા હોની છે । પાનૈષણા મી હસી પ્રકારસે
 સાત પ્રકારકી છે, ચતુર્થ પાનૈષણામેં નાનાસ્ત્ર છે, અનેક પ્રકારતા છે,

અલ્પલેપિકા પિંડૈષણા--સ્વલ્પ લેપયુક્ત એવા જૂની શાલીના (એક
 પ્રકારની ડાંગરના) ભાતને ગ્રહણ કરવા રૂપ જે પિંડૈષણા છે તેને અલ્પલેપિકા
 પિંડૈષણા કહે છે.

અવગૃહીતા પિંડૈષણા--ભોજનકાલે શકેરા આદિમાં જે ભોજનાદિને
 કાઢી રાખવામાં આવેલ હોય તેને ગ્રહણ કરનારની પિંડૈષણાને અવગૃહીતા
 પિંડૈષણા કહે છે.

પ્રગૃહીત પિંડૈષણા--ભોજનને સમયે દેવાને માટે (અર્પણ કરવાને માટે)
 ઊંચા થયેલા હાથ આદિ વડે જે ભોજન ગ્રહણ કરવામાં આવે છે તેને,
 અથવા ખાવાને માટે હાથ આદિ વડે જે ભોજન ગ્રહણ કરવામાં આવેલું
 હોય તેને ગ્રહણ કરનારની પિંડૈષણાને પ્રગૃહીત પિંડૈષણા કહે છે.

ઉજિતધર્મા પિંડૈષણા--જે ભોજન નીરસ હોવાને લીધે નાખી દેવાને
 યોગ્ય હોય છે અને જે ભોજન ગ્રહણ કરવાની ખીજ કોઈ પણ માણસને
 ઇચ્છા થતી નથી એવા અન્ત પ્રાન્ત રૂપ ભોજનને ગ્રહણ કરનાર સાધુની
 પિંડૈષણાને ઉજિતધર્મા પિંડૈષણા કહે છે. પાનૈષણા પણ એ જ પ્રમાણે સાત

नवरं-चतुर्थी पानैषणायानां नानात्वं अल्पलेपं तु तत्र अवस्त्रावणसौवीरकादि
विज्ञेयमिति ७।

अथ प्रतिमायाः सप्तविधत्वमाह-‘ उग्गहपडिमा ’ इत्यादि । अवग्रहप्रतिमाः-
अवग्रह्यते=आश्रीयते इत्यवग्रहो वसतिः, तस्य-प्रतिमाः=अभिग्रहाः सप्त प्रज्ञप्ताः ।
तत्र-‘ अहमेवंविधमेव उपाश्रयं ग्रहीष्ये, नान्यद्विधम् ’ इत्येवं पूर्वम् अभिग्रह्य
य उपाश्रयं गृह्णाति तस्य प्रथमा अवग्रहप्रतिमा ॥ १ ॥ तथा-“ अहमेपां साधूनां
कृतेऽवग्रहं ग्रहीष्यामि, अयैश्च अवग्रहे गृहीते सति स्वयं वत्स्यामि ’ एवमभिग्रह-
वतो द्वितीया । इयं तु गच्छान्तर्गतानां सांभोगिकानाम् असांभोगिकानां चोद्यत-

अल्प लेपता तो वहां अवस्त्रावण-ओसामण-सौवीरक आदिरूप है,
ऐसा जानना चाहिये । ७।

अब सूत्रकार प्रतिमाकी सप्तविधता कहते हैं-“ उग्गहपडिमा ”
इत्यादि-अवग्रह प्रतिमा-“ अवग्रह्यते आश्रीयते इति अवग्रहः ” इस
व्युत्पत्तिके अनुसार साधुजन जिसे ठहरनेके लिये अपना आश्रयभूत
बनाते हैं, वह अवग्रह है, ऐसा वह अवग्रह वसतिरूप होता है, इस
अवग्रहकी जो प्रतिमा है-अभिग्रह है-वह अवग्रह प्रतिमा है, इनमें
“ मैं इस प्रकारकेही उपाश्रयमें ठहरूंगा-और किसी प्रकारके उपाश्र-
यमें नहीं ठहरूंगा ” इस प्रकारका पहिले अभिग्रह करके जो संकल्पित
उपाश्रयमें ठहरता है, उसको पहिली अवग्रह प्रतिमा होती है । १।

प्रकारनी कही छे. अतुर्थ पानैषणामां अनेक प्रकारता छे. अल्पलेपता तो
त्थां ओसामणु आदि इप समजवी.

इवे सूत्रकार प्रतिमाना सात प्रकारनुं निरूपणु करे छे--

“ उग्गहपडिमा ” इत्यादि--

“ अवग्रह्यते-आश्रीयते इति अवग्रहः ” आ व्युत्पत्ति अनुसार साधु पोताने
शेडेवाने माटे जे स्थाननो आश्रय ले छे तेने अवग्रह कहे छे ते अवग्रह वसति
उपाश्रय इप होय छे आ अवग्रह विषयक जे प्रतिमा (अलिग्रह) छे तेने
अवग्रह प्रतिमा कहे छे. इवे तेना सात प्रकारे प्रकट करवामां आवे छे--

“ हुं आ प्रकारना उपाश्रयमां जे रडीश-पीज कोरि पशु प्रकारना
उपाश्रयमां नही रहु, ” आ प्रकारनो अलिग्रह पडेलां करीने जे स धु
संकल्पित उपाश्रयमां आश्रय स्वीकारे छे, तेना आ प्रकारना अवग्रह अलि-
ग्रहने पडेला प्रकारनी अवग्रह प्रतिमा कहे छे.

विहारिणां भवति, यतस्ते परस्परार्थं याचन्ते इति ॥ २ ॥ तथा—'अन्यार्थमवग्रहं याचिष्ये, अन्यावगृहीतायां च वसती न निवत्स्यामि' इति तृतीया । इयमवग्रहप्रतिमा तु गच्छप्रतिबद्धा-प्रतिबद्धानां यथालन्दिक्कानां मध्ये गच्छप्रतिबद्धानां यथालन्दिक्कानां भवति । ते हि वाचनावशिष्टं सूत्रजातं गुरोः सकाशाद्ध्येतुमनसो गुरोरर्थं वसति याचन्ते इति ॥ ३ ॥ तथा—'अहमन्यार्थमवग्रहं न वगृहीष्यामि, अन्येनावगृहीतेऽवग्रहे तु स्थास्यामि' इति चतुर्थी । इयन्तु गच्छ-

तथा—मैं "इन साधुओंके लिये अवग्रह ग्रहण करूंगा तथा अन्योके द्वारा अवग्रह गृहीत होने पर मैं स्वयं भी उसमें रहूंगा" इस प्रकारके अभिग्रहवालेके द्वितीया अवग्रह प्रतिमा होती है, यह द्वितीय अभिग्रह प्रतिमा गच्छान्तर्गत सांभोगिकोंको और असांभोगिकोंके कि जो उद्यत विहारी होते हैं-होती है, क्योंकि वे परस्परके लिये मांगते हैं २ अन्यके लिये मैं अवग्रह मांगूंगा और अन्यके द्वारा अवगृहीत वसति उपाश्रयमें मैं रहूंगा नहीं" ऐसी यह तृतीय अवग्रह प्रतिमा है, यह अवग्रह प्रतिमा गच्छ प्रतिबद्धोंके अप्रतिबद्धोंके तथा यथालन्दिक्कोंके मध्यमें गच्छ प्रतिबद्ध यथालन्दिक्कोंके होती है । क्योंकि वे वाचनासे बाकी बचे हुए सूत्रको गुरुसे पढनेकी अभिलाषावाले होते हुए गुरुके लिये वसतिकी याचना करते हैं । ३ ।

"मैं अन्यके लिये अवग्रह ग्रहण नहीं करूंगा परन्तु अन्यसे अवगृहीत अवग्रह होगा तो उसमें ठहर जाऊंगा" ऐसी यह चौथी

"हुं आ साधुओंने माटे अवग्रह (आश्रयस्थान) ग्रहण करीश. तथा अन्यना द्वारा अवग्रह गृहीत तथा पछी हुं पण तेमां रहीश" आ प्रकारने अलिग्रह धारण करीने संकल्पित उपाश्रयमां आश्रय स्वीकारनार सधुना आ अवग्रह अलिग्रहने भील प्रकारनी अवग्रह प्रतिमा कडे छे. आ भील प्रकारनी अवग्रह प्रतिमाने उद्यत विहारी गच्छान्तर्गत सांभोगिकेमां अने असांभोगिकेमां सदृशाव डाय छे, कारण के तेओ परस्परने माटे मांगे छे.

"अन्यने माटे हुं अवग्रह (आश्रयस्थान) मांगीश अने अन्यना द्वारा अवगृहीत (उपाश्रयमां) हुं रहीश" आ प्रकारनी त्रीण अवग्रह प्रतिमा छे. आ प्रतिमाने सदृशाव गच्छप्रतिबद्धोंमां, अप्रतिबद्धोंमां यथालन्दिक्केमांता गच्छप्रतिबद्ध यथालन्दिक्केमां डाय छे, कारण के जे सूत्रेनी याचना भाडी रही गच्छ डाय ते सूत्रेने गुरु पासेथी शीभवानी अलिशाषाणा तेओ गुरुने माटे वसति (उपाश्रय) नी याचना करे छे.

स्थितानामभ्युद्यतविहारिणां जिनकल्पिकत्वपाप्तये, परिकर्मकुर्वतां भवतीति ॥ ४ ॥ तथा—‘अहं स्वार्थमवग्रहं याचिष्ये, न चान्येषां द्वित्रिचतुः पञ्चाना’—मिति पञ्चमी । इयं तु जिनकल्पिकस्य बोध्येति ॥ ५ ॥ तथा—‘यदीयमवग्रह-महं ग्रहीष्यामि, तदीयमेव चेत् तृणादिसंस्तारकं भवेत् तदा तद् ग्रहीष्यामि । अन्यथा उत्कुटुको वा निषण्णो वा रात्रिं नेष्यामीति षष्ठी । इयमपि जिनकल्पि-कादेरेवेति ॥ ६ ॥ तथा—सप्तम्यपि षष्ठीवदेव बोध्या । नवरं यथाऽऽस्तृतमेव शिलादिकं ग्रहीष्यामि नान्यदिति ॥ ७ ॥ इति—सप्तम्यावग्रहप्रतिमाः ॥ ७ ॥

अवग्रह प्रतिमा है । यह अवग्रह प्रतिमा है, यह अवग्रह प्रतिमा गच्छ-स्थित अभ्युद्यत विहारी साधुओंके कि जो जिनकल्पिकत्वकी प्राप्तिके लिये परिकर्म करते हैं होती है, तथा—मैं अपने लिये अवग्रहकी याचना करूंगा अन्य—दो—तीन—चार और पांचके लिये अवग्रहकी याचना नहीं करूंगा ऐसी यह पांचवी अवग्रह प्रतिमा है, यह पांचवी प्रतिमा जिन-कल्पिकके होती हैं ऐसा जानना चाहिये मैं जिसका अवग्रह ग्रहण करूंगा उसीका यदि तृणादि संस्तारक होगा तो उसे लूंगा—नहीं तो मैं उत्कुटुक होकर या बैठकरही रात्रिको व्यतीत करूंगा ऐसी यह छठी प्रतिमा है, यह प्रतिमा भी जिनकल्पिक आदिकेही होती है । तथा सप्तमी प्रतिमा भी छठी प्रतिमाके जैसीही होती है । सिर्फ इसमें यही अन्तर है, कि इसमें वह प्रतिमाधारी साधु “यथास्तृत शिलादिकही में ग्रहण करूंगा” अन्यका नहीं ऐसा अभिग्रह करता है । इस प्रका-

“अन्यने माटे ङु अवग्रह ग्रहण करीश नडीं, परन्तु अन्य द्वारा अवगृहीत अवग्रह. (उपाश्रय) छरी तो तेमां ङु रडीश, ” आ प्रकारनी योथी अवग्रह प्रतिमा डाय छे. गच्छस्थित अभ्युद्यत विहारी साधुओ के जे जिनकल्पिकत्वनी प्राप्तिने माटे परिकर्म करता डाय छे, ते साधुओमां आ प्रकारनी अवग्रह प्रतिमानो सदभाव डाय छे.

“ ङु मारे माटे अवग्रहनी याचना करीश, अन्य जे, त्रणु, चार अन्य पांचने माटे अवग्रहनी याचना नडीं कर ” आ प्रकारनी पांचमी अवग्रह प्रतिमा छे, आ अवग्रह प्रतिमानो जिनकल्पिकमां सदभाव डाय छे. “ जे गृहस्थ पासेथी अवग्रह—आश्रयस्थान ग्रहण करीश तेनी पासेथी जे जे तृणादि संस्तारक मणरी तो लक्ष, नडीं तो जेकां जेकां ज रात्रि व्यतीत करीश, ” आ प्रकारनी छठी अवग्रह प्रतिमा समजवी, जिनकल्पिक आदिमां आ प्रतिमानो सदभाव डाय छे. सातमी प्रतिमा पणु छठी प्रतिमा जेवी ज छे, इष्ट छठी करतां सातमी प्रतिमां आटवो ज तइवत छे—सातमी प्रतिमा-

તથા-સપ્તૈકકાઃ-ઉદ્દેશવર્જિતત્વેન એકસરતયા એકકાઃ-આચારાઙ્ગદ્વિતીયશ્રુત-સ્કન્ધસ્થિતા દ્વિતીયચૂડારૂપા અધ્યયનવિશેષાઃ, તે ચ સમુદાયતઃ સપ્તેતિ કૃત્વા સપ્તૈકકા ઉચ્યન્તે, તેપામેકોઽપિ સપ્તૈકક ઇતિ વ્યપદિશ્યતે, તથૈવ સંકેતિત-ત્વાત્ । તે ચ સપ્તૈકકાઃ સપ્તસંખ્યકાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ । તથાહિ-પ્રથમઃ સ્થાનસપ્તૈ-કકઃ ૧, દ્વિતીયો નૈષેધિકી સપ્તૈકકઃ ૨, તૃતીય ઉચ્ચારપ્રસવણવિધિસપ્તૈકકઃ ૩, ચતુર્થઃ શબ્દસપ્તૈકકઃ ૪, પશ્ચમો રૂપસપ્તૈકકઃ ૫, ષષ્ઠઃ પરિક્રિયાસપ્તૈ-કકઃ ૬, સપ્તમઃ-અન્યોઽક્રિયાસપ્તૈકકઃ ૭ ઇતિ । તથા-મહાધ્યયનાનિ-મહાન્તિ=સૂત્રકૃતાઙ્ગસ્ય પ્રથમશ્રુતસ્કન્ધાપેક્ષયા વિશાલાનિ ચ તાનિ અધ્યયનાનિ=દ્વિતીયશ્રુતસ્કન્ધસ્ય પ્રકરણવિશેષાશ્ચેતિ, તાનિ ચ-પુણ્ડરીકં ૧, ક્રિયાસ્થાનમ્

રક્તી યે સાત અવગ્રહ પ્રતિમાઈંહં । તથા સપ્તૈકક—આચારાઙ્ગકે દ્વિતીય શ્રુતસ્કન્ધમે સ્થિત દ્વિતીય ચૂડારૂપ અધ્યયન વિશેષ સપ્તૈકક સાત કહે ગયે હૈં, યે સમુદાયસે સાત હોતે હૈં, એસા સમજકર હી ઇન્હે સપ્તૈકક કહા ગયા હૈ, ઇસલિયે ઇનમેકા જો એકબી એકક હોગા વહ બી સપ્તૈકક એસા કહલાવેગા । પહિલા સ્થાન સપ્તૈકક હૈ ૧ દ્વિતીય નૈષેધિકી સપ્તૈકક હૈ ૨ તૃતીય ઉચ્ચાર પ્રસવણ વિધિ સપ્તૈકક હૈ ૩, ચતુર્થ શબ્દ સપ્તૈકક હૈ ૪-પાંચવા રૂપ સપ્તૈકક હૈ ૫. છઠા પરિક્રિયા સપ્તૈકક હૈ ૬ ઓર સાતવાં અન્યોન્ય ક્રિયા સપ્તૈકક હૈ ૭ તથા મહા ધ્યયન-સૂત્રકૃતાઙ્ગકે પ્રથમ શ્રુતસ્કન્ધકી અપેક્ષાસે દ્વિતીય શ્રુતસ્કન્ધકે જો પ્રકરણ વિશેષરૂપ અધ્યયન હૈં વે મહાધ્યયન હૈં-યે મહાધ્યયન બી સાત હૈં-ઇનમે પ્રથમ મહાધ્યયન પુણ્ડરીક હૈ ૧ દ્વિતીય મહાધ્યયન

ધારી સાધુ “યથાસ્તૃત શિલાદિક જ હું ગ્રહણ કરીશ,” અન્યના નહીં, એવો અભિગ્રહ કરે છે. આ પ્રકારની સાત અવગ્રહ પ્રતિમાઓ હોય છે.

તથા સપ્તૈકક-આચારાંગના બીજા શ્રુત સ્કન્ધમાં સ્થિત દ્વિતીય ચૂડારૂપ અધ્યયન વિશેષ સાત કહ્યાં છે તે સમુદાયની અપેક્ષાએ સાત હોય છે, એવું સમજીને જ તેમને સપ્તૈકક કહ્યાં છે, અને તે કારણે તેમનામાંથી જે એક પણ એકક હશે તેને પણ સપ્તૈકક કહેવામાં આવશે. (૧) પહેલું સ્થાન સપ્તૈકક છે (૨) બીજું નૈષેધિકી સપ્તૈકક છે. (૩) ત્રીજું ઉચ્ચાર પ્રસવણ વિધિ સપ્તૈકક છે. (૪) ચોથું શબ્દ સપ્તૈકક છે. (૫) પાંચમું રૂપ સપ્તૈકક છે. (૬) છઠું પરિક્રિયા સપ્તૈકક છે અને સાતમું અન્યોન્ય ક્રિયા સપ્તૈકક છે.

તથા મહાધ્યયન પણ સાત છે. સૂત્રકૃતાંગના પહેલા શ્રુતસ્કન્ધ કરતાં મોટા એવા બીજા શ્રુતસ્કન્ધના પ્રકરણ વિશેષરૂપ જે અધ્યયનો છે તેમને મહાધ્યયન કહે છે. તે મહાધ્યયન પણ નીચે પ્રમાણે સાત જ છે-તેમાં પહેલું

૨, આહારપરિજ્ઞા ૩, પ્રત્યાખ્યાનક્રિયા ૪, અનાચારશ્રુતમ્ ૫, આર્દ્રકુમારીયે ૬, નાલન્દીય ૭ એવિ સપ્તસંખ્યકાનિ પ્રજ્ઞપ્તાનિ । તથા-સપ્તસપ્તમિકા-સપ્ત-
સપ્તસંખ્યકાનિ સેષ્ઠમાનિ દિનાનિ યસ્યાં સા-સપ્તમિઃ દિનસપ્તકૈર્નિષ્પચમાનાં
ક્રિયાસ્થાન હૈ ૨ તૃતીય મહાધ્યયન આહાર પરિજ્ઞા હૈ ૩ ચૌથા મહા-
ધ્યયન પ્રત્યાખ્યાન ક્રિયા હૈ ૪. પાંચવાં મહાધ્યયન અનાચાર શ્રુત હૈ,
છઠા મહાધ્યયન આર્દ્રકુમારકા હૈ ૬ ઓર સાતવાં મહાધ્યયન નાલ
ન્દીય હૈ, તથા-સાત સપ્તાહમેં ૪૨ દિનરાતમેં-સમાપ્ત હોનેવાલી ભિક્ષુ
પ્રતિમા હૈ, યહ ભિક્ષુ પ્રતિમા ૪૨ દિનરાત તક આરાધિત હોતી હૈ,
इसमें प्रथम सप्ताहमें एक दत्ति आहारकी एक दत्ति पानीकी ग्रहण
की जाती है, द्वितीय सप्ताहमें भक्तकी दो पानीकी दो दत्तियां प्रतिदिन
ग्रहण की जाती हैं, तृतीय सप्ताहमें प्रतिदिन भक्तकी ३-और पानकी
३ दत्तियां ग्रहण की जाती हैं, चतुर्थ सप्ताहमें प्रतिदिन भक्तकी ४
दत्तियां और पानकी ४ दत्तियां ग्रहण की जाती हैं, पंचम सप्ताहमें
प्रतिदिन भक्तकी ५ दत्तियां और पानकी ५ दत्तियां ग्रहण की जाती
हैं, छठे सप्ताहमें भक्तकी ६ दत्तियां और पानकी ६ दत्तियां प्रतिदिन
ग्रहण की जाती हैं, और ७ वे सप्ताहमें भक्तकी ७ दत्तियां और पानकी

મહાધ્યયન પુંડરીક છે, બીજુ' મહાધ્યયન ક્રિયાસ્થાન છે, ત્રીજુ' મહાધ્યયન
આહારપરિજ્ઞા છે, ચેથુ મહાધ્યયન પ્રત્યાખ્યાન ક્રિયા છે, પાંચમુ' મહાધ્યયન
અનાચારશ્રુત છે, છઠુ' મહાધ્યયન આર્દ્રકુમારતું છે અને સાતમુ' મહાધ્યયન
નાલન્દીય છે.

સાત સપ્તાહમાં-૪૨ દિનરાતમાં સમાપ્ત થનારી ભિક્ષુપ્રતિમા છે. ૪૨-
દિનરાત પર્યાન્ત આ ભિક્ષુપ્રતિમાની આરાધના કરાય છે આ ભિક્ષુપ્રતિમાની
આરાધના કરનાર સાધુ પ્રથમ સપ્તાહમાં પ્રતિદિન એક દત્તિ આહારની અને
એક દત્તિ પાણીની ગ્રહણ કરે છે. બીજા સપ્તાહમાં પ્રતિદિન બે દત્તિ આહાર-
ની અને એ દત્તિ પાણીની ગ્રહણ કરાય છે. ત્રીજા સપ્તાહમાં ત્રણ દત્તિ
આહારની અને ત્રણ દત્તિ પાણીની ગ્રહણ કરાય છે. ચોથા સપ્તાહમાં પ્રતિદિન
ચાર દત્તિ આહારની અને ચાર દત્તિ પાણીની ગ્રહણ કરાય છે. પાંચમાં
સપ્તાહમાં પ્રતિદિન આહારની પાંચ દત્તિ અને પાણીની પાંચ દત્તિ ગ્રહણ
કરાય છે. છઠા સપ્તાહમાં પ્રતિદિન આહારની ૬ દત્તિ અને પાણીની ૬ દત્તિ
ગ્રહણ કરાય છે સાતમાં સપ્તાહમાં પ્રતિદિન આહારની સાત દત્તિ અને

खलु भिक्षुप्रतिमा एकोनपञ्चाशता रात्रिन्दिवैः=अहोरात्रैः, एकेन च षण्णवत्या भिक्षागतेन षण्णवत्यधिकैकशतसंख्याभिर्दत्तिरूपाभिः भिक्षाभिः यथासूत्रम्=सूत्र निर्दिष्टविध्यनुसारं, यथाकल्पम्-कल्पं=स्थविरादिकल्पमतिक्रम्य, कल्पानुसारमित्यर्थः, यथामार्गम्-ज्ञान-दर्शनचारित्र्यलक्षणमोक्षमार्गानतिक्रमेण क्षयोपशमभावानतिक्रमेण वा, यथातत्त्वं-तत्त्वानतिक्रमेण 'याथातथ्यम्' इतिच्छाया पक्षे-सत्यानुसार, यथासाम्यम्-समभावमतिक्रम्य-सुष्ठुप्रकारेण कर्मनिर्जरणभावनयेत्यर्थः, कायेन=शरीरेण न पुनरभिलाषनात्रेण स्पृष्टा=समुचितकाले सविधिग्रहणात्, पालिता=वारंवारमुपयोगेन तत्परत्वात्, शोयिता-पारणकदिने गुवादि

७-दत्तियां ग्रहण की जाती हैं। इस प्रकार इन सब भक्तकी दत्तियोंकी संख्या १९६ हो जाती हैं। इसी प्रकारसे पानककी दत्तियोंके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये इस प्रकारसे प्रवर्द्धमान भक्तपान दत्तियोंसे यह भिक्षु प्रतिमा ४९ रात्रिदिनमें पूर्ण होती है "यथा सूत्रं यथा कल्पं" इत्यादि क्रिया विशेषणोंसे सूत्रकारने यह प्रकट किया है, कि इस भिक्षा प्रतिमाको यथासूत्र में पालन करनेकी जैसी विधि प्रकट की गई है, उसी विधिके अनुसार यथाकल्प-स्थविर आदि कल्पके अनुसार, यथामार्ग-ज्ञान, दर्शन, एवं चारित्र्यरूप मुक्तिमार्गके अनुसार, अथवा अपने क्षयोपशम भावके अनुसार यथातत्त्व-तत्त्वके अनुसार-अथवा याथातथ्य-सत्यके अनुसार-और यथासाम्य-समताभावके अनुसार जो भिक्षु शरीरसे-मनोरथसे नहीं-अभिलाषा मात्रसे नहीं स्पृष्ट करता है-समुचित कालमें विधिपूर्वक ग्रहण करता है, पालता है-

पाणीनी सात दत्ति ग्रहण कराय छे. आ प्रकारे ४९ रात दिवसमां आहारनी कुल १९६ दत्तियो थाय छे. ओ न प्रमाणे पाणीनी दत्तियो विषे पणु समञ्जसु. आ प्रकारे आहार पाणीनी दत्तियोमां प्रत्येक समाहमां वधारे करतां करतां ४९ दिनरात पर्यन्त आ भिक्षुप्रतिमाना आराधना कराय छे.

“यथासूत्रं यथाकल्पं” इत्यादि—

क्रियाविशेषणाना अथेग द्वारा सूत्रकारे ओ वात प्रकट करी छे। सूत्रमां भिक्षुप्रतिमाना पालननी ओ प्रकारनी विधि षतावर्तमां आवी छे ते विधि प्रमाणे, यथामार्ग-ज्ञान, दर्शन अने आरित्र्य रूप मुक्तिमार्ग अनुसार अथवा पेताना क्षयोपशमभाव अनुसार, यथातत्त्व-तत्त्व अनुसार अथवा तथा तथ्य (सत्यने अनुसार), यथासाम्य-समताभावने अनुसरने, आ प्रकारे ओ भिक्षु शरीर वडे-मनोरथ वडे नहीं (अभिलाषा मात्र वडे नहीं) स्पृष्ट करे छे, समुचितकालमां विधिपूर्वक ग्रहण करे छे, पालन करे छे,

दत्तावशिष्ट भोजनात् अतीचारपङ्कक्षालनाद् वा, तीरिता=पूर्णेऽपि तदवधौ स्व-
ल्पकालावस्थानेन, कीर्तिता=पारणादिने 'अयमयं च अभिग्रहविशेषकृत
आसीत् अस्यां प्रतिमायां स चाराधित एवाधुना पारितप्रतिमोऽह' मिति गुरु-
समक्षं कीर्तनात् एवं च=आराधिता=एभिः समस्तैः प्रकारैर्निष्ठां नीता, अत एव
आज्ञया=जिनाज्ञया अनुपालिताऽपि भवतीति । अत्र-भक्तदत्तयः पणवत्यधिकैक-
शत (१९६) संख्यका उक्ताः । तद्ग्रहणप्रकारश्चैवम्, तथाहि प्रथमे सप्तके
प्रतिदिनमेकैकाभिधादत्तिर्गृह्यते १, द्वितीयसप्तके तु प्रतिदिनं दत्तिद्वयम् २।
एवम् उत्तरोत्तरं प्रतिसप्तकमेकैकदत्तिद्वया सप्तमे सप्तके प्रतिदिनं सप्त दत्तयो
गृह्यन्ते ७। एवं पानकदत्ति विषयेऽपि बोध्यम् । इत्थं प्रवर्द्धमानभक्तपानदत्ति-
भिरियं भिक्षुप्रतिमा एकोनपञ्चाशता रात्रिन्दिवैः पूर्णा भवति । अत्र यद्यपि

इसकी उपयोगपूर्वक बार २ आराधना करता है, शोधित करता है-
पारणाके दिन शुर्वादि द्वारा प्रदत्त अवशिष्ट भोजनसे अथवा-अतिचार
रूप कीचडके प्रक्षालनसे इसकी शुद्धि करता है, उसे तीरित करता
है-जितनी अवधि उसके पालन करनेकी है, उस अवधि तक उसे पालन
कर समाप्त कर देता है-कीर्तित करता है-पारणाके दिन यह अभि-
ग्रह विशेष मँने धारण किया था-सो वह अब इस प्रतिमामें अच्छी
तरहसे आराधित हो चुका है-अतः मैं अब इस प्रतिमाका पूर्णरूपसे
आराधक बन चुका हूँ, इस प्रकारसे गुरुके समक्ष प्रकट करता है, इस
प्रकारसे पालित हुई, शोधित हुई, तीरित हुई, कीर्तित हुई, और आरा-
धित हुई, यहभिक्षु प्रतिमा सर्वज्ञ भगवान्की आज्ञाके अनुसार समस्त
प्रकारोंसे पालित हुई मानी जाती है, यद्यपि यहां भक्त पानकी संक-

उपयोगपूर्वक तेनी बारबार आराधना करे छे, शोधित करे छे-पारणाने
दिवसे शुर्वादिक द्वारा प्रदत्त अवशिष्ट भोजन वडे अथवा अतिचार रूप कीच-
डना प्रक्षालन द्वारा तेनी शुद्धि करे छे, तेने तीरित करे छे-ते प्रतिमानी
आराधना करवानी जेटला समयनी अवधि डोय छे, जेटला समय सुधी
तेनुं पालन करीने तेने पूर्य करीनाये छे, कीर्तित करे छे-" पारणाने दिवसे
आ प्रकारने अलिग्रह में धारण कर्यो डते अने डवे आ प्रतिमा भारा
द्वारा सम्यग् रीते आराधित थध चुकी छे, तेथी डवे डुं आ प्रतिमाने
पूर्यइये आराधक ठनी चुक्यो छु." आ प्रमाणे गुरुनी समक्ष प्रकट करे
छे, आ प्रमाणे पालित थयेथी, शोधित थयेथी, कीर्तित थयेथी अने आरा-
धित थयेथी भिक्षुप्रतिमाने सर्वज्ञ भगवाननी आज्ञा अनुसार समस्त प्रकारे
पालित थयेथी मानवामां आवे छे. जे के लक्तपाननी कुल दन्तिओनी संख्या

अक्तस्य पानस्य सङ्कलिता दत्तयो द्विनवत्यधिकत्रिंशत् (३९२) संख्यका भवन्ति, तथापि पानस्य दत्तिमख्याया अविश्रयान्न पणवत्यधिकैकशत संख्यका दत्तयः प्रोक्ता इति ॥ सू० ५ ॥

सप्त सप्तमिकादिप्रतिमाश्च पृथिव्यामेव क्रियन्ते इति पृथ्वीं प्रतिपादयितुमाह—

मूलम्—अहेलोगे णं सत्त पुढवीओ पणत्ताओ । सत्त घणोदही पणत्ता । सत्त घणवाया सत्त तणुवाया पणत्ता । सत्त उवासंतरा पणत्ता । एएसु णं सत्तसु उवासंतरेसु सत्त तणुवाया पइट्टिया । एएसु णं सत्तसु तणुवाएसु सत्त घणवाया पइट्टिया । एएसु णं सत्तसु घणवाएसु सत्त घणोदही पइट्टिया । एएसु णं सत्तसु घणोदहीसु पिंडलगपिहुलसंठाणसंठियाओ सत्त पुढवीओ पणत्ताओ, तं जहा—पढमा जाव सत्तमा । एयासि णं सत्तण्हं, पुढवीणं सत्त णामधेज्जा पणत्ता तं जहा—घम्मा १ वंसा २ सेला ३ अंजणा ४ रिट्ठा ५ मघा ६ माघवई ७। पयासि णं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त गोत्ता पणत्ता तं जहा—रयणप्पभा १, सक्करप्पभा २, वालुअप्पभा ३, पंकप्पभा ४, धूमप्पभा ५, तमा ६, तमतमा ७ ॥ सू० ६ ॥

छाया—अधोलोके खलु सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः । सप्त घनोदधयः प्रज्ञप्ताः । सप्त घनवाताः सप्त तनुवाताः प्रज्ञप्ताः । सप्त अत्रकाशान्तराणि प्रज्ञप्तानि । एतेषु खलु सप्तसु अत्रकाशान्तरेषु सप्त तनुवाताः प्रतिष्ठिताः । एतेषु खलु सप्तसु तनुवातेषु सप्त घनवाताः प्रतिष्ठिताः । एतेषु खलु सप्तसु घनवातेषु लित दत्तियां ३९२ होती हैं, परन्तु पानकी दत्तियोंकी संख्या यहाँ अविश्रयित होनेके कारण १९६ दत्तियांही कही गई हैं ॥ सू० ५ ॥

अही ३६२ थाय छे, परन्तु पानकी (पाणीनी) दत्तियोंकी संख्या अही अविश्रयित होनाथी कुल दत्तियों १६६४ उडेवाभा आंवी छे ॥ सू० ५ ॥

सप्त घनोदधयः प्रतिष्ठिताः । एतेषु खलु सप्तसु घनोदधिषु पिण्डलक पृथुल संस्थानसंस्थिताः सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-प्रथमा यावत् सप्तमी । एतासां खलु सप्तानां पृथिवीनां सप्त नामधेयानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-धर्मा १ वंशा २, शैला ३, अङ्गना ४, रिष्टा ५, मघा ६, माघवती ७ । एतासां खलु सप्तानां पृथिवीनां सप्त गोत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-रत्नप्रभा १, शर्करामभा २, बालुकामभा ३, पङ्कमभा ४, धूममभा ५, तमा ६, तमस्तमा ७ ॥सू० ६॥

टीका—‘अधोलोके’ इत्यादि—

अधोलोके खलु सप्त पृथिव्यः सन्ति । ‘अधोलोके’ इत्युक्तम्, तेनोर्ध्व-लोकेऽपि पृथिवीसत्ता गम्यते । तत्र च ‘ईषत्प्राग्भारा’ नामैकैव पृथिवी बोध्या । ननु प्रथमपृथिव्या उपरिभागस्थितानि नव शतानि योजनानि तिर्यग्लोके स्थितानि, कथं तर्हि अधोलोके सप्त पृथिव्य उक्ताः ?-इति चेत्, आह-देशोनापि पृथिवी पृथिव्येव भवति न तु पृथिवीतो भिन्ना । अत एव-अधोलोके सप्त

सप्त सप्तमिका आदि प्रतिमाएँ पृथिवी परही रहकर की जानी हैं-अतः अब सूत्रकार पृथिवीका प्रतिपादन करते हैं—

“अधोलोकेण सप्त पुढ्वीओ पणत्ताओ” इत्यादि सू० ६ ॥

टीकार्थ—अधोलोकमें सात पृथिवियां कही गई हैं, इस कथनसे ऊर्ध्वलोकमें भी पृथिवी की कही गई जानी जाती है, वहाँ “ईषत्प्राग्भारा” इस नामकी एकही पृथिवी है.

शंका—प्रथम पृथिवीके उपरि भागमें स्थित नौसौ योजन तिर्यग्लोकमें स्थित हैं, तो फिर आपने अधोलोकमें सात पृथिवियां कैसे कहीं ?

उत्तर—कुछ कम भी पृथिवी पृथिवीही होती है, वह पृथिवीसे भिन्न नहीं होती है, इसीलिये अधोलोकमें सात पृथिवियां कही गई

सप्त सप्तमिका आदि प्रतिमाओंकी आराधना पृथ्वी पर रहने व करवामां आवे छे, तेथी डवे सूत्रकार पृथ्वीतुं प्रतिपादन करे छे.

“अधे लोकेण पुढ्वीओ पणत्ताओ” इत्यादि—

टीकार्थ—अधोलोकमां सात पृथ्वीओ आवेली छे. आ कथन द्वारा ऊर्ध्वलोकमां पणु पृथ्वी डोवी जेठओ ओवु सूचित थाय छे. ऊर्ध्वलोकमां “ईषत्प्राग्भारा” नामनी ओक व पृथ्वी छे.

शंका—पडेली पृथ्वीने उपरने लाग तिर्यग्लोकमां ९०० योजन सुधी व्याप्त डोवा छतां पणु आय शा कारणे ओवु डडो छे के “अधोलोकमां सात पृथ्वीओ छे ?”

उत्तर—पृथ्वीने अमुक लाग ओछे थवा छतां पणु पृथ्वीने लाग पृथ्वी इप व गणाय छे-प्रथम पृथ्वीने जेटलो लाग अधोलोकमां छे तेटलो

પૃથિવ્ય ઉચ્ચતા ઇતિ ન કશ્ચિદ્દોષ ઇતિ । एतासां वाहल्यप्रमाणमेवं विज्ञेयम्, तथाहि—प्रथमपृथिव्या वाहल्यं अशीतिसहस्राधिकैकलक्षयोजनात्मकम् ?, द्वितीयायाः पृथिव्या द्वात्रिंशत्सहस्राधिकैकलक्षयोजनप्रमाणम् २, तृतीयस्याः पृथिव्याः अष्टात्रिंशतिसहस्राधिकैकलक्षयोजनानि ३, चतुर्थ्याः त्रिंशतिसहस्राधिकैकलक्षयोजनानि ४, पञ्चम्याः अष्टादशसहस्राधिकैकलक्षयोजनानि ५, षष्ठ्याः षोडशसहस्राधिकैकलक्षयोजनानि ६, सप्तम्यास्तु पृथिव्याअष्टसहस्राधिकैकलक्षयोजनानि ७। तदुक्तम्—

“ पठमा असीह सहस्रा १, वत्तीसा २ अट्टवीस ३ वीसा ४ य ।

अट्टार ५ सोल ६ अट्ट ७ य, सहस्रं लक्षोवरि कुञ्जा ॥ १ ॥ ”

છાયા—પ્રથમાયામ્-અશીતિ-સહસ્રાણિ, દ્વાત્રિંશત્, અષ્ટાત્રિંશતિઃ ત્રિંશતિશ્ચ ।

अष्टादश षोडश अष्ट च सहस्राणि लक्षोपरि कुर्यात् ॥१॥ इति ।

हैं । इस प्रकारके कथनमें कोई दोष नहीं है । प्रथम पृथिवीकी मोटाई १ लाख ८० हजार योजन की है, द्वितीय पृथिवीकी मोटाई १ लाख बत्तीस हजार योजनकी है, तीसरीकी मोटाई १ लाख २८ हजार योजनकी है, चौथीकी मोटाई १ लाख २० हजार योजनकी है, पांचवींकी मोटाई १ लाख १८ हजार योजनकी है, छठीकी मोटाई १ लाख १६ हजार योजनकी है, और सातवींकी मोटाई १ लाख आठ हजार योजनकी है, कहा भी है—“ पठमा असीह सहस्रा ” इत्यादि ।

१ लाखके ऊपर ८० हजार योजन करनेसे प्रथम पृथिवीकी मोटाई आ जाती है, इसी तरहसे आगे भी जानना चाहिये ।

ભાગ પશુ પૃથ્વી ૩૫૪ ગણી શકાય. તેથી અધોદોષમાં સાત પૃથ્વીઓ છે, એમ કહેવામાં કોઈ દોષ નથી.

પહેલી પૃથ્વીનો (રતનપ્રભા પૃથ્વીનો) વિસ્તાર ૭૫ હાઈની અપેક્ષાએ એક લાખ એશી હજાર યોજનનો છે. બીજી પૃથ્વીનો (શર્કરાપ્રભાનો) વિસ્તાર ૧ લાખ ૩૨ હજાર યોજનનો, ત્રીજીનો ૧ લાખ ૨૮ હજાર યોજનનો, ચોથીનો ૧ લાખ ૨૦ હજાર યોજનનો, પાંચમીનો ૧ લાખ ૧૮ હજાર યોજનનો, છઠ્ઠીનો ૧ લાખ ૧૬ હજાર યોજનનો અને સાતમીનો ૧ લાખ ૮ હજાર યોજનનો વિસ્તાર છે. કહું પણ છે કે :

“ પઠમા અસીહ સહસ્રા ” ઇત્યાદિ—

પહેલી પૃથ્વીનો વિસ્તાર એક લાખ એશી હજાર યોજનનો છે બીજી પૃથ્વીઓનો જે વિસ્તાર આ ગાથામાં બતાવવામાં આવ્યો છે તેમનું કથન હિપર કહ્યા પ્રમાણે જ સમજવું.

अधोलोकाधिकारात्तद्वतवस्तूनि प्रतिपादयितुमाह—‘ सत्त घणोदही ’ इत्यादि । व्याख्या स्पष्टा । नवरं—घनोदधीनां बाह्व्यं विंशतिसहस्रयोजनानि, घनवातानां तनुवातानाम् अवकाशान्तराणाम्—पृथिवीद्वयान्तरालस्थितानामाकाशखण्डानां तु असंख्यातसहस्रयोजनानि । तदुक्तम्—

“ सव्वे वीससहस्सा, बाह्वल्लेणं घणोदही नेया ।

सेसाणं तु असंखा, अहो अहो जाव सत्तमिया ” ॥ १ ॥

छाया—सर्वे विंशति सहस्राणि बाह्व्येन घनोदधयो ज्ञेयाः ।

शेषाणां तु असंख्यानि अधोऽधो यावत् सप्तम्याम् ॥ १ ॥ इति ।

एताः सप्तपि पृथिव्यः पिण्डलरूपपृथुलसंस्थानसंस्थिताः पिण्डलकं=पटलकं—चङ्गेरीति भाषाप्रसिद्धं पुष्पभाजनमिति यावत्, तद्वत् पृथुलसंस्थानेन=पृथु-

अब सूत्रकार अधोलोकके अधिकारको लेकर अधोलोकगत वस्तुओंका प्रतिपादन करनेके निमित्त “ सत्तघणोदही ” इत्यादि रूपसे प्रतिपादन करते हैं—

सात घनोदधि हैं, इन घनोदधियोंकी मोटाई बराबर अर्थात् २०-२० हजार योजनकी है, एवं जो सात घनवात तथा सात तनुवातवलय हैं, और अवकाशान्तर हैं—पृथिवीद्वयके अन्तरालमें स्थित आकाशखण्ड हैं—सो ये सब मोटाईमें असंख्यात हजार योजनके हैं कहा भी है—

“ सव्वे वीससहस्सा ” इत्यादि—

इस गाथाका अर्थ पूर्वोक्त जैसाही है । ये सातों पृथिवियां यद्यपि मोटाईमें पहिली भूमिकी अपेक्षा दूसरी, दूसरीकी अपेक्षा तीसरी—

अधोलोकने अधिकार वाली रह्यो छे, तेथी डवे सूत्रकार अधोलोकगत वस्तुओंनुं “ सत्त घणोदही ” इत्यादि सूत्रे द्वारा प्रतिपादन करे छे.

सात घनोदधियों छे. ते सातेने विस्तार २०-२० हजार योजनने कही छे. जे सात घनवात तथा जे सात तनुवातवलय छे अने जे सात अवकाशान्तर—जे पृथ्वीनी वर्ये आवेला आकाशखण्ड छे, तेमने विस्तार पषु असंख्यात हजार योजनने कही छे. कहुं पषु छे के “ सव्वे वीससहस्सा ” इत्यादि. आ गाथाने अर्थ उपर कहा प्रमाणे ज समज्यो.

जे के जं'डाणुनी अपेक्षाये पहेली करतां भीज् ओछी जं'डाधवाणी अने जे प्रमाणे पछीनी प्रत्येक पषु ओक भीज् करतां ओछी जं'डाधवाणी छे,

લાકારેણ સંસ્થિતાઃ વિજ્ઞેયાઃ । યદ્વા-‘ છત્રાતિચ્છત્ર-સંસ્થાનસંસ્થિતાઃ ’ ઇતિ પાઠઃ, તત્ર-છત્રમતિક્રમ્ય છત્રં છત્રાતિચ્છત્રં, તસ્ય સંસ્થાનમ્=આકારઃ-છત્રસ્ય અધસ્તનો ભાગો મહાન્, ઉપરિતનશ્ચલ્ઘુરિતિ તેન સંસ્થિતાઃ, અયં ભાવઃ-સપ્ત-મીસપ્તરજ્જુવિસ્તૃતા, ષઠ્ઠી પદ્મરજ્જુપ્રમિતેત્યેકૈકરજ્જુદાન્યા પ્રથમા એકરજ્જુપ્ર-માણેતિ । એતાસાં નામાનિ ‘ ઘર્મા વંશા શૈલા ’-ઇત્યાદીનિ સપ્ત, તથા-ગોત્રાણિ-

હત્યાદિ રૂપસે ક્રમ ૨ મોટાઈવાલી હૈં-ફિર વિષ્કંભ ઓર આયામક્રી અપેક્ષા ઇનકા વિસ્તાર અધિક ૨ ઘટતા ગયા હૈં-હલિયે યે વિંડલક પૃથુસંસ્થાન સંસ્થિત કહી ગઈ હૈં । વિંડલક નામ પટલકકા હૈ, પટ-લકકો ભાષામેં ચંગેરી કહતે હૈં, યહ પુષ્પોંકો રચ્છનેકા એક ભાજન વિશેષ હૈ । ઇમ પટલકકા જૈમા પૃથુક આકાર હોના હૈ, ઇસી તરહકા ઇનકા આકાર હૈ અથવા-છત્રાતિ છત્રકે સમાન ઇનકા સંસ્થાન આકાર ઉત્તરોત્તર પૃથુ-વિસ્તીર્ણ પૃથુનર કહા ગયા હૈ, છત્રકા અધસ્તન ભાગ મહાન્ હોતા હૈ, ઓર ઉપરિ તનભાગ લઘુ હોના હૈ, એસાહી સંસ્થાન ઇનકા હૈ, તાત્પર્ય એસા હૈ-સપ્તમી પૃથિવી સાત રાજૂકી વિસ્તારવાલી હૈ, છઠ્ઠી પૃથિવી ૬ રાજૂ વિસ્તારવાલી હૈ, પાંચવી પૃથિવી ૫ રાજૂ વિસ્તારવાલી હૈ, ચૌથી પૃથિવી ૪ રાજૂ વિસ્તારવાલી હૈ, તૈસરી પૃથિવી ૩ રાજૂ વિસ્તારવાલી હૈ, દૂસરી પૃથિવી ૨ રાજૂ વિસ્તારવાલી હૈ, ઓર પહિલી પૃથિવી ૧ રાજૂ વિસ્તારવાલી હૈ । ઇનકા નામ ઘર્મા, વંશા, શૈલો

છતાં પશુ વિષ્કંભ અને આયામ (લંબાઈ અને પહોળાઈ) ની અપેક્ષાએ તેમને વિસ્તાર ઉત્તરોત્તર વધતો જ લાય છે. તેથી તેમને “ વિંડલક પૃથુ સંસ્થાન સંસ્થિત ” કહેવામાં આવી છે. વિંડલક એટલે પટલક. તેને હિન્દીમાં “ ચંગેરી ” કહે છે. કુલ ભરવા માટેની વાંસની બનાવેલી કુલછાબ માટે અહીં આ શબ્દ વપરાયો છે. તે પટલકનો (કુલછાબનો) જેવો પૃથુલ આકાર હોય છે, એ જ પ્રકારનો આ પૃથ્વીઓનો આકાર હોય છે. અથવા છત્રાતિછત્રના સમાન તેમનો ઉત્તરોત્તર પૃથુ (વિસ્તીર્ણ) અને પૃથુતર કથો છે. છત્રનો અધસ્તન ભાગ વીસ્તીર્ણ અને ઉપરિતન ભાગ લઘુ હોય છે. એવું જ સંસ્થાન (આકાર) તે પૃથ્વીઓનું છે. તે કારણે સાતમી પૃથ્વીનો વિસ્તાર સૌથી વધારે છે. સાતમી પૃથ્વીનો વિસ્તાર સાત રાજૂપ્રમાણ, છઠ્ઠી પૃથ્વીનો વિસ્તાર છ રાજૂપ્રમાણ, પાંચમીનો વિસ્તાર પાંચ રાજૂપ્રમાણ, ચોથીનો ચાર રાજૂપ્રમાણ, ત્રીજો ત્રણ રાજૂપ્રમાણ, બીજો બે રાજૂપ્રમાણ અને પહેલીનો એક રાજૂપ્રમાણ વિસ્તાર છે.

‘रत्नप्रभा शर्कराप्रभा’—इत्यादीनि सप्त । ननु नामगोत्रयोः को भेदः ? इति चेत् आह—अन्वर्थं गोत्रं, तद्विन्नं तु नासेति ॥ सू० ६ ॥

अवकाशान्तराणि च सप्तेति पूर्वमुक्तम्, तेषु च वादरा वायवो विद्यन्ते इति तान् प्ररूपयितुमाह—

मूलम्—सत्तविहा वायरवाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—
पाईणवाए १, पडीणवाए २, दाहिणवाए ३, उदीणवाए ४,
उड्ढवाए ५, अहोवाए ६, विदिसवाए ७ ॥ सू० ७ ॥

छाया—सप्तविधाः वादरवायुकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्राचीनवातः १, प्रतीचीनवातः २, दक्षिणवातः ३, उदीचीनवातः ४, ऊर्ध्ववातः ५, अधोवातः ६, विदिग्वातः ७ ॥ सू० ७ ॥

इत्यादि सात हैं । तथा—रत्नप्रभा शर्करा प्रभा इत्यादि सात गोत्र हैं । अन्वर्थं गोत्र होता है, और इससे भिन्न नाम होता है । सू० ६ ।

अवकाशान्तर ७ जो कहे हैं, उनमें वादर वायुकाय होते हैं—अतः सूत्रकार उनकी प्ररूपणा करते हैं—

“ सत्तविहा वायरवाउकाइया पण्णत्ता ” इत्यादि सू० ७ ॥

टीकार्थ—वादर वायुकायिक सात प्रकारके कहे गये हैं, जैसे—प्राचीन वात (पूर्वका वायु) १ प्रतीचीन वात (पश्चिमका वायु) २ दक्षिण वात ३, उदीचीन वात (उत्तरका वायु) ४, उर्ध्व वात (ऊपरका वायु) ५, अधो-वात (नीचेका वायु) ६, और विदिग्वात (विदिशाका वायु) ७, इसकी

ते पृथ्वीनां धर्मा, वंशा, शैत्रा इत्यादि सात नाम छे. तथा तेमना रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा इत्यादि सात गोत्र छे. गोत्र अन्वर्थ (अर्थ प्रमाणे) डोय छे अने तेनाथी लिन्न नाम डोय छे. ॥ सू. ६ ॥

ये सात अवकाशान्तरा कहां छे, तेमां वादर वायुकायिके रडेलां डोय छे, तेथी हुवे सूत्रकार तेमनी प्ररूपणा करे छे.

“ सत्तविहा वायरवाउकाइया पण्णत्ता ” इत्यादि—

टीकार्थ—वादर वायुकायिक सात कहां छे ते नीचे प्रमाणे छे—(१) प्राचीनवात (पूर्वका वायु), (२) प्रतीचीनवात (पश्चिमका वायु), (३) दक्षिणवात, (४) उदीचीनवात (उत्तरका वायु), (५) उर्ध्ववात, (६) अधोवात (नीचेका वायु), (७) विदिग्वात (विदिशाका वायु) आ पढोनी व्याख्या सुगम छे.

ટીકા—‘સત્તવિહા વાયવાઝકાઝયા’ ઇત્યાદિ—

વ્યાખ્યા સુગમા । નવરં-વાદરેતિ વિશેષગોપાદાને સૂક્ષ્મનિવૃત્ત્યર્થમ્ । તેણી સર્વવ્યાપિત્વાત્ । ઇતિ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

વાયવશ્ચ યથાપ્પદ્દશ્યાસ્તથાપિ તે સંસ્થાનસમ્પન્ના મયસમ્પન્નાશ્ચ મવન્તીતિ સંસ્થાનાનિ ભવાનિ ચ સૂત્રદ્વયેન પ્રરૂપયતિ—

મૂલમ્—સત્ત સંઠાણા પળ્લગત્તા, તં જહા-દીહે ૧ રહસ્સે ૨ વદ્દે ૩ તંસે ૪ ચઝરંસે ૫ પિહુલે ૬ પરિમંડલે ૭ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

છાયા—સપ્ત સંસ્થાનાનિ પ્રજ્ઞપ્તાનિ, તથા-દીર્ઘ ૧ હ્રસ્વં ૨ વૃત્તં ૩ વ્યસ્રં ૪ ચતુરસ્રં ૫ પૃથુલં ૬ પરિમંડલમ્ ૭ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

ટીકા—‘સત્તસંઠાણા’ ઇત્યાદિ—

સંસ્થાનાનિ દીર્ઘાદીનિ અન્યત્ર વ્યાખ્યાતાનીતિ તનોઽવસેયમ્ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

વ્યાખ્યા સુગમ-હૈ, વાયુક્રાંચકે વાદર વિશેષણસે સૂક્ષ્મ વાયુક્રાંચિક સર્વત્ર વ્યાપક હોતા હૈ ॥ સૂત્ર ૭ ॥

વાયુક્રાંચિક યથાપિ અદ્દશ્ય હૈ-તવ મી વે સંસ્થાનસે એવં મયસે યુક્ત હોતે હૈ, ઇસલિયે અથ સૂત્રકાર સંસ્થાન ઓર મયકા કથન દો રૂપસે કરતે હૈ—“સત્ત સંઠાણા પળ્લગત્તા” ઇત્યાદિ સૂત્ર ૮ ॥

ટીકાર્થ—સંસ્થાન સાત કહે ગયે હૈ જૈસે-દીર્ઘ સંસ્થાન એક હ્રસ્વ સંસ્થાને ૨ વૃત્ત સંસ્થાન ૨ વ્યસ્ર સંસ્થાન ૪, ચતુરસ્ર સંસ્થાન ૫, પૃથુલ સંસ્થાન ૬ ઓર પરિમંડલ સંસ્થાન ૭ ઇન દીર્ઘાદિક સંસ્થાનો કા વ્યાખ્યાન અન્યત્ર ક્રિયા ગયા હૈ-અનઃ વહીસે, ઇન્હે સમજ્જ લેનો ચાહિયે । સૂત્ર “૮”

વાયુક્રાંચિકની આગળ વાદર વિશેષણ લગાડીને સૂક્ષ્મ વાયુક્રાંચિકની નિવૃત્તિ કરવામાં આવી છે, કારણ કે સૂક્ષ્મ વાયુક્રાંચિક તો સર્વત્ર વ્યાપક છે. ॥ સૂ. ૭ ॥

જે કે વાયુક્રાંચિક અદ્દશ્ય છે, છતાં પણ તેઓ સંસ્થાન અને ભયથી યુક્ત હોય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર જે સૂત્રો દ્વારા સંસ્થાન અને ભયનું નિરૂપણ કરે છે “સત્ત સંઠાણા પળ્લગત્તા” ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—સંસ્થાન (આકાર) સત પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) દીર્ઘ સંસ્થાન, (૨) હ્રસ્વ સંસ્થાન, (૩) વૃત્ત સંસ્થાન, (૪) વ્યસ્ર સંસ્થાન, (૫) ચતુરસ્ર સંસ્થાન (૬) પૃથુલ સંસ્થાન, અને (૭) પરિમંડલ સંસ્થાન

આ દીર્ઘાદિક સંસ્થાનોની વ્યાખ્યા આ અન્યતા અન્ય સ્થાનોમાં આપવામાં આવી છે, તો ત્યાંથી જ સમજ્જ લેવાની ભલામણ કરવામાં આવે છે. ॥ સૂ. ૮ ॥

तथा—

मूलम्—सप्त भयद्वाना पणत्ता, तं जहा—इहलोकभय १, परलोकभय २, आदानभय ३, अकस्माद्भय ४, वेद्यभय ५, मरणभय ६, अस्त्रिलोकभय ७ ॥ सू० ९ ॥

छाया—सप्त भयस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—इहलोकभयं १, परलोकभयम् २, आदानभयम् ३, अकस्माद्भयम् ४, वेदनभयं ५ मरणभयम् ६, अश्लोकभयम् ७ ॥ सू० ९ ॥

टीका—‘सप्त भयद्वाना’ इत्यादि—

भयस्थानानि—भयं=मोहनीयप्रकृतिसमुद्भूतआत्मपरिणामः, तस्य स्थानानि=आश्रयाः सप्त प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—इहलोकभयम्—इहलोकः=सजातीयो लोकः, ततो यद् भयं तत्,—सजातीयस्य सजातीयाद् भयमित्यर्थः । यथा—मनुष्याणां मनुष्येभ्यः, तिरश्चां तिर्यग्भ्यः, इत्यादि । १ । परलोकभयम्—विजातीयस्य विजा-

“सप्तभयद्वाना पणत्ता” इत्यादि ॥ सूत्र ९ ॥

टीकार्थ—भयस्थान ७ कहे गयेहैं, जैसे—इहलोक भयस्थान १, परलोक भयस्थान २ आदान भयस्थान ३ अकस्माद्भयस्थान ४, आजीवभयस्थान ५, मरणभयस्थान ६ और अश्लोक भयस्थान ७ भय मोहनीय प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न हुआ जो आत्मपरिणाम है, वह भय है, उस भयके सात आश्रय (भेद) कहे गयेहैं। उनमें जो सजातीयको सजातीयसे भय होता है, वह इहलोक भय है, इहलोकसे यहाँ सजातीय लोक लिया गया है। जैसे—मनुष्योंको मनुष्यों से भय होता है, तिर्यञ्चोंको तिर्यञ्चोंसे भय होता है इत्यादि १ ।

“सप्त भयद्वाना पणत्ता” इत्यादि—

टीकार्थ—सात प्रकारनां भयस्थानो कहां छे—(१) इहलोक भयस्थान, (२) परलोक भयस्थान, (३) आदान भयस्थान, (४) अकस्माद्भयस्थान, (५) आजीव भयस्थान, (६) मरण भयस्थान अने (७) अश्लोक भयस्थान.

भयभेदनीय प्रकृतिना उदयथी उत्पन्न भयेषु ते आत्मपरिणामं छे तेनू नाम भय छे.

(१) इहलोक भय—सजातीयने सजातीयनो के भय लागे छे तेने इहलोक भय कहे छे. ‘इहलोक’ यह द्वारा अर्ही ‘सजातीय लोक’ गृहीत करायेल छे. जेभके मनुष्येने मनुष्येनो भय होय छे अने तिर्यञ्चने तिर्यञ्चनो भय होय छे.

તોયાદ્ ભયમ્, યથા-મનુષ્યસ્ય તિર્યગ્દેવાદિભ્યઃ ।૨। આદાનભયમ્-આદીયતે=
 શુદ્ધતે યત્તદાદાનં ધનાદિકમ્, તદ્દેતુકં યત્તૌરાદિકાશાદ્ભયં તત્ । ૩। અક-
 સ્માદ્ભયમ્-અકસ્માદેવ=વાહ્યનિમિત્તાનપેક્ષં ગૃહાદિષ્વેત્ સ્થિતસ્ય રાત્ર્યાદૌ યદ્
 ભયં તત્ ૪। 'વેયગં-વેતનં-આજીવિકા, આજીવભયમ્-આજીવો-જીવિકા તસ્મા-
 ત્તદર્થે વા ભયં,-'નિર્ધનોઽહં દુર્ભિક્ષાદૌ કથં પ્રાણાન્ ધારયિષ્યામિ' ઇતિ,
 'ક્રુધં વા મમ જીવિકાસુદૃઢા ભવિષ્યતીતિ ૫। મરણભયં પ્રતીતમ્ ૬। અશ્લોક-
 ભયમ્ । અશ્લોકઃ=અકીર્તિઃ, તસ્ય ભયમ્ ૭। ઇતિ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

પરલોક ભય—વિજાતીયસે વિજાતીયકો જો ભય હોતા હૈ, વહ
 પરલોક ભય હૈ, જૈસે-મનુષ્યકો તિર્યશ્ચસે યા દેવ આદિસે ભય હોતા
 હૈ ૨ । આદાન ભય-ધનાદિકકે નિમિત્તકો લેકર જો ચોર આદિસે
 ભય હોતા હૈ, વહ આદાન ભય હૈ ૩ । વાહ્ય નિમિત્તકી અપેક્ષા વિના
 ઘરઆદિમૈંહી સ્થિત હુપ પ્રાણીકો જો રાત્રિ આદિમૈં ભય હોતા હૈ, વહ
 અકસ્માદ્ભય હૈ ૪। આજીવ ભય-આજીવ નામ જીવિકાકા હૈ-હસ જીવિ-
 કાસે યા હસ જીવિકાકે લિધે જો ભય હોતા હૈ, વહ આજીવ ભય હૈ
 ૫। જૈસે-મૈં નિર્ધન હૂં. દુર્ભિક્ષ આદિકે સમયમૈં કૈસે મૈં પ્રાણોંકો ષવા-
 ળંગા, અથવા-કૈસે મેરી આજીવિકા સુદૃઢ હોગી ઇત્યાદિ ।

મરણ ભય—મૃત્યુકા જો ભય હૈ, વહ મરણ ભય હૈ ૬, અશ્લોક
 નામ અપદ્ધશ હૈ, હસ અકીર્તિ હોનેકા જો ભય હૈ, વહ અશ્લોક
 ભય હૈ ૭ । સૂ૦ ૧ ॥

(૨) પરલોક ભય—વિજાતીયને વિજાતીયને જે ભય રહે છે તેને
 પરલોક ભય કહે છે. જેમકે મનુષ્યને તિર્યચોને અથવા દેવાદિકોને
 ભય લાગે છે.

(૩) આદાન ભય—ધનાદિકના વિષયમાં જે ચોરાદિકને ભય રહે છે
 તેને આદાન ભય કહે છે.

(૪) અકસ્માદ્ભય—બાહ્ય નિમિત્તોની અપેક્ષા વિના ગૃહાદિમાં રહેલા
 મનુષ્ય આદિ છવેને રાત્રિ આદિમાં જે ભય લાગે છે તેને અકસ્માદ્ભય કહે છે.

(૫) આજીવ ભય—આજીવિકા અથવા નિર્વાહના સાધનનું નામ આજીવ
 છે. આ આજીવિકાના વિષયમાં જે ભય રહે છે તેને આજીવ ભય કહે છે.
 જેમકે નિર્ધન માણસને એવો ભય રહે છે કે દુષ્કાળ આદિમાં મારી આજી-
 વિકા કેવી રીતે ચલાવી શકીશ !

(૬) મરણ ભય—મૃત્યુને ભય છે તેને મરણ ભય કહે છે.

(૭) અશ્લોક ભય—અશ્લોક એટલે અપકીર્તિ. પોતાની અપકીર્તિ થવાના
 ભયને અશ્લોક ભય કહે છે ॥ સૂ. ૬ ॥

મયયુક્તાશ્ચ છદ્મસ્થા एव, ते च यैर्ज्ञायन्ते तान्याह—

મૂલમ્—સત્તર્હિં ઠાળેહિં છઝમસ્થં જાળેજ્ઞા, તં જહા—પાળે
અઙ્વાણ્તા ભવઙ્ ૧, મુસં વઙ્તા ભવઙ્ ૨, અદિન્નમાદિત્તા
ભવઙ્ ૩, સદ્ફરિસરસરૂવગંધે આસાણ્તા ભવઙ્ ૪, પૂયાસકા-
રમણુવૂહેત્તા ભવઙ્ ૫, ઇમં સાવજ્ઞં તિ પળ્ણવેત્તા પઢિસેવેત્તા
ભવઙ્ ૬, ણો જહાવાઈ તહાકારી ભવઙ્ ૭ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

ઝાયા—સપ્તભિઃ સ્થાનૈઃ છદ્મસ્થં જાનીયાત્, તથયા—પ્રાણાન્ અતિપાત-
યિતા ભવતિ ૧, મૃષા વદિતા ભવતિ ૨, અદત્તમાદાતા ભવતિ ૩ શબ્દસ્પર્શરસરૂપ-
ગન્ધાન્ આસ્વાદયિતા ભવતિ ૪, પૂજાસત્કારમન્નુબુઙ્ઘયિતા ભવતિ ૩, ઇદં સાવધમિતિ
પ્રજ્ઞાપ્ય પ્રતિસેવિતા ભવતિ ૬, નો યયાત્ત્રાદી તથાકારી ભવતિ ૭ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

ટીકા—‘ સત્તર્હિં ઠાળેહિં ’ ઇત્યાદિ—

સપ્તભિઃ સ્થાનૈઃ=કારણૈઃ છદ્મસ્થં જાનીયાત્—‘ અયં છદ્મસ્થઃ ’—ઇત્યવબુ-
ધ્યેત, તથયા—પ્રાણાન્=એકેન્દ્રિયાદીન્ અતિપાતયિતા=ઉપમર્દિતા ભવતિ ।
પ્રાણાતિપાતનાદયં છદ્મસ્થ ઇત્યનુમીયતે । એવમગ્રેઽપિ મૃષાવાદાદિભ્યશ્ચછદ્મસ્થોઽ-

इन भयोंसे युक्त छद्मस्थही होते हैं, ये छद्मस्थ जिन स्थानोंसे जाने
जाते हैं—अथ सूत्रकार उन स्थानोंका कथन करते हैं—

“ सत्तर्हिं ठाणेहिं छडमस्थं जाणेज्जा ” इत्यादि सू० १० ॥

ટીકાર્થ—સાત સ્થાનોંસે છદ્મસ્થ જાને જાતે હૈં, જૈસે—જો પ્રાણોંકા-
એકેન્દ્રિયાદિક જીવોંકા - અતિપાતયિતા-નાશ કરને વાલા
હોતાહૈ, ઇસસે યહ અનુમાન હોતાહૈ કિ યહ છદ્મસ્થહૈ, ઇસી તરહસે યહ ભી
સમજ્ઞના ચાહિયે કિ જો મૃષાવાદકા સેવન કરતા હૈ, વહ છદ્મસ્થ હૈ,

છદ્મસ્થ એવો જ આ પ્રકારના લયથી યુક્ત હોય છે તેથી તે છદ્મસ્થાને
જે સ્થાનો (લક્ષણો) વડે જાણી શકાય છે તે સ્થાનોનું હવે સૂત્રકાર
નિરૂપણ કરે છે. “ સત્તર્હિં ઠાળેહિં છઝમસ્થં જાળેજ્ઞા ” ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—નીચેનાં સાત સ્થાનો (લક્ષણો) વડે છદ્મસ્થાને ઝાળખી શકાય છે.
(૧) જે એ પ્રાણોનું—એકેન્દ્રિયાદિક એવોનું વ્યાપાદન કરનાર હોય છે, તેને
છદ્મસ્થ માની શકાય છે—એવું અનુમાન કરી શકાય છે કે તે છદ્મસ્થ છે.
(૨) મૃષાવાદનું સેવન કરનાર=અસત્ય બોલનાર માણસને બેઠને પણ એવું

નુમીયતે ૧। તથા-મૃવાવાદિતા=અસત્યમાપી ભવતિ ૨। અદત્તમ્ આદાતા
 ભવતિ-અદત્તાદાનકારકો ભવતિ ૩। શબ્દસ્પર્શરૂપરસગન્ધાન્=શબ્દાદીન્- કામભો-
 ગાન્ આસ્વાદયિતા=ઉપભોક્તા ભવતિ । ૪ । પૂજાસત્કારમ્=પૂજા=અભ્યુત્થાના-
 દિના, સત્કારઃ=વહ્નાદિપ્રદાનં, દ્વયોઃ સમાહારઃ, તત્- અનુવૃંહયિતા-પરેણ
 ક્રિયમાણં સ્વસ્ય પૂજાસત્કારમ્ અનુમોદયિતા ભવતિ । પૂજાસત્કારસદ્ભાવે હૃષ્ટો
 ભવતીત્યર્થઃ । ૫ । હૃદમ્ આધાકર્માદિકં સાવધમ્=સપાપમ્ इति પ્રજ્ઞાપ્ય=પ્રરૂપ્ય
 પુનસ્તદેવ પ્રતિસેવિતા ભવતિ । ૬ । તયા-નો યથાત્રાદી તથાકારી ચાપિ
 ભવતિ--સામાન્યતઃ સ યથા વદતિ ન તથા કરોતીત્યર્થઃ । ૭ । હૃદ યદ્યપિ પ્રાણો-

એસા અનુમાનસે જાના જાતા હૈ, હસી પ્રકારસે જો અદત્તકા આદાતા
 હોતા હૈ, ૨ શબ્દ, રૂપ, સ્પર્શ, રસ, ઓર ગન્ધ હનકા આસ્વાદયિતા
 ઉપભોક્તા હોતા હૈ, પૂજા સત્કારકી પરકે દ્વારા કી ગઈ અપની પૂજાકી
 અભ્યુત્થાન આદિકી-એવં સત્કારકી-વહ્નાદિ દેનેકી અનુમોદના કરને-
 વાલા હોતા હૈ, અર્થાત્ પૂજા સત્કારકે સદ્ભાવમેં જો હૃષિત હોતા હૈ, યે
 આધાકર્મ આદિ સાવધ હૈ, એસી પ્રરૂપણા કરકે ખી જો ઉનકા સેવન
 કરતા હૈ ૬ તથા જો જૈસા કહતા હૈ, વૈસા નહીં કરતા હૈ, એસા વહ
 વ્યક્તિ હૃદસ્ય હૈ એસા અનુમાનસે જાના જાતા હૈ, સાધનસે સાધ્યકે
 જ્ઞાનકો અનુમાન કહતે હૈ, એસા અનુમાનસે જાના જાતા હૈ, સાધનકે
 જ્ઞાનકો અનુમાન કહતે હૈ, એસા અનુમાનકા લક્ષણ હૈ, અતઃ હૃદસ્ય
 યહ સાધ્ય હૈ, ઓર પ્રાણાતિપાત આદિ સઘ-હેતુરૂપ હૈ ।-યહો યદ્યપિ

અનુમાન કરી શકાય છે કે તે હૃદસ્ય છે. (૩) અદત્તને અહણ કરનારને પણ
 હૃદસ્ય માની શકાય છે. (૪) શબ્દ, રૂપ, રસ, ગન્ધ અને સ્પર્શનું આસ્વાદન
 (ઉપભોગ) કરનારને પણ હૃદસ્ય માની શકાય છે. (૫) પૂજા સત્કારની
 અનુમોદના કરનારને અને પૂજા સત્કાર વડે-પુશ થનાર વ્યક્તિને પણ હૃદસ્ય
 કહે છે અન્યના દ્વારા અભ્યુત્થાન આદિ દ્વારા જે સન્માન થાય છે તેનું નામ
 પૂજા છે, અને વહ્નાદિ પ્રદાન કરવા રૂપ સત્કાર હોય છે. (૬) “આધાકર્મ
 આદિ સાવધ છે,” એવી પ્રરૂપણા કરવા છતાં પણ જે પોતે જે તેનું સેવન
 કરનાર હોય છે તેને પણ હૃદસ્ય માની શકાય છે. (૭) જે કહે છે કંઈ અને
 કરે છે કંઈ, આ પ્રકારે જેની વાણી અને વર્તનમાં ભેદ હોય છે, તે વ્યક્તિ
 પણ હૃદસ્ય હોવાનું અનુમાન કરી શકાય છે. સાધન દ્વારા સાધ્યનું જ્ઞાન થવું
 તેનું નામ અનુમાન છે અથવા સાધનના જ્ઞાનને અનુમાન કહે છે. આ
 પ્રકારનું અનુમાનનું લક્ષણ છે તેથી હૃદસ્ય આ સાધ્ય છે અને પ્રાણાતિપાત
 આદિ ઉપર્યુક્તા સાતેને હેતુરૂપ માનવામાં આવેલ છે. અહીં જે કે પ્રાણા-

તિપાતમૃષાવાદાદિ રૂપેણ ધર્મો નિર્દેષ્ટવ્યસ્તથાપિ ધર્મધર્મિણોરભેદોપચારાદ ધર્મ
 એવ નિર્દેષ્ટ ઇતિ ॥ સૂ. ૧૦ ॥

ચૈઃ સ્થાનૈશ્ચલ્લક્ષ્યો જ્ઞાયતે, તાનિ પ્રોક્તાનિ । સમ્પ્રતિ ચૈઃ સ્થાનૈઃ કેવલી
 જ્ઞાયતે તાનિ સ્થાનાન્યાહ—

મૂલ્ય—સત્તહિં ઠાણેહિં કેવલી જાણેજ્જા, તં જહા--ણો
 પાણે અહ્વાહ્તા ભવહ્ ૧, જાવ જહાવાઈ તહાકારી યાવિ
 ભવહ્ ૭ ॥ સૂ. ૧૧ ॥

છાયા—સપ્તમિઃ સ્થાનૈઃ કેવલિનં જાનીયાત્, તદ્વથા-નો પ્રાણાન અતિ
 પાતયિતા ભવતિ, યાવદ્ યથાવાદી ભવતિ તથાકારી ચાપિ ભવતિ ॥ સૂ. ૧૧ ॥

ટીકા—‘સત્તહિં ઠાણેહિં’ ઇત્યાદિ—

છલ્લસ્થવૈપરીત્યેનેદં સૂત્રં વ્યાખ્યેયમ્ ॥ સૂ. ૧૧ ॥

પ્રાણાતિપાત, મૃષાવાદ આદિ રૂપસે ધર્મકા નિર્દેશ કરનાં ચાહિયે-
 પરન્તુ એસાં ન કર જો ધર્મકા હી નિર્દેશ કિયાહૈ, વહ ધર્મ ઓર ધર્મીં
 અભેદકા ઉપચાર કરકે કિયા હૈ । ॥ સૂ. ૧૦ ॥

જિન સ્થાનોંસે છલ્લસ્થ જાના જાતા હૈ—उन स्थानोंको कहकर अब
 સૂત્રકાર જિન સ્થાનોંસે કેવલી જાના જાતાહૈ उन स्थानोंका कथन करतेहैं

“સત્તહિં ઠાણેહિં કેવલી જાણેજ્જા” ઇત્યાદિ સૂ. ૧૧ ॥

ટીકાર્થ—સાત સ્થાનોંસે “ચે કેવલી હૈ” એસા જાના જાના હૈ વે
 સાત સ્થાન હસ પ્રકારસે હૈ—जो प्राणोंका अतिपातयिता नहीं होता है,
 યાવત્ જો જૈસા કહતાહૈ, વૈસા કરતા હૈ—वह केवलीहै, ऐसा जाना जाता

તિપાત, મૃષાવાદ આદિ રૂપે ધર્મનો નિર્દેશ કરવો બેધબે, પરન્તુ એવું
 ન કરતાં જે ધર્મીનો જે નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે, તે ધર્મ અને ધર્મીમાં
 અભેદનો ઉપચાર કરીને કરવામાં આવ્યો છે, એમ સમજવું ॥ સૂ. ૧૦ ॥

જે સ્થાનો વડે છલ્લસ્થોને બાણી શકાય છે, તે સ્થાનોતું કથન
 કરીને હવે સૂત્રકાર જે સ્થાનો વડે કેવલીને બાણી શકાય છે તે સ્થાનોતું
 કથન કરે છે. “સત્તહિં ઠાણેહિં કેવલી જાણેજ્જા” ઇત્યાદિ—

સાત સ્થાનો વડે એવું બાણી શકાય છે કે “આ કેવલી છે” તે સાત
 સ્થાનો આ પ્રમાણે છે—(૧) જે વ્યક્તિ પ્રાણાતિપાત કરતી નથી તેને કેવલી
 માની શકાય છે. અહીં ઉપરના સૂત્રમાં દર્શાવેલાં કારણો કરતાં વિપરીત
 કારણો સમજવા બેધબે. (૭) જે કહે છે તે પ્રમાણે જે કરે છે, તેને કેવલી
 માની શકાય છે, આ પ્રમાણે સાતમાં સ્થાન સુધીનાં સ્થાનો અહીં ગ્રહણ

केवलिनश्च गोत्रविशेषोत्पन्ना एव भवन्तीति सप्त मूलगोत्राणि समेदमाह—

मूलम्—सत्त मूलगोत्रात्ता पण्णत्ता, तं जहा—कासवा १,
 गोयमा २ वच्छा ३ कोच्छा ४ कोसिया ५ मंडवा ६ वासिट्ठा
 ७। जे कासवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा--ते कासवा १
 ते संडेच्छा २ ते गोच्छा ३ ते वाळा ४ ते मुंजइणो ५ ते पवपे-
 च्छइणो ६ ते वरिसकण्हा । ७ । जे गोयमा ते सत्तविहा
 पण्णत्ता, तं जहा--ते गोयमा १ ते गग्गा २ ते भारद्वाया ३
 ते अंगिरसा ४ ते सक्काराभा ५ ते भक्काराभा ६ ते उदगत्ताभा
 ७। जे वच्छा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा--ते वच्छा १ ते
 अगोया २ ते मित्तिया ३ ते सामिलिणो ४ ते सेलयया ५
 ते अट्टिसेणा ६ ते वीयकम्हा ७। जे कोच्छा ते सत्तविहा
 पण्णत्ता, तं जहा--ते कोच्छा १ ते मोग्गलायणा २ ते पिंग-
 लायणा ३ ते कोडीणा ४ ते मंडलिणो ४ ते हारिया ६ ते
 सोमया ७। जे कोसिया ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा--ते
 कोसिया १ ते कच्चायणा २, ते सालंकायणा ३ ते गोलिका-
 यणा ४, ते पक्खिकायणा ५, ते अग्गिच्चा ६, ते लोहिया ७।
 जे मंडवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा--ते मंडवा १, ते
 अरिट्ठा २, ते संमुत्ता ३ ते तेला ४, ते एलावच्चा ४, ते
 कंडिल्ला ६ ते खारायणा ७। जे वासिट्ठा ते सत्तविहा पण्णत्ता,
 तं जहा--ते वासिट्ठा १, ते उंजायणा २, ते जारे कण्हा ३, ते
 वग्घावच्चा ४, ते कोडिन्ना ५ ते सण्णी ६। ते पारासरा ७ ॥सू०१२॥

हे, छद्मस्थ सूत्रसे इस सूत्रकी व्याख्या विपरीत कर लेनी चाहिये सू. ११

हरवा लोधञ्जे, छद्मस्थ सूत्र कर्ता अस्मी' विपरीत स्थाने। षडेवा लोधञ्जे । सू. ११।

छाया—सप्त मूत्रगोत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—काश्यपाः १ गौतमाः २, वत्साः ३, कौत्साः ४ कौशिकाः ५ माण्डव्याः ६ वाशिष्ठाः ७। ये काश्यपास्ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ते काश्यपाः १, ते शाण्डिल्याः २ ते गौल्याः ३, ते बालाः ४, ते मुञ्जतृणाः ५ ते वर्षप्रेक्षकियः ६, ते वर्षकृष्णाः ७। ये गौतमास्ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा ते गौतमाः १, ते गार्ग्याः २, ते भारद्वाजाः ३, ते आङ्गिरसाः ४, ते शर्कराभाः ५, ते भास्कराभाः ६, ते उदगर्त्ताभाः ७। ये वत्सास्ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ते वत्साः १, ते आग्नेयाः २, ते मैत्रेयाः ३, ते स्वामिलिनः ४, ते शैलकजाः ५, ते अस्थिपेणाः ६, ते वीतकश्माः ७। ये कौत्सास्ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ते कौत्साः १, ते मौद्गल्यायनाः २, ते पिङ्गलायनाः ३, ते कोडीनाः ४, ते मण्डलिनः ते हारीताः ६, ते सोमकाः ७। ये कौशिकास्ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ते कौशिकाः १, ते कात्यायनाः २, ते शालङ्कायना ३, ते गौलिकायनाः ४, ते पक्षिकायनाः ५, ते आग्नेयाः ६, ते लोहिताः ७। ये माण्डव्यास्ते सप्तविधाः, प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ते माण्डव्याः ते आरिष्ठाः २ ते सम्भुक्ताः ३, ते तैलाः ४, ते ऐलापत्याः ५, ते काण्डिल्याः ६, ते खारायणाः ७। ये वाशिष्ठास्ते सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ते वाशिष्ठाः १, ते उञ्जायनाः २, ते जारेकृष्णाः ३ ते व्याघ्रापत्याः ४, ते कौण्डिन्याः ५, ते संघ्निनः ६, ते पाराशराः ७ ॥ सू० १२ ॥

टीका—‘सप्त मूलगोत्राणि’ इत्यादि—

व्याख्या सुगमा । नवरम्-मूलगोत्राणि-मूलम्=आदि, आदित्वं चोत्तरापेक्षया, मूलभूतानि यानि गोत्राणि=गोत्रप्रवर्तकतथाविधैकपुरुषप्रभवसन्तानपर-

“सप्त मूलगोत्राणि पण्णत्ता” इत्यादि ॥ सूत्र १२ ॥

टीकार्थ—सात मूल गोत्र कहे गये हैं—जैसे—काश्यप १ गौतम २ वत्स ३ कौत्स ४ कौशिक ५, माण्डव्य ६ और वाशिष्ठ ७। जो काश्यप हैं—वे सात प्रकारके कहे गये हैं—जैसे—ते काश्यप १ ते शाण्डिल्य २ ते गौल्य ३ ते बाल ४ ते मुञ्जतृण ५ ते पर्वप्रेक्षकी ६ और ते वर्षकृष्ण ७ इत्यादि रूपसे इस सूत्रकी व्याख्या सुगम है । मूल शब्दका अर्थ आदि

“सप्त मूलगोत्राणि पण्णत्ता” इत्यादि—

टीकार्थ—सात मूलगोत्र कहां छे, तेमनां नाम नीचे प्रमाणे छे—(१) काश्यप, (२) गौतम, (३) वत्स, (४) कौत्स, (५) कौशिक, (६) माण्डव्य अने (७) वाशिष्ठ काश्यपोना सात प्रकार कहे छे—(१) ते काश्यप, (२) ते शाण्डिल्य (३) ते गौल्य, (४) ते बाल, (५) ते मुञ्जतृण, (६) ते पर्वप्रेक्षकी अने (७) ते वर्षकृष्ण.

મ્પરાસ્તાનિ તથા । તાનિ ચ કાનિ ? इत्याह—‘ काशवा ’ इत्यादि । तत्र—काशे= तृणविशेषे भवः काश्यः=काशोत्पन्नो रसः, तं पिबतीति काश्यपाः=तदपत्यानि काश्यपाः । मुनिसुव्रतनेमिनाथातिरिक्ता जिनाः, चक्रवर्त्यादयश्च क्षत्रियाः सुप्र- भगणधरादयश्च ब्राह्मणाः जम्बूस्वामिप्रभृतयश्च गृहपतयः काश्यपगोत्रीया बोध्याः । गोत्रगोत्रवतोरभेदादिह गोत्रवत् एव गोत्रत्वेनोक्ताः । अन्यथा तु काश्यपमिति नपुंसकमेव वाच्यम् । एवमप्रेऽपि बोध्यम् । तथा—गौतमाः—गौत- है आदिता उत्तरकी अपेक्षाले आती है, गोत्र प्रवर्तक तथाविध एक पुरुषसे उत्पन्न हुई जो सन्तानकी परम्परा है, वह गोत्र है, इस तरह मूलभूत जो गोत्र हैं वे मूलगोत्र हैं । काश नाम तृण विशेषका है, इस काशमें जो होता है, वह काश्य है—अर्थात् काशका जो रस है वह काश्य है इस काशोत्पन्न रसको जो पीना है, वह काश्यप है, इस काश्यपके जो अपत्य हैं वे काश्यप हैं । मुनि सुव्रत, नेमिनाथले अतिरिक्त समस्त जिन चक्रवर्ती आदि क्षत्रिय, सप्तम गणधर आदि ब्राह्मण, और जम्बू स्वामी आदि गृहपति—वैश्य ये सब काश्यप गोत्रीय हुए हैं । गोत्र- वालोंके अभेद सम्बन्धसे यहां गोत्रवालेही गोत्र रूपसे कहे गये हैं । यदि ऐसा न कहा होता तो “ काश्यपाः ” न कहकर सूत्रकार “ काश्य- पम् ” ऐसा नपुंसक लिङ्गकाही निर्देश करते इसी तरहका कथन आगे

‘भूण’ એટલે આદિ. આ આદિતા આદિપણુ આગળ ઉત્પન્ન થવાને કારણે સમજવાની છે. ગોત્રપ્રવર્તક તથાવિધ એક પુરુષના વંશમાં ઉત્પન્ન થયેલી સંતાન પરંપરાને ગોત્ર કહે છે. આ પ્રકારે મૂળભૂત બે ગોત્ર છે તેમને મૂળગોત્ર કહે છે. એક પ્રકારના તૃણવિશેષને કાશ કહે છે. તે કાશના રસને કાશ્ય કહે છે. આ કાશોત્પન્ન કાશ્ય રસનું પન કરનારને કાશ્યપ કહે છે. આ કાશ્યપના બે સંતાનો છે—વંશજો છે, તેમને કાશ્યપો કહે છે. મુનિસુવ્રત અને નેમિનાથ સિવાયના જિનેશ્વરો, ચક્રવર્તી આદિ ક્ષત્રિય, સપ્તમ ગણધર આદિ બ્રાહ્મણ અને જમ્બૂસ્વામી આદિ ગૃહપતિ—વૈશ્ય, આ બધા કાશ્યપ ગોત્રીય હતા. ગોત્ર અને ગોત્રવાળા વચ્ચે અલેક માનીતે અહીં ગોત્રવાળાને ગોત્ર રૂપે પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે. બે એ પ્રકારે માનવાનું નહોત તે “ કાશ્યપાઃ ” આ પદનો પ્રયોગ કરવાને બદલે સૂત્રકારે “ કાશ્યપમ્ ” આ નાન્યતર બલિના જ પદનો પ્રયોગ કર્યો હોત. એ જ પ્રકારનું કથન ગૌતમ આદિ વિષે પણ સમજવું.

મસ્યાપત્યાનિ, તત્ર ક્ષત્રિયા.-મુનિસુવ્રતનેમિનાથૌ જિનો, રામલક્ષ્મણવર્જાઃ
બલદેવવાસુદેવાઃ, બ્રાહ્મણાશ્ચ-ઇન્દ્રભૂત્યાદયસ્રયો ગણધરાં વજ્રસ્વામી ચૈતે ગૌત-
મગોત્રીયાઃ તથા-વત્સાઃ-વત્સસ્યાપત્યાનિ શય્યમ્ભવાદયઃ । કૌત્સાઃ=શિવભૂત્યા-
દયઃ-‘ કોચ્છં સિવભૂંપિય ’ ઇતિવચનાત્ । એવં કૌશિકાઃ=મણ્ડુકાદયઃ ।
માણ્ડવ્યાઃ=મણ્ડોરપત્યાનિ । વાશિષ્ઠા-વશિષ્ઠસ્યાપત્યાનિ-ષ્ઠગણધરાયર્થસુહ-
સ્ત્યાદયઃ । તત્ર કાશ્યપાદિષુ સત્સુ મૂલગોત્રેષુ પ્રત્યેકં ગોત્રં સત્ત્રવિધમ્ । તત્ર ચે
કાશ્યપશબ્દવ્યપદેશ્યત્વેન વિવક્ષિતાસ્તે કાશ્યપા ઉચ્યન્તે । ચે તુ કાશ્યપ
ગોત્રોત્પન્નશાણ્ડિલ્યાદિ પુરુષાપત્યાનિ તે શાણ્ડિલ્યાદય ઉચ્યન્તે । એવં ગૌતમાદિ
વિષયેઽપિ बोध्यम् । ॥ સુ૦ ૧૨ ॥

મી સમજના ચાહિયે, ગૌતમકે જો અપત્ય-સન્તાન હૈં વે ગૌતમ હૈં ।
મુનિસુવ્રત એવં નેમિનાથ ચે દો જિન રામ લક્ષ્મણકો છોડુંકર બલદેવ
ઔર વાસુદેવ ચે ક્ષત્રિય, ઇન્દ્રભૂતિ આદિ ત્રીન ગણધર એવં વજ્રસ્વામી
ચે બ્રાહ્મણ, ગૌતમ ગોત્રીય હૈં ।

તથા-વત્સકે અપત્ય શય્યમ્ભવ આદિ વત્સ હૈં । “ કોચ્છં સિવભૂં
પિ ય ” હસ વચનકે અનુસાર શિવભૂતિ આદિ કૌત્સ હૈં । ષટ્ ઉલૂક
આદિ કૌશિક હૈં । મણ્ડુકકે અપત્ય માણ્ડવ્ય હૈં । છઠે ગણધર ઔર
આર્થ સુહસ્તી આદિ વશિષ્ઠકે અપત્ય હોનેસે વાશિષ્ઠ હૈં । ઇન સાત
મૂલ ગોત્રમેસે પ્રત્યેક મૂલગોત્ર સાત પ્રકારકા કહા ગયા હૈં । જો “ કા-
શ્યપ ” હસ શબ્દસે વિવક્ષિત હોતે હૈં વે કાશ્યપ કહલાતે હૈં ઔર
જો કાશ્યપ ગોત્રમે ઉત્પન્ન શાણ્ડિલ્ય આદિ કહલાતે હૈં । હસી તરહકા
કથન ગૌતમ આદિકે વિષયમે મી જાનના ચાહિયે । ॥ સૂત્ર ૧૨ ॥

ગૌતમના જે સંતાને છે તેમને ગૌતમ કહે છે મુનિસુવ્રત અને
નેમિનાથ ભગવાન, રામલક્ષ્મણ સિવાયના બળદેવો અને વાસુદેવો વગેરે
ક્ષત્રિયો, ઇન્દ્રભૂતિ આદિ ત્રણ ગણધર અને વજ્રસ્વામી વગેરે બ્રાહ્મણો,
ગૌતમ ગોત્રીય હતા.

શય્યભવ આદિ વત્સના સંતાનેને વત્સગોત્રીય કહે છે. “ કોચ્છં સિવ
ભૂં પિ ય ” આ કથન અનુસાર શિવભૂતિ આદિને કૌત્સ ગોત્રીય કહે છે.
ષટ્ ઉલૂક આદિ કૌશિક ગોત્રીય હતા મણ્ડુકના સંતાનેને માણ્ડવ્ય કહે છે
છઠા ગણધર અને આર્થ સુહસ્તી આદિ વશિષ્ઠના સંતાને હોવાથી તેમને
વાશિષ્ઠો કહે છે. આ સાત મૂલગોત્ર છે પ્રત્યેક ગોત્રના સાત પ્રકારો પડે છે.
જેઓ “ કાશ્યપ ” આ શબ્દથી વિવક્ષિત થાય છે, તેમને કાશ્યપો કહે છે, અને
જેઓ કાશ્યપ ગોત્રમાં ઉત્પન્ન થયેલા શાણ્ડિલ્યના સંતાનેને શાણ્ડિલ્યો કહે છે
એજ પ્રકારનું કથન ગૌતમ આદિ વિષે પણ સમજ લેવું. ॥ સૂ. ૧૨ ॥

અયં ચ મૂલગોત્રશાખાગોત્રવિભાગો નયવિશેષમતાદ્ ભવતીતિ નયવિભાગ-
સાહ—

મૂલમ્—સત્ત મૂલનયા પળગત્તા, તં જહા-નેગમે ૧, સંગહે
૨, વ્યવહારે ૩ ઉજ્જુસુત્તે ૪ સદ્દે ૫ સમભિરૂઢે ૬ એવંભૂણ ૭
॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

છાયા—સપ્તમૂલનયાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, તથા—નૈગમઃ ૧ સંગ્રહો ૨ વ્યવહારઃ ૩
ઋજુસૂત્રઃ ૪ શબ્દઃ ૫ સમભિરૂઢઃ ૬ એવંભૂતઃ ૭ ॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

ટીકા—‘ સત્ત મૂલનયા ’ ઇત્યાદિ—

અનેકધર્મકદમ્બકોપેતસ્ય પ્રમાણપતિપન્નસ્ય પદાર્થસ્ય એકેન ધર્મેણ ઉચ્ચય-
નમ્ અવધારણાત્મકં ‘ નિત્ય એવ અનિત્ય એવ ’ ઇત્યેવંવિધં નયવ્યપદેશમાસ્ક-
ન્દતિ યઃ સોડધ્યવસાયવિશેષો નયઃ સ નયો દ્રવ્યાર્થિક-પર્યાયાર્થિકભેદેન

યહ મૂલ ગોત્ર ઓર શાખા ગોત્રકા વિભાગ નય વિશેષણ મતસે
હોતા હૈ, અતઃ અથ સૂત્રકાર નય વિભાગકા કથન કરતે હૈ—

“ સત્ત મૂલનયા પળગત્તા ” ઇત્યાદિ ॥ સૂત્ર ૧૩ ॥

ટીકાર્થ—સાત મૂલનય કહે ગયે હૈ, જૈસે નૈગમ ૧ સંગ્રહ ૨ વ્યવ-
હાર ૩ ઋજુ સૂત્ર ૪, શબ્દ ૫, સમભિરૂઢ ૬, ઓર એવંભૂત ૭ ।

પ્રમાણસે ગૃહીત હુઈ એસી અનેક ધર્માત્મક વસ્તુકા કિસી એક
ધર્મસે લેકર નિશ્ચય કરનેવાલા જો પ્રમાતાકા વિચાર હૈ—જૈસે કિ યહ
નિત્ય હી હૈ, અનિત્યહી હૈ—વહ નય હૈ, યહ નય દ્રવ્યાર્થિક ઓર પર્યા-
યાર્થિકે ભેદસે દો પ્રકારકા હોતા હૈ । પદાર્થ દ્રવ્ય પર્યાય રૂપ હૈ, એક
ઓર અનેક ધર્માત્મક હૈ, હસીકા નામ અનેકાન્ત હૈ, યહ અનેકાન્તા-

આ મૂળગોત્ર અને શાખાગોત્રનો વિભાગ જુઠા જુઠા નયો (મતો) ને
આધારે થાય છે. તેથી હવે સૂત્રકાર નયના પ્રકારોનું કથન કરે છે

“ સત્ત મૂલનયા પળગત્તા ” ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—મૂળનય સાત કહ્યાં છે—(૧) નૈગમ, (૨) સંગ્રહ, (૩) વ્યવહાર,
(૪) ઋજુ સૂત્ર, (૫) શબ્દ, (૬) સમભિરૂઢ અને (૭) એવંભૂત.

પ્રમાણ દ્વારા ગૃહીત થયેલી એવી અનેક ધર્માત્મક વસ્તુનો કોઈ એક
ધર્મને આધારે નિશ્ચય કરનારો જે પ્રમાતાનો વિચાર (મત) હોય છે તેને
નય કહે છે જેમકે “ આ નિત્ય જ છે, આ અનિત્ય જ ” આ પ્રકારની
માન્યતાનું નામ નય છે આ નયના દ્રવ્યાર્થિક નય અને પર્યાયાર્થિક નય
નામના બે મુખ્ય ભેદ પડે છે. પદાર્થ દ્રવ્ય પર્યાય રૂપ છે, એક અને અનેક

द्विविधः । तत्र-द्रव्यार्थिकनयः-द्रव्यपर्यायरूपमेकानेकात्मकमनेकान्त प्रमाणप्रति-
पन्नमर्थं विभज्य पर्यायार्थिकनयविषयस्य भेदस्योपसर्जनभावेनावस्थानमात्रमभ्य-
नुजानन् स्वविषयं द्रव्यभेदमेव व्यवहारयति, ' नयान्तरविषयसापेक्षः सन्नयः '
इत्यभिधानात् । यथा सुवर्णमानयेति । अत्र द्रव्यार्थिकनयाभिप्रायेण सुवर्णद्रव्या
नयननोदनायां कटकं कुण्डलं केयूरं चोपनयन्नुपनेता कृती भवति, सुवर्णरूपेण
त्मक पदार्थ प्रमाणका विषय है, नयका नहीं अनेक है-अन्त-धर्म
जिसमें वह अनेकान्त है । द्रव्यार्थिक नय केवल द्रव्यकोही विषय
करता है, और पर्यायार्थिक नयका जो विषय भेद है, उसे गौण करता
है-उसका खण्डन नहीं करता है-उसमें गज निमीलिका-उपेक्षा भाव
धारण करता है, अर्थात् अपने विषयको मुख्य करता है, और पर्या-
यार्थिक नयके विषयको गौण करता है, इस तरह दूसरे नयके विष-
यको गौण करके अपने विषयको मुख्य रूपसे-द्रव्य रूपसे जाननेवाला
जो नय है, वह द्रव्यार्थिक नय है । " नयान्तरसापेक्षः सन्नयः " इस
कथनसे यही समझाया गया है-अन्य नयके विषयकी अपेक्षा रखता
हुआ अपने विषयकी पुष्टि करनेवाला जो नय है, वही सन्नय है,
इससे विपरीत दुर्नय है, जैसे-किसीने कहा कि " सुवर्णमानय "
सुवर्ण लाओ-यहां द्रव्यार्थिक नयके अभिप्रायसे कटक, कुण्डल, केयूर,

धर्मात्मक છે, આ પ્રકારની માન્યતાને અનેકાન્તવાદ કહે છે. આ અનેકાન્તા-
ત્મક પદાર્થ નયનો વિષય નથી પણ પ્રમાણનો વિષય છે. અનેક છે અન્ત
(ધર્મ) જેમાં તેને અનેકાન્ત કહે છે. દ્રવ્યાર્થિક નય કેવળ દ્રવ્યનો જ
વિચાર કરે છે અને પર્યાયાર્થિક નયનો જે વિષયલેહ છે તેને ગૌણ કરે છે,
તેનું ખંડન કરતો નથી, તેમાં ગજનિમીલિકા ભાવ (ઉપેક્ષા ભાવ) ધારણ
કરે છે એટલે કે પોતાના વિષયને પ્રાધાન્ય આપે છે અને પર્યાયાર્થિક નયના
વિષયને ગૌણ રૂપ આપી દે છે. આ પ્રકારે અન્ય નયના વિષયને ગૌણ
કરીને પોતાના વિષયને મુખ્ય રૂપે, દ્રવ્ય રૂપે જાણનારો જે નય છે તેને
દ્રવ્યાર્થિક નય કહે છે. " નયાન્તરસાપેક્ષ.સન્નયઃ " આ સૂત્રપાઠ દ્વારા એ જ
વાત સમજાવવામાં આવી છે. અન્ય નયના વિષયની અપેક્ષા રાખતો થકો
પોતાના વિષયની પુષ્ટિ કરનારો જે નય છે તેને જ સન્નય (સાચા અર્થમાં
નય) કહે છે. તેનાથી વિપરીત લક્ષણનાળો જે નય છે તેને દુર્નય કહે
છે. જેમકે કોઈ આ પ્રમાણે કહે કે " સુવર્ણમાનય " " સુવર્ણ લાવો "
અહીં દ્રવ્યાર્થિક નય અનુસાર કડાં, કુંડળ, હાર આદિ સોનાની વસ્તુને

કટકાદીનાં મેદાભાવાત્ । દ્રવ્યાર્થિકનયમુપસર્જનીકૃત્ય પ્રવર્તમાનં પર્યાયાર્થિક-
નયમત્તલમ્સ્વ કુણ્ડલમાનય ઇત્યુક્તે ન કટકાદૌ પ્રવર્તતે, કટકાદિ પર્યાયસ્ય તત્તો
મિત્તત્વાત્ । તતો દ્રવ્યાર્થિકનયાભિપ્રાયેણ સુવર્ણ સ્યાદેકમેવ, પર્યાયાર્થિકનયા-
ભિપ્રાયેણ સ્યાદનેકમેવ । ક્રમેણોભયનયાભિપ્રાયેણ સ્યાદેકમનેકં ચ । દ્રવ્યાર્થિક-

इनमेंसे किसी एकको या सबको लानेवाला व्यक्ति कृती होता है,
क्योंकि उसकी दृष्टिमें सुवर्ण रूपसे कटकादिकोंमें भेद नहीं हैं—द्रव्य-
रूप सुवर्णकी दृष्टिसे वे सब सुवर्णरूप ही हैं, और जब द्रव्यार्थिक
नयको गौण कर दिया जाता है, और पर्यायार्थिक नयको प्रधान कर
दिया जाता है, उस समय “कुण्डलाओ” ऐसा कहने पर श्रोता
कटक (कड़ा) आदिके लानेमें प्रवृत्ति नहीं करता है, क्योंकि कुण्डलसे
कटक पर्याय भिन्न है, अतः द्रव्यार्थिक नयके अभिप्रायसे सुवर्ण
किसी अपेक्षा एकही है, और पर्यायार्थिक नयके अभिप्रायसे वह
किसी अपेक्षा अनेकही है, इस तरह द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन
दोनों नयोंके अभिप्रायसे यहां दो भंग हो जाते हैं—सुवर्णस्याद् एकमेव
१ सुवर्णस्यादनेकमेव २ । दोनों नयोंके अभिप्रायसे—क्रमसे दोनोंकी
प्रधानतासे—वह सुवर्ण द्रव्य कथंचित् एकभी है, और अनेक भी है,
इस प्रकारका यह तृतीय भंग है । द्रव्यार्थिक नय नैगम १ संग्रह २

સોના રૂપ માનીને એ બધી વસ્તુઓને અથવા તેમાંથી કોઈ પણ એક જ
વસ્તુને લવનાર માણસ પણ સોનું જ લાવ્યો કહેવાય. કારણ કે તેની દૃષ્ટિએ
તો સોનામાં અને સોનાની વસ્તુઓમાં કોઈ ભેદ નથી—દ્રવ્યરૂપ સુવર્ણની
દૃષ્ટિએ તો તે સઘળી વસ્તુઓ સુવર્ણરૂપ જ છે પરંતુ જો દ્રવ્યાર્થિક નયને
ગૌણ કરી નાખવામાં આવે અને પર્યાયાર્થિક નયને પ્રાધાન્ય આપવામાં આવે
તો “કુંડળ લાવો” આ પ્રમાણે કહેવામાં આવે ત્યારે શ્રોતા કડાં આદિ
લાવે નથી પણ કુંડળ જ લાવે છે, કારણ કુંડળ કરતાં કટકપર્યાય ભિન્ન
હોય છે. તેથી દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાએ સુવર્ણ કોઈ પણ ઘાટ રૂપે હોવા
છતાં પણ એક જ છે—સુવર્ણરૂપ જ છે, અને પર્યાયાર્થિક નય અનુસાર તે કડાં,
કુંડળ, હાર આદિ અनेક રૂપ છે. આ પ્રકારે દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિક
આ બે નયોની અપેક્ષાએ અહીં બે ભંગ બની બન્ય છે—(૧) સુવર્ણસ્યાદ્ એકમેવ
અને (૨) સુવર્ણસ્યાદનેકમેવ બન્ને નયોના અભિપ્રાય અનુસાર બન્નેની પ્રધા-
નતાની અપેક્ષાએ “તે સુવર્ણ દ્રવ્ય અમુક દૃષ્ટિએ એક પણ છે અને અમુક
દૃષ્ટિએ અनेક પણ છે,” આ પ્રકારનો ત્રીજો ભંગ બને છે.

नयस्तु नैगमः सग्रहो व्यवहारश्चेति त्रिविधः । पर्यायार्थिकश्च-ऋजुसूत्रः शब्दः
समभिरूढः एवम्भूतश्चेति चतुर्विधः । अतएवात्र मूलनयशब्देनोच्यन्ते । मूल-
भूता नया मूलनयाः । मूलत्वं चैषां नैगमादीनां सप्तानामुत्तरनयापेक्षया बोध्यम् ।
उत्तरनयास्तु सप्तशतानि, केषांचिन्मते पञ्चशतानि ।

तदुक्तम्—एककेको य सयविहो, सत्त नयसया ह्वति एवं तु ।

अत्रो वि य आएसो, पंचेव सया नयाणं तु ॥ १ ॥ ”

छाया—एकैकश्च शतविधः, सप्त नयशतानि भवन्ति एवं तु ।

अन्योऽपि च आदेशः पञ्चैव शतानि नयानां तु ॥ १ ॥ इति ।

तथा—जावइया वयणपहा, तावइया चैव हुंति नयवाया ।

जावइया नयवाया तावइया चैव परसमया ॥ १ ॥ ”

छाया—यावन्तो वचनपथाः तावन्तश्चैव भवन्ति नयवादाः ।

यावन्तो नयवादा स्तावन्तश्चैव परसमयाः ॥ १ ॥ इति ।

और व्यवहार नयके भेदसे तीन प्रकारका है, एवं पर्यायार्थिक नय
ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवम्भूतनयके अभिप्रायसे चार
प्रकारका है, ये यहाँ मूलनय शब्दसे कहे गये हैं । मूलभूत जो नय हैं,
वे मूल नय हैं, नैगमादि सातों नयों उत्तरनयोंकी अपेक्षासे मूल
नयता जाननी चाहिये, उत्तर नय सातसौ हैं, किसी २ के मतानुसार
उत्तर नय पांचसौ हैं कहा भी है—

“ एककेकोय सयविहो ” इत्यादि ।

एक एक नयके सौ सौ (१००) भेद होते हैं, इस तरह सात
नयोंके सातसौ भेद हो जाते हैं, कोईका ऐसा कहना है, कि नयोंके
उत्तर भेद ५०० होते हैं । तथा—

द्वयार्थिक नयना नीचे प्रमाणे त्रय प्रकार छे—(१) नैगम नय (२)
संग्रह नय अने (३) व्यवहार नय. पर्यायार्थिक नयना नीचे प्रमाणे चार
प्रकार छे—(१) ऋजु सूत्र, (२) शब्द, (३) समभिरूढ अने (४) एवम्भूत नय.

मूलभूत जे सात नयो छे तेभने मूलनय कहे छे. नैगम आदि साते
नयोभां उत्तरनयोनी अपेक्षाजे मूलनयता श्रुत्यु करवी जेछये. डेटलाकनी
मान्यता अनुसार उत्तरनयो ७०० छे अने डेटलाकनी मान्यता प्रमाणे
उत्तरनयो ५०० छे कहु पणु छे के : एककेको य सयविहो ” इत्यादि—

अत्येक नयना १००-१०० लेद पडे छे. आरि ते सात नयोना ७००
लेदो थछ जय छे. त्यारे, डेटलाक लोकनी मान्यता प्रमाणे नयोना उत्तरकेदो
५०० छे. तथा “ जावइया वयणपहा ” इत्यादि—

તત્ર સપ્તસુ મૂલનયેષુ પ્રથમો નૈગમઃ । તસ્ય ચેયં વ્યુત્પત્તિઃ—નૈકૈર્માનૈર્મહા-
સત્તા સામાન્યવિશેષવિશેષજ્ઞાનૈર્મિમીતે, મિનોતિ=પરિચ્છિનતીતિ નૈકમઃ નિરુક્ત-
વિધિના સ એવ નૈગમઃ । તદુક્તમ્—

“ ળોગાઈં માણાઈં, સામન્નોભયવિસેસનાણાઈં ।

જં તેર્હિ મિણઈ તો, ળેગમો ળઓ ળેગમાણોત્તિ ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—નૈકાનિ માનાનિ સામાન્યોભયવિશેષજ્ઞાનાનિ ।

યતૈર્મિનોતિ તતો નૈગમો નૈકમાન ઇતિ । ૧ ॥

અયત્રા—નિગમેષુ=અર્થબોધેષુ કુશલો ભવો વા નૈગમઃ યદ્વા=નૈકે ગમાઃ
પન્થાનો યસ્ય સ નૈકગમઃ, નિરુક્તત્વેન સ એવ નૈગમઃ । તદુક્તમ્—

“ લોગત્યનિવોહા વા, નિગમા તેસુ કુસલો ભવોવાડયં ।

અહવા જં ળેગમો, ળેગપહા ળેગમોતેઙં ॥ ૧ ॥ ”

“ જાવઈયા વયણપહા ” ઇત્યાદિ ।

જિતને વચનપથ હૈં, ઉતનેહી નયવાદ હૈં, ઓર જિતને નયવાદ હૈં,
ઉતનેહી પર સમય હૈં, ઇન સાત મૂલ નયોંમેં પ્રથમ નૈગમ નય હૈ, ઇસકી
વ્યુત્પત્તિ ઇસ પ્રકારસે હૈ—

“ નૈકૈઃ માનૈઃ મિનોતિ ઇતિ નૈકમઃ—નૈકમ એવ નૈગમઃ ” જો નય
મહાસત્તા સામાન્ય, એવં વિશેષ ઇનકે દ્વારા પદાર્થકો જાનતા હૈ, ડસ
નયકા નામ નૈકમ યા નૈગમ હૈ કહા ઓ હૈ—

“ ળોગાઈં માણાઈં ” ઇત્યાદિ ।

અયત્રા—અર્થબોધમેં જો વિચાર કુશલ હોના હૈ, વહ અયત્રા અર્થ-
બોધમેં જો વિચાર હોતા હૈ, વહ નૈગમ હૈ, અથવા અર્થબોધ કરાનેકે
જિસકે અનેક માર્ગ હૈ વહ નૈકગમ—નૈગમ હૈ, કહા ઓ હૈ—

ઁટલા વચનપથ છે, ઁટલાં જ નયવાદ છે, અને ઁટલા નયવાદ છે
ઁટલા જ પર સમય (અન્ય મતો—અન્ય સંપ્રદાયો) છે. સાત નયોમાં
પહેલો નય નૈગમનય છે. નૈગમની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે થાય છે—

“ નૈકૈઃ માનૈઃ મિનોતિ ઇતિ નૈકમઃ—નૈકમ એવ નૈગમઃ ” જે નય મહા સત્તા
સામાન્ય અને વિશેષ દ્વારા પદાર્થને જાણે છે, તે નયનું નામ નૈકમ અથવા
નૈગમ છે. કહ્યું પણ છે કે “ ળેગાઈં માણાઈં ” ઇત્યાદિ—

અથવા—અર્થબોધમાં જે વિચાર કુશલ હોય છે તેને, અથવા અર્થ-
બોધમાં જે વિચાર થાય છે તેને નૈગમ કહે છે. અથવા અર્થબોધ કરાવવાના
જેના અનેક માર્ગ છે તે “ નૈક ગમ ” અથવા નૈગમ છે.

छाया—लोकार्थनिबोधा वा निगमास्तेषु कुशलो भवोवाऽयम् ।

अथवा यत् नैगमो नैकपथो नैगमस्तेन ॥ १ ॥ इति ।

अयं नैगमः सर्वाविशुद्धो विशुद्धाविशुद्धः सर्वविशुद्धश्चेति त्रिभेदः । तत्र—
प्रथमो—निर्विकल्पकमहासत्ताऽऽख्यकेवलसामान्यवादी १। गोत्वादिसामान्य-
विशेषवादी द्वितीयः २। विशेषवादी तु तृतीयः ३। तत्र प्रथमो द्वयोर्धर्मयोः प्रधान-

“लोगत्थनिबोधा वा” इत्यादि ।

यह नैगम सर्वाविशुद्ध, विशुद्धाविशुद्ध और सर्व विशुद्धके भेदसे
तीन प्रकारका है ।

इनमें निर्विकल्पक महासत्ताका केवल सामान्यका कथन करने-
वाला जो नय है, वह सर्वाविशुद्ध नैगम नयका प्रथम भेद है, गोत्व
आदिरूप सामान्य विशेषका प्रतिपादन करनेवाला जो नय है, वह
नैगम नयका विशुद्धाविशुद्ध द्वितीय भेद है, और केवल विशेषका
कथन करनेवाला जो नय है, वह नैगम नयका सर्व विशुद्ध रूप तृतीय
भेद है, नैगमनय के द्वितीय भेद में जो सामान्य विशेष विषय कहा
गया है वह “सामान्य और विशेष” इस रूप से नहीं समझना
चाहिये, किन्तु सामान्य रूप विशेष इस रूप से समझना चाहिये,
क्योंकि सामान्य परसत्ता और अपरसत्ता के भेद से दो प्रकार का
होना है, इनमें परसत्ता महा सामान्य रूप होती है और अपरसत्ता

कथ्यं पशु छे के : “लोगत्थ निबोधा वा” इत्यादि—

ते नैगमना नीचे प्रमाणे त्रयु भेद छे—(१) सर्वा विशुद्ध, (२) विशुद्धा
विशुद्ध, अने (३) सर्व विशुद्ध

निर्विकल्पक महा सत्ताइय केवल सामान्यतुं कथन करनारो जे नय छे
ते सर्वाविशुद्ध नामनो नैगम नयनो पहेलो भेद छे. गोत्व आदि इय
सामान्य विशेषतुं प्रतिपादन करनारो जे नय छे ते विशुद्धाविशुद्ध नामनो
नैगम नयनो भीजे भेद छे. केवलविशेषतुं प्रतिपादन करनारो जे
नय छे, तेने सर्वविशुद्ध नामनो नैगमनो भीजे भेद कडे छे. नैगमनयना
भीजे भेदमां जे “सामान्य विशेष” इय शब्दप्रयोग करवामां आये छे
तेने “सामान्य अने विशेष” आ इये अहणु करवानो नथी, परन्तु
“सामान्य इय विशेष” आ प्रकारनो तेनो अर्थ अहणु करवानो छे, कारण
के परसत्ता अने अपरसत्ताना भेदथी सामान्यता जे प्रकार पडे छे. ते अने-
मांथी परसत्ता महासामान्य इय होय छे अने अपरसत्ता सामान्य विशेष-

નોપસર્જનભાવેન યદ્વિવક્ષણં સઃ, યથા—સચ્ચૈત્ન્યમાત્મનીતિ । તથા—દ્વયોર્ધર્મિણોઃ પ્રધાનોપસર્જનભાવેન યદ્વિવક્ષણં સ દ્વિતીયઃ, યથા—પર્યાયવદ્ વસ્તુ દ્રવ્યમિતિ ૨ । તથા—ધર્મધર્મિણોઃ પ્રધાનોપસર્જનભાવેન યદ્ વિવક્ષણં સ તૃતીયઃ, યથા—ક્ષણમેકં સુખી વિષયાસક્તજીવ इति ।

સામાન્ય વિશેષરૂપ હોતી હૈ, હવ મેં દો ધર્મોં કા પ્રધાન ઓર ઉપસર્જન ભાવ સે—ગૌણ રૂપ સે—જો વિવક્ષણ હૈ વહ પ્રથમ નૈગમનયકા ભેદ હૈ, જૈસે—“ સચ્ચૈત્ન્યાત્મનિ ” આત્મા મેં સદ્વિશિષ્ટ ચૈતન્ય હૈ યહાં ચૈતન્ય કા વિશેષણ સત્ હૈ અતઃ વહ ગૌણ હૈ ઓર ચૈતન્ય ધર્મ મુખ્ય હૈ, દો ધર્મિયોં કી પ્રધાન ઉપસર્જન ભાવ સે જો વિવક્ષા હૈ વહ નૈગમનયકા દ્વિતીય ભેદ હૈ, જૈસે—પર્યાયવાલી વસ્તુ દ્રવ્ય હૈ, યહાં વસ્તુ ઓર દ્રવ્ય ચે દો ધર્મોં હૈં પરન્તુ પર્યાયવદ્ વસ્તુ યહ દ્રવ્ય કા વિશેષણ હૈ, હસલિયે યહ ગૌણ હૈ ઓર દ્રવ્ય યહ વિશેષ્ય હૈ હસલિયે વહ પ્રધાન હૈ, ધર્મ ઓર ધર્મોં કા પ્રધાન ઉપસર્જન ભાવ સે જો વિવક્ષણ—કથન—કરના હૈ વહ નૈગમનય કા તૃતીય ભેદ હૈ, જૈસે—“ ક્ષણમેકં સુખી વિષયાસક્તજીવઃ ” વિષયાસક્ત જીવ ઁક ક્ષણ તક સુખી રહતા હૈ, યહાં ધર્મ ધર્મોં કી પ્રધાન ઉપસર્જન ભાવસે વિવક્ષા હુઈ હૈ, કયોંકિ જવ વિષયાસક્ત જીવ કા વિશેષણ સુખી બનાયા જાતા હૈ તથ વહ

રૂપ હોય છે નૈગમનયના પ્રથમ ભેદમાં જે ધર્મોંનું પ્રધાન રૂપે અને ઉપસર્જન રૂપે, ગૌણ રૂપે પ્રતિપાદન થાય છે. જેમકે “ સચ્ચૈત્ન્યાત્મનિ ” “ આત્મમાં સદ્વિશિષ્ટ ચૈતન્ય છે. ” અહીં ચૈતન્યનું વિશેષણ સત્ છે, તેથી સત્ ગૌણરૂપ છે અને ચૈતન્ય ધર્મ પ્રધાનરૂપ છે.

જે ધર્મોંઓની જે પ્રધાનભાવે અને ઉપસર્જન ભાવે—ગૌણભાવે વિવક્ષા છે, તેને નૈગમનયના ખીજ ભેદ રૂપ ગણવામાં આવે છે. જેમકે—“ પર્યાયવાળી વસ્તુ દ્રવ્ય છે ” અહીં વસ્તુ અને દ્રવ્ય, આ જે ધર્મોં છે પરન્તુ ‘ પર્યાયવાળી વસ્તુ ’ આ પદ દ્રવ્યના વિશેષણ રૂપ છે, તેથી તે ગૌણ છે અને દ્રવ્ય વિશેષ હોવાને કારણે તેને પ્રાધાન્ય અપાયું છે.

નૈગમનયના ત્રીજા ભેદમાં ધર્મ અને ધર્મોંનું પ્રધાન અને ઉપસર્જન ભાવે ગૌણ રૂપે પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે, જેમકે “ ક્ષણમેકં સુખી વિષયાસક્તજીવઃ ” “ વિષયાસક્ત જીવ એક ક્ષણ જ સુખી રહે છે ” અહીં ધર્મ અને ધર્મોંની પ્રધાન અને ગૌણ રૂપે વિવક્ષા થઈ છે. કારણ કે જે વિષયાસક્ત જીવના વિશેષણ રૂપે સુખીને લેવામાં આવે તો તે વિશેષણ હોવાને

नन्वेवं सामान्यविशेषाभ्युपगमपरत्वादयं नैगमनयः सम्यग्दृष्टिरेव साधुवत् ? इति चेत्, आह—

अयं नयो हि सामान्यविशेषवस्तूनि अत्यन्तभेदेनाभ्युपगच्छति, अतो नायं साधुवत् सम्यग्दृष्टिः । तदुक्तम्—

“ जं सामन्नविसेसे, परोपरं वत्थओ य सो भिन्ने ।

मन्नइ अच्चंतमओ, मिच्छादिट्ठी कणादोव्व ॥ १ ॥

दोहिवि नयेहि नीयं, सत्थमुत्तएण तहवि विच्छत्तं ।

जं सविसय पहाणत्तणेण अन्नोन्ननिरवेक्खा ॥ २ ॥ ”

छाया—यत् सामान्यविशेषं परस्परं वस्तुनश्च तद् भिन्नम् ।

मन्यते अत्यन्तमतो मिथ्यादृष्टिः कणाद् इव ॥ १ ॥

द्वाभ्यां नयाभ्यां नीतं शास्त्रमुल्लूकेन तथापि मिथ्यात्वम् ।

यत् स्वविषयप्रधानत्वेन अन्योन्यनिरपेक्षौ ॥ २ ॥ इति ।

विशेषण होने से गौण हो जाता है और विषयामुक्त जीव रूप धर्मी मुख्य हो जाना है, और जब विषयासक्त जीव को सुखी का विशेषण बनाया जाता है तब वह गौण हो जाता है और सुखी प्रधान हो जाता है.

शंका—पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है और सामान्य विशेष को जानने वाला नैगमनय है अतः यह नय साधु की तरह सम्यग्दृष्टिवाला ही है ?

उत्तर—यह नय सामान्य विशेष रूप वस्तुओं को अत्यन्त भेद रूप से स्वीकार करता है, क्योंकि यह इन दोनों को परस्पर सापेक्ष नहीं मानता है, अतः यह सम्यग्दृष्टि साधु की तरह सम्यग्दृष्टिवाला नहीं है, कहा भी है—“ जं सामन्नविसेसे ” इत्यादि ।

कारणु गौणु णनी णय छे अने विषयासक्त इप धर्मी मुख्य णनी णय छे. परन्तु विषयासक्त एवने न्यारे सुधीतुं विशेषणु अनाववामां आवे छे त्तारे सुधी प्रधान णनी णय छे अने विषयासक्त गौणु णनी णय छे.

शंका—पदार्थ सामान्य विशेषात्मक छे अने सामान्य विशेषने णणु-नारे नैगमनय छे, तेथी शुं आ नय साधुनीं नेम सम्यग्दृष्टिवाणे न छे ?

उत्तर—आ नय सामान्य विशेष रूप वस्तुओंने अत्यन्त लेह रूपे स्वीकारे छे कारणु के ते अनेने परस्पर सापेक्ष मानतो नथी, तेथी ते सम्यग्दृष्टि साधुनीं नेम सम्यग्दृष्टिवाणे नथी.

इदं पणु छे के “ जं सामन्नविसेसे ” इत्यादि—

अयं भावः—नैगमनयो यत् सामान्यविशेषं यत् परस्परम्=अन्योऽन्यं तथा वस्तुनश्च अत्यन्तं भिन्नं ऋण्यते, अतो नैगमनयः कणाद इव मिथ्यादृष्टिविज्ञेयः ॥ १ ॥ यद्यपि उलूकेन=कणादेन द्वाभ्यां=द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकाभ्यां नयाभ्यां शास्त्रं=वैशेषिकदर्शनं नीतं=प्रोक्तम् तथापि-तस्य मिथ्यात्वम् । यत्=यस्मात् कारणात् वैशेषिकदर्शने तौ उभावपि नयौ स्वविषयप्रधानत्वेन अन्योऽन्यनिरपेक्षौ । वैशेषिकशास्त्रप्रणेना कणादेन तत्र द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायात्मकस्य पदार्थपट्टकस्य नित्यैकान्तस्य प्रतिपादनात् उभावपि नयौ परस्परनिरपेक्षतया स्थितौ, अतः कणादस्य मिथ्यादृष्टित्वं बोध्यमिति भावः । इति प्रथमो नयः ।

तात्पर्यं इह गाथाओं का ऐसा है कि—सामान्य और विशेष ये दोनों परस्पर में अत्यन्त भिन्न हैं और वस्तु से भी अत्यन्त भिन्न हैं ऐसी मान्यता इस नैगमननय की है, अतः यह नय कणाद की तरह मिथ्यादृष्टि वाला है—सम्बन्धदृष्टि वाला नहीं है, यद्यपि कणादने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों को लेकर वैशेषिक दर्शन का कथन किया है—फिर भी वह कथन सम्यक्—निर्दोष नहीं है—क्योंकि—वैशेषिक दर्शन में ये दोनों नय अन्योन्य निरपेक्ष होकर अपने २ विषय का प्रतिपादन करते हैं वैशेषिक शास्त्र प्रणेना कणादने द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, विशेष, और समवाय में ६ पदार्थ नित्यैकान्त रूप से कहे हैं—इस लिये दोनों नय परस्पर निरपेक्ष रूप उनकी मान्यता के अनुसार सावित हो जाते हैं, अतः कणाद में मिथ्यादृष्टिपन इस प्रकार के कथन से प्रमाणित हो जाता है, इस प्रकार का यह कथन प्रथमनय के सम्बन्ध में प्रकट किया अब संग्रह नयका स्वरूप कथन इस प्रकार से हैं—

आ गाथाभ्यां नैगमननय प्रमाणेन—सामान्य अने विशेष अने अने परस्परधी अत्यन्त भिन्न अने वस्तुनी दृष्टिअे पशु अत्यन्त भिन्न अने, आ प्रकारनी नैगमननयनी मान्यता अने, तेथी आ नय (आ नयने मान्यतादे) कणादनी जेम मिथ्यादृष्टिवाणे अने—सम्बन्धदृष्टिवाणे नथी, जे के कणादे द्रव्यार्थिक अने पर्यायार्थिक नयने आधारे वैशेषिक दर्शननु कथन कथुं अने, परन्तु ते कथन सम्यक् (निर्दोष) नथी, कारणे के वैशेषिक दर्शनमां आ अने नय परस्पर निरपेक्ष रहने पोतपोताना विषयनु प्रतिपादन करे अने, वैशेषिक शास्त्रना प्रणेता कणादे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष अने समवायमां पदार्थ नित्यैकान्त रूपे अ प्रतिपादित करेले अने तेथी तेनी मान्यता प्रमाणे तो अने नय परस्पर निरपेक्ष रूप सावित थर्ष जाय अने, आ प्रकारना कथन द्वारा कणादमां मिथ्यादृष्टिता सिद्ध थर्ष जाय अने प्रथम नयना

तथा—संग्रहः—संग्रहणं भेदानामिति संग्रहः, संगृह्णाति वा भेदान् संगृह्यन्ते वा भेदा येन स संग्रहः । तदुक्तम्—

“ संग्रहणं संग्रिण्हद्, संग्रिञ्जते व तेण जे भेदा । तो संग्रहो—”

छाया—संग्रहणं संगृह्णाति संगृह्यन्ते वा तेन ये भेदाः । ततः संग्रहः—इति ।

यद्वा—सामान्यमात्रम् अशेषविशेषरहितं सत्त्वद्रव्यत्वादिकं संगृह्णातीत्येवंशीलः, सम्=एकीभावेन पिण्डीभूततया विशेषराशिं गृह्णातीति वा संग्रहः । तदुक्तम्—
“ सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रहः ” इति । अयमर्थः—स्वजाते दर्शितेष्टाभ्याम-
विरोधेन विशेषाणामेकतया यद् ग्रहणं स संग्रहः, इति । अत्रेदं बोध्यम्—सामान्य-
प्रतिपादनपरोऽयं नयः सामान्यमेव गृह्णाति न विशेषम् । अयं चवं विप्रतिपद्यते—
विशेषाः सामान्यतोऽर्थान्तरभूताः स्युरनर्थान्तरभूता वा ? यद्यर्थान्तरभूताः, तर्हि

भेदों का ग्रहण करना, अथवा जो भेदों को ग्रहण करता है, या जो भेदों को ग्रहण करता है अथवा—भेद जिसके द्वारा गृहीत होते हैं वह संग्रह हैं—कहा भी है—“ संग्रहणं संग्रिण्हद् ” इत्यादि ।

यद्वा अशेष विशेष रहित सत्त्व, द्रव्यत्वादि रूप सामान्य मात्र को जो ग्रहण करता है वह—संग्रह है, अर्थात्—समरूप से—पिण्डीभूत रूप से—जो विशेष राशि को ग्रहण करता है—तदुक्तम्—“ सामान्यमात्र ग्राही परामर्शः संग्रहः ” प्रत्यक्ष एवं अनुमान से जहाँ विरोध न आवे इस रूप से अपनी जाति के विशेषों का एक रूप से जो ग्रहण किया जाता है—वह संग्रह है, यह नय केवल सामान्य मात्र का कथन करता है—क्योंकि यह उल्लेख ही ग्रहण करता है—विशेष को नहीं इस विषय

विषयमां आ प्रकारनुं रूपटीकरणु करीने हवे सूत्रकार संग्रहणनय नामना भीण नयनास्वरूपनुं रूपटीकरणु करे छे—

लेहोने अहणु करवा, अथवा ने लेहोने अहणु करवानुं थाय छे, अथवा ने लेहोने अहणु करे छे अथवा लेह नेना द्वारा गृहीत थाय छे ते नयनुं नाम संग्रहणनय छे. कहुं पणु छे के : “ संग्रहणं संग्रिण्हद् ” इत्यादि—

अथवा—अशेष विशेष रहित सत्त्व, द्रव्यत्वादि रूप सामान्य मात्रने ने अहणु करे छे ते संग्रहणनय छे. अटवे के समरूपे—पिण्डीभूत रूपे—ने विशेष राशिने अहणु करे छे—“ सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रहः ” प्रत्यक्ष अनुमान द्वारा न्यां विरोध न आवे ते प्रकारे पोतानी नतिना विशेषोने ने अहणु रूपे अहणु करवामां आवे छे, तेनुं नाम संग्रह छे. आ नय केवण सामान्य मात्रनुं न कथन करे छे, कारण के ते तेने न अहणु करे छे—विशेषने अहणु

ન સન્તિ તે, સામાન્યાદર્ધાન્તરત્વાત્ સ્વપુષ્પવત્ । અથાનર્થાન્તરભૂતાઃ, તર્હિ સામા-
ન્યમાત્રં તે, તદવ્યતિરિક્તત્વાત્ તત્સ્વરૂપવદિતિ । તદુક્તમ્—

“ સદિતિ મણિયસ્મિ જહા સઘ્વત્થાણુપ્પવત્તણ વુદ્ધી ।

તો સઘ્વં તમ્મત્તં, નત્થિ તદત્થંતરં કિંચિ ॥ ૧ ॥

કુંભો ભાવાડાનનો, જહ તો માત્રો અહનહાડામાવો ।

એવં પહાદયો વિ હુ, માવાડાનનંતિ તમ્મત્તં ॥ ૨ ॥

છાયા—સદિતિ મણિતે યસ્માત્ સર્વગ્રાનુપ્રવર્તેતે વુદ્ધિઃ ।

તતઃ સર્વં તન્માત્રં નાસ્તિ તદર્થાન્તરં કિંચિત્ ॥ ૧ ॥

કુંભો ભાવાદનન્યો, યદિ તતો માત્રોડથાન્યથા અમાત્રઃ ।

એવં પહાદયોડપિ સ્વહુ માવાદનન્યા ઇતિ તન્માત્રમ્ ॥ ૨ ॥ ઇતિ ।

અયમર્થઃ—‘ સત્ ’ ઇતિ મણિતે—ઉક્તે સતિ યસ્માત્ સર્વત્ર=સર્વેષુ પદાર્થેષુ
વુદ્ધિઃ અનુપ્રવર્તેતે, સર્વોડપિ પદાર્થઃ સત્તાત્વેનાનુગતો ભવતીતિ માત્રઃ । તતઃ=

મેં હસ નય કા એસા કહના હૈ—કિ વિશેષ સામાન્ય સે ભિન્ન હૈં યા-
અભિન્ન હૈં, યદિ સામાન્ય સે વે ભિન્ન હોને કે કારણ સ્વતંત્ર સત્તા હી
સિદ્ધ નહીં હો સકતી હૈ—ઔર યદિ વે સામાન્ય સે અભિન્ન હૈં—તો હસ
સ્થિતિ મેં વે વિશેષ ન કહલાકર સામાન્ય હી કહલાવેંગે—જૈસે સામા-
ન્યકા સ્વરૂપ સામાન્ય સે અભિન્ન હોને કે કારણ સામાન્ય કહલાતા
હૈ । કહા મી હૈ—“ સદિતિ મણિયસ્મિ ” ઇત્યાદિ ।

જઘ “ સત્ ” હસ પ્રકાર કહા જાતા હૈ તઘ સમસ્ત પદાર્થો મેં
સત્તા હોને કે કારણ ડનકા “ સત્ ” હસ પદ સે ગ્રહણ હો જાતા હૈ

કરતો નથી. આ વિષયને અનુલક્ષીને આ નયની એવી માન્યતા છે કે વિશેષ
સામાન્ય કરતાં ભિન્ન છે, કે અભિન્ન છે તે પ્રશ્નનો વિચાર કરવો જોઈએ. જો
સામાન્ય કરતાં તે ભિન્ન હોય તો તેમની જે સ્વતંત્ર સત્તા હોવી જોઈએ,
તે સિદ્ધ થવી જોઈએ, પરંતુ તેમની સ્વતંત્ર સત્તા (અસ્તિત્વ) તો સિદ્ધ
થતી નથી, અને જો તેઓ સામાન્ય કરતાં અભિન્ન હોય, તો આ સ્થિતિમાં
તેમને વિશેષ રૂપે ઓળખવાને બદલે સામાન્ય રૂપે જ ઓળખવા જોઈએ.
જેવી રીતે સામાન્યનું સ્વરૂપ સામાન્ય કરતાં અભિન્ન હોવાને કારણે તેમને
સામાન્ય જ કહેવાય છે એ જ પ્રમાણે વિશેષોને પણ સામાન્ય રૂપ જ માનવું
જોઈએ. કહ્યું પણ છે કે “ સદિ તિ મણિયસ્મિ ” ઇત્યાદિ—

ત્યારે “ સત્ ” આ પ્રકારે કહેવામાં આવે ત્યારે સમર્થ પદાર્થોમાં
સત્તા (અસ્તિત્વ) હોવાને કારણે તેમનું ‘ સત્ ’ આ પદ દ્વારા ગ્રહણ થઈ

तस्मात् कारणात् सर्वं वस्तु तन्मात्रं=सत्तामात्रमस्ति । तत् अर्थान्तरम्=सत्ता-
पदार्थाद् भिन्नं किञ्चित्=किमपि नास्ति । सत्तारूपमेव सर्वं वस्त्विति भावः
॥ १ ॥ अमुमेवार्थं स्पष्टप्रतिपत्तये प्राह—‘ कुम्भो ’ इत्यादि । कुम्भो यदि भावात्=
सत्त्वात् अनन्यः=अभिन्नः, ततः स भाव एव । अन्यथा=कुम्भस्य भावत्वानङ्गी-
कारे तु तस्य अभाव एव स्यात् । एवं पटादयोऽपि पदार्थाः भावादनन्या इति
सर्वं वस्तु तन्मात्रं=भावमात्रं विज्ञेयमिति । अयं संग्रहो द्विविधः परोऽपरश्चेति ।
तत्र—अशेषविशेषेष्वौदासीन्यं भजमानः शुद्धद्रव्यं सन्मात्रमभिमन्यमानः परसंग्रहः,

अतः समस्त वस्तुएँ सत्ता मात्र रूप है, इसलिये इस सत्ता से अति-
रिक्त और कोई विशेष रूप-पदार्थ नहीं है, कुम्भ यदि सत्त्व रूप
धर्म से भिन्न माना जावे तो वह सद्विशिष्ट न होने के कारण अभाव
रूप ही हो जावेगा, और यदि वह सत्त्व रूप धर्म से अभिन्न माना
जावे तो फिर उससे अभिन्न होने के कारण वह स्वयं सद्रूप हो जाता
है, इसी प्रकार से पटादि के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये. अतः
यह मानना ही पड़ता है कि “ सत् ” इस प्रकार के कहने पर समस्त
पदार्थों में “ यह सत् है यह सत् है ” इस प्रकारका सत्तानुगत प्रत्यय
होता है और वह समस्त पदार्थ सत्तात्मक है इस बात की पुष्टि
कराता है, यह सत्ता सामान्य रूप संग्रह-दो प्रकार का है—एक पर
संग्रह और दूसरा अपर संग्रह; इनमें जो-संग्रह अशेष विशेषों में
उदासीन बनकर सत्मात्र शुद्ध द्रव्य को मानता है ग्रहण करता है—

अथ छे, तेथी समस्त वस्तुओ सत्ता मात्र इय छे, ते कारणे आ सत्ता
विनानो कोर्य पणु विशेष इय पदार्थ नथी. जे धराने सत्त्व इय धर्मथी
रहित मानवामां आवे तो ते सद्विशिष्ट (सत्तयुक्त) नईं होवाने कारणे
अभाव इय न थर्य नशे. अने जे तेने सत्त्व इय धर्मथी अभिन्न (युक्त)
मानवामां आवे तो ते तेनाथी अभिन्न होवाने कारणे स्वयं सद्रूप थर्य
नशे. जे न प्रभाणे पटादिना विषयमां पणु समणु लेवुं. तेथी जे वात
मानवी न पडे छे के “ सत् ” आ प्रकारे कहेता समस्त पदार्थोमां “ आ
सत् छे, आ सत् छे ” आ प्रकारेनो सत्तानुगत प्रत्यय (अनुभव) थाय
छे अने ते समस्त पदार्थ सत्तात्मक (अस्तित्व युक्त) छे जे वातनी पुष्टि
करावे छे. आ सत्ता सामान्य इय संग्रहनयना नीचे प्रभाणे जे प्रकारे छे
(१) पर संग्रह अने (२) अपर संग्रह.

जे संग्रह अशेष विशेषोमां उदासीन गनीने सत्मात्र शुद्ध द्रव्यने माने
छे, ग्रहण करे छे, तेने पर संग्रहनय कडे छे. जेभके—“ सत्नी अविशेष-
तानी अपेक्षाजे आ विश्व जेक सत्ता इय छे, ” आ कथन तथा

યથા-વિશ્વમેકં સત્ અવિશેષાદિતિ । તથા-દ્રવ્યત્વાદીન્યવાન્તરસામાન્યાનિ મન્વાનસ્તદ્ધેદેષુ ગજનિમીલિકામવલમ્બનાનોઽપરસંગ્રહઃ, યથા-ધર્માધર્માકાશ કાલપુદ્ગલજીવદ્રવ્યાણમૈક્યં દ્રવ્યત્વાભેદાદિતિ । इति द्वितीयो नयः २।

તથા-વ્યવહારઃ-વ્યાહરણં, વ્યવહરતીતિ વા વ્યવહારઃ, વ્યવહ્રિયતે=અપલ-
પ્યતે સામાન્યમનેનેતિ વા વ્યવહારઃ, વિશેષાન્ વા આશ્રિત્ય વ્યવહારપરો નયો
વ્યવહારઃ । તદુક્તમ્—

“ વ્યવહરણં વ્યવહરણ, સ તેણ વ્યવહીરણ વ સામન્નં ।

વ્યવહારપરો ય જાઓ, વિસેસઓ તેણ વ્યવહારો ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—વ્યવહરણં વ્યવહરતે સ તેન વ્યવહ્રિયતે વા સામાન્યમ્ ।

વ્યવહારપરશ્ચ યતો વિશેષતસ્તેન વ્યવહારઃ ॥ ૧ ॥ इति ।

પરસંગ્રહનય છે, જાણે-સત્ કી અવિશેષતા સે યહ વિશ્વ એક સત્તા
રૂપ છે એસા કથન તથા-જો સંગ્રહ-દ્રવ્યત્વ-આદિ અવાન્તર સામાન્યો
કો માનતા હુઆ ઉનકે ભેદોં મેં ગજનિમીલિકા-ઉપેક્ષા ભાવ રહતા
હૈ ઉન્હેં ગૌણ કરતા હૈ વહ અપર સંગ્રહનય છે, જાણે-દ્રવ્યત્વ રૂપ અવા
ન્તર સામાન્ય કી અવિશેષતા સે-અભેદ સે ધર્મ, અધર્મ, આકાશ,
કાલ પુદ્ગલ ઓર જીવ ઇન સબ મેં એકતા હૈ એસા કથન કરના. ૨
સંગ્રહનય કે વિષયભૂત સામાન્ય મેં ભેદ કા કથન કરને વાલા જો
નય છે વહ અથવા સામાન્ય કા અપલાપ કરનેવાલા જો નય છે વહ
વ્યવહાર નય છે, અથવા-વિશેષોં કો લેકર વસ્તુ કો વ્યવહારપથ મેં
લાને વાલા જો નય છે-વહ વ્યવહાર નય છે કહા ઓ હૈ—

“ વ્યવહરણં વ્યવહરણ ’ इत्यादि ।

જે સંગ્રહનય દ્રવ્યત્વ આદિ અવાન્તર સામાન્યોને માનતો થકો તેમના
લેદોમાં ગજનિમીલિકાભાવ (ઉપેક્ષા ભાવ) રાજો છે, તેમને ગૌણ માને છે,
તે સંગ્રહનયને અપર સંગ્રહનય કહે છે. જેમકે—“ અભેદની અપેક્ષાએ ધર્મ,
અધર્મ, આકાશ, કાળ, પુદ્ગલ અને જીવ એ બધામાં એકતા છે, ” આ
પ્રકારનું કથન સંગ્રહનયના વિષયભૂત સામાન્યમાં લેકરું કથન કરનારો જે
નય છે તેને વ્યવહારનય કહે છે અથવા સામાન્યનો અપલાપ કરનારો જે
નય છે તેને વ્યવહારનય કહે છે અથવા વિશેષોનો આધાર લઈને વસ્તુને
વ્યવહારપથમાં લાવનારો જે નય છે તેને વ્યવહારનય કહે છે.

કથું પણ છે કે “ વ્યવહરણં વ્યવહરણ ” इत्यादि—

सोऽयं व्यवहारः संग्रहेण गोचरीकृतान् सत्त्वादिरूपानर्थान् स्वीकृत्यैव विशेषान् गृह्णाति । यथा—यत्सत् तद् द्रव्यं पर्यायो वा, इत्यादि । अयं भावः—व्यवहारनयो हि विशेषप्रतिपादनपरः । ततश्च संग्रहनयेन 'सत्' इत्युक्ते व्यवहारनयो विशेषानेव घटपटादीन् प्रतिपद्यते, तेषामेव व्यवहारप्रयोजकत्वात्, न तु तदतिरिक्तं सामान्यम्, तस्य व्यवहारायोग्यत्वादिति । तथा च—किं सामान्यं विशेषेभ्यो भिन्नमभिन्नं वा स्यात् ? यदि भिन्नं तर्हि विनापि विशेषानुपलभ्येत ?

यह व्यवहार नय संग्रह नय के द्वारा विषयभूत किये गये सत्ता-दिरूप अर्थों को स्वीकार करके ही विशेषों को ग्रहण करता है। जैसे—जो सत् है वह द्रव्य है या पर्याय है ? इत्यादि—व्यवहार नय विशेष के प्रतिपादन करने में तत्पर होता है, अतः जब संग्रह नय यह सत् है ऐसा कहता है—तब व्यवहार नय उससे पूछता है—सत् कौन है—द्रव्य है या पर्याय ? द्रव्यत्व सामान्य या पर्याय सामान्य से व्यवहार चलता नहीं है—व्यवहार तो विशेष से चलता है, अतः व्यवहार चलाने के लिये घट पटादिरूप विशेष पदार्थ मानना चाहिये सामान्य तो व्यवहार के अयोग्य हैं । तथा—सामान्य विशेषों से भिन्न है या अभिन्न है ? यदि विशेषों से सामान्य भिन्न है ऐसा कहा जावे—तो विशेषों के विना भी सामान्य की उपलब्धि होनी चाहिये, परन्तु ऐसा होता नहीं है, यदि सामान्य विशेषों से अभिन्न है ऐसा

आ व्यवहारनय संग्रहनय द्वारा विषयभूत करवाभां आवेदा सत्तादि रूप अर्थानि स्वीकार करीने ज विशेषाने ग्रहण करे छे, जेभके आ नय जेवी हकीक करे छे के “ जे सत् छे ते द्रव्य छे के पर्याय छे ? ” इत्यादि।

व्यवहारनय विशेषानुं प्रतिपादन करवाने तत्पर रहै छे, तेथी ज्यारे संग्रहनय “ आ सत् छे ” जेपुं प्रतिपादन करे छे, त्यारे व्यवहारनय (ते नयवादी) जेवी हकीक करे छे के “ सत् केणु छे—द्रव्य सत् छे के पर्याय सत् छे ? ”

द्रव्यत्व सामान्य के पर्याय सामान्य वडे व्यवहार आलतो नथी, व्यवहार तो विशेष वडे आले छे, तेथी व्यवहार यज्ञाववाने भाटे घट, पटादि रूप विशेष पदार्थने मानवा जेधजे, सामान्य तो व्यवहारने योग्य नथी, अयोग्य छे तथा भीजे जेयो प्रश्न करवाभां आवे छे के—“ सामान्य विशेषे कस्तां भिन्न छे के अभिन्न छे ? जे जेहुं कडेवाभां आवे के सामान्य विशेषे कस्तां भिन्न छे, तो विशेषे विना पणु सामान्यनी उपलब्धि (प्राप्ति) थवी

ન ચોપલભ્યતે । અથામિન્નં તર્હિ વિશેષમાત્રં તત્ તદવ્યતિરિક્તત્વાત્ તત્સ્વરૂપ-
વદિતિ ।

તદુક્તમ્—“ ઉવલંભવ્વવહારા ભાવાઓ નિવિવિસેસભાવાઓ ।

તં નત્થિ સ્વપુષ્પમિવ સંતિ વિસેસા સપચ્ચક્કં ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—ઉપલમ્ભવ્યવહારાભાવાત્ નિવિશેષભાવાત્ ।

તન્નાસ્તિ સ્વપુષ્પમિવ સન્તિ વિશેષાઃ સ્વપ્રત્યક્ષમ્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

તથા—લોકસંવ્યવહારપરોડયં વ્યવહારનયઃ । લોકસંવ્યવહારો હિ પ્રાચુ-
ર્યૈવ ભવતિ યથા—કસ્યાંચિદ્ વાટિકાયાં જમ્બૂપનમાદીનાં વૃક્ષાણાં સદ્ભાવેડ્યા-

કહા જાવે તો વહ વિશેષોં સે અભિન્ન હોને કે કારણ વહ સામાન્ય
નહીં કહલા સકના હૈ—વહ તો વિશેષ કે સ્વરૂપ કી તરહ વિશેષ હી
કહલાવેગા કહા ભી હૈ—“ ઉવલંભવ્વવહારાભાવાઓ ” ઇત્યાદિ ।

વિશેષ રહિત સામાન્ય કી કહીં પર ભી ઉપલબ્ધિ નહીં હોતી હૈ,
તથા સામાન્ય સે કોઈં ભી વ્યવહાર સઘતા નહીં હૈ, અતઃ સામાન્ય
કી સ્વતંત્ર રૂપ સે સ્વ પુષ્પ કી તરહ કોઈં સત્તા નહીં હૈ, જો પ્રત્યક્ષ
મૈં દિસલાઈ પડતા હૈ વહ સ્વ વિશેષ હૈ, યહ નય જૈસે ભી લોક
વ્યવહાર ચલ સકતા હૈ ઉલ્લેખે અનુસાર વસ્તુ કા ભેદ પ્રભેદ પૂર્વક
વસ્તુકો વ્યવહાર પથ મૈં લાતા હૈ, ઇસી લિયે યહ નય લોક સંવ્યવહાર-
પરક માના ગયા હૈ, લોક કા વ્યવહાર અધિકતા કે અનુસાર ચલતા
હૈ, જૈસે કિસી વાટિકા મૈં જામુન, પનસ આદિ કે વૃક્ષોં કે હોને પર

લેખ્યે, પરન્તુ એવું બનતું નથી જે એવું કહેવામાં આવે કે સામાન્ય
વિશેષો કરતાં અલિપ્ત છે, તે તે વિશેષોથી અલિપ્ત હોવાને કારણે તેને
સામાન્ય કહી શકાય નહીં—તેને તે વિશેષના સ્વરૂપની જેમ વિશેષ જ કહેવાશે.

કહ્યું પણ છે કે “ ઉવલંભવ્વવહારાભાવાઓ ” ઇત્યાદિ.

વિશેષ રહિત સામાન્યની ઉપલબ્ધિ કોઈ પણ જગ્યાએ સંભવી શકતી
નથી તથા સામાન્ય વડે કોઈ પણ વ્યવહાર સાધી શકાતો નથી, તેથી આકાશ
પુષ્પની જેમ સામાન્યની સ્વતંત્ર રૂપે કોઈ પણ સત્તા જ સંભવી શકતી
નથી. જે પ્રત્યક્ષ દેખાય છે તે તે સઘણું વિશેષ રૂપ જ હોય છે. લોકોને
વ્યવહાર જેવી રીતે ચાલી શકે એવી જ રીતે આ નય વસ્તુનાં ભેદ પ્રભેદ-
પૂર્વક વસ્તુને વ્યવહારપથમાં લાવે છે. તેથી જ આ નયને લોક સંવ્યવહાર-
પરક માનવામાં આવ્યો છે. લોકવ્યવહાર અધિકતા અનુસાર ચાલે છે. જેમકે
કોઈ ઉપવનમાં જાંબૂ, કણ્ઠવિષ વગેરેનાં વૃક્ષો થોડાં થોડાં હોય અને આંબા

आणां बहुतरत्वेनाम्रवाटिकेति व्यवहारो भवति । यथा भ्रमरादीनां पञ्चवर्णात्म-
कत्वेऽपि कृष्णवर्णस्य बहुतरत्वात्तेनैव तत्र व्यवहारो भवति । अत-एवायं नयः
बहुतरपक्षपाती, तदतिरिक्तास्तु सतोऽपि मुञ्चति । तदुक्तम्—

“ बहुतरओत्ति य तं चियं, गमेइ संते वि सेसए सुयइ ।

संववहारपरतया, ववहारो लोगमिच्छंतो ॥ १ ॥ ”

छाया—बहुतरक इति च तमेव गमयति सतोऽपि शेषकान् मुञ्चति ?

संव्यवहारपरतया व्यवहारो लोकमिच्छन् ॥ १ ॥ इति तृतीयो नयः ३।

तथा—ऋजुसूत्रः—ऋजु=अतीतानागतकालपरित्यागाद् वर्तमानं वस्तु सूत्र-
यति=गमयतीति ऋजुसूत्रः । अत्रेदं बोध्यम्—अतीतानागतकालिकवस्तूनां योऽ-

भी यदि उसमें आम्र के वृक्ष अधिक हैं तो वह वाटिका उन आम्र वृक्षों
की अधिकता को लेकर “ आम्रवाटिका ” इस रूप से व्यवहृत होने
लगती है, तथा जैसे भ्रमर आदिकों में पांचों वर्णों का सद्भाव पाया
जाता है, परन्तु कृष्ण वर्ण की इसमें प्रचुरता रहती है तो लोग
“ भ्रमर काला है ” इस रूप से उसे व्यवहृत करते हैं, इसी प्रकार से
यह व्यवहारनय भी बहुतर में पक्षपात वाला होता है, बहुतर से
अतिरिक्तों को होने पर भी छोड़ देता है—कहा भी है—

“ बहुतर ओत्तियतं चिय ” इत्यादि ।

ऋजुसूत्रनय—अतीत और अनागत काल को छोड़कर जो केवल
वर्तमान क्षणालिङ्गित वस्तु का प्रतिपादन करता है उसे कहता है—वह
नय ऋजुसूत्रनय है, अतीत अनागतकाल सम्बन्धी वस्तु की मान्यता

वर्णों के डोय तो ते उपवनने ‘ आम्रवाटिका ’ कडेवाभां आवे छे. अ.म्र-
वृक्षोनी अधिकताने कारणे आ प्रकारने दोउव्यवहार आवे छे. वणी भ्रमर
आदिकेभां पांचे वर्णोनी सद्भाव डोवा छतां तेभां कृष्णवर्णोनी प्रचुरता
डोवाने कारणे दोउके कडे छे के ‘ भ्रमरने रंग काणे छे ’ आ प्रकारे आ
व्यवहार नय बहुतरने (अधिकतरने) पक्षपाती डोय छे. बहुतर सिवा-
धनाने सद्भाव डोवा छतां पणु आ नय तेमनी गणुना करतो नथी.

कहुं पणु छे के “ बहुतरओत्तिय त चिय ” इत्यादि—

ऋजु सूत्रनय—आ नय अतीत (भूतकालिन) अने अनागत (लविध्य)
काणनी वस्तुनुं प्रतिपादन करतो नथी, परन्तु मात्र वर्तमानकालिन वस्तुनुं के
प्रतिपादन करे छे. अतीत अने अनागतकाण सम्बन्धी वस्तुनी के मान्यता

भ्युपगमः, स एव कौटिल्यं, तत्परिहारेण ऋजु=वर्तमानकालिकमेव वस्तु सूत्रय-
तीति-ऋजुसूत्रः । अथवा-ऋजुश्रुतः' इतिपक्षे-ऋजु=तथाविधोपकारपरायणत्वात्
शेषज्ञानोपेक्षया प्राधान्यात् अकुटिलं श्रुतं=श्रुतज्ञानं यस्य सः । इति । अयं नयो
हि वर्तमानकालिकमेव वस्तु आत्मीयत्वेन मनुते । अतीतकालिकवस्तुनो विनष्ट-
त्वात्, अनागतस्य चानुत्पन्नत्वात् दर्शनपथागोचरतयाऽऽकाशकुसुमवत् तदसत्ता
मेव मनुते । तथा-भिन्नलिङ्गैर्मिन्नवचनैश्चामिधीयमानमप्येकं वस्तु मनुते । यथा

जो है वह इस नय की दृष्टि से कुटिलना है, इस कुटिलता के परि-
हार से जो केवल वर्तमान कालिक ही वस्तु है-ऐसी जो प्ररूपणा
करता है वही ऋजु सूत्रनय है, जिस क्षण में रसोईया रोटी पका रहा
हो उसी क्षण में वह पाचक है-अन्य समय में जब कि वह इस क्रिया
को नहीं करता हो तब वह इस नय की मान्यता के अनुसार पाचक
नहीं है । अथवा " ऋजुश्रुतः " इस संस्कृत छाया पक्ष में जिस का
ज्ञान-श्रुतज्ञान-तथाविध उपकार में परायण होने से शेष ज्ञानों की
अपेक्षा प्रधानरूप से अकुटिल है वह ऋजुश्रुत है, यह नय वर्तमान
कालिक ही वस्तु को आत्मीयरूप से मानता है, क्योंकि-अतीत
कालिक वस्तु को विनष्ट हो जाने के कारण एवं अनागत वस्तु को
अनुत्पन्न होने के कारण वह प्रत्यक्ष का विषय नहीं मानता है किन्तु
आकाश कुलुम की तरह उसकी असत्ता ही मानता है, तथा-भिन्न

छे, ते आ नयनी दृष्टिये कुटिलना छे आ कुटिलनाना परित्यागपूर्वक जे
वर्तमानकालिक वस्तुनी ज प्ररूपणा करे छे ते नयने ऋजु सूत्रनय कडे छे.
जेभके रसोये जे क्षण्णे रसोयं जनवतो डोय जे जे क्षण्णे तेने रसोये कडी
शक्य छे, अन्य समये ज्यारे ते रसोयं जनवतो न डोय त्यारे तेने
रसोये कडी शक्य नही, जेवी आ नयनी मान्यता छे. जे ऋजुसूत्रनी संस्कृत
छाया " ऋजुश्रुतः " लेव मां आवे तो ते पदने अर्थ आ प्रमाणे थाय छे—
जेतुं ज्ञान श्रुतज्ञान-तथाविध उपकारमां परायण्णे डोवाथी जाझीना ज्ञानोनी
अपेक्षाये प्रधानरूपे अकुटिल छे, तेतुं नाम ऋजुश्रुत छे. आ नय वर्तमान-
कालिक वस्तुने जे आत्मीय रूप माने छे, कारण्णे जे अतीतकालिक वस्तुने
विनष्ट थर्थ जेवने कारण्णे जे अविषयकालिक वस्तुने ते अनुत्पन्न डोवाने
कारण्णे आ नय प्रत्यक्षने विषय मानतो नथी, पण्णे आकाशपुष्पनी जेभ तेनी
असत्ता (अविद्यमानता) जे माने छे. तथा बुद्धा बुद्धा दिग्वाथा जेभ

तटः, तटी, तटम् इति । गुरुगुरव इति च । अयं लिङ्गभेदेन तटरूपस्य वस्तुनो वचनभेदेन गुरुरूपस्य च वस्तुनो नानात्वं न मनुते, किन्त्वेकमेव । तथा-नाम-स्थापनाद्रव्यभावभेदादिकं भिन्नं मनुते । नामादींश्चतुरोऽपि निक्षेपान् सामान्यतो मनुत इति भावः । तदुक्तम्—

“ तम्हा निजगं संपयकालीणं लिङ्गवयणभिन्नं पि ।

नामाइयभेय विहियं, पडिवज्जइ वत्थुउज्जुसुओ ॥ १ ॥ ”

छाया—उस्मात् निजकं साम्प्रतकालीनं लिङ्गवचनभिन्नमपि ।

नामादिभेदविहितं प्रतिपद्यते वस्तु ऋजु सूत्रः ॥ १ ॥ इति ।

इति चतुर्थो नयः ४ ।

लिङ्गवाले एवं भिन्न वचनवाले शब्दों का यह एक ही अर्थ मानता है जैसे पुल्लिङ्ग तट शब्द का जो अर्थ है वही अर्थ “ तटम् ” इस नपुंसक लिङ्गवाले तट शब्द का है, और वही अर्थ “ तटी ” इस स्त्री लिङ्ग वाले तटी शब्द का है, तथा—गुरु इस एक वचनवाले गुरु शब्द का जो अर्थ है—वही द्विवचनवाले और बहुवचनवाले गुरु शब्द का अर्थ है, इस तरह यह ऋजु सूत्रनय लिङ्ग के भेद से और वचन के भेद से उनके वाच्यार्थ में भिन्नार्थता नहीं मानता है, किन्तु इनमें एकार्थता ही मानता है, तथा—नाम इन्द्र, स्थापना इन्द्र, द्रव्य इन्द्र और भाव इन्द्र इन सब में यह इन्द्रादिरूप उनके अर्थ को भिन्न २ मानता है—नामादिक चारों ही निक्षेपों को यह सामान्य रूप से मानता है कहा भी है—“ तम्हा निजगं ” इत्यादि—

गुहा गुहा वचनवाणा शब्दोने आ नय ओक न अर्थ माने छे जेभके पुल्लिङ्ग “ तट ” शब्दोने जे अर्थ थाय छे ओन अर्थ नपुंसक लिङ्गना “ तटम् ” शब्दोने पणु थाय छे अने स्त्रीलिङ्गना “ तटी ” शब्दोने पणु ओ न अर्थ थाय छे. ओक वचनवाणा गुरु पदोने जे अर्थ थाय छे, ओ न अर्थ द्विवचन अने बहुवचनवाणा गुरु शब्दोने पणु थाय छे. आ प्रकारे आ नय लिङ्गना लेहथी तथा वचनना लेहथी तेमना वाच्यार्थमां भिन्नताने स्वीकारतो नथी, परन्तु तेमना वाच्यार्थमां ओकार्थताने न स्वीकार करे छे. तथा—नाम ईन्द्र, स्थापना ईन्द्र, द्रव्य ईन्द्र अने भाव ईन्द्र, ओ अध्यामां ईन्द्रादि इप तेमना अर्थाने भिन्न भिन्न माने छे—नामादिक चार निक्षेपाने न आ नय सामान्य इपे माने छे.

कथं पणु छे के “ तम्हा निजगं ” इत्यादि—

તથા—શબ્દઃ—શપનમ્, શપતિ અર્થ પ્રકટીકરોતિ વાડસૌ શબ્દઃ, શ્યયતે વસ્ત્વનેનેતિ વા શબ્દઃ । તસ્યાર્થપરિગ્રહાત્ અભેદોપચારાત્ નયોડપિ શબ્દ ઇવોચ્યતે, યથા—કૃતકૃત્વાદિલક્ષણહેત્વર્થપ્રતિપાદકં પદં હેતુરેવોચ્યતે ઇતિ ।

તદુક્તમ્—“ સવળં સવહ સ તેળં, વ સપ્પણ વત્થુ જં તઓ સદો ।

તસ્સત્થ પરિગ્ગહઓ, નઓવિ સદોત્તિ હેતુવ્વ ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—શપનં શપતિ સ તેન વા શ્યયતે વસ્તુ યત્તતઃ શબ્દઃ ।

તસ્યાર્થપરિગ્રહતો નયોડપિ શબ્દ ઇતિ હેતુરિવ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

અયં નયોહિ—ભાવઘટમેવ ઘટત્વેન મનુતે, તસ્યૈવ જલાહરણોપયોગિત્વાત્ । નામસ્થાપનાદ્રવ્યઘટાનાં તુ સત્તાં ન મનુતે, જલાહરણકાર્યાનુપયોગિત્વાત્ સ્વપુ-
ષ્ણવત્ । તથા—‘ તટસ્તટી તટમ્ ’ ઇત્યાદિ ભિન્નલિઙ્ગાન્, ‘ ગુરુર્ગુરવઃ ’ ઇત્યાદિ-

હસ ગાથા કા અર્થ પૂર્વોક્ત જૈસા હી હૈ, જો અર્થ કો પ્રકટ કરતા હૈ વહ અથવા—અર્થ જિસકે દ્વારા પ્રકટ ક્રિયા જાતા હૈ વહ શબ્દ હૈ, યહાં શબ્દ કૈ અર્થ કૈ પરિગ્રહસે ઇવં શબ્દ ઓર અર્થ મૈ અભેદ કૈ ઉપચાર સે નય કો હી શબ્દ રૂપ હી કહ દિયા ગયા હૈ, જૈસે કૃત-
કૃત્વ આદિ રૂપ હેતુ કૈ અર્થ કૈ પ્રતિપાદક પદકો હેતુ હી કહ દિયા જાતા હૈ । કહા હી હૈ—“ સવળં સવહ સ તેળં ” ઇત્યાદિ ।

યહ નય ભાવ ઘટ કો હી ઘટરૂપ સે માનતા હૈ, ક્યોંકિ નામ ઘટ, યા સ્થાપના ઘટ યા દ્રવ્ય ઘટ જલાહરણ આદિ ક્રિયા મૈ ઉપયોગી નહીં હોતે હૈ, જલાહરણ આદિ ક્રિયા મૈ ઉપયોગી તો કેવલ ભાવઘટ હી હોતા હૈ—અતઃ ભાવઘટ હી વાસ્તવિક ઘટ હૈ ઇસી હી માન્યતા હસ

આ ગાથાનો અર્થ ઉપરના કથનમાં જ સ્પષ્ટ થઈ ગય છે.

શબ્દનય—જે અર્થને પ્રકટ કરે છે તેને શબ્દ કહે છે. અથવા જેના જેના દ્વારા અર્થ પ્રકટ કરાય છે તેનું નામ શબ્દ છે. અહીં શબ્દના અર્થના પરિશ્લેષ વડે અને શબ્દ તથા અર્થમાં અભેદના ઉપચારની અપેક્ષાએ નયને પણ શબ્દ રૂપ જ કહી દેવામાં આવ્યો છે. જેમ કૃતકૃત્વ આદિ રૂપ હેતુના અર્થના પ્રતિપાદક પદને હેતુ જ કહી દેવામાં આવે છે, તેમ નયને પણ અહીં શબ્દ રૂપ કહી દેવામાં આવ્યો છે. કહ્યું પણ છે કે :

“ સવળં સવહ સ તેળં ” ઇત્યાદિ—

આ નય ભાવઘટને જ ઘટ રૂપ માને છે, કારણ કે નામઘટ અથવા સ્થાપનાઘટ અથવા દ્રવ્યઘટ પાણી ભાવવાની ક્રિયા આદિમાં ઉપયોગી થતો નથી. પાણી ભરી ભાવવાની ક્રિયા આદિમાં તો ભાવઘટ જ વાસ્તવિક ઘટ છે, એવી આ નયની માન્યતા છે.

भिन्नवचनांश्च शब्दान् एकत्वेन न मनुते, लिङ्गवचनभेदादेव-स्त्रीपुरुषवत्, कुटा वृक्ष इत्यादिवत् । तथा-‘ घटः कुटः कुम्भः ’ इति स्वपर्यायवाचकशब्दवाच्य-मेकमेवमनुते । तदुक्तम्—

“ तं चिय रिउसुत्तमयं, पच्चुप्पन्नं विसेसियतरं सो ।

इच्छइ भावघटंचिय, जं न उ नामादओ तिप्पि ॥ १ ॥ ”

छाया—तदेव ऋजुसूत्रमतं प्रत्युत्पन्नं विशेषिततरं सः ।

इच्छति भावघटमेव यत् न तु नामादींस्त्रीन् ॥ १ ॥ इति ।

इति पञ्चमो नयः ५।

नय की है, तथा—“ तटः तटी, तटम् ” इन शब्दों का यह नय एक अर्थ है ऐसा नहीं मानता है, किन्तु एक ही लिङ्गवाले पर्यायवाची शब्दों का एक अर्थ है ऐसा मानता है, भिन्न लिङ्गवाले पर्यायवाची शब्दों का अर्थ भिन्न २ है ऐसा मानता है, तथा एक लिङ्गवाले पर्यायवाची शब्द यदि भिन्न २ विभक्ति वाले हैं—तो इनका भी अर्थ भिन्न २ है, किन्तु यदि वे समानवचन वाले हैं तो इनका अर्थ एक है ऐसा कथन इस नय का है, तात्पर्य इस कथन का ऐसा है—कि भिन्न लिङ्गवाले, भिन्न वचन वाले जो शब्द है, उनका तो अर्थ भिन्न है, और जो शब्द समान लिङ्गवाले और समान वचनवाले है उनका अर्थ एक है, स्त्री पुरुष शब्दों में लिङ्ग भेद से भिन्नता है और “ कुटा वृक्षः ” इन में वचन भेद से भिन्नता है, परन्तु घटः कुम्भः, कुटः ” इन में

तथा—“ तट. तटी, तटम् ” आ त्रय्ये लुहा लुहा लिङ्गवाणा शब्दोने ओक ज अर्थ थाय छे, ओवुं आ नय मानतो नथी, परन्तु आ नय ओवुं माने छे के ओक ज लिङ्गवाणा पर्यायवाची शब्दोने ओक ज अर्थ थाय छे, अने लुहां लुहां लिङ्गवाणा पर्यायवाची शब्दोने लुहो लुहो अर्थ थाय छे, वणी आ नय ओवुं माने छे के ओक ज लिङ्गवाणा पर्यायवाची शब्दो ने लुही लुही विभक्तिवाणा होय, तो तेमने अर्थ लुहो लुहो थाय छे, परन्तु ने तेओ समान वचनवाणा होय, तो तेमने अर्थ ओक ज थाय छे. आ कथनने लावार्थ नीचे प्रभाणे छे—

○ लुहा लुहा लिङ्गवाणा अने लुहा लुहा वचनवाणा जे शब्दो छे तेमने अर्थ तो लुहो लुहो ज थाय छे, परन्तु समान लिङ्गवाणा अने समान वचनवाणा शब्दोने अर्थ समान ज थाय छे. “ स्त्री अने पुरुष ” आ जे शब्दोमां लिङ्गभेदने कारणे लिङ्गता छे, परन्तु “ घटः, कुम्भः, कुटः ” आ त्रये पदो समान लिङ्गवाणा अने समान वचनवाणा होवाथी तेमना अर्थमां

તથા—સમભિરૂઢઃ—પર્યાયશબ્દેષુ નિરુક્તિભેદેન ભિન્નમર્થં સમભિરોહતિ
 યઃ સ સમભિરૂઢઃ, નાનાર્થેષુ નાનાસંજ્ઞાસમભિરોહણપરો નયવિશેષ इत्यર્થઃ ।
 ઉક્તં ચ—“ જં જં સન્નં ભાસઈ, તં તં ચિય સમભિરોહઈ જમ્હા ।

સન્નંતરત્થ વિમુહો, તઓ નઓ સમભિરૂહોત્તિ ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—યાં યાં સંજ્ઞાં ભાષતે તાં તામેવ સમભિરોહતિ યસ્માત્ ।

સંજ્ઞાન્તરસ્થ વિમુલ્લસ્તતો નયઃ સમભિરૂઢ इતિ ॥ ૧ ॥ इતિ ।

અયં નયો હિ ઘટપટાદિવત્ ઘટકુટાદીન્ શબ્દાન્ ભિન્નપ્રવૃત્તિનિમિત્તત્વાત્
 ભિન્નાર્થગોચરાન્ મન્યતે । અયં ભાવઃ—‘ ઘટ ’ શબ્દસ્ય ‘ ઘટ વેષ્ટાયામ્ ’ इતિ

કોઈ ભિન્નતા નહીં છે, કયોંકિ યે સમાન લિંગવાલે ઓર સમાન વચન-
 વાલે શબ્દ છે । કહા ઓ છે—“ તં ચિય રિઝ સુત્તમયં ” इत्यादि—

હમ પ્રકાર કે સ્વરૂપવાલા યહ ૫ વાં નય છે । જૈસે કિ સમાન
 લિંગવાલે ઓર સમાન વચન વાલે શબ્દોં મેં એકતા કા પ્રતિપાદન શબ્દ
 નય કરતા છે—ઠીક હસસે વિપરીત કથન સમભિરૂઢ નયકા છે હસ
 નય કા એસા કહના છે કિ નિરુક્તિ કે ભેદ સે સમાન લિંગવાલે ઓર
 સમાન વચનવાલે શબ્દોં મેં ઓ ભિન્નતા છે જિતને શબ્દ છે ઉતને હી
 ઉનકે અર્થ હેં—એસા હી કથન હસ નય કા છે, કહા ઓ છે—

“ જં જં સન્નં ભાસઈ ” इत्यादि—

યહ નય ઘટ પટ આદિ શબ્દોં કી તરહ ઘટ કુટ આદિ શબ્દોં
 કો ઓ ભિન્ન ૨ પ્રવૃત્તિ કે નિમિત્તવાલે હોને સે ભિન્ન ૨ અર્થવાલે

કોઈ ભિન્નતા નથી. “ કુટાઃ અને વૃક્ષઃ ” આ ઓ પદોના અર્થમાં વચનલેહને
 કારણે ભિન્નતા છે. કહું પશુ છે કે :

“ તં ચિય રિઝ સુત્તમયં ” इत्यादि—

આ પ્રકારના સ્વરૂપવાળો આ પાંચમો નય છે.

સમાન લિંગ (ભતિ) વાળા અને સમાન વચનવાળા શબ્દોમાં એકતા
 (અભિન્નતા) તું પ્રતિપાદન કરનારો શબ્દનય છે.

સમભિરૂઢ નય—શબ્દનય કરતાં વિપરીત માન્યતાવાળો સમભિરૂઢ નય
 આ નયની એવી માન્યતા છે કે નિરુક્તિના લેહની અપેક્ષાએ સમાન લિંગ-
 વાળા અને સમાન વચનવાળા શબ્દોમાં પણ ભિન્નતા હોય છે—જેટલા શબ્દ
 છે એટલા જ તેમના અર્થ છે, એવું આ નય પ્રતિપાદન કરે છે.

કહું પશુ છે કે “ જં જં સન્નં ભાસઈ ” इत्यादि—

આ નય, ઘટ, પટ આદિ શબ્દોની જેમ ઘટ, કુટ આદિ શબ્દોને પણ
 જુદા જુદા અર્થવાળા માને છે, કારણ કે ઘટ, કુટ આદિ શબ્દો જુદી જુદી

घातोर्निष्पन्नत्वाद् विशिष्टचेष्टावत्त्वं प्रवृत्तिनिमित्तम्, ' कुट ' शब्दस्य ' कुट कौटिल्ये ' इति धातोर्निष्पन्नत्वात् कौटिल्यं प्रवृत्तिनिमित्तम्, इति प्रवृत्तिनिमित्त-भेदात् ' घटोऽन्यः कुटोऽप्यन्य एव ' इति समभिरूढनयो मन्यते इति । इति षष्ठो नयः ६।

तथा—एवम्भूतः—यत्क्रियाविशिष्टोऽर्थः शब्देनोच्यते तां क्रियां कुर्वद् वस्त्वेवम्भूतम् उच्यते, तत्प्रतिपादको नयोऽप्येवम्भूतः । अयं भावः—घटते=

मानता है, उसका कहना है कि घट और कुट इनका एक अर्थ नहीं होता है—क्योंकि " घट " यह शब्द पदार्थ में तब ही व्यवहृत हो सकता है—कि जब वह घट अर्थ विशेष चेष्टावाला होता है अतः घट अर्थ में " घट शब्द " की प्रवृत्ति का निमित्त उसमें विशिष्ट चेष्टावत्ता है । तथा—घट अर्थ में कुट शब्द की प्रवृत्ति तब ही हो सकती है कि जब वह घट कुटिलता संग्रह होता है, चेष्टार्थक घट धातु से घट शब्द बनता है और " कौटिल्यार्थक कुट धातु से कुट शब्द बनता है, इसलिये घट कुट शब्द की प्रवृत्ति के निमित्त में जब भेद है तो उनके अर्थों में भी भेद है, अतः घट शब्द का अर्थ भिन्न है और कुट शब्द का अर्थ भिन्न है, ६ तथा—जिस क्रिया से विशिष्ट वस्तु जिस शब्द के द्वारा कही जाती है उस क्रिया को करती हुई वस्तु एवम्भूत कहलाती है, इस वस्तु का प्रतिपादक जो नय है वह नय भी एवम्भूत है, यह नय ऐसा कहता है कि जब घट स्त्री

' प्रवृत्तिना निमित्तवाणा डोय छे. आ नय अेवुं प्रतिपादन करे छे के ' घट ' अने ' कुट ' आ अने पदो अेक ज अर्थाना वाचक नथी, कारण के घट नामना पदार्थमां घट शब्दने व्यवहार त्यारे ज थर् शके छे के न्यारे ते घट अर्थ विशेष अेष्टावाणो डोय छे. तेथी घट अर्थमां ' घट शब्द ' नी प्रवृत्तिनुं निमित्त तेमां विशिष्ट अेष्टावत्ता छे. तथा घट अर्थमां कुट शब्दनी प्रवृत्ति त्यारे ज डोय शके छे के न्यारे ते घट कुटिलता संपन्न डोय छे. अेष्टार्थक ' वद् ' धातुमांथी ' घट ' शब्द अने छे अने कौटिल्यार्थक ' कुट ' धातुमांथी ' कुट ' शब्द अने छे. आ रीते घट अने कुट शब्दानी प्रवृत्तिना निमित्तमां लेह डोवाने कारणे तेमना अर्थोमां पणु लेह छे. ते कारणे घट शब्दने अर्थ कुट शब्दना अर्थ करतां भिन्न थाय छे.

अेवम्भूत नय—जे क्रियाथी युक्त वस्तुनुं जे शब्द द्वारा कथन थाय छे, ते क्रिया करती वस्तुने अेवम्भूत कडेवाय छे. आ वस्तुनुं प्रतिपादन करनारे जे नय छे तेने अेवम्भूत नय कडे छे. आ नय अेवुं कडे छे के न्यारे

योषिन्मस्तकाद्याखुदः संखेष्टते इति घटः, इति योषिन्मस्तकारोहणपूर्वकं चेष्टा-
वान इति घटशब्दार्थः । ततश्च यथा शब्दार्थस्तथाभूत एव पदार्थः सन्, अन्यथा-
भूतस्त्वसन्नित्ययं नयो मनुते ! एवं चायं नयो विशेषेण शब्दार्थपरो भवति ।
तदुक्तम्—

“ एवं जहसदत्थो, संतो भूभो तयऽन्नहाऽभूभो ।

तेणेवंभूयनभो, सदत्थपरो विसेसेण ॥ १ ॥ ”

छाया—एवं यथा शब्दार्थः सन् भूतः, ततोऽन्यथा अभूतः ।

तेन एवम्भूतनयः शब्दार्थपरो विशेषेण ॥ १ ॥ इति ।

इति सप्तमो नयः ७।

एते सप्तापि नयाः निरपेक्षा । प्रिथयानया भवन्ति, सापेक्षास्तु सन्नयाः ।

के मस्तक पर आरोहण रूप चेष्टा वाला होता है तभी वह घट शब्द
का वाच्य होता है, अतः जैसा घट का अर्थ है उसी अर्थवाली यदि
वह वस्तु है—तो ही वह उस शब्द के द्वारा कही जा सकती है—उस
शब्द का वह वाच्य हो सकती है—इसके विना नहीं हो सकती है, इस
तरह से यह नय जिस शब्द का जिस क्रिया रूप अर्थ है उस क्रिया
से परिणत समय में ही उस शब्द का अर्थ हो सकता है—अन्य समय
में नहीं, कहा भी है—“ एवं जह सदत्थो ” इत्यादि ।

इस प्रकार के स्वरूपवाला यह सातवां नय है ७ ये सातों ही नय
जब अपने विषय के कथन करने में निरपेक्ष होते हैं—अन्यनयों के
विषयों का खण्डन करते हैं—और अपने ही विषय का प्रतिपादन

घट (घडा) कीना मस्तक पर आरोहण रूप चेष्टावाणो डोय छे त्यारे न
ते घट शब्दना वाच्य रूप डोय शके छे. तेथी जेवो पदना अर्थ डोय,
ओवा न अर्थवाणी जे ते वस्तु डोय, तो न तेने ओ शब्द द्वारा कही शक्य
छे—ते शब्दना ते वाच्य डोय शके छे. तेना विना ते शब्दना ते वाच्य डोय
शकती नथी. आ प्रकारे जे शब्दना जे क्रिया रूप अर्थ छे, ते क्रियाथी परि-
णत समयमां न ते शब्दना अर्थ थय शके छे, अन्य समयमां थय शकतो
नथी. कहुं पणु छे के “ एवं जह सदत्थो ” इत्यादि—

आ प्रकारना स्वरूपवाणो आ सातमो नय छे.

आ साते नथे न्यारे पोताना विषयनुं कथन करवाभां निरपेक्ष डोय
छे—अन्य नथेना विषयनुं अंउन करे छे अने पोताना न विषयनुं प्रतिपादन

ननु प्रत्येकं नयो मिथ्या, तर्हि तेषां समूहोऽपि मिथ्यैव भवेत्, न हि गर्दभानां समूहोऽश्वो भवति, ततश्च परस्परापेक्षा नयाः सन्नया भवन्तीति यदुक्तं तत्कथं संगच्छेत ? इति चेत्, आह—

अस्माकं मते नयानां मिथ्यात्वमेकान्तेन चाङ्गीक्रियते इति निरपेक्षतावस्थायां मिथ्याभूता अपि नयाः सापेक्षतावस्थायां सन्नया भवन्ति ।

तदुक्तम्—“ मिथ्यासमूहो मिथ्याचेन्न मिथ्यैकान्तताऽस्ति नः ।

निरपेक्षा नया मिथ्या, सापेक्षा अर्थसाधकाः ” ॥१॥ इति ।

इति न कश्चिद्दोष इति ॥ सू० १३ ॥

यथा शतसंख्यका असंख्यका वा नयाः सप्तस्वेव मूलनयेष्वन्तर्भवन्ति, तथैव वक्तृविशेषात् असंख्येयाः स्वरा अपि सप्तसु स्वरेष्वन्तर्भवन्तीति सप्त स्वरान् प्ररूपयति—

मूलम्—सत्त सरा पणत्ता, तं जहा—

सजे १, रिसभे २, गंधारे ३, मज्जिंमे ४ पंचमै ५ सरै ।

धेवए ६ च्चैव णिसाए ७ सरा सत्त वियाहिया ॥ १ ॥

करते हैं—तब एकान्त प्रतिपादक होने से—ये मिथ्या कहलाते हैं, अर्थात् सापेक्षवाद में ये नय सम्यक् हैं और निरपेक्षवाद में ये नय मिथ्या होते हैं।

शंका—जब निरपेक्षता में मिथ्या ये नय कहे गये हैं—तो फिर सापेक्षावस्था में ये नय मिथ्या नय नहीं कहे जावेंगे ?

उ०—घात तो ठीक है, पर हमारे मत में नयों को एकान्तरूप से मिथ्यारूप नहीं कहा गया है, इस तरह वे निरपेक्षावस्था में मिथ्यारूप होने पर भी सापेक्षावस्था में सम्यक् रूप कहे गये हैं । कहा भी है—

“ मिथ्या समूहो मिथ्या, चेत् ” इत्यादि । सू० १३

करे छै, त्थारे ओकान्त प्रतिपादक डोवाने कारणे मिथ्या कडेवाय छे. ओटले सापेक्षवादमां ते नये सम्यक् गणाय छे अने निरपेक्षवादमां तेमने मिथ्या गणवांमां आवे छे.

शंका—जे निरपेक्षावस्थांमां आ नयेने मिथ्या कडेवांमां आंवा छे, तो सापेक्षावस्थांमां पणु आ नयेने मिथ्या शा भाटे न कडेवाय ?

उत्तर—जेन सिद्धातोअे नयेने ओकान्त रूपे मिथ्यारूप कइया नथी. आ कारणे निरपेक्षावस्थांमां मिथ्यारूप डोवा छतां पणु सापेक्षावस्थांमां तेमने सम्यक् रूप न कइया छे कहुं पणु छे के :

“ मिथ्या समूहो मिथ्याचेत् ” इत्यादि. ॥ सू. १३ ॥

एषसि षं सत्तण्हं सराणं सत्त सरट्टाणा पण्णत्ता तं जहा—
सज्जं तु अग्गजिब्भंए, उरेण रिसभं सरं ।

कंटुग्गएण गंधारं, मज्झजिब्भाए मज्झिमं ॥ २ ॥

णासाए पंचमं बूया दंतोट्टेण य धेवयं ।

मुद्धाणेण य णेसायं, सरट्टाणा वियाहिया ॥ ३ ॥

सत्त सरा जीव निस्सिया पण्णत्ता, तं जहा—

सज्जं रवइ मऊरो, कुक्कुडो रिसहं सरं ।

हंसो णदइ गंधारं, मज्झिमं तु गवेलगा ॥ ४ ॥

अह कुसुमसंभवे काले कोइला, पंचमं सरं ।

छट्टं च सारसा कौंचा, णिसायं सत्तमं गया ॥ ५ ॥

त्त सरा अजीवनिस्सिया पण्णत्ता, तं जहा—

सज्जं रवइ मुइंगो, गोमुही रिसहं सरं ।

संखो णदइ गंधारं, मज्झिमं पुण ज्जल्लरी ॥ ६ ॥

चउचलण पइट्टाणा, गोहिया पंचमं सरं ।

आडंबरो रेवइयं, महाभेरी य सत्तमं ॥ ७ ॥

एषसि षं सत्तसराणं सत्त सरलक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—

सज्जेण लभए वित्तिं, कयं च ण विणस्सइ ।

गावो मित्ता य, पुत्ता य, णारीणं चैव बल्लहो ॥ ८ ॥

रिसभेण उ एसज्जं, सेणावच्चं धणाणि य ।

वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सघणाणि य ॥ ९ ॥

गंधारे गीयजुक्तिष्णा, वज्जवित्ती कलाहिया ।

भवंति कङ्गो पण्णा, जे अन्ने सत्थपारगा ॥ १० ॥

मज्झिमस्सरसंपन्ना, भवंति सुहजीविणो ।

खायई पीयई देई, मज्झिमं सरमस्सिओ ॥ ११ ॥

पंचमस्सरसंपन्ना, भवंति पुढवीवई ।

सूरा संगहकत्तारो, अणैगगणणायगा ॥ १२ ॥

धेवतस्सरसंपण्णा, भवंति कलहप्पिया ।

साउणिया वग्गुरिया, सोयरिया मच्छबंधाय ॥ १३ ॥

चंडाला मुट्टिया सेया, जे अन्ने पावकम्मिणो ।

गोघातगा य जे चोरा, णिसायं सरभस्सिया ॥ १४ ॥

एएसिं सत्तणं सराणं तओ गामा पण्णत्ता, तं जहा-सज्जगामे

१ मज्झिमगामे २ गंधारगामे ३ सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छ-

णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

भंगी १ कोरवीया २ हरी ३ य रयणी ४ य सारकंता ५ य ।

छ्ठी य सारसी ६ णाम, सुद्धसज्जा य सत्तमा ॥ १५ ॥

मज्झिमगामेस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

उत्तरमंदा १ रयणी २, उत्तरा ४ उत्तरासमा ४ ।

समोकता ५ य सोवीरा ६ अवभीरू ७ हवइ सत्तमा ॥१६॥

गंधारगामस्सणं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

णंदी य खुड्डिया पूरिमा य चउत्थी य सुद्धगंधारा ।

उत्तरगंधारावि य, पंचमिया हवइ मूच्छा उ ॥ १७ ॥

सुदृढतरमायामा, सा छट्टी णियमत्तो उ णायवा ।

अह उत्तरायता कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा ॥ १८ ॥

सत्त सराओ कओ, संभवन्ति गेयस्स का भवन्ति जोणी ? ।

इसमया उस्सासा कइ वा गेयस्स आगारा ? ॥ १९ ॥

सत्त सरा णाभीओ, भवन्ति गीयं च रुइयजोणीयं ।

कपादसमा ऊसासा, तिन्नि य गीयस्स आगारा ॥ २० ॥

आइमिउ आरभंता, समूव्वहंता य मज्झगारम्मि ।

अवसाणे तज्ज वित्तो, तिन्नि य गेयस्स आगारा ॥ २१ ॥

छद्दोसे अट्टगुणे तिन्नि य वित्ताइं दोय भणिईओ ।

जाणाहिइ सो णाहिइ, सुत्तिकिखओ रंगमज्झम्मि ॥ २२ ॥

भीयं दुयं रहस्सं, गायंतो मा य गाहि उत्तालं ।

काकस्सरमणुमासं, च होंति गेयस्स छद्दोसा ॥ २३ ॥

पुनं १ रत्तं २ च अलंकियं ३ च वत्तं ४ तथा अनिग्घुट्टं ५ ।

मधुरं ६ समं ८ सुललियं ८, अट्ट गुणा होंति गेयस्स ॥ २४ ॥

उरकंठसिरपसत्थं, च गिज्जई मउरिभिअपदब्धं ।

समतालपडुक्खेवं, सत्तसरसीहरं गीयं ॥ २५ ॥

निद्दोसं सारवंतं च, हेउजुत्तमलंकियं ।

उवणीयं सोवयारं च, मियं महुरमेव य ॥ २६ ॥

सममद्धसमं चेव, सबत्थ विसमं च जं ।

तिन्नि वित्तप्पयाराइं, चउत्थं नोवलब्भई ॥ २८ ॥

सक्या पाग्या चैव, दुहा भणिईओ आहिया ।

सरमंडलमि गिजंते, पसत्था इसिभासिया ॥ २८ ॥

केसी गायइ महुरं ?, केसी गायइ खरं च रुखं च ? ।

केसी गायइ चउरं ?, केसि विलंबं ? दुतं केसी ॥ २९ ॥

विस्तरं पुण केरिसी ? ॥

सामा गायइ महुरं, काली गायइ खरं च रुखं च ।

गोरी गायइ च उरं, काण विलंबं दुतं च अंधा ॥ ३० ॥

विस्तरं पुण पिंगला ॥

तंतिसमं तालसमं, पादसमं लयसमं गहसमं च ।

नीससिऊ ससियसमं, संचारसमं सरा सत्त ॥ ३१ ॥

सत्त सरा य तओ गामा, मुच्छणा एगवीसई ।

ताणा एगूण पण्णासा, समत्तं सरमंडलं ॥ ३२ ॥

इइ सरमंडलं समत्तं ॥ सू० १४ ॥

छाया—सप्त स्वराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

षड्जं ऋषभो गान्धारो मध्यमः पञ्चमः स्वरः ।

धैवतश्चैत्र निषादः स्वराः सप्त व्याख्याताः ॥ १ ॥

एतेषां खलु सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

षड्जं तु अग्रजिह्वया, उरसा ऋषभं स्वरम् ।

कण्ठोद्गतेन गान्धारं, मध्यजिह्वया मध्यमम् ॥ २ ॥

नासया पञ्चमं ब्रूयाद् दन्तोष्ठेन च धैवतम् ।

मूर्ध्ना च निषादं, स्वरस्थानानि व्याख्यातानि ॥ ३ ॥

सप्त स्वरा जीवनिश्रिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

षड्जं रीति मयूरः, कुक्कुटः ऋषभं स्वरम् ।

हंसो नदति गान्धारं, मध्यमं तु श्वेलकाः ॥ ४ ॥

अथ कुसुमसंभवे काले, कौकिलाः पञ्चमं स्वरम् ।

षष्ठं च सारसाः क्रौञ्चाः, निषादं सप्तमं गताः ॥ ५ ॥

सप्त स्वरा अजीवनिश्रिताः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—

पङ्कजं रौति मृदङ्गो, गोमुखी ऋषभं स्वरम् ।

शङ्खो नदति गन्धारं, मध्यमं पुनर्ङ्गल्लरी ॥ ६ ॥

चतुश्चरणप्रतिष्ठाना, गोधिका पञ्चमं स्वरम् ।

आडम्बरो धैवतिकं, मदाभेरी च सप्तमम् ॥ ७ ॥

एतेषां खलु सप्तस्वराणां समस्वरलक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

पङ्कजेन लभते वृत्ति, कृतं च न विनश्यति ।

गावो मित्राणि च पुत्राश्च, नारीणां चैव बल्लभः ॥ ८ ॥

ऋषभेण तु ऐश्वर्यं, सेनापत्यं धनानि च ।

बल्लं गन्धमलङ्कारं स्त्रियः शयनानि च ॥ ९ ॥

गान्धारे गीतयुक्तिज्ञाः, वर्यवृत्तयः कलाधिकाः ।

भवन्ति कृतिनः प्राज्ञाः, ये अन्ये शास्त्रारगाः ॥ १० ॥

मध्यमस्वरसम्पन्नाः, भवन्ति सुखजीविनः ।

खादति पिवति ददाति, मध्यमं स्वरमाश्रितः ॥ ११ ॥

पञ्चमस्वरसम्पन्ना भवन्ति पृथिवी पतयः ।

शूराः संग्रहकर्तारः, अनेकगणनायकाः ॥ १२ ॥

धैवतस्वरसम्पन्ना भवन्ति कलहप्रियाः ।

शकनिका वागुरिकाः, शौकरिका मत्स्यवन्धाश्च ॥ १३ ॥

चाण्डाला मौष्टिकाः सेयाः, ये अन्ये पापकर्माणः ।

गोघातकाश्च ये चौराः, निपादं स्वरमाश्रिताः ॥ १४ ॥

एतेषां सप्तानां स्वराणां त्रयो ग्रामाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पङ्कजग्रामः मध्यम-
ग्रामः गान्धारग्रामः पङ्कजग्रामस्य खलु सप्तमूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

भङ्गी कौरवीया, हरिश्च रजनी च सारकान्ता च ।

पण्ठी च सारसी नाम, शुद्धपङ्कजा च सप्तमी ॥ १५ ॥

मध्यमग्रामस्य खलु सप्त मूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

उत्तरमन्दा रजनी, उत्तरा उत्तरासमा ।

समवक्रान्ता च सौवीरा अभीरुर्भवति सप्तमी ॥ १६ ॥

गान्धारग्रामस्य खलु सप्त मूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

नन्दी च क्षुद्रिका पूरिमा च चतुर्थीव शुद्धगान्धारा ।

उत्तरगान्धारापि च, पञ्चमिका भवति मूर्च्छा तु ॥ १७ ॥

सुष्ठुतरायामा सा, पण्ठी नियमशस्तु ज्ञातव्या ।

अथ उत्तरायता कोटिमा च सा सप्तमी मूर्च्छा ॥ १८ ॥

सप्त स्वराः कृतः सम्भवन्ति ? , गेयस्य का भवन्ति योनयः ? ।
 कति समया उच्छ्वासाः ? , कति वा गेयस्य आकाराः ? ॥ १९ ॥
 सप्तस्वरा नाभितो भवन्ति, गीतं च रुदितयोनिकम् ।
 पादसमा उच्छ्वासाः, त्रयश्च गीतस्य आकाराः ॥ २० ॥
 आदिमृदुम् आरभमाणाः, समुद्रहन्तश्च मध्यकारे ।
 अवसाने क्षपयन्तः, त्रयश्च गेयस्य आकाराः ॥ २१ ॥
 षड् दोषान् अष्ट गुणान् , त्रीणि च वृत्तानि द्वे च भणित्नी ।
 ज्ञास्यति स गास्यति, सुशिक्षितो रङ्गमध्ये ॥ २२ ॥
 भीतं हुनं ह्रस्व गायन् , मा च गाय उत्तालम् ।
 काकस्वरमनुनासंच, भवन्ति गेयस्य षड् दोषाः ॥ २३ ॥
 पूर्णं रक्तं च अलङ्कृतं च, व्यक्तं तथा अविघुष्टम् ।
 मधुरं समं सुललितम् . अष्टगुणा भवन्ति गेयस्य ॥ २४ ॥
 उरः कण्ठ शिरः प्रशस्तं च, गीयते मृदुरिभितपदवद्धम् ।
 समतालप्रत्युक्षेपं, सप्तस्वरसीभरं गीतम् ॥ २५ ॥
 निर्दोषं सारवच्च, हेतुयुक्तमलङ्कृतम् ।
 उपनीतं सोपचारं च, मितं मधुरमेव च ॥ २६ ॥
 सममर्द्धसमं चैव, सर्वत्रविषमं च यत् ।
 त्रयो वृत्त प्रकाराश्चतुर्थं नोपलभ्यते ॥ २७ ॥
 संस्कृताः प्राकृताश्चैव द्विविधा भणितय आख्याताः ।
 स्वरमण्डले गीयन्ते, प्रशस्ता ऋषिभाषिताः ॥ २८ ॥
 कीदृशी गायति मधुरं ? , कीदृशी गायति खरं च रुक्षं च ? ।
 कीदृशी गायति चतुरं ? , कीदृशी विलम्बं ? द्रुतं कीदृशी ? ॥ २९ ॥

विस्वरं पुनः कीदृशी ? ॥

श्यामा गायति मधुरं, काली गायति खरं च रुक्षं च ।

गौरी गायति चतुरं, काणा विलम्बं द्रुतं च अन्धाः ॥ ३० ॥

विस्वरं पुनः पिङ्गला ॥

तन्त्रीसमं तालसमं, पादसमं लयसमं ग्रहसमं च ।

निःश्वसितोच्छ्वसितसमं, संचारसमं स्वराः सप्त ॥ ३१ ॥

सप्तस्वराश्च त्रयो ग्रामाः, मूर्च्छना एकविंशतिः ।

तानाश्च एकोनपञ्चाशत् , समाप्तं स्वरमण्डलम् ॥ ३२ ॥

इति स्वरमण्डलं समाप्तम् ॥ सू० १४ ॥

टीका—‘ सत्त सरा ’ इत्यादि—

स्वराः=ध्वनिविशेषाः सप्त प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—‘ षड्ज ’ इत्यादि ।

तत्र-षड्जः—षड्भ्यो नासिकाकण्ठोरस्तालुजिहादन्तेभ्यः स्थानेभ्यो जातः स्वरः ।
तदुक्तम्—“ नासां कण्ठमुरस्तालु, जिहां दन्तांश्च संश्रितः ।

षड्भिः संजायते यस्मात्, तस्मात् षड्ज इति स्मृतः ॥ १ ॥ इति ।

तथा-ऋषभः—ऋषभो=वृषभः, तद्वद् यो वर्तते स ऋषभः । तदुक्तम्—

जिस प्रकार शत संख्यक नय अथवा असंख्यक नय सातों ही मूलनयों में अन्तर्भूत हो जाते हैं उसी प्रकार से वक्ता विशेष की अपेक्षा से असंख्यात स्वर भी सातों स्वरों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं। यही प्रकट करनेके लिये अब सूत्रकार सात स्वरों का क्रयन करते हैं—

“ सत्त सरा पण्णत्ता ”—इत्यादि ।—सूत्र १४

टीकार्थ—ध्वनि विशेष रूप स्वर सात कहे गये हैं—जैसे—षड्ज १ ऋषभ २ गान्धार ३ मध्यम ४, पंचम ५ धैवत ६ और निषाद ७ ॥ १ इन में जो षड्ज स्वर होता है—वह नासिका, कंठ, उर, तालु, जिहा और दन्त इन ६ स्थानों से उत्पन्न होता है, कहा भी है—

“ नासां कंठ-मुरस्तालु ” इत्यादि ।

ऋषभ नाम बैल का है, इस बैल के स्वर के समान जो स्वर होता है वह ऋषभ स्वर है—कहा भी है—

जेवी रीते शत संख्यक नय अथवा असंख्यक नयनो उपयुक्ता सात भूणनयोभां समावेश थर्ध नय छे, जेज प्रमाणे वक्त विशेषनी अपेक्षाजे असंख्यात स्वरोनो पणु सात स्वरोभां ज समावेश थर्ध नय छे. जे ज वात प्रकट करवा माटे सूत्रकार हवे सात प्रकारना स्वरोनुं निरूपणु करे छे.

“ सत्त सरा पण्णत्ता ” इत्यादि—

टीकार्थ—ध्वनिविशेष रूप स्वरना सात प्रकार कहे छे—(१) षड्ज, (२) ऋषभ (३) गान्धार, (४) मध्यम, (५) पंचम, (६) धैवत अने (६) निषाद.

षड्ज स्वर नासिका, कंठ, उर, तालु, जभ अने दांत, आ ६ स्थानोभांथी उत्पन्न थाय छे.

कलुं पणु छे के “ नासां कंठमुरस्तालु ” इत्यादि.

जणदने ऋषभ कहे छे. ते ऋषभना सूर जेयो स्वर होय छे, तेने ऋषभस्वर कहे छे. कलुं पणु छे के “ वायुः समुत्थितो नाभेः ” इत्यादि.

“ वायुः समुत्थितो नाभेः कण्ठ शीर्षसमाहृतः ।

नर्दत्त्वृषभवद् यस्मात्तस्माद्दृषभ उच्यते ॥ १ ॥ इति ।

तथा—गान्धारः—गन्धप्रापकः स्वरविशेषः । तदुक्तम्—

“ वायुः समुत्थितो नाभे हृदि कण्ठे समाहृतः ।

नानागन्धवहः पुण्यो, गान्धारस्तेन हेतुना ” १ ॥ इति ।

तथा—मध्यमः—मध्ये कायस्य भवो मध्यमः । उक्तं च—

“ वायुः समुत्थितो नाभे रुरो हृदि समाहृतः ।

नाभिं प्राप्तो महानादो, मध्यमत्वं समश्नुते ॥ ” १ ॥ इति ।

“ वायुः समुत्थितो नाभेः ” इत्यादि ।

नाभिस्थान से उत्थित हुआ वायु जब कंठ एवं शीर्ष स्थान से टकराता है तब वह बेल की तरह आवाज करता है, इस कारण इसे ऋषभ कहा जाता है, गन्ध प्रापक जो स्वर विशेष होना है वह गन्धार कहा गया है, कहा भी है—“ वायुः समुत्थितो ” नाभेः इत्यादि ।

नाभि से उत्पन्न हुई वायु जब हृदय और कंठ में टकराती है, तब उस वायु में अनेक प्रकार की गन्ध होती है. इस कारण इस स्वर को गान्धार कहा गया है, जो स्वर शरीर के मध्य में उत्पन्न होता है वह मध्यम स्वर कहा गया है, कहा भी है—

“ वायुः समुत्थितो नाभेः ” इत्यादि ।

नाभि से उत्पन्न हुई वायु उरःस्थान और हृदय स्थानमें जब टकराती है तब वह नाभि स्थान को प्राप्त होकर बहुत बड़ी आवाज को

नाभि स्थानमांथी उत्थित थयेदो वायु न्यारे कंठ अने शीर्षस्थाननी साथे अथडाय छे, त्यारे ते अणदना जेदो अवाज करे छे, ते कारणे ते प्रकारना स्वरने ऋषभस्वर कडे छे.

गन्धप्रापक जे स्वर डेय छे तेने गान्धार कडे छे कहुं पणु छे के :

“ वायुः समुत्थितो नाभे ” इत्यादि.

नाभिमांथी उत्पन्न थयेदो वायु न्यारे हृदय अने कंठ साथे अथडाय छे, त्यारे ते वायुमां, अनेक प्रकारनी गन्ध डेय छे. ते कारणे ते स्वरने गान्धार स्वर कडे छे.

जे स्वर शरीरनी मध्यमांथी उत्पन्न थाय छे तेने मध्यमस्वर कडे छे कहुं पणु छे के “ वायुः समुत्थितो नाभे ” इत्यादि.

नाभिमांथी उत्पन्न थयेदो वायु न्यारे उरस्थान अने हृदयस्थान साथे अथडाय छे, त्यारे ते वायु नाभिस्थानने प्राप्त करीने धरो ज मोटो अवाज

यद्वा—“ तद्वदेवोत्थितो वायुररः कण्ठसमाहतः ।

नाभिं प्राप्नो महानादो मध्यस्थस्तेन मध्यमः ॥ १ ॥ ” इति ।

तथा—पञ्चमः—पञ्चानां=यद्वादिस्वरानुसारेण पञ्चसंख्यकानां स्वराणां पूरणः स्वरः पञ्चमः । यद्वा—यञ्चसु=नाभ्यादिस्थानेषु मातीति पञ्चमः । तदुक्तम्—

“ वायुः समुद्गतो नाभेरुहत्कण्ठमूर्धसु ।

विचरन् पञ्चमस्थानं प्राप्त्या पञ्चम उच्यते ॥ १ ॥ ” इति ।

तथा—धैवतः—धावन्त्यूर्ध्वमिति निरुक्तिवशाद् धैवतः ।

उत्पन्न करती है, इस आवाज का नाम मध्यम स्वर है—अथवा—

“ तद्वदेवोत्थितो वायुः ” इत्यादि ।

षड्ज आदि स्वरों के अनुसार पांच स्वरों का जो पूरण करने वाला स्वर है वह पंचम स्वर है, अथवा—नाभि आदि पांच स्थानों में जो स्वर समाजाता है वह पंचम स्वर है—कहा भी है—

“ वायुः समुद्गतो नाभेः ” इत्यादि ।

नाभि से उत्पन्न हुआ वायु जब उरः स्थान, हृदय स्थान, कण्ठ-स्थान, और मूर्धा स्थान में विचरता हुआ पांचवें स्थान पर आजाता है—तब वह पंचम स्वर कहा गया है, जो स्वर ऊपर की ओर दौड़ता है—वह धैवत है, तथा जिसमें अन्य स्वर विश्राम पाते हैं वह निषाद स्वर है, धैवत स्वर के विषय में ऐसा कहा गया है—

उत्पन्न करे છે. આ અવાજનું નામ મધ્યમસ્વર છે. અથવા —

“ તદ્વદેવોત્થિતો વાયુઃ ” ઇત્યાદિ

ષડ્જ આદિ સ્વરો પ્રમાણે પાંચ સ્વરોને પૂરણ કરનારો જે સ્વર છે તેને પંચમસ્વર કહે છે. અથવા નાભિ આદિ પાંચ સ્થાનોમાં જે સ્વર સમાઈ જાય છે તેને પંચમસ્વર કહે છે. કહ્યું પણ છે કે :

“ વાયુઃ સમુદ્ગતો નાભેઃ ” ઇત્યાદિ.

નાભિમાંથી ઉત્પન્ન થયેલો વાયુ ન્યારે ઉરસ્થાન, હૃદયસ્થાન, કંઠસ્થાન અને મૂર્ધાસ્થાનમાં વિચરતો વિચરતો પાંચમાં સ્થાન પર આવી જાય છે, ત્યારે તેને પંચમ સ્વર કહે છે.

જે સ્વર ઉપરની બાબુએ દોડે છે તેને ધૈવતસ્વર કહે છે. જે સ્વરમાં અન્ય સ્વરો વિશ્રામ પામે છે, તે સ્વરને નિષાદ સ્વર કહે છે.

ધૈવત વસ્વરના વિષયમાં એવું કહ્યું છે કે :

उक्तं च—“ गत्वा नाभेरधोभागं, वस्ति प्राप्योर्ध्वगः पुनः ।

धावन्निह च यो याति, कण्ठदेशं स धैवतः ॥ १ ॥ इति ।

तथा—निषादः—निषीदन्ति स्वरा यस्मिन् स निषादः । उक्तं च—

“ निषीदन्ति स्वरा यस्मिन्, निषादस्तेन हेतुना ।

सर्वाश्चाभिभवत्येष निषादस्तेन हेतुना ॥ १ ॥ ” इति ।

तदेवं सप्त=सप्तसंख्यकाः स्वराः=जीवाजीवाश्रया ध्वनिविशेषाः व्याख्याताः= तीर्थङ्करगणधरैः कथिता इति ।

ननु कार्यं कारणाधीनं, जिह्वा च स्वरस्य कारणम्, सा तु द्वीन्द्रियादित्रस-जीवानामसंख्येयत्वात् असंख्येया, ततश्च स्वराणामप्यसंख्येयत्वं वक्तव्यमिति सप्त-

“ गत्वा नाभेरधो भागं ” इत्यादि ।

नाभिके अधोभाग पर पहुँच कर और फिर वस्ति पर आकर जो वायु कण्ठदेश पर आता है वह धैवत है । निषाद स्वर के विषय में ऐसा कहा गया है—“ निषीदन्ति स्वरा यस्मिन् ” इत्यादि ।

जिसमें अन्य स्वर ठहरते हैं—विश्राम पाते हैं—और जो अन्य स्वरों को पराभूत कर देता है—वह निषाद स्वर है । इस प्रकार के ये सात स्वर जीव और अजीव के आश्रय भूत ध्वनि विशेष रूप होते हैं । ऐसा तीर्थकर एवं गणधरोंने कहा है ।

शंका—कारण के आधीन कार्य होता है इस नियम के अनुसार जिह्वा जब स्वर का कारण है तो फिर वे जिह्वाएँ दो इन्द्रिय आदि त्रस जीवों में की असंख्यातता होने के कारण, असंख्यात होनी है, अतः

“ गत्वा नाभेरधोभागं ” इत्यादि.

नाभिका-अधोभाग पर पहुँचने अने पछी वस्ति पर आवीने जे वायु कंठ प्रदेश पर आवीने जे स्वर उत्पन्न करे छे तेने धैवतस्वर कहे छे. निषाद स्वरना विषयमां एषु' कहुं छे के :

“ निषीदन्ति स्वरा यस्मिन् ” इत्यादि.

जेमां अन्य स्वरो विश्राम पाये छे अने जे अन्य स्वरोने पराभूत करी नाये छे, ते स्वरनु' नाम निषाद स्वर छे.

आ प्रकारना आ सात स्वर लुवो अने अलुवोमां आश्रयभूत ध्वनि-विशेष रूप डाय छे

शंका—कार्य कारणने आधीन डाय छे, आ नियम अनुसार जिह्वा जे स्वरमां कारणभूत डाय तो द्वीन्द्रिय आदि त्रस लुवो असंख्यात डायाने कारणे जिह्वाओ पक्षु असंख्यात न डायी नेछे जे जिह्वाओ असं-

સ્વરક્રયનં વિરુદ્ધયતે ? इति चेद् आह—

विशेषतो यद्यप्यसंख्याताः स्वरास्तथापि ते सामान्यतः सप्तस्वेवान्तर्भवन्ती-
ति-सप्तस्वरा उक्ताः, अथवा-स्थूलस्वरान् गीतं चाश्रित्य सप्त स्वरा उक्ता
इति न कश्चिद्विरोधः । उक्तं चात्र—

“ कज्जं करणायत्तं, जीहा य सरस्स सा असंखेज्जा ।

सरसंखप्रसंखेज्जा, करणस्सा संखयत्ताओ ॥ १ ॥

सत्त य सुत्तनिवद्धा, क्व न विरोहो ? तओ गुरू आह ।

सुत्ताणुवाइं सत्तवे, वायरगहणं च गेयं वा ॥ २ ॥ ”

छाया—कार्यं कारणायत्तं जिह्वा च स्वरस्य सा असंख्येया ।

स्वरसंख्या असंख्येया कारणस्या संख्येयत्वात् ॥ १ ॥

सप्त च सूत्रनिवद्धाः, कथं न विरोधः ? ततो गुरुराह ।

सूत्रानुयातिनः सर्वे वादग्रहणं च गेयं वा ॥ २ ॥ इति ।

इत्थं स्वरात्ताप्रतो निरूप्य सम्प्रति तत्स्थानान्याह—‘ एषसि णं सत्तण्हं सराणं ’
इत्यादि ।

स्वरो में भी असंख्यातता होनी चाहिये, फिर यहाँ स्वरो में सात
प्रकारता ही क्यों कही गई है !

उत्तर—शंका ठीक है, विशेष रूप से यद्यपि स्वर असंख्यात ही
है—तब भी वे सामान्य रूप से सात ही जो कहे गये हैं सो उसका
कारण यह है कि वे सब सात स्वरो में ही भन्तर्भूत हो जाते हैं । अथवा—
स्थूल स्वरो को और गीतों को आश्रित करके स्वर सात कहे गये हैं ।
इस तरह इस कथन में कोई विरोध नहीं आता है । कहा भी है—

“ कज्जं करणायत्तं ” इत्यादि ।

इन दोनों गाथाओं का अर्थ शंका और उत्तर के अनुसार की

ખ્યાત હોય તો સ્વરોમાં પણ અસંખ્યાતતા જ હોવી જોઈએ છતાં આપે
અહીં સ્વરોના અસંખ્યાત પ્રકારો કહેવાને બદલે સાત જ પ્રકારો શા
કારણે કહ્યા છે ?

ઉત્તર—વિશેષ રૂપે તો સ્વરો અસંખ્યાત જ છે, પરંતુ સામાન્ય રૂપે
તો સાત જ સ્વરો કહેવાનું કારણ એ છે કે તે બધાં સ્વરોનો તે સાત
સ્વરોમાં સમાવેશ થઈ જાય છે અથવા સ્થૂલ સ્વરોને અને ગીતોને આશ્રિત
કરીને સ્વર સાત જ કહ્યા છે. તેથી આ પ્રકારના કથનમાં કોઈ દોષને અવ-
કાશ નથી. કહ્યું પણ છે કે “ કજ્જં કરણાયત્તં ” ઇત્યાદિ.

एतेषां सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरस्थानानि प्रज्ञप्तानि । नाभेरुत्थितोऽविकारी स्वर आभोगतोऽनाभोगतो वा जिह्वादि स्थानं प्राप्य विशेषमासादयतीति स्वरस्थापकारकमिति तत् स्वरस्थानमुच्यते इति । तान्येव स्थानानि दर्शयति—
तद्यथा—षड्जं स्वरम् अग्रजिह्वा—अग्रभूता जिह्वाअग्रजिह्वा तथा—जिह्वाग्रभागेन ब्रूयात् । षड्जस्वरस्य स्थानं जिह्वाग्रभाग इत्यर्थः । तथा—उरसा=वक्षःस्थलेन ऋषभस्वरं ब्रूयात् । ऋषभस्वरस्य स्थानं वक्षस्थलं बोध्यम् । तथा—कण्ठोद्गतेन—कण्ठात् उद्गतम्=उद्गतिः—स्वरनिष्पत्ति हेतुभूता क्रिया, तेन गान्धारस्वरं ब्रूयात् । गान्धारस्वरस्य स्थानं कण्ठो बोध्यम् । तथा—मध्यजिह्वा—जिह्वाया मध्यो मध्य-जिह्वा तथा—मध्यमं स्वरं ब्रूयात् । जिह्वाया मध्यभागो मध्यमस्वरस्य स्थानं

है। इस प्रकार से स्वरों के नामों का निरूपण करके अब सूत्रकार उन स्वरों के स्थानों का कथन करते हैं—नाभि से उत्थित हुआ अविकारी स्वर आभोग अथवा अनाभोग से जिह्वा आदि स्थान को प्राप्त होकर विशेषता को प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह स्वर का उपकारक होता है—अतः उसे स्वर का स्थान कहा गया है, षड्ज स्वरको अग्रजिह्वा से बोलना चाहिये—अर्थात् स्वर का स्थान जिह्वा का अग्रभाग है, इसलिये षड्ज स्वर को जिह्वा के अग्रभाग से बोलना चाहिये, गान्धार स्वरका स्थान कण्ठ है, इसलिये गान्धार स्वर को कण्ठ से बोलना चाहिये जिह्वा का मध्य भाग मध्यम स्वर का स्थान है इसलिये मध्यम स्वर को जिह्वा के मध्यभाग से बोलना चाहिये ॥ २ ॥ पंचम स्वर का

आ अन्ने गाथाञ्जेनो अर्थं उपयुक्तं शंका अने उत्तरमां प्रकट थर्छ गये छे. आ प्रमाणे स्वरोनां नामोतुं निरूपण करीने हवे सूत्रकार ते स्वरोनां स्थानोतुं कथन करे छे—

नाभिमांथी उत्थित थयेत्वे (उत्पन्न थयेत्वे) अविकारी स्वर अलोग अथवा अनालोग पूर्वक जिह्वा आदि स्थानोञ्जे पडेयीने विशेषताने प्राप्त करी ले छे, तेथी ते स्वरने उपकारक थाय छे. तेथी तेने स्वरतुं स्थान कहुं छे. षड्ज स्वरने जिह्वाग्रमांथी जोलवो जेधञ्जे. ओटवे के स्वरतुं स्थान जिह्वानो अग्रभाग छे, तेथी षड्ज स्वरने जलना अग्रभाग वडे जोलवो जेधञ्जे. गन्धारस्वरतुं स्थान कंठ छे, तेथी गन्धार स्वरतुं उच्यारणु कंठमांथी थवुं जेधञ्जे. मध्यम स्वरतुं स्थान जलना मध्यभाग छे, तेथी जलना मध्य भागमांथी मध्यम स्वरतुं उच्यारणु थवुं जेधञ्जे. पंचमस्वरतुं स्थान नासिका छे तेथी नासिका वडे पंचमस्वरतुं उच्यारणु थवुं जेधञ्जे.

બોધ્યમ્ ॥ ૨ ॥ તથા-નાસા=નાસિકયા પञ્ચમં સ્વરં બ્રૂયાત્ । પञ્ચમસ્વરસ્ય નાસિકા સ્થાનં બોધ્યમ્ । તથા-દન્તોષ્ઠેન-દન્તોષ્ઠક્રિયયા ધૈવતં બ્રૂયાત્ । ધૈવત-સ્વરસ્ય સ્થાનં દન્તોષ્ઠં બોધ્યમ્ । તથા-મૂર્ધ્ના=મૂર્ધસ્થાનેન નિપાદં સ્વરં બ્રૂયાત્ । નિપાદસ્વરસ્ય સ્થાનં મૂર્ધાં બોધ્યમ્ । एतानि जिह्वाग्रभागादीनि सप्त स्वरस्थानानि भगवता व्याख्यातानि ।

નનુ પહ્જસ્વરોચ્ચારણે કણ્ઠાદીન્યપિ સ્થાનાન્યાશ્રીયન્તે અગ્રજિહ્વાચ સ્વરાન્ત-રેષ્વપ્યાશ્રીયતે, તત્કથં પહ્જાદિષ્વેકૈકસ્ય સ્વરસ્ય અગ્રજિહ્વાદિરૂપમેકૈકં સ્થાન-મુક્તમ્ : इति चेदाह-यद्यपि पङ्जादयः सर्वेऽपि स्वराः जिह्वाग्रभागादीनि सर्वा-ण्यपि स्थानान्यपेक्षन्ते, तथापि विशेषत एकैकस्वरो जिह्वाग्रभागादिष्वेकैकं स्थान-मादायैव व्यज्यते इति तत्तत्स्वरस्य तत्तत्स्थानमुक्तमिति ॥ ३ ॥

સ્થાન નાસિકા હૈ, પંચમ સ્વર કો નાસિકા સે ચોલના ચાહિયે, ધૈવત-સ્વર કા સ્થાન દંતોષ્ઠ હૈ, હસલિયે ધૈવત સ્વર કો દંતોષ્ઠ સે ચોલના ચાહિયે, નિપાદ સ્વર કા સ્થાન મૂર્ધાં હૈ, હસલિયે નિપાદ સ્વર કો મૂર્ધાં (મસ્તક) સે ચોલના ચાહિયે ॥ ૩ ॥ યે જિહ્વાગ્રભાગ આદિ સાત સ્થાન સાત સ્વરોં કે હૈ-એસા ભગવાન્ને કહા હૈ ।

શંકા—પહ્જ સ્વર કે ઉચ્ચારણ કરને મેં કણ્ઠ આદિ સ્થાનોં કા મી આશ્રય કિયા જાતા હૈ તથા અગ્રજિહ્વા રૂપ સ્થાન અન્ય સ્વરોં મેં મી આશ્રિત હોતા હૈ-તા ફિર પહ્જ આદિ સ્વરોં મેં સે એક સ્વર કા અગ્રજિહ્વાદિ રૂપ સ્થાન કૈસે કહા ગયા હૈ ?

ઉત્તર—યદ્યપિ પહ્જ આદિ સમસ્ત મી સ્વર જિહ્વાગ્ર ભાગ આદિ સમસ્ત સ્થાનોં કી અપેક્ષા કરતે હૈ, તથ મી વિશેષરૂપ સે એક એક

ધૈવત સ્વરનું સ્થાન દંતોષ્ઠ છે, તેથી ધૈવત સ્વરનું દંતોષ્ઠમાંથી ઉચ્ચારણ કરવું જોઈએ. નિપાદ સ્વરનું સ્થાન મૂર્ધાં (તાળવું) છે, તેથી તેનું ઉચ્ચારણ મૂર્ધામાંથી જ થવું જોઈએ.

સાત સ્વરોના જિહ્વાગ્રભાગ આદિ આ સાત સ્થાનો તીથ કર લગવાનોએ જ કહ્યા છે.

શંકા—પહ્જ સ્વરના ઉચ્ચારણમાં કંઠ આદિ સ્થાનોનો પણ આશ્રય લેવામાં આવે છે, તથા અગ્રજિહ્વા રૂપ સ્થાનનો અન્ય સ્વરોના ઉચ્ચારણમાં પણ આશ્રય લેવામાં આવે છે. છતાં પણ પહ્જ આદિ સ્વરોનું જિહ્વાગ્ર આદિ એક એક સ્થાન જ શા માટે કહેવમાં આવ્યું છે ?

ઉત્તર—જે કે પહ્જ આદિ સાતે સ્વરો જિહ્વાગ્રભાગ આદિ સમસ્ત સ્થાનોની અપેક્ષા રાખે છે, છતાં પણ પ્રત્યેક સ્વર વિશેષ રૂપે તે જિહ્વાગ્ર

इत्थं स्वरस्थानान्पुक्त्वा सम्प्रति ' को जीवः कं स्वरं ब्रूते ' इतिदर्शयति-
' सत्त सरा जीव निस्सिया ' इत्यादिना ' णिसायं सप्त भंगया ' इत्यन्तेन ।
अर्थः स्पष्टः । नवरम्-गवेलकाः=मेघाः । कुमुमसंभवे काले=वसन्तसमये ।

अथ यस्माद् यस्माद् वाधाद् यो यः स्वरो निर्गच्छति तद्दर्शयति-' सत्त सरा
अजीवनिस्सिया ' इत्यादिना ' महाभेरी य सत्तमं ' इत्यन्तेन । अर्थः स्पष्टः ।
नवरं-गोमुखी-' काहला ' इति नामकवाद्यविशेषः । चतुश्चरणप्रतिष्ठाना गोधिका-
चतुर्भिश्चरणैः प्रतिष्ठानं भुवि यस्याः सा तथाभूता गोधिका-गोधैव गोधिका-

स्वर जिह्वाग्रभाग आदि स्थानों में से एक एक स्थान को लेकर ही प्रकट होता है इसलिये प्रकट होने की अपेक्षा से उस उस स्वर का वह वह स्थान कहा गया है, इस प्रकार से स्वर स्थान प्रकट करके अब कौन जीव किस स्वर को बोलता है यह बात सूत्रकार प्रकट करते हैं-मयूर षड्ज स्वर को बोलता है, कुक्कूट-सुर्गा-ऋषभस्वर को बोलता है, हंस गान्धार स्वर को बोलता है, मेघ (घेठा)-मध्यम स्वर को बोलता है ॥ ४ ॥ वसन्त के समय कोयल पंचमस्वर को बोलती है, सारस धैवत स्वर को बोलता है, और कौंच सातवे निषाद स्वर को बोलता है ॥ ५ ॥ अब सूत्रकार जिस २ बाजों से जो २ स्वर निकलता है-उस २ बाजों का नाम प्रकट करते हैं-मृदङ्ग से षड्ज स्वर निकलता है. गोमुखी (काहला) से ऋषभ स्वर निकलता है, शंख से गान्धार स्वर निकलता है, झल्लरी से मध्यम स्वर निकलता है ॥ ६ ॥

ભાગ આદિ સ્થાનોમાંના કોઈ એક જ સ્થાનમાંથી જ પ્રકટ થાય છે તેથી પ્રકટ થવની અપેક્ષાએ તે પ્રત્યેક સ્વરનું ઉપર બતાવ્યા અનુસારનું જ સ્થાન સમજવું જોઈએ

આ પ્રમાણે સાતે સ્વરોનાં સ્થાન પ્રકટ કરીને હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે કયા કયા જીવો કયા કયા સ્વરનું ઉચ્ચારણ કરે છે—

મોર ષડ્જ સ્વરેમાં બોલે છે. કુકુટો ઋષભ સ્વરેમાં બોલે છે. હંસ ગાન્ધાર સ્વરે બોલે છે. ઘેટું મધ્યમ સ્વરે બોલે છે વસંતમાં કોયલ પંચમ સ્વરે બોલે છે સારસ ધૈવત સ્વરે બોલે અને કૌંચ પક્ષી નિષાદ સ્વરે બોલે છે.

કયા કયા વાજિત્રોમાંથી કયા કયા પ્રકારના સ્વરો નીકળે છે, તે હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે—

મૃદંગમાંથી ષડ્જ સ્વર નીકળે છે. ગોમુખીમાંથી ઋષભ સ્વર નીકળે છે, શંખમાંથી ગાન્ધાર સ્વર નીકળે છે, ઝાલરમાંથી મધ્યમ સ્વર નીકળે છે,

चर्मावनद्धा दर्दरिकेत्परनाम्ना प्रसिद्धा । आडस्वरः=पटहः । सप्तमं=निषा-
दम् । अत्रेदं बोध्यम्—यद्यपि मृदङ्गादिजनितेषु स्वरेषु नाभ्युरःकण्ठाद्युत्पद्यमानः
तारूपो व्युत्पत्त्यर्थो न घटते, तथापि मृदङ्गादिवाद्येभ्यः षड्जादिस्वरसदृशस्वरा
उत्पद्यन्ते, अत एव तेषां मृदङ्गाद्यजीवनिश्चितत्वमुक्तम् ।

अथैतेषां सप्तस्वराणां लक्षणान्याह—‘ एएसि णं सत्त सराणं ’ इत्यादिना
‘ णिसायं सरस्सिया ’ इत्यन्तेन सन्दर्भेण । तथाहि—एतेषां सप्तानां स्वराणां
सप्त स्वरलक्षणानि=तत्तत्फलप्रापकाणि स्वरतत्त्वानि प्रज्ञप्तानि=कथितानि ।
तान्येव फलत आह—‘ तद्यथा—षड्जेन लभते वृत्तिम् ’ इत्यादिभिः श्लोकैः ।
तत्र षड्जस्वरस्य फलमाह—षड्जेन स्वरेण जनो वृत्ति=जीविकां लभते । तथा—
षड्जस्वरवतो जनस्य कृतं कर्म विनष्टं न भवति, सफलमेव भवतीत्यर्थः । तस्य-
गात्रो मित्राणि पुत्राश्च भवन्ति । तथा स स्त्रीणां वल्लभः=प्रियश्च भवति ॥ ८ ॥

चमड़े से मढी हुई दर्दरिका से पंचमस्वर निकलता है, पटह से
धैवत स्वर निकलता है और महाभेरी से सप्तम निषाद स्वर निकलता
है ॥ ७ ॥ यहां ऐसा समझना चाहिये कि यद्यपि मृदङ्गादि जनित
स्वरों में नाभि, उरः आदि स्थानों से उत्पद्यमानता रूप व्युत्पत्तिलभ्य
अर्थ घटित नहीं होता है, फिर भी मृदङ्ग आदि वाद्यों से षड्ज आदि
स्वरों के जैसे स्वर उत्पन्न होते हैं इसलिये इन्हें मृदङ्गादिरूप अजीवों
से आश्रित कहा गया है । इस सात स्वरों के फल की अपेक्षा लक्षण
इस प्रकार से कहे गये हैं—षड्ज स्वर से मनुष्य आजीविका को प्राप्त
करता है, और षड्ज स्वरवाले मनुष्य का किया हुआ काम कभी भी
नष्ट नहीं होता है, किन्तु सफल ही होता है, उसके घर पर अनेक

आमडाथी मढेदी दर्दरिकाभांथी पंचम स्वर नीकणे छे, पटह (पडधम) भांथी
धैवत स्वर नीकणे छे अने महाभेरीभांथी निषाद स्वर नीकणे छे.

अहीं अबुं समज्जुं जेछ्छे के मृदंग आदिमां नासि, उर आदि
स्थानेना सद्भाव डोतो नथी. तेथी मृदंगादि अन्य स्वरोमां नासि, उर
आदि स्थानेभांथी उत्पद्यमानता इप व्युत्पत्तिस्तथ्य अर्थ घटित थतो नथी.
छतां पथु मृदंग आदि वाद्येभांथी षड्ज आदि स्वरोना जेवां स्वरो उत्पन्न
थाय छे, ते करणे तेमने मृदंगादि इप अश्रवणे आश्रित कडेवाभां आवेल छे.

डेवे सूत्रकार आ साते स्वरोना लक्षणानुं इणनी अपेक्षाजे निरूपण
करे छे—षड्ज स्वर वडे मनुष्य पोतानी आजीविका प्राप्त करे छे. षड्ज स्वर-
वाणा मनुष्य वडे करतुं काम कही निष्फल नथी—तेना काममां सद्भाव

ऋषभस्वरस्य फलमाह-ऋषभेण स्वरेण तु-ऐश्वर्यम्, सेनापत्यं=सेनापतित्वं, धनानि, वस्त्रगन्धम्=वस्त्राणि गन्धांश्च, अलङ्कार. स्त्रियः, शयनानि च लभते इति ॥ ९ ॥ गान्धारस्वरस्य फलमाह-गान्धारे=गान्धारस्वरे गीतयुक्तिज्ञाः=गीतयोजनायां कुशलाः-गान्धारस्वरगानकर्तार-इत्यर्थः, चर्यवृत्तयः-चर्या=श्रेष्ठा वृत्तिर्येषां ते तथा-श्रेष्ठ जीविकावन्तः, कलाधिकाः-कलाभिरधिकाः-कलाज्ञेषु प्रधानाश्च भवन्ति । तथा-काव्यः=काव्यकर्तारः, 'कृतिनः' इतिच्छायापक्षे-कर्तव्यशीलाः, प्राज्ञाः=सद्बोधाश्च भवन्ति । ये अन्ये=पूर्वोक्तिभ्यो गीतयुक्तिज्ञादिभ्यो ये मित्रा भवन्ति ते शास्त्रपारगाः=सकलशास्त्रनिष्णाता भवन्तीति ॥ १० ॥

गायें होती है और उसके अनेक मित्र होते हैं । पुत्रों से भी उसका घर शूना नहीं रहता है, वह स्त्रियों का प्यारा है ॥ ८ ॥ ऋषभ स्वर वाला मनुष्य ऐश्वर्य को प्राप्त करता है, वस्त्रों को प्राप्त करता है, सुगन्धित पदार्थों को प्राप्त करता है, अलङ्कारों को प्राप्त करना है, शयनों को सुन्दर २ पल्यङ्क आदि पदार्थों को-प्राप्त करता है, और वह सुन्दर २ स्त्रियों का बल्लभ (पति) भी होता है ॥ ९ ॥ गान्धार स्वर वाला मनुष्य गीतो की योजना करने में कुशल होता है, श्रेष्ठ आजीवि का वाला होता है । कलाओं के जानने वालों में प्रधान होता है । काव्य की रचना करने में कुशल मति वाला होता है-अथवा-कृति-कर्तव्य-शील होता है । सद्बोध संपन्न होता है, तथा-जो गीत युक्तिज्ञ आदि से भिन्न होता है तो ऐसा वह गान्धार स्वरवाला व्यक्ति सकल शास्त्रों का पूर्ण ज्ञाना होता है । १० ॥ " मध्यम " इत्यादि-जो मनुष्य

सङ्गता ७ प्राप्त थाय छे तेने घर अनेक गाथो डोय छे, तेने अनेक मित्रो डोय छे, तेनुं घर कही पणु पुत्रोथी रडिन डोतुं नथी. आ स्वरवाणो भाणुस स्त्रीओमां प्रिय थछ पडे छे.

ऋषभ स्वरवाणो मनुष्य ऐश्वर्य संपन्न डोय छे, ते सेनापतिना पहनी प्राप्ति करे छे, धन, वस्त्र, सुगन्धित पदार्थो, अलङ्कारो, सुन्दर पदङ्गो, सोझ आदि पदार्थोनी तेने प्राप्ति थाय छे, अने अनेक सुन्दर स्त्रीओने ते पुरुष पोतानी लार्या इये प्राप्त करे छे.

गान्धार स्वरवाणो मनुष्य गीतोतुं आयोजन करवामां निपुणु डोय छे, ते श्रेष्ठ आणुविका संपन्न डोय छे. कलानिपुणु पुरुषोमां ते अग्रस्थान प्राप्त करे छे, ते काव्यनी रचना करवामां निपुणु डोय छे, कर्तव्यशील डोय छे. सद्बोध संपन्न डोय छे. ते सामान्य कवि, गायक, कलाकार आदि करतां प्रतिलावाणो डोय छे अने सकल शास्त्रोने पूर्ण ज्ञाना डोय छे. मध्यम

મધ્યમસ્વરસ્ય ફલમાહ—તથા — મધ્યમસ્વરસમ્પન્નાસ્તુ સુખવીવિનઃ=સુખેન
 જીવિતું શીલા ભવન્તિ । સુખજીવિત્વમેવ પ્રકટયતિ—‘લાયઈ’ ઇત્યાદિના ।
 મધ્યમસ્વરમાશ્રિતો જનો હિ સ્વાદતિ=સુસ્વાદું ભોજનં મુહ્યતે, પિવતિ=દુग्ધાદિ-
 પાનં કરોતિ, દદાતિ=અન્યાનપિ ભોજયતિ પાયયતિ ચેતિ ॥ ૧ ॥ પञ્ચમસ્વરસ્ય
 ફલમાહ—પञ્ચમસ્વરસમ્પન્નાસ્તુ પૃથિવીપતયો ભવન્તિ, તથા—શૂરાઃ સંગ્રહકર્તારઃ
 અનેકગણનાયકાશ્ચ ભવન્તીતિ ॥ ૧૨ ॥ ધૈવતસ્વરસ્ય ફલમાહ—ધૈવતસ્વરસમ્પન્ના-
 સ્તુ કલહપ્રિયાઃ=કલેશકારકા ભવન્તિ । તથા—શાકુનિકાઃ—શકુનેન=શ્યેનેન
 ચરન્તિ=પક્ષિણાં વધાર્થં પર્યટન્તિ, શકુનાન્=પક્ષિણો ધ્વન્તિ વા શકુનિકાઃ=પક્ષિ-
 ઘાતકા લુબ્ધકવિશેષાઃ, વાગુરિકાઃ—વાગુરા=મૃગવન્ધની, તથા ચરન્તીતિ વાગુ-
 રિકઃ—હરિણઘાતકા લુબ્ધકવિશેષાઃ, શૌકરિકાઃ—શૂક્રેણ શૂક્રવધાર્થં ચરન્તિ,
 શૂક્રાન્ ધ્વન્તિ વા શૌકરિકાઃ—શૂક્રરવાતિનો લુબ્ધકવિશેષાઃ, તથા—મત્સ્ય-
 વન્ધાઃ=મત્સ્યઘાતિનશ્ચ ભવન્તીતિ ॥ ૧૩ ॥ નિપાદસ્વરસ્ય ફલમાહ—તથા—

મધ્યમ સ્વર સે સંપન્ન હોતે હૈં—વે સુખ પૂર્વક અપને જીવન કો યાપન
 કરને કે સ્વભાવ વાલે હોતે હૈં—જૈસે—વે સુસ્વાદુ ભોજન કરતે હૈં,
 દુગ્ધાદિ કા પાન કરતે હૈ, દૂસરોં કો મી અપને હી જૈસા ભોજન
 કરાતે હૈં ઓર અપને હી જૈસા દુગ્ધાદિકા પાન કરાતે હૈં ॥ ૧૧ ॥
 પંચમ સ્વર સે યુક્ત જો પ્રાણી હોતે હૈં—વે પૃથ્વીપતિ હોતે હૈં, શૂરવીર
 હોતે હૈં, સંગ્રહ શીલ હોતે હૈં, ઓર અનેક ગણોં કે નાયક હોતે હૈ ।
 ॥ ૧૨ ॥ જો મનુષ્ય ધૈવત સ્વર વાલે હોતે હૈં વે કલહપ્રિય હોતે હૈં,
 શિકારી હોતે હૈં, મૃગ કી વિશેષ રૂપ સે શિકાર કરને વાલા
 હોતે હૈં, શૂક્ર કી મી વે શિકાર ક્રિયા કરતે હૈં, ઓર મછલિયો કો
 મી માર ૨ કર લાતે રહતે હૈં । ॥ ૧૩ ॥ નિપાદ સ્વરવાલે જો મનુષ્ય

સ્વરવાળો મનુષ્ય સુખપૂર્વક પોતાના જીવનને વ્યતીત કરવાના સ્વભાવવાળો
 હોય છે. જેમકે તે સ્વાદિષ્ટ ભોજન કરાવનારો અને પોતાના જેવાં જ દૂધ
 આદિ પદાર્થોનું પાન કરાવનારો હોય છે.

જે માણસ પંચમ સ્વરથી યુક્ત હોય છે તે પૃથ્વીપતિ બને છે, શૂરવીર
 હોય છે, સંગ્રહશીલ હોય છે અને અનેકગણોના નાયક હોય છે.

જે માણસો ધૈવત સ્વરવાળા હોય છે તેઓ કલહપ્રિય હોય છે, શિકાર
 કરવાના શોખીન હોય છે. તેઓ સૂવરનો શિકાર પણ કરતા હોય છે અને
 માછલીઓને પણ મારી મારીને ખાનારા હોય છે.

ये चाण्डालाः=चण्डकर्माणः, मौष्टिकाः-मुष्टिः प्रहरणं येषां ते तथा, मुष्टिभिः प्रहरणशीला इत्यर्थः, तथा-मशलाः, सेयाः-अधमजातीया मनुष्याश्च सन्ति, एभ्योऽन्ये च ये पापकर्माणः=पापकर्मपरायणाः सन्ति, तथा च-ये 'गोघातकाः सन्ति, ये च चौराः सन्ति, ते सर्वे विषादस्वरमाश्रिता विज्ञेयाः ॥ १४ ॥ इति ।

अथैतेषां स्वराणां ग्रामान्, एकैकग्रामस्य मूर्च्छाश्च प्राह—'एवमि पं सत्तापहं सराणं तत्रो गामा पणत्ता ' इत्यादिना ' कोडिमाय सो सत्तमी मुच्छा'

होते हैं, वे चाण्डाल होते हैं-चण्ड कर्म करनेवाले होते हैं-मौष्टिक-मुष्टि से प्रहार करने के स्वभाववाले-होते हैं. सेय-अधम जाति के-होते हैं, तथा इनसे भी भिन्न जो पापकर्म करने में परायण होते हैं, गाय की हत्या करनेवाले होते हैं, और जो चोर-परधनहरण करनेवाले-होते हैं वे सप्त निषाद स्वरवाले होते हैं-ऐसा जानना चाहिये ॥ १४ ॥

अब सूत्रकार इन स्वरों के ग्रामों का और एक २ स्वर की मूर्च्छना का कथन करते हैं-इन सात स्वरों के तीन ग्राम कहे गये हैं-जैसे-षड्ज ग्राम १ मध्यम ग्राम २ और गान्धार ग्राम ३. इनमें षड्ज ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ कही गई हैं-जैसे-मङ्गी १, कवौरीया २, हरि ३, रजनी ४, सारकान्ता ५, सारसी ६ और शुद्ध षड्ज ७ ॥ १५ ॥

मध्यम ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ इस प्रकार से हैं-उत्तरमन्दा १ रजनी २ उत्तरा ३ उत्तरासभा ४, समवक्रान्ता ५ सौवीरा ६ और अभीरु ७ ॥ १६ ॥

निषाद स्वरवाणा मनुष्यो आंडाल डोय छे-अयंकरमां अयंकर कृत्य करनारा डोय छे, मौष्टिक (मुठ्ठी वडे प्रहार करनारा) डोय छे, सेय (अधम जातिना) डोय छे, तेओ जत जतना पापकर्मां करवाभां परायणु डोय छे, गौहत्या करनारा डोय छे, अने पारकाना धनतुं अपहरणु करनारा योर डोय छे. हुवे सूत्रकार आ स्वरांना आभोतुं अने प्रत्येक स्वरणी मूर्च्छनातुं निरूपणु करे छे—

आ सात स्वरांना नाम नीचे प्रमाणु छे—(१) षड्ज ग्राम, (२) मध्यम ग्राम अने (३) गान्धार ग्राम.

षड्ज ग्रामनी सात मूर्च्छना कही छे—(१) मङ्गी, (२) कौरीया, (३) हरि, (४) रजनी, (५) सारकान्ता, (६) सारसी अने (७) शुद्ध षड्ज.

मध्यम ग्रामनी सात मूर्च्छनाओ नीचे प्रमाणु छे—(१) उत्तरमन्दा, (२) रजनी, (३) उत्तरा, (४) उत्तरासभा, (५) समवक्रान्ता, (६) सौवीरा अने (७) अभीरु.

इत्यन्तेन सन्दर्भेण । व्याख्या स्पष्टा । अत्र पुराणमुनि व्याख्यातगाथाद्वयमेव-
मस्तिः तथाहि—

“ सज्जाइ तिहा गामो ससमूहो मुच्छणाण विन्नेओ ।
ता सत्त एक्कमेक्के, तो सत्तसराण इगवीसा ॥ १ ॥
अन्नन्न सरविसेसे, उपायंतस्स मुच्छणा भणिया ।
कर्त्ता व मुच्छिओ इव, कुणइ, मुच्छंर सोवत्ति ॥ २ ॥ ”

छाया—पड्जादिस्त्रिधा ग्रामः स समूहो मूर्च्छनानां विज्ञेयः ।
ताः सप्त एकैकस्मिन् ततः सप्तस्वराणाम् एकविंशतिः ॥ १ ॥
अन्यान्यस्वरविशेषान् उत्पादयतो मूर्च्छना भणिताः ।
कर्त्ता वा मूर्च्छित इव करोति मूर्च्छन्निव स वेति ॥ २ ॥

अयं भावः—मूर्च्छनानां स समूहः=मूर्च्छना समूहसहितः पड्जादिस्त्रिधा
ग्रामो विज्ञेयः । एकैकस्मिन् ग्रामे तु सप्त सप्तमूर्च्छना भवन्ति । ततः सप्तस्वरा-
णाम् अन्यान्यस्वरविशेषान् उत्पादयतो गायकस्य एकविंशति मूर्च्छना भणिताः ।

गान्धार ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ कही गई हैं—जैसे—नन्दी १
क्षुद्रिका २ पूरिमा ३, शुद्ध गान्धारा ४ उत्तर गान्धारा ५ ॥ १७ ॥
सुष्ठुनरायामा ६, और उत्तरायत्ता कोटिमा ७ ॥ १८ ॥

यहां पुराने मुनियो द्वारा व्याख्यात गाथा द्वय इस प्रकार से हैं—
“ सज्जाइ तिहा गामो ” इत्यादि ।

मूर्च्छनाओं का समूह सहित पड्जादि ग्राम तीन प्रकार का कहा
गया है, एक २ ग्राम में सात २ मूर्च्छनाएँ होती हैं । इस तरह तीन
ग्रामों की कुल मूर्च्छना २१ होती हैं—अर्थात् सात स्वरों के अन्य २
स्वर विशेषों को उत्पन्न करनेवाले गायक के वे २१ मूर्च्छनाएँ होती

गान्धार ग्रामनी सात मूर्च्छनाओं- नीचे प्रमाणे छे—(१) नन्दी, (२)
क्षुद्रिका, (३) पूरिमा, (४) शुद्ध गान्धारा, (५) उत्तर गान्धारा, (६) सुष्ठु
तरायामा अने (७) उत्तरायत्ता-कोटिमा.

अर्धी प्राचीन मुनियो द्वारा व्याख्यात ये गाथाओं नीचे प्रमाणे छे.
“ सज्जाइ तिहा गामो ” इत्यादि—

मूर्च्छनाओंना समूह सहित पड्जादि ग्राम त्रय प्रकारना कहा छे.
प्रत्येक ग्राममा सात सात मूर्च्छनाओं डाय छे. आ रीते त्रये ग्रामोनी कुल
मूर्च्छना २१ थाय छे. अर्थात् के सात स्वराना अन्य अन्य स्वरविशेषाने
उत्पन्न करनारा गायकमा आ २१ मूर्च्छनाओंना समूहाव डाय छे तेमने

यतः कर्त्ता मूर्च्छित इव ताः करोति, अतस्ता मूर्च्छना उच्यन्ते, मूर्च्छन्निव वा कर्त्ता ताः करोतीति हेतोस्ता मूर्च्छना उच्यन्ते इति । मङ्गीप्रभृतीनामेकविंशति मूर्च्छनानां स्वरविशेषाः पूर्वगते स्वरप्राभृते भणिताः । इदानीं ते तद्विनिर्गतेभ्यो भरतादिनिर्मित शस्त्रेभ्यो विज्ञेया इति ॥ १५, १६, १७, १८ ॥

एते सप्त स्वराः कुतो भवन्ति ? इत्यादिं प्रश्न चतुष्टयं तदुत्तरं च प्रोच्यते— 'सत्तसरा कओ हवंति' इत्यादिना 'तिन्नि त्रिगीयस्स अगारा' इत्यन्तेन सन्दर्भेण । एते षड्जादि सप्तस्वराः कुतः संभवन्ति=कुतः उत्पद्यन्ते ? (१) तथा—गेयस्य=गीतस्य क्वा योनयो=जातयो भवन्ति ? (२), तथा—गेयस्य कतिममयाः=कियत्काल प्रमाणा उच्छ्वासा भवन्ति ? (३), तथा—गेयस्य कति वा=कियन्तो वा आकाराः=आकृतयो भवन्ति ? (४) ॥ १९ ॥ इति चत्वारः प्रश्नाः । उत्तरयति—षड्जादयः सप्त स्वरा नाभितो भवन्ति=जायन्ते (१) । गीतं च रुदितयो-

हैं क्योंकि जो कर्त्ता होता है वह मूर्च्छित की तरह होकर इन्हें करता है—इसलिये मूर्च्छनाएँ कही गई हैं ।

मङ्गी आदि २१ मूर्च्छनाओं के, स्वर विशेष पूर्व गत स्वर प्राभृत्त में कहे गये हैं, इस समय स्वर विशेष उस स्वर प्राभृत्त से विनिर्गत भरतादि निर्मित ग्रन्थों से जान लेना चाहिये,

ये सात स्वर कहां से उत्पन्न होते हैं ? गेय—गीत को क्या २ जातियां हैं ? गेय के कितने काल प्रमाणवाले उच्छ्वास होते हैं ? गेय की कितनी आकृतियां होती हैं ? ॥ १९ ॥ इन चार प्रश्नों का उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं—'क-षड्ज आदि जो सात स्वर हैं वे नाभि से उत्पन्न होते हैं । इस गीत का योनि रोदन है, अर्थात् गीत रोदन

मूर्च्छना उडेवानुं कारषु ओ छे के ने कर्त्ता डाय छे ते मूर्च्छितना नेदे थधने ते मूर्च्छनाओ करतो डाय छे.

मङ्गी आदि २१ मूर्च्छनाओना स्वरविशेषानुं पूर्वगत स्वरप्राभृतमां प्रतिपादन करवामां आओं छे. ते स्वरप्राभृतने आधारे रथायेला भरतादि निर्मित ग्रन्थोमांथी आ स्वर विशेषाना विषयमां विशेष माडिती मेणवी देवी.

इये सूत्रकार नीचेना चार प्रश्नोना उत्तर आपे छे—(१) ते सात स्वर क्यांथी उत्पन्न थाय छे ? (२) गेयना (गीतना) क्या क्या प्रकारे छे ? (३) गेयना केटला काणप्रमाणवाणा उच्छ्वास डाय छे ? (४) गेयनी केटली आकृतियो (आकारे) डाय छे ?

નિકં—રુદિતં યોનિઃ=સમાનરૂપતયા જાતિ યસ્ય તત્તથાવિધં ભવતિ । ગીતં
 રોદનસમાનં ભવતીત્યર્થઃ । (૨) ઉચ્છ્વાસાશ્ચ પાદસમા ભવન્તિ । યાવતા સપયેન
 વૃત્તસ્ય પાદઃ સમાપ્યતે તાવત્સમયા ગીતે ઉચ્છ્વાસા ભવન્તીત્યર્થઃ (૩) । તથા—
 ગીતસ્ય આકારાશ્ચ ત્રયો ભવન્તિ ॥ ૨૦ ॥ તાનેવાહ—આદિમૃદુમ્=આદૌ—પ્રારમ્ભે
 મૃદુ ગીતધ્વનિમ્ આરમમાણાઃ, મધ્યકારે=મધ્યમાગે સમુદ્રહન્તઃ=મહતીં ગીત-
 ધ્વનિં કુર્વન્તઃ, ચ=પુન અવસાને=અન્તે સ્પયન્તઃ=ગીતધ્વનિં મન્દ્રીકુર્વન્તશ્ચ ગાયકા
 ગીતં ગાયન્તિ । અતો ગાને સ્વર આદૌ મૃદુઃ, મધ્યે તારઃ, અન્તે ચ મન્દ્રો
 ભવતિ । તતશ્ચ મૃદુતારમન્દ્રધ્વનિ રૂપા સ્વયઆકારા ગીતસ્ય વિજ્ઞેયા (૪) इति॥૨૧॥

સમ્પ્રતિ ગીતસ્ય હેયોપાદેયાદિકં ‘ છદોસે ’ इत्यादिना प्रदर्शयन्, सूत्रं
 समापयति ‘ समत्तं सरमंडलं ’ इत्यन्तेन ग्रन्थेन । तथाहि—गीतेहि पद्दोपाः,

के समान होना है । जितने समय में १ वृत्त समाप्त होता है उतने ही
 समय प्रमाण गीत में उच्छ्वास होते हैं । ॥ २० ॥ तथा—गीत के आकार
 तीन होते हैं—आदि में मृदु मध्यमें महान् और अन्त में मन्द अर्थात् जब
 गायक (गानेवाला) गीत गाते हैं तब वे प्रारम्भ में मृदु गीतध्वनि से उसे
 प्रारम्भ करते हैं, मध्य में जोर की गीतध्वनि करते हैं और अन्त में
 फिर उसे मन्द ध्वनिसे समाप्त करते हैं । इस तरह गानमें आदि में
 स्वर मृदु होता है, मध्यमें स्वर तार होता है, और अन्तमें मन्द
 होना है । ये मृदु तार और मन्द स्वरही तीन आकार गीतके हैं—ऐसा
 जानना चाहिये ॥ २१ ॥

अब सूत्रकार गीतके हेय उपादेय आदिका कथन “ छदोसे ”

પદ્મ આદિ જે સાત સ્વરો છે, તેઓ નાભિમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે.
 આ ગીત રોદન (રુદન) ના જેવું હોય છે. જેટલા સમયમાં ૧ વૃત્ત સમાપ્ત
 થાય છે એટલા જ સમયપ્રમાણ ઉચ્છ્વાસો ગીતમાં થાય છે. ગીતના આકાર
 ત્રણ હોય છે—આદિમાં (પ્રારંભે) મૃદુ, મધ્યમાં મહાન્ અને અન્તે મન્દ્ર
 આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જ્યારે ગાયક ગીત ગાય છે ત્યારે મૃદુ ગીત
 ધ્વનિ વડે તેનો પ્રારંભ કરે છે, મધ્યમાં મોટો ગીતધ્વનિ કરે છે અને અન્તે
 તેને મન્દ્રધ્વનિથી સમાપ્ત કરે છે. આ રીતે ગીતના પ્રારંભકાળે સ્વર મૃદુ
 હોય છે, મધ્યમાં સ્વર તાર (મોટો) હોય છે અને ગીતને અન્તે સ્વર મન્દ્ર
 હોય છે. આ રીતે અહીં ગીતના આ પ્રમાણે આકાર બતાવવામાં આવ્યા
 છે—(૧) મૃદુ, (૨) તાર અને (૩) મન્દ્ર સ્વર.

હવે સૂત્રકાર ગીતના હેય, ઉપાદેય આદિનું કથન કરે છે—“ છદોસે ”

अष्ट गुणाः, त्रीणि वृत्तानि, द्वे भणितौ च भवन्ति । यो जन एतान् यथावद्
 ज्ञास्यति, स एव सुशिक्षितः सन् रङ्गमध्ये=नाट्यशालार्या गास्यति ॥ २२ ॥
 तानेवाह—' भीयं ' इत्यादिना—हे गायक ! गीतं गायंश्च त्वं—भीतम्=भयपूर्वकं
 मा गाय=गानं मा कुरु, द्रुतं=त्वरितं च मा गाय, ह्रस्वम्=अल्पस्वरेण च मा
 गाय, उत्तालम्—उद्गनः=भौवित्यादूर्ध्वगतस्तालो यत्र तत्—उत्तालम्—अतितालम्

इत्यादि गाथा द्वारा प्रकट करते हैं—गीतमें छह दोष, आठ गुण, तीन
 वृत्त एवं दो भणितियाँ होती हैं। जो मनुष्य इनका यथावत् ज्ञाता होगा
 वही सुशिक्षित गायक नाट्यशालामें सफल गायक सिद्ध होता है ॥२२॥

गीतके ये छ दोष हैं—० भात—जो गायक गीतको भयसे युक्त हुआ
 गाता है, वह गीतका भीत दोष है, इसलिये हे गायक ! तुम गीतको
 गाते समय डरो मत निडर होकर गाओ। द्रुत २—गीतका जल्दी २
 गाना यह द्रुत दोष है, इसलिये गाते समय गीतको जल्दी २ नहीं
 गाना चाहिये गानेकी जैसी पद्धति है, उस पद्धतिके अनुसारही गाना
 चाहिये २, गीतको जिस स्वरसे गाना योग्य हो—यदि उस स्वरसे वह
 नहीं गाया जाते और ह्रस्व स्वरसे गाया जावे तो वह उसका दोष है,
 इसलिये हे गायक ! तुम गीतको ह्रस्व स्वरसे मत गाओ गीतको उत्ताल
 से गाना—जहाँ जितनी मात्रामें ताल देना हो—उतनी मात्रामें वहाँ ताल

धृत्यादि गाथा द्वारा आ विषय अर्धी प्रकट करनामां आब्यो छे—गीतमां ६
 दोष, आठ गुण, त्रय वृत्त अने जे लखितियां डोय छे जे मनुष्य तेमने
 संपूर्ण ज्ञाता डोय छे, जे मनुष्य ज सुशिक्षित गायक नाट्यशालामां सद्ध
 गायक सिद्ध थाय छे

गीतना छ दोष नीचे प्रमाणे कछा छे—(१) भीत—गायक लयधी
 युक्त थधने जे गीत गाय छे, ते गीतने भीतहे प्रयुक्त गीत कडे छे, तेथी
 छे गायक ! तमे गीत गाती वणते निडर गनीने गाओ।

द्रुत—गीतने जल्दी जल्दी गावुं नाथवुं, तेने द्रुतहे थ कडे छे, तेथी
 गीत थहुं जल्दी जल्दी गावुं जेधजे नडीं, परन्तु तेना गावानी जे पद्धति
 डोय ते पद्धति अनुसार गावुं जेधजे

(३) गीतने जे स्वरमां गावतुं डोय ते स्वरमां ज ते गीत गायके
 गावुं जेधजे जेठदे के गीतने दीर्घ स्वरमां गावतुं डोय तेने अददे रूप
 स्वरमां गावामां आवे तो ते दोष गणाय छे.

तेथी छे गायक ! तमे गीतने ह्रस्व स्वर गायो नडीं, परन्तु तमे
 गीतने उत्तालमां गाओ—जेठदे के जथां जेठकी मात्रामां ताल देवातो डोय

अवस्थानताल चेत्यर्थः, तथा मा गाय । तालस्तु कांस्यादि शब्दो बोध्यः । तथा-
काकस्वरम्-काकस्य स्वर इव स्वरो यस्मिंस्तत् काक स्वरम् श्लक्षणाश्रव्यस्वरमित्यर्थः,
तथा मा गाय । अनुनासम्=सानुनासिकं च मा गाय । यत एते गीतादयः पद्-
मेयस्य दोषा भवन्तीति ॥ २३ ॥ इत्थं दोषानुक्त्वा गुणानाह-‘ पुन्नं ’ इत्या-
दिना । पूर्णम्-यत्र गीते सर्वाः स्वरकला गायकैः प्रदर्श्यन्ते तत्र ‘ पूर्ण ’-नामा
गुणो भवति १। रक्तम्-गायको गीतरागेण रक्तः=भावितः सन् यद् गीतं गायति
तत्र ‘ रक्त ’-नामा गुणो भवति २। अलङ्कृतम्-यत्र गाने गायकोऽन्यान्यस्फुट-

दो-कमती-बढती-ताल मन दो-कमती-बढती ताल देना यह गीतका
दोष है, कांसी आदिका जो शब्द है, वह ताल है । काक स्वरसे गाना-
अर्थात् जिस गीतमें काकके स्वर जैसा स्वर होता है-वह गीत काक
स्वर गीत है, गीतमें काक स्वरका होना गीतका दोष है । इसलिये- हे
गायक ! तुम श्लक्ष्ण अश्राव्य स्वरसे गीत मन गाओ । गीतको सानु-
नासिक (नाकमें) होकर गाना यह दोष है, इसलिये हे गायक ! गीतको
सानुनासिक मत गाओ । इस प्रकारसे ये भीतादिक दोष, गीतके हैं ॥२३॥

अथ गीतके जो गुण हैं-वे इस प्रकारसे हैं-यही बात सूत्रकार
“ पूर्णं रक्तं च ” इत्यादि द्वारा प्रकट करते हैं-जिस गीतमें समस्त स्वर
कलौं गायको द्वारा दिखलाई जाती हैं वह गीत “ पूर्ण ” गुणवाला
होता है १, गीत रागके भावित होता हुआ गायक जिस गीतको

त्यां तेटली मात्रामां न ताल हो-पद्यु ओधी मात्रामां ताल देवे। ते गीतने
दोष गणाय छे. कांसी (मंलरा) आदिना सूरने ताल कडे छे.

(४) गीतने काकस्वरे गावुं लेधये नहीं. जे गीतमां कागडाना जेवे
अवाज नीकणे छे ते गीतने काकस्वर गीत कडे छे.

(५) गीतने श्लक्ष्ण (अश्राव्य) स्वरे गावुं जे पद्यु जेक दोष गणाय
छे. जे गायक ! तुं अश्राव्य-अस्पष्ट स्वरे गीत गाधश मा.

(६) गीतने सानुनासिक स्वरे गावुं ते पद्यु जेक दोष गणाय छे,
तेथी जे गायक ! तुं सानुनासिक स्वरे गीत गाधश मा. आ प्रभाणे गीतना
भीतादिक ६ दोषो समजवा.

इवे सूत्रकार गीतना आठ गुणो प्रकट करे छे “ पूर्णं रक्तं च ” इत्यादि.

(१) जे गीतमां गायको द्वारा समस्त स्वरकलाओ अताववासां आवे
छे ते गीतने ‘ पूर्ण ’ गुणवाणुं कडे छे.

(२) गीतरागथी भावित थयेवे गायक जे गीत गाय छे ते गीतने
‘ रक्त ’ नामना गुणथी अलङ्कृत गीत कडे छे.

शुभस्वरविशेषैर्गीतमलङ्करोति तत्र 'अलङ्कृत'—नामको गुणः ३। व्यक्तम्—
यत्र गाने गायकोऽक्षरान् स्वरांश्च स्फुटतयोच्चारयति तत्र 'व्यक्त'—नामा गुणः
४। अविधुष्टम्—विकोशनमिव यद् विस्तर भवति, तद् विधुष्टमुच्यते यत्र विधुष्टं
न भवति तत्र 'अविधुष्ट',—नामागुणो बोध्यः ५। मधुरस्वरम्—मधुमत्तकोकिल-
कलकाकलीवत् यत्र गाने गायकस्य मधुरः स्वरो भवति तत्र 'मधुर' नामा गुणः
६। समम्—तालवृंशस्वरादि समनुगतो यत्र स्वरो भवति तत्र 'सम'—नामको
गुणः ७। सुललितम्—स्वरघोलना प्रकारेण शुद्धातिशयेन, शब्दस्पर्शनेन श्रोत्रेन्द्रि-
यस्य सुखोत्पादनाद्वा ललतीव यत् तत् सुललितम्—सुकुमारमित्यर्थः । अयं च
गेयस्याष्टमो गुणः ८। एते पूर्णादि सुललितान्ता अष्ट गुणा गेयस्य भवन्ति ।

गाता है, वह गीत रक्त नामक गुणसे अलंकृत होता है २, गायक जिस
गीतको स्फुट स्वर विशेषोंसे अलंकृत करता हुआ गाता है, वह गीत
अलंकृत गुणसे युक्त कहा गया है ३, जिस गीतको गायक गानेवाला
अक्षरोंको एवं स्वरोंको स्फुट रूपसे उच्चरित करता हुआ गाता है, वह गीत
व्यक्त गुणवाला होता है, जो गीत चिल्लानेकी जैसी आवाजसे विस्वर हुआ
होकर गानेवालेके द्वारा गाया जाता है, वह गीत विधुष्ट कहलाता है—जो विधुष्ट
नहीं होता है, वह अविधुष्ट गुणवाला गीत होता है, जिस गीतमें मधुमत्त
कोकिल की कलकाकली की तरह गायकका मधुर स्वर होता है,
वह गीत सम गुणवाला कहा गया है, जो गीत स्वर घोलनाके प्रकारसे
एवं स्पर्शन द्वारा श्रोत्रेन्द्रियको सुखोत्पादकसे, क्रीडा जैसी करता है,
वह गीत सुललित है—सुकुमार है, यह गीतका आठवां गुण है, ये आठ

(३) गायक ने गीतने स्फुट (स्पष्ट) स्वरविशेषों वडे अलंकृत करीने
गाय छे ते गीतने 'अलंकृत' गुणवाला युक्त गीत मानवामां आवे छे.

(४) अक्षरों अने स्वरोंना स्फुट (स्पष्ट) उच्चारणपूर्वक गायक ने
गीत गाय छे, ते गीतने 'व्यक्त' गुणवाला कडे छे.

(५) ने गीत गायक द्वारा विधुष्टरी नेवा अवाले विस्वर थडने
गवाय छे ते गीतने विधुष्ट कडे छे

(६) ने गीत विधुष्ट होतुं नथी तेने अविधुष्ट गुणवाला कडे छे.

(७) ने गीत मस्त डोयलना नेवा गायकना मधुर स्वर वडे गवातुं
डोय छे ते गीतने समगुणवाला कडे छे.

(८) ने गीतमां धुटाई धुंटाईने स्वर आवतो डोय, अने शब्दना
स्पर्श द्वारा श्रोत्रेन्द्रियने सुख प्राप्त थतुं डोय, नाले के स्वर डोई डीडा खेवी
रह्यो डोय अवे। अनुभव ने गीतमां थतो डोय छे ते गीतने सुललित

एतद्विरहितं गीतं तु गीतमेव न भवति, तच्चु गीताभासं विज्ञेयम् ॥ २४ ॥ इतोऽन्येऽपि गीतगुणाः सन्ति, तान् प्रदर्शयितुमाह—‘ उरकंठ ’ इत्यादि । च=पुनः उरःकण्ठ शिरः प्रशस्तम्—उरःकण्ठशिरसां द्वन्द्वः, ततः प्रशस्तेन सह तृतीयात्-त्पुरुषः । एवं च—उरःप्रशस्तम्, कण्ठप्रशस्तम्, शिरःप्रशस्तमिति पदत्रयं लभ्यते । तत्र—उरसि यदा विशालः स्वरो भवति तदा—उरःप्रशस्तं विज्ञेयम् । यदा च कण्ठे स्वरो वर्तितोऽतिरफुटितश्च तदा कण्ठप्रशस्तम् । यदा च शिरसि प्राप्तः स्वरः स चेदानुनासिक्य रक्षितस्तदा शिरःप्रशस्तम् । यद्वा—उरः—कण्ठशिरस्तु कफरहितेषु सस्तु यत् प्रशस्तं गीतं भवति, तत् उरःकण्ठशिरःप्रशस्तम् । तथा—मृदुक-

गुण गीतके होते हैं । इन गुणोंसे रहित जो गीत होता है, वह वास्तविक रूपसे गीत नहीं कहा गया है ॥ २४ ॥

इनसे भी अनिरिक्त और भी गीतके गुण हैं—जो “ उरःकंठ ” इत्यादि गाथा द्वारा प्रकट किये गये हैं—

जो गीत उरः प्रशस्त होता है—जब उरःस्थानमें स्वर विशाल होता है, तब वह गीत उरःप्रशस्त कहा जाना है, कण्ठप्रशस्त जब कण्ठमें स्वरवर्तित होना हुआ अति स्फुट होना है, तब वह गीतकंठ प्रशस्त कहा जाता है, शिरः प्रशस्त—जब शिरमें प्राप्त स्वर अनुनासिकसे रहित होता है, तब वह गीत शिरःप्रशस्त कहा जाता है, अथवा—जब उरः कंठ, शिर ये एकरहित होते हैं, तब उस समय गाये हुए गीतसे जो प्रशस्तता होती है, तब वह गीत क्रमशः उरःप्रशस्त कण्ठप्रशस्त एवं शिरःप्रशस्त कहलाता है, ऐसा जानना चाहिये “ मृदुकरिभित-

अथवा सुकुमार गीत कडे छे. आ प्रभावे गीतना आठ शुभो समजवा. आ शुभोथी रक्षित जे गीत डोय छे तेने भरी रीते तो गीतज कडी शकय नडी. आ सिवाय पणु गीतना भील अनेक शुभो कहा छे. “ उरकंठ ” इत्यादि गाथाओ द्वारा ते शुभोने प्रकट करेवामां आष्या छे—

न्यारे उरःस्थानमां स्वर विशाल डोय छे, त्यारे ते गीतने उरः प्रशस्त कडे छे. न्यारे कंठमांथी नीकणतो स्वर अति स्फुट डोय छे, त्यारे ते गीतने कंठप्रशस्त कडे छे. न्यारे शिरमां प्राप्त स्वर अनुनासिकथी रक्षित डोय छे, त्यारे ते गीतने शिरप्रशस्त कडे छे. अथवा—न्यारे उर, कंठ अने शिर, आ अंगो ओक रक्षित डोय छे, ते समये गवाता गीतमां जे प्रशस्तता डोय छे, ते प्रशस्ततावाणा गीतने अनुक्रमे उर प्रशस्त, कंठ प्रशस्त अने शिर प्रशस्त कडे छे.

रिभितपदबद्धम्-मृदुना=कोमलेन स्वरेण यद्गीयते तद् मृदुकम्, यत्र अक्षरेषु घोलनया संचरन् स्वरो रङ्गतीव तद् घोलनावहुलं रिभितम्, पदबद्धम्=पदैः= गेयपदैः बद्धम्=विशिष्टरचनया रचितम् पदत्रयस्य कर्मधारयः । तथा च-सम-तालप्रत्युत्क्षेपम्-तालः=हस्तताल समुत्थः शब्दः, प्रत्युत्क्षेपः=मृदङ्गकास्यादीनां गीतोपकारकाणां ध्वनिः, नर्तकी पद प्रक्षेपलक्षणो वा, समौ तालप्रत्युत्क्षेपौ यत्र तत् । तथा-सप्तस्वरसीभरम्-सप्तस्वराः सीभरन्ति=अक्षरादिभिः समा भवन्ति यत्र तत् । एवंविधं यद् गीतं गीयते तदेव सुगीतं भवति । इत्थं च उरःकण्ठशिरो-विशुद्धत्वादयोऽपि गीतगुणा बोध्याः ॥ 'सप्तस्वरसीभरम्' इत्युक्तम्, तत्र सप्तस्वराः अन्यत्र अमुना प्रकारेणोक्ताः, तथाहि—

“ अक्षरसमं १ पदसमं २ तालसमं ३ लयसमं च गहसमं ५ ।

नीससिओससियसमं ६ संचार समं ७ सरा सत्त ॥ १ ॥ ”

पदबद्धम् ” जो गाना कोमल स्वरसे गाया जाता है, वह मृदुक है, जहाँ अक्षरोंमें घोलनासे संचार करता हुआ स्वर खेलता जैसा प्रतीत होता है, वह घोलना बहुल गीत रिभित है, जो विशिष्ट रचनावाले गेय पदोंसे बद्ध होता है, वह गेय पदबद्ध है, जिस गेयमें हस्त तालसे समुत्थ शब्दरूप ताल एवं गीतोपकारक मृदङ्ग कांसी आदिकोंकी ध्वनि-रूप प्रत्युत्क्षेप अथवा नर्तकीका पद प्रक्षेपरूप प्रत्युत्क्षेप समान होते हैं वह गेय समताल प्रत्युत्क्षेप है, जिस गेयमें अक्षरादिकोंके साथ सात स्वर सम होते हैं—वह गेय सप्तस्वर सीभर है । इस प्रकारसे ये गीतके उरः विशुद्ध आदि गुण होते हैं ॥२५॥

“ मृदुकरिभितपदबद्धम् ” जे गायन कोमल स्वरसे गवाय छे तेने मृदुक कहे छे. ज्यारे अक्षरो धुंटावाने कारणे स्वर जेणे के कीडा करतो डोय जेवुं लागे छे, ते गीतने रिभित गीत कहे छे. जे गीत विशिष्ट रचनावाणा गेय पदो वडे बद्ध डोय छे ते गीतने पदबद्ध कहे छे. जे गीतमां हाथने ताल गीतोपकारक मृदङ्ग, कांसी आदिना ध्वनि रूप प्रत्युत्क्षेप अथवा नर्तकीना पदप्रक्षेप रूप प्रत्युत्क्षेप समान डोय छे, ते गेयने समताल प्रत्युत्क्षेप कहे छे. जे गेयमां (गीतमां) अक्षरादिनी साथे सात स्वर सम डोय छे, ते गेयने 'सप्तस्वरसीभर' कहे छे.

आ प्रकारना शुद्धोवाणुं जे गीत गवाय छे तेने जे सुगीत कहे छे. आ प्रकारना गीतना उरविशुद्धि आदि शुद्धो कहा छे.

છાયા-અક્ષરસમં ૧ પદસમં ૨ તાલસમં ૩ લયસમ ૪ ગ્રહસમમ્ ૫ ।

નિઃશ્વસિતોચ્છ્વસિતસમં સંચારસમં સ્વરાઃ સપ્ત ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

અયમર્થઃ-અક્ષરસમમ્-યત્ર દીર્ઘેઽક્ષરે દીર્ઘઃ સ્વરઃ ક્રિયતે, હરવે હસ્વઃ, પ્લુતે પ્લુતઃ, સાનુનાસિકે સાનુનાસિકઃ, તદક્ષરસમમ્ ॥૧॥ પદસમમ્-યત્ પદં=ગીતપદં યત્ર સ્વરે આનુપાતિ ભવતિ તત્તત્રૈવ યદા ગીયતે તદા પદસમં ભવતિ । ૨॥ તાલમમમ્-યત્પરસ્પરાભિદ્વિહસ્તતાલસ્વરાનુસારિણા સ્વરેણ ગીયતે તત્તાલસમમ્ ॥૩॥ લયસમમ્-શ્રુદ્ધદાર્વાઘન્યતમમયેનાઙ્ગુલીકોશેન સમાહતે તન્ન્યા-દૌ યસ્તત્સ્વરપ્રકારઃ સ લયઃ, તમનુસરતા સ્વરેણ યદ્ ગીયતે તદ્ લયસમમ્ ॥૪॥ ગ્રહસમમ્-પ્રથમતો વંશતન્ન્યાદિભિર્યઃ સ્વરો ગૃહીતઃ સ ગ્રહઃ, તત્સમેન સ્વરેણ

અન્યત્ર સાત સ્વર હસ પ્રકારસે ખી કહે ગયે હૈ-જૈસે-“અક્ષર-સમં ૧ પદસમં ” ઇત્યાદિ ।

જિસ ગેયમેં દીર્ઘ અક્ષર પર દીર્ઘ સ્વર, હસ્વ અક્ષર પર હસ્વ સ્વર, પ્લુત અક્ષર પર પ્લુત સ્વર એવં સાનુનાસિક અક્ષર પર સાનુનાસિક સ્વર ક્રિયા જાતા હૈ, વહ અક્ષરસમ સ્વર હૈ, જો ગીતપદ જિસ સ્વરમેં અનુપાતિ હોતા હૈ-ગાને યોગ્ય હોતા હૈ, વહ પદસમ હોતા હૈ, જો પરસ્પર અભિદ્વિહન હસ્તતાલકે સ્વરકે અનુસારી સ્વરસે ગાયા જાતા હૈ, વહ તાલસમ હૈ, શૃંગકે બને હુએ યા લકડીકે બને હુએ કિસી એક અઙ્ગુલી કોશસે તન્ત્રી આદિકે વજાને પર જો સ્વર નિકલતા હૈ, વહ લય હૈ, ડસ લયકો અનુસરણ કરનેવાલે સ્વરસે જો ગેય ગાયા જાતા હૈ, વહ લયસમ હૈ ૪. જો સ્વર પહિલે વંશ તંત્રી આદિસે ઝિલા લિયા

અન્યત્ર સાત સ્વર આ પ્રમાણે પશુ કહ્યા છે—

“અક્ષરસમં પદસમં ” ઇત્યાદિ—

(૧) જે ગેયમાં દીર્ઘ અક્ષર પર દીર્ઘ સ્વર, હસ્વ અક્ષર પર હસ્વ સ્વર, પ્લુત અક્ષર પર પ્લુત સ્વર, અને સાનુનાસિક અક્ષર પર સાનુનાસિક સ્વર કરાય છે તે અક્ષર સમસ્વર ગીત કહેવાય છે.

(૨) જે ગીતપદ જે સ્વરમાં અનુપાતિ હોય છે-ગાવા યોગ્ય હોય છે તે સ્વરમાં ગવાય તો તેને પદસમ કહે છે.

(૩) જે ગીત પરસ્પર અભિદ્વિહત હસ્તતાલના સ્વરાનુસારી સૂરે ગાવામાં આવે છે, તે ગીતને તાલસમ કહે છે.

(૪) શિંગડામાંથી બનેલી અથવા લાકડાના બનેલા કોઈ એક અંગુલી કોશ વડે તંત્રી આદિને વગાડવાથી જે સ્વર નીકળે છે તેને લય કહે છે. તે લયનું અનુસરણ કરનારા સ્વરથી જે ગીત ગવાય છે તેને લયસમ કહે છે.

यद् गीयते तद् ग्रहसमम् ॥५॥ निःश्वसितोच्छ्वसितसमम्-निःश्वसितोच्छ्वसित-
मानमनतिक्रमेण यद् गेयं तद् निःश्वसितोच्छ्वसितसमम् ॥६॥ संचारसमम्-
वंशतन्त्र्यादिष्वेव अङ्गुली संचारसमं यद् गीयते तत् संचारसमम् । ७॥
एवमेते सप्त स्वरा भवन्ति । अत्रेदं बोध्यम्-एकोऽपि गीतस्वरोऽक्षरपदादिभिः
सप्तभिः स्थानैः सह सप्तत्वं प्रतिपद्यमानः सप्तविधत्वं भजते, अतोऽक्षरसमादयः
सप्तस्वरा भवन्तीति । अत्र तु सूत्रोपान्ते 'तन्तिममं तालसमं' इति गाथया
सप्तस्वरा उच्यन्ते इति बोध्यम् । तथा-गीते यः सूत्रबन्धः सोऽष्टगुण एव
कर्त्तव्य इति तानाह-'निदोसं' इत्यादि-निर्दीपम्='अलियमुदघायजणयं'

जाना है-और बाइयें फिर उसी स्वर जैसे स्वरसे जो गाना गाया जाना
है, वह ग्रहसम है । निश्वास उच्छ्वासके प्रमाणको उल्लंघन नहीं करके
जो गेय गाया जाता है, वह निःश्वसितोच्छ्वसितसम है ६ । वंशतन्त्री
आदिके ऊपरही अङ्गुलीको फेरनेके साथ २ जो गाना गाया जाता है,
वह संचारसम है ७ । इस प्रकारसे ये सात स्वर होते हैं । यहाँ यह
समझना चाहिये-एक भी गीत स्वर अक्षर पद आदि सात स्थानोंके
साथ समताको पाता हुआ सप्त प्रकारताको प्राप्त होता है, इसलिये
अक्षरसम आदि सात स्वर कहे गये हैं । यहाँ सूत्रके उपान्तमें "तन्ति-
समं तालसमं" इस गाथा द्वारा तो सात स्वर कहे गये हैं । तथा-
गीतमें जो सूत्रबन्ध है, वह आठ गुणोंवालाही करनेके योग्य है-
वे आठ गुण "निदोसं" इत्यादि गाथा द्वारा इस प्रकारसे प्रकट किये

(५) जे स्वर पड़ेलां वांसनी वांसणी आदि साथे भेणवी देवामा आवे
छे, अने त्यार णाह ते स्वर जेवा ज स्वर वडे जे गीत गवाय छे, तेने
ग्रहसम गीत कडे छे.

(६) निःश्वास उच्छ्वासना प्रमाणतुं उल्लंघन कर्था विना जे गीत
गवाय छे तेने 'निश्वासितोच्छ्वसित सम' कडे छे.

(७) वांसणी आदि वाद्यो पर आंगणीतु सचरणु करीने जे गीत
गवाय छे तेने संचरणुसम कडे छे. आ प्रकारना आ सात स्वर डोय छे.
अहीं अेषु' समजवु' जेथअे के केथ पणु गीत स्वर, अक्षर, पद आदि
सात स्थानोनी साथे समताने पामतुं थकु सप्तप्रकारता प्राप्त करे छे. तेथीअ
अक्षरसम आदि सात प्रकारना स्वरो कइया छे. अहीं सूत्रने उपान्ते "तन्ति-
समं तालसमं" आ गाथा द्वारा ते सात स्वर कडेवामा आऽया छे.

तथा गीतमां जे सूत्रबन्ध डोय छे ते आठ गुणोवाणो डोय छे. ते
आठ गुणो "निदोसं" इत्यादि गाथा द्वारा आ प्रमाणे प्रकट करवामां
आऽया छे—

इत्यादि द्वात्रिंशदोपरहितम् १, सारवत्=विशिष्टयुक्तम् २, हेतुयुक्तम्=गीता-
नामर्थबोधोऽनायासेन श्रोतॄणां भवतिविति हेतुमुपलक्ष्य यद् रचितं गीतं तद्,
प्रसादगुणयुक्तमित्यर्थः ३, अलङ्कृतम्=उपमाद्यलङ्कारयुक्तम् ४, उपनीतम्=
उपनयनिगमनयुक्तम्-उपसंहार - युक्तमित्यर्थः ५, सोपचारम्-विलष्टविरुद्ध-
लज्जास्पदार्थावाचकं सानुप्रासं वा गीतम् ६, मितम्-अतिवचनविस्तररहितं-
संक्षिप्ताक्षरमित्यर्थः ७, तथा-मधुरम्-माधुर्यगुणसमन्वितम् - सुश्राव्यशब्दार्थ-

गये हैं-“ अलियमुत्रघायजगयं ” के अनुसार जो गीत ३२ दोषोंसे
रहित होता है, वह निर्दोष गुणवाला गीत है, जो गीत विशिष्ट अर्थसे
युक्त होना है, वह “ सारवत् ” गुणवाला गीत है, जो गीत इस अभि-
प्रायसे कि श्रोताओंको गीतका अर्थज्ञान सरलनासे हो जाय रचा जाना
है, ऐसा वह प्रसाद गुणयुक्त गीत हेतुयुक्त गीत है, जो गीत उपमा
आदि अलंकारोंसे युक्त होना है, वह अलङ्कृत गीत है, जो गीत उप-
नय और निगमनसे युक्त होता है, वह उपनीत गीत है। उपनय
और निगमनसे यहां उपसंहार अर्थ किया गया है। जो गीत विलष्ट
अर्थका विरुद्ध अर्थका और लज्जास्पद अर्थका वाचक नहीं होता है,
वह अथवा अनुप्रास युक्त जो गीत होना है, वह सोपचार गीत है-
जो गीत अतिवचनके विस्तारसे रहित है-अर्थात् संक्षिप्त अक्षरोंसे
होना है, वह मित गीत है-जो गीत माधुर्य गुणसे युक्त होना है, वह

“ अलियमुत्रघायजगयं ” का कथन अनुसार के गीत ३२ दोषोप-
रहित होय छे तेने निर्दोष गुणवाणुं गीत कडे छे के गीत विशिष्ट अर्थोप-
युक्त होय छे तेने “ सारवत् ” सारयुक्त गुणवाणुं गीत कडे छे श्रोताओने
गीतना अर्थतुं ज्ञान सरलताथी प्राप्त थछ जय, ओवा हेतुपूर्वक रचायेला
प्रसादगुणयुक्त गीतने हेतुयुक्त गीत कडे छे के गीत उपमा आदि अलं-
कारोप-युक्त होय छे तेने अलङ्कृत गीत कडे छे. के गीत उपनय अने
निगमनथी युक्त होय छे तेने उपनीत गीत कडे छे. उपनय अने निग-
मनने अर्थ अर्धी उपसंहार लेवाभां आओ छे. के गीत विलष्ट अर्थतुं,
विरुद्ध अर्थतुं अने लज्जास्पद अर्थतुं वाचक होतुं नथी, तेने सोपचार गीत
कडे छे अथवा अनुप्रासयुक्त के गीत होय छे तेने सोपचार गीत कडे छे.
के गीत अतिवचनथी (नकामा विस्तारथी) रहित होय छे ओटके के संक्षिप्त
अक्षरोवाणुं के गीत होय छे तेने मितगीत कडे छे. के गीत माधुर्य गुणोप-

मित्यर्थः ८, एतादृशं यद्गीतं तदेव गानयोग्यं भवति ॥२६॥ अथ यदुक्तं 'त्रीणि वृत्तानीति तान्याह—' सम० ' इत्यादि । यत्र वृत्ते चतुर्ष्वपि चरणेषु समान्यक्षराणि भवन्ति तद्वृत्तं समम् १, यत्र वृत्ते प्रथमतृतीययोर्द्वितीयचतुर्थयोश्च चरणयोः समान्याक्षराणि भवन्ति तदर्धसमम् २, तथा—यत्र वृत्ते सर्वत्र=चतुर्ष्वपि चरणेषु अक्षराणां वैषम्यं भवति तद्वृत्तं विषमम् । एते त्रय एव वृत्तप्रकारा भवन्ति, चतुर्थं वृत्तं तु नोपलभ्यते ॥२७॥ तथा—भणितयः=भाषा. संस्कृताः प्राकृताश्च द्विविधाः=द्विप्रकारा एव आख्याताः=उक्ताः । एताः ऋषिभाषिताः, अतएव प्रशस्ताः भाषा बोध्याः । अतएव एताः स्वरमण्डले=षड्जजादि स्वर समूहे गीयन्ते ॥२८॥ अत्र

गीत मधुर शुभ युक्त है, एता जो गीत होता है वही गानेके योग्य होता है ॥ २६ ॥ जो २ वृत्त कहे गये हैं वे इस प्रकारसे हैं—जिस वृत्तमें चारों चरणोंमें—समान अक्षर होते हैं—ऐसा वह वृत्त समवृत्त कहा गया है, जिस वृत्तमें प्रथम और तृतीय चरणोंमें एवं द्वितीय और चतुर्थ चरणोंमें समान अक्षर होते हैं, वह अर्ध समवृत्त है, जिस वृत्तमें चारों चरणोंमें अक्षरोंकी विषमता रहती है, वह वृत्त विषमवृत्त है, ये तीनही वृत्तके प्रकार होते हैं—चौथा वृत्त उपलब्ध नहीं होता है । ॥ २७ ॥ भणिति दो प्रकारकी होती है—भणिति शब्दका अर्थ भाषा है, संस्कृत भाषा और प्राकृत भाषा ये दोनों भाषाएँ ऋषियों द्वारा कही गई हैं—इसलिये ये भाषाएँ प्रशस्त भाषाएँ हैं । इसलिये ये षड्ज आदि स्वरसमूहके बीचमें गाई जाती हैं ॥ २८ ॥

युक्त डाय छे तेने मधुरगीत कडे छे. आ आठ गुणोथी युक्त ने गीत डाय छे, ओ न गावाने ये. ग्य डाय छे.

डवे वृत्तना त्रणु प्रकार प्रकट करवामां आवे छे—(१) समवृत्त—ने वृत्तमां चारे चरणोमां समान अक्षरो डाय छे ते वृत्तने समवृत्त कडे छे. (२) अर्धसमवृत्त—ने वृत्तमां पडेला अने त्रीन चरणुमां अने भीन अने योथा चरणुमां समान अक्षरो डाय छे ते वृत्तने अर्धसमवृत्त कडे छे (३) विषमवृत्त—ने वृत्तना चारे चरणोमां अक्षरोनी सभ्या विषम (असमान) डाय छे ते वृत्तने विषमवृत्त कडे छे. वृत्तना आ प्रमाणे त्रणु प्रकार छे.

लघ्निति अटवे भाषा. ते लघ्नितिना ये प्रकार कया छे—(१) संस्कृत भाषा, अने (२) प्राकृत भाषा. आ अने भाषाओ ऋषियो द्वारा कडेवामा आवी डोवाने क्षीधे प्रशस्त छे ते कारणे तेमने षड्ज आदि स्वर समूहोमां

गीयमाना एकोनपञ्चाशदेव ताना भवन्ति । इत्थमिदं स्वरमण्डलं समाप्तम् = सम्पूर्णम् ॥३२॥ इति स्वरमण्डलं समाप्तम् ॥ सू० १४ ॥

गाने हि कायकलेशो भवति, स च लौकिकः कायकलेशः, स पूर्वसूत्रे प्रोक्तः, अधुना लोकोत्तरं कायकलेशमाह—

सूत्रम्—सत्तविहे कायकिलेसे पणत्ते, तं जहा—ठाणाइए १, उक्कुडुयासणिए २ पडिमठाई ३, वीरासणिए ४ णेसज्जिए ५, दंडाइए ६, लगंडसाई ७ ॥ सू० १५ ॥

छाया—सप्तविधः कायकलेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—स्थानातिगः १, उत्कुडुकास-निकः २, प्रतिमास्थायी ३, वीरासनिकः ४, नैयधिकः ५, दण्डायतिकः ६, लग-ण्डिशाया ७ ॥ सू० १५ ॥

टीका—‘सत्तविहे’ इत्यादि—

कायकलेशः—कायस्य=शरीरस्य कलेशः=खेदः—ब्राह्मतपोविशेषः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—स्थानातिगः—स्थानं=कायोत्सर्गादिकमतिशयेन गच्छतीति स्थाना-वीणामें अथवा तीन तन्त्रिकावाली वीणामें कण्ठसे भी गाई जाती ताने ४९ ही होती हैं ॥ ३२ ॥

इस तरहसे यह स्वरमण्डल समाप्त हुआ ॥ सूत्र १४ ॥

गानमें जो कायकलेश होता है, वह लौकिक कायकलेश होता है, और यह लौकिक कायकलेश इस पूर्वके सूत्रमें प्रकटही किया जा चुका है—अतः अब जो लोकोत्तर कायकलेश है उसे सूत्रकार प्रकट करते हैं—

“सत्तविहे कायकिलेसे पणत्ते” इत्यादि । सूत्र ॥ १५ ॥

टीकार्थ—ब्राह्मतपो विशेषरूप जो कायकलेश है—वह सात प्रकारका कहा गया है, जैसे स्थानातिग १ कायोत्सर्ग आदिरूप स्थानको जो अच्छी

त्रयु तारवाणी वीणाभां गवातां तान ४६ ज छे अने कंठ्ठी गवातां तान ५७ ४६ छे आ प्रकारे स्वरमंडलानुं निरूपणु अर्ही करवाभां आ०यु छे ॥ सू. १४ ॥

गायनभां जे कायकलेश थाय छे तेने लौकिक कायकलेश कही शकय. ते लौकिक कायकलेशनुं निरूपणु आगला सूत्रभां करवाभां आ०यु छे. हुवे सूत्रकार लोकोत्तर कायकलेशनुं निरूपणु करे छे.

“सत्तविहे कायकिलेसे पणत्ते” इत्यादि—

टीकार्थ—ब्राह्म तपोविशेष ३५ जे कायकलेश छे तेना स्थानातिग आदि सात प्रकारे कहा छे. कायोत्सर्ग आदि ३५ स्थाननी जे सम्यक् रीते आराधना करे छे तेभने

तिगा—कायोत्सर्गकारीत्यर्थः । कायकलेशे निर्देश्ये कायकलेशवतो निर्देशो धर्म-
धर्मिणोरभेदोपचाराद् बोध्यः । एवमग्रेऽपि । ‘स्थानातिदः’ इतिच्छायापक्षे—
स्थानमति ददातीति विग्रहः । ‘स्थानायतिकः’ इतिच्छाया पक्षे तु स्थानार्थम्
आयतिः—आ=समन्तात् यतिः=यत्नो यस्य स तथा । अर्थस्तूभयत्र कायोत्स-
र्गकारीत्येव ॥१॥ उत्कुटुकासनिकः—उत्कुटुकासनम्=पुतस्य भूमात्रलगनेन उप-
वेशनम्, तत् अस्त्यस्येति—उत्कुटुकासनिकः ॥२॥ प्रतिमास्थायी=मिक्षुप्रतिमा-
कारी ॥३॥ वीरासनिकः—वीरासनम्=निरालम्बेऽपि सिंहासनोपविष्टवद् भूत्यस्त

तरहसे करता है—ऐसा कायोत्सर्गकारी स्थानातिग है, यहाँ यद्यपि
कायकलेश निर्देश्य है, परन्तु कायकलेशवालेका जो निर्देश्य किया
गया है, वह धर्म और धर्मिके अभेद उपचारसे किया गया है। इसी
प्रकारका कथन आगेके सूत्रोंमें उत्कुटुकासनिक आदिकोंमें भी जानना
चाहिये “ठाणाहृए” की संस्कृत छाया जब स्थानातिगके बजाय स्थाना-
तिद अथवा स्थानायतिक ऐसी होती है, तब वहाँ भी “कायोत्सर्ग
कारी” ऐसाही अर्थ होता है “उत्कुटुकासनिक” जिस बैठनेमें दोनों
पुन जमीन पर नहीं लगते हैं, इस प्रकारसे बैठना इसका नाम उत्कुटुक
है, यह उत्कुटुक जिसको होता है, वह उत्कुटुकासनिक है २ मिक्षु
प्रतिमाका जो सेवन करनेवाला होता है, वह प्रतिमा स्थायी
है, अर्थात् अभिग्रह में रहने वाला है आलम्बन के
बिना भी जो जमीन पर चरणोंको टेक कर बैठा जाता है,

ने कायकलेश सहन करवे। पडे छे तेने स्थानातिग कायकलेश कडे छे अर्धी
ने के कायकलेशने निर्देश थयेतो छे छतां पणु अर्धी ने कायकलेशवाणाने
निर्देश करवामां आण्ये छे ते धर्म अने धर्मीमां अलेकता उपचारनी अपे-
क्षाये करवामां आण्ये छे. अे न प्रकारनुं कथन उत्कुटासनिक आदि पदोमां
पणु समजवानुं छे.

“ठाणाहृए” आ पढ़नी संस्कृत छाया ‘स्थानातिग’ ने पहले
‘स्थानातिद’ अथवा “स्थानायतिक” लेवामां आवे तो पणु तेमने अर्थ
“कायोत्सर्गकारी” न थाय छे.

(२) उत्कुटुकासनिक—ने आसनमां भन्ने पुत (कुला) नमीनने अउडे
नर्धी अेवी रीते उलउक आसने भेसवामां आवे छे ते आसनने उत्कुटुक
कडे छे. आ प्रकारना आसने भेसनारना कायकलेशने उत्कुटुकासनिक कायकलेश
कडे छे. (३) प्रतिमास्थायी—मिक्षुप्रतिमानी आराधना करनारने प्रतिमास्थायी
कडे छे. तेना कायकलेशने प्रतिमास्थायी कायकलेश कडे छे. (४) वीरासनिक—
कैछ पणु नतना अवलंभन बिना, चरणोने भूमि पर टेकनीने ने आसने

चरणं मुक्तजालु हृद्यवेक्षणम्, तदस्त्यस्येति तथा ॥४॥ नैपथिकः—निषद्या=आसन विशेषः, सा समपादपुता १, गोनिषद्या २, हस्तिगुण्डिका ३, पर्यङ्का ४, अर्ध-पर्यङ्का ५ । चेति पञ्चविधा, एतदर्थः पञ्चमस्थानस्य प्रथमोद्देशे नवमसूत्रे द्रष्टव्यः । तथा चक्षरति सः ॥ ५ ॥ दण्डायतिकः—पादाभ्रादि प्रसारणेन दण्डव-त्पाती ॥ ६ ॥ तथा—लगण्डशायी—लगंडं=त्रक्रहाण्डम्, तद्रच्छयनशीलः । अयं भावः—मस्तक पाष्णीदिभागानां भूमिसम्बन्धेन पृष्ठस्य च तदसम्बन्धेन शयन शीलः ॥७॥ एते यद्यपि पूर्वं पञ्चमस्थानस्य प्रथमोद्देशे व्याख्यातप्रायास्तथापि विनेयानां सौकर्यार्थमत्रापि किञ्चिद् व्याख्यात इति ॥ सू० १५ ॥

वह वीरासन है, इस वीरासनमें बैठनेवालेका आकार कुर्सीके जैसा हो जाता है, यह आसन जिसको होता है, वह वीरासनिक है, निषद्या नाम आसन विशेषका है, यह आसन विशेषरूप निषद्या—समपाद पुता '१' गोनिषद्या '२' हस्तिगुण्डिका '३' पर्यङ्का '४' और अर्ध पर्यङ्काके भेदसे '५' पांच प्रकारकी होती है, इनका अर्थ पंचम स्थानके प्रथम उद्देशमें नौवें सूत्रमें देख लेना चाहिये. इस निषद्यासे जो रहता है, वह नैपथिक है, दण्डायतिक—पादाभ्र आदिके प्रसारणसे जो दण्डके समान हो जाना होता है वह दण्डायतिक है, लगण्डशायी—मस्तक और पाष्णी आदि भागोंको भूमिमें लगाकर और पृष्ठ भागको भूमिमें नहीं लगाकर जो शयन करनेके स्वभाववाला होता है, वह लगण्डशायी

ऐसवामां आवे छे ते आसनतुं नाम वीरासनं कहे छे. आ आसने ऐसनारने आकार भुरशीना जेवा होय छे. आ वीरासनिकने जे कायकदेश थाय छे तेनु नाम वीरासनिक कायकदेश छे.

(५) नैपथिक—निषद्या ओक आसन विशेषतुं नाम छे तेना नीचें प्रमाणे पांच प्रकार कहे छे—(१) समपादपुता, (२) गोनिषद्या, (३) हस्ति-गुण्डिका, (४) पर्यङ्का अने (५) अर्धपर्यङ्का. आ पांचे प्रकारना आसन विशेषतुं वर्णन पांचभां स्थानना पड़ेला उद्देशाना नवभां सूत्रभां आपवांभां आब्युं छे, तो त्यांथी वांची देखुं. आ निषद्या रूप आसन विशेषभां ऐस-नारने नैपथिक कहे छे. ते नैपथिकने जे कायकदेश सहन करवे पडे छे तेने नैपथिक कायकदेश कहे छे.

(६) दंडायतिक—पादाभ्रने देलावनाथी जे दंडना जेवा आकारतुं आसन थर जय छे ते आसने ऐसनारने दंडायतिक कहे छे. तेने जे कायकदेश सहन करवे पडे छे तेनुं नाम दंडायतिक कायकदेश छे.

पूर्वोक्तं कायकलेशरूपं तपो मनुष्यलोके एव भवतीति मनुष्यलोकं, तत्र तान् वर्षधरपर्वतादींश्च अरूपयति—

मूलम्—जंबुद्वीवे दीवे सत्तवासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे
 १, एरवण २, हेमवण ३, हेरन्नवण ४ हरिवासे ५, रम्मगवासे
 ६, महाविदेहे ७। जंबुद्वीवे दीवे सत्त वासहरपव्वया पण्णत्ता,
 तं जहा—चुल्लहिमवंते १, महाहिमवंते २, निसढे ३, नीलवंते
 ४, रूपी ५, सिहरी ६ मंदरे ७। जंबुद्वीवे दीवे सत्त महानईओ
 पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्धं समप्पेति, तं जहा—गंगा १
 रोहिता २ हिरी ३ सीता ४ परकंता ५ सुवण्णकूला ६ रत्ता
 ७। जंबुद्वीवे द्वीवे सत्त महानईओ पञ्चत्थाभिमुहीओ लवणस-
 मुद्धं समप्पेति, तं जहा—सिंधू १ रोहितंसा हरिकंता २३
 सीतोदा नारीकंता ५४ रूप्यकूला ६ रत्तवई ७ ॥ १ ॥ धायइ-
 संडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्तवासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे १
 जाव महाविदेहे ७। धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासहर-

है, ये यद्यपि पहिले पंचम स्थानके प्रथम उद्देशमें व्याख्यातप्राय हुए हैं—फिर भी यहाँ जो पुनः इन पर कुछ कुछ प्रकाश डाला गया है, वह शिष्यजनोंको बोध होनेके निमित्त डाला गया है ॥ सूत्र १५ ॥

(७) लग'उशायी—भस्तक अने ओडी आदि भागोने भूमि पर जमा-
 वीने अने पृष्ठ भागोने भूमिने स्पर्श न थाय जेवी रीते शयन करवानो
 जेनो स्वभाव डोय छे, तेने लग'उशायी कहे छे ते लग'उशायीना कायकलेशने
 लग'उशायी कायकलेश कहे छे. आ आसनेनु' पांचमां स्थानना पहिला
 उद्देशामां प्रतिपादन थछ अकथुं छे, 'छतां पणु अडी' ते आसने पर इरी
 जे प्रकाश पाउवामां आये छे ते शिष्योने बोध आपवाने निमित्ते जे
 पाउवामां आये छे. ॥ सू. १५ ॥

पद्मया पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते १, जाव मंदरे ७। धाय-
इसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्तमहानईओ पुरत्थाभिमुहीओ
कालोयसमुद्दं समुप्पेति, तं जहा—गंगा १ जाव रत्ता ७। धायइ-
संडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त महानईओ पच्चत्थाभिमुहीओ लव-
णसमुद्दं समुप्पेति, तं, जहा—सिंधू १ जाव रत्तवई ७ ॥ २ ॥
धायइसंडदीवपच्चत्थिमद्धे णं सत्त वासा एवं चैव, णवरं-
पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समुप्पेति, पच्चत्थाभिमुहीओ
कालोयं समुद्दं समुप्पेति । सेसं तं चैव ॥ ३ ॥ पुक्खरवर-
दीवड्डपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासा तहेव, णवरं पुरत्थाभिमुहीओ
पुक्खरोदं समुद्दं समुप्पेति पच्चत्थाभिमुहीओ कालोदं समुद्दं
समुप्पेति । सेसं तं चैव ॥ ४ ॥ एत्तं पच्चत्थिमद्धे वि, णवरं
पुरत्थाभिमुहीओ कालोदं समुद्दं समुप्पेति । सव्वत्थ वासा वास-
हरपद्मया णइओ य भाणियव्वा ॥ सू० १६ ॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे सप्त वर्षाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—भरतम् १, ऐरव-
तम् २, हैमवतम् ३, हैरण्यवतम् ४, हरिवर्षम् ५, रक्ष्यकवर्षम् ६, महाविदेहः

यह पूर्वाक्त कायकलेशरूप तप मनुष्य लोकोर्मही होता है, इसलिये
अब सूत्रकार मनुष्य लोककी और मनुष्यलोक गत वर्षधर पर्वत आदि-
कोकी प्ररूपणा करते हैं—“ जंबुद्वीपे दीपे सत्त वासा पण्णत्ता ”

सूत्रार्थ—जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें सात वर्ष क्षेत्र कहे गये हैं—जैसे भरत क्षेत्र
१, ऐरवत क्षेत्र २, हैमवत क्षेत्र ३, हैरण्यवत क्षेत्र ४, हरिवर्ष क्षेत्र ५, रक्ष्यक

आगला सूत्रमा ७ कायकलेश ३५ तप्तुं निश्पण्ण कथुं तेना सहलाव
मनुष्यलोकमा ७ डाय छे, तेथी डवे सूत्रकार मनुष्यलोकनी अने मनुष्यलोकना
वर्षधर पर्वतो आदिनी प्रश्पण्ण करे छे.

“ जंबुद्वीपे दीपे सत्त वासा पण्णत्ता ” इत्यादि—

सूत्रार्थ—जम्बूद्वीप नामना द्वीपमां सात वर्षक्षेत्र क्ख्यां छे—(१) भरतक्षेत्र, (२)
ऐरवतक्षेत्र, (३) हैमवतक्षेत्र, (४) हैरण्यवतक्षेत्र, (५) हरिवर्षक्षेत्र, (६)

७। जम्बूद्वीपे द्वीपे सप्त वर्षधरपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-क्षुद्रहिमवान् १, महा-
हिमवान् २, निषधः ३, नीलवान् ४, रुक्मी ५, शिखरी ६. मन्दरः ७। जम्बू-
द्वीपे द्वीपे सप्त महानद्यः पूर्वाभिमुख्यो लवणसमुद्रं समर्पयन्ति, तद्यथा-गङ्गा १,
रोहिता २, ह्रीः ३, सीता ४, नरकान्ता ५, सुवर्णकूला ६, रक्ता ७। जम्बूद्वीपे
द्वीपे सप्त महानद्यः, पश्चिमाभिमुख्यो लवणसमुद्रं समर्पयन्ति, तद्यथा-सिन्धुः १,

वर्ष क्षेत्र ६, महाविदेह क्षेत्र ७, जम्बूद्वीपमें सात वर्षधर पर्वत कहे गये
हैं। जैसे-क्षुद्र हिमवान् १, महा हिमवान् २, निषध ३, नीलवान् ४,
शिखरी ६, और मन्दर ७, जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें सात महानदियां
कही गई है जो पूर्वाभिमुखी होकर लवणसमुद्रमें जाती हैं। जैसे-
सिन्धु १, रोहितांशा २, हरिकान्ता ३, सीतोदा ४, नारीकान्ता ५, रुक्म-
कूला ६, और रक्तावती ७, पौरस्त्यार्द्ध धातकीखण्ड द्वीपमें सात वर्ष
कहे गये हैं-जैसे-भरत यावन् महाविदेह पौरस्त्यार्द्ध धातकीखण्ड-
द्वीपमें सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं-जैसे-क्षुद्र हिमवान् १, महा हिमवान्
२, निषध ३, नीलवान् ४, रुक्मी ५, शिखरी ६, पूर्व मन्दर ७, धातकी
खण्ड द्वीपमें सात महानदियां पूर्वाभिमुखी होकर कालोदसमुद्रमें जाती
हैं-जैसे-गङ्गा १, रोहिता २, ह्री ३, सीता ४, नरकान्ता ५, सुवर्णकूला ६,
रक्ता ७, पौरस्त्यार्द्ध धातकीखण्डद्वीपमें सात महानदियां पश्चिमाभि-
मुखी होकर लवणसमुद्रमें जाती हैं-जैसे-सिन्धु १, रोहितांशा २,

रभ्यकवर्षक्षेत्र, अने (७) महाविदेहक्षेत्र

जम्बूद्वीपमां सात वर्षधर पर्वतो आवेत्ता छे—(१) क्षुद्र डिमवान् (२)
महाडिमवान् (३) निषध, (४) नीलवान् (५) शिखरी, (६) अने मन्दर (७)—

जम्बूद्वीपमां सात महानदीयो कही छे, जे पूर्वमां वहीने लवणसमु-
द्रने भजे छे. तेमनां नाम आ प्रमाणे छे—(१) सिन्धु, (२) रोहितांशा, (३)
हरिकान्ता, (४) सीतोदा, (५) नारीकान्ता, (६) रुक्मकूला अने (७) रक्तावती

धातकीखण्ड द्वीपना पूर्वार्धमां सात वर्षक्षेत्र कहां छे-भरतथी लधने
महाविदेह पर्यन्तना सात क्षेत्रो अर्धी अहणु करवा. धातकीखण्ड द्वीपना
पूर्वार्धमां सात वर्षधर पर्वतो आवेत्ता छे—(१) क्षुद्र डिमवान् (२) महा
डिमवान् (३) निषध, (४) नीलवान् (५) रुक्मी, (६) शिखरी अने (७) पूर्वमन्दर.

धातकीखण्ड द्वीपमां सात महानदीयो पूर्वमां वहीने कालोद समुद्रने
जध भजे छे. तेमनां नाम—(१) गंगा, (२) रोहिता, (३) ह्री, (४) सीता
(५) नरकान्ता, (६) सुवर्णकूला अने (७) रक्ता धातकीखण्ड द्वीपना पूर्वार्धनी
आ सात महानदीयो पश्चिम तरङ्ग वहीने लवण समुद्रने जध भजे छे—

રોહિતાંશા ૨, હરિકાન્તા ૩, સીતોદા ૪, નારીકાન્તા ૫, રુક્મકૂલા ૬, રક્તાવતી ૭ ॥૧॥ ધાતકીખણ્ડદ્વીપપૌરસ્ત્યાર્દેં સ્વલુ સપ્ત વર્ષાણિ પ્રજ્ઞમાનિ, તદ્યથા-ભારતં ૧ યાવદ્ મહાવિદેહઃ ૭। ધાતકીખણ્ડદ્વીપપૌરસ્ત્યાર્દેં સપ્ત વર્ષધરપર્વતાઃ પ્રજ્ઞમાઃ, તદ્યથા-હુદ્રહિમવાન્ ૧ યાવદ્ મન્દર ૭। ધાતકીખણ્ડદ્વીપપૌરસ્ત્યાર્દેં સ્વલુ સપ્ત મહાનદ્યઃ પૂર્વાભિમુખ્યઃ કાલોદસમુદ્રં સમર્પયન્તિ, તદ્યથા-ગઙ્ગા ૧, યાવદ્ રક્તા ૭। ધાતકીખણ્ડદ્વીપપૌરસ્ત્યાર્દેં સ્વલુ સપ્ત મહાનદ્યઃ પશ્ચિમાભિમુખ્યઃ લવણસમુદ્રં સમર્પયન્તિ, તદ્યથા-સિન્ધુઃ ૧, યાવદ્ રક્તાવતી ૭। ધાતકીખણ્ડદ્વીપપાશ્ચાત્યાર્દેં સ્વલુ સપ્ત વર્ષાણિ એવમેત્ર, નવરં પૂર્વાભિમુખ્યો લવણસમુદ્રં સમર્પયન્તિ, પશ્ચિમાભિમુખ્યઃ કાલોદં સમુદ્રં સમર્પયન્તિ । શેષં તદેવ ॥૨॥ પુષ્કરવરદ્વીપાર્દે-પૌરસ્ત્યાર્દેં સ્વલુ સપ્ત વર્ષાણિ તથૈવ, નવરં પૂર્વાભિમુખ્યઃ પુષ્કરોદં સમર્પયન્તિ,

હરિકાન્તા ૩, સીતોદા ૪, નારીકાન્તા ૫, રુક્મકૂલા ૬, રક્તાવતી ૭, પાશ્ચાત્યાર્ધ ધાતકી ખણ્ડમેં સાત વર્ષ ક્ષેત્ર-ભરત ક્ષેત્ર ૧, એરવત ક્ષેત્ર ૨, હૈમવત ક્ષેત્ર ૩, હૈરણ્યવત ક્ષેત્ર ૪, હરિવર્ષ ક્ષેત્ર ૫, રમ્યકવર્ષક્ષેત્ર ૬, ઔર મહાવિદેહ ક્ષેત્ર ૭, કહે ગયેહેં-યહાં જો પૂર્વાભિમુખી સાત નદિયાં હેં, વે લવણ સમુદ્રમેં જાતીહેં, ઔર જો પશ્ચિમાભિમુખી સાત મહાનદિયાં હેં, વે કાલોદસમુદ્રમેં જાતી હેં । બાકીકા ઔર સબ કથન પૂર્વ જૈસા હી જાનના ચાહિયે પૌરસ્ત્યાર્ધ પુષ્કરવરદ્વીપાર્ધમેં સાત સાત વર્ષ પૂર્વોક્ત નામવાલે હી કહે ગયે હૈ, યહાં જો પૂર્વાભિમુખી નદિયાં હેં વે પુષ્કરોદસમુદ્રમેં જાતી હેં, ઔર જો પશ્ચિમાભિમુખી નદિયાંહેં વે કાલોદસમુદ્રમેં જાતી હેં । બાકીકા ઔર સબ કથન પૂર્વોક્ત જૈસા હી હૈ । ઇસી તરહકા

(૧) સિન્ધુ, (૨) રોહિતાંશા, (૩) હરિકાન્તા, (૪) સીતોદા, (૫) નારીકાન્તા
(૬) રુક્મકૂલા અને (૭) રક્તાવતી.

ધાતકીખંડ દ્વીપના પશ્ચિમાર્ધમાં નીચે પ્રમાણે સાત વર્ષક્ષેત્ર છે—

(૧) ભરતક્ષેત્ર, (૨) એરવત ક્ષેત્ર, (૩) હૈમવતક્ષેત્ર, (૪) હૈરણ્યવતક્ષેત્ર, (૫)
(૬) રમ્યકવર્ષક્ષેત્ર અને (૭) મહાવિદેહક્ષેત્ર. અહીં જે પૂર્વમાં વહેતી મહા નદીઓ કહી છે તે લવણસમુદ્રમાં જઈ મળે છે, અને પશ્ચિમ તરફ વહેતી સાત મહાનદીઓ કાલોદ સમુદ્રમાં જઈ મળે છે. બાકીનું સમસ્ત કથન આગળના કથન પ્રમાણે સમજવું. પુષ્કરવરદ્વીપાર્ધના પૂર્વ ભાગમાં સાત સાત વર્ષક્ષેત્રનાં નામે ઉપર પ્રમાણે જ સમજવા. અહીં જે મહાનદીઓ પૂર્વ તરફ વહે છે, તેઓ પુષ્કરોદ સમુદ્રમાં જઈ મળે છે અને જે મહાનદીઓ પશ્ચિમ તરફ વહે છે, તેઓ કાલોદ સમુદ્રમાં જઈ મળે છે. બાકીનું સમસ્ત કથન પૂર્વોક્ત કથન પ્રમાણે જ સમજવું લેવું. એજ પ્રકારનું કથન તેના પશ્ચિમાર્ધ

પશ્ચિમાભિમુખ્યઃ કાલોદં સમુદ્રં સમર્પયન્તિ । શેષં તદેવ ॥૪॥ एवं पाश्चात्यार्द्धेऽपि,
नवरं पूर्वाभिमुख्यः कालोदं समुद्रं समर्पयन्ति, पश्चिमाभिमुख्यः पुष्करोदं समुद्रं
समर्पयन्ति । सर्वत्र वर्षाणि वर्षधरपर्वताः नद्यश्च भणितव्याः ॥ सू० १६ ॥

ટીકા—‘ જંબુદીવે દીવે ’ इत्यादि ।

વ્યાખ્યા નિગદસિદ્ધા । नवरं समर्पयन्ति, समुद्रे मिलन्तीत्यर्थः ॥ सू० १६ ॥

મનુષ્યક્ષેત્રાધિકારાત્ સમ્પતિ તત્સમ્બન્ધિત્વેન અતીતાયામુત્સર્પિણ્યામ્ અસ્યા-
મવસર્પિણ્યાંચ જાતાનાં કુલકરાણામ્, एतदवसर्पिणी समुत्पन्नकुलकरभार्याणाम्,
આગમિષ્યન્ત્યામુત્સર્પિણ્યાં સમુપત્સ્યમાનાનાં કુલકરાણામ્, वृक्षाणां, नीतीनाम्,
चक्रवर्तिसम्बन्धिनामेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियरत्नानां, दुष्प्रमासुप्रमालक्षणस्य च
वक्तव्यतां चतुर्भिः सूत्रैराह—

मूलम्—जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सपिणीए
सत्त कुलगराहुत्था, तं जहा—मित्तदामे १ सुदामे २ य सुपासे
३ य सयंपभे ४। त्रिमलघोसे ५ सुघोसे ६ य, महाघोसे ७
य सत्तमे ॥ १ ॥ जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसपि-
णीए सत्त कुलगरा हुत्था, तं जहा—पढमित्थविमलवाहण १
चक्रखुभ २ जससं ३ चउत्थमभिचंदे ४। तत्तो य पसेणई ५
पुण, मरुदेवे ६ चेवनाभी ७ य ॥ १ ॥ एएसि णं सत्तण्हं,
कुलगराणं सत्त भारियाओ हुत्था, तं जहा—चंदजसा १ चंद-

કથન પાશ્ચાત્યાર્દ્ધમેં બી જાનના ચાહિયે. विशेषता यहां ऐसी हैं—कि
जो यहां पूर्वाभिमुखी नदियां हैं, वे कालोदसमुद्रमें जाती हैं, और
जो पश्चिमाभिमुखी नदियां हैं, वे पुष्करोदसमुद्रमें जाती हैं । सर्वत्र वर्ष
वर्षधर पर्वत, और नदियां कह लेना चाहिये “ समर्पयन्ति ” का अर्थ
है समुद्रमें मिलती हैं ॥ सू० १६ ॥

વિષે પણ ગ્રહણ કરવું જોઈએ આ કથનમા વિશેષતા એટલી જ છે કે અહીં
પૂર્વ તરફ વહેતી નદીઓ કાલોદ સમુદ્રમા જઈ મળે છે અને પશ્ચિમ તરફ
વહેતી નદીઓ પુષ્કરોદ સમુદ્રમાં જઈ મળે છે સર્વત્ર વર્ષક્ષેત્રો, વર્ષધર
પર્વતો અને નદીઓનું કથન કરવું જોઈએ. “ સમર્પયન્તિ ” આ પદનો અર્થ
“ સમુદ્રને મળે છે, ” એવો થાય છે. ॥ સૂ. ૧૬ ॥

कंता २ सुख्वा ३ षडिख्वा ४ चक्रखुमंता ५ य । सिरिकंता ६
 मरुदेवी ७, कुलगरइत्थीणनामाइं ॥ २ ॥ जंबुदीवे द्वीवे
 भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा भवि-
 स्संति, तं जहा-मियवाहण १ सुभोमे २ य सुप्यमे ३ य सयं-
 पमे ४। दत्ते ५ सुहुमे ६ सुबंधू ७ य, आगमिस्सेण होस्सइ
 ॥ १ ॥ विमलवाहणे णं कुलगरे सत्तविहा रुक्खा उवभोग-
 ताए हवमागच्छंसु, तं जहा-सत्तंगया १ य क्षिंगाय २ चित्तंगा
 ३ चेत्र होंति चित्तरसा ४। मणियंगा ५ य अणियणा ६
 सत्तमगा कप्परुक्खा ७ य ॥ १ ॥ सू० १७ ॥

छाया-जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अतीतायां अस्सर्पिण्यां सप्त कुलकराः अभवन्,
 तद्यथा-वित्रदामा १, सुदामा २ च, सुपार्श्वश्च ३ समयम्प्रभः ४। विमलघोषः ५ सुघोषश्च

मनुष्यक्षेत्रके अधिकारको लेकर अब सूत्रकार मनुष्यक्षेत्र सम्बन्धी
 होनेसे अतीत उत्सर्पिणीमें और इस अवसर्पिणीमें उत्पन्न हुए कुल-
 करोंकी, तथा इस अवसर्पिणीमें उत्पन्न हुए कुलकरकी भार्याओंकी,
 तथा आगामी उत्सर्पिणीकालमें उत्पन्न होनेवाले कुल करोंकी वृक्षोंकी,
 चक्रवर्ती सम्बन्धी नीतियोंकी, एकेन्द्रिय, एवं पंचेन्द्रिय रत्नोंकी, और
 दुष्पमा सुष्पमारूप कालकी वस्तुव्यता चार सूत्रों द्वारा कहते हैं-

“ जंबुद्वीवे द्वीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए ” इत्यादि सू० १७ ॥
 सूत्रार्थ-जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें भरतवर्षमें अतीत उत्सर्पिणीकालमें सात

मनुष्यक्षेत्रने अधिकार आदी रह्यो छे तेथी हुवे सूत्रकार मनुष्यक्षेत्रमां
 नेने सहसाव छे अथा भूतकालिन उत्सर्पिणीमां उत्पन्न थयेला अने आ
 अवसर्पिणीमां उत्पन्न थयेला कुलकरोनी तथा आ अवसर्पिणीमां उत्पन्न थयेली
 कुलकरोनी भार्याओनी, तथा आगामी उत्सर्पिणीकालमां उत्पन्न थनारा कुल-
 करोनी, वृक्षोनी, चक्रवर्ती संभधी नीतिओनी, एकेन्द्रिय अने पंचेन्द्रिय
 रत्नोनी अने दुष्पमा सुष्पमा इय कालनी वस्तुव्यतातुं चार सूत्रो द्वारा निरूपण
 करे छे. “ जंबुद्वीवे द्वीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए ” इत्यादि—

सूत्रार्थ-जम्बूद्वीप नामका द्वीपना भरतवर्षमां अतीत उत्सर्पिणीकालमां नीचे

६ महाघोषश्च ७ सप्तमः ॥१॥ जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अस्यामवसर्पिण्याम्
सप्त कुलकराः अभवन्, तद्यथा—प्रथमोऽत्र विमलवाहनः १ चक्षुष्मान् २ यशस्वान्
३, चतुर्थोऽभिचन्द्रः ४। ततश्च प्रसेनजित् ५ पुनर्मरुदेवश्चैव ६ नाभिश्च ७ ॥१॥
एतेषां खलु सप्तानां कुलकराणां सप्त भार्या अभवन्, तद्यथा—चन्द्रयशाः १, चन्द्र-
कान्ता २ सुरूपा ३, प्रतिरूपा ४ चक्षुःकान्ता ५ च । श्रीकान्ता ६ मरुदेवी ७
कुलकरस्त्रीणां नामानि ॥२॥ जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे आगमिष्यन्त्यामुत्सर्पिण्यां
सप्त कुलकरा भविष्यन्ति, तद्यथा—मितवाहन १ सुभौमश्च २ सुप्रभश्च ३ स्वयंप्रभः
४। दत्तः ५ सूक्ष्मः ६ सुबन्धुश्च ७ आगमिष्यति भविष्यति ॥१॥ विमलवाहने
खलु कुलकरे सप्तविधा वृक्षा उपभोग्यतया हव्यमागच्छन् तद्यथा—मत्ताङ्गकाश्च १

कुलकर हुए हैं । जैसे—मित्रदाना १, सुदामा २, सुपार्श्व ३, स्वयंप्रभ
४, विमलघोष ५, सुवोष ६, और सप्तम महाघोष ७ । १ ।

जम्बूद्वीपमें भरतवर्षमें इस अवसर्पिणीमें सात कुलकर हुए हैं—
जैसे—विमलवाहन १, चक्षुष्मान २, यशस्वान् ३, अभिचन्द्र ४, प्रसेनजित्
५, मरुदेव ६, और नाभि ७ इस सात कुलकरोंकी सात भार्याएँ हुई
हैं—जिनके नाम इस प्रकारसे हैं—चन्द्रयशा १, चन्द्रकान्ता २, सुरूपा ३,
प्रतिरूपा ४, चक्षुःकान्ता ५ श्रीकान्ता ६, एव मरुदेवी ७—२

जम्बूद्वीपमें भरतवर्षमें आगामी उत्सर्पिणीमें सात कुलकर होंगे—
जिनके नाम इस प्रकारसे हैं—मितवाहन १, सुभौम २, सुप्रभ ३, स्वयं-
प्रभ ४, दत्त ५, सूक्ष्म ६, और सुबन्धु ७, विमलवाहन कुलकरके होने
पर सात प्रकारके वृक्ष उपभोग्य रूपसे काममें आये—जैसे—मत्ताङ्गका १,

प्रमाणे सात कुलकरों थर्ड गया छे—(१) मित्रदाना, (२) सुदामा, (३) सुपार्श्व
(४) स्वयंप्रभ, (५) विमलघोष, (६) सुवोष अने (७) महाघोष । १ ।

जम्बूद्वीपना भरतवर्षमां आ अवसर्पिणीकाणमां सात कुलकरों थर्ड
गया छे तेमनां नाम आ प्रमाणे इतां—(१) विमलवाहन, (२) चक्षुष्मान,
(३) यशस्वान, (४) अभिचन्द्र, (५) प्रसेनजित (६) मरुदेव अने (७) नाभि
आ सात कुलकरोंनी सात भार्याओंनां नाम आ प्रमाणे इतां—(१) चन्द्रयशा
(२) चन्द्रकान्ता, (३) सुरूपा, (४) प्रतिरूपा, (५) चक्षुःकान्ता, (६) श्रीकान्ता
अने (७) मरुदेवी । २ ।

जम्बूद्वीपना भरतवर्षमां आगामी उत्सर्पिणीकाणमां आ सात कुलकरों
थर्डे—(१) मितवाहन, (२) सुभौम, (३) सुप्रभ, (४) स्वयंप्रभ, (५) दत्त
(६) सूक्ष्म अने (७) सुबन्धु ।

विमलवाहन कुलकरना समयमा सात प्रकारना वृक्षा लोकेने उपलब्ध
इये काम आया. ते सात प्रकारना वृक्षानां नामो आ प्रमाणे समजवा—

भृङ्गाश्च २ चित्राश्चैव ३ भवन्ति चित्ररसाः ४। मण्यङ्गाश्च ५ अनग्नाश्च ६ सप्तमकाः
कल्पवृक्षाश्च ७ ॥ १ ॥ सू० १७ ॥

टीका—‘ जंबुद्वीवे दीवे इत्यादि—

अतीनायामुत्सर्पिण्यां मध्यजम्बूद्वीपस्थ भारतवर्षे मित्रदासादयः सप्त कुल-
कराः=नीतिमर्यादाकराः अभवन् । वर्तमानायामवसर्पिण्यां जम्बूद्वीपस्थभारत-
वर्षे विमलवाहनादयः सप्तकुलकरा अभवन् । विमलवाहनादीनां कुलकराणां क्रमेण
चन्द्रयशाः प्रभृतयः सप्त मर्यादा अभवन् । जम्बूद्वीपस्थभारते वर्षे आगामिण्यामुत्स-
र्पिण्यां मित्रवाहनादयः सप्त कुलकरा भविष्यन्ति । तदाह—‘ नियवाहणे सुभोमे य ’
इत्यादिना । अर्थः स्पष्टः । नवरम्—‘ आगमिस्सेज ’ आगमिष्यति=भविष्यति
काले । तथा—विमलवाहने प्रथमकुलकरे वर्तमाने सप्तप्रकारका वृक्षा उपभोग्य-
तया=तात्कालिकमनुष्याणां भोजनाद्युपभोगसंपादकतया ह्यमिति वाक्याल-
ङ्कारे आगच्छन्=उदपद्यन्त, तद्यथा—प्रत्ताङ्गकाः—मत्तं=मदो=हर्षः, तत्कारणभूतः

भृङ्ग २, चित्राङ्ग ३, चित्ररस ४, मण्यङ्ग ५, अनग्न ६, और कल्पवृक्ष
७ तात्पर्य इसका ऐसा है कि अतीत उत्सर्पिणीमें मध्य जम्बूद्वीपमें स्थित
भारतवर्षमें मित्रदास आदि कुलकर नीतिमर्यादाके कर्ता हुए, जम्बूद्वी-
पस्थ भारतवर्षमें वर्तमान अवसर्पिणीमें विमलवाहनादि सात कुलकर
हुए विमलवाहनादिक कुलकरोंकी क्रमशः चन्द्रयशा आदि सात मर्यादा
हुई हैं । जम्बूद्वीपस्थ भारतवर्षमें आगामी उत्सर्पिणीमें मित्रवाहनादिक
सात कुलकर होंगे । प्रथम कुलकर विमलवाहनके रहने पर सात
प्रकारके कल्पवृक्ष तात्कालिक मनुष्योंके भोजन आदि उपभोगके संपा-
दक हुए प्रत्ताङ्गके हर्षके कारणभूत पेय पदार्थ वहाँ अतः शब्दसे गृहीत
हुए हैं । अथवा—आनन्दजनक पेय वस्तु ही अवयव जिनका है, ऐसे

(१) भृङ्गाङ्क, (२) भृङ्ग, (३) चित्राङ्क, (४) चित्ररस, (५) मण्यङ्क, (६)
अनग्न अने (७) कल्पवृक्ष आ सूत्रानो लापार्थ नीचे प्रमाणे छे—

नीतिमर्यादानां स्थापनारने कुलकर कहे छे. अतीत उत्सर्पिणीकाणमां
मध्य जम्बूद्वीपना भारतवर्षमां मित्रदास आदि सात कुलकरों तथा हुता.
जम्बूद्वीपना भारतवर्षमां वर्तमान अवसर्पिणीकाणमां विमलवाहन आदि सात
कुलकरों थर्थ गया छे ते विमलवाहन आदि सात कुलकरोंनी सात लार्या-
ओनां नाम अनुक्रमे चन्द्रयशा वगेरे हुता जम्बूद्वीपमां आवेला भारतवर्षमां
आगामी उत्सर्पिणीकाणमां मित्रवाहन आदि सात कुलकरों थर्थे

विमलवाहन कुलकरना काणमा रहेता लोकोने लोकोनादि उपलोगने
भाटे उपयोगी ओवां सात प्रकारना कल्पवृक्षोंनी प्राप्ति थर्थ.

(१) भृङ्गाङ्क—आनन्दजनक पेयपदार्थ अली ‘ मत्त ’ यह वडे गृहीत
थया छे. अथवा आनन्दजनक पेय वस्तु ज जेमना अवयवो छे ओवां आन-

पेयपदार्थ इह मत्तशब्देनोच्यते, तस्य अङ्गका=हेतुभूताः, अथवा मत्त=आनन्द-
जनकं पेयवस्तु, तदेवाङ्गम्=अथवा येषां ते तथा, आनन्दप्रदपेयपदार्थदायका-
वृक्षा इत्यर्थः १। शृङ्गाः=शृङ्गारादिविधपात्रदायका वृक्षविशेषा २। चित्राङ्गाः=
विविधमाल्यसम्पादका वृक्षाः ३। चित्ररसाः-चित्राः=मधुरादिभेदभिन्ना अनेक-
रूपा रसा येभ्यः समुपलभन्ते तथाभूताः ४। मण्यङ्गाः-मणीनाम्=मणिमयभूष-
णानाम् अङ्गभूताः=हेतुभूता मण्यङ्गाः, अथवा-मणयोऽङ्गानि येषां ते तथा-मणि-
मयभूषणदायकाः ५। अनग्नाः=विविधवस्त्रदायकाः वृक्षाः । वस्त्रप्रदानेन जनानां
नग्नत्वपरिहरणात् अनग्नेति संज्ञा बोध्या ६। तथा-कल्पवृक्षाः-उक्तव्यतिरिक्तानां
सकलमनोरथानां पूरका वृक्षविशेषाः । एते सप्तपि कल्पवृक्षा युगजनानामुपभोग-
पूरकाः विष्वक्वाहननामप्रथमकूलकरसमये प्रादुर्भूता इति विज्ञेयम् ॥सू० १७॥

आनन्ददायक पदार्थोंके देनेवाले जो वृक्ष हैं, वे मत्ताङ्गक हैं। विविध प्रकारके शृङ्गार आदि पात्रोंके देनेवाले जो वृक्ष विशेष हैं, वे यहाँ शृङ्ग शब्द से लिये गये हैं। विविध माल्योंके सम्पादक जो वृक्ष विशेष हैं वे चित्राङ्ग शब्दसे लिये गये हैं। मधुरादि भेदसे भिन्न अनेक रस जिनसे प्राप्त होते हैं वे यहाँ चित्र शब्दसे लिये गये हैं। मणिमय भूषणोंके जो कारण होते हैं वे, अथवा मणिमय भूषणोंके देनेवाले जो होते हैं वे वृक्ष यहाँ मण्यङ्ग शब्दसे लिये गये हैं। विविध वस्त्रोंके देनेवाले जो विविध वृक्ष हैं, वे अनग्न शब्दसे लिये गये हैं। इनकी अनग्न ऐसी संज्ञा इसलिये हुई है, कि ये वस्त्रोंके देनेसे मनुष्योंकी नग्नताको दूर करते हैं। उक्त इन वृक्षोंसे भिन्न जो वृक्ष सकल मनोरथोंके पूरक होते हैं वे कल्पवृक्ष हैं। ये सात प्रकारके कल्पवृक्ष युग जनकोंके उपभोगके

हृदायक पदार्थों उत्पन्न करनेवाले वृक्षोने मत्ताङ्गक कहे छे. (२) विविध प्रकार-
रना शृङ्गार आदि पात्रों आपनारां वृक्षोने शृङ्गवृक्षो कहे छे. (३) विविध
माल्याओं केभांथी अने छे अेषां वृक्षोने चित्राङ्ग वृक्षो कहे छे (४) वे वृक्षो
मधुरादि विविध रसोना प्रदाता होय छे तेमने चित्ररस कहे छे (५) मणि-
मय भूषणोभां अेषो कारणभूत होय छे तेमने, अथवा मणिमय भूषणो
देनारां वे वृक्षो होय छे तेमने अडी 'मण्यङ्ग' पद वडे अहणु करवामां
आव्या छे (६) विविध वस्त्रो प्रदान करनेवाले वृक्षोने 'अनग्न' पद द्वारा
अहणु करवामां आव्या छे तेमने अनग्न कहेवानु कारण अे छे के तेयो
मनुष्योने वस्त्रनुं प्रदान करीने तेमनी नग्नताने हांकवामां मददूप अने छे.
(७) वे वृक्षो सकल मनोरथो पूर्ण करनेवाले होय छे. धृष्टित वस्तु आप-
नारां होय छे, ते वृक्षोने कल्पवृक्षो कहे छे. आ साते प्रकारना कल्पवृक्षो ते

સત્ત્વપિ કુઠ્ઠરુરેષુ સત્યપરાધે કસ્યચિદ્ દણ્ડો ભવતિ इति दण्डनीतिमाह—

મૂલમ્—સત્ત્વિહા દંડનીઈ પળ્ળત્તા, તં જહા—હકારે ૧, મકારે ૨, ધિક્કારે ૩, પરિભાસે ૪, મંડલવંધે ૫, ચારણ ૬, છવિચ્છેદ ૭ ॥ સૂ૦ ૧૮ ॥

છાયા—સત્ત્વિધા દણ્ડનીતિઃ પ્રજ્ઞા, તથથા—હકારો ૧, માકારો ૨, ધિક્કારઃ ૩ પરિમાપા ૪, મળ્ડલવન્ધઃ ૫, ચારકઃ ૬ છવિચ્છેદઃ ૭ ॥ મૂ૦ ૧૮ ॥

ટીકા—‘ સત્ત્વિહા ’ इत्यादि—

દણ્ડનીતિઃ—દણ્ડનમ્—દણ્ડઃ=અપરાધિનામનુશાસનં, તત્ર, તસ્ય, તદ્રૂપા વા નીતિઃ, દણ્ડનીતિઃ, મા સત્ત્વિધા પ્રજ્ઞા । તથથા—હકારઃ—‘ ઠક્ ’ इत्यधिकेषर्थः,

પૂરક હોતે હૈ, સો યે સ્નાનોંઠી પ્રકારકે કલ્પવૃક્ષ વિમલવાહન નામકે પ્રથમ કુઠ્ઠરુરકે સમય ઉત્પન્ન હુણ કુઠ્ઠરુરોંકે મૌજૂદ હોને પર મી કિસીસે અપરાધ હો જાતા હૈ, ઓર ડસકા દણ્ડ દિયા જાતા હૈ, અતઃ દણ્ડ નીતિ કહતે હૈ ॥ સૂ૦ ૧૭ ॥

“ સત્ત્વિહા દંડનીઈ પળ્ળત્તા ” इत्यादि ॥ સૂ૦ ૧૮ ॥

ટીકાર્થ—દણ્ડનીતિ સાત પ્રકારકી કહી ગઈહૈ । જૈસે ૧ હકાર, ૨ માકાર, ૩ ધિક્કાર, ૪ પરિભાષા, ૫ મળ્ડલવન્ધ, ૬ ચારક ઓર છવિચ્છેદ ૭ ।

અપરાધિયોંકો અનુશાસિત કરના ડસકા નામ દણ્ડ હૈ, દણ્ડકી, અથવા દણ્ડરૂપ જો નીતિ હૈ, વહ દણ્ડનીતિ હૈ, યહ દણ્ડનીતિ સાત પ્રકારકી જો પૂર્વોક્ત રૂપસે કહી ગઈ હૈ, સો ડસકા તાત્પર્ય ંમા હૈ—

યુગના લોકોના ઉપલોગની સામગ્રી પૂરી પાડનારાં હતાં. આ સાતે પ્રકારના કલ્પવૃક્ષોની ઉત્પત્તિ વિમલવાહન નામના પહેલા કુલકરના સમયમાં થઈ હતી ॥ સૂ ૧૭ ॥

કુલકરો મૌજૂદ હોય ત્યારે પણ કોઈને કોઈ વ્યક્તિ દ્વારા અપરાધ થઈ નાથ છે. અપરાધીને શિક્ષા કરવામાં આવે છે, તેથી હવે સૂત્રકાર દંડ-નીતિનું કથન કરે છે. “ સત્ત્વિહા દંડનીઈ પળ્ળત્તા ” इत्यादि—(સૂ ૧૮)

દંડનીતિ ૭ પ્રકારની કહી છે—(૧) હકાર, (૨) માકાર, (૩) ધિક્કાર, (૪) પરિભાષા, (૫) મંડલવન્ધ, (૬) ચારક અને (૭) છવિચ્છેદ.

અપરાધીઓને શિક્ષા કરવી તેનું નામ દંડ છે. દંડમાં, દંડની અથવા દંડ રૂપ જે નીતિ છે, તેનું નામ દંડનીતિ છે. તે દંડનીતિના હકાર આદિ પૂર્વોક્ત સાત પ્રકાર કહ્યા છે.

तस्य करणं हकारः, अयं भावः—प्रथमद्वितीयकुलकरसमये कृतापराधस्य जनस्य दण्डो हकारमात्रमासीत् । तेनैवापराधको हतसर्वस्वमिव आत्मानं मन्यमानो नापराधस्थाने पुनः प्रवर्तते, इति । १ । माकारः—माकरणं माकारः—‘माकुरु’ इति प्रतिषेधार्थकस्य वचनस्य उच्चारणम् । अयं दण्डस्त्वृतीयचतुर्थकुलकरकाले महत्यपराधे प्रवर्तते । सामान्यापराधे तु पूर्वोक्त एव दण्ड इति ॥ २ ॥ धिक्कारः—धिगित्यधिकेपे, तस्य करणं=कथनं धिक्कारः । पञ्चमषष्ठसप्तमकुलकरकाले मह-

अधिकेप अर्थमें हक् धातु है, इस हक्का करना सो हक्कार है, तात्पर्य यह है कि प्रथम द्वितीय कुलकरके समय जो मनुष्य अपराध करता था, उसके लिये हक्कार मात्र दण्ड था, इस दण्डसे ही वह अपने आपको सब-कुछ हर लिया गया है, जिसका ऐसा मानता था और फिर वह अपराध नहीं करता था १ माकार २ “मा” ऐसा करना इसका नाम माकार है—मत करो इस प्रकारके प्रतिषेधक वचनका उच्चारण करना—सो माकार है, यह दण्ड चतुर्थ कुलकरके समयमें बड़े भारी अपराधके होने पर दिया जाता था सामान्य अपराध होने पर तो पूर्वोक्त हक्कार रूपही दण्ड दिया जाता था “धिग्”—यह शब्द अधिकेप अर्थमें आता है । धिक्कारका देना यह धिक्कार है, यह दण्ड पंचम और छठे तथा सातवें कुलकरके समयमें बड़े भारी अपराध हो जाने पर प्रचलित

(१) डक्कार—“हक्” धातु अधिकेप अर्थमें वाचक छे आ डक् करवो-तेनुं नाम डक्कार छे. “तमे आवुं अनुचित कार्य कथुं ।” आ प्रकारे डडेवुं तेनुं नाम डक्कर दंड छे पडेवुं अने पीला कुलकरना समयमां अपराधीने डक्कार दंड ज देवामां अपनो डने। ते दंडने पात्र अननार व्यक्तिने ओवुं लागतुं डतुं के जणु तेनुं सर्वस्व डरी देवामां आवु छे. आटवो ज दंड सहन करनार व्यक्ति डरी अपराध करवानी डिमत करती नहीं.

(२) माकार—“मा” आ पठ निषेधवाचक छे. “आ प्रकारनुं कृत्य न करो.” आ प्रकारना प्रतिषेधक वचननुं उच्चारणु करवुं तेनुं नाम ‘माकार’ छे. त्रीज अने योथा कुलकरना समयमां आ प्रकारनो दंड प्रचलित डतो. धणु लारे अपराध करनारने ज आ दंडने पात्र अनवु पडतुं डतुं. सामान्य अपराध करनारने तो त्यारे पणु डक्कर दंड ज देवामां आवतो डने.

(३) धिक्कार—“धिग्” आ धातु अधिकेपना अर्थमां अपराध छे. केध अपराधीने “धिक्कार छे तने, आवुं काम करतां तने शरम पणु न आवी ?”, आ प्रमाणु धिक्कारवो तेनुं नाम धिक्कार दंड छे, पांयमां, छट्टा

ત્યપરાધે ધિક્કારો દ્વન્ડઃ, મધ્યમાપરાધે માકારો દ્વન્ડઃ, જઘન્યાપરાધે ત્વ હકારો દ્વન્ડ ઇતિ વોધ્યમ્ । ઉક્તં ચ હકારાદિવિષયે —

“ પદમવીયાણપદમા, ત્વચ્ચઉત્થાણ અભિનવા વીયા ।

પંચમ છદ્વસ્સ ય સત્તમસ્સ તદ્વયા અભિનવા ઉ ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—પ્રથમદ્વિતીયયોઃ પ્રથમા તૃતીયચતુર્થયોરભિનવા દ્વિતીયા ।

પદ્મપદ્મયોશ્ચ સત્તમસ્ય તૃતીયા અભિનવા તુ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ॥ ૩-॥

તથા—પરિભાષા-પરિભાષણં પરિભાષા-અપરાધિનં પ્રતિ ‘ માકુરુ ’ હત્યેવં સક્ષોપકથનમ્ ॥ ૪ ॥ તથા-મળ્ડલવન્ધઃ-મળ્ડલં=નિર્દિષ્ટં ક્ષેત્રં, તત્ર વન્ધઃ= ‘ નાતઃ પ્રદેશાદ્ ગન્તવ્ય ’-મિત્યાજ્ઞાકરણમ્ । યદ્વા-પુરુષા મળ્ડલરૂપેણ=સમુદાયરૂપેણ સમુદિતા મા મન્વિત્યાજ્ઞા કરણં મળ્ડલવન્ધઃ ॥ ૫ ॥ ચારકઃ-

થા મધ્યમ અપરાધમેં જો માકાર રૂપ હી દ્વન્ડ થા, એવં જઘન્ય અપરાધ મેં હકાર રૂપ દ્વન્ડ થા, હકાર આદિકે વિષયમેં એમા કહા ગયાં હૈ-

“ પદમ વીયાણ પદમા ” હત્યાદિ ।

અપરાધીકે પ્રતિ એમા કુપિત હોકર કહના કિ તુમ અમુક કામ મત કરો મળ્ડલ નામ ક્ષેત્રકા હૈ, નિર્દિષ્ટ ક્ષેત્રમેં અપરાધીકો રોક કર રાખના યહ મળ્ડલ વન્ધ હૈ-હસ સ્થાનસે તુમ આગે નહીં જાના હસ પ્રકારકી આજ્ઞા કરના સો યદ્વી મળ્ડલ વન્ધ હૈ । અથવા-પુરુષ મળ્ડલ રૂપસે સમુદાય રૂપસે એકત્રિત નહીં હો એસી આજ્ઞા કરના સો યહ મી મળ્ડલવન્ધ હૈ । અપરાધીકો કારાગારમેં ડાલ દેના સો ચારક હૈ,

અને સાતમાં કુલકરના સમયમાં ઘણો જ ભારે અપરાધ કરનારને આ પ્રકારના દંડને પાત્ર બનવું પડતું તે કુલકરોના સમયમાં મધ્યમ અપરાધ કરનારને માકાર રૂપ દંડને પાત્ર બનવું પડતું અને સામાન્ય અપરાધ કરનારને હકકાર રૂપ દંડને પાત્ર બનવું પડતું. હકકાર આદિના વિષયમાં એવું કહ્યું છે કે—“પદમ વીયાણ પદમા” ઇત્યાદિ.

(૪) “ અપરાધી પ્રત્યે કોપાયમાન થઇને એવું કહેવું કે તું આ પ્રકારનું કૃત્ય મા કર. ” ઇત્યાદિનું નામ પરિભાષા દંડ છે.

(૫) મંડલ એટલે ક્ષેત્ર અપરાધીને કોઈ નિર્દિષ્ટ ક્ષેત્રમાં જ શિક્ષી રાખવો તેનું નામ મંડલવન્ધ છે. “ તમારે આ સ્થાન છોડીને જવું નહીં-અમુક મર્યાદિત સ્થાનમાં જ તમારે રહેવું ” આ પ્રકારની આજ્ઞાનું નામ મંડલવન્ધ છે. અથવા પુરુષ મંડલરૂપે અથવા સમુદાય રૂપે એકત્રિત ન થવું, એવી આજ્ઞાનું નામ મંડલ વન્ધ છે.

(૬) અપરાધીને જેલમાં પૂરવો તેનું નામ ચારક દંડ છે.

कारागारः ॥ ६ ॥ छविच्छेदः—रुचरणनासाङ्गणौष्ठाद्यवयवकर्त्तनम् ॥ ७ ॥ परिभाषादयश्चत्नो दण्डनीतयो भरतस्य काले समभन्त । तदुक्तम्—

“ परिभाषणा उ पदमा मण्डलबन्धो पुण होइ विड्या ।

चारग छविच्छेदादि भरतस्य चतुर्विधा नीई ॥ १ ॥ ”

छाया—परिभाषणा तु प्रथमा मण्डलबन्धः पुनर्भवति द्वितीया ।

चारकश्छविच्छेदादि भरतस्य चतुर्विधा नीतिः ॥ १ ॥ इति ॥ सू० १८ ॥

मूलम्—एगमेगस्स णं रत्नो चाउरंतचक्रवट्टिस्स सत्त एगिं-

दियरयणा पणत्ता, तं जहा—चक्ररयणे १, छत्तरयणे २, चम्मरयणे ३, दंडरयणे ४, असिरयणे ५, मणिरयणे ६, काकणिरयणे ७ । एगमेगस्स णं रत्नो चाउरंतचक्रवट्टिस्स सत्त पंचिंदियरयणा पणत्ता, तं जहा—सेणावड्ढरयणे १, गाहावड्ढरयणे २, वड्ढरयणे ३ पुरोहियरयणे ४, इत्थीरयणे ५, आसरयणे ६, हत्थिरयणे ७ ॥ सू० १९ ॥

छाया—एकैकस्य खलु राज्ञश्चातुरन्तचक्रवर्तिनः सप्त एकेन्द्रियरत्नानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—चक्ररत्नम् १, छत्ररत्नम् २, चर्मरत्नम् ३, दण्डरत्नम् ४, असि-

एवं हाथ-पैर, नाक कान आदि अवयवोंका काट लेना सो यह छविच्छेद दण्ड है, ये परिभाषा आदि चार दण्डनीतियां भरतके कालमें हुई हैं कहा भी है—“ परिभाषणा उ पदमा ” इत्यादि ।

भरतकी मान्यतानुसार ये चार प्रकारकी नीतियां हैं—परिभाषणा मण्डलबन्ध २ चारक ३ और छविच्छेद ॥ सूत्र १८ ॥

“ एगमेगस्स णं रत्नो चाउरंतचक्रवट्टिस्स ” इत्यादि ॥ सूत्र १९ ॥

सूत्रार्थ—एक २ चातुरन्त चक्रवर्ती राजाके सात एकेन्द्रिय रत्न कहे गये

(७) अपराधीना हाथ, पैर, नाक आदि अवयवोंके छेदी नाभवा तनु नाम छविच्छेद दण्ड है।

परिभाषा आदि छेदी चार दंडनीतियों। भरतना कालमें प्रचलित थोड़ी छती। कहुं पणु छे के—“ परिभाषणा उ पदमा ”

भरतनी मान्यता प्रमाणे आ चार प्रकारनी दंडनीतियों छे—

(१) परिभाषणा, (२) मण्डलबन्ध, (३) चारक अने (४) छविच्छेद।

॥ सू. १८ ॥

“ एगमेगस्स णं रत्नो चाउरंतचक्रवट्टिस्स ” इत्यादि—(सू. १८)

सूत्रार्थ—प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा पासे सात एकेन्द्रिय रत्नो डोय छे. ते

रत्नम् ५, मणिरत्नम् ६, काकिणीरत्नम् ७। एकैकस्य खलु राज्ञश्चातुरत्नचक्रवर्तिनः
सप्त पञ्चेन्द्रियरत्नानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सेनापतिरत्नम् १, माथापतिरत्नम् २,
वर्द्धकिरत्नम् ३, पुरोहितरत्नम् ४, स्त्रीरत्नम् ५, अश्वरत्नम् ६ हस्तिरत्नम् ७
॥ सू० १९ ॥

टीका—‘एगमेगस्स णं इत्यादि—

एकैकस्य—चातुरन्तचक्रवर्तिनो राज्ञः सप्तसंख्यकानि एकेन्द्रियरत्नानि=
पृथिवीपरिणामरूपाणि रत्नानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—चक्ररत्नम्—इत्यादि । रत्नत्वं
त्रेषां स्वस्वजातावुत्कृष्टत्वात् । तदुक्तम्—

“रत्नं निगद्यते तच्च जातौ जातौ यदुत्कृष्टम्” इति ।

एकेन्द्रियरत्नादीनां प्रमाणं त्वेवमुक्तं, तथाहि—

“चक्रं छत्रं दंडो, तिनैत्रि एयाइं वामनुल्लाइं ।

चम्मं दुहत्थदीहं, वत्तीसं अंगुलाइं असी ॥ १ ॥

चउरंगुलो मणी पुग, तस्सद्धं चैव होइ वित्थिण्णो ।

चउरंगुलप्पमाणा, सुवन्नवरकागणी नेया ॥ २ ॥”

छाया—चक्रं छत्रं दण्डः त्रीण्यप्येतानि व्याप्तुल्यानि ।

चर्म द्विहस्त दीर्घं द्वात्रिंशद्दङ्गुलानि असिः ॥ १ ॥

चतुरङ्गुलो मणिः पुनस्तस्याद्धं चैव भवति विस्तीर्णः ।

चतुरङ्गुलप्रमाणा सुवर्णवरकाकिणी ज्ञेया ॥ २ ॥ इति ।

हैं—जैसे—चक्ररत्न १, छत्ररत्न २, चर्मरत्न ३, दण्डरत्न ४, असिरत्न
५, मणिरत्न ६, और काकिणी रत्न ७ ये सब पृथिवीके परिणाम रूप
हैं, एवं इन्हे अपनी २ जातिमें उत्कृष्ट होनेके कारण रत्न कहा गया
है कहा भी है—“रत्नं निगद्यते तत्” इत्यादि ।

एकेन्द्रिय रत्नादिकोंका प्रमाण ऐसा कहा गया है—

“चक्रं छत्रं दंडो” इत्यादि ।

सात अकेन्द्रिय रत्नानां नाम आ प्रमाणे छे—(१) चक्ररत्न, (२) छत्ररत्न,
(३) चर्मरत्न, (४) दंडरत्न, (५) असिरत्न, (६) मणिरत्न अने (७) काकिणी-
रत्न. आ साते रत्ना पृथ्वीना परिणाम रूप होवाथी तथा पोत पोतानी
जातिमां सर्वोत्तम होवाथी तेमने रत्न रूप कडेवांमां आवेला छे. कहुं पशु
छे के—“रत्नं निगद्यते तत्” इत्यादि

अकेन्द्रिय रत्नादिकेतुं प्रमाण नीचे प्रमाणे कहुं छे—“चक्रं छत्रं
दंडो” इत्यादि—

વ્યામતુલ્યાનિ-તિર્યંગાહુદ્રયપ્રમારણપમાણાનિ ચતુર્હસ્તપ્રમાણાનીત્યર્થઃ ।
તથા-પ્રત્યેકચાતુરન્તચક્રવર્તિનો રાજ્ઞઃ સેનાપતિરત્નાદીનિ સપ્ત પञ्चेन्द्रियरत्नानि
बोध्यानि । तत्र-सेनापतिः = सेनानायकः, गाथापतिः = कोष्ठागारनियुक्तः,
वर्द्धकिः=रथकारः, पुरोहितः=शान्तिकर्मकर्त्ता । एतेषु चतुर्दशसु रत्नेषु प्रत्येकं
यक्षसहस्राधिष्ठितं बोध्यमिति ॥ सू० १९ ॥

મૂલમ્—સત્તર્હિ ઠાણેર્હિ ઓગાઠં દુસ્સમં જાણેજ્ઞા, તં
જહા-અકાલે વરિસઙ્ ૧, કાલે ણ વરિસઙ્ ૨, અસાહૂ પુજ્ઞંતિ
૩, સાહૂ ન પુજ્ઞંતિ ૪, ગુરુર્હિ જણો મિચ્છં પઢિવન્નો ૫, મણો-
દુહિયા ૬, વડ્ડુહિયા ૭। સત્તર્હિ ઠાણેર્હિ ઓગાઠં સુસમં
જાણેજ્ઞા, તં જહા અકાલે ન વરિસઙ્ ૧, કાલે વરિસઙ્ ૨
અસાઢ ણ પુજ્ઞંતિ ૩ સાહૂ પુજ્ઞંતિ ૪, ગુરુર્હિ જણો સસ્મં પઢિ-
વન્નો ૫, મણોસુહિયા ૬ વડ્ડુ સુહિયા ૭ ॥ સૂ૦ ૨૦ ॥

ચક્ર, છત્ર, એવં દણ્ડ યે ત્રીન રત્ન ચાર હોથ પ્રમાણવાલે હૈં । તિર્યંગ
ફેલાયે હુણ જો દોનોં હાથ હૈ, ડનકા નામ વ્યામ હૈ । ચર્મરત્ન દો
હાથ પ્રમાણ લમ્બા હૈ । એવં ૩૨ અંગુલકો તલવાર હૈ । ચાર અંગુલકા
મણિરત્ન હૈ । હસકો ચૌઢાઈ દો અંગુલકો હૈ । કાકિણી રત્ન ધી ચાર
અંગુલકા હી હૈ । સેનાપતિ ૧-સેનાનાયક, ગાથાપતિ-કોષ્ઠાગારકા
અધિકારી વર્દ્ધકિ-સારથી-રથકાર, પુરોહિત-શાન્તિ કર્મકર્તા સ્ત્રીરત્ન
૫, અશ્વરત્ન ૬ હસ્તિરત્ન સાત યે સાત રત્ન પંચેન્દ્રિય રત્નહૈં । ઇન ૧૪
રત્નોંમેંસે પ્રત્યેકરત્ન એક-એક હજાર યક્ષસે અધિષ્ઠિત હોતેહૈં ॥ સૂ. ૧૯ ॥

એક છત્ર અને ઢંડ, આ ત્રણ રત્નો ચાર હાથ પ્રમાણવાળા છે. તિર્યંગ
દેશાવેલા જે બન્ને હાથ છે તેમનું નામ વ્યામ છે. ચર્મરત્નની લંબાઈ જે
હાથ પ્રમાણ કહી છે, તલવાર (અમિરત્ન) લંબાઈ ૩૨ આંગળ પ્રમાણ છે.
મણિરત્ન ચાર અંગુલ પ્રમાણ, અને કાકિણી રત્ન પણ ચાર અંગુલ પ્રમાણ
માપનું હોય છે ચતુરન્ત ચક્રવર્તીના સાત પંચેન્દ્રિય રત્નો નીચે પ્રમાણે
હોય છે—(૧) સેનાપતિ, (૨) ગાથાપતિ-કોષ્ઠાગારનો અધિકારી, (૩) સારથી-
રથકાર, (૪) પુરોહિત, (૫) સ્ત્રીરત્ન (૬) અશ્વરત્ન અને (૭) હસ્તિરત્ન.

આ પ્રકારના કુલ ૧૪ રત્નો ચક્રવર્તી પાસે હોય છે. આ પ્રત્યેક રત્ન
એક-એક હજાર યક્ષો વડે અધિષ્ઠિત હોય છે. ॥ સૂ ૧૯ ॥

छाया—सप्तभिः स्थानैरवगाढां दुष्पमां जानीयात्, तद्यथा—अकाले वर्षति १, काले न वर्षति २, असाधवः पूज्यन्ते ३, साधवो न पूज्यन्ते ४, गुरुषु जनो मिथ्यावर्षतिपन्नः ५, मनोदुःखिताः ६, वाग्दुःखिताः ७। सप्तभिः स्थानै रवगाढां सुपमां जानीयात्, तद्यथा—अकाले न वर्षति १, काले वर्षति २, असाधवो न पूज्यन्ते ३, साधवः पूज्यन्ते ४, गुरुषु जनः सम्यक् प्रतिपन्नः ५, मनःसुखिता ६, वाक्सुखिताः ७ ॥ सू० २१ ॥

टीका— 'सत्तर्हि ठाणेहि' इत्यादि—

सप्तभिः स्थानैः=कारणैः दुष्पमाम्=दुष्पमकालं अरगाढाम्=अवतीर्णाम् उत्कर्षावस्थां प्राप्तां जानीयात्, तद्यथा—अकाले वर्षतीत्यादि । सुगमम् । नवरम्-गुरुषु=मातापितृधर्माचार्येषु जनो-लोको मिथ्या=मिथ्याभावं-विनयश्च शं प्रतिपन्नः=पाप्तः । मनोदुःखिता-मनसो मनसा वा दुःखिता=दुःखितत्वं दुःखकारित्वं वा मानसं दुःखमित्यर्थः । वाग्दुःखिता=वाचिकं दुःखमित्यर्थः । तथा—सप्तभिः

“सत्तर्हि ठाणेहि ओगाढं” इत्यादि । सू० २० ॥

टीकार्थ—दुष्पमकाल इन सात स्थानोंसे उत्कर्षावस्थावाला होता है । जैसे—अकालमें वर्षा होना १, कालमें वर्षा नहीं होना २, असाधुओंकी पूजा ही होना ३, साधुओंकी पूजा नहीं होना ४, गुरुजनोंमें मिथ्या भाव रचना ५, मनका दुःखित रहना ६, एवं वाचिक दुःखका होना ७ सुपमा काल इन सात स्थानोंसे उत्कर्षावस्थावाला होता है—जैसे—अकालमें वृष्टिका नहीं होना १ समय पर वृष्टिका होना २, असाधुओंकी पूजा—सत्कार नहीं होना ३, साधुजनोंकी पूजा—सत्कार होना ४, गुरुजनों पर सच्चा भाव होना ५, मनको दुःखित नहीं होता ६, एवं

“सत्तर्हि ठाणेहि ओगाढं” इत्यादि—

टीकार्थ—दुष्पमकाल आ सात स्थानोंनी अपेक्षाये उत्कर्षावस्थावालो होय छे—(१) त्तारे ये ग्य ठाणे (वर्षा ऋतुमां) वर्षा यती नथी, (२) अकाले वर्षा थाय छे. (३) असाधुओंनी पूजा थाय छे, (४) साधुओंनी पूजा यती नथी, (५) गुरुजनों प्रत्ये मिथ्य भाव वधने नय छे, (६) मन संतापधी युक्त रहे छे अने (७) वाचिक दुःखने पणु सद्भाव रहे छे.

सुपमकाल आ सात स्थानोंनी अपेक्षाये उत्कर्षावस्थावालो होय छे—(१) अकाले वृष्टिने अभाव (२) उचित समये वृष्टिने सद्भाव. (३) असाधुओंना पूजासत्कारने अभाव, (४) साधुओंना पूजासत्कारने सद्भाव, (५) गुरुजनों प्रत्ये साधा भावने सद्भाव (६) मानसिक दुःखने अभाव अने

સ્થાનૈઃ અવગાઢાં સુષમાં જાનીયાત્, તદ્યથા-અકાલે ન વર્ષતિ ઇત્યાદિ સુગ-
મમ્ । નવરં-સમ્યક્=સમ્યગ્ભાવં-વિનયમિતિ યાવત્ ॥ સૂ૦ ૨૦ ॥

દુષ્ણમા સુષમાલક્ષણં કાલદ્વયં સાંસારિકજીવાનાં ક્રમેણ દુઃખસુખપ્રયો-
જકં ભવતીતિ સાંસારિકજીવાન પ્રરૂપયિતુમાહ—

મૂલમ્—સત્તવિહા સંસારસમાવન્નગા જીવા પળ્ણત્તા, તં
જહા-નેરઙ્ગયા ૧, તિરિક્કલ્લજોણિયા ૨ તિરિક્કલ્લજોણિણીઓ ૩,
મળ્ણુસ્સા ૪, મળ્ણુસ્સીઓ ૫ દેવા ૬, દેવીઓ ૭ ॥ સૂ૦ ૨૧ ॥

હાયા—સપ્તવિધાઃ સંસારસમાપન્નકા જીવાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, તદ્યથા-નેરયિકાઃ
૧, તિર્યગ્ગ્યોનિકાઃ ૨, તિર્યગ્ગ્યોનિકાઃ ૩, મનુષ્યાઃ ૪, મનુષ્યઃ ૫, દેવાઃ ૬,
દેવ્યઃ ૭ ॥ સૂ૦ ૨૧ ॥

ટીકા — ‘ સત્તવિહા ’ ઇત્યાદિ—

વાચનિક દુઃખ નહીં હોના ૭ ગુરુજનસે માતા પિતા એવં ધર્માચાર્ય યે
સવ ગૃહીત હુણ્ હૈં ॥ સૂ૦ ૨૦ ॥

દુષ્ણમા સુષમા યે દોનોં કાલ સાંસારિક જીવોંકો ક્રમશઃ દુઃખ,
સુખકે પ્રયોજક હોતેહૈં-અતઃ અવ સૂત્રકાર સાંસારિક જીવોં કી પ્રરૂપણા
કરતેહૈં “સત્ત વિહા સંસાર સમાવન્નગા જીવા પળ્ણત્તા” ઇત્યાદિ ॥ સૂ૦ ૨૧ ॥

ટીકાર્થ-સંસાર સમાપન્નક જીવ-સંસારી જીવ-સાત પ્રકારકે કહે ગયે
હૈં-જૈસે-નેરયિક ૧, તિર્યગ્ગ્યોનિક ૨, તિર્યગ્ગ્ચ્છ્રિયાં ૩, મનુષ્ય ૪,
મનુષ્યસ્ત્રિયાં ૫, દેવ એવં દેવિયાં ૭. યહાં તિર્યગ્ગ્ચ્છ્રિયાં એવં મનુષ્ય તથા
દેવોંમેં પુલ્લિગ્ગ, એવં સ્ત્રીલિંગકે હોનેસે દ્વિવિધતા હોતી હૈ, ઓર નૈર-

(૭) વાચિક દુઃખનો અભાવ. અ. સૂત્રમા ‘ ગુરુજન ’ પદ માતા, પિતા,
ધર્માચાર્ય આદિનું વાચક છે. ॥ સૂ૦ ૨૦ ॥

દુષ્ણમા અને સુષમાકાળ સાંસારિક જીવોને અનુક્રમે દુઃખ અને સુખનો
અનુભવ કરાવનારા હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર સાંસારિક જીવોની પ્રકૃષ્ટા
કરે છે—“સત્તવિહા સંસારસમાવન્નગા જીવા પળ્ણત્તા ” ઇત્યાદિ—(સૂ. ૨૧)
ટીકાર્થ-સ માત્ર અમાપન્નક જીવના (સંસારી જીવના) નીચે પ્રમાણે સાત પ્રકાર કહ્યા
છે-(૧) નૈરયિક, (૨) તિર્યગ્ગ્યોનિકનર, (૩) તિર્યગ્ગ્યોનિક સ્ત્રીઓ, (૪) મનુષ્ય,
(૫) મનુષ્ય જાતિની સ્ત્રીઓ, (૬) દેવો અને (૭) દેવીઓ. મનુષ્ય, તિર્યગ્ગ્ય
અને દેવોમાં નર અને નારી જાતિનો સદ્ભાવ હોય છે, તે કારણે પ્રત્યેકમાં
દ્વિવિધતા ખતાવી છે. નરકોમાં માત્ર નપુસકલિંગતા (નાન્યેતર જાતિ) જ

વ્યાख्या સ્પષ્ટા । નવરમ્-નૈરયિકાણામેકવિધત્વેન, તિર્યકમનુષ્યદેવાનાં
પ્રત્યેકં પુંજી ભેદેન દ્વૈવિધ્યેન, સપ્તવિધત્ત્વમિતિ ॥ સૂ ૨૧ ॥

સંસારિણાં સંસારણં ચ આયુર્ભેદે સતિ ભવતીતિ આયુર્ભેદં પ્રરૂપયતિ—

મૂલમ્-સત્તવિદ્દે આઠમેષ પળ્લન્તે, તે જહા-અઙ્ગવવસાણં
૧, નિમિત્તં ૨, આહારે ૩ વ્રેષણા ૪, પરાઘાણ ૫। ફાસે ૬
આણાપાણૂ ૭। સત્તવિદ્દે મિજ્જણ આઠ ૭ ॥ સૂ૦ ૨૨ ॥

છાયા — સપ્તવિધ આયુર્ભેદઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તથથા-અધ્યવસાનમ્ ૧ નિમિત્તમ્ ૨
આહારો ૩ વેદના ૪ પરાઘાતઃ ૫। સ્પર્શઃ ૬ આનપ્રાણં ૭ સપ્તવિધં મિદ્યતે આયુઃ
॥ સૂ૦ ૨૨ ॥

ટીકા—‘ સત્તવિદ્દે ’ ઇત્યાદિ—

આયુર્ભેદઃ—આયુષો=જીવનસ્ય ભેદઃ=વિનાશઃ સપ્તવિધઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તથથાઃ—
અધ્યવસાનં=રાગસ્નેહભયાત્મક આત્મપરિણામઃ ૧, તથા—નિમિત્તમ્=દુષ્ટક્રિયા-
યિકોર્મે કેવલ નપુંમક લિજ્જતા હોનેસે એકવિધતાહી હોતી હૈ—હસ પ્રકારસે
સંસારી જીવ સાત પ્રકારકે હોતે કહે ગયે હૈ ॥ સૂત્ર ૨૧ ॥

સંસારી જીવોંકા સંસારમેં પરિભ્રમણ આયુકે હોને પર હી હોતા
હૈ, અનઃ અષ સૂત્રકાર આયુકે ભેદોંકા નિરૂપણ કરતે હૈ—

“ સત્તવિદ્દે આઠમેષ પળ્લન્તે ” ઇત્યાદિ સૂત્ર ૨૨ ॥

ટીકાર્થ—આયુકા ભેદ સાત પ્રકારકા કહા ગયા હૈ—જૈમે—અધ્યવ-
સાન ૧, નિમિત્ત ૨, આહાર ૩, વેદના ૪, પરાઘાત ૫ સ્પર્શ ૬ ઓર આનપ્રાણ ૭

આયુભેદસે યહાં જોત્રનકા વિનાશ કહા ગયાહૈ, યહ જો સાત પ્રકારકા
કહા ગયા હૈ, સો ડસકા તાત્પર્ય ઇસા હૈ—રાગ, સ્નેહ ઇવં મયરૂપ જો

સંભવી શકે છે તેથી તેમને એક જ પ્રકાર પડે છે. આ પ્રકારે અહીં
સંસારી જીવોના સાત પ્રકારો બતાવવામાં આવ્યા છે. ॥ સૂ ૨૧ ॥

આયુના સદ્ભાવમાં જ સંસારી જીવોનું સંસારમાં પરિભ્રમણ થાય
છે. તેથી હવે સૂત્રકાર આયુભેદોનું (આયુના વિનાશનું) નિરૂપણ કરે છે—

‘ સત્તવિદ્દે આઠમેષ પળ્લન્તે ’ ઇત્યાદિ—(સૂ ૨૨)

આયુના ભેદ સાત પ્રકારના કહ્યા છે. તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—
(૧) અધ્યવસાન, (૨) નિમિત્ત, (૩) આહાર, (૪) વેદના, (૫) પરાઘાત,
(૬) સ્પર્શ અને (૭) આનપ્રાણ.

ટીકાર્થ—“આયુભેદ” આ પદ દ્વારા આયુનો વિનાશ” અહીં અર્થ સમજ-
વાનો છે. તે આયુવિનાશના સાત ભેદોનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે,

શસ્ત્રાદીનિ ૨। યદ્યપ્યનયોરાયુર્મેદં પ્રતિ કારણત્વ, તથાપિ કારણે કાર્યોપચારાદેજ-
મુક્તમ્ । આહારઃ=પ્રમાણાર્થિકભોજનમ્ ૩, વેદના=હૃદયશૂલ્લાદિકા ૪, પરાઘાતઃ=
ગર્તકૂપાદિષુ પતનમ્ ૫, સ્પર્શઃ=કૃષ્ણસર્પાદિદંશઃ ૬, આનપાણમ્-શ્વાસોચ્છ્વાસો-
શ્વાસોચ્છ્વાસનિરોધ इत्यર્થ ૭, इति सर्वावधं यथा भवति तथा आयुः=जीवितं
મિથતે=નિચ્છિઘતે । અત્રેદં बोध्यम्, अयमायुर्मेदः सोपक्रमायुषामेव भवति न तु
निरुपक्रमायुषाम् । ननु येन शतं संवत्सरानायुरुपनिबद्धं, तस्य तदायुषोऽन्तराल

આત્માકા પરિણામ હૈ, વહ અધ્યવસાન હૈ, ઢણ્ડકશાસ્ત્ર આદિ યે
નિમિત્ત હૈ । યદ્યપિ હનમૈ આયુવિનાશકે પ્રતિકારણતા હૈ, પરન્તુ હન્ને
જો સ્વય આયુર્મેદરૂપ કહા ગયા હૈ, વહ કારણમૈ કાર્યકે ઉપચારસે કહા
ગયા હૈ, પ્રમાણસે અધિક ભોજન કરના આહાર હૈ, હૃદયશૂલ આદિકા
નામ વેદના હૈ, ગર્તકૂપ આદિમૈ ગિરના પરાઘાત હૈ, કૃષ્ણ સર્પ આદિ
દ્વારા કાટ લિયા જાના સ્પર્શ હૈ, તથા શ્વાસોચ્છ્વાસકા નિરોધ હોના
હસકા નામ આણ પ્રાણ હૈ, હન સાત પ્રકારકે કારણોસે આયુકા-જીવિ-
તકા વિનાશ હોના હૈ । યહાં હસ પ્રકારસે સમજના ચાહિયે-યહ આયુર્મેદ
સોપક્રમ આયુવાલોકોહી હોતા હૈ નિરુપક્રમ આયુવાલોકો નહીં હોતા હૈ ।

શંકા—જિમ જીવને ૧૦૦ વરસકી આયુકા બન્ધ ક્રિયા હૈ, ઓર
ઉસકી આયુ ઘીચહીમૈ સમાપ્ત હો જાતી હૈ, તો હસસે કૂન વિનાશ

રાગ, સ્નેહ અને ભય રૂપ આત્માના પરિણામને અધ્યવમાન કહે છે દંડક
શાસ્ત્ર આદિને નિમિત્ત કહે છે. જો તે બંને આયુવિનાશમા કારણભૂત બને
છે, છતાં પણ તેમને પોતાને જ અહીં જે આયુલેદરૂપ કહેવામાં આવ્યા
છે તે કારણમાં કર્યાના ઉચ્ચારની અપેક્ષાએ કહેવામા આવેલ છે. પ્રમાણથી
વધારે ખાવું તેનું નામ આહાર (આહર રૂપ કારણ) છે હૃદયશૂલ આદિનું
નામ વેદના (વેદના રૂપ કારણ) છે. કૂવા કે ખાડામાં પડવું તેનું નામ
પરાઘાત (પરાઘાત રૂપ કારણ) છે, કાળા નાગ આદિનો દંશ (ડાંખ)
લાગવો તેનું નામ સ્પર્શ (સ્પર્શરૂપ કારણ) છે અને શ્વાસોચ્છ્વાસનો વિરોધ
થવો તેનું નામ આણુપ્રાણ (આણુપ્રાણ રૂપ કારણ) છે. આ સાત પ્રકારના
કારણોને લીધે આયુનો (જીવનનો) અન્ત આવી જાય છે. અહીં એવું
સમજવું જોઈએ કે આ પ્રકારનો આયુલેદ સોપક્રમ આયુવાળાઓમાં જ
સંભવી શકે છે. નિરુપક્રમઆયુવાળામાં આ પ્રકારના આયુલેદનો સદ્ભાવ
હોતો નથી.

શંકા—ધારો કે કેઈ જીવે ૧૦૦ વર્ષના આયુનો બન્ધ કર્યો છે. જો
તેનું આયુષ્ય વચ્ચે જ સમાપ્ત થઈ જાય, તો એ પ્રકારની માન્યતામાં કૃત-

एव व्यपणमात् कृतत्रिनाशो, येन च कर्मणाऽऽयुर्विगमस्तत्पत्यापर्याऽकृतागमश्च भवतीति कृतनाशाकृतागमप्रसक्त्या मोक्षेऽविश्वासश्चारित्रादावप्रवृत्तिश्च स्यात् ? इत्तं च—

“ कम्भोवक्कमिज्जइ, अपत्तकालश्मिज्जइ तथो पत्ता ।

अक्रयागमक्रयनासा, मोक्खाणासासमो दोसा ॥ १ ॥ ”

छाया—कर्म उपक्रम्यते अनाप्तकाले यदि ततः प्राप्ताः ।

अकृतागमकृतनाशात् मोक्षानाश्वामनो दोषाः ॥ इति ।

इति चेत्, आह—वर्षशतभोग्यमपि भक्तं भस्मकव्याधिना समाक्रान्तस्य जनस्वाल्पेनैव कालेन भुञ्जानस्य यथा न कृतनाशो न चाकृतागमो भवति,

नामका दोष आता है, और अकृतके अभ्यागमका प्रसंग प्राप्त होता है, क्योंकि जो कर्म उसने नहीं किया है—उससे उसकी आयुका विगम हुआ है, इन दोनों दोषोंके सद्भावसे मोक्षमें अविश्वास और चोरित्र आदिमें अप्रवृत्ति जीवको हो जोयगी ।

“ कम्भोवक्कमिज्जइ ” इत्यादि ।

इस गाथा द्वारा यही समझाया गया है, कि यदि आयु अकालमें नष्ट हो जाती है, तो इस स्थितिमें कृत प्रणाश और अकृताभ्यागम ये दोष उपस्थित होते हैं आदि ।

उ०—सो वरस तक भी खाया जा सके ऐसे भी भोजनको, जिसको भस्मक व्याधि हो गई है, ऐसी व्यक्ति जब एकही बारमें उस भोजनको खा लेना है, तो वह उस भोजनको बहुतही जल्दी पचा जाता है—तो

विनाश नामना दोषना प्रसंग उपस्थित थाय छे अने अकृतना अभ्यागमना प्रसंग प्राप्त थाय छे, कारण के जे कर्म तेजे क्युं नथी तेना द्वारा तेनी आयुने विनाश थये छे. आ अने प्रकारना दोषना सहूल वे करीने एवने मोक्षमां अविश्वास उत्पन्न थये अने आरित्रादिनी आराधनानी एवनी प्रवृत्ति अंध पडी जशे.

“ कम्भोवक्कमिज्जइ ” इत्यादि—

आ गाथांमां जे ज वात प्रकट करवांमां आवी छे के “ जे आयुने अकाले नाश थयानी वात स्वीकरवांमां आवे, तो कृतप्रणाश अने अकृताभ्यागम आ जे दोष उपस्थित थाय छे, ” इत्यादि—

उत्तर—जे माणसने भस्मक व्याधि थये होय जेवे। माणस अन्य माणस द्वारा १०० वर्षंमां आर्ध शतय तेटका लोअनने पणु ओके ज वष-तमां णाध नय छे, जेटकु ज नही पणु जे लोअनने ते पयावी पणु शके

तथैवात्रापि न कृतनाशो न चाकृताग्नो भवतीति बोध्यम् ।

उक्तं च—“ न हि दीर्घकालियस्सवि, णासो तस्साणुभूदो खिण्णं ।

बहुकालाहारस्स व, दुयमग्गियरोगिणो भोगो ॥ १ ॥

सव्वं च पएसतया, भुज्जइ कम्ममणुभागो भइयं ।

तेणावस्साणुभवे, केकयनासादो तस्स ? ॥ २ ॥

किंचिदकाले विफलं, पाइज्जइ पच्चए य कालेणं ।

तह कम्मं पाइज्जइ कालेण वि पच्चए अन्न ॥ ३ ॥

जह वा दीहा रज्जू डज्जइ कालेण पुंजिया खिण्णं ।

वित्तो पडो उ मृस्सइ, पिंडीभूओ उ कालेणं ॥ ४ ॥

छाया—नहि दीर्घकालिकस्यापि नाशस्तस्यानुभूतिः क्षिप्रम् ।

बहुकालाहारस्येव द्रुतमग्निरोगिणो भोगः ॥ १ ॥

सर्वं च प्रदेशतया भुज्यते कर्म अनुभागतो भक्तम् ।

तेनावश्यानुभवे, के कृतनाशादयस्तस्य ॥ २ ॥

किंचिदकालेऽपि फलं, पाच्यते पच्यते च कालेन ।

तथा कर्म पाच्यते कालेनापि पच्यते अन्यत् ॥ ३ ॥

यथा वा दीर्घा रज्जुः दहते कालेन पुञ्जिता क्षिप्रम् ।

विततः पटस्तु शुष्यति पिण्डीभूतस्तु कालेन ॥ ४ ॥ इति । सू० २२ ॥

जिस प्रकार इसे कृत्न प्रणाश और अकृताभ्यगम दोष प्रसक्त नहीं होते हैं, उसी प्रकारसे यहां पर भी ये दोनों दोष प्रसक्त नहीं होते हैं—ऐसे जानना चाहिये । कहा भी है—

“ न हि दीर्घकालियस्स ” इत्यादि ।

तात्पर्य इन गाथाओंका यही है, कि दीर्घकालिक कर्मका भी शीघ्र नाश उसकी इच्छम अनुभूति हो जानेसे हो जाता है—इसमें कोई आपत्ति जैसी बात नहीं है, क्योंकि जो भोजन बहुत कालमें पचानेके

छे. तो जे प्रकारे तेने कृतप्रणाश अने अकृताभ्यागम दोषने प्रसंग प्राप्त थतो नथी अजे प्रमाणे अडीं पणु ते अन्ने प्रकारना दोषो लागवानो प्रसंग प्राप्त थतो नथी उद्यु पणु छे के—

“ न हि दीर्घकालियस्स ” इत्यादि—

आ गाथाओने ल.वाथं नीये प्रमाणे छे—दीर्घकालिक कर्मनी पणु नदी अनुभूति थठ नवाथी तेने शीघ्र नाश थठ नय छे, आ वातने स्वीकारवाभां केरु पणु वांधो रडेतो नथी. अजे वातने नीयेना दृष्टांतो

अयं चायुर्भेदः कथंचित् सर्वजीवानां भवतीति तान् सप्तविधत्वेनाह—

मूलम्--सत्तविहा सव्वजीवा पणत्ता, तं जहा--पुढविकाइया
 १ आउकाइया २ तेउकाइया ३ वाउकाइया ४ वणस्सकाइया
 ५ तसकाइया ६ अकाइया ७। अहवा--सत्तविहा सव्वजीवा
 पणत्ता, तं जहा--कणहल्लेसा १ जाव सुक्कलेसा ६ अलेसा ७
 ॥ सू० २३ ॥

योग्य होता है—वही भोजन भस्मक व्याधिवालेके द्वारा शीघ्रतासे पचा
 लिया जाता है, जो फल वृक्षके ऊपर लगा रहने पर पकनेमें बहुत
 समय लेता है—वही फल पाकमें जब डाल दिया जाता है, तो बहुतही
 शीघ्र पक जाना है—यह बहुतही शीघ्र उसका पक जाना अकालमें पक
 जाना है, इसी तरह रस्सी बिखरी हुई पड़ी हो तो उसके जलनेमें देर
 लगनी है, और वही रस्सी जब पिण्डित अवस्थामें जलाई जाती है—तो
 बहुत ही जल्दी भस्म हो जाती है, इसी प्रकार पसारा हुआ वस्त्र जल्दी
 सूख जाना है, और घरी किया हुआ वस्त्र देरमें सूखता है—इसी प्रकारसे
 निमित्त मिलने पर हरएक कर्मका अकालमें भी विनाश हो जाता है,
 इसमें अकृताभ्यागम और कृत प्रणाश जैसे दोषोंको आनेकी संभावना
 ही नहीं है ॥ सूत्र० २२ ॥

द्वारा स्पष्ट करवायां आवे छे—जे लोअन अन्य भाणुस द्वारा घणु लांभा
 काणे पयावी शकय ओवुं डोय छे जे जे लोअनने लसमक व्याधिवाणो जल्दी
 पयावी शके छे. जे इण वृक्षनी उपर जे लागेवुं रहे तेने पाकवाने माटे
 लांभा समय लागे छे, परन्तु जे जे इणने ज्यारे घास आदिमां राणी
 भूकवायां आवे छे त्यारे ते जल्दी पाकी जय छे—आ प्रकारे तेनुं जल्दीथी
 पाकवुं तेनुं नाम जे 'अकाले पाकवुं' छे जे जे प्रमाणे विभराधने पडेला
 दोरडाने जणी जता वार लागे छे, पणु जे जे जे दोरडानो वीटो करीने
 तेने जणवामा आवे तो जल्दी जणीने लसम थरुं जय छे जे जे प्रमाणे
 ओकवकुं पस्र जल्दी सूकाय छे पणु घडी करेकुं पस्र सूकातां वार लागे छे.
 जे जे प्रमाणे ज्यारे निमित्त मणे त्यारे करेक कर्मनो अकाले पणु विनाश
 थरुं शके छे. तो आ प्रकारनी मान्यता स्वीकारवायां अकृताभ्यागम अने कृत-
 प्रणाश जेवा दोषोनो प्रसंग प्राप्त थतो नथी ॥ सू. २२ ॥

छाया—सप्तविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकायिकाः १, अस्कायिकाः २, तेजस्कायिकाः ३, वायुकायिकाः ४, वनस्पतिकायिकाः ५, त्रसकायिकाः ६, अकायिकाः ७। अथवा—सप्तविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कृष्णलेश्याः १ यावत् शुक्ललेश्याः ६ अलेश्याः ७ ॥ सू० २३ ॥

टीका—‘सत्तविहा’ इत्यादि—

व्याख्या सुगमा । नवरम्—सर्वजीवाः—सर्वे च ते जीवाश्चेति, संसारिणो मुक्ताश्चेत्यर्थः । अकायिकाः=सिद्धाः—तेषां षड्विधकायव्यपदेशत्वाभावात् । अलेश्याः=सिद्धा अयोगिनो वेति ॥ सू० २३ ॥

यह आयुभेद कथंचित् समस्त जीवोंकी होता है—इसलिये सूत्रकार अथ जीवोंमें सप्तविधताका कथन करते हैं—

“सत्तविहा सव्वजीवा पणत्ता” इत्यादि ॥ सू० २३ ॥

टीकाथ—समस्त जीव सात प्रकारके कहे गये हैं—जैसे—पृथिवीकायिक १, अप्कायिक २, तेजस्कायिक ३, वायुकायिक ४, वनस्पतिकायिक ५, त्रसकायिक ६, और अप्कायिक ७ अथवा—इस प्रकारसे भी जीव सात प्रकारके कहे गये हैं—कृष्णलेश्यावाले यावत् शुक्ल लेश्यावाले ६ और अलेश्यावाले ७ यहाँ “समस्त जीव” इस प्रकारके कथनसे संसारी जीव और मुक्त जीव ये दोनों प्रकारके जीव गृहीत हो जाते हैं । अप्कायिकसे सिद्ध जीवोंका ग्रहण हो जाता है—क्योंकि उनमें ६ प्रकारके कायका व्यपदेश नहीं होता है, इसी तरहसे अलेश्य पदसे इसका ग्रहण हो जाता है, अथवा अयोगियोंका ग्रहण हो जाता है सू० २३

आ आयुभेद क्यारेक समस्त जिवेना डोय छे तेथी डवे सूत्रकार जिवेना सात प्रकारेनुं कथन करे छे—

“सत्तविहा सव्व जीवा पणत्ता” इत्यादि—(सू २३)

टीकार्थ—समस्त जिवेना नीचे प्रमाणे सात प्रकार कछा छे—(१) पृथ्वीकायिक, (२) अप्कायिक, (३) तेजस्कायिक, (४) वायुकायिक, (५) वनस्पतिकायिक, (६) त्रसकायिक अने (७) अकायिक अथवा जिवेना आ प्रमाणे सात प्रकार पणु कछा छे—(१) कृष्णलेश्यावाणा, (२) नीललेश्यावाणा, (३) क्षायालेश्यावाणा, (४) पीतलेश्यावाणा, (५) पद्मलेश्यावाणा, (६) शुक्ललेश्यावाणा अने (७) अलेश्यावाणा।

अही ‘समस्त जिवे’ आ प्रकारना कथन द्वारा संसारी जिवे अने मुक्त जिवेने अडणु करवामां आंवा छे सिद्ध जिवेने अकायिक कछे छे, कारणु के तेभनामा ६ प्रकारना शरीरेने सदूभाव डोतो नथी “अलेश्य” आ पद वडे सिद्ध जिवेने अथवा अयोगीजिवेने (मन, वचन अने ध्याना योगथी रहित जिवेने) अडणु करवामां आंवा छे ॥ सू. २३ ॥

पूर्वसूत्रे कृष्णलेश्यादिमन्तो जीवभेदा उक्ताः, तत्र च कृष्णलेशप्रदानं सन्नारको
ऽप्युत्पद्यते ब्रह्मदत्तवदिति ब्रह्मदत्तस्वरूपमभिधातुमाह—

मूलम्—ब्रह्मदत्ते णं राया चाउरंतचक्रवर्ती सप्त धनुइं उड्डं
उच्चत्तेणं सत्त य त्रासतयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं
किञ्चा अहे सत्तमाए पुढवीए अप्पइट्टाणे णरए णेरइत्ताए
उववन्ने ॥ सू० २४ ॥

छाया—ब्रह्मदत्तः खलु राजा चातुरन्तचक्रवर्ती सप्त धनुषि ऊर्ध्वमुच्च-
त्वेन सप्त च वर्षशतानि परमायुः पालयित्वा कालमासे कालं कृत्वा अथः
सप्तम्यां पृथिव्याम् अप्रतिष्ठाने नरके नैरधिकतया उपपन्नः ॥ सू० २५ ॥

टीका—‘ब्रह्मदत्ते णं’ इत्यादि—

व्याख्या सुगमा ॥ सू० २४ ॥

ऊपरके सूत्रमें कृष्णलेश्या आदिवाले जीव भेद कहे गये हैं—इनमें
जो जीव कृष्ण लेश्यावाला होता है, वह मरकर नारक भी हो जाता
है—जैसे ब्रह्मदत्त हुआ है, अतः अब सूत्रकार इसी ब्रह्मदत्तके सम्बन्धमें
कथन करते हैं—“ब्रह्मदत्तेणं राया चाउरन्त” इत्यादि ॥ सूत्र २५ ॥

टीकार्थ—ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ऊर्ध्वमें सात धनुषका था, ७०० सौ वर्षकी
इसकी उत्कृष्ट आयु थी, उतनी पूरी आयु तो भोग कर यह काल मासमें
मरण कर नीचे सप्तम पृथिवीमें अप्रतिष्ठान नरकमें नैरधिककी पर्यायसे
उत्पन्न हुआ है ॥ सूत्र २४ ॥

आगता सूत्रमा कृष्णलेश्यादि वेश्यावाणा लोकोनी वत् करवाभां आसी,
कृष्ण वेश्यावाणा लोको भरीने नारकोभां पणु उत्तरत्त थध लय छे, जेम के
प्रह्लदत्त यकवर्तीनी पाणनभां जेवुं न अन्युं डतु. आ प्रकारना पूर्वसूत्र
साथेना स भधने लीधे डवे सूत्रकर प्रह्लदत्तना विषयभां कथन करे छे—

“ब्रह्मदत्तेण राया चाउरन्त” इत्यादि—(सू. २५)

टीकार्थ—ब्रह्मदत्त यकवर्तीना शरीरनी लोकोनी सात धनुषप्रमाणु हुती तेनुं
उत्कृष्ट आयुष्य ७०० वर्षानुं डतुं. तेइला पूरा आयुष्यने भोगवने काइने,
अपहर आपना काणधर्म पसीने, ते नीधे ज्ञानभी नरकमा अप्रतिष्ठान
नामना नरकावासभां नारकनी पर्याये उत्पन्न थये छे. ॥ सू. २४ ॥

ब्रह्मदत्त उत्तमपुरुष इति उत्तमपुरुषाधिकाराद्दत्तमपुरुषविशेषस्थानीयमल्लि-
वक्तव्यतामाह—

मूलम्--मल्ली पां अरहा अप्सप्तमे मुंडे भवित्ता अगाराओ
अगगारियं पवइए, तं जहा--मल्ली विदेहरायवरकन्नगा १, पडि-
बुद्धा इक्खाखराया २, चंदच्छाए अंगराया ३, रुप्पीकुणालाहि-
वई ४, संखे कासीराया ५, अदीणसत्तू कुरुराया ६, जियंसत्तू
पंचालराया ६ ॥ सू० २५ ॥

छाया—मल्ली खलु अहंन् आत्मसप्तमो मुण्डो भूत्वा अगारादनगारितां
मव्रजितः, तद्यथा—मल्ली विदेहराजवरकन्यका १, प्रतिबुद्धिरिक्ष्वाकुराजः २,
चन्द्रच्छायोऽङ्गराजः ३, रुक्मी कुणालाधिपतिः ४, शङ्खः काशीराजः ५, अदी-
नसत्रुः कुरुराजः ६ जितशत्रुः पञ्चालराजः ७ ॥ सू० २५ ॥

टीका—' मल्ली गं ' इत्यादि । व्याख्या सुगमा नवरम्-मल्लीनामा अहंन्
खलु आत्मसप्तमः=आत्मना सप्तमः=सप्तसंख्यापूरणः=प्रतिबुद्धिप्रभृतिभिः
पइभिः सह सप्तमः स्वयं मुण्डो=द्रव्यतो भावतश्च मुण्डितो भूत्वा अगारात् अन-
गारितां मव्रजितः, तद्यथा—मल्ली विदेहराजवरकन्यका-इत्यादि । तत्र-विदेह-

ब्रह्मदत्त यह उत्तम पुरुष था-हस अभिप्रायको लेकर अत्र सूत्रकार
उत्तम पुरुष विशेषके स्थानापन्न मल्लीकी वक्तव्यताका कथन करते हैं-

“ मल्लीगं अरहा ” इत्यादि ॥ सूत्र २५ ॥

टीकार्थ-मल्ली अहंन्त प्रतिबुद्धि आदि ६ राजाओंके साथ स्वयं
सप्तम होकर द्रव्यसे और भोवसे मुण्डित होकर अगारसे अनगार
अवस्थावाले बने हैं । मल्ली यह विदेह राजाकी उत्तम कन्या थी १

ब्रह्मदत्त अकवती होवाने क रणे उत्तम पुरुष इय डतो. पूर्वसूत्रनी
साथे उत्तम पुरुष विशेष इय सभानताना संभंधने क्षीधे डवे सूत्रकार मल्लि
(मल्लिनाथ अडंत) नी प्रइपण्णु करे छे—

“मल्लीगं अरहां ” धत्य हि—(सू २५)

टीकार्थ-प्रतिबुद्धि आदि ६ राजाओंनी साथे सातमां मल्लि अडंत (मल्लि
विदेह राजनी कुंवरी डती) द्रव्य अने लावनी अपेक्षाये मुंडित थधने
आगारावस्था (गृहस्थावस्था) ना त्याग पूर्वक अणुगारावस्था अंगीकार
करी डती.

राजवरकन्यका-विदेहो मिथिलापरपर्यायः प्रसिद्धो जनपदः, तस्य यो राजा तस्य वरा=श्रेष्ठ कन्यका=पुत्री एकोनविंशतितमो जिन इत्यर्थः १। इक्ष्वाकुराजः= अयोध्याधिपतिः २। अङ्गराजः=अङ्गो नाम देशः, यस्य चम्पा राजधान्यासीत्, तस्याधिपतिः ३। कुणालाधिपतिः-कुणालो नाम देशः, यस्य राजधानी श्रावस्ती, तस्याधिपतिः ४। काशीराजः-काशीनाम देशः, यस्य राजधानी वाराणसी, तस्य राजा ५। कुरुराजः-कुरुनामा देशः, यस्य राजधानी हस्तिनापुरम्, तस्य राजा ६। पञ्चालराजः-पञ्चालो नाम देशः, यस्य राजधानी काम्पिल्यनगरमासीत्, तस्य राजा ७। प्रव्रज्यायां भगवत् आत्मसप्तमत्वं प्रतिबुद्ध्यादिप्रधानपुरुष-

मिथिला नामका जनपद विदेह कहलाना है, यह १९ वें तीर्थंकर रूपसे हुई है, प्रतिबुद्धि ये अयोध्याके अधिपति थे। अङ्ग नामका देश था, इसकी राजधानी चम्पा थी, चन्द्रच्छाय इसी अङ्ग देशके अधिपति थे, कुणाल नामका भी देश था जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी, रुक्मी इसी कुणालके अधिपति थे। काशी इस नामका देश था, जिसको राजधानी वाराणसी थी। शङ्ख इसी काशीके अधिपति थे। कुरु नामका देश था जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। अदीन शत्रु इसी कुरु देशके राजा थे। पाञ्चाल नामका देश था इसकी राजधानी काम्पिल्यनगर थी, जितशत्रु इसी पाञ्चाल देशके राजा थे, यहां प्रव्रज्यामें जो मल्ली अर्ह-

मल्ली विदेहराजनी उत्तम कन्या હતી મિથિલા નામના જનપદને વિદેહ કહેના હતા મલ્લીનાથ ૧૯ માં તીર્થંકર થઈ ગયા. તેમણે પ્રતિબુદ્ધિ આદિ ૬ રાજાઓની સાથે પ્રવ્રજ્યા લીધી હતી

પ્રતિબુદ્ધિ અયોધ્યાનો અધિપતિ હતો. ચન્દ્રચાય નામનો રાજા અંગ દેશનો અધિપતિ હતો. અંગદેશની રાજધાની ચમ્પા નગરી હતી.

રુક્મી-નામનો રાજા કુણાલ નામના જનપદને અધિપતિ હતો. તેની રાજધાની શ્રાવસ્તી હતી.

શખનામનો રાજા કાશી નામના જનપદને અધિપતિ હતો. તેની રાજધાની વારાણસી હતી.

અદીનશત્રુ-કુરુદેશનો અધિપતિ હતો. તેની રાજધાની હસ્તિનાપુર હતી. જિતશત્રુ-પાંચાલ દેશનો અધિપતિ હતો. તેની રાજધાની કામ્પિલ્ય નગર હતું.

મલ્લીએ પ્રતિબુદ્ધિ ચન્દ્રચાય રુક્મી, શખ, અદીનશત્રુ અને જિતશત્રુ, આ છ રાજાઓ સાથે પ્રવ્રજ્યા શ્રદ્ધ કરી હતી. અહીં પ્રવ્રજ્યામાં

प्रव्रज्याग्रहणापेक्षया बोध्यम् । अन्यथा तु तदसंभवि, यत्स्त्रिभिः पुरुषशतैर्वा-
ह्यपरिषदा त्रिभिश्च स्त्रीशतैरभ्यन्तरपरिषदा स भगवान् प्रव्रजित इति ज्ञातासूत्रे
प्रोक्तम् । उक्तं च समवायाङ्गे—“ पासो मल्ली तिहिं तिहिं सएहि ” इति ।
छाया-पार्श्वो मल्ली त्रिभिस्त्रिभिः शतैः—इति । इदं तु पुरुषापेक्षया बोध्यम् ।
मल्लिचरितं तु ज्ञातासूत्रे विस्तरशः प्रोक्तम् । ‘ प्रव्रजितः ’ इति पुंस्त्वेन निर्देशस्तु
अर्हच्छब्दापेक्षया बोध्यः ॥ सू० २५ ॥

न्तको आत्मससता प्रकट की गई है, वह प्रतिबुद्ध आदि प्रधान पुरुषोंकी
प्रव्रज्या ग्रहण की अपेक्षासे प्रकट की गई है, यदि ऐसी बात न मानी
जावे तो—वह घन नहीं सकती है—क्योंकि बाह्य परिषदाके ३ सौ
पुरुषोंके साथ एवं आभ्यन्तर परिषदा की ३ सौ पुरुषोंके साथ एवं
आभ्यन्तर परिषदा की ३ सौ स्त्रियोंके साथ मल्ली भगवान् प्रव्रजित
हुए हैं, ऐसा ज्ञातासूत्रमें कहा गया है । समवायाङ्गमें भी ऐसा ही कहा
गया है—“ पासो मल्ली तिहिं २ सएहि ” पार्श्वनाथने एवं मल्लीने ३
सौ ३ सौके साथ भागवती दीक्षा धारण की है । यह तो पुरुषोंकी अपेक्षा
कथन है, ज्ञाता सूत्रमें मल्लिका चरित्र विस्तारसे कहा गया है । “ प्रव्रजित ”
ऐसा जो पुल्लिङ्ग निर्देश है, वह “ अर्हत् ” शब्दकी अपेक्षासे किया
गया है, ऐसा जानना चाहिये ॥ सूत्र २५ ॥

मल्लि अर्हत्त अने णीअ ६ राज्ञो भगीने जे सप्तक प्र-ट करवामा आण्युं
छे, ते प्रतिबुद्धि आदि प्रधान (उत्तम) पुरुषोनी अपेक्षाजे ज प्रकट कर-
वामा आण्युं छे, जेम समञ्जुं जे जे प्रमाञ्जे मानवामां न आवे तो
ज्ञातासूत्र अने समवायांगसूत्रना कथन करतां आ कथन विरुद्ध पडे छे. ज्ञाता-
सूत्रमां जेवुं कहुं छे के—“ बाह्य परिषदाना ३०० पुरुषोनी साथे, अभ्य-
न्तर परिषदाना ३०० पुरुषोनी साथे अने आभ्यन्तर परिषदानी ३०० स्त्रीओ
साथे मल्लि लगवाने प्रव्रज्या लीधी डती ”

समवायांग सूत्रमां पणु जेवुं ज कहुं छे के—“ पासो मल्ली तिहिंर
सएहि ” “ पार्श्वनाथ लगवान अने मल्लिनाथ लगवाने ३००-३०० पुर्
षोनी साथे प्रव्रज्या लीधी डती ” आ कथन तो मात्र पुर्षोनी अपेक्षाजे
ज करवामां आण्युं छे ज्ञाता सूत्रमां मल्लिनाथ चरित्रनुं सविस्तर वर्णन
करवामां आण्युं छे “ प्रव्रजित ” आ पुष्टिलग वाचक शब्दने जे प्रयोग
अहीं कराये छे, ते अर्हत्तनी अपेक्षाजे कराये छे, जेम समञ्जुं. ॥सू. २५॥

एते च सम्यग्दर्शने सति प्रव्रजिता इति सामान्यतो दर्शनं निरूपयितुमाह-

मूत्रम्—सत्तविहे दंसणे पणत्ते, तं जहा--सम्मदंसणे १

मिच्छदंसणे २ सम्भामिच्छदंसणे ३ चक्खुदंसणे ४ अचक्खुदंसणे ५ ओहिदंसणे ६ केवलदंसणे ७ ॥ सू० २६ ॥

छाया--सप्तविधं दर्शनं प्रज्ञप्तं, तद्यथा--सम्यग्दर्शनं १ मिथ्यादर्शनं २, सम्यग्मिथ्यादर्शनं ३ चक्षुर्दर्शनम् ४, अचक्षुर्दर्शनम् ५, अवधिदर्शनम् ६ केवलदर्शनम् ७ ॥ सू० २६ ॥

टीका—' सत्तविहे दंसणे ' इत्यादि--

दर्शनं-दृश्यन्ते-श्रद्धीयन्ते ज्ञायन्ते वा अर्था अनेन अस्मात् अस्मिन् वेत्ति दर्शनं-तत् सप्तविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-सम्यग्दर्शनं=सम्यक्तमम्, मिथ्यादर्शनं=मिथ्यात्वम्, सम्यग्मिथ्यादर्शनम्=मिश्रम् । एतच्च त्रिविधमपि दर्शनं दर्शनमोह-

ये सव जो प्रव्रजित हुए हैं-वे सम्यग्दर्शनके होने पर ही प्रव्रजित हुए हैं-अनः अथ सूत्रकार सामान्यरूपसे दर्शनकी निरूपण करते हैं-

" सत्तविहे दंसणे पणत्ते " इत्यादि ॥ सूत्र २६ ॥

टीकार्थ-दर्शन सात प्रकारका गया है-श्रद्धाके विषय बनाये जाते हैं, या जाने जाते हैं, पदार्थ जिसके द्वारा या जिससे या जिसके होने पर वह दर्शन है-ऐसा वह दर्शन सात प्रकारका कहा गया है-जैसे-सम्यग्दर्शन १, मिथ्यादर्शन २ सम्यग्मिथ्यादर्शन ३, चक्षुर्दर्शन ४, अचक्षुर्दर्शन ५, अवधिदर्शन ६, और केवलदर्शन ७ इनमें-सम्यग्दर्शन सम्यक्त्व, मिथ्यादर्शन-मिथ्यात्व, और सम्यग्मिथ्यादर्शन-

उपरना सूत्रमां भद्वि आदि प्रव्रजित थयानी वात करी. तेमने सम्यग्दर्शन थयाथी ज तेओ प्रव्रजित थया उना. पूर्वसूत्र साथे आ प्रकारना संबधने लीधे डवे सूत्रकार दर्शनतुं निरूपणु करे छे--

"सत्तविहे दंसणे पणत्ते " इत्यादि--(सू २६)

टीकार्थ-दर्शनना सात प्रकार कख्या छे जेना द्वारा अथवा जेना सहलावमां पदार्थने श्रद्धानो विषय बनायी शक्य छे, अथवा नाणी शक्य छे, तेषु नाम दर्शन छे ते दर्शनना नीचे प्रमाणे ७ प्रकार कख्या छे--

(१) सम्यग्दर्शन, (२) मिथ्यादर्शन, (३) सम्यग् मिथ्यादर्शन, (४) चक्षुर्दर्शन, (५) अचक्षुर्दर्शन, (६) अवधिदर्शन अने (७) केवलदर्शन.

सम्यग्दर्शन (सम्यक्त्व), मिथ्यादर्शन (मिथ्यात्व), अने सम्यग्मिथ्यादर्शन (मिश्रदर्शन), आ तेषु दर्शन दर्शन मोड़नीय कर्माना लेदोना

नीयभेदानां क्षयोपशमोदयेभ्यः समुत्पद्यते तथाविधरुचिस्वभावंचेति । चक्षुर्दर्शनादिवुष्टयं तु दर्शनावरणीयभेदचतुष्टयस्य क्षयोपशमप्रयाभ्यां समुत्पद्यते सामान्यग्रहणं स्वभावं चेति । अत्र श्रद्धानसामान्यग्रहणयोर्दर्शनशब्दप्रतिपाद्यत्वाद् दर्शनं सप्तविधमुक्तमिति बोध्यम् ॥ सू० २६ ॥

अनन्तरं केवलदर्शनमुक्तं, तच्च छद्मस्थावस्थायां अनन्तरं भवतीति छद्मस्थप्रतिबद्धं सूत्रमाह—

मूलम्- छडमत्थवीथरागे णं मोहणिज्जवजाओ सत्त कम्मपयडीओ वेण्ण, तं जहा-णाणावराणिज्जं १ दंसणावराणिज्जं २, वैयणियं-३ आउयं ४, नामं ४ गोयं ६-अंतराइयं ७ ॥सू०२७॥

छाया—छद्मस्थवीतरागः खलु मोहनीयवर्जाः सप्त कर्मप्रकृतीर्वेदयति, तद्यथा—ज्ञानावरणीयं १, दर्शनावरणीयं २, वेदनीयम् ३, आयुः ४ नाम ५, गोत्रम् ६ अन्तरायिकम् ७ ॥ सू० २७ ॥

मिश्र ये तीनों भी दर्शन दर्शनमोहनीय कर्मके भेदोंके क्षयसे क्षयोपशमसे और उदयसे उत्पन्न होते हैं । क्योंकि इनका स्वभाव तथाविध रुचि रूप होता है । तथा—चक्षुर्दर्शनादि चतुष्टय तो दर्शनावरणीय कर्मके जो चार भेद हैं, उनके क्षय और उपशमसे उत्पन्न होते हैं, इनका स्वभाव सामान्य रूपसे पदार्थोंको ग्रहण करनेका होता है । यहाँपर श्रद्धान एवं सामान्य ग्रहण ये दोनों दर्शन शब्दके द्वारा कहे जाते हैं इसलिये दर्शन सात प्रकारका कहा गया है ऐसा जानना चाहिये ॥सू०२७॥

ऊपरके सूत्रमें अन्तमें केवल दर्शन कहा गया है—सो वह छद्मस्थावस्थाके जानेके बाद यहाँ होता है, इसलिये सूत्रकार अब छद्मस्थावस्थासे

क्षयथी, क्षयोपशमथी अने उदयथी उत्पन्न थाय छे, कारणुं के तेमनो स्वभाव तथाविध (ते प्रकारनी) इत्थि इप डोयं छे. तथा चक्षुर्दर्शनादि षाकीनीं चार दर्शन तो दर्शनावरणीय कर्मना के अंतर लेह छे तेमना क्षय अने उपशमथी उत्पन्न थाय छे तेमनो स्वभाव सामान्य इपे पदार्थीने अडणु करवानो डोय छे अही ' दर्शन ' पद श्रद्धा अने सामान्य अडणुनुं वाचक छे, तेथी दर्शन सात प्रकारनुं कडेवांमां आण्थुं छे, अम समञ्जसुं. ॥ सू० २७ ॥

आण्ठा सूत्रना अन्त लागमां केवलदर्शननो उल्लेख थयो छे, छद्मस्थावस्था हर थयो आह जे केवलदर्शननी प्राप्ति थय छे. तेथी डवे सूत्रकार छद्मस्थावस्था साथे संबंध धरावता सूत्रनुं कथन करे छे—

ટીકા—‘ છુમત્થવીયરાગે ’ इत्यादि—

छद्मस्थवीतरागः—छद्मानि=ज्ञानावरणदर्शनावरणरूपे आवरणद्वये, अन्तराये च कर्मणि तिष्ठतीति छद्मस्थः=अनुत्पन्नकेवलज्ञानदर्शनः, वीतरागः=वितरागो-
दयः—उपशान्तमोहत्वात् क्षीणमोहत्वाद् वा, स खलु मोहनीयवर्जाः—मोहस्य क्षया-
दुपशमाद् वा मोहनीयकर्मप्रकृतिरहिताः सप्त कर्मप्रकृतीर्वेदयति=अनुभवति,
तद्यथा—ज्ञानावरणीयमित्यादि ॥ सू० २७ ॥

सम्प्रति छद्मस्थकेवलिवक्तव्यज्ञा प्रतिबद्धमेकं सूत्रमाह—

मूलम्—सूक्तं ठाणाइं छुमत्थे सव्वभावेणं न पासइ, तं
जहा--धम्मत्थिकायं १ अधम्मत्थिकायं २ आगासत्थिकायं ३,

પ્રતિબદ્ધ સૂત્રકા કથન કરતે હૈં—

“ છુમત્થ વીયરાગેણ ” इत्यादि ॥ सूत्र २७ ॥

ટીકાર્થ—જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ રૂપ આવરણ દ્વયમેં ઓર અન્તરાય
કર્મમેં જો રહતા હૈ, વહ છદ્મસ્થ હૈ, ઁસા છદ્મસ્થ અનુત્પન્ન કેવલજ્ઞાન
દર્શનવાલા હોનાહૈ, છદ્મસ્થકો જો વીતરાગ કહા ગયાહૈ—વહ વીતરાગો-
દયવાલા હોનેસે કહા ગયા હૈ—ઁસા યહ છદ્મસ્થ વીતરાગ ઉપશાન્ત
મોહ હોનેસે અથવા—ક્ષીણ મોહ હોનેસે હોનાહૈ, યહ છદ્મસ્થ વીતરાગ મોહ-
નીય કર્મકી પ્રકૃતિયોંકે ક્ષય હો જાનેકે અથવા ઉપશમ હો જાનેકે કારણ
મોહનીય કર્મકી પ્રકૃતિયોંકો છોડકર સાત કર્મોંકી પ્રકૃતિયોંકા વેદન
કરતા હૈ, વે સાત કર્મ પ્રકૃતિયાં જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય,
આયુ; નામ ગોત્ર ઓર અન્તરાય હૈં ॥ સૂ० ૨૭ ॥

“ છુમત્થ વીયરાગેણ ” इत्यादि--(सू २७)

ટીકાર્થ—જ્ઞાનાવરણ, અને દર્શનાવરણ રૂપ બે આવરણો જેની પર વ્યાપેલાં છે
અને જેના અન્તરાય કર્મનો ઉદય છે, એવા જીવને છદ્મસ્થ કહે છે. એવો
છદ્મસ્થ મનુષ્ય અનુત્પન્ન કેવળજ્ઞાન અને અનુત્પન્ન કેવળદર્શનવાળો હોય છે.
અહીં છદ્મસ્થને જે વીતરાગ કહ્યો છે, તે વીતરાગોદયવાળો હોવાથી કહ્યો છે.
ઉપશાન્ત મોહ અને ક્ષીણમોહની અવસ્થાના સદ્ભાવમાં જીવ છદ્મસ્થ-વીત-
રાગ બને છે. મોહનીયકર્મની પ્રકૃતિઓનો ક્ષય અથવા ઉપશમ થઈ જવાને
કારણે તે છદ્મસ્થ વીતરાગ મોહનીય કર્મની પ્રકૃતિઓને છોડીને સાત કર્મોની
પ્રકૃતિઓનું વેદન કરે છે. તે સાત કર્મ પ્રકૃતિઓ નીચે પ્રમાણે સ્થળથી—

(૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય, (૩) વેદનીય, (૪) આયુ, (૫)
નામ, (૬) ગોત્ર અને (૭) અન્તરાય. ॥ સૂ. ૨૭ ॥

जीवं असरीरपडिबद्धं ४ परमाणुपोग्गलं ४, सुदं ६ गंधं ८
 एयाणि चैव उत्पन्नवरनाणदंसणघरे जाव जाणइ पासइ, तं
 जहा--धम्मत्थिकायं १ जाव गंधं ८ ॥ सू० २८ ॥

छाया-सप्त स्थानानि छद्मस्थः सर्वभावेन न जानाति न पश्यति, तद्यथा-धर्मा-
 स्तिकायम् १ अधर्मास्तिकायम् २ आकाशास्तिकायं ३ जीवमशरीरप्रतिबद्धम् ४
 परमाणुपुद्गलम् ५ शब्दं ६ गन्धम् ७। एतान्येव उत्पन्नवरज्ञानदर्शनधरः यावत्
 जानाति पश्यति, तद्यथा-धर्मास्तिकायं यावद् गन्धम् ॥ सू० २८ ॥

टीका—'सत्त ठाणाइं' इत्यादि—

अस्य व्याख्या पञ्चमस्थानकस्य तृतीयोद्देशे दशमसूत्रे द्रष्टव्या ॥ सू० २८ ॥
 धर्मास्तिकायादीनि सप्तस्थानानि उत्पन्नवरज्ञानदर्शनधरो जिनो जानाति,
 स च वर्तमाने तीर्थे भगवान् महावीरस्यामीति तत्स्वरूप प्रदर्शयति—

मूलम्—समणे भगवं महावीरे वधरोसुभनारायसंघयणे
 समचउरंससंठाणसंठिए सत्त रयणीओ उहुं उच्चत्तेणं होत्था
 ॥ सू० २९ ॥

अत्र सूत्रकार छद्मस्थ और केवलिकी वक्तव्यतासे प्रतिबद्ध एक
 सूत्रका कथन करते हैं—

“सत्त ठाणाइं छउमत्थे सव्व भावेणं न जाणइ” इत्यादि ॥ सू० २८ ॥

टीकार्थ—छद्मस्थ सात स्थानोंको सर्व भावसे न जानता है, और
 न देखता है, वे सात स्थान ये हैं, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आका-
 शास्तिकाय, अशरीर प्रतिबद्ध जीव, परमाणु पुद्गल शब्द और गन्ध
 इन सात स्थानोंसे उत्पन्न होनेवालेको श्रेष्ठ ज्ञानवाले और श्रेष्ठ दर्शन-
 वाले केवली भगवान् जानते हैं, और देखते हैं। इसकी व्याख्या पञ्चम
 स्थानकके तृतीय उद्देशमें दशवें सूत्रमें देख लेना चाहिये ॥ सूत्र२८ ॥

इसे सूत्रकार छद्मस्थ अने केवलीनी वक्तव्यता वाणा अेक सूत्रनुं कथन
 करे छे—“सत्त ठाणाइं छउमत्थे सव्व भावेणं न जाणइ” इत्यादि (सू. २८)

टीकार्थ—छद्मस्थ नाथेना सात स्थानोने सर्व भावे (प्रत्यक्ष रूपे) नजणुतो
 नथी अने देखतो पणु नथी—(१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय, (३)
 आकाशास्तिकाय, (४) अशरीर प्रतिबद्ध जीव, (५) परमाणु पुद्गल, (६)
 शब्द अने (७) गन्ध. परन्तु उत्पन्न श्रेष्ठ केवणज्ञान अने श्रेष्ठ केवलदर्शन-
 वाणा केवली भगवान् अे सात स्थानोने प्रत्यक्ष रूपे नजणुी शकै छे अने देखी
 शकै छे. पांचम स्थानकना त्रीण उद्देशाना इसमा सूत्रमां आ अधा पहोनी
 व्याख्या आपवामां आवी छे, तो ते व्याख्या त्वाधी बायी देवी. ॥सू. २८॥

छाया—श्रमणो भगवान् महावीरो वज्रकृष्मनाराचसंहननः समचतुरस्र-
संस्थानमंस्थितः सम रत्नीरुर्ध्वमुच्चवेन अभवत् ॥ सू० ३० ॥

टीका—‘समणे भगवं’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० २९ ॥

अथ भगवत्प्ररूपिताः सात विक्रयाः प्ररूपयति—

मूलम्—सत्त विकहाओ पणत्ताओ, तं जहा—इत्थीकहा १,
भक्तकहा २, देसकहा ३, रायकहा ४, मिउकालुणिया ५, दंस-
णभेयणी ६, चरित्तभेयणी ७ ॥ सू० ३० ॥

छाया—सप्त विकथाः प्रज्ञप्ताः, तत्रथा स्त्रीकथा-१, भक्तकथा २, देश-
कथा ३, रात्रकथा ४, मृदुकारुणिकी ५, दर्शनभेदिनी ६, चारित्रभेदिनी ७ ॥
॥ सू० ३० ॥

धर्मास्तिकायादिक सात स्थानोंसे उत्पन्न श्रेष्ठ ज्ञान दर्शनधारी
जिन जानते हैं, ऐसे वे जिन वर्तमान तीर्थमें भगवान् महावीर स्वामी
हैं, इसलिये अब सूत्रकार भगवान् महावीर स्वामीके स्वरूपको दिखलाते हैं।

“समणे भगवं महावीरे” इत्यादि ॥ सूत्र २९ ॥

टीकार्थ—श्रमण भगवान् महावीर वज्रकृष्मनाराचसंहननवाले और
सप्तचतुरस्र-संस्थानवाले थे इनके शरीरकी ऊँचाई सात हाथ थी सू० २९

भगवानके द्वारा प्ररूपित सात विकथाओंका कथन अब सूत्रकार
करते हैं—“सत्त विकहाओ पणत्ताओ” इत्यादि ॥ सू० ३० ॥

धर्मास्तिकाय आदि सात स्थानोंसे, उत्पन्न श्रेष्ठ ज्ञान दर्शनधारी जिने-
श्वर भगवान् लक्ष्मी-देणी शके थे, जेवा जिनेश्वर वर्तमान तीर्थमें महावीर-
प्रभु थई गया थे, तेथी डरे सूत्रकार महावीर स्वामीना स्वरूपतुं वर्णन
मीथेना सूत्रमें करे थे

“समणे भगवं महावीरे” इत्यादि—(सू. २९)

टीकार्थ—श्रमण भगवान् महावीर वज्रकृष्मनाराचसंहननवाला अपने सप्तचतुरस्र
संस्थानवाला हुता तेमना शरीरकी ऊँचाई सात हाथ प्रमाणु हुती ॥ सू० २९ ॥

डरे सूत्रकार भगवान् द्वारा प्ररूपित सात विकथाओंका कथन करे थे

“सत्त विकहाओ पणत्ताओ” इत्यादि—(सू. ३०)

टीका—‘ सप्त विकथाओ ’ इत्यादि—

विकथा—विरुद्धा संयमवाधकत्वेन कथाः—वचनपद्धतयो विकथाः, ताः सप्त मङ्गलाः, तथा—स्त्रीकथा—इत्यादि । तत्राद्याश्चतस्रश्चतुर्थस्थानके व्याख्याताः, अपरास्त्रय व्याख्यायन्ते, तथाहि—मृदुकारुणिकी—मृदु श्रोतृहृदये मृदुभावजननात् सा चासौ कारुणिकी=करुणरसवती चेति, पुत्रादिमरणजनितदुःखार्त्तजनन्यादीनां करुणरससंवलितप्रलापप्रधानेत्यर्थः,

यथा—“ हा पुत्र पुत्र ! हा वत्स वत्स ! मुक्तास्मि कथमनाथाऽहम् ।

एवं कलुणविलावा, जलंत जलणेऽञ्ज सा पडिया ॥ १ ॥ ”

छाया—हा पुत्र पुत्र ! हा वत्स वत्स ! मुक्तास्मि कथमनाथाऽहम् ।

एवं करुणविलापा, ज्वलज्ज्वलनेऽद्य सा पतिता ॥ १ ॥ इति ।

टीकार्थ—सात विकथाएँ कही गई हैं—जैसे—स्त्री कथा १, भक्त कथा २, देश कथा ३, राज कथा ४, मृदुकारुणिकी ५, दर्शन भेदनी ६, और चारित्र्य भेदनी ७ ।

संयमकी बाधक होनेके कारण विरुद्ध जो कथाएँ हैं—बोलनेकी पद्धति हैं—वे विकथा हैं, ये विकथाएँ सात कही गई हैं—जैसे स्त्री कथा आदि—इनमें आदिकी जो चार हैं—वे चतुर्थ स्थानकमें व्याख्यात हो चुकी हैं । बाकीके विषयका व्याख्यान इस प्रकारसे हैं—जो कथा—श्रोताके हृदयमें मृदु भावको उत्पन्न कर देती है, और करुणरसवाली होनी है, ऐसी वह कथा—विकथा है, ऐसी वह कथा पुत्रादिके मरणसे जनित दुःखसे पीड़ित हुए मातापिता आदि जनके करुण रससे मिली हुई प्रवालकी प्रधानतावाली होती है यथा—

टीकार्थ—विकथाओ सात कही छे. ते सात प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(१) स्त्रीकथा (२) भक्तकथा, (३) देशकथा, (४) राजकथा, (५) मृदुकारुणिकी कथा, (६) दर्शन भेदनी कथा अने (७) चारित्र्य भेदनी कथा.

संयमकी बाधक होवनेके कारणे विरुद्ध जे कथाओ छे—बोलवानी पद्धति छे, तेमने विकथा कहे छे जेवनी विकथा सात कही छे. पड़ेली चार विकथानुं योथा स्थानकमां विवेचन करवामां आओं छे, हवे आधीनी त्रय विकथाओनुं स्वरूप अताववामां आवे छे—जे कथा श्रोताना हृदयमा मृदुभाव उत्पन्न करी नाछे छे अने करुण रसमाणी होय छे तेने मृदुकारुणिकी विकथा कहे छे पुत्रादिकना मरणने कारणे जनित दुःखथी पीडाता मातापिता आदि द्वारा कराता करुण प्रलापथी प्रधानतावाणी या विकथा होय छे. जेम हे—

તથા—દર્શનભેદિની—દર્શનનં=શ્રદ્ધાનં તદ્ મેતું શીલં યસ્યાઃ સા,—કુતીર્થિકાનાં જ્ઞાનાયતિશયપ્રશંસનપરા કથા ।

યથા—સૂક્ષ્મયુક્તિ શતોપેતં, સૂક્ષ્મબુદ્ધિકરં પરમ્ ।

સૂક્ષ્માર્થદર્શિભિર્દેષ્ટ, શ્રોતવ્યં વૌદ્ધશાસનમ્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

एवंविधकथया श्रोतृणां बुद्धेऽनुरागः स्यात्तत्तश्च दर्शनभेदः स्यादिति । तथा—

“ हा पुत्त ! पुत्त ! हा वच्छ ! वच्छ ! ” इत्यादि ।

“હે પુત્ર ! હે વત્સ ! તુમ સુદ્ધકો છોડકર વછે ગયે હો અથ મેં કિસકે સહારે રહુંગી જીઝંગી ”—ઇસ પ્રકારકી યહ સૂત પુત્રવાલી કિસી અનાથિની સ્ત્રીકી પ્રલાપ પ્રવાનતાવાલી એવં સુનનેવાલોંકે હૃદયમેં કરુણ રસકોં ઉત્પન્ન કરનેવાલી રોદન ક્રિયા રુપ ઉક્તિ હૈ, કુતીર્થિક જનોંકે જ્ઞાનાદિકે અતિશયકી પ્રશંસા કરનેવાલી જો કથા હૈ, વહ દર્શન ભેદિની વિકથા હૈ । યથા—“ સૂક્ષ્મ યુક્તિશતોપેતં ”. ઇત્યાદિ ।

“ બૌદ્ધશાસન-બુદ્ધસિદ્ધાન્ત-સૈકઢોં સૂક્ષ્મ યુક્તિયોંસે યુક્ત હૈ, ઇસકે અધ્યયનસે બુદ્ધિમેં અદ્ભુત પ્રખરતા આ જાની હૈ, જિનકી બુદ્ધિ સૂક્ષ્મ તરવોંકો અવગાહન કરનેવાલી હૈ, અન્હોંનેહી ઇસ સિદ્ધાન્તકો દેખા હૈ—રચા હૈ—અતઃ એસે બુદ્ધ સિદ્ધાન્તકા શ્રવણ મનન અવશ્ય કરના

“ हा पुत्त ! पुत्त ! हा वच्छ ! वच्छ ! ” इत्यादि—

“ હે પુત્ર ! હે વત્સ ! તુ મને છોડીને ચાલ્યો ગયો । હવે હું કેને આધારે રહીશ । હવે હું કેવી રીતે જીવી શકીશ । ”

આ પ્રકારના વિજ્ઞાપની પ્રધાનતા વાળી અને સાંભળનાર । હૃદયમાં પણ કરુણાભાવ ઉત્પન્ન કરનારી કરુણ રુદન સહિતની ઉક્તિને મૃદુકારુણિકી વિકથા કહે છે. જેનો પુત્ર મરણ પામ્યો છે એવી માતાની “ હે પુત્ર ” ઇત્યાદિ રૂપ જે હ.ખ જે હુઃખપૂર્ણ અને કરુણાભાવજનક વાણી હોય છે તેને મૃદુકારુણિકી વિકથા કહે છે.

કુતીર્થિકાના જ્ઞાનાદિના અતિશયની પ્રશંસા કરનારી જે કથા છે તેને દર્શન ભેદિની કથા કહે છે. જેમ કે—

“ સૂક્ષ્મયુક્તિશતોપેતં ” ઇત્યાદિ—

“ બૌદ્ધશાસન (બુદ્ધસિદ્ધાન્ત) સૈકઢોં સૂક્ષ્મ યુક્તિઓથી યુક્ત છે. તેનો અભ્યાસ કરનારી બુદ્ધિમાં અદ્ભુત પ્રખરતા આવી જાય છે. જેમની બુદ્ધિ તરવોંકો અવગાહન કરનારી છે તેમણે જ આ સિદ્ધાન્તની રચના કરી છે તેથી એવા બૌદ્ધ સિદ્ધાન્તનું શ્રવણ અને મનન અવશ્ય કરવું જોઈએ ” આ પ્રકારની

ચારિત્રમેદિની—ચારિત્ર=ક્રિયા, તદ્ ભેતું શીલા । યયા—અસ્મિન્ કાલે મહાવ્રતાનિ ન સંભવન્તિ, યતઃ સાધવઃ પ્રમાદિનોડ્વીચારપ્રચુરાશ્ચ જાતાઃ, ન ચોપલભ્યન્તે- ડ્વિચારશોધકાઃ આચાર્યાઃ, તેષામમાવેડ્વીચારકર્તૃસાધુનાં શુદ્ધેઃ કા કયા ? અતોડ્વિચાર જ્ઞાનદર્શનામ્ભામેત્ત્વ તીર્થ પ્રવર્ત્તેતે ઇતિ જ્ઞાનદર્શનકર્તૃવ્યેપ્યેવ યત્નો વિધેય ઇતિ । ઉક્તં ચ—

“ સોહી ય નત્થિ નવિ દિંત કરેંતા નવિ ય કેઇ દીસંતિ ।

તિત્થં ચ નાણદંસણ નિજ્જવગા ચેવ વોચ્છિન્ના ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—શોધિશ્ચ નાસ્તિ નાપિ ઢાતારઃ કર્તારો નાપિ ચ કેચિદ્ દૃશ્યન્તે ।

તીર્થં ચ જ્ઞાનદર્શનામ્ભ્યાં નિર્યાપકા (નિયામકા) શ્વ વ્પુચ્છિન્નાઃ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

ચાહિયે “ હસ પ્રકારકી કથાસે શ્રોતાઓંકા અનુરાગ વુદ્ધમેં હો સકતા હૈ, હસસે દર્શનમેં ભેદ શિથિલતા—આ જાતી હૈ, ચરિત્ર નામ ક્રિયાકા હૈ, હસ ક્રિયા રૂપ ચારિત્રકો ભેદન કરનેકે સ્વભાવવાલી જો કથા હૈ, વહ ચારિત્ર મેદિની કથા હૈ, જૈસે—હસ કાલમેં મહાવ્રત નહીં હો સકતે હૈં—ક્યોંકિ સાધુજન પ્રમાદશીલ હોતે હૈં, ઓર અતિચાર પ્રચુર હોતે હૈં. અતિચારોંકી શુદ્ધિ કરનેવાલે આચાર્યજન મિલતે નહીં હૈં, અતઃ હનકે અભાવમેં અતિચાર કરનેવાલે સાધુજનોંકી શુદ્ધિ કૈસે હો સકતી હૈ ? નહીં હો સકતી હૈ, હસલિયે હસ કાલમેં કેવલજ્ઞાન ઇવં દર્શન હન- ઢોનોંસેહી તીર્થ ચલતા હૈ, અતઃ જ્ઞાનદર્શન રૂપ કર્તવ્યોંમેંહી પ્રયત્ન વિધેય હૈ, ચારિત્રમેં નહીં ઉક્તં ચ—

“ સોહી ય નત્થિ નવિદિંત ” ઇત્યાદિ ।

કથાથી શ્રોતાઓનાં બુદ્ધ પ્રત્યે અનુરાગ ઉત્પન્ન થઈ શકે છે. તે કરણે દર્શનમા ભેદ-શિક્ષતા આવી બંધ છે તેથી આ પ્રકારની કથાને દર્શન ભેદની વિકથા કહે છે. ચારિત્ર ભેદિની વિકથા—ક્રિયાને ચારિત્ર કહે છે આ ક્રિયા રૂપ ચારિત્રનું ભેદન કરવાના સ્વભાવવાળી જે કથા છે તેને ચારિત્ર ભેદિની વિકથા કહે છે. જેમ કે—“ આ જમાનામાં મહાવ્રતોની આરાધના તો થઈ શકતી જ નથી, કારણ કે સાધુઓ પ્રમાદી હોય છે, અને તેમના અતિચારોની પણ પ્રચુરતા હોય છે. તે અતિચારોની શુદ્ધિ કરાવનારા આચાર્યો પણ મળતા નથી એવા આચાર્યોને અભાવે અતિચારોનું સેવન કરનાર સાધુઓની શુદ્ધિ પણ કેવી રીતે થઈ શકે ? એટલે કે તેમના અતિચારોની શુદ્ધિ જ થઈ શકતી નથી તે કરણે આ જમાનામાં તો કેવળજ્ઞાન અને દર્શનવડે જ તીર્થ ચાલે છે તેથી જ્ઞાનદર્શન રૂપ કર્તવ્યોમાં જ પ્રયત્ન કરવા યોગ્ય છે—ચારિત્રમાં નહીં ” કહ્યું પણ છે કે—

“ સોહી ય નત્થિ નવિન્તિ ” ઇત્યાદિ—

एवंविधकथया गृहीतचारित्रा अपि चारित्राद् वैमुख्यमामजन्ते, का कथा तर्हि चारित्रग्रहणोत्सुकानाम्, ते तु सुतरामेव वैमुख्यमापद्यन्ते । अत एवविधा कथा चारित्रभेदिनीत्युच्यत इति ॥ सू० ३० ॥

त्रिकथासु च वर्तमानान् साधून् आचार्या वारयन्ति, आचार्याश्च सातिशया भवन्तीति तेषामतिशयानाह—

मूलम्—आयरियउवज्झायस्स णं गणंति सत्त अइसेसा पणत्ता, तं जहा—आयरियउवज्झाए अंतो उवस्सयस्स पाए गिगिज्झय णिगिज्झय पफोडेमाणे वा पमज्जमाणे वा णाइक्कमइ १, एवं जहा—पंचमट्टाणे जाव बाहिं उवस्सयस्स एग-रायं वा दुरायं वा वसमाणे वा नाइक्कमइ ५, उवकरणाइसेसे ६ भत्तपाणाइसेसे ८ ॥ सू० ३१ ॥

छाया—आचार्योपाध्यायस्य खलु गणे सप्त अतिशेषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रपस्य पादौ निगृह्य निगृह्य प्रस्फोटयन् वा प्रमार्ज-यन् वा नातिक्रामति १, एव यथा पञ्चमस्थाने यावत् बहिरुपाश्रयात् एकरात्रं वा द्विरात्रं वा वसन् नातिक्रामति ५, उपरुणाति शेषः ६, भक्तपानातिशेषः ७ ॥ सू० ३१ ॥

“ चारित्रकी शुद्धि करनेवाले और चारित्रकी शुद्धि करानेवाले ऐसे हमें कोई भी जन दिखते नहीं हैं अतः तीर्थज्ञान दर्शनसेही चल सकता है ।”

इस प्रकारकी कथासे गृहीत चारित्रवाले भी जन चारित्रसे विमुख हो जाते हैं—तो फिर जो चारित्र को ग्रहण करनेके प्रति उत्कण्ठित हैं, उनको घातही क्या कहनी वे तो अपने आपही विमुख हो जाते हैं । इसलिये इस प्रकारकी जो कथा है, वह चारित्रको भेद करनेवाली है । सू० ३० ।

“ चारित्रनी शुद्धि करनारी अने चारित्रनी शुद्धि करवनारी कोठ पणु व्यञ्जित अमने देखाती न नथी, तेथी तीर्थ ज्ञानदर्शन वडे न आले छे ” आ प्रकारनी वात सांभग्रीने गृहीत चारित्रवाणे माणुम पणु चारित्रथी विमुम थर्ष लय छे, तो चारित्रग्रहणु करवानी (‘प्रनया अंगीकार करवानी) उत्कंठावाणा माणुमनी तो वात न शी करवी ! तेओ च रित्रग्रहणु करवाने विचार न मांडी व जे, तेमां कथुं नवाध पाववा जेवुं नथी. ते कारणे आ प्रकारनी कथाने चारित्रने लेटनारी विधवा इही छे, ॥ सू० ३० ॥

टीका—‘आयरिय उवज्जायस्स’ इत्यादि—

आचार्योपाध्यायस्य—आचार्यः—केपांचिदर्थप्रदातृत्वात्, स एव उपाध्यायः
केपांचित् सूत्रप्रदातृत्वात्, आचार्यश्चासौ उपाध्यायश्चेति आचार्योपाध्यायं,
यद्वा—आचार्योऽन्यः, उपाध्यायश्चान्यः, उभयोः समाहारे आचार्योपाध्यायं, तस्य
खलु गणे सप्त अतिशेषा = अतिशेषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आचार्योपाध्यायः उपा-
श्रयण्य=वसनेः अन्तः=मध्ये निगृह्य निगृह्य=प्रस्फोटनेन उड्डीयमानैश्वर्यरजोभि-
रन्ये मा भिरेरन्निति हेतोर्वचनेन शिष्यं भूयो भूयो निवार्य पादौ प्रस्फोटयन्=
आभिग्रहिकेन (अभिग्रहधारिणा) अन्येन वा साधुना-स्वकीयरजोहरणादिना
चरणयोः प्रस्फोटनं कारयन् वा, प्रमार्जयन्=यतनया शनैः शनैः शोधयन् वा-
नातिक्रामति जिनाज्ञामिति प्रथमं १। तथा—आचार्योपाध्यायः अन्तरुपाश्रयस्य

इन विक्रथाओंमें निरत साधुजनोंको आचार्य रोकते हैं, क्योंकि
वे आचार्य सातिशय होते हैं, अतः अब सूत्रकार उनके अतिशयोक्ता
कथन करते हैं—“आयरिय उवज्जायस्स णं गणंसि” इत्यादि ॥सूत्र ३२॥

टीका—किन्हीं २ साधुजनोंको अर्थ प्रदाता होनेसे आचार्यरूप
उपाध्यायके—गणमें—अथवा आचार्य एवं उपाध्यायके गणमें सात अति-
शेष कहे गये हैं—जैसे—आचार्योपाध्याय “ उपाश्रयके मध्यमें पैरोंके
झटकारनेसे उड़ी हुई चरण रज दूसरेके ऊपर नहीं पड़े इस प्रकारसे
शिष्यको वार २ मना करके स्वयं पैरोंको अभिग्रहिक—अभिग्रहधारीसे
या अन्य साधुजनसे अपने रजोहरण द्वारा घननापूर्वक प्रमार्जन करता

आगता सूत्रमां विक्रथाओतुं वरुणं कथुं. आ विक्रथाओमा निरत साधु-
ओ ने आचार्य रोके छे, कारण के आचार्य सातिशय डोय छे. तेथी डवे सूत्र
कार आचार्योना अतिशयोतुं कथन करे छे.—

“आयरिय उवज्जायस्स णं गणंसि” इत्यादि—(सू ३२)

टीका—केटकाके साधुओना अर्थ प्रदाता होवाने कारणे आचार्य ३५ उपाध्यायना
गणमां अथवा आचार्य अने उपाध्यायना गणना तीये प्रमाणे सात अतिशेषो
अतिशयो कहा छे—

“ उपाश्रयनी अंदर पगने अटकारवाथी (अपटवाथी) अरुणरु उपाश्र-
यमां अडेला माणुसे पर पडवाने संभव रहे छे,” ते कारणे आचार्य शिष्योने
ओवी रीते पगने अटकारवाणी वारंवार मना करे छे परन्तु आचार्य पोते न ले
अभिग्रहिक—अभिग्रहधारी पासे अथवा अन्य साधु पासे पोताना रनेहरण
वडे यतनापूर्वक पोताना पगनी प्रमार्जन करावे, ते तेओ जिज्ञासाना
विशधक गणुता नथी.

उच्चारप्रस्रवणं विवेचयन् वा विशोधयन् नातिक्रामतीति द्वितीयः २। आचार्यो-
पाध्यायः प्रभुः-समर्थः स्वेच्छान् भवति, अत इच्छा वैयावृत्यं कुर्यात् इच्छा न
कुर्यादिति तृतीयः ३। आचार्योपाध्यायः अन्तराश्रयस्य एकरात्रं वा द्विरात्रं वा
एकाकी वसन नातिक्रामतीति चतुर्थः ४। आचार्योपाध्यायो बहिरुपाश्रयादेक-
रात्रं वा द्विरात्रं वा वसन्नातिक्रामतीति पञ्चमः ५। एतेषां पञ्चानामपि व्याख्या
पञ्चमे स्थाने द्वितीयोद्देशेऽष्टाविंशतितमे सूत्रे कृता तत एव गम्या । अत एवाह
मूलकारः-‘ एवं जहा पंचमहाणे जाव वाहिं ’ इत्यादि । तथा-उपकरणातिशेषः=
शेषसाध्वपेक्षया प्रधानोऽज्जलवस्त्राद्युपकरणवत्ता, उक्तं च—

हुंआ जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है १ तथा आचार्योपाध्याय उपा-
श्रयके भीतर उच्चारप्रस्रवण करता हुआ जिनाज्ञाका विराधक नहीं
होता है २, आचार्योपाध्याय समर्थ होता है, अतः उसकी इच्छा होती
है, तो वह अन्य साधुजनोंकी वैयावृत्ति करता है-और यदि इच्छा
नहीं होती है तो नहीं करता है, इस तरहकी प्रवृत्तिसे
वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं होता है ३, आचार्योपाध्याय उपाश्रयके
भीतर एक रात या दो रात अकेला यदि रहते हैं, तो वह जिनाज्ञाका
विराधक नहीं होते हैं ४। आचार्योपाध्याय यदि उपाश्रयके बाहर एक
रात तक या दो रात तक रहता है-तो वह जिनाज्ञाका विराधक नहीं
होता है ५। इन पांचों स्थानोंकी व्याख्या पांचवें स्थानमें द्वितीय उद्देशक
में २८ वें सूत्रमें की जा चुकी है, अतः वहींसे देव लेना चाहिये इस-
लिये सूत्रकारने ऐसा कहा है-“ एवं जहा पंचमहाणे जाव वाहिं ”

(२) आचार्योपाध्याय उपाश्रयमा न उच्चार प्रस्रवण्यु (भणभूत्रने निकाल)
करे तो तेमना द्वारा जिनाज्ञानुं उद्वेधन थयुं गण्णुतुं नथी. (३) आचार्यो-
पाध्याय समर्थ होय छे जे तेमनी छिच्छा थाय तो तेओ अन्य साधु
ओतुं वैयावृत्य करे छे, अने जे छिच्छा न थाय तो वैयावृत्य करता नथी.
आ प्रकारे वैयावृत्य करवाथी के न करवाथी तेओ जिनाज्ञाना विराधक गण्णुता
नथी. (४) आचार्योपाध्याय जे ओक जे रात ओकला रहि, तो तेओ जिनाज्ञाना
विराधक गण्णुता नथी. (५) ओछं आचार्योपाध्याय ओक जे रात्रि पर्यन्त उपा-
श्रयनी भंडार रहि, तो तेओ जिनाज्ञाना विराधक गण्णुता नथी. आ पांचे
स्थानेनी विस्तृत व्याख्या पांचवें स्थानकना भील्ल उद्देशाना २८ भा सूत्रमां
आपवामां आवी छे, त्यांथी वांथी देवी. तेथी न सूत्रकारे अही आ प्रभांछे
कथु छे-“ एवं जहा पंचमहाणे जाव वाहिं ”

“ आयरिय गिलाणाणं, मइला मइला पुणो य धोवंति ।

माहु गुरुण अत्रणो नात्रि गिलाणीय इयरेसिं ॥ १ ॥ ”

छाया--आचार्यग्लानानां मलिनानि मलिनानि पुनरपि धाव्यन्ते ।

मा खलु गुरुणामवर्णो नापि ग्लानि श्व इतरेपाम् ॥ १ ॥ इति ॥

इति पष्ठः ६। तथा-भक्तपानातिशेषः-विशिष्टतरभक्तपानोपभोगवत्ता ।

उक्तं च--“ कालभोगो उ पयसा, परिहाणी जात्र कोद्रबुम्ज्जी ।

तत्थ मिउ तुप्पतरं, जत्थ य जं अच्चियं दोसु ॥ १ ॥ ”

छाया--कलमौदनस्तु पयसा परिहानि (परिहान्येत्यर्थः) यावत्कोद्रबोद्धाजी
(कोद्रवान्ते)

तत्रापि भृद्दु तुप्पतरं (धृतयुक्ते) यत्र च यत् अचित्तं (प्राप्तं) द्वयोः

(क्षेत्रकालयोः) ॥ १ ॥ इति ।

आचार्योपाध्याय विशिष्टतरभक्तपानदाने चैते गुणाः, तथाहि--

“ सत्तत्थधिरीकरणं, विरओ गुरुपूय मेहवहुमाणो ।

दाणवइ सुद्रबुद्धी, बुद्धी वरुवद्धणं चैव ॥ १ ॥ ”

छाया--सुवार्थस्थिरीकरणं विनयो गुरुपूजा शैश्वहुमानः ।

दानपति श्रद्धावृद्धि बुद्धिबलवर्द्धनं चैव ॥ १ ॥ इति ॥ सू० ३१ ॥

उपकरणातिशेष-शेष साधुजनोंकी अपेक्षा जो आचार्योपाध्यायमें प्रधान उज्ज्वल वस्त्रादिमत्ता होती है वह उपकरणातिशेष है उक्तं च--

“ आयरियगिलाणाणं ” इत्यादि ।

“ भक्तपानानिशेष ”-आचार्योपाध्यायका जो इतर साधुजनोंकी अपेक्षा विशिष्टतर भक्तपानोपभोग वत्ता होती है, वह भक्तपानातिशेष है-उक्तं च--‘ कलभोगो उ पयसा ’ इत्यादि ।

आचार्योपाध्यायको विशिष्ट भक्तपानके देनेमें ये गुण हैं-जैसे

“ सत्तत्थधिरीकरणं ” इत्यादि । सूत्र ३१ ॥

(६) उपकरणातिशेष-अन्य साधुओं करतां आचार्योपाध्याय वधारे सारां उज्ज्वल वस्त्रादिने उपयोग करता होय, तो तेओ जिनाज्ञाना विराधक गण्यता नथी-कहुं पणु छे के-“ आयरिय गिलाणाणं इत्यादि ”-

(७) भक्तपानातिशेष-अन्य साधुओं करतां विशिष्ट तर भक्तपानने उपभोग इतनी पणु आचार्योपाध्यायने छूट होय छे. तेमना आ अतिशेषने कारणे अन्य साधुओं करतां विशिष्ट प्रकारता आहारपानने उपयोग करतारा आचार्योपाध्याय जिनाज्ञाना विराधक गण्यता नथी कहुं पणु छे-“ कल भोगो उ पयसा ” इत्यादि आचार्योपाध्यायने विशिष्टतर आहारपाणी देवाभां आ गुणो छे-“ सत्तत्थधिरीकरणं ” इत्यादि-॥ सू ३१ ॥

एते चाचार्यातिशयाः संयमोपकारयैव विधीयन्ते, न तु रागादिवशेतेति-
संयमान्, तत्रश्च संयमप्रतिपक्षानसंयमान्, तद्भेदांश्चारम्भादीन् तत्प्रतिपक्षाननार-
म्भादींश्च प्ररूपयति—

सूत्रम्—सत्तविहे संजमे पणत्ते, तं जहा-पुढविकाइय
संजमे, जाव तसकाइयसंजमे ६ अजीवकायसंजमे ७। सत्तविहे
असंजमे पणत्ते, तं जहा-पुढविकाइय असंजमे १ जाव तस-
काइय असंजमे ६, अजीवकाय असंजमे ७। सत्तविहे आरंभे
पणत्ते, तं जहा-पुढविकाइय आरंभे १ जाव अजीवकाय-
आरंभे ७। एवमणारंभे वि ७।, एवं सारंभे वि ७ एवमसमारंभे वि
७, एवं समारंभे वि ७, एवमसमारंभे वि ७, जाव अजीवकाय
असमारंभे ७ ॥ सू० ३२ ॥

छाया—सत्तविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—पृथ्वीकायिकसंयमो १ यावत्
त्रसकायिकसंयम ६, अजीवकायसंयमः ७। सत्तविधोऽसंयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
पृथ्वीकायिकसंयमो १ यावत् त्रसकायिकसंयमः ६, अजीवकायसंयमः ७।
सत्तविध आरम्भः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—पृथ्वीकायिकारम्भो १ यावत् अजीवकायारम्भः
७। एवमनारम्भोऽपि ७, एवं संरम्भोऽपि ७, एवमसंरम्भोऽपि ७, एवं समारम्भो-
ऽपि ७, एवमसमारम्भोऽपि ७, यावत् अजीवकायसमारम्भः ७ ॥ सू० ३२ ॥

टीका—‘सत्तविहे’ इत्यादि—

संयम-संयमनं=सावत्रयोगात्सम्यगुपरमणं-निवृत्तिरूपं इति संयमः-पृथिव्यादीनां
संघट्टपरितापनोपद्रावणेभ्य उपरमो निवृत्ति इत्यर्थः, सत्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-पृथ्वी-

ये आचार्यानिशय संयमके उपकारके लिये ही विहित हुए हैं,
रागादिके वशसे नहीं—इसलिये अब सूत्रकार संयमोंका, संयमके
प्रतिपक्षभूत असंयमोंका उनके भेदरूप आरम्भादिकोंको एवं इनके
प्रतिपक्षभूत अनारम्भादिकोंका प्ररूपण करते हैं—

उपरन्ता सूत्रमा आचार्येता अतिशयेनु निद्रपणु कथुः। रागादिषुनी वृद्धि
करवाने निमित्ते तेमना ते अतिशयो विदित थया नयी, परन्तु संयमना उप
कारक डोवाने कारणे न विदित थयेला छे तेथी इवे सूत्रकारे संयमनु,

कायिक संयमः-पृथ्वीकायिकजीवानां संघट्टपरितापनोपद्रावणाकरणम् १। यावत्पदात्-
अपूकायिकः तेजस्कायिकः २ वायुकायिकः ४ वनस्पतिकायिकः ५ संयमा ग्राह्याः ।
तथा-त्रसकायिकसंयमः-त्रसकायिकानां द्वीन्द्रियादीनां संयमः ६। अजीवकाय-
संयमः-अजीवकायानां=वलपात्रादीनाम् अयतनया ग्रहणादुपभोगाच्च निवृत्तिरिति
७। असंयमः=पृथिव्यादीनां संघट्टपरितापनोपद्रावणेभ्योऽनुपरमः; सोऽपि पृथ्वी-
कायिकासंयमादिभेदेन सप्तविधो बोध्यः ॥ तथा-आरम्भः=उपद्रावणं पृथ्वीकाया-

“ सत्तविहे संजमे पणत्ते ” इत्यादि ॥ सूत्र ३१ ॥

टोकार्थ-संयम सात प्रकारका कहा गया है-सावथ योगसे होना
इसका नाम संयम है, यह संयम पृथिव्यादिकोंके संघट्टन, परितापन
एवं उपद्रावण इनसे उपरम होने रूप होना है, यहां यावत्पदसे अप-
कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, और वनस्पतिकायिक ” इनके
संयम गृहीत हुए हैं । इस प्रकारसे ५ भेद एकेन्द्रिय जीवोंके संयमके
हैं । तथा त्रस जीव सम्यन्धी संयमका एक भेद है, त्रसकायिकमें दो
इन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके जीव आ जाते हैं । संयमका ७ वां
भेद है-अजीवकाय संयम इस संयममें अजीवकाय जो वस्त्र पात्रादिक
हैं उनके यतनासे ग्रहण करनेका और रखनेपूर्वक उपभोग करनेका है-

असंयम-पृथिव्यादिक जीवोंका संघट्टन करना, परितापन करना
एवं उपद्रावण करना इसका नाम असंयम है, यह असंयम भी पृथिवी-

संयमथी विपरीत एवा असंयमनुं, तेमना लेह इप आरम्भादिनु
अने आरम्भथी विपरीत एवां अनारम्भादिकेनुं निश्पथु करे छे-

“ सत्तविहे संजमे पणत्ते ” इत्यादि-(सू ३२)

सावधयोगोथी निवृत्त यवुं तेनुं नाम संयम छे ते संयमना नीचे प्रमाणे
सात प्रकार छे-(१) पृथ्वीकायिक (२) अपूकायिक, (३) वायुकायिक, (४) तेज-
स्कायिक अने (५) वनस्पतिकायिकसंयम. अही पृथ्वीकायिक आदिना संघट्टन,
परितापन अने उपद्रावणथी विरमवा इप आ संयम समन्वये ऐकेन्द्रिय
जिवोनी अपेक्षाये संयमना पंचलेह पडे छे (६) त्रसकायिक संयम-द्वीन्द्रियोथी
लधने पंचेन्द्रिय पर्यंतना त्रसकायिक कडे छे. (७) अश्वकाय संयम-वस्त्र
पात्रादिक रे वस्तुओ छे तेने अश्वकाय कडे छे तेमने यतना पूर्वक ग्रहण
करवी अने भूकवी तथा यतना पूर्वक तेमनो उपभोग करवो तेनुं नाम अश्व
काय संयम छे.

असंयम-पृथ्वीकाय आदि जिवोनुं संघट्टन करवुं, परितापन करवुं अने
उपद्रावण करवुं तेनुं नाम असंयम छे, ते असंयमने पणु पृथ्वीकायिक असं-

રમ્ભાદિભેદેન સપ્તવિધઃ । એવમનારમ્ભોઽપિ સપ્તવિધો વૌધ્યઃ । તથા-સંરમ્ભઃ-
 હિંસાત્રિપયઃ સકલ્પ પૃથ્વીકાયિક સંરમ્ભાદિભેદેન સપ્તવિધઃ । એવમસંરમ્ભોઽપિ
 સપ્તવિધો વૌધ્યઃ । તથા-સમારમ્ભઃ=પરિતાપ-પૃથ્વીકાયિક સમારમ્ભાદિભેદેન
 સપ્તવિધઃ એવમપમારમ્ભોઽપિ સપ્તવિધો વૌધ્યઃ । આરમ્ભાદીનામુપદ્રાવણાદિરૂપા
 અર્થા અન્યત્રાપ્યુક્તાઃ,

તથાહિ—“ આરંભો ઉદ્વઓ, પરિતાવકરો ભવે સમારંભો ।

સંકલ્પો સંરંભો, સુદ્ધ નયાણં તુ સર્વેસિ ॥ ૧ ॥

છાયા—આરમ્ભ ઉપદ્રવતઃ પરિતાપકરો ભવેત્ સમારમ્ભઃ ।

સંકલ્પઃ સંરમ્ભઃ શુદ્ધનયાનાં તુ સર્વેષામ્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

કાયિક અસંયમ આદિકે ભેદસે સાત પ્રકારકા હોતા હૈ । હસી પ્રકારસે
 આરમ્ભ મી પૃથિવીકાયારમ્ભ આદિકે ભેદસે સાત પ્રકારકા હોતા હૈ,
 હસી પ્રકારસે અનારમ્ભ મી સાત પ્રકારકા હોતા હૈ, તથા હિંસા-વિષ-
 યક સંકલ્પ રૂપ સંરમ્ભ પૃથિવીકાયિક સંરમ્ભ આદિકે ભેદસે સાત
 પ્રકારકા હોતા હૈ, હસી તરહસે અસંરમ્ભ મી સાત પ્રકારકા હોતા હૈ,
 તથા સમારમ્ભ મી-પરિતાપ મી-પૃથિવીકાયિક સમારમ્ભાદિકે ભેદસે
 સાત પ્રકારકા હોતા હૈ, હસી તરહસે અસમારમ્ભ મી સાત પ્રકારકા
 હોતા હૈ, આરમ્ભ આદિકૌકે ઉપદ્રાવણ આદિ રૂપ અર્થ અન્યત્ર મી
 કહે ગયે હૈ, જો હસ પ્રકારસે હૈ--

“ આરમ્ભો ઉદ્વઓ ” ઇત્યાદિ ।

એકેન્દ્રિયાદિક જીવૌકા ઉદ્રવણ કરના યહ આરમ્ભ હૈ, અને
 સંતાપયુક્ત કરના યહ સમારમ્ભ હૈ, તથા અને કષ્ટ આદિ પહ્લેવાને કા

યમ આદિ સાત લેદ કહ્યા છે. એ જ પ્રમાણે અનારંભના પણ પૃથ્વીકાયિક
 અનારંભ આદિ સાત લેદ પડે છે.

તથા હિંસાવિષયક સંકલ્પરૂપ સંરંભના પણ પૃથ્વીકાયિક સંરંભ આદિ
 સાત લેદ કહ્યા છે અસંરંભના પણ પૃથ્વીકાયિક અસંરંભ આદિ સાત લેદ
 કહ્યા છે સમારંભના (પરિતાપ)ના પણ પૃથ્વીકાયિક સમારંભ આદિ સાત લેદ
 કહ્યા છે એ જ પ્રમાણે અસમારંભના પણ પૃથ્વીકાયિક અસમારંભ આદિ
 સાત લેદ કહ્યા છે, આરંભાદિકૌના ઉપદ્રાવણ આદિ રૂપ અર્થ અન્યત્ર પણ
 પ્રકટ કરવા માં આવેલ છે, જે નીચે પ્રમાણે છે—

“ આરમ્ભો ઉદ્વઓ ” ઇત્યાદિ—

એકેન્દ્રિયાદિક જીવૌનું ઉપદ્રાવણ કરવું તેનું નામ આરંભ છે તેમને
 સંતાપયુક્ત કરવા તેનું નામ સમારંભ છે, તથા તેમને કષ્ટ આદિ પહોંચાડવાને

ननु आरम्भादीनामुपद्रावणादयोऽर्था अभिहिताः अजीवेषु च तदसंभवात् अजीवकार्यारम्भादयोऽसंभवितः, तत्र आरम्भादीनां यत् सप्तविधत्वमुक्तं तदसंगतम् ? इति चेत्, आह—अजीवेषु वस्त्रपात्रादिषु समाश्रिता ये जीवास्तदपेक्षया आरम्भादय संभवन्ति, अथवा—अथतनया ग्रहणे स्थापने च पात्रादीनां वायुकायोदीरणात् अवश्यं जीवविराधना संभवति । जीवाश्च अजीवाश्रिता इति अजीवस्य प्राधान्यात् अजीवकार्यारम्भाद्युक्तिर्न विरुध्यते इति आरम्भादीनां सप्तविधत्वं निरवद्यमेवेति ॥ सू० ३२ ॥

विचार करना यह सकल्प रूप संरम्भ है ।

शंका—आरम्भ आदिकोंके जो ये उपद्रावण आदि रूप अर्थ प्रकट किये गये हैं—सो अजीवोंमें ये घटिन नहीं होते हैं—अतः अजीव कार्यारम्भ आदि वहां नहीं बन सकते हैं, इसलिये वहां नहीं बन सकनेके कारण आरम्भ आदिकोंमें जो सप्तविधता कही गई है, वह ठीक नहीं बैठती है ?

उत्तर—ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अजीव जो वस्त्रपात्रादिक हैं, उनमें समाश्रित जो जीव हैं, सो उनकी अपेक्षासे आरम्भ आदिक होते हैं, अजीवाश्रित जीव होते हैं, इसलिये अजीवकी प्रधानता लेकर अजीव कार्यारम्भ आदिका कथन विरुद्ध नहीं पड़ता है, इसतरह आरम्भ आदिकोंमें सप्त प्रकारनाका प्रतिपादन निर्दोषही है, अथवा अथतनासे लेनेमें और रखनेमें वायुकायादिककी अवश्य विराधना होती है ॥ सू० ३२ ॥

विचार करना रूप सकल्पनु' नाम संरल छे,

शंका—आरंल दिकेना जे उपद्रावणु आदि रूप अर्थ प्रकट करवाभां आब्या छे, तेमने अलवोसां घटावी शकता नथी. तेथी अही अलवकाय आरंलादि रूप प्रकार संलवी शकतो नथी. ते कारणे आरंल आदिकेना सात प्रकार उडेवाने पहिले ६ प्रकार जे उडेवा लेधअ.

उत्तर—आ प्रकारनी शंका अस्थाने छे, कारणे जे वस्त्रादिक अलवोसां अनेक लवो आश्रय लधने रहेला होय छे जे वस्त्रपात्रादिकने यतनापूर्वक तेमने उपलोग करवाभां न आवे, तो तेमने आश्रये रहेला लवोनुं उपमर्दन आदि थवाने संलव रहे छे. अलवश्रित लव होय छे, तेथी अलवनी प्रधानताने लीधे अलवकारंल आदिनुं कथन विरुद्ध पडतुं नथी. आ प्रकारे आरंल आदिकेना सात प्रकार उडेवाभां डोर्ध होय नथी अथवा अथतना पूर्वक वस्त्रादिकने देवा भूकवाथी वायुकायिकेनी अवश्य विराधना थाय छे. ॥ सू. ३२ ॥

અનન્તરસૂત્રે સંયમાદયો જીવવિષયત્વેન ઉક્તા इति જીવવિશેષસ્ય સ્થિતિં પ્રરૂપયતિ—

મૂલમ્—અહ મંતે ! અયસિકુસુંભકોદ્રવકંઙ્ગુરાલકોદૂપકસળસર્પમૂલવી-
સરિસવમૂલવીયાણં ઘણ્ણિ ણં ધન્નાણં કોટ્ટાઉત્તાણં પહ્લા-
ઉત્તાણં જાવ પિહિયાણં મુદ્ધિયાણં લંઠિયાણં કેવડયં કાલં
જોણી સંષ્ઠિટ્ટુ ? ગોયમા ! જહ્ણેણં અંતોસુહુત્તં ઉક્કોસેણં
સત્ત સંવચ્છરાઈં, તેણ પરં જોણી પમિલાયડ્ જાવ જોણીવોચ્છેણ
પળ્ણત્તે ॥ સૂ. ૩૩ ॥

છાયા—અથ મદન્ત ! અતસીકુસુમ્મકોદ્રવકંઙ્ગુરાલકોદૂપકસળસર્પમૂલવી-
જાનામ્ એતેષાં સ્વલુ ધાન્યાનાં કોષ્ઠાશુપ્તાનાં પલ્યાશુપ્તાનાં યાવત્ પિહિ-
તાનાં મુદ્ધિતાનાં લાઠ્ઠિતાનાં કિયન્તં કાલં યોનિઃ સંતિપ્પત્તે ? ગૌતમ ! જઘ-
ન્યેન અન્તર્મુહૂત્તમ્ ઉત્કર્ષેણ સમ્પ સંયત્સરાન્, તતઃ પરં યોનિઃ પ્રમ્લાયતિ યાવદ્
યોનિવ્યુચ્છેદઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ ॥ સૂ. ૩૩ ॥

ટીકા—‘ અહ મંતે ’ इत्यादि—

અયેતિ પ્રશ્ને, મદન્તેતિ ભગવદામન્ત્રણે હે મદન્ત ! અતસીકુસુમ્મકોદ્રવકંઙ્ગુ-
રાલકોદૂપકસળસર્પમૂલવીજાનામ્—તત્ર અતસી=‘ અલસી ’ इति ભાષાપ્રસિદ્ધો
ધાન્યવિશેષઃ, કુસુમ્મમ્=કુસુમ્મારુધધાન્યવિશેષઃ, કોદ્રવઃ=‘ કોદો ’ इति ભાષા

इस ऊपरके सूत्रमें संयम आदिके जीव विषयवाले कहे गये हैं, सो अब सूत्रकार जीव विशेषकी स्थितिकी प्ररूपणा करते हैं—

“ अहं मंते ! अयसिकुसुंभ ” इत्यादि ॥ सूत्र ३३ ॥

टीकार्थ—यहां “ अथ ” यह शब्द प्रश्नमें आया है, शिष्य प्रश्न करता है—हे मदन्त ! अतसी-अलसी, कुसुम-इस नामका धान्य विशेष, कोद्रव-कोदो, कङ्गु-कांगणी, रालक-कागनीकाही एक भेद

આગલા સૂત્રમાં સંયમ આદિને જીવવિષયક કહેવામાં આવેલ છે. પૂર્વ સૂત્ર સાથેના આ પ્રકારના સંબંધને લઈને હવે સૂત્રકાર જીવવિશેષની સ્થિતિની પ્રરૂપણા કરે છે—“ અહ મંતે ! અયસિકુસુંભ ” इत्यादि—(સૂ. ૩૩)

સૂત્રની શરૂઆતમાં જે “ અહ ” પદ આવ્યું તે પ્રશ્નાર્થ વાચક છે. અહીં શિષ્ય શુરુને આ પ્રમાણે પ્રશ્ન પૂછે છે—હે ભગવન્ ! અતસી કુસુંભ (એક પ્રકારનું ધાન્યવિશેષ), કોદ્રવ, કાંગ (એક ભતનું ધાન્ય), રાલક (કાંગનેા જ

प्रसिद्धो धान्यविशेषः ' कङ्गुः ' = ' कागणी ' इति भाषाप्रसिद्धः, रालकः कङ्गुभेदः, कोदूपकः = कोद्वभेदः, सणः - प्रसिद्धः, सर्पपः - प्रसिद्धः, मूळबीजानि = मूळस्य = ' मूला ' इति प्रसिद्धस्य बीजानि, एतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः, तेषां तथाभूतानाम्, एतेषां खलु धान्यानां कोष्ठागुप्तानाम् - कोष्ठे = ' कोठा ' इति प्रसिद्धे धान्याधारे आगुप्तानि = पक्षेपेण संरक्षितानि कोष्ठागुप्तानि तेषां तथोक्तानां, तथा पल्यागुप्तानाम् - पल्यं = वंशकटकादिकृतो धान्याधारपात्रविशेषः, तत्र आगुप्तानाम्, यावत्पदेन - मञ्चागुप्तानाम्, मालागुप्तानाम् अवलिप्तानाम्, लिप्तानाम् - इति संप्रहः । तत्र - मञ्चागुप्तानाम् - मञ्चः = स्थूणानामुपरिस्थापितवंशकटकादिमयो लोकप्रसिद्धः, तत्रागुप्तानाम्, मालागुप्तानाम्, मालो - मालकः - गृहोपरितनभागः, तत्र आगुप्तानाम्, अवलिप्तानाम् = द्वारदेशं पिधाय गोमयादिनाऽवलिप्तानाम्, लिप्तानाम् = सर्वतः कृतलेपानाम् पिहितानाम् = आच्छादितानाम् मुद्रितानाम् = मृत्तिकादिभिर्मुद्रितानां, लाञ्छितानाम् = रेखादिभिः कृतलाञ्छनानां कियन्तं काञ्चं योनिः = उत्पत्तिशक्तिः सन्तिष्ठते = भवति ? इति शिष्यप्रश्नः ।

कोदूपक-कोदोका एक भेद - ' सण-सनसर्पप-सरसो और मूलाके बीज ये जब कोष्ठागारमें सुरक्षित रखे हुए हों - धान्यके आधारभूत कोठेसे बनाये हुए पिटारेमें भरकर सुरक्षित रखे हुए हों, यावत्-मञ्चागुप्त हों - खंभोंके ऊपर स्थापित वंश कटक आदिसे बनाये गये मञ्चोंमें भरकर रखे हुए हों, अवलिप्त हों - द्वारदेशको ढंककर गोमय आदिसे लीप पोतकर किसी कुठिया आदिमें भरकर रखे हुए हों लिप्त हों चारों तरफसे लेप करके एक स्थान पर एकत्रित करके ढंककर रखे हुए हों पिहित हों - सामान्य रूपसे ढंककर रखे गये हों, मुद्रित हों - मिट्टी आदिसे छात्रकर किसी पात्र विशेषमें घन्द करके रखे हुए हों, एवं

एक लेद), कोदूपक (कोठरानो ७ एक लेद), शणु, सरसप અને મૂળાનાં ખીજોને કોઈ કોઠારમાં ભરી રાખવામાં આવેલ હોય, અથવા પલ્યાગુપ્ત હોય - વાંસની ચટ્ટાઈએ માથી બનાવેલા પટારામાં ભરીને સુરક્ષિત રાખવામાં આવેલ હોય, મંચાગુપ્ત હોય - થાંભલાએને આધારે ઊભા કરેલા કોઈ ઊંચા માંચડા પર સંબ્રહ કરવામાં આવેલ હોય, અવલિપ્ત હોય - કોઈ કોઠી આદિમાં ભરીને તેના ઢાંકણાને છાણુ, માટી આદિ વડે લીપીને બંધ કરવામાં આવેલ હોય - સામાન્ય રૂપે ઢાંકીને રાખેલ હોય, મુદ્રિત હોય, માટી આદિ વડે લીપી લઈને કોઈ પાત્ર વિશેષમાં બંધ કરીને રાખેલ હોય, અને લાંછિત હોય - લાખ આદિ વડે સીકમહોર કરીને કોઈ પણ પાત્ર વિશેષમાં ભરી રાખ્યા

उत्तरयति-गौतम । जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उन्कर्षेण सात संवत्सरान् योनिः सन्निष्ठते, ततः परं योनिः प्रमूत्रायति=वर्णादिना हीयते, यावत्पदेन-ततः परं योनि, विध्वंसते=विनाशाभिमुखी भवति, ततः परं वीजम् अवीजं भवति=उत्तमपि तद् नाङ्कुरम् उत्पादयति, इत्येपां संग्रहः, ततः परं योनिव्युच्छेदः जननशक्तिविनाशः प्रज्ञप्त इति ॥ सू० ३३ ॥

पुनरपि जीवविशेषाणां स्थितिं प्ररूपयति—

मूलम्—वाय्वर आउकाइयाणां उक्लोसेण सत्त वाससहस्साइं ठिई पणत्ता । तच्चाएणं वालुयप्पभाए पुढवीए उक्लोसेण नेर-इयाणां सत्त सायरोवमाइं ठिई पणत्ता । चउत्थीए णं पंक-

लाञ्छित हो शीलसुहर करके कहीं भी भरकर रखे हुए हों तो इन सबकी क्लिने काल तक योनि-अङ्कुरोत्पादक शक्ति रहती है ?

उत्तर—हे गौतम ! इनकी योनि जघन्यसे एक अन्तर्मुहूर्त तक रहती है, और उत्कृष्टसे सात साल वर्ष रहती है । इसके बाद योनि म्लान हो जाती है, वर्णादिसे हीन हो जाती है—यावत् अङ्कुरोत्पादन शक्तिका विनाश हो जाता है, यहां यावत्पदेसे—“ ततः परं योनिः विध्वंसते ” इसके बाद योनि विनाशके अभिमुख हो जाती है “ ततः परं वीजं अवीजं भवति ” बोये जाने पर भी वह बीज अङ्कुरको उत्पन्न नहीं करता है ” इस पाठका संग्रह हुआ है, अर्थात् कहे हुए अलसी आदि सात वर्षके बाद अचित्त हो जाते हैं ॥ सू० ३३ ॥

डाय, तो ते भीजेमां डेटवा डण सुधी भीजे-पादन शक्ति रडे छे ? अटवे डे डेटवा वर्ष सुधी तेमनी येनिने विच्छः थतो नथी ?

उत्तर—हे गौतम ! ओछामां ओछा ओक अन्तर्मुहूर्तं सुधी अने वधारेमां वधारे सात वर्ष सुधी तेमनी येनि रडे छे, अर्थात् उत्पादनशक्ति णनी रडे छे. त्थार णाद तेमनी येनि म्लान थथं नय छे, वर्णादिथी विहीन थथं नय छे, (यावत्) अने आभरे ते भीजेनी अङ्कुरोत्पादन शक्तिने विनाश थथं नय छे, अडी “ यावत् ” पद द्वारा नीयेने सूत्रपाठ ग्रहण करवाने छे—“ ततः परं योनिः विध्वंसते ” त्थार णाद येनिने विनाश थवा भाडे छे. “ तत्र परं वीजं अवीजं भवति ? ” त्थार णाद यावत्पदेमां आवे तो पणु ते भीजे अङ्कुरोत्पादन करी शक्तुं नथी. आ कथनने सावर्थ्ये छे डे उपयुक्त अणसी अ डि धान्येमां वधारेमां वधारे सात वर्ष सुधी अङ्कुरोत्पादन शक्ति रडे छे त्थार णाद तो तेओ अचित्त न णनी नय छे ॥ सू ३३ ॥

पभाए पुठवीए जहन्नेणं नैरइयाणं सत्त सागरोपमाइं ठिई
पणत्ता ॥ सू० ३४ ॥

छाया-वादराष्कायिकानाम् उत्कर्षेण सप्त वर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता । तृती-
यस्यां खलु बालुकाप्रभायां पृथिव्याम् उत्कर्षेण नैरयिकाणां सप्त सागरोपमाणि
स्थितिः प्रज्ञप्ता । चतुर्थ्यां खलु पङ्कप्रभायां पृथिव्यां जघन्येन नैरयिकाणां सप्त
सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता ॥ सू० ३४ ॥

टीका—‘ वायर आउकाइयाणं ’ इत्यादि—

व्याख्या सुगमा । नवरम्-वादराणामपूकायिकानां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम् ।
सूक्ष्माणां तु जघन्योत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्तम् । बालुकाप्रभास्थितनैरयिकाणां जघन्येन
त्रीणि सागरोपमाणि । पङ्कप्रभास्थितनैरयिकाणाम् उत्कर्षेण दश सागरोपमाणीति
॥ सू० ३४ ॥

अब सूत्रकार पुनः जीव विशेषोंकी स्थितिकी प्ररूपणा करते हैं—

“ वायर आउकाइयाणं उक्कोसेण सत्तवाससहससाइं इत्यादि सू०३४ ॥

टीकार्थ-बादर अपूकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति हजार वर्षकीहै।
तीसरी बालुका प्रभायें उत्कृष्टसे नैरयिकोंकी सात सागरोपमकी स्थिति
कही गई है, चौथी पङ्कप्रभा पृथिवी में जघन्य से नैरयिकों की स्थिति
सात सागरोपम की कही गई है । इसकी व्याख्या सुगम है, बादर
अपूकायिक जीवोंकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है, तथा सूक्ष्म अपू-
कायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की
है । बालुकाप्रभास्थित नैरयिक जीवों की जघन्य स्थिति तीन साग-
रोपम की है, एवं पङ्कप्रभास्थित नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति १० साग-
रोपम की है ॥ सू० ३४ ॥

सूत्रकार इवेना सूत्रमां पणु केटलाक अविशेषोनी स्थिति प्ररूपणा
करे छे.—“ वायर आउ काइयाणं उक्कोसेण सत्तवास सहससाइं ” इत्यादि—(सू ३४)

बादर अपूकायिक अवेनी उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्षनी कही छे,
त्रीणि बालुकाप्रभा नामनी नरकपृथ्वीना नारकोनी उत्कृष्ट स्थिति सागरोपमनी
कही छे. चौथी पङ्कप्रभा नामनी जघन्य सात सागरोपमनी कही छे. आ सूत्रनी
व्याख्या सुगम छे

बादर अपूकायिक अवेनी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्तनी कही छे. सूक्ष्म
अपूकायिक अवेनी जघन्य स्थिति अने उत्कृष्टस्थिति, अने अन्तर्मुहूर्त्त
कही छे. बालुकाप्रभाना नारकोनी जघन्य स्थिति त्रणु सागरोपमनी कही छे
अने पङ्कप्रभाना नारकोनी उत्कृष्ट स्थिति १० सागरोपमनी कही छे ॥ सू. ३४ ॥

अनन्तरसूत्रे नारकाणां स्थितिरुक्ता, इति स्थितिशरीरादिभिस्तत्साधर्म्यात्
पङ्क्तिभिः सूत्रैर्देववक्तव्यतामाह—

सूत्रम्—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरत्तो वरुणस्स महारत्तो
सत्त अग्गमहिस्सीओ पण्णत्ताओ । ईसाणस्स णं देविंदस्स देव-
रत्तो सोमस्स महारत्तो सत्त अग्गमहिस्सीओ पण्णत्ताओ । ईसा-
णस्स णं देविंदस्स देवरत्तो जमस्स महारत्तो सत्त अग्गमहि-
सीओ पण्णत्ताओ ॥ सू० ३५ ॥

छाया—शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य वरुणस्य महाराजस्य सप्त
अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः । ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमस्य महाराजस्य
सप्त अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः । ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य यमस्य महाराज-
स्य सप्त अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः ॥ सू० ३५ ॥

टीका—‘सक्कस्स णं’ इत्यादि—

देवेन्द्रस्य=देवानां मध्ये ऐश्वर्यसम्पन्नस्य अत एव देवराजस्य=देवानाम
धिपस्य शक्रस्य=सौधर्मकृत्याधिपस्य दक्षिणात्येन्द्रविशेषस्य आज्ञायां स्थितस्य

ऊपर के सूत्र में नारकों की स्थिति कही गई है—सो अब सूत्र-
कार स्थिति और शरीर आदि के द्वारा नारकों के साधर्म्य को लेकर
६ सूत्रों से देववक्तव्यता का कथन करते हैं—

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरत्तो’ इत्यादि । सू० ३५ ॥

सूत्रार्थ—देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वरुण महाराज की सात अग्र-
महिषियां कही गई हैं, देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल सोम महा-
राज की सात अग्रमहिषियां कही गई हैं । देवेन्द्र देवराज ईशान के
लोकपाल यम महाराज की सात अग्रमहिषियां कही गई हैं ।

उपरना सूत्रमां नारकानां स्थितिनी प्रपञ्चा करवाभां आवी छे. हवे
स्थिति अने शरीर आदि द्वारा नारकाना साधर्म्यांने लीधे छ सूत्रे वडे देव
वक्तव्यतानुं सूत्रकार कथन करे छे—

“सक्कस्समणं देविंदस्स देवरत्तो” इत्यादि—(सू ३५)

सूत्रार्थ—दक्षिणुनिकायने. धन्द्र छे. ते देवेन्द्र देवराज शक्रना लोकपाल
वरुण महाराजने सात अग्रमहिषीओ छे. देवेन्द्र देवराज ईशानना लोकपाल
सोम महाराजने पण्णत्ताओ सात अग्रमहिषीओ छे.

वरुणस्य=पश्चिमदिक्पालस्य महाराजस्य=प्रचुरशोभाशालिनः सप्त अग्रमहिष्यो बोध्याः । तथा-देवेन्द्रस्य देवराजस्य ईशानस्य=ईशानकल्पाधिपस्य औदीच्येन्द्रविशेषस्य आज्ञायां स्थितस्य सोमस्य=पूर्वदिक्पालस्य सप्ताग्रमहिष्यो बोध्याः । तथा-ईशानेन्द्राज्ञावर्तिनो यमस्य=दक्षिणदिक्पालस्य सप्ताग्रमहिष्यो बोध्याः ॥सू० ३५ ॥

मूलम्-ईसाणस्त णं देविंदस्त देवरन्नो अविंभतरपरिसाए देवाणं सत्त पालिओवमाइं ठिई पणत्ता । सक्कस्त णं देविंदस्त देवरन्नो अग्रमहिषीणं देवीणं सत्त पालिओवमाइं ठिई पणत्ता । सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं उक्कोसेणं सत्त पालिओवमाइं ठिई पणत्ता ॥ सू० ३६ ॥

टीकार्थ-देवों के बीच में ऐश्वर्य सम्पन्न होने से देवेन्द्र एवं देवों के अधिपति होने से देवराज ऐसे सौधर्म कल्प के अधिपति दक्षिणात्येन्द्र विशेष की आज्ञा में स्थित पश्चिम दिक्पाल वरुण हैं, ये प्रचुर शोभाशाली हैं अतः इन्हे महाराज कहा गया है, ईशानकल्प के अधिपति ईशान हैं ये उत्तर दिशा के इन्द्र हैं, इनकी आज्ञा में-सोम महाराज रहते हैं, ये पूर्व दिशा के अधिपति हैं । दक्षिण दिशा के अधिपति यमलोकपाल हैं, ये भी ईशानेन्द्र की आज्ञा में रहते हैं । इन सब लोकपालों की ७-७ अग्रमहिषियां कही गई हैं ॥ सूत्र ३५ ॥

टीकार्थ-देवेन्द्र देवराज ईशानना लोकपाल यम महाराजने पणु सातअग्रमहिषीओ छे. शक दक्षिणुनिकायना देवोना अधिपति होवाथी तेने 'देवराज' ते दक्षिणुनिकायना देवोना अधिपति होवाथी तेने 'देवराज' विशेषणुलगाउथुं छे. वणी अधा देवोमां ते विशेष ऐश्वर्यसंपन्न होवाथी तेने 'देवेन्द्र' विशेषणुलगाउथुं छे. ईशान कल्पने अधिपति ईशान छे. ते उत्तरनिकायना देवोना अधिपति छे. तेने 'देवेन्द्र' अने 'देवराज' आ विशेषणुलगाउवानुं कारणु पणु उपर प्रमाणे न समजवुं. दक्षिणुनिकायना अधिपति शकनी आज्ञामा स्थित ओवे पश्चिम दिशाने न दिक्पाल छे तेनुं नाम वरुणु छे ते अत्यंत शोभाशाली होवाथी तेने अर्ही 'वरुण महाराज' उडेवामां आवेल छे. देवेन्द्र देवराज ईशानना ओक लोकपालनुं नाम सोम महाराज छे. तेओ पूर्व दिशाना अधिपति छे. तेमना नील लोकपालनुं नाम यम महाराज छे. तेओ दक्षिणु दिशाना अधिपति छे आ वरुणु, सोम अने यम नामना लोकपालोने सूत सात अग्रमहिषीओ छे. ॥ सू. ३५ ॥

छाया—ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य आश्वयन्तरपरिषदि देवानां सप्त पत्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता । शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य अग्रमहिषीणां देवीनां सप्त पत्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता । सौधर्म कल्पे परिगृहीतानां देवीनाम् उत्कर्षेण सप्त पत्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ॥ सू० ३६ ॥

टीका—‘ ईशानस्य णं ’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा । नवरं—परिगृहीतानां=भार्यात्वेन स्वीकृतानामिति भावः ॥ सू० ३६ ॥

मूलम्—सारस्वत्यमाहृच्चाणं सत्त देवा सत्त देवस्ययापणत्ता । गर्दतोयतुसियाणं देवाणं सत्त देवा सत्त देवसहस्रा पणत्ता ॥ सू० ३७ ॥

छाया—सारस्वतादित्यानां सप्त देवाः सप्त देवगतानि प्रज्ञप्तानि । गर्दतोयतुपितानां देवानां सप्त देवाः सप्तदेवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ॥ सू० ३७ ॥

टीका—‘ सारस्वत्य ’ इत्यादि—

सारस्वता आदित्याः गर्दतोयास्तुषिताश्च लोकान्तिका देवाः । तेषु सारस्वतादित्यानां सप्त देवाः प्रधानाः, तदितरे च सप्त शतानि देवाः । गर्दतोयतुपितानां मध्ये सप्त देवाः प्रधानाः, तदितरे च सप्तसहस्राणि ॥ सू० ३७ ॥

“ ईशानस्य णं देविदस्य देवरणो ’ इत्यादि ॥ सू० ३६ ॥

टीकार्थ—देवेन्द्र देवराज ईशानकी आश्वयन्तर परिषदमें वर्तमान देवोंकी ७ पत्योपम की स्थिति कही गई है । देवेन्द्र देवराज शक्र की अग्रमहिषियों की स्थिति सात पत्योपम की कही गई है । सौधर्मकल्प में भार्या रूप से स्वीकृत हुई देवियों की स्थिति उत्कृष्ट से सात पत्योपम की कही गई है । ३६ ।

“ सारस्वत्यमाहृच्चाणं सत्त देवा ” इत्यादि । सू० ३७ ॥

टीकार्थ—सारस्वत आदित्य, गर्दतोय, और तुषित ये लोकान्तिक देव हैं । इन में सारस्वत और आदित्य इनके सात देव प्रधान हैं । और इन

“ इमानस्य ण देविदस्य देवरणो ’ इत्यादि—(सू ३६)

टीकार्थ—देवेन्द्र देवराज ईशानकी आश्वयन्तर परिषदना देवीनी सात पत्योपमनी स्थिति कही छे । देवेन्द्र देवराज शक्रनी अग्रमहिषीओनी स्थिति सात पत्योपमनी कही छे । सौधर्म कल्पमां भार्या रूपे स्वीकृत थयेली देवीओनी उत्कृष्ट स्थिति सात पत्योपमनी कही छे ॥ सू ३६ ॥

“ सारस्वत्यमाहृच्चाणं सत्त देवा ” इत्यादि—(सू ३७)

टीकार्थ—सारस्वत, आदित्य, गर्दतोय, अने तुषित, ये लोकान्तिक देवा छे । तेमांथी सारस्वत अने आदित्य देवोमां सात देवा प्रधान (मुभ्य)

मूलम्—सणकुमारे कल्पे उक्कोसेणं देवाणं सत्त सागरोव-
माइं ठिई पणत्ता । माहिंदे कल्पे उक्कोसेणं देवाणं सातिरेगाइं
सत्त सागरोवमाइं ठिई पणत्ता । वंभलोगे कल्पे जहणणेणं
देवाणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पणत्ता ॥ सू० ३८ ॥

छाया—सनत्कुमारे कल्पे उत्कर्षेण देवानां सप्त सागरोपमाणि स्थितिः
प्रज्ञप्ता । माहेन्द्रे कल्पे उत्कर्षेण देवानां सातिरेकाणि सप्त सागरोपमाणि स्थितिः
प्रज्ञप्ता । ब्रह्मलोके कल्पे जयन्येन देवानां सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता
॥ सू० ३८ ॥

टीका—‘सणकुमारे कल्पे’ इत्यादि—

व्याख्या सुगमा ॥ सू० ३८ ॥

मूलम्—वंभलोयलंतएसु णं कल्पेसु विमाणा सत्त जोयण-
सयाइं उड्डुं उच्चत्तेणं पणत्ता ॥ सू० ६९ ॥

से भिन्न और भी सात सौ देव हैं । इसी तरह गर्दतोय और तुषित
इनके मध्य में सात देव प्रधान हैं और इनसे भिन्न सात हजार और
भी देव हैं ॥ सूत्र ३७ ॥

“सणकुमारे कल्पे उक्कोसे णं देवाणं” इत्यादि । सू० ३८ ॥

टीकार्थ—सनत्कुमार कल्पमें देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपमकी
कही गई है । माहेन्द्र कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागर-से
कुछ अधिक कही गई है । ब्रह्मलोक कल्प में देवों की जयन्य स्थिति
सात सागरोपम की कही गई है । सूत्र ३८ ॥

छे, अने ते सिवायना णील ७०० सामान्य देवे छे. अण प्रभाणुे गर्दतोय
अने तुषित देवेमां सात देवे मुण्य छे अने ति सिवायना सात डणर णील
देवे छे. ॥ सू ३८ ॥

“सणकुमारे कल्पे उक्कोसेणं देवाणं” इत्यादि—(सू ३७)

टीकार्थ—सनत्कुमार कल्पमां देवेांनी उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपमनी कही छे.
माहेन्द्र कल्पमां देवेांनी उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम करतां थोडी वधारे कही
छे. अणवेाक कल्पमां देवेांनी जयन्य स्थिति सात सागरोपमनी कही छे. ॥ सू ३८ ॥

छाया—ब्रह्मलोकान्तकयोः खलु कल्पयोर्विमानानि सप्त योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ॥ सू० ३९ ॥

टीका—“वमलोयलंतएसु णं कल्पेसु” इत्यादि—
व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ३९ ॥

मूलम्—भवनवासीणं देवाणं भवधारणिज्जा शरीरगा उक्को-
सेणं सत्त रयणीओ उद्धं उच्चत्तेणं पणत्ता । एवं वाणमंतराणं
एवं जोइसियाणं । सोहम्मीसाणेसु णं कल्पेसु देवाणं भवधार-
णिज्जागा शरीरगा सत्त रयणीओ उद्धं उच्चत्तेणं पणत्ता ॥ सू० ४० ॥

छाया—भवनवासिनां देवानां भवधारणीयानि शरीरकाणि ॥ उत्कर्षेण सप्त
रत्नीः ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि । एवं व्यन्तसाणाम्, एवं भवनवासिनाम् । सौधर्म-
शानयोः खलु कल्पयोः देवानां भवधारणीयकाणि शरीरकाणि सप्त रत्नीः ऊर्ध्व-
मुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ॥ सू० ४० ॥

टीका—“भवनवासीणं भवधारणीज्जा” इत्यादि—
व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ४० ॥

“वमलोयलंतएसु णं कल्पेसु” इत्यादि । सूत्र ३९ ।
ब्रह्मलोक एवं लान्तिका कल्पो में स्थित विमानों की ऊँचाई सात सौ
योजन की कही गई है । सूत्र ३९ ।

“ भवनवासीणं देवाणं भवधारिणीज्जा ” इत्यादि । सूत्र ४० ।
टीकाथ—भवनवासी देवों के भवधारणीय शरीर उत्कृष्टसे सात हाथ
ऊँचे कहे गये हैं । इसी तरह से व्यन्तरी के और ज्योतिष्क देवों के
शरीर भी जानना चाहिये, सौधर्म और ईशान इन दो कल्पों में देवों
के भवधारणीय शरीर ऊँचाई में सात हाथ के कहे गये हैं । सूत्र ४० ।

“ वमलोयलंतएसु णं कल्पेसु ” इत्यादि—(सू० ३९)

प्रश्न—अने विान्तिका उडेपोना विमानोमी विधाए सात योजन प्रमाणु
कही छे ॥ सू० ३९ ॥

भवनवासीणं देवाणं भवधारणिज्जा ” इत्यादि—(सू० ४०)

टीकाथ—भवनवासी देवोनी भवधारणीय शरीरनी उद्धं विधाए सात हाथ
प्रमाणु कही छे, अने भवधारणीय व्यन्तरी, अने ज्योतिष्क देवाना भव-
धारणीय शरीरनी विधाए विधे, पणु, समणु सौधर्म अने ईशान उडेपोना
देवाना भवधारणीय शरीरनी विधाए पणु सात हाथ प्रमाणु कही छे ॥ सू० ४० ॥

अनन्तरं देवानामधिकार उक्तः । देवानामावासाय द्वीपसमुद्रा इति तान् प्ररूपयति--

मूलम्--णंदिस्सरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त दीवा पण्णत्ता,
तं जहा-जंबुद्वीवे दीवे १, धायइसडो दीवे २, पोक्खरवरै ३,
वरुणवरै ४, खीरवरै ५, घृतवरै ६ खोदवरै ७ । णंदिस्सरवरस्स
णं दीवस्स अंतो सत्त समुद्धा पण्णत्ता, तं जहा-लवणो ॥ १५
१, कालोदे २, पुक्खरोदे ३, वरुणोदे ४ खीरोदे ५, घृतोदे ६,
खोओदे ७ ॥ सू० ४१ ॥

छाया--नन्दीश्वरस्य खलु द्वीपस्यान्तः सप्त द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-
जम्बुद्वीपो द्वीपः १, धातकीषण्डो द्वीपः २, पुष्करवरः ३, वरुणवरः ४, क्षीर-
वरः ५, घृतवरः ६, क्षोदवरः ७ । नन्दीश्वरस्य खलु द्वीपस्य अन्तः सप्त
समुद्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-लवण १, कालोदः २, पुष्करोदः ३, वरुणोदः ४,
क्षीरोदः ५, घृतोदः ६, क्षोदोदः ७ ॥ सू० ४१ ॥

टीका--' णंदिस्सरवरस्स ' इत्यादि--

व्याख्या स्पष्टा ॥ सू० ४१ ॥

इस तरह से देवों का अधिकार कह कर अब सूत्रकार देवों के
आवासों का एवं द्वीपसमुद्रों का कथन करते हैं--
“ णंदिस्सरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त ” इत्यादि । सूत्र ४१ ।
टीकाार्थ--नन्दीश्वर द्वीप के भीतर सात द्वीप कहे गये हैं, जैसे--जम्बुद्वीप
नाम का द्वीप १, धातकी षण्ड नाम का द्वीप २, पुष्करवर द्वीप ३, वरु-
णवर द्वीप ४, क्षीरवर द्वीप ५, घृतवर द्वीप ६, एवं क्षोदवर द्वीप ७,
नन्दीश्वर द्वीप के भीतर सात समुद्र कहे गये हैं--जैसे लवण समुद्र

प्रमाणे देवानुं कथने करीमे डवे सूत्रकार देवाना आवासानुं
अने द्वीपसमुद्रानुं कथन करे छे-

“ णंदिस्सरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त ” इत्यादि--(सू ४१)

टीकाार्थ--नन्दीश्वर द्वीपनी अंदर नीचे प्रमाणे सात द्वीप कहे छे--(१) जम्बुद्वीप
नामना द्वीप, (२) धातकी षण्ड नामना द्वीप, (३) वरुणवर द्वीप, (४) क्षीर-
वर द्वीप, (५) घृतवर द्वीप अने (७) क्षोदवर द्वीप ।

एते द्वीपसमुद्रास्तु श्रेण्या व्यवस्थिता इति श्रेणिमाह--

मूलम्-सत्त सेढीओ पणत्ताओ, तं जहा-उज्जुआयया १,
एगओ वंका २, दुहओ वंका ३ एगओ खहा ४ दुहओ खहा
५, चक्रवाला ६, अद्द चक्रवाला ६। सू० ४२ ॥

छाया--सप्त श्रेणयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ऋज्वायता १, एकतो वक्रा २,
द्विधातो वक्रा ३, एकतः खा ४ द्विधातः खा ५, चक्रवाला ६, अर्द्धचक्रवाला
७ ॥ सू० ४२ ॥

टीका--' सत्त सेढीओ ' इत्यादि--

श्रेणयः--जीवपुद्गल संचाराश्रयाः आकाशप्रदेशपङ्क्तयः सप्त प्रज्ञप्ता, तद्यथा-
ऋज्वायता-ऋजुधामावापता चेति, यथा जीवादय ऊर्ध्वलोकादेशधोलोकादौ
ऋजुतया यान्ति सा आकाशप्रदेशपङ्क्तिः, यथा (--) इति स्थापना १।

१ काळોદ સમુદ્ર ૨ પુષ્કરોદ સમુદ્ર ૩ વરુગોદ સમુદ્ર ૪ ક્ષીરોદ સમુદ્ર
૫ ઘૃનોદ સમુદ્ર ૬ એવંક્ષોદોદ સમુદ્ર ૭ અર્થાત્ ઇક્ષુ સમુદ્ર જિસંકા જલ
ઇક્ષુ-(સેલડી) જૈસા મધુર હોતા હૈ । સૂત્ર ૪૧ ।

ये द्वीप और समुद्र श्रेणि से व्यवस्थित हैं-अतः अब सूत्रकार
श्रेणिका कथन करते हैं--

“ सत्त सेढीओ पणत्ताओ ” इत्यादि । सूत्र ४२ ।

ટાકાર્થ-શ્રેણિયાં સાત કહી ગઈહૈ, જીવ ઓર પુદ્ગલોંકા ગમન આકાશ
કે પ્રદેશોં કી પંક્તિ કે અનુસાર હી હોતા હૈ, અતઃ જીવ ઓર પુદ્ગલોં
કે સંચાર કે આશ્રય ભૂત જો આકાશ કે પ્રદેશોં કી પંક્તિ હૈ વહી
શ્રેણી હૈ, વે શ્રેણિયાં સાત હૈ--એક ઋજ્વાયતા ૧, દ્વિતીયા-એક તો

નંદીશ્વર દ્વીપની અંદર નીચે પ્રમાણે સાત સમુદ્રો છે-(૧) લવણ સમુદ્ર,
(૨) કાલોદ સમુદ્ર, (૩) પુષ્કરોદ સમુદ્ર, (૪) વરુણોદ સમુદ્ર, (૫) ક્ષીરોદ
સમુદ્ર, (૬) ઘૃનોદ સમુદ્ર. ॥ સૂ ૪૧ ॥

ઉપર્યુક્ત દ્વીપો અને સમુદ્રો શ્રેણિમાં વ્યવસ્થિત છે. તેથી હવે સૂત્રકાર
શ્રેણિનું કથન કરે છે--“ સત્ત સેઢીઓ પણત્તાઓ ” ઇત્યાદિ--(સૂ ૪૨)

ટીકાર્થ-શ્રેણિઓ સાત કહી છે. જીવ અને પુદ્ગલોંકા ગમન આકાશના પ્રદેશોની
પંક્તિ અનુસાર જ થાય છે તેથી જીવ અને પુદ્ગલોંકા સંચારના આશ્રયસ્થાન
રૂપ જે આકાશના પ્રદેશોની પંક્તિ છે, તેનું જ નામ શ્રેણિ છે. એવી શ્રેણિઓ
સાત છે-

एकतो वक्रा-एकतः=एकस्यां दिशि वक्रा=कुटिला, यथा जीवपुद्गला ऋजु गत्वा वक्रीभूय श्रेण्यन्तरेण यान्ति सा प्रदेशपङ्क्तिरिति । आकारश्चायम्-(८) २ । द्विधातो वक्रा-द्वयो दिशोः कुटिला रेखा । इयं च ऊर्ध्वक्षेत्रादाग्नेयदिशोऽधः क्षेत्रे वायव्यदिशि गत्वा य उत्पद्यते तरय भवति, तथाहि-प्रथमसमये आग्नेय्या-स्तिर्यग् नैर्ऋत्यां याति ततस्तिर्यगेव वायव्यां ततोऽधो वायव्यामेवेति । त्रिसम

वक्रा २, तृतीया-द्विधातो वक्रा २, चतुर्थी-एकताः खा, पंचमी-द्विधातः खा, षष्ठी-चक्रवाला, और सप्तमी अर्द्धचक्रवाला,

जिससे जीवादिक ऊर्ध्वलोक आदिसे अधोलोक आदिमें सरलतासे आते हैं ऐसी वह आकाश प्रदेश पङ्क्ति ऋजुवायताहै, अर्थात् जो आकाश प्रदेश पङ्क्ति सरल और-लम्बी होतीहै वह ऋजुवायताहै, इसका आकार (—) ऐसा है, जो आकाशप्रदेशपङ्क्ति एकदिशा में कुटिल (वांकी) होती है वह प्रदेश पङ्क्ति एकतोवक्रा है, इस गति से जीव पुद्गल सरलता से जाकर फिर वक्र होकर श्रेण्यन्तर से जाते हैं, इसका आकार (१) इस प्रकार से है, २

जो आकाश प्रदेश पङ्क्ति दोनों दिशाओं में कुटिल होती है वह द्विधातो वक्राहै यह गति जो ऊर्ध्व क्षेत्र रूप आग्नेय दिशासे अधो क्षेत्र रूप वायव्य दिशा में जाकरके उत्पन्न होताहै उसको होतीहै, जीव प्रथम समय में आग्नेय (अग्निकोण) दिशा से तिरछा नैर्ऋत्य दिशामें जाता

(१) ऋजुवायता, (२) એકનો વક્રા, (૩) દ્વિધાતો વક્રા, (૪) એકતાઃખા, (૫) દ્વિધાતઃખા, (૬) ચક્રવાલા. અને (૭) અર્ધચક્રવાલા

જેનાથી જીવો વિગેરે ઉર્ધ્વલોક વિગેરેમાંથી અધોલોક વિગેરેમાં સરલપણાથી આવે જાય છે, એવી તે આકાશપ્રદેશ પંક્તિ ઋજુવાયતા છે. અર્થાત્ જે આકાશપ્રદેશ પંક્તિ સરલ અને લાંબી હોય છે તે ઋજુવાયતા છે. તેનો આકાર (—) આ પ્રમાણેનો છે.

જે આકાશપ્રદેશ પંક્તિ એક દિશામાં વાંકી હોય છે, તે પ્રદેશપંક્તિ એકતોવક્રા છે. આ ગતિથી જીવ અને પુદ્ગલ સરલપણાથી જઈને પાછો વક્ર થઈને શ્રેણ્યાન્તરથી જાય છે, તેનો આકાર (—) આ રીતે છે. ૨

જે આકાશપ્રદેશ પંક્તિ બંને દિશામાં વક્રતાવાળી હોય છે, તેને “ દ્વિધા.તો વક્રા ” કહે છે ઉર્ધ્વક્ષેત્રરૂપ અગ્નિ દિશામાંથી અધોક્ષેત્રરૂપ દિવ્ય દિશામાં જઈને ઉત્પન્ન થનારા જીવની ગતિ આ પ્રકારની હોય છે જીવ પ્રથમ સમયમાં અગ્નિકોણમાંથી તિરકસ ગતિ કરીને નૈઋત્ય કોણમાં જાય છે, ત્યાર બાદ તિર

येयं प्रसनाड्या मध्ये बहिर्वा भवतीति । आकारश्चायम् (Z) इति ३। एकतः
 खा-एकस्यां दिशि अङ्कुशाकारा, यया जीवः पुद्गलो वा त्रसनाड्या वामपार्श्व-
 देस्तां प्रविष्टः, तथैव गत्वा पुनस्तद्वामपार्श्वदिशानुपचरो सा एकतःखा । स्थापनाः
 चेषम्-(-) इति ४। द्विधातःखा-उभयस्यां दिशि अङ्कुशाकारा, प्रसनाड्या
 वामपार्श्वदिर्नाडी प्रविष्ट्य तथैव गत्वा अस्या एव दक्षिणपार्श्वदिौ यया उत्पन्नते
 सा द्विधातःखा, नाडीवहिर्भूतयोर्वाग्मदक्षिणपार्श्वलक्षणयो द्वयोराकाशश्रेणयो-

है, तिरछा ही वायव्य दिशा में जाता है, बाह्र में नीचे वायव्यदिशा
 में है, यह गति तीन समप्रवाली होती है, और यह त्रस-नाडी के
 भीतर अथवा बाहर होती है । इसका आकार (Z) इस प्रकार से है ।
 जो गति एक दिशा में अङ्कुश के आकार जैसी होती है वह एकतः
 खा है, इस गति से जीव अथवा पुद्गल त्रस-नाडी के वामपार्श्व
 आदि से उस त्रसनाडी में प्रविष्ट होता है और उसी से जाकर
 उसके वाम पार्श्व आदि में उत्पन्न होता है ऐसी वह गति एकतः-खा
 है, इसका स्थापना (-) इस प्रकार से है द्विधातः खा — जो गति
 दोनों दिशाओं में अङ्कुश के आकार जैसी होती है वह द्विधातः खा
 है । त्रस नाडी के पार्श्व भाग से नाडी में प्रविष्ट उसी से जाकर इसी
 के दक्षिणपार्श्व आदि में जिससे उत्पन्न होता है ऐसी वह गति
 द्विधातः खा है । क्यों कि इस प्रकार की प्रदेशपंक्ति से नाडी के बाहर
 की वामदक्षिण पार्श्व भाग स्व (आकाश श्रेणियाँ) स्पृष्ट होती हैं ।

छा वायव्य दिशाभां जयते, त्रारणाद नीचे वायव्य दिशाभां जयते आ
 गति त्रय समयवाणी डायते, अने ते त्रसनाडीनी आदरे के, अकार शयते
 आ श्रेष्ठिने अकार (Z) डौसभां पतिव्या प्रभावे डायते, जे गति ओक दिशाभां
 अङ्कुशना जेवा आकारनी डायते, तेने ' एकतःखा ' कहे छे आ गति त्रडे
 एत अथवा पुद्गल त्रसनाडीना वामपार्श्व आदिभां अने ते त्रसनाडीभां प्रवेश
 करे छे अने तेभांथी न नथने तेना वामपार्श्व आदिभां उत्पन्न थाय छे अथवा
 ते गतिनुं नाम ' एकतःखा ' छे, तेना आकार (-) डौसभां पतिव्या प्रभावे
 डायते

द्विधातःखा-जे गति अने दिशाभां अङ्कुशना आकार जेवी डायते, तेने
 ' द्विधातःखा ' कहे छे एत अथवा पुद्गल त्रसनाडीना वामपार्श्वभांथी बापल
 थथने अने तेभांथी न नथने तेना दक्षिणपार्श्व आदिभां जे गति वडे उत्पन्न
 थथे जय छे ते गतिनुं नाम ' द्विधातःखा ' छे, कारण के आ प्रप्रारनी प्रदेश
 पंक्ति वडे नाडीनी अकारनी वाम दक्षिण (उभां न मण्णा) पार्श्व भाग जे
 श्रेष्ठिभां स्पृष्ट थथे छे तेना आकार (Z) डौसभां पतिव्या प्रभावे डायते

स्तया स्पृष्ट्वादिति । स्थापना चैयम् - (७) इति । चक्रवाला = बलयकृतिः प्रदेशपङ्क्तिः । यथा मण्डलेन परिभ्रम्य परमाण्वादिमुत्पद्यते सेत्यर्थः । आकार-श्रायम् - (०) इति । अर्धचक्रवाला - चक्रवालाद्विरुद्धा स्थापना चैयम् - (C) इति । एकतोवकाद्यास्तु श्रेणयो लोकेपर्यन्तप्रदेशापेक्षया संभावनीया इति ॥ सू० ४२ ॥

देवसैर्दमीनि दमितर्त्वाच्चक्रवालार्धचक्रवालादिना भ्रमणयुक्तानि भवन्तीति तानि प्रतिपादयितुमाह -

सुलम् - चमरहत णं असुरिदस्स असुरकुमाररत्ना सत्त
 आणिया सत्त आणियाहिवई पणत्ता, तं जहा - पायत्ताणीए १,
 पीढाणीए २, कुजराणीए ३, महिसाणीए ४, रहाणीए ५, नट्टा
 णिए ६, गंधवाणीए ७, हुमे पायत्ताणियाहिवई, एवं जहा
 पंचमट्टाणे जाव किन्नरे रहाणियाहिवई रिट्टे । णट्टाणियाहिवई,
 गीयई गंधवाणियाहिवई । बलिहसे णं वइरोयणिदस्स वइरोय
 णरणो सत्ताणीया सत्त अणीयाहिवई पणत्ता, तं जहा -
 पायत्ताणिए जाव गंधवाणिए । महदमे पायत्ताणीयाहिवई

इसकी स्थापना (७) इस प्रकार से है । जो प्रदेशपंक्ति बलय गोल के आकार जैसी होती है वह चक्रवाला श्रेणी है, जिस से मण्डलरूप में परिभ्रमण करके परमाणु आदि उत्पन्न होता है। ऐसी वह श्रेणी चक्रवाला श्रेणी है, इसकी स्थापना (०) इस प्रकार से है । जो प्रदेशपंक्ति अर्धचक्रवाल के जैसी होती है वह अर्धचक्रवाला है, इसका आकार (C) इस प्रकार से है । एकतोवका आदि श्रेणियाँ लोकपर्यन्त प्रदेशों की अपेक्षा से संभावनीय हैं ॥ सूत्र ४३ ॥

प्रदेशों में श्रेणियाँ बलयना अथवा आकारनी डीय छे, तेने अक्वाल श्रेणि कडे छे । जे अति वडे गोलकारमां परिभ्रमण करीने परमाणु आदि उत्पन्न थाय छे, ओवी ते श्रेणीने अक्वाल श्रेणी कडे छे तेने आकार (०) ओ समां गताव्या प्रमाणे डीय छे । जे प्रदेशपंक्ति अर्धचक्रवालना ओवी (अर्ध) वर्तुणना ओवी) में डीय छे तेने अर्धचक्रवाल श्रेणी कडे छे तेने आकार (C) ओ समां गताव्या प्रमाणे डीय छे । एकतो वका आदि श्रेणियों लोकेपर्यन्तमा अशोनी अपेक्षाये संभावनीय छे ॥ सू० ४२ ॥

जात्र किंपुरिसे रहाणियाहिवई महारिट्टे णट्टाणियाहिवई, गीय-
जसे गंधवाणियाहिवई । धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमा-
रण्यो सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पणत्ता, तं जहा-
पायत्ताणिए जात्र गंधवाणिए । रुदसेणे पायत्ताणियाहिवई
जात्र आणंदे रहाणियाहिवई, नंदणे नट्टाणियाहिवई, तेतली
गंधवाणियाहिवई । भूनाणंदस्स सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई
पणत्ता, तं जहा-पायत्ताणिए जात्र गंधवाणिए । दक्खे पायत्ताणि-
याहिवई जात्र णंदुत्तरे रहाणियाहिवई, रती णट्टाणियाहिवई, माणसे
गंधवाणियाहिवई । एवं जात्र घोसमहाघोसाणं णेयवं । सक्कस्स णं
देविंदस्स देवरत्तो सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पणत्ता
तं जहा-पायत्ताणिए जात्र गंधवाणिए । हरिणेगमेसी पायत्ता-
णियाहिवई जात्र माठरे रहाणियाहिवई, सेए णट्टाणियाहिवई,
तुंबुरू गंधवाणियाहिवई । ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरत्तो सत्त
अणिया सत्त अणियाहिवई पणत्ता, तं जहा-पायत्ताणिए जात्र
गंधवाणिए लहुपरक्कमे पायत्ताणियाहिवई जात्र महासेए णट्टा-
णियाहिवई, रए गंधवाणियाहिवई, सेमं जहा पंचमट्टाणे एवं
जात्र अच्चुयस्स वि णेयवं ॥ सू० ४३ ॥

छाया-चमरस्य खलु असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सप्त अनीकानि सप्त अनीका-
धिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-पादातानीकम् १, पीठानीकम् २, कुञ्जरानीकम् ३,
महिपानीकम् ४, रथानीकम् ५, नाट्यानीकम् ६, गन्धर्वानीकम् ७ । द्रुमः पादा-
तानीकाधिपतिः, एवं यथा पञ्चमस्थाने यावत् किन्नरो रथानीकाधिपतिः, रिष्टो
नाट्यानीकाधिपतिः, गीतरतिर्गन्धर्वानीकाधिपति । वल्लेः खलु वैरोचनेन्द्रस्य
वैरोचनराजस्य सप्त अनीकानि सप्तानीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-पादातानीकं

यावत् गन्धर्वानीकम् । महाद्रुमः पादातानीकाधिपति र्यावत् क्रिष्णुरूपो रथानीकाधिपतिः, महारिष्टो नाट्यानीकाधिपतिः, गीतयशाः गन्धर्वानीकाधिपतिः । धरणस्य खलु नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य सप्त अनीकानि सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पादातानीकं यावद् गन्धर्वानीकम् । रुद्रसेनः पादातानीकाधिपतिर्यावत् आनन्दो रथानीकाधिपतिः, नन्दनो नाट्यानीकाधिपतिः, तेतली गन्धर्वानीकाधिपतिः । भूतानन्दस्य सप्त अनीकानि सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पादातानीकं यावद् गन्धर्वानीकम् । दक्षः पादातानीकाधिपतिः, यावत् नन्दोत्तरो रथानीकाधिपतिः, रति नाट्यानीकाधिपतिः, मानसो गन्धर्वानीकाधिपतिः । एवं यावद् घोषमहाघोषयोर्बोध्यम् । शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य सप्त अनीकानि सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पादातानीकं यावद् गन्धर्वानीकम् । हरिणैगमैषी पादातानीकाधिपति र्यावत् माठरो रथानीकाधिपतिः, श्वेतो नाट्यानीकाधिपतिः, तुम्बुरु गन्धर्वानीकाधिपतिः । ईशानस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य सप्त अनीकानि सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पादातानीकं यावद् गन्धर्वानीकम् । लघुपराक्रमः पादातानीकाधिपति र्यावद् महाश्वेतो नाट्यानीकाधिपतिः, रती गन्धर्वानीकाधिपतिः, शेषं यथा पञ्चमस्थाने । एवं यावत् अच्युतस्यापि नेतव्यम् ॥ सू० ४३ ॥

टीका—‘ चमरस्य ण ’ इत्यादि—

चमरस्य—चमराभिधानस्य खलु असुरेन्द्रस्य असुरकुमार राजस्य दाक्षिणात्यभवनपतीन्द्रविशेषस्य सप्तसंख्यकानि अनीकानि=सैन्यानि सप्त संख्यकाः अनीकाधिपतयः=सेनानायकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पादातानीकम्=पादातीनां समूहः

दर्पित होने के कारण देवसैन्य चक्रवाल अर्ध चक्रवाल आदि से भ्रमण युक्त होना है, इसी बात को अथ सूत्रकार प्रतिपादन करते हैं—

“ चमरस्य णं असुरिदस्य असुरकुमाररन्नो ” इत्यादि सू०४३ ॥

टीकार्थ—असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के सात अनीक सैन्य-और सात ही अनीकाधिपति कहे गये हैं । जैसे—पादातानीक १ पीठानीक २ कुंजरानीक ३ महिषानीक ४ रथानीक ५, नाट्यानीक ६, एवं गन्ध-

र्पित (अडुकारयुक्त) धाय त्तारे देवसैन्य चक्रवाल, अर्धचक्रवाल आदि इपे भ्रमणयुक्त थय छे. ओज वातनुं हवे सूत्रकार प्रतिपादन करे छे—

“ चमरस्य णं असुरिदस्य असुरकुमाररन्नो ” इत्यादि—(सू. ४३)

टीकार्थ—असुरेन्द्र असुरकुमार र ञ चमरना सात अनीका (सैन्ये) अने सात अनीकाधिपति (सेनापति) कथा छे. ते सात अनीका (सेनायो) नीचे

पादातं, तद्रूपम् अनीकं=सैन्यम्-पदातिसैन्यमित्यर्थः । पीठानीकम्=अश्वसैन्यम् । कुञ्जरानीकं=हस्तिसैन्यम् । महिषानीकम्=महिषसैन्यम् । रथानीकम्=रथसैन्यम् । नाट्यानीकम्=नर्तकसमूहः । गन्धर्वानीकं=गन्धर्वसमूहः । एषां सप्तानामनीकानां सप्ताधिपतयः । तेषां नामानि प्ररूपयित्वाह-‘दुसे’ इत्यादि । तत्र द्रुमः=द्रुमनामको देवः पादातानीकाधिपतिः । पीठानीककुञ्जरानीकमहिषानीकानासधिपतीनां नामानि पञ्चमस्थानाद् विज्ञेयानि । अत एवाह सूत्रकारः-‘एवं-जहा पंचमदृष्टाणे जाव’ इति । तथाहि-सौदामी पीठानीकाधिपतिः, कुन्धुः कुञ्जरानीकाधिपतिः, लोहितक्षो महिषानीकाधिपतिः । तथा-किन्नरो रथानी-

वानीक ७, पैदल चलनेवाली सेना का नाम पादातानीक है, अश्वों पर बैठ कर चलनेवाली सेना का नाम पीठानीक है, हस्तियों पर बैठ कर चलने वाली सेना का नाम कुंजरानीक है, भैंसाओं की सेना-समुदाय-का नाम महिषानीक है, रथों पर बैठ कर चलने वाली सेना का नाम रथानीक है, नर्तकों की सेना-समूह का नाम नाट्यानीक है, गन्धर्वों की सेना का नाम गन्धर्वानीक है । इस बात प्रकार की सेना के जो अधिपति हैं-सेनापति हैं-उनके नाम इस प्रकार से हैं-पादातानीकाधिपति-पैदल चलनेवाली सेना का सेनापति द्रुम नाम का देव है, पीठानीक का, कुंजरानीक का, महिषानीक का, कौन २ अधिपति हैं-इस बात को जानने के लिये पंचमस्थान देखना चाहिये, इसी बात को सूचित करने के लिये “एवं जहा पंचमदृष्टाणे जाव” ऐसा सूत्र पाठ सूत्रकारने लिखा है । पीठानीक का अधिपति सौदामी है, कुंजरानीक

प्रमाणे छे-(१) पादातानीक, (२) पीठानीक (३) कुंजरानीक, (४) महिषानीक, (५) रथानीक (६) नाट्यानीक अने गन्धर्वानीक पायदण सेनाने पादातानीक छडे छे, घोडेस्वार थरने जनारी सेनानुं नाम पीठानीक छे. हाथीओ पर आरोहण करीने लउवा जनारी सेनानुं नाम कुंजरानीक छे पादातानी सेनानुं नाम महिषानीक छे. रथोभां गेसीने लउवा जनारी सेनानुं नाम रथानीक छे. नर्तकाना समूहनुं (सेना समूहनुं) नाम नाट्यानीक छे गन्धर्वानी सेनानुं नाम गन्धर्वानीक छे. आ साते सेनाओना अधिपतियोनां नाम उवे प्रकट करवामा आवे छे-पादातानीक (पायदण) सेनाने सेनाधिपति द्रुम नामने देव छे पीठानीकने कुंजरानीकने, महिषानीकने, कौण्डि कौण्डि अधिपति छे? ओ वात जणुवा भाटे पांचमुं स्थानक जेवुं जेधजे ओ वात छडेवा भाटे सूत्रकारे “ एवं जहा पंचमदृष्टाणे जाव ” पीठानी-

काधिपतिः । रिष्टो नाट्यानीकाधिपतिः । गीतरतिगन्धर्वानीकाधिपतिरिति ।
 तथा-बलेवैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य औदीच्यभवनपतीन्द्रविशेषस्य सप्त अनी-
 कानि सप्त अनीकाधिपतयः प्रज्ञप्ताः । तत्र-अनीकानि पूर्वोक्तान्येव । अनीका-
 धिपतयस्त्वेवं विज्ञेयाः, तथाहि-महाद्रुमः पादातानीकाधिपतिः, महासौदामः
 पीठानीकाधिपतिः, मालङ्कारः कुञ्जरानीकाधिपतिः, महालोहिताक्षो महिषानी-
 काधिपतिः, किंपुरुषो रथानीकाधिपतिः, महारिष्टो नाट्यानीकाधिपतिः, गीत-
 यशाः गन्धर्वानीकाधिपतिरिति । अत्र पीठानीककुञ्जरानीकमहिषानीकाधिप-
 तीनां नामानि यावत्पदेन संगृहीतानि । एवमग्रेऽपि संग्राह्याणीति । तथा-धरणस्ये

का अधिपति कुन्धु है महिषानीक का अधिपति लोहिताक्ष हैं रथानीक
 का अधिपति किन्नर हैं नाट्यानीक का अधिपति रिष्ट है, गन्धर्वानीक
 का अधिपति गीतरति है, वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि-उत्तरदिशा
 के भवनपरिषों के इन्द्र-के सात अनीक और सात ही अनीकाधि-
 पति कहे गयेहैं-इनमें अनीकोंके नाम पूर्वोक्त जैसे हीहैं-परन्तु इनके जो
 अधिपति हैं-उनके नाम इस प्रकार से हैं-पादानीक का अधिपति
 यहां महाद्रुम नाम का देव है, पीठानीक का अधिपति-महासौदाम
 है कुञ्जरानीक का अधिपति मालङ्कार हैं, महिषानीक का अधिपति
 महालोहिताक्ष है, रथानीक का अधिपति किंपुरुष है, नाट्यानीक का
 अधिपति महारिष्ट है, गन्धर्वानीक का अधिपति गीतयशासू है, यहाँ

नीकथी लधने रथानीक पर्यन्तनी सेनायोना अधिपतियोना नाम पांचमा
 स्थानकमां आपवामां आव्या छे. पीठानीकनो अधिपति सौदामी, कुञ्जरानीकनो
 अधिपति कुन्धु, महिषानीकनो अधिपति लोहिताक्ष अने रथानीकनो अधिपति
 किन्नर छे. नाट्यानीकनो अधिपति रिष्ट छे अने गन्धर्वानीकनो अधिपति
 गीतरति छे.

वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज अदि के ७ उत्तर दिशाना भवनपति देवोने
 इन्द्र छे, तेने पणु सात अनीक अने सात अनीकाधिपतियो छे तेना अनीका
 (सेनायो)नां नाम तो चमरनी सेनायोनां नाम जेवा ज समजवा, परन्तु तेना
 अनीकाधिपतियोना नाम नीचे प्रमाणे समजवा-पादातानीकनो अधिपति महाद्रुम
 नामनो देव छे, पीठानीकनो अधिपति महासौदाम छे, कुञ्जरानीकनो अधिपति
 मालङ्कार छे, महिषानीकनो अधिपति महालोहिताक्ष छे, रथानीकनो अधिपति
 किंपुरुष छे, नाट्यानीकनो अधिपति महारिष्ट छे अने गन्धर्वानीकनो अधिपति

નાગકુમારેન્દ્રસ્ય નાગકુમારરાજસ્ય દાક્ષિણાત્યમ્વનપતીન્દ્ર વિશેષસ્ય સપ્ત અની-
કાનિ સપ્તાનીકાધિપતયશ્ચ વોધ્યાઃ । તત્ર રુદ્રસેનઃ પાદાતાનીકાધિપતિઃ, અસ્ય
ક્વચિદ્ ' મદ્રસેનઃ ' इत्यपि नाम, यशोधरः पीठानीकाधिपतिः, सुदर्शनः कुञ्ज-
रानीकाधिपतिः, नीलकण्ठो महिषानीकाधिपतिः, आनन्दो स्थानीकाधिपतिः,
नन्दनो नाट्यानीकाधिपतिः तैतली गन्धर्वानीकाधिपतिरिति । तथा-भूतानन्द-
स्य औदीच्यम्वनपतीन्द्रविशेषस्य सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयश्च वोध्याः ।

પર પીઠાનીક કે કુજ્જરાનીક કે ઓર મહિષાનીક કે અધિપતિયોં
કે નામ યાવત્પદ સે સંગ્રહીત હુણ હૈં । ઇસી પ્રકાર સે આગે બી ગ્રહણ
કરલેના ચાહિયે-તથા-નાગકુમારેન્દ્ર નાગકુમાર રાજ ધરણ કે અનીક
ઔર અનીકાધિપતિ હસ પ્રકાર સે હૈં-અનીક કે નામ તો પૂર્વોક્ત જૈસે
હી હૈં-એવં હન કે જો અધિપતિ હૈં-उनके नाम इस प्रकार से हैं-

यहां जो पादातानीक हैं उसके अधिपति का नाम रुद्रसेन है,
इसका कहीं २ पर भद्रसेन ऐसा भी नाम लिखा मिलता है । पीठा-
नीक के अधिपति का नाम यशोधर है, कुञ्जरानीक के अधिपति का
नाम सुदर्शन है । महिषानीक के अधिपति का नाम नीलकण्ठ है,
स्थानीक के अधिपति का नाम आनन्द है, नाट्यानीक के अधिपति
का नाम नन्दन है, एवं गन्धर्वानीक के अधिपति का नाम तैतली है,
उत्तरदिशा के भवनपतियों के इन्द्र जो भूतानन्द हैं उनके भी सात

गीतયશસ છે અહીં “ યાવત્ ” પદથી પીઠાનીક, કુજ્જરાનીક અને મહિષાનીકના
અધિપતિઓનાં નામ ગ્રહણ કરાયા છે તેમનાં નામો અહીં ઉપર આપી
દેવાણાં આવ્યાં છે.

નાગકુમારેન્દ્ર, નાગકુમારરાજ ધરણની સાત સેનાઓ અને તે સેનાઓના
સેનાપતિઓનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે-

ધરણની સાત સેનાઓના નામ તો ચમરની સેનાઓનાં નામ પ્રમાણે જ
સમજવા હવે તે સાતે સેનાઓના સેનાધિપતિઓનાં નામ પ્રકટ કરવામાં
આવે છે-

તેની પાદ તાનીક (પાયઠ્ઠ સેના)ના અધિપતિનું નામ રુદ્રસેન છે, (કોઈ
કોઈ શાસ્ત્રોમાં તેનું નામ ભદ્રસેન પણ આપ્યું છે) પીઠાનીકનો અધિપતિ
યશોધર છે, કુજ્જરાનીકનો અધિપતિ સુદર્શન છે, મહિષાનીકનો અધિપતિ
નીલકંઠ છે. સ્થાનીકનો અધિપતિ આનન્દ છે, નાટ્યાનીકનો અધિપતિ નન્દન
છે. અને ગન્ધર્વાનીકનો અધિપતિ તૈતલી છે

ઉત્તર દિશાના અધિપતિ ભવનપતિઓના ભૂતાનન્દ નામના ઇન્દ્રને

तत्र-दक्षः पादातानीकाधिपतिः, सुग्रीवः पीठानीकाधिपतिः, सुविक्रमः कुञ्जरा
नीकाधिपतिः, श्वेतकण्ठो महिषानीकाधिपतिः, नन्दोत्तरो रथानीकाधिपतिः, रति-
नाट्यानीकाधिपतिः, मानसो गन्धर्वानीकाधिपतिरिति । एवं=धरणभूतानन्दवद्
यावद् घोषमहाघोषयोरपि सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयश्च बोध्याः । अयं
भावः-यथा धरणस्य तथा वेणुदेवहरिकान्ताग्निशिखपूर्णजलकान्तामितगति-
वेलम्बघोषनामकानामष्टानां दक्षिणात्यभवनपतीन्द्राणां, यथा भूतानन्दस्य तथा
वेणुशलि हरिसहाग्निमागवशिशिष्ठनलपमामितवाहनप्रभञ्जनमहाघोषनामका-
नामष्टानाम् औदीच्यभवनपतीन्द्राणां च सप्तानीकाधिपतयश्च बोध्या इति ।

अनीक और सात अनीकाधिपति हैं-इनमें ७ अनीकों के नाम तो
पूर्वोक्त जैसे ही हैं-परन्तु अनीकाधिपतिर्यों के नाम इस प्रकार से हैं-

पादानानीक के अधिपति का नाम दक्ष है, पीठानीक के अधिपति
का नाम सुग्रीव है, कुञ्जरानीक के अधिपति का नाम सुविक्रम है,
महिषानीक के अधिपति का नाम श्वेतकण्ठ है, रथानीक के अधिपति
का नाम नन्दोत्तर है, नाट्यानीक के अधिपति का नाम रति है, एवं
गन्धर्वानीक के अधिपति का नाम मानस है । धरण और भूतानन्दकी
तरह यावत् घोष और महाघोष इन्द्रके भी सात २ अनीक और सात
२ अनीकाधिपति समझना चाहिये, तात्पर्य ऐसा है-धरण की तरह
वेणुदेव के हरिकान्त के अग्निशिख के, पूर्णजलकान्त के अमित-
गति के वेलम्ब के, और घोष के इन आठ दक्षिणात्य भवनपति-
इन्द्रों के, तथा-भूतानन्द की तरह वेणुशलि के, हरिसह के, अग्निमा-

पण्य सात सेनाओं अने सात सेनाधिपतियों छे तेनी सेनाओंनां नाम
अभरनी सेनाओंनां नाम प्रभाण्ये न समञ्जा, पण्य सेनाधिपतियोंनां नाम
नीये प्रभाण्ये समञ्जा-

पादानानीकने अधिपति दक्ष, पीठानीकने अधिपति सुग्रीव,
कुञ्जरानीकने अधिपति सुविक्रम, रथानीकने अधिपति नन्दोत्तर. महिषानीकने
अधिपति श्वेतकण्ठ, नाट्यानीकने अधिपति रति अने गन्धर्वानीकने अधिपति
मानस छे.

धरण्य अने भूतानन्दता नेवी न घोष अने महाघोष पर्यन्तना इन्द्रोनी
सात सेनाओं समञ्जी अने ते सेनाओंना सात सेनानीके (सेनाधिपतियों)
समञ्जा. आ कथननुं तात्पर्य अे छे के-वेणुदेव, हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण
जलकान्त, अमितगति, वेदम्ब अने घोष, आ आठ दक्षिणात्य भवनपति

इत्थं भवनपतीनां सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतींश्चोक्त्या सम्प्रति कल्पेन्द्राणाम-
नीकानि अनीकाधिपतींश्च प्ररूपयति—‘ सक्कस्स ’ इत्यादि । शक्रस्य दक्षिणा-
त्वेन्द्रविशेषस्य सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयश्च बोध्याः । तत्र सप्तानीकानि
पूर्ववदेव बोध्यानि । नवरं-महिषानीकस्थाने वृषभानीकं बोध्यम् । तेषामधिपतय-
ञ्चैते, तथाहि-हरिणैगमेपी पादातानीकाधिपतिः, वायुः पीठानीकाधिपतिः, ऐरा-
वतकुञ्जरानीकाधिपतिः, दामर्दिः वृषभानीकाधिपतिः, माठरो रथानीकाधिपतिः,
णव के, वशिष्ठ के, जलप्रभ के, अश्विनवाहन के, प्रभञ्जन के एवं
महाघोष के इन आठ उत्तर दिशा के भवनपतियों के इन्द्रों के सात
२ अनीक और सात २ अनीकाधिपति जानना चाहिये, इस तरह भव-
नपतियों के सात अनीक और सात अनीकाधिपतियों का कथन करके
अब सूत्रकार कल्पेन्द्रों के सात अनीक और सात अनीकाधिपतियों-
की प्ररूपणा करते हैं—“ सक्कस्स ” इत्यादि—

दक्षिण दिशा के इन्द्र विशेष शक्र के सात अनीक और सात
अनीकाधिपति कहे गये हैं—इनमें सात अनीकों के नाम तो पूर्वोक्त
जैसे ही हैं परन्तु यहां महिषानीक नहीं है—किन्तु उसके स्थान पर
वृषभानीक है, इस सात अनीकों के अधिपति इस प्रकार से हैं—पादा-
तानीक का अधिपति हरिणैगमेपी है, पीठानीक का अधिपति वायु
है, कुञ्जरानीक का अधिपति ऐरावत है, वृषभानीक का अधिपति

धन्द्रोनी सेनाञ्चो अने सेनाधिपतिञ्चोनां नाम धरणुनी सेनाञ्चो अने सेना
धिपतिञ्चोनां नाम प्रभाणुं च समञ्जवा.

वेणुदासि, हरिण्ड, अश्विमाणुव, वशिष्ठ, जलप्रभ, अश्विनवाहन, अने
प्रभञ्जन अने महाघोष, आ आठ उत्तर दिशाना लवनपतिञ्चोना धन्द्रोनी
सेनाञ्चो अने सेनाधिपतिञ्चोनां नाम प्रभाणुं समञ्जवा. आ प्रकारे लवनपतिञ्चोना
धन्द्रोना सात अनीके अने अनीकाधिपतिञ्चोनां नाम प्रकट करीने हवे सूत्रकार
कल्पेन्द्रोना सात अनीके अने सात अनीकाधिपतिञ्चोनुं कथन करे छे.

‘, सक्कस्स ’ इत्यादि—

दक्षिण दिशाना शक्र नामना धन्द्रोनी पासे सात अनीके (सेनाञ्चो) अने
सात अनीकाधिपतिञ्चो छे तेनी सात सेनाञ्चोनां नाम तो यमरनी सेना केवां
च छे, परन्तु योथी सेनानुं महिषानीकने अद्वे वृषभानीक समञ्जवुं. ते सात
सेनाञ्चोनां नाम आ प्रभाणुं कदां छे—पादातानीकने अधिपति
हरिणैगमेपी देव छे, पीठानीकने अधिपति वायु छे, कुञ्जरानीकने अधिपति

श्वेतो नाट्यानीकाधिपतिः, तुम्बुरुर्गन्धर्वानीकाधिपतिरिति । तथा-ईशानस्य औदी-
च्येन्द्रविशेषस्यापि सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयश्च बोध्याः । तत्र-लघुपरा-
क्रमः पादातानीकाधिपतिः महावायुः पीठानीकाधिपतिः, पुष्पदन्तः कुञ्जरातीका-
धिपतिः, महादामर्द्धिं वृषभानीकाधिपतिः, महामाठरो रथानीकाधिपतिः, महा-
श्वेतो नाट्यानीकाधिपतिः, रतिर्गन्धर्वानीकाधिपतिरिति । एवमेवान्युत्पर्यन्तानां
सर्वेषां कल्पेन्द्राणाम् अनीकानि अनीकाधिपतयश्च बोध्याः । तत्र-शक्रवत् सन-
त्कुमारब्रह्मशुक्राभिधेयानां दक्षिणात्येन्द्राणाम्, ईशानवच्च माहेन्द्रलान्तक-

दामर्द्धिं है, रथानीक का अधिपति माठर है, नाट्यानीक का अधिपति
श्वेत है, एवं गन्धर्वानीक का अधिपति तुम्बुरु है,

तथा-उत्तर दिशा के इन्द्र विशेष ईशान के सात
अनीक और सात ही अनीकाधिपति कहे गये हैं. इनमें
पादातानीक का अधिपति लघुपराक्रम है, पीठानीक का
अधिपति महावायु है, कुञ्जरातीक का अधिपति पुष्पदन्त है. वृषभा-
नीक का अधिपति महादामर्द्धिं है, रथानीक का अधिपति महामाठर
है, नाट्यानीक का अधिपति महाश्वेत है एवं गन्धर्वानीक का अधि-
पति रति है, इसी तरह से अच्युत पर्यन्त के सब कल्पेन्द्रों के अनीक
और अनीकाधिपति समझना चाहिये इनमें शक्र की तरह सनत्कुमार,
ब्रह्म, शुक्र, इन दक्षिणात्येन्द्रों के एवं ईशानकी तरह माहेन्द्र, लान्तक,

औरावत, वृषभानीकने अधिपति दामर्द्धिं, रथानीकने अधिपति माठर, नाट्या-
नीकने अधिपति श्वेत अने गन्धर्वानीकने अधिपति तुम्बुरु छे.

उत्तर दिशाना ईशान नामना ईन्द्रनी पासे पञ्च सात सेनाओं अने
सात सेनाधिपतिओं छे तेनी सात सेनाओंनां नाम शक्रनी सात सेनाओंनां
नाम प्रमाणे न समजवा. ते सेनाओंना सेनाधिपतिओंनां नाम नीचे
प्रमाणे समजवा-

पादातानीकने सेनाधिपति लघुपराक्रम छे, पीठानीकने (इयदणने)
अधिपति महावायु छे, वृषभानीकने अधिपति महादामर्द्धिं छे, कुञ्जरातीकने
(इस्तिदणने) अधिपति पुष्पदन्त छे, रथानीकने अधिपति महामाठर छे,
नाट्यानीकने अधिपति महाश्वेत छे अने गन्धर्वानीकने अधिपति रति छे.

सनत्कुमार, ब्रह्म, अने शुक्र आ त्रय दक्षिणात्य ईन्द्रोनी सात सेनाओं
अने सात सेनाधिपतिओंनां नाम शक्रनी सात सेनाओं अने सात अनीकाधि-
पतिओंनां नाम प्रमाणे न समजवा,

સહસ્રારપાણતાચ્યુતામિથેયાનામૌદીચ્યેન્દ્રાણામ્ અનીકાનિ અનીકાધિપતયથ્થ
 વોધ્યાઃ । અણુમેયાર્યં સૂચયિતુમાહ—‘ એવં જાત્ર અચ્ચુયસ્સવિ નેયવ્વં ’ ઇતિ ।
 આનતારગૌ દેવલોકૌ ક્રમેણ પ્રાણતાચ્યુતેન્દ્રાધીનૌ, અત એવ ચત્ત્વારો દાક્ષિણાત્યેન્દ્રા
 ઇતિ ॥ સૂ૦ ૪૩ ॥

સમ્પત્તિ ચમરેન્દ્રાધીનપાદાતાનીકાધિપત્યધીનપાદાત—શ્રેણિસંખ્યાઃ પ્રતિ
 શ્રેણિસ્થૈત્તેનિકમંખ્યાથ્થ પ્રરૂપયિતુમાહ—

મૂલમ્--ચમરસ્સ ણં અસુરિંદસ્સ અસુરકુમારરત્તો દુમસ્સ
 પાયત્તાણિયાહિવ્વહ્સસ્સ સત્ત કચ્છાઓ પણ્ણત્તાઓ, તં જહા-
 પઠમા કચ્છા જાત્ર સત્તમા કચ્છા । ચમરસ્સ ણં અસુરિંદસ્સ
 અસુરકુમારરત્તો દુમસ્સ પાયત્તાણિયાહિવ્વહ્સસ્સ પઠમાણ કચ્છાણ
 ચત્તમહ્સિદેવસહસ્સમા પણ્ણત્તા । જાવહ્સ્યા પઠમા કચ્છા તવ્વિ-
 ગુણા દોઘ્ઘા કચ્છા, તવ્વિગુણા તચ્ચા કચ્છા, તવ્વિગુણા
 ચત્તરથી કચ્છા, તવ્વિગુણા પંચમી કચ્છા, તવ્વિગુણા છટ્ઠી
 કચ્છા તવ્વિગુણા સત્તમી કચ્છા । એવં વલિસ્સ વિ, ણત્તરં મહ-
 દ્દુમ્મો સહ્સિદેવસાહસ્સિઓ, સેસં તં ચેવ । ધરણસ્સ એવં ચેવ,

સહસ્રાર, પ્રાણત, અચ્યુત, હન ઉત્તરદિશાકે ઇન્દ્રોંકે સાતર અનીક ઓર
 સાત ૨ અનીકાધિપતિ જાનના ચાહિયે, હસી વાત કો પ્રકટ કરને કે
 લિયે સૂત્રકારને “ સેસં જહા પંચમઢાણે એવં જાત્ર અચ્ચુયસ્સ વિ ને-
 યવ્વં ” એસા યહ સૂત્રપાઠ કહા હૈ, આનત ઓર આરણ યે દો દેવલોક
 કમણઃ પ્રાણત ઓર અચ્યુત ઇન્દ્ર કે આધીન હૈ, હસલિયે દાક્ષિણાત્યેન્દ્ર
 ચાર કહે ગયે હૈ ॥ સૂ૦ ૪૩ ॥

માહેન્દ્ર, લાન્તક, સહસ્રાર પ્રાણત, અચ્યુત અને ઓદીચ્યેન્દ્રોની સાત
 સેનાઓ અને સાત સેનાધિપતિઓનાં નામ ઇશાનેન્દ્રની સાત સેનાઓ અને
 સાત સેનાધિપતિઓનાં નામ પ્રમાણે જ સમજવા. એજ વાત સૂત્રકારે “ સેસ
 જહા પંચમઢાણે એવ જાત્ર અચ્ચુયસ્સ વિ નેયવ્વં ” આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે.

આનત અને પ્રાણત, આ ણે દેવલોક અનુક્રમે પ્રાણત અને અચ્યુત ઇન્દ્રોને
 આધીન છે તેથી જ દાક્ષિણાત્ય ઇન્દ્રો ચાર જ કહેવામાં આવ્યા છે. ॥ સૂ ૪૩ ॥

णवरं अष्टावीसं देवसहस्रा, सेसं तं चैव । जहा धरणस्य एवं
जाव महाघोसस्य । नवरं पायत्ताणियाहिवई अन्ने ते पुव्वभ-
णिया । सक्रस्य णं देविंदस्य देवरन्नो हरिणेगमेसियस्य सत्त
कच्छाओ पणत्ताओ, तं जहा--पढमा कच्छा, एवं जहा चम-
रस्य तहा जाव अच्चुयस्य । णाणत्तं पायत्ताणियाहिवईणं, ते
पुव्वभणिया देवपरीमाणमिमं--सक्रस्य चउरासीइं देवसहस्राइं ।
ईसाणस्य असीइं देवसहस्राइं । देवा इमाए गाहाए अणुगं-
तंवा--चउरासीइ असीइ, बावत्तरि सत्तरी य सट्ठीया । पन्ना
चत्तालीसा, तीसा वीसा दससहस्रा ॥ १ ॥ जाव अच्चुयस्य
लहुपरक्रमस्य दसदेवसहस्रा जाव जावइया छट्टा कच्छा तन्वि-
गुणा सत्तमा कच्छा ॥ सू० ४४ ॥

छाया—चमरस्य खलु असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य द्रुमस्य पादातानीका-
धिपतेः सप्त कक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रथमा कक्षा यावत् सप्तमी कक्षा । चमरस्य
खलु असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य द्रुमस्य पादातानीकाधिपतेः प्रथमायां
कक्षायां चतुष्पष्टिर्देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि । यावती प्रथमाकक्षा तद्द्विगुणा
द्वितीया कक्षा, तद्द्विगुणा तृतीया कक्षा, तद्द्विगुणा चतुर्थी कक्षा, तद्द्विगुणा
पञ्चमी कक्षा, तद्द्विगुणा षष्ठी कक्षा, तद्द्विगुणा सप्तमी कक्षा । एवं वल्लेरपि,
नवरं महाद्रुमः षष्टि देवसाहस्रिकः, शेषं तदेव । धरणस्यैवमेव, नवरम्—अष्टाविं-
शतिर्देवसहस्राणि, शेषं तदेव । यथा धरणस्य, एवं यावन्महाघोषस्य । नवरं पादा-
तानीकाधिपतयोऽन्ये ते पूर्वभणिताः । शक्रस्य खलु देवेन्द्रस्य देवराजस्य हरि-
णैगमैषिणः सप्त कक्षाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रथमा कक्षा एव यथा चमरस्य तथा
यावत् अच्युतस्य । नानान्वं पादातानीकाधिपतीनां, ते पूर्वभणिताः देवपरि-
माणमिदं शक्रस्य चतुरशीतिर्देवसहस्राणि । ईशानस्य अशोतिर्देवसहस्राणि ।
देवा अनया गाथयाऽनुगन्तव्याः—

चतुरशीतिरशीतिर्द्वौ सप्ततिः सप्ततिश्च षष्ठिः । पञ्चाशत् चत्वारिंशत् त्रिंशत्
विंशतिः दश सहस्राणि ॥ १ ॥ यावत् अच्युतस्य लघुपराक्रमस्य दशदेवसहस्राणि
यावत् यावती षष्ठी कक्षा तद्द्विगुणा सप्तमीकक्षा ॥ सू० ४४ ॥

टीका—' चमरस्स णं ' इत्यादि—

चमरनामकदाक्षिणात्यमवनपतीन्द्राधीनद्रुमनामकपादातानीकाधिपतेः सप्त कक्षाः=पदातिसेनापङ्क्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-प्रथमा यावत्सप्तमी। तत्र प्रथमायां कक्षायां चतुष्पष्टिमहस्रसैनिकाः द्वितीयायां प्रथमकक्षातो द्विगुणा सैनिकसंख्या बोध्या। अर्थात्-द्वितीयायां कक्षायामष्टाविंशतिसहस्राधिकैकलक्षसंख्यकाः पदातयो बोध्याः। एवमग्रेऽपि पूर्वपूर्वापेक्षयाऽपरापरस्याः कक्षायाम् द्विगुणत्वं बोध्यम्। तत्र तृतीयकक्षायां पट्टपञ्चाशत्सहस्राधिकद्विलक्षसंख्यकाः, चतुर्थ्यां द्वादशसहस्राधिकपञ्चलक्षसंख्यकाः, पञ्चम्यां चतुर्विंशतिसहस्राधिकदश-

अब सूत्रकार चमरेन्द्र आदि के अधीन जो पादातानीकाधिपति (पैदल सैन्य के अधिपति) हैं और पादातानीकाधिपति के अधीन जो पादातश्रेणि संख्या है एवं प्रति श्रेणिस्थ सैनिक संख्या है उसकी प्ररूपणा करते हैं—' चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररजो-इत्यादि टीकार्थ-असुरेन्द्र असुरकुमार राज चमरके अधीन जो द्रुमनामका पादातानीकाधिपति है, उसकी सात कक्षाएँ कही गयी हैं, पदाति सेना की पंक्ति का नाम कक्षा है। जैसे-प्रथमा-कक्षा-यावत् सप्तमी कक्षा इन में से प्रथम कक्षा में ६४ हजार सैनिक होते हैं, द्वितीय कक्षा में प्रथम कक्षा से दूने सैनिक होते हैं, अर्थात् १ लाख २८ हजार सैनिक द्वितीय कक्षा में होते हैं। इसी प्रकार से सातवीं कक्षा तक सैनिकों की द्विगुणता जाननी चाहिये, इस तरह तृतीय कक्षा में २, लाख ५६ हजार सैनिक होते हैं, चतुर्थ कक्षा में ५ लाख १२ हजार सैनिक होते हैं, पांचवीं कक्षा में १० लाख २४ हजार होते हैं, छठी कक्षा में २०

चमरेन्द्र आदिना जे पादातानीकाधिपति (पायदणना सेनाधिपति) छे, तेने अधीन जे पदात (पायदण) श्रेष्ठी संख्याओ छे तेमनुं तथा प्रत्येक श्रेष्ठीस्थ सैनिकानी संख्यानुं निरूपणु इवे सूत्रकार नीचेना सूत्र द्वारा करे छे—

“ चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररजो ” इत्यादि—(सू. ४४)

टीकार्थ-असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमरना पदातानीकाधिपति द्रुमनी सेनानी सात कक्षाओ (श्रेष्ठीओ) कही छे. पदाति सेनानी पङ्क्तिने कक्षा कडे छे. ते सात कक्षाओ नीचे प्रमाणे कही छे-प्रथमाथी लछने सप्तमी पर्यन्तनी सात कक्षाओ अहीं समल लेवी. प्रत्येक कक्षाभां सैनिकानी संख्या नीचे प्रमाणे कही छे. पहिली कक्षाभां ६४ हजार, भीलभां १ लाख २८ हजार, त्रीलभां २ लाख ५६ हजार, चौथीभां पांच लाख आर हजार पांचमीभां १० लाख २४ हजार,

लक्षसंख्यकाः, षष्ठ्याम् अष्टचत्वारिंशत्सहस्राधिकविंशतिलक्षसंख्यकाः, सप्तम्यां षण्णवतिसहस्राधिकचत्वारिंशल्लक्षसंख्यका इति । एवं=चमरेन्द्रवत् वलेरपि बलि-
नामकस्य औदीच्यभवनपतीन्द्रस्यापि विषये बोध्यम् । विशेषस्त्वम्-वलेः पादा-
तानीकाधिपतिर्महाद्रुमः, स हि षष्टिदेव साहस्रिकः=महाद्रुमस्य प्रथमकक्षायां षष्टि-
सहस्रदेवाः सन्तीत्यर्थः । ' सेसं तं चैव ' इति, शेषं तदेव, अर्थात्-द्वितीयादिषु
षट्सु कक्षासु प्रत्येकत्र पूर्वपूर्वकक्षास्थमैनिकापेक्षया उत्तरोत्तरकक्षायां द्विगुणी
संख्या विज्ञेयेति । तथा-धरणस्यापि एवमेव विज्ञेयम्-नवरं-तत्पादातानीकाधि-
पति भद्रसेनापरपर्यायो रुद्रसेनः । तस्य प्रथमकक्षायां तु अष्टाविंशतिसहस्राणि-

लाख ४८ हजार सैनिक होते हैं और सातवीं कक्षा में ४० लाख ९६
हजार सैनिक होते हैं । चमरेन्द्र की तरह उत्तर दिशा के भवनपति
के अधिपति बलि नामक इन्द्र के संबन्ध में भी जानना चाहिये, विशेष-
पता यहां ऐसी है-इनके जो पादातानीक के अधिपति महाद्रुम हैं वे
६० हजार देवों के अधिपति हैं, अर्थात् महाद्रुम की प्रथम कक्षा में
६० हजार देव हैं " सेसं तं चैव " द्वितीय कक्षा से लेकर सातवीं
कक्षा तक यहाँ पर भी सैनिक की संख्या द्विगुणित करते जाना चाहिये.
इस तरह द्वितीय कक्षामें १ लाख २० हजार सैनिक हैं तृतीय कक्षामें २
लाख ४० हजार सैनिक हैं, चतुर्थ कक्षा में ४ लाख ८० हजार सैनिक
हैं, पांचवीं कक्षा में ९ लाख ६० हजार सैनिक हैं, छठी कक्षा में १९
लाख बीस हजार सैनिक हैं और ७ वीं कक्षामें ३८ लाख ४० हजार हैं ।

तथा धरण के भी इसी तरह से जानना चाहिये उसके पादाता-

छट्टीमां २० लाख ४८ हजार अने सातमीमां ४० लाख ९६ हजार सैनिको
डाय छे, अम समजवुं

डवे उत्तर दिशाना भवनपतिअना अलि नामना इन्द्रना जे महाद्रुम
नामना पादातानीकाधिपति छे तेनी सेनानी जे सात कक्षाओ छे तेमांनी
प्रत्येक कक्षामां डेटला सैनिको छे ते प्रकट करवामां आवे छे-महाद्रुमनी पडेली
कक्षामां ६० हजार देवा (सैनिको) छे. " सेस तं चैव " अही पणु आगली
कक्षा करतां पाछली कक्षामां अमणुं अमणुं सैनिको कडेवा जेधअ जेम के
भीलमां १ लाख २० हजार, तीलमां जे लाख ४० हजार, चौथीमां ४
लाख ८० हजार, पांचमीमां ९ लाख ६० हजार, छट्टीमां १९ लाख २०
हजार अने सातमीमां ३८ लाख ४० हजार सैनिको छे, अम समजवुं जेधअ.

धरणुना जे रुद्रसेन नामना पादातानीकाधिपति छे तेनी पायदण सेनानी

देवाः । शेषं तदेव=पूर्वदेव, अर्थात्-पूर्वपूर्वकक्षापेश्या उत्तरोत्तरकक्षायां सैनिकानां द्विगुणत्वं बोध्यमिति । यथा धरणस्य=दक्षिणात्यधरणेन्द्राधीनरुद्रसेनामरुपादातानीकाधिपतेः सैनिकानां सप्त कक्षाः प्रतिकक्षस्थसैनिकसंख्याश्च एवम्=अमुना प्रकारेण यावन्महाघोषस्य-यावत्पदसंगृहीतानां भूतानन्द-वेणुदेव-वेणुदालि-हरिकान्त-हरिपहा-ग्निशिखा-ग्निमाणव-पूर्ण-वशिष्ठ-जलकान्तजलप्रभा-मितगतमितवाहन-वेलम्ब-प्रभञ्जन-घोषाणां षोडशानां, महाघोषस्य च सर्वेषामपि दक्षिणात्यौदीच्येन्द्राणां बोध्याः । एतदधीनपादातानीकाधिपतीनां

नीक के अधिपति भद्रसेन हैं-इनका दूसरा नाम रुद्रसेन भी है उसकी प्रथम कक्षा में २८ हजार देव हैं. यह धरण दक्षिणदिशा का अधिपति है, इसके पादातानीक का अधिपति (पैदल सैन्य का अधिपति ' भद्रसेन जिसका दूसरा नाम रुद्रसेन है इसकी भी सात कक्षाएँ हैं, प्रथम कक्षा में २८, हजार देव हैं, द्वितीय कक्षा में ५६ हजार देव हैं । तृतीय कक्षा में १ लाख १२, हजार देव हैं । इसी प्रकार से द्विगुणता सातवीं कक्षा तक जाननी चाहिये, इसी तरह से यावत् महाघोष इन्द्रके भी समझना चाहिये, यहां यावत्पद से भूतानन्द, वेणुदेव वेणुदालि, हरिकान्त, हरिपहा, अग्निशिखा, अग्निमाणव, पूर्ण, वशिष्ठ, जलकान्त, जलप्रभ, अमितगति, अमितवाहन, वेलम्ब, प्रभञ्जन, और घोष इन १६ इन्द्रों का ग्रहण हुआ है, इन में ८ दक्षिणार्धके पति और ८, उत्तरार्धके अधिपति हैं-जैसे-असुरकुमारोंमें चणर और बलि ये

पञ्च सात कक्षाओं कही छे. भद्रसेननुं भीष्मनाम रुद्रसेन छे धरण दक्षिण दिशानो इन्द्र छे भद्रसेनना पायदगती पडेली कक्षाभां २८ हजार देवो छे, भीष्मभां ५६ हजार देवो छे, त्रीष्मभां १ लाख २८ हजार देवो छे ओज प्रभाणु सातमी कक्षा सुधीनी कक्षाओना सैनिकोनी सभ्या कडेवी जेध ओ प्रत्येक कक्षाभां आगली कक्षा करतां भमणु सैनिको समञ्जस ओज प्रकारनुं कथन मडाघोष पर्यन्तना इन्द्रोना पादातानीकाधिपतिओनी सेनाओनी कक्षाओ निषे पञ्च समञ्जनुं ओटले के भूतानन्द, वेणुदेव, वेणुदालि, हरिकान्त, हरिपहा, अग्निशिखा, अग्निमाणव, पूर्ण, वशिष्ठ, जलकान्त, जलप्रभ, अमितगति, अमितवाहन, वेलम्ब, प्रभञ्जन, घोष अने मडाघोष आ १६ इन्द्रोना पादातानीकाधिपतिओनी सेनाओनी सात सात कक्षाओ छे अने प्रत्येक कक्षाभां आगली कक्षा करतां भमणु सैनिको छे ओम समञ्जनुं.

सैनिककक्षाः, प्रथमकक्षायाम् अष्टाविंशतिसहस्रसैनिकाः द्वितीयादिषु पूर्वपूर्वा-
पक्षया द्विगुणा द्विगुणाश्च सैनिकसंख्याः पूर्ववद् विज्ञेया इति भावः । पादाता-
नीकाधिपतयश्चैषां पृथक्पृथगेव, तेषां नामानि च पूर्व मणितानि । तत्र-भूतान-
न्दस्य पादातानीकाधिपतिर्दक्ष । एतन्नामका एव पादातानीकाधिपतयो वेणुदा-
लिक - हरिपहाग्निमाणव्रविष्टजलप्रभामितवाहनप्रभञ्जनमहाघोषाणामौदी-
व्येन्द्राणां विज्ञेयाः । धरणस्य तु पादातानीकाधिपती रुद्रसेनः । एतन्नामान
एव पादातानीकाधिपतयो वेणुदेवहरिकान्ताग्निशिखपूर्णजलकान्तामितगति-
बेलम्बघोषाणां सर्वेषां दाक्षिणात्येन्द्राणां बोध्या इति ।

अथ शक्रेन्द्राभीनपादातानीकाधिपति सप्तकक्षासु प्रतिकक्षास्त-
सैनिकसंख्यां निर्देष्टुमाह—‘सकस्स णं’ इत्यादि । देवेन्द्रस्य देवराजस्य
शकस्याज्ञायां वर्तमानस्य हरिणैगमैपिणो देवस्य सप्त कक्षाः
प्रज्ञप्ताः, तद्यथा - प्रथमकक्षा, एवमेव क्रमेण चमरवत् द्वितीयादि
सप्तम्यन्ताः कक्षाः, तत्रस्थितसैनिकसंख्याश्च वक्तव्याः । चमरवद् वक्तव्यता तु—

दो इन्द्रहैं इनमें चमर दक्षिणार्धका अधिपतिहै और बलि उत्तरार्द्धका अधि-
पतिहै, नागकुमारोंके इन्द्र धरण और भूतानन्दहैं, इनमें धरण दक्षिणा-
र्धका अधिपतिहै और भूतानन्द उत्तरार्धपतिहै । इसी प्रकारसे अन्यत्र भी
समझ लेना चाहिये इन सब के पादातानीकाधिपति की सात
कक्षाओं में से प्रत्येक कक्षा में स्थित जो सैनिक हैं उनकी संख्या प्रकट
करने के लिये “सकस्स णं” इत्यादि सूत्र पाठ कहते हैं—देवेन्द्र
देवराज शक की आज्ञा में वर्तमान जो हरिणैगमैपी देव है उसकी
सात कक्षाएँ हैं—उनके नाम प्रथम कक्षा, द्वितीय कक्षा, तृतीय कक्षा
इत्यादि हैं — जैसी कक्षाएँ चमर की वक्तव्यता में प्रकट

उपर ७ १६ धन्द्रोनी पात करी तेमांथी ८ दक्षिणुधिपति छे अने ८
उत्तरधिपति छे. ७म के असुरकुमारोना चमर अने अलि नामना ७ धन्द्रो
छे. तेमांथी चमर दक्षिणुधिपति छे अने अलि उत्तरार्धाधिपति छे नागकुमारोना
धन्द्रोनां नाम धरणु अने भूतानन्द छे तेमांथी भरणु दक्षिणार्धाधिपति छे अने
भूतानन्द उत्तरार्धाधिपति छे अण प्रभाणु आगण पणु समणु लेवुं. आ
सोणे धन्द्रोना पादातानीकाधिपतिनी ७ सात सात कक्षाओ छे, ते प्रत्येक
कक्षाभां डेटला डेटला सैनिको छे ते “सकस्सणं” धत्यादि सूत्रपाठ द्वारा सूत्रकारे प्रकट
क्युं छे देवेन्द्र देवराज शकने ७ पादातानीकाधिपति छे तेनुं नाम हरिणै
गमैपी देव छे. तेनी पादातानीक (पायदण) सेनानी सात कक्षाओ छे. ते कक्षा-
ओनां नाम पडेली कक्षा, ७ीण कक्षा, ३ीण कक्षा, धत्यादि समणवा चमरनी

ઈશાનાચચ્યુતપર્યન્તાનામપિ વોઃયા । અમુમેવાર્થમાહ-સૂત્રકાર:- ' એવં જહા ચમરસસ તહા જાવ અચ્ચુયસસ ' ઇતિ । એતેપાં પાદાતાનીકાધિપતયસ્તુ મિન્ના એવ તે ચ પૂર્વં મળિતાઃ તદુક્તં મૂલે- ' ણાણત્તં પાયત્તાણિયાહિવર્ણં તે પુવ્વમળિયા ' ઇતિ । એતેપાં શક્રાચચ્યુતાન્તાનાં દશાનામધીન્દ્રાણામાજ્ઞાયાં સ્થિતનાં પાદાતાનીકાધિપતીનાં પ્રથમકક્ષાયાં સૈનિકદેવપરિમાણમિદમ્, તથાહિ-શક્રેન્દ્રાધીનહરિણૈગમૈપિ પાદાતાનીકાધિપતેઃ પ્રથમકક્ષાર્યા ચતુરશીતિ સહસ્રસંખ્યકા દેવાઃ, ઈશાનેન્દ્રાધીનલઘુપરાક્રમનામકપાદાતાનીકાધિપતેઃ પ્રથમકક્ષાયામ્ અશીતિસહસ્રસંખ્યકા દેવાઃ, એવં તત્તદિન્દ્રાધીનતત્તપાદાતાનીકાધિપતીનાં પ્રથમકક્ષાયાં દેવસંખ્યાડનયા ગાથયાડનુગન્તવ્યા, સા તુ ' ચઝરાસીઈ ' ઇત્યાદિ । તત્ર-ચતુ-

કી ગઈ હૈ - વૈસી હી યે યહાં જાનની ચાહિયે - તથા - જન મેં સૈનિકોં કી સંખ્યા મી વૈસી હી જાનની ચાહિયે, યહી વાત સૂત્રકાર ને " એવ જહા ચમરસસ તહા જાવ અચ્ચુયસસ " હસ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કી હૈ, પરન્તુ જનકે પાદાતાનીકાધિપતિ તો મિન્ન ૨ નામવાલે હૈ, જૈસા કિ પહિલે પ્રકટ ક્રિયા જા ચુકા હૈ-યહી વાન-" ણાણત્તં પાયત્તાણિયાહિવર્ણં તે પુવ્વમળિયા " હસ સૂત્રપાઠ દ્વારા સૂત્રકારને સમજાઈ હૈ, શક્ર સે લેકર અચ્યુત તક કે ૧૦ ઈન્દ્રોંકી આજ્ઞા મેં વર્તમાન પાદાતાનીકાધિપતિયોં કી પ્રથમ કક્ષા મેં સૈનિક દેવોં કા પરિમાણ હસ પ્રકાર સે હૈ-" સક્રસસ ચઝરાસીઈ " ઇત્યાદિ-શક્રેન્દ્ર કે અધીન જો હરિણૈગમૈષી પાદાતાનીકાધિપતિ હૈ ડસકી પ્રથમ કક્ષા મેં ૮૪ હજાર દેવ હૈ, ઈશાનેન્દ્ર કે અધીન જો લઘુપરાક્રમ નામ કા

વક્તવ્યતામાં જેવી કક્ષાઓ પ્રકટ કરવામાં આવી છે એવી જ કક્ષાઓ આહીં પણ સમજવી જોઈએ. પ્રત્યેક કક્ષામાં સૈનિકોની સંખ્યા પણ એ જ પ્રમાણે સમજવી એ જ વાત સૂત્રકારે " એવં જહા ચમરસસ તહા જાવ અચ્ચુયસસ " આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે. પરન્તુ તેમના પાદાતાનીકાધિપતિઓનાં નામ જુદાં જુદાં છે તે નામે આગત સૂત્રમાં પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે. એ જ વાત સૂત્રકારે " ણાણત્તં પાયત્તાણિયાહિવર્ણં તે પુવ્વમળિયા " આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે શકથી લઈને અચ્યુત પર્યન્તના ૧૦ ઈન્દ્રોના પાદાતાનીકાધિપતિની સેનાની પ્રથમ કક્ષામાં કેટલા સૈનિકો છે તે " સક્રસસ ચઝરાસીઈ " ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે. શકના પાદાતાનીકાધિપતિ હરિણૈગમૈષી દેવની સેનાની પ્રથમ કક્ષામાં ૮૪ હજાર દેવો (સૈનિક દેવો) છે, ઈશાનના લઘુપરાક્રમ નામના પાદાતાનીકાધિપતિની સેનાની પ્રથમ કક્ષામાં ૮૦

रशीतिः सहस्राणि, अशीतिः सहस्राणि चेति क्रमेण शकेशानयोर्योज्यम् । एवं द्वासप्तत्यादयोऽपि क्रमेण सनत्कुमारादिषु योज्याः । सर्वत्र पूर्वपूर्वकक्षापेक्षयाऽपरापस्स्यां कक्षायां सैनिकसंख्या द्विगुणा बोध्या । अमुमेवार्थं मनसि कृत्याह—
‘ जात्र अच्चुयस्स छहुपरकमस्स दस देवसहस्सा जात्र जात्रइया छट्टा कच्छा तन्विगुणा सत्तमा कच्छा । ’ इति ॥ सू० ४४ ॥

पूर्वोक्तं समस्तमपीदं वचनेन ज्ञायते इति वचनभेदानाह—

मूलम्—सत्तविहे वयणविकप्पे पण्णत्ते, तं जहा--आलावे १, अणालावे २, उल्लावे ३, अणुल्लावे ४, संलावे ५, पलावे ६ विप्पलावे ८ ॥ सू० ४५ ॥

छाया—सप्तविधो वचनविकल्पः, प्रज्ञप्तः तद्यथा—आलापः १ अनालापः २, उल्लापः ३, अणुल्लापः ४, संलापः ५, पलापः ७ ॥ सू० ४५ ॥

पादातानीकाधिपति है उसकी प्रथम कक्षा में ८० हजार देव हैं । इसी तरह से सनत्कुमार अच्युत तक अनीकाधिपतियों की प्रथम कक्षा में देवों का प्रमाण क्रमशः ७२, ७०, ६०, ५०, ४०, ३०, २०, और १०, हजार जानना चाहिये, यह परिमाण शक्रेन्द्र से लेकर अच्युत तक के देवों के अनीकाधिपतियों की प्रथम कक्षा के देवों का है, द्वितीयादि-कक्षा के देवों का परिमाण अपनी २ प्रथमादि कक्षा से दूना २ यावत् सातवीं कक्षा तक कर लेना चाहिये, ॥ सूत्र ४४ ॥

यह सब कथन वचन से ही समझाया जाता है—अतः अब सूत्रकार वचन के भेदों का कथन करते हैं—

उत्तर देवे छे, ओण प्रभाण्णे सनत्कुमारथी लधने अच्युत पर्यन्तता धन्द्रेणी पादातानीकाधिपतिनी सेतानी प्रथम कक्षाभां अनुकमे ७२, ७०, ६०, ५०, ४०, ३०, २० अने १० उत्तर सैनिके छे. दरेकनी णील कक्षाभां पडेही कक्षा करतां भमणी सैनिकसंख्या समजवी. ओण प्रभाण्णे सातमी कक्षा सुधीनी कक्षाओभां आगदी कक्षा करतां भमणी संख्या समजवी. णील करतां त्रीलभां भमणी, त्रील करतां येथीभां भमणी, येथी करतां पांचमीभां भमणी, पांचमी करतां छट्ठीभां भमणी अने छट्ठी करतां सातमी कक्षाभां भमणी सैनिकसंख्या समजवी. ॥ सू. ४४ ॥

आ अयं कथन वचन वडे ण समजवी शक्य छे, तेथी डवे सूत्रकार पयनना लेहोनुं निरूपण करे छे—“ सत्तविहे वयणविकप्पे पण्णत्ते ” इत्यादि—

टीका—‘सत्तविहे’ इत्यादि—

वचनविकल्पः—वचनम्—भाषणं, तस्य विकल्पो भेदः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, त्वथा—आलापः—आङ्गैपदर्थत्वात् ईपत्रुपनम्—अल्पभाषणमित्यर्थः १। अनालापः, नवः कृतार्थत्वम् अल्पार्थत्वं च, तत्रश्च—अनालापः=कुत्सितभाषणमल्पभाषणं चेत्यर्थः २। उल्लापः=काक्वा वर्णनम्, तदुक्तम्—“काक्वा वर्णनमुल्लापः” इति ३। अनुलापः=सुहृर्भाषणम्, तदुक्तम्—“अनुलापो सुहृर्भाषा” इति ४। संलापः—अन्योन्यभाषणम्, तदुक्तम्—“संलापो भाषणं मिथः” इति ५। प्रलापोऽनर्थकभाषणम्, तदुक्तम्—“प्रलापोऽनर्थकं वचः” इति ६। स एव विविधोऽनेकप्रकारकः सन् विप्रलाप इत्युच्यते इति ७ ॥ सू० ४५ ॥

“सत्तविहे वयणविकल्पे पणत्ते—इत्यादि । सूत्र ॥ ४५ ॥

टीकार्थ—सात प्रकारका वचन-विकल्प-भेद कहा गया है जैसे—आलाप १, अनालाप २ उल्लाप ३, अनुल्लाप ४, संलाप ५, प्रलाप ६ और विलाप ७, इन में अल्प भाषण का नाम आलाप है, कुत्सित भाषण करना या अल्प भाषण करना यह अनालाप है। यहाँ नव कुत्सित अर्थ में या अल्पार्थ में प्रयुक्त हुआ है। १ काकुत्से वर्णन करना इसका नाम उल्लाप है। बार बार भाषण करना इसका नाम २ अनुल्लाप है। परस्पर में भाषण करना इसका नाम ३ संलाप है, अनर्थक भाषण करना इसका नाम प्रलाप है, ४ प्रलाप ही जय अनेक प्रकार का होना है तब वह विप्रलाप कहलाता है ॥ सूत्र ४५ ॥

वचनविकल्प (वचनना प्रकार) सात कहा छे—(१) आलाप, (२) अनालाप, (३) उल्लाप, (४) अनुल्लाप, (५) संलाप, (६) प्रलाप अने (७) विलाप अल्प भाषणने आलाप कहे छे. कुत्सित भाषण करवुं तेनुं नाम अनालाप छे अही ‘अन्’ उपसर्ग कुत्सित अर्थमां अथवा अल्पार्थमां वपराये छे.

“काक्वा वर्णनमुल्लापः” काकु पूर्वक (काकुल्लूही पूर्वक) वणुंन करवुं तेनुं नाम उल्लाप छे.

“अनुलापो सुहृर्भाषाः” बारबार भोत्या करवुं तेनुं नाम अनुलाप छे.

“संलापो भाषणं मिथः” परस्परानी साथे वातचीत करवी तेनुं नाम संलाप छे. अनर्थक वात करवी तेनुं नाम प्रलाप छे—कहुं पाथु छे के “प्रलापोऽनर्थकभाषणम्” प्रलाप न ल्यारे अनेक प्रकारनेो होय छे, त्यारे तेनुं नाम विलाप अथवा विप्रलाप थर्छ लय छे. ॥ सूत्र ४५ ॥

१. काक्वा वर्णनमुल्लापः, २ अनुलापो सुहृर्भाषाः ३ संलापो भाषणं मिथः ४ प्रलापोऽनर्थक भाषणम्.

पूर्वोक्तेषु वचनभेदेषु केचिद् वचनभेदाः विनयार्थमपि प्रयुज्यन्ते इति तद्भे-
दप्रदर्शनाय प्राह—

मूलम्-सत्तविहे विणए पणत्ते, तं जहा--णाणविणए १,
दंसणविणए २, चरित्तविणए ३, मणविणए ४, वइविणए ५,
कायविणए ६ लोगोवयारविणए ७। पसत्थमणविणए सत्त-
विहे पणत्ते, तं जहा--अपावए १, असावज्जे २, अकिरिए ३,
निरुवक्केसे ४ अणणहयकरे ५, अच्छविकरे ६, अभूताभिसंक-
मणे ७। अप्पसत्थमणविणए सत्तविहे पणत्ते, तं जहा--पावए
१ सावज्जे २ सकिरिए ३ सउवक्केसे ४ अणहयकरे ५ छविकरे
६ भूताभिसंकमणे ७। पसत्थवइविणए सत्तविहे पणत्ते, तं
जहा--अपावए १ असावज्जे २ जाव अभूयाभिसंकमणे ७। अप्प-
सत्थवइविणए सत्तविहे पणत्ते, तं जहा--पावए १ जाव भूया-
भिसंकमणे ७। पसत्थकायविणए सत्तविहे पणत्ते, तं जहा-
आउत्तं गमणं १, आउत्तं ठाणं २ आउत्तं निसीयणं ३
आउत्तं तुयट्ठाणं ४ आउत्तं उल्लघणं ५, आउत्तं पल्लघणं ६,
आउत्तं सत्तिवदियजोगजुंजणया ७। अप्पसत्थकायविणए
सत्तविहे पणत्ते, तं जहा--अणाउत्तं गमणं १ जाव अणाउत्तं
सत्तिवदियजोगजुंजणया ७। लोगोवयारविणए सत्तविहे
पणत्ते, तं जहा--अब्भासवत्तियं १, परच्छंदाणुवत्तियं २, कज्ज-
हेउं ३ कयपडिकिइया ४ अत्तगवेसणया ५, देसकालण्णया
६, सब्वत्थेसु या पडिलोमया ७ ॥ सू० ४६ ॥

छाया—सप्तविधो विनयः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ज्ञानविनयः १, दर्शनविनयः २, चारित्रविनयः ३, मनोविनयः ४, वाग्विनयः ५, कायविनयः ६, लोकोपचारविनयः ७। प्रशस्तमनोविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अपापकः १, असावद्यः २, अक्रियः ३, निरूपकलेशः ४, अनास्रवकरः ५, अक्षपिकरः ६, अभूताभिसंक्रमणः ७। अप्रशस्तमनोविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—पापकः १ सावद्यः २ सक्रियः ३ सोपकलेशः ४, आस्रवकरः ५, क्षपिकरो ६, भूताभिसंक्रमणः ७। प्रशस्तवाग्विनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अपापकः १, असावद्यो २, यावत् अभूताभिसंक्रमणः ७। अप्रशस्तवाग्विनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—पापको १ यावद् भूताभिसंक्रमणः । प्रशस्तकायविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आयुक्तं गमनम् १, आयुक्तं स्थानम् २, आयुक्तं निपदनम् ३, आयुक्तं त्वग्वर्त्तनम् ४, आयुक्तम् उल्लङ्घनम् ५, आयुक्तं प्रलङ्घनम् ६, आयुक्तं सर्वेन्द्रिययोगयोजनता ७। अप्रशस्तकायविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अनायुक्तं गमनं १ यावत् अनायुक्तं सर्वेन्द्रिययोगयोजनता ॥ ७ ॥ लोकोपचारविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अभ्यासवर्त्तित्वं १ परच्छन्दानुवर्त्तित्वं २, कार्यहेतुः ३, कृतप्रतिकृतिता ४, आत्मगवेषणता ५, देशकालज्ञता ६, सर्वार्थेषु चाप्रतिलोमता ७ ॥ सू० ४६ ॥

टीका—‘ सत्तविहे ’ इत्यादि—

विनयः—विनीयते=दूरीक्रियते आत्मसंलग्नमष्टप्रकारकं कर्म येन स विनयः, स सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—‘ ज्ञानविनय ’ इत्यादि । तत्र—ज्ञानविनयः—ज्ञानम्=

पूर्वोक्त वचन भेदों में कितनेक वचन भेद विनय के निमित्त भी प्रयोग में लाये जाते हैं इसलिये अब सूत्रकार विनय के भेद दिखाने के लिये सूत्र का कथन करते हैं—“ सत्तविहे विणए ” इत्यादि ॥

टीकार्थ—विनय सात प्रकारका कहा गया है, आत्माके साथ संलग्न आठ प्रकार का कर्म जिसके द्वारा दूर किया जाता है वह विनय है, यह

आगता सूत्रमां वचनना वेदो प्रकट करवाभां आल्या तेभाथी डेटलाक वचन वेदोना विनयने निमित्ते पणु प्रयोग थतो छाय छे. तेथी हुवे सूत्रकार विनयना वेदुं कथन करे छे—“ सत्तविहे विणए ” इत्यादि—(सू ४६)

विनय सात प्रकारना कह्यो छे. आत्माने वणजेतां आठ प्रकारना कर्मेनि नेना द्वारा नाश करवाभां आवे छे, तेनुं नाम विनय छे ते विनयना नीचे प्रभाषे सात प्रकार कछा छे—

आभिनिषोधिकादिकं पञ्चविधं, तदेव विनयः । यद्वा-ज्ञानस्य विनयो=भक्तिबहु-
मानादिकरणं तदुक्तम्—

“ भक्ती बहुमाणो तह, तद्विद्वत्थाण सम्मभावणया ।

विधिग्रहणवभासो वि य, एसो विणओ जिणाभिहिओ ॥ १ ॥ ”

छाया—भक्तिबहुमानस्तथातद् दृष्टार्थानां सम्यग्भावना ।

विधिग्रहणम् अभ्यासोऽपि च, एष विनयो जिनाभिहितः ॥ १ ॥

तथा—दर्शनविनयः—दर्शनं=सम्यक्तत्त्वम्, तदेव विनयः, अथवा—दर्शनदर्शनि-
नोरभेदाद् दर्शनस्य=दर्शनगुणाधिकपुरुषस्य विनयः—शुश्रूषणाऽनाशातनारूप-
इति । तदुक्तम्—

विनय ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्र्यविनय, मनोविनय, वचन-
विनय, काय विनय, और लोकोपचार विनय के भेद से खान प्रकारका
कहा गया है, इनमें पांच प्रकार का जो ज्ञानहै—आभिनिषोधिक ज्ञान,
(मतिज्ञान)श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान-सो ज्ञान
विनय इन्ही रूप होता है—अथवा इन पांच प्रकार के ज्ञानों का जो
विनय करना है—भक्ति बहुमान आदि करना है—वह ज्ञानविनय है—
कहा भी है—“ भक्ती तह बहुमाणे इत्यादि ।

दर्शन नाम सम्यक्तत्त्व का है, इस सम्यक्तत्त्व का होना ही सम्यक्तत्त्व
विनय अथवा दर्शन विनय है, अथवा—दर्शन और दर्शनवाले में अभेद
करने से दर्शन का—दर्शन गुणाधिक पुरुष का—विनय करना—शुश्रूषणा
(सेवा)करना, उनकी आशातना नहीं करना यह दर्शन विनय है कहा भी है—

(१) ज्ञानविनय, (२) दर्शनविनय, (३) चारित्र्यविनय, (४) मनोविनय,
(५) वाग्विनय, (६) कायविनय, अने (७) लोकोपचारविनय.

ज्ञानविनय पांच प्रकारना ज्ञानरूप—अटले के आभिनिषोधिकज्ञान, श्रुत-
ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान अने केवलज्ञान रूप—डोय छे. अथवा आ
पांच प्रकारना ज्ञानोना विषय करवो—तेमना प्रत्ये बहुमान, लक्षितभाव आदि
राथवा तेनुं नाम ज्ञानविनय छे. कछुं छे के—

“ भक्ती तह बहुमाणो ” इत्यादि.

दर्शन अटले सम्यक्तत्त्व. आ सम्यक्तत्त्वने सदभाव डोयो तेनुं नाम न
सम्यक्तत्त्व विनय अथवा दर्शनविनय छे अथवा दर्शन अने दर्शनवालाभां
अभेद मानीने दर्शनगुणाधिक पुरुषने विनय करवो—तेनी शुश्रूषा करवी, तेनी
अशातना न करवी तेनुं नाम पणु दर्शनविनय छे. कछु पणु छे के—

“ सुस्मृसणा अणासायणा य विणओ उ दंसणे दुविहो ।
 दंमणगुणाहिपसुं, कज्जइ सुस्मृसणाविणओ ॥ १ ॥
 सत्कारोऽभ्युत्थाने, सम्मानासणमभिग्गहो तह य ।
 आसणमणुप्पयाणं, किइकम्मं अंजलिग्गहो य ॥ २ ॥
 इंतस्साऽणुगग्गमणं ठियस्स तह पज्जुरासणा भणिया ।
 गच्छंताणुव्वयणं, एसो सुस्मृसणाविणओ ॥ ३ ॥ ”

छाया—शुश्रूषणा अनाशातना च विनयस्तु दर्शने द्विविधः ।
 दर्शनगुणाधिकेषु क्रियते शुश्रूषणाविनयः ॥ १ ॥ -
 सत्कारोऽभ्युत्थानं सम्मानाऽऽसनाभिग्रहस्तथा च ।
 आसनानुप्रदानं, कृतिकर्म अञ्जलिग्रहश्च ॥ २ ॥
 अयतो—(आगच्छतो)ऽनुगमनं, स्थितस्य तथा पर्युपासना भणिता ।
 गच्छतोऽनुव्रजनम्, एष शुश्रूषणाविनयः ॥ ३ ॥ इति ।

अयं भावः—दर्शनविषयो विनयः शुश्रूषणाऽनाशातना भेदेनद्विविधः ।
 द्विविधोऽप्येष विनयो दर्शनगुणाधिकेषु क्रियते । तत्र शुश्रूषणाविनयो दशविधः,
 तथाहि—सत्कारः=स्तवनवन्दनादिरूपः १, अभ्युत्थानम्=विनययोग्ये दृष्टिपथ-
 मापतिते सहसा आसनं परित्यज्य ऊर्ध्वीभवनम् २, सम्मानः=वस्त्रपात्रादीनां
 समर्पणम् ३, आसनाभिग्रहः=तिष्ठत एव गुरोरादरेणासनम् आनीय ‘अत्रोप-

“ सुस्मृसणा अणासायणा ” इत्यादि ।

दर्शन विषयक विनय शुश्रूषणा और अनाशातना (आशातना नहीं
 करना के भेदसे दो प्रकारका कहा गया है—यह दोनों प्रकारका विनय दर्शन
 गुणाधिकोंमें क्रिया जाता है । इनमें शुश्रूषणा विनय दश प्रकार का
 होता है जैसे—स्तवन वन्दना रूप सत्कार विनय १ विनय करने के
 योग्य साधु के दिखने पर—सामने आने पर आमन छोड़ खड़े हो
 जाने रूप अभ्युत्थान विनय २, वस्त्रपात्र आदि कों का समर्पण करने
 रूप सम्मान विनय ३, जब गुरुजन बैठने लगे तब आदरपूर्वक उनके

“ सुस्मृसणा अणासायणा ” इत्यादि.

दर्शनविषयक विनयना शुश्रूषणु अने अनाशातना नामना जे लेह कइया छे.
 दर्शनगुणसंपन्न पुरुषोना आ अत्रे-प्रकारे विनय करवाभा आवे छे. तेमांथी शुश्रूषणु
 विनयना दस प्रकार कइया छे.—(१) स्तवन वंदना रूप सत्कार विनय (२) अभ्युत्थान
 विनय करवा योग्य साधुने जेधने अथवा ते साधु समीपमा आवे तयारे आसन
 परथी जिला थवा इप विनयतु नाम अभ्युत्थान विनय छे. (३) सम्मान
 विनय—साधुजोने वस्त्रपात्र दिक्खुं समर्पणु करवुं तेनुं नाम सम्मान विनय

विशन्तु भवन्तः' इति त्थनम् ४, आसनात्प्रदानम्=आसनस्य स्थानात् स्थाना-
न्तरं संचारणम् ५, कृतिर्कर्म=द्वादशावर्त्तवन्दनकम् ६, अञ्जलिप्रग्रहः=करसम्पुटी-
करणम् ७, आगच्छतोऽनुव्रजनम्=आगच्छन्तं दर्शनाधिकं दष्ट्वा तत्संमुखे गमनम्
८, स्थितस्य पर्युपासना ९, गच्छतोऽनुव्रजन १० चेति दशविधः शुश्रूषणावि-
नयः इति । अनुचितक्रियाविनिवृत्तिरूपोऽनाशातनाविनयस्तु पञ्चदशविधाः,
तथाहि—

“ तिथ्यगर धम्म आयरियत्रायणे थेर कुलगणे संघे ।

संभोगिय किरियाए, सङ्गणार्इण य तहेव ॥ १ ॥ ”

छाया—तीर्थं कर धर्माचार्यवाचके स्थविरकुलगणे संघे ।

सांभोगिके क्रियायां, मतिज्ञानादीनां च तथैव ॥ १ ॥ इति ।

अयं भावः—तीर्थं करविषयो विनयः १, तत्प्ररूपितधर्मविषयो विनयः २,

लिये आसन बिछा देना और ऐसा कहना कि आप यहां धिराजमान
हो जावे ४, जब गुरुजन उठ कर चलने लगे तो उनके लिये आसन
को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना ५, द्वादश आवर्त्तक पूर्वक
वन्दना करना ६, हाथों को जोड़ना ७ आते हुए, गुरुजनों के समक्ष
जाना ८—अर्थात् आते हुए दर्शनाधिकको देख कर उनके संमुख जाना,
दर्शनाधिक के बैठ जाने पर उनकी पर्युपासना करना ९ एवं दर्शना-
धिक के चलने पर उनके पीछे २ चलना १०, इस तरह से यह १०
प्रकार का शुश्रूषणा विनय हैं अनुचित क्रिया से अलग रहने रूप जो
अनाशातना विनय है वह १५ प्रकार का है—जैसे—

“ तिथ्यगरधम्मआयरिय ” इत्यादि ।

तीर्थं कर का विनय १ तीर्थं कर प्ररूपित धर्म का विनय २,

छे. (४) गुरुजनने जेसवाने भाटे आहरपूर्वक आसन भिछावीने तेमने कडेबुं
के “ अ प अड्डी' भिराजे.” (५) न्यारे गुरुजन ठाडीने आलवा भांटे त्यारे
तेमने भाटे अेक स्थानेधी णीजे स्थाने आसन लई जवु (६) पार आवर्त्तक
पूर्वक वंदणा करवी. (७) णत्ते डथ जेडवा, (८) गुरुजनने आवतां जेधने
तेमनी समक्ष जवु' अेटदे के दर्शन सपत्त गुरुने आवतां जेधने तेमनी
सामे जवुं, (९) दर्शनाधिक (समकितथी मोटा) जेसी नथ त्यारे तेमनी पर्यु-
पासना क वी अने (१०) दर्शनाधिक न्यारे गमन करे त्यारे तेमनी पाछण
पाछण आलवु' आ प्रकारे शुश्रूषणा विनय छे अनुचित क्रिया करवाथी हर
रडेवा इप अनाशातना विनयना नीचे प्रमाणे १५ प्रकारना कथा छे-

“ तिथ्यगरधम्मआयरिय ” इत्यादि—

(१) तीर्थं करने विनय, (२) तीर्थं कर प्ररूपित धर्मने विनय, (३)

આચાર્યવિપયો વિનયઃ ૩, વાચકઃ=ઉપાધ્યાયઃ, તદ્વિપયો વિનયઃ ૪, સ્થવિર ૫, કુલ ૬, ગણ ૭, સંઘ ૮, સાંભોગિક ૯, ક્રિયા ૧૦ વિપયથ વિનયઃ, મતિજ્ઞાનાદિ ૧૧ પશ્ચજ્ઞાનવિપયથ વિનય ઇતિ પશ્ચદશવિધોઽનાશાતનાવિનયઃ । અન્ન=તીર્થંકરણામનાશાતનાયાં વર્તિતવ્યમ્, તીર્થંકરપ્રજ્ઞપ્તસ્ય ધર્મસ્થાનાશાતનાયાં વર્તિતવ્યમ્—ઇત્યેવંરૂપેણ અનાશાતનાવિનયસ્ય સ્વરૂપં વિજ્ઞેયમ્ । તીર્થંકરધર્માદિ શબ્દા અગતાર્થાઃ । નવરં—સાંભોગિકાઃ=સમાનસામાચારીકાઃ । ક્રિયા=આસ્તિકતા । एतेषामेव पञ्चदशानामा नाशातनावत् भक्तिबहुमानकरणम् १५, वर्णवाद करण १५, इति द्वयमपि अनाशातनारूपमेवेति अनाशातनावििनयः पञ्चवत्वारिंशद्विधो बोध्यः, उक्तं च—

આચાર્ય કા વિનય ૩ ઉપાધ્યાય કા વિનય ૪, સ્થવિર કા વિનય ૫, કુલકા વિનય ૬ ગણ કા વિનય ૭ સંઘ કા વિનય ૮, સાંભોગિક કા વિનય ૯ ક્રિયા વિનય ૧૦ મતિજ્ઞાન આદિ પાંચ જ્ઞાનકા વિનય ૧૫, હસ પ્રકાર સે અનાશાતના વિનય ૧૫ પ્રકાર કા કહાઈ તીર્થંકર કી અના શાતના મેં એવં તીર્થંકર પ્રતિપાદિત ધર્મ કી અનાશાતના મેં જીવ કો પ્રવૃત્ત રહના ચાહિયે એસા વિચાર કર જો જીવ તીર્થંકર એવં તીર્થંકર કથિન ધર્મ કી અનાશાતના કરને મેં લીન રહના હૈ વહ તીર્થંકર અનાશાતના વિનય એવં તીર્થંકર પ્રતિપાદિત ધર્મ અનાશાતના વિનય હૈ, હમી પ્રકાર સે અન્યત્ર બી સમજના ચાહિયે, તીર્થંકર ધર્મ આદિ શબ્દોં કા અર્થ સુગમ હૈ । સમાન સમાચારી વાલે જો સાધુજન હોલે હૈ યે સાંભોગિક સાધુ હૈ । આસ્તિકતા કા નામ ક્રિયા હૈ । હન્હી પ્રન્દ્રહોં કા અનાશાતના કી તરહ ભક્તિ બહુમાન ભક્તિરૂપ પ્રશંસા બહુમાન કરના ૧૫, વર્ણવાદ-૧૫ યે દોનોં બી અનાશાતના રૂપ હોને

આચાર્યનો વિનય, (૪) ઉપાધ્યાયનો વિનય, (૫) સ્થવિરનો વિનય, (૬) કુલનો વિનય, (૭) ગણનો વિનય, (૮) સંઘનો વિનય, (૯) સાંભોગિકનો વિનય, (૧૦) ક્રિયા વિનય, (૧૧ થી ૧૫) મતિજ્ઞાન માટે આદિ પાંચ જ્ઞાનનો વિનય.

તીર્થંકરની અનાશાતના ન કરવી ભેદબે, અને તીર્થંકર પ્રરૂપિત ધર્મની અનાશાતના પણ કરવી ભેદબે નહીં, આ પ્રકારનો વિચાર કરીને જે જીવ તીર્થંકરની અનાશાતનામાં અને તીર્થંકરની પ્રતિપાદિત ધર્મની અનાશાતનામાં પ્રવૃત્ત રહે છે, એવા જીવને તીર્થંકર અનાશાતના વિનય સંપન્ન કહે છે એજ પ્રમાણે બાકીના ૧૩ પ્રકારો વિષે પણ સમજવું. તીર્થંકર, ધર્મ આદિ શબ્દોનો અર્થ સુગમ છે સમાન સમાચારીવાળા જે સાધુઓ હોય છે. તેમને સાંભોગિક સાધુઓ કહે છે. આસ્તિકતાનું નામ ક્રિયા છે. આ પંદર પ્રકારની અનાશાતનાની જેમ ભક્તિબહુમાન, એટલે કે ભક્તિ રૂપ બહુમાન કરવું તે

“ कायव्यो पुण भन्ती-बहुमाणो तहय बन्नवाओ य ।

अरहंतमाइयाणं, केवलनाणावसाणाणं ॥ १ ॥ ”

छाया--कर्तव्यः पुनर्भक्ति-बहुमानस्तथा वर्णवादश्च ।

अर्हदादिकानां केवलज्ञानावसानाननाम् ॥ १ ॥ इति ॥ २ ॥

भक्तिरूपो बहुमानः भक्तिबहुमानः ।

वर्णवादः=प्रशंसा । तथा-चारित्रविनयः-चारित्रं=चरणं-क्रिया, तदेव विनयः, तस्य वा विनयः=श्रद्धानादिरूपः । अयं भावः-सामायिकादिक्रियाणां श्रद्धानं, कायेन स्पर्शनं, भव्यप्राणिनां पुरतः प्ररूपणं चेति चारित्रविनय इति । तदुक्तम्—

“ सामाइयाइ चरणस्स सहहणया १, तहेव काएणं ।

संफासणं २ पस्वण ३ मह पुरओ भव्वसत्ताणं ॥ १ ॥ ”

छाया—सामायिकादिचरणस्य श्रद्धानं १, तथैव कायेन ।

संस्पर्शनं २ प्ररूपणमथ पुरतो भव्यसत्त्वानाम् ॥ १ ॥ इति ॥ ३ ॥

से अनाशातवादिनय पेतालीस ४५ प्रकारका हो जाताहै । कहा भी है—

“ कायव्वा पुण भन्ती ” इत्यादि ।

इसका अर्थ स्पष्ट है—भक्ति पूर्वक बहुमान-भक्ति बहुमान है प्रशंसा का नाम वर्णवाद है २ चारित्र विनय ३-चारित्र-क्रिया-रूप जो विनय हैं वह अथवा चारित्र का जो श्रद्धान आदि रूप विनय है वह चारित्र विनय है, तात्पर्य यह है—सामायिक आदि क्रियाओं का श्रद्धान करना, काय के द्वारा उनका स्पर्शन करना, एवं भव्य प्राणियों के समक्ष उनका प्ररूपण करना यह चारित्र का

१५ पं० प्रकरनुं' छे. तथा वणु'वाह अर्थात् प्रशंसा करवी ते १५ पं० ० अने अनाशातना इप होवाथी अनाशातना विना कुत ४५ प्रकार थाय छे कहु पणु छे के--“ कायव्वा पुण भन्ती ” इत्यादि.

आ गाथानो अर्थ स्पष्ट छे प्रशंसा करवी तेनुं नाथु वणु'वाह छे हवे चारित्र विनयनुं स्पष्टीकरणु करवाभां आवे छे.

चारित्र-क्रिया-इप ने विनय छे तेने अथवा चरित्र प्रत्ये श्रद्धा आदि इप ने विनय छे तेनुं नाम चारित्रविनय छे. अटवे के सामायिक आदि क्रियाओ प्रत्ये श्रद्धा राणवी, काया द्वारा तेमनी आराधना करवी, अने भव्य ज्योनी समक्ष तेनुं प्रतिपादन करवुं तेनु नाम चारित्रविनय छे कहुं पणु छे के-

“ सामाइयाइचरणस्स ” इत्यादि. आ गाथानो अर्थ उपरना कथनभां ४ स्पष्ट थई गयो छे.

तथा—मनोविनयः=विनयार्हेषु कुशलस्य मनसः प्रवर्त्तनम्, अकुशलस्य च निवर्त्तनम् ४, एवं वाग्विनयः ५, कायविनयश्च ६ बोध्यः । तथा—लोकोपचार-विनयः—लोकानाम् उपचारो=व्यवहारस्तेन तद्रूपो वा विनयः—लोकव्यवहारहेतुको लोकव्यवहाररूपो वा विनय इत्यर्थः । इत्थं सप्तविधानं विनयान् प्रदर्श्य सम्प्रति तद्व्य-ट्कमनोवाक्कायविनयान् प्रशस्ताप्रशस्तभेदमधिकृत्य प्रत्येकं सप्तभेदत्वेन प्रेरूपयितु-माह—‘ पसत्थमणोविण्ण ’ इत्यादि । तथाहि—प्रशस्तमनोविनयः—प्रशस्तः=कुशल-विचारणात्मको मनोविनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अपापकः=शुभचिन्तारूपः, अपावद्यः—सावद्यम्=भद्रतादानादिरूपं जुगुप्सितं कर्म, तज्जास्ति आश्रयणीयत्वेन

विनय है, कहा भी है—“ सामाहयाइचरणस्स ” इत्यादि ।

इस गाथा का अर्थ पूर्वोक्त जैसा ही है ३।

मनो विनय ४—विनय के योग्य साधुजनो में अच्छा मन रखना—सुन्दर सात्त्विक विचार करना—और खोटे विचारों का परित्याग करना यह मनोविनय है। इसी प्रकार से वचनविनय और कायविनय सम-झना चाहिये, लोकोपचार विनय ७—लोकव्यवहार का हेतु रूप अथवा—लोकव्यवहार रूप जो विनय है वह लोकोपचार विनय है,

अब सूत्रकार मन, वचन और काय के प्रशस्त और अप्रशस्त भेदों को लेकर उनमें सप्त प्रकारता का कथन करते हैं—“ पसत्थमणो विण्ण ” इत्यादि—सुन्दर सद्विचारात्मक जो मनोविनय है वह सात प्रकार का है—जैसे अपापक १ असावद्य २, अक्रिय ३ निरूपकलेश ४, अनास्रवकर ५, अक्षपिकर ६ और अभूताभिसंक्रमण ७, इनमें से शुभ विचार रूप मानसिक विकल्प है वह अपापक मनोविनय है, अदत्तादानादि रूप जो जुगुप्सित कर्म है वह सावद्य है, यह सावद्य

(४) मनोविनय-विनयने योग्य साधुओं प्रत्ये मनमा सहलाव राभवे, सुंदर अने सात्त्विक विचार करवा अने भराभ विचारोने परित्याग करवे तेनु नाम मनोविनय छे.

अथ प्रमाणे वाग्विनय विधे पणु समञ्जुं. (७) लोकव्यवहारना हेतुश्य अथवा लोकव्यवहार रूप के विनय छे तेनु नाम लोकोपचारविनय छे.

इये सूत्रकार मन, वचन अने कायना प्रशस्त अने अप्रशस्त लेदोना सात-सात प्रकारोनु कथन करे छे—“ पसत्थमणोविण्ण ” इत्यादि—

सुंदर विचारात्मक अथवा सद्विचारात्मक के मनोविनय छे तेना नीचे प्रमाणे सात प्रकार कहा छे—(१) अपापक (२) असावद्य, अक्रिय, (४) निरूपकलेश, (५) अनास्रवकर, (६) अक्षपिकर अने (७) अभूताभिसंक्रमण.

यस्य स तथा, चौर्यादिगर्हितकर्मात्मन्ववर्जित इत्यर्थः २, अक्रियः—क्रिया= कायिक्यादिरूपा सा नास्ति यस्य स तथा, साधुजनानर्हकायिक्यादिक्रियावर्जित इत्यर्थः ३ निरुपक्लेशः—उपक्लेश्यते=विबाध्यते जनोऽनेनेति उपक्लेशः= शोकादिः, तेन निर्गतो निरुपक्लेशः, शोकादिक्लेशरहित इत्यर्थः । ४ । अनास्रवकरः—आस्रवणं=क्षरणम्—जीवरूपतडागे कर्मरूपजलस्यागमनं कर्मबन्धनमिति यावत्, तस्य करः—आस्रवकरः, न तथा—अनास्रवकरः=प्राणातिपाताधास्रववर्जित

जिस मानसिक विचार धारा का आलम्बन नहीं होता है वह असावद्य मानसिक विनय है यह असावद्य मानसिक विनय चौर्यादि निर्दित कर्मों के आलम्बन से रहित होता है, जिस मानसिक विचार धारा का विषय कायिकी क्रिया आदि क्रियाएँ नहीं होती है वह अक्रिय मनो विनय है, यह अक्रियमनोविनय साधु जनके अयोग्य कायिकी क्रिया आदि क्रियाओं से वर्जित होता है, निरुपक्लेश मनोविनय-मनुष्य जिस से विशेष रूप में बाधित होता है ऐसा वह शोकादि उपक्लेश है, इस उपक्लेश से जो रहित होता है वह निरुपक्लेश है, शोकादिक्लेश से रहित जो मानसिक विचार है वह निरुपक्लेश मनोविनय है, जो विचारधारा जीव रूप तडाग में कर्मरूप जल के आगमन के कारण होती है—कर्मबन्ध का निमित्त होती है—वह आस्रवकर है—ऐसे आस्रव की करनेवाली जो विचार धारा नहीं होती

शुभविचार इयं ने मानसिक विकल्प छे, तेने अपापक मनोविनय कडे छे. अदत्तादान आदि इयं ने जुगुप्सित कर्म छे, तेने सावध गणुवामां आवे छे. ने मानसिक विचारधारामां आ सावधने आधार देवामां आवतो नथी, ते प्रकारनी विचारधाराने असावध विनय इयं मानवामां आवे छे. आ असावध मानसिक विनय चोरी आदि गर्हित कर्मोना अपलभन्थी रहित डोय छे. ने मानसिक विचारधाराने विषय कायिकी क्रिया आदि क्रियाओ डोतो नथी, ते मनोविनय साधुजनोने माटे कडे छे. आ अक्रिय मनोविनय साधुजनोने माटे अयोग्य ओवी कायिकी आदि क्रियाओधी वर्जित डोय छे.

निरुपक्लेशमनोविनय—नेना द्वारा मनुष्यनुं चित्त उभाडोणथछं नय छे ओषां शोकादिने उपक्लेश कडे छे नेनुं चित्त आ प्रकारना उपक्लेशथी रहित डोय छे तेने निरुपक्लेश कडे छे. शोकादि क्लेशथी रहित ने मानसिक विचार छे तेनुं नाम निरुपक्लेश मनोविनय छे.

ने विचारधारा अत्र इयं तणावमां कर्मइयं जलना आगमनना कारण इयं डोय छे. कर्मबन्धना निमित्त इयं डोय छे, तेने आस्रवकर कडे छे. ओवी

इत्यर्थः ॥ ५ ॥ अक्षपिकरः-क्षपिः=स्वपरयोरावासः, तस्य करः-क्षपिकरः, न तथा अक्षपिकरः, स्वपराव्यथाजनक इत्यर्थः ॥ ६ ॥ तथा - अभूतसंक्रमणः-भूतानि=प्राणिनः संक्रम्यन्ते=उपमर्दन्ते येन सः, भूतसंक्रमणे, न तथा-अभूतसंक्रमणः-भूतोपमर्दनवर्जित इत्यर्थः ॥ ७ ॥ इति तथा-अप्रशस्तमनोविनयः=अकुशलचिन्तनरूपमनोविनय. सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-सावद्य इत्यादि ।

है वह अनास्रवकर है ऐसी अनास्रव कर विचार धारा प्राणातिपात आदि रूप आस्रव से वर्जित होती है, अतः ऐसी अनास्रवकर विचार धारा अनास्रवकर मनोविनय है, स्व और पर को कष्ट पहुंचाने वाली जो विचारधारा है वह क्षपिकर विचारधारा है, ऐसी जो विचार धारा नहीं है वह अक्षपिकर मनोविनय है। अर्थात् ऐसी विचारधारा से शून्य जो मन है वही अक्षपिकर मनोविनय है। अभूताभिसंक्रमण-जिस विचारधारा से प्राणियों का उपमर्दन किया जाता है ऐसी वह विचारधारा भूताभिसंक्रमण है, जिस विचारधारा में ऐसा भूताभिसंक्रमण नहीं होता है ऐसी वह विचारधारा अभूतसंक्रमण रूप मनोविनय है ॥ ७ ॥

अप्रशस्त मनोविनय इस प्रकार से सात भेदों वाला है-जैसे-पापक १, सावद्य २, सक्रिय ३, सोपकलेश ४, आस्रवकर ५, क्षपिकर ६, और भूताभिसंक्रमण- ७, अप्रशस्तमनोविनय अकुशल चिन्तन

આસ્રવ કરનારી જે વિચારધારા હોતી નથી તે વિચારધારાને અનાસ્રવકર કહે છે. એવી અનાસ્રવકર વિચારધારા પ્રાણુતિપાત આદિ રૂપ આસ્રવથી રહિત હોય છે. તેથી એવી અનાસ્રવકર વિચારધારાને અનાસ્રવકર મનોવિનય કહે છે.

સ્વ અને પરને કષ્ટ પહોંચાડનારી જે વિચારધારા છે તેને ક્ષપિકર વિચાર ધારા કહે છે જે વિચારધારા એવી હોતી નથી તેને અક્ષપિકર કહે છે. તેથી સ્વ અને પરને પીડા પહોંચાડવાથી રહિત એવી વિચારધારા છે તે અક્ષપિકર મનોવિનયરૂપ છે

અભૂતાભિસંક્રમણ-જે વિચારધારાવડે પ્રાણીઓનું ઉપમર્દન કરાય છે તે વિચારધારાને ભૂતાભિસંક્રમણ કહે છે. જે વિચારધારામાં એવું ભૂતાભિસંક્રમણ થતું નથી, તે વિચારધારાને અભૂતાભિસંક્રમણ રૂપ મનોવિનય કહે છે.

પ્રશસ્ત મનોવિનયના નીચે પ્રમાણે સાત ભેદ કહ્યા છે-

(૧) પાપક, (૨) સાવધ, (૩) સક્રિય, (૪) સોપકલેશ, (૫) આસ્રવકર, (૬) ક્ષપિકર અને ભૂતાભિસંક્રમણ.

पूर्वोक्त एवार्थो नञर्थरहितत्वेनात्र योज्यः यथा 'अपापक' इतिस्थाने 'पापक' इत्यादियोजना कर्तव्या एवं प्रशस्ताप्रशस्तभेदभिन्नो वाग्बिनयोऽपि बोध्यः । तथा-प्रशस्तकायविनयः=कुशलात्मककायविनयः सप्तविधः प्रज्ञ^{पतिः}; तद्यथा आयुक्त-गमनम्-आयुक्तम्=सोपयोगं यथास्यात्तथा गमनम्, यद्वा-आयुक्तगमनमित्येकं पदं, तेन आयुक्तस्य-उपयुक्तस्य=प्रतिसंलीनयोगस्य यद् गमनं तदित्यर्थः ॥१॥

रूप होता है, यहां पापक आदि का पूर्वोक्त रूप से विपरीत रूप में-विचार कर लेना चाहिये । यही बात यहां टीकाकारने " पूर्वोक्त-एवार्थो-नञर्थरहितत्वेनात्र योज्यः " इस पंक्ति द्वारा प्रकट की है ।

इसी तरह से प्रशस्त अप्रशस्त भेद से वाग् विनय (वचन विनय) भी सात प्रकार का है, जैसे-अपापक वाग्बिनय, १ असावद्यवाग् विनय २, इत्यादि ३ इसी प्रकार से अप्रशस्त वाग्बिनय भी पापक-वाग्बिनय १ असावद्यवाग्बिनय २ इत्यादि,

इसी तरह से प्रशस्तकाय विनय भी सात प्रकार का है-जैसे-आयुक्त गमन रूप काय विनय (उपयोगसहित चलना) १ आयुक्त स्थान रूप काय विनय २, आयुक्त निषेध रूप काय विनय ३, आयुक्तत्वग्रूवर्तन रूप कायविनय ४, आयुक्त उल्लंघन रूप कायविनय ५, आयुक्त प्रलंघन रूप कायविनय ६ और आयुक्त सर्वेन्द्रिययोग योज-

अप्रशस्त भनोविनय अक्षुशक्षिन्तन रूप होय छे.

अपापक भनोविनय आदि सात प्रकारना प्रशस्त भनोविनय करता आ सात अप्रशस्त भनोविनयनुं विपरीत स्वरूप समझवुं, अेव वात अही टीका-कारे नीचेना सूत्रपाठ द्वारा प्रकट करी छे-" पूर्वोक्तएवार्थो नञर्थरहित-त्वेनात्र योज्यः "

अेव प्रमाणे वाग्बिनयना पणु अप्रशस्त अने प्रशस्त नामना छे लेह पडे छे. प्रशस्त वाग्बिनयना नीचे प्रमाणे सात लेह पडे छे-(१) अपापक वाग्बिनय, (२) असावद्य वाग्बिनय, (३) सावद्य वाग्बिनय अेव प्रमाणे प्रशस्त भनोविनयना वाग्बिनयना पणु पापक वाग्बिनय, सावद्य वाग्बिनय आदि सात लेहो समझवा.

प्रशस्त कायविनयना नीचे प्रमाणे सात प्रकार पडे छे-

(१) आयुक्त गमनरूप कायविनय (उपयोग सहित आलवुं ते) (२) आयुक्त स्थानरूप कायविनय, (३) आयुक्त निषेधरूप कायविनय, (४) आयुक्त त्वग्रूवर्तनरूप कायविनय, (५) आयुक्त उल्लंघनरूप कायविनय (६) आयुक्त प्रलंघनरूप कायविनय, अने, (७) आयुक्त सर्वेन्द्रिययोगयोजनता.

एवमग्रेऽपि, नवरं-स्थानम्=ऊर्ध्वस्थानं कायोत्सर्गादि, निषदनम्=उपवेशनम्, त्वग्वर्तनम्=पार्श्वपरिवर्तनं-शयनमित्यर्थः, उल्लङ्घनम्=कर्ममादेः सकृदतिक्रमणम्, प्रलङ्घनं=तस्यैव पौनःपुन्येनातिक्रमणम्, सर्वेन्द्रिययोगयोजनता-सर्वाणिच ज्ञानीन्द्रियाणि चेति सर्वेन्द्रियाणि, तेषां योगाः=व्यापाराः, यद्वा-इन्द्रियाणां योगाः=व्यापारा इन्द्रिययोगाः, सर्वेच ते इन्द्रिययोगाः सर्वेन्द्रिययोगाः, तेषां योजनता=हरणम्=सर्वेन्द्रियाणां शुभव्यापार इत्यर्थः । एवमप्रशस्त-कायविनय भेदा अपि अनायुक्तविशेषणवत्तया व्याख्येया इति । उक्तञ्च प्रशस्तमनोवाकाय-विनयविषये—

नृता ७, इन में से उपयोगपूर्वक गमन करना यह आयुक्त गमनरूप कायविनय है, अथवा—“ आयुक्तगमन ” यह एक पद है, इसका अर्थ है । प्रतिसंलीनयोग वाले (इन्द्रियों को गुप्त करनेवाले का जो गमन है वह आयुक्त गमन है, १ इसी तरह से आगे भी आयुक्त शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिये, स्थान शब्द का अर्थ है कायोत्सर्ग आदि करना-निषदन शब्द का अर्थ है बैठना त्वग्वर्तन शब्द का अर्थ है करवट बदलना-सोना, उल्लंघन शब्द का अर्थ है-कर्म आदि का एक बार उल्लंघन करना, प्रलंघन-शब्द का अर्थ है-कर्म आदि का बारंबार उल्लंघन करना-तथा समस्त इन्द्रियों को शुभव्यापार में लगाना, यह लगाना, यह सर्वेन्द्रिय योग योजनता है, अप्रशस्त कायविनय के भेद भी अनायुक्त विशेषण लगाकर इसी तरह से व्याख्यात कर लेना चाहिये, प्रशस्त मन, वचन, एवं काय के विनय के विषय में ऐसा कहा गया है—“ मगवहकायविणओ ” इत्यादि

उपयोगपूर्वक गमन करवुं तेनुं नाम आयुक्त गमन इप कायविनय छे. अथवा “ आयुक्तगमन ” (आ अक पद छे. तेनो अर्थ आ प्रमाणे थाय छे-प्रतिसंलीन योगवाणानुं (इन्द्रियोने गुप्त करनारनुं) ने गमन छे तेनुं नाम आयुक्तगमन छे अत्र प्रमाणे णील लेहोना अर्थ पणु समञ्ज लेवा. अही स्थान पद कार्योत्सर्गनुं वाचक छे, निषदन अटले अस्सुवुं. ‘ त्वग्वर्तन ’ अटले पडणुं गदलवुं अथवा सूवुं, ‘ उल्लंघन ’ अटले कर्म आदिने अक वथत ओणगवा, “ प्रलंघन ” अटले कर्म आदिने वारंवार ओणगवा, ‘ सर्वेन्द्रिय योग योजनता ’ अटले समस्त इन्द्रियोने शुभ व्यापारमां प्रवृत्त करवी.

(अप्रशस्त काययोगना पणु सात लेह पडे छे. अही अनायुक्त विशेषणु लगाडीने अनायुक्त गमनइप कायविनय आदि उपयुक्त सात लेहो समञ्जवा. प्रशस्त मन, वचन अने कायना विनय विषे अेवुं कहुं छे डे-

“ मणवइकायविणओ, आयरियाईणसव्वकालम्मि ।

अकुसलाणनिरोहो, कुसलाणमुईरणं तहय ॥१॥”

छाया—मनोवाक्कायविनय आचार्यादीनां सर्वकालमपि ।

अकुशलानां निरोधः कुशलानामुदीरणं तथा च ॥१॥” इति ।

अयं भावः—आचार्यादीनां विषये सर्वदा अकुशलानां मनोवाक्कायानां निरोधः कुशलानां च उदीरणं प्रशस्तमनोवाक्कायविनया बोध्याः । अप्रशस्तमनोवाक्कायविनया इतोवैपरीत्येन भावनीया इति । इत्थं प्रशस्ताप्रशस्तभेदेन मनोवाक्कायविनयान् सप्तभेदतयोपदर्श्य सम्प्रति लोकोपचारविनयसप्तभेदत्वेनोपदर्शयति—‘ लोकोपचारविणए ’ इत्यादि । लोकोपचारविनयोऽपि सप्तविधो बोध्यः, तथाहि—अभ्यासवर्तित्वम्—अभ्यासे=आचार्यादीनां

तात्पर्य यह है—कि आचार्य आदिकों के विषय में सर्वदा अकुशल मन वचन एवं काय का निरोध करना और कुशल मन, वचन कायका उदीरण करना—यह प्रशस्त मन वचन कायका विनय है, तथा अप्रशस्त मन वचन काय सम्बन्धी विनय इनसे विपरीत है, इस तरह प्रशस्त और अप्रशस्तके भेदसे मन वचन काय संबन्धी विनयके भेदों को दिखला कर अथ सूत्रकार लोकोपचार विनय के सात भेदों को प्रदर्शित करते हैं—“ लोकोपचारविणए ” ” इत्यादि लोकोपचार विनय के सात भेद इस प्रकारसे हैं—अभ्यास वर्तित्व १, परच्छन्दानुवर्तित्व २, कार्य हेतु ३, कृत प्रतिकृतिता ४, आत्मगवेषणता ५, देशकालज्ञता ६, और सर्वार्थोंमें सबप्रयोजनोंमें अप्रतिलोसता ७, आचार्य आदि के पास में

“ मणवइकायविणओ ” इत्यादि—

आ कथनने लावार्थ आ प्रभाणे छे—आचार्य आदिना विषयमां सर्वदा अकुशल मन, वचन अने कायने निरोध करवे अने कुशल मन, वचन अने कायतुं उदीरण करवुं, ते प्रशस्त मन. वचन अने कायने विनय छे, तथा अप्रशस्त मन, वचन अने कायने विनय तेना इरतां विपरीत स्वरूपवाणे छेय छे आ रीते मन, वचन अने कायना प्रशस्त लेहो अने अप्रशस्त लेहोनुं निरूपण करीने हुवे सूत्रकार लोकोपचार विनयना सात लेहो प्रकट करे छे—

“ लोकोपचारविणए ” इत्यदि—

लोकोपचार विनयना नीचे प्रभाणे सात लेहो कक्षा छे—

(१) अभ्यास वर्तित्व, (२) परच्छन्दानुवर्तित्व, (३) कार्य हेतु, (४) कृतप्रतिकृतिता, (५) आत्म गवेषणता, (६) देशकालज्ञता, अने (७) सर्वार्थोंमां अप्रतिलोसता.

श्रुताध्ययन करवानी अलिप्र.व.वाणा शिष्यनुं आचार्यादिनी पसे ने रडेवानुं थाय छे तेनुं नाम अ अभ्यासवर्तित्व छे आचार्यादिना अलिप्र.व.

समीपे वर्तितुं शीघ्रमस्येति-अभ्यासवती=आचार्यादिसमीपे निवसनशीला,
 तस्य भावस्तत्त्वम्, श्रुताध्ययनार्थिना आचार्यादीनां समीपे स्थातव्यमिति
 भावः । १। परच्छन्दानुवर्तित्वम् आचार्याद्यभिप्रायानुकूलत्वम् । २। कार्यहेतुः-
 कार्यं=श्रुताध्ययनादिकं, तद् हेतुः=कारणं यस्मिन् सः । अयं भावः-अनेनाहं
 श्रुतमध्यापितः, अतोमयाऽस्मिन् विशेषतो विनययुक्तेन भाव्यमिति मनसि संधाय
 श्रुताध्यापयितरि यो विनयः स कार्य हेतुरिति । ३। कृतप्रतिकृतिता कृते=भक्तादि
 प्रदानेन सुश्रूषणेकृते सति सुप्रसन्ना गुरुवः श्रुतप्रदानादिना प्रतिकृति=प्रत्युपकारं
 करिष्यन्तीति गुरुषु भक्तादिप्रदानरूपो यो विनयः स कृतप्रतिकृतितेति । ४।
 आत्मगवेषणता-आत्मना-परप्रेरणामन्तरेण स्वयमेव साधुसमुदाये सुस्थदुःस्थ-

जिसका रहने का स्वभाव है ऐसा वह शिष्य अभ्यासवती है-श्रुता-
 ध्ययन के अभिलाषी शिष्य को आचार्यादि के पास में रहना-यही
 अभ्यासवर्तित्व है । आचार्य आदि के अभिप्रायानुसार अपनी वृत्ति
 करना यह परच्छन्दानुवर्तित्व है, इसने मुझे श्रुत का अध्ययन कराया
 है, इसलिये मुझे इनके समीप बहुत ही विनय के साथ रहना चाहिये
 ऐसा मन में विचार करके जो श्रुत अध्येता के पास विनय पूर्वक
 रहता है वह कार्य हेतु लोकोपचारविनय है, भक्त आदि
 लाकर के देने से सेवा युक्त किये गये ये गुरुजन मेरे ऊपर सुप्रसन्न
 हो जावेंगे तो वे मुझे श्रुतप्रदान कर मेरा प्रत्युपकार कर देंगे इस
 अभिप्राय से गुरुजनों के विषय में भक्तादि प्रदान रूप जो विनय है
 वह कृतप्रतिकृति रूप लोकोपचार विनय है । विना प्रेरणा किये-अपने
 आप ही-साधु समुदाय में सुख एवं दुःख की गवेषणा करना वह
 आत्मगवेषणता रूप लोकोपचार विनय है, अथवा-" आत्मगवेषणता "

प्रमाणे न पोतानी प्रवृत्ति राखवी तेनुं नाम परच्छन्दानुवर्तित्वं छे. " तेभ्यो
 भने श्रुतनुं अध्ययनं कराव्युं छे, तेथी भारे तेमनी पासे धण्णुं न विनयपूर्वकं
 रडेवुं न्नेधञ्जे " आ प्रकारेणो मनमां विचार करीने न शिष्य श्रुतनो अभ्यास
 करावनारनी साथे विनयपूर्वकं रडे छे, ते प्रकारे रडेवा इय कार्यहेतु लोकोपचार
 विनय समञ्जो. " आहार आदि लावी देवा इय सेवा करवाथी गुरु भारा
 उपर सुप्रसन्न रडेशे अने भने श्रुत प्रदान करीने भारा उपर प्रत्युपकार करशे,"
 आ प्रकारनी लावनाथी गुरुजनोने भारे आहारादि लावी आपवा इय न
 विनय छे तेने कृतप्रतिकृतिता इय लोकोपचार विनय कडे छे.

कोईना द्वारा प्रेरित कराया विना-आप भेजे न साधु समुदायमां सुख
 अने दुःखनी गवेषणा करवी तेनुं नाम. आत्मगवेषणता इय लोकोपचार

योर्यद् गवेषणम्=अन्वेषण तदेव । “ आप्तगवेषणता ” इतिच्छायापक्षे-आप्तः=स्वकीयो भूत्वा यत् साधु समुदाये सुस्थ दुःस्थयोः गवेषणं तदेव । “ आर्त्तगवेषणता ” इतिच्छायापक्षे तु-आर्त्तानां=रोगादिपीडितानां कृते औषधादेर्यद् गवेषण तदेव । ५। देशकालज्ञता=अवसरोचितार्थ संपादनाभिज्ञता । ६। तथा सर्वार्थेषु=गुर्वादीनां सरुलप्रयोजनेषु अप्रतिलोमता=अविरुद्धता-अनुकूलतेति यावत् सू० ४६॥

अनन्तरं विनय उक्तः, विनयाच्च कर्मघातो भवति, कर्मघातश्च समुद्घाते विशिष्टतर इति समुद्घातप्ररूपणाय प्राह—

मूलम्—सत्त समुग्घाया पणत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए
१, कसायसमुग्घाए २ मारणांतियसमुग्घाए ३, वेउठ्वियसमु-
ग्घाए ४ तेजससमुग्घाए ५, आहारगसमुग्घाए ६ केवलिसमु-
ग्घाए ७। मणुस्साणं सत्त समुग्घाया पणत्ता, एवं चैव ॥सू०४७॥

इस छाया पक्ष में आप्त हो कर के-स्वकीय हो करके-ये अपने ही हैं- इस प्रकार का विचार करके-जो साधु समुदाय में सुस्थ दुःस्थ की गवेषणा है वह आप्तगवेषणता है, अथवा-“ आर्त्त गवेषणता ” इस पक्ष में ऐसा अर्थ होता है कि रोगादि से पीडित साधुजनों के लिये औषधादि की गवेषणा करना वह आर्त्तगवेषणता है, देशकाल ज्ञता ६-अवसर के लायक जो अर्थ के संपादन की अभिज्ञता है वह देश कालज्ञता है । एवं गुरु आदिकों के समस्त प्रयोजनों में अनुकूल हो कर जो वर्तन है वह सर्वार्थों में अप्रतिलोमता है ॥ सूत्र ४६ ॥

विनय अथवा-“ आप्तगवेषणता ” आ प्रकारनी संस्कृत छाया अही लेवाभां आवे, तो आ पढेना आ प्रभाषे अर्थ थाय छे-आप्तजन तरीके ज तेओ भारा आप्तजने छे, आ प्रकारने विचार करीने साधु समुदायनां सुस्थ दु स्थनी गवेषणा करवी तेनुं नाम आप्तगवेषणता छे. अथवा ते पढनी संस्कृत छाया “ आर्त्तगवेषणता ” लेवाभां आवे, तो अही ओवे अर्थ थाय छे के-रोगा-दिथी पीडाता साधुओने भाटे औषधादिनी गवेषणता छे.

(६) देशकालज्ञता—अवसरने लायक अर्थने (पदार्थने) संपादन कर-वानी जे अभिज्ञता छे, तेनुं नाम देशकालज्ञता छे.

(७) समस्त प्रयोजनोभां गुरु आदिकोने अनुकूल थछ जनाउं जे वर्तन छे, तेनुं नाम सर्वार्थोभां अप्रतिलोमता छे. ॥ सू. ४६ ॥

छाया—सप्त समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः १, कषाय-समुद्घातः २, मारणान्तिकसमुद्घातः ३, वैक्रियसमुद्घातः ४, तैजससमुद्घातः ५, आहारकसमुद्घातः ६, केवलिसमुद्घातः ७ । मनुष्याणां सप्त समुद्घाताः प्रज्ञप्ता एवमेव ॥ सू० ४७ ॥

टीका—‘सत्त समुग्घाया ’ इत्यादि—

समुद्घाताः—यथास्वभावस्थितानामात्मप्रदेशानां वेदनादिभिः सप्तभिः कारणैः समन्ताद्घातनं—स्वभावादन्यभावेन परिणमनं समुद्घातः, अयं भावः—यदाऽऽत्मा वेदनादि समुद्घातगतो भवति तदा वेदनाद्यनुभवज्ञानपरिणत एव

ऊपर के सूत्र में विनय के विषयमें कहा गया है—इस विनय से कर्म का घात होना है, तथा—समुद्घात अवस्था में कर्मघात विशिष्टतर होना है—अतः अब सूत्रकार समुद्घात की प्ररूपणा करने के लिये—४७ वां सूत्र कहते हैं—“सत्त समुग्घाया पण्णत्ता” इत्यादि । सूत्र ४७ ॥ टीकार्थ—समुद्घात सात कहे गये हैं—जैसे—वेदना समुद्घात १ कषाय समुद्घात २, मारणान्तिक समुद्घात ३, वैक्रिय समुद्घात ४, तैजस समुद्घात ५, आहारक समुद्घात ६, केवलिसमुद्घात ७, मनुष्योंके सातही समुद्घात कहे गये हैं ।

यथा स्वभावस्थित आत्मप्रदेशों का वेदना आदि सात कारणों को लेकर जो स्वभाव से परिणमन होता है—वह समुद्घात है, तात्पर्य ऐसा है—जब आत्मा वेदनादि समुद्घात गत होता है

उपरना सूत्रमां विनयतुं प्रतिपादन करवामां आ०युं छे, आ विनय वडे क्कोनेा घात थाय छे, तथा समुद्घातावस्थामां कर्मघात विशिष्टतर थाय छे, तेथी डवे सूत्रकार समुद्घातनी प्ररूपणा करे छे—

“सत्त समुग्घाया पण्णत्ता ” इत्यादि—(सू ४७)

टीकार्थ—नीचे प्रभाषे सात समुद्घात कहे छे—(१) वेदना समुद्घात, (२) कषाय समुद्घात, (३) मारणान्तिक समुद्घात, (४) वैक्रिय समुद्घात, (५) तैजस समुद्घात, (६) आहारक समुद्घात अने (७) केवलिसमुद्घात.

यथा स्वभावस्थित आत्मप्रदेशोंतुं वेदना आदि सात कारणोंने लीधे स्वभावमांथी ने परिणमन थाय छे तेनुं नाम समुद्घात छे, आ कथनने भावार्थ नीचे प्रभाषे छे—

अतरे आत्मा वेदनादि समुद्घातगत डोय छे, त्तारे ते वेदनादि समुद्घात गत डोय छे, त्तारे ते वेदना आदिना अनुभवरूप ज्ञानथी परिणत

भवति नान्यज्ञानपरिणतः आत्मप्रदेशैः सह संश्लिष्टानां कालान्तरानुभवयोग्यानां वेदनीयादि कर्मप्रकृतीनामुदीरणयाऽऽकर्षणेन उदयावलिकायां प्रक्षेपेण निर्जरणमिति । समुद्घातशब्दस्य बहुत्वविक्षया समुद्घातः । ते वेदनादिभेदेन सप्तसंख्यकाः प्रस्ताः, तानेराह-तद्यथा-वेदनासमुद्घात इत्यादि । तत्र-वेदना समुद्घातः-वेदनया=कालान्तरानुभवनीयासातकर्मण्युदयावलिकायां प्रक्षिप्यानुभवनेन समुद्घातः=तेषां कर्मणां निर्जरणम् । अयं भावः-वेदनासमुद्घातगत-आत्मा असातवेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, तथाहि-वेदनापीडितो जीवः स्वप्रदेशान् अनन्तानन्तकर्मरूढ्यवेष्टितान् गरीराद् बहिरपि प्रक्षिपति,

तत्र वह वेदना आदि के अनुभव रूपा ज्ञान से परिणत ही होता है, अन्य ज्ञान से परिणत नहीं होना है, समुद्घात में रहा हुआ आत्मा-आत्मप्रदेशों के साथ संश्लिष्ट वेदनीयादि कर्मप्रकृतियों को जो कि कालान्तर में अनुभव करने के योग्य होती हैं उदीरणाकरण द्वारा खींचकर उदयावलिका में प्रक्षिप्त करता है-इस से उनकी निर्जरा होती है । समुद्घात शब्द में जो बहुवचन का प्रयोग किया गया है वह समुद्घात की अनेकता को लेकर किया गया है । वेदना आदि के भेद से जो समुद्घात ७ प्रकार के कहे गये हैं-सो उनका तात्पर्य ऐसा है-वेदना समुद्घात-कालान्तर में भोगने योग्य जो असातवेदनीय कर्म पुद्गल हैं उन्हें वेदना से उदयावलिका में खींचकर जो उनकी निर्जरा करना है वह वेदना समुद्घात है, समुद्घात शब्द का अर्थ निर्जरा करना है । आत्मा जब वेदना समुद्घात गत होता है-तब वह असात वेदनीय कर्म पुद्गलों की निर्जरा करता है । वेदना से पीडित

डोय छे-अन्य ज्ञानथी परिणत डोतो नथी. समुद्घातमां रडेदो आत्मा, आत्मप्रदेशोनी साथे संश्लिष्ट वेदनीय वेदनीय आदि कर्मप्रकृतियो के जेनुं कालान्तरे वेदन करवानुं डोय छे तेमने उदीरणाकरण द्वारा जेथीने उदयावलिकां प्रक्षिप्त करे छे, तेने लीधे तेमनी निर्जरा थाय छे. समुद्घात शब्दमां जेणहुं वचनने प्रयोग थयो छे ते समुद्घातनी अनेकताने कारणे थयो छे वेदना आदिना लोदथी समुद्घातमां जे सप्तविधता प्रकट करवामां आवी छे. तेनुं स्पष्टीकरण नीचे प्रभाणे छे—

वेदना समुद्घात—कालान्तरे लोणववाने योग्य जे असातावेदनीय कर्म-पुद्गलो छे तेमने उदीरणाकरण द्वारा उदयावलिकां जेथीने तेमनी जे निर्जरा करवामां अवे छे, तेनुं नाम वेदनासमुद्घात छे. समुद्घात अटले निर्जरा करवी ते आत्मा न्यारे वेदना समुद्घातगत डोय छे, त्यारे ते असातावेदनीय कर्मपुद्गलोनी निर्जरा करे छे. वेदनाथी पीडित जेवे। एवं

तैश्च प्रदेशैर्वदजठरादि रन्ध्राणि कर्मस्कन्धाद्यपान्तरालानि चाऽऽपूर्य आयामतो
विस्तरतश्च शरीरमात्रं क्षेत्रमभिव्यापयान्तमुद्भूतं यावद्वृत्तिष्ठते, तस्मिन्श्चान्तमुद्भूते
प्रभूतासातावेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोतीति ॥१॥ कषायसमुद्घातः—
कषायैः=क्रोधादिभिर्हेतुभूतैः समुद्घातः कषायसमुद्घातः—रूपायाख्यचारित्र-
मोहनीयकर्मश्रयः समुद्घातविशेष इत्यर्थः । अयं भावः—तीव्रकषायोदयाकुलो
जीवः स्वप्रदेशान् बहिर्विक्षिपति, तैः प्रदेशैर्वदनोदरादि रन्ध्राणि कर्णस्कन्धाद्यपा-

हुआ जीव अनन्तानन्त कर्मस्कन्धों से वेष्टित हुए आत्मप्रदेशों को
शरीर से बाहर भी निकालता है—सो निकालकर उन प्रदेशों से वदन,
जठर, आदिके खाली स्थानोंको एवं कर्णस्कन्ध आदिके अपान्तरालों(छिद्रों)
को भर देता है, भरकर वह आयाम—लंबाई और विस्तार की अपेक्षा
शरीर मात्र क्षेत्र को व्याप्तकर अन्तमुद्भूत तक वहीं पर रहता है इस
अन्तमुद्भूतकाल में वह बहुत ही अधिक वेदनीय कर्म पुद्गलोंकी निर्जरा
कर देता है, १ कषाय समुद्घात—क्रोधादिकषायों के वश होकर जो
समुद्घात किया जाता है वह कषाय समुद्घात है, यह कषाय समु-
द्घात कषाय नामक चारित्र मोहनीय कर्म के आश्रय वाला होता
है । जब जीव के तीव्र कषाय के उदय से आकुलता आजाती है तब
तीव्र कषाय के उदय से आकुल हुआ वह जीव अपने प्रदेशों को
बाहर निकालता है, बाहर निकाले गये उन प्रदेशों से वह वदन, उदर
आदि के छिद्रों को एवं कर्ण स्कन्ध आदि के अपान्तरालों को भर देता

अनन्तानन्त कर्मस्कन्धाद्यर्थी वी टणायेत्वा आत्मप्रदेशाने शरीरनी षडार पणु काढे
छे अने शरीरनी षडार काढेला ते आत्मप्रदेशो वडे वदन, जठर आदिना
आली स्थानाने अने कर्ण स्कन्ध आदिना अपान्तरालाने लरी दे छे, अने
अे प्रमाणे लरी दधने ते आयाम (लंबाई) अने विस्तारनी अपेक्षाअे
शरीर प्रमाणे क्षेत्रने व्याप्त करीने अन्तमुद्भूत प्रमाणे काणमां ते धर्षां ज
वधारे असातावेदनीय पुद्गलाने निर्जरा करी नाणे छे

(२) कषाय समुद्घात—क्रोधादि कषायाने वश थधने जे समुद्घात करवामां
आवे छे तेने कषाय समुद्घात कडे छे. ते कषाय समुद्घात कषाय नामना चारित्र
मोहनीय कर्मना आश्रयवाणे होय छे ज्यारे तीव्र कषायना उदयथी एवमां
आकुलता आवी जय छे, त्यारे तीव्र कषायना उदयथी आकुल थयेला
एव पोताना प्रदेशाने षडार काढे छे. षडार काढवामां आवेला ते प्रदेशो वडे
ते वदन, उदर आदिना छिद्राने अने कर्ण स्कन्ध आदिना अपान्तरालाने लरी

न्तरालानि चापूर्य आयामतो विरतरतश्च देहमात्रक्षेत्रमभिव्याप्य तिष्ठति, तथा-
भूतश्च प्रभूतान् कषायकर्मपुद्गलान् परिशातयतीति । २॥ मारणान्तिकसमुद्घातः-
मरणमेव प्राणिनामन्तकारित्वात् अन्तोमरणान्तः, तत्र भवो मारणान्तिकः, स
चासौ समुद्घातश्चेति । अन्तर्मुहूर्त्तशेषायुष्कर्मश्रय इत्यर्थः । अयं भावः-मार-
णान्तिकसमुद्घातगतो विक्षिप्तस्वप्रदेशो जीवो वदनोदरादि रन्त्राणि स्कन्धाव-
पान्तरालानि चापूर्य विष्कम्भवाहल्याभ्यां स्वशरीर प्रमाणम्, आयामतः स्वशरीरा-
तिरेकतो जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागम्, उत्कर्षतोऽसंख्येयानि योजनान्येक
दिशि क्षेत्रमभिव्याप्य तिष्ठति, तथाभूतश्चायुष्कर्मपुद्गलान् शातयतीति नाश-

है, भरकर वह आयाम और विस्तार की अपेक्षा देहमात्र क्षेत्र को
व्याप्त कर अन्तर्मुहूर्त्त तक वहीं पर रहता है, वहां उतने समय तक
रहकर वह बहुत अधिक कषाय कर्म पुद्गलों की निर्जरा कर देता है । २

मारणान्तिक समुद्घात--मरण के समय में जो समुद्घात होता
है-वह मारणान्तिक समुद्घात है, यह समुद्घात जब अन्तर्मुहूर्त्त शेष
आयु रहती है तब होता है, मारणान्तिक समुद्घात वाला जीव अपने
आत्मप्रदेशों को शरीर से बाहर निकालता है, और उनसे वदन,
उदर आदि के रन्त्रों को (छिद्रों को) एवं स्कन्ध आदि के अन्त-
रालों को भर देता है, भर कर फिर वह विष्कम्भ एवं वाहल्य से-
चौड़ाई और मोटाई से-अपने शरीर के प्रमाण एवं आयाम से-लंबाई
से-अपने शरीर से अधिक-कम से कम अंगुल के संख्यातवें भाग
प्रमाण और अधिक से अधिक असंख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र को

दे छे. त्पारभाद ते आयाम अने विरतारनी अपेक्षाये देहमात्र क्षेत्रने व्याप्त
करी दधने अन्तर्मुहूर्त्त सुधी त्यांज रहे छे. त्यां अटला समय सुधी रक्षीने
ते धषुं न अधिक कषाय कर्म पुद्गलोनी निर्जरा करी नाये छे.

मारणान्तिक समुद्घात-मरणने समये न समुद्घात थाय छे तेनुं नाम
मारणान्तिक समुद्घात छे न्यारे अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाणे आयु भाक्षी रहे छे,
त्यारे आ समुद्घात थाय छे. मारणान्तिक समुद्घातवाणे एव पोताना आत्म
प्रदेशोने शरीरभांथी भडार काढे छे अने भडार काढवामा आवेला ते आत्म
प्रदेशो वडे वदन, उदर आदिना छिद्रोने अने स्कन्धादि अपान्तरालोने लरी दे
छे. त्पार भाद ते विष्कंभ अने वाहल्य (पडोणाठ अने नडाठ)नी अपेक्षाये
पोताना शरीर प्रमाणथी अधिक आछामां आछा आंगणना असंख्यात लाग
प्रमाण अने वधारिमां वधारे असंख्यात योजन प्रमाण क्षेत्रने अके दिशांमां

યતીત્યર્થઃ॥૩॥ વૈક્રિયસમુદ્ઘાતઃ-વૈક્રિયે પ્રારમ્ભમાણે સમુદ્ઘાતઃ-વૈક્રિયલઘ્વિમતૌ
 વૈક્રિયોત્પાદનાયાઽઽત્મપ્રદેશાનાં વહ્નિર્નિષ્કાશનમિત્યર્થઃ । અયં ભાવઃ-વૈક્રિય-
 સમુદ્ઘાતગતઃ પુનર્જીવઃ સ્વપ્રદેશાન્ શરીરાદ્ વહ્નિર્નિષ્કાશ્ય શરીરવિષ્કમ્ભ
 વાહલ્યમાનમાયામતઃ સંખ્યેયયોજનપ્રમાણં દણ્ડં નિસૃજતિ, નિસૃજ્ય ચ યથા
 સ્થૂલાન વૈક્રિયશરીરનામકર્મપુદ્ગલાન્ પ્રાગ્વચ્છાટયતિ ઇતિ । તદુક્તમ્—

“ વેડવિવ્યસમુઘાણં સમોહણઃ, સમોહણિત્તા સંસ્થેજ્ઞાઈં જોયણાઈં દંડં
 નિસિરઠ્ઠ, નિસિરિત્તા અહાવાયરે પુગલે પરિસાઠ્ઠેઠ્ઠ । ”

હાયા—વૈક્રિયસમુદ્ઘાતેન સમવહન્તિ, સમવહત્ય સંખ્યેયાનિ યોજનાનિ
 દણ્ડં નિસૃજતિ, નિસૃજ્ય પ્રાગ્વદ્ધાન્ યથાત્રાદરાન્ પુદ્ગલાન્ પરિશાટયતિ ઇતિ ॥૪॥

તૈજસસમુદ્ઘાતઃ-તૈજસિ વિષયે ભવસ્તૈજસઃ, સ ચાસૌ સમુદ્ઘાતશ્ચેતિ,
 તેજોલેશ્યાવિનિર્ગમકાલમાત્રી તૈજસશરીરનામકર્માશ્રયઃ સમુદ્ઘાતવિશેષ

એક દિશા મેં વ્યાસ કર એક અન્તર્મુદ્દૂર્ત તક વહાં રહતા હૈ, ઇતને
 સમય તક વહાં રહા હુઆ વહ જીવ આયુષ્ક કર્મ પુદ્ગલોંકી નિર્જરા કર
 દેતા હૈ । વૈક્રિયસમુદ્ઘાત વૈક્રિય લઘ્વિવાલે કા વૈક્રિય-ઉત્પાદન કે
 લિયે જો આત્મપ્રદેશોં કા બાહર નિકાલના હૈ વહ વૈક્રિયસમુદ્ઘાત
 હૈ-તાત્પર્ય યહ-હૈ-કિ વૈક્રિયસમુદ્ઘાત ગન જીવ ધવને આત્મ પ્રદેશોં
 કો શરીર સે વાહર નિકાલકર શરીર કે વિષ્કમ્ભ ઓર વાહલ્ય પ્રમાણ
 એવં આયામ કી અપેક્ષા સંખ્યાત યોજન પ્રમાણ દણ્ડાકાર રૂપ સે
 બનાતા હૈ, બનાકર પહિલે કે વદ્ધ યથા વાદર પુદ્ગલોં કી નિર્જરા કરતા
 હૈ-કહા ઓ હૈ--“ વેડવિવ્યસમુઘાણં ” ઇત્યાદિ ।

તૈજસસમુદ્ઘાત--જો સમુદ્ઘાત તેજોલેશ્યા કે નિકલને કે
 સમય મેં હોતા હૈ ઓર તૈજસ નામકર્મ જિસકા આશ્રય હૈ એસા જો

વ્યાસ કરીને એક અન્તર્મુદ્દૂર્ત સુધી ત્યાં રહે છે. એટલા સમય સુધી ત્યાં
 રહેશે તે જીવ આયુષ્ક કર્મ પુદ્ગલોની નિર્જરા કરી નાખે છે

(૪) વૈક્રિય સમુદ્ઘાત—વૈક્રિય લઘ્વિવાળાનું વૈક્રિય-ઉત્પાદનને માટે જે
 આત્મપ્રદેશોને બહાર કાઢવાનું થાય છે, તેનું નામ વૈક્રિયસમુદ્ઘાત છે. આ
 કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

વૈક્રિય સમુદ્ઘાત સુક્ત જીવ પોતાના આત્મપ્રદેશોને શરીરની બહાર કાઢીને
 શરીરના વિષ્કંભ (પહોળાઈ) અને બાહલ્ય (બડાઈ) પ્રમાણ અને આયામની
 (લંબાઈની) અપેક્ષાએ સંખ્યાત યોજન પ્રમાણ દંડાકાર રૂપે બનાવે છે, અને
 બનાવીને પહેલાંના બદ્ધ એવાં યથા બાહર પુદ્ગલોની નિર્જરા કરે છે. કથું
 પંથુ છે કે—“ વેડવિવ્યસમુઘાણં ” ઇત્યાદિ—

इत्यर्थः । अयमाशयः—तेजोनिर्गलब्धिमान् क्रुद्धः साध्वादिः सप्ताष्टौ पदानि गत्वा विष्कम्भवाहल्याभ्यां शरीरमानम्, आयामतस्तु संख्येययोजनप्रमाणं जीव-प्रदेशदण्डं शरीराद् बहिः प्रक्षिप्य क्रोधत्रिपथीकृतं मनुष्यादिकं निर्दहति, तत्र निर्दहने च स प्रभूर्तास्तैजसशरीरनामकर्मपुद्गलान् शाटयतीति ॥ ५ ॥ आहारक-समुद्घातः—प्राणिदया—ऋद्धिदर्शन—छद्मस्थोपग्रहणसं शयव्युच्छेदार्थं जिनपादमूले-गमनाय विशिष्टलब्धिवशाच्चतुर्दशपूर्वविदा यदाह्रियते=निर्वर्त्यते तत् आहारकम्,

समुद्घात विशेष है वह तैजस समुद्घात है तात्पर्य इसका ऐसा है—तेजो निर्गल लब्धिवाला साधु जब किसी कारण को लेकर क्रुद्ध हो जाता है, तो वह सात आठ पैर—डग—आगे जाकर विष्कम्भ और बाह्य से शरीर प्रमाण एवं आयाम से संख्यात योजन प्रमाण अपने आत्मप्रदेशों को दण्डके आकार में शरीर से बाहर निकालता है—और फिर—जिसके ऊपर वह साधु क्रोधित हुआ है उसको वह दग्ध (भस्म) कर देना है, इस तरह दग्ध करके वह उस क्रिया से बहुत अधिक तैजस शरीर नामकर्म के पुद्गलों की निर्जरा करता है. ५

आहारक समुद्घात—प्राणिदया के निमित्त ऋद्धिदर्शन के निमित्त छद्मस्थोपग्रहणके निमित्त एवं संशयको दूर करनेके निमित्त—जिन भगवानके समीप में जाने के निमित्त लिये लब्धिके वशसे चतुर्दश

(५) तैजस समुद्घात—जे समुद्घात तेजेजैस्था नीकणवाने समय थाय छे अने जे समुद्घात तैजस समुद्घात तैजस नामकर्मना आश्रयवाणो डोय छे, ते समुद्घातनुं नाम तैजस समुद्घात छे. आ कथननो लावर्थ नीये प्रमाण छे—तेजे निर्गल लब्धिवाणो साधु ज्यारे कोछ कारणे लीये कोधायमान थाय छे, त्यारे ते सात आठ डगला आगण ज्छने विष्कंल अने भाडव्यनी अपेक्षाये शरीर प्रमाण अने आयामनी अपेक्षाये सभ्यत योजन प्रमाण पोताना आत्मप्रदेशोने दडना आकारे शरीरमांथी अडार काठे छे अने जेना उपर ते साधु कोधायमान थयो डोय छे तेने आणीने लस्म करी नाये छे आ प्रमाणे दग्ध करीने ते साधु ते क्रिया वडे धणुं ज अधिक तैजस शरीरना नामकर्मना पुद्गलोनी निर्जरा करे छे.

(६) आहार समुद्घात—प्राणीदयाने निमित्ते, ऋद्धितुं दर्शन कराववाने निमित्ते, छद्मस्थोपग्रहणने निमित्ते अने संशयना निवारणने भाटे अर्थात् जिनेश्वरनी समीपे जवाने निमित्ते, विशिष्ट लब्धिना प्रलाये करीने यौव पूर्वधारीना द्वारा जे शरीरनुं निर्माण थाय छे, ते शरीरने आडा-

તસ્મિન્ પ્રારમ્ભમાણે સમુદ્ઘાતઃ—આહારકસમુદ્ઘાતઃ । અયં ભાવઃ—આહારક-
સમુદ્ઘાતગતો મુનિર્જીવપ્રદેશાન્ શરીરાદેર્વદિર્નિષ્કારય શરીરવિષ્કમ્ભવાહલ્ય-
માત્રમાયામતશ્ચ સંલ્ખયેયાનિ યોજનાનિ દણ્ડં નિસૃજતિ નિસૃજ્ય ચ યથા વાદરા-
નાદારકશરીરનામકર્મપુદ્ગલાન્ શાટયતીતિ ॥ ૬ ॥ તથા—કેવલિસમુદ્ઘાતઃ—
અન્તર્મુહૂર્તમાત્રિનિ પરમપદે કેવલિનાડવશિષ્ટાનાં વેદનીયાયુર્નામગોત્રકર્મા શાનાં
ક્ષણાય યઃ સમુદ્ઘાતઃ ક્રિયતે સ કેવલિસમુદ્ઘાતઃ । एतेन समुदघतेनः केवली
अवशिष्टान् वेदनीयादि कर्मपुद्गलान् शाटयतीति बोध्यम् ॥ ७ ॥ एषु सप्तविध-

પૂર્વ ધારી કે દ્વારા જો બનાવા જાતા હૈ વહ આહારક હૈ, હસકે પ્રારમ્ભ
હોને પર જો સમુદ્ઘાત હોના હૈ વહ આહારક સમુદ્ઘાત હૈ । તાત્પર્ય
યહ હૈ—આહારક સમુદ્ઘાતગત મુનિ જીવપ્રદેશોં કો શરીર સે વાહર
નિકાલ કર અને શરીર કે વિષ્કમ્ભ એવં વાહલ્ય કે વરાવર દણ્ડાકાર
રૂપ સે પરિણમાતા હૈ, આયામ કી અપેક્ષા યહ દણ્ડાકાર રૂપ પરિ-
ણમન સંલ્ખાન યોજન પ્રમાણ કા હોના હૈ । હસ પ્રકાર સે કરકે ફિર
વહ યથાવાદર આહારક શરીર નામ કર્મકે પુદ્ગલોંકી નિર્જરા કરતાહૈ—

કેવલિસમુદ્ઘાત—અન્તર્મુહૂર્તમાત્ર કાલ—જિનકા પરમ પદ (મોક્ષ)
કી પ્રાપ્તિ મેં વાકી રહા હૈ એસે કેવલી કે દ્વારા અવશિષ્ટ વેદનીય,
આયુ, નામ, ગોત્ર, હન કર્મશોં કો નાશ કરને કે લિયે જો સમુદ્ઘા-
ત ક્રિયા જાતા હૈ વહ કેવલિસમુદ્ઘાત હૈ—હસ સમુદ્ઘાત દ્વારા
કેવલી અવશિષ્ટ વેદનીય આદિ કર્મપુદ્ગલોં કી નિર્જરા કરતા હૈ એસા

૨૩ શરીર કહે છે. તેના પ્રારમ્ભને નિમિત્તે જે સમુદ્ઘાત થાય છે તેને આહારક
સમુદ્ઘાત કહે છે, આહારક સમુદ્ઘાતથી યુક્ત થયેલો મુનિ જીવપ્રદેશોને
શરીરમાંથી બહાર કાઢીને તેમને શરીરના વિષ્કંભ અને બાહલ્યની બરાબર
દંડાકાર રૂપે પરિણમાવે છે. આયામની અપેક્ષાએ આ દંડાકારરૂપ પરિણમન
સંખ્યાત યોજનપ્રમાણવાળું હોય છે. આ પ્રમાણે કરીને તે યથાબદર આહારક
શરીર નામકર્મના પુદ્ગલોની નિર્જરા કરે છે.

કેવલિ સમુદ્ઘાત—જેને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થવાને માત્ર અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ
કાળ જે બાકી રહ્યો છે એવા કેવલી દ્વારા બાકીના વેદનીય, આયુ, નામ અને
ગોત્ર, આ કર્મશોનો નાશ કરવાને માટે જે સમુદ્ઘાત કરવામાં આવે છે, તે
સમુદ્ઘાતને કેવલિ સમુદ્ઘાત કહે છે. આ સમુદ્ઘાત વડે કેવલી બાકીનાં
વેદનીય આદિ કર્મપુદ્ગલોની નિર્જરા કરે છે, એમ સમજવું.

समुद्घातेषु षट् असंख्यातसामयिकाः, अन्त्यकेवलिसमुद्घातस्त्वष्टसामयिक इति । एते सप्ताऽपि समुद्घाताश्चतुर्विंशतिदण्डकेषु मनुष्याणामेव भवन्तीत्याह—
“मनुस्साणं सत्त” इत्यादि ॥ सू० ४७ ॥

पूर्वोक्तं समुद्घातादिकं वस्तु जिनैरभिहितम्, जिनाभिहितवस्तुनोऽन्यथा-
प्ररूपणे च प्रवचनबाह्यता समापत्ति, प्रवचनबाह्यानां मुख्याश्च निहवा इति तद्व-
क्तव्यतामाह—

मूलम्—समणस्स णं भगवओ सहावीरस्स तित्थंसि सत्त
पवयणनिण्हगा पणत्ता, तं जहा—बहुरया १ जीवपएसिया २
अवत्तिया ३ सामुच्छेइया ४ दोकिरिया ५ तेरासिया ६ अव-
द्धिया ७। एएसि णं सत्तण्हं पवयणनिण्हगाणं सत्त धम्माय-
रिया पणत्ता, तं जहा—जमाली १, तीसगुत्ते २ आसाढे ३
आसमित्ते ४ गंगे ५ छउल्लुए ६ गोढामाहिल्ले ७। एएसि णं
सत्ताण्हं पवयणनिण्हगाणं सत्त उप्पत्तिनगरा पणत्ता, तं
जहा—सावत्थी १ उत्तभपुरं २ सेयविया ३ मिहिल ४ सुल्लगा-
तीरं ५। पुरिमंताल ६ दसपुर ७ णिण्हगउप्पत्तिनगराइं ॥सू०४८॥

जानना चाहिये । इन सात समुद्घातों में से छह समुद्घात असं-
ख्यात समय के होते हैं । और केवल समुद्घात आठ समय का
होता है । ये सातों ही समुद्घात चतुर्विंशति दण्डकों में से केवल
मनुष्योंके ही होते हैं । इसी कारण “मनुस्साणं सत्त” ऐसा कहा है। सूत्र ४७॥

ये समुद्घात आदि वस्तुएँ केवली जिन भगवान्ने कही हैं अतः—
जो जिनेन्द्र प्रतिपादित वस्तुओं की प्ररूपणा अन्यथा रूप से करते हैं
वे प्रवचन से बाह्य हैं । इन प्रवचन से बाह्य रहे हुए मनुष्यों में मुख्य

आ सात समुद्घातोमांसा पडेला ६ समुद्घात असंख्यात समयना
डोय छे, परन्तु केवलि समुद्घात आठ समयना डोय छे. २४ इउकना एवे-
मांथी मात्र मनुष्योमां ७ आ साते सात समुद्घातोने सदभाव डोय छे. तेथी
७ सूत्रकरे “मनुस्साणं सत्त” आ प्रकारने सूत्रपाठ अही कही छे ॥सू ४७॥

आ समुद्घात आदि वस्तुओनी केवलि भगवाने प्ररूपणा करी छे ७
मनुष्यो जिनेन्द्र प्रतिपादित वस्तुओनी प्ररूपणा अन्यथा रूपे करे छे तेओ

छाया—श्रमणस्य खलु भगवतो महावीरस्य तीर्थे सप्त प्रवचननिहवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—बहुरताः १, जीवप्रदेशिकाः २, अवकाव्यिकाः ३, सामुच्छेदिकाः ४, द्वैक्रियाः ५, त्रैराशिकाः ६ अचद्विकाः ७। एतेषां खलु सप्तानां प्रवचननिहवानां सप्त धर्माचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जमालिः १, तिष्यगुप्तः २, आषाढः ३, अश्वमित्रः ४, गङ्गः ५, पडुल्लूः ६, गोण्टामाहिलः ७। एतेषां खलु सप्तानां प्रवचननिहवानां सप्तोत्पत्तिनगराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—श्रावस्ती १ ऋषमपुरं २ श्वेत्तिका ३ मिथिला ४ उश्लुकातीरम् ५। पुरिमताल ६ दशपुरं ७ निह्नोत्पत्तिनगराणि ॥ सू० ४८ ॥

टीका — 'समणस्स' इत्यादि—

प्रवचननिहवाः—प्रवचनं=जिनोक्तमागमं निह्वयते=अपलपन्ति विपरीततया प्ररुपयन्ति ये ते यथा—आगमस्यापलापनाः सप्त प्रज्ञप्ताः=ऋयिताः, तद्यथा—बहुरताः—उद्दुपु समयेषु वस्तुत्पत्तिर्नतु क्रियाध्यासिते एरुस्मिन् समये इति सिद्धान्ते-रताः=पक्ताः—बहुरताः, बहुभिरेव समयैः कार्यं निष्पद्यते नत्वेकेन समयेनेति

निह्वयजन है अतः अत्र सूत्रकार इनके विषय की वक्तव्यता का कथन करते हैं—“समणस्स णं भगवओ महावीरस्स—इत्यादि । सूत्र ४८ ॥

टीकार्थ—श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में सात प्रवचन निह्वय कहे गये हैं—जैसे—बहुरत १ जीव प्रदेशिक २ अवकाव्यिक ३ सामुच्छेदिक ४ द्वैक्रिय ५, त्रैराशिक ६ और अचद्विक ७, जिनोक्त आगम का जो अपलाप करते हैं—उसकी विपरीत रूप से प्ररूपणा करते हैं—ऐसे वे अर्थात् आगमापलापी जन निह्वय हैं, इनमें जो ऐसा मानते हैं कि बहुत समयों में ही कार्य निष्पन्न होता है एक समय में नहीं होता है इस तरह से कहने वाले जो जमालिमतानुसारी हैं—वे बहुरत हैं । जीव का

प्रवचनार्थी षाह्य गणाय छे जेवां प्रवचनषाह्य मनुष्येमां निह्वयेनी प्ररुपण्णु करे छे—“समणस्स णं भगवओ महावीरस्स” इत्यादि—(सू ४८)

टीकार्थ—श्रमण भगवान् महावीरना तीर्थंमां नीये प्रभाण्णु सात प्रवचन कइया छे—(१) बहुरत (२) जीवप्रदेशिक, (३) अव्यक्तिक, (४) सामुच्छेदिक, (५) द्वैक्रिय, (६) त्रैराशिक अने (७) अचद्विक. जिनोक्त आगमने जेओ अपलाप करे छे—तेनी विपरीत रूपे प्ररुपण्णु करे छे, जेवा आगमापलापी जेओने निह्वये कइ छे.

(१) बहुरत निह्वय—जेओ जेवु माने छे के धण्णु समयोमां कार्य निष्पन्न थाय छे—जेके समयमां कार्य निष्पन्न थतुं नथी, आ प्रकसरनी मान्यता धरावतारा जमालिना अनुयायीओने बहुरत निह्वय कइ छे.

वादिनो जमालिमतानुमारिणः ॥ १ ॥ जीवप्रदेशिकाः—जीवस्य प्रदेशः=चरमः प्रदेशो जीवत्वेनास्ति येषां ते जीवप्रदेशिकाः, एकेनापि प्रदेशेन न्यूनो जीवो ना भवति, अतो येनैकेन प्रदेशेन पूर्णः स जीवो भवति, स एवैकः प्रदेशो जीवो भवतीति चरमप्रदेशो जीवत्वप्ररूपिणस्तिष्यगुप्ताचार्यमतानुसारिणः ॥ २ ॥ अव्यक्तिकाः—‘न ज्ञायतेऽत्र कः संयतः को वाऽसंयतः इति—अव्यक्तम्—अस्फुटमेव विद्यते सर्वमभ्युपगमतो येषां ते तथा, संयतादिपरिज्ञाने सन्दिग्धबुद्ध्य आपाढ-शिष्याः ॥ ३ ॥ सामुच्छेदिकाः—उत्पत्त्यनन्तरं वस्तुनः सामस्त्येन प्रकर्षेण च छेदः—समुच्छेदो=विनाशः, तं ब्रुवन्तीति सामुच्छेदिकाः । सर्वं वस्तु क्षणिकमिति वादि-

चरम प्रदेश ही जीव है ऐसी जिनकी मान्यता है वे चरम प्रदेश को जीव मानने वाले जीवप्रदेशिक हैं । इनकी ऐसी मान्यता है कि एक भी प्रदेश से न्यून जीव जीव नहीं होता है, इसलिये जिस एक प्रदेशसे पूर्ण हुआ जीव जीव होता है, इस तरह चरमप्रदेश में जीवत्व की प्ररूपणा करने वाले तिष्य गुप्ताचार्य के मतानुयायी हैं । अव्यक्तिक—यहां यह कैसे जाना जासकता है कि यह संयत है और यह असंयत है, इसलिये यह सब अव्यक्त है, ऐसी संदिग्धशील मान्यता संयतादि के परिज्ञान में जिनकी हैं वे संदिग्धबुद्धिवाले आपाढाचार्य के मतानुयायी हैं । उत्पत्ति के अनन्तर ही वस्तु का विनाश सम्पूर्ण रूप से हो जाता है ऐसी जिनकी मान्यता है वे सामुच्छेदिक है अर्थात्

(२) लवप्रदेशिक निहव—लवने चरमप्रदेश न लव छे, जेवी जेमनी मान्यता छे जेवा चरमप्रदेशने न लव माननारा लोकने लवप्रदेशिक निहव कडे छे आ मतवादीजोनी जेवी मान्यता छे के जेक पक्ष प्रदेशधी न्यून लव लवर्प ढातो नथी. तेथी जेके जेक प्रदेशधी पूरुं डाय जेवा लवने लवर्प कही शक्य छे आ प्रकारे चरमप्रदेशमां चरमप्रदेशमां लवत्वनी प्ररूपणा करनारा तिष्यगुप्ताचार्यना मतने अनुसरनाराजोने लवप्रदेशिक निहव कडे छे.

(३) अव्यक्तिक—“अही” जे वात डेवी रीते लक्ष्मी शक्य के आ संयत छे जने आ असंयत छे, तेथी आ लधुं अव्यक्त छे” संयतादिना परिज्ञानना विषयमां, आ प्रकारनी सदिग्ध मान्यता जेजो धरावे छे तेमने अव्यक्तिक कडे छे आपाढाचार्यना मतने माननारा लोकने आ प्रकारनी सदिग्ध मनोदशावाणा छे.

(४) सामुच्छेदिक—जे वस्तुनी उत्पत्ति थाय छे, तेना संपूर्ण रूपे विनाश पक्ष थाय छे, जेटवे के समस्त वस्तुजो क्षणिक छे, आ प्रकारनी

नोऽश्वमित्रानुयायिन इति ॥ ४ ॥ द्वैक्रियाः—एकस्मिन् समये क्रियाद्वयस्यानु-
भवो भवतीतिवादिनो गङ्गाचार्यानुयायिनः ॥ ५ ॥ त्रैराशिकाः—त्रयश्च ते राशय-
श्चेति त्रिराशयः=जीवाजीवरूपाः, तान् अभ्युपगच्छन्ति ये ते त्रैराशिकाः, जीवा-
जीव नो जीवेति राशित्रयवादिनः षडुलूकापरनामकरोहगुप्तमतानुसारिणः
॥ ६ ॥ तथा—अबद्धिकाः—स्पृष्टं जीवेन कर्म न स्कन्धवन्धवद्बद्धमित्यवद्धं
तदस्ति अभ्युपगम्यन्वेन येषां ते—अबद्धिकाः, स्पृष्टकर्मविपाकप्ररूपका गोष्ठा-
माहिकमतानुसारिण इति ॥ ७ ॥ एषां प्रवचननिह्वानां धर्माचार्या जमालिप्रभृ-
तयो यथासंख्यमुन्नेयाः । एषां सप्तानां प्रवचननिह्वानां=प्रवचनापलापकानामु-

समस्त वस्तु क्षणिक हैं—ऐसा कहने वाले जो हैं वे अश्वमित्रानुयायी हैं ।

द्वैक्रिय—एक समय में क्रिया द्वय का अनुभव होता है ऐसा कहने वाले गङ्गाचार्य के अनुयायी हैं ।

त्रैराशिक—जीव, अजीव, और नो जीव नो अजीव इस प्रकार से तीन राशियाँ हैं, इन तीन राशियों को जो मानते हैं वे त्रैराशिक हैं । ये त्रैराशिक षडुलूक कि जिसका दूसरा नाम रोहगुप्त है के मतने अनुयायी हैं ।

अबद्धिक—जीव से स्पृष्ट हुआ कर्म स्कन्ध की तरह बद्ध नहीं होता है ऐसी उनकी मान्यता है वे अबद्धिक हैं । ये स्पृष्ट कर्म के विपाक के प्ररूपक होते हैं, और गोष्ठामाहिल के मत के अनुयायी होते हैं, इन प्रवचन निह्वानों के क्रमशः धर्माचार्य जमालि^१, तिष्यगुप्त^२, आपादाचार्य^३ अश्वमित्र^४ गङ्गाचार्य^५, षडुलूक-रोहगुप्त^६ गोष्ठामाहिल^७ हैं ।

मान्यता धरावनारा अश्वमित्रना अनुयायीओने आसुच्छेदिक निरूप ठडे छे.

(५) द्वैक्रिय निह्व—ओक समयमां जे क्रियाने अनुभव थाय छे, आ प्रकारनी मान्यता धरावनारा गङ्गाचार्यना अनुयायीओने द्वैक्रिय निह्व ठडे छे.

(६) त्रैराशिक—जव, अजव, अने नोजव नोजव आ प्रकारनी त्रय राशियो छे, ओवुं माननारा षडुलूकनुं पीगुं नाम रोहगुप्त पञ्च आप-
वामां आओं छे.

अबद्धिक—“ जव वडे स्पृष्ट थयेवुं कर्म स्कन्धनी जेम अद्ध होतुं नथी,” आ प्रकारनी जेमनी मान्यता छे तेमने अबद्धिक ठडे छे. तेओ स्पृष्ट कर्मना विपाकना प्ररूपके होय छे. गोष्ठामाहिलना अनुयायीओ आ प्रकारने मत धरावे छे.

आ आते प्रवचन निह्वाना धर्माचार्योना नाम अनुक्रमे आ प्रमाणे छे—(१) जमालि, (२) तिष्यगुप्त, (३) आपादाचार्य, (४) अश्वमित्र, (५)

स्पत्तिस्थानानि मेण श्रावस्त्यादीनि विज्ञेयानीति । एषां सप्त निह्वानां विषये विशेषजिज्ञासुभिरुत्तराध्ययनस्य तृतीयेऽध्ययने मत्कृतायां प्रियदर्शिन्यां व्याख्यायां द्रष्टव्यमिति ॥ सू० ४८ ॥

एते निह्वाः संसारे पर्यटन्तः सातासातभोगिनो भविष्यन्तीति सातासात-
स्वरूपमाह—

मूष-सायावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तविहे अणुभावे
पणत्ते, तं जहा-मणुन्ना सदा १, मणुन्ना रूवा २, जाव
मणुन्ना फासा ५ मणोसुहया ६ वइसुहया ७। असायावेयणि-
ज्जस्स णं कम्मस्स सत्तविहे अणुभावे पणत्ते, तं जहा-अम-
णुन्ना सदा १ जाव वइदुहया ७ ॥ सू० ४९ ॥

छाया—सातावेदनीयस्य खलु कर्मणः सप्तविधोऽनुभावः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-
मनोज्ञाः शब्दाः, मनोज्ञानि रूपाणि, यावत् मनोज्ञाः स्पर्शाः मनः सुखता वाक्सु-

हनती नगरी का नाम इस प्रकार से ही जन्मालि श्रावस्ती के, तिष्यगुप्त
रिषभपुरके, आषाढाचार्य-श्वेताम्बिकानगरी के, अश्वमित्र-मिथिला-
नगरी के, गङ्गाचार्य-उलुकातीर नगरी के, षड्बलुक-रोहगुप्त-अंतरंजिका
नगरीके गोष्ठामाहिल-इशपुर के निवासी हैं । इन सात निह्वों के
विषय में विशेष जिज्ञासुओं को उत्तराध्ययन के तृतीय अध्ययन पर
जो मेरे द्वारा प्रियदर्शिनी टीका लिखी गई है वह देखनी चाहिये ॥ सूत्र ४८ ॥

ये निह्व चतुर्गतिक संसार में परिभ्रमण करते हुए सातासात
को भोगने वाले होंगे—इसलिये अब सूत्रकार सातासात के स्वरूप

गंगाचार्य, (६) षड्बलुक (रोहगुप्त) अने (७) गोष्ठामाहिल. आ धर्माचार्योनी
नगरीओनां नाम नीचे प्रमाणे समझवा - जन्मालि श्रावस्तीमां, तिष्यगुप्त
रिषभपुरमां, आषाढाचार्य श्वेताम्बिका नगरीमां, अश्वमित्र मिथिला नगरीमां,
गंगाचार्य उलुकातीर नगरीमां, षड्बलुक-रोहगुप्त अंतरंजिका नगरीमां अने
गोष्ठामाहिल इशपुर नगरमां यद्य गथा इता. आ साते निह्वो विषे वधु
माहिती भेजववानी धरुछावाणा पाठकोअे उत्तराध्ययन सूत्रना त्रीज्ज अध्ययन
पर भारा द्वारा लभायेती प्रियदर्शिनी टीका वांसी जपी. ॥ सू ४८ ॥

उपर्युक्त निह्वो चतुर्गतिक संसारमां परिभ्रमण करतां यथासातासातने
लोगवशे, ते कारणे इवे सूत्रकार सातासातना स्वरूपनी प्ररूपणा करे छे—

સ્વતા । અસાતાવેદનીયસ્ય સ્વલુ કર્મણઃ સપ્તવિધોઽનુભાવઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તપથા-
અમનોજ્ઞાઃ શબ્દા યાવદ્ વાગ્દુઃસ્વતા ॥ સૂ૦ ૪૯ ॥

ટીકા—‘ સાયાવેયણિજ્જસ્સ ’ ઇત્યાદિ—

સાતાવેદનીયસ્ય=સુખકારણભૂતસ્ય કર્મણઃ સપ્તપ્રકારકઃ અનુભાવઃ=વિપાક
ઉદયો રસ ઇતિ યાવત્ પ્રજ્ઞપ્તઃ=પરુપિતઃ, તથયા-મનોજ્ઞાઃ શબ્દા ઇત્યાદિ । મનો-
જ્ઞત્વવિશિષ્ટાઃ શબ્દરૂપરસગન્ધરસ્પર્શા ઇતિ પચ્ચ । મનઃસુખતા=મનસઃ સુખરૂપત્વં,
વાક્સુખતા=વાચઃ સુખરૂપત્વં ચેતિ દ્વી, ઇતિ સપ્ત સાતાનુભાવાઃ । ‘ સુહયા ’
ઇત્યસ્ય ‘ શુભતા ’ ઇતિચ્છાયાપક્ષે-મનસઃ શુભરૂપત્વં વાચઃશુભરૂપસ્વમિતિ ।
પ્રત્યક્ષે સાતાનુભાવકારણત્વાત્ સાતાનુભાવસ્ત્વં બોધ્યમિતિ । પ્રત્યક્ષેપરીત્યેન અસા-
તાવેદનીયકર્મણોઽપિ સપ્તપ્રકારો વિવરણીય ઇતિ ॥ સૂ૦ ૪૯ ॥

કા કથન કરતેહૈ—‘ સાયાવેયણિજ્જસ્સ ણં કમ્મસ્સ—ઇત્યાદિ । સૂ૦ ૪૯ ॥

ટીકાર્થ—સાતા વેદનીય કર્મ કા અનુભાવ સાત પ્રકાર કા કહા ગયાહૈ—
અર્થાત્ સુખ કે કારણ ભૂત કર્મ કા વિપાક-ઉદયરસ-સાત પ્રકાર કા
કહા ગયા હૈ, જેસે-મનોજ્ઞ શબ્દ યાવત્-મનોજ્ઞ રૂપ, મનોજ્ઞ રસ, મનોજ્ઞ
ગન્ધ, ઓર મનોજ્ઞ સ્પર્શ, એવં મનકી સુખરૂપતા ઓર વચન કી સુખ-
રૂપતા “ સુહયા ” કી સંસ્કૃતચ્છાયા “ શુભતા ” એસી મી હોતી હૈ—
હમ પક્ષ મેં “ મન કી શુભરૂપતા ઓર વચન કી શુભરૂપતા એસા
અર્થ હોતા હૈ । હમ પક્ષ મેં સાતા કા અનુભાવ કા કારણ હોને સે
શુભતા મેં સાતાનુભાવના જાનની ચાહિયે, હમસે વિપરીત જો અસા-
તાવેદનીય કર્મ હૈ ઉચ્ચકા અનુભાવ (કર્મોં કા ફલ ભોગને કી શક્તિ)
મી સાત પ્રકાર કી હૈ, ઓર વહ સપ્ત પ્રકારતા પૂર્વોક્ત રૂપ સે વિપરીત
રૂપ મેં કથિત કર લેની ચાહિયે ॥ સૂ૦ ૪૯ ॥

“ સાયાવેયણિજ્જસ્સ ણં કમ્મસ્સ ” ઇત્યાદિ—(સૂ-૪૯)

ટીકાર્થ—સાતાવેદનીય કર્મનો અનુભાવ સાત પ્રકારનો કહ્યો છે. એટલે કે સુખના
કારણભૂત કર્મનો વિપાક-ઉદયરસ-સાત પ્રકારનો કહ્યો છે—(૧) મનોજ્ઞ શબ્દ,
(૨) મનોજ્ઞ રૂપ, (૩) મનોજ્ઞ રસ, (૪) મનોજ્ઞ ગન્ધ, (૫) મનોજ્ઞ સ્પર્શ,
(૬) મનની સુખરૂપતા અને (૭) વચનની સુખરૂપતા. “ સુહયા ”ની સંસ્કૃત
છાયા “ શુભતા ” પણ થાય છે. આ સંસ્કૃત છાયાની અપેક્ષાએ છટ્ટો અને
સાતમો પ્રકાર મનની શુભરૂપતા અને વચનની શુભરૂપતા થાય છે આ પ્રકારના
અર્થની દૃષ્ટિએ સાતાના અનુભાવમાં કારણભૂત હોવાથી શુભતામાં સાતાનુભાવતા
સમજવી. સાતાવેદનીય કર્મ કરતાં વિપરીત એવું જે અસાતાવેદનીય કર્મ
છે તેનો અનુભવ (કર્મોંનું ફલ ભોગવવાની શક્તિ) પણ સાત પ્રકારનો સમ-
જવો—(૧) અમનોજ્ઞ શબ્દ, આદિ સાત પ્રકારો પૂર્વોક્ત પ્રકારો કરતાં
વિપરીત રૂપે અહીં દર્શવા બેઠાં ॥ સૂ ૪૯ ॥

અનન્તરં સાતાસાતાનુભાવો પ્રરૂપિતૌ । સાતાસાતવન્તથ દેવા इति तद्विशेषान् ज्योतिष्कान् प्ररूपयति —

મૂલમ્—મહાળક્ષ્મણે સત્તતારે પળ્લણ્ણે । અભિર્જિયાવર્જિયા સત્ત નક્ષત્રા પુઠ્ઠવાદારિયા પળ્લણ્ણા, તં જહા—અભિર્જિ ૧ સવળ્ણો ૨ ધનિષ્ઠા ૩ સયમિસ્યા ૪ પુઠ્ઠવાભદ્રવયા ૫ ઉત્તરાભદ્રવયા ૬ રેવર્જિ ૭ । અસ્મિણિયાર્જિયા ણં સત્ત ણક્ષત્રા દાહિણદારિયા પળ્લણ્ણા, તં જહા—અસ્મિણી ૧ ભરણી ૨ કિત્તિયા ૩ રોહિણી ૪ મિગસિરે ૫ અહ્વા ૬ પુળ્લવસૂ ૮ । પુસ્સાર્જિયા ણં સત્ત ણક્ષત્રા અવરદારિયા પળ્લણ્ણા, તં જહા—પુસ્સો ૧ આસિલેસા ૨ મઘા ૩ પુઠ્ઠવાફલ્ગુણી ૪ ઉત્તરાફલ્ગુણી ૫ હૃત્થો ૬ ચિત્તા ૭ । સાર્જિયાર્જિયા ણં સત્ત ણક્ષત્રા ઉત્તરદારિયા પળ્લણ્ણા, તં જહા—સાર્જિ ૧ વિસાહા ૨ અણુરાહા ૩ જેટ્ટા ૪ મૂલો ૫ પુઠ્ઠવાસાહા ૬ ઉત્તરાસાહા ૭ ॥ સૂ ૫૦ ॥

છાયા—મર્ગાનક્ષત્રં સપ્તતારં પ્રજ્ઞપ્તમ્ । અભિજિતાદિકાનિ સપ્ત નક્ષત્રાણિ પૂર્વદારિકાણિ પ્રજ્ઞપ્તાનિ, તદ્ધથા—અભિજિત્ ૧, શ્રવળ્ણઃ ૨ ધનિષ્ઠા ૩ શતભિષ્ક

સાતા ઓર અક્ષાતાત્રાલે દેવ હોતે હિં, અતઃ અવ સૂત્રકાર ડન દેવોં કે ઘીચ મેં સે જ્યોતિષ્ક દેવોં કી પ્રરૂપણા કરતે હિં—

“ મહા ણક્ષત્રે સત્તતારે પળ્લણ્ણે—ઈત્યાદિ ॥ સૂત્ર ૫૦ ॥

સૂત્રાર્થ—મઘા નક્ષત્ર સાત તારોં વાલા કહા ગયા હૈ, અભિજિત્ આદિ સાત નક્ષત્ર પૂર્વ દારિકા કહે ગયે હિં, વે અભિજિત્ આદિ સાત નક્ષત્ર હસ પ્રકાર સે હિં—અભિજિત્ ૧ શ્રવળ્ણ ૨ ધનિષ્ઠા ૩ શતભિષ્ક ૪

સાતા અને અસાતાવાળા દેવો હોય છે, તેથી હવે સૂત્રકાર તે દેવોના એક પ્રકાર રૂપ બે જ્યોતિષ્કદેવો છે, તેમની પ્રરૂપણા કરે છે—

“ મહાળક્ષ્મણે સત્તતારે પળ્લણ્ણે ’ ઇત્યાદિ—(સૂ ૫૦)

સૂત્રાર્થ—મઘા નક્ષત્ર સાત તારવાળું છે અભિજિત્ આદિ સાત નક્ષત્રોને પૂર્વ દારિકા કહ્યા છે. તે સાત નક્ષત્રોનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) અભિજિત્, (૨) શ્રવળ્ણ, (૩) ધનિષ્ઠા, (૪) શતભિષ્ક, (૫) પૂર્વ ભાદ્રપદા, (૬) ઉત્તર ભાદ્રપદા, (૭) રેવતી.

४ पूर्वभाद्रपदा ५ उत्तरभाद्रपदा ६ रेवती ७ अश्विन्यादिकानि सप्त नक्षत्राणि दक्षिणद्वारिकाणि मङ्गलानि, तद्यथा—अश्विनी १ भरणी २ कृत्तिका ३ रोहिणी ४ मृगशिराः ५ आर्द्रा ६ पुनर्वसु ७ पुष्यादिकानि खलु सप्त नक्षत्राणि अपरद्वारिकाणि मङ्गलानि, तद्यथा—पुष्यः १ अश्लेषा २ मघा ३ पूर्वाफाल्गुनी ४ उत्तराफाल्गुनी ५ हस्तः ६ चित्रा ७ स्वात्यादिकानि खलु सप्त नक्षत्राणि उत्तरद्वारिकाणि मङ्गलानि, तद्यथा—स्वातिः १ विशाखा २ अनुराधा ३ ज्येष्ठा ४ मूल ५ पूर्वाषाढा ६ उत्तराषाढा ७ ॥ सू० ५० ॥

टीका—‘महाणक्षत्रे’ इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा । नवरं—पूर्वद्वारिकाणि—पूर्वं च तद्द्वारं पूर्वद्वारं, तदस्ति येषां तानि तथोक्तानि । पूर्वस्यां दिशि येषु सत्सु गच्छतः शुभं भवतीति । एवं दक्षिणद्वारिकाणि अपरद्वारिकाणि=पश्चिमद्वारिकाणि च बोध्यानि । अत्र पञ्च

पूर्वभाद्रपदा ५, उत्तर भाद्रपदा ६ और रेवती ७, अश्विनी आदि सात नक्षत्र दक्षिण द्वारिक कहे गये हैं, वे इस प्रकार है—अश्विनी १ भरणी २ कृत्तिका ३ रोहिणी ४ मृगशिरा ५, आर्द्रा ६ और पुनर्वसु ७, पुष्यादिक सात नक्षत्र अपर (पश्चिम) द्वारिक कहे गये हैं—जैसे—पुष्य १, आश्लेषा २ मघा ३ पूर्वाफाल्गुनी ४ उत्तराफाल्गुनी ५ हस्त ६ और चित्रा ७. स्वात्यादिक सात नक्षत्र उत्तर द्वारिक कहे गये हैं—जैसे—स्वाति १, विशाखा २, अनुराधा ३, ज्येष्ठा ४ मूल ५ पूर्वाषाढा ६ और उत्तराषाढा ७, पूर्व-पूर्वदिशा-रूप द्वार हैं जिनका वे पूर्वद्वारिक है । जब ये अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा में होते हैं तब उस समय में जाने वाले को लाभ की प्राप्ति होती है, इसी प्रकार

नीचेना सात नक्षत्रोने दक्षिण द्वारिक कहे छे—(१) अश्विनी, (२) भरणी (३) कृत्तिका, (४) रोहिणी, (५) मृगशीर्ष, (६) आर्द्रा, अने (७) पुनर्वसु. नीचेना सात नक्षत्रोने पश्चिम द्वारिक कहे छे—(१) पुष्य, (२) अश्लेषा, (३) मघा, (४) पूर्वा फाल्गुनी, (५) उत्तरा फाल्गुनी, (६) हस्त अने (७) चित्रा.

नीचेना सात नक्षत्रोने उत्तर द्वारिक कहे छे—(१) स्वाति, (२) विशाखा, (३) अनुराधा, (४) ज्येष्ठ, (५) मूल, (६) पूर्वाषाढा अने (७) उत्तराषाढा. पूर्व दिशा रूप नेमनुं द्वार छे, अेषां नक्षत्रोने पूर्वद्वारिक कहे छे ज्यारे आ अभिजित् आदि सात नक्षत्रो पूर्व दिशाभां डोय छे, त्यारे जनारने लाभनी प्राप्ति थाय छे. अेअ प्रमाणे दक्षिण द्वारिक, पश्चिम द्वारिक अने उत्तर द्वारिक नक्षत्रोना विषे पञ्च समजनुं

मतानि सन्ति । तदुक्तम्--“ तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पणत्ताओ ।—

—तत्थेगे एवमाहंसु—कत्तियाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पणत्ता १। एगे पुण एवमाहंसु—महादिया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पणत्ता २। एगे पुण एवमाहंसु—धणिह्वाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पणत्ता ३। एगे पुण एवमाहंसु—अस्सिणाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पणत्ता ४। एगे पुण एवमाहंसु—भरणीआइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पणत्ता ५। वयं पुण एवं वयामो—अभि-इयाइयाणं सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पणत्ता ६ ॥ ”

छाया—तत्र खलु इमाः पञ्च प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः । तत्रैके पुनरेवमाहुः—कृत्तिकादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि १। एके पुनरेवमाहुः—मघादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि । एके पुनरेवमाहुः—धनिष्ठादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि ३। एके पुनरेवमाहुः—अश्विन्यादीनि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि ४। एके पुनरेवमाहुः—भरण्यादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि ५। वयं पुनरेवं वदामः—अभिजिदादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि ६ ॥ इति ।

से दक्षिण द्वारिक, अपर द्वारिक—पश्चिम द्वारिक—और उत्तर द्वारिक नक्षत्रों के सम्बन्धमें भी जानना चाहिये यहाँ पांच मत हैं—कहा भी है—

“ तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पणत्ताओ ” इत्यादि । कोई एक ऐसा कहते हैं—कृत्तिका आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वारिक कहे गये हैं ? कोई एक ऐसा कहते हैं—मघा आदिक सात नक्षत्र पूर्व द्वारिक गये हैं २ कितनेक ऐसा कहते हैं—धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र पूर्व द्वारिक हैं ३ कितनेक ऐसा कहते हैं—अश्विनी आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वारिक हैं ४ ।

कितनेक ऐसा कहते हैं—भरणी आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वारिक कहे गये हैं । परन्तु हम ऐसा कहते हैं कि अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वारिक हैं ”

आ नक्षत्रोना विषयमा जुहा जुहा पांच मत प्रयत्नित छे. कथुं पणु छे के—“ तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पणत्ताओ ” इत्यादि—ओठ मान्यता प्रमाणे कृत्तिका आदि सात नक्षत्रोने पूर्वद्वारिक कइया छे भीलु मान्यता प्रमाणे मघा आदि सात नक्षत्रोने पूर्वद्वारिक कइया छे. त्रीलु मान्यता प्रमाणे धनिष्ठा आदि सात नक्षत्रोने पूर्वद्वारिक कइया छे चौथी मान्यता प्रमाणे अश्विनी आदि सात नक्षत्रोने पूर्वद्वारिक कइया छे. पांचमी मान्यता प्रमाणे भरणी आदि सात नक्षत्रोने पूर्वद्वारिक कइया छे.

सर्वेष्वपि पक्षेषु पूर्वद्वारिकानक्षत्रानन्तरं सप्त सप्त कृत्वा दक्षिणद्वारिकादीनि नक्षत्राण्यपि बोधयानि । अत्र तु षष्ठं मतमाश्रित्य मूत्राणि बोधयानि । लोके तु प्रथममतमाश्रित्यैतदुच्यते, तथाहि—

“ दहनाद्य (कृत्तिकाद्य) मृक्ष (नक्षत्र) सप्तकमैत्र्यां (पूर्वस्यां) तु मघादिकं च याम्या-
याम् (दक्षिणस्याम्)

अपरस्यां (पश्चिमायां) मैत्रादिक (अनुराधादिक) मथसौम्यां (उत्तरस्यां) दिशि धनिष्ठादि ॥ १ ॥

भवति गमने नराणामभिमुखमुपसर्पतां शुभप्राप्तिः ।

अथ पूर्वामृतमत्ररुमुद्दिष्टं मन्वममुदीच्याम् (उत्तरस्याम्) ॥ २ ॥

अत्रान् भी पञ्चोर्मि पूर्वद्वारिक नक्षत्रोके अनन्तरं सात २ करके दक्षिण द्वारिक आदि नक्षत्र भी जानना चाहिये ।

यहां तो छठे मतको आश्रित करके ये सूत्र कहे गये हैं, लोकमें प्रथम मतको आश्रित करके ऐसा कहा जाता है—जैसे—

“ दहनाद्य (कृत्तिकाद्य) मृक्ष ” इत्यादि ।

(दहनाद्यमृक्षसप्तकं) = कृत्तिकादि सात नक्षत्र (ऐत्र्यां) पूर्व दिशाके हैं, और मघादि सात नक्षत्र (याम्यायां) दक्षिण दिशाके हैं, (अपरस्यां) पश्चिम दिशामें (मैत्र्यादिकं) अनुराधादि सात नक्षत्र हैं, तथा (सौम्यां दिशि) उत्तर दिशामें धनिष्ठादि सात नक्षत्र हैं इस प्रकार अभिजित् सहित २८ नक्षत्रोंको कहकर भागनेय कोणसे वायव्यकोण तक एक लकीर खींच देना उसी रेखाको परिघट्टण कहते हैं । (नराणामभिमुखमुपसर्पतां) साधने वाले नक्षत्रोंमें जानेवाले मनुष्य की (गमने) यात्रामें शुभ फल प्राप्ति होती है ॥

परन्तु अत्रे अेषु क्लीओ धीओ डे “ अभिजित् आदि सात नक्षत्रो पूर्वद्वारिक छे ”

अथा पञ्चोनी मान्यता प्रभाषे पूर्वद्वारिक नक्षत्रो पछी दक्षिणद्वारिक आदि सात सप्त नक्षत्रोनुं कथन पषु अछीं करुनुं लेधओ. हुवे छट्ठा मतने आश्रय लधने नीचेतां सूत्रोनुं कथन करवाभां आवे छे—

लोकमां प्रथम मतने आधारे अेषुं कडेवाभां आवे छे डे—

“ दहनाद्य (कृत्तिकाद्य) मृक्ष ” इत्यादि—

(दहनाद्यमृक्ष सप्तकं) = कृत्तिकादि सात नक्षत्र (ऐत्र्यां) पूर्वदिशाना छे, मघादि सात नक्षत्रो (याम्यायां) दक्षिण दिशाना छे, अनुराधादि सात नक्षत्रो (अपरस्यां) पश्चिम दिशाना छे अने धनिष्ठादि सात नक्षत्रो (सौम्यां दिशि) उत्तर दिशाना आ प्रभाषे अभिजित् आदि २८ नक्षत्रोनुं अछी कथन करवाभां आव्युं छे. हुवे अग्नि षोडशी शत्रु करीने वायव्य षोडशी सुधी ले ओक रेखा होरवाभां आवे, तो ते रेखाने ‘ परिघट्टण ’ कडे छे. (नराणामभिमुखमुपसर्पतां)

पूर्वायामौदीच्यां-प्रातीच्यां (पश्चिमायां) दक्षिणामिधानायाम् ।

यास्यां (दाक्षिणस्यां) तु भवति मध्यमपरस्यां (पश्चिमायां) यातुराशायाम् ॥३॥

येऽतीत्य यान्ति मूढाः परिघाख्यामनिलदहनदिग्ग्रेखाम् ।

निपतन्ति तेऽचिरादपि दुर्व्यसने निष्फलारम्भाः ॥ ४ ॥ ” इति ॥मू०५१॥

अब मध्यम फलके प्रकार कहते हैं, (पूर्वमृक्षसप्तकं) पूर्व दिशामें जो सात नक्षत्र कहे गये हैं वे नक्षत्र (उदीच्यां मध्यमम्) उत्तर दिशाकी यात्रामें मध्यम हैं । इसी प्रकार (पूर्वायामौदीच्यां) उत्तर दिशावाले नक्षत्रों में पूर्व तरफ जाना मध्यम है । तथा दक्षिण दिशावाले नक्षत्र पश्चिम दिशाके लिए और पश्चिम दिशावाले नक्षत्र दक्षिण दिशाके लिये मध्यम होने हैं (येऽनीत्य यान्ति मूढा .. परिघाख्याम्-अनिलदहनदिग्ग्रेखां) जो पूर्व वायव्यकोणसे आग्नेयकोण तक गई हुई परिघ नामकी रेखाको लांघकर यात्रा करते हैं वे (अचिरादपि) शीघ्र ही दुर्व्यसन (कष्ट) में पडते हैं और जिस कार्यके लिए जाते हैं उनको उस कार्यमें निष्फलता मिलती है । स्पष्टताके लिये टीका में दिया हुआ चक्र देखिए—

इसका सारांश संस्कृतश्लोक ऐसा है—

पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु सप्तसप्तानलक्षतः ।

वायव्याऽग्नेयदिक् संस्थं परिघं नैव लङ्घयेत् ॥

सामेना नक्षत्रोमां जनारा भनुष्योनी (गमने) यात्रामां शुभइलनी प्राप्ति थाय छे । उवे मध्यम इलना प्रकारे कडेवामां आवे छे—(पूर्वमृक्षसप्तकं)(१) पूर्व-दिशाभां जे सात नक्षत्रो कहां छे, तेओ (उदीच्यां मध्यमम्) उत्तर दिशानी यात्रामा मध्यम छे ओज प्रभाणे (पूर्वायामौदीच्यां) (२) उत्तर दिशावाला नक्षत्रोमां पूर्व तरफतुं गमन मध्यम इलदायी छे (३) दक्षिण दिशानां नक्षत्रो पश्चिम दिशा भाटे अने पश्चिम दिशानां नक्षत्रो दक्षिण भाटे मध्यम छे (येऽनीत्ययान्ति मूढा परिघाख्याम्-अनिलदहनदिग्ग्रेखां) जे मूअ वायव्य कोणमाथी अशिकेण सुधी दोरेकी परिघ नामनी रेखाने ओणगीने मुसाक्षरी करे छे, तेओ (अचिरादपि) तुरत ज मुशेकीमां आवी पडे छे तेओ जे कार्यने भाटे जतां डाय छे ते कार्यमां निष्फलता ज प्राप्त करे छे

आ कथननी स्पष्टताने भाटे संस्कृत टीकांमां आकृति आपवामां आवी छे—

आ आकृतिने लावार्थ अतावतो संस्कृत श्लोक आ प्रभाणे छे—

“ पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु सप्तसप्तानलक्षतः ।

वायव्याग्नेय दिक् संस्थं परिघं नैवलङ्घयेत् ”

દેવાધિકારાત્સમ્પતિ દેવનિવાસમૂતાન્ કૂટાન્ પ્રહુપયતિ—

મૂલમ્—જંબુદ્વીવે દીવે સોમણસે વક્ષારપઞ્ચણ સત્ત કૂડા
પણ્ણત્તા, તં જહા—સિદ્ધે ૧ સોમણસે ૨ તહ બોદ્ધવ્વે મંગલાવ-
ર્ઠ્ઠકૂડે ૩। દેવકુરુ ૪ વિમલ ૫ કંચણ ૬ વિસિટ્ઠકૂડે ૮ ય
બોદ્ધવ્વે ॥ ૧ ॥ જંબુદ્વીવે દીવે ગંધમાયણે વક્ષારપઞ્ચણ સત્ત-
કૂડા પણ્ણત્તા, તં જહા—સિદ્ધે ય ગંધમાયણ, બોદ્ધવ્વે ગંધિલા-
વર્ઠ્ઠકૂડે । ઉત્તરકુરુ ફલિહે, લોહિયવલ આણંદણે ચેવ ॥૧॥સૂ૦૫૧॥

છાયા—જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે સૌમનસે વક્ષસ્કાર પર્વતે સપ્ત કૂટાનિ પ્રજ્ઞપ્તાનિ,
તથથા—સિદ્ધં સૌમનસં તથા બોદ્ધવ્યં મહ્ગલાવતીકૂટમ્ । દેવકુરુ વિમલં કાશ્ચનં
ત્રિશિષ્ટકૂટં ચ બોદ્ધવ્યમ્ ॥ ૧ ॥ જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે ગન્ધમાદને વક્ષસ્કારપર્વતે સપ્ત
કૂટાનિ પ્રજ્ઞપ્તાનિ, તથથા—સિદ્ધં ચ ગન્ધમાદનં બોદ્ધવ્યં ગન્ધિલાવતીકૂટમ્ । ઉત્તર
કુરુ સ્ફાટિકં લોહિતાક્ષમ્ આનન્દન ચૈવ ॥ ૧ ॥ સૂ૦ ૫૧ ॥

ટીકા—‘ જંબુદ્વીવે દીવે ’ इत्यादि—

જમ્બૂદ્વીપાભિધદ્વીપસ્યે દેવકુરુણામપેક્ષયા પૂર્વદિગ્વર્તિનિ સૌમનસે ગજદન્તા-

અર્થાત્ કૃત્તિકાદિ સાત સાત નક્ષત્ર ક્રમસે પૂર્વાદિ ચારો દિશા-
ર્થોમ્ લિલ્લકર આગ્નેય કોણસે વાયવ્ય કોણ તક રેલા સ્ત્રીંષ દેની ઉસે
પરિઘદ્વંડ સમન્ત કર અપને અપને ભાગવાલે ૧૪, ૧૪ નક્ષત્રોમ્ ઉસી
ઉસી ભાગમ્ ફિરના દ્વંડકો લાંચકર કમ્પીમ્પી યાત્રા નહીં કરના ॥સૂત્ર૫૦॥

દેવાધિકારકો લેકર અથ સૂત્રકાર દેવ નિવાસમૂત કૂટોંકી પ્રહુ
પણા કરતેહે—જંબુદ્વીવે દીવે સોમણસે વક્ષારપઞ્ચણ—इत्यादि ॥સૂ૦૫૧॥

જમ્બૂદ્વીપ નામકે દ્વીપમ્ સ્થિત દેવકુરુઓંકી અપેક્ષા પૂર્વ દિગ્વર્તી

કૃતિકાદિ સાત સાત નક્ષત્રો અનુક્રમે ચારે દિશાઓમાં લખવા જોઈએ.
ત્યારબાદ અગ્નિકોણથી વાયવ્ય કોણ સુધી એક રેખા દોરવી તે રેખાને પરિઘ-
દ્વંડ સમજવો. આ પરિઘદ્વંડથી આકૃતિના બે ભાગ પડી જાય છે. તે દરેક
ભાગમાં ૧૪-૧૪ નક્ષત્રો છે. આ ૧૪ નક્ષત્રવાળા ભાગમાં કુરુઓંમાં વાંધા નથી
પણ પરિઘદ્વંડને ઓળંગીને કદી પણ મુસાફરી કરવી નહીં. ॥ સૂ. ૫૦ ॥

દેવાધિકારની પ્રશ્નણા ચાલી રહી છે, તેથી હવે સૂત્રકાર દેવનિવાસ-ભૂત
કૂટોની પ્રશ્નણા કરે છે— ‘જંબુદ્વીવે દીવે સોમણસે વક્ષારપઞ્ચણ’ इत्यादि—(સૂ. ૫૧)

જમ્બૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં આવેલા દેવકુરુઓની અપેક્ષાએ પૂર્વ દિશાના

कारे वक्षस्कारपर्वते सप्त कूटानि प्रज्ञप्तानि, तथा-सिद्धं-सिद्धानां देवविशेषाणां निवासोपलक्षितं मेरु प्रत्यासन्नं कूटम् १। सौमनसं-सौमनसनामकतदधिष्ठातृ-देवभवनोपलक्षितं कूटम् २। मङ्गलावतीकूटम्-मङ्गलावती विजयनामकदेवाधिष्ठातृ कूटम् ३। देवकुरु-देवकुरुनामक देवाधिष्ठातृ कूटम् ४। विमलं=वत्सा देवी-निवासोपलक्षितं कूटम् ५। काञ्चनं=वत्समित्रादेवी निवासोपलक्षितं कूटम् ६। विशिष्टकूटम्-विशिष्टः=द्वीपकुमाराणामुत्तरदिग्गन्धः, तन्निवासोपलक्षितं कूटम् ७ इति । तथा-जम्बूद्वीपस्थे उत्तरकुर्णामपेक्षया पश्चिमदिशिस्थिते गन्धमादनना-

सौमनस वनमें स्थित गजदन्ताकार वक्षस्कार पर्वत पर सात कूट कहे गये हैं । जैसे-सिद्ध कूट १ ।

यह कूट मेरु पर्वतके समीप है, और देवविशेषरूप सिद्धोंका निवास स्थान है । सौमनस कूट २-इस कूटका अधिष्ठाता सौमनस नामका देव है, और के इस पर भवन बने हुए हैं-इसी कारण इसका नाम सौमनस कूट है, मङ्गलावती कूट ३ यह कूट मङ्गलावती विजय नामक देवसे अधिष्ठित है-इस कारण इसका नाम मङ्गलावती कूट हुआ है । देवकुरु नामक देवसे अधिष्ठित जो कूट है वह देवकुरु कूट है ४ वत्सादेवी के निवाससे उपलक्षित जो कूट है वह विमलकूट है ५ काञ्चन कूट-यह वत्समित्रा देवीके निवाससे युक्त है ६ द्वीप कुमारोंके उत्तर दिशाका जो इन्द्र है, उसका नाम विशिष्ट है इसके निवाससे उपलक्षित जो कूट है वह विशिष्ट कूट है ७ ।

तथा जम्बूद्वीपमें स्थित जो देवकुरु है उन देवकुरुओंकी अपेक्षा पश्चिम दिशामें स्थित जो गन्धमादन पर्वत है उस पर्वत पर गजदन्तके

सौमनस वनमां जे गजदन्ताकार वक्षस्कार पर्वत छे, ते पर्वत पर सात कूट छे. तेमनां नाम—(१) सिद्धकूट-आ कूट मेरु पर्वतनी पासे छे, अने देव विशेष रूप सिद्धोनुं निवासस्थान छे (२) सौमनसकूट-आ कूटने अधिष्ठाता सौमनस नामने देव छे, अने आ कूट पर तेना भवन छे (३) मङ्गलावती कूट-मङ्गलावती विजय नामने देव आ कूटने अधिष्ठाता होवाथी, तेनुं नाम मङ्गलावती कूट पड्युं छे. (४) देवकुरु कूट-देवकुरु-देवकुरु नामना देवथी अधिष्ठित जे कूट छे तेने देवकुरु कूट कहे छे (५) वत्सादेवी जे कूटमां निवास करे छे, ते कूटनुं नाम विमलकूट छे (६) वत्समित्रा देवी जयां निवास करे छे ते कूटने काञ्चनकूट कहे छे. (७) द्वीपकुमारोना उत्तर दिशाने जे विशिष्ट नामने इन्द्र छे तेनुं निवासस्थान जे कूटमां छे, ते कूटनुं नाम विशिष्ट कूट छे.

तथा जम्बूद्वीपमां जे देवकुरु छे, ते देवकुरुओंनी पश्चिम दिशामां जे गन्धमादन पर्वत छे, ते पर्वतनी उपर जे गजदन्तना आकारने ओक वक्ष-

मके गजदन्ताकारकवक्षस्कारपर्वते सप्त कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सिद्धं=सिद्ध-
 देवाधिष्ठितं मेरु प्रत्यासन्नं कूटम् १। गन्धमादनं=गन्धमादनदेवनिवासभूतं
 कूटम् २। गन्धिलावतीकूटम्=गन्धिलावतीविजयनामकदेवाधिष्ठितं कूटम् ३।
 उत्तरकुरु=उत्तरकुरुनामक देवाधिष्ठितं कूटम् ४। स्फटिकम्=अधोलोकनिवासि
 भोगङ्करानामकदिककुमारीनिवासयुक्तं कूटम् ५। लोहिताक्षम्=अधोलोकनिवासि
 भोगवतीनामक दिक्कुमारी निवासयुक्त कूटम् ६। आनन्दनम्=आनन्दननामक
 देवाधिष्ठितं कूटम् ७। इति ॥ सू० ५१ ॥

कूटस्थितपुष्करिणी जले द्वीन्द्रिया अपि भवन्तीति द्वीन्द्रियसूत्रमाह—

मूलम्-त्रेद्विद्याणं सत्त जाइकुलकोडि जोणीपमुहसयस-
 हस्सा पन्नत्ता ॥ सू० ५२ ॥

आकारका एक वक्षस्कार पर्वत है उस पर्वत पर सात कूट कहे गये
 हैं—जैसे—सिद्ध कूट यह कूट मेरुके निकट है, और सिद्ध देवसे अधि-
 ष्ठित है गन्धमादक २—यह कूट गन्धमादन देवका निवासभूत है।

गन्धिलावती कूट ३—यह कूट गन्धिलावती विजय नामके देवसे
 अधिष्ठित है उत्तरकुरु कूट ४. यह कूट उत्तर कुरु नामक देवसे अधि-
 ष्ठित है, स्फटिक कूट ५ अधोलोकमें रहनेवाली जो भोगङ्करा नामकी
 दिक्कुमारी है, उसके निवाससे युक्त यह कूट है, लोहिताक्ष कूट ६
 अधोलोकमें रहनेवाली जो भोगवती नामकी दिक्कुमारी है, उसके
 निवाससे युक्त यह कूट है आनन्दन कूट ७ यह कूट आनन्दन नामके
 देवसे अधिष्ठित हैं ७ ॥ सूत्र ५१ ॥

स्कार पर्वत छे, ते पर्वत पर सात कूट कहे छे तेमनां नाम नीचे प्रमाणे छे—

(१) सिद्धकूट—आ कूट मेरुनी समीपे छे अने सिद्ध देव वडे अधिष्ठित
 छे. (२) गन्धमादन—आ कूटमां गन्धमादन देवतुं निवास स्थान छे. (३) गन्धि
 लावती कूट—आ कूट गन्धिलावती विजय नामना देव वडे अधिष्ठित छे. (४)
 उत्तरकुरु कूट आ कूट उत्तरकुरु नामना देव वडे अधिष्ठित छे (५) स्फटिक
 कूट—अधोलोकमां रहनेवाली जे भोगङ्करा नामनी दिक्कुमारी छे, तेमनुं निवासस्थान
 स्फटिक कूट छे. (६) लोहिताक्ष कूट—अधोलोकमां रहनेवाली भोगवती नामनी
 दिक्कुमारीना निवासथी आ कूट युक्त छे,

(७) आनन्द कूट—आ कूट आनन्द नामना देवता निवासस्थानथी
 युक्त छे. ॥ सू० ५२ ॥

छाया—द्वीन्द्रियाणां सप्त जातिकुलकोटि योनि प्रमुख शतसहस्राणि प्रज्ञ-
सानि ॥ सू० ५२ ॥

टीका—‘ वेइंदियाणं ’ इत्यादि—

द्वीन्द्रियाणां जीवानां सप्त संख्यकानि जाति योनिप्रमुखकुलकोटिशतसह-
स्राणि—जातौ=द्वीन्द्रियजातौ या योनिप्रमुखाः=द्विलक्षसंख्यकद्वीन्द्रियोत्पत्ति-
स्थानद्वाररूपाः कुलकोटयस्तासां शतसहस्राणि=लक्षाणि प्रज्ञप्तानि=प्ररूपितानि ।
अयं भावः—द्वीन्द्रियजातौ या योनिः=द्विलक्षसंख्यकानि उत्पत्तिस्थानानि तत्प्र-
भया याः कुलकोटयस्ताः सप्तलक्षसंख्यका बोध्या इति । एकस्यामपि योनौ
अनेककुलानि संभवन्ति, यथा—गोमयरूपायामेकस्यां योनौ विचित्राकाराः कृमि-
दय उत्पद्यन्ते । अतः सप्तलक्षसंख्यकाः कुलकोटयो भवन्तीति । ‘ जोणिप्रमुह ’
इति विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वादिति ॥ सू० ५२ ॥

द्वीन्द्रियाश्च कर्मपुद्गलचयादिसत्त्वे एव भवन्तीति चयादीनाह—

मूलम्—जीवा णं सत्तट्टाणनिव्वत्तिए पोरगले पावकम्मत्ताए
चिणिसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा--नेरइयनि-
व्वत्तिए जाव देवनिव्वत्तिए । एवं चिणजाव निज्जरा चव ।

कूटस्थित पुष्करिणीके जलमें द्वीन्द्रिय भी होते हैं, अतः अब
सूत्रकार द्वीन्द्रिय सूत्रका कथन करते हैं—

टीकार्थ—‘ वेइंदियाणं सत्त जाइ कुलकोडिजोणी ’ इत्यादि । सूत्र ५२ ॥

टीकार्थ—दो इन्द्रिय जीवोंकी जो दो लाख योनियां कही गई हैं, उनसे
उत्पन्न हुई कुलकोटियां उनकी सात लाख कही गई हैं । क्योंकि एकही
योनिमें अनेक कुल होते हैं । जैसे गोमयरूप(गोबर) एकही योनिमें उत्पत्ति
स्थानमें विचित्र आकारवाले कृमि आदि उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिये
दो इन्द्रिय जीवोंकी योनियोंमें कुलकोटि सात लाख कही गई हैं ॥ सूत्र ५२

“ वेइंदियाणं सत्त जाइ कुल कोडिजोणी ” इत्यादि—(सू ५२)

टीकार्थ—द्वीन्द्रिय जीवोंकी जो दो लाख योनियोंकी कुलकोटि है, तैमांथी उत्पन्न थयेकी
तेमांथी कुलकोटियों सात लाख कुलकोटि है, कारण के अनेक न योनीमां अनेक
कुल होय है नैम के गोमय रूप अनेक न योनीमां—उत्पत्ति स्थानमां—विचित्र
आकारवाणा कृमि आदि उत्पन्न थय नय है तैथी द्वीन्द्रिय जीवोंकी योनीयोंमां
कुलकोटि सात लाख कुलकोटि है ॥ सू ५२ ॥

સત્તપ્તસિયા સ્વંધા અણંતા પળ્ણત્તા । સત્તપ્તસોગાઢા પોગ્ગલા
જાવ સરાગુણલુક્ષ્વા પોગ્ગલા અણંતા પળ્ણત્તા ॥ સૂ૦ ૫૩ ॥

॥ સત્તમં-ઠાણં સમત્તં ॥

છાયા--જીવા. સ્વલુ સપ્તસ્થાનનિર્વર્તિતાન્ પુદ્ગલાન્ પાપકર્મતયા અચિન્વન્
વા, ચિન્વન્તિ વા ચેષ્યન્તિ વા, તદ્વયા-નેરયિકનિર્વર્તિતાન્ યાવદ્ દેવનિર્વર્તિ-
તાન્ । એવં ચયો યાવન્નિર્જરા ચૈવ । સપ્તપ્રદેશિકાઃ સ્કન્ધાઃ-અનન્તાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ સપ્ત
પ્રદેશાવગાઢાઃ પુદ્ગલા યાવત્ સપ્ત ગુણ રૂક્ષાઃ પુદ્ગલા અનન્તાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ ॥ સૂ૦ ૫૩ ॥

જીવ દ્વીન્દ્રિયાદિક પર્યાયવાલે કર્મપુદ્ગલ ચયાદિ હોને પરં હી
હોતે હૈં અતઃ અવ સૂત્રકાર ચયાદિકા “ જીવાણં સત્તઢ્ઢાણં ” ઢ્ઢ્યાદિ
સૂત્ર ઢ્ઢારા કથન કરતે હૈં—

જીવોને સાત સ્થાનોસે નિર્વર્તિત પુદ્ગલોંકા પાપકર્મ રૂપસે ચય
ક્રિયા હૈ, ચય કરતે હૈં ઓર ચય કરેંગે-જૈસે-નેરયિક રૂપ સ્થાનસે
નિર્વર્તિત હુએ યાવત્ દેવસ્થાનસે નિર્વર્તિત હુએ પુદ્ગલોંકા ડન્હોંને પાપ-
કર્મ રૂપસે ચય ક્રિયા હૈ, વર્તમાનમૈં વે ડનકા ડસ રૂપસે ચય કરતે
હૈં, ઓર આગે ઢી વે ડનકા ડસ રૂપસે ચય કરેંગે ચયક્રી તરહ યાવત્
નિર્જરાકા ઢી ત્રિકાલ રૂપસે કથન કર લેના ચાહિયે ।

સાત પ્રદેશોંવાલે સ્કન્ધ અનન્ત કહે ગયે હૈં, સાત પ્રદેશોંમૈં અવ-
ગાઢ હુએ પુદ્ગલ યાવત્ સાત સ્થાન ડસ પ્રકારસે હૈં—

કર્મપુદ્ગલોનો ચયાદિક થાય ત્યારે જ જીવ દ્વીન્દ્રિયાદિક પર્યાયવાળો થાય
છે તેથી હવે સૂત્રકાર “ જીવાણં સત્તઢ્ઢાણં ” ઢ્ઢ્યાદિ સૂત્ર ઢ્ઢારા ચયાદિકનું
કથન કરે છે—“ જીવાણં સત્તઢ્ઢાણં ” ઢ્ઢ્યાદિ—સૂ ૫૩)

જીવોએ સાત સ્થાનોમાંથી નિર્વર્તિત પુદ્ગલોનો પાપકર્મ રૂપે ચય કર્યો
છે, ચય કરે છે અને ચય કરશે જેમ કે નેરયિક રૂપ સ્થાનમાંથી નિર્વર્તિત
થયેલા પુદ્ગલોનો તેમણે દેવસ્થાન પર્યન્તના સ્થાનોમાં નિર્વર્તિત થયેલા પુદ્ગ-
લોનો તેમણે પાપકર્મ રૂપે ભૂતકાળમાં ચય કર્યો છે. વર્તમાન કાળે તેઓ
તેમનો તે રૂપે ચય કરશે ચયની જેમ જ નિર્જરા પર્યન્તના વિષયોનું પણ
ત્રણ કાળની અપેક્ષાએ ઉપર પ્રમાણે જ કથન કરવું જોઈએ.

સાત પ્રદેશોવાળા સ્કન્ધ અનન્ત કહ્યા છે. સાત સ્થાનમાં અવગાહિત
થયેલાં પુદ્ગલો અનન્ત છે. તે સ્થાન નીચે પ્રમાણે છે—(૧) નારક, (૨)

टीका--' जीवाणं ' इत्यादि--

व्याख्या पूर्ववद् बोध्या । नवरं-सप्तस्थाननिर्वर्तितान्-सप्तसु स्थानेषु-
नारक-तिर्यक्-तिरश्ची-मनुष्य-मानुषी-देव-देवी रूपेषु मिथ्यात्वादिभिर्ये निर्व-
र्त्तिताः-सामान्येनोपार्जिता वक्ष्यमाणस्थानषट्कयोग्यीकृताः, तान्, यद्वा-
सप्तसु पूर्वोक्तेषु स्थानेषु निवृत्तिर्येषां ते तथा तान् सप्तस्थाननिवृत्तिकान्,
इति ॥ सू० ५३ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्ब्रह्म-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलितललितक-
लापालापक प्रविभुद्गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक श्री शाहू
छत्रपति - कोल्हापुरराजप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पदभूषित-कोल्हापुर
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य - जैनधर्मद्विवाकर-पूज्य
श्री घासीलालव्रति-विरचितायां स्थानाङ्गसूत्रस्य
सुधाख्यायां व्याख्यायां सप्तमं स्थानं
सम्पूर्णम् ॥ ७ ॥

नारक १, तिर्यञ्च २, तिरश्ची ३, मनुष्य ४, मानुषी ५, देव ६,
एवं देवी ७, इन स्थानोंमें जीवोंने रहकर मिथ्यात्व आदि द्वारा जिन
कर्म पुद्गलोंका सामान्य रूपसे उपार्जन किया है-वक्ष्यमाण स्थानषट्कके
योग्य किया है-यद्वा-इन उक्त सात स्थानोंमें जिनकी निवृत्ति हुई है,
ऐसे उन कर्मपुद्गलोंका जीवोंने पाप कर्म रूपसे त्रिकाण संबंधी चयादि
किया है । इस सूत्रकी व्याख्या पूर्वके समान जाननी चाहिये ॥सू०५३॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्मद्विवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराज
कृत " स्थानाङ्ग सूत्र " की सुधा नामकी व्याख्या के सातवां स्थान
समाप्त ॥ ७ ॥

तिर्यञ्च, (३) तिर्यञ्चणी, (४) मनुष्य (५) मनुष्य ऋतिनी स्त्री, (६)
देव अने (७) देवी. आ स्थानोर्मां रहने लुवोअे मिथ्यात्व आदि द्वारा जे
कर्मपुद्गलोनुं सामान्य रीते उपार्जन क्युं छे-अथ, उपयथ आदि निर्न्तरा
पर्यन्तना ६ स्थानने योग्य करेद छे अथवा-इपयुक्त सात स्थानमां जेमनी
निवृत्ति थर्ष छे अेवां ते कर्मपुद्गलोना लुवोअे पापकर्म रूपे त्रिकाण संबंधी
चयादि क्यों छे. आ सूत्रनी व्याख्या पूर्वं स्थानमां व्याख्या प्रभाणे
समन्वी. ॥ सू. ५३ ॥

श्री जैनाचार्य-जैनधर्म द्विवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराज कृत
"स्थानाङ्ग सूत्र" नी सुधा नामनी व्याख्यानुं सातमुं स्थान
समाप्त ॥ ७ ॥

